गां
धी
जी

खंड

बारह

अछूतोद्धार

प्रथम भाग

मूल्य एक रुपया आठ आना मात्र

(प्रथम संस्करण : मार्च १९५०)

मुद्रक तथा प्रकाशक

जयनाथ शर्मा

व्यवस्थापक

काशी विद्यापीठ प्रकाशन विभाग

तथा

विद्यापीठ मुद्रणालय,

बनारस छावनी

सूची

अपने ही बन्धु-बान्धवोंको सताये जानेके आधार-यंत्र बन जायँगे। अभी तो उनपर ही अत्याचार किया जा रहा है, इसलिये वे पापसे बचे हैं। पर उस समय वे पापाचारके यंत्र हो जायँगे। मुसलमानोंने पहले इसी मार्गका अनुसरण किया था पर अन्तमें उन्हें भी असफलता ही मिली। उन्होंने देखा कि उनकी अवस्था पहलेसे भी खराब हो गई है। सिक्खोंने भी इसका पूर्णतया अनुकरण किया पर उन्हे भी असफलता ही मिली। आज भारतकी जातियोंमें इस सरकारसे सबसे अधिक क्षुब्ध व असन्तुष्ट सिक्ख जाति ही है इसलिये सरकारकी सहायतासे उनकी कठिनाइयाँ दूर नहीं हो सकती।

दूसरा उपाय यह है कि वे हिन्दू-धर्मको छोड़कर ईसाई या मुसलमान हो जाँय। पर यदि धर्म-परिवर्तनसे सांसारिक (इहलौकिक) जीवनमें भी सुख और शान्ति मिल सके तो मै बिना किसी संकोचके उसकी सलाह दे सकता हूं। पर धर्म हृदयकी बात है। शारीरिक यातना या असुविधासे धर्म-त्यागकी भावना नहीं उठ सकती। यदि पंचम जातियोंके साथ यह अत्याचारपूर्ण व्यवहार हिन्दू-धर्ममें निहित हो तो उन्हें उचित है कि उस धर्मको तुरन्त त्याग दे और अपनी इस हीनताका सारा दोष उसी हिन्दू-धर्मके सिरपर मढे। पर मै जानता हूँ कि हिन्दू-धर्ममें अछूतोंका कोई प्रश्न ही नहीं आया है। हिन्दू-धर्मका कथन है कि इस तरहकी बाते उठा देनी चाहिये। इस समय अनेक हिन्दू-समाज-सुधारक हिन्दू-धर्मपर से यह काला धब्बा मिटा देनेके लिये प्राणपणसे यत्नकर रहे है। इसलिये धर्म-परिवर्तनसे भी कोई लाभ नहीं हो सकता और न वह उसके लिये उपयुक्त उपचार है। इसलिये तीसरी ही युक्ति उनके लिये शेष रह जाती है। और वह यह है कि वे आत्म-निर्भर हों और सवर्ण हिन्दू अपना धर्म समझकर अपनी पूर्ण इच्छासे उनकी जो कुछ सहायता करें उससे ही अपना काम चलायें। यहीं असहयोगकी आवश्यकता पड़ती है। इस व्यक्त बुराईको दूर करनेके लिये मैं सुसगठित असहयोगकी योजना ही उचित समझता हूँ। पर असहयोगके माने है बाहरी सहायतासे एकदम बरी रहना, अपनी शक्तिके उपयोगकी सहायता ही उसका मर्म है। केवल उन स्थानोंमें घुस जाना जहाँ जानेकी मनाही है, असहयोग नहीं है। यदि वह शान्तिपूर्वक जारी किया जा सके तो उसे सविनय-अवज्ञा भले ही कह सकते हैं। पर मैंने यह भली-भांति देख लिया है कि सविनय-अवज्ञाके लिये अधिक शिक्षा और आत्म-संयमकी आवश्यकता है। असहयोग सभी कर सकते हैं पर सविनय-अवज्ञा बहुत कम ही लोग कर सकते हैं। इसलिये उनके साथ जो दुर्व्यवहार किया जा रहा है उसके विरोधमें पंचम-जातियोंको उचित है कि वे हिन्दुओंके साथ तबतक असहयोग कर अपना संबन्ध-विच्छेद कर ले जबतक उनकी इस अयोग्यताका प्रतीकार न कर दिया जाय। पर इसके लिये सुसंगठित प्रयासकी आवश्यकता है। पर जहाँ तक मुझे दिखाई देता है पंचम-जातियोंमें ऐसा कोई नहीं जो असहयोग द्वारा उन्हें सफल-मनोरथ कर सके।

मिस्टर मिचलका उत्तर

"पतित जातियां" शीर्षक लेखमें मैंने जिन प्रश्नोंका उत्तर दिया था उसका प्रत्युत्तर देते हुये मिस्टर एस० एस० मिचल लिखते हैं:--

"अक्तूबर २७ के 'नवजीवन' में मेरे पत्रका उत्तर देते हुये आपने तो मेरी इतनी बात अवश्य स्वीकार कर ली है कि हम हिन्दुओंको उचित है कि अंग्रेजोंसे कहनेके पहले हमें अपने ही रक्त-रंजित हाथोंको साफ कर लेना चाहिये। पर आप तो पहले वही काम करनेके लिये अंग्रेजोंसे ही कह रहे हैं। आपने इस बातको भी स्वीकार किया है कि मैंने उचित प्रश्न ठीक समय पर छेड़ा है। तो क्या इससे आप यह बात नहीं व्यक्त कर रहे हैं कि आपने इस आन्दोलनको कुछ समय पहले ही चलाया है? इस प्रान्तमें दौरा करते समय आपने अपने किसी भाषणमें यही कहा था कि यदि हम भारतवासी अपनी अन्दरूनी अयोग्यताको दूर कर दें तो हमें स्वराज्य आपसे आप बिना मांगे मिल जायगा। पर यह देखकर मुझे खेद होता है कि अब आपने अपनी वह राय बदल दी है। इस मत-परिवर्तनको मैं भीषण राष्ट्रीय आपत्ति समझता हूं। पर मैं आपसे, विनीत होकर प्रार्थना करूंगा कि हममें से जिनका मन अभी उसी तरहका बना है उनके विषयमें आप गलत

अनुमान न कर लीजियेगा । उसी प्राचीन विश्वासके कारण इस प्रान्तकी अगणित दवी और अब्राह्मण जातिया आपके असहयोग आन्दोलनसे विमुख हो रही ह और आपके मार्गमें बाधा उपस्थित कर रही है। उनके मतसे आपका यह प्रयास विरुद्धाचरण ह। उनको इस बातका पक्का विश्वास है कि सम्प्रति इस संसारमें ब्रिटिश राज्य सबसे उत्तम है और आपने अपने प्रयाससे भारतको स्वतंत्र भी कर दिया तो वह स्वतन्त्रा अधिक दिन तक कायम नहीं रह सकती और अफगान या जापानके हाथमें भारत फिर पड़ जायगा। इसके अतिरिक्त जात-पाँतके भेद-भावके कारण छिन्न-भिन्न और नष्ट हो जानेकी बहुत कुछ संभावना है जैसा कि पहले कई बार हुआ है। इसलिये वे चाहते हैं कि स्वराज्यकी संस्थापनाके पहले भीतरी दुर्बलता और बाहरी आक्रमणके भयसे भारतको सुरक्षित कर देना चाहिये। इसलिये वे आपको यह धन्यवाद देते हुये कि आपने उन्हे आन्दोलनमें शामिल करनेके लिये निमंत्रित किया है, वे आपके अतिशय कृतज्ञ होगी यदि आप अपने आन्दोलनको स्थगित कर देंगे और उनके इस काममें योग-दान करेंगे जिसके द्वारा वे भारतको सब तरहसे योग्य बनाना चाहती हैं। आपने 'दासोंके दास' की बड़ी बुराईको दूर करनेसे छोटी बुराई आपसे आप ही दूर हो जायगी, इत्यादि जो बातें लिखी है, उसे पढ़नेवाला या सुननेवाला भले ही सन्तुष्ट हो जाय और आपकी प्रशसा करे पर व्यवहारकुशल आदमीके लिये उनमें कोई सार या तत्वकी बातें नहीं दिखाई देतीं। इस अवस्थापर पहुँचकर भी क्या यह आशा की जा सकती है कि आप अपनी भूलोको स्वीकार करेंगे और अपने पैरको पीछे हटाकर सामाजिक जीर्णोद्धारके काममें लग जांयगे जिसे स्वय आप भारतकी स्वाधीनताका सबसे प्रबल उपाय बताते हैं।"

इस पत्रको मैं सहर्ष प्रकाशित करता हूँ। पत्र पढ़नेसे स्पष्ट प्रगट हो जाता है कि मिस्टर मिचल 'नवजीवन' को बराबर नहीं पढ़ते। यदि उन्होंने पढ़ा होता तो उन्हें सबसे पहले विदित हो गया होता कि असहयोग आत्म-शुद्धिका प्रधान शस्त्र है। उन्हे विदित हो जायगा कि जिस समय इस असहयोगके द्वारा हम लोग स्वराज्य स्थापित करनेमें सफल हो जॉयगे उस समय अब्राह्मण या परियाका प्रश्न रह ही नहीं जायगा, जिसके हल करनेकी आवश्यकता प्रतीत होगी। मैं इस बातको आज भी स्वीकार करता हूँ कि भारतमें स्वराज्य स्थापित करने के लिये सामाजिक सुधारकी योजना प्रथम होनी चाहिये। पर उस समय तक मैं इस बातको नहीं समझ सका था कि बृटिश शासनका अत्याचार सब बुराईकी तहमें है और इसलिये वह सबसे बढकर है। इसलिये यदि यह सरकार अपने पापपूर्ण कामोंके लिये पश्चात्ताप नहीं प्रकट करना चाहती तो उसे उसी तरह नष्ट हो जाना होगा जैसे हिन्दुओंको यदि वे छुआछूतके प्रश्नको अपने समाजके अंदरसे उठाना नहीं चाहते। मेरा और मिस्टर मिचलका मतभेद उसी प्रकारका है जिस प्रकारका मतभेद उन हिन्दुओंका है जो छुआछूतके शैतानी प्रभावके परिणाम पर विचार नहीं करते। मिस्टर मिचल इस बातको नही

और भी कठिनाइयाँ

राष्ट्रीय स्कूलोंमें अछूत जातियोंके बालक भर्ती करनेकी मि० एन्ड्रूजने जो बात उठाई है उस संबन्धमें गुजरात-राष्ट्रीय-विश्वविद्यालयकी सिनेटने एक प्रस्ताव पास किया है। इससे अहमदाबादमें सनसनी फैली है। जिससे 'टाइम्स आफ इन्डिया' का एक संवाददाता केवल सन्तुष्ट ही नहीं हुआ है, बल्कि उसे सिनेटकी रचनासे एक दूसरी त्रुटि देखनेका अवसर मिला है। वह यह कि सिनेटमें एक भी मुसलमान मेम्बर नहीं है। इस त्रुटिसे यह न समझना चाहिये कि विश्व-विद्यालयके राष्ट्रीय चरित्रमें अभाव है। हिन्दू-मुसलमानोंकी एकता मौखिक बात नहीं है। इसलिये कृत्रिम परिमाणोंकी आवश्यकता नहीं है। इसका कारण यह है कि राष्ट्रीय शिक्षामें तन, मन, धनसे अपना समय लगानेको अभी तक कोई योग्य उच्च शिक्षित मुसलमान नहीं मिला है। मैं यह बात इसलिये कहता हूँ कि यह जानना चाहिये कि कुछ आदमी इस आन्दोलनकी अप्रतिष्ठा करनेके लिये भ्रमोत्पादक बातें किया करते हैं। यही एक बाहरकी कठिनाई है, जिसका वर्णन सुगमतासे किया जा सकता है।

अछूत जाति-संबन्धी कठिनाई भीतरी है क्योंकि इससे फूट पैदा हो सकती है जिससे उद्देश्यको हानि पहुँच सकती है—यदि भीतरी कठिनाइयां बराबर बढ़ती रहें तो कोई उद्देश्य कभी सिद्ध नहीं हो सकता। तो भी फूटसे बचनेके लिये सिद्धान्तमें किसी बातका परित्याग नहीं करना चाहिये। यदि आप किसी उद्देश्यके कुछ महत्वपूर्ण अंशोंका परित्याग करें तो आप उसकी उन्नति

नहीं कर सकते। अछूत-जातियोंकी समस्या इस उद्देश्यका बड़ा भारी अंग है। अछूत जातियोंके मिलाये बिना स्वराज्य उसी प्रकार असंभव है। जिस प्रकार हिन्दू-मुसलमान एकताके विना। मेरी तो यह सम्मति है कि हम साम्राज्य-के इसलिये गुलाम बन गये हैं कि हमने अपने मध्यमें गुलामोंकी सृष्टि की है। गुलामके मालिकको गुलामकी अपेक्षा अधिक धक्का पहुँचता है। जबतक हम भारतकी जनताके पाँचवें भागको गुलामीमें रखेंगे तबतक हम स्वराज्य पानेके योग्य नहीं होंगे। क्या हमने गुलामको पेटके बल नहीं रेंगाया है? क्या हमने उसे गुलाम नही कर दिया है। यदि उस गुलामके साथ ऐसा व्यवहार करना हमारा धम है तो हमें अलग कर देना भी गोरी जातिका धर्म है। गोरोंका यह कहना है कि हिन्दुस्तानी अपनी वर्तमान अवस्थासे सन्तुष्ट है यदि यह ठीक नहीं है तो हमारे लिये यह कहना कभी ठीक हो ही नहीं सकता कि गुलाम अपनी वर्तमान अवस्थासे सन्तुष्ट है। जब हम गुलामीको बढाते हैं तो वह हममें पूर्ण-रूपसे और लिपट जाती है।

गुजरात सिनेटने कुछ सोच-विचारकर ही लोगोंकी चिल्लाहटकी ओर ध्यान नहीं दिया। यह असहयोग आत्म-परिष्कृतिका मार्ग है। हमें चाहिये कि हम पुरानी रद्दी रीते-रस्मसे न लटककर स्वराज्यके उज्ज्वल फलकी चेष्टा करें। रीति-रस्मके कारण ही कुछ जातियोंको अछूत समझनेकी 'परिपाटी पड़ गई है। अछूत जातियां हिन्दू-समाजसे पृथक हैं यह कोई बात नहीं है। संसार भावमें अग्रसर हुआ है, यद्यपि कार्यमें वह बर्बर बना हुआ है। जो धर्म वास्तविक तत्वोंकी नींवपर नहीं खड़ा किया गया है वह कभी ठहर नहीं सकता। भूलकी प्रतिष्ठा करना धर्मको उसी प्रकार नष्ट कर देगा जैसे रोगकी परवाह न करनेसे वह शरीरका अन्त कर देता है।

हमारी यह सरकार निःशंक है। इसने मुसलमानोंको हिन्दुओंसे पृथककर हमपर शासन किया है। हिन्दुओंके मध्य जो निर्भयता है उससे अपना यह पक्ष सबल करती है। यह अछूत-जातियोंको शेष हिन्दुओंसे तथा अब्राह्मणोंको ब्राह्मणोंसे लड़ाता है। गुजरात-सिनेटने इस कष्टका अन्त नहीं किया है। इसने सिर्फ कठिनाइयां बता दी हैं। यह कष्ट तभी दूर हो सकता है जब हिन्दू जनता अछूतोंको घृणा करना छोड़कर उसे अपनी समाजमें मिला लेगी। स्वराज्यके प्रेमी किसी भी हिन्दूको अछूत जातिका उत्थान करनेके लिये उसी प्रकार निरन्तर उद्योग करना चाहिये जिस प्रकार वह हिन्दू-मुसलमानोंकी एकता बढ़ानेके लिये करता है। हम अछूतोंके साथ अपने जैसा बर्ताव करें और उन्हें वही अधिकार दें जिसके लिये हम लड़ रहे हैं।

हिन्दी-नवजीवन

२४ नवंबर १९२०

अपनी कार्रवाइयोंके लिये पश्चात्ताप कीजिये। उसी तरह हम हिन्दुओंको भी उचित है कि जो बुराई हमलोगोंने की है उसके लिये पश्चाताप प्रगट करें। अपने दिलकी प्रवृत्तिको बदले और जिस शैतानीके बर्तावके साथ हमने उन्हें दबाया है—जिस बातका कलंक हम भारत सरकारके सिर मढते हैं—उसके लिये पश्चात्ताप करें। केवल चन्देसे स्कूलोंको उनके लिये खोल देनेसे उनका काम न चलेगा, हमें उनपर अपना बड़प्पन नहीं प्रकट करना चाहिये। हमें उन्हें अपना सगा भाई समझना चाहिये, जैसा कि वे वास्तवमें हैं। जिस परम्परागत सम्पत्तिसे हमने उन्हें वंचित किया है, उसे हमें उन्हें अवश्य लौटा देना चाहिये। पर यह काम चन्द उन अंग्रेजी पढ़े-लिखे लोगोंका ही नहीं होना चाहिये बल्कि सर्व-साधारणको अपने हृदयकी प्रेरणासे यह काम करना चाहिये। इस दीर्घ-कालव्यापी सुधारके लिये हमें अनन्त-कालतक ठहरने का समय नहीं है। हमें उसकी पूर्ति इसी वर्षमें कर देनी चाहिये। इसके लिये हमें कठिन तपस्या करनी चाहिये। सुधार स्वराजके बाद नहीं हो सकता। स्वराज्य प्राप्त करनेके पहले ही उसे सम्पूर्ण कर डालना चाहिये।

अछूत, धर्म-विहित नहीं हैं। बल्कि यह शैतानका धर्म है। अपने लाभके लिये शैतान भी धर्म-ग्रन्थोंका प्रयोग करता है। पर इस तरहके अवतरणोंसे सत्य और विश्वास कहींसे भी नहीं उठ जा सकता। उनका काम है, विश्वासको शुद्ध करना और सत्यको व्यक्त करना। वेदोंमें अश्वमेध-यज्ञकी चर्चा है तो इसके लिये निर्दोष घोड़ोंको हम जला नहीं देंगे। मेरे हृदयमें वेदोंके लिये अपूर्व श्रद्धा है। मैं उसे देवता-प्रदत्त मानता हूँ। उनके शब्दोंमें यह चर्चा हो सकती है, पर प्रकाश डालनेके लिये तो उसके तत्त्वका निरूपण करना चाहिये। और वेदोंका तत्त्व है: पवित्रता, सचाई, निर्दोषिता, नम्रता, सादगी, क्षमादान, विस्मृत देवत्व और अन्य वे सब बातें जिनसे नर और नारी नम्र और वीर हो सकते हैं। समाजके उन असंख्य न बोलनेवालोंको इस तरह कूड़ेकी तरह समझना तो कोई बहादुरीमें शामिल नहीं है। क्या ईश्वरने हमें शक्ति इसलिये दी है कि हम राष्ट्रके पतनके कारण हों, जैसा कि हम लोगोंने अछूत जातियोंको बना डाला है?

हिन्दी-नवजीवन
१९ जनवरी १९२१

जो उनके स्वराजके अधिकारको उसे इनकार कर सके। यह मैं मानता हूँ कि भारतीय क्षितिजपर अनेक बादल भीषण रूप धारण करके मंडरा रहे हैं, फिर भी मै इस बातको दावेके साथ कह सकता हूँ कि जिस समय भारत अछूतोंके साथ अपने बुरे व्यवहारके लिये पश्चाताप प्रगट कर लेगा और विदेशी कपड़ोंका पूर्णतया बहिष्कार कर देगा, उसी समय वे अंग्रेज भी भारतका स्वागत करनेके लिये उतारू हो जायेंगे और उसे स्वतंत्र तथा वीर जाति मानने लग जॉयेगे जो इस समय कठोर हृदयका परिचय दे रहे है।। मुझे इस बातका पक्का विश्वास है कि यदि हिंदू चाहें तो इन पंचम जातियोका उद्धार कर सकते हैं और उनको भी वही अधिकार दे सकते हैं जिसका उपयोग आप कर रहे हैं। और यदि भारतवासी चाहें तो अपनी आवश्यकता भर वे कपड़ा भी तैयार कर सकते हैं, जिस तरह वे अपने लिये भोजन बना लेते हैं। इसलिये मुझे इस बातका भरोसा है कि हम इस वर्षमें स्वराज प्राप्त कर सकते है। पर यह परिवर्तन किसी विस्तृत यन्त्रादिकी कार्रवाईसे साध्य नही है। केवल ईश्वरकी कृपासे ही हमें यह प्राप्त हो सकता है। इस बातको कोई भी अस्वीकार नहीं कर सकता कि इस समय ईश्वर हम लोगोंमें से प्रत्येकके दिलोंमें बैठा विचित्र तरहसे काम कर रहा है। हर तरहसे कांग्रेसमें काम करनेवालोंका यह धर्म है कि वे इन अछूत भाइयोंकी सहायता करे और हिन्दू तथा अहिंदूसे इस बातकी चेष्टा करे कि किसी भी हिन्दू-धर्मके अनुसार चाहे वह गीता विहित हो, वेद विहित हो, शंकर संप्रदाय हो, या रामानुज संप्रदाय हो, किसीमें भी किसी मनुष्यके साथ चाहे वह कितना भी गिरा क्यों न हो—इस तरहका व्यवहार विहित नहीं है। प्रत्येक कॉग्रेसमें काम करनेवालोंका धर्म है कि कट्टर हिन्दुओंको विनम्र भावसे इस तरह समझावे कि अछूतोंके प्रति इस तरहकी जड़ता अहिंसाके भावके प्रतिकूल है।

हिंदी-नवजीवन
२९ सितम्बर १९२१

❀

अन्त्यज परिषद्

गोधरा परिषदके बादसे हम (गुजरातमें) अन्त्यज परिषद करते आये हैं। पर इस साल उसका महत्व अधिक है उसका एक कारण यह है कि मामा साहब फड़के उसके सभापति हैं, दूसरा यह कि मैं आ गया हूँ। मैंने बारडोली और गुजरातसे चाहा था कि अस्पृश्यता तुरन्त हट जानी चाहिये। पर अभी तक न हट सकी। इसमें दैवके सिवा किसको दोष दें? हिन्दू जातिकी

धर्म संकट

"यहाँ—नामक एक राजपूत हैं। वे अन्त्यजोद्धारके काममें बड़ी दिलचस्पी लेते हैं। उन्होंने बड़ी मददकी है। अन्त्यजोंके छूनेके कारण उनकी जाति उनपर बहुत बिगड़ी है। बहुत समझानेपर उनकी जातिवाले कहते हैं कि—को अन्त्यज-स्पर्शके बाद प्रायश्चित करना चाहिये। यदि प्रायश्चित न करें तो उसे जातिसे बाहर निकाल देंगे। पर वे महाशय सिद्धान्तकी रूसे प्रायश्चित करना इन्कार करते हैं।"

ऐसा एक दयाजनक पत्र मेरे पास पड़ा है। जो सज्जन प्रायश्चित करनेसे इन्कार करते हैं उन्हें मैं धन्यवाद देता हूं। जब कि हम अस्पृश्यताको पाप मानते हैं, तब प्रायश्चित करके अपने ही सिद्धान्तको तिलांजली कैसे दें? जातिवालोंको हम नम्रतापूर्वक समझावे, पर यदि वे न मानें तो जातिसे बाहर होनेका दण्ड विनयपूर्वक सहन करें, परन्तु प्रायश्चित तो हरगिज न करें। मेरी यही मजबूत राय है।

हिन्दी-नवजीवन
११ मई १९२४

❀

अस्पृश्यता और स्वराज्य

एक सज्जन गम्भीरताके साथ लिखते हैं:—"अस्पृश्यताका अर्थ मुझे विचित्र मालूम होता है। क्योंकि आम तौर पर स्पृश्य नामक कोई जाति हुई नहीं। बिना जरूरतके शायद ही कोई किसीके बदनको छूता हो। "अछूत" माने जानेवाले लोगोंसे भिन्न लोगोंमें ऐसी प्रथा है कि वे एक दूसरेके पास आने जानेमें बुराई नहीं समझते। बस। परन्तु कोई शख्स जान-बूझकर किसीको नहीं छूता। इसी तरह अगर 'अछूत' अपने कामसे काम रक्खें और दूसरे लोग अपने कामसे काम रक्खें तो क्या इस जटिल प्रश्नका निपटारा न होगा?

"मुझे विश्वास है कि पापके धोनेके लिये खास तौर पर 'अछूत'के पास जाकर उसे छूनेकी आप जरूरत न बतावेंगे और अगर साक्षात् स्पर्शकी आवश्यकता न हो तो इस पापको अस्पृश्यताके नामसे पुकारनेका क्या अर्थ है? आप जो अस्पृश्यता शब्दका प्रयोग करते हैं इससे ऐसा सूचित होता है कि इस बुराईको दूर करनेके लिए सरेदस्त छूना जरूरी है। और मैं समझता हूं कि आपकी इस हलचलपर पुराने विचारके लोग जो

मेरे नजदीक स्वराज्यका मतलब है हमारे देशके हीनसे हीन लोगोंकी आजादी। जब कि हम लोग दुःखावस्थामें हैं तब यदि पंचमोंके भाग्य न जागे तो जब कि हम स्वराज्यके नशेमें मदमाते हो जायंगे, तब उनकी कौन सुनेगा? यदि हमारे लिये स्वराज्य प्राप्तिकी यह शर्त आवश्यक है कि हम मुसलमानोंसे मेल कर ले तो यह भी उतना ही आवश्यक है कि इसके पहले कि जरा भी इन्साफ या आत्म-सम्मानके साथ हम स्वराज्यकी बातें करें, हम पंचम भाइयोंको अपनालें। मुझे इस बातमें कुछ भी दिलचस्पी नहीं है कि हिन्दुस्तानकी गर्दनसे महज अंग्रेजोंका जुआ हट जाय। मैं तो हिन्दुस्तानके गलेसे हर किस्मके जुएको हटा देनेपर तुला हुआ हूँ। मै नहीं चाहता कि भूतको गद्दीसे हटाकर पिशाचको बिठाऊँ। इसीलिये मेरे नजदीक तो स्वराज्यके आन्दोलनके मानी है आत्मशुद्धिका आन्दोलन।

हिन्दी-नवजीवन
२२ जून १९२४

मैं हारा

कभी कभी कुछ सज्जन मेरे पास आकर मुझसे शास्त्रार्थ करना चाहते हैं। "दूसरे लोग अस्पृश्यताके बारेमें चाहे कुछ कहते रहें पर आपको तो इसका नाम तक मुँहसे न निकालना चाहिये क्योंकि आप धर्मका नाम लेकर बातें करते हैं। इससे लोगोंको धोखा होता है। अगर धर्म-शास्त्रोंने अस्पृश्यताको पाप माना हो तो या तो उन वचनोंको पेश करके आप साबित कर दीजिये, नहीं तो मै वेदोंके प्रमाणोंसे यह दिखला सकता हूँ कि उसमें अस्पृश्यताके लिये काफी जगह है। यदि अस्पृश्यता नष्ट हो जाय तो सनातन-धर्मका लोप हो जाय।" इस तरहकी बातें एक स्वामीजीने आकर मुझसे कहीं।

सुनकर मैं चौका। मैंने तो सिर्फ इतना ही कह दिया कि मैं तो वाद-विवाद करनेमें अपनी हार हमेशा मान लेता हूँ। मैं आपके साथ शास्त्रार्थ नहीं कर सकता। मैं पहलेसे यह बात कबूल कर लेता हूँ कि मै आपके सामने बहसमें नहीं टिक सकता। फिर भी मैं यह जरूर कहता रहूँगा कि अस्पृश्यता हिन्दू-धर्ममें महापाप है। इससे स्वामीजीको सन्तोष नहीं हुआ। हाँ, मैंने अपने दिलमें पूर्ण सन्तोष मान लिया। मैं तो यह मुख्तसिर जवाब देकर पार हुआ।

फेंकना, उसके बाल-बच्चोंको न पढाना, वे अगर बीमार हो जॉय तो उनकी दवा दरपनमें मदद न देना, उन्हें मन्दिरोंमें न पैठने देना और कुऍपर पानी न भरने देना —यह धर्म नही अधर्म है। इसे हिन्दू-धर्मका अंग मानकर हम हिन्दू धर्मकी जड़ उखाड़नेकी तैयारी कर रहे हैं।

ऐसी अस्पृश्यता घातक है। यह असिहष्णुताकी पराकाष्ठा है। इसे दूर करनेका प्रयत्न करना और ऐसा करते हुए मर मिटना हरएक हिन्दूका परम-धर्म है। मुझे इस विषयमें जरा भी सन्देह नहीं रह गया है।

हिन्दी-नवजीवन
२९ जून १९२४

❀

कुछ उचित प्रश्न

कुछ दिन हुए मैंने अस्पृश्यताके बारेमें बंगालसे प्राप्त एक विचारपूर्ण पत्र छापा था। उसके लेखक आज भी बड़ी सरगर्मीसे उस विषयमें खोज कर रहे है। अब मद्रासकी तरफसे भी एक सज्जनने पत्र लिख कर उसकी वैसी ही खोज करनेके लिये कितने ही प्रश्न पूछे है। इस जटिल प्रश्नकी खोज करनेके लिये कट्टर हिन्दू लोग भी प्रवृत्त हुए हैं, यह बड़ा शुभ चिन्ह है। इसमें कोई शक नहीं कि प्रश्न पूछनेवालोंको सच्ची उत्कंठा है। प्रश्न नमूना रूप है। क्योंकि इतनी बड़ी सूचीमें एक भी प्रश्न ऐसा न होगा जो मेरे प्रवासके दरम्यान मुझसे न पूछा गया हो। इन सज्जनके पूछे इन जटिल प्रश्नोंको हल करनेका प्रयत्न इसी आशामें करता हूँ कि मेरे जवाबसे पत्र लिखनेवाले सज्जनको—जो एक कार्यकर्त्ता और सच्चे शोधक होनेका दावा करते हैं और दूसरे कार्यकर्त्तागण और शोधकोंको कुछ रास्ता दिखाई दे।

(१) अछूत-पनको दूर करनेके लिये असली उपाय क्या क्या करने चाहिये ?

(अ) अस्पृश्योंके लिये सब सार्वजनिक शालायें, मन्दिर, रास्ते, जो अब्राह्मणोंके लिये खुले हैं और जो किसी खास जातिके लिये नहीं होते, खोल दिये जांय।

(ब) ऊँची जातिवाले हिन्दूओंको चाहिये कि उनके बच्चोंके लिये मदरसे खोलें, जहॉ जरूरत हो वहॉ उनके लिये कुआँ खोदें और उन्हें सब प्रकारके

चाहिये और धर्मके संबन्धमें हुई नयी-नयी खोजोंके साथ उसका ऐक्य स्थापित होना चाहिये।

(८) क्या आप यह नहीं मानते कि भारतवर्ष कर्म-भूमि है और इसमें जन्म पाये हर शख्सको अपने भले बुरे पूर्व-कर्मके ही अनुसार विद्या, बुद्धि, धन और प्रतिष्ठा मिलती है?

पत्र-लेखक सज्जन जैसे मानते हैं वैसे नहीं। क्योंकि हर शख्स कहीं क्यों न हो जैसा करेगा वैसा पावेगा। लेकिन भारतवर्ष खास करके भोग-भूमिके विपरीत अर्थमें कर्म-भूमि है, कर्तव्य-भूमि है।

(९) अछूतपनके दूर करनेकी बात करनेके पहले क्या अछूतोंमें शिक्षा-प्रचार और सुधार होना लाजिमी शर्त नहीं है?

अस्पृश्यता दूर किये बिना अस्पृश्योंमें सुधार या प्रचार नहीं हो सकता।

(१०) क्या यह बात कुदरती नहीं है, जैसी कि होनी चाहिये कि शराब न पीनेवाले शराब पीनेवालेसे परहेज रखते हैं और शाकाहारी अशाकाहारीसे?

यह आवश्यक नहीं है। शराब न पीनेवाला अपने शराब पीनेवाले भाईको उस बुरी आदतसे बचानेके लिये उसके पास जाकर अपना कर्तव्य करेगा और इसी प्रकार मांस न खानेवाला खानेवालोंको ढूंढेगा।

(११) क्या यह बात सच नहीं है कि एक शुद्ध (इस अर्थमें कि वह मद्यपी नहीं है और शाकाहारी है) आदमी आसानीसे अशुद्ध (इस अर्थमें कि वह मद्यपी और अशाकाहारी है) हो जाता है जब कि वह उन लोगोंमें मिलता जुलता है जो शराब पीते हैं, हिंसा करते हैं और मांस खाते है?

यह कोई आवश्यक बात नहीं है कि वह शख्स जो उसकी बुराई नहीं जानता है यदि शराब पीये या मांस खाये तो वह अपवित्र (नापाक) है। लेकिन मैं समझता हूँ कि बुरे आदमीकी संगत करनेसे बुराई होना संभव है। इस मामलेमें तो अस्पृश्योंके साथ किसीकी संगत करनेकी तो कोई बात ही नहीं की गई है।

(१२) कुछ कट्टर ब्राह्मण जो दूसरी जातियोंसे (जिनमें अछूत भी शामिल हैं) नहीं मिलते जुलते हैं और अपनी एक अलहदा जाति बनाकर अपनी आध्यात्मिक उन्नति करते हैं, उसका कारण क्या यही नहीं है?

वह आध्यात्मिक स्थिति जिसकी रक्षाके लिये चारों तरफसे बन्द रहना पड़ता है, बड़ी कमजोर होनी चाहिये और अलावा इसके वे दिन भी गये जब कि मनुष्य सदा एकान्तमें रह कर अपने गुणोंकी रक्षा करता था।

(१३) अछूतपनको दूर करनेका प्रतिपादन करके क्या आप भारतके

धर्म और वर्णव्यवस्था (वर्णाश्रम-धर्म) में दखल नहीं देते हैं—फिर वह धर्म और व्यवस्था चाहे अच्छी-खोटी हो या नहीं ?

सिर्फ एक सुधारको हिमायत करने ही से मैं कैसे किसीका दखल करता हूं ? दखल करना तो तभी कहा जाता जब कि मैं जो लोग अस्पृश्यता कायम रखते हैं, उनपर जोर-जुल्म करके अस्पृश्यता-निवारणका पक्ष समर्थन करता होता।

(१४) पुराने कट्टर ब्राह्मणोंको उनका विश्वास कराये विना ही उनके धर्ममें दखल करनेसे क्या आप उनके प्रति हिंसाके दोषी न होंगे ?

मैं कट्टर ब्राह्मणोंके प्रति हिंसाका दोषी नहीं हो सकता, क्योंकि मैं विना विश्वास उत्पन्न किये उनके धर्ममें कोई दखल नहीं करता।

(१५) ब्राह्मण लोग जो और दूसरी जातियोंको स्पर्श नहीं करते, उनके साथ खाना नहीं खाते, शादी नहीं करते, अस्पृश्यता दोषके दोषी हैं या नहीं ?

दूसरी जातिके लोगोंको स्पर्श करनेसे यदि वे इन्कार करते हैं तो वे अवश्य दोषी हैं।

(१६) मनुष्यके हकका अमल करनेके लिये अस्पृश्य लोग ब्राह्मणोंके अग्रहारममें घूमें तो इससे क्या उनकी क्षुधा तृप्त होगी ?

मनुष्य सिर्फ रोटी खाकर नहीं जीता है। बहुतसे लोग खानेसे आत्म-सम्मानको अधिक पसन्द करते हैं।

(१७) अस्पृश्य लोग इतने शिक्षित नहीं कि वे अहिंसात्मक असहयोगके सिद्धान्तको पूरी तरह समझ सकें और ब्राह्मण लोग राजनीतिके बनिस्वत धर्मकी ज्याद. चिन्ता करते हैं। सो क्या इस बारेमें सत्याग्रह करनेसे वह हिंसात्मक न हो उठेगा ?

यदि इससे वायकोमके प्रति इशारा किया गया है तो अनुभवसे यह बात मालूम हुई है कि अस्पृश्योंने आश्चर्यजनक आत्म-संयम दिखाया है। सवालका दूसरा भाग यह सूचित करता है कि ब्राह्मण लोग जिनका इससे संबन्ध है, संभव है मारपीट कर बैठें। यदि ऐसा करेंगे तो मुझे बड़ा अफसोस होगा। मेरी रायमें तब वे धर्मके प्रति सम्मानके बदले धर्मका अज्ञान और उसके प्रति नफ-रत ही जाहिर करेंगे।

(१८) क्या आपका यह कहना है कि जात-पॉत धर्म और विश्वासके किसी प्रकारके भेदके विना ही सबको समान हो जाना चाहिये।

मनुष्यत्वके प्राथमिक हकोंके बारेमें कानूनकी नजरोंमे तो यही होना चाहिये जिस तरह कि जात-पॉत और वर्णका लिहाज रखे विना हम लोगोंमें भूख, प्यास इत्यादि सर्व-सामान्य है।

(१९) यह देखते हुये कि महान आत्मायें ही, जो कि अपना कर्म-जीवन

समाप्त कर चुकी हैं, उच्च दार्शनिक सिद्धान्तको पहचान सकी है और उसका पालन कर चुकी है, मामूली गृहस्थ नहीं ;क्योंकि वे ऋषियोंके बताए मार्गका अनुसरण करते है और ऐसा करते हुए संयमशील होकर जन्म-मरणके फेरसे छुटकारा पाते है, क्या वह सिद्धान्त एक मामूली गृहस्थके लिये व्यवहारमें किसी मसरफका होगा?

इस सीधे-साधे सिद्धान्तको माननेमें केवल जन्मके कारण कोई प्राणी अछूत नहीं माना जा सकता। कोई उच्च दार्शनिक सिद्धान्त बीचमें नहीं आता। यह सिद्धान्त इतना सरल है कि अकेले कट्टर हिन्दुओंको छोडकर सारी दुनिया उसकी कायल है। और इस बातपर कि ऋषियोंने वैसे अछूतपनकी शिक्षा दी है जैसा कि हम पाल रहे है, मैंने आपत्ति ही उठाई है।

हिन्दी-नवजीवन
५ फरवरी १९२५

❀

बंगालके अछूत

बंगालसे एक सज्जन पत्र लिखकर पूछते हैः—

(१) बगालमें अछूतोको कुओसे पानी नहीं लेने देते और जिस जगह पीनेका पानी रखा हो वहां उन्हें जाने भी नहीं देते। इस बुराईको दूर करनेके लिये क्या करना चाहिये? यदि हम उनके लिये अलग कुवें खुदवायें और अलग शालाएँ स्थापित करें तो इसके माने इस बुराईके लिये छूट देना होगा।

(२) बगालके अछूतोका झुकाव इस बातकी तरफ है कि ऊची जातिवाले उनके हाथका पानी पीयें। लेकिन वे खुद अपनेसे नीची जातिवालोके हाथका पानी लेनेंसे इन्कार करते हैं। उनकी इस गलतीको सुधारनेके लिये क्या करना चाहिये?

(३) बंगालकी हिन्दू महासभा और आमतौर पर हिन्दू लोग लोगोसे कहते है कि अछूतोके हाथका पानी पीनेका विचार आपको पसन्द नहीं है।

मेरे उत्तर ये हैं—

(१) इस बुराईको दूर करने का रास्ता तो है अछूतोंके हाथका पानी पीना। मै यह नहीं ख्याल करता कि उनके लिये अलग कुआँ खुदवानेसे यह बुराई कायम रहेगी। अछूतपनके परिणामोंको दूर करने के लिये बहुत समय लगेगा। इस डरसे कि सार्वजनिक कुओंका उपयोग उन्हें न करने दिया जायगा, अछूतोको अलग कुऐं बनवा देने से जो मदद मिलती हो उसे रोक रखना ठीक न होगा। मेरा

पानी पीने या दूसरी चीज खानेसे इन्कार करवें तो आपके ख्यालसे यह आपका तिरस्कार न होगा। मैं इसको मान लेता हूँ। लेकिन आप नहीं जानते कि इस प्रातके ब्राह्मण १०० गजके फासलेसे भी यदि कोई अब्राह्मण उनका खाना देखले तो उसे न खांयगे। खाना छूनेकी बात तो दूर रही, क्या मैं आपको यह बताऊँ कि रास्तेमें कोई शूद्र एक या दो लफ्ज बोल दें तो उतनेसे ही भोजन करते हुए ब्राह्मणको गुस्सा आ जायगा और फिर वह दिन भर न खायगा। यदि यह तिरस्कार नहीं तो फिर क्या हो सकता है ? क्या यह ब्राह्मणोकी अकड नहीं है ! क्या आप इस बातपर प्रकाश डालेंगे ? मैं स्वय एक ब्राह्मण युवक हूँ और इसी लिये अपने अनुभवसे ही ये बातें लिख रहा हूँ।"

अस्पृश्यता बहुमुखी राक्षस है। यह धर्म और नीतिकी दृष्टिसे बड़ा ही गम्भीर प्रश्न है। मेरी दृष्टिमें रोटी व्यवहार एक सामाजिक प्रश्न है। वर्तमान अस्पृश्यताकी ओटमें मनुष्य जातिके एक अंशके प्रति तिरस्कार-भाव छिपा हुआ है समाजके मर्म-स्थलोंमें एक प्रकारका घुन लगा हुआ है, मनुष्यत्वके हकोंका यह इन्कार है। रोटी-व्यवहार और अस्पृश्यता समान नहीं हो सकते। समाज-सुधारकोंसे मेरी प्रार्थना है कि वे इन दोनोंको एक न कर दें। यदि वे ऐसा करेंगे तो वे अस्पृश्यों और दूरितोंके हितको हानि पहुचावेंगे। इस ब्राह्मण पत्र लेखककी कठिनाई सच्ची कठिनाई है। इससे प्रतीत होता है कि यह बुराई कितनी गहरी पैठ गई है। ब्राह्मण शब्द तो नम्रता, अपने आपको भूल जाना, त्याग, पवित्रता, हिम्मत, क्षमा और सत्य ज्ञानका पर्यायवाची होना चाहिये। लेकिन आज तो यह पवित्र भूमि ब्राह्मण और अब्राह्मणके विभागोंसे दुःखी हो रही है। बहुतेरी बातोंमें ब्राह्मणोंने अपनी महत्ताको नष्टकर दिया है। उन्होंने अपनी ऐसी महत्ताका दावा कभी नहीं किया था। लेकिन निःसंशय उनकी सेवाके कारण उसका सेहरा उन्हींके सिर बंधा था। ब्राह्मण लोग जिसका आज दावा नहीं कर सकते हैं उसीको प्राप्त करनेके लिये बड़ा प्रयत्न कर रहे हैं और इससे हिन्दुस्तानके कुछ हिस्सोंमें अब्राह्मण लोगोंको उनके प्रति ईर्ष्या हुई है। हिन्दू धर्म और देशके सद्भाग्य से पत्र-लेखक जैसे ब्राह्मण भी मौजूद हैं जो इस बुरी प्रवृत्तिके खिलाफ अपनी पूरी ताकतके साथ लड़ रहे हैं और जो अब्राह्मणोंकी त्याग भावसे बराबर सेवा कर रहें हैं। यह उनके उच्च भूतकालके अनुकूल है। जहाँ कहीं देखो अस्पृश्यताके खिलाफ आज ब्राह्मण लोग आगे आकर लड़ रहे हैं और अपने पक्षका समर्थन करनेके लिये वे शास्त्रोंका आधार भी पेश कर रहे हैं। पत्र-लेखकने दक्षिणके जिन ब्राह्मणोंका वर्णन किया है उनसे मेरी प्रार्थना है कि वे समयके प्रवाहको देखे ऊँच-नीचके गलत ख्यालको छोड़ दें और वे इस वहमको भी छोड़ दें, जिससे कि उन्हें अब्राह्मणको देखकर पापकी गन्ध आती है। और उनकी आवाज सुनकर उनका खाना अपवित्र हो जाता है। ब्राह्मणोंने ही ब्रह्मको सर्वत्र देखनेकी शिक्षा संसारको दी है। बेशक तब फिर अपवित्रता कहीं बाहरसे नहीं आ सकती। वह अन्दर ही होती है।

आज ब्राह्मण यह सन्देश फिर सुनावें कि अछूतपनका ख्याल बुरा ख्याल है। उसने संसारको यह शिक्षा दी है। "आत्मैव ह्यात्मनो बन्धुरात्मैव रिपुरात्मनः" मनुष्य स्वयं ही अपना उद्धारक है और अपना शत्रु और नाशक भी है।

इस आशय पर लेखककी बातोंसे ब्राह्मणोंको क्षुब्ध होना चाहिये। इस पत्रलेखक जैसे कितने ही ब्राह्मण उनकी तरफसे अस्पृश्यताके खिलाफ उसी तरहसे लड़ेंगे जिस तरह वे लड़ रहे हैं। कुछ थोड़े लोगोंके पापोंके कारण ब्राह्मणों-की सारी जातियोंको ही धिक्कारना न चाहिये। मुझे डर है कि यह प्रवृत्ति बढ़ रही है। वे इतने उदार बनें कि जो लोग उनके प्रति बुरा व्यवहार करते हैं उनसे अच्छे व्यवहारकी आशा न करें। कोई ब्राह्मण यदि मेरी तरफ दृष्टि न करे, यदि वह मेरे स्पर्शसे, मेरी उपस्थितिसे या मेरी आवाजसे नापाक हो जाय तो उससे मैं अपना अपमान न समझूंगा। इतना ही काफी है कि उनके चलनेसे मैं अपने रास्ते से न हटूंगा या यह सुन लेगा इस डरसे बोलना बन्द न करूंगा। जो अपनेको उच्च मानता है उसके अज्ञान और घमंडपर मुझे दया आसकती है लेकिन मैं उसपर क्रोध और उसका तिरस्कार नहीं कर सकता। क्योंकि यदि मेरा तिरस्कार किया जावेगा तो मुझे बुरा मालूम होगा। संयम खो देनेसे तो अब्राह्मण लोग अपना मुद्दा ही खो बैठेंगे। सबसे महत्वकी बात तो यह है कि सीमासे अधिक आगे बढ़कर वे ब्राह्मण योद्धाओंको विपत्तिमें न डाल दें। ब्राह्मण तो हिन्दू धर्म और मनुष्य समाज-का उत्तम पुष्प अंग है। ऐसा एक भी काम मैं न करूंगा जिससे उसे मुरझाना पड़े। मैं यह जानता हूं कि वह अपनी रक्षा करनेके लिये समर्थ है। उसने अबतक बहुतसे तूफानोंको देख लिया है। लेकिन अब्राह्मणोंके बारेमें यह न कहना चाहिये कि उन्होंने इस पुष्पकी सुगन्ध और कान्तिको लूट लेनेका प्रयत्न किया है। मै नहीं चाहता कि ब्राह्मणोंके सर्वनाशपर अब्राह्मण लोग उन्नति करें। मै तो यह चाहता हूँ कि वे उस उच्च स्थानको पहुंच जाँय जिसपर अबतक ब्राह्मण लोग पहुँचे हुये थे। ब्राह्मण जन्मसे होते हैं लेकिन ब्राह्मणत्व जन्मसे नहीं होता। यह तो वह गुण है जिसको कि छोटेसे छोटा आदमी भी अपना विकास करके प्राप्त कर सकता है।

हिन्दी-नवजीवन
१९ मार्च १९२५

❀

अन्त्यजोंकी नासमझी

जिस प्रकार सौराष्ट्रमें अन्त्यजोंके प्रति निर्दयताका मुझे विशेष अनुभव हुआ उसी प्रकार अन्त्यजोंकी ना-समझीका भी खासा अनुभव हुआ। ढसा, हडाला और मांगरोलके अन्त्यजोंके साथ बातचीत करनेसे मालूम हुआ कि वे मरे हुये ढोरोंका मांस खाते हैं। इस मांसको वे धूलके नामसे पुकारते हैं। इस बुरी आदत को छोड देनेके लिये मैंने उन्हें बहुत समझाया लेकिन उन्होंने जवाब दिया कि बहुत दिनोंसे यह रिवाज चला आ रहा है और इसलिये यह रिवाज छूट नहीं सकता। उन्हें बहुत समझाया लेकिन वे एकके दो नहीं हुए। यह तो स्वीकार कर लिया कि हमें इसे छोड देना चाहिये। लेकिन छोडनेकी ताकत नहीं है यह कहकर वे स्थिर हो रहे। हिन्दू समाजको बहुत समझानेपर भी मुर्दार मांस खानेवालों के प्रति उनकी घृणा निकालना बहुत ही मुश्किल होगा। शायद उनकी इस बुरी आदतको वे सहन कर लेंगे लेकिन प्रेमसे वे उन्हें गले न लगायेंगे। कैसी भी विपत्ति क्यों न हो, अन्त्यजोंको यह बुरी आदत छोडनेके लिये प्रयत्न करना आवश्यक है। उन्हें और उनके साधुओंको चाहिये कि एक बड़ी हलचल करके भी इस बहुत ही गन्दी आदतको दूर कर दें। एक अन्त्यजने अपनी कमजोरीका बयान करते हुये सचाईके साथ कहा 'यदि हमको मरे हुए ढोर उठानेको ही न कहा जाय तो हम उसे खाना छोड दें।' मैंने कहा 'दरबार साहब यदि ऐसा कायदा बनावें कि कोई चमार मरे हुए ढोरोंको न उठावे तो क्या तुमको यह स्वीकार है ?

"हम लोगोंको यह स्वीकार है।"

"तो फिर आजीविका कहाँ से प्राप्त करोगे ?"

"कुछ भी करेंगे, बुनाई करेंगे लेकिन आपके पास कोई शिकायत न करेंगे।"

मैं जो समझता था कि चमारके धन्धेका अभ्यास करना चाहिये और उसमें जो बुराइयाँ हैं उन्हें दूर करना चाहिये उससे अधिक इस सवाल-जवाबसे मैं कुछ न समझ सका।

अन्त्यजोंमें दूसरी बुराई यह है कि ढेड़ चमारको नहीं छूता और चमार भंगीको नहीं छूता है। इस प्रकार अस्पृश्यताने उनमें भी प्रवेश किया है। इसका अर्थ तो यह होगा कि चमार, ढेड़, भंगी इत्यादिके लिये अलग-अलग कुएँ, अलग-अलग शालाएँ बनानी होंगी। छ: करोड़ माने जानेवाले अन्त्यजोंके

हृदयका पलटा हो और वे समझने लगें कि अछूतपन एक पाप है और वैतनिक पंडितों और दूसरे उपदेशकोंको इस काम में नियुक्त करना चाहिये ।

मै पंडितोंपर एक पैसा भी खर्च न करूँगा । यदि आप उन्हें द्रव्य देंगे तो वे भड़ैत हो जायँगे । वे वेतनके लिये काम करेंगे। हाँ पंचमोंको अपनी स्थितिका ज्ञान करानेके लिये रुपया अलवत्ते खर्च होना चाहिये। हमारे साधन हमेशा शान्तिमय हों। उच्च वर्ण कहलानेवाले हिन्दुओंको अपने भाव बदल देने चाहिये और अपनी ही उच्चता और शुद्धिके लिये उन्हें यह कलंक धो डालना चाहिये । यदि वे ऐसा न करेंगे और उन्हें दबानेपर तुले रहेंगे, तो ऐसा समय आये बिना न रहेगा जब कि खुद अछूत लोग ही हमारे खिलाफ बगावतका झण्डा ऊँचा करेंगे और संभव है कि वे हिंसा कांडका भी आश्रय ले लें ।

मैं अपनी तरफसे ऐसे किसी महा संकटको रोकनेका प्रयत्न अपनी पूरी शक्तिके साथ कर रहा हूँ। और उन सब लोगोंको भी ऐसा ही करना चाहिये जो कि अछूतपनको पाप मानते हों ।

(३) क्या आप यह मानते हैं कि पचम लोगोंके लिये जो अलहदा स्कूल खोले जाते हैं उससे अछूतपनके दूर होनेमें किसी तरह सहायता मिल सकती है ?

आगे चलकर अवश्य ही सहायता मिलेगी, जैसी कि हर प्रकारकी शिक्षासे मिलती है । परन्तु ऐसे मदरसे अकेले अछूतोंके लिये ही नहीं होना चाहिये और जातियोंके लड़के भी उनमें लेने चाहिये। फिलहाल वे न आवेंगे परन्तु समय पाकर उनका दुर्भाव कम हो जायगा, यदि शालाकी व्यवस्था अच्छी रही । यदि आप मिश्र शालाएँ चाहते हों तो आपको अपने मुहल्लेमें ऐसी एक पाठशाला खोलनी चाहिये । मान लीजिये कि आपका एक घर है । आपसे कोई यह न कहेगा कि अपने घरसे चले जाइये। एक अछूत लड़केको अपने घरमें ले आइये और पाठशाला शुरू कर दीजिये। और लड़कोंको भी समझाकर लाइये ।

(४) हमारे प्रान्तमें उन शालाओको प्रोत्साहन दिया जाता है जिनमें अछूतोंके तथा दूसरे लोगोके लड़के एक साथ पढ़ते हैं ।

हाँ, आप उनको प्रोत्साहन दे सकते हैं। परन्तु आपको उन मदरसों या संस्थाओंकी मदद करनेसे बाज न आना चाहिये जिनमे अकेले अछूतोंके लड़के हों ।

(५) कुछ तालुक बोर्डोमें ऐसे हुकुम इजरा हुए हैं कि वे शालाएं तोड दी जाँयगी जो अछूतोके लड़कोको लेनेसे इन्कार करती हैं। क्या हमको अपने प्रचारकों द्वारा उन स्कूलोमें पचम लोगोको भरती करानेमें सहायता देनी चाहिये ।

अवश्य। आपको उन्हें सहायता करनी चाहिय । पर खास तौर पर प्रचारक रखने की जरूरत नहीं है। आपके कार्यकर्त्ता ही उसके लिये काफी होंगे ।

(६) तो इस प्रचार-कार्यके बारेमें आप क्या कहते हैं ? क्या आप समझते हैं कि चुपचाप काम करना ही बस है ?

हाँ, जब कि पंचम लोगोंकी हालतको ऊँचा उठानेके लिये कोई ठोस काम नहीं हो तो जबानी प्रचारसे लाभ न होगा।

(७) तो फिर जब ऐसे प्रश्न पैदा हों तब क्या हम जी खोलकर प्रचारके लिये रुपया खर्च करें ?

नहीं, जी खोलकर नहीं। ठोस काम खुद ही अपना प्रचार कर लेता है। वायकोममें अधिकांश द्रव्य रचनात्मक कार्योंमें खर्च किया गया है।

(८) क्या आप निकट भविष्यमें अछूतपनके प्रश्नमें और भी जोर-शोरके साथ भिड़ जानेका विचार रखते हैं ?

मैंने तो पहले ही इसे भरसक जोर-शोरके साथ उठा लिया है। हम जहाँ कहीं संभव हो, पाठशालाएं खोलने कुएँ खोदवाने और मन्दिर बनवाने आदिकी चेष्टा कर रहे हैं। काम रुपयेके अभावमें रुकता नहीं है। पर शायद आप इसलिये कि पत्रोंमें इसकी शोहरत नहीं होती, समझते हैं कि कुछ भी काम नहीं हो रहा है।

(९) बेलगाँव प्रस्तावके अनुसार तो कोई भी स्कूल राष्ट्रीय नहीं हो सकता जिनमें पंचम लड़के न लिये जाँय ?

बेशक, वे राष्ट्रीय स्कूल हुई नहीं।

(१०) क्या आपकी यह राय है कि ऐसे स्कूल यदि और सब शर्तोंका पालन करते हों, पर इसे न कर पाते हों तो क्या उन्हें महासभासे सहायता न मिलनी चाहिये ?

ना, कोई सहायता न मिलनी चाहिये।

हिन्दी-नवजीवन
१० सितंबर १९२५

❀

अछूतपन और सरकार

एक महाशय लिखते हैं —

"२७–८–२५ के 'यंग इंडिया'में आप फरमाते हैं कि मैं एक भी ऐसी मिसालको नहीं जानता कि जिसमें सरकारने लोगोंके अछूतपन दूर करनेके कार्यमें रुकावट डाली हो। यह तो अच्छी नीति है कि हम बुरेके साथ भी न्यायका बर्ताव करें। पर हमें सावधानी रखनी चाहिये कि कहीं न्यायके पक्षमें हम भूल न कर बैठें। मुझे कहना पडता है कि आपने वह बात असावधानीके क्षणमें लिख डाली है—बडी हिचकिचाहटके बाद मैं इस विचारको अपने हृदयमें स्थान दे रहा हूँ। आपने सरकारको इस अस्पृश्यता निवारण आन्दोलनमें किसीका पक्ष लेते हुए न देखा हो, परन्तु मैं तथा इस आन्दोलनसे संबंध रखनेवाले दूसरे लोग इस बातको जानते हैं और जानते हैं, अपनी बहुत हानि करके कि सरकार यदि सचमुच इस सुधारमें बाधा नहीं डाल रही है तो वह उसे दूसरा रूप देनेकी कोशिश निःसन्देह कर रही है। आप जानते हैं कि जब श्रीमान् युवराजका आगमन यहाँ हुआ तब एक अछूत मेरठ से अछूतोंकी एक टोली लाया और दलित जातियोंकी तरफसे युवराजको अभिनन्दन-पत्र दिया गया। जिस परिस्थितिमें मान-पत्र दिया गया, जिस ढंगसे अछूतोंको मिलाया गया और जिस ढंगके लोग राष्ट्रमतके खिलाफ इस काममें लगाये गये उससे यह स्पष्ट हो जाता है कि सरकारके सिवा और किसीका छिपा हाथ उसमें न था। और सत्ताधारी इतनाही करके नहीं रहे, आगे जो कुछ हुआ उससे यह मालूम होता है कि वह एक सोची समझी नीतिका श्रीगणेश-मात्र था। शायद आपको पता न हो कि मैनपुरी, इटावा, एटा और कानपुर के जिलोंमें भी एक नई हलचल शुरू हुई है। इसमें उसी मनोभावका स्मरण हो आता है जो युवराजके आगमनके समय दलित जातियोंके कुछ लोगोंमें पाया गया था। उसका नाम रक्खा गया है आदि हिन्दू-अन्दोलन। इस आन्दोलनके नेताने कितने ही पर्चे और विज्ञप्तियाँ प्रकाशित की हैं और दलित जातियोंमें बांटा है। वह उच्चवर्णके हिन्दुओंका तीव्र विरोधी है और उन्हे वह "विजयी" लोगोंकी श्रेणीमें रखकर उन्हे दलित लोगोंकी वर्तमान दुरवस्थाका जिम्मेवार बताता है। उसने आर्योंके इस देशमें तलवार और बन्दूक लेकर आने तथा आदि-निवासियोंके गुलाम बनाकर छोडनेके सिद्धान्तको पकड़ लिया है। वह अछूतोंके हृदयों तक पहुँचता है जिन्हे कि वह यहांका असली-बाशिन्दा मानता है और उन्हे उच्च वर्णके हिन्दुओंके खिलाफ उठ खड़े होने को उभाड़ता है। जुदे प्रतिनिधित्वका मता लबा किया जाता है, नौकरियोंमें अच्छी तादाद देनेकी मांग भी की जाती है। वह उनके दिलमें यह बात जँचाना चाहता है कि यदि मंगलमय बृटिश–राज न होता तो ये उच्च हिन्दू अछूतों को बेहाल कर देते। इस हलचलकी मददपर सत्ताधारी लोग हैं—इसे एक प्रकट रहस्य ही समझिये। सामाजिक कार्यके इस क्षेत्रमें भी भेदनीतिका श्रीगणेश हुआ सा दिखाई देता है। तब यह कैसे कहा जा सकता है कि सरकार इस झगड़ेके मूलमें नहीं है। वह

(ग) अस्पृश्यताका त्याग

पहले दो कार्य सर्वमान्य हैं। हमलोग केवल तीसरे कार्यके संबंधमें ही आपके पास आये हैं और यह दिखाना चाहते हैं कि बंगालके हिन्दुओंको एक करनेके कार्यमें अस्पृश्यताकी भावना किस प्रकार बाधा पहुँचाती है।

बंगालके हिन्दुओंके मुख्य दो विभाग किये जा सकते हैं। (१) वे जिनके हाथका जल ग्रहण किया जाता है। (२) वे जिनके हाथका जल ग्रहण नहीं किया जाता। पहले विभागमें ब्राह्मण, वैद्य, कायस्थ और नवशाखवाले हैं और दूसरे विभागमें वैश्यशहा, सुवर्णवणिक (सुनार), सूत्रधार (बढई), जोगी (रणकर), सुन्डी (कलाल), मच्छीमार, भोई, धोपा (धोबी) चमार, कापालिक नामशूद्र इत्यादि हैं। इसमेंसे कितनों ही को तो मर्दुमशुमारीमें दलित वर्गोंमें गिना गया है।

प्रथम विभागकी तीन कौमें हिन्दूजातिकी मालिक बन बैठी हैं और वे दूसरी जातियोंका केवल तिरस्कार ही नहीं करती हैं लेकिन उन्हें अनेक प्रकारसे हैरान भी करती हैं। उन्हें देव-मन्दिरोंमें जानेकी मुमानियत है। इस वर्गके विद्यार्थियोंको बोर्डिंगमें रहनेकी और खाने-पीनेकी बहुत कुछ असुविधायें होती हैं। होटलोंमें, हलवाइओंकी दुकानोंमें उन्हें दुत्कारा जाता है।

बंगालके अस्पृश्यता-निवारक कार्यकर्त्ता, योग्य कार्य-पद्धति न होनेके कारण कुछ भी प्रगति नहीं कर सकते हैं। १९२१ की मर्दुम शुमारीमें बंगालमें हिन्दुओंकी कुल संख्या २. ४०,००० से भी अधिक थी। उनमें से १७ प्रति सैकड़ा ब्राह्मण, १६ प्रति सैकड़ा कायस्थ और १६ प्रति सैकड़ा वैद्य मिलकर उनकी कुल सख्या ९८ लाख ९ हजार होती है।

पूर्व बंगाल और सिलहटकी अकेली वैश्यशहा कौम ही जो व्यापारमें सबसे बढ़ी हुई है ३, ६०, ००० अर्थात् हिन्दुओंकी संख्याके प्रमाणमें ३॥ प्रति सैकडा है। उनमें हजारमें ३४२ लोग पढ़ना लिखना जानते हैं और वैद्योंमें ६६२, ब्राह्मणोंमें ४८४, कायस्थो में ४१३, सुवर्ण वणिकोंमें ३८३, और गन्धर्ववणिकोंमें प्रति हजार ३४४ मनुष्य पढ़ना लिखना जानते हैं। दूसरे आचरणीय वर्णोंमें पढ़ना लिखना जानने वालो की संख्याका प्रमाण बहुत ही कम है। फिर अनाचरणीय वर्णोंके बारेमें क्या कहा जा सकता है?

हमारी कौमकी तरफसे कालिज, हाईस्कूल, अस्पताल, तालाब, पक्के कुएँ इत्यादि अनेक संस्थाएँ चलाई जाती हैं और सखावतमें भी वह किसीसे कम नहीं है। आचार-विचार और अतिथिका सत्कार करनेमें भी वह किसीसे कम नहीं। स्त्री-शिक्षाके संबन्धमें भी वह कम नहीं है। फिर भी हम लोग हिन्दू समाजकी कक्षाके बाहर माने जाते हैं। हमारी कौम किसी भी राष्ट्रीय प्रवृत्तिमें कभी भी पीछे नहीं रही है। फिर भी हमारे योग्य दरजे को स्वीकार करनेका विचार भी हिन्दू समाजको कभी नहीं हुआ है। हमारे मार्गमें सामाजिक रुकावटें न हो तो हम आजके बनिस्बत कितने अधिक उपयोगी बन सकते हैं?

मुस्लिमों (पठानों) से हम लोग बिल्कुल ही जुदा हैं। लेकिन ये भी अपनेको 'शाह' कहते हैं इसलिये संकुचित विचारके हिन्दू हमें भी उन्हींके साथ रख देते हैं। हमने तो पूरी खोज करके इस बातको साबित कर दिया है कि हमारी कौम उत्तर और पश्चिम हिन्दुस्तानसे यहां आई है और ब्राह्मण धर्मका जिस वक्त अधिक जोर हुआ उस समय हम लोग बौद्ध धर्मके अनुयायी सम्पूर्ण शुद्ध न कर सके इसलिये हिन्दूधर्ममें हमें योग्य स्थान न मिला और तिरस्कृत बने रहे हैं।"

इन बातोंमें संभव है कुछ अतिशयोक्ति हो लेकिन ऊंच-नीचके भेद-का कीड़ा हिन्दू-धर्मके मर्मको खा रहा है। यह दिखानेके लिये ही मैंने यह पत्र यहां दिया है। जिन्होंने बातें लिख भेजी हैं, उनका वे लोग जो उनसे ऊंचे गिने जाते हैं तिरस्कार करते हैं और वे उनसे भी अधिक जो तिरस्कृत हैं उनसे अपनेको ऊंचे और अलग मानते हैं। इस प्रकार तिरस्कृत "अस्पृश्यों" में भी ऊँच-नीचका भाव व्याप्त हो रहा है। कच्छकी यात्रामें मैंने देखा है कि हिन्दुस्तानके दूसरे भागोंकी तरह कच्छमें भी अस्पृश्योंमें ऊँच-नीच-का भेद है और ऊंची जातिका अन्त्यज नीची जातिके अन्त्यजको छूनेसे इन्कार करता है। इतना ही नहीं, नीची जातिके बालक जिस शालामें पढ़ने को जाते हैं उस शालामें अपने लड़केको भेजनेसे भी साफ इन्कार कर देता है। जब ऐसी स्थिति है तो उनके दरम्यान रोटी-बेटीके व्यवहारकी बात ही कैसे हो सकती है? वर्ण भेदका जो भयंकर अनर्थ हुआ उसका यह उदाहरण है। और, एक वर्ग अपने-को दूसरे वर्गसे ऊँचा मानकर जो अभिमान करता है उस अभिमानका विरोध करनेके लिये ही मैं अपनेको भंगी कहलानेमें आनन्द मानता हूँ। क्योंकि मेरे ख्यालसे कोई भी जाति ऐसी नहीं है जो भंगीसे भी नीची हो। समाजमें भंगी ही बेचारा कोढ़ी है। उसे सब दुत्कारते हैं और फिर भी समाजके स्वास्थ्यके लिये अर्थात् समाजको जीवित रखनेके लिये किसी दूसरे वर्गके बनिस्बत भंगीका वर्ग ही अधिक उपयोगी और आवश्यक है। जिन्होंने यह पत्र लिखा है उनके प्रति मेरी पूर्ण सहानुभूति है। लेकिन जिनके भाग्यमें उनसे भी नीचा गिना जाना लिखा है, उन्हें वे अपनेसे नीचा न समझें। ऐसे लोगोंको अपने वर्गमें मिलाकर दूसरोंको जो लाभ नहीं मिलता है, उस लाभको लेनेसे उन्हें भी साफ इन्कार कर देना चाहिये। हिन्दू धर्ममेंसे सामाजिक असमानताके कलंकको दूर करना हो तो निर्मल करनेके लिये हममेंसे कितनों ही को खूनपानी एक करना होगा। मेरे ख्याल से तो वे जो ऊँचा होनेका दावा करते हैं, अपने इसी दावेके कारण उसके लिये नालायक साबित होते हैं। सच्ची और स्वाभाविक बड़ाई तो बिना दावेके ही मिल जाती है। जो सचमुच बड़ा है उसके कहे बिना ही उसको सब लोग बड़ा कहते हैं और वह अपनी बड़ाईका इन्कार करता है। केवल आडम्बरसे या झूठी नम्रता दिखानेके लिये नहीं लेकिन इस शुद्ध ज्ञानके कारण कि जो अपनेको नीचा मानता

है उसकी आत्मा और अपनी आत्मामें कोई भेद नहीं है। सृष्टिके सभी प्राणियों-की एकता और अभेदके ज्ञानमें ऊँच-नीचके भावको कहीं अवकाश ही नहीं होता है। जीवन तो कार्यक्षेत्र है, अधिकार और हकोंका संग्रह नहीं है। जो धर्म ऊँच-नीच-के भेदोंकी प्रथापर आधार रखता है उसका सर्वथा नाश ही होगा। वर्ण धर्म-का मेरा अर्थ यह नहीं है। मैं वर्ण धर्मको मानता हूँ क्योंकि मेरा यह ख्याल है कि वह जुदा-जुदा धन्धेके मनुष्योंके कर्तव्योंको निश्चित करता है। इस धर्मके अनुसार वही ब्राह्मण है जो सभी वर्णोंका सेवक है। शूद्रोंका और अस्पृश्योंका भी सेवक है। चारों वर्णोंकी सेवा करने के लिये वह अपना सब कुछ अर्पण कर देता है और प्राणीमात्रकी दयापर ही अपनी जीविकाका आधार रखता है। अधिकार, सम्मान और अपने हकोंका दावा करनेवाला क्षत्रिय नहीं है। क्षत्रिय तो वही है जो समाजका रक्षण करने के लिये, उसकी प्रतिष्ठाके लिये स्वार्पण कर देता है। अपने ही लिये कमानेवाला और संग्रह करनेवाला वैश्य नहीं है लेकिन चोर है। हिन्दू धर्मकी मेरी कल्पनाके अनुसार पाँचवा अर्थात् अस्पृश्योंका वर्ण है ही नहीं। जिन्हें अस्पृश्य कहते हैं वे दूसरे शूद्रोंके समान ही अधिकार रखनेवाले समाज-सेवक हैं। मैं यह मानता हूँ कि समाजका परम श्रेय करने के लिये सोची गई उत्तमोत्तम प्रथा वर्ण धर्मकी प्रथा है। आज तो केवल उसकी विडम्बना हो रही है। यदि वर्णधर्मकी रक्षा करनी है तो वर्णधर्मके इस उपहास योग्य ढांचे-का नाश करके वर्ण-धर्मके प्रचीन गौरवका पुनरुद्धार करना होगा।

हिन्दी-नवजीवन
१२ नवम्बर १९२५

अन्त्यज प्रश्न

अन्त्यज प्रश्नके संबन्धमें कच्छमें जो कठिनाइयां उपस्थित हुई थीं, वैसी कठिनाइयोंका अनुभव मुझे और कहीं नहीं हुआ था। कच्छके अन्त्यजोंमें जागृतिका होना भी इसका एक कारण है। प्रत्येक स्थानकी सभामें उनके झुंडके झुंड आते थे, उन्हें स्वयंसेवकोंने उत्साहित भी किया था। लेकिन दूसरी तरफसे स्वागत समितिने सबको राजी रखनेकी नीति ग्रहण की थी। इसलिए सब जगह एक ऐसा पक्ष खड़ा हो गया था कि जो अन्त्यजोंके साथ बैठनेमें विरोध करता था। मैंने भूजमें प्रथम यह विरोध देखा। लेकिन मैंने यह मान लिया कि वहाँ इसका निवटारा अच्छी तरहसे हो गया था। किन्तु मैंने देखा कि आखिर उसका अनर्थ किया गया। भूजमें जो बात शोभास्पद मालूम हुई थी वहीं और दूसरी जगहोंपर अविवेकयुक्त और निंद्य प्रतीत हुई। सभी जगहोंपर दो विभाग से हो गये थे और आखिर स्वागत समिति भी ऐसी ही वन गयी थी कि मानों वह अस्पृश्यताको धर्म मानती थी। हर-एक जगहके अनुभव विचित्र करुणामय और हास्यमय थे। हास्यमय इसलिए थे, क्योंकि किसीने भी जान बूझकर अविवेक नहीं किया था। कुछ तो मेरे व्याख्यानोंका अनर्थ हुआ था और कुछ जगहमें तो निर्दोष बुद्धिसे ही वडा अविवेक दिखाया गया था।

यदि इसपरसे कोई यह मान ले कि कच्छमें अस्पृश्यताका वहुत जोर है तो यह गलत होगा। यदि स्वागत समितिके प्रधान-प्रधान व्यक्तियोंने कमजोरी न दिखायी होती और भूजमें मैंने जो कार्य किया था उसका दूसरे स्थानोंमें अनर्थ न होता तो कच्छके लोगोंकी ऐसी हँसी कभी भी न होती। कच्छमें तो शहरमें भी अन्त्यजोंका मोहल्ला होता है। वहाँके अन्त्यज भी काठियावाड़के अन्त्यजोंकी वनिस्वत ज्यादा निडर मालूम हुए। शायद वे अधिक वुद्धिमान भी होंगे। वहुतसे अन्त्यज वुनाईका काम करते हैं। भूजमें तो एक अन्त्यजका कुटुम्ब वढईका काम करता है। कच्छकी सभाओंमें जिस तादादमें अन्त्यज लोग आये थे उतनी तादादमें और भी कहीं आते हुए मैंने नहीं देखा है। सभाओंमें मैं अन्त्यजोंका प्रश्न पूछता था और वे निर्भय होकर वडे विचारके साथ उसका उत्तर देते थे। वे अपनी तकलीफें भी समझाते थे। मान्डवीके अन्त्यजोंमेंसे कोई २५ कुनवोंने अर्थात् १०० आदमियोंने मद्य-मांसादि न खानेकी और खादी पहननेकी प्रतिज्ञा ली थी। अजारमें भी वहुतसे अन्त्यजोंने एक विशाल सभाके समक्ष मिट्टी न खानेकी और मद्यपान न करनेकी प्रतिज्ञा ली। मुझे कुछ ऐसा भास होता है कि कच्छके अन्त्यजोंमें मद्यपानका रिवाज कुछ कम है और साधारण जनसमाजमें तो अस्पृश्यता दिखायी भी नहीं देती थी। केवल उच्च मानी जानेवाली कौमें, ब्राह्मण,

वनिये, भाटिया और लुहाना ही अस्पृश्यताका ढोंग करते हुए दिखायी देते थे। ढोंग इसलिए कहता हूं क्योंकि बहुतेरे तो केवल डरके मारे भद्र लोगोंमें जाकर बैठे थे। उनमेंसे बहुतसे लोगोंने मुझको यह कहा था कि वे अस्पृश्यताको नहीं मानते। लेकिन उन्हें जातिसे बहिष्कृत हो जानेका डर है। इसलिए वे जाहिरमें उसका विरोध नहीं करते हैं। जो जुलूस निकलते थे उनमें अन्त्यज लोग भी शामिल हो जाते थे लेकिन इसपर कोई एतराज नहीं करता था और यह तो मैंने कई जगहोंपर देखा कि वहाँ उच्चवर्णके युवक निर्भय होकर अन्त्यजोंकी सेवा कर रहे है। इसलिए यद्यपि कच्छमें अन्त्यजोंके सम्बन्धमें कुछ दुःखद अनुभव अवश्य हुए है फिर भी वहाँ अस्पृश्यताका जोर भी बहुत कुछ कम हो गया है। कुछ धर्मान्ध लोग उसको पकड़े बैठे हैं लेकिन उनका यह यत्न निरर्थक है।

हिन्दी-नवजीवन
१९ नवम्बर, १९२५

❀

कच्छके संस्मरण

मूंद्रामें सबसे अधिक कटु अनुभव हुआ। वहाँ तो दम्भ, आडम्बर और नाटक ही देखनेको मिला था। मुसलमानोंको भी, मानों वे भी अस्पृश्यता क्यों न मानते हों, भद्र लोगोंमे ही बिठाया गया था। अन्त्यज विभागमें तो केवल मेरे साथवाले और मुसलमान स्वयंसेवक ही बैठे थे। हिन्दू स्वयंसेवकोंमेसे यद्यपि बहुतसे उनके कथनानुसार अस्पृश्यताको नहीं मानते थे फिर भी उन्हें भद्र लोगोंके बाड़ेमें ही रक्खे गये थे।

मूंद्रामें एक अन्त्यजशाला है। लेकित उसे तो एक सखी मुसलमान सेठ इब्राहीम प्रधान अपने खर्चसे चलाते हैं।

इस शालाकी कुछ बातें बड़ी अच्छी गिनी जा सकती है। बालक बड़े साफ रक्खे जाते है। शालाका मकान शहरके मध्य भागमे है। बालक टूटे-फूटे उच्चारणसे संस्कृतके श्लोक भी रटाये गये हैं। कताई,बुनाई,धुनकना इत्यादि काम शालामें ही होता है। केवल लडकोंके पहननेके कपड़ोंमें खादीका इस्तेमाल नहीं किया गया था। लेकिन संचालकोंने उसमें जिस कपड़ेका प्रयोग किया था, उसे शुद्ध खादी मानकर ही उसका उपयोग किया था। पाठकगण शायद यह ख्याल करेंगे कि मुझे इस शालासे तो कुछ संतोष हुआ ही होगा। लेकिन मुझे उससे संतोष नहीं हुआ। मुझे उसे देखकर दु:ख हुआ था। क्योंकि इसका यश या पुण्य

किसी भी हिन्दूको प्राप्त नहीं हो सकता था। इसके दाता सेठका नाम तो मैं ऊपर दे चुका हूं। इसके संचालक श्रीमान आचार्य कि मुन्द्राके पारस हैं। सेठ इब्राहीम प्रधानको इसके दानके लिए धन्यवाद ही दिया जा सकता है क्योंकि जैसा कि मुझसे कहा गया था यह शाला अन्त्यजोंको या उसमें पढ़नेवाले बालकोंको मुसलमान बनानेके लिए नहीं चलाई जा रही है। मुन्द्रावासियोंने भी मुझसे कहा था कि संचालक श्रीमेघजी सेवजी वेदान्ती और ज्ञानी हैं। यह संतोषकारक अवश्य है, लेकिन इसमें हिन्दुओंका क्या है? अस्पृश्यता तो हिन्दू-धर्मका मैल है और हिन्दू धर्मका पाप है। उसका प्रायश्चित्त भी तो हिन्दुओंको ही करना चाहिये। मेरे शरीरपर चढ़े हुए मैलको जब मैं निकालूंगा तभी वह निकलेगा। यह शाला सेठ इब्राहीम प्रधानको जितनी शोभा देती है मुन्द्राके हिन्दुओंको वह उतनी ही शरमानेवाली है।

लेकिन जिस प्रकार ऐसे दुःखद प्रसंगोंको देखनेका मुझे दुर्भाग्य प्राप्त हुआ था, उसी प्रकार मुझे कुछ अच्छे प्रसंग भी देखनेको मिले थे। श्री जीवराम कल्याणजीके नामसे पाठक परिचित हैं। उन्होंने अन्त्यज सेवाको अपना धर्म बना लिया है। उनकी दान वीरता उनका सबसे बड़ा भारी गुण नहीं है लेकिन स्वयं सेवा करनेका उनका आग्रह ही उनको अधिक शोभा देता है। वे अपना धन, अपना समय सब त्याग और अन्त्यजके काममें लगा देते हैं। मान्डवीके श्री गोकलदास खीमजी भी निर्भय होकर अन्त्यजोंकी अच्छी सेवा कर रहे हैं। अपने पाससे खर्च देकर वे, एक अन्त्यजशाला चलाते हैं। ऐसे अन्त्यज सेवकोंको मैंने वहाँ हर जगह देखा है। इसलिए कच्छकी अस्पृश्यताके संबन्धमें निराश होनेका मुझे कुछ भी कारण दिखाई नहीं देता। सभाओंके लज्जाजनक दृश्योंको मैं क्षणिक मानता हूं। स्थायी काम तो हो ही रहा है और इसमें मुझे कुछ भी संशय नहीं है कि वह और भी बढ़ता ही जायगा।

लेकिन अन्त्यजोंको राज्यकी तरफसे बहुत कुछ दुःख उठाना पड़ता है। अन्त्यजोंके लिए यहाँ एक कानून है, उसे बहुतसे लोग तो व्यभिचारके ठेकेके नामसे जानते हैं। इस कानूनकी रूसे अन्त्यजोंको व्यभिचार करनेपर सजा दी जाती है और इसका ठेका दे दिया जाता है। जो शख्स इसके लिए सबसे अधिक रुपये देता है उसे राज्यकी तरफसे यह हक होता है कि वह अकेला ऐसे जुर्म पकड़ सकता है और उसमें जो कुछ भी जुर्माना होता है वह भी उसीको मिलता है। इसलिए ठेकेदारका काम यह होता है कि जैसे बने वैसे वह ऐसे जुर्मोंको बढ़ावे, अर्थात् जहाँ व्यभिचार नहीं होता है वहाँ भी उसे पैदा करके या उसका आरोपण करके भी ठेकेदार जुर्माना वसूल करता है। अन्त्यज लोग इससे बड़े दुःखी हैं।

बुनाईका काम करनेवालोंको भी बड़ी तकलीफ है। जिस किसी बुनने-वालोंने किसी महाजनसे कुछ रुपये लिये कि वह जबतक उसे पूरा नहीं कर देता

है वह किसी दूसरेके लिए कुछ भी नहीं बुन सकता है। इसलिए उन्हें एक या दो आदमीके गुलाम बनकर ही रहना पड़ता है। जो कुछ भी वह दाम दे उन्हें लेने पड़ते है और उसीके लिए कपड़ा बुनना पडता है। वह लेनदार जो चाहे व्याज माँग सकता है। इसलिए उसके हाथसे बेचारा अन्त्यज कभी भी रिहा नहीं हो सकता है। इस तकलीफके कारण कुछ लोगोंने तो अपना धन्धा ही छोड़ दिया है। कच्छमें हजारों अन्त्यज बुननेका काम जानते हैं और यदि यह कानून न होता तो वे खुशीसे अपनी जीविका इसीमे प्राप्तकर सकते थे। मुझे आशा है कि कच्छ नरेश इन दोनों कष्टोंमेंसे उन्हें बचा लेंगे। मैंने ये दोनों बातें उनके सामने पेश की हैं।'

हिन्दी-नवजीवन
२६ नवम्बर, १९२५

धर्मका अपमान

मद्रासके पास तिरुपति नामक एक पवित्र तीर्थ है। उसकी बहुत बड़ी महिमा है। बंगालमें जैसा तारकेश्वरका है वैसा ही मद्रासमें तिरुपतिका है। इस तीर्थके संबंधमें लोगोंमें यह श्रद्धा फैली हुई है कि पतितोंमें भी जो पतित हो वह भी वहाँ जाकर तिर जा सकता है। उसके नजदीक ही तिरुचन्नुर नामक एक दूसरा तीर्थस्थल भी है। तिरुचन्नुरके मन्दिरकी भी वैसी ही महिमा है। इस मन्दिरमें जाकर एक माला जातिका अन्त्यज दर्शन कर आया था और इसलिए उसपर दफे फौजदारी २९५वें के मुताबिक धर्मका अपमान करनेका और पवित्र स्थानको अपवित्र करनेका जुर्म लगाया गया था। वह जुर्म उसपर साबित भी हो गया और उसे ७५) जुरमाना भी किया गया। यदि जुरमाना न दे सके तो एक महीने सख्त कैदकी सजा दी गयी थी।

यदि कोई यह पूछे कि मैजिस्ट्रेटने यह सजा कैसे दी होगी? न्यायासनको भूषित करनेवाले उस न्यायाधीशने इस सारे किस्सेका जिस प्रकार जिक्र किया है वह वर्णन उन्हींके शब्दोंमें यहाँ देना चाहिये—

"मुद्दालेह दस वर्ष हुए तिरुचन्नुरके मन्दिरकी यात्राको हर साल जाता है। गत अक्तूबरकी तारीख १६ को भी वह हमेशाकी तरह वहाँ गया था। फरियादी साक्षी नं० ३ एक दुकानदार है। उसीकी दूकानपरसे मुद्दालेह पूजाके लिए नारियल और कपूर खरीदता है। इस समय भी उसने उसीकी दुकानपरसे वे चीजें खरीदीं। उस समय उसने दूकानदारसे पूछा था कि माला लोगोको मन्दिरमें जाने देते है या नहीं? दूकानदारने उत्तरमें कहा था कि मालाओको मन्दिरमें जानेकी इजाजत नहीं मिल सकती है। यह सुनकर वह वहांसे

अस्पृश्यताका बचाव

त्रावणकोरसे एक महाशय लिखते हैं:—

"ब्राह्मण और उनके आचार और रीतिरिवाजोंके संबंधमें कुछ गलतफहमी हुई सी मालूम होती है। आप अहिंसाकी प्रशंसा करते हैं लेकिन मात्र ब्राह्मणोंकी ही जाति ऐसी है जो धर्म कार्य समझकर उसका पालन करती है। यदि कोई उसका भंग करता है तो हम उसे जातिसे बहिष्कृत समझते हैं। जो लोग मांस खाते हैं या मांसके लिए हत्या करते हैं उनके सहवासमें आना ही हम लोगोंकी दृष्टिमें पाप है। कसाई, मच्छीमार, ताड़ी बनानेवाला, मांस खानेवाला, शराब पीनेवाला, धर्महीन मनुष्यके नजदीक आनेसे ही हमारा नैतिक और भौतिक वायुमंडल भ्रष्ट हो जाता है। तप और धार्मिकताकी हानि होती है और पवित्रताका भाव नष्ट हो जाता है।

इसे हमलोग भ्रष्टता मानते हैं और इसलिए हमें स्नान करना पड़ता है। यद्यपि समय और भाग्यने तो कई बार पलटा खाया है लेकिन ऐसे नियमोंके कारण ही तो ब्राह्मण लोग अपने परंपरागत गुणोंकी रक्षा कर सके हैं। यद्यपि इस प्रकारसे संयमको दूर कर दिया जायगा और ब्राह्मणोंको दूसरेसे स्वतंत्रतापूर्वक मिलने जुलने दिया जायगा तो उनका इतना अधःपतन होगा कि वे हलकेसे भी हलके जातिहीन शूद्रोंके समान बन जावेंगे, छुपे तौरसे वे बहुत कुछ दुराचार करेंगे और पवित्र होनेका ढोंग भी करेंगे और साथ ही साथ संयमकी मर्यादाको दूर करनेका भी प्रयत्न करेंगे, क्योंकि इस मर्यादाके कारण अपने पापोंको छिपानेमें उन्हें बड़ी कठिनाई मालूम होती है। हम यह तो जानते ही हैं कि आज जो लोग नाममात्रके ब्राह्मण हैं वे ऐसे ही हैं और वे लोग अपनी गिरी हुई दशापर दूसरोंको खींच ले जानेके लिए बड़ा प्रयत्न कर रहे हैं।

उस स्थानमें जहां लोगोंकी आदत और उनके भले बुरे ख्यालके अनुसार (रंग, अधिकार और धनके भेदके अनुसार नहीं जैसा कि पश्चिममें गलतीसे किया जा रहा है) उनका जात्यानुसार वर्गीकरण करके उनके धन्धेको और सामाजिक और गृहविषयक सुविधाओंको देख उनकी स्पष्ट मर्यादा बांधकर उन्हें जुदे केन्द्रोंमें रहनेके लिए स्थान दिया जाय जैसा कि हमारी मातृभूमिमें किया जाता है, तो यह संभव नहीं कि कोई मनुष्य यदि अपनी रहनी-करनी बदले भी तो वह बहुत दिनोंतक छिपा रह सके।

लेकिन यदि कसाई, मांस खानेवाले और शराबखोरोंमें कोई जाकर रहे तो यह संभव नहीं कि वह उनमें रह सके और अपने वैदेशिक गुणोंकी रक्षा कर सके। स्वभावतः हमलोग अपनी रुचिके अनुकूल ही वातावरण पसन्द करते हैं। इसलिए ब्राह्मणके रहनेकी जगहका वायुमंडल भी भौतिक, नैतिक और धार्मिक दृष्टिसे पवित्र

यही कारण है कि अस्पृश्यता और नजदीक न आने देनेकी मर्यादा रक्खी गयी है। इससे हमारी जातिकी पवित्रताकी केवल रक्षा ही नहीं होती है बल्कि दुराचारियोंको जातिसे बहिष्कृत करनेकी सामाजिक और धार्मिक दोनों सजा भी दी जाती है और इसलिए प्रकारान्तरसे उन्हें, यदि वे हमारे साथ सब प्रकारका व्यवहार रखना चाहते हों तो, अपनी बुरी आदतोंको छोड़नेके लिए मजबूर भी करती है।

इसलिए आप उन्हें सार्वजनिक तौरसे यह उपदेश दें कि वे अपने पाप कर्मोंको छोड़ दें और सफाई और सुघराईका पालन करने लगें और वे आवश्यक धार्मिक क्रियायें जैसे नहाना, उपवास करना और प्रार्थना करना इत्यादि भी करें। यदि वे कुछ वर्षोंमें नजदीक न आनेकी मर्यादाको दूर करना चाहते हैं तो उन्हें उन लोगोंके सा मिलना जुलना न चाहिये कि जिन लोगोंने अपनी पुरानी आदतोंका त्याग नहीं किया है। शास्त्रोंने यही मार्ग दिखाया है। मनुष्यके अपने खानगी पाप-कर्मोंको और उसके गुणोंको जाननेका कोई मार्ग नहीं है इसलिए ऐसी बातोंसे कोई लाभ नहीं कि फलानेका मन पवित्र है और फलानेका मन मैला है। मनुष्यकी सामाजिक आदतोंसे ही हम उसके खानगी जीवनकी परीक्षा कर सकते हैं। इसलिए जो शख्स खुले तौरसे हमारे अहिंसा धर्मको स्वीकार नहीं कर सकता है और मच्छी मारना और मास खाना नही छोड़ सकता है वह इस योग्य नही माना जा सकता कि वह नजदीक भी न आनेकी परम्परागत मर्यादाका त्याग करे। सच बात तो यह है कि अस्पृश्यता और कुछ नहीं है लेकिन अहिंसा धर्मकी रक्षा और प्रचारका मात्र व्यावहारिक साधन है।"

लेखकने जिस प्रश्नको छेड़ा है उसपर पहले कई मरतबा विचार किया जा चुका है फिर भी उनकी दलीलोंमें उनका जो भ्रम है उसे दूर करना आवश्यक है। पहली बात तो यह है कि ब्राह्मणोंकी तरफसे जो यह दावा किया जा रहा है कि वे निरामिषभोजी हों, सम्पूर्ण सत्य नहीं है। यह केवल दक्षिणके ब्राह्मणोंके संबंधमें ही हो सकता है। लेकिन दूसरी जगहोंमें तो वे स्वतत्रंतापूर्वक मच्छी खाते हैं और बंगाल, काश्मीर इत्यादि स्थानोंमें तो मांस भी खाते है। दक्षिणमें भी मास खानेवाले और मच्छी खानेवाले सब लोग अस्पृश्य नहीं है। और अस्पृश्य जो अत्यन्त पवित्र है वह भी जातिहीन समझा जाता है क्योंकि उसका जन्म उस कुलमें हुआ है जो अन्यायपूर्वक अस्पृश्य और समीप न आने योग्य गिना जाता है। अधिकारप्राप्त मांस खानेवाले अब्राह्मणोंके साथ कन्धेसे कन्धा मिला-

कर क्या ब्राह्मण लोग नहीं चलते है। क्या वे मांस खानेवाले हिन्दू राजाओंका आदर नही करते हैं?

लेखक जैसे शिक्षित मनुष्योंको, जिस रिवाजका किसी भी प्रकारका बचाव नहीं किया जा सकता है और जिसकी बुनियाद अब हिल उठी है, उस रिवाजका अपने जोशमें आकर, अपनी दलीलोंका स्पष्ट विचार किये विना ही, बचाव करते हुए देखकर बड़ा ही आश्चर्य और दुःख होता है। लेखक मांस खानेकी छोटी सी हिंसाकी बातपर बड़ा जोर देते हैं। लेकिन कोरी काल्पनिक पवित्रताकी रक्षाके लिए करोड़ों भाइयोंको जानबूझकर दबाये रखनेकी बड़ी भारी हिंसाकी बातको वे भूल जाते है। मैं उन्हें यह कहता हूँ कि जिस निरामिपताकी रक्षाके लिए दूसरे मनुष्योंको हलके मानकर उनका बहिष्कार करना पड़ता है वह संग्रह करने योग्य नहीं है। इस प्रकार उनकी रक्षा की जायगी तो वह गरमीमें उगनेवाले पौदोंके समान ठंढी हवा लगते ही नष्ट हो जायगी। निरामिपताको मैं बड़ा महत्व देता हूं। मुझे विश्वास है कि ब्राह्मणोंने इस निरामिपता और स्वयंनिर्मित संयमके नियमोंसे बड़ा आध्यात्मिक लाभ उठाया है। लेकिन जब वे अति उन्नत अवस्थामें थे उस समय उन्हें अपनी पवित्रताकी रक्षा करनेके लिए बाह्य मददकी आवश्यकता न थी। कोई भी गुण जब वह बाह्य प्रभावोंका सामना करनेमे असमर्थ हो जाता है तब उसकी जीवनशक्ति नष्ट हो जाती है।

और लेखक जिस प्रकारकी रक्षाका जिक्र करते हैं वैसी रक्षाके लिए ब्राह्मणोंके दावेसे अब कोई लाभ भी नहीं है क्योंकि अब बहुत देर हो चुकी है। सद्भाग्यसे ऐसे ब्राह्मणोंकी तादाद अब बढ रही है जो ऐसी रक्षाकी बातोंके प्रति घृणाकी दृष्टिसे देखते हैं, इतना ही नही जो बड़ी-बड़ी तकलीफें सहन करनेका जोखिम-उठा करके भी इसके सुधारकी हलचलके नेता बन रहे है। इसीसे सुधारके अति शीघ्र प्रगति करनेकी बड़ी आशा बँधती है।

लेखक मुझसे यह चाहते है कि नीच गिने जानेवाले लोगोंको मैं पवित्र बननेके लिए उपदेश दू। यह मालूम होता है कि वे 'यंग इंडिया' नहीं पढते हैं अन्यथा वे यह अवश्य जान सकते थे कि उन्हें ऐसा उपदेश देनेका एक भी मौका मैं व्यथ जाने नहीं देता हूँ। मैं उन्हें यह समाचार भी देता हूँ कि वे उसका संतोषजनक उत्तर भी देते हैं। मैं लेखकको उन सुधारकोंके वर्गमे शामिल होनेके लिए निमंत्रण दूंगा जो इन दुःखी लोगोंमें जाकर उनके संरक्षक बनकर नहीं, लेकिन उनके सच्चे मित्र बनकर काम कर रहे हैं।

हिन्दी-नवजीवन
२१ जनवरी, १९२६

हिन्दू-धर्मकी स्थिति

सनातनी हिन्दूका उपनाम धारण करके एक भाई लिखते हैं:—

"हिन्दू धर्मकी आजकी स्थिति जितनी विषम है उतनी ही विचित्र भी है। कट्टर हिन्दूलोग दावा करते हैं कि वे शास्त्रोंके वचनोंके अनुसार ही चलते हैं, लेकिन यही मालूम नहीं होता कि कोई शास्त्र पढ़ता भी है या नहीं। यदि शास्त्रोंका अध्ययन करें तो दो बातोंका स्पष्ट ज्ञान हो जाय।

१—आज धर्मधुरन्धर माने जानेवाले प्रसिद्ध लोग भी शास्त्रोंके अनुसार नहीं चलते हैं।

२—शास्त्रोंमें जो लिखा है और जितना प्रमाण माना गया है उसके अनुसार सोलह आना न कोई चल सकता है और न कोई उस तरह चलना ही पसन्द करेगा।

साधारण जनताका राजमार्ग तो यही होता है कि जिस प्रकार शिष्ट लोगोंका व्यवहार होता हो उसी प्रकार उन्हें भी चलना चाहिये। शिष्ट लोगोंको यह दिखाना पड़ता है कि वे शास्त्रोंके अनुकूल ही व्यवहार कर रहे हैं। अर्थात् सब जगह दंभ ही दंभ दिखायी देता है।

कौनसी रूढ़ि चुस्त सनातनी है इसका कहीं पता ही नहीं चलता है। सनातन रूढ़ि क्या हो सकती है इसके संबन्धमें भी जुदे-जुदे प्रान्तकी कल्पनाएँ निराली होती हैं। सामाजिक धर्माचारका समग्र रूपसे अध्ययन करनेकी दृष्टिसे कोई सारे देशमें भ्रमण नहीं करता है, निरीक्षण नहीं करता है और न कहीं तुलनात्मक चर्चा ही होती है। सुधारक लोग जो टीकाएँ करते हैं उसके मूलमें अक्सर धार्मिकताके प्रति कोई आदर नहीं होता है, यही नहीं वस्तुस्थितिका अध्ययन भी पूरा नहीं होता है इसलिये उनकी टीकाएँ अंधी और निर्वीर्य होती है। आज यदि कोई हिन्दू-रिवाजोंका अध्ययन करता है तो वे योरोपियन अधिकारी और मिशनरी लोग ही हैं।

हिन्दुओंमें हर एकका यह ख्याल है कि अपने प्रान्तका रिवाज ही रूढ़ हिन्दू-धर्म है। अस्पृश्यता-निवारणमें कहो या हिन्दू संगठनमें, अपने-अपने प्रान्तकी स्थितिका विचार करके ही नेतागण अपनी राय कायम करते हैं।

इसका एक ही उदाहरण बस होगा। आप कहते हैं कि अस्पृश्यताका निवारण करनेके बाद अस्पृश्योंकी स्थिति शूद्रके जैसी रहेगी। यहां तक तो ठीक है, लेकिन सब जगह शूद्रोंकी स्थिति भी कहाँ एक समान है? जिन प्रान्तोंमें ब्राह्मणलोग भी मांसाहार या मत्स्याहार करते हैं वहां शूद्रोंकी एक प्रकारकी स्थिति है। जहां ब्राह्मणेतर दूसरे सब वर्ण मांस-मत्स्यका सेवन कर सकते हैं वहां शूद्रोंकी स्थिति दूसरी ही है। और जिन प्रान्तोंमें

ब्राह्मणोके साथ वैश्यादि दूसरे वर्ण भी निरामिष भोजी हैं वहांकी स्थिति और भी निराली है। आपने एक स्थानपर लिखा है कि शूद्रोके हाथका पानी पीनेमें यदि अन्य वर्णोंको कोई एतराज नहीं होता है तो अन्त्यजोके हाथका पानी पीनेमें भी उन्हें कोई एतराज नही होना चाहिये।

अब जहां कितने ही हिन्दू मांसाहार करनेवालेके हाथका पानी न लेनेका आग्रह करते हैं वहा तिरस्कारके बनिस्बत धार्मिक शौचका विचार ही प्रधान होता है। कुछ हिन्दुओंको सामान्य मास खानेवालोंके हाथसे शुद्ध जल ग्रहण करनेमें कोई एतराज नहीं होता है लेकिन गोमास खानेवाली जातियोके हाथका पानी लेनेमें उन्हे बडा एतराज होता है और इसलिए वे शूद्रोके हाथका पानी पीनेपर भी ईसाई, मुसलमान और अन्त्यजोके हाथसे पानी नहीं लेते हैं। इन तीनो जातिके लोगोको स्पर्श किया जा सकता है लेकिन उनके हाथका पानी कैसे लिया जाय?

शायद आप यह नहीं जानते होंगे कि गुजरातके अन्त्यज मरे गाय-बैलोंका मांस खाते हैं, यही नहीं, वे गोमास बेंचनेवाले कसाइयोंके यहासे गोमास लाकर खानेमें भी कोई पाप नहीं समझते हैं। इस हालतमें कट्टर हिन्दूके हृदयमें यह ख्याल अवश्य ही होगा कि अन्य शूद्रोंकी तरह उनके हाथका पानी कैसे पिया जाय? इसके सबधमें आप अपना वक्तव्य प्रकाशित करेंगे तो अच्छा होगा।

आपके उपदेशक और अन्त्यज-सेवक अन्त्यजोको मिट्टी न खानेको समझाते हैं। मिट्टी खानेसे रोग होते हैं। यह हमारी दलील होती है। अन्त्यज लोग कहते हैं कि इतने जमानेसे खाते चले आ रहे हैं, हमें रोग कहाँ हुए हैं? हमलोगोके तो वह अनुकूल हो गया है। यदि अन्त्यज लोग मिट्टी और दूसरा गोमास भी खाना छोड़ दें तो अस्पृश्यता निवारणका कार्य आसान हो जायगा। और फिर उनके हाथसे पानी लेनेमें भी कोई एतराज न होगा। गुजरातके अन्त्यजोकी एक परिषद बुलाकर उनसे आप इतना करा सको और उन्हींकी कौमके कुछ नेतागण इतना सुधार एकदम कर देनेके लिए कमर कस लें तो क्या अच्छा हो?"

इस पत्रमें केवल एक पक्षकी ही दलीलें पेश की गयी हैं। लेखकको इस चिन्ताके लिए स्थान अवश्य है। हिन्दू-धर्म जीवित धर्म है उसमें भरती और ओट आती ही रहती है। वह संसारके नियमोंका ही अनुसरण करता है। मूल रूपसे तो वह एक ही है लेकिन वृक्ष रूपसे वह विविध प्रकारका है। उसपर ऋतुओंका असर होता है। उसका वसन्त भी होता है, पतझड़ भी। उसकी शरद ऋतु भी होती है और उष्ण ऋतु भी। वर्षासे भी वह वंचित नहीं रहता है। उसके लिए शास्त्र भी है और नहीं भी है। उसका एक ही पुस्तकपर आधार नहीं है। गीता सर्वमान्य है लेकिन वह केवल मार्गदर्शक है। रूढ़ियोंपर उसका बहुत कम असर होता है। हिन्दू-धर्म गंगाका प्रवाह है। मूलमें वह शुद्ध है। मार्गमे उसपर मैल चढ़ता है। फिर भी जिस प्रकार गंगाकी प्रवृत्ति अन्तमे पोषक है उसी प्रकार हिन्दू-धर्म भी है। हर एक

नहीं हुए हैं। लेकिन प्रसंग आनेपर ही उन-उन ग्रन्थोंकी उत्पत्ति हुई है। इसलिए उनमें विरोधाभास भी होता है। ये ग्रंथ शाश्वत सत्यको नहीं बताते हैं। लेकिन अपने-अपने समयमें शाश्वत सत्यका किस प्रकार अमल किया गया था यही वे बताते हैं। उस समय जैसा अमल किया गया था वैसा दूसरे समयमें भी करें तो निराशाके कूपमें पड़ना होगा। एक समय हमारे यहां पशु-यज्ञ भी होता था, इसलिए क्या आज भी करेंगे? एक समय हम लोग मांसाहार करते थे; इसलिए क्या आज भी करेंगे? एक समय चोरके हाथ-पैर काट डाले जाते थे, क्या आज भी उनके हाथ-पैर काटेंगे? एक समय हमारे यहां एक स्त्री अनेक पति करती थी, क्या आज भी करेगी? एक समय हमलोग बालकन्याका दान करते थे; क्या आज भी वही करेंगे? एक समय हम लोगोंने कुछ मनुष्योंकी प्रजाको तिरस्कृत मानी थी इसलिए क्या आज भी उसे तिरस्कृत ही मानेंगे?

हिन्दू-धर्म जड़ बननेसे साफ इन्कार करता है। ज्ञान अनन्त है। सत्यकी मर्यादाकी किसीने भी खोज नहीं पायी है। आत्माकी नयी-नयी शोध होती ही रहती है और होती ही रहेगी। अनुभवके पाठ पढते हुए हमलोग अनेक प्रकारके परिवर्तन करते रहेंगे। सत्य तो एक ही है, लेकिन उसे सर्वनाशमें कौन देख सका है? वेद सत्य है, वेद अनादि है लेकिन उसे सर्वनाशमे कौन जान सका है? वेदके नामसे जो आज पहचाने जाते हैं वे तो उसका करोड़वॉं भाग भी नहीं हैं। जो हम लोगोंके पास है उसका अर्थ भी सम्पूर्णतया कौन जानता है?

इतना बडा जंजाल होनेके कारण ही तो ऋषियोंने हमलोगोंको एक बहुत बड़ी बात सिखाई है 'यथा पिण्डे तथा ब्रह्माण्डे'। ब्रह्माण्डका पृथक्करण करना असंभव है। अपना पृथक्करण कर देखना शक्य है और अपने आपको पहचाना कि संसारको पहचान लिया। लेकिन अपनेको पहचाननेके लिए प्रयत्न करना आवश्यक है तथा वह प्रयत्न भी निर्मल होना चाहिये। निर्मल हृयदके बिना प्रयत्न-का निर्मल होना असंभव है। यमनियमादिके पालनके बिना हृदयकी निर्मलता भी संभव नहीं है। ईश्वरकी कृपाके बिना यमादिका पालन कठिन है। श्रद्धा और भक्तिके बिना ईश्वरकी कृपाकी प्राप्ति नहीं हो सकती। इसलिए तुलसी-दासजीने रामनामकी महिमा गायी है तथा भागवतकारने द्वादश मंत्र सिखाया है।

जो दिल लगाकर यह जाप कर सकता है वही सनातनी हिंदू है, बाकी और सब तो अखाकी भाषामें अंधेरा कुवाँ है ।

अब लेखककी शंकाओंका विचार करें। योरोपियन लोग हमारे रीति रिवाजोंको देखते अवश्य हैं लेकिन मै उसे अध्ययन जैसा अच्छा नाम न दूँगा। वे तो टीका करनेकी दृष्टिसे ही देखते हैं। इसलिए उनके पाससे मुझे धर्म प्राप्त न होगा।

भूतकालमे गोमांसादि खानेवालोंका बहिष्कार भले ही उचित हो आज तो वह अनुचित और असंभव है। अस्पृश्य माने जानेवाले लोगोंसे गोमांस आदिका त्याग कराना हो तो वह केवल प्रेम ही से हो सकेगा, उनकी बुद्धिको जागृत करनेपर ही होगा। उनका तिरस्कार करनेसे न होगा। उनकी बुरी आदतें छुडानेके लिए प्रेममय प्रयोग हो ही रहे हैं लेकिन खाद्याखाद्यमें ही हिन्दू धर्मकी परिसीमा कहीं थोड़े ही आ सकती है। उससे अनन्त कोटि अति आवश्यक वस्तु अन्तराचरण है; सत्य, अहिंसा आदिका सूक्ष्म पालन है। गोमांसका त्याग करनेवाले दंभी मुनिके बनिस्बत गोमांस खानेवाला दयामय, सत्यमय, ईश्वरका भय करके चलनेवाला मनुष्य हजार गुना अधिक अच्छा हिन्दू है और जो सत्यवादी है, सत्याचरणी गोमांसादि आहारमें हिंसा देख सका है और जिसने उसका त्याग किया है, जिसको जीवमात्रके प्रति दया है उसे कोटिशः नमस्कार हो। उसने तो ईश्वरको देखा है, पहचाना है, वह परम भक्त है, वह जगद्गुरु है।

हिन्दू धर्मकी और अन्य धर्मोंकी आज परीक्षा हो रही है। सनातन सत्य एक ही है। ईश्वर भी एक ही है। लेखक, पाठक और हम सब मतमतान्तरों-की मोह जालमें न फँसकर सत्यके सरल मार्गका ही अनुसरण करेंगे तभी हम लोग सनातनी हिन्दू रह सकेंगे। सनातनी माने जानेवाले बहुतेरे भटक रहे हैं। उसमें कौन जानता है किसका स्वीकार होगा? रामनाम लेनेवाले बहुतसे रह जायँगे और चुपचाप रामका काम करनेवाले बिरले लोग विजय माल पहन लेंगे।

हिन्दी-नवजीवन

११ फरवरी, १९२६

❀

बहता हुआ जख्म

कुछ समय पहले दक्षिणके एक अन्त्यजपर मंदिरमें प्रवेश करके धर्मका अपमान करनेके अपराधमें मुकदमा चलाये जानेके विषयकी चर्चा की गयी थी। वैसा ही एक दूसरा मुकदमा अभी चला हुआ है और उसमें भी वैसा ही फैसला दिया गया है। मुरुगेसन नामक एक मालाको तिरुपतिके स्टेशनरी सब-मेजिस्ट्रेटके समक्ष, तिरुचनुरके एक मन्दिरमें पूजाके लिए प्रवेश करनेके अपराधके कारण पेश किया गया था। छोटी अदालतने इस प्रवेशको फौजदारी कानूनकी १९५ वीं धाराके अनुसार अमुक वर्गके धर्मका अपमान करनेके इरादेसे (मंदिर) अपवित्र करनेका गुनाह मानकर उसे ७५) जुरमाना या जुरमाना न दे तो १ महीनेकी सख्त कैदकी सजा फरमायी थी। बेचारे अन्त्यजके सौभाग्यसे वहां हितैषी सुधारक भी मौजूद थे, उन्होंने अपील करवाई। अपीलकी अदालतने अपीलको मंजूर रक्खा और जो फैसला सुनाया उसमेंसे नीचेका अंश उद्धृत किया गया है—

"नीचेकी अदालतमें मुद्दईकी तरफसे सात गवाहोंके इजहार हुये थे। उन्होने अपने इजहारोंमें कहा था कि मुजरिम माला जातिका है। मालाओंको मन्दिरमें जानेकी मुमानियत है और यदि वह उसमें प्रवेश करे तो वह मन्दिर अपवित्र हुआ माना जाता है। यह कहा गया है कि अपील करनेवाला मन्दिरमें गर्भगृहतक पहुँच गया था। केवल सवर्ण हिन्दुओंको ही उस स्थानतक जानेकी इजाजत होती है। उस समय वह सभ्य पोशाक पहने हुये था और भस्म तिलक आदि किये हुए था। पुजारीने उसे सवर्ण हिन्दू समझा था। और उससे नारियल लेकर उसे कपूरकी आरतीकी रक्षा भी लेने दी थी और इसके लिए अपील करनेवालेने चार आनेका निश्चित चन्दा भी दिया था। अपील करनेवाला जब वहांसे चला गया तब मन्दिरके सचालकोंको मालूम हुआ कि वह माला जातिका था और मन्दिर उसके प्रवेशसे अपवित्र हुआ था इसलिए उसको शुद्धिकी विधिसे शुद्ध करनेकी आवश्यकता प्रतीत हुई।

पहले तो इस बातपर विचार होना चाहिये कि मुद्दईकी तरफसे जुर्म कायम रखनेके लिए जिन बातोंको साबित करना जरूरी है वे साबित की गई है या नहीं। मन्दिरमें माला जातिके जानेसे वह भ्रष्ट हो गया। यह उसी अर्थमें सिद्ध होता है कि उसको शुद्ध करनेके लिए शुद्धिके सस्कारकी आवश्यकता हुई। परन्तु इसके अलावा यह बात साबित करना जरूरी है कि उसके प्रयोगसे अमुक वर्गके मनुष्योंके धर्मका अपमान हुआ है और दूसरा यह कि मुजरिमका ऐसा अपमान करनेका इरादा था या वह यह जानता था कि उससे वैसा कोई अपमान होगा। मुद्दईकी तरफसे पेश किये गये सबूतोंमें इतनी त्रुटि है। इसलिए जुर्म

साबित हुआ नहीं माना जा सकता और इसलिए यह सजा रद्द होनी चाहिये। मेरे ख्यालमें मुकद्दमेकी फिर जांच करनेकी कोई आवश्यकता नहीं है।"

पहलेके मुकद्दमेकी तरह इसमें भी बेचारे तिरस्कृत अन्त्यजके विरुद्ध मुकदमा दायर करनेवाले, न्यायाधीश और उसका बचाव करनेवाले सभी हिन्दू थे और अपराधी दोनों दफा सख्त कैदकी सजासे बच सके थे (मैं मानता हूँ कि जुरमाना देनेकी उनकी गुंजाईश ही नहीं थी)। फिर भी जिसका निर्णय होना चाहिये था वह न उस समय हुआ था और न इस समय ही हुआ। हिन्दू न्यायाधीश यह निर्णय कर सकते थे कि कोई अन्त्यज हिन्दू पूजा करनेके लिए किसी मन्दिरमें प्रवेश करे तो उससे, जिस हिन्दू धर्ममें होनेका वह दावा करता है और जिसको कि स्वीकार किया जाता है, उस हिन्दू धर्मका किसी भी प्रकार किसी भी अर्थमें अपमान नहीं होता है। कुछ हिन्दुओंके विचारसे अपराधीका मन्दिर प्रवेश अयोग्य भले ही हो, रूढ़िके विरुद्ध हो और चाहे जो कुछ भी हो, वह हिन्दुस्तानके फौजदारी कानूनके अनुसार जुर्म समझा जाय ऐसा उससे किसी भी वर्गके धर्मका अपमान नहीं होता है। यह वस्तु उल्लेखनीय है कि अपराधीके शरीरपर तिरस्कृत जातिके कोई चिन्ह न थे। उसका पोशाक सभ्य था और वह भस्म और तिलक किये हुए था। यदि ये अत्याचार पीड़ित लोग हमें ठगना चाहें तो उन्हें दूसरोंके साथमें पहचान लेना मुश्किल होगा। धर्मका पवित्र नाम लेकर मनुष्योंके पीछे पड़ना यह शुद्ध धर्मान्ध हठ है। इन अन्त्यजोंके पीछे पड़नेवालोंको यह खबर नहीं है कि वे जितने इज्जतदार होनेका दावा करते हैं उतनी ही इज्जतवाले और हिन्दुओंको जिन धार्मिक विधियोंका पालन करना चाहिये उन सब धार्मिक विधियोंका आदर करनेवाले मनुष्योंको सार्वजनिक मन्दिरोंमें दाखिल होनेसे रोककर वे स्वयं अपने ही धर्मको भ्रष्ट कर रहे हैं। मनुष्यके दिलको तो ईश्वर ही जानता है और यह संभव हो सकता है कि फटे-टूटे वस्त्रोंमें ढका हुआ अन्त्यजका हृदय बड़े टीप-टापके साथ वस्त्रोंसे सज्ज उच्चवर्णके हिन्दूके हृदयसे कहीं अधिक निर्मल हो।

हिन्दी-नवजीवन
१८ मार्च, १९२६

❀

अन्त्यज सेवककी कठिनाई

एक अन्त्यज सेवक लिखते हैं: –

"मैं एक अन्त्यजशाला चला रहा हूँ। आजन्म ब्रह्मचर्य पालन करनेकी मेरी शक्ति नहीं है इसलिए विवाहित होकर मर्यादामें रहना ही मुझे उचित मालूम होता है। परन्तु मैं अन्त्यजशाला चलाता हूँ इसलिए मुझे भय है कि मेरी जातिमें मुझे कन्या न मिल सकेगी। परन्तु मुझे तो आजीवन अन्त्यजशालाको ही चलाना है और दूसरा कोई काम मुझे नहीं करना है। अब मैं कैसे शादी करूँ? दूसरी जातिमें विवाह करूँ और विधवा लाऊँ तो समाज मुझे दूषित समझेगा। अब मुझे क्या करना चाहिये?"

यह कुछ ऐसी वैसी उलझन नहीं है। इस युवकको उसके निश्चयके लिए जितना भी धन्यवाद दिया जा सके कम होगा। यदि वे अपने निश्चयमें दृढ़ बने रहेंगे और अपनी इन्द्रियोंपर अंकुश रक्खेंगे तो ईश्वर ही उनकी सहायता करेगा। ऐसे संकटोंमें गुजरनेसे ही तो धर्मकी परीक्षा और रक्षा हो सकती है।

लेखक वैश्य जातिके मालूम होते हैं। सद्भाग्यसे अन्त्यज सेवक बड़े उच्च वर्णोंमें हैं। वर्णाश्रम धर्म है। वर्तमान असंख्य जाति भेदका होना कोई धर्म नहीं है। वह एक रिवाज है। यह कितने ही अंशोंमें हानिकर प्रतीत होता है। रिवाजोंमें सुधार किये जा सकते हैं, करने चाहिये। यदि लेखक वैश्य जातिके ही हों और अपनी उपजातिके बाहर जानेकी हिम्मत कर सकें तो उन्हें बहुत बड़ा क्षेत्र प्राप्त हो सकेगा। उपजातियोंमें अर्थात् वैश्य जातियोंमें अथवा ब्राह्मण, क्षत्रिय और शूद्रादि जातियोंकी उपजातियोंमें बेटी-व्यवहारका रिवाज डालनेकी पूरी आवश्यकता है। अर्थात् वर्णाश्रमकी मर्यादाके अनुसार जहाँ रोटी-व्यवहारकी स्वतंत्रता होती है वहाँ बेटी-व्यवहारकी भी स्वतंत्रता होनी चाहिए। यह अन्त्यजसेवक अपना इतिहास और अपनी शक्ति इत्यादिका ब्योरा अपनी उपजातिके महाजनोंके सामने पेश करें। वहाँ उन्हें कोई मदद न मिले तो उससे निराश न होकर, बिना क्रोध किये ही गुजरातके वैश्य महाजनके समक्ष अपना वही इतिहास पेश करें और उनसे मदद माँगे। यदि उनमें योग्यता होगी तो मेरा दृढ़ विश्वास है कि समाजके उचित बन्धनोंका उल्लंघन किये बिना ही उन्हे मदद मिल सकेगी।

यह सेवक या ऐसी कठिनाईमें फँसे सबलोग यह अच्छी तरह याद रक्खे कि यदि वे अन्त्यज सेवा या ऐसी ही कोई दूसरी सेवा केवल धार्मिक भावसे ही करते हैं तो उन्हे कैसा भी कष्ट क्यों न उठाना पड़े उन्हें कभी असत्यका प्रयोग नहीं करना चाहिये और न क्रोध करना चाहिये अर्थात् हिंसा न करनी

चाहिये। यदि वे इस प्रकार सत्यका और मर्यादित अहिंसाका पालन करेंगे तो वे अपनी, अपने धर्मकी और अपने देशकी शोभाको बढावेंगे और बहुत ही थोड़ा कष्ट उठानेसे ही वे संकटका निवारण कर सकेंगे। इसलिए उपरोक्त सेवकको अपना इतिहास किसी प्रकारकी अतिशयोक्तिके विना ही प्रकाशित करना चाहिये।

हिन्दी-नवजीवन
२२ अप्रैल, १९२६

❀

अस्पृश्यताके पंजेमें

ट्रावनकोरकी अस्पृश्यता और दूरताके संबन्धमें हमने बहुत कुछ सुना है क्योंकि वहाँ सत्याग्रह किया गया था। कष्ट-सहिष्णुताके दीपकके द्वारा ट्रावनकोरके मैलपर प्रकाश पड़ा था। परन्तु कोचीनमें ट्रावनकोरके बनिस्यत उसका जोर बहुत ही अधिक मालूम होता है। वहाँ कोचीनकी धारा सभामें कोचीनकी रियासतमें अस्पृश्योंके लिए सार्वजनिक रास्तोंका उपयोग करनेकी जो मनाही है उसे दूर करनेके लिए रियासतसे विनती करनेका प्रस्ताव लानेके लिए बार-बार प्रयत्न किये गये थे, परन्तु वैसा प्रस्ताव पेश करनेकी इजाजत ही न मिली।

ऐसे परिश्रमसे न थकनेवाले एक सभासदने कोचीनकी धारा सभामें यह प्रश्न पूछा कि सरकार या म्युनिसिपल फंडसे रक्षित कितने कुएँ और तालाब अस्पृश्योंके लिए बन्द रक्खे गये हैं? इसका उत्तर मिला ६१ तालाब और १२३ कुएँ उनके लिये बन्द रक्खे गये हैं। यदि उन्होंने दूसरा प्रश्न यह जाननेके लिए पूछा होता कि ऐसे कितने तालाब और कुएँ हैं जिनका अस्पृश्य लोग उपभोग कर सकते हैं तो बड़ी मजेकी बातें मालूम होतीं।

दूसरा प्रश्न जो पूछा गया वह यह है कि सार्वजनिक-कार्य-बिभागके द्वारा बांधे गये और रक्षित कुछ मार्गोंका उपयोग करनेसे अस्पृश्योंको क्या वजह है कि मनाही की गई है? प्रश्नकर्त्ताने अस्पृश्योंके लिए किसीको बुरा न मालूम हो इसलिए अहिन्दू शब्दका प्रयोग किया था। कोचीन सरकारकी तरफसे किसी भी प्रकारके लज्जा भावके बिना ही ये कारण बताये गये थे, 'ये मन्दिर और महलके नजदीकके मार्ग हैं। भूतकालके संस्कारोंको एकदम नहीं तोड़ा जा सकता है। चिरकालसे प्रचलित रिवाजोंका आदर करना ही पड़ता है।' पाठक 'महल' शब्दके ऊपर ध्यान दें। इससे यह ख्याल किया जा सकता है कि कोई पंचमा खुद जाकर अर्ज करे तो यह संभव नहीं है क्योंकि महलके नजदीकके रास्तोंपर

ही जब यह नहीं जा सकता है, तो मन्दिरमें वह जा ही कैसे सकता है? जिन अधिकारियोंने ऐसा निर्णय उतार लिया वे समर्थ, शिक्षित और संस्कारी मनुष्य है और जीवनके दूसरे क्षेत्रोंमें उदार मनके भी है परन्तु वे एक क्रूर, निर्दय और अधार्मिक रिवाजको प्राचीनताके नामपर उचित बतानेका प्रयत्न करते है।

कानूनकी किताबोंमें हमने यह पढ़ा है कि जुर्म और अनीतिको प्राचीनताका कोई लाभ नहीं मिल सकता है। प्राचीन होनेके कारण वे आदरणीय नही हो सकते। परन्तु कोचीन रियासतमें तो स्पष्टतः उल्टी ही बात है। अस्पृश्यताका रिवाज, अनीतिका है, जंगली और क्रूर है, इससे कौन इनकार कर सकता है? कोचीनकी रियासतका कानून तो इस प्रकार दक्षिण अफ्रीकाके कानूनोंसे भी बहुत बदतर है। दक्षिण अफ्रीकाका साधारण नियम गोरी और रंगवाली जातियोंकी समानताको स्वीकार करनेसे इनकार करता है। कोचीनके साधारण नियमका आधार एक खास वर्गमें जन्म लेनेसे मानी गई असमानता पर है। परन्तु कोचीनमें जो असमानता है वह दक्षिण अफ्रीकाके बनिस्बत कहीं अधिक अमानुषी है क्योंकि दक्षिण अफ्रीकामें रंगवाले मनुष्योंके बनिस्बत कोचीनमें अस्पृश्योंके मनुष्योचित अधिकार अधिक परिमाणमें छीन लिये गये है। अस्पृश्योंके प्रति ऐसा लज्जाजनक व्यवहार रखनेके कारण मैं केवल अकेले कोचीनपर ही दोष लगाना नहीं चाहता हूं। दुर्भाग्यसे भारतके हिन्दुओंके लिए कम या अधिकांशमें यह आज भी एक सामान्य बात है। परन्तु कोचीनमें धर्मकी मानी हुई आज्ञाके अलावा अस्पृश्यताको राज्यकी आज्ञा भी मिली है। इसलिए कोचीनमें जनसमाजकी उस विषयमें राय बना लेनेसे भी तबतक कुछ लाभ न होगा जबतक कि वह दृढ़ न हो जाय कि वह राज्यको इस जंगलीपनको दूर करनेके लिए मजबूर कर सके।

हिंदी-नवजीवन
२९ अप्रैल, १९२६

❀

बस, स्थिर रहेंगे!

पुराने ख्याल जो मनमें दृढ़ हो गये है बड़ी मुश्किलसे दूर होते है। नीच गिनी जानेवाली जातियोंपर हिन्दुओंने जो अत्याचार किया है जो अन्याय किया है उसको कट्टरसे कट्टर हिन्दू समाज भी स्वीकार करता है। फिर भी ऐसे लोग है जो और बातोंमें उदार होनेपर भी इस मामलेमें दुराग्रहसे ऐसे अन्धे हो गये हैं कि वे ऐसे नीच गिने जानेवाले अपने देशवासियोंके प्रति किये गये अपने व्यवहारमे कोई अन्याय ही नही देखते हैं। एक महाशय यों लिखते हैं—

"मै आपका एक बडा नम्र अनुयायी हूँ। परन्तु मै आपका प्रथम वर्गका अनुयायी होनेका दावा नहीं करता। मै बडे दु खके साथ इस बातको स्वीकार करता हूँ कि अस्पृश्यताके विषयमें मेरे दिलको आपकी तरह कोई चोट नहीं पहुँचती है। जो लोग यह कहते है कि अस्पृश्योपर अत्याचार किया जाता है, उन्हे दबाया जाता है, उनसे मै एक मत नहीं हो सकता हूँ। मै आपके समक्ष यह बात पेश करना अपना फर्ज समझता हूँ कि वे अस्पृश्य कहे जानेवाले लोग पहले स्वतंत्रताका उपभोग करते थे और अच्छी हालतमें थे। यदि मै पचमाओके भूतकाल और उनके वर्तमानकालके प्रति दृष्टिक्षेप करूँ तो मै उनको उनकी जागृतिके लिए मुबारकबादी नहीं दे सकता हूँ क्योकि उसमे तो वे कहीके भी नहीं रहे है। नाममात्रकी शिक्षा और नौकरीके टुकडोकी तृष्णाका ही वे अनुकरण कर रहे है और इससे वे और भी अधिक अस्पृश्य बन गये है। जो मनुष्य शारीरिक श्रमके कामोको छोडकर नौकरी या कोई अधिकारकी जगह लेता है वह चूल्हेमेंसे निकलकर भट्टीमें हो जाकर गिर पड़ते है। यही हम लोगोका दु खद अनुभव है। मुझे उन दिनोका स्मरण है जब पचमाको कुटुम्बका ही एक मनुष्य समझा जाता था और प्रतिमास उसकी आजीविका और कपड़ोंकी भी व्यवस्था की जाती थी। परन्तु अब ये सब बातें भूतकालकी हो गई है। बहुतसे अस्पृश्य विदेशियोंकी गुलामी करनेके लिए दूसरे देशोमें चले गये है, अथवा वे १५) की शाही तनख्वाह पाकर फौजकी नौकरी करनेके लिए नौकरशाहीके अनजानमें ही हथियार बन गये है। मुझे भय है कि उन्हें दूसरी जातियोके समान बनानेका, उनकी उन्नति करनेका आपका कार्य असफल होगा। स्वय मेरा ख्याल तो यह है कि समाजमें उनकी उन्नति करनेके लिए बहुत कुछ किया जा सकता है। परन्तु यह कार्य कोई जादूकी तरह एक ही दिनमें नहीं किया जा सकता है। उन्हें शिक्षा देनेके लिये, उनके आर्थिक कष्टोको दूर करनेके लिये, शराबखोरी, गोहत्या और मिट्टी खानेकी बदीको, जो उनमें सदियोका पुराना रिवाज हो गया है और इसीके कारण हरएक गांवमें उन्हे अलग एक बाड़ेमें रहना पड़ता है, दूर करनेके लिए हमें करोडो रुपये खर्च करने होगे। यदि यह न किया जायगा और दूसरी जातिके लोगोसे अस्पृश्योका आलिंगन करनेको कहा जायगा तो उससे समाजकी अवनति होगी और जहाँतक मेरा ख्याल है आप भी उसे पसन्द न करेंगे।"

अस्पृश्योंको न छूनेमें ही अवनति है। मनुष्य यदि शराब पीता है, गोहत्या करता है और मिट्टी खाता है तो क्या हुआ? वह बेशक बुराई करता है, परन्तु वह उनसे जो कि छिपे हुए अधिक भयंकर पाप करते हैं, अधिक पापी नहीं हैं। इसलिए वह अस्पृश्य नहीं गिना जाना चाहिये क्योंकि गुप्त पाप करनेवाले पापीको समाज अस्पृश्य नहीं गिनता है। पापीका तिरस्कार नहीं करना चाहिये, परन्तु उनपर तो दया करनी चाहिये और उनको अपने पापोंसे मुक्ति प्राप्त करनेमे मदद करनी चाहिये। हिन्दुओंमे अस्पृश्यताका होना अहिंसाके उसी सिद्धान्तका इन्कार करना है जिसपर कि हमें अभिमान है। अस्पृश्योंमे जिन बुराइयोंके होनेके विषयसे लेखक शिकायत करते है उसकी जिम्मेदारी भी हमारे सिरपर है।

उनको उन बातोंसे विमुख रखनेके लिए हमने क्या प्रयत्न किये हैं? हमारे कुटुम्बके किसी व्यक्तिको सुधारनेके लिए हम क्या बहुतसे रुपये खर्च नहीं करते हैं। क्या अस्पृश्य हिन्दू समाजरूपी महान कुटुम्बका एक अंग नहीं है। निःसन्देह हिन्दू धर्म भी हमें यह उपदेश देता है कि सारी मनुष्य जातिको हम एक अविभक्त कुटुम्ब समझें और हममेंसे प्रत्येक मनुष्य हर एक मनुष्यकी की हुई बुराईके लिए अपनेको जिम्मेवार समझें। परन्तु यह संभव नहीं कि इस महान् सिद्धांतपर हमारी निर्बलताके कारण अमल किया जा सके तो हमें कमसे कम यह तो समझना चाहिये कि अस्पृश्योंको हम हिन्दू कहते हैं इसलिए वे और हम एक ही हैं।

और क्या मिट्टी खाना अधिक बुरा है या मिट्टीका विचार करना? हम रोजाना करोड़ों अशुद्ध विचार करते हैं, उन्हें अपने मनमें स्थान देते हैं और उसका पोषण करते हैं। हमें उसे दूर कर देना चाहिये क्योंकि वे ही सच्चे अस्पृश्य, तिरस्करणीय हैं और दूर कर देनेके योग्य हैं। हमें प्रेमसे अपने अस्पृश्य भाइयोंका आलिंगन करके उनके प्रति किये गये अन्यायका प्रायश्चित्त करना चाहिये। अस्पृश्योंकी सेवा करनेके कर्तव्यके सम्बन्धमें लेखकने कोई शंका नहीं उठाई है। यदि उन्हें देखनेसे ही हमें बुरा मालूम हो और हम अपवित्र हो जाते हों, तो हम उनकी सेवा कैसे कर सकेंगे?

हिन्दी-नवजीवन
१३ मई, १९२९

अस्पृश्यतारूपी रावण

किसी विद्वान पंडितजीने दक्षिणसे देशी भाषामें लिखकर भेजा है। अछूतपनके संबन्धमें उनकी जो दलीलें है, उसका सारांश एक मित्र यों लिखते हैं—

(१) आदि शंकराचार्यने किसी चाण्डालको दूर हटाया था और जब त्रिशंकुको चाण्डाल हो जानेका शाप मिला था तो सब कोई उससे बचे-बचे दूर ही रहते थे। ये बातें सिद्ध करती है कि अछूतपनेकी पैदाइश हालकी नहीं है।

(२) आर्य-जातिमें चाण्डालोको जाति-बहिष्कृत गिनते थे।

(३) स्वय अछूत भी तो इस अछूतपनेके दोषसे बरी (मुक्त) नहीं है।

(४) अछूतोको तो हम अछूत इसलिए नहीं मानते है कि वे जानवर मारते है

और उन्हे हाड, मास, लहू, पाखाना, पेशाव तथा और-और तरहकी गन्दगियोसे वरावर ही काम पडा करता है ।

(५) अछूतोको भी उसी प्रकारसे अलग रखना होगा जिस प्रकार कत्लखानों या कसाईखानो, शराव-ताडीकी दूकानो और वेश्यालयोको दूर रखा जाता है वा रखा जाना चाहिये ।

(६) उनके लिए तो यही काफी है कि परलोकके हक तो उन्हें प्राप्त है ।

(७) गाधी ऐसे आदमी उन्हे भले ही छू सकें पर वे तो उपवास भी कर सकते है। हमलोगोको न तो उपवास ही करना है और न उन्हे छूनेकी ही जरूरत है ।

(८) मनुष्यकी उन्नतिके लिए अछूतपनेका माना जाना अत्यन्त ही आवश्यक है ।

(९) मनुष्यके पास कुछ विद्युत शक्ति रहती है। यह शक्ति दूधके सदृश है। इसमें यदि वुरी चीजें मिला दो तो सभवत. वह शक्ति जाती रहेगी । इसलिए यदि कहीं प्याज और कस्तूरीको एक साथ मिलाकर रखना सभव होवे तो हम ब्राह्मण और अछूतको भी एकत्र मिला सकते है ।

पत्र-लेखकने इन्हीं मुख्य-मुख्य वातोंका सारांश दिया है। अछूतपना हजार सिरोंवाला रावण ह । इसलिए जव कभी यह अपना सिर उठावे तभी हमें कुचल देना होगा। हमारी आजकी स्थितिका उन कथाओसे क्या लगाव है, यदि यह वाते हमें मालूम न होवे तो पुराणकी कुछ कथाएँ तो वहुत ही खतरनाक समझी जॉयगी। शास्त्रोंमें कही हुई यदि हरएक छोटीसी वातके अनुसार हम अपना जीवन बनाये वा उसमें वर्णित पात्रोंका हम ठीक-ठीक अनुकरण करने लगे तो ये शास्त्र ही हमारे लिए प्राणघातक सिद्ध होगे । उनसे तो हमें केवल मुख्य-मुख्य सिद्धान्तकी वातें स्पष्ट करने या उन्हें ठीक समझनेमें सहायता मिलती है। यदि किसी धार्मिक ग्रंथमे लिखा है कि किसी प्रसिद्ध पुरुषने कोई पाप किया था तो क्या हमें भी पाप करनेकी आज्ञा उस ग्रन्थसे मिल गई ? यदि केवल हमें एक वार ही कह दिया गया कि केवल सत्यकी ही इस संसारमें सत्ता है और सत्य परमेश्वरके तुल्य है, तो हमारे लिए इतना ही वहुत है। यह कहना अन्याययुक्त होगा कि युधिष्ठिरको भी झूठ बोलना पड़ा था, वल्कि उसकी अपेक्षा उपयुक्त बात यह होगी कि जब वे झूठ बोले, उन्हे उसी समय, उसी क्षण, कष्ट झेलना पड़ा था और उनके प्रसिद्ध और बड़े नाम सजा पानेके समय उनके कुछ काम न आये। उसी तरह हमारा यह कहना भी वे-मौके होगा कि आदि शंकराचार्यने अपने पाससे किसी चाण्डालको दूर हटा दिया था । हमें तो केवल यही जानना यथेष्ट होगा कि जिस धर्ममें यह सिखाया जाता है कि प्राणी-मात्रसे वैसा ही व्यवहार करो जैसा अपने साथ करते हो अर्थात् प्राणि-मात्रको

आर्य जातिने अछूतोंको यदि जाति-बहिष्कृत माना था तो उनके लिए यह कोई शोभाकी बात तो नहीं है और यदि आर्य जातिने अपने विकासके किसी कालमें कुछ लोगोंको समाजको बनाने सजाके जातिच्युत माना था तो अब फिर कोई कारण नहीं कि वह सजा उन लोगोंके वंशजोंपर भी लागू होवे और इसका विचार भी न किया जाय कि किस दोषके लिए उनके पूर्वजोंको सजा दी गयी थी।

अछूतोंमें भी अछूतपनेका होना तो केवल यही सिद्ध करता है कि पापको हम बन्द करके नहीं रख सकते हैं बल्कि उसका जहर सर्वत्र ही फैल जाता है। इस अछूतपनेका अछूतोंमें भी पाया जाना तो इसका एक और कारण है कि सभ्य हिन्दू समाजको इस महाव्याधिका शीघ्रसे शीघ्र नाशकर देना चाहिये।

यदि अछूतोंका अछूतपन इस कारण है कि वे जानवर मारते हैं और उन्हें मांस, हाड़, लहू तथा पायखाना, पेशाब और गंदगियोंसे काम पड़ता है तो सभी डाक्टरों और दाइयों (परिचारिकाओं) को अछूत बन जाना चाहिये और क्रिस्तानों,मुसलमानों और बड़ी २ ऊँची जातिके नामवाले हिन्दुओंको भी जो खानेके लिए या बलि देनेके लिए जानवरोंको मारते हैं, अछूत बन जाना चाहिये।

इस दलीलसे तो घोर द्वेषकी गन्ध आती है कि चूंकि कसाईखानों, ताड़ीकी दुकानों और वेश्यालयोंको अलग रक्खा जाता है इसलिए अछूतोंको भी अलग रखना चाहिये। कसाईखानों और शराबकी दुकानोंको अलग रक्खा जाता है और रखना चाहिये ही, परन्तु कसाइयों और कलालोंको तो कोई अलग नहीं करता है। वेश्याओंको अलग रखना चाहिये क्योंकि उनका पेशा घृणित है और समाजकी उन्नतिके लिए बाधा स्वरूप है। परन्तु इधर अछूतोंका पेशा तो न केवल इष्ट ही है, बल्कि समाजके हितके लिए परमावश्यक है।

यह कहना तो गुस्ताखीकी हद है कि अछूतोंको परलोकके अधिकार

भी छीन लेना अपने ही हाथमें होता तो वहुत कुछ संभव है। यह तो पाप है। अछूतपनेकी राक्षसी प्रथाके समर्थक उनको वहाँ भी अलग छाँट देते।

यह कहना तो लोगोंकी आखोंमें धूल झोंकना है कि गाधी अछूतोंको छू सकता है परन्तु और-और लोग नहीं, मानों अछूतोंको छूना वा उनकी सेवा करना इतने वड़े दोप है कि जिसके लिए वैसे ही आदमियोंकी जरूरत है जो अछूत रूपी रोगाणुओंसे अपनेको वचा लेनेकी विशेप शक्ति रखते है। मुसलमानों, क्रिस्तानो तथा और लोगोंको जो छूतपनेको नहीं मानते हैं कौनसी नरक-यातना दी जायगी यह तो भगवान ही जाने।

शारीरिक चुम्वकत्वकी दलीलको तो उचितसे अधिक दूरतक खींचा गया है। ऊँची जातिके सव आदमी न तो कस्तूरीके ऐसे गन्धवाले हैं और न अछूत ही प्याजके ऐसे दुर्गन्धवाले हैं। ऐसे हजारों अछूत है जो अछूतपनेको नहीं मानते हैं और किसी भी ऊँची जातिके नामवालोंसे हजार गुने अच्छे है।

यह देखकर कष्ट होता है कि अछूतपनेके विरुद्ध पांच वरसोंके लगातार प्रचारके वाद भी आज कितने ही पढ़े लिखे विद्वान पुरुप मिलते है जो इस अनीतिमूलक और दूपित रिवाजका समर्थन करते हैं। विद्वानोंमें भी अस्पृश्यताके भावका रहना अस्पृश्यताको कोई प्रतिष्ठा नहीं दिला देता है वल्कि इससे तो हम निराश हो जाते हैं कि चारित्र्य और समझदारोंकी केवल विद्यासे ही कुछ वृद्धि हो सकती है।

हिन्दी-नवजीवन
५ अगस्त, १९२६

❀

अस्पृश्यता

इस सत्यानाशी प्रथाके विरुद्ध आपने हमेशा बहुत जोरोंसे लिखा है। इसके साथ ही; अगर मुझे जहाँ तक याद आता है, आपने यह भी लिखा है कि इस सुधारके साथ-साथ असवर्ण विवाह और सह-भोज भी कुछ आवश्यक नहीं है।

कृपा करके आप स्पष्ट लिखें कि इस सुधारमें यह भी शामिल है कि नहीं किसी अछूतका, बनाया हुआ या उसके हाथका ही भोजन खाया जाय या कमसे कम उसके निकट बैठकर अपनी ओरसे कोशिश करके नहीं किन्तु कमसे कम सयोगवशतः ऐसा अवसर आ पड़नेपर ही सही, खाया जाय। अगर ये बातें सही नहीं है तो यह भी बतलाना होगा कि

९

अन्त्यजोंका पूजाधिकार

नीमच छावनीसे एक भाई प्रश्न करते हैं—

"(१) अछूत जिनको उच्चवर्ण हिन्दू अतिशूद्र भी कहते हैं, विष्णु भगवानका मंदिर बनाने, विष्णुकी मूर्तिकी पूजा करने और मूर्तिको विमानमें बिठाकर सरे बाजार निकालनेके अधिकारी हैं या नहीं ?

(२) क्या अतिशूद्र पूजित विष्णुकी मूर्तिके दर्शन करनेसे वैष्णव नरकगामी होते हैं ?"

ऐसे प्रश्न अबतक पूछने पड़ते हैं, यही दुःखकी बात है। मेरा दृढ विश्वास है कि अन्त्यज भाइयोंको विष्णु भगवानकी मूर्ति बाजारमें निकालनेका और विमानमें बिठानेका पूरा अधिकार है जितना अन्य जातियोंको है। इसी तरह जो वैष्णव अतिशूद्र पूजित मूर्तिकी पूजा करता है या दर्शन करता है, वह पाप नहीं परन्तु पुण्य करता है। जो वैष्णव जान बूझकर ऐसी मूर्तिकी पूजासे डरेगा वह वैष्णव धर्मकी निन्दा करता है।

हिन्दी-नवजीवन
४ नवम्बर, १९२६

अनोखे विचार

"ठीक उसी प्रकारसे जैसे हम लोगोके ऐसे लोग आपके निकट जाने और छूनेमें डरते है क्योंकि आप साधारण आदमियोसे ऊपर है, अपवित्रतासे रहने और खानेवाले अछूत भी साधारणः ऊँची जातिवालोको, जिनसे यह उम्मीद की जाती है कि अछूतोकी अपेक्षा वे अधिक शुद्ध जीवन विताते होंगे, उनके स्वयं आगे वढनेपर भी छूना या उनके निकट जाना पसंद नही करते। अव इस स्थितिमें क्या आप यह नही सोचते कि आपके अछूतपनेके विरुद्ध प्रचार करनेसे, अछूतोकी कायिक, वाचिक और मानसिक शुद्धि होनेके वदले, जो एक जन्ममें हो नहीं सकती, ऊँची जातिवाले दूसरे लोगोकी और भी अवनति होगी क्योकि उनलोगोमें आपके जैसा ऊँचा चारित्र्य, अच्छे सिद्धात और पक्का धर्मज्ञान नहीं है।"

किसी बोर्ड हाई स्कूलके शिक्षकोंका यह संयुक्त लेख है। इसलिए यह लेख वहुतोंके विचारका नमूना है और फेंक देने लायक नहीं है। मगर केवल इसी खूबीके कारण इसे मै नही छापता। अस्पृश्यता और दूसरे सामाजिक और धार्मिक सुधारोंके विरुद्ध प्रगतिसे पढ़े लिखोंके भी कितने भद्दे और अनोखे विचार जाहिर हो रहे हैं। भद्दे अन्धविश्वासोंका शिक्षकोंने समर्थन किया है, उससे मालूम होता है कि विश्वास होनेसे ही किस प्रकार दलीलें मिल जाया करती हैं, और इसलिए किसी वड़े हलचलमें दलीलोंका कैसा छोटा स्थान होता है। यहाँ तो सिर्फ सुधारकके उदाहरणका ही असर पड़ता है। और जब वह उदाहरण गलतफहमी, निन्दा और दंडके सामने भी यहांतक कि मृत्युके सामने भी टिका रह जाता है तब उस सुधारका प्रचार शुरू होता है। अस्पृश्यता और दूसरी चीजोंके साथ भी यही बात होगी। लेकिन इन शिक्षकोंकी दलीलोंका भी हम कुछ देरतक विचार करें।

पहली बातमें तो उन्होंने बहुत ही बेमौके उपमा ढूँढी है। मुझे इसका पता नहीं कि लोग मुझे छूते या मेरे पास आते डरते हों। इसके उलटे जब कभी मैं दौरेपर निकलता हूँ, तो लोगोंकी भीड़की मेरी बहुत अधिक खातिरदारी और मुझे छूनेकी जिदसे मै घबरा जाता हूँ। मुझे वे स्नान करते समय भी अकेले न छोड़ेंगे। दूसरे अगर हमारे अछूत देशवासी, ऊँची जातिवालोंको छूनेसे डरते है, तो इसका कारण उनकी कुछ अधिक शुद्धता नहीं है बल्कि यह है कि उन्हें उन लोगोंको न छूनेकी ही शिक्षा दी गयी है और उन्हें मालूम है कि छूनेकी कोशिश करनेसे गाली खानी पड़ेगी या उससे भी बुरा सलूक संभव है।

तीसरे चारित्र्यके सबंधमें अछूतोंकी निम्नता, अकारण ही मान ली गयी

है। अगर सारे समाजको लेकर देखा जाय तो सच्चाई, शुद्धता, और दूसरे सार्वजनिक या खानगी गुणोंमें, जिन्हें दूसरोंसे ऐसा पूरा-पूरा दिखलानेका उन्हें सुयोग मिला है, वे किसीसे पीछे न होंगे।

ऐसी धारणा करके कि इन नामधारी ऊँची जातिवालोंके बराबर पहुँचनेके लिए इन लोगोंको कई जन्म लेने पड़ेंगे, पुनर्जन्मके सिद्धान्तका दुरुपयोग किया जाता है। गीता हमें सिखलाती है कि इसी जन्ममें किसी विद्वान पण्डितके समान, एक अछूतको भी मुक्तिके बराबर ही साधन प्राप्त हैं। ऊँची जातिवाले अगर सचमुचमें ही ऊँचे हैं तो उन्हें अछूतोंसे मिलनेमें डरनेका कोई कारण नहीं है। क्योंकि ऐसा होनेसे ऊँची जातिवालोंका तो कुछ बिगड़ेगा नहीं और अछूतोंको उनके साथसे बड़ा लाभ पहुँचेगा, और विशेषकर उस हालतमें जब वे अछूतोंसे सेवाका भाव लेकर मिलें, न कि स्वार्थके लिए। साथमें गुण और दुर्गुणका दोनोंमें परस्पर आदान-प्रदान चलता है। किसी शराबखानेमें भी जानेसे मैं अपवित्र नहीं हो जाता हूँ अगर मैं सुधारक बनकर इस नियतसे जाता हूँ कि शराबीकी बुरी आदत उनसे छुड़ाऊँ, मगर अगर मैं एक दोस्तका सिर्फ साथ देनेके लिए, और वहाँके प्रलोभनोंसे बचनेके लिए पहलेसे बिना कुछ सोचे-विचारे जाऊँ तो जरूर ही अपवित्र हो जाऊँगा।

शिक्षकोंकी चारित्र्य पर आहारके प्रभावकी दलील भी ऐसी ही अनोखी है। चूँकि मैं खुद भोजन सुधारक हूँ इसलिये बहुत मित्र भोजनके सुधार और उसे जहाँतक सादा हो सके बनानेके उत्साहमें मुझे आधा पागल-सा समझते हैं। मगर मैं जानता हूँ कि ये शिक्षक भोजनपर और चारित्र्यके ऊपर उसके प्रभावपर बेहिसाब जोर दे रहे हैं। और अगर तबतक सब सार्वजनिक कार्य बन्द रखे जायं जबतक ऐसे कार्यकर्त्ता नहीं मिलते जो सभी प्रकारका खट्टा-मीठा न खायँ और एक अपरिवर्तनीय नियमके अनुसार चलें तो कोई सार्वजनिक काम ही नहीं होगा। कार्यकर्ताओंके सादे काम अनुत्तेजक आहारके लाभ ही बतलाते जा सकते हैं। मगर जबतक यह सुधार हो नहीं लेता तबतकके लिये सब सार्वजनिक काम बन्द रखनेका किसको साहस हो सकता है? उस बुरी आदतसे जिसके कारण हम धर्म और चारित्र्यकी जाँच आहारपर करते हैं सच्चे धार्मिक भावके उदयमें बड़ी बाधा पहुँचती हैं। ये लायक उस्ताद लोग उस विवाह सुधारकी जिसे बहुत दिन पहले ही शुरु हो जाना चाहिये था, तबतक बन्द रक्खेंगे जबतक लोग उनके मन मुआफिक सात्विक आहार शुरु न करें। इस शब्द सात्विक आहारका चाहे उसके कुछ अर्थ होवे मगर इसमें कुछ शक नहीं कि आत्मसंयम और आहारमें बड़ा महत्वपूर्ण संबंध है। इसके साथ इस बातके भी अनेक उदाहरण मिलते हैं जब साधारण भोजन करनेवालोंने भी आत्मसंयमकी आदत रक्खी है। जो लोग आत्मसंयमके अभ्यासी हैं वे स्वयं

अपने लिये, आहार संयमकी सीमा निश्चित कर लेवें। इसलिये और दूसरे सुधारोंके लिये आहार सुधारकी परमावश्यक शर्त बनाना गलत होगा।

बाल विवाहके कठोर चालको हटानेके संबंधमे ये शिक्षक याद रक्खे कि ऐसे भी लोग है, जिन्हे सादासे सादा आहार करनेपर भी अपनी वासनाओंका दमन करना बहुत कठिन होता है। सब करने और कहनेके बाद भी तो मन मन ही है। स्वर्गको भी नरक और नरकको भी स्वर्ग बना सकता है। इसके अलावा, स्त्रियोंकी शुद्धताके विषयमें इस अपवित्र चिंताकी जरूरत ही क्या है? पुरुषोंकी सुचरित्रताके लिये स्त्रियोंके चिंताकी बात तो कभी सुनी नहीं गई। तब पुरुष ही क्यों स्त्रियोंकी पवित्रताका ठेका लेनेका दुःसाहस करें? बाहरसे तो पवित्रता लादी नहीं जा सकती। यह तो आंतरिक विकासकी बात है और इसलिए हर आदमीकी अपनी व्यक्तिगत चेष्टापर निर्भर है।

योग और अहिंसाके अभ्यासके संबंधमें इन शिक्षकोंके दिये हुए, इन गुणोंके अभ्यासियोंके दावेका मै समर्थन नहीं कर सकता। उनमें जो सबसे बढे हुए है, वे लोग भी प्रकृतिके अचल अटल नियमोंके विरुद्ध नहीं जा सकते। वे प्रकृतिके नियमोंसे वैसे ही जकड़े हुए हैं जैसे हम सब लोग। स्वयं परमात्माने अपने ही नियमोंमें परिवर्तन करनेका अधिकार आप बचा नही रक्खा है और किसी ऐसे परिवर्तनकी जरूरत थी नहीं है। वह सर्वशक्तिमान है, सर्वज्ञ है। वह एक साथ ही बिना किसी मेहनतके भूत, भविष्य और वर्तमान कालको जानता है। इसलिए उसे फिर न कुछ विचार है, न दुहराना है, न बदलना है न सुधारना है।

अहिंसक योगाभ्यासी लोगोंको बेशक कुछ शक्तियाँ आ जाती हैं। मगर वे सब प्राकृतिक नियमोंके भीतर ही। मैं कोई योगाभ्यास नहीं करता क्योंकि पहले तो मुझे उसके बिना भी आंतरिक शांति प्राप्त है (हाँ, शायद मेरा अपनी वर्तमान स्थितिपर ही संतोष करना गलत होवे) और दूसरे मुझे वैसा कोई आदमी नही मिला जिसपर मै पूरा-पूरा विश्वास कर सकूँ और वह मुझे समुचित योगाभ्यास सिखला सके।

गाँवोंके संबंधमें—मेरे कई सहकारी गावोंमें अभी काम कर रहे हैं। मगर मैं कबूल करता हूँ कि यह मुश्किल काम है। मैं मानता हूँ कि सिर्फ इस लिये कि उनकी ऐसी इच्छा है, सब किसीके लिये गांवोंमें जा बसना संभव नहीं है।

हिन्दी-नवजीवन
२५ नवम्बर, १९२५

❀

अस्पृश्यताओंकी तुलना

वर्धामें रहते समय मुझे अछूतोंके मुहल्लोंको देखनेका अवसर मिला था। उनके वाशिंदे सुखी मालूम पड़ते थे किंतु जो जागृति हो चुकी है उसके कारण अस्पृश्यता-निवारणके आंदोलनकी धीमी चालसे वे असंतुष्ट हैं। उन्हें इस बातका रंज है कि अब भी साधारणतः मंदिरों, कुओं या स्कूलोंका व्यवहार उन्हें नहीं करने दिया जाता। वे यह समझ ही नहीं सकते, समझेंगे भी नहीं कि प्रगति लंगड़ी होती है और इसलिये बहुत धीमी। वे इसकी कोई वजह नहीं देख सकते, कोई हेतु भी नहीं कि उन्हें भी कठिनाइयां झेलनी पड़ती हैं, वे झेलनी ही पड़ें।

इस मनोरंजक सैरके दो दिनों बाद मुझे मालूम हुआ कि जमनालालजीकी कोशिशोंकी बदौलत और जगहोंसे वर्धाके अछूत अधिक सुखी हैं। वहांके कई सार्वजनिक कुओंसे पानी ले सकते हैं। म्युनिस्पल स्कूलमें बिना रोक टोक भर्ती किये जा सकते हैं। अनाथालयमें अछूत और बे-अछूत अनाथोंमें कोई अंतर नहीं माना जाता, पानीके सार्वजनिक नलोंसे उन्हें पानी लेने दिया जाता है और उनके विरुद्ध पक्षपातकी दीवाल तोड़नेकी कोशिश की जाती है।

जिस समय अछूत भाइयोंकी विचारधाराओंके अनुभव मुझे हो रहे थे उसी समय मुझे दक्षिण अफ्रीकाकी अस्पृश्यताकी घटनायें याद करनी ही पड़ीं। इस समय वहां गोलमेज कान्फ्रेंस विचार कर रही है, उसके ख्यालसे मुझे ऐसा करना ही पड़ा। यहाँ हिन्दुस्तानी अस्पृश्यताके लिये हमलोग उत्तरदायी हैं, और दक्षिण अफ्रीकामें हमीं उसके शिकार हैं। यहाँ तो जालिमके ऊपर ही जुल्म वाली बात दुहराई गई है। जैसा हम हिन्दुस्तानमें करते हैं, उसका बदला हमें दक्षिण अफ्रीकामें सूद सहित मिलता है।

अब कान्फ्रेंस यह विचार कर रही है कि इसका उपाय क्या है। सुफलकी प्राप्तिके लिये एेन्ड्रयूज भगीरथ प्रयत्न कर रहे है। उन्होने दक्षिण अफ्रीकाकी पवित्रतम शक्तियोंको इसके पक्षमें किया।

खैर, दोनों प्रकारकी अस्पृश्यताओंके अंतरपर हम विचार करें। हिन्दुस्तानकी अस्पृश्यता घड़ियां गिन रही है। उसकी जड़पर कुल्हाड़ी लग चुकी है। शिक्षित समाज उसके विरुद्ध है। कोई भी प्रभावशाली पुरुष उसका समर्थन नहीं करता। अछूतोंको बांध रखनेवाली जंजीरें तड़ातड़ टूटती जा रही है। कानून उसे सह्य नहीं करता। यह जो कुछ बची है, रस्मोरिवाजके कारण। रिवाज जल्दी बदलते नहीं, कानूनका सहारा न रहनेपर भी वे जीते ही जाते है और खासकर

अगर वे पुराने रिवाज हुए। हिन्दुस्तानकी अस्पृश्यता अब समय पाकर आप ही आप दूर हो जायगी।

दूसरी ओर दक्षिण अफ्रीकावाली दिनपर दिन जड़ पकड़ती जाती है। इसे दिनपर दिन कानूनकी अधिकाधिक सहायता मिलती जाती है। सन् १९१४ ई० के आखिरी समझौतेके बाद सन् १९१५ से अबतक, यूनियन पार्लियामेंटकी हर बैठकमें दक्षिण अफ्रीकाके हिन्दुस्तानी अछूतोंकी कानूनी कठिनाइयाँ बढ़ती ही गयी है। ब्रिटिश साम्राज्यके और हिस्सोंमें भी यह रोग फैलता जा रहा है, जैसा कि केनियाकी हालतसे साफ मालूम पड़ता है।

इन्ही बढ़ती हुई बुराइयोंके विरुद्ध दक्षिणी अफ्रीकामें ऐन्ड्रूयूज करीब-करीब अकेले ही लोहा लिये हुए हैं। आइये, हम आशा करें कि उनकी मिहनत सफल होगी।

किंतु बेशक इस बुराईका सामना करनेका सबसे अच्छा तरीका है, हिन्दुस्तानमें पहले हमी उससे बरी हो जायँ। दक्षिण अफ्रीकाके डेपुटेशनके मेम्बरोंके मुँहसे यह बात अनेक बार सुननेमें आयी है कि पहले हम अपने घरमें तो चिराग जला लेवें फिर दक्षिणका अफ्रीकाका भी अंधेरा मिटानेका समय मिलता रहेगा। शायद वे भूल गये थे, या उन्हें मालूम ही नही था कि यहाँ हमलोगोंके साथ, अछूतोंपर कोई कानूनी बंधेज नहीं है। मगर दूसरोंसे न्याय मांगते समय, इस तरहकी दलील पेश करना हमें शोभेगा नहीं। कानूनका एक बहुत अच्छा सिद्धांत है जो हमारे मुआमलेपर लागू होगा है। 'जो दूसरोंसे न्यायकी चाह रखते हैं उन्हें आप बेदाग होना चाहिये' इसलिये दक्षिण अफ्रीकाकी अस्पृश्यताके विरुद्ध जो सबसे अच्छी दलील हम तैयार कर सकते हैं, वह है पहले अपने ऐबको दूर कर लेना। तबतकके लिये जो कुछ आराम गोलमेज सभा दिला सके, उसीपर हमें संतोष करना पड़ेगा।

इस सवालका एक दूसरा पहलू भी है। अछूतोंको भी कुछ न कुछ हम लोगोंका और हिन्दुस्तानका ऋण चुकाना पड़ेगा। किन्तु इस दूसरे पहलूका विचार किसी दूसरे ही लेखमें करना होगा।

हिन्दी-नवजीवन
३० दिसबर, १९२६

❀

अस्पृश्यताकी शुद्धियां

भाई गोविन्ददास जानवराम (गोविंद भाई ढेड़ जातीके है) ने एक पत्र भेजा है। उनका मतलब यह है कि अगर अस्पृश्यताको दूर करना है तो फिर अस्पृश्योंके लिये अलग स्कूल, मन्दिर, कुएं क्यों बनें? यह दलील यों ही छोड देने लायक तो है ही नहीं। दक्षिण अफ्रीकामें ऐसा ही सवाल उठा था और अब भी उठता है। वहां हिन्दुस्तानियोंके लिये अलग स्कूल खोलनेका अर्थ है उनकी अस्पृश्यताकी आयु बढ़ाना। यह दलील खुद मैंने की है। जिसके पांवमें बिवाय फटती है वही बिवायका दर्द समझता है। इस न्यायसे भाई गोविंदजीका दुःख मैं समझ सकता हूं।

किंतु जहां मैंने देखा कि जो चीज है ही, उसकी हस्तीको न मानकर चलना ही मूर्खता है वहां मैंने भेदका अस्तित्व जान समझकर ही अपना काम किया है। इसलिये वहां मैंने अलग स्कूलोंकी बात स्वीकार कर ली। वहां रेलगाड़ियोंमें हिन्दुस्तानियोंके लिये दूसरे और पहले दर्जेके डब्बे अलग रखनेकी बात भी स्वीकार कर ली। जैसे गोविंद भाई उसका विरोध करते हैं वैसे मैंने भी किया। किंतु जहां जातिके अस्तित्व ही मिट जानेका भय पैदा हुआ, वहां मैंने वैसे भेदको स्वीकार किया जो भेदमें भी हलकासे हलका भेद हो। जैसा कि पहले हिन्दुस्तानी लोग केवल तीसरे दर्जेमें ही मुसाफिरी कर सकते थे। आंदोलनके अंतमें उनके लिये दूसरे और पहले दर्जेके भी टिकट काटनेका हुक्म हुआ। किंतु उसके साथ ही हिन्दुस्तानियोंके लिये पहले-दूसरे दर्जेकी गाड़ियां रखनेको ठहरा। विरोध किया किंतु अंतमें हमने इतना भेद स्वीकार कर लिया। राजसत्ता सुभीता कर दे सकती है किंतु हमारे साथ बैठनेपर दूसरोंको लाचार क्यों कर सकती है?

ऐसी विचारसरणीके अनुसार ऐसा निश्चय ऊपर आया कि जबतक अंत्यज सामान्य मंदिरोंका उपयोग न कर सकें तबतक उन्हे मंदिर इत्यादिका उपयोग ही न मिले, इसकी अपेक्षा यही अच्छा है कि उनके लिये अलग संस्थायें बनें, और उन्हें उनका उपयोग मिले। वातावरणमेंसे तो अब अस्पृश्यता चली गई है तो भी बहुत लोग अभी उसे अपने व्यवहारसे दूर करनेको तैयार नहीं हुए है जबतक यह स्थिति है तबतक अंत्यजोंके जो मित्र हैं वे क्या करे? उनकी शुद्धिका सबूत किस प्रकार देवे? जबाब यही होगा कि अंत्यजोंके लिये मंदिर, इत्यादि बनाकर।

भाई गोविदजी कहते है कि ऐसे मंदिर वगैरह भले ही बने किंतु 'अंत्यजोंके लिये' यह विशेषण उन्हें क्यों दिया जाय? ऐसे विशेषण कोई देता ही नहीं है। जो मंदिर इधर हालमें बन रहे हैं, उनका उपयोग उनके बनानेवाले और अंत्यजोंके

दूसरे मित्र तो करते ही हैं। इस दृष्टिसे अंत्यजोंके निमित्त बनायी गई संस्थायें सार्वजनिक है। किंतु उसपर पहला हक है अंत्यजोंका। उनके उपयोगमें पहला विचार अंत्यजोंका होता है। और सबसे पहले उनकी सुविधा देखी जाती है।

अगर भाई गोविंदजी जैसे अंत्यज भाइयोंका मै दुःख समझ सका हूं तो मै उन्हें कहता हूं कि वे माने कि मंदिर वगैरह बनानेका आंदोलन पवित्र, स्तुत्य और अंत्यजोंको लाभदायी है।

हिन्दी–नवजीवन
२० जनवरी, १९२७

❀

अस्पृश्यता, स्त्रियाँ और स्वराज्य

श्रीमती सुहासिनी देवीका पत्र मै खुशीसे छापता हूं। महासभाके बहुज्ञ सभापति अपना बचाव करनेमें आप समर्थ है परंतु मुझे ऐसा ख्याल होता है कि इस बहिनने अपने थोड़ेसे अनुभवपरसे ही बहुतसे अधिक व्यापक नियम निकाले हैं। अछूतोद्धारके आंदोलनकी बड़ी प्रगति सिद्ध करनेके लिए आंकड़ोंकी जरूरत नहीं है। यह दीवार हर जगह टूट रही है। हर सूबेमें ऊँची श्रेणीके लोग दलित जातिके लड़कोंकी सेवाके लिये स्कूल, छात्रालय आदि चलाकर उनकी सेवा करते हुए मिलते है। सभापति महोदयने अपने भाषणमें जब इसका जिक्र किया तब स्पष्टतः यही बात उनके ध्यानमें थी। खैर मगर जो कुछ अभी तक हो सका है, उससे लाख गुना और करना बाकी है। स्त्रियोंके दुराग्रहको दूर करना सबसे कठिन काम है। सच पूछो तो यह स्त्री शिक्षाका सवाल है। और इस विषयमें यह सवाल केवल लड़कियोंकी ही शिक्षाका नहीं है बल्कि विवाहिता स्त्रियोंकी शिक्षाका है। इसलिये मैंने यह बात बार-बार सुझाई है कि हर एक देश-भक्त पतिको अपनी पत्नीका शिक्षक बन जाना चाहिये और उसे अपनी दूसरी कम नसीब बहनोंमें काम करनेके लायक बनाना चाहिये। मैंने इस सलाहके-रहस्योंकी ओर भी ध्यान खींचा है। पत्नीको केवल विलास–सामग्री न समझकर राष्ट्रोत्थानके काममें अपना सहकारी समझना भी उन्हींमेंसे एक है। सीताके बिना हमें राम नहीं मिल सकते। वनवास और साधनाके भयंकर वर्षोंमें रामकी स्नेहमयी छायाके तले सीताकी सच्ची शिक्षा हुई। खैर अपने ही देशमें हम सब लोग देश-निकलेसे है और यथा शक्ति और यथावसर हमें राम सीताका ही अनुकरण करनेकी जरूरत है।

इस विषयमें श्रीमती मुथुलक्ष्मीरेड्डीका इस ओर ध्यान दिलाये बिना मैं नहीं रह सकता कि श्रीयुत ऐयंगरने अस्पृश्यताका बंधन सिर्फ अपने ही लिये तोड़ा है बल्कि अपने साथ वे अपनी स्त्री और परिवारको भी ले चल सके हैं। यही सुधार दस वर्ष पहले स्वयं उन्हींको असंभव मालूम होता।

सहभोज और अस्पृश्यताके सवाल अलग ही अलग रखने होंगे। खाने पीनेके मुआमलेमें अलग अलग रहनेकी नीति सारे हिन्दू समाजमें घुसी हुई है। अब अस्पृश्यतासे और इसमें अंतर न रखनेसे अछूतोद्धारके आंदोलनकी गति रुकेगी। किसी दूसरे मनुष्यके बराबर ही, उन्हीं शर्तोंपर अछूतोंके भी सामाजिक अधिकार पानेमें जो बाधाएँ हैं उन्हें दूर करना इस आंदोलनका उद्देश्य है।

स्वराज्यके विषयमें भी कुछ अस्पष्ट ज्ञान है। स्वराज्य शब्दके कई अर्थ हैं। जब श्रीयुत ऐयंगर कहते हैं कि अस्पृश्यताके दूर होनेसे स्वराज्यका कोई संबंध नहीं है तो मैं मानता हूँ कि उनका मतलब है कि अस्पृश्यताका रहना शासनाधिकार की प्रगतिका बाधक नहीं हो सकता। द्वैतशासन या धारा-सभाओंको अधिक अधिकार दिए जानेके सवालोंसे तो निश्चय ही इनका कुछ लेना देना नहीं है। अस्पृश्यताको दूर करना होगा। सामाजिक प्रश्न है जिसे हिन्दुओंको हल करना इसके कारण हिन्दुओंको और साथ-साथ मुसलमानों और पारसियोंको भी सैनिक खर्चका नियंत्रण करने या विनिमय दर ठीक करने या शराबकी बिक्री कतई बंद करने, या स्वदेशी उद्योगोंकी रक्षाके लिये विदेशी मालपर चुंगी लगानेके अधिकार क्यों न मिले? सच्चा जीवन्त स्वराज्य तो एक मुश्किल सवाल है। साधारणतः लोगोंके दिलोंमें स्वराज्यके साथ जिस स्वतंत्रताकी भावना मिली हुई है वह तो न सिर्फ अछूतोद्धार और भिन्न-भिन्न संप्रदायोंमें हार्दिक ऐक्यके बिना ही असंभव है बल्कि और भी कई दूसरे सहज ही दिखाई पड़नेवाले सामाजिक दोषोंको भी दूर किये बिना असंभव है। इस व्यापक शब्द स्वराज्यका अर्थ हमलोगोंने समझ लिया है, निरंतर आंतरिक विकास। और जबतक इस विकासके शुभ पौधेको पक्षपात मनोविकार और अंध-विश्वासकी दीवारें घेरी हुई हैं, वह उग नहीं सकता।

हिन्दी-नवजीवन
१० मार्च, १९२७

❀

अस्पृश्यता और अविवेक

महाड़के एक संवाददाता लिखते है—

"आपको यह लिखते हुए मुझे बहुत दुःख होता है कि गत २० मार्चको महाडमें स्पृश्य और अस्पृश्य जातियोके बीच एक दंगा हो गया। घटना यो हुई। गत १९ और २० मार्चको कुलावा जिलेकी दलित जातियोंकी एक परिषद थी। परिषद बडी सफल रही। पर जब अंतमें परिषद समाप्त हुई और लोग इधर-उधर जाने लगे, तब बबईके समाज सेवा-सघके कार्यकर्त्ता श्री चित्रेने लोगोसे जो प्यासे थे कहा कि चू कि धूप बहुत तेज है, सामाजिक जलाशयपर जाकर अपनी प्यास बुझा सकते हैं। पर वहां कुछ ऐसे लोग थे जो इन लोगोंको वहां जानेसे मना करने लगे। तब डाक्टर अम्बेडकरने लोगोको जलाशय पर ले जानेका निश्चय कर लिया। स्वय पुलिस इन्स्पेक्टरको भी इस बातकी कल्पना नहीं थी कि बात इतनी बढ़ जायगी। अतः भीड़को रोकनेके बदले वे भी उसके साथ हो लिये। जलाशय ब्राह्मण मुहल्लेके बीचमें था। किसीको पता नहीं था कि अस्पृश्योकी यह भीड तालावपर जा रही है। इसलिये वहां किसीने आपत्ति नहीं की। सैकड़ो अस्पृश्य तालावमें उतरे और 'हर हर महादेव' का घोष करते हुए उन्होने अपनी प्यासको बुझाया। तबतक स्पृश्य जातियोके लोग भी वहां आ पहुँचे। और लाल-लाल आँखे करके यह देखने लगे। तृषा शात होते ही अत्यज तो अपने सभामडपमें भोजनके लिये चल दिये। पर एक घटेके भीतर ही "गुरव" "गुरव" की चिल्लाहटसे सारा गांव खडबड़ा उठा। लोगोसे किसीने कह दिया कि अंत्यज वीरेश्वरकी मदिरमें घुसनेका विचार कर रहे हैं। यह सरासर झूठी अफवाह थी। पर बातकी बातमें क्रोधसे जलते हुए स्पृश्य लोगोका झुंड हाथोमें लाठियाँ लेकर मदिरमें इकठ्टा हो गया। बिचारे अंत्यजोके दिमागमें तो मंदिरमें जानेकी बात भी नहीं आयी थी। जब मंदिरवाले लोगोंने देखा कि अंत्यज मदिरमें नहीं घुस रहे है, तो वे मारे क्रोधके पागलसे हो गये। वे बाजारमें गये और राहमें जहां कही उन्हें कोई अंत्यज मिला उसे पीटना शुरू कर दिया। यह मारपीट इतनी देरसे हो रही थी पर एक भी अंत्यजने इसका प्रतिकार नही किया। कुछ स्पृश्य जातिके लोगोने जो अस्पृश्योसे सहानुभूति रखते थे, उन्हे बचानेकी कोशिश की। पर वह झुंड तो पागल हो गया था। चमार और मोचियोके झोपडीमें घुस-घुस कर उन्हें भी इन लोगोने बेरहम पीटा। बेचारे अत्यज रोते-चिल्लाते सहायता मागते हुए इधर-उधर दौडने लगे। पर एक भी दुकानदारने उन्हें आश्रय नहीं दिया। सभामडपमें कोई १५०० अस्पृश्य थे। और स्पृश्य जातिके कुछ लोग उन्हें अपने भाइयोकी सहायताके लिये न दौड जानेके कारण धिक्कार भी रहे थे। यदि वे सचमुच मैदानमें हो जाते तो वह एक महा भयंकर काड हो जाता और हिन्दू धर्मपर एक कलकका टीका लग जाता। डा० अम्बेडकरने अपनी सलाहके समर्थनमें यह कहा कि बबईकी धारा सभामें इस विषयमें प्रस्ताव पास हो चुका है, और यह भी बताया कि महाड़की म्युनिस्पल कमेटी इस विषयमें अपना मत जाहिर कर चुकी है कि अंत्यज सार्वजनिक तालाबो तथा कुओसे पानी ले सकते है।"

इस कठिन प्रसंगपर अस्पृश्य कहे जानेवाले भाइयोंने जिस संयमसे काम लिया वह सचमुच अनुकरणीय है। और उनके इस व्यवहारने हमें इस जटिल सवालको हल करनेमें एक कदम आगे बढ़ा दिया है। यदि उन्होंने इसका बदला चुका लिया होता तो दोषारोपणका काम शायद कठिन हो जाता। पर इन परिस्थितियोंमें तो सारा दोष उन स्पृश्य जातियोंके सिर पर ही है। पशु-बल अस्पृश्यताकी रक्षा नहीं कर सकता। इससे तो उलटे अस्पृश्योंके पक्षमें लोक हृदय हो जायगा। यह समयका प्रताप है कि कमसे कम कुछ लोग तो ऐसे निकले जो गरीब अंत्यजोंका पक्ष लेकर उनकी रक्षाके लिये प्रयत्नशील हुए। क्या ही अच्छा होता यदि महाड़में इससे कहीं अधिक लोग अस्पृश्योंके अभिभावक होते। ऐसे मौकोंपर मूक सहानुभूति अधिक उपयोगी नहीं होती। प्रत्येक हिन्दूको, जो अस्पृश्यता निवारणको एक महत्वपूर्ण कर्तव्य समझता है, चाहिए कि वह ऐसे मौकों पर खुलेआम दीन-दलितोंका पक्षकर उनके प्रति अपनी सहानुभूतिको व्यक्त करे परवाह नहीं यदि यह पुण्य कार्य करते हुए उसका सिर भी फूट जाय। डाक्टर अम्बेडकरने अंत्यजोंको तालाबपर पानी पीनेका सलाह देकर, बंबई धारासभाके प्रस्तावको तथा महाड़ म्युनिस्पल कमेटीके मतको कार्यमें परिणत करके उसे जो कसौटीपर चढाया, यह मेरी मतिमें तो बिल्कुल उचित ही जान पड़ता है। हिन्दू सभा जैसी इन सुधारोंमें दिलचस्पी लेनेवाली संस्थाओंको ऐसे एक भी मौकेको बेकाम नहीं जाने देना चाहिए। मेरे संवाददाताकी लिखी बातोंकी वे जांच-पड़ताल करें, और यदि वे ठीक हों तो वे स्पृश्य जातिके कार्योंकी निन्दा करें। अस्पृश्यता जैसी बुराईको जड़से उखाड़नेके लिए सुशिक्षित लोकमतके समान शक्तिशाली कोई उपाय नहीं है।

हिन्दी-नवजीवन

२८ अप्रैल, १९२७

घोर अमानुषता

पाठक अन्यत्र एक डाक्टरकी घोर अमानुषताकी हाल पढ़ेंगे जो उसने काठियावाड़के एक गाँवमें रहनेवाले अंत्यजकी पत्नीके प्रति दिखाई है। श्रीयुत अमृतलाल ठक्करने, जिन्होंने इस मामलेकी तफसील 'नवजीवन'मे प्रकाशनार्थ भेजी थी, उस स्थान और व्यक्तियोंके नाम इस ख्यालसे जानबूझ कर छोड़ दिये हैं कि प्रकट करनेसे कहीं वह अंत्यज स्कूल-मास्टर उस डाक्टरके द्वारा अधिक न सताया जाय। पर मैं तो चाहता हूँ कि नाम प्रकाशित कर दिये जाने चाहिये। ऐसा समय भी आवेगा जब हमें अंत्यजोंको अधिक कष्ट और अत्याचार सहनेके लिये उत्साहित करना होगा। उन्हें तो पहले ही से इतने अधिक कष्ट हैं कि कुछ और कष्ट बढ़ जावें तो उनके लिये वे असह्य नहीं होंगे। ऐसे अत्याचारोंपर लोकमतको जागृत नहीं किया जा सकता, जिनको साबित नहीं किया जा सकता हो, या जिनकी तहतक हम नहीं पहुँच सकते हों। मैं बंबईकी मेडिकल कौंसिलके नियम तो नहीं जानता, पर अन्य स्थानोंपर ऐसे पेशावाज डाक्टरका नाम, जो फीस लेनेसे पहले मरीजकी सुश्रूषा करनेसे इन्कार करता है, कौंसिलके सदस्योंकी फिहरिस्तसे हटा लिया जाता है, परंतु मरीजोंका ठीक-ठीक तरहसे इलाज करना एक डाक्टर या वैद्यका सबसे पहला कर्तव्य है। परंतु यदि घटनाका वर्णन ठीक है तो सबसे घोर अमानुषता तो यह है कि डाक्टरने अंत्यजोंके मुहल्लेमें जाने, मरीजकी जाँच करने और खुद थरमामेटर लगाने तकसे इन्कार कर दिया। सचमुच यदि अस्पृश्यताका सिद्धांत किसी परिस्थितिमें संसारमें लागू करना ठीक हो तो वह अपने पेशेको कलंकित करनेवाले इस मनुष्यको निःसंदेह लगाया जा सकता है। पर मैं आशा करता हूँ कि श्री ठक्करके संवाददाताने कहीं अत्युक्ति कर दी होगी। और यदि यह घटना पूरी तरह सत्य हो, हो मैं यह आशा करता हूँ कि वह डाक्टर स्वयं आगे बढ़कर उस समाजकी सेवा द्वारा अपनी गलतीकी भरपाई कर देगा जिसके साथ उसने अपनी अमानुषता द्वारा ऐसा घोर अत्याचार किया है।

हिन्दी-नवजीवन
५ मई, १९२७

❀

पढ़िये, सोचिये और रोइये

काठियावाड़के एक गांवमें एक अन्त्यजशाला है। उसके शिक्षक भाई…… संस्कारी, सेवाभाववाले और जन्मतः जुलाहे (अर्थात् ढेड) हैं। गायकवाड़ सरकारकी अनिवार्य शिक्षा नीतिकी योजनाके अनुसार वे पढ़े हैं और अपनी जातिकी उन्नतिके लिये जो कुछ सेवा उनसे बन पड़ती है कर रहे हैं। वे सुघड़ हैं, सुविचारवाले हैं, और उनकी रहन-सहन भी ऐसी है जिससे उन्हें सहसा कोई ढेढ़ नहीं कह सकता। तथापि पुराणप्रिय काठियावाड़के एक छोटेसे गांवमें रहकर अपनी जातिके बच्चोंको पढ़ानेका सौभाग्य या दुर्भाग्य उन्हें प्राप्त हुआ है। इसलिये वहांका प्रत्येक आदमी उन्हें ढेढ़ और अस्पृश्य समझता है। परंतु वे तो अपना काम इसी तरह चुपचाप करते जा रहे हैं। परंतु उस असह्य स्थितिमें रहने पर भी कभी-कभी मनुष्यका रोष, कष्ट और दुःख शब्दोंमें प्रकट हो ही जाता है। इन भाईके नीचेवाले पत्रसे यह बात साफ-साफ प्रकट होगी। इस पत्रके प्रत्येक छोटे वाक्यमें करुणा कूट-कूट कर भरी है। गांव, डाक्टर, लेखक, सज्जन नगरसेठ, और अन्य 'गरासिया' भाईके नाम जान-बूझकर इसलिये छोड़ दिये हैं कि संभव है, उनके मालूम हो जाने पर लेखक शिक्षकको कोई नुकसान पहुंचावे।

"नमस्कारके साथ निवेदन है कि ता० ४—५—२० को मेरी धर्मपत्नी प्रसूत हुई। ता० ६—४—२६ के दोपहरके बाद वह बहुत बीमार हो गई। कई जुलाब हुए और जबान भी बंद हो गई। सांस बढ़ गया, छाती सूज गई और पसलियाँ भी दुखने लगी। इसलिये मैं यहाँके मिहरबान डाक्टर …… को बुलानेके लिए गया। परंतु उन्होंने कहा कि मैं ढेढ़वाड़ेमें नहीं जाऊँगा। ढेडको छूकर उसकी जांच नहीं करूँगा। अंतमें नगरसेठ और गरासिया दरबारको लेकर मैं डाक्टर साहबके पास गया। दो नगरसेठसे फीस देना कुबूल कराया, तब उन्होंने इस शर्तपर आना कुबूल किया कि मरीजको ढेढ़वाड़ेसे बाहर लाओ तो चलता हूँ। दो दिनकी प्रसूता जच्चाको ढेढ़वाड़ेसे बाहर लाया गया। तब डाक्टर साहबने एक मुसलमानको थर्मामिटर दिया और उन्होंने मुझे। मैंने उसे लेकर अपनी पत्नीकी बगलमें रक्खा और निकालकर फिर उस मुसलमानको दे दिया। मुसलमानने पुनः डॉक्टर साहबको लौटा दिया। उन्होने अंधेरेमें दूरसे, बिना देखे ही कह दिया कि इसे न्यूमोनिया हो गया है। रातके आठ बजे होंगे। डाक्टर साहब गये, हम लोग दवा लाये, अलसीके लेपका डिब्बा मै दुकानसे खरीदकर लाया। दवाकर रहे हैं। डॉक्टर साहबने शरीरकी जांच नहीं की, दूरसे देखकर चले गये। दो रुपए फीसके दे दिये। ऐसी गंभीर बीमारी है।…… से मेरी स्त्रीके कुशल समाचार

लेनेके लिये आये हैं। परमात्मा करेगा सो होगा। अब क्या करना चाहिये, कृपया लिखें।

आपका नम्र सेवक

.. . .”

(२)

“विशेप यह है कि चिराग गुल हो गया। मेरी स्त्री आज दोपहरके दो बजे चल बसी।

सेवक

. . ..”

ऊपर उद्धृत किये पत्रपर चर्चा करके दिलके फफोले फोड़ना व्यर्थ है। पढ़े-लिखे डाक्टर एक मुसलमान भाईको मध्यस्थ बना लेनेसे कांच और पारेके थर्मामिटरको शुद्ध समझने लग जाते हैं, और दो दिनकी जच्चाको कुत्ते-बिल्लीसे भी बुरी और हीन समझकर उसकी जांच करनेसे इन्कार करते हैं? ऐसे निर्दय डॉक्टरको क्या कहा जाय? और जो समाज ऐसे निंद्य वर्तावको वर्दाश्त कर ले उसे भी क्या कहा जाय? शोक! शोक!!

हिन्दी-नवजीवन
५ मई, १९२७

❀

हमारा कलंक

श्रीयुत एस० डी० नाडकरनी एक साफ-साफ लिखनेवाले आदमी हैं और अछूत कहे जानेवाले भारतीयोंके लिये उनका हृदय भी बड़ा विशाल है। मैं अन्यत्र उनका वह पत्र ज्योंका त्यों प्रकाशित करता हूं, जिसमें उन्होंने दलित जातियोंके विपयमें अपने हार्दिक भावोंको खोलकर रख दिया है। और उन्होंने स्पृश्य जातियोंकी निंदाका जो घड़ा मेरे सिरपर डालकर खाली किया सो ठीक ही किया है। पर मेरी बातको छोड़ दें तो भी उनके गहरे दुःखने उनकी तर्क बुद्धिपर जो कि प्रायः जागृति रहती है, परदा-सा डाल दिया है। किंतु यद्यपि अंत्यजोंकी दशा बहुत भयंकर है तथापि मेरा ख्याल है कि न तो बंबईकी महासमितिकी बैठकमें और न दिल्लीकी एकता परिषद्में उसको स्थान मिल सकता था जब कि सिर्फ हिन्दू-मुसलिम

पत्रके अंतमें एक भयंकर वाक्य है। "इन लोगोंको उस दिनकी राह न देखने दीजिये जब दलित-जाति-सभायें अथवा स्पृश्य और अस्पृश्योंके उपद्रवोंको उनकी आँखे खोलकर अस्पृश्योंकी आवश्यकताओंको उन्हें दिखाना पड़े।" इस वाक्यके अंदर जो शक्ति है उसको माननेसे इन्कार करना असंभव है। यह वाक्य मुझे उस वातचीतकी याद दिला रहा है, जो गोखलेकी मृत्युके पहले मेरे और स्वर्गीय हरिनारायण आप्टेके बीच थी। पूनामें भारत-सेवक-समितिके कार्यालयमें यह वातचीत हो रही थी। कुछ मिशनरियोंकी भांति दलित जातियोंमें आंदोलन करके उनमें असंतोष उत्पन्न करनेके वजाय, मैं यह वता रहा था कि ऊँची कही जानेवाली जातियोंमें काम करना अधिक अच्छा है। काम मेरे लिये नया था। श्री हरिनारायण आपटेकी भांति मैंने अंत्यजोंके उस दुःख-सागरका दर्शन और अनुभव नहीं किया था जिनमें कि वे डूब रहे थे। ऊँची जातियों द्वारा दलित जातियोंपर जो अत्याचार हो रहे थे, उनको देखकर इस सुधारकके हृदयमें आग धधक रही थी। मैंने तत्त्वज्ञानीकी सी बुद्धि दिखाते हुए इस ज्वलंत सुधारकसे पूछा "क्या आप हमारे खिलाफ इन दलित जातियोंको उकसाना पसंद करेंगे ?" उन्होंने गरम होकर एकदम जवाब दिया "जरूर अगर वे मेरी सुने तो मैं आज ही उनको हम ऊँची जातियोंके खिलाफ़ वलवा करनेके लिये उकसा दूँ, और उन्हें हम लोगोंसे वे चीजे वलपूर्वक छीननेके लिये कहूँ, जो कि हम उन्हे अपना कर्तव्य समझकर देनेसे इन्कार करते हैं।"

इस सुधारकके क्षेत्रमें अव वहुत-कुछ काम हो चुका है, किंतु वह काम भी

बेहद है, जो हमें अभी करना वाकी है। कितने ही सुधार खून-खच्चरके वाद हुए हैं। आखिर दलित मनुष्योंकी सहन-शक्तिकी सीमा होती है, जिसके पार होते ही वे कानूनको अपने हाथोंमें लेकर मारे दुःख और क्रोधके पागल हो अत्याचारीका काम तमाम कर डालते हैं और मौका मिलते ही वे सब गलतियाँ करते हैं जो उनके अत्याचारियोंने की थीं। इसलिये यद्यपि मैं आशा करता हूँ कि मैं इस समय उसी रोषको अनुभव कर रहा हू जो कि उस समय श्री हरिनारायण आपटेके दिलमें भरा हुआ था, मुझे इस श्रद्धापूर्वक काम करना चाहिये कि ऊँची कही जानेवाली जातियाँ अव भी, जवतक समय है, अपने कदम वापिस ले लेंगी, और दलित जातियोंके साथ वह न्याय करेंगी जो कि उन्हें अवसे कहीं पहले उनके साथ करना चाहिये था। मुझे इस श्रद्धासे भी काम करना चाहिये कि यदि ऊँची जातियाँ अपने किये का कहीं पश्चाताप न करें तो अपने अन्यायकर्ताओंके विरुद्ध वलवा करनेके वजाय अछूत कोई दूसरा अच्छा-सा रास्ता ढूंढ निकालेंगे। मुझे इस आशासे भी अपना काम जारी रखना चाहिये कि ये दलित जातियाँ आत्म-शुद्धि और कष्ट-सहन द्वारा अपनी ऊँची आत्मा और ऊँचे हिन्दुत्वका परिचय देकर मनुष्य और परमात्माकी नजरमें अपने आपको तथा हिन्दू-धर्मको इन लज्जित करनेवालोंकी तुलनामें अधिक ऊँचा सिद्ध कर दिखावेंगे। तबतक प्रत्येक, हिन्दू जिसके हृदयमें श्री नाडकरनीके समान अंत्यजोंके लिये प्रेम है, उनका साथ देकर तथा उनके दुःखोंमें और संकटोंमें भाग लेकर अपने आपको 'अस्पृश्य' वना ले सकते हैं।

हिन्दी-नवजीवन
३० जून, १९२७

❀

अस्पृश्यता-निवारण

श्रीयुत एस० डी० नाडकरनी कारवारसे १० सितम्बरके अपने पत्रमें लिखते हैं—

"पिछले हफ्ते मैं और मेरे भाईने कुछ नवयुवकोंकी सहायतासे वहुत-सी अनसोची कठिनाइयोंके होते हुए भी 'खरा सार्वजनिक गणेशोत्सव' (यानी जिसमें सब कोई शामिल हो सकें) का प्रवन्ध किया था। इस नामका अर्थ यह है कि इसमें हमने अछूतोंको भी शामिल किया था। इसमें और सब हिन्दुओंने भी हाथ बँटाया था। जुलूसके अलावा हमने पूजा, भजन, आरती, कीर्त्तन, पुराणपाठ और अंतमें इसी अवसरके लिए खास-तौरपर लिखे गए नाटकका प्रवन्ध किया गया था जो इस बीच दो बार खेला गया। इस नाटकका आधार हमारे डिस्ट्रिक्ट बोर्डके अछूत सदस्यका सच्चा अनुभव है। एक बार वे एक दूसरे मुसलमान सदस्यके साथ

"पूनेके मित्रे शास्त्री (महाराष्ट्र-हिन्दू-महासभाके सभापति) की सहायतासे जो स्थान इसी मौकेके लिए चुनाए गए थे, हमने हिन्दू-महासभाकी स्थानिक शाखा खोली। इसका प्रधान उद्देश्य है अस्पृश्यता निवारण करना और हमारे सार्वजनिक मंदिरोंमें अछूतोंको प्रवेशका अधिकार दिलाना।"

जैसे कि श्रीयुत नाडकरनी उन्हें 'मुंह न छुओ' वाला कहते हैं, उन अपने-आप रूढ़िपंथी बने हुए हिन्दुओंका, सुधारकोंके एक निर्दोष नाटकका प्रबंध करने पर अछूतोंके उसमें आनेका विरोध करना और विरोध करनेका ढंग, उनके या उनके हिन्दू-धर्मके लिए प्रशंसाकी बात नहीं है। उससे यह भी जाहिर होता है कि धर्मके पवित्र नामपर आँख मूँदकर रूढ़ियोंका कहाँतक पालन किया जा सकता है। मैं श्रीयुत नाडकरनी और उनके मित्रोंको सफलतापूर्वक अछूतोंको अपने जुलूसमें शामिल करके नाटकके खेलनेमें दाखिल करने पर साधुवाद देता हूँ। अस्पृश्यताको दूर करनेका एक मात्र रास्ता यही है कि हर एक सुधारक ऐसा कोई न न कोई, चाहे कितना ही छोटा क्यों न होवे, रचनात्मक काम करे और नम्रताके साथ दृढ़ताको मिलाकर वहम और पक्षपातकी दुहरी दीवारोंको तोड़े। मैं आशा करता हूँ कि कारवारके सुधारकोंको अछूतोंको मंदिरोंमें दाखिल करनेके प्रयत्न सफलता मिलेगी।

हिन्दी-नवजीवन
१० नवम्बर, १९२७

❀

हमारा और उनका कलंक

उड़ीसाकी मुसाफिरी बहुत दिनोंसे मुल्तवी चली आती थी और जब वह आयी भी तो मेरे संताप और जिल्लतको बेहद बढा देनेके लिए ही। नजदीकसे नजदीकके रेलवे स्टेशनसे ३१ मील दूर बोलगढ़में मैं दीनबन्धु ऐन्ड्रयूजके साथ

वठा बातें कर रहा था। इसी समय सिर्फ एक मैली-सी लंगोटी पहने, कमर झुकाये, एक आदमी झुकता हुआ मेरे सामने आया। उसने जमीनपरसे एक तिनका उठाकर मुँहमें डाल लिया, और मेरे आगे साष्टांग लोट गया, फिर उठकर प्रणाम किया, तिनका निकालकर बालमें रख लिया और जाने लगा। यह दृश्य देखते हुए मै तकलीफसे ऐंठ रहा था। यह खत्म होते ही मैंने किसी दुभाषिएको पुकारा और इस भाईको बुलाकर बातें करने लगा। वह बेचारा अछूत था। बोलगढसे छः मीलपर रहता था। बोलगढमें लकड़ी बेचने आया था। मेरे पूछने पर कि मुँहमें तिनका क्यों लिया था उसने कहा कि 'आपका आदर करनेके लिए।' शर्मसे मैंने सिर झुका लिया। इस 'आदर' की कीमत मुझे बहुत भारी, असह्य जान पड़ी। मेरी हिन्दू-भावनाको गहरी चोट लगी थी। मैंने कहा, "मुझे कुछ दोगे" ? वह बेचारा एक पैसेके लिए कमर टटोलने लगा। मैंने कहा, "मुझे तुम्हारे पैसे नहीं चाहिए, पर मै उससे भी अच्छी चीज माँगता हूँ।" उसने कहा, "दूँगा"। मैंने उससे पूछ लिया था कि वह शराब पीता था, मुरदार मांस खाता था—बल्कि यह तो रिवाज ही था।

"मै तुमसे यह माँगता हूँ कि तुम जबान दो कि दुनियाँमे किसी आदमीके लिए आगेसे मुँहमें तिनका नहीं लूंगा, यह तो आदमीके लायक काम नहीं है, फिर कभी शराब नहीं पाऊँगा, क्योंकि वह आदमीको पशु बना देती हैं, मुरदार मांस नहीं खाऊँगा, क्योंकि यह हिन्दू-धर्मके विरुद्ध है और कभी कोई सभ्य आदमी मुरदार मांस नहीं खायगा।"

उस गरीबने जवाब दिया, "मगर मै शराब न पीऊँ और मुरदार मांस न खाऊँ तो बिरादरीवाले मुझे जातिसे निकाल देंगे।"

"तब अजात होनेकी तकलीफ सहो और जरूरत पड़े तो गाँव छोड दो।"

इस पददलित गरीब आदमीने वचन दिया। अगर वह अपनी बात पर कायम रह गया तो उसकी यह भेंट, मेरे धनीसे धनी देशवासियोंके दिये धनसे अधिक बहुमूल्य होगी।

यह अस्पृश्यता हमारा सबसे बड़ा कलंक है। इसकी जलालत दिनों-दिन बढ़ता जाती है।

मगर यह अविस्मरणीय घटना तो उस बड़े भारी शर्म और दुःखका एक अंश भर थी। १९१६ में चम्पारणके बाद मैने फिर कभी वह मृत-शान्ति नहीं देखी जो बाणपुरसे इस उड़ीसामे प्रवेश कर देखी है। शायद उड़ीसाकी शान्ति चम्पारणकी शान्तिसे भी बुरी है। वहाँके रैयतोंके बीच थोड़े ही दिनोंतक रहनेके बाद उनमे उत्साह आ गया था। मगर उड़ीसामें इतनी जल्दी उत्साह आनेमे मुझे

क्या यह सच हो सकता है ?

नयी दिल्ली आर्य-समाजके सभापति लिखते है—

"शिमलाकी पहाडियोमें वाघात रियासत है। इसके राजा पढे–लिखे हिन्दू है। रियासतकी राजधानी सोलनमें है, जो अपनी स्वास्थ्यकर जल-वायुके लिए मशहूर है। राज्यकी आबादी कोई दस हजारकी है। यहा मुख्यतः राजपूत, कानेत, ब्राह्मण ही बसते है। दूसरी जातिया, कोली, चमार वगैरह है जिन्हें नीच समझते है। गोकि कोलियोका गुजर मुख्यत खेतीसे होता है, मगर उन्हें बहुत-सी सामाजिक कठिनाइया झेलनी पडती है। थोडेमें, वे ऊची-जातिके हिन्दूओके गुलाम है। इन्हें अपने हिन्दू-भाइयोके अमानुषिक व्यवहारसे पीड़ित देखकर शिमला, आर्य-समाजने इनकी स्थिति ऊँची करनेके लिए इन्हें अपनाया, और चूकि ये वैश्यका कर्म, खेती, करते है इन्हें यज्ञोपवीत दिया। यज्ञोपवीत लेनेके बादसे इन्होने मासा हार, शराब-खोरी जैसी बुरी आदतें छोड दी है और अछूत कहने पर बहुत बुरा मानते है। जान पड़ता है कि इससे ऊँची-जातिके हिन्दुओका पारा चढ गया और उन्होने यज्ञोपवीत लेनेके इनके अधिकारका विरोध किया। फलतः गत ६ जनवरी, १९२८ को इसका सक्षिप्त विचार स्वयं महाराज साहबने किया और पुरानी रीतियोके बहाने १० कोलियोको ६ महीने कैद और ऊपरसे दो-दो सौ रुपये जुर्मानेकी सजा दे दी। न तो इन अभागोको अपने बचाव करनेका मौका दिया गया, और न वहापर उपस्थित आर्य-समाजके पडितको ही इस मुआमिलेमें आर्य-समाजका दृष्टि-कोण समझानेका अवसर दिया गया। अब खबर है कि यज्ञोपवीत उतारनेके लिए जेलमें उनपर जुल्म किया जा रहा है।"

ऊपरके पत्रमें लिखी बाते तो मुझे अविश्वसनीय-सी जान पड़ती हैं। कोलियोंको किसी तरह अछूत या दलित या व्यथित जाति नहीं गिना जा सकता। अगर वे अपने खेत आप जोतते हैं तो वर्णोंकी परिभाषाके अनुसार उनका जन्म वैश्य-वर्णमें गिना जायगा और उन्हें यज्ञोपवीत पहननेके सभी अधिकार प्राप्त हैं। मगर मान भी लेवे कि उन्हें यज्ञोपवीत पहननेका धार्मिक अधिकार नहीं प्राप्त है, तो भी मै यह सुननेको तो कभी तैयार नहीं था कि किसी रियासतमें कानूनके मुताबिक जनेऊ पहनना गुनाह गिना जायगा। यह भी वैसा ही अकल्पनीय है कि जिन अभागे आदमियोंने सोचा कि हमारा कोई ऐसा धार्मिक संस्कार हो रहा है, जो चाहने लायक हो, या पुण्यधर्म हो, उनके अपना बचाव करने, अपने गवाह तक पेश करनेके अधिकार जाते रहे। अगर सजा और न्यायके नाटककी बाते सच हो तो फिर यह मुझे जानकर कोई ताज्जुब नहीं होगा कि उनके शरीरपरसे जनेऊ जबरन उतार लिए गये हैं। मै आर्य-समाजके सभापतिको आमंत्रण देता हूँ कि वाघात रियासतके विरुद्ध आप अपने लगाये इल्जामोंके समर्थनमें और भी

ब्यौरे लिखे और अगर रियासतके अधिकारी चाहें तो उन्हें भी आमंत्रण देता हूं कि आप इस मुआमलेका अपना बयान भी भेजें, जिसे मैं खुशीसे छापूंगा।

हिन्दी-नवजीवन
२२ मार्च, १९२८

वाघात रियासत और जनेऊ

गत २२ मार्चके 'हिन्दी-नवजीवन'में वाघात रियासतमें कोलियोंके साथ बर्ताव पर, मेरे लेखके बारेमें नयी-दिल्ली आर्य-समाजके सभापति लिखते हैं—

"आपने मुझे वाघात रियासतमें कोलियोंके साथ बर्तावके बारेमें और ब्यौरे लिख भेजनेका जो अवसर दिया है, उससे मुझे बड़ी खुशी हुई है। मुझे इससे भी वैसी ही खुशी हुई है कि आपने रियासतके अधिकारियोंको भी अपनी बात कहनेका मौका दिया है। पता नहीं, वाघात रियासतके अफसरोंके पास आपका साप्ताहिक जाता है या नहीं। इसलिए उनकी सुविधाके लिए मैंने ही उस तारीखके हिन्दी-नवजीवनकी एक प्रति रजिस्ट्री करके भेज दी है। वे चाहें तो भले ही अपने विरुद्ध लगाए इल्जामोंका जवाब देवें।

"जहांतक मुझसे मतलब है, रियासतके साथ अपने पत्र-व्यवहारकी नकल मैं आपके पास भेजता हूं। मेरे सभी पत्रोंके जवाबमें एक पत्र १३ जनवरी १९२८ का आया है। १६ जनवरीके मेरे पत्रका जवाब, बार-बार लिखने पर भी नहीं आया। खैर, राणा साहेबसे मिलनेकी भी कोशिश की गई, मगर फल कुछ भी नहीं हुआ। तब आप ही सोचिए कि अपने लगाए इल्जामोंके सुबूतमें मुझे और क्या कहनेकी जरूरत है? मेरे पहला पत्र लिखनेके बादसे अबतक स्थिति केवल इतनी ही भर बदली है कि कोलियोंको इस शर्तपर जेलसे छोड़ दिया गया है कि अगर उन्होंने फिर जनेऊ पहना तो ५००) रु० जुर्माना देना पड़ेगा। इससे वे बहुत ही डर गये हैं। अब तो वे दूधके जले छाछ भी फूंक-फूंक कर पीते हैं। बाहरकी कोई सलाह उनपर असर नहीं करती।

"आपके देखनेके लिए मैं गत १८ जनवरी, १९२८ के 'ट्रिब्यून' पत्रसे एक कतरन भेजता हूं। उसमें आप देखें कि कोलियोंका एक-मात्र कसूर यही था कि शिमला पहाड़ीमें दलित कही जानेवाली जातियोंके उद्धारके लिए आर्य-समाजके प्रचारके फल-स्वरूप उन्होंने हिन्दू-धर्मके चिन्हके रूपमें जनेऊ पहन लिया था और इस 'शुद्धि'के साथ ही साथ कितनी बुराइयां छोड़ी तथा धार्मिक-जीवन बिताना शुरु कर दिया। अपनी सामाजिक स्थिति सुधारनेकी उनकी ये सभी कोशिशें न सोचनेवाले बावा-पंथी लोग अछूतोंके लिए निषिद्ध बतलाते हैं और इसीलिए उनपर राणासाहेबको भी क्रोध हो आया, गोकि अदालतमें इन गरीबोंने हिन्दू-धर्मके अपने पालन और ज्ञानका खासा परिचय दिया। मुझे उचित-से-अधिक

कड़ुवी भाषा लिखनेकी आदत नहीं है, किन्तु महात्माजी, मैं यह कहता हूँ कि ये संकीर्ण हृदय राजा, महराजा अगर हिन्दू-समाज़मेंसे अस्पृश्यताके अभिशापको दूर करनेके लिए कुछ नहीं कर सकते तो कम से कम उन्हें दलित कही जानेवाली जातियोंके उद्धारके काममें बड़ी और अन्यायपूर्ण बाधाएँ तो नही डालनी चाहिए। मुझे आशा है कि आपके कुछ ओर लिखनेसे सम्भवतः राणासाहेब इस मुआमलेमें अपने फैसलेकी भूल तथा अन्यायको समझ जायें और उन्हें सुधारनेके लिए कुछ करें।"

पत्र-लेखक सभापति महोदय, और कोई नही, दिल्लीके नामी-दानी और कार्यकर्त्ता रायसाहेब लाला गंगाराम है। लाला गंगारामका पत्र पढ़नेपर तो उनके इल्जामोंकी सच्चाईके बारेमे कोई शक रही नही जाता। मैने आशा की थी कि शायद उनके संवाददाताओंने मुआमलेको वढा-चढाकर कहा हो और बाघात रियासतने अछूत कहे जानेवालोका जनेऊ पहनना गुनाह मुकर्रर न किया हो। रियासतके प्रधानमंत्रीके पत्रकी लाला गंगारामकी नकल यह रही—

"१० जनवरी, १९२८ के आपके पत्रके जवाबमें मुझे यह कहना है कि चूँकि इस मुकदमेंमें आर्य-समाज एक पक्ष नही था, इसलिए आपको रिआसतकी ओरसे उस फैसलेकी एक नकल नहीं दी जा सकती।"

मैं यह कहे बिना नहीं रह सकता कि जवाब बहुत ही बुरे ढंगपर लिखा गया है। वह अंग्रेज अफसरोंके संक्षिप्त और एक ही ढरेंके पत्रोंकी बुरी नकल है जो अमूमन जरा टेढ़े सवाल पूछनेवालोंको भेजे जाते हैं। मगर ये महाशय भी साधारणतः प्रतिष्ठा और पदकी इज्जत करते है तथा जवाब देनेसे बचनेके लिए भद्दे तौरपर नयी बाते नहीं पैदा कर लेते हैं। बाघात रियासतके प्रधान-मंत्रीने समाजमें लाला गंगारामकी स्थिति (पदवीको छोड़करके) की उपेक्षा करनेका दुसाहस किया है और उन्हें अपमानित करनेके लिए वैसी बातोंकी कल्पना कर ली है जिनका जिक्र तक लाला गंगारामने अपने पत्रमें नही किया था। क्योंकि न तो उन्होंने फैसलेकी नकल माँगी था और न बिचारे कोलियोंके मुकद्दमेंमें शरीक होनेका ही दावा किया था।

यह मुआमिला दरअसल हिन्दू-महासभाको अपने हाथोंमें लेना चाहिए। मुझे पता नहीं है कि महासभा नामधारी अछूतोका जनेऊ पहना पसन्द करती है या नहीं। भले ही पसन्द करे या नहीं किन्तु पहननेवालोंपर अत्याचार किया जाना तो वह कभी पसन्द नहीं कर सकती। जिस घड़ी यज्ञोपवीत कुछ खास लोगोंका इजारा हो जाता है तथा उस इजारेवालोंको दंड दिया जाता है, उसकी पवित्रता नष्ट हो जाती है। यह पवित्र तब और इसलिए था कि इसे धारण करनेवाले विद्वान् और पवित्र पुरुष होते थे। अगर बाघात रियासतकी जो बात कही जाती है उसका छूत दूसरोंको भी लग गया तो फिर यह अवनति या छुटपनेका चिन्ह हो पड़ेगा।

हिन्दी-नवजीवन
५ अप्रैल, १९२८

अछूतों को याद रखो

इस अंकके निकलनेके दो दिनोंके भीतर राष्ट्रीय-सप्ताह आ जायगा। आत्म-शुद्धिकी क्रियामें, एक समय हम शराब, ताड़ीकी दुकानोंपर पहरा देते थे। कोयम्बटूरकी आदि-द्राविड़-सभाके दिये मानपत्रके निम्नलिखित अंशको पढते समय मेरे मनमें सन १९२१ के उस जमानेकी याद आती है—

"जब राष्ट्रीय-सभाने अस्पृश्यता निवारणको भी अपने मन्तव्योंमे शामिल किया, तब हमें आशा हुई थी कि हमारे समाजके ६ करोड़ (अछूत) हिन्दुओंकी उन्नतिके रास्तेमेंसे सभी रोड़े बातकी बातमें दूर हो जायेंगे। मगर सालके बाद साल बीतते चले गए और इन बातमें हमें आशाकी एक किरण भी नहीं मिली। शायद इससे लाभ इतना ही हुआ है कि दयावन्त सरकारने सामान्य हुक्म निकालकर हमारे लिए सभी सार्वजनिक रास्ते कुएँ और मदरसाएँ खुले कर दीं। मगर पुरानी हालत जरा भी नहीं बदली है। दूसरे हिन्दू हमारी आत्माने भी घृणा करते हैं। हमलोग मनुष्य और राष्ट्रोंके भाग्यनियता परमपिता परमात्माकी पूजा भी मन्दिरोंमें नहीं करने पाते। हमारे लिए गिरजाघरों और मस्जिदोंके दरवाजे हमेशा बराबर खुले हैं और उनके धर्मप्रचारक हमारा स्वागत हमेशा करते हैं। हमारे समाजकी बस्ती, चेरियोंके भीतर हों या उनके निकट शराबकी दूकानें खोलकर हमारे नवयुवकोंको प्रलोभनमें डालती हैं। अगर इन दूकानोंके बदले उद्योगशालाएँ खुल जायें और आबकारी ठीकेदारोंके बदले समाज-सेवक लोग हमपर कृपा दृष्टि डालें तो हमें जरा भी शक नहीं है कि हमारी दशा बातकी बातमें सुधर जावगी इसलिए हम आपसे हार्दिक आग्रह करते हैं कि आप हमारी जातिका सर्वनाशसे रक्षाके लिए हमारी चेरियोंके भीतर या उनके निकट औद्योगिक शालाएँ खुलवानेमें मदद करें।"

राष्ट्रीय-सप्ताहमें हमे यह देखनेकी जरूरत नही है कि सरकारने क्या किया और क्या नही किया है। किन्तु यह सोचना अनिवार्य है कि हमने क्या किया या नहीं किया है। इसमें तो कोई शक ही नही कि गोकि अस्पृश्यताके विरुद्ध लोकमत दिनों-दिन बढता जा रहा है, सार्वजनिक प्रयत्न निर्बल ही है। जबतक हम पुजारियोंको अछूतोंके लिए सार्वजनिक मंदिरके दरवाजे खोलनेके लिए राजी नहीं कर सके हैं, और न एक भी शराब या ताड़ीकी दुकानके बदले औद्योगिक शाला या विश्रामगृह खोल सके है, जहांपर उन्हे उस आगभरी शराबके बदले पौष्टिकपेयक या स्वच्छ परिस्थितिमें स्वास्थ्यकर वस्तुएँ खानेको मिल सके।

हिन्दी-नवजीवन
५ अप्रैल, १९२८

वचन-भंग

पारसाल जब मैं गंजम् जिलेमें ब्रह्मपुरमें गया था, मुझे एक मंदिरमें ले गये थे। उसके बारेमें मुझसे कहा गया था कि वह 'अछूत' कहे जानेवालोंके लिए भी खुला हुआ है। मेरे साथ कुछ 'अछूत' मित्र भी थे। कुछ हफ्ते हुए मेरे पास एक पत्र आया था कि मंदिरके ट्रस्टी लोगोंने अछूतोंका प्रवेश मना कर दिया है। मैं इसपर विश्वास करनेमें हिचकता था। इसलिए मैंने पत्र लिखकर पुछवाया, जिसका जवाब यह आया है—

"विगत २२ मार्चके आपके पत्रके जवाबमें यह लिखना है कि 'अछूत' कहे जानेवाले लोग तो अब भी ब्रह्मपुरके रघुनाथमंदिरमें नहीं जाने पाते। श्रीयुक्त जगनायकरुली नायडू, जिला अदालत गंजम्के भूतपूर्व नाजिर, जिन्होंने पारसाल आपको मंदिरमें निमंत्रित किया था, मंदिरके ट्रस्टी हैं। वे ही अब मन्दिरमें अछूतोंके प्रवेशमें पहलेसे भी अधिक बाधाएँ डाल रहे हैं। अगर्चे कि पतित पावन समाजने नगरके नेताओंसे व्याख्यान और लेखोंके द्वारा प्रार्थना की थी, मगर किसीके कानोंमें जूँ भी नहीं रेंगती है। बेचारे नामधारी अछूतोंकी श्रद्धा कांग्रेसके अछूतोद्धार आन्दोलनपरसे धीरे-धीरे उठती जाती है। शायद आपके कुछ लिखनेसे वे अपना कर्त्तव्य पहचान सकें।"

अगर ये बातें सच्ची हैं तो यह सरासर अपना वचन तोड़ना है—और वह वचन न सिर्फ मुझीको दिया गया था बल्कि मेरी मार्फत ब्रह्मपुरके लोगोंको। मैं समझ नहीं सकता कि ट्रस्टीगण अपने इस कामकी क्या कैफियत या बचाव देंगे। यह तो बेशक अछूतोंके सत्याग्रह करनेका स्पष्ट मुआमला है। अगर उनका मंदिर-प्रवेश सचमुच ही मना हो, तो मैं आशा करता हूँ कि ब्रह्मपुरकी जनता इस निषेधको हटाकर अपने सम्मानकी रक्षा करेगी।

हिन्दी-नवजीवन

१२ अप्रल, १९२८

❀

भंगी बनाम ढेड़

एक तीसरी सभाके दुःखद अनुभव सुनिए। अहमदाबाद शहरके पास कोचरब गांवमें एक अंत्यजशाला है। उसे विद्यापीठके स्नातक चलाते हैं। जान पड़ता है कि उसके लिए वे यथेष्ट परिश्रम करते हैं। उसमें विद्यार्थियोंकी संख्या अच्छी थी। सभी ढेड़ थे। शिक्षकोंको भंगीके बालकोंका ध्यान आया। उन्हें पाठशालामें बुलानेका निश्चय शिक्षकोंने किया। भंगी बालक आए इसलिए ढेड बालकोंके मॉ-बापने अपने लड़कोंको शालामेंसे उठा लिया। उनमेंसे कितने-एक लौट आए मगर बहुतने तो बाहर ही रहे। इससे शिक्षकोंने सोचा कि अगर मैं जाऊं तो शायद ढेड़ मां-बाप मानेंगे और अपने लड़कोंको भेजेंगे। मैं गया। किन्तु थोड़े ही ढेड़ मा-बाप सभामें आये। एक भाई आए, उन्होंने मुझे खूब खरा जवाब दिया—

'भंगीको क्या ढेड छूए ?' छूआछूतके परंपरासे चलते धर्मका इस सनातनी ढेड भाईने समर्थन किया।

मैंने पूछा, 'पर अगर ढेड़ भंगीको न छुए तो फिर बनिया, ब्राह्मण वगैरह किस तरह ढेडको छुएँ ?'

'बनिया, ब्राह्मणको हम कहां ढेड़ोंको छूनेको कहते हैं ? वे हमें मत छुएँ।' यह कहकर ढेड़ भाईने मुझे हराया।

हाथका किया काम यों हमारे हृदयपर चोट करता है। अगर छुआछूतका सडन बहुत दिनोंतक चलता तो हम एक दूसरेको अछूत बनाते और बिना मौत ही मरते। किन्तु अब उसे ढेड मानें या ब्राह्मण-बनिया मानें, अस्पृश्यताका सांप अधिक दिनों सांस नहीं ले सकता।

शिक्षकोंको अपने निश्चयपर अड़े रहना है। ढेड भाइयोंपर वे रोष न करें मगर ढेड़ बालकोंको रखनके लिए एक भी भंगी बालकको हटावें नहीं। भंगी बालक जितने आवें उन्हें पढ़ावें और इसीमें अपने कार्यकी सफलता मानें। उनकी निश्छलता और श्रद्धाकी छूत ढेडोंको भी जरूर लगेगी और अगर भंगी बालकोंमें स्वच्छता, सत्य, प्रेम, ज्ञान वगैरह देखेंगे तो वे अपने बालकोंको भेजे बिना रही नहीं सकेंगे। अस्पृश्यताका मैल धोनेकी इच्छा रखनेवालेको सबसे पहले उसीका संग्रह करना चाहिए जिसका सभी कोई त्याग करते हैं। ऐसे सुधारकोंको मैं जानता हूँ, जो सोचते हैं कि "ढेड़का सुधार करनेके पहले हम अपना सुधार तो कर लें। हम पहले आप सुधर लेगें तो ढेड़ोंको भी सुधारेंगे।

इस विचारश्रेणीमें दो दोष हैं। एक तो अधैर्य और दूसरा अज्ञान। अधैर्य इस लिए कि हम कठिनाइयोंका सामना करनेका धैर्य खो बैठते हैं। अज्ञान इसलिए कि हम नहीं जानते कि हिन्दू-धर्ममें जो सबसे बड़ा सुधार करना है वह तो इस अस्पृश्यताका मैल धोनेका है। दूधमें अगर जहरका स्पर्श भी हो जाय तो भी जिस तरह वह बेकार हो जाता है उसी तरह अगर हिन्दू जातिमें अस्पृश्यताका स्पर्श-सा भी रहने देते हैं तो यह जाति बेकार हो जाती है। इस कलंकके धोनेसे दूसरे सुधार रुक नहीं जाते हैं। इस कलंकको रहने देने पर दूसरे सुधार लगभग बेकार हो जाते हैं। क्षयके रोगीके दो-एक फोड़े साफ किये ही तो क्या, और न किये तो भी क्या!

हिन्दी-नवजीवन

१९ अप्रैल, १९२८

दलितवर्ग और बाघात रियासत

आखिर गत ५ तारिखको बाघात रियासतके राणा साहेबने आर्य प्रतिनिधि-सभा, पंजाबकी ओरके एक शिष्ट-मंडलसे जिसमें रायसाहेब लाला गंगाराम, पंडित चमूपति एम० ए०, दीवान रामशरणदास लुधियाना, पंडित धर्मवीर वेदालंकार और लाला शंकरनाथ ऐडवोकेट शिमला, शामिल थे, आर्य-समाजके शुद्ध किए हुए कोलियोंके यज्ञोपवीत धारणपर रियासतके व्यवहारसे जो स्थिति पैदा हो गई है, उसपर बातें की।

शिष्टमंडलको ऊपर लिखी बातचीतके बारेमें निम्नलिखित संयुक्त-विज्ञप्ति निकालनेकी इजाजत मिली है—

"शिष्ट-मंडलके सभ्योंने राणा साहेबको उनके अतिथि-सत्कारके लिए धन्यवाद दिया और इस सबन्धमें शास्त्रोंकी आज्ञा तथा आर्य-प्रतिनिधि-सभाकी स्थिति स्पष्ट की। राणा साहेबने धैर्यसे मंडलकी बातें सुनी तथा उसे भरोसा दिलाया कि उनकी रियासतमें सभी सम्यक् स्थापित धर्म-प्रचारिणी सभाओंको धर्म-प्रचारकी पूरी स्वतन्त्रता है। मंडलने राणा साहेबको उनकी शिष्टताके लिए तथा उत्साहदायक जवाबके लिए धन्यवाद दिया और विदाई माँगी।"

इस संयुक्त बयानमें अत्यन्त अधिक सतर्कता तथा राज्यकी भीरुताकी झलक दिखलायी पड़ती है। दलितोंके प्रति किये गये अन्याय तथा एक महान् धार्मिक संस्थाके प्रति अपमानको स्वीकार करनेसे जनतामें रियासतकी इज्जत

बहुत बढ़ जाती। खैर, जो हुआ उसीके लिए धन्यवाद देना चाहिए। अगर राणा साहेबकी प्रतिज्ञाके भावका तथा उनके शब्दोंका भी पालन हुआ तो अन्याय और अपमानकी बात भूल जायगी।

हिन्दी-नवजीवन
१७ मई, १९३८

न्यायकी विजय

वर्धामें श्री लक्ष्मीनारायणका एक सुंदर, सजा हुआ और प्रसिद्ध मंदिर है। इसे जमनालालके दादाने बनाया था। यह मंदिर है तो व्यक्तिगत, पर जनताके लिए खुला हुआ है। जमनालालजी जिस तरह अछूत कहे जानेवालोंके लिए वर्धामें कुँओंपर पानी खींचनेका अधिकार दिलानेके लिए तथा उन्हें और सब तरहकी सुविधाएँ दिलानेकी कोशिश कर रहे हैं—और इसमें उन्हें सफलता भी मिली है उसी तरह वे इस मंदिरमें भी अछूतोंको प्रवेशाधिकार दिलानेकी कोशिश करते रहे हैं। उन्हें ट्रस्टियोंको इस रायसे सहमत करनेमें कठिनाई पड़ी थी कि इस खास मंदिरका द्वार उनके लिए भी खोल दिया जाय, जिन्हें अंधी रूढ़िने दबाये रक्खा है। आखिर इस प्रयत्नको भी सफलता मिली है। गत १७ ता० की सभामें ट्रस्टियोंने सर्वानुमतिसे प्रस्ताव स्वीकार किया—

"चूँकि अस्पृश्य गिने जानेवाले लोगोंको श्री लक्ष्मीनारायण-देवस्थान, वर्धामें अन्दर आकर दर्शन करने देनेका प्रश्न इस कमेटीके सामने बहुत दिनोंसे है, और कई बार उपस्थित किया जा चुका है, परन्तु उसका निर्णय अबतक नहीं हुआ है, और चूँकि देशकी सबसे बड़ी राष्ट्रीय-संस्था राष्ट्रीय-महासभा, अस्पृश्यता दूर करनेका आग्रह-पूर्वक आदेश कर रही है एवं हिन्दू-महासभा भी अस्पृश्योंको देव-मदिरोंमें दर्शनके लिए प्रवेश देना आवश्यक और न्याय समझती है, और चूँकि भारतके सर्वमान्य नेताओंका अभिप्राय भी इसी अनुसार है, इसलिए उपर्युक्त बातोंका भले प्रकार विचारकर और भविष्यमें देशकी धार्मिक, सामाजिक आदि बातोंका विचारकर निश्चय किया जाता है कि श्री लक्ष्मीनारायण-देवस्थान, वर्धा, अस्पृश्य लोगोंके लिए खोल दिया जावे।

"इस ठहरावका अमल मंदिरके व्यवस्थापक श्री जमनालालजी जिस प्रकार उचित समझें उस प्रकार करें।"

तदनुसार एक छपी हुई विज्ञप्ति वर्धेमें बाँटी गयी कि १९ तारीखसे यानी प्रस्तावके दो दिनों बादसे ही अछूतोंके लिए मंदिरका द्वार खोल दिया

जायगा। कहा जाता है कि इस विज्ञप्तिके सिवाय और कोई संगठित उद्योग नहीं किया गया था। मगर तो भी कोई १,२०० आदमियोंने मंदिर आकर दर्शन किया और किसी किस्मका कोई विघ्न नहीं पड़ा। यह बात बहुत ही सार्थक है कि वर्धेके समान महत्त्वपूर्ण स्थानमें भी 'अछूतों' के लिए एक मंदिरका दरवाजा खोला जा सका और तो भी रूढ़ि-पंथियोंने जरा भी विरोध नहीं किया या कुछ लोगोंने सनातन धर्मके नामपर 'अछूतों'के एक पवित्र और उनके लिए अबतक बन्द हिन्दू-मंदिरकी चौखट लाँघते समय कोई विघ्न उपस्थित नहीं किया। यह तो इसका स्पष्ट उदाहरण है कि अस्पृश्यता निवारणके आन्दोलनने कितनी उन्नति की है! इससे यह भी दिखलायी पड़ता है कि शान्त निश्चयसे किसी कामके पीछे लगे ही रहनेसे किसी सच्चे सुधारके आन्दोलनके पक्षमें किस तरह भला लोकमत तैयार किया जा सकता है। मैं जमनालालजी तथा उनके दूसरे साथी ट्रस्टियोंको इस साहसके लिए बधाई देता हूँ और आशा करता हूँ कि इस उदाहरणका अनुकरण सारे भारतवर्षमें किया जायगा।

हिन्दी-नवजीवन
२६ जुलाई, १९२८

❀

एक अन्त्यज क्या करे?

एक अन्त्यज-सेवक लिखते हैं—

"आपके असहयोग आंदोलनसे, पूज्य स्वामी श्रद्धानंदजीके दलितोद्धारसे, भारत-केसरी लालाजीके अछूतोद्धारसे आर्य-समाजके सुसंगठित प्रचार-कार्यसे और हिन्दू-महासभाके शुद्धि संगठनसे आज अछूत कहे जानेवाले अन्त्यजोंमें जागृति पैदा हुई है। बहुतसे जागे हैं। अपने उद्धारका भान हुआ है। अपने पैरपर खड़े होने के लिये वे तैयार हुए हैं। उनमें स्वाभिमानकी भावना पैदा हुई है, नवजीवन आया है। लेकिन फिर भी देहातमें आज खुले-आम उनका अपमान होता है। उन्हें फिजूल दुःख पहुँचाया जाता है। उनका खादीके कपडे पहनकर सफाईसे रहना तक लोगोंकी आँखोंमें खटकता है। ऐसी हालतमें वे क्या करें, कोई मार्ग बतलाइयेगा?

"मैं एक गाँवमें गया था। मैं सोलहों आना खादी-भक्त और अन्त्यजोंका हितेच्छु ठहरा, इस कारण सीधा अन्त्यजोंके मुहल्लेमें ही पहुँचा। मुझे वहाँका वायुमडल सुंदर जान पड़ा। वहाँके लोग अच्छे दीख पड़े। वहां मैंने एक युवकको शुद्ध खादीकी पोशाकमें देखा। इस कारण मैंने उसे बुलाया और कहा 'भाई, मुझे अपने घर ले चलो।' वह मुझे ले गया। लेकिन रास्तेमें उसने मुझसे कहा—'आपको मेरे घरपर चलते, वहा

'इस युवकने मुझसे कहा 'मैं हमेशा मन, वचन और कर्मसे शुद्ध रहता हूँ। ऋषि दयानन्दके सिद्धांतोंका पालन करता हूँ। उनके सिद्धांतको ही मैं अपना प्राण समझता हूँ। इसके सिवा सादी मेरी अत्यंत प्रिय वस्तु है। धर्मको तो मैं अपनी माया (धन-दौलत) समझता हूँ। हर रोज सवेरे उठता हूँ। शौचादिसे निपटकर ऋषि दयानन्दकी बताई हुई दिनचर्यापर अमल करता हूँ। अपनी जातिके किसी भी आदमीके साथ रहना मुझे नापसंद है। क्योंकि बार-बार हर तरह समझाने पर भी उनका उतना ही असर होता है जितना पत्थरपर पानी डालनेका। इससे मैं ऊब गया हूँ और अब इच्छा नहीं होती कि उनके साथ रहूँ। मेरी अन्तरात्मा मुझसे कहती है कि इन लोगोंसे दूर रहनेमें ही मेरे जीवनकी सार्थकता है। यह ख्याल मुझे बार-बार उलझनमें डालता है। आर्य-समाज एक महान संस्था है। वहाँ बिना किसी रुकावटके मेरा स्वागत किया जाता है, हम अपनाये जाते हैं। लेकिन हमारे गाँवमें हमारी क्या हालत है? आजकल तो गांधीजी भी नरम पड़ गये मालूम होते हैं?'

मैं तनिक भी नरम नहीं हुआ हूं। मैं अपने विचारसे जिस मार्गसे अस्पृश्यताको दूर करनेकी संभावना देखता हूं उस मार्गसे उसे मिटानेमें कोई बात उठा नहीं रख रहा हूं। मैं देख रहा हूं कि देशमेंसे अस्पृश्यताकी भावना घोड़ेके वेगसे भागी जा रही है। मैं रात-दिन कामना तो यह करता हूं कि वह वायु-वेगसे चली जाय। और मुझे विश्वास है कि किसी दिन जरूर वह वायु-वेगसे निकल भागेगी। लेकिन तबतकके लिये धीरजकी जरूरत है। उक्त पत्रमें जिन अन्त्यज भाईके उद्‌गार दिये गये हैं, वे समझमें आने जैसी हैं, लेकिन फिर भी उन्हें शांतिसे काम लेना चाहिये। इस संसारमें सुधारकको सदासे शुरुआतमें अकेला रहना पड़ता है। अगर सुधारकको इच्छा करते ही साथी मिल जायँ तो उसके सुधारकी ज्यादा कीमत नहीं रह जाय। अस्पृश्यता हमारे देशकी एक बहुत पुरानी बुराई है। और फिर इसे धर्मका चोंगा पहना दिया गया है। ऐसी बुराईका नाश करनेवालेको शीघ्र ही साथीके मिलनेकी आशा नहीं रखनी चाहिये। इस दिशामें आजतक जो काम हो सका है, जितने साथी इसके लिये मिल सके हैं, सो तो केवल प्रभुके कृपाका ही फल है। प्रस्तुत अन्त्यज युवकको इतनी बात ध्यानमें रखनी चाहिये कि जो शुद्धि उन्होंने कष्ट द्वारा प्राप्त की है, वह लोगोंके लिये नहीं बल्कि उनके अपने लिये है। इस कारण इस शुद्धिमेंसे उन्हें शांति प्राप्त करनी चाहिये। जो यह मानता है कि लोग उसकी शुद्धिकी कद्र करें, वह सच्चा शुद्ध नहीं हुआ है। शुद्धि तो सदा स्वावलंबिनी होती है। दूसरे इन युवकको चाहिये कि वे निराश होकर अन्य अन्त्यज भाइयोंको छोड़ न दें। जो लोग सदियोंसे कुचले जाते रहे हैं उन्हें

तेजस्वी बनते, जागृत होते थोड़ा समय जरूर लगेगा। उनके प्रति तो धीरज और प्रेमकी भावना बढ़ानेकी जरूरत है। जो शिक्षा और सुविधायें प्रस्तुत अन्त्यज भाईको मिली है वही सारे अन्त्यज समाजके लिये भी संभव हैं। अतः हमें चाहिये कि हम उनकी उदासीनताको समझ लें। पत्थरके बारेमें इन भाईने एक कही है, दूसरी मैं उन्हें याद दिला देता हूँ—

'रसरी आवत जात तें सिलपर होत निशान।'

इस बातमें पहली बातसे ज्यादा सत्य है। जब हिमालयका पानी पत्थरोंसे टकराता हुआ नीचे आता है तो वे पत्थर सूखे ही नहीं बने रहते बल्कि चूर चूर हो जाते हैं। प्रेम-रूपी पानीसे तो पाषाण-हृदय भी पिघल जाता है।

हिन्दी-नवजीवन
२८ मार्च, १९२९

❀

घर-फूँक तमाशा देख

वढवाणसे एक दूकानदार लिखते हैं—

"आजकल मैं गल्ले (अनाज) की दूकान कर रहा हूं। कई अंत्यज भाई मेरी दूकानसे अनाज खरीदते हैं। उन भाइयोंके सपर्कमें आनेसे मुझे अधिकाधिक अनुभव मिलता जाता है।

एक अन्त्यज भाई है। उनके दो बडे भाई मर चुके हैं। उनके कई बाल बच्चे हैं। विधवा बहनें जंगलमें काम करतीं हैं और मजदूरीके पैसोंसे बच्चोंका भरण-पोषण करती हैं। इसी बीच बूढ़ा बाप भी चल बसा है। अब घरमें सिर्फ एक आदमी रह गया है। उसकी ताकत नहीं कि वह अनाज खरीद सके; लेकिन जातिवाले उससे कहते हैं कि पाँच-सौ रुपया उधार लेकर 'सुखडी' और भजियोंकी ज्यौनार करो। अन्त्यज भाइयोंमें जो ब्याज-खाऊ लोग हैं, वे इस तरहका धंधा करते रहते हैं। इससे बचनेकी कोई तरकीब ?"

इसकी एक सरल तरकीब है तो, लेकिन जरा मुश्किल भी है। जो लोग ऊँची जातिके माने जाते हैं वे जो कुछ करते हैं अन्त्यज भी उन्हींकी नकल करते हैं। इसलिए अगर ऊँची जातिवाले 'कार्य-प्रयोजन' करना छोड़ दें तो अन्त्यज भाई सहज ही उन बुरी आदतोंको छोड़ देंगे, जिन्हें ऊँची जातिवालोंके कारण उन्होंने अपना लिया है। लेकिन इस शुभ घड़ीके आनेमें अभी दिन लगेंगे। इसलिये तुरंत ही फल देनेवाला मार्ग तो यह है कि सुधारके लाभ समझायें जायें, उनसे सुधार

करवाये जायें। कई तो केवल डरकर 'औसर-मोसर' वगैरा करते हैं। अन्त्यजोंमें भी जातिसे बाहर करनेका डर रहता है, 'ऊँची' जातिवालोंसे भी ज्यादा। जो ऊँची जातिके सज्जन जातिसे बाहर हो जाते हैं उनके लिये तो सारा हिन्दू-जगत होता है। लेकिन जाति-च्युत अन्त्यजका रक्षक तो अकेला भगवान ही है, अन्यथा वह लालचमें पड़कर दूसरे धर्ममें चला जाता है। जिस दिन अन्त्यज भाई अपने आपको पहचानने लगेंगे उस दिन उनकी सुधार करनेकी शक्ति 'उच्च' जातिवालोंसे भी कहीं अधिक बढ़ जायगी। 'उच्च' जातिके मार्गमें तो कई दूसरे स्वार्थ और प्रलोभन रोड़े अटकाते हैं, लेकिन अन्त्यज जहां एक बार अपने आपको समझने लगा और निडर बना कि फिर उसके रास्तेमें एक भी रुकावट खड़ी नहीं होती। उन्हें इस तरह जागृत और निडर बनाना 'ऊँची' जातिवालोंका धर्म है, यही उनका प्रायश्चित है।

हिन्दी-नवजीवन
१८ अप्रैल, १९२९

मूक-सेवा

ठक्कर बापाका नीचे लिखा एक पत्र आन्ध्र-देशकी मुसाफिरीमें मिला है—

"ता० २ को साबरमती स्टेशनपर आपसे विदा लेकर रवाना हुआ सो ता० ३ को इस तरफ चल पड़ा। सवेरे अहमदाबादसे चलकर दोपहरको हारीज (कडी प्रांत) स्टेशन पहुँचा। वहांसे मोटरबसमें बैठकर ४॥ बजे राधनपुर आया। दूसरे दिन ता० ४ को सवेरे ऊँटपर सवार होकर ता० ४–५ और ६ को तीनों दिन फी दिन करीब २५ मीलका रास्ता तय करके ता० ६ को शामके वक्त यहां आया हूँ। कमर तो टूट गई मगर सही सलामत पहुँचा हूँ।

"इस बारेमें विदा होनेसे पहले आपसे बातचीत करनी थी लेकिन वक्त नहीं मिला, मोरबीमें युवक-परिषदके बनाने-बिगाड़नेमें समय न मिल सका। इस पत्र द्वारा उसे शुरू करता हूँ। भाई जयरामदास और मलकानीसे इस बारेमें बातचीत की थी, उनकी मदद भी ली है।

"अब यहां आनेका कारण सुनिये, यहाँ थरपाकरमें, यानी पारकरमें जो कोली, थरमें जो भील और थर और पारकर दोनोंमें जो मेघवाले आबाद हैं उनमें घूमकर उनके बारेमें जाती हकीकत इकट्ठी करके यह जान लेना है कि उनकी सेवा करनेका कौन-सा मार्ग है।

"बम्बई सरकारने एक कमेटी कायम की है। उसका उद्देश्य अन्त्यजों और मूल निवासियोंकी मदद करनेके उपायों एवं साधनोंकी सूचना करना है। मैं इस कमेटीका एक मेम्बर हूँ। इसी वजहसे मैंने यह मुसाफिरी शुरू की है।

"यहां दो दिन रहनेके बाद वीरावाव, छाछरो, सालेना तड़, खीसर वगैरा जगहोंमें होता हुआ गढड़ा स्टेशनसे मारवाड़-हैदराबाद लाइनपर पहुंच सकूंगा और वहांसे सीधा दाहोद जा पहुंचूंगा; क्योंकि वहां रामनवमीके दिन झालोद आश्रमकी ओरसे राममंदिर खोलना है। ता० ९ से १५ तक, लगातार सात दिन सवेरे और शाम, ऊंटकी मुसाफिरी करनी अभी बाकी है।

"जगह-जगह कोली, भील और मेघवालोंकी छोटी-छोटी सभायें करनी है। थरपारकर सिंधके सात जिलोंमें सबसे पिछड़ा हुआ जिला है। उसमें भी ये जातियां सबसे पिछड़ी हुई जातियां हैं। उनकी जानकारी हासिल करने, उनसे दोस्ती पैदा करने और दुनियाके सामने उनकी हालतको जाहिर करनेकी गरजसे इस धूपमें ऊंटकी मुसाफिरी करने की हिम्मत की है।

"आज यहांके कोलियोंकी और कल मेघवालोंकी सभामें जाऊंगा। मीरपुरखासके कांग्रेसी कार्यकर्त्ता श्री डालूमल यहां मेरी मददके लिये आ पहुंचे हैं। बातचीत करने और परिस्थितियोंके देखनेसे यह अंदाज हो रहा है कि नगरपारकरमें मेघवाल और कोलियोंके बालकोंके लिये और उत्तरमें १५-२० मील दूर भीलोंके बच्चोंके लिये एक-एक आश्रम कायम करना पड़ेगा। तभी कुछ ठोस काम हो सकेगा। बालकोंको वर्ण परिचय कराने, चर्खा, पीजन और कर्घे वगैराका उपयोग सिखाने तथा उन्हें संस्कृत बनानेके लिये गुजरातसे अच्छे शिक्षक लाकर आश्रमोंकी व्यवस्थाका काम उन्हें सौंपा जायगा।

"यहांकी भाषा गुजराती ही है। सिंधीका स्थान गौण है। यहांके कोली अस्पृश्यता, गरीबी और दुयनवी दर्जेके लिहाजसे मेघवालोंकी बराबरीके हैं। कोलियोंसे छूकर रूढ़िका कायल हिन्दू नहाता नहीं, मगर पानी जरूर छींट लेता है। भील काश्तकार है, लेकिन काश्तकी जमीन उनके हाथोंसे निकाली जा रही है।

"बिलाशक, इस मुसाफिरीकी समाप्तिपर ही मेरी दरख्वास्तको विशेष मूर्त्तरूप दे सकूंगा। फिर आपके, वल्लभभाई, जयरामदास और मलकानीके साथ बैठकर चर्चा करनी पड़ेगी। तभी इसे अमलमें लाने या न लाने और इसके लिए धनकी व्यवस्था करनेकी बातपर विचार करेंगे। अभी तो सिर्फ इस ओर आपका ध्यान खींचनेकी इच्छासे ही यह पत्र लिखा है।"

मुझे इन ढेड़ोंके पुरोहित और भीलोंके गुरुसे ईर्ष्या होती है। हम दोनों समान उम्रके हैं। मगर मेरे शरीरको हिफाजतकी जितनी जरूरत है, ठक्कर बापाके शरीरको उतनी जरूरत नहीं है। मैं आन्ध्र-देशकी यात्राका कष्ट सहन कर सकता हूँ। इस विचारसे मन-ही मन कुछ-कुछ फूल रहा था, अपनेपर दया दरसा रहा था, देशभक्त वेंकटापैया वगैरा साथियोंको बहुत ज्यादा दौड़ धूप कराने के लिए धमकाता था कि इतनेमें तो मेरे मदको चूर-चूर करनेके लिये यह पत्र आ ही पहुंचा। कहाँ तो ऊँट और सिंधका रेगिस्तान और कहाँ वह ऊबड़-खाबड़ लेकिन मोटरको रास्ता देनेवाला मार्ग—मोटर जिसमें मेरे सोनेकी सुविधा रहती है?

लेकिन मैं अपनी ईर्ष्या प्रकट करनेकी गरजसे यह पत्र नहीं छाप रहा हूँ। ठक्कर बापाके ऊंटकी अम्बारी (हौदा) देखकर मैं गरीब अपनी छोटी-सी मोटरका त्याग नहीं करूँगा। सिंधके रेगिस्तान मुझे आन्ध्रके धूलके रास्तोंको नहीं छुड़ा सकते।

यह पत्र तो मैं यह बतानेके लिये छाप रहा हूँ कि मूक सेवा किसे कहते हैं। सच्ची सेवा उसीका नाम है। भील वगैरा भाई-बहनोंके साथका पुराना रिश्ता हमें फिरसे ताजा करना हो तो ठक्कर बापाके पाससे गुरुमंत्र लेना चाहिये। उन्हें लूलों लंगड़ोंकी सोहबतमें ही मजा आता है, उनके बिना उन्हें चैन नहीं पड़ती। उनके पीछे भटकनेमें ही वह आराम समझते हैं, उसीमें देव-दर्शन और उसीमें पेट-पूजा भी।

ठक्कर बापा जुग जुग जीयें, उनकी गद्दी सलामत रहे, उनका वंश बढ़े। सरकारी कमेटीकी बात तो मुझे इस पत्रने ही कही। इस कमेटीके मेम्बर बनना आपके लिये माफ है। इस कमेटीमें रहते हुए भी आप उसमें नहीं हो।

हिन्दी-नवजीवन
२ मई, १९२९

ॐ

एक प्रतिवाद

पाठकों को याद होगा कि आंध्र-यात्राके सिलसिलेमें तनुकू स्त्री-सभाका उल्लेख करते हुए मैंने एक संवाददाताकी शिकायत छापी थी। उनका कहना था कि सभाके समाप्त होते ही बहनोंने घर जाकर इस गरजसे स्नान किया था कि वे सभामें मेरे साथ आई हुई अन्त्यज-बाला लक्ष्मीसे छू गई थीं। दो अन्य संवाददाताओंने अपने पत्रोंमें पूर्व संवाददाताके इस दोपोरोपका घोर विरोध किया है। मैं उनमेंसे एकका पत्र सहर्ष नीचे उद्धृत करता हूँ—

"तनुकूकी स्त्री-सभाके बारेमें आपकी टिप्पणी पढ़कर हमें बड़ा आश्चर्य हुआ। आपकी टीका उचित हो सकती है, बशर्ते कि आपके संवाददाताकी खबर सत्य हो लेकिन मुझे कहते दुःख होता है कि आपके संवाददाताने भयंकर भूल की है।

"हो सकता है कि कुछ महिलाओंने श्रीमती प्रभावती देवीको अन्त्यज-बाला लक्ष्मी मान लिया हो। लेकिन जहांतक मुझे पता है, यह भी सच नहीं है। कुछ महिलाओंने उन्हे कम्मा-कुमारी समझा था, जो आपके साथ आश्रम आनेको तैयार हुई थी। लेकिन यह सरासर झूठ है कि सभा समाप्त होते ही सब महिलायें, अपने बाल-बच्चोंके साथ, शुद्ध

होनेकी हेतुसे कृष्णा नदीमें नहाई थीं। मैं अपने कुटुम्बकी महिलाओंके साथ सभा स्थलमें मौजूद था। मैं ब्राह्मण हूं फिर भी मेरे घरकी किसी औरतने ऐसा स्नान नहीं किया था। मैं और भी कई महिलाओंको जानता हूं जो उस दिन सभामें गई थीं, उनमेंसे हर-एकने मुझसे कहा है कि उन्होंने कभी इस बातकी कल्पनातक नहीं की थी। मैंने कई कट्टर महिलाओंको आपके संवाददाताका पत्र पढ़कर सुनाया, समझाया मगर उन्होंने भी उसे एक अजीब चीज समझा। यहां एक बात ध्यान देने योग्य है: उस दिन महिलायें एक छोटेसे भवनमें घंटेभर पहलेसे प्रतीक्षा करती बैठी थीं: गर्मी बेहद थी और वे सब पसीनेसे नहा चुकी थीं। मुझे पता है कि कुछ बहनें इस मैलको छुड़ानेकी इच्छासे नहाई थीं। संभव है, कुछको सांझकी रसोई बनानी रही हो, और इसलिये भी वे नहाई थीं। मगर यह कहना कि एक तथाकथित अछूतसे छू जानेके कारण उन्होंने स्नान किया था, एक कुत्सित दोषारोप करना है।"

दोनों संवाददाताओंने अपने-अपने नाम भेजे हैं। उनकी बातको न माननेका मेरे पास कोई कारण नहीं है। जो बहनें सभामें आई थीं उनकी आत्माको दुःखी करनेका मुझे रंज है। जिस बातका यह प्रतिवाद है उसके संवाददाताका नाम भी मेरे पास था। अतएव मैंने उनसे पूछा है कि किस आधारपर वह ऐसे गंभीर दोषारोप कर सके। मुझे यह देखकर हर्ष होता है कि बहनें भी अब अपने पर लगाये गये इस दोषारोपका प्रतिवाद करती हैं कि उनकी सभाओंमें अन्त्यजोंकी उपस्थिति उन्हें दूषित बनाती है।

हिन्दी-नवजीवन
२० जून, १९२९

❀

मौर्य-साम्राज्य और अस्पृश्यता

एक पाठक नीचे लिखा जानने योग्य उदाहरण भेजते हैं—

"चन्द्रगुप्त-मौर्यके साम्राज्यमें १८ प्रधान रहते थे। उनमें पहले प्रधान थे, पुरोहित। जहां पुरोहितके अधिकारोंका उल्लेख किया गया है वहां आचार्य चाणक्यकी आज्ञा यों है—'जो पुरोहितके आज्ञा देनेपर भी अस्पृश्यको वेद न पढ़ावे, अस्पृश्यको यज्ञ करा देनेसे इन्कार करे, वह पदच्युत किया जाय, अपनी जगहसे हटा दिया जाय।' चन्द्रगुप्तके राज्यमें अस्पृश्यता हद दर्जेको पहुँच गई, मगर उस समय भी यह नियम था, जो खासकर विचारणीय है।"

पाठकने ऊपरका उद्धरण "मौर्य-साम्राज्यका इतिहास" नामक पुस्तकमें-से लिया है। इस उद्धरणसे पता चलता है कि अस्पृश्यताके खिलाफ होनेवाला

आंदोलन कोई अर्वाचीन एवं नई बात नहीं है। पूर्वज भी उसके मुकाबलेमें खड़े हुए हैं। यह विष-वृक्ष जड़मूलसे फेंकने योग्य है।

हिन्दी-नवजीवन
२७ जून, १९२९

अस्पृश्य कौन है ?

अस्पृश्यता सहस्त्र मुखवाला एक सर्प है, जिनमेंसे हर एकमें विषैले दाँत दीख पड़ते हैं। उनकी कोई व्याख्या ही नहीं हो सकती। उसे तो मनु या अन्य प्राचीन स्मृतिकारोंकी आज्ञाकी भी कोई पड़ी नहीं है। उसकी अपनी निजी और स्थानीय स्मृतियाँ हैं। मसलन, अल्मोड़ामें एक जातिकी जाति जिसका धंधा तथा कथित सनातनधर्मके अनुसार भी एकदम निर्दोष है, अछूत मानी जाति है। उस जातिके लोग शिल्पी या किसान कहे जाते हैं। बोरा नामक एक दूसरी जातिकी भी यही दुर्दशा है, यद्यपि वह न मुरदार मांस खाती है, न शराब पीती है, और न सफाई या स्वच्छताके नियमोंकी उपेक्षा ही करती है। परंपराने उन्हें अछूत बना दिया है। हिन्दू-धर्म, जो किसी बातपर विचार नहीं करता, ऐसी परंपराओंको विना विचारे निभाता चला जाता है, फलस्वरूप लोग उसकी हँसी उड़ाते हैं, और बुरी-से-बुरी भद भी। सुधारक इस बुराईसे लोहा लेनेकी कोशिश कर रहे हैं। लेकिन मेरे विचारमें हिन्दू-धर्मको इस कलंकसे मुक्त करनेके लिये और भी अधिक जोरदार और उग्र उपायोंसे काम लिया जाना चाहिये। कट्टरताका हृदय दुखानेके विचारसे हम व्यर्थ ही डरते हैं। अगर अपने जमानेमें ही हम इस बुराईका अंत देखना चाहते हैं तो हमें चाहिये कि हम निडर बनें। अस्पृश्यताका यह भूत सहज ही उन लोगोंके सरपर चक्कर काटता रहता है, जो इसके लिये जवाबदेह हैं। अल्मोड़ामें चौका-भोजनके वक्तकी छूत-छातने गहरी जड़ जमा ली है, यहाँतक कि जातियों और उपजातियोंसे आगे बढ़कर हरएक व्यक्ति भी अपने आपमें एक अछूत बन गया है। चौकेकी बुराईका राज्य प्रेम विद्यालय जैसी राष्ट्रीय संस्थापर भी अपना असर डाले हुए है। मुझे बहुत आश्वासन मिला। जब पूछनेपर पता चला कि विद्यालयके ट्रस्टियोंमेंसे कोई भी चौकेकी प्रथामें विश्वास नहीं करता है, मगर इस डरसे कि कहीं बच्चोंके माता-पिता उन्हें विद्यालयमें भेजना बन्द न कर दें इस कुप्रथाकी उपेक्षा की जाती है।

नायक

जिस तरह दक्षिणमें एक फिरकेके लोग अपनी कन्याओंसे लज्जाजनक-

जीवन वितवाते हैं और उन्हें देवदासीका मोटा नाम देते हैं, उसी तरह अल्मोड़ामें नायक नामकी एक जाति है, जो बिना किसी पर्याय नामके अपनी कन्याओंसे पाप-मय जीवन वितवाती है। तथापि वे अपने कार्यको धर्मका रूप देकर उसका बचाव करती है और लड़कियोंके साथ-साथ धर्मको दलदलमें फँसाती है। परिवर्तनहीन और अपरिवर्तनीय जीवित नियमके स्थानपर अगर परमात्मा कोई सनकी व्यक्ति होता तो अवश्य ही महज गुस्सेमें आकर उसने उन लोगोंका खात्मा कर दिया होता जो धर्मके नामपर उसका और उसके नियमोंका निरादर करते हैं। 'सर्वेण्ट ऑफ इण्डिया सोसाइटी' (भारत-सेवक समिति) नायक माता-पिताओंसे मिलकर उन्हें इस बातके लिये राजी कर रही है कि वे अपनी कन्याओंको पतित बनानेके पापसे बाज आयें। मगर तरक्कीकी रफ्तार अभी धीमी है क्योंकि लोकमत अभी सोया हुआ है और मनुष्यकी वासनायें पापके दुयनवी पुरस्कार देती रहती है।

हिन्दी-नवजीवन
११ जुलाई, १९२९

❀

काशीकी पण्डित-सभा

जब मै काशीजीमें था मेरे पास काशी-पण्डित-सभाकी तरफसे तीन प्रश्न भेजे गये थे। उन प्रश्नोंके उत्तर देना मैंने अपना धर्म समझा था। परन्तु उस समय मुझे अवकाश नहीं था। बादमें वे प्रश्न मेरे दफ्तरमें पड़े रहे। भ्रमणमें मैं उन्हे साथ न ले सका। अब जब कि दफ्तर साफ कर रहा हूं, उक्त प्रश्न मेरे सामने हैं और ये हैं—

१. श्रुतियों तथा श्रुति-सम्मत स्मृतियोंको अभ्रांत प्रमाण माननेवाला एक सनातनधर्मी धर्मशास्त्रज्ञ "देवयात्राविवाहेषु संकटे राजविप्लवे, उत्सवेषु च सर्वेषु स्पर्शास्पर्शो न दुष्यतः" इत्यादि अपवादोंके सिवा अछूतो (चाण्डालों) के स्पर्शका सर्वदा व सर्वथा किस तरह समर्थन कर सकता है और कह सकता है कि हिन्दूधर्ममें अछूत नहीं है?

२ "तस्माच्छास्त्रं प्रमाणन्ते कार्य्याकार्ये व्यवस्थितौ" इस गीता वाक्यको अविचल भक्तिके साथ माननेवाली सनातनधर्मी जनता ही भारतवर्षमें अधिक है, और उसीमें आपको काम करना है, अतएव जबतक आप अपने अछूतोद्धारवाले कार्य्यक्रमको शास्त्र सम्मत न सिद्ध करलें तबतक उसका प्रचार कैसे हो सकता है?

३. मुसलमान उलेमाओंके हृदयमें यह भाव कूट-कूट कर भरा है कि इस्लाम-धर्मके सिवा दूसरे धर्मको माननेवालोंकी हत्या करना सवाब है, वे काफिर है, उनके साथ

मेल तभी हो सकता है जब वे इस्लाम धर्म कबूल कर लें। जबतक छोटे-बड़े सभी मुसलमान इन्हीं उलेमाओंके अधीन हैं, तबतक हिन्दू धर्मकी रक्षा करते हुए हिन्दूलोग मुसलमानोंसे किस प्रकार मेल कर सकते हैं ?"

मेरे उत्तरमें पण्डित महाशय पाण्डित्यकी आशा न करें। मैंने धर्मको अनुभव द्वारा जिस रूपमें जाना है, शास्त्रको अनुभवसे मैं जिस तरह समझता हूँ उसीके आधारपर उत्तर देनेका मैं नम्र प्रयत्न करता हूँ।

केवल नाम देनेसे श्रुतिस्मृतियाँ धर्म वाक्य नहीं बन सकती हैं। जो कोई भी बात सत्यादि अटल सिद्धांतोंके विरुद्ध है, वह धर्म प्रमाण नहीं हो सकती। मनुस्मृति आदि जो ग्रंथ आज हमारे सामने रखे जाते हैं वे मूलतः जैसे थे वैसे आज प्रतीत नहीं होते, क्योंकि उनमें विरोधी वचन आते हैं। उनमें ऐसे भी वचन पाये जाते हैं, जो सनातन नीति, सिद्धांत और बुद्धिके विरोधी हैं। श्रुतिग्रंथोंके रहस्यको देखते हुए 'अस्पृश्यता' पाप ही प्रतीत होती है। मैंने अस्पृश्यताके विषयमें जो वाक्य कहा है, वह तो यों है, 'आज हम जिसे अस्पृश्यता मानते हैं, उसके लिये शास्त्रमें कोई प्रमाण नहीं है'। इस कथनमें और पण्डितोंने जिस वचनका मुझमें आरोप किया है, उसमें बहुत अन्तर है।

आजके अछूतकी व्याख्याके लिए प्रचलित स्मृतिग्रंथोंको प्रमाण माननेसे भी कोई आधार नहीं मिलेगा। पंडितोंने जो स्मृति-वचन उद्धृत किया है उसे प्रमाण माननेसे भी हमारा तीन चौथाई कार्य सधेगा। देवयात्रा, विवाह, संकट, राजविप्लव और उत्सव हमारे सामने आज भी मौजूद है। इनमें किसीको अछूत न माननेकी स्मृतिकी सम्मति होते हुए भी पण्डित लोग क्यों जनताके सामने अस्पृश्यताका समर्थन करते हैं ?

अब दूसरे प्रश्नका अधिक उत्तर देनेकी आवश्यकता नहीं है। मैंने बताया है कि मेरे कार्यक्रमके लिये पण्डितोंके ही वचन काफी है। परन्तु यहाँ इस बातपर थोड़ा विचार करें कि शास्त्र किसे कहा जाय। मैं ऊपर बता चुका हू कि संस्कृत भाषामें छपे हुए हरएक संस्कृत ग्रंथको शास्त्र माननेसे पुण्य पाप सिद्ध हो सकेगा और पाप पुण्य बन जायगा। इसलिये गीताकी भाषाके अनुसार तो गीताके 'स्थितप्रज्ञ' का वचन ही शास्त्रका बुद्धिग्राह्य अर्थ हो सकता है। इसलिये यदि पण्डित लोग जनताको सीधे रास्तेपर ले जाना चाहें तो पाण्डित्यके साथ प्रज्ञाको भी स्थिर करे, और रागद्वेष आदिका त्याग करे। जबतक पण्डित लोग तपश्चर्या करके गीताके 'ब्रह्मभूत' न बनेंगे तबतक मेरे जैसे प्राकृत मनुष्यके पास अनुभवके सहारे सेवा करनेके सिवा और कोई चारा नहीं है।

अब रहा तीसरा प्रश्न। मेरा नम्र अभिप्राय है कि तीसरा प्रश्न करके

पण्डित महाशयोंने अपना अज्ञान प्रगट किया है। न तो इस्लामकी ही यह शिक्षा है कि अन्य धर्मवालोंकी हत्या कर्त्तव्य है, न भारतवर्षीय उलेमाओंके हृदयोंमें ही यह बात है। और न सब मुसलमान ही ऐसे उलेमाओंके अधीन हैं। हिन्दू धर्मकी रक्षा तो हिन्दुओंकी पवित्रतासे ही हो सकती है, किसी औरसे नहीं। आत्माकी रक्षा आत्मा ही कर सकती है। 'आप भला तो जग भला' इस लौकिक कथनके न्यायसे सबके साथ मिलकर रहना ही हमारा कर्त्तव्य है। मेरा अनुभव भी मुझे यही सिखाता है।

हिन्दी-नवजीवन
११ जुलाई, १९२९

❀

अन्त्यजोंके लिये क्या किया है?

'नवजीवन' के एक पाठक पूछते है—

"दलितोद्धार और अन्त्यजोद्धारका कार्य किन-किन दिशाओंमें हो रहा है, कृपा कर अगले 'नवजीवन' में लिखेंगे तो उपकार मानूंगा।

"आपसे यह छिपा नही है कि अन्त्यजोद्धारकी समस्या कितनी जटिल हो रही है। छुआछूतके नामपर कहे जानेवाले अन्त्यजोकी कई तरह बरबादी हुई है, उन्हें तरह-तरहके शारीरिक कष्ट सहने पड़ते है, उनपर कई अमानुषिक अत्याचार होते है, यही नहीं बल्कि राष्ट्रीय उन्नतिके तत्वको समझकर अगर कोई अन्त्यज सेवाकी दृष्टिसे स्वदेशी खादीके कपड़े पहनकर निकलता है, तो इसीमें वह कही जानेवाली उच्च जातियोका अपराधी बनता है, और उसे मार भी खानी पड़ती है। राजनीतिक क्षेत्रमें जिस तरह आपने "हरि ॐ" करके कदम बढ़ाये है, उसी तरह इस क्षेत्रमें काम करनेके लिये भी अगर आप अपने कार्यकर्त्ताओको नियुक्त कर दें तो मेरी तुच्छ रायमें राजनीतिक क्षेत्रमें कामयाबी हासिल करनेके लिये यह उलझी हुई समस्या भी एक बड़ी उपयोगी चीज बन जायगी।

"फिलहाल आर्य-समाज और हिन्दू-महासभा इस दिशामें काम कर रही है। मगर मैं मानता हूँ कि इनके सिवा अगर आपके कार्यकर्त्ता भी इस काममें जुट जाय तो काम ज्यादा तेजीके साथ हो सकेगा। अगर आर्यसमाज, हिन्दू-महासभा और आपका मण्डल, जहाँ तक हो सके परस्पर मिलकर, आपसमें संगठित होकर, काम करेंगे तो इस क्षेत्रमें सफलता मिलना बहुत आसान है।"

अन्त्यजोंके लिये मैं क्या करता हूं इस सवालका जवाब देना मुश्किल है। इस बातका कोई हिसाब तो दे नहीं सकता। अतएव जवाब यही दिया जा

सकता है कि मैंने कुछ भी नहीं किया। किंतु यदि यह जवाब हलका-सा लगे तो यों कह सकते हैं कि अन्त्यज भाई-बहन जितना कहें उतना किया। बात तो यह है कि अन्त्यज सेवाके नामपर, मैं अपनी शक्तिभर जो कुछ करता हूँ, वह स्वयं अपने लिये कर लेता हूं। यह कहना कि कोई अन्त्यजोंका उद्धार करता है, दूषित है। अस्पृश्यताको मिटाकर उस पार जानेवाले स्वयं अपना उद्धार करते हैं, हिन्दूधर्मकी रक्षा करते हैं। इस दृष्टिसे विचार करने पर तो प्रस्तुत प्रश्नका उत्तर देनेकी जरूरत ही नहीं रहती। जिस हदतक यह सवाल सिर्फ मुझे लक्ष्य करके पूछा गया है, उसका जवाब यह है कि मैं स्वयं तो स्वतंत्र रूपसे कुछ करता नहीं हूं, न कर ही सकता हूं। भारत-भरमें असंख्य साथी इस काममें जुटे पड़े हैं। उनके कार्यमें मेरा जितना भाग हो सकता है, उसकी गणना किसीको करना हो तो भले ही कर ले।

यह भाई मानते हैं कि मैं खादी-काम ज्यादातर करता हूँ, मगर यह उनकी भूल है। मैं स्वयं कोई खादी-काम करता हूं, यह तो बता नहीं सकता, हाँ, प्रतिदिन नियमानुसार यज्ञके लिये जो कातता हूं उतना-मात्र बता सकता हूं। और तो जो कुछ होता है, सो साथियों द्वारा ही।

साथ ही खादी-काममें सैकड़ों या हजारों अन्त्यजोंकी जो सेवा हो जाती है, सो तो है ही। दूसरे, अन्त्यजोंकी सेवाका काम ऐसा नहीं है कि फी गज खादीकी कीमतके समान उसकी कीमतका कोई अन्दाजा हम लगा सकें। अगर कोई पूछे कि अन्त्यज शालायें कितनी खोली गईं, उनके लिये कुएं कितने खोदे गये, मंदिर कितने बांधे गये, तो इन सबके जवाबसे मुझे संतोष तो हो ही नहीं सकता। अगर कोई कह सके कि अस्पृश्यताका पारा इतना कम हुआ है, तो अवश्य कुछ पता चले। मगर ऐसा यंत्र हमारे पास है नहीं। अन्त्यजोंके लिये हजारों शालायें, उतने ही मंदिर और उतने ही कुओंके होते हुए भी यह कहा जा सकता है कि अस्पृश्यता रूपी दीवारमें से एक ईंट भी हिली नहीं है। जब अस्पृश्यता-निवारणका काम शुरु हुआ तब अपनेको कट्टर वैष्णव माननेवाले मित्रोंने कहा था—"अगर आप अस्पृश्यता निवारणकी धुनको छोड़ दें तो शालायें वगैरा बनवानेके काममें जो आप कहें उतनी मदद दे सकते हैं। अस्पृश्यता मिटाकर आपको क्या करना है?" ऐसी मददसे मुझे जरा भी संतोष नहीं हो सकता था। मुझे अन्त्यजोंके लिये जुदी संस्थायें नहीं चाहिए थीं, मुझे तो वर्तमान सार्वजनिक संस्थाओंमें उनके लिये प्रवेशाधिकारकी जरूरत थी। जुदी संस्थायें हिन्दुओंके भूषणकी नहीं, बल्कि उनके दूषणकी सूचक हैं। आजकल अन्त्यजोंके लिये जुदी शालाये, मंदिर वगैरा बनवानेके झंझटमें मैं पड़ता भी हूँ, तो सिर्फ विवश होकर, आपद्धर्म समझकर और यह आशा रखकर कि आखिरकार इन संस्थाओं और दूसरी संस्थाओंके बीचका भेद मिट जायगा।

मैं स्वयं तो अस्पृश्यताको हवा होते देख रहा हूँ, मगर यह साबित करने के लिये मेरे पास कोई यंत्र नहीं है।

'प्रेम पंथ पावकनी ज्वाला, भाली पाछा भागे जोने,
मांही पड्या ते महा सुख माणे, देख नारा दाझे जोने।'

आर्य-समाज और हिन्दू-महासभा अपनी अन्त्यज सेवाके लिये धन्यवादकी पात्र हैं। मैं जहां थोड़ा बहुत भी कर सकता हूँ, करता हूँ। लेकिन मैं कबूल करता हूँ कि कई बार काम करनेके तरीकेमें भेद होनेकी वजहसे मैं अपनी सेवायें समर्पित नहीं कर सकता। मुझे इस बातका लोभ नहीं है कि हर कार्यमें मेरा हाथ होना ही चाहिये, न हरएक कामके करनेकी मुझमें शक्ति ही है। मुझे अपनी शक्तिका भान है, उस मर्यादामें रहकर मुझसे जो कुछ हो सकता है, करके कृतार्थ होता हूँ।

हिन्दी-नवजीवन
१ अगस्त, १९२९

❀

क्या हम स्वराज्यके योग्य हैं ?

विक्रमपुरसे एक भाई नीचे लिखा दुःखद पत्र भेजते हैं—

"मैं विक्रमपुरका रहनेवाला हूँ। मेरा घर स्वर्गीय देशबन्धुके घरसे कुछ ही मील दूर है। मेरा जन्म नामशूद्र कुटुम्बमें हुआ है। यह वही जाति है, जिसको लोग अन्त्यज या दलित कहते हैं।

"जिस आफिसमें मैं काम करता हूँ, उसमें पचास मुहर्रिर काम करते हैं और प्राय. सबके सब उच्च जातिके बंगाली हैं। कुछको छोड़कर शेष सब मेरे ही आस-पासके ही जिलोंके निवासी हैं।

"मैं यहाँके कार्यकर्त्ताओंके 'मेस' विभागमें रहता हूँ। तथाकथित नीच जातिका होनेके कारण मेरे साथी मुझे कृमिकीटोंसे भी अधिक घृणाकी दृष्टिसे देखते हैं। मुझे भोजन इस ढंगसे परोसा जाता है कि कोई भी स्वाभिमानी पुरुष उसे सह नहीं सकता। 'मेस' का नौकरतक मेरे जूठे बर्तन मांजनेसे इन्कार करता है। यद्यपि सफाई और शिष्टताके लिहाजसे मैं 'मेस'के किसी भी सदस्यसे घटकर नहीं हूँ, तो भी लोग मुझे जान-बूझकर नौकरसे भी नीचा समझते हैं। हिन्दू-समाजमें मानसिक पवित्रताका मानो कोई स्थान ही नहीं रह गया है।

"आप कृपाकर बतलायेंगे कि इस अभागे देशमें यह हालत कबतक बनी रहेगी ? जब कि लोग अपने देशवासियोंके साथ ही इतनी निर्दयताका बर्ताव

करते हैं, क्या आप समझते हैं कि हम स्वराज्यके योग्य हैं ? जब उच्च कहलानेवालोंके हाथोंमें सत्ता भी आ जायगी, तब क्या उच्चाधिकारके कारण नीच कहलानेवालोंके प्रति उनका व्यवहार और भयंकर नहीं बन जायगा ? जातिभेदके कारण जर्जर भारतवर्षमें आप इससे बेहतर किसी व्यवहारकी आशा रखते हैं क्या ?

"मेरा मानसिक क्लेश हद दर्जेतक बढ़ गया है। कृपा कर शीघ्र ही उत्तर दीजियेगा और बतलाइयेगा कि मैं क्या करूँ ?"

चूंकि लेखक अपना व्यक्तित्व नहीं प्रकट करना चाहते हैं, मैंने उनके पत्रके कुछ भाग निकाल डाले हैं। इसमें शक नहीं कि नामशूद्र भाईके साथ जो व्यवहार होता है, वैसा व्यवहार इसी श्रेणीके और भी कई भाइयोंको सहना पड़ता है। यह तो निर्विवाद है कि देशमें अस्पृश्यताकी बुराई घट रही है तथापि जो दलित-जातियाँ दिन-दिन अधिक जागृत हो रही हैं और कही जानेवाली उच्च-जातियों द्वारा अपनेपर किये जानेवाले अत्याचारोंकी स्वभावसे ही विरोधिनी बन रही हैं, वे अब और भी अधिक व्याकुल और एवं उग्र हो रही हैं।

उनका यह डर ऊपर-ऊपरसे तो ठीक मालूम होता है कि स्वराज्य प्राप्तिके बाद भी अगर यही हाल रहा तो सुधारकोंकी पुकार अरण्यरोदन ही बनी रहेगी और अबतक जो प्रगति हुई है वह भी अंध-कट्टरताके कारण धूलमें मिल जायगी। मगर मैं चाहता हूँ कि 'दलित-मित्र' यह समझ लें कि उनका यह डर निराधार है। ऐसा डर रखकर वे सुधारकोंके साथ ठीक-ठीक न्याय नहीं करते हैं। स्वतन्त्रता प्राप्तिके बाद संख्याका महत्त्व नहीं रहेगा। मुट्ठीभर लोगोंका दृढ़ संकल्प ही हमारी समस्याको हल कर सकेगा। जो आगे कदम बढ़ा रहे हैं, वे देख सकते हैं कि स्वातंत्र्य-संग्रामके अग्रभागमें सुधारक ही डटे हैं, प्रतिक्रियाशील लोग नहीं। क्योंकि प्रतिक्रियावाले तो धर्मका झूठा नाम लेकर विदेशी शासनकी सहायता और उसके हाथों अपनी रक्षा चाहते हैं। अतएव जब स्वराज्य प्राप्त हो जायगा, देशके शासनकी बागडोर सुधारकोंके ही हाथों आयगी।

दूसरे, 'दलित' जातियोंको यह विश्वास रखना चाहिये कि स्वराज्य-प्राप्त भारतके लिये जिस शासन-प्रणालीकी कल्पना की जा सकती है, उसमें उनके हकोंकी पूरी-पूरी और न्याय-रक्षाका भी समावेश तो होगा ही।

तीसरे, उन्हें चाहिये कि वे अपने आपको असहाय न समझें और न सुधारकोंकी सहायताकी अपेक्षा ही रक्खें। उनका पक्ष न्याय्य है और उन्हींको उसकी रक्षा भी करनी है। स्वराज्यका सच्चा अर्थ तो यह है कि स्वराज्य-प्राप्त देशका प्रत्येक सदस्य सारी दुनियाके मुकाबिले अपने स्वातन्त्र्यकी रक्षा करनेमें समर्थ हो। आंतरिक उन्नतिका ही दूसरा नाम स्वराज्य है। दलित भाइयोंकी यह व्याकुलता ही उनकी और भारतकी स्वाधीनताकी पूर्ण और अत्यंत आशाप्रद निशानी है।

निर्दोष असंतोष उन्नतिका सूचक है। मगर तबतकके लिये तो उन तमाम मुहर्रिरोंका और दूसरोंका जो दलित भाइयोंके संपर्कमें आते हैं यह परम कर्त्तव्य है कि वे उनके साथ अत्यंत आदर और शिष्टताका वर्ताव करें।

हिन्दी-नवजीवन
८ अगस्त, १९२९

दूसरा मंदिर खुला

श्री जमनालालजीके प्रयत्नसे वर्धाका मशहूर श्री लक्ष्मीनारायण मंदिर अछूत भाई-बहनोंके लिये खोला गया था। अब उन्हींके प्रयत्नसे वरार प्रांतके एलिचपुर शहरका दत्तात्रय-मंदिर भी खोला गया है। एलिचपुर किसी समय वरारकी राजधानी थी। आज भी उसमें ३८,००० की आबादी है। गत पहली जुलाईको सार्वजनिक सभाके बाद मंदिर अछूत भाइयोंके लिये खोल दिया गया था। अमरावतीके डाक्टर पटवर्धन सभापति थे। मंदिरको खुला करनेका काम जमनालालजीके हाथों हुआ। पद्रंह वर्ष हुए, ८३,००० रुपयोंकी लागतसे मंदिर बनाया गया था। मंदिरकी व्यवस्थाका भार चौबीस सज्जनोंकी एक समितिके जिम्मे है। इसमेंसे अठारहके बहुमतसे यह मंदिर अछूतोंके लिये खोल देनेका निश्चय हुआ। मंदिरके पाँच संरक्षक मंदिर खोल देनेके बारेमें एकमत थे। अब मंदिरके दरवाजेपर इस आशयका एक पटिया टँगा है—'आजसे यह मंदिर भंगी, महार, चमार वगैरा तमाम हिन्दुओंके दर्शन, भजन, पूजन, प्रार्थना, कथा-श्रवण इत्यादि धार्मिक कामोंके लिये खुला रहेगा।'

यह मंदिर स्वामी विमलानन्दके प्रयत्नसे बना था। स्वामीजी इस शुभ कार्यके अवसरपर उपस्थित थे। मंदिर खुला करते समय जमनालालजीने लगभग पचास अन्त्यज भाई-बहनोंके साथ मंदिरमें प्रवेश किया था। इस अवसरपर जमनालालजी और वर्धा सत्याग्रह-आश्रमके श्री विनोबा भावेने खास तौरपर भाषण किये थे।

इस कार्यके लिये मैं एलिचपुरके निवासियों, मंदिरके संरक्षकों और जमनालालजीको धन्यवाद देता हूँ। अछूत भाइयोंने उस दिन जिस आनंदोल्लासका अनुभव किया होगा उसकी कल्पना मैं कर सकता हूँ। जिस चीजके पानेके लिये वे रात-दिन तड़पते रहते हैं, जिससे हिन्दू-समाज उन्हें आजतक वंचित रखता आया है, उसके मिलनेपर उन्हें आनंद क्यों न होगा? लेकिन यह शुरुआत समुद्रमें बूँदके समान है। भारतमें हिन्दू-मंदिर लाखोंकी संख्यामें है। जबतक अछूत भाइयोंके

लिये देशके हरएक सार्वजनिक मंदिरका दरवाजा खुल नहीं जाता, हिन्दू-धर्मके उपासक दोषी बने रहेंगे और उनके लिए दुनियाके सामने सिर उठाकर चलना मुहाल होगा। अछूतोंका बहिष्कार करके हिन्दू-समाज स्वयं संसारमें बहिष्कृत किया गया है। हिन्दू-समाज इस बहिष्कारमेंसे बचनेका उपाय एलिचपुर और वर्धासे सीख ले।

हिन्दी-नवजीवन
२९ अगस्त, १९२९

ॐ

देव मंदिरोंके ट्रस्टियोंसे

भारतीय-राष्ट्रीय-महासभाकी अस्पृश्यता-विरोधिनी-समितिके अवैतनिक-मंत्रीकी हैसियतसे श्री जमनालालजीने हिन्दू-मंदिरोंके ट्रस्टियोंसे नीचे लिखी जोरदार अपील की है?

"शायद आपको यह पता होगा कि भारतीय-राष्ट्रीय-महासभाने इस साल खासकर अस्पृश्यता-निवारणके लिये एक पृथक समिति नियुक्त की है। स्पष्ट ही यह काम हिन्दुओंके द्वारा होना चाहिये, इस सम्बन्धमें महासभाके प्रस्तावकी मन्शा बिलकुल साफ है। इन दिनों जब कि भौतिक शास्त्रोंमें भीषण रूपसे तरक्की हो रही है, जब कि भारतको एक अविभाज्य इकाईके रूपमें दुनियाके सामने सर उठाकर खड़ा होना है और जब कि एक जातिकी बुराई उसके पड़ोसीके लिये दुःखद और सारे राष्ट्रके लिये अभिशापरूप बन गई है, यह उचित ही है और आप भी इसे मंजूर करेंगे कि महासभा जैसी राष्ट्रीय संस्थाको इसमें दिलचस्पी लेनी चाहिये और जितनी जल्दी हो सके उस जातिको ऐसी बुराईसे मुक्त करनेमें मदद करनी चाहिये।

"हिन्दुओंमें अस्पृश्यता कोई मामूली बुराई नहीं है। जो जाति दुनियाके इतिहासमें अपनी धार्मिक सहिष्णुता और उदार संस्कृतिके लिए ख्याति प्राप्त कर चुकी है, वही शताब्दियोंसे धर्मके नामपर एक सामाजिक रूढ़िको प्रचलित करके आज भी उसका प्रतिपादन करे और उसके द्वारा कुछ मनुष्योंको जन्मभरके लिये परस्पर मिलने-जुलने आदिके अधिकारोंसे वंचित रक्खे, उनके स्पर्श या दर्शन-मात्रसे अपने आपको अपवित्र समझे, निःसंदेह इससे बढ़कर दुःखकी कोई बात हो नहीं सकती। यह एक ऐसी पहेली है, जो प्रत्येक विचारशील भारतीयको परेशान करती रहती है।

"यह जाननेके लिये कि जो लोग नीची जातिमें पैदा हुए हैं, जिन्हें धर्म-शास्त्रोंमें 'कनिष्ठभ्राता' कहा गया है, उनके साथ किया जानेवाला वर्तमान व्यवहार भयंकर है, हमारे

हिन्दु-धर्मग्रंथों और हमारे शताब्दियों पुरानी संस्कृतिकी दृष्टिसे आपको विचार करना होगा। मैं यह आवश्यक नहीं समझता कि अपने विषयके समर्थनमें आपके सामने संस्कृत श्लोकोंके उद्धरण पेश करूँ। यही कहना काफी होगा कि अस्पृश्यताका निवारण अब एक निर्विवाद बात हो गई है। इस प्रथाका मूल और इसका औचित्य किसी समय चाहे जो भी रहा हो आज तो यह एक ऐसी निर्दय रूढ़ि-मात्र रह गई है, जो लोगोंके जागृत धार्मिक विचारों एवं आचारोंका स्थान जबर्दस्ती ग्रहण कर रही है।

"अगर हम प्राचीन परंपराका विचार करें तो हमें अस्पृश्यताके औचित्यके और भी कम प्रमाण मिलते हैं। जो हिन्दू परंपरा वैदिक एवं धार्मिक सिद्धांतोंपर स्थापित की गई है, जिसका पोषण कबीर, गौरांग, ज्ञानेश्वर, एकनाथ, तुकाराम, नरसिंह महेता तथा तमाम द्राविड़ साधु-संतोंकी मंडली द्वारा हुआ है, उसने सामाजिक हेल-मेलके मार्गमें आनेवाले रोड़ोंको न केवल हटाया ही था, बल्कि जोरोंसे उनका खंडन किया था और ऐसे हृदयशून्य भेदोंकी तीव्र उपेक्षा की थी।

"यह हमारे दुर्दैवकी खूबी ही है कि इतनी उज्ज्वल परंपराके रहते हुए भी आज हम अपने ही एक तिहाई भाइयोंके साथ इतना हृदय-शून्य बर्ताव करते हैं, उन्हें कुत्तों या पालतू जानवरोंसे भी बदतर समझते हैं। हमारे ही देशके जुलाहे, कारीगर, भंगी, डोम वगैरा जो देशके सच्चे कमानेवाले और राष्ट्रीय-धनके उपजानेवाले हैं, जो हमें साफ सुथरा रहनेमें, सुन्दर जीवन बितानेमें, सहायता पहुँचाते हैं उन्हीं अपने हितैषियों, नम्र और विनीत छोटे भाइयोंको हम उन तमाम सामाजिक और नागरिक हकों—जैसे जान-मालकी रक्षा, ज्ञान, सहयोग वगैरासे वंचित रखते हैं; जिनके बिना जीवन—जीवन ही नहीं रहता। अतः हमारे साथ भी हमारे कर्मोंके अनुरूप ही दुनियाभरमें अछूतों जैसा व्यवहार किया जाता हो तो आश्चर्य ही क्या?

"मगर इस पापके दुष्परिणामोंका यहीं अंत नहीं होता। इस तरहके व्यवहारके कारण जो प्रकट अन्याय होता है, अछूतोंका जो अपमान किया जाता है, उसके कारण वे बाहरके गंदले—असत् वातावरणके शिकार बन जाते हैं और समाजसे पृथक हो जाते हैं। इससे केवल समाजका ही भयंकर नुकसान नहीं होता, बल्कि सारे राष्ट्रकी सामाजिक नींव ढीली पड़ जाती है। आप भलीभांति जानते हैं कि इधर कुछ सालोंसे इन अभागे 'अछूत' भाइयोंने किस तरह नये-नये विरोधी आंदोलन खड़े कर रक्खे हैं और उनके कारण पिछले वर्षोंमें देशकी मुख्य-मुख्य जातियोंमें कितनी कटुता एवं कितनी अनेकता पैदा हो गई है। आप यह भी जानते हैं कि किस तरह इन जातियोंके कुछ बहुत ही जिम्मेदार और आदरणीय नेताओंने इन अछूतोंको अपने-अपने धर्मोंमें मिला लेनेकी योजनायें बनाई और उनपर विचार किया है। इस तरह धर्म-परिवर्तन करानेमें उनका हेतु अधार्मिक ही नहीं, बल्कि कभी-कभी अत्यंत अनुचित भी रहा है।

"नये विचारोंके प्रचार, हिन्दुओंमेंसे ही कुछ सुधारक लोगोंके प्रयत्न और पिछले दशककी महान् जागृतिके फल-स्वरूप देशकी जागृत मनोदशा आदि कई कारणोंसे स्वयं

अछूत भाई भी धीरे-धीरे अपनी दुरवस्थाको महसूस करने और जन्मसिद्ध अधिकारके रूपमें अच्छे व्यवहारकी माग पेश करने लगे हैं। कभी-कभी तो आप देखते होंगे कि वे अपनी मर्यादासे भी आगे बढ़ जाते हैं। आपने समाचार-पत्रोंमें पढ़ा होगा कि बरारके किसी स्थानके अछूतोंने कुछ समय पहले वहाँके हिन्दू-समाजको नोटिस दिया था कि अगर वे उन्हें स्कूलों, कुओं और देवालयोंमें जानेके, एवं ऐसे ही दूसरे बराबरीके अधिकार नहीं देंगे, उनके साथ समानताका व्यवहार नहीं करेंगे तो वे सबके सब हिन्दू-धर्मका त्याग कर दूसरा धर्म ग्रहण कर लेंगे। इन धमकीके अनुसार कुछ व्यक्तियोंने सचमुच ही धर्म-परिवर्तन कर भी डाला, तब कहीं हिन्दू जागे, पछताये और बादमें तो उनकी मांगोंसे भी ज्यादा हक उन्हें सौंपे गये। मैं नम्रतापूर्वक कहना चाहता हूँ कि ये ज्यादतियां, अगर स्वाभाविक हैं, तो लोगोंके आत्म-निर्णयकी सूचक हैं और एकाएक जागृत आत्माकी सहज द्योतक हैं। इनसे हम घबराये नहीं। आज जब हम शताब्दियों पुरानी बेड़ियां काट रहे हैं और स्वातन्त्र्य-गीतका प्रचार कर रहे हैं, थोड़े बहुत ऐसे असमर्याद कार्य तो होंगे ही।

"इन सब बातोंसे आपको—प्रत्येक भले हिन्दूको—दुःख होगा, आप ग्लानिका अनुभव करेंगे। लेकिन इसका उपाय हमारे ही हाथोंमें है, हम खुले दिल और फैलायी हुई बाहोंसे अपने उन अछूत भाइयोंको अपनावें और बिना किसी संकोचके इन्हें अपने समाजका अंग बना लें। सीधे-सादे न्यायकी दृष्टिसे भी यह तो आवश्यक है कि हम इन्हें अपने गांवके कुओंसे पानी भरने दें, उनके बच्चोंको अपने बच्चोंकी ही भांति गांवके मदरसेमें पढ़ने-लिखनेका मौका दें और अन्य हिन्दुओंकी भांति इन अछूत भाइयोंके लिये भी प्रभुके दरबारके—देवमंदिरोंके-दरवाजे खुले छोड दें। हमारा यह परम कर्त्तव्य है कि हम इन अभागे भाइयोंको अपनी छातीसे लगावें अपने अबतकके पापोंके पश्चातापके रूपमें बड़ी नम्रताके साथ इनसे भाई-चारा जोड़ें।

"यह जानकर कि आप हिन्दू-धर्मके संरक्षक हैं और उसके स्मारकोंके (देवमंदिरोंके) —ईंट पत्थरके स्मारकोंके नहीं बल्कि सच्चे मौलिक-तत्वोंके—ट्रस्टी हैं, मैं यह अपील लेकर आपके सामने साहसपूर्वक उपस्थित हुआ हूं। हिन्दुओंके लिये मंदिर ही शताब्दियोंसे उनके धार्मिक, सामाजिक आदर्शोंके आश्रय स्थान रहे हैं। उनके लिये क्षण-मात्र भी यह सोचना कि कोई भी जीवित प्राणी प्रभुकी कृपाके अयोग्य है, एक लज्जास्पद बात है। हमारे महान साधु-संतोंकी बड़ी-बड़ी विरासतोंमें एक विरासत यह भी है कि हम किसी भी मानवको अपनेसे घटिया न समझें। यही क्यों, हमारे देशमें, ऐसे-ऐसे महान संत हो गये हैं जो स्वयं जन्मसे शूद्र या अछूत थे। अतः यह आपका एक भूला हुआ, मगर शीघ्र ही करने योग्य कर्त्तव्य है कि आप अपने अधीनस्थ मंदिरके द्वार अछूतोंके लिये खोल दें।

"बड़ी कृपा होगी अगर आप इस अपीलके संबंधमें अपने विचार या कार्यकी दिशासे मुझे सूचित करेंगे।"

हमें आशा रखनी चाहिये कि यह अपील अरण्यरोदन भर न होगी। वर्धाने हमें मार्ग बता दिया है। आशा है, हिन्दू जनता सार्वजनिक सभायें करके

और दूसरे उपायासे काम लेकर भी इस अपीलका समर्थन करेगी। सबसे प्रभावशाली तरीका तो यह हो सकता है कि जहाँ-जहाँ महत्वके देवमंदिर हैं, वहाँ वहाँ स्थानीय सभाएँ संगठित की जायँ और उनके द्वारा ट्रस्टियोंके पास डेपूटेशन भेजे जायँ। ट्रस्टी मंदिरोंके स्वामी नहीं बल्कि जनताके एजेण्ट हैं और यदि जनता किसी खास मंदिरमें 'अछूतों' को प्रवेश करने देना चाहती है, तो अपने व्यक्तिगत मतभेदके रहते हुए भी ट्रस्टियोंका यह कर्त्तव्य है कि वे जनताकी इच्छा पूरी करें।

हिन्दी-नवजीवन
१२ सितबर, १९२९

❀

अछूतोंके लिए मंदिर

नामधारी अछूतोंके लिए आगे वढकर दृढताके साथ झगड़नेवाले श्री स्वामी आनंद लिखते है—

"इस सप्ताह बवईके समाचार-पत्रोमें कलकत्ता-म्युनिस्पल-गजटके लिए भेजे गये आपके लेखका कुछ हिस्सा छपा है, जिसमें अछूतोके हिन्दू-मदिरोमें जानेके बारेमें ये विचार प्रकट किए गए हैं—'अछूत बालकोके लिए नमूनेदार पाठशालायें खोलकर, मदिरोके ट्रस्टियोंको अछूतोके लिए अपने मदिर खोल देनेको राजी करके और जहाँ पर मुमकिन न हो वहाँ किसी अच्छे स्थानपर खासकर अछूतोके लिए आकर्षक मदिर वनाकर और आम-जनताको अछूतोके साथ मदिरोंका उपयोग करनेके लिए रजामद करके हमारी म्युनिसिपैलिटियाँ इस दिशामें बहुत कुछ सहायता पहुँचा सकती हैं' वगैरा।

"इस समय इस प्रांतमें खासकर बवई और पूनामें परिस्थिति जैसी नाजुक हो रही है, उसे देखते हुए मुझे डर है कि अछूतोके लिए अलग मदिर बनानेके आपके प्रस्तावके कारण, जो भी उसकी भाषा खूब संयत और विशेषता सूचक है, लोगोमें गलतफहमी फैल सकती है। क्या आप कृपा करके इसपर प्रकाश डालियेगा?"

सन् १९१५ में जब मैंने दक्षिण-अफ्रीकासे लौटकर इस आंदोलनकी नींव डाली ही थी, मैंने सोचा था कि अस्पृश्यता-निवारणके साथ अछूतोंके लिए अलग मंदिर या पाठशालायें खोलना सर्वथा असंगत है। लेकिन बादमे अनुभवसे पता चला कि शुष्क-तर्कके आधारपर यह आंदोलन सफल नहीं हो सकता। हम हिन्दुओंने अपने एक-तिहाई हिस्सेको इतना अधिक दबा रक्खा है कि समझदार हिन्दुओंके एक स्वरसे अस्पृश्यताको मिटा डालनेकी घोपणा कर चुकनेपर

भी दलित और अस्पृश्य-वर्गको हमारी सहायताकी कई तरहसे आवश्यकता होगी। सिद्धांत और जबानी तौरसे छूत-छातके मिटानेके निश्चय कर चुकनेपर भी अगर कोई खास कोशिश नहीं की जायगी तो अधिकांश अछूत इस संधिसे लाभ न उठा सकेंगे और जनता भी अज्ञानवश इस सुधारको सह न सकेगी, खासकर उस हालतमें जब कि अछूत भाई अपने स्वभावके अनुसार या तो पूर्ववत् अल्हड़ बने रहेंगे या बहुत दिनों बाद प्राप्त स्वतंत्रताका उपयोग करनेके लिए बहुत आगे बढ़ जायेंगे। इसलिये मैं तो यह मान बैठा हूं कि दोनों काम एक साथ होने चाहिये, याने साधारण मंदिरों, आम मदरसों और कुओंका उपयोग करनेकी पूर्ण स्वतंत्रताके साथ ही साथ अछूतोंके लिए खास तौरपर नमूनेदार मंदिर और मदरसे बनाये जाने चाहिए। इन स्थानोंका उपयोग अछूत तो पहले करेंगे ही, लेकिन सर्व-साधारण भी इनसे लाभ उठा सकेंगे। इसी विचारधाराके अनुसार मैंने कलकत्ता म्युनिस्पल-गजटके अपने छोटेसे लेखमें यह बतानेकी कोशिश की है कि दलित जातियोंके लिये नमूनेदार मंदिर और पाठशालायें बनाकर तथा मौजूदा मंदिरोंको अपने देशके इन भाइयोंके लिए खुलवाकर हमारी म्युनिसिपैलिटियाँ अस्पृश्यता-निवारणके काममें खासी मदद कर सकती हैं।

अतः मेरे इस लेखकी आड़में कोई अछूतोंके मंदिर-प्रवेश आंदोलनको बेजा बतानेकी अथवा उसे रोकनेकी कोशिश न करें। बंबईके नेताओंने अपने वक्तव्य द्वारा सारे बंबई प्रांतको अछूतोंके लिए अपने मंदिर खोलनेकी जो सलाह दी है, उसकी जितनी प्रशंसा की जाय थोड़ी ही होगी। मुझे अभी-अभी यह पढ़कर अत्यंत हर्ष हुआ कि बंबईके श्री ठाकुरदास नानाभाईने अपना रामचन्द्र-मंदिर अछूतोंके लिए खोल दिया है। मुझे आशा है, बंबईमें जिस कामकी शुरुआत हो गई है, वह जोरोंसे आगे बढ़ता जायगा।

हिन्दी-नवजीवन
२८ नवंबर, १९२९

❀

डाकिनकी आखिरी सांस

अन्त्यजोंके सेवक भाई रामनारायण मोम्बासासे लिखते हैं—

"जजीवारका पुराना जोश अब नहीं रहा है, फिर भी ३३००) चन्देके मिले हैं। इससे सहज ही हमें संतोष नहीं हो सकता। लेकिन इस बार भाटिया सज्जनोंने अस्पृश्यता निवारणके कार्यमें खुशी-खुशी सहायता की और अच्छा चन्दा दिया। इससे

मालूम होता है कि अस्पृश्यता अब मौतकी घड़ियाँ गिन रही है। नौजवानोकी हमें बहुत मदद रही। यहाँ आनेपर श्री नानाजीभाई विलायतसे युगाडा जाते हुए राहमें मिले। उन्होंने आपका पत्र बड़े प्रेमसे पढ़ा। छाया-आश्रमके मकानके लिये समितिने ५०'००) की आवश्यकता प्रकट की थी। हमने यह बात उनसे कही। उन्होने ५०००) देनेका वादा किया। श्री मूलचन्दभाईने आपको यह खबर दी होगी।

"यहाँ भी चन्दा उगाही शुरु हो चुकी है। व्यापारकी मंदीके कारण चन्दा कुछ ऐसा ही हो रहा है, फिर भी अछूत-बालकोंकी खुशनसीबीसे साधारणतया ठीक रकम मिल रही है। श्री नानाजीभाईने नैरोबी होते हुए दिसम्बरके अन्ततक युगांडा आ पहुँचनेको कहा है। वहाँ उनका अच्छा वसीला है।"

पूर्व-अफ्रीकाके भाई अन्त्यज-सेवाके लिये चन्दा दे रहे हैं। तदर्थ वे धन्यवादके पात्र हैं। जिनके पास है, लोग उन्हींसे मांग सकते हैं। अतएव चन्दा-वालोंके पूर्व-अफ्रिका वगैर जगहोंतक पहुंच जानेमें कोई आश्चर्यकी बात नहीं। दानियोंकी खुबी, उनकी बड़ाई, तो इसमें हैं कि वे हरएकके गुण-दोषोंकी जाँच करके विवेकपूर्वक दान दें। धनिकोंका धर्म है कि वे केवल पेटके लिये भीख मांगने-वाले भीखमंगोंको और पाखण्डका पोषण करनेवाले पाखण्डियोंको एक कौड़ी भी दान न दें। उनके पास तो भले-बुरे सब जा पहुंचते हैं। ऐसोंकी परीक्षा करनेमें ही उनके विवेककी कसौटी है।

पूर्व-आफ्रिकामें प्राप्त मदद पर से भाई रामनारायणने अन्दाज लगाया है कि अस्पृश्यता डाकिन अब अपना आखिरी सास गिन रही है। लेकिन सिर्फ अपनेको मिले हुए दान पर से ऐसा अनुमान करना अत्युक्ति कहा जायगा। किन्तु अब तो इस डाकिनकी अन्त घड़ीके कई लक्षण दीख पड़ने लगे हैं। जबलपुरमें श्री जमनालालजीके प्रयत्नसे एक साथ आठ सुप्रसिद्ध मन्दिरोंका अन्त्यज भाई-बहनोंके लिये खुल जाना और उसमें इज्जतदार लोगोंका शरीक होना तथा बंबईमें सेठ ठाकुरदास नानाभाईका अन्त्यजोंके लिये रामचन्द्र मन्दिर खोल देना वगैरा युग-परिवर्त्तनके सूचक हैं। अपनेको सनातनी माननेवाले कुछ लोग इन प्रयत्नोंका विरोध कर रहे है। लेकिन अगर सुधारकोंकी ओरसे अविनय न हो, वे धीरज न छोड़ें और अपना काम करते रहें, मर्यादाका भंग न करें—तो इन विरोधियोंका विरोध भी ठंडा होकर ही रहेगा।

अन्त्यज भाइयोकी अधीरता सहज है। जहां अपने अधिकारोंके औचित्यके संबंधमें दो मत नहीं हैं, अपने साथ होनेवाले अन्यायका जो अनुभव करने लगे हैं, उनका अधीर होना स्वाभाविक है। फिर भी जब कि अन्त्यज सुधारकोंके लिये लगातार प्रयत्न करनेवाले अन्त्यजेतर हिन्दू जी-जानसे कोशिश कर रहे हैं, उस हालतमें अगर अन्त्यज भाई धीरज रक्खें, तो उन्हें अपना मन-चाहा फल

शीघ्र ही मिलनेकी संभावना है। अगर कोई अन्त्यजेतर हिन्दू उनका साथ न देते हों अथवा उनकी सहायताका कोई परिणाम न आ रहा हो तो अन्त्यजोंका कुछ करनेके लिये तड़पना समझमें आ सकता है। लेकिन जब सुधारकोंकी ओरसे अथक प्रयत्न हो रहे हों और जबलपुर, बंबई वगैरा जैसे मीठे फल निकल रहे हों, तब धीरज की पूरी गुंजाइश है।

हिन्दी-नवजीवन
५ दिसम्बर, १९२९

हमारा भ्रम

तुलसीदासजीने कहा है—

रजत सीप महँ भास जिमि, यथा भानुकर वारि।
जदपि मृषा तिहुँ काल सोई, भ्रम न सकै कोउ टारि॥

इसमें जो गूढ़ सत्य भरा है, उसका अनुभव मुझे तो नित्यप्रति होता रहता है। अच्छी या बुरी, जो बात हमारे ख्यालसे या हृदयमें धँस गई है, वह तबतक नहीं मिटती, जबतक तजुर्बा नहीं होता।

ठीक इसी तरह अस्पृश्यता-रूपी भ्रम हिन्दू जनताके हृदयमें घरकर गया है। बुद्धिके सहारे हम देखते हैं कि कोई अस्पृश्य नहीं है। जनताके पास कोई अस्पृश्यकी संज्ञा या परिभाषा नहीं है। यदि अस्पृश्य अपनी मानी गई काल्पनिक अस्पृश्यताको छिपावे, तो उसे पहचाननेवाले चन्द आदमियोंको छोड़कर कोई इस बातका कयास नहीं कर सकेगा कि वह अस्पृश्य है। इस तरह कोई 'अस्पृश्य' भाई हर जगह वगैर किसी रोक-टोकके मंदिरोंमें और दूसरे स्थलोंमें चले जाते हैं।

यदि अस्पृश्यता कोई धर्म होता तो एक प्रांतका अस्पृश्य हरएक प्रांतमें अस्पृश्य माना जाता। किंतु वस्तुतः आसामके अस्पृश्य सिंधके अस्पृश्य नहीं माने जाते। त्रावणकोरके अस्पृश्य कहीं अस्पृश्य नहीं हैं। वहाँकी अस्पृश्यता, दूरता इत्यादिकी तो और जगहोंमें गंध तक नहीं है।

हिन्दू जातिमें अस्पृश्यताका यह भ्रम इतना घोर – इतना भयानक – हो उठा है! श्री जमनालालजी इसे मिटानेका खूब प्रयत्न कर रहे हैं। उन्हें मंदिरोंके खुलवानेकी अपनी प्रवृत्तिमें काफी सफलता मिलती जाती है। जबलपुरमें एक साथ आठ मंदिरोंका खुलना, उसमें प्रतिष्ठित लोगोंका शामिल होना इत्यादि आशाजनक बातें है। इस भ्रमको मिटानेका राजमार्ग तो यह है कि जिनका भ्रम दूर हो चुका है वे अपने कार्योंसे भ्रममें डूबे हुओंको बता दें कि अस्पृश्यता नामका कोई धर्म है ही नहीं।

हिन्दी-नवजीवन
५ दिसंबर, १९२९

'गांधीजी' ग्रंथमालाके खण्डोंकी सूची

पहला खण्ड—(प्रथम भाग) भारतीय नेताओंकी श्रद्धांजलियां (प्रकाशित)

(द्वितीय भाग) भारतीय तथा रियासती नेताओंकी श्रद्धांजलिया (प्रकाशित)

दूसरा खण्ड—ससारके समाचार-पत्र तथा पत्रकारोंकी श्रद्धांजलियां

तीसरा खण्ड—विदेशोंकी श्रद्धाजलिया

चौथा खण्ड—कवियोंकी श्रद्धाजलियां (प्रकाशित)

पांचवा खण्ड—जीवन-चरित (प्रेसमें)

छठा खण्ड—गाधीजी सम्बन्धी संस्मरण

सातवा खण्ड—भारतको गाधीजीकी देन

आठवा खण्ड—गाधीजीके महत्वपूर्ण भाषण

नवा खण्ड—गांधीजीके पत्र (महत्त्वपूर्ण मूल-पत्रोंके चित्रोंके साथ)

दसवां खण्ड—अहिंसा (चार भागमें) (गांधीजीकी लेखनीसे) (प्रकाशित)

ग्यारहवां खण्ड—हिन्दू-मुसलिम एकता (,, ,,) (प्रथम भाग प्रकाशित)

बारहवां खण्ड—अछूतोद्धार (,, ,,) (प्रकाशित)

तेरहवां खण्ड—शिक्षा (,, ,,)

चौदहवा खण्ड—महिलाएं (,, ,,)

पन्द्रहवा खण्ड—गांधीजीका राजनीतिक दृष्टिकोण

सोलहवां खण्ड—गांधीजीका आर्थिक दृष्टिकोण

सत्रहवा खण्ड—गांधीजीका धार्मिक दृष्टिकोण

अठारहवा खण्ड—गांधीजीके 'राम'

उन्नीसवा खण्ड—प्रार्थनोत्तर प्रवचन

बीसवां खण्ड—गाधीजीके प्रयोग

इक्कीसवां खण्ड—प्रवासी भारतीय

बाईसवां खण्ड—विद्रोही गांधी

तेईसवा खण्ड—गांधीजीका 'स्वराज्य'

चौबीसवां खण्ड—चित्रावली

पचीसवा खण्ड—विविध

अपनी प्रतियां तुरन्त सुरक्षित कराइये

गांधीजी

कवियोंकी श्रद्धांजलियां खंड ४

गां
धी
जी

खण्ड चार

कवियोंकी
श्रद्धांजलियाँ
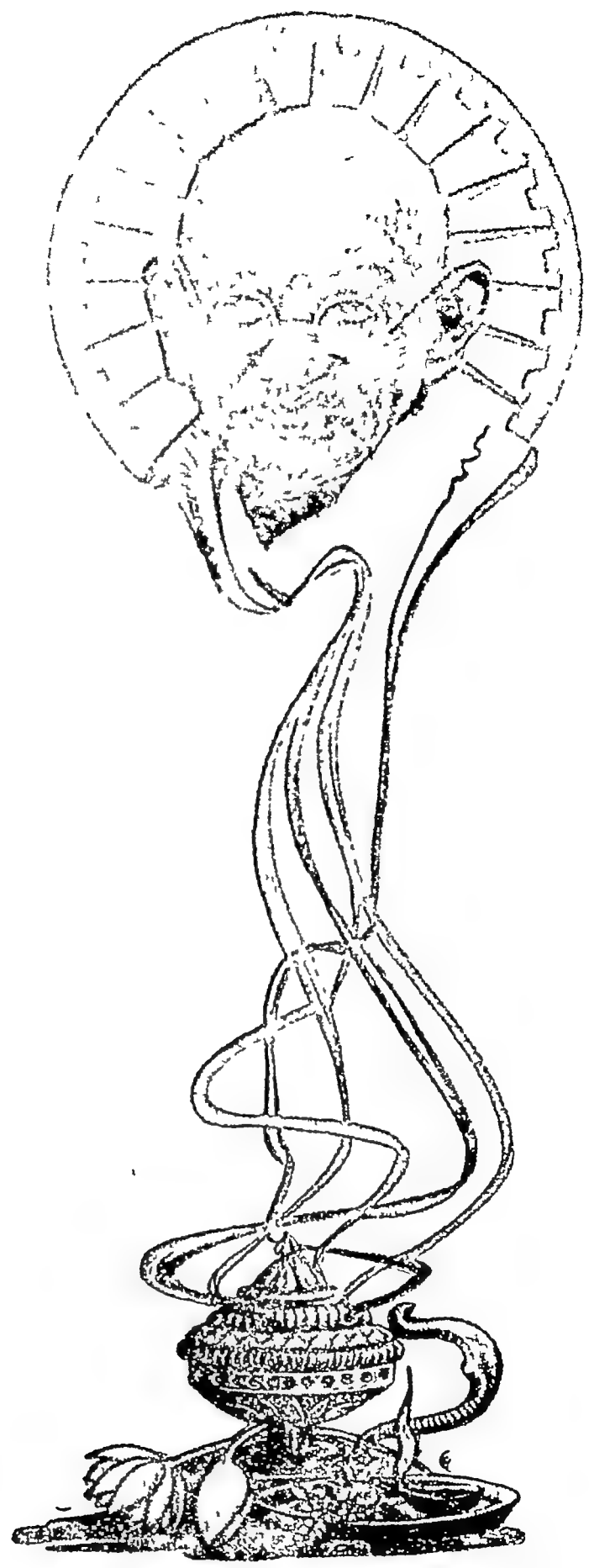
सम्पादक मण्डल

कमलापति त्रिपाठी (प्रधान सम्पादक)
कृष्णदेवप्रसाद गौड़
काशीनाथ उपाध्याय 'भ्रमर'
करुणापति त्रिपाठी
विश्वनाथ शर्मा (प्रबंध सम्पादक)

मूल्य डेढ़ रुपया

(प्रथम संस्करण : दिसम्बर, १९४८)

प्रकाशक
जयनाथ शर्मा
व्यवस्थापक
काशी विद्यापीठ प्रकाशन विभाग
बनारस छावनी

मुद्रक
पं० पृथ्वीनाथ भार्गव
अध्यक्ष
भार्गव भूषण प्रेस, गायघाट
काशी

सूची

कविता गद्यसे अधिक मनमें घर करने वाली होती है, इसलिये इस अंकका महत्व भी अधिक है। इसमें लोगोंने अपने मनकी पीड़ा व्यक्तकी है, भावनाओंके मोती पिरोये हैं, तथा प्रेमकी श्रद्धांजलि समर्पित की है। हमने भाषा भेद नहीं किया है। उर्दूकी अच्छी रचनाएँ तथा संस्कृतकी भी कुछ रचनाएँ समाविष्ट हैं।

सभी कवियोंसे इसमें रचनाएँ भेजनेकी प्रार्थना की गयी। बहुतसे लोगोंने नहीं भेजी, इसका हमें दुख है। हमें पूर्ण आशा है कि गांधीजी की यह श्रद्धांजलि पाठकोंको संतोषप्रद होगी।

राष्ट्रपिता

राष्ट्रपिता तुमने भारत का, जगका किया सहस उपकार ।
क्यों न तुम्हें हम पहिनावें यह, हृदय सुमन का सुरभित हार ॥
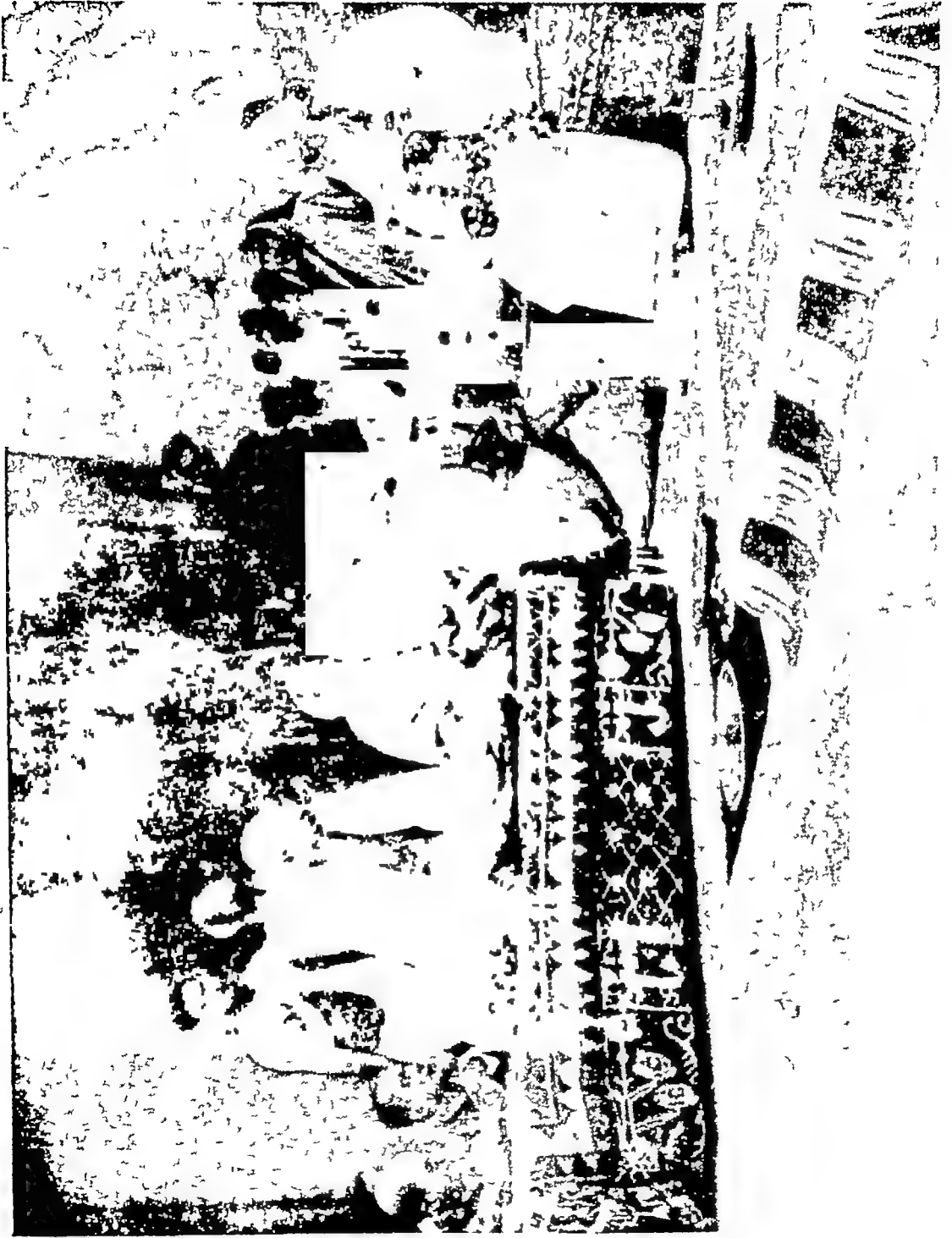
शान्ति दूत, तुम शान्ति-निकेतनमें जब आये ले नवजीवन ।
अतिथि रूपमें महामहिम गुरुदेव ने किया था अभिनन्दन ॥

श्रद्धांजलि

हाय राम ! कैसे झेलेंगे अपनी लज्जा, उसका शोक

गया हमारे ही पापोंसे अपना राष्ट्रपिता परलोक

—मैथिलीशरण गुप्त

देवमृत्यु

अंतर्धान हुआ फिर देव विचर धरतीपर

स्वर्ग रुधिरसे मर्त्य-लोककी रजको रँगकर

टूट गया तारा अंतिम आभाका दे वर

जीर्ण जाति-मनके खँडहरका अंधकार हर

अंतर्मुख लय हुई चेतना दिव्य अनामय

मानस लहरोंपर शतदल-सी हँस ज्योतिर्मय

मनुजोंमें मिल गया आज मनुजोंका मानव

चिर पुराणको बना आत्मबलसे चिर अभिनव

आओ, हम उसको श्रद्धांजलि दें देवोचित

जीवन सुंदरताका घट मृतको कर अर्पित

मंगलप्रद हो देव मृत्यु यह हृदय-विदारक

नव भारत हो बापूका चिर जीवित स्मारक

बापूकी चेतना बने नव पिकका कूजन

बापूकी चेतना वसंत बखेरे नूतन

—सुमित्रानन्दन पंत

सत्यमें समा गये

सत्य अवतारी सत्य सत्ययुग लाये यहाँ,
प्रेम-शत्र देके वर देकर क्षमा गये
शोक ! ऐसा शोक जैसा लोकमें कभी न हुआ
विध गये हृदय कलेजे बरमा गये
घोर अपघात देखकर पातकीके हाथ
अधिकसे अधिक बधिक शरमा गये
सत्य और ईश्वरमें अतर न माना कभी
सत्य-रूप-धारी सत्य रूपमें समा गये

—सनेही

प्रार्थना

बापू, तुम करो स्वीकार
आज शत शत मस्तकोका नमन बारबार
जा रहे हो तुम, हमारा जा रहा है ध्रुव सहारा
नेत्रसे अब बह रही है सिधु-जल-सी अश्रुधारा
कंटकोसे हम रहे, तुम फूलके शृगार
तर्जनी तुमने उठायी उठ गया यह विश्व सारा
जब कि मानवता भ्रमित थी रोककर तुमने पुकारा
की घृणा जिसने उसीको दे गये तुम प्यार
आज हम किस भाँति तुमको चिर विदा दे देश-त्राता
तिमिरमय आकाश होता जब कि रवि है डूब जाता
दे सको नव प्रात तुम फिर, लो पुनः अवतार
बापू, तुम करो स्वीकार
आज शत शत मस्तकोका नमन बारबार

—रामकुमार वर्मा

श्रद्धांजलि

हो गयी है विश्वकी वर विमल ज्योति विलीन

प्रेमके पावन पुजारी शान्तिके दिव-दूत

थी तुम्हारी दिव्यतामें महत् धन परिपूत

प्राण-सम प्रिय थे तुम्हें सब दीन-हीन अछूत

तुम्हें अन्त्यजोंके सुख-दुख सभी अनुभूत

तुम महात्मन्! हो गये पञ्चत्व-तत्त्वमें लीन

कर अहिंसा-सत्यका तुमने विचित्र प्रयोग

दी हमें स्वाधीनता लाकर अपूर्व सुयोग

किन्तु दुःखमय हो गया उसका हमें उपभोग

है असह्य हमें तुम्हारा यह विपाक्त वियोग

आज भारत हो गया स्वाधीन भी गति-हीन

थे मनुजताके अलौकिक तुम महत्तम वित्त

अतुल ज्ञानी कर्मयोगी धर्म-केतु सुचित्त

था तुम्हारे निधनका खल भारतीय निमित्त

विपुल लज्जा-शोकसे विक्षिप्त है उर-चित्त

हो गये हम आज बापू, दीनसे भी दीन

तुम रहे स्वर्गीय जितने साधु उच्च उदार

सिद्ध उतने ही हुए हम क्षुद्रतम अनुदार

देशको हमने बनाया रक्त-सिंधु अपार

मिल गयी उसमें तुम्हारे भी रुधिरकी धार

धुल सकेगा क्या कभी यह घोर पाप मलीन

चाहते थे देखना तुम राम-राज्य पवित्र

चाहते थे राष्ट्र सारे हो परस्पर मित्र

और जितने थे तुम्हारे प्रिय मनोरम चित्र

रह नहीं सकते सदा वे स्वप्न-मात्र विचित्र

दे गये हो विश्वको तुम प्रबल शक्ति नवीन

थे हिमालयके सदृश तुम सुदृढ उच्च महान
थे महा विस्तीर्ण तुम गंभीर सिंधु-समान
पुण्य-जीवन जाह्नवीसे थे शुचित्व-निधान
स्वच्छ निर्मल थे गगनसे दिव्य ज्योतिर्वान
तुम रहे स्वाधीनचेता किंतु सत्याधीन

छोडकर इस मर्त्य जगको तुम गये सुर-धाम
पर तुम्हारी दिव्य आत्मा है अमर अभिराम
वह हमें करती रहेगी बल-प्रदान प्रकाम
हम करेंगे भक्तिसे उसको सदैव प्रणाम
स्तुति करेगी सभ्यता प्राचीन अर्वाचीन

रह गये हैं जो तुम्हारे शेष विमलादर्श
है मिटा सकते नहीं उनको हजारों वर्ष
दूर होगा बस उन्हींसे सृष्टिका संघर्ष
और होगा शुचि परस्पर प्रेमका उत्कर्ष
कर गये हो तुम अमर निज सभ्यता प्राचीन

धीरताके, वीरताके तुम रहे अवतार
सह्य था तुमको कहीं कोई न अत्याचार
बंधु सब मानव तुम्हे थे, विश्व था परिवार
शत्रुको भी प्राप्त था अनुपम तुम्हारा प्यार
हृदय-मंदिरमें रहोगे तुम सदा आसीन

है समाप्त हुआ तुम्हारा सफल विश्व-प्रवास
किंतु उर-उरमें तुम्हारा है निरंतर वास
लोकमें छाया तुम्हारा है अनंत प्रकाश
सिद्ध करनेको तुम्हारे सब असिद्ध प्रयास
काल भी हमसे तुम्हारी स्मृति न सकता छीन
हो गयी है विश्वकी वर विमल ज्योति विलीन

—गोपालशरण सिंह

वज्रपात

टूटी पहाड़-सी अशनि धार, सब तरह हमारा ह्रास हुआ
रोने दो, हम सब मिटे हाय, रोने दो सत्यानाश हुआ
हा! तरी भँवरमें डोल और पतवार हाथसे छूट गयी
रोने दो हाय अनाथ हुए, रोने दो किस्मत फूट गयी
कैसा अभाग्य! अपने हाथों ही हाय! स्वयं हम छले गये
यह भी न पूछ सकते बापू, क्यों हमें छोड़ तुम चले गये
पापी, तूने क्या किया हाय, जिसपर यह दारुण वार किया
यह वज्र गिराया कहाँ हाय, जिसका अकारण संहार किया
वह देश फटी जिसकी छाती, पहचान, कौन निश्चेत गिरा
किसकी किस्मतमें आग लगी, किसका उगता सौभाग्य फिरा
यह लाश मनुजकी नहीं, मनुजताके सौभाग्य-विधाताकी
बापूकी अरथी नहीं, चली अरथी यह भारत माताकी
तपसे पवित्र वह देह और वह हँसी अमृत देनेवाली
चालीस कोटिकी नौकाको वह एक मूर्त्ति खेनेवाली
अब नहीं मिलेगी कहीं नयन, दर्शनकी व्यर्थ न आस करो
बापू सचमुच ही चले गये, भोली श्रुतियो, विश्वास करो
बापू सचमुच ही गये, निखिल भूमण्डलका शृंगार गया
बापू सचमुच ही गये, विकल मानवताका आधार गया
बापू सचमुच ही गये, जगतसे अद्‌भुत एक प्रकाश गया
बापू सचमुच ही गये, मूर्त्तिपरसे हरिका आभास गया
किरणें समेट फिर नवी एक भूतलको कर श्री-हीन चला
फिर एक बार मोहन यशुदाको सभी भाँति कर दीन चला
यह अवधपुरीके राम चले, वृन्दावनके घनश्याम चले
शूलीपर चढ़कर चले ख्रीष्ट, गौतम प्रबुद्ध निष्काम चले
प्यासेको शोणित पिला, तोड़ कोई अपनी जंजीर चला
दानवके दशोपर हँसता यह स्वर्ग देशका वीर चला

धरतीको आकुल छोड़, मनुजताको करके म्रियमाण चले
बापू दे अंतिम बार जगतको हृदय-विदारक दान चले

आकाश विभासित हुआ, भूमिसे हरिका लो, अवतार चला
पृथ्वीको प्यासी छोड हाय, करुणाका पारावार चला

चालीस कोटिके पिता चले, चालीस कोटिके प्राण चले
चालीस कोटि हतभागोंकी आशा, भुजबल, अभिमान चले

यह रूह देशकी चली अरे, माँकी आँखोंका नूर चला
दौड़ो, दौडो, तज हमें हमारा बापू हमसे दूर चला

रोको, रोको, नगराज पथ, भारत माता चिल्लाती है
है जुल्म! देशको छोड देशकी किस्मत भागी जाती है

अम्बरकी रोको राह, बढो नगराज, शून्यमें जा ठहरो
बापू यह भागे जाते हैं, चरणोंको बढ़ पकड़ो-पकड़ो

पकड़ो वे दोनो चरण, पकड़ कर जिन्हे हमें सौभाग्य मिला
पकड़ो वे दोनो चरण, जिन्हे छूकर जीवनका कुसुम खिला

पकड़ो वे दोनो चरण, दासता जिनके सेवनसे छूटी
पकड़ो वे दोनो पद, जिनसे आजादीकी गंगा फूटी

जल रहा देशका अंग-अंग, शीतल घनको पकडो पकडो
भारत माता कंगाल हुई, जीवन-धनको पकडो पकड़ो

है खड़ा चतुर्दिक काल, दासता-मोचनको पकड़ो पकड़ो
माता खा गिरी पछाड़, भागते मोहनको पकड़ो पकडो

है बीच धारमें नाव, खबर है प्रलय वायुके आनेकी
थी यही घड़ी क्या हाय! हमारे कर्णधारके जानेकी

दौडो, कोई जा कहो नाव किस्मतकी डूबी जाती है
बापू! लौटो, अंचल पसार भारतमाता गुहराती है

किस्मतका पट है तार-तार हा, इसे कौन सी पायेगा
बापू! लौटो, यह देश तुम्हारे विना नहीं जी पायेगा

अपनी विपन्नताकी गाथा यह रो-रो किसे सुनायेगी
बापू! लौटो, भारतमाता रो विलख-विलख मर जायेगी

दुनिया पूछेगी कुशल हाय, किससे क्या बात कहेंगे हम
बापू! लौटो, सिर झुका, ग्लानिका कैसे दाह सहेंगे हम

—दिनकर

बापूके प्रति

गुण तो निःसंशय देश तुम्हारे गायेगा
तुम-सा सदियोंके बाद कहाँ फिर पायेगा
पर जिन आदर्शोंको लेकर तुम जिये-मरे
कितना उनको कलका भारत अपनायेगा

बायें था सागर औ' दायें था दावानल
तुम चले बीच दोनोंके साधक सँभल सँभल
तुम खड्ग-धार-सा पथ प्रेमका छोड़ गये
लेकिन इसपर पाँवोको कौन बढ़ायेगा

जो पहन चुनौती पशुताको दी थी तुमने
जो पहन दनुजतासे कुश्ती ली थी तुमने
तुम मानवताका महाकवच तो छोड़ गये
लेकिन उसके बोझेको कौन उठायेगा

शासन सम्राट डरे जिसकी टंकारोंसे
घबरायी फिरकेवारी जिसके वारोंसे
तुम सत्य-अहिंसाका अजगव तो छोड़ गये
लेकिन इसपर प्रत्यंचा कौन चढ़ायेगा

—बच्चन

युग-पुरुष

अपनी कुर्बानी को, दुश्मनका किया सर नीचा
कौमका ध्यान गोया सत्यकी जानिब खींचा
युग-पुरुष, ऐक्यका पौधा जो लगाया तूने
मरते दमतक भी उसे खूने-जिगरसे सींचा

—अख्तर

एक क्षण

मृत्युके क्षणका यह विस्फोट, ढह गये क्षितिज तीरके पाश
तमसके बिखरे शत शत् खड, उफनता आता क्षुब्ध प्रकाश
वहाँ मरघटके घायल तीर, बुझ गयी होगी चिता अधीर
यहाँ जग गयी नयी ही ज्वाल घोर कुठाका अम्बर चीर
नयी मानवताका अभियान, रक्तका पावन कर अभिषेक
पराजित दानवके शत जन्म, मृत्युका विजयी यह क्षण एक
युग-युगोतक जीनेकी साध, अमरताकी सूनी अभिलाष
मृत्युके अमृतकी यह घूँट मिट गयी जलती युगकी प्यास
उठी तमकी घन छाती फाड वेदनाके प्रकाशकी ज्वाल
कभीकी धुँधुँवाती जल उठी चेतनाकी बुझ चुकी मशाल

—अग्रदूत

मानव ही दानव बनता है

शांति जगतमें जिसने भर दी, सत्याग्रहकी किरण अमर दी
उसी देवताकी दनुजोंने गोमहपिणी हत्या कर दी
फूट फूट रो रही हाय अब उसी जनार्दनकी जनता है
काल व्यालने हाय दबाया, किंतु न कुछ कम दोष हमारा
'नर ही नारकीय दुष्टोंको जनता है', हमने न विचारा
तभी हृदय-चलनीमें छनकर रक्त हमारा यों छनता है
बीज पिशाचोंका बो डाला, कोहनूर अपना खो डाला
विधिने पटपर युग-युगसे जो चित्र बनाया था, धो डाला
आज इसी 'सोनेके पंछी' से बढ़ किसकी निर्धनता है
देखा जब बापूको सोये, चीन - अरब - अमरीका रोये
एक पुरुषमें वर्द्धमान - जरथुस्त्र - बुद्ध - ईसा सब खोये
परम पुरुषको कापुरुषोंका पौरुष भी कैसे हनता है
हे बापू भारतके दर्पण, स्मृतिमें कौन करे क्या अर्पण
देश देशके कोटि-कोटि दृग करते आज तुम्हारा तर्पण
तुम नभमें चढ़ चुके, हमारा पतन यहाँ खाई खनता है

—अनिरुद्ध

वेद ऋचाएँ थीं साँसोंमें

वेद ऋचाएँ थीं साँसोंमें मुक्ति बसी थी तनमें
दृष्टि भरी थी वरदानोंसे मूर्त क्रिया थी मनमें
स्वर्ग विकल होता था बापूकी आत्माके दुखसे
'रामनाम' उज्ज्वल होता था कढ उस करुणा-मुखसे
जीवित था विश्वास और संकल्प हृदय-कंपनमें
बिम्बित होती थी शिवता मुस्कानोंके दर्पणमें
देह जली पर प्राणोंका प्रह्लाद नहीं जल पाया
कौन जला पाया हिमगिरिको, कौन बुझा शशि पाया

चुका वक्षका रक्त अपरिमित प्रेम-सिधु जीवनका
देता रहा मोल जो युग-युगके अभिशप्त मरणका
अधिदेवत्व क्षमाका, मानव ममताकी ईश्वरता
मूर्त हुई थी तापस तनमें पर-सेवा-वत्सलता

कौन सुनेगा अब पुकार पीड़ित जगके जन-जनकी
कौन हरेगा दाह-तृषा चेतनताके कण-कणकी
हाड़-चामकी पुतलीमें बलिकी बिजलीका चालक
त्यागाहुतिके भोलोंका अरुणाभ-पुण्यका पालक

ऐसा था देवर्षि हमारा बापू राष्ट्र-विधाता
ऐसा था वह अमर ज्योतिका अबुझ दीप्तिका दाता
निर्वापित हो गयी आरती 'राम-नाम'के जपकी
काँप रही है नीचे फिर श्रद्धा निष्ठाकी, तपकी

वेद ऋचाएँ थीं साँसोमें सत्य-शिखा अतरमें
पद-रजमें सतत्व बसा था, देवसृष्टि थी स्वरमें
रोम रोमसे चैत चाँदनीका चन्दन झरता था
रोता था प्रभु स्वय कि जब बापूका मन मरता था

वह सहिष्णुताका देवल वह शांति-स्नेहका सबल
वह तन्मयताका स्वामी उज्ज्वलतासे अति उज्ज्वल
थी सदेह अवदात विमलता उस निष्कामी तनमें
वेद ऋचाएँ थीं साँसोमें राम मूर्त था मनमें

—अंचल

गांधीजी अमर हैं

बहरे बने हैं कान, चारों ओर शोर मचा
उरमें उठी गयी शोक-सिंधुकी लहर है
निर्दय विधाता, इतना तो तू भी जानता है
अहसान उनके अखिल विश्वपर है
सत्यके स्वरूप, अवतार वे अहिंसाके हैं
शांतिका संदेशा पहुँचाते घर-घर हैं
कालकी मजाल क्या, जो फूटी आँखसे भी देखे
अम्बके विचारमें तो गांधीजी अमर हैं

—अम्बादत्त शर्मा 'अम्ब'

शमए-महफिल बुझ गयी

पैकरे इंसानियत आईन-ए-अम्नोअमाँ
देवता अखलाकका तहजीबका शाहेजहाँ
ऐ कि जिसके दमसे था हिंदोस्ता रश्के जनाँ
ऐ कि जिसके हर कदमपर पाये-रफअतका निशाँ
जिसने हमको राहे आजादी दिखाकर दम लिया
जिसने हमको ख्वाबे गफलतसे जगाकर दम लिया
जिसने एक झटकेसे जंजीरे गुलामी तोड़ दी
हिंदकी फूटी हुई देरीना किस्मत जोड दी
उफ् कि एक ना-अक्लके हाथों ये हस्ती मिट गयी
याने महफिलको जगाकर शमए-महफिल बुझ गयी

—अमीर जाफरी

गोली तेरी चली कहाँ

छिदा कलेजा सपूतका ममताकी छाती गयी दहल
आज आँसुओसे तर हैं दुखिया भारत माँका आँचल,

खुले बाल खा-खाके पछाड़ें आज दुहाई देती है
भारतमाताकी आह कानमें साफ सुनाई देती है

अरे निर्दयी नर-पिशाच क्यो गोद मेरी सूनी कर दी
क्यो मेरी ममताकी क्यारी निर्मम तिरशूलोसे भर दी

आह, मेरा लाड़ला मेरी आँखोका तारा किधर गया
हाय-हाय वह वीर सपूत, वह गाधी प्यारा किधर गया

कौन अहिंसाकी मीठी-मीठी अब तान सुनायेगा
कौन वह सञ्झा समय प्रेमकी मधुर रागिनी गायेगा

कौन बहायेगा आंसू अब अत्याचारके मारोंपर
सच्ची बात कहेगा कौन अब तलवारोंकी धारोपर

हाय-हाय डूबी नैया वह वीर खेवैया नहीं रहा
दुखियारो और असहायोका बाँह गहैया नहीं रहा

देख निर्दयी, गोली तेरी चली कहाँ और लगी कहाँ
देख मेरा रक्तिम आंचल और छातीपर यह लाल निशाँ

—'आसी' रामनगरी
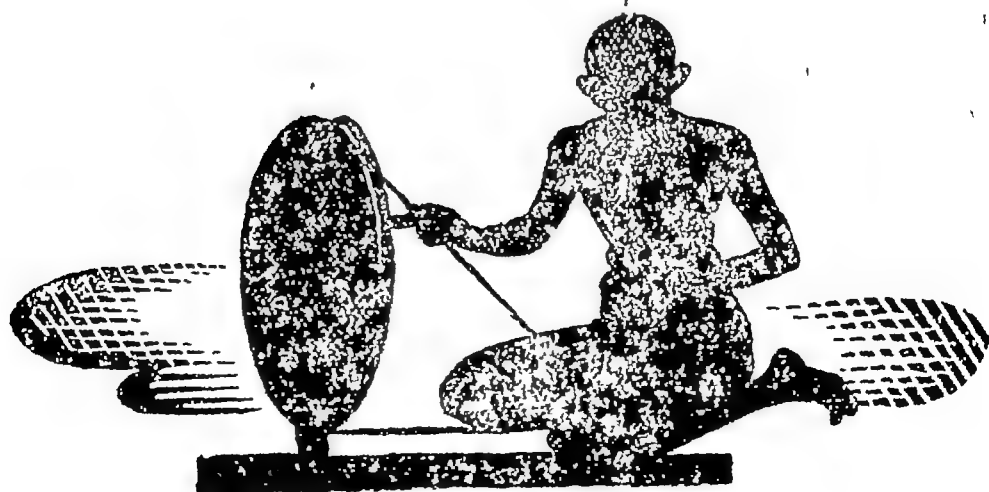
हे ज्योति-पुंज

हे वरद देव, हे ज्योतिपुंज, हे कम्पित-भू-सौरभ निकुंज
हे सत्यमूर्ति, हे दया-धाम, हे हिमकिरीटिनी-सुत ललाम
जो साध महत्वाकांक्षा आतुर, पीड़ित विताड़ित परतन्त्र देश
उसको तुमने कर दिया मुक्त, उसको तुमने कर दिया सशक्त
अपने प्राणोका रक्त देकर जो किया अकुरित वट महान
स्वातन्त्र्य - शक्ति बलका प्रतीक पल्लव-पुष्पोंसे प्राणवान
तुम महायुद्धके सेनानी, जाग्रत जीवनके नव-वसन्त
ऊर्जस्व दूत, चिर शाश्वत-गति, भारतके महिमावान सत
तुमको पाकर युग धन्य हुआ, तुमको पा देश अजेय हुआ
सुस्वर्णिम वृहदारण्य-देश विज्ञेय हुआ, अध्येय हुआ
तुमने सस्कृतिके क्षीण गगनपर एक अमिट आभा भर दी
तुमने पापोके पुंजोपर विस्फोटमयी लावा धर दी
हम आदिकालके मानवके द्वेषोंसे अभी न मुक्त हुए
हम निज पापोकी तिमिरावृत छायासे ताड़ित रक्त हुए
यह पचभूतमय नश्वर तन, नश्वर भूतोमें लीन हुआ
पर क्या प्राणोको झकृत कर देनेवाला स्वर दीन हुआ
तुम मानवताके देव, तुम्हारी वाणी जन-जन-ज्ञान बनी
तुम मानवताके प्रकट रूप, आदेश हमारा मान बनी
तुमने आजीवन जीवनमें पापोसे छलसे युद्ध किया
तुमने आजीवन जीवनमें अभिशापोको अवरुद्ध किया
था युद्ध तुम्हारा सेनानी ! भयसे, स्वार्थोसे आजीवन
तुम प्रेम-मूर्ति, तुम दया-मूर्ति, तुम विश्व-मूर्ति मानव-स्पदन

हे वरद देव, हे ज्योतिपुज
हे कम्पित-भू सुरभित निकुज

—उदयशंकर भट्ट

आह महात्मा गांधी

आकाशसे अनमोल सितारा टूटा
मन जिससे बहलता था नजारा टूटा
अब कौन लगायेगा किनारे इसको
भारत तेरी कश्तीका सहारा टूटा

सबक असनो-अमाँका देनेवाले
उनासी सालमें जगसे सिधारे
भँवरसे कश्तिए - हिंदोस्ताँ
लगायी थी अभी तुमने किनारे

तुम्हारे गमका आलम क्या कहूँ मैं
कि साँसोसे निकलते हैं शरारे
जमीपर जर्रा-जर्रा रो रहा है
फलकपर रो रहे हैं चाँद-तारे

जो हरदम थे अहिंसाके पुजारी
गये अफसोस वह हिंसासे मारे
डुबो दी 'ऐश' खुद जीवनकी नैया
लगा कर हिंदकी नैया किनारे

—'ऐश' माहेरी

महामानवकी स्मृतिमें

वज्र-सी बेडियोमे जकडी विवशा वन व्याकुल थी जब भारती
वेगसे बन्धन तोड, किसी सुतने उसकी थी उतार ली आरती
ऊँचा ललाट झुका क्षणमे अब रोकर हो असहाय निहारती
हाय ! उबारनेवाला चला गया 'मोहन मोहन' माता पुकारती

तम-तोमको भेदता ज्योति-सखा, जग-व्योममे आकर छा गया कोई
दिग-भ्रान्त विपन्नसे मानवोको महामानव मार्ग दिखा गया कोई
छल-छद्म-प्रपीडित खिन्न धरापर शान्ति-सुधा बरसा गया कोई
अपना न सके थे प्रकाश अभी युग-दीप ही हाय ! बुझा गया कोई

कोटिक प्राणियोके प्रिय प्राणको घातमे लाकर पापिन सन्ध्या
ऊपरसे अनुराग दिखा, तम अन्तर गोप, पिशाचिन सन्ध्या
दाँत विषैले चुभा कर मोहनको भी विमोहित नागिन सन्ध्या
लूट गयी हा ! सुहाग-स्वतन्त्रताका कहो कौन-सी डाकिन सन्ध्या

—कमलाप्रसाद अवस्थी 'अशोक'

जन-जनके बापू कहाँ गये

संस्कृतिका उच्चादर्श, महातपका आदर्श परम उज्ज्वल
सहसा किस ओर विलीन हुआ हा ! छोड़ विश्वको नि सबल
बापू हा ! चले गये, लेकिन किस ओर गये, किस ओर गये
हम दीन अनाथोंके 'बापू' हा, हमको यों क्यों छोड़ गये
जीवन-धन बापू कहाँ गये
जन-जनके बापू कहाँ गये

वे चले गये अवसे ऊपर, द्युतिके चिर ऊर्जस्वल पथपर
वे चले गये हा, तोड़ तुच्छ पार्थिव जीवनके बन्धन-स्तर
उस पापीको क्या कहें कि जिसने उनके ऊपर वार किया
हा, बापूका ही नहीं मनुजताका उसने संहार किया
बापूके ऊपर वार ! आह, यह कितना निर्घृण कर्म हुआ
सब लोग कहेंगे युग-युगतक वस्तुत: कलंकित धर्म हुआ
मानवताके रक्षकके शोणितसे मानवने खेल किया
ओ दुर्विनीत, तूने वसुन्धराको श्री-हीना बना दिया

था अभी शेष वह कर्म कि जो बापूको था जीसे प्यारा
फैले इस रूक्ष धरित्रीपर चिर शुचिता-समताकी धारा
फैले फिर पारस्परिक स्नेह, बिछुड़े भाई फिर गले मिले
जुट जाये टूटा सूत्र प्रेमका, फिर स्वर्गीय प्रसून खिले
पर सर्वनाश हो गया, रूठ कर बापू हमसे चले गये
दुर्दैव ! संकटोंमें ही हम हा ! आज बेतरह छले गये
पर क्रोध करो मत ओ जन-गण, बापूको अब भी पहचानो
आत्माहुति देनेपर भी तो तुम बापूकी बातें मानो

मत क्रोध करो, यह कठिन परीक्षाका अवसर है याद करो
मत क्रोध करो, यह वज्रपात ! लेकिन मनमें तुम धैर्य धरो
यह विष पी लो तुम वैसे ही, जैसे बापू पीने आये
हाँ, विष पीकर तुम जियो कि ज्यों बापू पीकर जीने आये

बापू सच्चे 'वैष्णव-जन' थे पर-पीर उन्होंने जानी थी
आत्मिक जीवनका प्रकटि-करण उनकी लोकोत्तर वाणी थी
वे चले गये, पर एक बात उनकी स्थिर होकर स्मरण करो
आत्मा अछेद्य, आत्मा अभेद्य, आत्मिक जीवनको नमन करो
उनकी आत्माकी किरणें जन-गणके मनको ज्योतित कर दें
उनकी आत्माकी किरणें, भूतलको प्रकाशसे फिर भर दें
है अनुपमेय वस्तुत विश्वमें बापूका बलिदान
वे मरे कहाँ, दे गये मृत्युको शाश्वत जीवन-दान

—कन्हैया

महादान

उस मोहक सन्ध्याके पीछे कुछ दुष्कृत्योके छिपे हाथ
उजले प्रकाशके अन्तरमें काली छाया थी साथ-साथ
दितिकी सेना आसुरी शक्ति, थी अदिति अकेली थकी हार
माँगने चली थी महा अस्त्र, असफल करने भीषण प्रहार
दिति-अदिति साथ ही पहुँची थीं लेने मोहनसे महादान—
'दिति यहाँ तुम्हारा जित शरीर, प्रिय अदिति तुम्हार अजित प्रान'
क्षण एक प्रतीचीका अचल हो गया रक्तसे लाल-लाल
नभने सस्मित आँखें खोलीं उठ गया अवनिका उन्च भाल

—कन्हैयासिंह 'तरुण'

बापूके निधनपर

घुमड़ पडे है घन विषम विपत्तियोंके, उमड़ पडा है हाहाकार चारो कोदसे
ऐसे टेकवालेपर टूटा किस भांति हाय, छोडके विवेक एक उद्धत प्रतोदसे
देशको उजाड़ जडतासे दिया, चूर किया, प्रबल प्रमोद-हीन विरत विनोदसे
हाय! आज गोडसेने छीन लिया गान्धी-रत्न, मातृभमि खडिता प्रपीडिताकी गोदसे

—कान्तानाथ पाण्डेय 'राजहंस'

आज विश्वमें हाहाकार

हा, बुझ गया दीप ज्योतिर्मय
था शिवरूप दिव्य जो निर्भय
अन्धकार उरमें करता है आज पुनः भयका संचार
दृगने हार-अार झरते मोती
मानवता सिर धुनकर रोती
और पूछती आज विश्वसे—'हाय कहाँ मेरा शृंगार'
रवि-शशि रोते, वसुधा रोती
गंगा-यमुना रोकर कहती—
आज विश्वमें मानवतापर किया कालने कठिन प्रहार

—कालूराम अखिलेश

इस चिताकी राखमें

इस चिताकी राखमें कोई नया युग खोलता है
यह चिताकी राख है—बापू इसीमें छिप गये हैं
भावना ऐसी कि इसमें देवता-से दिख गये हैं
राख है—यह देशका अरमान है—ईमान भी है
राख है—यह देशका आँसू-भरा वरदान भी है
राख है—इसमें हमारे देशका इतिहास भी है
राख है—इसमें हमारी प्रगति और विकास भी है
यह चिताकी राख है— इसमें स्वदेश समा गया है
यह चिताकी राख है—इसमें नया युग आ गया है
अश्रु-गीली राख यह, इस देशको अवदात कर दे
युग-पुरुषकी राख यह फिरसे नवीन प्रभात कर द
इस चिताकी राखमें मेरा मसीहा बोलता है
इस चिताकी राखमें कोई नया युग खोलता है

—'कुमारहृदय'

गांधी दीप जलाने आया

गांधी दीप जलाने आया

आभा-पुञ्ज, प्रकाश-स्रोत-निःसृत अम्बरमें छाने आया
पराधीनता अमा-निशामें मधु राका फैलाने आया
कोटि-कोटि हिय-दीप जले, चिर-मुक्ति-प्राप्ति-हित सब अकुलाये
सेनानी बढ़ चला समर-पथमें स्वतंत्रता-ध्वज फहराये
हिन्दू-धर्म-कलक दलित-व्यवहार-भेदको धोनेवाला
जागरित आत्मा, तपःपूत, नव सृष्टि-बीजको बोनेवाला

मानवीय इतिहास-पृष्ठमें नयी दिशा दिखलाने आया
काल अनन्त, अनन्त भीम रव, किसने किसकी सुनी यहाँपर
यह वसुन्धरा किन्तु मौन नित नमन करेगी उसे कहाँपर
पिता, तुम्हारा दीपक स्मृतिका सदा-सर्वदा जलता जाये
आत्म-स्नेह उसमें उँडेल कवि चरणोंमें तेरे झुक जाये
भावपूर्ण, निश्छल शब्दोंकी जो निज भेंट चढ़ाने आया

गांधी दीप जलाने आया

—कुँवर कृष्णकुमार सिंह

हाय बापू

विश्व-वन्द्य बापूका प्रयाण सुनते ही हाय, वज्रका भी कठिन कलेजा चूर हो गया
काटो तो शरीरमें न रक्तका कहीं था लेश, धसक धरा भी गयी आसमान रो गया
मूर्तिवत होके अवसन्न सोचते थे खड़े, ऐसे दुष्कालमें हमारा भाग्य खो गया
पागल अधीर हो समीर पूछता है यही—विश्ववाटिकामें कौन पापबीज बो गया

—कुसुमाकर

देवता-सा सच्ची मानीमें वही इंसान था

हिंदके सरपर एकाएक क्या मुसीबत आ गयी
साथ लेकर यह मुसीबत, ताजा आफत आ गयी
रंजका वक्त आ गया, सदमेकी सायत आ गयी
इस सिरेसे उस सिरेतक एक कयामत आ गयी

धर्मका अवतार था सतका पुजारी जो रहा
आज वह गांधी अजलकी गोदमें है सो रहा

जो अहिंसाका था हामिद, है जहांको इसका गम
गोलियां खाकर हुआ वह राहीये मुल्के अदम
दफ़अतन मजमामें आयी मौत लेनेको कदम
मौत उसको ले उड़ी, अब हो गये बर्बाद हम

हर कोई बेचैन है, इस सदमये जांकाहसे
है जमीं हिलती गरज जाता है गरदूं आहसे

हाय नत्थूराम कैसा काम यह तूने किया
फेले-बदसे तेरे एक शोरे कयामत है बपा
जाहिले कमबख्त तुझको ये नहीं मालूम था
रूह गांधीकी नहीं यह मुल्ककी थी आतमा

जान लेनेके लिए बेवक्त आयीं गोलियां
हर किसीके कल्वे मुजतरपर लगायीं गोलियां

गांधीपर गोली नहीं, गोली चलाकर कौमपर
टुकड़े-टुकड़े कर दिया हर शख्सका कल्बो-जिगर
कत्ल करता क्या कोई, गांधीकी हस्ती थी अमर
कौम लेकिन मर गयी गोलीसे तेरी चीखकर

मंजरे आतिश था गांधी जाके जमुना तीरपर
हिंदकी थी लाश जलती जाके जमुना तीरपर

कौन-सा वो दिल है, जिस दिलमें रहे बापू नहीं
गमजदा मक़मूम क्या हर कोई है हरसू नहीं

कौन-सी है आंख कि जिस आंखमें आंसू नहीं
क़शमक़शमें जान है दिलपर जरा काबू नहीं

देवता-सा सच्ची मानीमें वही इन्सान था
उसका कातिल भेषमें इन्सानके शैतान था

हर घड़ी उसने अजीयतपर अजीयत थी सही
फिर भी था सौ जानसे करता वो खिदमत कौमकी
है हकीकत जिदगी उसकी जो कैफे कौम थी
कौम ही पर आखिरश कुर्बान कर दी जिदगी

कौम थी उसपर फिदा वो भी फिदाये-कौम था
कौममें बेताजके फरमा रबाये-कौम था

वे लड़े स्वराज ले ले ऐसा लीडर था वही
कौम क्या इंसानियतका सच्चा रहबर था वही
जिसके आगे सर हो एक आलमका खम सर था वही
दर हकीकत वक्तका अपने पयम्बर था वही

अमनकी खातिर की उसने कौन कुर्बानी नहीं
उसका ढूंढ़ेसे भी मिलनेका कहीं सानी नहीं

ले के वो स्वराज्य, कायम कर रहा था राम-राज
कि यकायक गिर पड़ा हिंदोस्तांके सरका ताज
मौत क्या आ पहुंची उससे लेने इस्तीफो खिराज
किस्मते हिंदोस्तां ही हो गयी ताराज आज

हिंदू, मुस्लिम, सिख, ईसाई पारसी रोते हैं सब
जान अपनी-अपनी उसकी यादमें खोते हैं सब

रख सकेंगे किस तरह कायम जहांमें आनको
उसको क्या रोते हैं, रोते हैं सब अपनी जानको
क्या बढायेगा कोई अब कांगरेसकी शानको
रामराज अब कौन देगा लाके हिंदोस्तानको

गोलियां खाकर वो गहरी नींदमें है सो रहा
उसकी खातिर जान है हर शख्स अपनी खो रहा

नेहरू वो सरदारको हर राज समझायेगा कौन
हिंदू वो मुस्लिममें मिल्लतका सनद पायेगा कौन
सद दिलको गमजदोंके आगे दे जायेगा कौन
हरिजनोंके गम मिटानेके लिए आयेगा कौन

हिंदमें फैली जो थी वो रोशनी जाती रही
रौनको सूरत यह गोया कौमकी जाती रही

कुछ कहा जाता नहीं, अब क्या कहें कुछ और हम
रो रही हैं चश्मे दरियाबार दिल है महवे गम
रोशनाई यह नहीं गिरियां हुई चश्मे क़लम
क्या लिखें आसार जब अख़बारे गम यह है वहम

"कुश्ता"वो कुश्ता नहीं, कुश्ता हुई है कौम आज
गांधी तो मुर्दा नहीं मुर्दा हुई है कौम आज

—'कुश्ता' गयावी

नील गगनमें काले बादलने रो-रो कर गाया रे !

प्राण-पखेरू छोड़ चला बापूकी निर्मल काया रे
खोकर निविड तिमिरमें जगको दीपक-राग सुनाया रे
नया रूप धर जन-जनके मनमें फिर बसने आया रे
सत्य, अहिंसाका अमृत-घट हमें पिलाने लाया रे
पाप और अन्याय घृणाका काला मुख कुम्हलाया रे
विश्व एक घर है, धरतीपर एक रामकी माया रे
वही भक्त है गांधीजीका जो पर-दुख हर पाया रे
नील गगनमें काले बादलने रो-रो कर गाया रे

—कृपाशंकर शर्मा

धरतीका सायंकाल हुआ

सूरज डूब गया धरतीका सायंकाल हुआ
काल-पुरुष मिट गया, धराका सूना भाल हुआ

आदि ज्योति उठ गयी आज मिट्टीके घेरे पार
युगकी अक्षय आत्मा सिमटी बनी एक चीत्कार
आज समयके चरण रुक गये, हुई प्रलयकी हार
महापूर्णता मानवताकी छोड़ गयी ससार
मरकर मानव अमर बना, लघु रूप विशाल हुआ,
सूरज डूब गया धरतीका सायंकाल हुआ

रुग्ण धरापर जमी हुई थीं, सदियाँ बन प्राचीर
मानवतापर कसी युगोंसे पापोकी जजीर
ईसा-बुद्ध खडे नतशिर, थीं खिंची शक्ति-शमशीर
तुमने धरतीके माथेसे पोंछी रक्त - लकीर
मृत प्रतिमा जागीं जीवित जगका ककाल हुआ
सूरज डूब गया धरतीका सायंकाल हुआ

एक अशेष दुखद सपने - सा उलझा था संसार
दिनमें जले दीप-सा जीवन हतचेतन निस्सार
मिट्टीको चिर सृजन शक्तिका ले विराट आधार
तुम हर कनसे उठा सके मानवताके अवतार
पथकी हर पद-चाप क्राति, हर चिन्ह मशाल हुआ
सरज डूब गया धरतीका सायंकाल हुआ

यकी ज्योतिका तिमिर-ग्रस्त संघर्ष हुआ गतिमान
इतिहासोके अंधकारसे ऊब गया इंसान
हार गयी आत्मापर आकर पशुताकी चट्टान
कष्टोसे पंकिल मानवता उठी बनी हिमवान
जनता हुई अजेय, नया जीवन जयमाल हुआ
सूरज डूब गया धरतीका सायंकाल हुआ

किंतु तिमिर फिर उभड़ा करने अन्तिम अस्त्र प्रहार
धर्म, जाति हिंसाको लेकर तक्षक-सी तलवार
मनुज जला, शैतान उठा देवत्व हो गया क्षार
साम्राजी बीजोंसे उगे शस्त्र-समान विचार

सहसा विप्लवके दीप बुझ गये, बुझे गरल-तूफान
भस्म हुआ तम, कर प्रकाशको रक्त-अग्निका पान
तपमें रची अस्थियोंसे जन-वज्र हुआ निर्माण
मिट्टी नवयुग, तनका हरकन रविकी नयी उठान
तुमने मरकर मृत्यु मिटा दी, विश्व निहाल हुआ
सूरज डूब गया धरतीका सायकाल हुआ

—गिरजाकुमार माथुर

कैसे तुमपर अश्रु बहायें

हे विश्वशांतिके स्वप्न-दूत, शापित धरतीके कुल-नन्दन

फूलोंके फूल ! कुचल तुमको तुमपर क्या फूल चढ़ायें हम
दीपोंके दीप ! बुझा तुमको क्या लघु-स्मृति-दीप जलायें हम
पापीके आंसूसे छाले पाषाणोंपर भी पड़ जाते
जलदान तुम्हे कैसे दें, कैसे तुमपर अश्रु बहायें हम
यह होगा तुमपर व्यंग ऋषे, अपमान तुम्हारे शवका यह
हम रक्त-रंगे हाथोंसे कैसे करें तुम्हारा अभिनन्दन

हमको न क्षमा कर पायेंगी बंदी-घरकी काली रातें
शत-शत बलिदानोंसे रंजित फांसीकी कुहरमयी प्रातें
खेतोंकी भरी-भरी आंखें, चौपालोंकी उखड़ी सांसें
निर्वासित जीवनपर छायी भारतकी भटकी बरसातें
अब तब प्रायश्चित होगा जब आदर्श तुम्हारे सम्मुख रख
हर नारी-नर विचरें हे देव, तुम्हारे जीवित स्मारक बन

कितने निर्जन गिरि, मरु, काननमें फूंक दिया तुमने जीवन
युग–चेतनताकी अलकोमें सिन्दूर तुम्हारे पद-रज-कण
तुम थे हारे चरणोके बल, दुखियारे नयनोके सम्बल
बरसाया तिमिरावर्त डगरपर तुमने किरणोका सावन
शतयुग कल्पोके नभ-चुम्बी पथदाता दीपाधारोमें
अविराम जले निष्काम तुम्हारे चिन्तन क्षण, ज्योतित स्पंदन

बह चले विश्व बंधुत्व विमल, मन्दाकिनि-सा मंथर-मथर
ममता, समता, एकता स्वर्ण कुमुदो-सी जिसकी लहरोंपर
हो आँखो-आँखोमें विहान, माथे-माथेपर स्वाभिमान
साँसों-साँसोमें प्रीति–ज्वार, प्राणों-प्राणोमें मरु–उर्वर
वर दो ! श्रमजीवी, कृषक, ग्वालबालोंका मानव हो ईश्वर
काले अतीतके मस्तकपर मंगल किरणोका हो चंदन

—गिरधर गोपाल

सत्य-सेवकोंकी है परीक्षा मौत

सत्य-प्रतिपादनमें कभी नही पाया भय, माना सुकरातने स्व-मान विष पीनेमें
देते सत्य उपदेश शूलीपर चढ़े ईसा, राग नहीं देखा मिथ्या जीवनके जीनेमें
'नवरत्न' सत्य-सेवकोकी है परीक्षा मौत, उसे पार करना है उनके करीनेमें
कृष्णके चरण बीच प्राणघाती लगा बाण प्राणहारी गोली लगी गाधीजीके सीनेमें

—गिरधर शर्मा 'नवरत्न'

मृत्युञ्जय गान्धी

हे कर्मवीर, हे मृत्युञ्जय, तुम सारे जगके मन्त्र वने
कन-कन, मन-मनमें व्याप्त रहे, तुम वंधन तोड़ स्वतन्त्र वने
जल रही आग थी हिंसाकी, जीवन दे उसको वुझा दिया
उस अमर ज्योतिने अंधकार हर, मार्ग सत्यका सुझा दिया
तप कर जीवनकी आहुति दे, मुर्देमें जिसने प्राण दिया
वन गया विश्व सारा पतंग, जव दीपकने निर्वाण लिया
वन गये फूल भारत माँके वे जलते शवके अंगारे
वह तो सुगंध वन फैला है, क्या मार सके हैं हत्यारे
जो सत्य, अहिंसा, विश्व-प्रेमकी नयी त्रिवेणी लाया है
उसने माताको मुक्त वना जीवनका फूल चढाया है
यह फूल कुंभमें आया है, इसका भी कुंभ मनायेंगे
अव सत्य-प्रेमके संगममें मानवको देव वनायेंगे
यह रोनेका है समय नहीं, उसके पथके अनुरक्त वनो
वन पंथ-प्रदर्शक सव जगके गांधीके सच्चे भक्त वनो

—गुरुभक्त सिंह 'भक्त'

वह कौन

महाशून्यमें कौन वढा जा रहा लकुटिया अपनी टेक
अंवर-चुम्वी हिमशृंगोपर जिसके प्रतिपदपर सुकुमार
विकस रहे नक्षत्र-कमल पद-चिह्न, स्वर्ग करता अभिषेक
मंदाकिनि-पय-धारासे, पाटल-पुष्पोका पहने हार
शची अप्सरापरा कर रहीं सुमन-वृष्टि, उनचास पवन
सप्त-सिंधु, दश दिशा, अष्ट-वसु, रुद्र ग्यारहों, वरुण, कुबेर

लुटा रहे, मणिकोष विनत पलकोसे करते मधुर स्तवन
छाया करता शेष स्वय आ, निज अशेष फणमडल घेर
वह लघु सुमन-देह कृश, कंपित मानव भाग्य-सूत्र-सी-क्षीण
डग-मग पगके, जगमग वसुधा, जिनकी पद-नख-द्युतिको चूम
देख रहा मैं हाय, देखते अभी हो गयी किधर विलीन
तड़ित-ज्योति-सी, विकल चेतना चक्राकार रही है घूम
अंधकार घन, सृष्टि अतलमें चली, प्रकपित तारा-लोक
मानवताके महानाशको आज कौन पायेगा रोक

—गुलाब

सर्वस्व हमारा भस्म हुआ

होली हो ली, रह गयी राख
सदियोसे हम रंगकी होली ले चंग खेलते आये थे
प्रियपर अनुराग भरे कुमकुम रस-रग रेलते आये थे
प्रति वर्ष फागकी मस्तीमें हम बसुध-से हो जाते थे
हर्षोन्मद नवयौवन-मदमें तिरते थे, गोते खाते थे
पर अपने इस अक्षय सुखपर हा! असमय वज्र-निपात हुआ
भारत-माताके शतदलपर हा हत! तुषाराघात हुआ
अपने ही हाथोसे अपने कुल, राष्ट्र, धर्मपर गिरी गाज
'हे राम-राम' कहते-कहते बापूका तन प्रणिपात हुआ
छिप गया चाँद, घिर गयी अमा, दिग्दिगमें फैला कृष्ण-पाख
होली हो ली, रह गयी राख
हर बार कहा करते थे वे, "हो सावधान दुनियावालो
उठती होलीकी लपटोमें कल्मषको अरे, जला डालो

अब तोड़ मन्दिर-मसजिदके बंधन, भाई-भाई मिल जाओ रे
मानवता तुम्हें पुकार रही भूतलको स्वर्ग बनाओ रे!"
पर कहते-कहते भी उनके हम खूनी होली खेल उठे
अपनी होली तलवारोंपर अपने ही सिरको तोल उठे
हम चले वीर बननेपर लज्जाको भी लज्जित कर डाला
माँके लज्जित अरमानोंको उन्मत्त पगोंसे ठेल उठे
हमने न एक मानी उनकी, वे समझाते ही रहे लाख
होली हो ली, रह गयी राख

अब क्या होली, किसने होली, जब कुशल खिलाड़ी चला गया
जिसको तूफान हिला न सके, वह अपनों ही से छला गया
अब क्या गुलाल, कैसा चंदन, कालिखसे काला भाल हुआ
जिसका कोई प्रतिकार नहीं, ऐसा दुष्कर्म कराल हुआ
अमृतके झरने झरते थे जिस महापुरुषकी बोलीमें
सद्भाव समुन्नत होते थे जिस महामनाकी झोलीमें
गोलीसे प्राण गये उसके धिक्कार राष्ट्रके पौरुषको
सर्वस्व हमारा भस्म हुआ सन् अड़तालिसकी होलीमें
संततियाँ युग-युग कोसेंगी मानवताकी मिट गयी साख
होली हो ली, रह गयी राख

—गोपालप्रसाद व्यास

तुम आज बने मृत्युंजय

सिसक रहा है सिधु, हिमालय चुपके-से रोता है
यहाँ मसीहा मानवका चिर निद्रामें सोता है
तुम अलक्ष्यके पथिक बन गये, दीप बुझ गये सारे
विश्व खोजता है पथमें खोये पग-चिह्न तुम्हारे
इस सकटकी विषम घड़ीमें कैसे पाप जगे हैं
अरे, कौन-से युगके सोये ये अभिशाप जगे हैं

मिटे तुम्हारा रक्त-पान कर अब तो यह दानवता
युग-युग तक भारत रोयेगा, रोयेगी मानवता

ज्वालाओंके पथिक, ज्योतिकी किरणें देते जाओ
कोटि-कोटि-जनकी आँखोंके आँसू लेते जाओ
राम, बुद्ध, ईसा, अशोकके तुम हो महासमन्वय
बापू, हालाहल पीकर तुम आज बने मृत्युञ्जय

बापू, रोक नहीं पायेगी आज पुकार हमारी
किंतु तुम्हारे साथ चलेगी जय-जयकार हमारी
सत्य-अहिंसाके प्रतीक हे, तुम ओ सदा अनश्वर
बापू, तुम इतिहास बन गये, युग-युगके परमेश्वर

आज तुम्हारी पुण्य-चितासे निकली जो चिनगारी
राख बनाकर ही छोडेगी बर्बरता हत्यारी
है स्वीकार चुनौती मानवको बर्बर कातिलकी
जनता आज मिटा देगी जुर्रत कायर बुजदिलकी

लहू तुम्हारा नये जागरणका दिनमान बनेगा
बापू, तव बलिदान नये युगका अभिमान बनेगा
तुम आधार-शिला हो, इसपर दुर्ग महान बनेगा
बापू, यह विषपान भविष्यत्का कल्याण बनेगा

मुक्त हो गये, अहे महामानव, मानवके तनसे
मुक्त हो गये ओ विद्रोही, जीवनके बंधनसे
विश्व-शांतिके दूत, शांतिकी वेदीके बलिदानी
बापू, तुम बस शेष रह गये बनकर एक कहानी

बापू, मार्ग-दीप बन जलना घोर ध्वांतमय मगमें
तुम सुकरात बनोगे नव पीढ़ीके भावी-युगमें
तुम युगका विश्वास बन गये बलि-वेदीपर चढकर
बापू, तुम इतिहास बन गये युग-युगके परमेश्वर

—घनश्याम अस्थाना

युग-निर्माता

बापू !
तुम मानवकी संचित विभूतियोंकी
करुणा और शांति
स्नेह-ममताकी प्रतिमा थे
प्रतिमा वह बनी,
पाषाणकी ?
पाषाणकी क्या तुलना
उन अस्थियोंसे
जिनमें वह शक्ति थी
कि हिल उठी सुदृढ़
चट्टानके धरातलपर
वैभवसे विजड़ित
साम्राज्यकी काली शिला।

आज उन अस्थियोंका
शेष भी रहा है नहीं।
उनका विसर्जन हो
देशकी धमनियोंमें
गंगा और यमुनाके प्रवाहमें
करेगा निर्माण युग-चेतनाका
अल्लाह और ईश्वरका।
भेद ही मिटानेमें
खोये जो प्राण
वह सत्यकी लकीर
बन अमिट रहेगा
चिर-कालतक हमारे बीच
भावनाके देश में

—चन्द्रचूड़
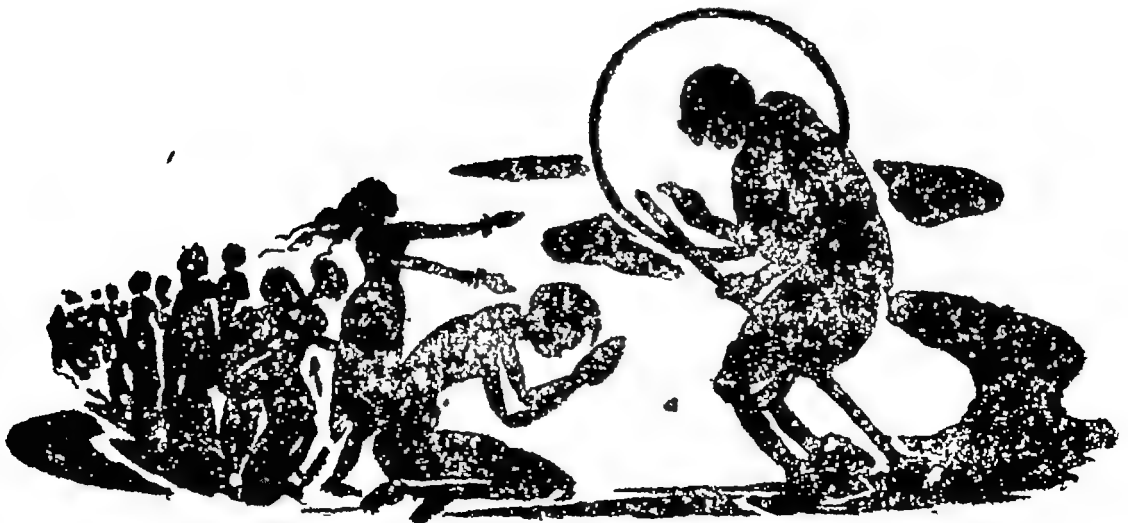
अवतार कौन

वे क्षण जिनमें निश्चेष्ट हुआ था वह शरीर
कोदंड-कालके थे वे सबसे तीक्ष्ण तीर
वे तीर छोड़ वह काल हुआ होगा अचेत
विधि कांप उठा होगा थर-थर देवों समेत

विधिकी रचना विधिका कर बैठी आज नाश
यह सर्वनाश ! यह सर्वनाश ! यह सर्वनाश
रो पड़ी मृत्यु——कितना अपयश, कितना कलंक
वह उज्ज्वल कितना, कितना मेरा श्याम अंक

कह उठा शेष——अब धर दूँ भूमंडल उतार
लाखो पहाड़ पापोके मेरे फण हजार
वह ऊपरको खींचे था ठहरी रही सृष्टि
अब कैसे झेलूँ एकाकी यह भार-वृष्टि

प्रलयंकर बोला——पटक चरण, जय महाकाल
परिवर्तनको उत्सुक तांडवकी ताल-ताल
दिशि-दिशिमें छाया प्रश्न मौन, यह प्रश्न मौन
अब होगा फिर अवतार कौन ? अवतार कौन

——चन्द्रप्रकाश सिंह
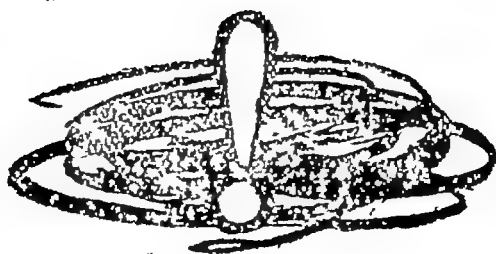
आज स्वर्ग भी रोया

इस धरतीका रोना सुनकर आज स्वर्ग भी रोया

कोटि-कोटि कण्ठोंकी वाणी लौटी शून्य गगनसे
सब कुछ तो तुम बता गये हो अंतिम मौन नमनसे

माना यह अनबोली छवि, पर तुम तो बोल रहे हो
भावोंका इतिहास-पृष्ठ चुपके से खोल रहे हो

गये मांग चिर-विदा, जानकर कौन नींद भर सोया
इस धरतीका रोना सुनकर आज स्वर्ग भी रोया

इस धरतीका राष्ट्र-देवता क्या मरकर मर सकता
पूछ रही है माँ इस युगसे कौन घाव भर सकता

अपने घरमें आग लगा बैठे अपने घरवाले
गर्वित होकर पूछ रहे भारतसे बाहरवाले

ब्रह्माने भी शशि-कलंकको नहीं आजतक धोया
इस धरतीका रोना सुनकर आज स्वर्ग भी रोया

भाव सभीके पास भरे है किंतु नहीं है भाषा
रुक-रुक जाती है यह तूली लिखनेसे परिभाषा

जो अविदित या विदित किया तुमने अपनेको खोकर
तुम स्वीकार करो श्रद्धांजलि हम सब देते रोकर

बिखर गयी वह राशि राष्ट्रकी तुमने जिसे सँजोया
इस धरतीका रोना सुनकर आज स्वर्ग भी रोया

—चन्द्रमुखी ओझा 'सुधा'

वह विश्ववंद्य

शत-शत कोटि हृदयका वासी, जो जनताका जीवन-प्राण
युगका ले सन्देश उसीने किया स्वर्गको महा प्रयाण
स्वतन्त्रताका अनुपम स्नेही एक पुजारी हुआ विदा
जिसका था विश्वास अहिंसापर जीवनमें अटल सदा

हिंसाके बल छला गया वह अकस्मात दुःख-घटा घिरी
भूमंडलपर करुणा जल बन पाषाणो-सी घनी झरी
प्रकृति स्तब्ध, कंपित वसुधा, अंबरके तारे हुए विकल
उष्ण सिसकियाँ ले समीर श्वासोमें जिसके रहा न बल

सुप्त उरोमें गति भरनेवाला वह अब हो स्वयं मौन--
क्या सोच रहा अति ध्यान-मग्न, बतला सकता है कहो कौन
क्या मृत्यु कभी उनकी होती 'महात्मा' तो रहते अजर अमर
'सत्यं शिवं सुन्दरम्' पोषक संसृतिमें विचरित उनके स्वर

साधक अब मुक्त हुआ कर्त्तव्योसे मिल ज्योति-पुंजमें लय
पर भ्रममें भूला दीवाना दे आज मृत्युको निज परिचय
धर्मोंका एक समन्वय हो उन सिद्धान्तोका कर निर्माण
विश्व-बन्धुत्व भावसे जनका करना चाहा जीवन त्राण

शोषित पीडितका साथी बन जागृतिका दे मोहक मन्त्र
नव चैतन्य शक्ति साहससे किये स्फुरित मानव-मन्त्र
उस विश्ववंद्य गांधीके गुणको कह न सके कविकी वाणी
जिसके दिव्यादर्शोंकी महिमा गाती हो कल्याणी

फूटा भाग्य राष्ट्र-निर्माता हुआ विलग निष्ठुर जगसे
कर न सका कातिल भी वैसे ही विचलित उसको मगसे

उन्हें स्वर्गमें सुर-बालाएँ पहिनातीं जयकी माला
यहाँ शोक, संताप, निराशाने अपना डेरा डाला

जगत्पिता, दे शांति उसीको जो कि शांतिका रहा उपासक
जगके सब मानव पे अपना झुका रहे श्रद्धासे मस्तक
अंतिम क्षण भी जिसके मुखसे थे ध्वनित हुए स्वर——'राम राम'
यह त्याग हुआ जगके कण-कणमें ध्रुव-सा चमके अमर नाम

——चन्द्रसिंह झाला 'मयंक'

कैसी बिजली गिरी

कैसी बिजली गिरी कि सहसा खिला चमन वीरान हो गया
हाय ! एक पलमें ही निर्धन निखिल विश्वका प्राण हो गया

धरती डोल उठी अंबरमें दारुण हाहाकार छा गया
काँप उठा हिम-गिरि भयसे सागरमें सहसा ज्वार आ गया

आसमान रो पड़ा विश्वमें उमड़ा शोक-तिमिरका बादल
प्राण-प्राणके उर-प्रदेशमें दुखका पारावार छा गया

देव अहिंसाका हिंसाकी वेदीपर बलिदान हो गया
कैसी बिजली गिरी कि सहसा खिला चमन वीरान हो गया

हाय एक आँधी आयी जिसमें वह जलता दीप खो गया
पुष्प कि जिससे सुरभित जग था आज सदाके लिए सो गया

बंद हो गयी अमृतमय वाणीकी प्रिय सुखप्रद निर्झरिणी
राग किंतु जन-जनके उरमें दिव्य प्रेमका बीज बो गया

झंकृत जग जिससे था वह निस्पंद वीणका प्राण हो गया
कैसी बिजली गिरी कि सहसा खिला चमन वीरान हो गया

जिसने द्वेष-घृणाके विषसे मृतवत् जगको अमिय पिलाया
जिसने जन्म जन्मसे ऊसर बनमें नूतन कमल खिलाया
पशुताके चिर अधकारमें मानवताकी ज्योति जगायी
युग-युगका भय-तिमिर दूर कर स्वतत्रताका दीप जलाया

हाय ! वही रे अस्त सदाके लिए आज दिनमान हो गया
कैसी बिजली गिरी कि सहसा खिला चमन वीरान हो गया

जो जगमें रहकर भी जगसे रहा सदा निर्लिप्त कमल-सा
दु.ख विपत्तियोकी झंझाओमें भी हँसता रहा अनल-सा
था जिसका विश्वास सत्यमें अचल हिमाचलसे भी अविचल
जिसकी दया-क्षमाका सागर फैला महासिंधुके जल-सा

रूप समन्वित बुद्ध और ईसाका अन्तर्धान हो गया
कैसी बिजली गिरी कि सहसा खिला चमन वीरान हो गया

आलोकित पथ किया सदा जिसने प्राणोंके दीप जलाकर
चलता रहा आगपर जो दृढ़ सत्य-अहिंसाका व्रत लेकर
उसकी ऐसी निर्मम हत्या, आह ! कल्पना भी थर्राती
मनुज मात्रकी सेवा की जिसने जीवन भर देह गलाकर

उसी अमरकी मृत्यु ? अरे, वह तो नरसे भगवान हो गया
कैसी बिजली गिरी कि सहसा खिला चमन वीरान हो गया

—जगदीशचन्द्र गुप्त "विह्वल"

आज संध्या रो रही है

यह विषम संवाद कैसा
आज संध्या रो रही है व्योमतलमें तम समाया
नील तारा-जटित नभकी हो गयी श्री-हीन काया
शिशिरके शीतल अनिलमें एक अनल-प्रवाह आया
आज भारत-चंद्रपर सहसा दुराशय राहु छाया

नियति, तेरी नीतिमें यह प्रकट प्रलयोन्माद कैसा

भारतीने विरत होकर क्यों चढ़ी वीणा उतारी
मूर्छिता सहसा हुई क्यों मूर्च्छना गायक तुम्हारी
लीन विस्मृतिमें हुई क्यों भावनाएँ आज सारी
रागने वैराग्य साधा, कल्पना कुंठित विचारी

कवि, तुम्हारे गानमें यह आज करुणा-नाद कैसा

'पूज्य बापूका निधन' आश्चर्य रे, यह हो गया क्या
कृष्ण-लीला-संवरणका संस्करण फिर हो गया क्या
पुनर्वार अरण्यमें गौतम तथागत सो गया क्या
विश्व-पूजित देश-जननीका मुकुट-मणि खो गया क्या

देव-नरके कार्यक्रमका यह दनुज-प्रतिवाद कैसा

तुम अमर हो देव, तुमने मृत्युसे चिर-मुक्ति पायी
अमित करुणाकी तुम्हारी ज्योति कण-कणमें समायी
ओ सुदर्शन, विश्वमैत्री विश्वमें तुमने जगायी
लोक-मंगलकी अहिंसा-जन्य नव पद्धति दिखायी

सत्यके बल-दानका बलिदानमें अनुवाद कैसा

मूर्त-तनसे आज यद्यपि प्रकट अंतर्धान तुम हो
किंतु जन-जनके हृदयकी भक्तिके उत्थान तुम हो
तुम अलौकिक प्रेरणा हो, शुद्ध-बुद्धि-विधान तुम हो
देश-उन्नतिके शिखर-आरोहमें पथगान तुम हो

यह तुम्हारी चेतनाका लोक अंतर्नाद कैसा

—जगदीश शरण

महाप्रयाण

रो रहा त्रिलोक शोक छा गया महान
देवता बना मनुष्य है यही प्रमाण
त्यागमूर्ति दिव्य कीर्तिवान उठ गया
देशका महान स्वाभिमान लुट गया

रो रहा झुका असीम आसमान है
देशके सपूतका महाप्रयाण है

सत्यका, सनेहका प्रतीक खो गया
शांति - मूर्ति साहसी विलीन हो गया
शक्ति और भक्तिका विधान हो गया
स्वतत्रताकी माँगका सिंदूर धो गया

भावसे निहारती तुम्हे कुरान है
देशके सपूतका महाप्रयाण है

डूब गया सत्य - सूर्य है अकालमें
हा, कलक लग गया स्वदेश भालमें
मानवी अहिंसाका स्वरूप खो गया
भाग्यवान भूमिका सुरेश सो गया

विश्वके दधीचिका अनत दान है
देशके सपूतका महाप्रयाण है

घोर महाकालका निवास आज है
मंद भाग्य - सूर्यका प्रकाश आज है
डूब रही राष्ट्र - नाव बीच धारमें
शक्ति क्या न शेष देशकी पुकारमें

जन्म मृत्यु तो उसे सदा समान है
देशके सपूतका महाप्रयाण है

वर्तमान युद्ध छोड़के चला गया
विश्व बन्धनोंको तोड़के चला गया
देवने सदैव दिव्य काम कर दिये
पुत्रने पिताके हाय ! प्राण हर लिये

देवदूतका पवित्र प्राण - दान है
देशके सपूतका महाप्रयाण है

—जगमोहननाथ अवस्थी

गांधीजी

हां गुलाम-आबाद कहलाता था यह हिंदोस्तां
पांवमें इसके गुलामीकी पडी थीं बेडियां

चैनसे सोया न आजादीकी खातिर उम्र भर
देशवालोंको मिले सुख, था यही पेशे नजर

बे-इजाजत सांस लेना भी हमें यो बार था
चैनसे रहना हमें इस दौरमें दुश्वार था

आये गांधीजी हमारी रहनुमाईके लिए
रास्ते सब हमको दिखलाये भलाईके लिए

बस यही धुन थी उन्हे हिंदोस्तां आजाद हो
सबको अपना हक मिले हर आदमी दिलशाद हो

रफ्ता रफ्ता कामयाबी उनको हासिल हो गयी
सहते सहते मुश्किलें आसान मुश्किल हो गयी

यानी ये पन्द्रह अगस्त था सबकी आजादीका दिन
हिंदू औ मुस्लिम, गरज हर कौमकी शादीका दिन
हो गया था यह यकीं आरामसे गुजरेंगे दिन
ये खबर किसको थी यूँ आलामसे गुजरेंगे दिन
कैसी आजादी मिली होने लगा बस कुश्तो-खूँ
कत्लोगारतका हुआ हर एक इन्साँको जुनूँ
गांधीजी जिस दम हुए मशगूल याद - अल्लाहमें
गोलियाँ कातिलने बरसायीं इबादतगाहमें
खात्मा होने लगा गांधीकी जिस दम जानका
मरते-मरते भी लबोंपर नाम था भगवानका

—जफर साहब

सिर झुकाते थे जिसे

मर्द-कामिल या फरिश्ता या कि पैगम्बर कहे
गमगुसारे-मुल्को-मिल्लत या उसे रहबर कहे
मुख्तसर-पैकर, गदा सूरत, मुजस्सम इन्किसार
दहरकी सबसे बुलंद हस्तीमें था जिसका शुमार
ऐशको ठोकर लगाकर की गरीबी अख्तियार
सर झुकाते थे जिसे दुनियाके सारे ताजदार
जिसकी दुनिया है सनाख्वाँ वह बुलंद इकबाल था
ठीक उस मौके पै आया हिंद जब पामाल था
मरते हैं हर एक, अपने जिस्मो-तनके वास्ते
उसने हस्ती वक्फ कर दी थी वतनके वास्ते
घूमती थी खल्क जिस सू घूमती उसकी नजर
हुक्म पानेके लिए रहती थी हरदम मुन्तजर

कोई दुनियामें न उसका दुश्मनो-बेगाना था
सबसे ही बरताव यकसां और हमदर्दाना था
वसअते दिल उसकी यह जिसमें जहांका दर्द था
कूवतें देता था कमजोरोंको ऐसा मर्द था
देता था पस्तोंको इज्जत वह बुलंद-इखलाक था
पर गुलामोंमें किसीके रहना उसको शाक था
दर्द था उसको हकीकतका हमें इरफान हो
अपना पसमांदा वतन खुशहाल हो, जीशान हो
जंगकी बेअसलहा बरतानियाके बरखिलाफ
जिसको करना ही पड़ा उसकी फतहका एतराफ

—जमुनादास सचान

वह शांतिका देवता

रो रही है फर्ते गमसे मादरे हिंदोस्तां
जिसपै इसको नाज था नूरे-नजर वह चल बसा
फस्ले गुलमें भी खिजांका हो रहा है दौर दौर
आज भारतके चमनका सर्वे खूबी उठ गया
थम न जाये खूँ फिशानी चश्मे गिरवां देखना
ताजे जर्रीने वतनका लाले यकता छिन गया
जिससे बज्मे हिंद थी रोशन वह शमआ बुझ गयी
हाय जालिम सिफला कातिल क्या गजब तूने किया
रातके अंधेरका दिनमें भी होता है गुमां
आज हिंदुस्तानका महरे दरख्शां छिप गया
सदहा बरसोंमें कोई होती है ऐसी हस्तियां
ऐ खुशा वह मुल्क जिनका ऐसा हो बख्ते रसा

मुद्दतोसे हिंद था गैरोके कब्जेमें गुलाम
किस कदर इसने सहे दौरे गुलामीके जफा
जब खुदाने चाहा जागें इस जमीके भी नसीब
अपने लुत्फे ऐजहीसे गांधी पैदा कर दिया
तू है मोहनदास अम्नो-आश्तीका था सरीश
तू अहिसाका था दायी शांतीका था देवता
बेजहालो, बेकतालो, बेमिसालो बेनवुर्द
हिंदको तूने लिया बंदे गुलामीसे छुडा
आज परदेमें जहाँके तुझ-सा कोई भी नहीं
किससे दें तमसील तेरी कौन है हमता तेरा
र्चाचिल व एटली व स्टैलिन बडे सय्यास हैं
पर नहीं तेरे मुकाबिल तिफ्ले-मकतबसे सिवा
कत्ल तेरा हमवतनके हाथसे उफ ! हाय हाय
क्यो न समझें पेश खेमा नूहके तूफानका
तेरी हस्तीके सबब हम जिस कदर थे सर-बुलंद
उतना ही बज्हे निदामत है यह कत्ले नारवा
एककी नालायकीने कर दिया सबको जलील
एककी बदनीयतीसे मुल्क रुसवा हो गया
सख्त मुश्किल है अभी नेमुल बदल होना तेरा
हो नहीं सकती है पुर इस वक्त यह खाली जगह
कौन अब शामो सहर अमृत पिलायेगा हमें
कौन शीरी गुफ्तगूसे अब जिगर गरमायेगा
किससे सीखें अब सियासत पैरवी किसकी करें——
कौन सुलझायेगा झगडे कौन होगा रहनुमा
कौन देगा मुश्तइल लोगोको पैगामे-सकून
कौन अब लडते हुओको गले से लगवायेगा
आलमे अरवाहमें तुझको अता हो शाती
है जहूरे गमजदाकी हकत-आलासे दुआ

—जहूर अहमद "जहूर"

नतमस्तक है देश

गांधी तू था विश्वका शांति-दूत अवतार
तेरी नसोंमें नित्य मानव-प्रेम-प्रसार
सत्य हृदयमें बोलता तू अन-हिंसकी बात
कुटिल फिरंगी चाल भी, तेरे आगे मात

साबर सन्त-शिरोमणि, तू गांधी रणधीर
शांति सैन्य संचालक नेता निपुण सुधीर
तेरे सफल प्रयासमें हुआ देश आजाद
भारतकी स्वाधीनता तेरा कृपा-प्रसाद

सोऽहम्का यह सत्य है जीव स्वयं शिव-रूप
सगुण ब्रह्म होकर मिला तेरा रूप अनूप
जब होता कर्त्तव्य-पथ पूरा तमसाच्छन्न
मौनी बन आनन जमा रहता सदा प्रसन्न

तेरी ही थी मन्त्रणा तेरा ही था जोर
भारतवर्ष निहारता बस, तेरी ही ओर
कोटि-कोटि कल कंठसे निकला यही निनाद
घातकको धिक्कार है गांधी जिंदाबाद

राम-नामकी धुन लगा राम भजन लवलीन
प्रवचन करता प्रेमसे हो आसन आसीन
तेरी आज समाधिपर नत मस्तक सब देश
भू-मंडलमें रह सदा, कीर्ति-कथा अवशेष

—झाबरमल्ल शर्मा

तुम चले गये

तुम चले गये, जग कुछ भी बोल न पाया

तुम आये बनकर प्रथम प्रातकी लाली
तुमसे फूली जग-जीवन-तरुकी डाली
जन-गण-मन-मरुमें नूतनता भर आयी
भावोके कण जागे, जागी हरियाली

इस अधकारमें तुमने दीप जलाया
तुम चले गये, जग कुछ भी बोल न पाया

तुम एक अनूपम देवदूत बन आये
मानस-वीणाके टूटे तार मिलाये
अपनी विभूतिका अमर दान दे-देकर
युगसे मानवके सोये प्राण जगाये

तुमने दलितोको सादर गले लगाया
तुम चले गये, जग कुछ भी बोल न पाया

तुम गये छोड़कर अपनी अमर कहानी
है अतरिक्षमें गूँज रही तव वाणी
आजीवन तुमने जन-हितका तप साधा
उसकी वेदीपर ही कर दी कुर्वानी

सदेश तुम्हारा कण-कणमें है छाया
तुम चले गये, जग कुछ भी बोल न पाया

—त्रिवेदी तपेशचंद्र

अस्त जगका सूर्य

आजका दिन अस्त हो जाता उदयसे पूर्व
तो न सुनते कर्ण—होता अस्त जगका सूर्य
हम न समझे, आँधियाँ चलने लगीं सहसा
हम न समझे, बदलियाँ घिरने लगीं सहसा

हम न समझे, मेघ-गर्जन हो रहा है क्यों
हम न समझे, तन उदासी हो रहा है क्यों
मेघ रोया, किन्तु हमको था न तब भी भान
आज युगकी चेतनाको चुग लेंगे प्राण

शोकका सागर उमड़कर छा गया जगपर
गिर गयी बिजली हृदय, तन हो गया पत्थर
आजका दिन अस्त हो जाता उदयसे पूर्व
तो न सुनते कान, होता अस्त जगका सूर्य

—'भृंग' तुपकरी

बापू तुम्हें प्रणाम है

अमृत-पुत्र, इस देशके गौरव, पुण्य-श्लोक
आज अश्रु-तर्पण करुण करता है भूलोक
ज्योतिमय, तुमने दिया वह प्रकाशका दान
जिससे हममें जागरित अपनेपनका ज्ञान
हे विराट, हे युग-पुरुष, हे देवता उदार
श्रद्धांजलि है दे रहा तुमको यह संसार

—"भुवन"

नभने भर लिया आलोक

लपटोसे चरणकी ज्योतिसे छूकर धराका प्रात

ले लो हे गगनके देव, मेरी वेदनाके फल

मेरी अर्चनाके फूल

गाया व्योमने क्या राग, उस दिन मृत्यु-घनके द्वार

जीवनके रुके दो पाँव, धरतीकी डगरपर हार

उस क्षण साझके तट मौन किरणोकी मची जब लूट

नभने भर लिया आलोक, धरतीने तिमिरकी धूल

मेरी धूलमें ही देव, देकर सृष्टिका वरदान

उड़ता ही गया आलोक, लेकर धूमका अभियान

——द्विजेंद्र

दिवंगत बापू

टट गया वह स्वप्न कि जो चालीस कोटि जनका जीवन-धन

लुटा दीन-सर्वस्व, निराश्रितका आश्रय, अंधोका लोचन

खोयी थाती भूखे भिखमगोकी, दलितोकी, पतितोकी

हुआ अस्त रवि, विश्व-व्योमपर घोर भयकर अंधकार घन

सिहरी दया, प्रकपित करुणा, मानवता आक्रोश उठी कर

आँखें स्तब्ध, कण्ठ श्लथ, आनन वचन-हीन, कपित अस्फुट स्वर

उर अवसंन्न, अधीर खिन्न मन, आकुल ससृति, व्याकुल कण-कण

है विकल प्राण, अरमान विफल, चेतना-हीन जगके नारी-नर

छातीपर धर पत्थर, यह विश्वास किया—'बापू न रहे अब'

आह भरे उरने कराह कर श्वास लिया—'बापू न रहे अब'

जीवनसे, जड़-जगमसे, जगतीसे तृण-तृणसे, कण-कणसे

आज विरक्त हृदयने उफ! सन्यास लिया—'बापू न रहे अब'

'बापूका खून !' जिन-जिन भारतके नरकी पाप-कहानी
'बापूका खून !' घोर जगता उत्कट कलुषकी अमिट निशानी
'बापूका खून !' हृदय यह आत्म-ग्लानि, घृणासे दबा जा रहा
'बापूका खून ! देख नीचे हैं उठा असीम सिंधुका पानी
सत्य, अहिंसा, प्रेम पथपर चलनेवाला संत, भिखारी
विश्व-विभूति त्याग, तप-सेवा-रत, उदार ज्ञानी आचारी
दुनियावालो, सोचो ऐसा देखा है इतिहास कहींका
रहे देखते लुटा हाय, मानवताका आदर्श पुजारी
आज अलभ्य, अलक्षित चरणोंमें अर्पित आंसूके दो कण
व्यथा-भारसे दबे हृदयकी यह सादर श्रद्धांजलि पावन
लो, स्वीकार करो नवीन युग-स्रष्टा, विश्व दिवगत बापू
भारतके चालीस कोटि व्याकुल प्राणोंका यह नीराजन

—दिवाकर

हे युगाधार

प्रलय, विश्व-रवि अस्त, ध्वस्त जग, अंधकार
अम्बर, सागर, भू-कक्ष-कक्ष फटे, दुर्निवार
तम-ग्रस्त व्यथित संसृति समस्त, पथ-भ्रष्ट नष्ट जग मोह त्रस्त
आलोक-पुंज शुचि प्रखर अस्त, नभ-धरा-धूलि-कण रुदन-व्यस्त
वज्राघाती माकी छातीपर यह प्रहार
कल्पनातीत ब्रह्माण्ड-दुःख, दुस्सह अपार
राक्षसी काण्डपर इस निकृष्ट, रह गयी मूक यह निखिल सृष्टि
रवि रुका, हुई निस्तेज दृष्टि, सागर गरजा—धिक् अरे धृष्ट
निष्प्राण हुआ क्यों नहीं पतित पापावतार
जब महाप्रयाणपर पड़े हिंस्र दृग प्रथम बार
वह क्षण, वह पल कितना कराल, जागी जब दानव-दुष्ट ज्वाल
विकराल, विकट, उफ, महाकाल भी काँपा होगा उसी काल

जिसने प्रकाशके दिव्य पिंडका कर शिकार
भर दिया चतुर्दिशि निखिल विश्वमें तम अपार

हा बापू तेरा ज्योतिर्मुख, वह मुख जिसने हर दारुण दुःख
फैलाया जगमें करुणा-सुख लख हुआ नराधम क्यों न विमुख

क्यों द्रवित नहीं करुणावतार तुमको निहार
गोली-प्रहार करता मानव पशु बार-बार

जब बही रक्तकी शुद्ध धार, बापू तुमने निज कर सँभार
हत्यारेको कर नमस्कार, दी सीख विश्वको करो प्यार

वह राम-नाम तेरे पवित्र उरकी पुकार
क्या विश्व सुनेगा कभी हृदयके खोल द्वार

बीते हजार दो वर्ष बाद गूँजा भारतसे फिर निनाद
क्यों यह हिंसा ? क्यों यह विषाद, मानव-मानवका क्यों विवाद

भगवान बुद्ध, ईसा मसीह करुणावतार
साकार हुए तुझमें बापू पा दृढ़ अधार

गूँजा अम्बर-सागर-खगोल, गूँजा करुणाका मधुर बोल
दानवो-तुलापर दिया तोल मुट्ठी भरका निज तन अमोल

तन-मनसे सत्य-अहिंसाका कर शुचि प्रसार
तुमने लहरायी विश्व-तिमिरमें ज्योति-धार

अंतिम क्षणका जो हास भरा वह तव मुख था उल्लास भरा
क्या भूल सकेगी कभी धरा, वह प्रलय-घड़ीतक सदा हरा

'पापी न बुरा है हेय , पाप' तेरी पुकार
दानवको मानव बना जीत लो दिखा प्यार

हे तपो मूर्त्ति, हे कर्मवीर, हे मानवताके धर्मवीर
मुट्ठी भरका तेरा शरीर, मनसा-वाचा था पूर्ण धीर

आपत्ति कालके हे माँझी, हे युगाधार
हे सत्य-अहिंसाकी पुकार, करुणा-गुहार

साक्षात शांतिकी मूर्ति दिव्य हे विश्व-प्यार
कर रहा तुम्हें मैं नमस्कार, जग नमस्कार

—देवनाथ पाण्डेय 'रसाल'

खण्ड-खण्ड क्या हुआ न पत्थर मानवताका वज्र-हृदय तब
किया गोलियोंने गांधीका जब पूत तन छिन्न-भिन्न जब
जल न गयी किरणोंकी पलकें, जल न उठे सारे गृह-उपवन
फूट पत्थरोंसे गोलीसे जब कि गिरे थे लाल रुधिर-कण

काँप उठा सुर-लोक नहीं क्या, दग्ध हुआ नर-लोक नहीं क्या
डूब गया घन अंधकारमें त्रिभुवनका आलोक नहीं क्या
हिंसा-पिशाचिनी यह देखो, दबा रही दाढ़ोंमें निर्मम
विश्व-प्रेमकी पावन प्रतिमा जग-मैत्रीकी मूर्ति मनोरम

सत्य-अहिंसाकी किरणोंका अमृत-पुंज वह अस्त हो रहा
धर्म-नीतिका ज्योति-स्तंभ यह आज अचानक ध्वस्त हो रहा
लीन हुआ रे अमर लोकमें धर्म-युद्धका वह सेनानी
शत अन्यायोका विरोधिनी मूक हुई वह निर्भय वाणी

राजनीतिमें अब न सुनायी देगा कभी सत्यका गर्जन
मिथ्याचार, दम्भ औ वंचन अब निर्लज्ज करेंगे नर्तन
मानव-पशु अब लोभ-घृणाको निर्भय न्याय-नीति घोषितकर
हृष्ट करेगा नग्नित ताण्डव विश्व-भुवनमें सभ्य कहाकर

डूब गया रे भारत-नभका प्रभा-पुञ्ज वह ज्ञात-सितारा
गौतमका अमिताभ, वंशधर ईसाका अनुजोपम प्यारा
दुखियोंका बापू करुणामय हरिजनका परिजन परित्राता
गत रे भारत-मुक्ति प्रदाता, नये राष्ट्रका पिता, विधाता

माके काले कारागृहमें आजादीका दीप जलाकर
गत रे वीरव्रती वह सैनिक अक्षय प्राण-तैल निज भरकर
युग-युग गूंजेगा जगतीमें गांधीका पावन संदेश यह
युग-युग गूंजेगी भारतके कण-कणमें गांधीकी जय-जय

—देवराज

श्रद्धांजलि

उन्नति-गिरिका मार्ग दिखाकर स्वतंत्रताका देकर दान
गये स्वर्गको 'राम-राज्य'का लिये अधूरा ही अरमान
आज तुम्हारी सुधिमें तड़प उठी मानवता कर यश-गान
दानवताके हाथ तुम्हारा हाय हुआ दुःखमय अवसान
सत्य-अहिंसाके हित बापू, निज शोणितसे सींच स्वदेश
अमरपुरीमें गये कहो क्या देने निज अमृत सदेश
अमर पुरुष, ओ शाति दूत, अब करो शातिसे तुम विश्राम
अपना रक्त बहाकर भी हम पूर्ण करेंगे तेरा काम

—देव शर्मा

बापूके प्रति

तेरे मातममें शामिल है जमीनो-आसमाँ वाले
अहिंसाके पुजारी शोगमें है दो जहाँ वाले
तेरा अरमान पूरा होगा, ऐ अमनो-अमाँ वाले
तेरे झंडेके नीचे आयेंगे सारे जहाँ वाले
मेरे बूढे बहादुर, इस बुढापेमें जवांमर्दी
निशाँ गोलीके सीनेपर है गोलीके निशाँ वाले
निशाँ है गोलियोके या खिले है फूल सीनेपर
गुलिस्ताँ साथ लेकर जा रहे है गुलसिताँ वाले
जबाँ आँखोने ले ली, आँसुओने ताबे गोयाई
तुम्हारे शोगमें चुपचाप बैठे है जुबाँ वाले
मेरे गांधी, जमींवालोने तेरी कद्र जब कम की
उठाकर ले गये तुझको जमींसे आसमाँ वाले
उसीको मार डाला जिसने सर ऊँचे किये सबके
न क्यों गैरतसे सर नीचा करें हिन्दोस्ताँ वाले

श्रद्धांजलि

फिर न लौटनेवाले राही, तुम्हें हमारा राम-राम है

तुम चल दिये छोड़कर अपने पीछे गोधूलीकी वेला
तुम चल दिये छोड़कर अपने पीछे अभिशापोंका मेला
बापू, आज तुम्हारी सुधिमें रोती भारत मा अभागिनी,
तुम चल दिये छोड़कर सूने घरमें जलता दीप अकेला

अंधकारमें जल प्रकाशित होना कितना कठिन काम है

दिन व्याकुल हो डूब गया है, रात मौतसे भी काली है
प्रतिहिंसाकी खूनी लपटों-सी वह फूट रही लाली है
आज लाजसे झुका सदाके लिए हिमालयका सिर नीचे
सिसक रहा सेगांव कि उसके बापूकी कुटिया खाली है

कोटि कोटि कंठोमें प्रतिक्षण गूंज रहा चिर-अमृत नाम है

नभने उन चरणोंकी पूजामें तारोंके दीप जलाये
धरती माताने उन चरणोंमें आँसूके फूल चढ़ाये
राम, तुम्हारा नाम सत्य हो गया कि सत्यानाश हो गया
लहर-लहरने हर-हर स्वरमें महामरणके गीत सुनाये

कोटि-कोटि प्राणोंका बापू, ग्रहण करो अंतिम प्रणाम है
फिर न लौटनेवाले राही, तुम्हें हमारा राम-राम है

—नर्मदेश्वर उपाध्याय

गये महात्मन

गये महात्मन् अल्पबुद्धिके आघातोको सहकर
हतचेतन हम समझ न पाये परमात्मन्की माया
हेतु और कारण क्या थे उस आस्तिककी हत्याके
परम भागवत्ने यो तुच्छ करोसे शिवपद पाया

क्षमा करो प्रभु नव भारतको, भारत है हत्यारा
रक्तस्नात हो जली यहाँ उस महापुरुषकी काया
वेद-शास्त्र-उपनिषद-पुराणोकी भू ग्लानिमग्न है
कृपाप्रवण हो भारतपर द्यौ-अतरिक्षकी छाया

हमने कभी न पहचाना बापूकी गुरु गरिमाको
केवल यह जाना है कैसा था बापूका जाना
रहना अब न यहाँ भारतमें वरदहस्त नेताका
हवा और पानी, सूरज औ धरतीका छिन जाना

अग्नि-हस उड गया, चिता बुझ गयी, अगरु चदनकी
भस्म हो चुकी भस्मकाम काया भी राष्ट्रपिताकी
अब न देहगत आत्मा उनकी, अब न कठगत वाणी
रही न सीमित ज्योतिपिण्डमें द्युति भारत-सविताकी

—नरेन्द्र शर्मा

वन्दना

वंदनाके गीत गीले

द्रोणियां हिचकी भरी औ सरितके स्वर भी लचीले

ध्वसका उतरा प्रथम रथ साँझ यमुनाके किनारे
तीन यम हुकार सुन मुरझे अमृतके सिधु सारे
नीन्द पडते जा रहे थे धूप लीपे खेत आँगन
नाश आया आंधियां बन, वदनाके गीत गीले

बापू

बापू,
जिस बर्बरने
कल किया तुम्हारा खून पिता
वह नहीं मराठा हिन्दू है
वह नहीं मूर्ख या पागल है
वह प्रहरी स्थिर—स्वार्थोंका है
वह जागरूक वह सावधान
वह मानवताका महाशत्रु
वह हिरणकशिपु
वह अहिरावण
वह दशकन्धर
वह सहसबाहु
वह मनुष्यताके पूर्णचन्द्रका सर्वग्रासी
महाराहु
हम समझ गये
चटसे निकाल पिस्तौल
तुम्हारे ऊपर कल
वह दाग गया गोलियाँ कौन
हे परमपिता, हे महामौन
हे महाप्राण, किसने तेरी अन्तिम साँसे
बरबस छीनीं भारत मासे
हम समझ गये
जो कहते हैं उसको पागल
वह झोंक रहे हैं धूल हमारी आखोंमें
वह नहीं चाहते परम क्षुब्ध जनता
घरसे बाहर निकले
हो जाय ध्वस्त
इन सम्प्रदायवादी दैत्योंके विकट गढ़
वह नहीं चाहते, पिता तुम्हारा श्राद्ध
ओह
भूखे रहकर
गंगामें घुटने भर धँसकर
हे वृद्ध पितामह
तिल—जलसे
तर्पण करके
हम तुम्हे नहीं ठग सकते हैं
यह अपनेको ठगना होगा
शैतान आ गया रह—रह हमको भरमाने
अब खाल ओढकर तेरी सत्य—अहिंसाकी
एकता और मानवताके
इन महाशत्रुओंकी न दाल गलने देंगे
हम नहीं एक चलने देंगे
यह शक्ति और समताकी तेरी दीपशिखा
बुझने न पायेगी छणभर भी
परिणत होगी आलोकस्तम्भमें कल-परसें
मैदानोंके काँटे चुन—चुन
पथके रोड़ोंको हटा—हटा
तेरे उन अगणित स्वप्नोंको
हम
रूप और आकृति देंगे
हम कोटि—कोटि
तेरी औरस संतान, पिता

—नाग

देवता खोकर

आज मनुज जग रोया जिसके पास देवता अपना खोकर

जिन चरणोंकी आहट पाकर युग-युगसे सोया युग जागा
पा आलोक, आगतागत पन्नोंपर फैला जड़ तम भागा
तीनों लोक और मानों सागरको जिन हाथोंने बाँधा
काल-कालपर अपने हाथों उज्ज्वल सत्य-प्रेमका धागा

जिसकी जग सुन महा नींदसे उठा जागरण सदियाँ सोकर

लोलुपताके महा घिनौने कीड़े जब थे लगे देशमें
भाव, भावनामें, गौरवमें, भाषा, भूषा और वेशमें
अमृत और हलाहल लेकर खड़ा तिमिरमें एकाकी जो
जब कराहती रही मूक मानवता जगकी, घोर क्लेशमें

तब उस तपी महा मानवने ज्योति जगा दी दीपक होकर

जीवनके सौ-सौ प्रश्नोंका सुखमय उत्तर बना एक ही
झोंपड़ियों, महलोंके पथपर गति, द्रुत मयर बना एक ही
मंत्र 'विश्व बंधुत्व' और 'वसुधैव कुटुंबक' पावन जिसका
त्रस्त करोड़ों मानवके सत्य, शिव, सुंदर बना एक ही

इस दुनिया-सी कभी न खायी दुनियाने दुनियामें ठोकर

नवयुगकी वह नाव कि जिसके लिए आज मँझधार विकल है
जनताका वह दाँव कि जिसके लिए आज आधार विकल है
वह तेजोमय रूप अहिंसाका जादूगर विश्व शांतिका
जनगणका वह भाव कि जिसके लिए आज संसार विकल है

हँसते आया घर स्वराज्य, आयेगा 'रामराज्य' रो-रोकर

—नारायणलाल कटरियार

ये विषकीट न कर सकते हैं अमृतका मूल्याकन
अमृत-पुत्र, इनके हित करना फिर न मृत्यु-आलिगन

सतत साधनामें रत रहकर उज्ज्वल मानवताकी
यदि करना ही चाहो तुम सेवा पीड़ित जनताकी
तो बधिकोसे दूर किसी दूसरे राष्ट्रमें यतिवर,
होना तुम अवतरित यही मुनि-दुर्लभ मनुज रूप धर

—पद्मसिंह शर्मा 'कमलेश'

अन्तिम पुकार

वह मृत्यु नहीं, थी प्यार भरी अतिम पुकार
वह प्यार कि जिसमें मानवता थी समासीन
जिसके चरणोपर थी मानव-जडता विलीन
जगके शोषण, पाखंड और शत दुराचार
जिसके पदतलपर हो जाते हैं अर्थ-हीन
जिस कुसुम-दडसे उद्धत होता है शोषित
झुक जाते शत-शत मेरु शिखर भी हत-गर्वित
यह प्यार कि जो ला दे पत्थरमें भी पानी
जिसको छूकर सब हर्ष-हीन होते हर्षित
जिसको सुनकर
हा, कोटि-कोटि नयनोसे निकली अश्रुधार
वह मृत्यु नहीं, थी प्यार भरी अतिम पुकार
जिसको सुनकर
ये सूर्य-चंद्र-नक्षत्र हुए सब विभा-हीन
आँसू टपकाये ओस, मेदिनी हुई दीन
इस भीम व्योममें उठा हाय! व्याकुल मरोर

तुम्हें प्रसन्न देख जग होता था प्रसन्न होती थी सृष्टि।
सुधा वृष्टि होजाती थी जिधर तुम्हारी जाती दृष्टि॥

बापू, जिधर तुम्हारे पड़ते चरण-युगल मंगलमय।
निखिल सृष्टि पग पग चलती थी उधर तुम्हारी जय जय॥

तरु-तृणमें कण-कणमें क्रन्दनका उठा शोर
गा उठी मरसिया हवा, विकल हो गये प्राण
बापूके मुखसे निकला जब 'हे राम राम'
'हे राम राम!' मानवता तो हो गयी दीन
'हे राम राम!' भारती हो गये दिशा-हीन
वह रक्त-धार
बापूकी छातीसे निकली कह "प्यार—प्यार"
वह मृत्यु नहीं, थी प्यार भरी अंतिम पुकार
वह उठा प्यार—
हिंदू औ मुस्लिम सभी एक भाई भाई
ये बौद्ध जैन पारसी और ये ईसाई'
मानवता सबका सार, धर्म है सब समान
वह धर्म नहीं सबको करता जो हीन जान
तू ही ईश्वर, तू ही अल्ला, बस भिन्न नाम
तू सबको सन्मति दे समान हे राम राम
अंतिम 'प्रणाम' दे गये जगतको प्रेम पूत
घातकको भी दे गये क्षमा हे प्रेम दूत
हे प्रेम-पुंज
तेरे कुसुमोंके घनसे जो भी हुआ विद्ध
वह झुका चरणपर तेरे कहकर प्यार—प्यार
वह मृत्यु नहीं, थी प्यार भरी अंतिम पुकार

—प्रफुल्लचन्द्र पटट्नायक

ततो वै सः

भारतका अंतर आँसू बन बहा-वहा

सप्त सरितका यह मंगल जल ले जाता है फूल तुम्हारे

वैष्णव, वज्र कठोर सुकोमल सागरको करने मधु प्यारे

कविने कहा जरा-सा लेकिन रहा बहुत कुछ बिना कहा

सुरभि तुम्हारे यश-सनेहकी दिशा-दिशाका बनती चंदन

कोटि मनो, शत-लक्ष गेहकी लो यह मूक, व्यथामय वदन

चिता नहीं उस दिन भारतका पुण्य-प्रताप दहा

यह वर्बर फासिस्त दरिंदे यह कायर, यह खूँके प्यासे

कब होंगे पापी शरमिंदे कब कह पायेंगे जनतासे

हम यह—'लायक हैं वारिसके, पिता रहा न जहाँ

पर तुमने कब हम-से दुर्बल शिष्योंकी की परवा, तनहा

चले गये स्थिर मति गति केवल, जहाँ असतने सत्य ग्रहा

तुम्हे एक अंतर्निनादने कहा—'ततो वै स.'

—प्रभाकर माचवे

राष्ट्रपिता

मरण हमारे राष्ट्र-पिताका, झुकी हमारी राष्ट्र-पताका

कोटि-कोटिका मरण हुआ है, यह गांधीका मरण नहीं है

हिला हिमालय, सागर डोले, डोले आसन वर्वरताके

यह विश्वास नहीं होता है, अब वे विप्लव-चरण नहीं हैं

मानवताकी लाश पड़ी है, कौवे-गीध नोच खायेंगे

इस जघन्य पैशाचिकताको ढकनेका आवरण नहीं है

ज्योतिने पायी अमरता

ज्योतिने पायी अमरता, दीपने निर्वाण
आज पाया बिंदुने नव सिंधु-रूप महान
मूक होकर कोटि कंठोंमें समाया स्वर तुम्हारा
मिल गया मझधारमें ही कुशल नाविकको किनारा
आज क्षणके साथ युगको हो गयी पहचान
राष्ट्रके शवमें किया था प्राणका संचार तुमने
स्नायुओंमें फिर प्रवाहित की रुधिरकी धार तुमने
धूलिको पद-रज बना तुमने दिया सम्मान
सत्यका ध्रुव ध्येय-पथ तुमने अहिंसाको दिखाया
क्षितिज बन उन्नत गगनको भूमिपर तुमने झुकाया
विजयका तुमने विफलतासे किया निर्माण
दे तुम्हें अंजलि हुए हैं अश्रु जगके आज पावन
मुक्त हो तुम, किंतु दृढतर है हमारे भक्ति बंधन
मूर्ति खोयी, पर उपासक पा गया भगवान
आज हिंसाके कठिन आघातसे अक्षय हुए तुम
शरण देकर मरणको भी आज मृत्युञ्जय हुए तुम
देशके हित आज तुमने कर लिया विषपान

—बालकृष्ण राव

संसारमें गांधी तो अमर होके रहेगा

संसारमें गांधी तो अमर होके रहेगा
किस शानसे दुनियासे सरे शाम सिधारा
लो डूब गया देशकी किस्मतका सितारा
गांधीको तो मरना था ब हर तौर गवारा
हमदर्दको क्या सोचके बेदर्दने मारा
आकाशमें निकले है जो रोते हुए तारे
गांधीकी चिता जलती है जमुनाके किनारे

फिरता रहा दर-दर वो मुहब्बतका भिखारी
दुनिया उसे कहती थी अहिंसाका पुजारी
उपदेश इसी बातका हर सांस पै जारी
ले-देके उसे देशकी चिंता रही भारी
क्या उसकी तरह कोई भला काम करेगा
दुनियामें, जमानेमें यूं ही नाम करेगा

आज उसके लिए फूटके रोता है जमाना
मशहूर हुआ चारो तरफ ऐसा फिसाना
बापूके लिए मौतने ढूंढा ये बहाना
दिल्लीमें बनाया गया गोलीका निशाना
मरनेका बहुत उसके असर होके रहेगा
ससारमें गांधी तो अमर होके रहेगा

इल्जाम किसीपर कभी धरते नहीं देखा
सच बातपर उसको कहीं डरते नहीं देखा
नफरतसे भी नफरत कभी करते नहीं देखा
यो हमने किसी औरको मरते नहीं देखा
देता था मुहब्बतका वह पैगाम हमेशा
दुनियाकी भलाईमे रहा काम हमेशा

महाभिनिष्क्रमण

हत्यारा कहता है 'मुझको नहीं जरा भी दुख है'
वज्रपातपर, महाप्रलयके विश्व जब कि सम्मुख है
जरा-मरणसे मुक्त पुरुषको कोई क्या मारेगा
विजय-घोषके निकट शोकनत मरण स्वयं हारेगा
मानवता घायल लथपथ है आज मेदिनी डोली
मानो बापूकी छातीमें नहीं लगी है गोली
श्वास-श्वासमें अमर हो गयी वह प्रकाशकी रेखा
जब कि अमरताको चरणोंमें हँस-हँस लुटते देखा
नोआखाली औ' बिहार, गढमुक्तेश्वरकी बातें
कौन भूल सकता है दिल्लीके वे दिन, वे रातें
हम सबने अपने हाथो क्या उनका वध न किया है
प्रायश्चित्त-वेदीपर मृत्युंजय बलिदान दिया है
'मुझे सवा सौ बरस जगतमें जीना, कुछ करना है'
उन आदर्शोंपर हम सबको चलना या मरना है
वह दधीचि दे गया हड्डियाँ, दूर असुरता कर दो
सम्प्रदायके विषको धोकर स्नेह-सुधाको भर दो

—भगवन्तशरण जौहरी

रो ! मनुष्य रो

रो ! मनुष्य रो
जब पितापर हाथ हाय ! पुत्रका उठा
मानवी कृतघ्नतासे व्योम कँप उठा
ज्योति वंचिता जली दिगंत लालिमा
हिन्दुत्व भालपर लगी कलंक कालिमा
कोटि नयन नीरसे न धुल सकेगी जो
रो ! मनुष्य रो

बापू नहीं, यह विश्वके भविष्यका निधन
मनुष्यने मनुष्यताका कर दिया हनन
आज तम निगल गया हा ! पूर्णचन्द्रको
एक मीन पी गयी महा समुद्रको
रो रही मनुष्यता है टूक टूक हो
रो ! मनुष्य रो

हे रूपवान् सत्य ! विश्वप्रेम मूर्तिमान्
सद्धर्मके प्रतीक ! क्रान्ति-दूत हे महान्
आत्म रूप नित्य साथ रह अजर अमर
शांति-पथ-प्रदर्शिका दे ज्योति तू प्रखर
शांत पाप और शांत रक्तपात हो
रो ! मनुष्य रो

—भंडारी गणपति चन्द्र

वह अंतिम प्रार्थना

भक्त रह गये खड़े, मौन हो गये पुजारी
बंद हुई आरती, मूर्ति छिप गयी तिमिरमें
बापू, आज तुम्हारी अंतिम साध्य-प्रार्थना
गूँज उठी आखिर उस दूर महामंदिरमें

डूबा सितारा, स्वर्गोंकी गूँज खो गयी
हिन्द महासागरकी लहरें शान्त हो गयी
टूट गया निर्मल नभका उज्ज्वल ध्रुवतारा
फूट गया आज भारतका भाग्य सितारा

अब पटेलकी नैयाका पतवार छिन गया
नेहरू हुए निराश कि खेवनहार छिन गया
भारत माके उरका प्यार-दुलार छिन गया
मानवताके मस्तकका शृंगार छिन गया

हमें ढूँढकर लानेवाला कहाँ खो गया
हाय जगानेवाला हमको कहाँ सो गया

आज राष्ट्रका मुकुट टूट कर उड़ा गगनमें
कोटि कोटि करुणार्द्र जनोंके मन छले गये
एक कमीने पागलकी काली हरकतसे
आज करोडो बच्चोंके बापू चले गये

हत्यारे, तू क्या बापूको मार सकेगा
बापू क्या इन बंदूकोसे हार सकेगा
गोलीसे गाधी मरता, मूरख अनजाने
अमर ज्योति जग उठी बुझाओ तो हम जानें

जिसने अपने शब्दोसे बंदूकें तोडीं
आज वही हँसकर गोलीका वार बन गया
जिसने जीवन भर सिखलायी हमें अहिंसा
आज वही हिंसाके उरका हार बन गया

कोटि कोटि कंठोमें गूँजे नाम तुम्हारा
कोटि कोटि युगतक जीवित है प्राण तुम्हारा
जबतक खड़ा हिमालय, बहती गंगा धारा
तबतक अमर रहेगा बापू, नाम तुम्हारा

—भरत व्यास

हो गया यह विश्व सूना

गिर पड़ी बिजली कड़ककर
काँपता आकाश थर-थर
चल बसा जगसे, रहा जो
आप ही अपना नमूना
हो गया यह विश्व सूना

छिप गयी जग-ज्योति सुन्दर
छिन्न गयी छवि, तम गया भर
रो रहा संतप्त जगका
चिर विकल प्रत्येक कोना
हो गया यह विश्व सूना

हो गया छवि - हीन भारत
आत्म-प्राण विहीन भारत
खो गया माके हृदयका
लाड़ला मोहन सलोना
हो गया यह विश्व सूना

खो गयी गरिमा गगनकी
खो गयी प्रतिमा भुवनकी
खो गयी भौतिक अनोखी
सृष्टिका मनहर नगीना
हो गया यह विश्व सूना

—भागवत मिश्र

श्रद्धांजलि

तुम अमर, चिरन्तन, चिर जीवन
तुमको न कभी छू सकते हैं चिरकाल प्रबल, ये जन्म-मरण
संदेश [illegible] लेकर
तुम ज्योति-रूप उतरे भूपर
शत कोटि कोटि प्राणोंमें तब भर गया शक्तिका संजीवन
तम अनत [illegible] टूट पड़ा
यह आंदोलित हो उठी धरा
हो गया निमिष भरके भीतर ही इन्कलाब, युग-परिवर्तन
तुम खोल गये जगके बंधन
बापू, तुम जीवित हो हर क्षण
तुमको न कभी छू सकते हैं चिरकाल प्रबल, ये जन्म-मरण
हे अमर चिरन्तन, चिर जीवन

—-मदनगोपाल 'अरविन्द'

भगवान लुट गया

आज मनुजता मूक हुई, उसका जीवित भगवान लुट गया
पाकर जिसे आजतक हम सदियोंका दारुण दुख थे भूले
जिसके रहनेसे ही तो हम आशाके सपनोंमें झूले
कितने तपके बाद युगोंका मिला अभय बरदान लुट गया
देकर अमृत दान हमें जो स्वयं हलाहल पान कर गया
सदियोंके चिर निद्रित जीवनमें जो नूतन गान भर गया
अधरोंपर आनेसे पहले ही अंतरका गान लुट गया
आज कहूँ क्या अपने मनकी, धरा और आकाश मूक हैं
रहा और कहनेका क्या अब युग-युगका इतिहास मूक है
आज मनुजने सब कुछ खोया जगका नव निर्माण लुट गया

—मदनलाल नकफोफा

अवतार चल बसा

पहली गोली लगी कि धू-धू सारा देश हो गया काला
लगी दूसरी, धधक धधक धक जलती है छातीमें ज्वाला
हत्यारे ! मत मार तीसरी, कंठ बंद, अब कह न सकेंगे
क्या हिन्दू-मुस्लिम-ईसाई एक देशमें रह न सकेंगे
वसुधासे विश्वास चल बसा, प्रेम चल बसा, प्यार चल बसा
तुम चल बसे नहीं ऐ बापू, नवयुगसे अवतार चल बसा

ऊपरसे आकाश धँस गया, धरतीका आधार धँस गया
ध्वंस ध्वंस विध्वंस हाय रे, बीच समरमें देश फँस गया
दुर्दिनमें तकदीर हमारी कैसे छिपकर वार कर गयी
ऐसी गोली लगी कलेजे कोटि-कोटिके पार कर गयी
आज देश निष्प्राण, हमारा राष्ट्र-तेज साकार चल बसा
तुम चल बसे, नहीं ऐ बापू, नवयुगसे अवतार चल बसा

डहक-डहक हिन्दू रोता है, सिसक-सिसक उठता ईसाई
कसक-कसक मुस्लिम रोता है, अब अनाथ हैं भाई-भाई
सागरकी लहरें रोती हैं, पर्वतका पाषाण रो उठा
सिर धुनती मानवता रोती सतयुगका श्रृंगार चल बसा
तुम चल बसे नहीं ऐ बापू, नवयुगसे अवतार चल बसा

—'मधुर'

हे शान्ति दूत

हे शांति दूत, हे चिर महान, भारत माताके महाप्राण
तुम भरत-सदृश भारत गौरव, हे भूत, भविष्यत, वर्तमान
हे भारत माके भाग्येन्दु, हे भारत माके चिर सुहाग
हे ज्ञान-सदृश-विज्ञान सदृश, हे राग सदृश पर हे विराग
उत्तुंग हिमालय-सदृश अचल, तुम सरिता सदृश हो चिर चेतन
तुम महा तपस्वी थे गंभीर, हे भारतीय जनताके मन
तुममें स्वदेशका प्यार भरा, तुम परम अहिंसावादी थे
लाखों दुखियोंका जो आश्रय तुम दुग्ध-धवल वह खादी थे
तुम थे मोहन, तुम रामचन्द्र, तुममें सहिष्णुता थी सारी
क्या तुम द्वापरके थे मोहन, जिनको गीता थी अति प्यारी
निज करमें जब लकुटी लेकर, तुम चलते थे डगमग-डगमग
तब सारी सृष्टि सिहर उठती, डगमग डगमग डगमग डगमग
है सदा तुम्हारा जन्म-दिवस, हे मुकुट-रहित सम्राट प्रवर
है यही प्रार्थना ईश्वरसे, तुम आत्मासे हो अजर अमर

—मुकुन्ददेव शर्मा

अँधेरा छा गया

तेरे जाते ही जहाँमें एक अँधेरा छा गया
अब नजर आता नहीं दुनियामें तुझ-सा बाकमाल
तू वो दीपक है जो दुनियामें कभी बुझता नहीं
आज भी बाकी है तेरी रोशनी ये लाजवाल
हिंदका दुनियामें तूने नाम रौशन कर दिया
तू हि फख्रे-एशिया है तेरी हस्ती बेमिसाल

—मुमताज अहमद खॉं

बापू

इस पापमयी पृथिवीपर पावनतासे
इस असत बीच सत, तममें उज्ज्वलता-से
घनघोर घृणामें रहे मञ्जु ममतासे
तुम कलह विषमता मध्य शांति-समतासे

तुम द्वेष बीच थे प्रेम-सुधा विष-वनमें
तुम आश्वासन-से व्यथित विश्वके मनमें
तुम अंतरतमकी टेर भ्रान्त जगतीको
तुम मंगल विमल विवेक विनाश व्रतीको

शापित जनको वरदान-सदृश तुम आये
पद-दलितोंके उत्थान सजीव सुहाये
तुम मूक हृदयकी बने बलवती वाणी
मानवताकी मृदु मूर्ति परम कल्याणी

सात्विक जीवनके धनी, सत्यके साधक
नर-वीर-अहिंसा व्रती, धर्म-आराधक
तुमने मानवकी सहज मूर्ति पहिचानी
जन-जनके उरमें व्याप्त आत्मगति जानी

है यही सत्य, जड़ताके बंधन नश्वर
है यही पुण्य, पाशोंमें पापोंका स्वर
ले यही टेक तकली चल पडी तुम्हारी
जिसकी धारोंमें वही दीनता सारी

ले यही भाव सत्याग्रहका रण रोपा
हिल गया विदेशी हृदय, कोप-दल लोपा
स्वातन्त्र्य-समरके ओ अनुपम सेनानी
ले सत्य-अहिंसा शस्त्र समर मनि ठानी

इस गौरीशंकर पथपर चढ़ हम जय गाये
सदियोंके शोणितसे स्वराज्य फल पाये
फिर विश्व बीच निज केतु तिरंगा फहरा
चमका फिर भारत-शीश किरीट सुनहरा

जननीको दे स्वातंत्र्य, जातिको जीवन
तुम अमर हुतात्मा सफल धरे मानव तन
पर हाय, हाय, हतभाग्य हमारा कैसा
पापीने पापी प्राण न होगा ऐसा

जिसने शोणितकी होली तुमसे खेली
अपने ही ऊपर आप आपदा झेली
अपने हाथों सर्वस्व लुटाया हमने
ज्वालामें सुरभित सुमन जलाया हमने

हमने अपना वरदान कुचल डाला हा
हमने अपना सौभाग्य मसल डाला हा
यह पाप, अरे हत्या सिरपर छायी है
उठकर भी हम गिर गये, कुगति पायी है

बापू-सा त्राता, संत मिला था हमको
बापू-सा विभव अनत मिला था हमको
हा, हा, उसका यों हन्त ! अंत कर डाला
रो अधम अभागे देश किये मुख काला

—मुंशीराम शर्मा 'सोम'

आह बापू !

आह ऐ गाधी, मेरे हिन्दोस्ताँका आफताब
दारुये मर्जे गुलामी बानिये सद इन्कलाब
सर जमीने-हिन्दपर अपना ही तू अपना जवाब
हामिये अम्नो अमाँ मैखानए उलफतका बाब
बुझ न जाये गममें तेरे मेरी-हस्तीका चिराग
बापू–बापू चीखता है मेरे दिलका दाग–दाग

आँख जाती है जिधर मातमका समाँ है उधर
कोई रोता है इधर कोई परीशाँ है उधर
गिरयाजन इन्साँ इधर तो चर्ख़ शादाँ है उधर
फस्ले गुल रुखसत इधर असरे बहाराँ है उधर
ऐशपर तेरे लिए हैं हर तरफ तैयारियाँ
फर्शपर आँसूके कतरे दर्द और बेताबियाँ

हूँ मैं हैरतमें कि पलमें क्या–से–क्या यह हो गया
क्या सराए दहरसे गांधी हमारा चल बसा
कैसे ढूँढे फिर कोई अपनोका इस जा आसरा
हाथ रखकर दिल पै कहना यह वफा है या लगा
गांधी उससे खाये गोली जिसकी खातिर मिट गया
तुफ है ऐसी कौमपर जो बापका काटे गला

जाके कलकत्तेसे पूछो क्या थी गाधीकी नजर
जाके दिल्लीसे यह पूछो क्या था गाधीका असर
जाके तूफानोंसे यह पूछो क्या था गांधीका जिगर
जाके मंजिलसे यह पूछो कैसा था वह राहबर
गांधीको तुम जाके समझो नेहरूकी फरियादसे
गर समझना उसको हो समझो दिले आजादसे

याद रख ऐ अह्ले भारत फिर यहाँ आनेको है
फिर बलायें नागहाँ इस देशपर आनेको है
हिन्द अपने पापका फल जल्द ही पानेको है
फिर य [illegible] [illegible] अदा यह गजब ढानेको है

बचना गर चाहता है तो रखले गांधीके चलन
वर्ना देगा गर्दिशे दौरे जमां तुमको कुचल

चाहता है गर विदेशोंका न बनना फिर गुलाम
तो मिटाना ही पड़ेगा तुझको गद्दारोंका नाम
दूरकर दिलसे किना औ' तोड़ दे नफरतका जाम
वर्ना गांधीका लहू लेकर रहेगा इन्तकाम

ऐ फलकमें बैठा सुन यह मोकद्दस आतमा
'हिन्दू-मुसलिम एक हो' को देती है अबतक सदा

—मूसा कलीम

अश्रु-तर्पण

अभी राष्ट्रने जन्म लिया था शिशुने थीं आँखें ही खोली
राष्ट्रपिता खो गया अचानक खाकर हत्यारेकी गोली
ओ हत्यारे ! नीच नराधम नरपशु तूने क्या कर डाला
तड़प रहा है हिन्द कि तूने आज हिन्दका हृदय निकाला

रोम-रोमका ऋणी राष्ट्र था जिसकी देन धरोहर-थाती
अरे कृतघ्नी, दो गोलीसे वेधी राष्ट्रपिताकी छाती
विक्षिप्ता भारत माताने बापूको निज अंक सुलाया
राष्ट्रपिताकी सेवाओंका हमने अच्छा मूल्य चुकाया

बिना एक कण रक्त बहाये जिसने देश स्वतत्र बनाया
अरे उसीको उसके ही लोहूसे हमने है नहलाया
रोया गगन, दिशाएँ रोयीं, विकल विश्वका कोना-कोना
फूट पडा आँसू बन जन-मन ओ हत्यारे, तू मत रोना

अरे कौन अब शोषित पीडित मानवकी जो पीर मिटाये
वसुंधराके आँसू पोछे, भारत माँको धीर बँधाये
अरे कौन अब धीर बँधाये बेचारे अनाथ हरिजनको
कोटि-कोटि भारत जन-जनको निस्सहाय निर्बल निर्धनको

ईसा, बुद्ध मुहम्मदको कब जीते-जी जगने पहचाना
तुमको खोनेपर ही बापू, जगने मूल्य तुम्हारा जाना
सदियो बीते किंतु यहूदी देखो ईसाके हत्यारे
धरतीके कोने-कोनेमें डोल रहे हैं मारे मारे

बापू-हत्याका कलंक ले मस्तक ऊँचा हो न सकेगा
हिन्द महासागर भी चाहे तो भी कालिख धो न सकेगा
आज हिन्दके इतिहासोमें जुटे नये दो पन्ने काले
व्यर्थ गर्व-गौरव अतीतका, हिन्दू अपना शीश झुका ले

बापू आज नहीं हो तुम, पर जग-जीवनपर छाप तुम्हारी
महाकालके चक्रोपर अकित है जीवन माप तुम्हारी
चरण-चिन्ह जो छोड़ गये तुम, आनेवाला युग चूमेगा
इसी धुरीपर एक हिन्द ही नहीं, विश्व सारा घूमेगा

—मोहनलाल गुप्त

जब तुम न रहे हे सूत्रधार

भूगोल थमा, आकाश झुका, जब तुम न रहे हे सूत्रधार
आँसू पीकर रह गयी व्यथा, आशाओपर छाया तुषार

तुम लिये हृदयकी मुसकान, बन गये ताजमें मणि महान
जब टूट गयी मन-बन्धन, तब बना हृदयका करुणगान
आँखें मुँद गयी जगत की, म्रियमाण हुए सब सुप्रवाद
तुम जाति-स्वपितसे ऊपर उठ, निर्वाण हो गये निर्विवाद
कर गये किनारा जब अपना, तब टूटा नतलज्जाका पगार
हिमगिरिकी टूटी शान प्रचण्ड, दब गया मनुजताका उभार
जब बदला भारत-मानचित्र, गिर गया समन्वयका वितान
तब मेरुदण्ड बन भार-वहन कर सके तुम्हीं बापू महान

अब जीवन-पद्धति-सृजन-स्वप्न के, माँ कैसे करले सिंगार
आँसू पीकर रह गयी व्यथा, आशाओ पर छाया तुषार

तुम शशि-शेखरसे निर्विकल्प, निर्विषय आदि-मनु-सुत समान
आसक्ति-नमितको कर असक्त, तुमने तोडी पुष्पित कमान
तुम धर्मो मे अपवाद रहे, परिशिष्ट सभ्य-युग के विशेष
नित स्पर्श-भेद पहचान सके, बन गये स्वय अस्पृश्य, श्लेष
अब समय नहीं है रोनेका, इसलिये कलेजा लिया थाम
वर्ना विनाशकी इस गतिमें, आता न कभी यह मृदु विराम
अवरामराज्यका सबल सत्य, कठस्थ हो रहा था प्रसार
पर एक ईंटके लिए गिरा क्यो मानस-मंदिर निर्विकार

आँसू पीकर रह गयी व्यथा आशाओ पर छाया तुषार
भूगोल थमा, आकाश झुका, जब तुम न रहे हे सूत्रधार

—मुकुल

मृत्युंजय

आज तुम्हारे ही प्राणोंसे, मृतक विश्वको प्राण मिल रहा

आत्म-बोधके मंगल स्वरमें गूँज रहा है गान तुम्हारा
आज अबोध मनुष्य उठ रहा, पाकर पावन ज्ञान तुम्हारा
जातिभेद, जनभेद, श्रेणियाँ, युग-युगकी संकीर्ण रूढ़ियाँ
मिटनेको विद्रोह कर रहीं लख उज्ज्वल अभियान तुम्हारा
तव अनुकम्पाके सरमें ही जन-मनका जलजात खिल रहा
आज तुम्हारे ही प्राणोसे, मृतक विश्वको प्राण मिल रहा

मंथन करके जग-जीवनको अमर सत्यका रत्न निकाला
अमृतदान देकर संसृतिको, स्वयं पी गये विषका प्याला
पंचभूत दे पंचतत्वको आज हुए हो तुम मृत्युञ्जय
अरे अमरता धन्य हो उठी, डाल तुम्हारे उर जयमाला
देख तुम्हारे तपस्त्यागको इन्द्रासन है आज हिल रहा
आज तुम्हारे ही प्राणोसे मृतक विश्वको प्राण मिल रहा

नूतनसृष्टि रच रहे थे तुम स्वर्ग धरापर ले आनेको
किंतु स्वयं ही धराधामसे तत्पर हुए स्वर्ग जानेको
यह अपूर्ण साधना तुम्हारी कौन आज सम्पूर्ण करेगा
आओ स्वप्न सत्य कर देखो हम आकुल तुमको पानेको
क्योंकि तुम्हारे बिना कठिन यह भार न हमसे आज झिल रहा
आज तुम्हारे ही प्राणोंसे मृतक विश्वको प्राण मिल रहा

—रघुवरदयाल त्रिवेदी

जय अनन्त करुणाके धाम

देव मुक्तिके अग्रदूत हे, पावनताके पुण्याराम
विश्व-कलुषके क्षार, धरणिकी ज्वालापर तुम जलधर श्याम
प्राचीके आलोक प्रतीचीपर छायी किरणोंके दाम
विश्वाराध्य ईश जननायक, आत्मबोध-तृष्णामें धाम
स्वयंप्रभासे दीप्त लोक दीपक ! तेरा धन केवल नाम
अविनश्वरताके प्रतीक तुम अमर तपस्वी-से निष्काम
रघुपति राघव राजाराम
——रत्नशंकर

अजर अमर बापू

रो मत मेरे देश, अमर है तेरा यह सेनानी
यह न मरेगा जबतक गंगा–यमुनामें है पानी
जन-जनमें जीवनसे उनका जीवन बोल रहा है
कण-कणके उनकी करुणाका ही स्वर डोल रहा है
रोम-रोममें समा गया है उनका पावन नाम
मानव भूल रहा है जपना जय जय सीताराम
हिन्दू रोया, मुस्लिम रोया, रोया सकल जहान
गंगा–यमुना रोयी, रोया पत्थरका इनसान
धनी और निर्धन मिल रोये, रोया करुण किसान
दिल्ली रोयी, लन्दन रोया, रोया पाकिस्तान
फूट-फूट रो रही विश्वमें मानवकी नादानी
राष्ट्रपिताकी शक्ति स्वर्गके मुँहमें लायी पानी
स्वर्ग–परी छल गयी धराको, मानवता चिल्लायी
दीन हो गयी धरा, स्वर्गने घीके दीप जलाये
दुनियाने आँखोंमें भर-भरकर आँसू छितराये
प्रिय स्वदेशकी स्वतंत्रता ही उनकी अमर निशानी
——रमानाथ अवस्थी

अस्त हुआ रवि

बापू, बापू राष्ट्रपिता हे, कहो चले किस ओर
छोड़ चले क्यो आज हमें तुम इस विपत्तिमें घोर
तूफानोमें खेकर तुम लाये भारतकी नैया
लगा किनारे कूद गये तुम जलमें स्वयं खेवैया

मत रूठो हे क्षमा-सिंधु, पागलपन देख हमारा
तुम रूठोगे तो हमको फिर देगा कौन सहारा
ओ हिन्दू, मुसलिम, ईसाई, सिख कहलानेवालो
रो लो आज गले मिलकर तुम, जी भर शोक मना लो

अरे अछूतो, कौन करेगा छूत तुम्हारी दूर
सबसे अधिक आज तुमपर ही हुआ विधाता क्रूर
फूटा भाग देशका अब है कर मलकर पछताना
मुहसे यही निकलता—'हा, हमने न तुम्हें पहचाना

अस्त हुआ रवि मानवताका, फैल गया अँधियारा
खुल खेलेगी दानवता अब हुआ बुलंद सितारा
बुद्ध हुए हत-बुद्धि आज, ईसामसीह बिलखाते
देख अहिंसाको संकटमें महावीर दुख पाते

सत्य-अहिंसाकी वेदीपर बापूका बलिदान
प्रलय कालतक बना रहेगा घटना एक महान

—रमापति शुक्ल

आखिरी विदाई लो, बापू

तुम आसमानकी ओर चढ़े जा रहे, विदाई लो, बापू
तुम सत्य, अहिंसा और शान्तिकी अमिट निशानी छोड़ चले
धरतीपर त्याग-तपस्याकी तुम अमर कहानी छोड़ चले
तुमने ही कहा कि अमिय पिला [illegible] गरल पीते जाओ
तुमने ही कहा कि मर मरकर जीवनके हित जीते जाओ
तुम स्वर्ग-लोककी ओर बढ़े जा रहे, विदाई लो, बापू
आखिरी विदाई लो, बापू

हम नये दुखारी देश आज धरती आकुल, आकाश विकल
कुछ नये पृष्ठ लिखनेको हो रहा आज इतिहास विकल
मुट्ठी-भर हड्डीके भीतर तूफान चला करता था जो
दुबली पतली-सी कायामें बलिदान पला करता था जो
तुम लिये शहीदी शान जले जा रहे, विदाई लो, बापू
आखिरी विदाई लो, बापू

चीखती मुहम्मदकी आत्मा, मजहब आकुल, ईमान विकल
हो रहा राष्ट्रका धर्म विकल, गौतम ईसाके प्राण विकल
आँखोंसे बरबस फूट रहे प्राणोंके फेनिल गान विकल
हो रही आज श्रद्धा आकुल, आशा आकुल, अरमान विकल
तुम धरा छोड़कर किधर उड़े जा रहे, विदाई लो, बापू
आखिरी विदाई लो, बापू

नन्हा-सा मिट्टीका पुतला धरतीपर चलताफिरता था
झिलमिल जो मिट्टीका चिराग सदियोंसे जलता फिरता था
वह आज मौन हो गया, मगर उसका प्रकाश अवशेष अभी
शाश्वत सदियोंतक दीप्तमान रखनेको देश-विदेश सभी
तुम चिता-ज्वालपर आज चढ़े जा रहे, विदाई लो, बापू
आखिरी विदाई लो, बापू

वह ऐसा कौन कि आंक सके कीमत ऐसी कुर्बानीकी
वह ऐसा कौन कि गति रोके ऐसे आकुल अभियानीकी
किश्ती तो लगी किनारे, पर हिलकोरे आते-जाते हैं
तुम चले जा रहे जहाँ आज हम उसे देखने आते हैं
तुम देवलोककी ओर बढ़े, जा रहे, विदाई लो, बापू
आखिरी बिदाई लो, बापू

—रमेशचन्द्र झा

बापूका बलिदान

बापू रोती मानवताको निरुपाय छोड़कर चले गये
बलिदान-कथामें एक नया अध्याय जोड़कर चले गये

भारत-जननीने सदियोंमें एक लाल अनोखा जाया था
उस एक व्यक्तिमें ही मोहन-गौतम-ईसाको पाया था
जो कंटक-पथको निज पगसे सौरभमय करता आया था
अपने करुणामय मानसके करमें मुक्ता-कण लाया था
पर आज वही मोती दृगके आँसू-से बनकर चले गये

हत्यारेकी पिस्तौल चली, गोलीके घातक वार हुए
बस उसी समय मानवताके मधु स्वप्न अचानक क्षार हुए
आशा-लतिकाके नवल फूल झट मुरझाकर निस्सार हुए
पलभर पहलेके रंगमहल मर्माहित शोकागार हुए
नीचेसे खिसक चली धरती, आधार धराके चले गये

सहसा भारत मांका-क्रन्दन शोकाकुल स्वरमें फूट पडा
रोया गिरिवर, रोया सागर, अवनीपर अवर टूट पड़ा
शत-कोटि निराश्रितका आश्रय, निर्बलका सबल छूट पडा
सनप्त मनुजता चीख उठी, क्यों क्रूर विधाता रूठ पडा
रह रहकर हूक यही उठती—हम क्रूर नियतिसे छले गये

पर अमर शहीदोंकी टोली जब होगी निरुद्देश कहीं
बापूके सोनेकी गोली क्या देगी कुछ आदेश नहीं
यह देखो सत्य अहिंसाकी ध्वनियां हैं तुम्हें पुकार रहीं
आओ, यदि कुछ करना चाहो, बापूकी बलि बेकार नहीं
वे तो वरदान लिये आये, अभिशाप समेटे चले गये

पशुताकी पृष्ठ-भूमिपर जब उनका जग चित्र बनायेगा
खूनी दागोंसे लिखा हुआ इतिहास एक बन जायेगा
जिसका पन्ना-पन्ना उनकी यश कीर्ति-ध्वजा फहरायेगा
जिसका अक्षर-अक्षर फिर तो बस यही गान दुहरायेगा
अंबरके स्वप्न धरातलपर वे मूर्तिमान कर चले गये

जग भरके ताज निछावर थे, उस बिना ताजके राजापर
उन्नत मस्तक झुक जाते थे, उस महापुरुषके चरणोंपर
लाखोंके कोष लजाते थे, उस वैरागीके वैभवपर
सब देवदूत शरमाते थे, उस शांति दूतके गौरवपर
वे जाते-जाते भी जगके उर-पटल खोलकर चले गये

—राजपाल सिह 'करुण'

बापू

नयनोंके मानसरोवरमें रहनेवाली हंसिनि जागो
झरते दृग इन्दीवर दल हैं मुक्ताके दाम सरस मांगो
करुणाकी इस कादम्बिनिसे अपने आँसूका मोल करो
आँखोंमें आज अमरताकी वह अक्षयनिधि अनमोल धरो
जिन आँखोंने वह छवि देखी हो उन आँखोंके पानीसे
उस पीडाका परिचय पूछो निर्ममताकी नादानीसे
भावुकताकी इस धरतीपर है टूट गिरा आकाश कहीं
'देवत्व कला है मर सकती'—होता इसपर विश्वास नहीं

कहते हैं लोग मरे बापू, पर वे सचमुच हो गये अमर
जगकी नश्वरतामें उनका है आज गया अस्तित्व निखर

उनके विचारका भार वहन करते विद्युत्-कण अम्बरमें
है कंठ बोलते कोटि-कोटि उनके ही अविनाशी स्वरमें

"दीनोंके बंधु पतित पावन निरवधि करुणाके धाम अमर
तुम जनमन मन्दिरके रघुपति, तुम राघव राजाराम अमर

जिसकी स्मृतिसे चिर शत्रु-वधू भरती निज नयन सरोज युगल
उनके जीवनकी धारा थी उस मधुर सत्यकी खोज विकल

जिसके आगे दुर्धर्ष प्रकृति पशुबलकी नतमस्तक होकर
प्रमुदित अनुनयकी अञ्जलिमें पीती है आज चरण धोकर

कण एक उन्हींके पद-रजका यह नर-पशुता यदि पा जाती
अपने संचित शत जन्म कलुष क्षण भरमें आज मिटा पाती

था इन्द्र तुम्हारा वज्र कहाँ, थे राम तुम्हारे बाण कहाँ
सब जिन्हे देवता कहते थे---वे मंदिरके पाषाण कहाँ

क्यों उस गजेन्द्र उद्धारककी बाहोंमें पक्षाघात हुआ
जब मानवताके प्यारेपर वह वक्ष-विदारक घात हुआ

निर्व्याज क्षमाके अवयवपर क्यों वज्र गिरानेवालेकी
गलकर न गिरीं वे अंगुलियाँ पिस्तौल चलानेवालेकी

उस दिन हजार फणवालेने इस अघसे बोझल धरणीको
क्यों फेंक न दिया तमोदधिमें अर्पित न किया वैतरणीको

फट गयी न धरतीकी छाती फट गया न क्यों आकाश-हृदय
मच गया न भैरव कम्पनसे क्यों पंचभूतमें महाप्रलय

जब जगद्वन्द्य उन प्राणोंपर उस पापीकी पिस्तौल फिरी
जब छिन्न हृदयसे बापूके वह प्रथम लहूकी बूँद गिरी

उस एक बूँदका दाम सुनो अपने शोणितके सागरसे
अब दे न सकेगी मानवता भर-भर नदियोंकी गागरसे

यह अजर अमर हो मानवता मैं चला सृष्टिका विष पीने
कोई न किसीको अब दुख दे कोई न किसीका सुख छीने

हिन्दू-मुसलिमके बच्चेको समझे अब अपना ही बच्चा
संसार उसे फिर मानेगा मानवताका सेवक सच्चा

अब रक्त-पिपासु पिशाचोको मेरा यह खून अमानत है
इससे न बुझे जो प्यास उसे धिक्कार निरर्थक, लानत है

निष्ठुरताके प्रतिनिधियोको मेरा अंतिम संदेश यही
मत भूलो मेरे मित्र, मनुज–देवोका सुंदर देश यही

है यहाँ दीन, असहायोकी रक्षामें प्राण गँवाना ही
मानवका मानवताके हित अमरत्व यहाँ मर जाना ही

मानव–समाजकी सेवा ही जिनका सुंदरतम गहना है
बस एक क्षमाका आभूषण ही जिन पुरुषोने पहना है

आरम्भ जहाँसे होते है मानवताके इतिहास भले
अनजान चेतनावाले भी उन आदि युगोके कुछ पहले

मनके अति निष्ठुर मानवको जंगलके हिंसक प्राणीको
जिसने करुणाका मंत्र दिया वर्बरताकी उस वाणीको

नवजात सभ्यताके शिशुको दो डग भरना सिखलाया है
संस्कृतिके पहले अरुणोदयमें जिसने विश्व जगाया है

उन ऋषियोकी संतान तुम्हे प्यारा उनका आदर्श रहे
सौ वार अधिक मन-प्राणोसे प्यारा यह भारतवर्ष रहे

—राजेन्द्र

हा. राष्ट्र पिता

रात घनी है, बादल छाये, कांप रहे हैं पंथीके पग
अर्द्ध निशामें जगके जगमग दीपकका अवसान हुआ क्यो

धरतीकी धड़कन बोझिल है, भींग रहा आंसूसे अंतर
विधवा-सी ये शून्य दिशाएं रोती हैं अम्बरसे झर-झर
यह बिल्लौरी मांग मुमरित खोज रही यौवनकी घड़ियाँ
मांग रही माता अम्बरसे अपना बापू आह भर भर
देख रही मानवता अपने सपनोंकी वीरान चिताएं

नव गुंजनसे गुंजित यह वन जरा सहमा सुनसान हुआ क्यो

वे दिन थे जब बापू तुमने उन लपटोंमें जलना जाना
वे दिन थे जब अफ्रीकाके धूसर पथपर चलना जाना
वे दिन थे जब कारागृहमें तुमने अपनेको पहचाना
वे दिन थे जब अपने पथपर खाकर बेंत मचलना जाना
वे दिन थे जब कोलाहलमें तुमने नीरव दीप जलाये

ये दिन आये, दुर्दिन आये, हा ! टेढा भगवान हुआ क्यो

राष्ट्र-पिता तुमने निज पगसे कितने ही दुर्गम पथ नापे
ज्योति चरणसे देव, तुम्हारे कितने ही तमके बन कांपे
कितनी बार बिजलियाँ चमकी शत-शत मृत्यु प्रलय कम्पन ले
पर तुमने चलना ही जाना मानवको पलकोमें ढांपे
आंखोमें सावन, प्राणोमें पतझर, सुधियोमें पुरुवाई

खिलनेके पहले ही जलकर राख सजल अरमान हुआ क्यो

सूना है आकाश धराका, सूनी है फूलोंकी डाली
सूना है स्मृतियोंका खँडहर, सूनी हैं ये घड़ियाँ काली
वर्धाके सूने आँगनमें होगी मौन दिवसकी छाया
रोती होगी बाहोंमें पद-चिन्ह पकड़कर नोआखाली
मानवकी जलती दोपहरी जिसकी स्वर लहरीमें भीगी
आज मरणके सूने तटपर क्रन्दन-सा वह गान हुआ क्यों

काँप रही थी जिसको छूनेमें थरथर शासनकी सत्ता
अरे ! आगमें नाप रहा था जो नोआखाली-कलकत्ता
आस्तीनके एक साँपने क्षण भरमें ही उसे सुलाया
आह ! क्षोभसे काँप रहा है जगका तृण-तृण पत्ता-पत्ता
बकरी मौन जुगाली करती पूछ रही दृगमें आँसू भर
पशुसे भी निर्मम नीचा मनुका बेटा इन्सान हुआ क्यों

यमुनाके जिस नीलम तटपर गूंज रहा था बंशीका रव
आज वहीं जगके मोहनका भस्म हो गया जल जलकर शव
आग लगी है बंशी-वटमें, सुलग रही छाया कुंजोंकी
दुनियाकी आँखोंके आगे झुलस गया दुनियाका वैभव
गोदीमें भर श्याम लहरियाँ रोज निशामें रो जायेंगी
काले-काले अभिशापों-सा धरतीका वरदान हुआ क्यों

जगके प्राणोंमें गूँजेगी बापू तेरी प्रेम-कहानी
सुनकर जिसको शिला-खण्ड भी बहा करेगा बनकर पानी
हिम-गिरिकी चोटीसे झरझर झरता जायेगा निर्झर स्वर
भारतके ये मुक्त विहँग गायेंगे देव, तुम्हारी वाणी
पूछेंगे नभके तारोंसे दुनियावाले आँख उठाकर
मानवताकी ही घाटीमें मानवका बलिदान हुआ क्यों

रात घनी है बादल छाये काँप रहे हैं पथोंके पग
अर्द्ध निशामें जगके जगमग दीपकका अवसान हुआ क्यों

—रामदरश मिश्र

बापू

कहाँ छिप गया आज 'दिनमान' मेरा

निरख देखता मैं उदासी-उदासी
निशा [illegible] आती है प्रलयकी घटा-सी
लपट [illegible] ताप-सी गोलियोंसे
छिपा आज फिर '[illegible] भगवान्' मेरा

कहाँ छिप गया आज 'दिनमान' मेरा

धरा रो रही है, गगन रो रहा है
अखिल विश्व चिन्ता-विकल हो रहा है
बहुत दूर है देश, मँझधारमें ही
हुआ आज रे, दीप निर्वाण मेरा

कहाँ छिप गया आज 'दिनमान' मेरा

नियति, क्रूरताको तुम्हारी कहूँ क्या
सदा शोकके सिंधुमें ही बहूँ क्या
हृदय वेदनासे भरा, अश्रु बनकर
बहा जा रहा है करुण गान मेरा

कहाँ छिप गया आज 'दिनमान' मेरा

—रामनाथ पाठक 'प्रणयी'

बापूसे

अँखियाँ खोलो मुखसे बोलो, देशकी राखो लाज
लाये हैं श्रद्धाञ्जली हम गांधीजी महाराज

घर-घर दुखके बादल छाये, सुखकी नैया डूबी जाये
भारत माता रो रो कहती बनके बिगड़ गये काज

नयनन नीर बहाना छोड़ा, भारतसे काहे मुख मोड़ा
देये दुहाई भारतवासी जागो बापू आज

दोनों जगमें तुमरी जै हो, गोली खाके अमर भये हो
हमसे बिछुड़के स्वर्ग गये हो सुमतिका पहने ताज

हे महात्मन !

वार ? कैसा वार ? किसपर वार

जो कि मृत्युंजय उसे क्या मार सकती तोप या पिस्तौल या तलवार
चुप रहो ! वह यति, महात्मा, साधु योगी, संत
हो चुका था, कभी पहले, अजर, अमर, अनंत
सत्य जिस दिन सामने आया, पसारे हाथ
दे दिया था उसी दिन उसने खुशी के साथ
प्राण, तन, मन, धन, रहा था हो अनंद विभोर
'मोर सो मैं कछु नहीं, अब जो कछु है तोर'
बन गया क्षण बीच तत्क्षण वह स्वयं अवतार
मृत्युका स्वामी—उसे क्या मृत्यु सकती मार

वार ? कैसा वार ? किसपर वार

चुप रहो क्या मार सकता था उसे वह कीट
नाम जिसका लूँ तो मारें लोग पत्थर ईंट
वह विभीषण, वह दुशासन और वह जयचन्द
हो गया उस दिन कि जिसका नाम लेना बंद
कहाँ वह, औ' कहाँ यह, जिसके पदोंकी धूल
थी कि मुर्दोंको, मरोंको भी संजीवन मूल
सच कहूँ, जिसने गढ़ा है यह नया संसार
मैं न मानूँगा, उसे है मृत्यु सकती मार

वार ? कैसा वार ? किसपर वार

चुप रहो वीरत्व वह जैसे प्रकट सशरीर
पर हृदयमें छिपी जिसके इस जगतकी पीर
वीर ईसाकी तरह था,—अली औ' सुकरात
जुरिस्टर औ' सिक्ख गुरुओंकी बढ़ा दी बात

वीर-गतिका हक उसे था, वीर-गतिकी प्राप्त
कब हुई ऐसे फकीरोंकी विभूति समाप्त
पूर्ण, पूर्णमिद बना वह ब्रह्मका अवतार
मृत्यु दासी थी, उसे क्या मृत्यु सकती मार

वार ? कैसा वार ? किसपर वार

चुप रहो जब धर्मका होता जगत्‌में अंत
तब कृपाकर प्रकट होते गांधी-जैसे संत
आज कह सकते नहीं यह जग कि रौरव नर्क
जान कुछ पड़ता नहीं, इसमें कि उसमें फर्क
शांतिका बिरवा उगा तो फल चखेगा कौन
इस विषयपर तुच्छ कविका उचित रहना मौन
बौद्ध-मन ईसाइयत फूले-फले पर हार
फलेगा यह भी कहीं--क्या मृत्यु सकती मार

वार ? कैसा वार ? किसपर वार

श्रद्धांजलि

आदमीयतकी [illegible] जिस तरहसे मरने लगी थीं
सभ्यताकी साँसें [illegible] टूटने लगी थीं
[illegible] जिसकी निशानी
और यह [illegible] जिसकी कहानी
यह [illegible], यह [illegible] हमने जो पाया तदबीर बनके
पच न पाया यह संजीवन पेटमें पापी भुवनके

प्रतिदिन संस्कृतिकी तपस्या [illegible] पर जो आ गयी थी
और वह [illegible] तलपर छा गयी थी
सुरभि-पय-पीयूष [illegible] हो गया जिनके हियेसे
ताप [illegible] हो गया [illegible] अपलक दियेसे
स्वर्गकी ममता मिली ज्यों मर्त्यको मधुक्षीर बनके
पच न पाया यह संजीवन पेटमें पापी भुवनके

नव-नयनमें उन्नयन-विज्ञानकी क्या ज्योति जागी
पतित-तम-पथपर पलटकर सभ्यता भागी अभागी
आदमीयतकी वसीयत—सृष्टिके श्रमकी कमाई
प्रेम, करुणा, एकता—क्या निधि नहीं हमने गँवायी
और वह जीवन मिला जो आखिरी तदबीर बनके
पच न पाया हाय ! वह भी पेटमें पापी भुवनके

कोटि जग उरके सजग फुर हो उठे जिसके जगाये
हँस रहे वीरान भी फलवान अब जिसके लगाये
मृत्तिकाकी पुतलियोंमें फूँक जीवनकी शिखाएँ
धो गया अपने लहूसे जो धरातलकी बलाएँ
जा बसा सुर कंठमें वह अब नयी तकदीर बनके
पच न पाया जो संजीवन पेटमें पापी भुवनके

—'रुद्र' गयावी

अमीरे कारवाँ

गुलसिताने जिंदगीका बागवाँ मारा गया
नाखुदाए किश्तिए हिन्दोस्ताँ मारा गया
जिन्दगी जिसकी थी सुलहोअम्नकी पैगम्बर
हैफ एक ऐसा अमीरे कारवाँ मारा गया

क्यों उदासी छायी है, बेनूर क्यों दुनियाँ हुई
बन्दए हक कौन दौरे आसमाँ मारा गया
जिसने अपनी जिन्दगी राहे खुदामें वक्फ की
आह वह दरोहरमका पासवाँ मारा गया

जिसकी पीरी अज्मो इस्तकलालका जिन्दा शबाब
आह वह गेतीका फर्जन्दे जवाँ मारा गया
जहने आजादीने बढ़कर जिसके चूमे थे कदम
आज वह शाहन्शाहे हिन्दोस्ताँ मारा गया

बादशाही जिसने की रूहानियतके जोरसे
हिन्दवालो, वह तुम्हारा हुक्मराँ मारा गया
याद है जिसने कहा था हिन्दू-मुस्लिम एक हैं
[illegible] यानी सबका मेहरबाँ मारा गया

मन जिसका देवताके मनसे कुछ कम न था
एक वह [illegible] हमारे दर्मियाँ मारा गया
वह अहिंसाका पुजारी वह [illegible] देवता
[illegible] हिन्द [illegible] मारा गया

जो [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] होशियार
यह न जाना दुश्मन फिर [illegible] मारा गया
दुश्मनोंको देखता था जो निगाहे लुत्फसे
हैफ है वह दोस्तोंके दरमियाँ मारा गया
खैर हो अंजामकी यह तो अभी आगाज है
पहले ही मंजिलमें पीरे कारवाँ मारा गया
घुल गया 'रोशन' जिगर अपना हिन्दोस्ताँ
आह गांधी [illegible] [illegible] मारा गया
—रौशनलाल गुप्त 'रसिक' बनारसी

बापू

कौन था, कहाँसे आके अपना बनाके हाय
फिर कैसे हमसे बिछुड़के चला गया
प्रेम-पालनेमें पाल, प्रेम ही पढ़ाया सदा
आज यही झटके झगड़के चला गया
भूलसे भी भूलता रहा नहीं जो सपनेमें
आँखें फेर ध्यानसे अकड़के चला गया
चदन समान भाग्य-भालपर शोभता था
चदनकी चितापर चढ़के चला गया
साधु, सत, योगी, यती, ऋषि, मुनि, महात्मा था
साधक, तपस्वी, देवता कि अवतार था
करामाती, जादूगर, सिद्ध या सयाना, पीर
दरवेश, औलिया, फकीर, कल्पकार था
सेवक, सिपाही, वनिया, किसान, मजदूर
भिक्षुक, जुलाहा, कोल, भगी, परिवार था
ज्ञानवीर, भक्तिवीर, धर्मवीर, कर्मवीर
प्रणवीर, रणवीर, वीरोका शृंगार था

राजाओंका राजा महाराजाओंका महाराज
चक्रवर्ति-चूड़ामणि, शूर – सरदार था
मानवता-नाव भव-भँवरमें फँस रही
पार करनेका वही दिव्य पतवार था
भारत-विधाता, विश्व-प्रेम-मंत्रदाता, त्राता
शांति रूपमें अनूप क्रांतिकी उभाड़ था
दानवता हार बार-बार खाती थी पछाड़
एक मुट्ठी हाड़में विराट-सा पहाड़ था

जबसे वसुधरामें सृष्टि-रचना है हुई
आँखसे न देखा किसीने न सुना कानसे
ब्रह्मकी न चाह, परवाह स्वर्ग-मुक्तिकी न
भक्त भगवान हो, रम गया जहानसे
तीन लोक-तारिणी त्रिवेणी आज तर गयी
भारत-विभूतिके विभूतिके मसानसे
ऐटम-बम अणु-परमाणुमें बिखरके
घुल-मिल गया जल, थल, आसमानसे

सत्यता हरिश्चन्द्र, पौरुष परशुराम
ध्रुव प्रह्लादकी अचलता सुहाई थी
दृढ़ता दधीचिकी थी, त्याग शिविके समान
नीति नटवर-सी निपुणता लखाई थी
बुद्धका वैराग्य, और ईसाका परोपकार
[illegible] विश्वामित्र, राम [illegible] थी
नानक कबीर [illegible], [illegible] मुहम्मदकी
[illegible] [illegible] झाँकियाँ बसाई थी

—[illegible] सिंह 'नटवर'

जलती बापूकी चिता नहीं, जल रही चिता मानवताकी
पड़ती आहुति जिसकी ज्वालामें प्रेम, अहिंसा, ममताकी
है लाज विधाता, तो दौड़ो ले अमृत हाथमें अम्बरसे
सुन लो मानवताकी पुकार जो निकल रही है उर-उरसे

मानवताका सिंदूर-बिंदु जल रहा अग्निकी लपटोंमें
घिर गयी सत्यकी सीता है दानवताके छल-कपटोंमें
जो लाज बचानेवाला था सौमित्र मृतक वह पड़ा हुआ
लायेगा जीवन-सुधा कौन, यह देश शर्मसे गड़ा हुआ

हो गयी धन्य यमुना, बिड़ला-हाउस भी पुण्यस्थान बना
हो गयी धन्य वह धरा, जहाँ उनकी समाधिका स्थान बना
शोकाभिभूत उर श्रद्धानत, जन-गण अपार उस ओर चला
ज्यों महासिंधु छूनेको नभ अपनी सीमाको तोड़ चला

कैसा भीषण यह कोलाहल? क्यों उठी सृष्टिमें आँधी है
दौड़े सुरपति, रोमांचित हो बोले—अभिनन्दन गांधी है
बापू! तेरा तन नहीं अभी, पर तू सबके मन-प्राणोंमें
तोड़ा सीमाका बंध, अमर, तू अखिल हृदयके गानोंमें

तेरा प्रकाश पथ दिखलायेगा हमको इस अँधियारेमें
ओ कर्णधार! यह राष्ट्र-तरी पहुँचेगी कूल-किनारेमें
[illegible] इस [illegible] [illegible] नस-नसमें खून उबलता है
[illegible] [illegible] [illegible] पर [illegible] मचलता है

ईश्वरकी हिंसा क्षमा करें

रोती धरती, रोता अंबर, रो-रो पुकारता है त्रिभुवन
तुम कहाँ गये भारतके धन, चालीस कोटि प्राणोंके धन
चालीस कोटि जनके जीवन

रो-रो पुकारता है भारत-ओ भूखोंके भगवान कहाँ
ओ महामहिम ! ओ तपः पूत ! यह असमय ही प्रस्थान कहाँ

तुम गये कहाँ, किस ओर कोटि प्राणोंकी ममता छोड़ कहाँ
क्रदन-रत इन माँ-बहनोंसे तुम चले आज मुह मोड़ कहाँ
रोते-चिल्लाते कोटि-कोटि बच्चोंसे नाता तोड कहाँ
तुम चले हमारे स्नेह-भरे बोलो मगल-घट फोड़ कहाँ

ओ अमर अहिंसाके प्रतीक, सुख-शांति-सत्यके दीवाने
एकता-दीपपर न्योछावर हो जानेवाले परवाने
ओ मुट्ठी भर हड्डियाँ देश-पदपर करनेवाले अर्पण
जीवन भर जल-जलकर प्रकाश फैलानेवाले ज्योति-सुमन
असमय यह कैसा स्वर्ग-गमन

बापू, ओ प्यारे बापू, भारतवर्ष तुम्हारा रोता है
हत्यारेके मस्तकपर चढ आदर्श तुम्हारा रोता है
ओ विश्व-बंधु शुभ कर्मोंका परिणाम यही क्यों होता है
क्यों अपना ही अपनोंके लोहूमें उँगलियाँ भिगोता है

जिनके हित तुमने जीवन भर यातना सही दुख-दर्द सहे
जिनके हित-चिंतनमें निशि दिन तुम तन-मन धनसे लीन रहे
उन अधम अभागोंने हँसकर प्राणोंका पंछी छीन लिया
लोहूसे रँग कर हाय राष्ट्रका टूक-टूक कर दिया हिया

ईसाकी भाँति तुम्हे भी तो अपनोंसे ही हा ! मिला मरण
प्यारे स्वदेशके लिए विहँस कर किया मृत्युका आलिंगन
है धन्य तुम्हारा अग्नि-वरण

सच है, तुम हमसे छूट गये युग-स्वप्न हमारे टूट गये
पर रक्त-पिपासित मानवको दे शांति-सुधा की घूंट गये

तुम गये किन्तु इस भूतल पर आदर्श तुम्हारा फैला है
क्या है कि अभागे मानवका अंतर अब भी मटमैला है

यह देश तुम्हारे पद-चिह्नोंपर निश्चय चला करेगा ही
शुचि सत्य अहिंसाका अखंड यह दीपक जला करेगा ही

हे बापू, उस हत्यारेको ईश्वरकी हिंसा क्षमा करे
हैं भीख दयाकी मांग रहे चालीस कोटि दृग अश्रु-भरे

हे समदर्शी भगवान, स्वर्गसे दो हमको आशीश-वचन
छिटकायें तीनों लोकोंमें हम 'राम-राज्य' की ज्योति-किरण

हे ज्योतिपुंज, हे भव-भूषण
लो कोटि-कोटि उनका वंदन युग-युगतक युगका महा मिलन
लो पद-पूजन, हे राष्ट्र-सुमन

—'विमल' राजस्थानी

अमर पुरुष

ओ कृतघ्न ससार, न तूने अपना हित पहिचाना
सतत मित्रको अपने तूने अपना बैरी माना
कितनी प्रबल विकट निर्मम है तेरी रक्त-पिपासा
चकित देखता काल युगोसे तेरा क्रूर तमासा

दुष्प्रवृत्तिसे प्रेरित पहले तू है पाप कमाता
फिर अनुशोक ताप-पीडित पूजाके हाथ बढाता
विश्व-वद्य बापूकी हत्या भी ऐसी ही लीला
बढा ज्ञान-वध करनेको जड़ताका हाथ हठीला

पञ्चभूतमय नश्वर तनको मिली पराजय रणमें
किंतु प्राणका विजय-घोष हो उठा रणित कण-कणमें
हारीं जगकी असुर वृत्तियाँ, महादेव मुसकाया
ज्योति-पुञ्जके अभिवादनको जगने शीश झुकाया

यह बापूका अंत आज बनकर अनंत कहता है
पुरुष सत्य-सभूत जगतमें सदा अमर रहता है
यही सोचकर सुकवि लेखनी आर्द्र नहीं हो पायी
कर्म मार्गके साक्षी बापू, तुमको लाख बधाई

'युक्त कर्म फल त्यक्त्वा' हे सत्याग्रह सेनानी
अजय अभय अस्तेय अहिंसा सत्य प्रेमके ज्ञानी
तुमने नयी प्रेरणा भर दी स्वाभिमानकी मतिमें
तुमने नयी शक्ति पैदा की आत्मज्ञानकी गतिमें

मानव मानव बने यही था शुभ सदेश तुम्हारा
धर्म नहीं है वैर सिखाता यह उपदेश तुम्हारा
पिता, पित्र, भूदेव, देव है सारा जग आभारी
नाच रही आंखोमें अब भी सुंदर मूर्ति तुम्हारी

—विश्वनाथ लाल "शैदा"

बापू

जो [illegible] हम [illegible]
दिन गये हैं और हमारा [illegible] उँगलियाँ
क्या हुआ सो है नहीं [illegible] अंकुर नयन दो
गड़ गये हैं [illegible] अब हमारे [illegible]-नीर हो
आज बापू देख लेना

सत्य-गंगा प्रखर [illegible] तुम अकेले जिसे धारे
गिरा [illegible] अब भूमि, उसका [illegible] यह [illegible] सँभारे
मुष्टिका उर फट रहा है, ये नहीं आँसू हमारे
या पुनर्निर्माणको अब [illegible] उठे हैं हृदय सारे
आज बापू देख लेना

रक्तमें अमृत-मयी शक्ति संचारित तुम कर गये हो
स्वर्गकी निधियाँ धरापर तुम सँजोकर धर गये हो
भूल जायें पथ तुम्हारा बुद्धि तो है चूक सकती
आत्मज हैं हम तुम्हारे प्रकृति कैसे भूल सकती
आज बापू देख लेना

अंततक लड़ता तुम्हारा एक अनुचर बहुत होगा
विश्वका तम काटनेको एक दिनकर बहुत होगा
अग्नि-सुरसरिमें खिला जो एक अविचल बहुत होगा।
जगतका मन मोहनेको एक उत्पल बहुत होगा
आज बापू देख लेना

जर्जरित तनको मिटाकर भ्रष्ट-मतिके पा गये क्या
लहरपर गोली चलाकर नीरका विनसा गये क्या
ये अगण्य शरीर, अतर जहाँ तुम बसते रहे हो
सत्यपर मिट जायेंगे जैसे कि तुम मिटते रहे हो
आज बापू देख लेना

—विद्यावती कोकिल

अमर ज्योति

सामाज्योंके लिए काल-सा, दिखनेमें कंकाल रहा जो
जिसका अतर कोहनूर था बाहरसे कंगाल रहा जो
जिसने अपनी दीप-रागिनी सीमाओंमें कभी न बांधी
तुमसे बिछुड गया वह दीपक, तुमसे बिछुड़ गया वह गांधी
और विश्वके नयनोंमें आँसू बनकर रह गया जवाहर
जीवनकी यह असह वेदना प्राणोपर सह गया जवाहर
धैर्य वनो इस विश्व व्यथामें, आशाओंके बन्दन वारो
कुछ मत देखो केवल उसकी अमर-ज्योतिकी ओर निहारो

सूना-सूना पवन वह रहा, बदला नीलाम्बर भी अव है
जव ध्रुवतारा टूट चुकेगा तबका गगन आजका नभ है
मुक्त-देशकी पराधीन होनेपर जो हालत होती है
वैसी ही वीभत्स-रागिनी, देखो दिशा-दिशा रोती है
उधर व्यथासे आकुल सावनका वह मेघ उमड़ आया है
जन-समुद्रमें हाहाकारोंका तूफान उमड आया है
लेकिन इस घनघोर अँधेरेमें भी जगते रहो सितारो
कुछ मत देखो केवल उसकी अमर ज्योतिकी ओर निहारो

जन-हित जिंदा रहा सदा वह, भागा नहीं कभी भी डरकर
कैसे होते हैं शहीद, यह उसने बता दिया खुद मरकर
और बड़ी साधारण गतिसे चला गया वह उस कतारमें
ईसा जहां, गीत हैं अद्भुत मौन गगनवाली सितारमें
तुम साकार बनो उसके आदेशोंके पालन ओ साथी
उसके गीतोंकी संस्कृतिमें बन जाओ तुम प्राण-प्रभाती
वह अपना है फिर आयेगा उदयाचलमें पथ बुहारो
कुछ मत देखो केवल उसकी अमर-ज्योतिकी ओर निहारो

स्वयं पूर्वमें जग और विधिको अपनी छाया दे डाली
पूर्णाहुतिके लिए विश्व-मायाको निज काया दे डाली
सोचा इनसे कल्पित आजादी नजदीक चली आयेगी
और भूमण्डल सब रागोंकी छूट जायेगी, बढ़ जायेगी
अभिशापोंके तूफानोंमें इसीलिए जाकर उलझ गया
मेरे देश महाभारतका एक जलता दीप बुझ गया
जड़में चेतन बनो तिमिरके दीपो, मरघटके अंगारो
कुछ मत देखो केवल उसकी अमर ज्योतिकी ओर निहारो

अस्त हो गयी थीं दिल्लीके मरघटमें अगणित हस्तियाँ
कितनोंके अस्तित्व मिट गये और बस गयी नयी बस्तियाँ
पर अब सदियोंकी करुणा-सी त्रस्त राजधानी बैठी है
कोटि-कोटि हाहाकारोंको लिये मूक वाणी बैठी है
ऐसा शोक कभी न हुआ अब जगतीका कण-कण रोता है
माताके दिलसे तो पूछो पुत्र - शोक कैसा होता है
किंतु तिरंगा रहो सम्हाले मुक्त देशके पहरेदारो
कुछ मत देखो केवल उसकी अमर ज्योतिकी ओर निहारो

—वीरेंद्र मिश्र

विश्वके महाप्राण

समय प्रार्थनाका ज्यो देखा चंचल गतिसे किया प्रयाण
स्यात् विदित था यही समय है होनेका जीवन निर्वाण
अमर 'अहिंसा-कवच' कसे तुम अभय मूर्तिका दे प्रमाण
महाप्राण, उस जन-समूहमें बढ़े हथेलीपर ले प्राण

रहे ताकते मुँह इतने जन किंकर्तव्य-विमूढ मलीन
थाती निखिल विश्वकी थे तुम, लिया एकने तुमको छीन
लोट गया माँके अचलपर शिशुका तन हो प्राण-विहीन
स्थित समुदाय हो गया ऐसा जैसे नीर बिना हो मीन

रामनामकी धुन थी ऐसी लेनेतक जीवन-विश्राम
अमर रसायन-सा वसुधापर बरस पड़ा रसनासे राम
मूक हुई वाणी, कल्याणी भाषाका रुक गया प्रवाह
गोते खाने लगा निखिल जग, उमडा शोक-समुद्र अथाह

तुम्हें छीननेवालेने क्या पाया जानें वह भगवान
हम हताश तो यही कहेगे यह विधिका विपरीत विधान
दा 'अहिंसा' ध्येय रहा हो जिनका उच्चादर्श महान
हिंसाका आक्रमण उसीपर यह कैसा विचित्र बलिदान

हे युग मानव, हे युग-ममत्व, हे युगवाणीके चिद्विलास
तुम हो अभेद्य, तुम हो अछेद्य, तुम हो अनन्त, तुम चिरविकास
मृत तुम्हे कहे साहस किसमें, ध्यानावस्थित तुम मूर्तिमान
तुम इस युगके इतिहास-रूप जन-जनके मनमें विद्यमान

—वेणीराम त्रिपाठी श्रीमाली

तीस जनवरी

तुम मुट्ठी भर हाड़-चामके ओ दधीचि वरदाता
जरा-मरण-भय-बंध-भीतिसे मुक्त, सत्य, जगत्राता
नित प्रलय आघात-चाह वरदान लुटाते अक्षय
तुम सोये, पर जाग रहा यह मंत्र तुम्हारा निर्भय

नहीं अहिंसा, शक्तिहीनता, नहीं क्षमा, कायरता
धर्म नहीं है द्वेष, प्रेम ही चिर-दिन सत्य अमरता
अनासक्त, निष्काम कर्म, गीता-वाणी कल्याणी
युग-युग पथ अमर यह होगा, ओ युगके पथदानी

आज तुम्हारा मरण देखकर जीवन भी सकुचाया
आज देशके कोटि-कोटि कंठोंमें जय लहराया
शाति-सदन, ओ क्राति-विधायक, शिरदानी निर्माता
जन-गन-मन अधिनायक जय हे भारत-भाग्य विधाता

—सर्वदानंद वर्मा

मुक्त बापू

कैसे तेरा आह्वान करें

तू भारत भाग्य-विधाता था, इस नवयुगका निर्माता था
तू दलित, दीन, पीड़ित, परवश जन-जनका सच्चा भ्राता था
हम रुँधे कंठसे कहो आज कैसे तेरा यशगान करें

हे सत्य-अहिंसाके प्रतीक, हे मानवताकी अमर लीक
जगती प्रकाश-पथपर चलना अबतक पायी है नहीं सीख
तू चला, अहिंसा-सत्य कहो, जगमें किसपर अभिमान करें

तूने माँकी तोड़ी कड़ियाँ, भाईपनकी जोड़ी लड़ियाँ
माताका मान बढानेमें झेली कितनी दुखकी घड़ियाँ
तू उसे त्यागकर चला कौन अब उसको धैर्य प्रदान करें

——सावित्री सिंह 'किरण'

अमर ज्योति

दीपकका निर्वाण हो गया, ज्योति अभी है शेष
झझाने समझा कि पराजित होगा मधुर प्रकाश
अंधकार खेलेगा खुलकर भर उरमें उल्लास
पर दीपककी परिधि छोडकर ज्योति हो गयी मुक्त
आज असीमित होकर उसका गूँज रहा सदेश

अभी ज्योतिकी किरणोंमें है जाग रहा वरदान
अभी ज्योतिकी किरणें जगको सुना रही है गान
मिट्टीके पुतलो, तुम तममें भटक रहे हो, हाय
चलो वहाँपर दीप जहाँ है, जहाँ तुम्हारा देश

अंधकारके विस्तृत पटपर अभी ज्योतिकी रेख
जागरूक हो प्रति कम्पनमें कहती—राही, देख
यदि न अभीतक अपनेको तुम सके तनिक पहचान
मिट जाओगे, हो जायेगी कथा तुम्हारी शेष

——सिद्धनाथ कुमार

जाग्रत हो

श्रीगणेश यह है नवीनके सृजनका
आलम्बन नव्य-भव्य-जीवनका

जिनके निमित्त नव वीर बनी भिक्षुक है
निखिल तपस्वि-जन इच्छुक है

जिसकी शुभाशा लिये मनमें
कितने प्रवीर परिभ्रान्त है भ्रमणमें

नश्वरता जिसमें हुई है अविनश्वरता
मृत्युमें हिली-मिली अमरता

हार कहाँ उसमें कहाँ है हार
अतके दिगततक उसका महाप्रसार

आजके ही आजमें उसे न देख
उसका विजय-लेख

कालकी तरगोत्ताल-मालामें लिखित है
अगम अनतमें ध्वनित है

उठ रे अरे ओ धर्म, कर्म, धृति, ध्यान, ज्ञान

धन्य वह कालजयी कीर्तिमान

कालकी कसौटीपर जिसका सुहेम-चिन्ह

जिसने किया है महातंक छिन्न

विश्वके प्रपीड़ितोंके अंतरसे

बोधका प्रदीप दीप्त करके

जिसने दिखाया—दीन दुर्बल नहीं है हीन

वह है निरस्त्र भी महत्वासीन

अपने अजेय आत्मबलसे

अन्यके जघन्य छद्म छलसे

मुक्त सर्वथैव वह एकमात्र स्वेच्छाधीन

देख अरे देख उसे, वह है नहीं विलीन

वह है स्वकीय जन-जनका

गुंजित हो मगलकी भाषामें

निश्चित द्विधविहीन जागरित आशामें

वह है भुवनका उठ, रे अरे ओ गान

धन्य वह कालजयी कीर्तिमान

भीति भयसे स्वतत्र

आत्म-बलिदानी वह—जिसने जपा है महत् प्राणमत्र

अक्षय है उसका अपूर्व दान

जाग्रत हो आज धर्म, कर्म, धृति, ध्यान, ज्ञान

—सियारामशरण गुप्त

बापूके महाप्रयाणपर

तीस जनवरी अस्ताग्निकी सांझ नहीं आ पायी
डूब गया भारतका सूरज, गहन अमा घिर आयी
सत्य-अहिंसा-मूर्त्ति, हाय ! हिंसाके हाथों टूटी
भारतकी वह निधि अमूल्य यों गयी अचानक लूटी

भारतके लघु धूलि-कणोंसे आहें निकल पडी हैं
उच्च हिमालयसे आँसूकी बूँदें बरस रही हैं
विश्व-सिंधुमें ज्वार उठा है, वज्र गिर पडा हमपर,
कोटि-कोटि कंठोंसे फूटे आज विकल क्रंदन स्वर

धीरजने धीरज छोडा है, दुखी हो उठा दुख भी
सचमुच काला हुआ देशकी मानस-निशिका मुख भी
पश्चात्ताप किया पशुताने, लाज लाजको आयी
धरतीका उर फटा, गगनके मुखपर कालिख छायी

चिता जली, बुझ गयी विश्वकी ज्योति अँधेरा छाया
हिन्दू, मुस्लिम, सिक्ख, ईसाई, सबने अश्रु बहाया
अग्नि-तेजका जिसकी वाणीने संचार किया था
जडताको जिसने चेतनका नव-संसार दिया था

कंकालोमें जीवन-अमृत भरनेवाला बापू
शांति, सत्यसे स्वतंत्रताको वरनेवाला बापू
हमने खोया महापुरुष, भारतका भाग्य-विधाता
मानव-मुक्ति-दूत वह गांधी युग-पथका निर्माता

किरणें भी जिसके प्रकाशसे होती थीं आलोकित
जिसको छूकर धरा-धूलि भी हो जाती थी सुरभित
जीव-ब्रह्मका भेद-रहित वह द्रष्टा था सन्यासी
ऊर्ध्व शिखा था होम हुताशनकी वलिका अभ्यासी

बुद्ध, महाजातक, ईसा, सुकरात, महात्मा था वह
कोटि कोटि जनका प्यारा, ईश्वर, विश्वात्मा था वह
उसके प्राणोकी हवि लेकर अब तो ज्योति जगा लो
बिलख रही है मानवता, पशुतासे उसे बचा लो

जमुना-तटपर भस्म शेष बन गया पचभौतिक तन
वही भस्म जगतीके सूने मस्तककी हो चंदन
रख न सके स्वर्गिक विभूतिको मर्त्य लोकके प्राणी
स्वर्ग-लोकमें बुला ले गयी, उसे सुरोकी वाणी

किंतु अमर है, अमर आज क्या, युग युगतक वह मोहन
युग-युग करते जायेंगे उस आत्माका आवाहन
उसकी अमर आत्मा भूपर अब भी मध्य हमारे
हमें ज्योति देगी धो धोकर जगके कल्मष सारे

महानिर्वाण

चढ़ा आज ईसा शूलीपर, अविरल रक्त प्रवाह बहा
फिर भी, दया-क्षमायुत मंगल मुख-मंडलको घेर रहा
वह सुकरात पी गया विषका प्याला, आँखें वंद हुईं
लो मिट्टीका पिंड उठा, उज्ज्वल स्वच्छंद हुईं

बोधिसत्वने कुशीनगरमें आज महानिर्वाण लिया
नहीं, नहीं, यह नहीं, आज वापूने महाप्रयाण किया
सजी आज किसकी अर्थी, उमड़ी है आज प्रलय आंधी
भारतका सौभाग्य सूर्य है अस्त, चले अपने गाधी

ठहरो, चिता लगाओ मत ओ निर्मम देश, महात्माकी
एक वार फिर चरण-धूलि ले लेने दो पुण्यात्माकी
धू-धू जला शरीर, हो गयी राख महामानव काया
आह अभागे देश सभी कुछ खोकर तूने क्या पाया

रो न, क्षुब्ध हो मत इतना, यह धरती यह आकाश फटे
श्रद्धाजलि दे पुण्य चरणमें, तेरा हाहाकार घटे
है असीम वन गयी आज उस तेरे वापूकी काया
अमर प्रकाश-पुंज वनकर वह अवनी-अंवरमें छाया

देख उसीकी मूर्ति रमी है आज प्राणके कण-कणमें
देख उसीकी ज्योति जगी है जन्मभूमिके जन-गणमें
खुला स्वर्गका वातायन, बापू है तुझे निहार रहा
हो अधीर मत राष्ट्र, तुझे ही अब भी खड़ा पुकार रहा

तुम भी मृत्युञ्जय हो मानव, तुम महात्माकी आत्मा
स्नेह-सुधा वरसाओ जगमें, हँसे धरामें परमात्मा

—सोहनलाल द्विवेदी

वह संध्या

वह संध्या आदित्य-पुरुषको लेकर जगसे चली गयी
सूना यह आकाश-धरातल, फिर मनुष्यता छली गयी
उदय-अस्तका एक सूत्रमय निश्चित लेखा-जोखा है
किंतु भाग्य सूर्यास्त हमारा, क्रूर कठिनतम धोखा है

बापू नहीं, आह भारतका कटकर जीवन-वृक्ष गिरा
देवोकी अभिराम साधना, मानवताका मान गिरा
आह क्रूर हत्यारे, नरपशु, तूने इससे क्या पाया
राष्ट्रपिताका रक्त-पान कर तूने क्या मुंह दिखलाया

मनुका पुत्र अभी मनुष्यतासे है कितनी दूर खडा
कितने अधकारमें कितने मूढग्राहोमें जकड़ा
सर्वसहा वसुधरा बापूको धारण कर डोल गयी
टोल गयी चेतना विश्वकी, वाणी चली अबोल गयी

बापू, तुमको पाकर हमने जगका सब कुछ था पाया
अखिल विश्व-वैभव चरणोपर स्वत. तुम्हारे झुक आया

भारत-भाग्य

आज गिरिका शृंग टूटा, आज भारत–भाग्य फूटा
विश्वके आकाशका सबसे बड़ा नक्षत्र टूटा

बुद्ध था, करुणा–द्रवित स्वर कह रहा था—अरे मानव
क्रोधको अक्रोधसे तू जीत, बन मत भीत दानव

कृष्ण था, स्वर गूँजता था कर्म कर निष्काम रे नर
दुःख-सुखका ध्यान मत कर, वधिकने छोड़ा प्रखर शर

क्षमाके अधिदेवताने वधिकके भी हाथ जोड़े
प्रज्ञ–स्थित वैष्णव परमने 'राम' कहकर प्राण छोड़े

राष्ट्र ही अपना नहीं यह, किंतु मानव जाति सारी
मुक्ति पायेगी, करे यदि भक्ति चरणोंकी तुम्हारी

—श्रीनारायण चतुर्वेदी 'श्रीवर'

युगावतार बापू

कलियुगके अवतार-पुरुष, जगको सन्मार्ग दिखाते हो
मार सकेगा कौन तुम्हे खुद मर-मिटना सिखलाते हो
राज्य उठे, साम्राज्य उठे, कब कैसे, कितने, कहाँ कहाँ
गिरे सभी उस काल-गर्त्तमें थाह न मिलती कहीं जहाँ
रावणका साम्राज्य एक था क्रूर कसका भी था एक
जग-विख्यात राज्य रोमनका वैभव जिसके अमित, अनेक
पर टिक सके न कोई भी, सब अधकारमें लीन हुए
राम, कृष्ण, ईसाके सम्मुख ध्वस हुए यशहीन हुए
बापू, ब्रिटिश राज्यसे टक्कर तुमने भी ली है डटकर
वर्षों उसका रोष सहा है, बिना जरा भी बच हटकर
जग-विजयी तुम ही हो बापू, अटल सत्य वह इस युगका
भारत तो आजाद हुआ अब त्राता होवे कलियुगका

—श्रीमन्नारायण अग्रवाल

युग-मूर्ति

तुम भीति-भाव-बंधन-विमुक्त
आलोकित-वसुधा स्नेह-युक्त
युग-उन्नायक, युग-प्राण-मूर्ति
प्रेमोज्ज्वल, पावन हृदय-स्फूर्ति
पीड़ित मानवता त्रस्त ध्वस्त
निश्चित, निर्भय पा वरद हस्त
सत्यान्वेषी, शुचि, सरल वेष
निर्बलके बल, रक्षक विशेष
उस धरा-धामके सौम्य भूप
सविनय वाणीके मूर्त रूप
धूमिल छायामें चिर प्रकाश
भारती क्षितिज उन्मेष-हास
सम्पूर्ण-अहिंसक नित्य शुद्ध
जय गांधी, जय अभिनव-प्रबुद्ध

अवतार

तुम क्रांति शांतिके साथ साथ, पानीमें आग लगाते थे
दिशि दिशिमें व्याप्त भभकतानल, फिर तुम ही उसे बुझाते थे
तुम सत्य अहिंसाके बलपर, भारतकी नैया खेते थे
तुम सत्य अहिंसाके बलपर, अणुबमसे लोहा लेते थे

तुममें था ऐसा जाने क्या, जो पलमें मुकुट हिला देते
केवल दो मीठे बोलोंमें कांटोंमें फूल खिला देते
ओ अभय तुम्हें था भय किसका, तुम राम रहीम दुलारे थे
जग सचमुच तुमसे धन्य हुआ, तुम सारे जगसे न्यारे थे

तुम भीष्म पितामह थे बापू, थे गौतमके अवतार तुम्हीं
तुम देवदूत थे मनुज नहीं, थे महावीर साकार तुम्हीं
तुम गये कि जैसे कोटि-कोटि नयनोंका तारा टूट गया
तुम गये कि जैसे कोटि-कोटि प्राणोंका संबल छूट गया

तुम गये कि जैसे भूतलसे मानवताका आधार गया
तुम गये कि जैसे भूतलसे मानवताका अवतार गया

—श्रीमती शकुन्तलादेवी खरे

तमसो मा ज्योतिर्गमय

बुझी न दीपकी शिखा, असीममें समा गयी
अमन्द ज्योति प्राण–प्राण बीच जगमगा गयी

अथाह प्रेमके प्रवाहमें पली
अमर्त्य वर्त्तिका नहीं गयी छली
असंख्य दीप एक दीप बन गया
कि खिल उठी प्रकाशकी कली-कली

घनान्धकार जल गया स्वयं, नहीं हिली शिखा
प्रकाश–धारसे तमस-भरी धरा नहा गयी

अकम्प ज्योति-स्तम्भ वह पुरुष बना
कि जड प्रकृति बनी विकास–चेतना
न सत्य–बीज मृत्तिका छिपा सकी
उगी, बढी, फली अरूप कल्पना

न बँध सका असत्–प्रमाद–पाशमें प्रकाश–तन
विमुक्त सत–प्रभा दिगंत बीच मुस्करा गयी

मरा न, कामरूप कवि बना अमर
कि कोटि–कोटि कंठमें हुआ मुखर
मिटा न, कालका प्रवाह बन घिरा
अनादि अंतरिक्षमें अनंत स्वर

न मन्त्र–स्वर अमृत सँभाल मृण्मयी धरा सकी
त्रिकाल रागिनी अकूल सृष्टि बीच छा गयी

महाप्रयाण

आज सजल है अंतर-लोचन, भाव-जगत् है कजलाया-सा
धुंधियायी-सी रजत निशा है, स्वर्ण-दिवस है सँवलाया सा
तरु-तरु है प्रतिमा विषादकी, वृन्तोंपर छायी जड़ता-सी
पात-पात संज्ञा-विहीन है, मधु-कलियाँ हैं हीन-प्रभा-सी
भू-लुंठित तृण, गुल्म-लता सब, पुण्य-निचय दावाग्नि बरसता
नियति-नटीके रंग भवनमें, छायी है चहुँ ओर उदासी
बापूके निर्वाण शोकमें, मधुका दिन है अमा-निशा सा
आज सजल है अतर-लोचन, भाव-जगत है कजलाया सा

छेड़ न मादक राग आज तू, पचम स्वरमें बोल न कोयल
हियके इन आले घावोंको, कुहुक कुहुक कर खोल न कोयल
मानवता शोकाभिभूत है, तुझे कहाँका गाना सूझा
इन विषादकी घड़ियोंमें गा, प्राणोमें विष घोल न कोयल
आज न तेरे बोल सुहाते, आज हृदय है बुझा बुझा-सा
आज सजल है अतर-लोचन, भाव-जगत् है कजलाया-सा

दीप बुझ गया, सारा जग है ज्योतिर्धरका पथ निहारता
वीणा टूट गयी जीवनकी, व्याकुल-जीवन है पुकारता
हंस उड़ गया, सत्य-अहिसाके मोती प्रिय कौन चुगे अब
सेतु बह गया, जो जन-जनको पार कलह नदसे उतारता
रिक्त हो गया स्नेहपूर्ण घट, जीवन फिर प्यासेका प्यासा
आज सजल है अंतर-लोचन, भाव-जगत् है कजलाया-सा
आओ राष्ट्रपिताकी स्मृतिमें, आँसूके दो हार पिरो लें
उसकी वाणीकी गगामें अपने सारे कल्मष धो लें
उसके चरणोकी पावन रज, अपनी आँखोका अजन हो
इस नैराश्य-जड़ित वेलामें, सहज स्नेहके दीप सँजो लें
तिमिर-पु जमें आशाका आलोक मुस्करा दे ऊषा-सा
आज सजल है अतर लोचन, भाव-जगत है कजलाया-सा

—शम्भूनाथ 'शेष'

दीपक सदा जलेगा

इतना स्नेह उँडेल गये हो दीपक सदा जलेगा
दुर्गम-पंथ गहनतम कानन सर-सरिता-गिरि-गह्वर
नयी दिशा निर्माण कर गये तोड़ तोड़कर पत्थर
देख देख पद-चिह्न तुम्हारे मानव सदा चलेगा
हे दुर्बल तन, दृढमन तुमने स्वर्ग उतारा भूपर
हे मानवता-व्रती, भुला अपनत्व उठ गये ऊपर
सत्य धर्मकी वरद छाँहमें जीवन सदा पलेगा
स्वर्ण-किरणसे उतर भूमिपर कण-कण आलोकित कर
जीवन और मरण दोनोमें सतत एकसे सुन्दर
इतना स्नेह उँडेल गये हो दीपक सदा जलेगा

—शालिग्राम मिश्र

जगाओ न बापूको नींद आ गयी है

नहीं थमते देखे ऐसे तूफान

जो है आज [illegible] तो [illegible]

यह पीरी, यह दिन-रातकी दौड़ पैदल

[illegible] रखती है बापूको बेकल

तड़प जिन्दगीकी सकूँ पा गयी है

जगाओ न, बापूको नींद आ गयी है

यह घेरे है क्यों रोने वालोंकी टोली

खुदारा न बोलो यह मनहूस बोली

भला कौन मारेगा बापूको गोली

कोई बापके खूँसे खेलेगा होली

जमीं ऐसी बातोंसे थर्रा गयी है

जगाओ न, बापूको नींद आ गयी है

सभीको है प्यार इस अजीजे-वतनसे

फिरंगीने जेलोंमें रखा जतनसे

वतनपर वह कुर्बान है जानो-तनसे

वतन उसको मारेगा पिस्तौल-गनसे

अवस मादरे हिंद शरमा गयी है

जगाओ न, बापूको नींद आ गयी है

मुहब्बतके झडेको गाड़ा है उसने
चमन किसके दिलका उजाड़ा है उसने
गरेबान अपना ही फाडा है उसने
किसीका भला क्या बिगाडा है उसने
उसे तो अदा अम्नकी भा गयी है
जगाओ न, बापूको नींद आ गयी है

अभी उठके खुद वह बिठायेगा सबको
लतीफोसे पैहम हँसायेगा सबको
सियासतके नुक्ते बतायेगा सबको
नयी रोशनी फिर दिखायेगा सबको
दिलोपर यह जुल्मत-सी क्यो छा गयी है
जगाओ न, बापूको नींद आ गयी है

अभी सिंध बाचश्म नमतक रहा है
लिये दिलमें पंजाब गमतक रहा है
अभी वारधा दम बदमतक रहा है
अभी रास्ता आश्रमतक रहा है
मुसाफिरको रास्तेमें नींद आ गयी है
जगाओ न, बापूको नींद आ गयी है

वह सोयेगा क्यो है जो सबको जगाता
कभी मीठा सपना नहीं उसको भाता
वह आजाद भारतका है जन्मदाता
उठेगा, न आँसू वहा देश माता
उदासी यह क्यो बाल बिखरा गयी है
जगाओ न, बापूको नींद आ गयी है

यह बादल जो गेतीपर बरसाके उट्ठे
यह तूफ़ाँ जो धरतीको थर्राके उट्ठे
यह नाले जो दुखियोंके न्याके उट्ठे
यह हस्ती मिटाने जो दुनियाके उट्ठे
यह फ़ित्ने जो तूफ़ाँमें जान आ गयी है
जगाओ न, बापूको नींद आ गयी है

है सुक़रातो-ईसाकी जुर्रत भी उसमें
श्री कृष्ण-गौतमकी नफ़ासत भी उसमें
मुहम्मदके दिलकी हरारत भी उसमें
हुसैन इब्ने हैदरकी हिम्मत भी उसमें
अहिंसा तसद्दुदसे टकरा गयी है
जागाओ न, बापू को नींद आ गयी है

कोई उसके खूँसे न दामन भरेगा
बड़ा बोझ है, सर पै क्योंकर धरेगा
चिराग उसका दुश्मन जो गुल भी करेगा
अमर है अमर, वह भला क्या मरेगा
हयात उसकी खुद मौतपर छा गयी है
जगाओ न, बापूको नींद आ गयी है

वह पर्वत, वह बहरे-खाँ सो रहा है
वह पीरीका अज्मे जवाँ सो रहा है
वह अम्ने-जहाँका निशाँ सो रहा है
वह आजाद हिदोस्ताँ सो रहा है
उठेगा, सेहर मुझसे बतला गयी है
जगाओ न, बापूको नींद आ गयी है

'शमीम' किरहानी

महाप्रयाण

ढल गया सूर्य, गल गया चांद, तारे डबडब, धूमिल, उदास
लुट गया हिया, बुझ गया दिया जिससे घर घरमें था प्रकाश
खो गयी ज्योति जीवनदायी, विधवासी विह्वल पड़ी मही
लग रहा आज जैसे अब दुनिया रहने लायक नहीं रही
जनपद उजाड़, सुनसान-सियारोकी सुन पडती हुआँ-हुआँ
तुम नहीं जले, मानवताकी जल गयी चिता, रह गया धुआँ
अब कहाँ शरण, हमको अपनी ही काली छायाएँ घेरे
तुम कहाँ आज ? हे राम, मुहम्मद, कृष्ण, बुद्ध, ईसा मेरे
वे कहाँ बोल
जिनके सँग झंकृत मद्र मधुर वीणावादिनीके तार तार
सचराचर जाता डोल डोल शब्दो-शब्दोमें सत्य-शोध
स्वर-स्वरसे झरती सुधा-धार उन्मुक्त विहग करते कलोल
जीवनका विष जल-जल जाता घुल-घुल वह जाता व्यथा भार
साधना सिद्धि बनती अमोल
वे कहाँ हाय ? जिनकी छायामें कोटि कोटि दुखिया अनाथ
जीवन-आशा-विश्वाम प्राप्त करते, पलमें होते सनाथ

हिमा-हँसी-[illegible] दुर्गमको जिनके पगपर [illegible] पार्श्व
नयनोंकी [illegible]-मुस्कानमें ढलता पराग
अबलाएँ [illegible] पाकर शीशों [illegible] अंचल धोतीं
पा जातीं फिर [illegible] ममता, [illegible] सुहाग

वे कहाँ चरण ? जो योगि-जगाते सदा सजग
सुनते [illegible] [illegible] आह्वान सुभग
पग पग [illegible] [illegible] उठते, मर्माहत-अंतर महाप्राण
सुन-सुन पीड़ितका आर्तनाद, मानवताका क्रंदन महान

वे कहाँ चरण ? जो जहाँ कहीं सुनते पीड़न, दुख, दैन्य, दाह
चुप-चुप सोये दौड़े जाते विह्वल बाहोंमें लिपटाते
थकते न कभी
रुकते न कभी
पी जाते सब मुस्कानोंमें, जन जनकी व्यथा कराह— आह
फेरते हाथ घावोंपर, सहलाते अंतर
बस स्पर्शमात्रसे नव-संजीवन देते भर
वह कहाँ मधुर-मुस्कान ? कि जिसकी आभामें खिलतीं कलियाँ, हँसते प्रसून
विक्षुब्ध-सिंधु होता प्रशांत तूफान ठिठक जाते दाक्षा नत, पदरज लेती
चूम चूम
सत्-चित-आनन्दमयी आकृति रवि-चन्द्र और तारक-दीपक जिसकी
अनुकृति

खो गयी कहाँ
खो गयी कहाँ ? बाहर भीतर, सब अंधकार ।
विकराल-काल-सा मुँह खोले फुफकार रहा तम दुर्निवार
तुम कहाँ आज हे कोटिबाहु, हे कोटिपाद, हे कोटि नयन
युगकी विभीषिका भेद पुनः कर दो विकीर्ण तम-हरण-किरण
तुम जो आये थे धरा बीच युगधर्मरूप श्रद्धासे संचालित काया,आभा अनूप
क्षेत्रज्ञ, कर गये कर्म-क्षेत्रको चिर-पावन तुम जो निर्भय, हँसमुख, विनीत

चलते चलते कर जोड़ सहज दे गय मृत्युको नव–जीवन

बरसो जन–जनके अंतरमें हे ज्योतिर्मय

तुम जहाँ कहीं भी हो बनकर आशीष–वचन

विचरो मानवताके पावन मानसमें अशरण–शरण–तरण

दे दो अपने अनुरूप नयी संस्कृतिको नव विश्वास–सृजन

हे शक्तिस्रोत कर दो हमको अपनी आभासे ओतप्रोत

हम वे अंकुर, जिनको तुमने मिट्टीकी जड़ता तोड–फोड़

जोता गोड़ा बोया–सींचाँ करुणाके श्रम जलसे पसीज

वे रक्त–बीज, जो उगे तुम्हारे तपकी गर्मीसे तपकर

जाड़ा–गर्मी–बरसात झेल अपने ऊपर दे गये अपरिमित स्नेह घना

जिनको पनपानेकी धुनमें तुमने जीवनके सुख–दुखको सुख–दुख न गिना

जो सदा फलें–फूलें–फैले मनमें विचार

घर–बार, छोड़ कुटिया छायी ऋद्धियाँ-सिद्धियाँ ठुकरायी

जगते ही जगते बिता दिया जीवन सारा

हो गयी धन्य धरती पा ऐसा रखवारा

तुमने चाहा जालो डालोपर शीतल सघन–वितान तने

वृक्ष बने ऐसा विशाल वट-

जिमकी छायामें युग युगतक जीवन–यात्रासे चूर

थके–माँदे पथी खोये थकान

भूले–भटकोंको राह मिले, नव आशा, नव उत्साह मिले

मंजिल पानेकी मूल–प्रेरणाका उठान

जीवनका शाश्वत–बिरवा यह पथिकोंके लिए फले–फूले

आँधी–पानी –उल्का–तूफान–बवडरको हँसकर झेले, सिहरे न कँ

जड़तक न हिले, इसलिए बन गये स्वयं खाद

सदियाँ बीतें युग कल्पें मिटें मानवता कभी न भूलेगी

हे माली, यह उत्सर्ग मूक बलि हो जानेकी अमरसाध

यदि हम हैं देव तुम्हारे ही जोते–बोये–सींचे अंकुर
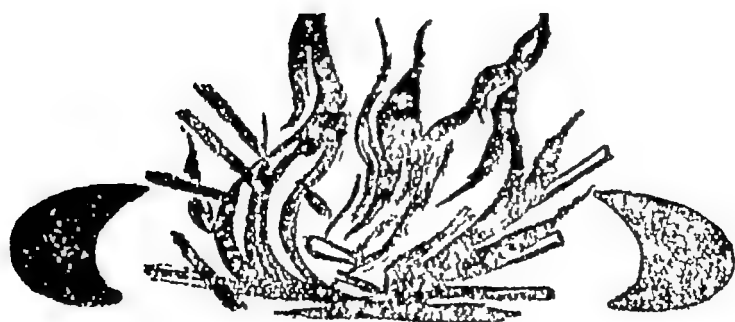
'राम' तुम्हारा

लिये अंकमें हिंदू–मुस्लिम राष्ट्र–पिता अवतारी
सूलीपर चढ़नेकी की थी कई बार तैयारी
किंतु बचाया बार–बार भारतने। दे आश्वासन
अखिल राष्ट्रको मार गया आकरक किंतु एक जन
खुला रहा अनवरत अभय–पथ अंतर्धाम तुम्हारा
रहा अंततक साथ तुम्हारे स्वरमें "राम" तुम्हारा
आभापर आभास क्षमाका करुणा कांति हृदयमें
विनय विभासित थी पलकोंपर देव, तुम्हारे लयमें
एक दिव्य ज्योत्स्ना, एक रस, रहा एकसम राही
जीवनमें जीवनतक औ जीवन–पर्यंत सदा ही
हा ! बापू पी गये हलाहल हमें अमृत–घट देकर
आप सो गये शांत प्रलयमें अक्षय वटको देकर
पल–पल है बढ़ रही वेदना औ विपत्तिका घेरा
अखिल राष्ट्रकी आँखोंमें छाया है आज अँधेरा
इस विपतिमें केवल बल बलिदान तुम्हारा होगा
कम्पित–युगका स्थान अडिग प्रस्थान तुम्हारा होगा
हो शरीरसे दूर, हृदयके निकट और तुम आये
अब भी खड़े समक्ष धरापर निज लकुटिया लगाये
आँख खोल लो देख समयको आँक रहे हैं बापू
पल–पल जलते सूर्य–बिम्बसे झाँक रहे हैं बापू
सुनो मधुर ध्वनि "रघुपति राघव राम" उन्हींकी आती
"एकला चल" गानकी अनुपम तान उन्हींकी आती
बापू देखो बोल रहे हैं सुनें सभी पहिचाने
"वैष्णव–जन तो तेने कह जो पीर पराई जाने"
चर्खा चीर रहा है तमको, गीता बोल रही है
पशुताको पहिचान 'अहिंसा' हृदय टटोल रही है

जिसने उसे निरन्तर मृत्युसे अमृत-रूपमें सींचा
अपनी अंजलिसे उसका दुर्धर्ष मातृत्व उलीचा
यह कलंक जग सुना ज्ञात हम सोच धुनें या रोयें
बोल हिमालय हिन्द सागरमें डूब उसे हम धोयें
इस कलंकका दाग धिनके वारि-धाराके जलसे
धोयें हम अनवरत प्राणके पश्चात्ताप-अनलसे
बापू, तुम दे गये ज्योति जो उसमें ही निखरेंगे
अपने हृदय निकाल तुम्हारे तनका घाव भरेंगे
अधिक न कह सकता कवि इस क्षण कांप रही है बोली
भारतके बच्चे-बच्चेको आज लग गयी गोली

—शिवसिंह 'सरोज'
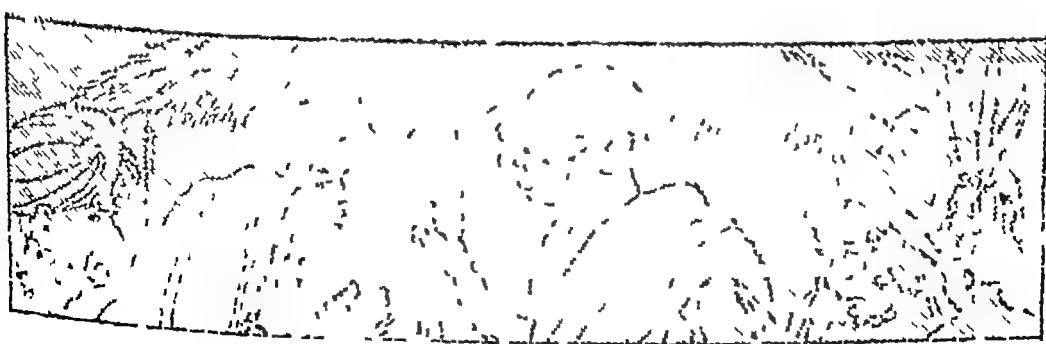
पैगम्बर ओ

चले गये तुम
ज्योतिर्मयकी खुली गोदमें चले गये तुम

जो करता नेतृत्व तुम्हारा रहा तिमिरमें
जीत-हारमें, समरस्थलमें, युद्ध-शिविरमें
जो करता श्रृंगार तुम्हारा किरण-करोसे
ज्योति-वस्त्रके अलकरणसे तमस-अजिरमें

उस अखण्ड शाश्वत प्रकाशमें चले गये तुम
मानव-मनके मुग्ध हास, हे, चले गये तुम
चले गये तुम जन-जनके उच्छ्वास-श्वासमें
ढले-ढले तुम सुधा-तृप्ति बन प्राण-प्यासमें

समा गये तुम कोटि-कोटि बाहोकी नसमें
मिले-मिले तुम कोटि-कोटि जीवनके रसमें
चले गये तुम अमर शहीदोको सदेश सुनाने
'है स्वतंत्र जनगणकी सत्ता गाने मुक्त तराने'

चले गये तुम अमर शहीदोको कुंकुम मलनेको
अमरोकी दुनियामे बनकर हेम हास ढलनेको
चले गये तुम, चले गये तुम, पैगम्बर ओ
अमृत बाँटकर नीलकण्ठ ओ, अभयंकर ओ

—शिवमूर्ति मिश्र 'शिव'

अमर गांधी

आज सारा विश्व रोता है कि गांधी मर गया है
मर गया है, किन्तु गांधीवाद अमर वह कर गया है

दीपको बुझते हुए देखा अंधेरा भी हुआ है
किन्तु प्राणोंमें प्रखरतर वह उजाला भर गया है

हिल नहीं सकते अधर-दल, कंठ भी है मौन उसका
किन्तु अनुपम मौन उसका भर मधुरतर स्वर गया है

मौत भी हारता नहीं है युग-युगपर वार करके
खून उसका जिन्दगीमें भर नवल निर्झर गया है

कौन सकता छीन शान्तिम,युग-पुरुषको वह हमसे
जो कि दिल-दिलमें हमेशाके लिए कर घर गया है

वह हमारा कर गया है, वह हमारा कर रहा है
कौन कहता है कि हमको छोड़कर रहबर गया है

विश्व सारा देह उसकी और वह जग-चेतना है
प्राणका बलिदान दे इन्सान बन ईश्वर गया है

—हरिकृष्ण 'प्रेमी'

चिता जलती है

आज आंसूमें छलकती है रवानी किसकी
हर घड़ी मुँहसे निकलती है कहानी किसकी
हमको रो-रोके कथा आज सुनानी किसकी
छिप गयी मौतके पर्देमें निशानी किसकी
किसको सीनेमें बिठा करके जगत रोया है
आज माताने कहो कौन लाल खोया है

दिन ढला देशका, या वह प्रलयकी शाम हुई
या कि तारोकी छटा मौतका पैगाम हुई
उनके रहनेसे प्रजा प्रेमका परिणाम हुई
हिदकी खाक कहीं भी नहीं बदनाम हुई
जिंदगी भर तो पसीनेसे रहे तर करते
सींच गये अब वे लहूसे उसे मरते-मरते

जिस जगह खून गिरा, वह जगह पावन बन जाय
इतनी आँखें हो निछावर--वहाँ सावन बन जाय
हाथ भर फर्शका टुकड़ा हमें वतन बन जाय
हम गरीबोके लिए आज वही धन बन जाय
हाय, जमुना इसी संदेशपर रोती होगी
वढ़के दो हाथ 'चिताभूमि' को घोती होगी

कौन है, जिसकी नहीं 'आह' गमसे उठती है
एक 'मातम' की खबर इस 'सितम'से उठती ह
हमारी आँख सदा जिसके दमसे उठती है
उसीकी लाश जमानेमें हमसे उठती है
उठ गयी लाश इस कोहरामसे पहले-पहले
बुझ गया दीप मगर शामसे पहले-पहले

खून आँखोंसे बहा और चिता जलती है
चित्तमें चैन कहाँ और चिता जलती है
हम जले जाते यहाँ और चिता जलती है
जल रहा सारा जहाँ और चिता जलती है
उडके चिनगारिया कहती है बचो हमसे आज
हमारी गोदमें आया है वतनका सिरताज

फिर हमें तार न लो तो तुम्हे शपय अपनी
फिरसे अवतार न लो तो तुम्हे शपय अपनी

बापू

ये वो शमा थी जो हजारो दिल [illegible] देती थी
ये वो बूटी थी जो मुर्दोंको जिला देती थी

ये वो ज्योति थी जो अंगारो बुझा देती थी
ये वो डंका थी जो सोतोंको जगा देती थी

इसीने कौमकी किस्मतको भी जगाया था
गुलाम मुल्कको आजाद करने आया था

ये वो हस्ती थी जो तोपोंको भी शरमाती थी
ये वो हस्ती थी जो साम्राज्यको कँपाती थी

ये वो हस्ती थी जो बेखौफ हमें करती थी
ये वो हस्ती थी न मरनेसे कभी डरती थी

जर्रे-जर्रेमें तपस्याका तेज छाया था
गुलाम मुल्कको आजाद करने आया था

यही वो दिल था भरा कौमका जिसमें गम था
यही वो दिल था जो दो नदियोंका संगम था

यही वो दिल था जो उम्मीदसे मुनव्वर था
यही वो दिल था अहिंसाका बना मंदिर था

इसीमें खल्कका दुख-दर्द सब समाया था
गुलाम मुल्कको आजाद करने आया था

बड़े नसीबसे ये पाक रूहें आती हैं
जलीलो खारको इन्सानियत सिखाती हैं
भूले-भटकोंको रहे रास्त ये दिखाती हैं
गालियाँ सहती हैं, और गोलियाँ भी खाती हैं
हमारे वास्ते जीने व मरने आया था
गुलाम मुल्कको आजाद करने आया था
भक्त भगवान्‌का युग-धर्मका पुजारी था
साधु था, संत-महात्मा था वो अवतारी था
शक्तिका पुंज था, वह मुक्तिका अधिकारी था
कौमकी जान था तक़दीर वो हमारी था
आत्मिक शक्तिसे ससार तरने आया था
गुलाम मुल्कको आजाद करने आया था
बुद्धकी शाति थी ईसाकी नम्रताई थी
शिवाकी शूरता, प्रतापकी दृढाई थी
रामकी धीरता और कृष्णकी चतुरायी थी
गांधी रूपमें साक्षात् शक्ति आयी थी
प्रेमकी ज्योतिसे हर दिलको भरने आया था
गुलाम मुल्कको आजाद करने आया था
रूह रहती है सदा जिस्म तो शय फानी है
ऐसी हालतमें तेरा कत्ल क्या नादानी है
जिंदा जावेद तू संसारमें लासानी है
मौत तेरी नहीं, यह कौम पै कुरबानी है
तूने इस देशकी अजमतका गीत गाया था
गुलाम मुल्कको आज़ाद करने आया था
तेरे मातममें गुलोवर्ग भी कुम्हलाये हैं
गमगीं इन्सान हैं, हैवान सर झुकाये हैं
अब न बापूकी कहीं शक्ल देख पायेंगे
किसके चरनोंकी धूल सर पै हम लगायेंगे

तुमने ही इन्सान [illegible] [illegible] पाया था
गुलाम मुल्कको आजाद करने आया था

हमसे अपराध हुआ था हमें ममता देते
तुम तो बापू थे [illegible], गाली-धमकी देते

[illegible]
[illegible]

हम तो बच्चे थे, हमें प्रेमसे अपनाया था
गुलाम मुल्कको आजाद करने आया था

मिला [illegible] [illegible] हमारा [illegible] हो
फिरकाबन्दी न रहे, [illegible] [illegible] [illegible] हो

एकता प्रेम-शृंखलकी फिर हो—जय हो
राष्ट्रके प्राण पिता गांधी तेरी जय हो

वह नसीब हमारे जो तुझे पाया था
गुलाम मुल्कको आजाद करने आया था

—हरिशंकर शर्मा

करुणामयसे

गौरव-दाता हैं नारि जातिका जो देव, आज
ऐसी मन आवे, भर प्याला विष पीजिये
करुण कथा है बड़ी मरम कथा है यह
करुणायतन धर ध्यान सुन लीजिये
कोखका कलंक कालिमा हो निज देशकी जो
गुरु-जन-घाती हो जो क्षमा मत कीजिये
ऐसे पूतसे तो भला पाहनको जन्म देना
ऐसी जननीसे भला बांझ कर दीजिये

—होमवती देवी

सूरज डूब गया

मानवताके हरे जख्मका मरहम पोछ लिया पशुताने
जिसके वरद बाहुके नीचे दुनियामें जीवन था निर्भय
जिसका वर्तमान होना ही दुर्ग मनुजताका था दुर्जय
निःसशय होकर जिसके पीछे-पीछे युग चला आजतक
आज उसीके ममताके दामनको नोच लिया शिशुताने

और कौन रह गया विश्व-मानवपर मरने-जीनेवाला
नीलकठ-सा मथित जन-मन-सिंधु गरलको पीनेवाला
प्रेम-सूत्रमें शाति-सुईसे गूँथ रहा था हृदय-हार जो
विश्व-वागको उस मालीसे वचित हाय! किया जड़ताने

जगी सृष्टि-वीणाके तारोकी झकार सो गयी सहसा
उगी और उगते ही उदयाचलपर किरण खो गयी सहसा
कमल-पत्रपर वारि-विंदु-सा दुनियामें देवत्व दिखा था
युग-युगके तपके दुर्लभ फलको यो लुटा दिया लघुताने

जीवन विजित बाँधकर जिसको अपनी सीमित आयु-परिधिमें
काल पराजित डाल अमृतको अपने अतल मृत्यु-वारिधिमें
जीवन मृत्यु रुदनरत दोनो अवश विफलतासे कातर हो
वापूको युग-युगतक मन-मदिरमें विठा लिया जनताने

अमर लोकको धरतीने सबसे दामी वलिदान दिया है
मदिरमें मूरत रखकर अपना जीवित भगवान दिया है
मिली स्वर्गकी सुर-वीणाको अपनी विछुडी हुई रागिनी
जगको जयका अश्रु-भरा ही गौरव किंतु दिया विभुताने

——हंसकुमार तिवारी

तरसेगा, लहलहानेको, अब एशियाका बाग

ऐ कौम, अब न छूटेगा दामनसे तेरे दाग
गुल तूने अपने हाथसे अपना किया चिराग
गांधीको कत्ल करके, जो तोड़ा तूने फूल
तरसेगा लहलहानेको अब एशियाका बाग

तास्सुबका अँधेरा ले गया शामपे फरोजाको
खुद अपने हाथसे रंगी किया वहशतने दामांको
गला घोंटा गया जिस सरजमींपर आदमीयतका
वो तरसेगी हमेशाके लिए अब नामे इन्सांको

तास्सुबकी भी दीवानगीकी भी हद है
अदावतकी भी दुश्मनीकी भी हद है
हुआ कत्ल गांधी सा मोहसिन दुबारा
बताओ तो, मोहसिन-कुशीकी भी हद है

—पाकिस्तान रेडियो

व्योमसे

पाँव पखारनेके लिए, बादलोको यहाँ आजसे मोड़ न लाना
व्योम ! सुनो, अब आरतीके लिए विद्युत खंडको फोड़ न लाना
अर्घका काम नहीं है, मयंकसे आगे पियूष निचोड़ न लाना
जा चुका है युग-देवता, अर्चनाके लिए तारिका तोड न लाना
हे महाप्राण गया उसी ओर, कहीं लकुटीका सहारा न टूटे
पूरा सँभालते जाना, कहीं उसकी गतिकी वह धारा न टूटे
रक्त रंगी हुई है नभ भू उसका कहीं एक किनारा न टूटे
पूरा प्रकाश रहे पथमें, किसी ओरसे एक भी तारा न टूटे

—सभाजीत पांडे 'अश्रु'

(इस कविताकी रचना श्री 'अश्रु'जीने मृत्यु शैय्यापर पड़े पड़े किया है)

बापू

पशुताकी घटना कुछ ऐसी कालुषमय होती है
लिखते उसे लेखनी भी काले आँसू रोती है
विषकी बहुत लताऐं होतीं जगतीके उपवनमें
मूर्त पाप मैंने न कभी देखा था इस जीवनमें
उस दिन देखा दिल्लीमें पिस्तौल लिये वह आया
जिसने मानवताके ऊपर अपना हाथ चलाया
कोटि कोटि नर हत्याकी लीलाएँ अगणित जगमें
आज अहिंसापर प्रहार होता हिंसाके मगमें
वह हिन्दू जो वृक्ष, मृतिका, पत्थर पूजा करता
वह हिन्दू जो चींटी तककी पीड़ाओंको हरता
वध करता उसका जो जाता है भगवान भजनको
जिसका शीश झुका अपने वध करनेवाले जनको

—'बेढब' बनारसी

हमने दर्शन कर लिये भगवानके

फटे दिल ये हमारे सी गया बापू
हमें देकर अमृत, विष पी गया बापू
उसकी यह महत्ता और सत्ता है
कि मरकर और भी अब जी गया बापू
यह नैया डगमगाती खे गया बापू
हमें उस पार सकुशल ले गया बापू
भले मरना, न करना तुम बुरा जगका।
यही सन्देश मरकर दे गया बापू

बिलख कर कह रहे हैं सब गया बापू
रहा अब पासमें क्या, जब गया बापू
अगर रोते हो तो तुम बेधड़क रो लो
कि रोना रह गया है अब, गया बापू
सृष्टि रोयी, शत्रु रोये निधन उसका जानके
भाग्य ऐसे हो नहीं सकते कभी इन्सानके
बेधड़क हमको यही सन्तोष है, यह गर्व है
हमने इस जीवनमें दर्शन कर लिये भगवानके

—'बेधड़क' बनारसी

विश्व व्याकुल रो रहा

क्रूरताके कुलिश चरणा-हत व्रणोका भार लेकर
रक्तके आँसू बहाती शान्ति सुख-बलिदान देकर
तलफलाती और सिसकती, जब मनुजता रो रही थी
देख अपने पास भीषण लाजमें जब खो रही थी

द्रौपदीके लाज-रक्षक-बन कहाँसे आ गए तुम
प्रेमका सन्देश गाकर शान्तिघनसे छा गए तुम

विश्व पागल गर्वके उस तुङ्ग गिरिपर चढ रहा था
चपल गतिसे विषम पथपर, लड़खड़ाता बढ़ रहा था
प्राप्त कर प्रभुता प्रकृतिपर, दर्पसे दुर्दान्त दानव
देखकर विज्ञानका बल, हो रहा था भ्रान्त मानव

गर्त्त भीषण सामनेका, देख भी वह था न पाता
पतन पथपर अग्रसर जो, था न होना समझ पाता

सत्य-ऊर्जस्वल अहिंसाके सुधाकर ! तुम उदित हो
स्मितिकिरनसे पथ दिखाते, चल पड़े थे तुम मुदित हो
विश्व-प्रेमी देवताको क्रूर ! कैसे मार पाया
उस अहिंसाके पुजारीका हृदय शोणित बहाया

जनमतेही वधिक, निर्मम क्यो न तू था मर गया रे
देशको करने कलंकित, जो बचा तू रह गया रे

आज मानवता-तुलाका, मान पल-पल खो रहा है
आज नरका कर्म कुत्सित, देख दानव रो रहा है
बद्धका उपदेश पावन, आज मूर्छित सो रहा है
आज जिन मुनिका वचन भी, निष्फल हो रहा है

रो रहा है पवन सनसन, गगन तारक रो रहे हैं
ओसके आँसू बहकर, आज कन-कन रो रहे हैं

—करुणापति त्रिपाठी

सत्ये येन दृढं पदं विनिहितं, वैराग्यमूर्तिश्च यो
दुर्धर्षा अपि येन राजपुरुषा नम्रीकृताः स्वौजसा
यश्चात्मैकबलस्थिरः स्थितमतिः स्वाधीनतैकात्मको
नासीदस्ति भविष्यति क्षितितले गांधीसमानः कृती

आङ्ग्लग्राहनिगीर्णभारतधरा स्वातन्त्र्यरत्नं विना
युद्धेनैव पुनस्ततोऽधिगतवान् शान्त्यायुधेनाप्यहो
इत्थं योऽद्भुतयुद्धकौशलनिधिः ख्यातो जगन्मण्डले
नासीदस्ति भविष्यति क्षितितले गांधीसमानः कृती

नानाद्वीपनिवासिवन्द्यचरणो यो भारताग्रेसरो
भूत्वा भारतमात्मशासनपथे संस्थापयामास यः
सोऽयं भारतभानुरद्य विधिना नीत कथाशेषताम्
नासीदस्ति भविष्यति क्षितितले गांधीसमानः कृती

युगप्रवर्तकः श्रीमानतिमानवविक्रमः
महात्माजी विजयते जनहृन्मन्दिरालयः
भाहीन भारतं जातमहिंसाऽद्य निराश्रया
निराधारा भारतीया महात्मनि दिवंगते

—भाऊशास्त्री बझे
—नारायणशास्त्री खिस्ते
—गोपालशास्त्री नेने

आंग्लेयैर्दलिता तुरुष्कततिभिः सम्पेषिताऽहर्निशं
भीतिं प्रापितसिंहजेव निभृतं कालं नयन्ती मुहु
त्वज्ज्ञानेन विनष्टमोहकलिलाऽऽश्वासं समातन्वती
दत्वा जन्म तवाद्य भारतमही गर्वायते भूरिशः

—कमलाकान्तत्रिपाठी

लोकसेवनरतस्य गान्धिनः शोकपूरितवियोगवैखरी
वायुना प्रचलितेव धूमिका सर्वतोभुवनमाशु संगता
दिङ्मुखं तमसि नष्टदर्शनं जातदुःखमभवत्समन्ततः
अम्बरंतरलतारक निशाडम्बरं न व्यरुचच्छुचा तदा
सर्वनिन्द्यमतिदारुणं महत्पातकं त्रिभुवनेषु कुर्वतः
किन्तु ते न पतिताऽशनिस्तदा पाप! मूर्धनि नराधमाधम
सर्वलोकगतजीवराशिना सर्वदार्चितमचिन्त्यवैभवम्
हंत! ते प्रचलिता कथं भुजा हन्तुमेनमतिपावनं भुवि
किन्नु ते कृतमनेन विप्रियं सर्वभूतकरुणार्द्र चेतसा
येन नष्टमतिरेवमाचरन् हृष्टवानसि न लज्जितं त्वया
सर्ववर्णसमभावनाव्रतं गर्वलेशरहितं जितेन्द्रियम्
हा! भवन्तमनुचिन्तयाम्यहं गीतया विगतकल्मषं सदा

शून्यमद्य भुवनं [illegible] नगोगयम्

हा! हतोऽसि भवता विना कः [illegible] भारतं नयति धन्यजीवितम्

—पं० [illegible] नागरः

य [illegible]

यः [illegible] सुधीः

नित्यं यस्तपसि स्थितश्च करुणापाथोभिरुज्जृम्भते

तस्मै गान्धिमहोदयाय सततं कुर्वे सहस्रं नतीः

स्वच्छाचारतनोरहोऽस्य महिमा व्याप्नोति लोकत्रयं

निःशस्त्रोऽपि जगत्त्रयं विजयते सत्यावलम्बीव यः

निर्लिप्तः परिशुद्धकर्मनिकर श्रीरामनामप्रियो

निष्कामोऽपि धुनोति वैरिहृदयं स्वात्मप्रभावेण च

निखिलभुवनपाल श्रीपतिर्दीनबन्धु-

र्दिशतु शतसहस्रं गान्धिने मंगलानाम्

चिरमपि स महात्मा भारतानां विधाता

भवतु नरवरेण्य शुभ्रकीर्तिः सदैव

निःशंकं करुणारसार्द्रहृदयो बुद्धो नु जातः पुन-

र्नेह फाल्गुनसारथिर्नु भवितुं कृष्णोऽवतीर्णः पुनः

धर्मस्थापनसज्जनावनकृतौ साक्षान्नु नारायण

संदेहानिति मानसेषु जनयन् गांधी सदा जृम्भते

—के० यस० नागराजन्

जगदेव यस्य मित्रं नवकुसुमं यस्य कृतेऽरिखनित्रम्

युगपटलिखितपवित्रं नङ्क्ष्यति नैव गान्धिनश्चित्रम्

गतवैभवं चिरलं नीचाधिगतं भारतावनिरत्नम्

त्वयैव कृत्वा यत्नं कृतं गतदास्यबन्धनं प्रयत्नम्

पम्फुल्यमान-भारत-सारसदलमद्यहन्त ! संसारसरिति
जाग्लात्यस्तंयाते महामहिम युगविभव विवस्वति
याऽभवद्रत्नगर्भा युगपश्चात्तु महात्मरत्नगर्भा
किंस्यात्तत्क्षतिपूर्ति नष्टा यस्याश्शान्तिमूर्ति
विधाय जगदस्वस्थं सञ्जातस्त्वं स्वस्थ स्वयमेव
भुवनमद्य रोरुदीति किन्त्वमरनगरम्मोमुदीति

—गङ्गाधर मिश्रः

जयतु जयतु गान्धी देवतुल्यो दयार्द्रः
वितरतु जनशान्त्यै स्वर्गतः शान्तिवाणीम्
अपहरतु पुरेव श्रद्धया शोकराशीन्
उदयतु तमसीन्दुर्विश्वशान्तिप्रदाता

—गजेन्द्रनारायणपण्डा

यस्येदं भुवनं वभूव भवनं, शान्तिः सती गेहिनी
लोकानासमताशनं, तनुभवोहिंसेव यस्यप्रियः
उद्योगो वसनं वभूव नियमत्राणं वचो गान्धिनः
स्वःप्राप्तस्यसुतस्यतस्य भवतादात्माचिरंशांतिमान्

—गणपतिशास्त्री

हा हन्ताद्य नितान्तदुःसहतर कोयं प्रमादोऽपतत्
अन्धीभूतमिदं जगज्जनगण स्तब्धीवभूवाञ्जसा
वाप्पीयं शकटादिकं स्थगितवज्ज्योतिर्गणो निष्प्रभः
वातो वीतगतिर्नदः प्रतिहतस्रोता कथं वाऽभवत्
दुःखाब्धेस्तलल्लग्नभारतमहीमातुश्चिरायोद्धृतौ
चेष्टोत्साहसहस्रपाणिरमितोद्योगी महात्मात्मधी
श्रीविष्णोरवतारवत्फलितसर्वार्थैः परार्थात्मधृक्
सर्वश्रेष्ठजनो जयत्यतितरां आजज्जयोद्घोपित.

पर्य्यंके सुप्तसुप्तं [illegible] नीरजाक्षी:
गान्धीनिर्मितलोकसंस्तव. कीर्तिपुञ्जः सर्वदिक्
सन्यासीव [illegible] मृत्युसन्तापमित्रो
हा हा हन्त हत: स हन्त निर्दयो लोक: शिरस्यादत.
हिंसाधर्म्मप्रमत्तप्रसृत [illegible] पर्वनीशाग्रे दरिद्रार्तयो
सानन्द निजपाणिमस्तुत [illegible]
वृद्धो भीष्म इव पतितवलभुक् स्वेच्छामृतो निर्भय
नीतिज्योतिर्हो प्रभाकर [illegible]स्तोऽस्तङ्गतः
हरिजनगणदु:खैर्दुःखितो [illegible] मा
भगवति निहितात्मा संयतात्मा महात्मा
निखिलधरणिधन्यो धीरमान्यो वरेण्यो
विहितबहुलपुण्यो गण्यलोकाग्रगण्य.
—गोपीचन्द्रः

ध्वस्तः स्वातन्त्र्यमेरुर्भरतनृपरसारत्नराशिर्विशीर्णः
शुष्कः शान्त्येकसिन्धु. प्रलयमुपगतो राष्ट्रमाणिक्यकोशः
स्वातन्त्र्यस्य प्रदानं निजभरतभुवे कारयित्वा स्वबुद्ध्या
गान्धावन्धा प्रजाऽभून्निधनमुपगते भारतीया समस्ता
—छज्जूरामशास्त्री,

महसा तिमिरं निरस्यता मह—सान्द्रं गमिताः प्रजाः सुखम्
स——हसा जननी च येन सा सहसा हन्त ! गतः स मोहनः
जन——मोहन ! दिव्य-मा-लयो विरहेणाऽद्य स ते हिमालयः
विगलत्तुहिनाम्बुनिर्झरैर्नयनाश्रूणि चिरं विमुञ्चति
क्व नु विश्वविमोह-वारणं शुभराशेरखिलस्य कारणम्
मधुरं सरलं गुणावहं वचनं ते श्रवणं प्रयास्यति
परचक्र-कदर्थिताऽनिशं जननी येन तपोभिरुज्ज्वलैः
गमिता शुभदां स्वतन्त्रतां स मुनिः कुत्र निलीय तिष्ठति

निखिलेषु जनेषु किं पुनः परिपन्थिष्वपि यो दयामयः
स तथागत एव दुर्मतीन् अवतीर्णो भवतोऽभिरक्षितुम्
विविधान्तर-बाह्य-विग्रह ग्रहविच्छिन्न-गुणान् पतिष्यतः
मनुजान् दनुजानुगामिनो निजवागर्गल्या रुरोध यः
भारतावनि-नीति-नौरियं भवता मार्गविदा विनाकृता
मरुति प्रबले भवद्गुणैर्विधृता शान्तिपथेन यास्यति
अयि भारतभूमि-नन्दन ! स्व-पदव्याप्तपवित्र-नन्दन
जगदद्भुत — सत्यविक्रम ! प्रणतान् रक्ष निजैर्निरीक्षणैः
—बटुकनाथशास्त्री खिस्ते

कृष्णान्नीतात्वयाऽऽसीत्परममधुरतास्वीयसिद्धांतपूर्णा
श्रीलात्श्रीरामचंद्रात्परमरुचिरताशिक्षितासत्यनिष्ठा
बौद्धान्नीता त्वहिंसा परमकरुणता सर्वभूतात्मता च
इत्थं भोगांधिवापो ! विकल्तिमहिमन् ! क्व प्रयातस्त्वमद्य
—भगवतीप्रसाद देवशङ्करपण्ड्या।

यशसा तव पूरितं जगत्
न तु वै शेषितमल्पमप्ययें
चक्रुषे त्वमितो न किं पुनः
सहसा स्फोटभियाऽस्यवेघसा
खलु भारत-भूर्विशृङ्खला
रुदती त्वामनु चोत्पतेद्दिवम्
यदि मेरुगिरिर्महान्गुरु-
र्हृदि तस्या निहितो हि नो भवेत्
—भगवानदत्त पाण्डेयः

अन्धकारमयं लोक यो भारतविभाकर
स्वोपदेशप्रकाशेन ज्ञानदीपमदीपयत्
मृत्युं बन्धुमिति ज्ञात्वा स्वाशयं योऽवदत्सदा
स महात्माऽऽश्लिपन्मृत्युं मोदाद्बन्धुमिव प्रजाः
—मे० वो० सम्पत्कुमाराचार्यः

उपवासजन्य बलं तव परमाप्दनविशिष्टगौरितम्
न मृषा, कथमन्यथा पित: ! नरलोक: परकम्पितां व्रजेत्

—सुन्दरलालमिश्र:

स्वातन्त्र्यचन्द्रवदन: कथमद्य खिन्न:
सत्तालकाऽऽकुलितधी भुवि राज्यलक्ष्मी
हा ! हन्त !! हन्त !!! अभिनन्दनकाल एव
अस्तोदय: सपदि भारत-भाग्य-भानु:
धीरप्रशान्तनृपनीतिधुरन्धरोऽसौ-
सर्वाङ्गसुन्दरविभूतिवरोऽवतार:

श्रीमोहन सकलविश्वविमोहनोऽयमस्तङ्गतो नरहरिर्वसुधाऽभिराम:
स्थानेऽभवद् भरतभूप्रतिभाप्रतीका राज्यश्रियो मुखमपश्यदहिंसयैव
विश्वैकवन्द्यमहिमन् ! प्रबलात्मशक्ते दीक्षागुरो ! अमरता चरणे नतास्ते
हे जीवनोद्धरण ! भारत-मातृ-भूमे: क्व प्रस्थितोऽसि विषमे पतिते जनन्या
हा ! साम्प्रतं वयमकिञ्चन भारतीया: श्रद्धाञ्जलिं सजलमद्य समर्पयाम

—शैलेन्द्रसिद्धनाथ पाठक:

शान्तिदूतो भारतस्य जगच्छान्तिप्रदायक:
गांधी हन्त ! लयं यातो वयं मग्ना: शुचोऽर्णवे

—शोभानाथत्रिपाठी

समस्तजनताज्वलद्धृदयकञ्जवारिप्रसू प्रशस्तधृतमण्डलद्युतिगरिष्ठगाम्भिर्यः
उदित्य जनमानसप्रसृततीव्रमन्धन्तमः निरस्य सहसा विधे ! बृहति तेजसि प्राक्षिप्
यदा भवति भूतलं जहति धैर्यपुञ्ज वमन् निधि करतरङ्गतो निजशिरो धुनानोऽम्बुधिः
त्वदीयविरहे दहन् स्वककलेवरं दृश्यते तदा कथमनाथता मृदुलजीवितो जीवति

धराऽथ निजवार्धके प्रियप्रसूतचिन्तामणिं
विहाय विधिना हता कथमहो भरं धास्यति
जवाहरमहामणिः सकललोकशोकापहो
दधीत किरणं कथं प्रखररश्मितातें गते

नोआखालीकरालश्रुतिनिहितवपुर्मोहनं मालवीयम्
पञ्चाम्बुप्रान्तवार्ता द्रुतविकलमना आप्तुकामो महात्मा
सद्यो यातो द्युलोकं जगति किमथवा, स्वात्मना लोकतंत्रम्
राज्यं संस्थाप्य स्वर्गेऽमरपतिप्रभुतां भङ्क्तुकामो गतो हा
कालिन्दी साश्रुकण्ठा विलपति सततं श्रीमति स्वर्गते हि
गङ्गा मुक्ताङ्गवासा निजसुतरहिता मुञ्चति स्वीयबिन्दुम्
रावीत्यादिः श्वसन्ती कथमपि विरहे जीवनं नैव धत्रीं
अन्या सर्वा विदग्धा क्षणमपि विरहे नैव प्राणं दधार
—शोभाकान्तझाशास्त्री

श्रीमद्गान्धिमहोदये दिवि गते सौख्यं हि सन्ध्यायते
किं स्यादद्य विचारहीनजनताज्ञानं तु निद्रायते
हा ! वश्या नहि भारतीयजनताराज्यञ्च भारायते
किंकर्तव्यविमूढतामधिगतो बुद्धिश्च खेदायते
—हजारीलालशास्त्री

सुरम्यं तच्चित्रं भुवनमिदमुद्यानसदृशं
नदीसुस्रोतोनिर्झरशिखरकान्तारसुभगम्
नराकारैः पुष्पैः कुसुमितमिदानीमपि तथा
परं त्वामन्यत्तद्दिनमणिमृते वा निविडितम्
—हरिभजनदासः

'गांधीजी' ग्रंथमालाके खण्डोंकी सूची

पहला खण्ड—(प्रथम भाग) भारतीय नेताओंकी श्रद्धांजलियां (प्रकाशित)

(द्वितीय भाग) भारतीय तथा रियासती नेताओंकी श्रद्धांजलियां (प्रकाशित)

दूसरा खण्ड—संसारके समाचार-पत्र तथा पत्रकारोंकी श्रद्धांजलियां

तीसरा खण्ड—विदेशोंकी श्रद्धांजलियां

चौथा खण्ड—कवियोंकी श्रद्धांजलियां (प्रकाशित)

पाँचवां खण्ड—जीवन-चरित (प्रेसमें)

छठा खण्ड—गांधीजी सम्बन्धी संस्मरण

सातवा खण्ड—भारतको गांधीजीकी देन

आठवा खण्ड—गांधीजीके महत्त्वपूर्ण भाषण

नवां खण्ड—गांधीजीके पत्र (महत्त्वपूर्ण मूल-पत्रोंके चित्रोंके साथ)

दसवा खण्ड—अहिंसा (प्रथम भाग) (गांधीजीकी लेखनीसे) (प्रकाशित)

अहिंसा (द्वितीय भाग) (,, ,,) (प्रकाशित)

ग्यारहवां खण्ड—हिन्दू-मुसलिम एकता (,, ,,)

बारहवा खण्ड—अछूतोद्धार (,, ,,)

तेरहवा खण्ड—शिक्षा (,, ,,)

चौदहवा खण्ड—महिलाएँ (,, ,,)

पन्द्रहवा खण्ड—गांधीजीका राजनीतिक दृष्टिकोण

सोलहवा खण्ड—गांधीजीका आर्थिक दृष्टिकोण

सत्रहवा खण्ड—गांधीजीका धार्मिक दृष्टिकोण

अठारहवा खण्ड—गांधीजीके 'राम'

उन्नीसवा खण्ड—प्रार्थनोत्तर प्रवचन

बीसवा खण्ड—गांधीजीके प्रयोग

इक्कीसवा खण्ड—प्रवासी भारतीय

बाईसवा खण्ड—विद्रोही गांधी

तेईसवा खण्ड—गांधीजीका 'स्वराज्य'

चौबीसवां खण्ड—चित्रावली

पचीसवा खण्ड—विविध

साम्प्रदायिक समस्या—खंड ११-द्वितीय भ

गां
धी
जी

खंड

ग्यारह

साम्प्रदायिक समस्या

द्वितीय भाग

प्रकाशकका वक्तव्य

गांधीजी ग्रंथमालाका यह दसवां प्रकाशन ग्रंथमालाके ग्यारहवें खंडका द्वितीय भाग है। 'साम्प्रदायिक समस्यापर पूज्य बापूकी लेखनीसे जो अमूल्य विचारधारा मानव-जगत्को प्राप्त हुई है उसका यह द्वितीय संग्रह है। आशा है एक और भागमे साम्प्रदायिक समस्या सम्बन्धी लेख समाप्त होंगे। इस भागके संकलन तथा संपादनसे श्री विद्यारण्य शर्मा तथा श्री बानेश्वरी प्रसादसे बडी सहायता मिली है। हम इनके आभारी है।

काशीके प्रसिद्ध कांग्रेस कार्यकर्ता तथा गांधीभक्त श्री रामसूरत मिश्र, श्री कृष्णदेव उपाध्याय, स्वर्गीय श्री बैजनाथ केडिया, स्वर्गीय श्री कन्हैयालाल शास्त्री तथा कारमाइकल पुस्तकालयके संग्रहोसे हमे बड़ी सहायता मिली है। हम उनके भी आभारी है।

इस भागके प्रकाशनकी अनुमति देकर श्री जीवनजी डाह्याभाई देसाई, व्यवस्थापक ट्रस्टी, 'नवजीवन ट्रस्ट', अहमदाबादने जो कृपा की है उसके लिए हम कृतज्ञ है।

गांधीजी ग्रंथमालामे अबतक भारतीय नेताओंकी श्रद्धाजलियाँ दो भाग, कवियोंकी श्रद्धांजलियाँ, अहिंसा सम्बन्धी लेखोंके चार भाग, साम्प्रदायिक समस्या एक भाग, हरिजनोद्धार एक भाग, कुल नव अंक प्रकाशित हो चुके हैं। जिस खंडकी सामग्री तैयार हो जाती है उसे हम प्रकाशित कर देते हैं। इससे विज्ञापित क्रममें व्यतिक्रम तो अवश्य पड़ता है, किन्तु खंडोकी क्रम-संख्या वही रखी जाती है जो पहलेसे निश्चय हो चुकी है। क्रमशः सब खंड प्रकाशित किये जायेंगे। इस अंकके बाद हरिजनोद्धार दूसरा भाग तथा साम्प्रदागिक समस्या तीसरा भाग प्रेसमे है।

हमने अपने ग्राहकोकी असुविधाका विचार करके यह निश्चय किया है कि प्रायः तीन अंक एक साथ ही ग्राहकोंकी सेवामे भेजा जाय। इससे डाक-व्ययमें कमी होगी तथा ग्राहक गण अनेक असुविधाओंसे बच जायेंगे। तदनुसार साम्प्रदायिक समस्या दो भाग तथा हरिजनोद्धारका एक भाग, यह तीन अंक इस बार एक साथ भेजे जा रहे हैं। आशा है, ग्राहक तथा पाठक इस कारण हुए विलम्बके लिए हमें क्षमा करेंगे।

हमे हर्ष है कि ग्रंथमालामे प्रकाशित अब तकके सब भागोंका प्रथम संस्करण समाप्त हो गया है। उनके द्वितीय संशोधित संस्करणका प्रबन्ध किया जा रहा है। इस आशातीत प्रचारसे हमें जो बल उत्साह तथा साहस प्राप्त हो रहा है उससे पूर्ण विश्वास है कि गांधी साहित्यके प्रसार तथा प्रचारके शुभ अनुष्ठानमें हम सफल होंगे।

❀

मेरा उपवास

मैं पाठकोंको यकीन दिलाना चाहता हूँ कि मैंने यह उपवास बिना सोचे समझे शुरू नहीं किया है। जब पूछिये तो जबसे असहयोगका जन्म हुआ है तभीसे मेरा जीवन एक बाजी हो रहा है। मैंने आँख मूँदकर इसमें हाथ नहीं डाला। इसके साथ रहनेवाले खतरोंको काफी चेतावनी दी गई थी। मैं अपना कोई काम बिना प्रार्थना किये नहीं करता। मनुष्य स्खलनशील है। वह कभी निर्भ्रान्त नहीं हो सकता। जिसे वह अपनी प्रार्थनाका उत्तर समझता है, संभव है कि वह उसके अहंकारकी प्रतिध्वनि हो। अचूक मार्ग दिखानेके लिये मनुष्यका अन्तःकरण पूर्ण निर्दोष और दुष्कर्म करनेमें असमर्थ होना चाहिये। मैं ऐसा दावा नहीं कर सकता। मेरी तो भूलती-भटकती, गिरती-पड़ती, उठती और प्रयत्न करती अपूर्ण आत्मा है। सो मैं अपनेपर तथा अपनोंपर प्रयोग करके ही आगे बढ़ सकता हूँ। मैं ईश्वरके और इसलिये मनुष्य जातिके पूर्ण एकत्वको मानता हूँ। हमारे शरीर यदि भिन्न-भिन्न हैं तो क्या हुआ? आत्मा तो हमारे अन्दर एक ही है। सूर्यकी किरण परावर्तनसे अनेक दिखाई देती हैं। पर उनका आधार-उद्गम एक ही है। इसलिये मैं अपनेको अत्यन्त दुष्टात्मासे भी अलग नहीं मान सकता (और न सज्जनोंके साथ तद्रूपतासे ही इन्कार किया जा सकता है)। ऐसी अवस्थामें मैं चाहूँ या न चाहूँ अपने तमाम सजातियोंको, मनुष्यको—अपने प्रयोगमें अनायास शामिल किये बिना नहीं रह सकता। और न प्रयोग किये बिना ही मेरा काम चल सकता है। जीवनको प्रयोगोंकी एक अत्यन्त मालिका ही समझिये।

मैं जानता था कि असहयोग एक खतरनाक प्रयोग है। अकेला असहयोग खुद एक अस्वाभाविक, बुरी और पापमय वस्तु है। पर, मुझे निश्चय है कि शान्तिमय असहयोग प्रसंगोपात्त एक पवित्र कर्तव्य है। मैंने इसे अनेक बातोंमें साबित कर दिखाया है। पर हाँ, बहुजन-समाजपर उसको आजमानेमें गलतियाँ होनेकी बहुत संभावना थी। लेकिन असाध्य-भीषण रोगका इलाज भी दारुण ही करना पड़ता है। अराजकता तथा उससे भी बुरी बुराइयोंके लिये शान्तिमय असहयोगके सिवा दूसरा कोई उपाय ही न था। पर चूँकि वह शान्तिमय था, मुझे अपनी जिन्दगी तराजूपर रखनी पड़ी।

जो हिन्दू-मुसलमान दोनों दो बरस पहले खुल्लम-खुल्ला एक साथ मिल-जुलकर काम करते थे वही अब कुछ जगह कुत्ते-बिल्लीकी तरह लड़ रहे हैं। यह इस बातको भलीभाँति दिखाता है कि उनका वह असहयोग शान्तिमय न था। मैंने बम्बई, चौरी-चौरा तथा दूसरे छोटे-बड़े मौकोंपर इसका चिन्ह देख लिया था।

मैंने उन मौकोंपर प्रायश्चित भी किया। उस बातमें उसका असर भी हुआ। पर इस हिन्दू-मुस्लिम तनाजेका तो ख्याल भी नहीं हो सकता था। जब कोहाटकी दुर्घटनाका समाचार मैंने सुना तो यह मेरे लिये असह्य होगया। साबरमतीसे देहली रवाना होनेके पहले सरोजनी देवीने मुझे लिखा था कि शान्तिके लिये भाषण और उपदेशोंसे काम न चलेगा। आपको जरूर कोई रामबाण दवा ढूंढ निकालनी चाहिये। उनका मेरे सिर इसकी जिम्मेवारी डालना ठीक ही था। क्या मैं लोगोंके अन्दर इतना जीवन डालनेमें साधनीभूत न हुआ हूं? और यदि वह जीवन शक्ति आत्म-नाशक साबित होती हो तो मुझीको उसका उपाय खोजना लाजिमी है। मैंने उन्हें जवाबमें कहा कि यह तो प्रयासके द्वारा ही हो सकता है। कोरी प्रार्थना निस्सार आडम्बर होगी। उस समय मैं यह बिल्कुल नहीं जानता था कि वह दवा होगी यह लम्बा उपवास। इतना होने पर भी यह उपवास इतना लम्बा मुझे मालूम नहीं होता कि जिससे मेरी व्यथित आत्माको शान्ति मिले। क्या मैंने गलती की है? क्या धीरजसे काम नहीं लिया है? क्या मैंने पापके साथ समझौता कर लिया है? मुझसे यह सब बन पड़ा हो या न बन पड़ा हो, मैं तो जो अपने सामने देखता हूँ वही जानता हूँ। यदि उन लोगोंने जो आज लड़ रहे हैं सच्ची अहिंसा और सत्यको समझा होता तो यह खूनी द्वन्द्व-युद्ध जो आजकल हो रहा है, असंभव होता। इससे कहीं न कहीं मेरी जिम्मेदारी जरूरी है।

अमेठी, संभल और गुलबर्गाकी दुर्घटनाओंसे मेरा दिल बड़े जोरके साथ दहल उठा था। मैं अमेठी और संभलकी, हिन्दू-मुसलमान मित्रोंके द्वारा लिखी, रिपोर्ट पढ चुका था। मैं गुलबर्गा गये हिन्दू और मुसलमान मित्रोंके द्वारा एक मतसे भेजा पत्र पढ़ चुका था। मैं बड़े दुःखित हृदयसे उनके बारेमें लेख आदि लिखता था—पर उनके इलाजके लिये लाचार रहता था। कोहाटके समाचारोंसे मेरे हृदयका यह धुआंधार भकसे जल उठा। कुछ न कुछ करना जरूरी था। दो रात मैंने मनोव्यथा और बेकरारीमें गुजारी। बुधवारको दवा मिल गई। बस, मुझे प्रायश्चित करना चाहिये। सत्याग्रह आश्रममें रोज प्रातःप्रार्थनाके समय हम कहते हैं—

> "कर-चरणकृत वाक्कायज कर्मजं वा
> श्रवण-नयनजं वा मानसं वापराधम्।
> विहितमविहितं वा सर्वमेतत्क्षमस्व
> जय जय करुणाब्धे श्री महादेव शंभो!"

मेरा प्रायश्चित है एक विदीर्ण और क्षतविक्षत हृदयकी प्रार्थना कि परमात्मा मेरे अनजानमें किये पापोंको क्षमा कर। यह उन हिन्दुओं और मुसलमानोंके लिये एक चेतावनी है जो मेरे साथ प्रेमभाव बताते हैं। यदि वे सचमुच मेरे साथ प्रेम रखते हैं और सचमुच, मैं इसका पात्र हूं तो वे मेरे साथ, अपने हृदयसे ईश्वरको एक ... घोर पापका प्रायश्चित करें। एक दूसरेके धर्मको गाली देना, ...

हैं और फिर ठंठ निचलेतक पहुच जाते हैं। इससे पहले दोनो पक्षोंमें बैर-भाव प्रकट उठता था। आज जो लोग श्रेष्ठ माने जाते हैं, जो मार्ग दर्शक माने जाते हैं उनके बीच अक्सर बैर-भावकी वह प्रतिध्वनि मानी जाती थी। अज भी एकता करनेवाली दो ही कड़ियो दिखाई देती हैं—एक कड़ी बृटिश राज्यके प्रति दोनो जातियोंका बैर-भाव और दूसरी कड़ी गान्धीजी और अलीभाइयोंका शुद्ध, गहरा और व्यक्तिगत प्रेम। पहली कड़ी मिथ्या है और बृटिश यदि हटा लें तो वह टूट सकती है। दूसरी बात सच है, अधिक शुभ बातोंके आगमनका आरम्भ रूप है। गान्धीजी दोनों जातियोंको जोड़नेवाली एक-मात्र कडी हैं। इसीसे 'गान्धीजीकी जय' इस घोषणको आज नवीन अर्थ और महत्व मिलता है।

पूर्वोक्त उद्गार श्री आर्थर मूर 'स्टेट्समैन' पत्रके सम्पादकने देहली छोड़नेके पहले प्रकट किये थे। इस अंग्रेज सज्जनके निष्पक्ष उद्गारोंमें अपार सत्य भरा हुआ है। यहाँ इतना कह देना चाहता हूँ कि गो-बध सम्बन्धी अत्यन्त विवादोत्तेजक प्रस्तावके पास होनेके पहले ही श्री मूर देहलीसे चले गये थे। जिस दिन उन्होने देहली छोड़ी उस दिन उन्होंने विषय-समितिमें अत्यन्त कटुता-पूर्ण विवाद देखा था। फिर भी उन्होने जो आगाही दी थी, वह आज सच हो रहा है।

यदि कोई यह कहे कि इस परिषदके द्वारा एकता हो गई है तो उसे सीधा भोला ही कहना चाहिये। कोई अपने दिलको यह तसल्ली नहीं दे सकता कि इस परिषदके द्वारा दिलके जख्म भर गये हैं, दिलसे मिल गये हैं, हार्दिक एकता हो गयी है। यह मान लेनेकी कोई जरूरत नहीं है कि 'महात्मा गांधीजीकी जय' पुकारनेवालोंने गांधीजीकी मुराद सोलहो आना पूरी कर दी है। पर यह कहे बिना नहीं रह सकते कि जो हुआ है वह अच्छा ही हुआ है।

पहले दो प्रस्तावोंमें परिषदका महत्व है। इन प्रस्तावोंमें पश्चाताप है, अहिंसाके अमल करनेका निश्चय है, झगड़ा होनेपर भी लाठीके बलपर उसका फैसला न करनेका सिद्धान्त स्वीकार किया गया है। यह बात कोई ऐसी-वैसी नहीं है। गो-रक्षा और बाजे-बजानेके प्रस्तावोंमें अदली-बदलीकी बू आती है। पर इसमें भी महत्वकी बात यह है कि यह बात समस्त पक्षोंके धार्मिक और राजनैतिक-नेताओंने मिलकर तय की है। विदेशी सत्तासे युद्धमे प्रवृत्त देशका ध्यान आज अपने घरके टन्टे सुलझानेकी ओर झुका है और आज हम धीमे-धीमे कदम बढ़ाते हुए ऐसी तजवीजमें हैं कि कहीं एक दूसरेके पैर न छिल जायं। यह इस बातकी हदको सूचित करता है कि हम किस अधोगतिको जा पहुंचे हैं। पर इस प्रस्तावमें पुनः इस इच्छाकी जागृति दिखायी देती है कि हम अधिक नीचे नहीं गिरना चाहते, आगे ही बढ़ना चाहते हैं, एकता करना चाहते हैं और स्वराज्य प्राप्त करना चाहते हैं।

श्री मूरने जो कहा है कि गांधीजी ही दोनो जातियोंको एक शृंखलामें बांधने वाली कड़ी हैं, वह वास्तवमें वस्तुस्थिति है। पर गांधीजी ऐसा नहीं चाहते कि यह वस्तुस्थिति इस प्रकार चलती रहे। उनके उपवासका उद्देश्य यह है कि गांधीजीके

खातिर नहीं, बल्कि अपने जीवनके खातिर, दोनों जातियां प्रेमसे एक दूसरेके गले मिलें। यदि गांधीजी परिषद्में होते तो शायद प्रस्तावोंकी भाषा और भी अच्छी होती। उसमें कम वकालत होती, कम लेन-देनकी गन्ध होती। पर गांधीजीका न होना ही ठीक हुआ जिससे सबोंने अपने शक्तिके अनुसार, अपनी जुर्रतके मुताबिक ही प्रस्ताव पास किये हैं। जब गोवध संबंधी प्रस्ताव पास हुआ तब 'गान्धीजीकी जय'का हर्षनाद हुआ और कुछ देर बाद परस्पर विरुद्ध पक्षके नेता एक दूसरेके गले मिले। अगले दिनके पश्चात्ताप सम्बन्धी प्रस्तावमें शुरू होकर उनका एक दूसरेके गले मिलना इस बातको सिद्ध करता है कि यदि उनमें एकता न हुई तो कमसे कम दुश्मनी जरूर भूल गये हैं।

गांधीजीके उपवासमें यदि गांधीजीके दिलके जख्मका अन्दाज सब लोग कर सकें, तो उन्हें भी थोड़ी बहुत चोट पहुंचे बिना न रहेगी। परिषद्में आने और 'महात्मा गांधीजीकी जय' पुकारनेवाले उन अपूर्ण प्रस्तावोंका भी पालन यदि पूरी तरह करेंगे तो थोड़े ही समयमें संपूर्ण प्रस्ताव पूर्ण करनेका समय आ जायगा।

जब मैं वीसनगर (गुजरात) गया था तब एक मुसलमान सज्जनने कहा था कि कुरान शरीफमें कहा है कि किसीके दिलको दुखाना मानो काबा जैसे पाक जगहको नापाक करना है। धार्मिक हिन्दू तो 'राम हृदय भवन प्रभु तोरा' में विश्वास रखते हैं। हिन्दू और मुसलमान यदि अपने इस अटल सिद्धान्तपर दृढ़ रहकर एक दूसरेके दिलको न दुखानेकी प्रतिज्ञा कर लें, यह मानने लगें कि एक दूसरेके दिलको दुखाना ईश्वरके प्रति अपराध करना है, तो एकता होनेमें देर न लगे। यह स्थिति आज नहीं है—यह स्थिति परिषदके प्रस्तावोंमें नहीं है। प्रस्ताव पास करनेवालोंमेंसे कितने ही लोगोंके दिलमें यह भाव अभी बाकी रहा है कि 'वे यदि ऐसा करें तो हम ऐसा करें।' पर सब लोगोंने इतनी बात स्वीकार कर ली है कि दोस्ती करना है और दोस्ती करनेका उपाय है पापके लिए पश्चात्ताप और अहिंसा। उदासीनता और उपेक्षाकी जगह अब मैत्रीकी इच्छा पैदा हो गई है और उसके साथ ही स्वराज्य प्राप्त करनेकी लालसाका भी पुनर्जन्म हुआ है। इसे ऐसी-वैसी बात नहीं कह सकते। परन्तु मैत्री तथा स्वराज्य प्राप्त करनेके संकल्पके लिये तथा उसके हेतु एकताके प्रश्नका सदाके लिए निपटारा करने योग्य हिम्मत आनेमें अभी समय लगेगा।

हिन्दी-नवजीवन
५ अक्टूबर, १९२४

आशाकी किरणें

ऐक्य-परिषद निरर्थक न हुई। उसने जो कुछ किया है उसका अमल हो तो भी बहुत है। गांधीजीके प्रायश्चितका असर बहुतेरे स्थानोंमें पाया जाता है। गान्धीजीके प्रायश्चितके सम्बन्धमें 'स्टेट्समैन' पत्रमें जो लेख प्रकाशित किये गये हैं वे आनन्दाश्चर्य दिलानेवाले हैं। उसके सम्पादकने गत ८ ता० को अर्थात् पारणाके

दिन 'ऐक्य अंक' निकाला था। उसमें अनेक नेताओंने और गवर्नरों तथा वाइसराय और स्टेट सेक्रेटरीने भी संदेश भेजे हैं। 'इंगलिशमैन' पत्रने भी जो हमारी सब हलचलोका सिर्फ मजाक उड़ाया करता था गांधीजीके उपवासके संबन्धमे बड़े गम्भीर भावमें लिखा है —

"हम आशा करते है कि हिन्दू-मुसलमानके ऐक्यके लिए ही अब महात्माजी अपना उपवास छोड देंगे। हम जानते है कि वे उसे प्रायश्चित समझते हैं। यह प्रायश्चित बड़े उदारताके साथ किया गया है। लेकिन उन्होंने जो शक्ति उत्पन्न की उसके परिमाण-स्वरूप यदि भिन्न-भिन्न जातियोंमे झगडे हुए हो तो उन्हे उन लोगोंके साथ खड़े रहना चाहिये जो उस शक्तिको शान्ति कार्यमे लगा देनेका प्रयत्न कर रहे हैं। उनके उपवासका जो कुछ भी बाह्य असर होना था सो हो गया। अहिंसावादी होनेके कारण अब उन्हें उपवास करनेकी कोई जरूरत नहीं है। गाधीजीकी अहिंसानिष्ठा अव्यभिचारिणी है। इसमें किसीको कुछ सन्देह नहीं।"

उपवासके संबंधमे बहुतसे अंग्रेजोके और ईसाइयोंके पत्र आये हैं और अभी आ रहे हैं। कुछ ईसाई ऐसी आशा करते हैं कि हजरत ईसाकी मेहरवानी गांधीजी पर उतरे और आखिरमें उन्हें ईसाई-धर्ममें शान्ति मिले। और कुछ गांधीजीके प्रायश्चितका रहस्य समझकर ऐसी प्रार्थना करते हैं कि वह सफल हो। शिमलासे एक अंग्रेज सज्जन लिखते हैं—

"आपके ध्येय ऐक्यके सम्बन्धमें क्या भारतका 'ईसाई-धर्म संघ' कुछ सेवा कर सकता है? यदि वह कर सके तो उसे किस तरह काम करना होगा? कृपा कर लिख भेजें। संयमके द्वारा ऐक्य साधन करनेकी आपकी अभिलाषाको मैं खूब अच्छी तरह समझ गया हूँ। श्री ऐण्ड्रूजकी बहन लिखती हैं—

बापूजी यदि न हों तो देशके लिए मुझे कुछ भी आशा नही रहेगी। किन्तु अभी मेरी आशा नष्ट नहीं हुई है और आज (दूसरी तारीख.) से बापूका पारणा होने तक मैं भी उपवास करूँगी। हे ईश! हमपर दया कर, हमारे हृदयको नवीन कर दे, उसमेंसे अप्रेमको निकालकर प्रेम भर दे। और हमलोग जो नाम-मात्रके लिये ईसाई हैं, ईसाका अनुसरणकर सच्चे ईसाई और जगतमे शान्ति स्थापित करनेवाले बनें।

गांधीजीके नामके पत्रमे सूत भेजकर वे लिखती हैं—

मेरे प्रेम और प्रार्थनाके चिन्ह-स्वरूप यह सूत भेज रही हूँ। यह नहीं कि इतना ही काता है, काता बहुत है। अपना कर्तव्य करनेका प्रयत्न कर रही हूँ। लेकिन यह तो देव-प्रसाद है। इसका उद्योग मनुष्य नहीं, देव कर सकते है, इसलिये यह आपके लिए ही भेजा है। यह सूत मेरी वाडीके कपासका है। प्रभात समयमें देवी अश्रुओंसे भीगे कोमल कपासको अपने हाथोंसे तोड़ा है. बिनौले निकाले और पक्के मीलन स्पर्शसे बचाकर यह सूत निकालकर भेज रही हूं। उसे कातते समय मैं जप कर रही थी। अब उसे मै अपने आसुओंमे भिगोती हूं। क्योंकि आपका और भारतवर्षका ख्याल आनेसे मेरे हृदयमे भय हो रहा है।

हिन्दी-नवजीवन

२ अक्टूबर, १९२४

हिन्दू और मुसलमान

ऐक्य-परिषद् तो ऐक्यका आरंभ-मात्र है। उसके प्रस्ताव अपूर्ण, उसमें उपस्थिति भी अपूर्ण उससे उसका आरंभ भी अपूर्ण है। फिर भी यह परिषद बहुत महत्व-पूर्ण था। उसकी जड़ें गहरी जायेंगी। उसके शेष कोमल वृक्षको रक्षा करना, उसे पानी देना हमारा काम है।

गहरा विचार करनेपर हमें दिखायी देगा कि यह जटिल प्रश्न एक ही तरहसे हल हो सकता है। कोई कानूनको अपने हाथोंमें न ले। मैं मानता हूँ कि वह घर मेरा है, पर इतनेसे ही उसपर कब्जा करके बैठ जाना जंगलीपन है। मुझे अपना हक पंचमें या अदालतमें साबित करना चाहिये और पंचके अथवा अदालतके प्रस्तावोंको शिरोधार्य करना चाहिये। जहां इस नियमका पालन नहीं होता, उस समाजका नाश होता है। यदि इस सुनहले नियमका पालन दोनों पक्ष करें तो फिर कुछ कहनेकी जरूरत ही नहीं रहती। परन्तु जहां एक पक्ष मार-पीट ही करना चाहता हो वहाँ भी यदि दूसरा पक्ष उक्त नियमका पालन करे तो बस है। अन्तमें जाकर उस पक्षकी हानि नहीं हो सकती, यह निश्चित बात है। फर्ज कीजिये कि मेरे घरपर एक तीसरे ही शख्सने कब्जा कर लिया। अब सुव्यवस्थित समाज मुझे मेरा कब्जा जरूर वापस दिलावेगा। कनिष्ट प्रकारके समाजमें वह काम अदालत करती है। पंचका दण्ड होता है लोकमत, अदालतका दण्ड कैदखाना या बन्दूक होता है। हर प्रकारकी व्यवस्थामें मारपीट न करनेवाला शख्स फिर अपना कब्जा पा सकता है।

जबतक हम इस अनिवार्य नियमके अधीन न होंगे तबतक हमारे अन्दर झगडे बराबर होते रहेंगे। इसमें कोई शुबहा न करें और जबतक ऐसे झगड़े चलते रहेंगे, तबतक शान्त उपायोंके द्वारा हम कभी स्वराज्य न ले सकेंगे। इसे एक तरह स्वयंसिद्धि ही समझिये। हो सकता है कि हिन्दू और मुसलमान दोनोंमेसे किसीको स्वराज्य दरकार न हो, स्वराज्यसे ज्यादे झगड़े ही पसन्द हों, ऐसोंके लिए एक भी दलील कामकी नहीं, परन्तु जो स्वराज्य चाहते हैं उन्हे पूर्वोक्त नियम शिरो-धार्य करना होगा। हम लोग जिन्हे कि स्वराज्यके बिना जीवित रहना कठिन है, कभी मारपीटके जंगली कानूनके आधीन न होंगे।

परन्तु पंचमें या अदालतमे जानेके दृढ़ निश्चयके होते हुए भी कितने ही ऐसे मौके आ सकते हैं, जब कि मनसे या बेमनसे मार-पीटमे शरीक होनेका, अथवा भाग जानेका या शान्तिके साथ मृत्युके अधीन होनेका समय आ जाता है। मैं भजन-कीर्तन करता हुआ मसजिदके सामनेसे निकलता हूँ और मुझपर कोई हमला करता है, तब मुझे क्या करना चाहिये? मेरे ही घरमें जब कोई कब्र बनाने लग जाय तब मुझे क्या करना चाहिये? अथवा एक गरीब मुसलमान खानगी तौरपर अपने घरमें गो-वध करता है और उसपर हिन्दू लोग टूट पड़ें तो उसे क्या करना

चाहिये ? इन तीनों मिसालोंमें इतना समय नहीं है कि कानूनकी राह देखी जाय। तब उन लोगोंको क्या करना उचित है ? यदि वे शान्तिके साथ मरना जानते हों तो यह अवश्य उत्तम उपाय है। पंच भी उसतक नहीं पहुँच सकते। परन्तु सभी लोग ऐसा बलिदान नहीं कर सकते। तब क्या भाग जाना चाहिये ? यह तो कायरताका लक्षण है। तब रहा आम तौरपर एक ही इलाज। ऐसे समय उन लोगोंको मार-पीट करके भी अपनी रक्षा जरूर करनी चाहिये। सुव्यवस्थित तंत्रमें यह हक हरएक व्यक्तिका है और होना भी चाहिये।

परन्तु ऐसे अवसरपर क्वचित ही आते हैं। सौमें एक बार शायद ही भले आदमीकी ऐसी कसौटी होती है। साधारण अनुभव तो ऐसा है कि जो शख्स शान्त बैठा रहता है उसीकी कसौटी ईश्वर नहीं करता। यदि हम निष्पक्ष दृष्टिसे देखेंगे तो सौमें निन्यानबे उदाहरण हमें ऐसे दिखायी देंगे जहाँ कि मार-पीटमें दोनों पक्ष थोड़े बहुत जिम्मेवार होते हैं। इन तमाम मिसालोंमें यदि एक पक्ष भी दोषरहित रहनेका निश्चय करे तो रह सकता है और जो उदाहरणोंसे बच जायगा उसीकी जीत समझिये।

हिन्दी-नवजीवन
२६ अक्टूबर, १६२४

सफलताकी कुंजी

मै जब यरोड़ा जेलमे था, तब कुछ उर्दू-साहित्य मेरे हाथ लग गया था। उसके द्वारा इस्लामके हाल जाननेका मुझे अपूर्व लाभ मिला। मौलाना अबुलकलाम आजादका दिया हुआ 'हिन्दुस्तानी शिक्षक' तो मेरे पास था ही। उसे पढ़कर और भी पढ़नेकी मेरी उत्सुकता बढ़ी। श्री श्वेब कुरेशीके पास जो पढ़ने लायक पुस्तकें मालूम हुई, मैंने मंगा ली थी। लेकिन मैं तो बड़ा अधीर हो गया था। इसलिए जेलके पुस्तकालयमें देशी भाषाकी कुछ पुस्तकोंकी तलाश की। आनन्द और आश्चर्यके साथ मुझे मालूम हुआ कि वहाँ उर्दू, मराठी, तामिल, कानड़ी और गुजराती पुस्तकें हैं। यह सच है कि पुस्तकें थोड़ी थीं, लेकिन उस समय मेरे कामके लायक पुस्तकें वहाँ मौजूद थीं। मुझे जो सूची मिली थी उसमें मुसलमान कैदियोंके लिए उर्दू-धार्मिक पाठ्य-पुस्तकोंकी भी कुछ प्रतियाँ थीं। मैं बड़ा प्रसन्न हुआ। मेरे मनमें विचार आया कि इससे केवल मेरा उर्दूका ही ज्ञान न बढ़ जायगा, बल्कि इन पाठ्य-पुस्तकोंके द्वारा मुझे यह भी देखनेका मौका मिला कि मुसलमान बालकोंको क्या-क्या सिखलाया जाता है। दूसरी पाठ्य-पुस्तकमें कितने ही उपयोगी और शिक्षाप्रद पाठ हैं। एक पाठमें पैगम्बरके कुछ जीवन-प्रसंगोंका वर्णन है। पैगम्बर साहबकी नम्रता, उदारता, शत्रु मित्रके प्रति समभाव, क्षमाशीलता, समय सूचकता और दृढ़ता-

के हरका परिचय देनेवाली कथायें उसमें हैं। उदाहरणके तौरपर, जो यहूदी साहूकार पैगम्बर साहबको गाली देनेके लिए और उनकी निन्दा करनेके लिए गया था, उसके साथका उनका वर्ताव लीजिये। हजरत उमरको मालूम हुआ कि उसके मुर्शिदका बड़ा अपमान हो रहा है। वे उसे सहन न कर सके। लेकिन पैगम्बर साहबने अपने मुरीदको बुरा-भला कहकर कहा कि उसकी असली रकम तो दे ही दो और अपने कसूरके प्रायश्चित स्वरूप उसे थोड़ा रकम और ज्यादा दो। इस अपूर्व वर्तावका परिणाम ऐसा हुआ कि जिसकी हजरत उमरने उस वक्त जरा भी आशा न रक्खी थी। कहा जाता है कि उस यहूदीने इस्लाम-धर्म स्वीकार कर लिया। इसी पाठमें एक गैर-मुस्लिमकी बात भी आती है। एक समय पैगम्बर साहबको एक पेड़के नीचे अकेले, बिना हथियार सोते देखकर वह शख्स उनके पास गया और कहने लगा, बोल मुहम्मद! इस वक्त तुम्हें कौन बचा सकता है? उत्तर मिला 'अल्लाह'। वह थर-थर काँपने लगा और उसके हाथसे तलवार गिर पड़ी। पैगम्बर साहबने तलवार ले ली और फिर उससे पूछा, अब तुम्ही कह, तुझे कौन बचा सकता है? उस नास्तिकने काँपते-काँपते उत्तर दिया 'तेरे सिवा कोई नहीं।' पैगम्बर साहबने उसकी जान न ली, उदारतासे उसे माफी बख्शी। वह गैर-मुस्लिम उसी क्षण मुस्लिम बन गया।

शत्रुओं और विरोधियोंके प्रति नम्रता दिखानेके ये एक-दो उदाहरण ही नहीं है। मौलाना शिबलीके लिखे पैगम्बर साहबके जीवन-चरित्रमें ऐसे बड़े-बड़े प्रसंगोंके वर्णन हैं। तबलीग या शुद्धिका तरीका बताते हैं—आदर्श वर्ताव। यही मेरे नम्र विचारके अनुसार सच्चा और उचित धर्मप्रचार है। आदर्श वर्तावके द्वारा प्रचार करना ही निर्दोष, निष्कलंक, अमोघ और अबाधित प्रचार है।

यह दिखानेके लिए मैं लिख नहीं रहा हूँ कि किस तरह प्रचार करना चाहिये। मेरा उद्देश्य तो है—पैगम्बर साहबके जीवनसे सबको शिक्षा ग्रहण करना। यदि हम हार्दिक ऐक्य स्थापित करना चाहते तो पैगम्बर साहबकी क्षमाशीलता और सहिष्णुताका अनुकरण करना होगा।

यदि इस लेखको पढ़नेवाले पाठकोंपर पैगम्बर साहबके जीवन प्रसंगोंका असर न हो तो उन्हें रामायण तथा महाभारतके पन्ने उलटना चाहिये। उसमेंसे उन्हें उदारतायुक्त सहिष्णुताके अनेकों उदाहरण प्राप्त होंगे। हमें विधि-निषेधात्मक सविस्तर प्रस्तावोंकी आवश्यकता नहीं हैं। हमलोग यदि केवल अपने-अपने धर्मके मूल-तत्वोंके अनुसार ही काम करें तो हम समझ जायंगे कि गत दो वर्षोंमें हममेंसे कितने ही लोग धर्म-द्रोही और ईश्वर-द्रोही बने हैं। एक दूसरेपर अपना अधिकार करनेके लिए बलात्कार करके हम स्वयं अपनी आत्माका बलात्कार कर रहे हैं। दोनों कौमें अपना काम करनेके बजाय अपने कर्तव्यका पालन करके अधिकार प्राप्त करनेके बजाय केवल अधिकारपर ही जोर दे रही है और कर्तव्य करना भूल गई है।

भारतवर्ष एक पक्षी है। हिन्दू और मुसलमान उसके दो पंख है। आज

ये दोनों पंख अपंग हो गये हैं और पक्षी आसमानमें उड़कर स्वतंत्रताकी आरोग्य-प्रद और शुद्ध हवा लेनेमें असमर्थ हो गया है । इस प्रकार देशको अशक्त असमर्थ बना देना न हिन्दुत्वका सिद्धान्त है न मुसलमानका । क्या मुसलमानोंको दुर्बल बना देना हिन्दुओंका धर्म है ? क्या हिन्दुओंको दुर्बल बना देना मुसलमानोंका धर्म है ? क्या मुसलमानोंकी मदद न करना हिन्दुओंका और हिन्दुओंकी मदद न करना मुसलमानोंका धर्म है ? क्या धर्म प्राणपोषक न होकर प्राणनाशक, स्वातंत्र्यनाशक और मनुष्यत्व-नाशक बनेगा ?

हिन्दू हो या मुसलमान, पारसी हो या ईसाई, यहूदी हो या दूसरी कोई कौम हो, लेकिन हिन्दुस्तानी कहलानेवाले सबमें सहिष्णुताका होना ही ऐक्य और स्वातंत्र्यकी शर्त है। हिन्दुओंको और मुसलमानोंको यह समझानेके लिए ही 'कामरेड' और 'हमदर्द' फिर शुरू हुए हैं।

'कामरेड' और 'हमदर्द'को शुरू कर मौलाना मुहम्मदअली अपने सिरपर एक बड़ी भारी जिम्मेदारी ले रहें है। किन्तु, खुदासे डरनेवाले हैं। उनको खुदा वे पर भरोसा है। ईश्वर ही हमे प्रगाढ़ अन्धकारसे प्रकाश दिखाता है। इसलिए उनकी प्रार्थनाके साथ मैं भी उनसे यह प्रार्थना करूँगा कि उसका कार्य सफल हो, उनकी कलमसे हमेशा शत्रु-मित्र, सबके लिए उचित शब्द ही निकले, वे खुद और उनके सहायकगण कभी क्रोध या आवेशमे आकर कुछ न लिखें। कामरेड और हम-दर्दमें लिखा एक-एक शब्द अपने देशका और उनके द्वारा मानव जातिके कल्याणके सामर्थ्यसे भरा हुआ हो, और इस बहुधर्मवाले देशमे उनके दोनो अखबार शान्ति और अद्वेषकी प्रगति करावें।

अलीभाई और मेरे दरम्यान जो दिली दोस्ती है उसे जाहिर करनेका एक मौका मैंने नहीं गवाँया है। वे कट्टर मुसलमान होनेका दावा करते हैं और है भी। मैं कट्टर हिन्दू होनेका दावा करता हूँ किन्तु इस बातसे हमारे दरम्यान सच्चा प्रेम और अन्योन्य सम्पूर्ण विश्वास रहनेसे कभी कोई बाधा नहीं हुई। यदि ऐसी दोस्ती कुछ मुसलमानोंमें और हिन्दुओंमे रह सकती है तो हम त्रैराशिकके हिसाबसे यह भी कह सकने हैं कि यदि लाखो हिन्दू और मुसलमान ऐसी दोस्ती करनेका निश्चय करें तो उनमे भी हो सकती है।

हिन्दी—नवजीवन
२ नवम्बर, १९२४

कोहाटकी दुर्घटना

भारत सरकारने कोहाटकी दुर्घटनापर परदा डाल दिया है। वायसरायने मालवीयजीको उत्तर देते समय ही, देशको ऐसे किसी प्रस्तावको सुननेके लिए तैयार कर रखा था जैसा कि आज देशके सामने उपस्थित हुआ है। यह निश्चय सरकारकी

बेरोक प्रभुता और लोकमतके प्रति लापरवाहीका नमूना है। साथही उससे हमारी राष्ट्रकी दुर्बलता भी जाहिर होती है। मेरी दृष्टिमें कोहाटकी यह दुर्घटना हिन्दू-मुस्लिम-अनैक्यका फल उतना नहीं है जितना कि वहांके स्थानीय शासकोंकी नालायकी और निकम्मेपनका है। यदि उन्होंने धन-जनकी रक्षा करनेके अपने प्राथमिक कर्तव्यका पालन किया होता तो यह जो दिन दहाड़े मनमानी खून खराबी शुरू हुई और होती भी रही, सो रोकी भी जा सकती थी। रोमके जलते समय जिस तरह रोमका सम्राट नीरो उसे देखकर नाच-गानमें मशगूल रहा, उसी तरह अधिकारीगण भी उसे वामिजाज देखते रहे। शासक लोग अपने निरुपाय होनेका उज्र नहीं पेश कर सकते। इनके पास यथेष्ट साधन मौजूद थे। उन्हें अपनी ही मजाके योग्य गफलत और घातकताकी वजहसे कुछ उपाय न सूझा हो सो सही, परन्तु अपनी निरुपायतापर उन्हें तो कभी बेचैनी नहीं हुई थी।

अब तो भारत सरकार भी उनके कामोंकी लिपा-पोती करके ओर उनकी लापरवाही बल्कि जुर्मको धीरज और साहस बताकर उनके पापकी हिस्सेदार हो गयी है। आशा तो यह की जा सकती थी कि इसकी पूरी खुलेआम और स्वतंत्र जाँच होगी। किन्तु उसकी जगह जांच तो केवल सरकारी मुहकमेके द्वारा हुई और उसमें भी सर्वसाधारणसे कुछ भी नहीं पूछताछ की गई। इसके फैसलेपर सर्वसाधारणको कुछ भी एतवार नहीं हो सकता। रायबहादुर सरदार माखन सिंहसे लेकर प्राय: तमाम कोहाटियोसे मैं और मेरे मुसलमान साथी मिले। उन्होंने यह स्वीकार कर लिया कि लाला जीवनदासने एक पर्चा जिसमें कि बहुत ही अपमानजनक कविता थी प्रकाशित किया था, किन्तु साथ ही उन्होंने यह भी कहा था कि हिन्दुओंने उसके बदले भरपूर प्रायश्चित कर लिया था और हिन्दुओंने आत्म-रक्षामें तभी गोलियाँ चलायी जब मुसलमानोने खून-खराबी शुरू कर दी थी। तब कोहाटके मुसलमानोकी तरफसे कहा गया था कि उस पर्चेके लिए यथेष्ट प्रायश्चित नहीं किया गया और मुसलमानोंने तभी मार-काट करना और गोलियाँ चलाना शुरू किया जब हिन्दू गोली चला चुके थे और मुसलमानोंकी जानें ले चुके थे। दुर्भाग्यसे कोहाटके मुसलमान रावलपिण्डीमें नहीं आये थे। इसलिए हमें सच्ची बातका पता न लग सका। इस हालतमें भारत-सरकारने जिस प्रकार दोनो जातियोंके सिर दोषका बंटवारा कर दिया है, उसे गलत कहना कठिन है। तो भी उनका निर्णय पक्षपात-हीन या मानने योग्य नहीं कहा जा सकता। कोहाटके हिन्दुओंसे यह आशा नहीं की जा सकती थी कि वे इस निर्णयको मान लेंगे और कबूल कर लेंगे और न इसलिए कि यह मुसलमानोके पक्षमें दिखायी देता है इससे कोहाटके मुसलमानोंको ही तसल्ली होगी। क्योंकि मुसलमानोंके लिए यह बेजा होगा यदि केवल इस कारण कि इस बार सरकार उनकी ओर ढलती-सी दीख पड़ती है वे उसके निर्णयपर तालियां बजावें। कोई भी निर्णय, सबको संतोष तभी दे सकता है जब वह उन हिन्दुओं और मुसलमानोका किया हुआ हो, जिनकी निष्पक्षता सिद्ध हो चुकी है। इसलिए भारत-सरकारका निश्चय दोनों जातियोंके लिए एक प्रकारकी

चुनौती ही है। यह निश्चय हिन्दुओंको अपमानजनक शर्तोंको स्वीकार करके कोहाट जानेका हुक्म देता है और मुसलमानोंको उनके हिन्दू-भाइयोका अपमान करनेका प्रलोभन देता है। मै आशा करता हूँ कि हिन्दू लोग कोहाटके बाहर मान सहित गरीबी-के जीवनको कोहाटमे अपमानके साथ किन्तु सुखी जीवनसे अधिक पसन्द करेंगे। मुझे आशा है कि मुसलमान इतने पुरुषार्थका परिचय देंगे कि वे सरकारको दी हुई इस लालचको नामंजूर करेंगे और अपने उन हिन्दू-भाइयोंका जो वहाँ अत्यन्त ही अल्पसंख्यक हैं, अपमान करनेमे हाथ बटानेसे इन्कार करेंगे। शुरूमें चाहे जिस जातिने भूल की हो और उत्तेजना दिलाई हो परन्तु यह बात तो ठीक ही है कि कोहाट-से हिन्दुओको बाहर भागनेपर मजबूर होना पड़ा। इसलिए अब यह मुसलमानोका कर्तव्य है कि वे रावलपिण्डी जावें और उनके जानोंमालकी पूरी हिफाजतका विश्वास दिलाते हुए, मित्र भावसे उन्हें कोहाट लौटा लावें और कोहाटके बाहरके हिन्दुओंको मुसलमानोके लिए हिन्दुओके पास इस कामके लिए जाना आसान कर देना चाहिये। कोहाटके बाहरके मुसलमानोको वहाँके मुसलमानोपर इस बातपर जोर देना चाहिए कि वे अल्पसंख्यक हैं। हिन्दुओंके प्रति अपने प्राथमिक कर्तव्यको पूरा करें। इस सवालके उचित और यथायोग्य फैसलेपर हिन्दू-मुस्लिम एकताके प्रयत्नोकी सफलता बहुत कुछ निर्भर है।

हम सभी सहयोगी और असहयोगी, जितना शीघ्र सरकारकी रक्षाका भरोसा रखना छोड़ देवे, उतना ही हम लोगोके हकमें यह अच्छा होगा और उतनी ही शीघ्रतासे और चिरस्थायी रूपसे हम इस मसलेको हल कर सकेंगे। इस दृष्टिसे देखनेपर, कोहाटके अधिकारियोकी उदासीनता अच्छा ही फल लावेगी। यदि हिन्दुओंने अधि-कारियोसे सहायता न मांगी होती, यदि वे घरपर ही बिना कोई बचाव किये अड़े रहते या—यदि अपनी, अपने धनकी और अपने आश्रितोकी रक्षामें वे जल-भुनकर खाक हो जाते तो आज इतिहास दूसरे ही ढंगसे और अधिक आदरपूर्ण शब्दोंमें लिखा जाता। यदि सरकार ऐसा प्रस्ताव करे कि कोई उससे, जातीय झगड़ोंमें सहा-यताकी आशा न करे तो मै ऐसे प्रस्तावका स्वागत करूँगा। यदि एक जाति दूसरे जातिकी ज्यादतीसे अपनी रक्षा करना सीख ले, तो हमलोग स्वराज्यके सही रास्ते-पर है, यह कहा जायगा। आत्म-रक्षा और आत्म-सम्मानकी, जिसे हम स्वराज्य ही कह सकते हैं, यह अच्छी तालीम होगी। आत्मरक्षणके दो ढंग हैं। सबसे अच्छा और पुरअसर काम तो है अपने स्थानपर बिना बचाव किये जोखिमको उठा लेना। दूसरा अच्छा किन्तु उतना ही गौरवपूर्ण तरीका है, आत्मरक्षार्थ बहादुरोंमे लड़ना और सबसे अधिक खतरनाक जगहमे भी अपनेको डाल देना। अगर इस तरह मुल-कर कुछ लड़ाइयाँ हो चुकेंगी, तभी वे समझ सकेंगे कि एक दूसरेका सिर फोड़ना व्यर्थ है। इससे उन्हें यह शिक्षा मिलेगी कि इस प्रकार लड़नेसे वे ईश्वरकी सेवा नहीं करते हैं बल्कि शैतानकी सेवा करते हैं।

मैंने रावलपिण्डीमें ठहरे हुए कोहाटके देशत्यागियोंको जो वचन दिया था,

उसीको फिर दोहराकर लेख समाप्त करता हूँ। कोहाटके मुसलमानोंके हार्दिक आमंत्रणके बिना वे यदि कोहाट न लौटेंगे तो मैं पहलेसे ही हाथमें लिए अपने और काम समाप्त करके तुरंत ही मौलाना शौकत अलीके साथ रावलपिण्डी जाऊंगा और दोनो जातियोंका झगड़ा मिटानेका प्रयत्न करूंगा। यदि मुझे इसमें सफलता न मिली तो मैं उनके लिए उचित कामका प्रबन्ध करनेमें सहायता दूंगा।

हिन्दी-नवजीवन
२१ दिसम्बर, १९२४

मारना कब ठीक है ?

देहलीसे लाला शंकरलाल कहते हैं कि ऐसा छपा है कि आपने हिन्दुओंको सलाह दी है कि कुछ खास मौकेपर तुम मुसलमानोंको मार सकते हो—जैसे जब कि वे गायका वध कर रहे हों। मैंने इस रिपोर्टको पढ़ा नहीं है। पर चूंकि यह मामला बहुत ही महत्वपूर्ण (अहम) है। इसलिए इसके बारेंमे बिलकुल ठीक-ठीक और निश्चित बात नहीं कही जा सकती। मेरा यह मत है कि सारी दुनिया या मुसलमानोंसे झगड़ा मोल लेकर गायकी रक्षा करना हिन्दू-धर्मका अंग नहीं है। अगर हिन्दू लोग इस किसमकी कोई कार्रवाई करेंगे तो वे जब्रन दूसरेसे अपना मत मनवानेके अपराधी (कुसूरवार) होंगे। उनका कर्तव्य सिर्फ इतना ही है कि वे गायकी अच्छी तरह प्रेमके साथ लालन-पालन करे। पर मुझे यहाँसे चलते-चलते यह भी कह देना चाहिये कि हिन्दू इस कर्तव्यका पालन करनेसे बहुत गफलत करते हैं। हिन्दू लोगोंके पास सारी दुनियाको गो-रक्षाके पक्षमे (हक) कर लेनेका सिर्फ एक ही उपाय (तदबीर) है, खुद उन्हें सब प्रकारसे गो-रक्षाका पदार्थ-पाठ पढ़ावें। लेकिन हाँ, दुनियाका हर शख्स और इसलिए हर हिन्दू इस बातके लिए बाध्य (मजबूर) है कि वह अपनी जान देकर भी अपनी माँ, बहन, बीबी और लड़की और सच पूछिए तो जिन-जिनकी रक्षाका भार खासतौरसे उसपर है, सबकी हिफाजत करे। मेरा धर्म मुझे शिक्षा देता है कि औरोंकी रक्षाके लिए अपनी जान दे दो। दूसरेको मारनेके लिए हाथ तक न उठाओ। पर मेरा धर्म मुझे यह कहनेकी भी छुट्टी देता है कि ऐसा मौका पेश हो कि एक ओर अपने जिम्मेके लोगोंको या कामको छोड़कर भाग जाने या हमला करनेवालेको मारनेमेंसे किसी बातको पसन्द करना हो तो यह हर शख्सका कर्तव्य है कि वे मारते हुये वहीं मर जांय, अपनी जगहको छोड़कर भागे हरगिज नहीं। मुझे ऐसे हट्टे-कट्टे पछत्ते लोगोंसे मिलनेका दुर्भाग्य प्राप्त हुआ है, जो सीधे सरल भावसे आकर मुझसे कहते हैं और जिसे मैंने बड़ी शरमके साथ सुना है कि बदमाश मुसलमानोंको हिन्दू अबलाओंपर बलात्कार करते हुए हमने अपनी आँखों देखा है। जिस समाजमें जवाँमर्द लोग रहते हो वहाँ बलात्कारकी आँखो देखी गवाहियां देना प्रायः असंभव (गैरमुमकिन) होनी चाहिये। ऐसे

जुर्मकी खबर देनेके लिए एक भी शख्स जिन्दा न रहना चाहिये। एक भोला-भाला पुजारी जो कि अहिंसाके मतलबको नहीं जानता था, मुझसे खुशी-खुशी आकर कहता है, साहब! जब हुल्लड़बाजोंकी भीड़ मन्दिरमें मूर्ति तोड़नेके लिए घुसी तो मैं बड़ी होशियारी करके छिप रहा। मेरा मत है कि ऐसे लोग पुजारी होनेके बिल्कुल लायक नहीं हैं। उसे वहीं मर जाना चाहिये था। तब अपने खूनसे उसने मूर्तिको पवित्र कर दिया होता और उसे यह हिम्मत न थी कि अपनी जगहपर बिना हाथ उठाये और मुँहसे यह प्रार्थना करते हुए कि 'ईश्वर इस खूनीपर रहम कर!' मर मिटे तो उस हालतमें उन मूर्ति तोड़नेवालोंका संहार करना भी उसके लिए ठीक था। परन्तु उसका अपने इस नश्वर शरीरको बचानेके लिये छिप रहना मनुष्योचित न था। सच बात यह है कि कायरता खुद ही एक सूक्ष्म और इसलिए भीषण प्रकारकी हिंसा है और शारीरिक हिंसाकी अपेक्षा उसे निर्मूल करना बहुत ही मुश्किल है। कायर मनुष्य हरगिज अपनी जानको जोखमोंमें नहीं डालता। पर जो शख्स दूसरेको मारता है वह कभी-कभी उसे जोखमोंमें डालता है और एक अहिंसा—परायण मनुष्यकी जान तो हमेशा उस शख्सके हवाले ही रहती है जो उसे लेना चाहता हो। क्योंकि वह जानता है कि इस शरीरके अन्दर बसनेवाली आत्माका नाश कभी नहीं होता और यह हाड़-मांसका शरीर क्षण भंगुर है। मनुष्य जितना ही अधिक अपनी जान देता है उतना ही अधिक वह उसे बचाता है। इस तरह अहिंसाके लिए युद्धके सैनिकोंसे बढ़कर जवांमर्दकी जरूरत होती है। गीता कहती है—सिपाही वह है जो खतरेमें पीठ दिखाना नहीं जानता।

हिन्दी-नवजीवन
८ जनवरी, १९२५

उलटा रास्ता

जमैयतुल-तबलीग इस्लामने मुझे अपनी बैठकमें हाल ही पास हुए नीचे लिखे प्रस्तावका अनुवाद भेजनेकी कृपा की है।

"यह निश्चय किया गया है कि कोहाटमें हाल ही हुए दंगोंके समय जो शोचनीय घटनाएँ हुई हैं और जिनके फलस्वरूप वहाँके लोगोंके जानो-मालको निहायत नुकसान पहुंचा है, उसकी जिम्मेदारी उन लोगोंपर है, जिन्होंने कोहाटमें ऐसे पर्चे शाया किये जो जोश और गुस्सा दिलानेवाले थे और जिनमें इस्लामपर बुरी तरह हमला किया गया था तथा मुसलमानोंके जजबातको गहरी चोट पहुंचायी थी। जिन हिन्दुओंने गोलियाँ चलायीं और मुसलमानोंकी जानें लीं वे भी उसके बादके हालातको और नाजुक बना देनेके जिम्मेदार हैं। यह जमैयत उन तमाम कोहाटके बाशिन्दोंके साथ, बिला जात पाँतके भेद भावके हमदर्दी जाहिर करती है, जिनके इन दंगोंके दरम्यान जानोमाल जाया हुए हैं। एक महत्त्वकी जमातकी हैसियतसे यह जमैयत महात्मा गांधीको तथा दूसरे राजनैतिक नेताओंको यह बताना चाहती है कि जबतक मजहब और मजहबोंके प्रवर्तकों तथा नारहनी

हलचलोंके नेताओंपर व्याख्यान और लेखोंके द्वारा किये जानेवाले हमले पूरी तरह न बन्द किये जायगे तबतक हिन्दुस्तानमें हिन्दू मुस्लिम एकताकी कायमी और पुख्तगी हमेशा गैरमुमकिन होगी।"

मैं इस जमैयतको इन प्रस्तावपर बधाई देनेमें असमर्थ हूँ। अभीतक कोहाटकी दुर्घटनाकी कोई जाँच निष्पक्ष रूपसे नहीं हुई है। फिर भी ऐसा मालूम होता है कि दोनो पक्षके लोगोंने अपना-अपना मत बना डाला है। क्या यह बात साबित हो चुकी है कि कोहाटकी तमाम शोचनीय दुर्घटनाओंकी जिम्मेवारी उस या उन लोगोंपर है जिन्होंने कोहाटमें जोश और गुस्सा पैदा करनेवाले वे पर्चे छापे? क्या वह बात भी साबित हो चुकी है कि 'जिन हिन्दुओंने गोलियाँ चलाईं और मुसलमानोंकी जाने लीं वे भी उसके बाद हालातको नाजुक बना देनेके जिम्मेदार हैं। यदि पूर्वोक्त दोनो बातें असन्दिग्ध रूपसे साबित हो गयी हों तो उनमें या वहांके हिन्दू अपनी जानो मालकी हानिके लिए जमैयतकी ओर से प्रकाशित की गयी किसी तरहकी हमदर्दीके मुस्तहक नहीं हैं। क्योंकि उनकी करनीका फल तो उन्हें मिल गया। ऐसी अवस्थामें जमैयतका हिन्दुओंके साथ हमदर्दी जाहिर करना असंगत है। और जमैयतके मुझे और दूसरे राजनैतिक नेताओंको यह दिखानेमें उसकी मन्शा क्या है कि 'जबतक मजहब और मजहबोंके प्रवर्तकों तथा मजहबी हलचलके नेताओं-पर व्याख्यान या लेखोंके द्वारा किये जानेवाले हमले बन्द न किये जाँयगे तबतक भारतमें हिन्दू-मुस्लिम-एकताकी कायमी और पुख्तगी हमेशा गैर-मुमकिन होगी'। जमैयतका ख्याल अगर सही है तो क्या एकताकी असंभावना ऐसी बात नहीं जिस पर राजनितिक नेताओंके साथ खुद उसका भी ध्यान जाना चाहिये? और क्या इसलिये कि कुछ व्यक्ति मजहबपर हमला करते हैं, हिन्दू-मुस्लिम-एकता जरूर ही असम्भव होनी चाहिये? जमैयतके मतानुसार एक अविचारी हिन्दू या अविचारी मुसलमान हिन्दू-मुस्लिम-एकताको असंभव बना देनेके लिये काफी है। सद्भाग्यसे हिन्दू-मुस्लिम एकता धार्मिक और राजनैतिक नेताओंपर अवलम्बित नहीं हैं। उसका आधार है कि दोनों जातियोंकी जनताके उच्च स्वार्थ भावपर। हमेशाके लिये उन्हें कोई गुमराह नहीं कर सकता। पर मैं आशा करता हूँ कि जमैयतका मूल प्रस्ताव इतना खराब न होगा जितना कि यह अनुबाद मालूम होता है

हिन्दी-नवजीवन

२६ जनवरी, १९२५

एकताकी ओर

सर्वदल परिषद्की समिति परिषद्के द्वारा सौंपे अपने कामके निमित्त बैठी थी। उसने इस प्रश्नपर विचार करनेके लिये कोई ५० सज्जनोंकी एक उपसमिति बनाई। उपसमितिने एक छोटी समिति बनाई और उसके जिम्मे यह काम दिया गया कि वह स्वराज्यकी ऐसी योजना तैयार करे जो सबको मंजूर हो सके और उसकी

चर्चाकी रिपोर्ट उपसमितिको करे। विदुषी बेसेण्टको जो इस छोटी समितिमें अपनी सदाकी तत्परता, एकाग्रता और उत्साहके साथ काम कर रही हैं देखकर युवकों और युवतियोंको शर्म आनी चाहिये। परन्तु हिन्दू-मुस्लिम सवालपर स्वभावतः ही ज्यादह ध्यान एकाग्र हुआ है। इसलिये नहीं कि वह मुझ जैसे व्यक्तियोंको छोड़कर औरोंके नजदीक दरअसल ज्यादह महत्वपूर्ण है, बल्कि इसलिये कि उसकी वजहसे स्वराज्यका रास्ता ही बन्द हो रहा है। इस समितिके लिये बाजाब्ता रूपसे काम करना मुश्किल होने लगा। इसलिये यह जरूरी मालूम हुआ कि समितिकी अपेक्षा यों ही आपसमें मिलकर चर्चा करें जिससे दिल खोलकर बातें हो सकें और उसमें और भी कम लोग शरीक हों। तदनुसार हकीम साहबके मकानमें हर जातिके कुछ सज्जन आपसमें मिले। उसका नतीजा पंडित मोतीलालजी नेहरूने संक्षेपमें प्रकाशित किया ही है। हाँ, मैं भी मानता हूँ कि चिन्ता या निराशाका कोई कारण नहीं है, क्योंकि सब लोग इस सवालको हल करनेके फिक्रमें ही हैं। कुछ लोग आज ही इसका फैसलाकर लेना चाहते है, कुछ कहते हैं अभी वक्त नहीं आया है। कुछ तो इसे हल करनेके लिये कुछ छोड़ देनेके लिये तैयार हैं। कुछ होशियारीसे कदम रखना चाहते हैं और जबतक उन्हें उनकी कमसे कम और अपरिहार्य बातें न मंजूर हो जायँ तबतक इन्तजार करना चाहते हैं। पर इस बातपर सब लोग सहमत हैं कि इसका हल हो जाना स्वराज्यके लिए परमावश्यक है। और स्वराज्य तो सभीको दरकार है, इसलिए उसका उपाय उन लोगोंकी पहुंचके बाहर न होनी चाहिए जो इसकी तलाशमे लगे हुए हैं। जिस दिन हमलोग आखिरी बार मिले और फिर २८ फरवरीको इकट्ठा होनेका निश्चय किया, उस दिन इस एकताकी संभावना जितनी थी उतनी पहले कभी न हुई थी। इस बीच हर शख्स दोनोंके मिलापके नये-नये सूत्र खोजेंगे।

जातिगत प्रतिनिधित्वके विषयमें लोग मेरा मत जानना चाहेंगे। मैं तहेदिलसे इसके खिलाफ हूँ। परन्तु मै तबतक किसी भी बातको मान लेनेको तैयार हूँ जबतक उससे सुलह बनी रहेगी और वह दोनो जातियोंके लिए सम्मानपूर्ण हो। पर अगर दोनों जातियोंकी ओरसे पेश की हुई तजवीजपर मिलाप न हो तो मेरा सुझाया उपाय काम दे सकता है। पर अभी मुझे उसकी चर्चा करनेकी जरूरत नहीं है। मैं आशा करता हूँ कि दोनो जातियोके जिम्मेदार लोग, चाहे खानगीमें बातें करके अथवा सर्व-साधारणमें अपनी रायें जाहिर करके एकताको साधनेमें कोई घात न उठावेंगे। मैं यह भी आशा रखता हूँ कि अखबारवाले भी कोई ऐसी बातें न लिखेंगे, जिससे दल-विशेषको उद्वेग हो और जहाँ वे अच्छी तरह सहायता न कर पावें वहाँ निश्चय-पूर्वक चुप रहेंगे।

हिन्दी-नवजीवन
१ फरवरी, १९२५

कोहाटी हिन्दू

मैं जानता हूँ कि पाठक इस सप्ताहके 'यंग-इण्डिया'के पन्नोंमें, कोहाटकी पिछले सितम्बरकी शोकमय घटनाके विषयमें मौ० शौकत अलीके और मेरे निर्णयोंको खोजेंगे। पर खेद है कि जिज्ञासुओंको उसे देखकर निराश होना पड़ेगा। क्योंकि मौ० शौकत अली मेरे साथ नहीं हैं और उन्हें दिखाये बिना इस विषयमें कोई बात छापना उचित न होगा। फिर भी मैं पाठकोंसे इतना तो कही देता हूँ कि मैंने जो राय कायम की है उनपर पं० मोतीलालजी, पं० मालवीयजी और हकीम साहब अजमल खाँ, डाक्टर अनसारी और अलीभाइयोंसे भी चर्चा कर ली है। साबरमती आते हुए रास्तेमें मैंने उन्हें अभी लिखकर खतम किया है। तुरन्त ही वे मौलाना शौकतअलीको भेजी जायंगी और उन्हें मौलाना शौकतअलीकी पुष्टि अथवा कमो-बेशीके साथ प्रकाशित करनेकी आशा रखता हूँ। परन्तु हमारे निर्णयोंको छोड़कर मैं हिन्दुओंको फिर यही सलाह देता हूँ कि यदि मैं उनकी जगह होता तो जबतक बिना सरकारके दखल दिये मुसल्मानोंसे इज्जतके साथ सुलह न हो, मैं वहाँ न जाता। यह इस मौकेपर मुमकिन नहीं है; क्योंकि बदकिस्मतीसे मुस्लिम कमेटीके लोग जो कि कोहाटके मुसलमानोंकी रहनुमाई कर रहे हैं, न तो हमसे मिलने आये और न आना जरूरी समझा है। हाँ, मैं देखता हूँ कि हिन्दुओंकी हालत नाजुक है। वे अपनी मिल्कियतको गँवाना नहीं चाहते। मौलाना साहब और मैं दोनों सुलह करानेमें कामयाब न हुए। हम तो कोहाटके खास-खास मुसलमानोंको बातचीतके लिए भी बुलानेमें समर्थ न हो सके और न मैं यही कह सकता हूँ कि हम आगे भी जल्दी सफल हो सकेंगे। ऐसी हालतमें हिन्दुलोग जो मुनासिब समझें करे। हमारे नाकाम-याब होते हुये भी मैं तो सिर्फ उन्हें एक ही रास्ता बता सकता हूँ, जबतक मुसलमान आपको इज्जत और गौरवके साथ न ले जांय कोहाट न लौटो। पर मैं जानता हूँ कि यह सलाह देकर सिवा उन लोगोंको जो कि अपने पैरोंपर खड़े रह सकते हैं और जिन्हें किसीकी सलाहकी जरूरत नहीं मैंने औरोंका कष्ट कुछ ज्यादह कम नहीं किया है। और कोहाटके आश्रितोंकी हालत भी ऐसी अच्छी नहीं है। मैंने अपने विचार पं० मालवीयजीतक पहुंचा दिये हैं। वही शुरुआतसे उनके पथ-दर्शक रहे हैं और उन्हें उन्हींकी सलाहके अनुसार चलना चाहिए। लालाजी पिण्डी आये थे, पर बदकिस्मतीसे वे बीमार होगये। मेरी अपनी राय जो बहुत विचारके बाद मैंने कायम की है अपने वक्तव्यमें दे दी है जो कि मौ० शौकतअलीके आस-पास पहुंच गया होगा। मगर यह बात तो मैं पहलेसे कबूल कर लेता हूँ कि उससे उन्हें कुछ भी तसल्ली न मिलेगी। मुझे तो एक टूटी नाव ही समझिये। वह भरोसा करने लायक नहीं।

परन्तु इस बारेमे कि वे जबतक कोहाटके बाहर हैं क्या करें, मैं उन्हें निःसंकोच सलाह दे सकता हूँ। मैं यह कहे बिना नहीं रह सकता कि हट्टे-कट्टे और मजबूत हाथ-पैर रखनेवाले लोगोंका दानकी रकमोंपर बसर करना, अपने सत्वको गवाँना है। उन्हें चाहिए कि वे खुद अथवा वहाँके लोगकी मददसे कुछ न कुछ काम अपने लिये ढूंढ़ ले। मैंने उन्हें धुनकने कातने और बुननेका काम सुझाया है। पर वे कोई भी अपनी पसंदका अथवा जो उन्हें दिया जाय काम ले सकते हैं। मेरे कहनेका भाव यह है कि किसी भी स्त्री-पुरुषको जो काम करनेकी ताकत रखता है, दानपर पेट न भरना चाहिए। एक सुव्यवस्थित राज्यमे काम करनेकी इच्छा रखनेवाले हरएक शख्सके लिए काफी काम हमेशा होना चाहिए। आश्रित लोगोंको जबतक कि राष्ट्र उनका भरण-पोषण कर रहा है अपनी एक-एक मिनटका अच्छा हिसाब देना चाहिए। 'निकम्मा आदमी शैतानको निमंत्रण देता है' यह महज लड़कोंकी कहावत नहीं है। इसमे काफी सत्यांश है और उसकी गवाही हर शख्स दे सकता है। इसमें न तो गरीब-अमीरका न ऊँच-नीचका भेद-भाव है। सबपर एकसी मुसीबत छाई है, सब मुसीबतके मारे साथ हैं और धनी और खुशहाल लोगोंको तो खुद आगे बढ़ कर अच्छी तरह मेहनत करके मिसाल पेश करनी चाहिए, फिर चाहे वे खाना-दाना न भी लेते हों। यदि एक राष्ट्रके लोग मुसीबतके दिनोंमें ऐसा काम करना जानते हों जिससे उन्हें सहारा मिले तो इससे कितना भारी लाभ होगा? यदि ये आश्रित लोग धुनकना, बुनना या कातना जानते तो इनकी जिन्दगी इस हालतसे कहीं बेहतर और ऊँची रही होती। उस हालतमे आश्रितोंका यह पड़ाव, एक मधु-मक्खियोंका छत्ता ही बन गया होता जिसमे वे जितने दिनतक चाहते रह पाते। यदि वे लोग इसी समय न जानेका निश्चय करें तो अब भी वक्त नहीं गया है। सूखा आटा दाल देना गलती है। हाँ, व्यवस्थापक लोगोंके लिये ऐसा करनेमे आसानी है। पर इससे आश्रित लोगोंमें बड़ी बेतरतीबी फैलती है और इसमे चीजें बहुत बरबाद होती हैं। उन्हें चाहिए कि वे सिपाहियोंकी तरह संयम और नियम-पालन अख्तियार करें—नियमसे उठें, नियमसे नहावें, धोवें, नियमसे ईश्वर भजन करें, नियमसे खाना खावें, नियमसे काम करें और नियमसे सोवें। कोई वजह नहीं मालूम होती कि क्यों उनके अन्दर रामायणका अथवा और किसी धर्मपुस्तक आदिका पाठ न हो। इन सबके लिए विचार करनेकी, चिन्ता रखनेकी, ध्यान देनेकी और तत्परता रखनेकी बड़ी जरूरत है। ऐसा करनेपर यह मुसीबत एक आनन्दमय घटनाके रूपमे बदली जा सकती है।

हिन्दी-नवजीवन
१२ फरवरी, १९२५

कानपुरमें

डा० अब्दुस्समाद लिखते हैं—

"इसी २ तारीखको कानपुरमें एक झगड़ा हो गया। कानपुरमें महासभाकी आगामी बैठक होनेवाली है। इसलिये मुनासिब है कि इसकी असलियत आपको मालूम हो जाय और इसकी ताईद यहाँकी महासभाकी समितिके सभापति डा० मुरारीलालजीकी तरफसे भी हो जाय तो बेहतर हो। कि आप इसे 'यंग-इण्डिया' में प्रकाशित कर दें। अंग्रेजी अखबारोंमें इसका जो वर्णन छपा है वह बिल्कुल भ्रम पैदा करनेवाला है। आशा है आप इसकी असलियत जानकर इसे प्रकाशित करेंगे।

इन दिनों स्वामी दयानन्दका वार्षिकोत्सव मनाया जा रहा है। भजन-मण्डलियोंके सहित जलूस शहरमें घूमते रहे हैं। २ फरवरीको एक मण्डली मेस्टन रोडसे जो कि एक चौड़ी सड़क है, प्रधान कार्यालयकी ओर आरही थी। वह एक भजन गा रही थी जो कि बहुत ही आपत्तिजनक था।

एक पिछले मौकेपर भी उन्होंने एक ऐसा ही भजन गाया था। पर इस बार जब कि वे सडकका एक बड़ा हिस्सा तय कर चुके थे कुछ नवजवान मुसलमानोंने उनकी ध्वजाएँ छीन लीं और हमला किया। उन लोगोंने भी जवाबमें प्रहार किया। पर शुरुवातकी थी मुसलमान युवकोंने। तुरतही आर्यसमाजके नेता वहाँ आ पहुचे, क्योंकि उनका दफ्तर नजदीक था। भजनकी बात उनसे कहनेपर उन्होंने अफसोस जाहिर किया और यह बात तय पाई कि अब आगे चुने हुए भजन ही गाये जायँगे और तब तमाम मण्डलियोंका संयुक्त जुलूस शहरमें घुमा। समाजियोंके अनुरोधपर कुछ (एक या ज्यादह, मैं ठीक नहीं कह सकता) मुसलमान जुलूसके साथ रहे और सब काम शान्तिपूर्वक समाप्त हुआ। सारा किस्सा यही है।

अब इस शहरके हिन्दू-मुस्लिम ताल्लुकातके बारेमें दो शब्द लिखे देता हूँ। जब कि सारे उत्तरी भारतमें तनाजा छा रहा था डा० मुरारीलाल तथा कुछ मुसलमानोंने अपने मनमें यह अहद कर लिया था कि कानपुरमें तो ये दर्दनाक वाकया हरगिज न होने पावे। एक एकता-मण्डल कायम किया गया था, उसके द्वारा थोडा काम हुआ। ज्यादा काम तो उन कुछ कार्यकर्त्ताओंने किया जिन्होंने झगड़ेके किसी कारणके पैदा होते ही तुरत उसे अपने हाथोंमें ले लिया। नतीजा यह हुआ शहर सब तरहसे बच रहा, हालाँकि कुछ आर्य-समाजी कुछ न कुछ अपनी करामात बतलाते रहे और उनके भजनों तथा व्याख्यानोंके बदौलत शान्तिमें थोडा-बहुत खलल पडता रहता है। अभी महासभाको दस महीने हैं और इस दरम्यान यहाँ कोई दुर्घटना न होनी चाहिये जिससे कि हमारी सभा सचमुच राष्ट्रीय हो। मैं आशा करता हूँ कि आप इस शहरके राष्ट्रीय कार्य-कर्त्ताओंको ऐसी प्रेरणा देंगे कि जिससे इस शहरके जीवनमें ऐसी घटनाओंका होना असम्भव हो जाय।"

गांधीजी

मैंने इसकी ताईदके लिए मुरारीलालको नहीं लिखा क्योंकि डाक्टर अब्दुस्समादका वक्तव्य खुद ही निर्लेप और निर्दोष होगा तो उसे मैं खुशीसे प्रकाशित करूँगा। झगड़े तो अच्छे-अच्छे व्यवस्थित समाजमे भी हो जाते हैं। पर झगड़ेके बाद दोनों तरफके लोगोने जिस सद्भावसे काम लिया वह सराहनीय है। अब रही कुछ आर्य-समाजियोंके इल्जामकी बात, सो मैं नहीं कह सकता, वे कहाँतक उसे कबूल करेंगे। मैं आशा करता हूँ कि कानपुरके हर समाजके लोग अधिकसे अधिक संयम रखनेका और उपद्रवी लोगोंको अपने काबूमे रखनेका भरसक प्रयत्न करेंगे एवं हमेशा अपनेसे भिन्न २ धर्म-मत या राजनैतिक विचार रखनेवाले प्रतिस्पर्धियोंके प्रति उदारता रखनेके लिए सदा तैयार रहेंगे।

हिन्दी-नवजीवन
१२ फरवरी, १९२५

❀

हिन्दू-मुस्लिम प्रश्न

एक सज्जन लिखते हैं—

"आपने 'यंग इंडियामें' एक पत्र-लेखककी इस पुकारको स्थान दिया है कि तालीमके बारेमे मुसलमान लोग बहुत पिछड़े हुए हैं। पर मैं अब आपके सामने एक ऐसी पुकार पेश करना चाहता हूँ कि जो तालीमवाली पुकारसे भी ज्यादह बेतुकी है। वह यह है कि हिन्दुस्तानमें मुसलमानोंकी संख्या कम है। कितनी ही बार यह बात कही गई है और कितनी बार राजनैतिक बातोंमे यह दलील चुपचाप मान ली गई है। पर क्या दरअसल उनकी अल्पसंख्या है? अगर उसके सिर्फ एक ही फिरके, सुन्नीको ले लें तो क्या वह हिन्दुओंकी किसी भी एक फिरकेकी सख्यासे बढकर नहीं है? बल्कि भारतके ईसाई, पारसी, सिख, जैन, यहूदी, बौद्ध और किसी भी धर्मवालोंसे ही बढकर नहीं हैं? और क्या यह बात सच नहीं है कि हिन्दूलोग कितनी ही जातियों और फिरकोंमें बटे हुये हैं जो कि सामाजिक बातोंमें उतने ही एक दूसरेसे दूर हैं जितने कि मुसलमान गैर-मुसलमानसे? अच्छा तो फिर अछूतोंका क्या होगा? क्या उनकी तादाद 'मुस्लिम अल्पसख्या' के बराबर नहीं है? हिन्दुस्तानके मुस्लिम जब पृथक और विशेष व्यवहार, रक्षा और गारन्टी चाहते हैं तब अछूतोंका दावा कितना मजबूत होगा? वे तो सदियोंसे दलित-पीड़ित होते आये हैं। उनकी अवस्थासे तो किसी भी मुसलिम या स्पृश्य लोगोंकी अल्पसंख्याके 'भविष्यकी आशंका' की तुलना हो सकती है। साक्ष्यके तौरपर वायकोम सत्याग्रह, पालघाटका झगड़ा और बम्बईके टूक-टूक कर देनेकी प्रतिज्ञा करनेवालोंको लीजिए। उन आदिम जातियोंका तो मैं यहां जिक्र ही नहीं करता हूँ जिनकी गिनती हिन्दुओंमे की जाती है, तब क्या अकेले मुसलमानोंकी ही अल्पसख्या है?"

यह पत्र सरगर्मीसे भरा हुआ है, इसलिये इसे छापा है। फिर भी मेरी, एक निष्पक्ष निरीक्षककी दृष्टिसे लेखककी वह दलील लचर है जिसके द्वारा वे यह दिखलाना चाहते हैं कि हिन्दुस्तानमें मुसलमानोंकी अल्पसंख्या नहीं है। लेखक इस बातको भूल जाते हैं कि दावा तो सारे मुसलमानोंका सारे हिन्दुओंके खिलाफ है। दही और मही दोनों नहीं खा सकते। यद्यपि हिन्दूओंके आपसमें बहुत कुछ दलावली है, तथापि वे अकेले मुसलमानोंका ही नहीं तमाम अ-हिन्दुओंका कम-ज्यादा एक होकर मुकाबिला कर रहे हैं। मुसलमान भी आपसमें अनेक दलोंमें विभक्त हैं, तो भी कुदरती तौरपर तमाम गैर-मुस्लिमोंका मुकाबिला एकदिल होकर रहे हैं। हकीकतको आँखोंके ओट करके या अपनी तजवीजोंके मुआफिक उनको बैठाकर हम कभी इस सवालको हल नहीं कर सकते। हकीकत यह है कि मुसलमान सात करोड़ हैं और हिन्दू बाईस करोड़। हिन्दुओंने कभी भी इस बातको नामंजूर नहीं किया। अब हम यह भी देखें कि मामला दरअमल क्या है? अल्प संख्यक लोग, बहुसंख्यक लोगसे हम महज इसलिये नहीं डरते कि उनकी बहुसंख्या है। मुसलमान हिन्दुओंकी बहुसंख्यासे इसलिये डरते हैं कि उनका कहना है, हिन्दुओंने हमेशा ही हमारे साथ इन्साफ नहीं किया है, हमारे मजहबी जजबातकी इज्जत नहीं की है और उनका कहना है कि हिन्दू लोग तालीम और धन-दौलतमें हमसे बढ़े-चढ़े हैं। ये बातें ऐसी ही हैं या नहीं, इस सवालसे हमें यहाँ कोई मतलब नहीं। हमारे लिये इतना ही काफी है कि मुसलमान इस बातपर विश्वास रखते हैं और हिन्दुओंकी बहुसंख्यासे डरते हैं। मुसलमान लोग इस डरका इलाज कुछ अंशोंमें पृथक निर्वाचन और विशेष प्रतिनिधित्वके द्वारा कुछ जगहोंमें तो अपनी संख्यासे भी ज्यादा करना चाहते हैं। हिन्दू लोग तो मुसलमानोंकी अल्पसंख्याको मानते है पर उनके इन्साफ न करनेके इलजामसे इन्कार करते हैं। इसलिये इसकी तसदीक करनेकी जरूरत है। मैंने हिन्दुओंको इस कथनका खण्डन करते हुये नहीं देखा है कि वे तालीम और धन-दौलतमें मुसलमानोंसे बढ़कर हैं।

इधर हिन्दू भी मुसलमानोंसे डरते हैं। उनका कहना है कि जब कभी मुसलमानोंके हाथमें हुकूमत आयी है उन्होंने हिन्दुओंपर बहुत-बहुत ज्यादतियाँ की हैं और कहते हैं हालांकि हमारी बहुसंख्या है तो भी मुट्ठी भर मुसलमानोंके हमले हमारे छक्के छुड़ा देते हैं। हिन्दुओंके सामने उन पुराने तजुर्बोंका खतरा हमेशा खड़ा रहता है और अग्रगण्य मुसलमानोंकी नेकनियति होते हुये भी वे मानते हैं कि मुसलमान जनता किसी भी मुसलमान गुण्डेका साथ दिये बिना नहीं रहेगी। इसलिए हिन्दू-मुसलमानोंकी कमजोरीके उज्रको नामंजूर करते हैं और लखनऊके ठहरावके तत्वको व्यापक करनेके विचारको दिलमें स्थान देनेसे इन्कार करते हैं। यहाँ भी यह सवाल नहीं उठता कि हिन्दुओंका डर कहाँतक ठीक है? हमें यही मानकर चलना होगा कि यह वस्तुस्थिति है। किसी भी जातिके या नेताको नीयतको बुरा बताना अनुचित होगा। मालवीयजी या मियाँ फजलीहुसैनपर अविश्वास

करना मानों इस प्रश्नके निपटारेको स्थगित करना है । ऐसो हालतमें अक्लमन्दी इसी बातमें है कि तमाम छोटे-छोटे सवालोंको एक ओर रख दें और स्थिति जैसी कुछ हो उसका मुकाबिला करें और न कि अपनी कल्पनाके अनुसार चाही हुई स्थितिका ।

इसलिये मेरी रायमें लेखकने, चाहे अनजानसे ही हो अपने पक्षको जरूरतसे ज्यादा सिद्ध करनेका प्रयत्न किया है । हाँ, उनका यह कहना सच है कि खुद हिन्दू ही परस्पर विरोधी दलोंमे विभक्त हैं । उनमें ऐसे दल है जो अपने लिये अलग-अलग व्यवहारका दावा लेकर खड़े होते हैं। उनका यह भी कहना ठीक है कि पृथक प्रतिनिधित्वके लिये मुसलमानोकी अपेक्षा अछूतोका पक्ष कहीं मजबूत है। लेखकने मुसलमानोंकी अल्पसंख्याकी हकीकतके विरोधमें आवाज नहीं उठाई है। उन्होंने यह दिखलाया है कि लखनऊके ठहरावके सिद्धान्तका विस्तार करनेसे असंख्य उप-जातियों और दूसरी जातियोंके लिये जातिगत प्रतिनिधित्वका सवाल खड़ा हुए बिना न रहेगा। ऐसा करना स्वराज्यके शीघ्र आगमनको अनिश्चित समयतक स्थगित करना है। लखनऊ ठहरावके सिद्धान्तका विस्तार करना या उनको कायम तक रखना भयावह है । मुसलमानोके दुःख दर्दोंपर ध्यान न देना भी मानों उन्हें हम महसूस ही न करते हो । स्वराज्यको मुल्तवी करना है। ऐसी हालतमें स्वराज्यके प्रेमी तबतक दम नहीं ले सकते जबतक कि इस सवालका निपटारा न हो जाय जैसे एक ओर मुसलमानोकी आशंका दूर हो जाय और दूसरी ओर स्वराज्यके लिये भी खतरा न रह जाय ।

ऐसा निपटारा असंभव नहीं है। एक तो यही सुन लीजिये मेरी रायमें मुसलमानोके इस दावेको, कि बंगाल और पंजाबमें उसकी बहुमति उनकी संख्याके अनुसार रहे माने बिना नहीं रह सकते। उत्तर-पश्चिमके डरके कारण इस दावेको रोक नहीं सकते। हिन्दू अगर स्वराज्य चाहते हो तो उन्हें जोखिमके मौकेके सामने सिर देना चाहिये। जबतक बाहरी दुनियाँसे डरते रहेंगे तबतक हमें स्वराज्यका ख्याल छोड़ देना चाहिये। पर स्वराज्य तो हमे लेना ही है। इसलिये मैं मुसलमानोंके न्यायोचित दावेका विचार करते समय हिन्दुओकी डरकी दलीलको खारिज करता हूँ। अपनी भावी सहीसलामतीको खतरेमे डालकर भी हमें इन्साफ पर कायम रहनेकी हिम्मत होनी चाहिये ।

मुसलमान जो पृथक निर्वाचन चाहते हैं वह पृथक निर्वाचनके लिये नहीं बल्कि इसलिये कि वे धारा-सभामण्डलमे तथा दूसरे निर्वाचनसे खुद अपने सच्चे प्रतिनिधि भेजना चाहते हैं। यह तो कानूनके जरिये अनिवार्य करनेकी अपेक्षा खानगी तौर पर हुई तजवीज कर लेनेसे अच्छी तरह हो सकता है। खानगी तौरपर तजवीजमें घटा बढ़ीकी गुंजाइश रहती है मगर कानूनी कारवाईसे ज्यादह सख्त हो जानेकी संभावना रहती हैं। खानगी तजवीज निरन्तर दोनो दलके पारस्परिक आदर और

विश्वासकी परख करती होगी। पर कानूनी कारवाई ऐसे आदर और विश्वासका मौका आने ही नहीं देती। खानगी तजवीजके मानो हैं, घरेलू झगड़ेका घरेलू निपटारा और दोनोंके दुश्मन अर्थात विदेशी हकूमतका सबकी तरफसे मिलकर मुकाबिला। पर कहते हैं कि जो खानगी तजवीज मैं सुझा रहा हूं उस मुताबिक काम करनेमें कानून बाधक होता है। यदि ऐसा है तो हमें उस कानूनी विघ्न दूर करनेकी कोशिश करनी चाहिए। नकि नई पैदा करने और जोड़नेकी। इसलिए मेरी तजवीज यह है कि पृथक निर्वाचनका ख्याल छोड़ दिया जाय और हल्के-विशेषमें दोनोंकी संयुक्त सन्मतिसे चाहे हुए और तय शुदा तादादमें मुस्लिम तथा दूसरे उम्मीदवारकी सूरत पैदा की जाय। मुसलिम उम्मीदवार पहलेसे प्रसिद्ध मुस्लिम संस्थाओंके द्वारा नामजद किये जाय। इस मौकेपर नियतसे अधिक तादादमें प्रतिनिधि रखनेके सवालमें पड़नेकी जरूरत नहीं। जबकि खानगी ठहरावके उसूलको सब लोग कबूल कर लेंगे तब इसके रास्तेकी तमाम दिक्कतों पर विचार कर लिया जायगा।

हाँ इसमें कोई शक नहीं कि मेरे इस प्रस्तावमें पहलेसे यह बात गृहीत कर ली जाती है कि इस सवालमें लगे हुए तमाम लोग स्वराज्यको ध्यानमें रखकर इसको हल करनेकी कोशिश सच्चे और साफ दिलसे चाहते हैं। यदि जातिगत प्रमुख हमारा मकसद हो तो हर तरहकी खानगी तजवीज बेकार होगी। पर अगर स्वराज्य ही हम सबका लक्ष्य हो और दोनों पक्षके लोग महज राष्ट्रीय दृष्टि बिन्दुसे ही उसे हल करना चाहे तो फिर उसके बेकार होनेके अन्देशाकी मुत्लक जरूरत नहीं। उल्टा हर फरीक नेकनीयतीके साथ उसके अनुसार चलनेमें अपना हित समझेगा।

फिर भी कानूनके द्वारा अगर कुछ करना है तो वह यह कि मताधिकार न्यायोचित हो जिससे कि हर जातिके लोग यदि चाहें तो अपनी तादादके लिहाजसे मतदाताओंका नाम दर्ज करा सकें। मत दाताओंकी सूची ऐसी होनी चाहिये जिससे संख्याके लिहाजसे प्रतिनिधि पहुंच सके। पर इसके लिए वर्तमान मताधिकारकी कार्य-रीतिकी छान-बीन करनी होगी। मेरी नजरमें तो वर्तमान मताधिकार किसी भी स्वराज्य योजनामें स्थान पाने योग्य नहीं है।

हिन्दी-नवजीवन
१९ फरवरी, १९०५

❀

एक वहम

बंगालके एक जमीदारने हिन्दू-मुस्लिम-ऐक्य, अस्पृश्यता और स्वराज्यके विषयके चर्चा करते हुए मुझे एक बड़ी लम्बी चिट्ठी भेजी है। चिट्ठी इतनी लम्बी

है कि यहाँ प्रकाशित नहीं की जा सकती। और उसमें कोई नई बात भी नहीं कही गई है। फिर भी नमूनेके तौरपर उसमेंसे एक वाक्य यहाँ देता हूँ—

"पचासो बरस हुए हिन्दुओंका और मुसलमानोंका सबध दुश्मनोंका सा रहा है। बृटिशोंका राज्य होनेके बाद एक नीतिके तौरपर हिन्दू मुसलमान उस जाति-गत दोषको भूल जानेपर विवश किये गये थे और अब उन दोनों जातियोंमे वैसी कटुता और दुश्मनी नहीं रही लेकिन इन दोनो जातियोंके स्वभावका स्थायी भेदभाव अब भी मौजूद है। मेरा विश्वास है कि हिन्दू-मुसलमानोंका वर्तमान सुसबध बृटिश राज्यके कारण ही है और नवीन हिन्दू-धर्मकी उदाताके कारण नही।"

मैं इसे सिर्फ एक वहम मानता हूँ। मुसलमानोके राज्यमे दोनो जातियाँ आपसमें सुलह शान्तिके साथ रहती थीं। यह स्मरण रखना चाहिये कि मुसलमानोके राज्य फलके पहले भी कितने ही हिन्दुओंने इस्लामको अंगीकार किया था। मेरा यह विश्वास है कि यदि बृटिश राज्य यहाँ न होता तो जिस प्रकार यहाँ ईसाई लोग होते ही, उसी प्रकार मुसलमानोका राज्य यदि न हुआ होता तो भी यहाँ मुसलमान तो जरूर ही होते। मेरा विश्वास है कि बृटिशोंकी इस "भेद उत्पन्न करके राज्य करने" की नीतिने हमारे भेदोंको और भी बढ़ा दिया है। और जबतक इस नीतिके होते हुए भी, हम यह न समझ जायँ कि हमे एक हो जाना चाहिये, तबतक वह हमारे भेदोंको बढ़ाती ही रहेगी। लेकिन यह तबतक मुमकिन नहीं जबतक हम अधिकार और जगहोंके लिए झगड़े रहेगे। आरंभ हिन्दुओको ही करना चाहिये।

हिन्दी-नवजीवन
२६ फरवरी १९२५

❀

फिर मनाही

वायसरायके प्राइवेट सेक्रटरी और मेरे दरम्यान तारके जरिये जो-जो लिखा-पढ़ी हुई है उसे मै नीचे देता हूँ—

मेरा तार — ६—२—२५

"मार्चके आरभमें मुझे और मेरे साथीको कोहाट जानेकी इजाजत अब वाइसराय साहब दे सकेंगे?"

वाइसरायके मंत्रीका उत्तर

१३—२—२५

'श्री मान् वाइसरायने मुझे फरमाया है कि मैं आपको आपके तारके लिये और तार करनेकी शिष्टताके लिये धन्यवाद दूँ।

आपके इच्छानुसार आपको इजाजत देनेमें श्रीमानको बड़ी खुशी होती। लेकिन उनका ध्यान कोहाटी हिन्दुओंको समझदिलाने की गई आपकी इस सलाहकी ओर गया है कि सरकारकी मध्यस्थताके बिना ही जबतक मुसलमान लोग उनके साथ बाइज्जत सुलह न करें जबतक वे कोहाट वापस न जाय। इस लेखसे वे सिर्फ यही तात्पर्य निकाल सकते हैं कि यदि आप कोहाट गये तो वे ख्याल करते हैं कि आपके प्रभावका झुकाव हालमें ही हुए उस समझौतेको तोड़नेकी ओर ही रहेगा जिसे कि वाइसराय साहब बड़ा, महत्वपूर्ण मानते हैं और जिसके द्वारा वे मानते हैं कि परस्पर स्थायी समझौता हो जायगा। अतएव वाइसराय साहबको यह यकीन है कि आप खुद ही इस बातको ठीक-ठीक समझ पायेंगे कि आपकी इच्छाके अनुकूल होना उनके लिये कितना असम्भव है।"

मेरा दूसरा तार

१६—२—२५

"तारके लिये धन्यवाद। आपके तारमें 'य० इं०'के जिस लेखका उल्लेख है उसमें आदर्श सुझाया है। परन्तु जो मुकदमे उठा लिये गये हैं उनमें मैं बिल्कुल दखल देना नहीं चाहता। सच्ची शान्ति स्थापित करना मेरा उद्देश्य है और मैं मानता हूँ कि सरकारकी मध्यस्थताके अथवा सच विचार करें तो गैर-सरकारी और स्वयस्फूर्ति प्रयत्नके बिना वह प्रायः असंभव है। जिस दरजे तक सरकारी यत्नके द्वारा पक्की सुलह होती होगी उस दरजे तक तो मेरी और मेरे साथियोंकी मध्यस्थता उसमें सहायक ही हो सकती है। उत्तर साबरमती दीजियेगा।"

इसका उत्तर

२२—२—२५

"आपके तारके लिए श्रीमान् वाइसराय साहब धन्यवादके लिए आज्ञा देते हैं। जो सुलह आज बड़ी कठिनाईसे हुई है वह दौर सरकारी दोनो जातियोंके लोगोंकी अपने आप मिली सहायताके फलस्वरूप हो पायी है। निश्चय ही वह दोनो जातियोंमे हुआ ठहराव है। और यदि उनकी शर्तोंमे कुछ भी गड़बड़ी की जाय तो सारा ठहराव छिन्न-भिन्न हो जायगा। और फिर इस ठहरावके आधारपर ही श्रीमान् वाइसराय साहब अत्यन्त आत्म-परीक्षाके बाद मुकदमें उठा लेनेपर राजी हुए है। ऐसी हालतमें यद्यपि वाइसराय साहब भी समझते हैं कि आप शान्ति-रक्षा ही करना चाहते हैं, तथापि वे समझते हैं कि यदि आप वहाँ जायगे तो फिरसे सारा मामला नये सिरेसे खोलना पड़ेगा। इस कारण निहायत अफसोसके साथ उन्हें अपने पहले निश्चयपर ही कायम रहना चाहिए।"

यह बात बिल्कुल सच है कि मेरे कोहाट जानेसे वहाँके हिन्दू-मुसलमानोंके समझौतेका मामला जहाँतक वह मूलतः ही खराब होगा, फिरसे खुले बिना न रहेगा। पर वह समझौता दबावका फल है। क्योंकि मुकदमे चलानेकी धमकी तो दोनों फरीकके सिरपर खड़ी ही थी। यह ठहराव दोनोके स्वेच्छ पूर्वक नहीं हुआ जिससे कि दोनोंको पसन्द हो। हिन्दू और मुसलमान दोनोने जो कि रावलपिण्डीमें मौ० शौकतअलीसे और मुझसे मिले थे, ऐसा ही कहा था। परन्तु मेरे कोहाट जानेसे

चाहे कुछ भी नतीजा निकले या न निकले, उससे दोनों फरीककी अनबनमें बढ़ती तो हरगिज नहीं हो सकती। ऐसी हालतमें यदि मुझे अपने मुसलमान मित्रोंके साथ कोहाट जाने दिया जाता तो शान्ति-स्थापनाका ध्येय जिसका कि दावा मेरे वाइसराय साहब भी बराबर करते हैं, बहुत अंशोतक सिद्ध हुआ होता। उस समय जब कि कोहाटमें आग धधक रही थी, मेरा न जाने दिया जाना कुछ-कुछ समझमें आ पाया था परन्तु इस समयकी मनाही समझमें नहीं आती। कितने ही मित्रोंने मुझे सूचित किया है कि बिना इजाजत लिए अथवा खबर किए ही मुझे कोहाट पहुँचकर मुमानोयती हुक्मकी जोखिम सिरपर ले लेना चाहिए था। पर यह मैं उसी हालतमें कर सकता था जब किसी भी हुक्मका अनादर करके जेल जानेको न्योता देनेकी मुझे इच्छा होती। पर मैं मानता हूँ कि देशमें आज ऐसी किसी कारवाईके योग्य वायुमण्डल नहीं है। इसलिए मैं इस जोखिमको सिर नहीं ले सकता। मुझे आशा है कि जिस सावधानीके साथ मैं सविनय भंगके किसी भी कदमसे दूर रहता हूँ, उसकी कदर सरकार करेगी और इस सावधानीमें भी मेरा हेतु यह है कि जहाँतक हो सके ऐसा कोई भी काम न किया जाय जिससे लोग अप्रत्यक्ष-रूपसे भी हिंसामें प्रवृत्त हो सकें। पर हाँ ऐसा समय आये बिना न रहेगा जब कि अधीत्व परिणामोंका लेश-मात्र विचार किए बिना सविनय भंग करना मेरा धर्म हो जायगा। मैं नहीं जानता कि यह समय कब आवेगा। पर मैं इतना जरूर मानता हूँ कि वह आ सकता है। जब वह वक्त जायगा तब मुझे आशा है कि मेरे मित्र मुझे पीठ दिखाते न देखेंगे। तबतक वे मुझे निबाह लें।

हिन्दी-नवजीवन

२६ फरवरी, १९२५

❀

हिन्दू-मुस्लिम समस्या

अखबारोंमें छपे वक्तव्यसे पाठकोंको मालूम होगा कि सर्वदल-परिषद् नियुक्त उपसमिति इस महा समस्याका निपटारा करनेमें समर्थ न हो पायी है। लेकिन मैं कुछ नहीं कर सकता था। शायद यह अच्छा ही हुआ जो कुछ निपटारा न हो पाया। ऐसे निपटारेके अनुकूल वायुमण्डल अभी नहीं है। हर फरीक दूसरेको अविश्वासकी दृष्टिसे देखता है। ऐसी हालतमें दोनोंकी एक सामान्य भित्तिपर कोई काम नहीं किया जा सकता। हर फरीक अपनेसे जितना कम हो सके छोड़ना चाहता है और न दोमेंसे किसीके भी दिलमें ऐसे निपटारेकी सच्ची उत्कण्ठा किसीको दिखायी देती है। फिर भी निराशाका कोई कारण नहीं है। हो सकता है कि असफलताके ही आधारपर आगेकी सफलताकी बुनियाद पड़े, बशर्ते कि वे लोग जो एक दूसरेपर विश्वास रख

सकते हैं और जिन्हें एक दूसरेका डर नहीं है अपने अकीदः पर बराबर अटल रहें और निपटारेके लिए उद्योग करते रहें। कोई निपटारा राष्ट्रीय तभी होगा जब वह सरकारपर अवलम्बित न रहता हो अर्थात् वह स्वयं कार्य-क्षम हो और उसकी कार्य-पूर्ति सरकारकी सदिच्छापर अवलम्बित न हो।

हिन्दी-नवजीवन
५ मार्च, १९२५

कोहाटकी जाँच

कोहाटकी दुर्घटनाके संबंधमें मैं अपना और मौलाना शौकतअलीका वक्तव्य प्रकाशित कर सका हूँ। इससे पहले उसे प्रकाशित करना संभव न था क्योंकि मैं और मौलाना दोनों सफरमें रहते थे और हमेशा दोनो एक जगह नहीं ठहरते थे। मैं यह निश्चित रूपसे नहीं कह सकता कि इस अवसरपर इन वक्तव्योंके प्रकाशित करनेसे कोई बड़ा लाभ होगा, सिवा इसके कि इससे मेरा वादा पूरा होगा, जो मुझे किसी न किसी तरह पूरा करना चाहिए था। लेकिन इनके प्रकाशित हो जानेसे प्रकारान्तरसे एक फायदा जरूर होगा। हम लोगोंने वहीं प्रमाणोंपरसे जो अनुमान निकाले हैं, उनमें बड़ा भारी वास्तविक भेद है। गवाहोंको गवाहीपर विश्वास रखनेके हमारे परिमाणमें भी भेद है। जब हमने इस मतभेदको महसूस किया तो हमें बड़ा दुःख हुआ और इस मतभेदको जहाँतक हो सका दूर करनेकी कोशिश की। हमारे इस मतभेदको हमने हकीम साहब और डाक्टर अनसारीके सामने पेश किया और उनसे मदद मांगी। सद्भाग्यसे उस समय जब हम इसपर विचार करते थे, पंडित मोतीलालजी भी वहाँ मौजूद थे। इस वादविवादमे हमें कोई बात ऐसी न मिली जो हमारी दृष्टिमें वास्तविक परिवर्तन कर दे। यह बहस देहलीमें हुई थी। हमने फिर यह निश्चय किया कि कुछ घंटे हम दोनो साथ-साथ सफर करें और अपने हृदयकी इस दृष्टिसे परीक्षा करें कि हम अपने वक्तव्यको फिर बदल सकते हैं या नहीं। कुछ बातोंको बदल देनेके सिवा हमारा मतभेद दूर नहीं हो सकता। हम लोगोंने हकीम साहबकी इस सूचनापर भी विचार किया कि हमारा वक्तव्य प्रकाशित हो न किया जाय। कुछ अंशतक पं० मोतीलालजीने भी इसका समर्थन किया था। लेकिन हम कमसे कम मैं तो इस नतीजेपर पहुँचा हूँ कि जनता जो मुझे और अली भाइयोंको कुछ सार्वजनिक प्रश्नोपर हमेशा एक मानती थी उसे यह भी जान लेना चाहिए कि कुछ प्रश्नोपर हममे भी मतभेद हो सकता है। लेकिन हमें एक दूसरेके प्रति यह शंका नहीं हो सकती कि हममेसे कोई जानकर पक्षपात करता है या सत्य प्रमाणोंको तोड़-मरोड़कर उससे अपना मतलब निकाल

लेता है। और हमारे परस्पर प्रेममें भी कोई बाधा नहीं आ सकती। हम यदि खुले तौरसे अपने मतभेदोको स्वीकार कर लेंगे तो उससे जनताको आपसमें सहन शील बननेका सबक भी मिलेगा। जन समाजसे मैं यह कह देना चाहता हूँ कि इस मतभेदको दूर करनेके प्रयत्नमे मैंने या मौलाना साहबने कोई-बात उठा न रक्खी है। लेकिन अपनी रायको छिपानेका भी कोई प्रयत्न नहीं किया गया था। हमारे असल वक्तव्यमें हमने कुछ रद्दो बदल की है लेकिन दोमेसे एक भी किसी बातमें अपने निश्चित मतका त्याग नहीं किया है। हम दोनोंने कुछ जगहोमें किसीको बुरा न मालूम हो, इसलिए भाषाको मुलायम बनाया है लेकिन इसके सिवा असल वक्तव्योंमें कुछ भी वास्तविक रूपान्तर नहीं किया गया है।

हिन्दी-नवजीवन
२६ मार्च, १६२५

❀

गांधीजीका वक्तव्य

मौलाना शौकतअली और मै कोहाटके हिन्दू आश्रितोंको और उन मुसलमानोंको मिलनेके लिए, जिन्हें मौलानाने पत्र लिखकर बुलाये थे और जो रावलपिण्डी आनेवाले थे, ता० ४को रावलपिण्डी पहुँचे। एक दिन बाद लाला लाजपतराय भी आ पहुंचे। लेकिन दुर्भाग्यसे वे बुखार लेकर ही आये थे और जबतक हम लोग रावलपिण्डी रहे उन्हें बिछौनेमें ही रहना पड़ा।

जिन मुसलमानोकी हमने गवाही ली उनमें मौलवी अहमदगुल और पीर साहब-कमाल मुख्य थे। हिन्दुओने तो पहले ही अपना लिखा और छपा हुआ वक्तव्य प्रकाशित कर दिया था। उन्हे उससे अधिक कुछ नहीं कहना था। कोहाटमे जो मुस्लिम-कार्यवाहक समिति काम कर रही है वह न आना ही चाहती थी और न आई। उसने मौलाना साहबको इस मतलबका तार भेजा है कि 'हिन्दू और मुसलमानोमे समाधान हो गया है। हमारी रायमे इस सवालको फिर छेड़ना उचित नहीं है। इसलिए यदि मुसलमान लोग अपने प्रतिनिधि रावलपिण्डी न भेजें तो उन्हें आप क्षमा करेंगे।'

मौलवी अहमदगुल और जो दूसरे सज्जन रावलपिण्डी आये थे वे इस कार्यवाहक-समितिके सदस्य थे। लेकिन उन्होने कहा कि वे खिलाफ कमेटीकी हैसियतसे आये थे, इस कार्यवाहक-समितिके सदस्यकी हैसियतसे नहीं।

ऐसी हालतमें प्रत्यक्ष स्थानका पूरा निरीक्षण किए विना ही और दूसरे गवाहोंसे गवाही लिए विना सभी बातोंका निश्चित परिणाम निकालना बड़ा ही

मुश्किल है। हम लोग यह न कर सके। हम कोहाट न जा सके और न हमारा यह इरादा ही था कि छोटी-छोटी बातोंपर ध्यान देकर गड़े मुर्दे उखाड़ें। हमारा मकसद तो यह था कि यदि मुमकिन हुआ तो दोनों दलोंसे एैक्य स्थापित कर दें। इसलिए हम लोगोंने मुख्य-मुख्य बातोंको ही जितना बन सका स्पष्ट करनेकी कोशिश की।

मौलाना साहबके साथ सब बातोंका मशविरा किए बिना ही यह लिख रहा हूँ। इसलिए इसमें सिर्फ मैंने अपना ही निर्णय प्रकाशित किया है। मौलाना चाहें तो उसका समर्थन करें या अपना वक्तव्य अलग ही प्रकाशित करावें।

ता० ९ सितम्बर और उसके बाद जो घटनाएं हुईं उसके कई कारण थे। उसमें एक यह भी था कि हिन्दू पुरुष और विवाहित स्त्रियोंको मुसलमान (मेरी रायमें ऐसे धर्मान्तरको वास्तविक धर्मान्तर नहीं कह सकते) बनानेसे हिन्दू लोग बिगड़े और उन्होंने उसके विरुद्ध जो कारवाई की उससे और भी ज्यादह बिगड़ उठे। कोहाटके हिन्दू व्यापारियोंको निकाल देनेकी पराचाओ (मुसलमान व्यापारी) की इच्छा दूसरा कारण था और तीसरा कारण यह अफवाह थी कि सरदार माखनसिंहजीके पुत्रने किसी विवाहित मुसल्मान लड़कीका हरण किया था। उसे सुनकर मुसलमान कौम बड़ी बिगड़ी हुई थी।

इन सब कारणोंका एकत्र परिणाम यह हुआ कि दोनों कौमोंमें बड़ा वैमनस्य और कटुता फैल गयी। जिस कारणसे यह आग भड़क उठी वह कारण तो रावलपिण्डीमें प्रकाशित की गयी और कोहाटमें दाखिल की गयी श्री जीवनदासकी प्रसिद्ध पत्रिकाकी एक कविता थी। उसमें श्रीकृष्ण और हिन्दू-मुस्लिम एैक्यकी कविताएं छपी हुई थीं। लेकिन उसमें एक बड़ी अपमानजनक कविता भी थी जो मुसलमानोंके दिलोंको निःसन्देह दुखानेवाली समझी जा सकती है। श्री जीवनदास उसके रचयिता न थे। उन्होंने मुसलमानोंको चिढ़ानेके लिए उसे कोहाटमें दाखिल नहीं किया था। जब सनातन धर्म सभाका ध्यान इस बातपर दिलाया गया उसने उस कविताके लिए लिखकर माफी मांगी और बची हुयी प्रतियोंमेंसे उसे निकलवा दिया। उससे मुसलमानोंको संतोष हो जाना चाहिए लेकिन उन्हें संतोष न हुआ। बची हुई प्रतियाँ मुसलमानोंके ख्यालके मुताबिक ५०० से कुछ अधिक और हिन्दुओंके ख्यालके मुताबिक ९०० से कुछ अधिक टाऊनहालमें लाई गयी और डिप्टी कमिश्नर और मुसलमानोंकी एक भीड़के सामने सार्वजनिक तौरपर जला दी गयी। पत्रिकाके पृष्ठपर श्रीकृष्णकी तस्वीर भी थी। श्री जीवनदासको गिरफ्तार किया गया। यह घटना ३ सितम्बर १९२४ को हुई। ११ता० को वे अदालतमें पेश किए जानेवाले थे। हिन्दुओंने अदालत छोड़कर आपसमें ही निपटाराकर लेनेकी कोशिश की। इसके लिए पेशावरसे खिलाफत वालोंको एक शिष्ट-मंडल भी आया था। मुसलमान शरीयतके मुताबिक जीवनदासका इन्साफ करना चाहते थे। हिन्दुओंने इसे इन्कार किया लेकिन खिलाफतवालोंके निर्णयको

कबूल करनेके लिये राजी हो गये। लेकिन सब कोशिशें बेकार गईं इसीलिये हिन्दुओंने श्री जीवनदासको छोड़ देनेकी अरजी की। ता० ८ सितम्बरको जमानत लेकर और इस शर्तपर कि वे कोहाट छोड़कर चले जाँयगे, छोड़ दिये गये। उन्होने तो कोहाट एक दम छोड़ दिया। लेकिन इस प्रकार इनके मुकद्मेंसे बच जानेके कारण मुसलमानोंका क्रोध भड़क उठा। ता० ८ सितम्बरकी रातमें उनकी एक सभा हुई उसमें बड़ा जोश फैला हुआ था और बड़े जोशोले व्याख्यान हुए थे। उसमें यह निर्णय हुआ कि वे सब मिलकर डिप्टी कमिश्नरके पास जायं और जीवनदासको फिर गिरफ्तार करनेके लिए और सनातन धर्म सभाके कुछ और सदस्योको गिरफ्तार करनेके लिए कहें। यदि डिप्टी कमिश्नर उनकी बातें न सुने तो हिन्दुओसे पूरा-पूरा बदला लेनेके लिए धमकी भी दी गयी थी। सुबह इन लोगोमें शामिल होनेके लिए आस-पासके गावोमें सन्देश भेजे गये थे। दूसरे दिन पीर कमाल साहबके कहनेके मुताबिक गुस्सेसे भरे हुए कोई दो हजार मुसलमान टाऊनहालकी तरफ रवाना हुए। डिप्टी कमिश्नरने उनसे प्रार्थना की कि उनमेसे कुछ थोड़े लोग आकर उनसे मिलें। लेकिन उन्होंने न माना और उन्हें मजबूरन बाहर आकर इतनी बड़ी भीड़का सामना करना पड़ा। उनकी मांगोको उन्होने स्वीकार कर लिया और अपनी विजयपर खुश होती हुई भीड़ हटने लगी।

अगले हफ्तेमें हिन्दू लोग डरके मारे घबड़ा गये थे। उन्होंने ६ सितम्बरको एक पत्र लिखकर मुसलमानोंमें फैले हुए जोशकी डिप्टी कमिश्नरको खबर दी थी। लेकिन उनकी हिफाजतके लिए डिप्टी कमिश्नरने कुछ भी तैयारी न की थी। ८ ता० की रातमें जो सभा हुयी थी उसकी उन्हें खबर थी। इसलिए उन्होंने ९ तारीखकी सुबहको अपना भय अधिकारियोंपर प्रकट करके लिए कितने ही तार भेजे और श्री जीवनदासको फिर गिरफ्तार न करनेकी अर्ज की। अधिकारियोंने कुछ भी ध्यान न दिया। टाऊनहालसे वापस आकर भीड़ने क्या किया इसपर बड़ा ही मतभेद है। मुसलमान कहते हैं कि हिन्दुओंने ही पहले गोली चलायी थी उससे एक मुसलमान लड़का मर गया और दूसरेको चोट लगी। उससे उस भीड़का गुस्सा भड़क उठा और उसका नतीजा यह हुआ कि उस रोज लूट, घरोंका जलाना इत्यादि ज्यादतियाँ हुईं। हिन्दुओंका कहना है कि मुसलमानोंने ही पहले गोली चलायी थीं और हिन्दुओने बादको आत्म-रक्षाके लिए गोलियाँ चलायीं थीं। वे कहते हैं कि यह लूटना, आग लगाना आदि कार्य पहले ही से निश्चित और नियंत्रित था और उसी प्रकार पहलेसे ही निश्चित किये हुए इशारे पानेपर ही सब काम किया गया था।

इसका कोई ठीक प्रमाण नहीं मिलता। इसलिये मैं कोई निश्चित निर्णय नहीं दे सकता हूँ। मुसलमानोंका कहना है कि यदि हिन्दुओंने पहले गोली न चलाई होती तो कुछ भी नुकसान नहीं होता। मैं इसे नहीं मान सकता। मेरा ख्याल तो यह है

कि हिन्दुओंने अगर गोली चलाई होती या न भी चलाई होती तो भी कुछ नुकसान तो होना जरूरी था। किसीने पहले गोली क्यों न चलाई हो, मैं यह निश्चय मानता हूँ कि हिन्दुओंने गोली छोड़ी उसके पहले ही सरदार माखनसिंहजीका बाग भीड़के लोगोंने उजाड़ दिया था और मकानमें आग लगा दी थी। इसमें कोई शक नहीं कि हिन्दुओंने कुछ मौकों पर गोलियाँ जरूर चलाई थीं उनसे कुछ मुसलमान मारे गये और कुछ ज्यादह जख्मी हुए थे। मेरा ख्याल यह है कि अपनी विजयपर इतराती हुई जब वह भीड़ चारों तरफ बिखरने लगी तब जाते-जाते उसने हिन्दुओंके घरों और दुकानोंके सामने उत्पात जरूर किये होंगे। जैसा कि मैं ऊपर कह गया हूँ हिन्दू घबड़ा ही रहे थे अगर उन्हें हरदम आफत आनेका डर लगा हुआ था। इसलिये कोई आश्चर्यकी बात नहीं यदि वे उनके उपद्रवोंको देखकर कॉप उठे हो और उनमेंसे किसीने गोली चलाकर उन्हें भगा देना चाहा हो। लेकिन मुसलमानका गुस्सा तो इससे जरूर ही बढ़ता क्योंकि उन्हें हिन्दुओंकी तरफसे होने वाले मुकाबलेको देखनेकी आदत ही न थी। पीर साहब कहते हैं कि सीमा प्रान्तके मुसलमान अपनेको 'नायक' (रक्षक) और हिन्दुओंको 'हमसाया' (रक्षित) मानते है। इसलिये हिन्दुओंने जितना अधिक दृढ़ होकर मुकाबिला किया उतना ही उस भीड़का क्रोध अधिक बढ़ता गया।

इसलिये इस घटनाका कौन कितना जिम्मेवार है उसका निर्णय करते समय मेरी दृष्टिमे पहले गोली किसने चलाई इस प्रश्नका कुछ अधिक महत्व नहीं है। बेशक यदि हिन्दुओंने आत्मरक्षाके लिये भी उनका सामना न किया होता अथवा उन्होंने पहले गोली न चलाई होती—यदि चलाई हो तो—तो मुसलमानोंका उपद्रव जल्दी ही शान्त हो गया होता। लेकिन जिनके पास हथियार थे और जो उनका थोड़ा बहुत उपयोग करना भी जानते थे उन हिन्दुओंसे यह आशा नहीं रक्खी जा सकती थी। मुसलमान गवाहोंको ९तारीखको मारे गये या जख्मी हुए हिन्दुओंकी सख्याके संबंधमे शंका है। लेकिन मै यह निश्चय मानता हूँ कि उस रोज मुसलमानोंके हाथ बहुतसे हिन्दू मारे गये या जख्मी हुए थे। हताहतोंकी कुल संख्या देना मुश्किल है। मुझे यहाँ इसके लिखनेमे बड़ी खुशी होती है कि कुछ मुसलमानोंने हिन्दुओंके दोस्त बनकर उन्हें आश्रय दिया था।

यह तो आमतौरपर स्वीकार कर लिया गया है कि ता० १० सितम्बरको मुसलमानोंके क्रोधकी कुछ सीमा न थी। बेशक हिन्दुओंके हाथसे मारे गये मुसलमानोंकी मृत्युके सामाचार बहुत बढ़ाकर फैलाये गये थे और आसपासके गावोंमे रहने वाले देहाती मुसलमान दिवालोंमे छेद करके या दूसरे रास्तोंसे शहरमें दाखिल हुए। सारे शहरमे कत्ल और लूट शुरु होगई। सरहदकी पुलिस भी इसमें शामिल हुई और अधिकारी लोग जो इसे रोक सकते थे, देखते ही खड़े रहे। यदि हिन्दुओंको उनकी जगहोंसे हटाया न जाता या छावनीमें उन्हें न पहुँचा दिया जाता

तो शायद ही उनमेंसे कोई बच पाता। इस बातपर बड़ा जोर दिया जाता है कि मुसलमानोंका भी नुकसान हुआ है और देहाती मुसलमानोंने जब एक मतरबा लूटना शुरु किया तो फिर वे यह नहीं देखते कि यह हिन्दू हैं या मुसलमान। हालांकि यह बात सच है, फिर भी मैं यह नहीं मानता कि हिन्दुओंके बराबर प्रमाणमें मुसलमानोंको कुछ भी नुकसान न पहुंचा हो। मुझे मानपूर्वक यह भी कह देना चाहिये कि खिलाफतके कुछ स्वयंसेवकोंने जिनका कर्तव्य ऐसे समयमें हिन्दुओंको अपना भाई मानकर उनकी रक्षा करना था, अपना फर्ज अदा नहीं किया। वे सिर्फ लूटमें ही शामिल न हुए बल्कि उभाड़नेके लिये की गई कोशिशमें भी शामिल थे।

लेकिन सबसे ज्यादह बुरी बात तो कहना बाकी ही है। झगड़ेके दिनोंमें मन्दिरोंको भी जिनमें एक गुरुद्वारा भी शामिल था नुकसान पहुँचाया गया और मूर्तियां तोड़ दी गई थीं। बहुतसे जबरदस्ती धर्मान्तर किये गये थे या कहने भरको ही धर्मान्तर किये गये थे अर्थात् अपनी जान बचानेके लिये कुछ लोगोंने धर्मान्तर किया था। दो हिन्दुओंको सिर्फ इसलिये बुरी तरहसे कत्ल किया गया था, क्योंकि वे (एक निश्चय ही, दूसरा अनुमानसे), इस्मालको स्वीकार करना नहीं चाहते थे। ऐसे धर्मान्तरका एक मुसलमान गवाह इस प्रकार वर्णन करता है-हिन्दू-मुसलमानोंके बापू आये और उन्होंने अपनी शिखा काट लेने और जनेऊ तोड़ देनके लिये उनसे कहा, अथवा जिन मुसलमानोंके पास वे आश्रय पानेके लिये गये उन्होंने उनसे कहा यदि तुम अपनेको मुसलमान जाहिर करो और हिन्दूधर्मके चिन्ह निकाल फेंक दो तो तुम्हारी रक्षा हो सकती है।" यदि हिन्दुओंके कहने पर विश्वास किया जाय तो सत्य तो इससे भी भयंकर है। इस मुसलमान मित्रको न्याय करनेके लिये मुझे यहाँ यह कह देना चाहिये कि वे ऐसे धर्मान्तरके कार्यका सही होना स्वीकार ही नहीं करते हैं। इसके सौम्य रुपमें भी यदि इसका विचार किया जाय तो यह हिन्दू-मुसलमान दोनोंको नीचा दिखाने वाला काम है। मुसलमानोंने यदि उन नामर्द हिन्दुओंको हिम्मत दी होती और हिन्दू रहने पर भी और हिन्दू धर्मके चिन्ह पास रखने पर भी उनकी रक्षा की होती तो मैं उनकी बड़ी तारीफ करता। हिन्दुओंने भी यदि सिर्फ जिन्दा रहनेके लिये बाह्याचारमें भी अपने धर्मको इन्कार करनेके बजाय मर जाना अधिक पसन्द किया होता तो भविष्यकी प्रजा, सिर्फ हिन्दू ही नहीं सारी मानव-जाति, उन्हें वीर और शहीद समझकर उनका आदर करती।

मुझे अब सरकारके बारेमें भी कुछ लिखना चाहिये। मुझे कहना चाहिये कि स्थानिक अधिकारियोंने अपने कर्तव्यके प्रति हृदय-हीन उदासीनता, अयोग्यता और कमजोरी दिखाई है।

उस अपमानजनक कविताके निकाल देनेके बाद पत्रिकाका जलाना भूल थी।

श्री जीवनदासको पकड़ना ठीक था लेकिन उन्हें ११ तारीखके पहले छोड़ देना एक-भूल हुई। छोड़नेके बाद उन्होंने फिर पकड़ना एक जुर्म था।

८ सितम्बरको दी हुई और फिर ९ सितम्बरको पहुँचाई गई हिन्दुओंकी इस चेतावनी पर कि उनके जानोमाल खतरेमें हैं उसका ध्यान न जुर्म था।

आखिर जब दंगा हुआ उस समय उनकी रक्षा न करना भी जुर्म था।

आश्रितोंको वहाँसे हटानेके बाद उन्हें खाना न देना और उन्हें रावलपिन्डी पहुँचानेके बाद उनको उन्हींके साधनोंके भरोसे छोड़ देना एक अमानुस कार्य था।

भारत सरकारने इस मामलेकी और इससे संबंध रखने वाले अधिकारियोंकी जाँच करनेके लिये एक निष्पक्ष कमीशन नियुक्त नहीं किया। इसमें उसने अपने कर्तव्यके प्रति बड़ी लापरवाही दिखाई।

अब रही भविष्यकी बात। मुझे अफसोस है कि वह अधिक अच्छा नहीं दिखाई देता। बडे ही दुःखकी बात है कि मुस्लिम कार्यवाहक समितिने हमारी जाँचके समय अपना प्रतिनिधि नहीं भेजा। जिस साधनका जिक्र किया गया है वह साधनका दोनोंके खिलाफ मुकदमे चलानेकी धमकी देकर दिया गया। यह समझ नहीं आता कि ऐसी बलवती सरकार ऐसी सुलहमें कैसे शामिल हुई। यदि देहाती मुसलमान फिर दंगा मचावेंगे इस डरसे सरकार मुकदमे चलाना नहीं चाहती थी तो उसे यह बात साफ-साफ कह देनी चाहिये थी और फिर मुकदमे उठा लेने थे। और बादको दोनों कौमोंमें बाइज्जत सुलह मैत्री करानेका उसे प्रयत्न करना चाहिये था।

यह सुलहके मूलमें ही दोष है। क्योंकि इससे खोया हुआ और नष्टप्राय माल वापस दिलानेका कोई यकीन नहीं दिलाया गया है। इसलिए वह भी बुरी है। क्योंकि श्री जीवनदास पर जो इसके व्यर्थ ही शिकार हो रहे हैं अब भी मुकदमा चलाया जानेवाला है।

इसलिए यदि सचमुच दिलोंकी सफाई करना है और सच्ची सुलह करनी है तो यह आवश्यक है कि मुसलमान हिन्दू-आश्रितोंको निमत्रंण दें और उन्हें उनकी हिफाजतके लिए यकीन दिलावें और उनके मन्दिर और गुरुद्वारोंको फिरसे बनानेमें मदद करनेका वचन दें।

लेकिन सबसे महत्वकी जमानत तो उन्हें इस बातकी देनी होगी कि जबरदस्ती किसीका भी धर्मान्तर नहीं किया जावेगा और दोनो कौमें ऐसे धर्मान्तरोंको कबूल भी न रक्खेगी। सिर्फ वही धर्मान्तर कबूल रक्खा जायगा जिसके साक्षी दोनो कौमके अगुआ रहेंगे और जिसका धर्मान्तर हो रहा हो वह यह समझता हो कि वह क्या कर रहा है। मैं स्वयं तो यही पसन्द करूँगा कि धर्मान्तर और शुद्धि सब बन्द कर दिए जांय। किसी भी व्यक्तिके धर्मका संबंध स्वयं उसीके साथ होता है। बालिग उम्रके स्त्री या पुरुष जब या जितनी दफा चाहें अपना धर्म बदल सकते हैं। यदि मेरा बस चलता तो मैं सिवा इसके कि मनुष्य अपने चरित्रसे दूसरेपर असर डाले और सब प्रकारके प्रचार कार्य बन्द करा देता। धर्मान्तरका सम्बन्ध हृदय और विवेक बुद्धिके साथ है। और चरित्र ही से उनपर असर डाला जा सकता है।

सीमा प्रान्तपर किसी सच्चे धर्मान्तरके होनेका ख्याल भी मैं नहीं कर सकता हूँ। हिन्दू लोग सिर्फ व्यापारकी गरजसे वहाँ रहते हैं, संख्यामें बहुत ही अल्प हैं और हथियार चलानेकी वैसी शिक्षा भी उन्हें प्राप्त नहीं है। फिर भी वे ऐसे बहु-संख्यक लोगोंके साथ रहते हैं जो शारीरिक शक्ति और हथियार चलानेमें उनसे कहीं बढ़कर हैं। ऐसी परिस्थितिमें दुर्बल हृदयके मनुष्यको सांसारिक लाभके लिए भी इस्लामको अंगीकार करनेका मोह अनिवार्य होता है।

ऐसी जमानत उनकी तरफसे मिले या न मिले, हृदयका सच्चा परिवर्तन संभव हो न हो, मुझे तो जो रास्ता लेना चाहिए, वह स्पष्ट ही दिखायी देता है। जबतक यह परदेशी सत्ता कायम रहेगी, उसके साथ कहीं न कहीं संबंध रखना भी अनिवार्य होगा। लेकिन जहाँ मुमकिन हो वहाँ हमें सब प्रकारका ऐच्छिक संबंध त्याग कर देना चाहिए, यही एक रास्ता है जिससे कि हम लोग स्वतंत्रताका अनुभव कर सकते हैं तथा उसका विकास कर सकते हैं। जब एक बहुत बड़ी संख्यामें लोग स्वतन्त्रताका अनुभव करने लगेंगे हम स्वराज्यके लिए तैयार हो जायगे। स्वराज्यकी परिभाषाके अनुकूल ही हम ऐसे सवालोंका जवाब दे सकेंगे। इसलिए मैं भविष्यके राष्ट्रीय लाभके वेदीपर व्यक्तिगत लाभोंका बलिदान देना चाहता हूँ। यदि मुसलमान हिन्दुओंके पास मित्र भावसे जानेके लिए इन्कार करें और कोहाटके हिन्दुओंको सब कुछ खोकर नुकसान उठाना पड़े तो भी मैं यही कहूँगा कि जबतक उनमें और मुसलमानोंमें पूरी-पूरी तरह सुलह न हो जाय और जबतक वे यह महसूस न करें कि वे उनके साथ बृटिश सरकारकी बन्दूकोंके बिना ही शान्तिके साथ रह सकेंगे, तबतक उन्हें कोहाट लौटनेका विचार भी न करना चाहिए। लेकिन मैं यह जानता हूँ कि यह तो आदर्शकी बात हुई और इसलिए यह संभव नहीं कि वे उसके अनुसार चल सकें। फिर भी मैं दूसरी सलाह नहीं दे सकता मैं तो सिर्फ यही एक व्यवहारिक सलाह दे सकता हूँ। यदि वे इसकी कदर नहीं कर सकते तो उन्हें अपने ही ख्यालके अनुसार काम करना चाहिए। वे ही अपनी शक्तिका अच्छी तरह नाप निकाल सकेंगे। वे देश भक्त या देश सेवककी हैसियतसे तो कोहाट गये न थे और न वे अब देश सेवककी हैसियतसे वहाँ वापस लौटना चाहते हैं। वे तो अपने मालका कब्जा लेनेके लिए ही वहाँ जाना चाहते हैं। इसलिए वे वही काम करें जो उन्हें लाभदायी और कारआमद मालूम हो। उन्हें सिर्फ दो बातें एक साथ नहीं करनी चाहिए अर्थात् मेरी सलाहपर अमल करना और साथ ही साथ सरकारकी सुलहकी शर्तोंके लिए लिखा-पढ़ी भी करना। मैं जानता हूँ कि वे असहयोगी नहीं हैं। उन्होंने बृटिशोंकी मददपर हमेशा भरोसा रक्खा है। मैं तो उन्हें परिणामपर ध्यान देनेको कहता हूँ। और अपना रास्ता पसन्द करनेका भार उन्हींपर छोड़ देता हूँ।

मुसलमानोंके लिए भी मेरी सलाह तो वैसी ही सरल है। जबरदस्ती किये गये या ऐसे ही नाम मात्रसे धर्मान्तर होनेसे हिन्दुओंको उद्वेग हो और कुछ व्यक्ति अपनी

खोयी हुई स्त्रियोंको वापस लानेका प्रयत्न करें तो उसमें मुसलमानके नाराज होनेकी कोई बात नहीं है।

मैं यह जानता हूं कि सरदार माखनसिंहका पुत्र अदालतसे स्त्री-हरणके दोषसे निर्दोष होकर छूट गया, फिर भी बहुतसे मुसलमान उसे निर्दोष नहीं मानते हैं। लेकिन यह मान भी लें कि उसने यह कसूर किया था तो भी उसके, एकके दोषके कारण सारी जातिपर उसका ऐसा भयंकर वैर लेना उचित नहीं है।

उस पत्रिकाको जिसमें अपमान करनेवाली कविता छपी थी मंगाना और खासकर कोहाट जैसी जगहमें उसे मंगाना दर असल बुरा था। परन्तु सनातन धर्म सभाने तहरीरी माफी मांगकर उसका प्रायश्चित कर लिया था। लेकिन मुसलमानोंको उससे सन्तोष न हुआ और उन्होंने उस पत्रिकाको श्रीकृष्णकी तस्वीरके साथ ही जला देनेपर सभाको मजबूर किया। उसके बाद जो कुछ भी उन्होंने किया वह सब आवश्यकतासे बहुत ही अधिक था। मैं यह निश्चित रूपसे नहीं कह सकता कि पहले गोली किसने चलायी थी। लेकिन यदि यह मान भी लें कि हिन्दुओंने ही पहले गोली चलायी थी तो उन्होंने डरकर, घबड़ाकर आत्म-रक्षाके निमित्ति ही गोली चलायी थी। इसलिए उसे उचित नहीं कह सकते थे तो यह क्षम्य तो अवश्य ही था। इसलिए जितनी भी ज्यादतियां की गयी थीं सब अनुचित और अनावश्यक थी ऐसी हालतमें मुसलमानोंका स्पष्ट कर्त्तव्य है कि वे जिस कदर बन पड़े हिन्दुओंको इस नुकसानकी भरपायी कर दें। इसकी कोई वजह दिखायी नहीं देती कि वे हिन्दुओंके खिलाफ सरकारको मदद और हिफाजतपर भरोसा रखकर रहें। यदि हिन्दू चाहें भी तो उन्हें कुछ नुकसान नहीं पहुंचा सकते। लेकिन यहाँ फिर मेरी बात निर्मूल हो जाती है। मुझे अबतक कोहाटके उन मुसलमानोंसे परिचय करनेका भी सौभाग्य प्राप्त नहीं हुआ है जो मुसलमान जनताके सलाहकार हैं। इसलिए इस बातको तो वे ही अच्छी तरह जान सकेंगे कि मुसलमानोंके लिए और हिन्दुस्तानके लिए लाभदायी क्या होगा।

यदि दोनों पक्ष सरकारकी दरम्यानी चाहते है तो मेरी सेवा बिल्कुल ही बेकार होगी। क्योंकि मुझे ऐसी दरम्यानोंकी आवश्यकतामें विश्वास ही नहीं है। और सरकारके साथ समाधानीके लिए जो बातचीत की जायगी उसमें मैं किसी भी प्रकारसे भाग न ले सकूंगा। यह सच है कि मुसलमानोंसे सच्चा व्यवहार पाने और मांगनेका हिन्दुओंका हक है। लेकिन दोनों कौमोंका मिलकर सरकारसे अपनी रक्षा करनी चाहिए। क्योंकि एक कौमको दूसरीके खिलाफ कर देना ही उसकी नीति है। सीमाप्रान्तकी हुकूमत खुद मुख्तयार है। अधिकारीकी इच्छा ही वहाँ कानून है। इस हालतमें दोनों कौमोंको हाथसे हाथ मिलाकर राजकाजमें प्रतिनिधित्व प्राप्त करनेके लिए प्रयत्न करना चाहिए। लेकिन जबतक दोनों कौम एक दूसरेका विश्वास न करें और ऐसा प्रतिनिधित्व प्राप्त करनेकी आकांक्षा कौममें व्याप्त न हो जायगी तबतक यह होना सम्भव नहीं है।

हिन्दी-नवजीवन
२६ मार्च, १९२५

मौलाना शौकतअलीका वक्तव्य

कोहाटके कम नसीब मामलेके बारेमें जब मैंने पहले-पहल सुना तबसे देहलीमें एक्य परिषद् हुई और महात्माजीने २१ दिनका उपवास किया। उस दरम्यान और रावलपिण्डीमें हिन्दू-मुसलमान दोनोंके साथ जो आखिर दिन बिताया तबसे इन मामलोंपर मैं बराबर दिलसे गौर करता चला आया हूँ। इस हालतमें जितनी भी जाँच बन पड़ी है मैंने की है। और उसपरसे मैंने कुछ राय भी कायम की है। यद्यपि मेरी राय सामान्य तौरपर महात्माजीकी रायसे मिलती जुलती है फिर भी कुछ अंशोंमें वह उनकी रायके खिलाफ है, और क्योंकि कुछ बातोंपर मैंने बड़ा जोर दिया है, यही बेहतर है कि मैं अपनी रिपोर्ट अलग पेश करूँ। यह दिखानेके लिए कि मैंने अपनी यह राय कैसे कायम की है छोटी-छोटी बातोंके जिक्र करनेकी और लम्बा चौड़ा बयान पेश करनेकी कोई जरूरत नहीं दिखायी देती है।

यह तो सब कोई जानता है कि जहाँ कहीं हिन्दू-मुसलमान आपसमें लड़े हैं या लड़ रहे हैं वहाँ जानेके लिए मैंने हमेशा इन्कार किया है। मेरी रायमें ऐसी जगहोंमें रहनेवाले हिन्दू-मुसलमानोंने बाहरके हिन्दू-मुसलमान जो आपसमें भ्रातृभावसे एक दूसरेके साथ अमनसे रहना चाहते हैं उनकी मदद और सहयोग प्राप्त करनेका सारा हक गुमा दिया है। हर एक पक्ष इत्तफाक करना तो नहीं चाहता लेकिन अपने-अपने मददगारोंको ही ढूँढ़ता फिरता है। दंगे करनेवाले दोनों दलके गुण्डे दूसरोंको भी अपना सा बनाना चाहते हैं।

एक घटनाके हो जानेपर फिर उसकी कितनी भी जाँच क्यों न हो उसका नतीजा कुछ भी नहीं होता। बड़ी होशियारीके साथ वे अपना मामला पेश करते हैं और हमारी दखल कुछ काम नहीं आती प्रत्येक दल अपने विपक्षियोंका ही दोष निकालता है और उसके खिलाफ यदि इन्साफ किया जायगा तो वह कबूल नहीं करता। बहुतसे मामलेमें तो दोनों पक्षोंका ही दोष होता है और किसका और कैसा दोष है यह दिखाना यद्यपि मुश्किल है—करीब-करीब असम्भव है—फिर भी यदि ऐसा प्रयत्न किया जाय तो उससे कुछ फायदा नहीं होता। सच पूछो तो इससे गड़े मुरदे फिर फिर उखाड़े जाते हैं और अखबार और व्याख्यानोंके जरिये वे फिर बार-बार लड़ा करते हैं।

यह कोहाटके मामलेने—सिर्फ इसीमें मैंने भाग लिया है मुझे यह स्पष्ट औरसे साबित कर दिखाया है कि मेरा यह ख्याल सही था। शुरूमें निष्पक्ष हिन्दू और और मुसलमान मित्रोंके जरिये मैंने जो कुछ सुना था उससे मैं इस नतीजे पर पहुँचा हूँ कि अखबार वालोंके एक विभागने इस मामलेको जितना एक तरफा बना दिया है उतना ही एकतरफा यह नहीं है। कोहाटमें जो लोग उस समय मौजूद थे उनसे

अधिक परिचय होनेके बाद और उसके मुतल्लिक अधिक बातें जाननेके बाद मेरी यह राय यह और भी पुख्ता दृढ़ हो गई है। मैं दूसरी जगहोंके बारेमें कुछ नहीं कह सकता लेकिन कोहाटमें तो यदि मुसलमान बहुत सी बातोंके लिये जिम्मेवार हैं तो हिन्दुओंको भी तो बहुतसी बातोंके लिये जवाब देना होगा। नीचे लिखे बातोंपर ध्यान देना जरूरी है—

(अ) पंजाब और संयुक्त प्रान्तमें कौम-कौमके बीच जो द्वेष और कटुता फैली हुई है उनका कोहाटपर भी असर पड़ा था। और वहाँ रहनेवाले हिन्दू-मुसलमानोंका आपसमें पहले जैसा अच्छा रिश्ता न रहा था। सब बातोंको सुनने पर यह बात तो सच साबित होती है कि वहाँ भी हिन्दू-मुसलमान दोनों असंयत होकर आपसमें गाली-गलौज कर रहे थे।

(ब) सीमा प्रान्तके जाहिल और कम शिक्षा पाये हुए खानोंको अपनी इज्जत और मरतबेका बड़ा ख्याल रहता है। और वे अपनी मूर्खता और गलतियोंके कारण बरबाद हो गये हैं। फिर भी ऊपर-ऊपर वे बड़ा ठाट दिखाते है। आज हिन्दुओंका अब वहाँ उनकी मितव्ययिता और व्यापार-कुशलताके कारण खासा वजन पड़ता है। उन्होंने ठीक-ठीक धन इकट्ठा कर लिया है और कभी-कभी वे अपनी श्रीमन्ताईकी अकड़ भी दिखाते हैं। दोनों कौमोंका वह पुराना रिश्ता अब बदल रहा था और अधिकारीगण यद्यपि हिन्दुओंकी ताकत बढ़ने देना नहीं चाहते थे फिर भी मुसलमानोंको कमजोर बनानेके लिये वे इस स्थितिका लाभ उठा रहे थे। उस प्रान्तमे सरकारको मुसलमानोंसे ही खतरा था हिन्दूसे नहीं। कोहाटमें अकेले मुसलमानोंने ही तर्के-मवालात (असहयोग) शुरु किया था और उन्हींको उसके लिए कष्ट सहन भी करना पड़ा था। इसलिए इस प्रान्तके लिए तो सरकारके अधिकारी लोग ही अधिक खतरनाक हैं और हिन्दू-मुसलमानोंको इनसे अपनी रक्षा करनी चाहिये।

(क) जब इस प्रकार दोनों कौममें एक दूसरेके प्रति द्वेष भाव फैला हुआ था उस समय वह पत्रिका कोहाटमें आयी जिसकी एक कवितामें काबा और पाक पैगम्बरकी बेइज्जती की गई थी। यह पत्रिका कोहाट सनातन धर्म सभाके मंत्री जीवन दासके लिए खास छापी गई थी। यह कहना न होगा कि कोहाटके मुसलमान तो क्या, किसी जगहके मुसलमानोंपर उसका कैसा खतरनाक असर हो सकता है। "इन्डियन डेली न्यूज" के एक लेखपर कलकत्ताके और सारे भारतके मुसलमान गुस्सासे जल उठे थे। वह उसके पेरिसके एक संवाददातका पत्र था। उसमें उसने लिखा था 'अफ्रिकाके अरब जिन्हें लड़ाईके वक्त गटर साफ करनेका काम सौंपा गया था वे मैलेको उतनी ही प्यार और इज्जतकी दृष्टिसे देखते थे जितनी कि इज्जतके साथ वे पैगम्बर साहबकी कब्रको देखते है।' इसपर मुसलमानोंने आग बबूला होकर सारे हिन्दुस्तानका विरोध जाहिर करनेके लिये कलकत्तेमें एक सभा की। सरकारने यह सभा रोक दी और जुलूस बनाकर आनेवाले मुसलमानोंपर गोलियाँ चलाईं जिससे

बहुतसे मुसलमान मारे गए और बहुतसे जख्मी हुए। उस समय मुसलमानोंके दिलमें क्या हो रहा था उसका मै खूब अन्दाज लगा सकता हूँ। ऐसे लेख छिपाये नहीं छिपते। इसलिए इसमें मैं मौलवी अहमदगुलका दोष नहीं निकाल सकता।

(ख) हिन्दुओंका पक्ष पूरा है और उन्होने बड़ी होशियारीसे उसे तैयार किया है। कोहाटमें बहुतसे अच्छी शिक्षा पाये हिन्दू है उनमें कुछ बैरिस्टर और वकील भी हैं। इसके अलावा हिन्दू जातिके दूसरे भी समर्थ और प्रसिद्ध हिन्दुओंकी मदद उन्हें मिलती है। लेकिन मुसलमानोका पक्ष हमे पूरा नही मालूम हुआ। वे दो हिस्सेमे बटे हुए है। पहले वे दोनो असहयोगी थे। लेकिन अब वे एक दूसरेके अलग-अलग विरोधी हो गए हैं। उनका एक होना संभव नहीं था और उन्हें बाहरके मुसलमानोकी सलाह और मदद नहीं मिली थी। मेरे बुलानेपर ये लोग आये इसलिए मैं उनका शुक्रगुजार हूँ। दूसरे सरकारी मण्डलकी तरह जिसे मुसलमानोंकी प्रतिनिधि कार्यवाहक समिति कहते हैं वे भी इन्कार कर सकते थे। लेकिन वे आये और अपनी गवाही दी। सैयद पीर जेलानी और मौलवी अहमदके गवाहीमे वास्तविक फर्क कुछ ज्यादह न था। उन दोनोंने इस बातको इन्कार किया कि ता० ९ सितम्बरको हिन्दुओके खिलाफ जेहाद शुरु करनेकी या सामान्य तौरपर उनपर हमला करनेकी कोई तैयारी की गई थी। श्री जीवनदासके यकायक छोड़ देने पर—जिसका किसीको भी ख्याल न था—मुसलमानोंने ता० ८की रातको डिप्टी कमिश्नरके पास जानेका निश्चय किया। डिप्टी कमिश्नरकी द्वीमुखी नीतिपर उन्हें निश्चय ही बड़ा क्रोध हुआ था। मुसलमानोसे एक बात कहते थे तो हिन्दुओसे दूसरी ही बात कहते थे।

(ग) हिन्दुओंको सैयद पीर जेलानीसे कोई शिकायत न थी। वे खिलाफत समितिके मंत्री मौलवी अहमद गुलका दोष निकालते थे। दोनो तरफके बयानसे यह साबित होता है कि २५ अगस्त १९२४ तक उनका व्यवहार अच्छा था। उस पत्रिकाका मामला हो जानेके बाद वे अपनेको संभाल न सके और सरकारकी तरफ चले गये। मौजूदा बिगड़ी हुई हालतमे जातिगत द्वेषके कारण बहुतसे पुराने और कसे हुये हिन्दू-मुसलमान कार्यकर्त्ता भी तो पंजाब और दूसरे प्रान्तोमे अपनेको संभाल न सके है। मौलाना अहमद गुल भी सामान्य मुस्लिम जनताकी सार्वजनिक रायके सामने टिक न सके। वे टल गये और हिन्दू-मुसलमान इत्तफाकमे उन्हें कुछ भी यकीन न रहा। यदि वे चाहते तो वे या दूसरा कोई हिम्मतवर नेता इस झगड़ेको रोक सकता था लेकिन उस समय ऐसा कोई शख्स न मिला। दीवान अनन्तरायने हम लोगोसे कहा कि वे बड़े बीमार थे और इसलिये कुछ काम न आ सके वरना यह कमनसीब घटना होने ही नहीं पाती। हिन्दुस्तानके दूसरे हिस्सोका मुझे जो ज्ञान है उसपरसे मैं मौलवी अहमदगुल जैसी स्थितिके आदमीसे कुछ ज्यादह उम्मीद नहीं रख सकता था। फिर भी वे जनताको अपने हाथमे नहीं रख सकते थे तो उन्हें स्वयं

अलग रहना चाहिये था। लेकिन उनके साथ ही उनके बारेमें हिन्दुओंने जो कुछ भी कहा है उन सबको मैं स्वीकार भी नहीं कर सकता हूँ।

हमें हमारे ही ख्यालके मुताबिक कोहाटके मामलेपर विचार नहीं करना चाहिए। वह अन्याय होगा। वहाँकी हालत वैसी नहीं जैसी कि हमारी है। खाली माफी मांग लेनेपर हम लोगोंको सन्तोष हो सकता था, फिर पुस्तके जलानेकी कोई जरूरत नहीं थी। लेकिन कोहाटके मुसलमानोंको उनकी तहरीरी माफीसे और पत्रिका जलानेसे भी संतोष नहीं हुआ। कोहाटमें दोनों कौमोंमें सुलह करानेवाला एक-एक आदमी भी होता, तो सब बात मित्रभावसे शान्तिके साथ तय हो जाती। पेशावरके खिलाफतके शिष्ट-मण्डलने, जिसके श्री हाजी जानमहम्मद, अमीरचन्द्र बम्वाल, सैयद लालबादशाह और अली गुल सदस्य थे, सुलह करानेके लिए भरसक कोशिश की लेकिन नतीजा कुछ भी न हुआ।

मैं हिन्दुओंको इस कल्पनापर विश्वास नहीं रखता कि ९ सितम्बरका दिन जेहादके लिए मुकर्रर किया गया था और उसके लिए पहले ही से निमंत्रण भेजे गये थे। सीमा प्रान्तके देहाती पठान लड़ना जानते हैं लेकिन वे व्यर्थ ही अपनी जान गवाँ देनेके लिए उत्सुक नहीं रहते। यदि दर असल वे हिन्दुओंको कत्ल करना चाहते थे तो दिनका प्रकाश उनके अनुकूल था और उनके विरोधियोंको मुकर्रर तारीख भी मालूम नहीं हो सकती थी। उस समय उन्होंने यकायक हमला करनेका प्रबन्ध किया होता। अलावा इसके ९ सितम्बर अर्थात् पहले दिनकी लड़ाई दोनो तरफसे करीब-करीब बराबर ही रही थी। दोनों तरफके बयानमें यही मालूम होता है कि यदि ज्यादह नही तो कितने हिन्दू मारे गये और जखमी हुए थे। मैं मुसलमानोंकी इस कल्पनापर भी, जो देहलीमें मेरे सामने रखी गई थी, विश्वास नहीं रख सकता था कि हिन्दू मुसलमानोंको सबक सिखानेके लिए उनपर हमला करनेकी तैयारी कर रहे थे। यह कहा जाता था कि हथियारोंसे सजकर और आड़में रहकर यदि वे लड़ेंगे तो एक ही अकस्मात किये गए हमलेसे यह दिखा देंगे कि वे मुसलमानोंसे शक्तिमें कहीं अधिक हैं। फिर जब पुलिस और फौज आ जायगी, मामलेका निपटारा करनेके लिए उसे कानूनकी अदालतपर छोड़ दिया जायगा। कोहाटके मुसलमानोंने तो यह स्पष्ट कह दिया है कि ऐसा होना गैरमुमकिन है।

मेरी रायमें ९ तारीखको जो लड़ाई हुई और गोली चली वह अकस्मात ही हुई थी। इसके लिए पहलेसे तैयारी नहीं की गई थी। तारीख ८ सितम्बरको जीवनदासको अचानक छोड़ देने पर हिन्दुओंके गर्ममिजाज लोगोंको बड़ी खुशी हुई होगी और उन्होंने अपनी मुस्लिमोंपर विजय जतानेके लिए खुले तौरपर वह खुशी जाहिर की होगी। लेकिन दूसरे ही दिन डिप्टी कमिश्नरने जब मुसलमानोंकी सरगर्मी देखी उन्हें जीवनदासके छोड़ देनेपर जो भूल हुई थी वह मालूम हुई और जीवनदास और दूसरे सनातन-धर्म-सभाके सदस्योंको पकड़नेके लिए उन्होंने

हुक्म जारी किया। तब मुसलमानोकी अपने विजयपर खुशी ज़ाहिर करनेकी बारी आई और उसपर लड़ाई छिड़ गई।

(घ) पहले गोली किसने चलाई ? मुसलमान कहते हैं कि बाजारमें सरदार माखन सिंहके मकानके पास एक मुसलमान लड़का और एक दूसरा आदमी मरा पाया गया था। हिन्दू कहते हैं कि पहले 'पराचाओके तीन फेरा' पहलेसे ही निश्चित किया हुआ हमला करनेके लिए मुसलमानोको इशारा था। मै इस आखिरी बातको नही मानता क्योकि वह हिन्दुओकी एक कल्पना मात्र है और उसका एक भी प्रमाण मुझे नहीं मिला।

ता० ८ सितम्बरकी रातको मुसलमानोने एक बड़ी और गुस्सेसे भरी हुई सभामें निश्चय किया था कि वे दूसरे दिन सुबह कमिश्नरके पास अपनी माग पेश करनेके लिये जॉयगे। लेकिन डिप्टी-कमिश्नरने उनके खिलाफ फैसला किया तो फिर वे यह भी देख लेगें कि वे इस बारेमे दूसरा क्या कर सकते हैं। डिप्टी-कमिश्नरने उनकी मांगको पूरा स्वीकार कर लिया था। सिर्फ जीवनदास ही नहीं बल्कि सनातन-धर्म-सभाके दूसरे सदस्य भी गिरफ्तार किये गये थे। भीड़ने जो मागा था वह उसे मिल गया था और इसलिये वह बड़ी खुश हो रही थी। उनके ख्यालसे उनके धर्मके मान-इज्जतकी रक्षा हो गई थी। इसलिये अब उन्हें हिन्दुओको कत्ल करनेका कोई मतलब न था। मेरा तो यही दृढ़ विश्वास है कि ९ तारीखको गोली चलाना, मकान जलाना इत्यादि काम इत्तफाकसे ही हुआ था। वहाँ दारु तो ढेरकी-ढेर लगी हुई थी। उसमें इत्ताफाकन बत्ती लग गई और एकदम आग भड़क उठी। न मुसलमानोका और न हिन्दुओका ही ऐसा कुछ इरादा था। मुसलमानोकी तो जीत हुई थी इसलिये स्वाभाविक तौरपर यह इच्छा हो ही नहीं सकती थी।

(च) हिन्दू और मुसलमान दोनोसे यह सुनकर बड़ी खुशी होती है कि वे इस प्रश्नको फिर उठाना नहीं चाहते, क्योकि इससे कुछ भी लाभ न होगा। इसीसे दोनो दलोके लोगोंने यह बार-बार कहा है और मेरा भी ख्याल है कि किसीपर दोष लगाए विना बाइज्जत और मित्रतायुक्त सुलह अब भी हो सकती है। मुसलमान कहते हैं कि ९ सितम्बरको वे यह हरगिज नहीं चाहते थे कि हिन्दू कोहाट छोड़कर चले जॉय और न उन्होने उन्हें कोहाट छोड़नेके लिये मजबूर ही किया था। पुलिस, सरहदकी पुलिस और तमाम बृटिश अधिकारी वहाँ मौजूद थे और १० ता० की लूट और लड़ाईके वे ही जिम्मेवार थे। यदि वे चाहते तो सब बन्द करा सकते थे लेकिन वे इसे बन्द कराना नहीं चाहते थे। सीमा प्रान्तपर हिन्दू-मुसलमानोकी यह लड़ाई उनके लिए ईश्वर-प्रेरित लड़ाई थी, ताकि उससे सीमा प्रान्तके मुसलमान और पंजाबके तथा सारे हिन्दुस्तानके हिन्दुओमे वैमनस्य अधिक बढ़ जाय और वे दुनियाँमें यह एलान कर सकें कि हिन्दू और मुसलमान अब खुले तौरपर लड़ रहे हैं और सुलह शान्तिकी रक्षाके लिए तो बृटिश सरकारके मजबूत हाथोकी ही जरूरत होगी।

(छ) मुसलमानोकी यह शिकायत है कि प्रभावशाली हिन्दू नेताओंकी मददसे हिन्दूओंने बृटिश सरकारको उनके साथ कुछ रियायतें करनेके लिए मजबूर किया है। भविष्यमें अब पुलिसमें आधे हिन्दू रहेंगे। मुसलमान स्त्री या पुरुष हिन्दुओंके मुहल्लेमें होकर न जा सकेंगे। कुचाबन्दी की जायगी। अधिकारियोंमें एक-तिहाई हिन्दू अधिकारी रहेंगे ही। कुछ और रियायतें उन्हें मिली हैं। उन्होंने यह भी कहा है कि हिन्दुओंकी मददसे सरकार ९७ फी सैंकड़ा मुसलमानोंकी वस्तीकी आजादी छीन लेना चाहती है। सैयद पीर कमाल जेलानी और दूसरे तीन शख्सोंको सरकारने ८०,००० रुपयेके मुचलके मांगे हैं और केवल इसलिए कि पीर साहब और उनके दोस्त कोहाटकी मुस्लिम कार्यवाहक समितिको मुसलमानोंकी प्रतिनिधि समिति नहीं मानते। सीमा प्रान्तके मुसलमानोंकी हालत गुलामसे कुछ ही ज्यादह अच्छी होगी और हिन्दुस्तानके दूसरे विभागोंके समान अधिकार प्राप्त करनेमें उन्हें राष्ट्रीय हिन्दुस्तानकी मदद दरकार है। उन्हे प्रतिनिधित्ववाली और चुनावसे पसन्द किये गए सदस्योंकी संस्थाएँ जैसे धारा सभा, म्यूनिसिपैल्टी, जिला बोर्ड और युनिवरसिटी इत्यादि सब कुछ चाहिए। उनकी शिक्षाके लिए कुछ भी प्रयत्न नहीं किया जाता है और उनकी जहालत तो दिलको दहलाने वाली है। कोहाटमें, पेशावरमें और तमाम सीमा प्रान्तकी म्यूनिसिपैल्टीमें सरकार-नियुक्त सदस्य होते हैं और ९७फी सैंकडा मुसलमानोंकी वस्तीको उतना ही प्रतिनिधित्व मिलता है जितना है कि जितना तीन प्रति सैंकड़ा हिन्दुओंको मिलता है अर्थात् सरकारकी तरफसे ४० फी सैंकड़ा प्रत्येक कौमके सदस्य चुने जाते हैं।

(ज) मेरी रायमें बाइज्जत सुलह करना मुश्किल नहीं है और दोनों कौमें यह चाहती भी हैं। तमाम देशको इन बहादुर लोगोंको स्वतंत्र करनेके लिए अपनी आवाज उठानी चाहिए और जहालताएँ और जंगली तौरपर काम करनेके तरीकोंसे, जो उन्हें और सारे देशको नुकसान करनेवाला है, उनकी रक्षाके लिए प्रयत्न करना चाहिए। हिन्दुस्तानके मुसलमानोंका इस बातपर ध्यान न देना दरअसल एक जुर्म है।

दंगेके दिनोंमें जिन लोगोंका कहने भरको ही धर्मान्तर हुआ है उसके सबन्धमे मेरी स्थिति स्पष्ट है। जबरदस्ती धर्मान्तर करनेके कामको मैं नफरतकी दृष्टिसे देखता हूँ। यह इस्लामके तत्वके खिलाफ है। यदि ऐसे धर्मान्तर हुए हो तो उनकी सब तरहसे निन्दा करनी चाहिए। लेकिन ऐसे धर्मान्तर होनेके संतोषकारक प्रमाण मुझे नहीं मिले है। मालूम होता है कि यह हुआ होगा कि कुछ हिन्दू अपनी ज़ान बचानेके लिए अपने मुसलमान मित्रोंके पास गए और उन्होंने अपनी चोटी काट डालनेको और दूसरे हिन्दू बाह्य-चिन्हको निकाल डालनेको कहा होगा। मुसलमान गवाहोंने सही तौरपर हिन्दुओंका धर्माबार होना स्वीकार नहीं किया है। बहुतसे मुसलमानोंने अपने हिन्दू पड़ोसीको बचानेके लिए झूठ-मूठ भीड़के लोगोंसे यह भी कह दिया था कि वे मुसलमान हो गये हैं।

ऐसे धर्मान्तरोंको सीमा प्रान्तमें भी धर्मान्तर नहीं माना गया है और वे वास्तविक धर्मान्तर हैं भी नहीं। सैयद पीरकमाल जेलानी और मौलवी अहमद गुल दोनोंने यह कहा था कि धर्मान्तर करनेकी सच्ची इच्छा होनेपर भी जबतक अमनके दिनोंमें और किसी प्रकारका खतरा न हो, उस समय वह फिर दुहरायी न जाय तबतक उसपर विश्वास नहीं किया जा सकता।

बेगुनाह और बेहथियारवाले दो शख्स कत्ल कर दिए गए थे। पीर साहबको जो उनकी खबर मिली उससे यह मालूम होता है कि वे इस्लाम कबूल नहीं करते थे इसलिये उन्हें कत्ल किया गया था। यह बड़े ही दुःखकी बात थी और इस कामको करनेवालोंकी जितनी थी निन्दा की जाय वह थोड़ी है। विवाहित स्त्रियों और दूसरोंके धर्मान्तरके सामान्य प्रश्नके संबंधमें अधिकारी मुसलिम उलेमा और दूसरे नेताओंसे ही निर्णय करा लेना चाहिये। मुझे इसमें अपनी राय देनेकी जरूरत नहीं है। लेकिन इसको तो सब लोग स्वीकार करते हैं कि इस दंगेके दिनोंमें विवाहित या दूसरी किसी भी स्त्रीने जानकर या जबरदस्तीसे इस्लामको अंगीकार नहीं किया है। कोहाटके मुसलमानोंसे, जिनकी संख्या बहुत बड़ी है, मेरा अर्ज है कि वे अपने हिन्दू भाइयोंसे मेल कर लें। हिन्दू-भाइयोंसे भी यही अर्ज करूँगा कि वे भी अपने मुसलमान पड़ोसियोंका साथ दें और उन्हें यह दिखा दें कि वे उन्हें अपना सच्चा पड़ोसी और मित्र मानते हैं।

जैसा कि मैं पहले कह गया हूँ यह एकतरफा मामला न था। मैं हिन्दू और मुसलमान दोनोंका कसूर निकालता हूँ। फिर भी मुसलमान होनेके कारण मैं मुसलमानोंका ही अधिक दोष निकालूँगा। वे संख्यामें और ताकतमें भी हिन्दुओंसे अधिक हैं। उन्हें कितने ही क्यों न चिढ़ाया गया हो उन्हें तो सब्र रखना चाहिए था और सब बरदाश्त कर लेना चाहिए था। मुझे अफसोस है कि उन्होंने इस कमबख्त लड़ाईके जोशमें आकर ऐसा नहीं किया। आखिर मुझे यह कहना चाहिए कि इस मामलेमें महात्माजी और मेरे जैसे निष्पक्ष शख्सोंके फैसलेमें भी जब इतना फर्क पड़ता है तो फिर दूसरे लोग इससे अधिक क्या कर सकते हैं। इसलिए हमें तो काजी बननेके बजाय सिर्फ सुलहके सिपाही बनना चाहिए।

हिन्दी-नवजीवन
२६ मार्च, १९२५

❀

'सहभोज'

एक महाशय लिखते हैं—

"मान लीजिए कि कोई सद्भाववाले मनुष्य सब वर्गोंमें सद्भाव पैदा करनेके लिए अन्तर्वर्गीय, अन्तर्जातीय और अन्तर्राष्ट्रीय भोजका निमन्त्रण दें और उसमें शाकाहार

और अ-मादक वस्तुओंका ही उपयोग किया जाय तो क्या कोई हिन्दू आपकी जातिका हो या कुटुम्बी हो—इस भोजनमें निमन्त्रण मिलने पर (और बेशक जबर्दस्ती नहीं) शामिल हो और आपसे राय मांगी जाय तो सनातन धर्मकी दृष्टिसे आपको एतराज होगा? इसी प्रकार आप ही किसी सनातन (या मर्यादा) धर्मकी दृष्टि रखनेवाले ब्राह्मणको निर्जन स्थानमें थका हुआ भूखा और प्यासा (यहां तक कि मूर्छित हो जानेकी तयारीमें हो) पाकर यदि कोई चाण्डाल या मुसलमान या ईसाई स्वच्छ चावलका खाना और पानी दे तो उसे वह स्वीकार करना चाहिए या नहीं? संक्षेपमें प्रश्न यह है कि एक सार्वजनिक भोज देकर अपनी सदिच्छाका प्रगट करना और एक अस्पृश्यका स्पृश्य हिन्दूको खाना देना एवं उसका स्वीकार करना आपके सनातन, वर्णाश्रम और मर्यादा धर्मके अनुकूल है या नहीं?"

यदि कोई ब्राह्मण संकटमें है और यदि वह चाहे कि मेरा शरीर कायम रहे, तो किसीका भी दिया स्वच्छ भोजन कर लेगा। मैं न तो सहभोजकी हिमायत करता हूँ न उसपर एतराज ही। क्योंकि ऐसे कार्योंसे मित्रता या सद्भावकी वृद्धि अवश्य ही होती हो सो बात नहीं। आज हिन्दू और मुसलमानके सहभोजकी तजवीज की जा रही है। पर मैं साहसके साथ कहता हूँ कि ऐसे भोजसे इन दोनों जातियोंमें एकता न हो सकेगी। क्योंकि ऐसे भोजके अभावके ही कारण ये एक-दूसरेसे दूर नहीं हैं। मैं ऐसे जानी दुश्मनोंको जानता हूँ जो एक साथ खाना खाते हैं, गप-शप लड़ाते हैं और फिर भी दुश्मन बने हुए हैं। लेखक दोनों विभाजक रेखा कहाँ खींचेगा? वे शाकाहार और अ-मादक वस्तुओंके भोजन तक ही क्यों ठहरते हैं? जो शख्स मांस खाना अच्छा समझता है और शराब चखना एक निर्दोष और आनन्दमयी तफरीह समझता है उसे तो अपने गो-मांसके टुकड़े शराबके प्यालेका सारी दुनियाके साथ लेन-देनका और खान-पान करनेमें सिवा सद्भावके और कुछ न दिखाई देगा। लेखक महाशयके प्रश्नमें गर्भित दलीलोंके आधारपर कोई विभाजक रेखा नहीं हो सकती। इसलिए मैं अन्तर्भोजको सद्भावकी वृद्धिमें सहायक नहीं मानता। मैं खुद तो इन खान-पानके बन्धनोंको नहीं मानता हूँ और मैं ऐसा खाना जो कि अभक्ष्य और निषिद्ध न हो, साफ-सुथरा होकर हर शख्सके हाथका खाता हूँ। पर जो लोग इन बन्धनोंको मानते हैं उनके मनोभावोंका लिहाज मैं जरूर रखता हूँ और न मैं इसलिए अपने पीठपर 'उदारता' की और दूसरेके मुह पर 'संकुचितता' की मुहर ही लगाता हूँ। यों जाहिर तौरपर मेरे उदार और व्यवहारिक होते हुए हो सकता है कि मैं संकुचित और स्वार्थी होऊँ और मेरे दूसरे मित्र जाहिरा तौरपर संकुचित दिखाई देते हुए भी उदार और निःस्वार्थ हों। सो इसका गुण और द्वेष हेतु पर अवलम्बित रहता है। सुहृदय-भावके वृद्धि करनेके साधनके तौर पर अन्तर्भोजके उदाहरणसे मेरी रायमें सद्भावकी वृद्धिकी गति कुन्ठित होगी क्योंकि उसके द्वारा एक तो मिथ्या प्रश्न खड़े होंगे और दूसरे मिथ्या आशाएं भी उदय होंगी। मैं जिस बातको दूर करनेका उद्योग कर रहा हूँ वह है श्रेष्ठता या उच्चताकी

धारणा। आरोग्यकी तथा आध्यात्मिक दृष्टिसे इन बन्धनोंका महत्व है। परन्तु उनके पालन न करनेसे मनुष्य रसातलको नहीं चला जा सकता। जिस तरहकी उनके पालन करनेसे वह सातवें आसमानपर नहीं चढ़ सकता। यह भी हो सकता है कि खान-पानके बन्धनोंका पालन बड़े नियम पूर्वक करनेवाला मनुष्य अधम, पापी और एक सहभोजी तथा सर्वभक्षी मनुष्य सदा पाप भीरु हो और उसकी संगति करना एक सौभाग्यकी बात हो।

हिन्दी-नवजीवन
३० अप्रैल, १९२५

❀

मेरी अक्षमता

यदि मैं सहायताके अभिलाषी हर व्यक्तिको उसके इच्छानुसार सन्तुष्ट कर पाता तो इससे मेरे अभिमानको बड़ी ही तसल्ली होती। पर मेरी आशातीत अक्षमताका यह नमूना लीजिये।

"यदि आप लोग मुसलमानोंसे गोवध बन्द कराके गो-रक्षा नहीं कर सकते तो फिर आपका नेतापन और महात्मापन किस मर्जकी दवा है? जरा देखिये, अलवरके अत्याचारोंके सम्बन्धमें आप किस तरह जान-बूझकर चुप हैं। और पण्डित मालवीयजीका जो निजाम सरकारने अपनी रियासतमें आनेसे रोक दिया है उसके सम्बन्धमें आपकी चुपकी तो दण्डनीय सी है। पू० मालवीयजीको आप लोग आदरणीय बड़ा भाई मानते हैं। उन्हें पहले दर्जेका लोक-सेवक कहते हैं और खुद आपहीने उन्हें मुसलमानोंके प्रति किसी प्रकारका मत्सर या वैर-भाव रखनेके दोषसे बरी किया है।"

एक नहीं अनेक लोगोंने यह दलील पेश की है। जिसमें पहली फटकार अन्तको मिली और वह आग धधकानेवाली आखिरी लकड़ी ही साबित हुई है। मेरे सामने एक तार पड़ा है जिसमें कहा गया है कि मैं मुसलमानोंसे अनुरोध करूँ कि आगामी बकरीदपर गायकी कुर्बानी न करें। मैंने सोचा कि यह समय है कि मैं कमसे कम अपनी खामोशीकी कैफियत तो दे दूँ। पण्डितजी सम्बन्धी इल्जामको तो मैं हजम कर जानेको तैयार था, हालाँकि उसके लगानेवाले मेरे एक प्रिय मित्र हैं। उन्हें मेरी कीर्तिको धक्का पहुचानेका बड़ा डर था। उन्होंने सोचा इससे मुझे लोग मुसलमानोंसे डर जानेका दोषी ठहरावेंगे और क्या न कहेंगे। परन्तु मैं अपने इस विचारपर दृढ़ रहा कि पण्डितजीके प्रवेश-निषेधपर अपने पत्रोंमें कुछ न लिखूँ। मुझे इस बातका जरा भी डर न था कि पण्डितजीको इससे गलतफहमी होगी और मैं जानता था कि पण्डितजीको मेरी रक्षाकी कोई आवश्यकता नहीं है। दुनियावी शक्तिके द्वारा की गयी तमाम निषेध आज्ञाओंको वे पारकर जायंगे। उनका

सत्यज्ञान उनका जीवट है। मैंने कितने ही कठिन अवसरोंपर उन्हें बहुत नजदीकसे देखा है। वे ज्योंके त्यों अविचल रहे। अपने कामको जानते हैं। और उसे करते हुए न अनुकूल समयमें फूल उठते हैं न प्रतिकूल समयमें विचलित होते हैं। इसलिये जब मैंने उस निषेध आज्ञाको सुना तो पेट भरकर हँसा। राजाओंके ढंग अनोखे होते हैं। मैं जानता था कि मेरे 'यंग इंडिया' में कुछ लिखनेसे श्रीमान निजाम अपने फरमानको वापस न कर लेंगे। यदि मेरी उनसे जान-पहचान होती तो मैं हैदराबादके नवाब साहबको सीधा पत्र लिखता और उनसे विनयपूर्वक कहता कि पंडितजीको रोकनेसे आपकी रियासतका कोई फायदा नहीं हो सकता और इस्लामका तो और भी नहीं। मैं तो उन्हें यह भी सलाह देता कि यदि पण्डितजी हैदराबाद जाँय तो उनको अपना मेहमान बनाइयेगा। और हजरत पैगम्बर और उनके साथियोंके जीवनसे ऐसी मिसालें पेश करता। परन्तु मुझे उनसे परिचयका सौभाग्य प्राप्त नहीं। और मैं जानता था कि पत्रोंमें लिखी बात शायद उनके कानतक न पहुंच पावे। ऐसी अवस्थामें सिवा मौजूदा मनमुटाव बढ़ानेके उससे और कुछ हासिल नहीं होता और यदि मैं उस मनमुटावको घटा नहीं सकता तो उसे बढ़ाना भी नहीं चाहता था, सो मैंने चुप रहना ही उचित समझा और इस समय जो मैं लिख रहा हूं, उसका उद्देश्य उन हिन्दुओंको जो कि मेरी बात सुनना चाहते हों यह सलाह देना है कि वे इस घटनापर चिढ़ न उठें और इसे इस्लाम या मुसलमानोंके खिलाफ शिकायत करनेका साधन न बनावें। इस निषेध आज्ञाका जिम्मेवार निजाम साहबका मुसलमानपन नहीं है। मनमानी कार्रवाई स्वेच्छाचारका एक गुण है—वह फिर हिन्दू हो या मुसलमान—देशी राज्योंको नष्ट करनेका प्रयत्न न करते हुए हमें उनकी मनमानी तरङ्गोंको रोकनेका उपाय अवश्य सोचना चाहिये। वह यह है कि प्रबुद्ध और प्रबल लोकमत तैयार किया जाय। जिस तरह बृटिश भारतमें यह कार्य आरम्भ हुआ है उसी तरह वहाँ भी आरम्भ होना चाहिये। वहाँ देशी राज्योंमें स्वभावतः ज्यादा आजादी है। क्योंकि वहाँका कार्य सीधा पार्लमेन्टके द्वारा होता है। देशी राज्योंकी तरह सम्राटके माण्डलिकोंके द्वारा नहीं। इस कारण वे बृटिश प्रणालीके दोष तो अपने यहाँ ले लेते हैं पर सीधा बृटिश शासन अपने लिये जो खिड़कियां रख लेता है उसे वे नहीं ले पाते। इसलिये भारतके देशी राज्योंमें सुव्यवस्थाका आधार रहता है ज्यादहतर राजाके चरित्र और लहरपर—बनिस्बत शासन-प्रधानके या यों कहें कि देशी राज्योंकी सरकारके नियम विधानोंके। इससे हम इस नतीजेपर पहुंचते हैं कि देशी राज्यमें सच्चा सुधार तभी हो सकता है कि जब कि बृटिश भारतमें लोगोंकी सुव्यवस्थित शक्तिके द्वारा प्राप्त आजादीके द्वारा बृटिश सरकारके ठण्डे नियंत्रणमें कमसे कम हस्तक्षेप तो हो। पर इसलिये यह आवश्यक नहीं कि सब पत्रवाले अपना मुँह बन्द कर ले। राज्योंके दोषोंका उल्लेख पत्र-संपादनका एक आवश्यक अंग है और वह लोकमत उत्पन्न करनेका एक साधन है। पर हाँ, मेरा

क्षेत्र बहुत मर्यादित है। मैंने पत्रोंका संपादन-भार पत्र-संचालनके लिये नहीं ग्रहण किया है। बल्कि जिसे मैंने अपना जीवन-कार्य समझा है उसकी सहायताके लिये। मेरा जीवन कार्य है—अत्यन्त संयम, उपदेश और संयमपूर्ण जीवनके द्वारा सत्याग्रहके अद्भुत अस्त्रका व्यवहार सिखाना जो कि सीधा, सत्य और अहिंसासे फलित होनेवाला सिद्धान्त है। मै यह प्रत्यक्ष दिखलानेके लिये उत्सुक हूँ, नहीं अधीर हूँ कि अहिंसाके सिवा जीवनकी कितनी ही बुराइयोंकी कोई दवा नहीं है। यह एक ऐसा प्रबल द्रावक रस है कि जिसमे वज्रातिवज्र हृदय भी पानी-पानी हुए बिना नहीं रह सकता। इसलिये मुझे अपनी श्रद्धाकी रक्षाके लिये क्रोध या मत्सरसे प्रेरित होकर कुछ न लिखना चाहिये। मुझे यो ही कोई बात न लिखनी चाहिये। मुझे केवल लोगोके मनोविकारोंको जाग्रत करनेके लिये कुछ न लिखना चाहिए। पाठकोंको इस बातकी कल्पना नहीं हो सकती कि हर सप्ताह विषयो और शब्दोके चुनावमें मुझे कितना संयमसे काम लेना पड़ता है। यह मेरे लिये खासी तालीम है। इसके द्वारा मुझे अपने अन्तःकरणमे झॉकने और अपनी कमजोरियोंको देखनेका अवसर मिलता है। अक्सर मेरा मिथ्याभिमान मुझे तेज लिखनेकी और क्रोधसे कड़ा विशेषण लगानेकी प्रेरणा करता है। यह एक भयंकर अग्नि-परीक्षा है। पर साथ ही इन गन्दगियोंको दूर करनेका बढ़िया मुहाविरा भी है। पाठक 'यंग इंडिया' के पृष्ठोको सुलिखित देखते हैं और रोमां रोलाके साथ शायद कहना भी चाहते हो कि 'वाह ! बूढ़ा क्या ही बढ़िया आदमी होगा।' अच्छा तो दुनियाँ इस बातको जान ले कि यह बढ़ियापन बड़ी चिन्ता और प्रार्थनाके साथ लाया गया है और यदि इसे कुछ लोगोने, जिनकी रायको मै अपने हृदयमे रखता हूँ स्वीकार किया है तो पाठक इस बातको समझ रखें कि जब यह बढ़ियापन बिलकुल एक स्वभाविक वस्तु हो जायगी अर्थात् जब मैं किसी भी बुराईके लिये अक्षम हो जाऊँगा और जब किसी तरहकी कठोरता या मगरूरी—फिर वह क्षण भरके लिये ही क्यो न हो—मेरे विचार संसारमें न रह जायगी तब और तभी मेरी अहिंसा दुनियॉके तमाम लोगोके हृदयोंको द्रवित कर देगी। मैंने अपने या पाठकोके सामने कोई असंभव आदर्श या अग्नि-परीक्षा नही रखी है। यह तो मनुष्यका विशेषाधिकार और जन्मसिद्ध अधिकार है। हमने उस स्वर्गको खो दिया है, पर उसे फिर प्राप्त कर सकते हैं। यदि इसमे बहुत समय लगता है तो वह सारे मन्वन्तरका एक अणु मात्र है। गीतामें भगवान श्री कृष्णने यह कहकर कि हमारे करोडों दिन ब्रह्माके सिर्फ एक दिनके बराबर हैं, इसी बातको प्रकट किया है। इसीलिये हमें चाहिये कि हम अधीर न हों और अपनी कमजोरीके कारण यह न ख्याल करें कि अहिसा दिमागकी नरमीका चिन्ह है। नहीं यह बात नहीं।

अब मुझे यह लेख जल्दी समाप्त करना चाहिये। अब पाठक समझ गये होंगे कि मैं क्यों अलवरके विषयमें चुप था। मेरे पास इतना ब्यौरा नहीं है कि मैं

कुछ लिखूँ। मेरी बात या लेखपर नियाज साहबकी तरह अलवर महाराज भी तिरस्कारके साथ हँस सकते हैं। अबतक जो बातें प्रकाशित हुई हैं वे यदि सच हैं तो दुहेरी छनी डायरशाही ही समझनी चाहिये। पर मैं जानता हूँ कि फिलहाल मेरे पास इसकी कोई दवा नहीं है। इन भीषण आरोपोंके संबन्धमें कमसे-कम उत्तम जाँच करनेके निमित्त पत्रवाले जो उद्योग कर रहे है उसे मै आदरकी दृष्टिसे देख रहा हूँ। मैं पण्डितजीकी राजनीतिपूर्ण कार्रवाईको भी धीरे-धीरे कदम बढ़ाते देख रहा हूँ। तब फिर मुझे चिन्ता करनेकी क्या जरूरत है? जो सज्जन मेरे पास नुस्खेके लिये आते हैं वे इस बातको जान ले कि मै कोई अमोघ कविराज नहीं हूँ और न मेरे पास भारी ओषधि भण्डार ही है। मैं तो एक टटोलते हुये जानेवाला विशेषज्ञ हूँ और मेरी छोटी सी जेबमें मुश्किलसे दो रसायन हैं जो कि एक दूसरेसे भिन्न नहीं हो सकतीं, और वह विशेषज्ञ फिलहाल इन बुराइयोंको दूर करनेकी अपनी अक्षमताको स्वीकार करता है।

और गो-प्रेमियोंको तो मैंने पहले ही कह दिया है कि अब मैं हिन्दुओं और मुसलमानोंपर अपना प्रभाव रखनेका कोई दावा नहीं करता जैसा कि कुछ समय पहले करता था। जबतक मैं उसे पुनः प्राप्त न कर लूं, गो-माता अपने इस बच्चेको माफ कर देगी। उसके प्राणके साथ ही मेरा भी प्राण जख्मी होता है। वह जानती है कि मैं उसके साथ विश्वासघात नहीं कर सकता। पर उसके दूसरे भक्त नहीं समझते हैं तो वह अवश्य मेरी अक्षमताको समझती है।

हिन्दी-नवजीवन
२ जुलाई, १९२५

❀

'त्याग-शास्त्र'

कलकत्तेकी सभामें मैंने कहा था कि देशबन्धुने मुझे मुसलमानोंके सम्बन्धमें 'त्याग-शास्त्र' को पराकाष्ठापर पहुंचा दिया था। मेरे इन उद्गारोंपर आपत्ति की गई है। इस आपत्तिका कारण यह है कि मेरे त्याग शब्दका आशय यह समझा गया है कि देशबन्धुने मुसलमानोंपर वह अनुग्रह किया जिसके लायक वे न थे। आक्षेपकर्त्ताने अपनी यह राय बना ली है कि हिन्दूलोग मुसलमानोंके साथ वैसा ही वर्ताव करते हैं जैसा कि अंग्रेज लोग हम लोगोंके साथ करते हैं। अर्थात् पहले तो हमसे सब कुछ छीन लिया और अब उसे अनुग्रहके नामपर भिक्षाके रूपमें दे देते हैं।

मैंने उस दिन सभामें जो कुछ कहा था उसका मुझे ज्ञान है। मैंने अपने उस भाषणको रिपोर्ट नहीं पढ़ी है, तो भी उस सभामें मैंने जो कुछ कहा है उसपर मैं दृढ़ हूँ। मैं साहसके साथ कहता हूँ कि बिना पारस्परिक त्यागके इस छिन्न भिन्न देशके लिये कोई आशा नहीं है। हमें चाहिये कि हद दर्जेतक अपने दिलको छुई-मुई न बना लें, कल्पना-शक्तिसे हाथ न धो लें। त्याग—किसीके लिये कुछ छोड़ देनेका अर्थ अनुग्रह करना नहीं। प्रेम जिस न्यायको प्रदान करता है वह है त्याग और कानून जिस न्यायको प्रदान करता है वह है सजा। प्रेमीको दी हुई वस्तु न्यायकी मर्यादाको लांघ जाती है और फिर भी हमेशा उससे कम होती है जितनी कि वह देना चाहता है। क्योकि वह इस बातके लिये उत्सुक रहता है कि और दूँ और अफसोस करता है कि अब ज्यादह नहीं है। यह कहना कि हिन्दूलोग अंग्रेजोंकी तरह बर्तते हैं, उनकी मानहानि करना है। हिन्दू यदि चाहें भी तो ऐसा नहीं कर सकते और मैं यह कहता हूँ कि खिदिर-पुरके मजदूरोंकी पशुताके होते हुये भी क्या हिन्दू और क्या मुसलमान, दोनो एक ही एक नाव्में बैठे हुये हैं। दोनो गिरे हुये हैं और वे प्रेमियोकी हालतमे हैं—उन्हें होना होगा—वे चाहें या न चाहें। इसलिये हरएक हिन्दू और मुसलमानका कार्य एक दूसरेके प्रति त्यागकी भावनाका होना चाहिये, न कि इन्साफकी भावनासे। वे अपने कार्योंको सोनेके काटेमें तौलकर उसपर दूसरेसे विचार नहीं करा सकते। हमेशा एकको अपनेको दूसरेका देनदार समझना होगा। इन्साफके नातेसे तो क्यो किसी मुसलमानको रोज मेरी आँखोके सामने एक गाय न मारनी चाहिये ? पर मेरे साथ जो उनका प्रेम है वह उसे ऐसा नहीं करने देता और यहाँतक कि वह तो अपनी हदसे आगे बढ़कर मेरी मुहब्बतके खातिर गो-मास भी खानेसे बाज आता है और फिर भी समझता है कि मैंने सिर्फ वह काम किया है जो कि करना उचित था। इन्साफ तो मुझे इजाजत देता है कि मैं मुहम्मद अलीके कानमे जाकर, जब कि वे नमाज पढ़ रहें हो, बाजें बजाऊँ और गाना गाऊँ; पर मैं अपनी हदसे आगे बढ़कर उनके जजबातका ख्याल करता हूँ और फिर भी समझता हूँ कि यह मैंने मौलाना साहबपर कोई मेहरबानी नहीं की है। बल्कि इसके प्रतिकूल यदि मैं खासकर उनके नमाजके समय अपने घंटा-घोपके न्याय-हकका प्रयोग करू तो मैं एक घृणित आदमी समझा जाऊंगा। यदि देशबन्धुने कुछ जगहोपर मुसलमानोको नियत न किया होता तो न्यायको संतोप हो गया होता, पर उन्होने अपनी हदसे आगे बढ़कर मुसलमानोंकी इच्छाका विचार किया और उनके मनोभाव जो देशबन्धुके दिलमे थे वही उनको मृत्युकी ओर जल्दी ले जानेका कारण हुआ क्योंकि मैं जानता हूँ कि जब उन्होने देखा कि अनाधिकृत जमीनपर गाड़े गये मुर्दोंको न गाड़ने देनेपर न्याय उन्हें वजबूर कर रहा है तब उनके दिलको कितना धक्का लगा था और वे मुसलमानोंके भावोको जरा भी धक्का पहुँचने देना न चाहते थे, फिर भले ही वह युक्तिसंगत न भी हो। यह सब वे हदसे बाहर जाकर कर

रहे थे। अपनी हदसे नहीं, बल्कि दुनियांकी हदसे। और फिर भी उन्होंने कभी ख्याल न किया कि मुसलमानोंके भावोंका इतनी कोमलताके साथ विचार करके मैं उनके साथ कोई मेहरबानी या एहसान कर रहा हूं। प्रेम कभी दावा नहीं करता वह तो हमेशा देता है। प्रेम हमेशा कष्ट सहता है। न कभी झुंझलाता है, न बदला लेता है।

इसलिये यह न्याय और कई न्यायकी बातें एक दिलका उफान है, विचार-हीन, क्रोधयुक्त और अज्ञानपूर्ण उफान है, फिर वह चाहे हिन्दुओंकी तरफसे हो चाहे मुसलमानोंकी तरफसे। जबतक हिन्दू और मुसलमान इन्साफके गीत गाते रहेंगे तबतक वे कभी एक दूसरेके नजदीक नहीं आ सकते। 'जिसकी लाठी उसकी भैंस' यह न्यायका और महज न्यायका आखिरी वचन है। अंगरेजोंने जिस चीजको विजयके द्वारा हासिल किया है उसे एक इंच भी वे क्यों छोड़ दें? और क्यों हिन्दुस्तानी लोग जब उनके हाथमें राज्यकी बागडोर आ जाय, अंग्रेजोंसे वे तमाम चीजें न छीन लें जो उनके बाप-दादोंने उनसे छीन ली है? फिर भी जब कि हम आपसमें निपटारा करने बैठेंगे और किसी दिन हमें बैठना ही होगा, तो इस न्यायके नामसे पुकारी जानेवाली तुलापर नाप-जोख न करेंगे। बल्कि हमें 'त्याग' का यह भड़कानेवाला अंश, जिसे कि दूसरे शब्दोंमें प्रेम, सौहार्द या भ्रातृभाव कहते हैं, अपने मद्दे नजर रखना पड़ेगा और यही बात करनी होगी। हम हिन्दुओं और मुसलमानोंको भी जब कि हम एक-दूसरेका सिर काफी फोड़ चुकेंगे, निर्दोषोंका खून बहा चुकेंगे और अपनी बेवकूफीको समझ लेंगे तब यह तराजूकी और बाटकी बात हमारी नजरोंसे गिर जायगी और हम समझेंगे कि न तो बदला निकालना न न्याय, मित्रताका नियम है कि बल्कि त्याग, अकेला त्याग, उसका नियम है। तब हिन्दू गो-कुशीको अपनी आँखोंके सामने बरदाश्त करना सीख जायंगे। तब मुसलमानोंको मालूम होगा कि हिन्दुओंका दिल दुखानेके लिये गो-कुशी करना इस्लामकी शरीयतके खिलाफ है। जब वह सुदिन आवेगा तब दोनों एक दूसरेके गुण ही देखेंगे। हमारे दोष, हमारे दृष्टि-पथको न रोकेंगे। वह दिन बहुत दूर हो, चाहे बहुत नजदीक मेरा दिल कहता है कि वह जल्दी आ रहा है। मैं तो सिर्फ उसी दिनके लिये काम करूंगा। दूसरेके लिये नहीं।

मेरे लिये, सावधानीके तौरपर यह कहनेकी शायद ही आवश्यकता होगी कि मेरे त्यागका अर्थ सिद्धान्तका त्याग नहीं है। मैंने उस सभामें इस बातको साफ कर दिया था और फिर यहाँ उस बातपर जोर देता हूं। पर अभी हम जिस बातके लिये लड़ रहे हैं वह सिद्धान्त किसी हालतमें नहीं है, बल्कि मिथ्याभिमान और पूर्व संचित कलुषित विचार है। हम बूंदके लिये मरते हैं और समुद्रको खो देते हैं।

हिन्दी-नवजीवन
९ जुलाई, १९२५

सत्यपर कायम रहो

बकरीदके दिन खिदिरपुरमें जो हिन्दू-मुसलमानोका दंगा हुआ उसका हाल सुननेकी झंझटमे मैंने पाठकोको नहीं डाला, हालांकि मै दंगेके कुछ घन्टे बाद खुद मौकेपर पहुँच गया था। पर हाँ, रशा रोडको वापस लौटते ही एसोशिएटेड प्रेसके प्रतिनिधिसे मैंने उसका वर्णन किया था। उसमे मैंने विचारके उपरान्त अपनी यह राय दी थी हिन्दू कुलियोंका सारा दोष था। इस समाचारको पढ़कर कुछ हिन्दू सज्जन मुझपर बहुत बिगड़े हैं और इस बातपर कि मैंने हिन्दुओका दोष बताया है, मुझे बहुत बुरा-भला कहा है। चिट्ठियोमें मुझे खूब गालियाँ दी गयी है और उनका स्वर और ढंग क्रोधोत्पादक भी है। यहाँतक कि एकने तो मुझे मुसलमान नाम भी प्रदान की है। मै इन पत्रोका उल्लेख यहाँ यह दिखानेके लिये करता हूँ कि हमारे कुछ लोग अपने मजहबके अन्धाधुंध जोशमे किस हदतक पहुँच गये हैं। हम इस बातको देखना और सुनना ही नहीं चाहते कि हमारे अन्दर भी, हमारा भी कुछ दोष है। जब किसी धर्म-विशेषके बहुसंख्यक अनुयायियोकी यह रोजमर्राकी हालत हो जाती है तब समझ लेना चाहिये कि वह धर्म डूब रहा है; क्योंकि असत्यकी नींवपर स्थित कोई बात अधिक समयतक नहीं टिक सकती।

मै तो यह कहनेका साहस करता हूँ कि मैंने बिना किसी रू-रियायतके हिन्दू कुलियोंके दोष प्रकट करके हिन्दू धर्मकी सेवा की है। मेरी इस स्पष्टोक्तिपर खुद कुलियोंने भी अपनी नाराजगी न प्रकट की। बल्कि उल्टा वे तो उसके लिये कृतज्ञ होते हुए दिखाई दिये। उनके दिलमे पश्चातापकी प्रेरणा हुई, उन्होंने कसूरको कबूल किया और सच्चे दिलसे उसके लिये माफी मांगी।

अच्छा तो अब मैंने जो कुछ अपनी आँखोंसे देखा और अपने दिलमे अनुभव किया उसे न कहता तो क्या करता? क्या मैं गुनहगार लोगोको छिपानेके लिये झूठ बोलता? जब कि आधी रातको हर वक्त हर जगह जो पहुंचनेवाले संवाददाता मेरे पास पहुंचे तो क्या मैं बात-चीत करनेसे इन्कार कर देता? उस समय भी जब कि कहनेका प्रसंग था, यदि मै सच-सच कहनेमे आगा-पीछा करता तो मेरा अपनेको हिन्दू कहलानेका अधिकार नष्ट हो गया होता। मैं महासभाके सभापतिके पदके अयोग्य अपनेको साबित करता और एक सत्याग्रहीके तौरपर अपने नामको धब्बा लगवाता। हिन्दुओंको चाहिये कि वे खुद अपने उस इल्जामके अपराधी अपनेको न बनावें जो कि बिना झिझके मुसलमानोपर लगाते हैं—अर्थात् यह कि पहले तो बुरा काम करना और फिर झूठ बोलकर उसे छिपाना।

एक पत्र-लेखक कहते हैं कि जब कि देहलीमें हिन्दुओंने आपकी सहायता चाही तब तो आपने कह दिया, क्या करूँ, निरुपाय हूँ, कुछ बस नहीं है; जब

लखनऊमें आपको बुलाया गया तो आपने टाल-टूल कर दिया और जब कि हिन्दुओंपर छी: थू: करनेका मौका आया तो आप फौरन मौकेपर जा पहुँचे और उनके सम्बन्धमें बिना विचारे राय कायम कर डाली। सो पाठक इस बातको जान लें कि मैं हिन्दुओंकी तरफसे, एक हिन्दूके द्वारा निमन्त्रण मिलनेपर तथा श्री सेनगुप्तके बुलाए जानेपर, वहाँ गया था। मेरी बेबसीके रहते हुए भी जब कि खास लड़ाई हो रही हो, और खासकर जब किसी भी एक पक्षकी तरफसे मुझे बुलावा आवे तो मुझे अवश्य उनकी सहायताके लिये वहाँ पहुँच जाना चाहिये। मैं अपनी लाचारी तो उस हालतमें प्रकट करता हूँ कि एक पक्षके लोग मुझे किसी झगड़ेको निपटानेके लिये या उसे रोकनेके लिये बुलाते हैं। क्योंकि कुछ किस्मके हिन्दू और मुसलमानोंपर अब मेरा प्रभाव नहीं रह गया है। मैं समझता हूँ कि इन दोनों हालतोंका अन्तर इतना साफ है कि उसे खोलकर बतलानेकी आवश्यकता नहीं है।

परन्तु पत्र-लेखक कहते हैं और हिन्दुओंके एक शिष्ट-मण्डलने भी, जो कि मुझसे मिलने आया था, कहा था कि आपने हिन्दुओंको जो बुरी तरहसे फटकारा है, उससे मुसलमानोंको निर्दोष लोगोंपर हमला करनेका बड़ा उत्साह मिल गया है और मैं मानता मुसलमान गुण्डोंको बाजारमे हिन्दू-दूकानोंको लूटनेका मौका मिल गया है। सो यदि मेरे हिन्दुओंके कुकृत्योंकी निन्दा-फटकार करनेका फल यह हो कि मुसलमान लोग कुकृत्य करने लगें, तो इससे मुझे बड़ा रंज होगा। पर इतना होते हुये भी मै उचित काम करनेसे पीछे न हटूँगा। हिन्दू लोग मुसलमानोंके हमलोंसे डरें क्यों? यदि हिन्दू लोग मेरे अहिंसात्मक और त्यागात्मक उपायका अवलम्बन न कर सके, और मैं मानता हूँ कि धन-दौलत रखनेवालोंके लिये मुश्किल है, तो हिन्दुओंके लिये अवश्य ही यह ठीक होगा कि अपनी आत्मरक्षाका हर तरहसे उपाय करे। हम चाहें हिन्दू हों वा मुसलमान जबतक अपनी भीरुता न छोड़ेंगे और आत्म-रक्षा करनेकी विद्या न सीख लेंगे तबतक हम मनुष्य नहीं कहला सकते। जो लोग खुद अपनी रक्षा करना नहीं सीखते, लेकिन औरोंके द्वारा कराना पसन्द करते हैं उनके सिरपर जो निश्चित खतरा मँडराता रहता है उसे लुक-छिपकर किसी तरह नही टाल सकते। खिदिरपुरके हिन्दुओंकी जो मैंने भर्त्सना की है, उसमें उन लोगोंकी भर्त्सना अवश्य ही नहीं है जो कि अपने होनेवाले आक्रमणोंसे अपनी रक्षा करते है। यदि हिन्दु लोगोंने एक होकर मार-पीट करनेके बजाय, आत्म-रक्षाके लिए हर तरहके संकटका मुकाबिला किया होता और उसमें प्राण भी दे दिये होते तो मैंने उनके वीरताकी तारीफ की होती। परन्तु खिदिरपुरमें, वहाँ मुझे पता है, उनकी तादाद बहुत ही भारी थी और खुद आगे होकर उन्होंने हाथ चलाया था। मुसलमानोंकी ओरसे मार-पीटका कोई कारण नहीं दिया गया था। जिस तरहकी मैंने गुलबर्गा और कोहाटमे किये मुसलमानोंके कुकृत्योंको, जो कि मेरी रायमे बिल्कुल अनावश्यक थे, बिला दिक्कत धिक्कारी था उसी प्रकार

में उत्तेजनाका कारण मिले बिना की गई मार-पीटको जरूर बिला झिझके बुरा कहूँगा। एक वार पर दो वार करनेको भी मैं समझ सकता हूं, परन्तु बिना किसी किसको उत्तेजना या खास मौकेके लिये पैदाकी गई उत्तेजनाके की गई खून-खराबीके हकमें मैं अपनी राय कैसे बना सकता हूँ ?

हिन्दी-नवजीवन
१६ जुलाई, १९२५

❀

मैं अंग्रेजोंसे द्वेष करता हूँ ?

९ जुलाई, १९२५ के 'यंग-इंडिया' मे त्याग-शास्त्र नामक लेख प्रकाशित हुआ है। उसके नीचे लिखे वाक्योंपर कुछ आदरणीय अंग्रेज मित्रोंने आपत्ति की है—

"मैं साहसके साथ कहता हूं कि बिना पारस्परिक त्यागके इस छिन्न-भिन्न देशके लिए कोई आशा नहीं है। हमें चाहिये कि हम हद दरजेतक अपने दिलको छुई-मुई न बना लें, कल्पना-शक्तिसे हाथ न धोलें। त्याग—किसीके लिये कुछ छोड़ देनेका अर्थ अनुग्रह करना नहीं। प्रेम जिस न्यायको प्रदान करता है वह है त्याग और कानून जिस न्यायको प्रदान करता है वह है सजा। प्रेमीकी दी हुई वस्तु न्यायकी मर्यादाको लांघ जाती है और फिर भी हमेशा उससे कम होती है जितनी कि वह देना चाहता है। क्योकि वह इस बातके लिये उत्सुक रहता है कि और दूँ और अफसोस करता है कि ज्यादह नहीं है। यह कहना है कि हिन्दूलोग अंग्रेजोकी तरह वर्तते हैं उनकी मानिहानि करना है। हिन्दू यदि चाहें भी तो ऐसा नहीं कर सकते और यह मैं कहता हूँ कि खिदिरपुरके मजदूरोकी पशुता होते हुए भी क्या हिन्दू और क्या मुसलमान दोनो एक ही नावमे बैठे हुए हैं। दोनो गिरे हुए हैं और वे प्रेमियोको हालतमें हैं—उन्हे होना होगा —वे चाहें या न चाहें।"

वे मित्र समझते है कि इन वचनोकी लिखकर मैंने अंग्रेजोके साथ भारी अन्याय किया है। क्योंकि वे कहते हैं कि इसमे जो निन्दा गर्भित है वह तमाम अंग्रेजोपर घटाई गई है। मुझे दुःख है यदि इन वचनोसे किसी तरह ऐसा अर्थ निकल सकता है। मेरा यह आशय हरगिज न था। मैं उन मित्रोको यकीन दिलाता हूँ कि मेरा यह भाव न था। संदर्भसे यह बात स्पष्ट हो जाती है कि मेरे उद्गार सारे अंग्रेज जातिपर नहीं घट सकते जिन्होने कि भारतवासियोके लिए अपनेको खपा दिया है।

मुसलमानोंका इल्जाम यह था कि हिन्दू लोग मुसलमानोंको उसी तरह दबाते हैं और गुलामीमें रखते हैं जिस तरहकी अंग्रेजोने हिन्दू और मुसलमानो दोनोंको रख छोड़ा है—इसमें जरूर उनका आशय अधिकांश हिन्दुओं और अंग्रेजों से था। उद्धृत वाक्यांसे मैंने यह दिखलानेकी कोशिश की थी कि हिन्दू यदि मुसलमानोको दबाना चाहें तो भी उनके पास शक्ति नहीं है। यदि मेरी यह उक्ति सिर्फ उन अंग्रेजोके लिये हो जो कि हिन्दुस्तानमें रहते है तो उन्हे उसपर अपत्ति नहीं है, इसलिये नहीं कि वे इस दरजे तक भी मेरी रायकी पुष्टि करते हैं, बल्कि इसलिये कि उसमें उनको धक्का नहीं लगता, क्योंकि वे बरसोंसे मेरी इस रायको जानते हैं। पर उन्हें धक्का इसलिये पहुंचा कि उन्होंने समझा कि मैंने धिक्कारमे तमाम अंग्रेजोको और उन मित्रोंको भी शामिल कर लिया है जो कि सच्चाईके साथ अपनी पूरी शक्ति भर भारतकी सेवा करनेकी कोशिश कर रहें है। उन्होंने समझा कि वह अंश द्वेष और क्रोधसे प्रेरित होकर लिखा गया है। पर सच बात तो यह है कि उस वाक्यांशको लिखते समय न तो मेरे दिलमें द्वेष भाव था और न रोष ही था। और यदि उस अंशसे यह अर्थ निकलता हो जिसे मैं अब भी मानता हूँ कि मैं अंग्रेजी भाषा लिखना नहीं जानता, क्योंकि वह मेरी मातृ-भाषा नहीं और उसकी बारीकियों और उलझनोंपर मेरा काबू नहीं हो पाया है। मै मानता हूँ कि मुझे दुनियाँमें किसीसे द्वेषभाव नहीं हो सकता है। बरसोंके संयम और साधनके फल स्वरूप मैंने कोई ४० सालसे किसीसे द्वेष रखना छोड़ दिया है। मैं जानता हूँ कि यह एक भारी दावा है। फिर भी मैं इसे पूरी नम्रताके साथ पेश करता हूँ पर हाँ, बुराईसे, वह जहाँ कहीं हो, मैं द्वेष अवश्य करता हूँ। मै उस शासन प्रणालीसे द्वेष करता हूं जिसे अंग्रेजोंने भारतवर्षमें स्थापित किया है। अंग्रेज वर्ग जो भारतमें अपनेको बड़ा लगाते हैं उसके इस ढंगसे मैं द्वेष करता हूँ। भारतकी जो बेतहाशा लूट हो रही है उससे मैं द्वेष करता हूँ। जिस तरह कि मैं तहे दिलसे हिन्दुओंकी अछूतपनकी घृणित प्रथासे द्वेष करता हू परन्तु मै उन अंग्रेजोंसे द्वेष नही करता जो यहाँ बड़े बने हुए हैं जिस तरह कि ऊंचे बने बैठे हिन्दुओंसे द्वेष नहीं करता। मैं हर-तरहके प्रेम-पूर्ण साधनोंसे ही उनका सुधार करना चाहता हूँ। असहयोगका मूल द्वेष नहीं, प्रेम है। मेरा व्यक्तिगत धर्म मुझे जोरसे मना करता है कि किसीसे द्वेष न करो। अपनी एक पाठ्य पुस्तकसे मैंने यह सरल परन्तु भव्य सिद्धान्त सीखा था जब कि मेरी उम्र १२ सालकी थी और वह विश्वास अब तक बना हुआ है। वह दिन-दिन मुझ पर रंग जमाता जा रहा है। मुझ पर उसकी धुन सवार है। अतएव मैं उन अंग्रेज भाईको यकीन दिलाता हूँ जिनकी कि गलतफहमी इन मित्रोंकी तरह हुई हो कि मैं कभी अंग्रेजोंसे द्वेष रखनेका अपराधी न होऊंगा। फिर भले ही १९२१की तरह मुझे उनसे नम्रताके साथ क्यों न लड़ना पड़े। वह लड़ाई होगी शान्तिमय, वह लड़ाई होगी स्वच्छासे, और वह लड़ाई होगी सत्यमय।

मेरा प्रेम परिमित नहीं। मैं अंग्रेजोंसे द्वेष रखते हुये हिन्दुओं और मुसलमानोंसे

चूंकि मैंने अपनेको हिन्दू-मुस्लिमका विशेषज्ञ या उसपर प्रमाण-रूप मानना छोड़ दिया है, मुझे लेखककी उठाई अन्य बातोंपर कुछ लिखनेकी आवश्यकता नहीं है । इस पत्रके लिए भी मैंने बहुत अनिच्छापूर्वक स्थान निकाला है। मैंने महसूस किया कि लोहानीके बारेमें अपनी जांचका फल पाठकोंके सामने प्रकट करनेके लिए बाध्य हूँ ।

हिन्दी-नवजीवन
२७ अगस्त, १६२७

❀

पाठकोंसे

मैंने उन्हें क्या लिखूं ? मेरा और तुम्हारा सम्बन्ध, मेरी दृष्टिसे असाधारण है। 'नवजीवन' के सम्पादकका पद मैंने न तो धन-लोभसे और न कीर्ति-लोभसे ग्रहण किया। मैंने तो अपने शब्दोंके द्वारा तुम्हारे हृदयको हिलानेके लिये यह पद स्वीकार किया है। मेरे सिर तो वह अनायास आ पडा है। परन्तु जबसे आया है तभीसे मै तुम्हारा ही चिन्तन करता रहा हूँ। प्रति सप्ताह 'नवजीवन' में मैंने अपनी आत्मा उडेलनेका प्रयत्न किया है। एक भी शब्द ईश्वरको साक्षी रखे विना मैंने नहीं लिखा है। तुम्हें जो प्रसादी पसन्द हो वही देना मैंने अपना धर्म नहीं समझा । कितनी ही बार मैंने कड़वी घूंट भी पिलाई है । किन्तु कड़वी या मीठी हर एक घूंटमें मैंने वही बतानेकी कोशिश की है जिसे मैंने निर्मल धर्म माना है, जिसे मैंने स्वच्छ देश-सेवा मानी है ।

आज जो मैं उपवास कर रहा हूँ सो संपादक-पदके अधिक योग्य होनेके लिए । मै जानता हूँ कि 'नवजीवन' के अनेक पाठक भाई-बहन मेरे लेखोंको देखकर चलते हैं। कहीं मैंने उन्हें गलत रास्ता दिखाकर हानि पहुंचाई हो तो ? यह ख्याल मुझे बराबर खटकता रहता था

अस्पृश्यताके बारेमें मुझे कभी लेश-मात्र सन्देह न हुआ। चरखेके विषयमे तो सन्देहके लिए जगह ही नहीं। वह लंगड़ेकी लाठी है—सहारा है । भूखेको दाना देनेका साधन है। निर्धन स्त्रियोंके सतीत्वकी रक्षा करनेवाला किला है। सब लोगोंके द्वारा उसके स्वीकृत हुए विना हिन्दुस्तानकी फाकेकशी मिटाना असंभव मानता हूँ। इस कारण चरखा चलानेमे अथवा उसका प्रचार करनेमे भूलके लिए कहीं भी गुंजाइश नहीं है । हिन्दू-मुसलमान-ऐक्यकी आवश्यकताके विषयमें कहीं संशयके लिए स्थान नहीं। उसके बिना स्वराज्य आकाश-पुष्पवत है ।

परन्तु विशाल अहिंसाको ग्रहण करनेके लिए तुम तैयार हो या नहीं, इसके विषयमें मुझे सदा सन्देह रहा है । मैंने तो पुकार कर कहा है कि अहिंसा-क्षमा

वीरका लक्षण है। जिसे मरनेकी शक्ति है वही मारनेसे अपनेको रोक सकता है। मेरे लेखनीसे तुम भीरुताको अहिसा मान लो तो ? अपने लोगोकी रक्षा करनेके धर्मको खो बैठो तो ? मेरी अधोगति हुए बिना न रहे। मैंने कितनी ही वार लिखा है और कहा है कि कायरता कभी धर्म हो ही नहीं सकता। संसारमें तलवारके लिए जगह जरूर है। कायरका तो क्षय हो ही सकता है । उसका क्षय ही योग्य भी है। परन्तु मैने तो यह लिखनेका प्रयत्न किया है कि तलवार चलानेवालेका भी क्षय ही होगा । तलवारसे मनुष्य किसको बचावेगा और किसको मारेगा ? आत्म-बलके सामने तलवार-बल तृणवत है । अहिंसा आत्माका बल है । तलवारका उपयोग करके आत्मा शरीरवत् बनती है। अहिसाका उपयोग करके आत्मा आत्मवत् बनती है। जो इस बातको न समझ सके उसे तो तलवार हाथमे लेकर भी अपने आश्रितोकी रक्षा जरूर करनी चाहिए।

ऐसे अनमोल अहिसा-धर्म को मै शब्दोके द्वारा प्रकट नहीं कर सकता । खुद पालन करके ही उसका पालन कराया जा सकता है । इससे इस समय मैं उसका पालन कर रहा हूॅ। मन्दिरोको तोड़नेवाले मुसलमानको भी मैं तलवारसे न मारूॅगा। उसपर मै क्रोध भी न करूॅगा। उसे भी मैं केवल प्रेमके ही द्वारा जीतूंगा।

मैंने लिखा है कि हिन्दुस्तानमे यदि एक ही शुद्ध प्रेमी पैदा हो जाय तो वह स्वधर्मकी रक्षा कर सकता है। मै चाहता हू कि ऐसा बनूं। मैं हमेशा लिखता रहा हूॅ कि तुम भी ऐसे बनो ।

मैं जानता हूॅ कि मेरे अन्दर वहुत प्रेम है । पर प्रेमकी तो सीमा ही नहीं होती। मैं यह भी जानता हूॅ कि मेरा प्रेम असीम नही है। मैं सांपके साथ कहां खेल सकता हूॅ ? जो अहिसा-मूर्ति हो उसके सामने सांप भी ठंडा हो जाता है। मुझे इसपर पूरा-पूरा विश्वास है ।

उपवास करके मैं अपनी जाँच कर रहा हूॅ, विशेष प्रेम उत्पन्न कर रहा हूँ। मैं अपना कर्तव्य पूरा करके तुम्हें तुम्हारा कर्तव्य बतानेकी इच्छा रखता हूॅ। तुम यदि मेरे साथ उपवास करोगे तो वह निरर्थक है। उसके लिए समय, अधिकार आदिकी जरुरत रहती है। तुम्हारा कर्तव्य तो यही है कि जो तीन चीजें मैं भिन्न-भिन्न रूपमें तुम्हारे सामने पेश कर रहा हूॅ उनको साधो। उनके द्वारा दूसरी सब बातें अपने आप सध जायॅगी। यह मेरा विश्वास है।

मेरे उपवासके औचित्यपर शंका करनेके बदले तुम ईश्वरसे ही माॅगो कि मेरे उपवास निर्विघ्न पूरे हो। मै फिर 'नवजीवन' के द्वारा तुम्हारी सेवा करने लगूॅ और मेरे शब्दो मे अधिक बल आये।

हिन्दी–नवजीवन
२८ सितम्बर, १९२४

हृदयका पलटा

अवतक उन अंग्रेजोंके जिनसे भारत सरकार बनी हुई है हृदय बदल देनेकी उत्कण्ठा रक्खी गई थी और उसीके लिए प्रयत्न भी हो रहा था। परन्तु अभी वह तो होना बाकी ही था कि यह प्रयत्न अब हिन्दू और मुसलमानोंके परस्पर दिल बदलनेके लिए करना होगा। स्वतंत्रता–स्वराज्य–का विचार करनेके भी पहले उन्हें इतना बहादुर जरूर बनना पड़ेगा कि वे एक दूसरेसे प्रेम कर सकें, एक दूसरेके धर्मको सहन कर सकें, धार्मिक दुर्भाव और वहमको भी दरगुजर कर सकें और और एक दूसरे पर विश्वास रख सकें। इसके लिए आत्म-विश्वास होना जरूरी है। यदि हमारे अन्दर आत्म-विश्वास है तो हम एक दूसरेसे डरना छोड़ देंगे।

हिन्दी–नवजीवन
५ अक्टूबर, १९२४

एकता-परिषद्

सभापतिके द्वारा उपस्थित किये जानेपर नीचे लिखा प्रस्ताव 'एकता परिषद् में सर्व-सम्मतिसे पास हुआ—

महात्मा गांधीके उपवाससे इस परिषद्को बहुत दुःख और चिन्ता हुई है।

इस परिषद्की यह दृढ राय है, कि अन्तरात्मा और धर्मकी अत्याधिक स्वतन्त्रता परम आवश्यक है और यह पूजा-स्थानोंके, फिर वे किसी धर्म-सम्प्रदायके हों, भ्रष्ट किये जाने और किसी भी मनुष्यके अन्य धर्म ग्रहण करने या पुनः स्वधर्ममें आनेके कारण उसके दिलको दण्डित करनेकी निन्दा करती है और जबरदस्ती किसीको अपने धर्म-मतमें मिलाने या दूसरोंके हकों पर पदाघात करके अपने धार्मिक रीति-रिवाजोंको दूसरोंपर लादने या उसकी रक्षा करनेके प्रयत्नोंकी भी निन्दा करती है।

इस परिषद्के सदस्य महात्मा गांधीको यकीन दिलाते हैं कि हम इन सिद्धान्तोंका परिपालन कराने और इनके जोश तथा उत्तेजनाकी अवस्थामें भी उल्लंघन करनेपर उसकी निन्दा करनेकी प्रतिज्ञा करते हैं।

यह परिषद् अपने सभापतिको इस बातका अधिकार देती है कि वे खुद जाकर महात्मा गांधीपर इस परिषद्का यह गम्भीर आश्वासन प्रकट करें और परिषद्की यह अभिलाषा भी उनपर जाहिर करें कि महात्मा गांधी तुरन्त अपना उपवास छोड़कर देशमें तेजीके साथ फैलनेवाली इस बुराईको तत्काल भली भाँति रोकनेके तेज उपायोंका अवलम्बन करनेमें परिषद्को अपने सहयोग, सलाह और रहनुमाईका लाभ प्रदान करें।

मोतीलाल नेहरू

गांधीजीने अपनी उपवास-शय्यासे यह स्वहस्त-लिखित उत्तर भेजा—

प्रिय मोतीलालजी,

आपकी रहनुमाईमें प्रेम और दयासे प्रेरित होकर परिषद्‌ने जो प्रस्ताव पास किया है उसे आपने कृपा-पूर्वक कल रातको मुझे पढ़कर सुनाया है। मैं आपसे निवेदन करूँगा कि आप सभाको इस बातका यकीन दिलावें कि यदि मुझसे हो सकता तो मैं खुशीसे उसकी इच्छाके अनुसार उपवास छोड़ देता। पर मैंने अपने दिलमें फिर-फिर कर इस बातपर विचार किया है और देखा कि उपवास छोड़ना मेरे लिये संभवनीय नहीं है। मेरा धर्म मुझे शिक्षा देता है कि किसी शुभ और उच्च कार्यके लिये जो प्रतिज्ञा एक बार की जाय या जो व्रत एक दफा ले लिया जाय उसे तोड़ना न चाहिये। और आप जानते हैं कि ४० सालसे ज्यादह हुए मेरा जीवन इसी सिद्धान्तके आधार पर बना हुआ है।

इस पत्र में जितना खुलासा कर सकता हूँ उससे भी अधिक गहरे कारण मेरे उपवासके हैं। इस उपवासके द्वारा मैं एक बातके लिये अपनी श्रद्धा प्रकट कर रहा हूँ। असहयोग-आन्दोलनका विचार किसी भी अंग्रेजके प्रति द्वेष या दुर्भावसे प्रेरित हो कर नहीं किया गया था। उसके अहिंसात्मक रखनेका उद्देश्य यही था कि हम अंगरेजोंको अपने प्रेमके बलके द्वारा जीते। पर इसका परिणाम केवल वैसा ही नहीं हुआ, बल्कि उसके द्वारा उत्पन्न शक्तिने खुद हमारे ही अन्दर एक दूसरेके प्रति द्वेष और दुर्भाव पैदा कर दिया। इस बातके ज्ञान होनेके कारण ही मेरा सिर झुक गया है, और मुझे यह अदम्य प्रायश्चित अपने ऊपर लादना पड़ा है।

इसलिये यह उपवास मेरे और ईश्वरके बीचकी बात है। सो मैं आपसे केवल यही निवेदन न करूंगा कि उसे न छोड़ सकने लिये आप मुझे माफ करें, बल्कि यह भी करूंगा कि मुझे इसके लिये उत्साहित करें और मेरे लिए ईश्वरसे प्रार्थना करें कि वह निर्विघ्न समाप्त हो।

मैंने यह उपवास मरनेके लिए नहीं, बल्कि और भी अच्छी और शुद्ध जिन्दगी देशकी सेवाके लिए बसर करनेके उद्देशसे किया है। सो यदि ऐसी नाजुक हालत हो जाय (जिसकी मुझे कोई संभावना नहीं दिखाई देती है) जब मृत्यु और भोजन दोमेंसे किसी बातकी पसन्दगी करनेका सवाल खड़ा हो तो मैं जरूर उपवास छोड़ दूंगा। लेकिन डा० अनसारी और डा० अब्दुल रहमान जो कि बड़ी सावधानी और चिन्ताके साथ मेरी शुश्रूषामें है आपसे कहेंगे कि मैं इतना तरोताजा रहता हूँ कि जिसपर ताज्जुब होता है।

इसलिए सभासे मैं सविनय प्रार्थना करता हूँ कि वह मेरे प्रति अपना तमाम प्रेम, जिसका कि चिन्ह यह प्रस्ताव है, एकताके लिए ठोस, सच्चे और सरगर्म कामके रूप-में परिणत करे जिसके लिए यह परिषद हो रही है।

हिन्दी-नवजीन

५ अक्टूबर १६२४

लोहानी कहां है ?

लोहानीका जब पता न चला और मै आखिर निराश हो गया तब मुझे जिसकी तरफसे कुछ भी आशा न थी ऐसे ही एक स्थानसे इसमे मदद मिली है और अब वर्तमान पत्रोके अवतरणोंके रूपमे उससे संबंध रखनेवाली सब बातें मेरे सामने मौजूद है। मै देखता हूं कि इन अवतरणोका आधार 'यंग इंडिया'मे पहले-पहल लोहानीके सम्बन्धमें मेरी टिप्पणी है। इन वर्तमान पत्रके संवाददाताओंसे मालूम होता है कि यह समझ लिया गया था कि मै उनके लिखे हुए लेखोंको पढ़ूंगा। मालूम होता है कि इस बातको लोग नहीं जानते कि यंग इन्डिया या नवजीवनके–परिवर्तनमे जितने पत्र आते हैं उन सबको पढ़नेका मुझे समय नहीं होता है। मैने कई बार यह प्रार्थना की है और आज फिर वही प्रार्थना करता हूँ कि जो लोग वर्तमान पत्रोमे लेख लिखकर मुझे कुछ संवाद देना चाहते हैं, मेरी भूल सुधारना चाहते हैं या मुझे सलाह देना चाहते हैं वे उसमेसे उस भागको काटकर मेरे पास अवश्य भेज दे। अपने एक संवादपत्रमे लेखक मुझे लोहानी कहां है यह न मालूम होनेके कारण बड़ा आश्चर्य प्रकट करते हैं। इसके लिए रंज तो मुझे भी है। लेकिन उन्हें आश्चर्य क्यो है ? मैंने इसके पहले ही इस बातको स्वीकार कर लिया है कि मुझे अपने देशकी भूगोलका बराबर ज्ञान नहीं है। जब मै गुजराती शालामें पढ़ता था तब हिन्दुस्तानकी भूगोलसे मेरा कुछ योही परिचय कराया गया था और ज्योही मै अंग्रेजो पढ़ने लगा कि पहले ही दर्जेमे मुझे बेतका डर दिखाकर विलायतके प्रान्तोका नाम और दूसरे विदेशी नाम रटनेको कहा गया। उनका उच्चारण करनेमे और उन्हें याद करनेमे मेरा सर दर्द करने लगता था। किसीने भी मुझे यह नही सिखाया कि लोहानी कहां है। मुझे यकीन है कि मेरे अध्यापक भी यह नहीं जानते थे। मै पंजाब जानेके पहले भी बानीको भी जिसके कि नजदीक लोहानी है नहीं जानता था। मेरे पास जो वर्तमान पत्रोंके अवतरण हैं उसपरसे यह मालूम होता है कि लोहानी हिन्दुओं का एक छोटा गांव है। उसपरसे यह भी पता चलता है कि लोहानीके हिन्दू जमींदारोने मुसल्मानोंको वहां बुलाया था। अब हिन्दु मुसलमान जमीनके एक टुकड़ेके लिए लड़ रहे हैं। मुसलमानोका दावा है कि वह भूमि उनके लिए पवित्र है और हिन्दुओंका दावा है कि वह जमीन हमेशासे उन्हींके अधिकारमे रही है। यह मामला अभी अदालतमे पेश है। और मुझे उसे वही छोड़ देना चाहिये। वर्तमान पत्रमें लेख लिखनेवाले वे महाशय मुझे इस मामलेकी जांच करनेके लिए और अपनी राय जाहिर करनेके लिए निमंत्रण देते हैं। यदि मुझे यह अधिकार होता, मै मानता हूं कि एक समय मुझे यह अधिकार था, तो मैं अवश्य ही इस मामलेकी जांच करता और इस झगड़ेको अदालतमे जानेसे रोकता। लेकिन मुझे अब तो यही स्वीकार करना होगा कि मैं इसकी जांच करनेके

लिए असमर्थ हूँ। फिर भी मै दोनों पक्षोंको यही सलाह दूँगा कि वे उनलोगोंके पास जाय जिनपर कि उन्हें विश्वास हो और उन्हें इसमे पड़नेके लिए प्रार्थना करें।

हिन्दी-नवजीवन
२२ अक्टूबर, १९२५

❀

शाश्वत समस्या

हिन्दू-मुस्लिम प्रश्नको मै चाहे कितना भी टाल देना क्यों न चाहूं वह प्रश्न तो मुझे छोड़ता ही नहीं है। मुसलमान मित्र इसका निपटारा करनेके लिए मुझसे आग्रह कर रहे हैं और हिन्दू मित्र इस प्रश्नको लेकर मुझसे बहस करना चाहते हैं। कुछ तो यह भी कहते हैं कि मैंने वायूको संचारित किया है तो अब मुझे तूफानका भी सामना करना चाहिए। जब मैं कलकत्तेमें था उस समय एक बिहारी मित्रने मुझे गुस्सेमे और रंजमे आकर एक पत्र लिखा था और उसमें हिन्दू लड़कोंको और खास कर लड़कियोंको भगा ले जानेकी कहानी बयान की थी। मैंने उन्हें तो टका सा जवाब दे दिया और कहा कि मुझे उस कहानीमें विश्वास नहीं है और उनके पास उसके सबूत हो तो वे भेजें, मै बड़ी खुशीसे उनकी जाँच करूँगा और यदि मुझे यकीन हो गया तो चाहे और कुछ न कर सकूँ तो भी मैं उसकी निन्दा अवश्य ही करूँगा। उसके बाद उन्होने वर्तमान पत्रोमेंसे काट-काट कर भगा ले जानेके मामलोंका दिल दहलानेवाले वर्णन मेरे पास भेजे हैं। मैंने उन्हें लिख दिया है कि पत्रोंके वर्णनोको जुर्मका सुबूत नहीं माना जा सकता है। ऐसे बहुतसे मामलोमे वर्तमान पत्र तो ज्यादातर भड़कानेवाले, गुमराह करनेवाले और झूठे होते है। हिन्दू और मुसलमानोके ऐसे कुछ पत्र हैं जो एक दूसरोको बुरा कहनेका ही काम करते हैं। मुझे तो इसके काफी संतोष जनक प्रमाण मिले हैं कि बहुत सी बातें यदि झूठ नहीं है तो बड़ी अतिशयोक्तिपूर्ण अवश्य होती हैं। इसलिए मैंने उसके ऐसे ही अकाट्य प्रमाण मांगे जो किसी भी अदालतमें स्वीकार किये जा सकते हैं। टीटागढ़का मामला सचमुच ऐसा ही है। मुसलमान एक लड़कीको भगा ले गये हैं। यह कहा जाता है कि उसने इस्लामका स्वीकार कर लिया है। और अदालतका हुक्म हो गया है फिर भी अभी तक मुझे ख्याल जहाँतक है वह वापिस नहीं लाई गई है। और उसमे विशेपता तो यह है कि लड़कीको वापिस न लानेमे बड़े-बड़े इज्जतवालोंका भी हाथ है। जिस वक्त मैं टीटागढ़में था इस लड़कीके बारेमें किसीने भी अपने ऊपर उसकी जवाबदेही होना स्वीकार नहीं किया। पटनेमें भी मुझे कुछ ऐसी ही चौंका देनेवाली खबरें मिली थीं। उसके सुबूत भी मेरे सामने पेश किये गए थे। इस समय मैं उसमे अधिक गहरा उतरना नहीं चाहता हूँ क्योंकि

उसकी तमाम बातें मेरे सामने पेश नहीं की गयी है। ऐसे मामलोंको सुनकर सभीको विचार करना पड़ता है और देश हितैषियोंको, सबको उसपर ध्यान देना परम आवश्यक है।

अब मस्जिदोंके सामने बाजा बजानेका सवाल रहा। मैंने यह सुना है कि मुसलमानोंकी यह माग है कि मस्जिदोंके सामने किसी भी समय, धीरे या जोरसे कैसा भी बाजा न बजाया जाय। उनकी यह भी एक मांग है कि मस्जिदोंके पास जो मन्दिर हो उनमें नमाजके वक्तपर आरती भी बन्द कर देनी चाहिये। मैंने यह भी सुना है कि कलकत्तेमें प्रातःकालके समय कुछ लड़के रामनाम रटते हुए मस्जिदके पाससे जा रहे थे, उन्हें रोका गया था।

तो अब किया क्या जाय ? ऐसे मामलोंमें अदालतोंपर आधार रखना सड़े बांसपर आधार रखनेके बराबर है। यदि मैं अपनी लड़कीको भगा ले जाने दूं और फिर अदालतमें जाऊँ तो अदालत मुझे क्या मदद करेगी, कैसे मदद करेगी ? वह तो खुद ही लाचार हो जायगी। और यदि मजिस्ट्रेट मेरी कायरताको देखकर नाराज हो जाय तो वह मुझे घृणाके साथ जिसके कि लायक मैं हूंगा अपने सामनेसे हट जानेको ही कहेगा। अदालत साधारण जुर्मोंका ही न्याय करती है। लड़कोंको और लड़कियोंको आमतौरपर भगा ले जानेका जुर्म साधारण जुर्म नहीं है। ऐसे मामलोंमें तो लोगोंको अपने ही ऊपर आधार रखना चाहिये। अदालत तो उन्हीं लोगोंकी मदद करती है जो कि अक्सर अपने आप अपनी मदद कर सकते हैं। इसमें अदालतकी तरफसे जो रक्षा होती है वह सिर्फ सहायक होती है। जबतक मनुष्य निर्बल बने रहेंगे तबतक उनकी निर्बलतासे लाभ उठानेवाले भी कोई न कोई अवश्य ही निकल पड़ेंगे। इसलिए अब आत्म-रक्षाके लिए अपना संगठन करना ही एकमात्र उपाय है। ऐसे मामलोंमें जिनका कि इससे सम्बन्ध है वे यदि शांतिमय प्रतिकार करनेमें असमर्थ हों तो वे अपनी रक्षाके लिए कैसे भी हिंसात्मक साधनोंका उपयोग क्यों न करें मैं उसे ठीक ही समझूंगा। अवश्य, जहाँ गरीब और लाचार मां-बापके लड़कियां और लड़के भगा लिये जाते है वहाँ बात बड़ी पेचीदा हो जाती है। वहाँ उसका उपाय किसी एक व्यक्तिको ही नहीं ढूंढ़ना पड़ता है, लेकिन सारी जातिको ही, एक सारे वर्गको ही उसका उपाय ढूंढ़ निकालना चाहिये। लेकिन आम जनताकी राय इसके लिए संगठित करनेके पहले यह परम आवश्यक है कि लड़के लड़कियोंको भगा ले जानेके सच्चे और प्रामाणिक मामलोंको लोगोंके सामने रक्खा जाय।

बाजेका सवाल तो बड़ा ही सीधा है। बाजाका लगातार बजाना, आरती और रामनामका रटना क्या सचमुच धार्मिक आवश्यकताएं है या नहीं ? यदि वह धार्मिक आवश्यकता है तो अदालतकी मनाहीका हुक्म भी उसके लिए बन्धन-कारी नहीं है। परिणाम चाहे कुछ भी क्यों न आवे बाजा बजाना ही चाहिये,

आरती करनी ही चाहिये और रामनामकी धुन लगानी ही चाहिये। यदि मेरा अहिंसाका धर्म स्वीकार किया जाय तो मैं नम्र और विनीत निःशस्त्र स्त्री-पुरुषोंका, जिनके पास एक लाठी भी न हो एक जुलूस निकालनेकी सलाह दूँगा। वे राम नामको रटते जायँगे और यदि यही झगड़ेका विषय है तो वे मुसलमानोंका सारा गुस्सा अपने सिर उठा लेंगे। यदि वे मेरे सूत्रको स्वीकार न करना चाहते भी हो तो उन्हें रामनामकी रट लगाते रहना चाहिये और अंततक लड़ लेना चाहिये। परन्तु दंगा हो जानेके डरसे या अदालतके हुक्मसे बाजा रोक देना धर्मको ही इनकार करना है।

लेकिन इस प्रश्नका दूसरा पहलू भी है। लगातार बाजा बजाना, और नमाजके वक्त मस्जिदके पाससे जाते हुए भी हमेशा बाजा बजाना क्या यह धार्मिक आवश्यकता है? क्या रामनामकी रट लगाना भी ऐसी ही आवश्यक वस्तु है? आजकल सिर्फ मुसलमानोंको चिढ़ानेके लिए ही बहुतसे जुलूस निकालनेका रिवाज हो गया है, नमाजके वक्तपर ही आरती की जाती है और रामनामकी धुन लगायी जाती है और वह भी इसलिए नहीं, क्योंकि वह धार्मिक आवश्यकता है बल्कि इसलिए कि लड़नेका अवसर प्राप्त हो; यह जो आक्षेप किया जाता है उसका क्या जवाब है? यदि ऐसा ही होता है, तो उससे तो अपने ही मतलबकी हानि पहुंचेगी और धार्मिक उत्साह न होनेके कारण अदालतका हुक्म, फौजी सिपाहियोंका आना या ईंटोकी वर्षाके कारण उस धार्मिक क्रियाका जरामे ही अंत हो जायगा।

इसलिए पहले यह स्पष्ट कर लेना चाहिये कि उसकी आवश्यकता है या नहीं। जरासी भी उत्तेजना न दिखानी चाहिये। आपसमें समझौता करनेके लिए भरसक कोशिश करनी चाहिये। और जहाँ समझौता होना संभव नहीं है वहाँ विपक्षियोंका और उनके भावोंका ख्याल करके हमे अदालतकी मददके बिना ही एक ऐसी हद बांध लेनी चाहिये कि उससे फिर हम किसी प्रकारसे भी पीछे न हटें। अदालतका मनाही हुक्म होनेपर भी हमें उस हदपर कायम रहनेके लिए लड़ना चाहिये। कोई कभी भी मुझपर यह दोष न लगावे कि मैं कमजोर बननेकी सलाह देता हूँ। या कमजोरीको उत्तेजना दे रहा हूँ या किसीसे सिद्धान्त छोड़ देनेके लिए कहता हूँ। लेकिन मैंने यह अवश्य कहा है और आज भी कहता हूँ कि हरएक मोटी-मोटी बातको सिद्धान्तका रूप देकर उसे बड़ा महत्त्व नहीं दे देना चाहिये।

हिन्दी-नवजीवन
२२ अक्टूबर, १९२५

एक प्रश्न-माला

जब मैं लखनऊमें था वहाँके 'इंडियन डेली टेलीग्राफ' के सहायक संपादकने मुझे उत्तर देनेके लिए एक प्रश्नमाला दी थी। उनके प्रश्न बड़े दिलचस्प हैं इसलिए मैं उनमेंसे बड़े महत्त्वके प्रश्नोंको मेरी तरफसे उनका उत्तर देकर यहाँ प्रकाशित कर रहा हूँ।

१—"क्या आप एक सालके भीतर या किसी निश्चित समयके अंदर ही अब र सामुदायिक सविनय-भंग आरंभ करनेका कोई विचार रखते हैं?"

वर्तमान समयमें मैं ऐसी कोई आशा नहीं रखता हूँ कि किसी मर्यादित समयके अंदर ही मैं सामुदायिक सविनय-भंगका आरंभ कर सकूँगा।

२—"क्या आप इस कहावतको मानते हैं कि परिणामसे ही साधनोंकी उचितता समझी जाती है?"

मैंने इस कहावतको कभी भी नहीं माना है।

३—"एक सालके पहले आपके बारेमें यह कहा गया था कि आप सविनय भंग आरंभ करना चाहते थे और एक मरतबा आप उसका आरंभ कर चुके कि फिर कहीं-कहीं अशांत दंगे हो भी जाँय तो भी आप उसको बन्द न करेंगे। जनताके लिए सम्पूर्ण अहिंसाका पालन असम्भव होनेके कारण क्या आप हिंसाका भी, कुछ अंशोंमें, जोखिम (उतना कम जितना कि आपसे हो सकता है) उठा लेंगे और सविनय-भंगका आरम्भ करेंगे?"

एक साल पहले मैंने जो कहा था और आज जो फिर दुबारा कहना चाहता हूँ वह यह है कि अब मैं जिस किसीका कुछ भी आरम्भ करूँगा उसका आरम्भ मुझे आशा है कि अब शर्तिया आरम्भ न होगा लेकिन स्वतंत्र होगा और फिर उसमें जरा भी पीछे हटना न होगा। मैंने सविनय-भंगको जब भी रोक दिया है उस समय उसे सिर्फ किसी अशांत दंगेके हो जानेके कारण ही नहीं रोक दिया है। मैंने इस बातको जान लेनेके बाद ही उसे रोक दिया है कि महासभाके लोगोंने ही, जिन्हें इस बारेमें अधिक विचारशील होना चाहिये था, ऐसी ज्यादतीका आरम्भ किया था और उसे उत्साहित किया था। किसी भी प्रकारकी अशांतिके कारण, जैसे कि मोपला-कांडके कारण, सविनय भंग रुक नहीं सकता था। लेकिन चौरी-चौराके कारण उसे रुकना पड़ा क्योंकि महासभावादियोंका उसमें हाथ था।

४. "कलकत्तेके दंगेमें आपने सारा दोष हिन्दुओंके मत्थे मढ़ा था। लेकिन मारवाड़ियोंके मण्डलने या किसी हिन्दू-संस्थाने आपकी रायके खिलाफ उज्र किया था और हिन्दुओंको जोश दिलानेमें मुसलमानोंका काफी दोष था यह साबित करनेके लिए प्रमाण भी

पेश किये थे। आपने यह वचन दिया था कि आपको यदि अपनी रायमें भूल मालूम होगी तो आप उसे जाहिरा तौरपर स्वीकार कर लेंगे। तो क्या आप अब अपनी पहलेकी रायको बदलकर उसे जाहिर करेंगे ?"

मुझे अपनी पहली राय बदलनेके लिए अबतक कोई कारण नहीं मिला है।

५. "आप म्युनिसिपल्टी (जो आजकल स्वराज-दलके हाथोंमें है) के दिये हुए अभिनन्दन-पत्रको तो स्वीकार करनेके लिए राजी हो गये, लेकिन आपने हिन्दू सभाके अभिनन्दन-पत्रको क्यों टाल दिया ? आप हिन्दू होकर भी हिन्दू जनताके प्रतिनिधि संस्थाके प्रति ऐसा अनुचित भेद-भाव क्यों रख रहे हैं?"

मैंने लखनऊकी हिन्दू-सभाके अभिनन्दन-पत्रको टाल नहीं दिया है बल्कि मैंने तो उनसे यह कहा था कि जब मैं लखनऊकी मुलाकातको आऊँगा तब मैं उनके अभिनन्दन-पत्रको खुशीसे स्वीकार करूँगा। म्युनिसिपल्टीके स्वराजी सभासद इसके बाद मुझे मिले और लखनऊ होकर मैं जा रहा था उस दरम्यान ही उनके अभिनन्दन-पत्रको स्वीकार करनेके लिए मुझसे आग्रह करने लगे। हिन्दू-सभा भी वैसा कर सकती थी। उसमें टाल देनेकी तो कोई बात थी ही नहीं। मैंने तो सिर्फ यही ख्याल किया था कि जब लखनऊ से होकर सिर्फ जा ही रहा था उस समय वे मुझे अभिनन्दन-पत्र देना नहीं चाहेंगे, खास करके क्योंकि जब वे लखनऊमें हिन्दू-मुस्लिमोंके तनाजेके बारेमें मुझसे चर्चा करना चाहते थे। सीतापुरमें मैंने हिन्दू-सभाके अभिनन्दन-पत्रको बड़ी खुशीसे स्वीकार किया था।

६ "अमीनाबाद पार्कके आरती-नमाजके प्रश्नकी तलवार एक सालसे ज्यादा अरसा हुआ लटक रही है। यदि दोनों दल आपके निर्णयको कुबूल करनेका वचन दें तो क्या आप उस प्रश्नपर अपना निर्णय जाहिर करनेकी कृपा करेंगे ?"

मैंने अपने संयुक्त प्रान्तकी यात्राके वर्णनमें इस मामलेकी चर्चा की है।

७. "एक हिन्दूकी हैसियतसे इस मामलेमें आपकी क्या राय है?"

मुझे सब बातें मालूम नहीं हैं इसलिए मैं कोई राय नहीं दे सकता हूँ। यदि मैंने पहले हीसे अपनी राय कायम कर ली होती तो मैं, दोनो दल मेरा निर्णय कुबूल करनेके लिए राजी भी होते तो भी, उनका पंच बननेके लिए कभी भी राजी नहीं हो सकता था।

८ "मोहर्रमके दिनोमे या ऐसे ही दूसरे अवसरोंपर मुसलमानोंके बाजा बजानेका हिन्दू लोग तो कभी विरोध नही करते हैं, तो फिर हिन्दुओंके बाजोंका मुसलमानोंको क्या विरोध करना चाहिये ? क्या हिन्दुओंको हर उपायसे अपने धार्मिक हकोंका रक्षण करनेका हक नहीं है ?"

इस प्रश्नमें दो प्रश्न ऐसे हैं जिनका असल हाल मुझे मालूम नहीं है। रहा तीसरा प्रश्न। हिन्दुओंको अपने धार्मिक हकोंकी हर एक प्रकारसे नहीं, लेकिन प्रत्येक सत्ययुक्त और मेरी रायमें अहिंसात्मक साधनोंसे ही उनकी रक्षा करनेका हक है।

९. "पटनामें दो भगायी गयी लड़कियां आपके सामने लायी गयी थीं। एक हिन्दूकी हैसियतसे सारे हिन्दुस्तानमें लड़के, लड़कियोंको भगा ले जानेकी जो बदी फैल रही है उसके खिलाफ आप हिन्दुओंको क्या करनेकी सलाह देंगे?"

मैंने गत सप्ताहमें इस नाजुक प्रश्नकी चर्चा की है।

१०. "क्या हिन्दुओंका, मुस्लिमोंके खिलाफ कोई आक्रमणात्मक कार्य करनेके लिए नहीं लेकिन अपने धार्मिक हकोंकी रक्षा करनेके लिए और उनके लड़के लड़कियोंको भगा ले जानेकी बदी जैसी बदियोंको दूर करनेके लिए और हिन्दू जातिकी शारीरिक, सामाजिक, नैतिक और भौतिक उन्नतिके लिए उनका अपना संगठन करना ठीक न होगा?"

मुझे यह ख्याल नहीं होता है कि कोई भी शख्स इस प्रश्नमें जिस प्रकारके संगठनकी बात कही गयी है वैसे संगठनका विरोध कर सकता है। मैं तो अवश्य उसका विरोध नहीं कर रहा हूँ।

११. "मौलाना शौकतअलीने आपके द्वारा बिहार खिलाफत कान्फरेन्सको एक सदेशा भेजा था। यदि लाला लाजपतराय और प० मालवीयजी किसी हिन्दू-सभाको आपके द्वारा कोई सदेशा भेजना चाहें तो क्या आपको उसमें कोई आपत्ति होगी?"

मौलाना शौकतअलीने मेरे द्वारा कोई भी सन्देशा बिहार खिलाफत कान्फरेन्सको नहीं भेजा है। यदि उन्होंने ऐसा किया भी होता तो भी यदि वह सन्देशा आपत्तिजनक न होता तो मैं अवश्य ही उनके सन्देशेको पहुँचा देता। यदि पं० मालवीयजी और लाला लाजपतराय मुझे ऐसा ही काम सौंपें तो मैं उसे भी अवश्य ही करूँगा।

हिन्दी-नवजीवन
२९ अक्टूबर, १९२५

❀

हमारी दुर्बलता

हकीम साहब अजमल खाँ और डा० अन्सारी यूरपकी और उसके साथ सीरियाकी भी लम्बी यात्रा पूरी करके अभी ही लौटे हैं। उन्होंने मुझे नीचे लिखा पत्र भेजा है—

"दक्षिण सीरियामें जहाँ कि ड्रूस लोग रहते हैं और जहाँ इन पीड़ित लोगोंके द्वारा फ्रांसीसियोंका अर्थात् राष्ट्रसंघकी आज्ञासे अधिकार प्राप्त राज्यका, सशस्त्र विरोध

लेकिन इस मामलेमें दूसरा अच्छा कार्य जो मैं कर सकता हूँ वह उनके पत्रको और मेरे उत्तरको प्रकाशित करना है। जबतक किसी नैतिक या भौतिक शक्तिकी सहायता न हो तबतक मैं यह नहीं मानता कि प्रार्थना करनेसे कुछ भी लाभ न होगा। अपनी प्रार्थनाको सफल करनेके लिए प्रार्थना या अर्जी करनेवाला जब कुछ कार्य करनेका और उसके लिए कुछ त्याग करनेका निश्चय कर लेता है तभी नैतिक शक्ति उत्पन्न होती है। बच्चे भी सहज ही इस सिद्धान्तको समझ लेते हैं। वे रोते हैं और चिल्लाते हैं और शैतान बच्चे तो अपनी माँको मारनेमें भी नही हिचकिचाते। जबतक हम इस सिद्धान्तको समझकर उसपर अमल करनेके लिए तैयार नहीं हैं तबतक प्रार्थना करके हम यदि और कुछ नहीं तो महासभाकी ओर अपनी हंसी अवश्य ही करावेंगे।

यदि हम चाहें तो भी शैतान बच्चोंकी तरह शैतान नहीं हो सकते हैं। लेकिन यदि हम चाहें तो दुःख अवश्य सहन कर सकते है। मैं चाहता हूँ कि सीरियापर जो जुल्म और डायरशाही चलायी गयी है उसके संबंधमे हमलोग भारतवासी, हिन्दू, मुसलमान, ईसाई, पारसी और एशियानिवासीकी हैसियतसे कैसे लाचार है इसका अनुभव करें। हमारी लाचारीका जब हमें निश्चयात्मक ज्ञान होगा तब हम शायद उन जानवरोंका अनुकरण करना सीखेंगे जो कि तूफान और वर्षाके समय एक जगह इकट्ठे होते हैं और एक दूसरेसे गरमी और हिम्मत पाते हैं। वे उस तूफानके देवतासे उसे रोकनेके लिए व्यर्थ प्रार्थना नहीं करते है किन्तु सिर्फ उसका उपाय ही कर लेते है।

और हम हिन्दू मुसलमान तो एक दूसरेसे लड़ते हैं और दिनबदिन दोनोंका भेद बढ़ता ही जा रहा है। हमलोगोने अभी चरखेके रहस्यको नहीं समझा है और जो समझते हैं वे न कातनेके लिए कुछ न कुछ बहाने ढूंढ़ निकालते हैं। हमारे चारों ओर तूफान है और फिर भी हम एक दूसरेसे हिम्मत और गर्मी (सहानुभूति) प्राप्त करनेके बजाय तूफानके देवताओंसे अपना हाथ रोक लेनेके लिए प्रार्थना करना और केवल कांपते ही रहना पसंद करते हैं। यदि मै हिन्दू-मुसलमानोंमे ऐक्य नहीं स्थापित कर सकता हूं तो कमसे कम मुझे इतनी बुद्धि अवश्य है कि मैं दयाकी भिक्षा मांगनेके लिए किसी प्रार्थना-पत्रपर दस्तखत भी नहीं करता हूँ।

और राष्ट्र-संघ क्या है? सच पूछा जांय तो क्या वह सिर्फ फ्रान्स और इंगलैण्ड ही नहीं है? क्या दूसरी शक्तियोका कुछ भी वजन पड़ता है? क्या फ्रान्ससे, जिसने समानता, न्याय और भ्रातृ-भावके अपने आदर्शको त्याग दिया है, प्रार्थना करनेसे कुछ भी लाभ होगा? उसने जरमनीका न्याय नहीं किया है, रीफोंमे और उनसे भ्रातृ-भाव नहीं है और सीरियामे वह समानताके सिद्धान्तको कुचल रही है। यदि हमे इंगलैण्डसे प्रार्थना करनी है तो राष्ट्र-संघ तक जानेकी हमे कोई जरूरत नहीं है। वह तो हमारे घरके ही पास है। वह तो सिवा दूसरे

कि कुछ दिनोंके लिए देहलीमें उतर आये शिमलाकी ऊंची पहाड़ियोंपर बैठी रहती है। लेकिन उससे प्रार्थना करना वैसा ही है जैसा कि आगस्टसके खिलाफ सीजरके पास प्रार्थना करना।

इसलिए हमें सत्यको उसके खुले रूपमें देखना चाहिये और राष्ट्रसे अपना फर्ज अदा करनेके लिए प्रार्थना करना सीखना चाहिये। भारतके जरिये ही सीरियाका दुःख दूर होगा। यदि हम अपनी बड़ाईकी कीमत नहीं कर सकते हैं तो हमें अपना छोटापन स्वीकार कर लेना चाहिये और चुप रहना चाहिये। लेकिन हमे छोटे बननेकी जरूरत नहीं है। हमें एक काम तो अच्छी तरह करना चाहिये या तो अपने भाईसे पशुओंकी तरह आखिर तक लड़ लेना चाहिये या हमे मनुष्योंकी तरह विशाल सहयोगके आधार पर दुनियांको यह सिखाना चाहिये कि अपनेसे जो कमजोर हैं उन्हें चूसना अनुपयोगी है, इतना ही नहीं वह पाप है। और ऐसा करोड़ोंका सहयोग केवल चर्खेसे ही संभव हो सकता है।

हिन्दी-नवजीवन
१२ नवम्बर, १९२५

❀

हिन्दू-मुसलिम ऐक्य दल

हाल ही मे बेगम मुहम्मद जहुद्दीन मकाईने, बंगलोरकी नारी-शारदा-समितिमे एक भाषण दिया था। एक भाईने उनके मनोरंजक भाषणकी एक प्रति मेरे पास भेजनेकी कृपा की है। मै उसका कुछ अंश नीचे देता हूं—

"हिन्दू-मुसलिम-ऐक्यके लिए की हुई सेवाके समान पवित्र दूसरी समाज-सेवा नहीं है, क्योंकि इससे केवल भारतमाताको ही लाभ नहीं पहुचता है, बल्कि मानव जातिको भी। भारतवर्षकी इन दो बड़ी-बडी कौमोंमे अनैक्य और घृणाके बीज बोनेसे बढकर दूसरा कोई पाप नहीं हो सकता।

"यदि हिन्दुओं और मुसलमानोंके ईश्वर अलग-अलग होते तो इन नीचे गिरानेवाले अपमान-जनक दगोंकी बात समझमे भी आती, परन्तु ईश्वर अलग-अलग तो है नहीं। दोनों उसी एक ईश्वरकी पूजा करते हैं और तौ भी उसी ईश्वरके नामसे, मसजिदोके आगे बाजा बजाने-जैसी तुच्छ बातको लेकर अपना कर्त्तव्य भूल जाने और एक दूसरेको मार डालनेको तैयार हो जाते हैं।

"किसी पहुचे हुए सूफी फकीरने गाकर ईश्वरसे कहा है—'हिन्दुओंने कोशिश की और तुम्हें मूर्तिमें पाया। पारसी, पवित्र अग्निके सामने तुम्हारा ही गुणानुवाद करता है। नास्तिकने भी तुम्हे प्रकृतिमें देखा है। कोई भी तुम्हारी हस्तीसे इंकार अबतक नहीं कर सका

है ।' इसलिए, हिन्दू और मुसलमान आज जिस प्रकार लड़ रहे हैं, यह पागलपन नहीं तो मूर्खता जरूर है। यह जान लेना ही होगा कि इस्लाम, सलामत और तरक्कीका पैगाम लेकर आया था, लड़ाईका डंका बजाता हुआ नहीं। खुदाके सभी पैगम्बरों और नबियोंको यह जानता है। यह अकेला ही मजहब है जिसने "खुदाकी रब्बानियत और इन्सानकी अखवत"के उसूलोंको अमली शकल दी है और सारी इन्सानियतको मद्देनजर रखा है और सब किसीको एक ही जिस्मके अलग-अलग अजो समझा है और बतलाया है कि किसी दूरके अजोंको भी तकलीफ पहुचनेसे सारे जिस्मको बेचैनी हो जाती है। ससारके किसी भी हिस्सेमें कोई भी मुसलमान इन पाक उसूलोंके खिलाफ यदि कोई काम करे तो इससे हरएक सच्चे मुसलमानको शर्मिन्दा होना चाहिये और वह शर्मिन्दा होता ही है।

"पवित्र हिन्दू-शास्त्र भी इन्ही सिद्धान्तोंका प्रतिपादन करते हैं और हिन्दू धर्म, उनके अभ्यास और पालनकी आज्ञा देता है। हिन्दुओं और मुसलमानोंको चाहिये कि वे संगठित होवे, किन्तु आत्मरक्षाके लिए नहीं—यह बहुत ही तुच्छ आदर्श है जो गिरते गिरते, आक्रमण, असहनशीलता और उकसानेका रूप धारण कर लेता है—किन्तु उनके अपने सहधर्मियोंके, दूसरे धर्मवालोंपर आक्रमण तथा अत्याचार करके, अपने-अपने धर्मोंके उच्च सिद्धान्तोंकी अवहेलनाको रोकनेके लिए। बस, आजसे हिन्दू-मुसलिम-ऐक्यका पवित्र दल बन जाय और उसके सदस्य हिन्दू और मुसलमान-स्त्री पुरुष बनें, जिसमे गड़बड़ीके पहले लक्षणके प्रकट होते ही मुसलमान अपने कुटुम्बी और मसजिदोंकी चिन्ता न करें, बल्कि अपने सहधर्मियोंके हाथों अपनी जान देकर भी, हिन्दुओंके घरों और मन्दिरोंकी हिफाजतकी फिक्र करे और हिन्दू भी मुसलमानोंके घरो और मसजिदोंकी रक्षाके लिए ठीक यही करें। हर एक हिन्दुस्तानी माताको यह देखना चाहिये कि उसके बच्चे इस पवित्र कामके लिए अपना जीवन उत्सर्ग कर दे। सभानेत्री महोदयाको इसका विश्वास था कि यह कठिन समस्या हल हो सकेगी और इन नामधारी नेताओं और साम्प्रदायिक हितके रक्षकोंका पेशा बन्द हो जायगा।"

ये भाव सराहनीय हैं, परन्तु इन महानुभाव महिलाके बताये हुए दलके बनाने लायक वातावरण तो आज कहीं नहीं दिखायी देता है।

हिन्दी-नवजीवन
२ सितम्बर, १९२६

अकर्ममें कर्म

यदि जरा भी मुमकिन होता, या मेरी रायमें ऐसा करना उचित होता तो मुझे डा० सैयद महमूद तथा अन्य मित्रोंके द्वारा प्रकाशित सार्वजनिक अपीलकी बात मान लेनेमें सबसे अधिक प्रसन्नता होती। उस अपीलमें दस्तखत करनेवालोंका यह सोचना भूल है कि मैं किनाराकशी कर बैठा हूं। मैंने तो एक सालके वास्ते उन सार्वजनिक कामोंके लिए अहमदाबादसे बाहर जाना बन्द किया है जिनमें मेरे बिना काम चल सकता है. और वह साल तो अब खतम होनेपर आया। इस किनारा-कशीकी वजूहात तो मैंने सालके शुरूमें ही पूरे तौरपर बयान कर दी थी। उस वक्त मेरी सेहत और आश्रमकी जरूरतने यह लाजिमी कर दिया था कि मै तकलीफदेह सफर और मशक्कततलब मुआमलातसे कुछ फुरसत लूं। यदि मैंने काउंसिलके कामोंमें दखल नहीं दिया, तो वह इसलिए कि कदाचित् मेरी रुचि उस ओर नहीं है। और काउंसिलोंके द्वारा हमको स्वराज मिल सकता है—मेरी ऐसी श्रद्धा है ही नहीं। मैंने हिन्दू-मुसलिम झगड़ोंमें हाथ डालना इसलिए बन्द कर दिया कि मेरा पक्का यकीन है कि ऐसे मौकेपर हाथ डालनेसे नुकसान ही पहुंच सकता है। अब रहे अस्पृश्यता, राष्ट्रीय शिक्षा-संस्थायें और चरखा। इन तीनोंके लिये मै जितना कर सकता हूं उतना कर ही रहा हूँ।

इसलिये मैं उन मित्रोंसे यह कहनेका साहस करता हूँ कि जो उन्हें मेरा अकर्म प्रतीत हो रहा है, वह वास्तवमे एकाग्र कर्म है। इन मित्रोंकी निराशा मुझे किसी भी रूपमें पसन्द नहीं है। ये हिन्दू-मुसलमानके झगड़े किसी अगम्य रीतिसे स्वराजके लिये लड़ते ही है। उन दोनोंमेंसे हर एक फरीक स्वराज्यकी आमदसे आगाह है। इन दोनोंमेसे हर एककी यह कोशिश है कि वह स्वराजके आनेके समय तक तैयार और लायक निकले। हिन्दू सोचते हैं कि हम मुसलमानोंकी बनिस्बत जिसमानी ताकतमें कमजोर हैं और मुसलमान ख्याल करते हैं कि हम शिक्षा और भौतिक ऐश्वर्यमें कम हैं। वे दोनो वही कर रहे हैं जो कि आजतक कमजोर लोगोंने किया है। यह लड़ाई चाहे जितनी अशुभ क्यो न हो, पनपनेकी निशानी है। यह अंग्रेजोके 'वार्स आफ दी रोजेज' की तरह घरेलू लड़ाई है। उससे एक बड़ा शक्तिशाली राष्ट्र तैयार होगा। खूँरेजीसे एक बेहतर दवा सन् १९२० मे बतायी गयी थी, लेकिन हम उसे जज्ब न कर सके। लेकिन लाचारी और गैर मर्दानगीसे तो खूँरेजी अच्छी ही है।

यहाँ तक कि मोतीलालजी तथा लालाजीके बीचमे जो 'भद्दा द्वन्द्वयुद्ध चल रहा है, वह भी उसी लड़तका एक खंड है। हिन्दुस्तानकी आजादीके दुश्मनोंको इन तफरुकातपर फूले न समाने दो। इसके बहुत कब्ल कि उनका यह खुशियाँ मनाना

खत्म हो, ये देश-भक्त फिर एक ही झंडेके नीचे काम करते हुए दिखायी देंगे। ये दोनों सज्जन देशके प्रेमी हैं । लालाजीको जातीय दृष्टिसे काम करनेसे बढ़कर और कुछ चारा नहीं दिखायी देता। पंडितजीको इसकी बू तकसे चिढ़ है। यह कौन कहेगा कि इनमेंसे फलां ठीक कह रहा है ? दोनों प्रवृत्तियाँ प्रचलित वायुमंडलकी प्रतिध्वनि मात्र हैं। लालाजी, जो कि राजकीय क्षेत्रमे उतरते ही स्वराज शब्द जिह्वा-पर रक्खे हुए आये थे, आज उससे घृणा कैसे कर सकते हैं ? उनका विचार जातीय दृष्टि रखकर ही स्वराजतक पहुंचनेका है, क्योकि उनकी धारणा है कि यह हमारे विकासमे अनिवार्य श्रेणी है। पंडितजीका ख्याल यह है कि यह राष्ट्रीयताके रास्तेको बन्द करनेवाली चीज है और इस कारण वे उसपर तवज्जोह देना नहीं चाहते।

ठीक इसी भांति जिस भांति कि मनोविचारपर प्रभाव डालकर उपचार करनेवाले, यह देखते हुए कि नीरोगता न कि रुग्णता जीवनका नियम है, रोगपर ध्यान नहीं देते। राष्ट्रका काम न तो सर अब्दुर रहीम और न हकीम साहेब अजमलखाँके बिना चल सकता है।

सर अब्दुर रहीम जिन्होने गोखलेके साथ-साथ जब कि वे इस लिंग्टन कमीशनके सदस्य थे, गुरुतापूर्ण नोट लिखा था, अपने देशके दुश्मन नहीं हैं। यदि उनका यह ख्याल है कि हिन्दुओके साथ मुसलमानोंका बराबरी दर्जेपर स्पर्धा किये बिना मुल्क तरक्की नहीं कर सकता, तो उनको कौन दोषी ठहरा सकता है ? मुमकिन है कि वे गलत तरीके अख्तियार किये हुये हो, लेकिन वे आजादीके ख्वाहां जरूर हैं। इसलिये जब कि मैं इन सब प्रकारके विचारवालोके लिये अपने मस्तिष्कमें स्थान रखता हूं, तब मेरे लिये तो केवल एक ही मार्ग खुला रह जाता है मैं जातीय दृष्टिको एक जरूरी दर्जे की हैसियतसे भी, नहीं मानता या यों कह लूँ कि उस श्रेणीसे होकर जानेकी क्षमता मुझमे नही है । इसलिये जबतक यह तूफान साफ नहीं हो जाता और जबतक पुन. निर्माणका काम फिरसे आरंभ नहीं हो जाता, तबतक मुझे खामोश ही रहना चाहिए।

मै काउंसिलके अन्दरकी जिदोजिहदको भी महफूज फासलेपर रहकर ही देख सकता हूं। मैं, उनपर एतकाद रखते हुए जोशाना ढंगसे काउंसिलके कामको करनेवालोको इज्जतकी नजरसे देखता हूं। भारतका शिक्षित समाज दी भिन्न दलोंमें फूटा हुआ है। मैं इन दलोको एक जां लानेकी अपनी अशक्ति स्वीकार करता हूँ। उनका तर्जे अमल मेरा काम करनेका ढंग नहीं है। मेरा तरीका धुर नीचेसे चलकर शिखर तक पहुंचनेका है। बाहरवालोंको यह बतानेवाली धीमी चाल मालूम होती है। वे शिखरसे पेंदीकी ओर जा रहे हैं। और यह ढंग बहुत मुश्किल तथा उलझा हुआ है। वे करोड़ों आदमी, जिनकी ओरसे उस अपीलपर हस्ताक्षर करनेवालोने लिखनेका दावा किया है, इस दलबंदीसे बिलकुल उदासीन है । और उनको उसमे कोई रस भी नहीं है।

उनके लिये तो चरखा ही सब कुछ है। एक कहावत है कि ईश्वरका चर्खा धीमे धीमे लेकिन पक्का चलता है। मैं ईश्वरके उन्हीं छोटे-छोटे चरखोंको चलवानेमें लगा हुआ हूं। उन हस्ताक्षर-कर्ताओं तथा अन्य लोगोंको, जो चाहे, यह बात ध्यानमें रख लेनी चाहिये कि वे चर्खे अनवरत रूपसे घूम रहे हैं। उन चक्रोंकी उपयोगिता दिनपर दिन और अधिक प्रत्यक्ष रूपसे बढ़ती जा रही है। और जब यह उसके फल स्वरूप ये दल बन्दियां एक हो जायंगी और हिन्दू-मुसलमान, ब्राह्मण-अब्राह्मण, अत्याचारी और दलित आपसमें मिल जायेंगे तब वे देखेंगे कि कुछ शान्तिसे काम करनेवालोंने देशको तैयार कर दिया है—विलायती वस्त्रका वैर मूलक या हिंसात्मक बहिष्कार करनेके लिये नहीं, बल्कि स्वास्थ्यवर्धक, अहिंसात्मक वैध बहिष्कारके लिये। कौमको अपने प्रत्येक नागरिककी कुछ न कुछ शक्तिका तो सबूत देना ही चाहिए। और वह शक्ति विदेशी वस्त्रका बहिष्कार करनेकी क्षमता है। अपीलपर हस्ताक्षर करनेवाले अपनेको मेरे अनुयायी कहते हैं। मेरी उनसे सलाह है कि वे चरखेको अपना आगे वान बनाये। मैंने उस छोटेसे चक्रको आगे वानी अबतक रक्खी है। और वह चर्खा मेरे कानोंमें नित्य गरीब जनताके कष्टोंका गीत सुनाया करता है। अच्छेके लिए हो या बुरेके लिए मैंने अपना सर्वस्व चरखे-पर लगा रक्खा है, क्योंकि मेरे लिए तो वह दरिद्रनारायणकी मूर्ति है—दरिद्र और दलितके दरिद्र और दलितमें दर्शन देनेवाले नारायणकी मूर्ति है।

हिन्दी-नवजीवन
६ सितम्बर, १९२६

❀

शहीद श्रद्धानन्द

जिसकी उम्मेद थी वह हो गुजरा। कोई ६ महीने हुए स्वामी श्रद्धानन्दजी सत्याग्रहाश्रममें आकर दो दिन ठहरे थे। बातचीतमें उन्होंने मुझसे कहा था कि उनके पास जब-तब ऐसे पत्र आया करते थे जिनमे उन्हें मार डालनेकी धमकी दी जाती थी। किस सुधारकके सिरपर बोली नहीं बोली गयी है? इसलिये उनके ऐसे पत्र पानेमे अचम्भेकी कोई बात नहीं थी। उनका मारा जाना कुछ अनोखी बात नहीं है।

स्वामीजी सुधारक थे। कर्मवीर थे, वचन वीर नही। जिनमें उनका विश्वास था, उसका वे पालन करते थे। उन विश्वासोके लिए उन्हें कष्ट झेलने पड़े। वे वीरताके अवतार थे। भयके सामने उन्होने कभी सिर नहीं झुकाया। वे योद्धा थे

थामका सामना नहीं करना पड़ता। इसलिए हम शिक्षित और धर्म शिक्षित लोग ही अब्दुल रशीदकी मनोवृत्तिके लिए दोषी हैं। इसका निश्चय करना कि दो विरोधी दलोंमें किसका कितना दोष है बेकार है। धर्मराज तुलासे दोषोंका, न्याय अन्यायका, ठीक-ठीक बँटवारा कौन कर सकता है? आत्म,रक्षाके लिए झूठ बोलना या बढ़ाकर कहना जरूरी नहीं है। ऐसी आशा रखना बहुत बड़ी बात है किन्तु स्वामीजी जितने बड़े थे कि जिससे यह आशा होती है कि उनका खून हमारा पाप धो देगा, हमारे दिलोंके मैलको साफ कर, मनुष्य जातिके दो बड़े विभागोको एक कर देगा। स्वामीजीके जीवनका मुझे जो ज्ञान है, उसके विषयमें अगले अंकमें विचार करना पड़ेगा।

हिन्दी–नवजीवन
१३ दिसम्बर, १९२६

❀

खरी टीका

नीचे एक पत्र मैं पाठकोंसे बचा रखना नहीं चाहता।

"मैंने आपका 'शहीद श्रद्धानन्द' शीर्षक लेख यथेष्ट आदर और सावधानीसे पढा है। उसपर टीका टिप्पणी करनेके पहले मैंने उसे पाँच बार पढ लिया है जिसमें उतावलीसे उसकी आलोचना न करने लगू।"

"वह लेख बेशक बहुत ही सुन्दर भाषामें लिखा गया है। आपकी लेखन शैली देखकर मुझे ईर्ष्या होती है। वह आकर्षक है मगर मेरी समझमें उसका आकर्षण खतरेसे खाली नहीं है।

"वह आलोचना मैं आपको सत्य शील मानकर ही करता हूँ। जनतक कुछ मित्रोंसे इस विषयमें मैंने बहस भी की है। उनका कहना है कि सन्तके भेषमें आप नीति-चतुर पुरुष हैं और स्वदेशके लिए सत्यका जब कभी त्याग कर सकते हैं। इसके उलटे मैं मान आया हूँ कि आप सन्त हैं और अपने उद्देश्यकी ही प्राप्तिके लिए कठिनसे कठिन अवसरोंपर भी सत्यके पालनके लिए राजनीतिमें घुसे हैं। अगर मुझे इसका पता मिल जाय कि मेरा अनुमान सही है तो मैं बडा आभार मानूँगा। अगर ठीक हो तो नीचे दी हुई आलोचना कौड़ी कामकी न रहेगी। मेरी सम्मतिमें नीति-वादी मनुष्यको आपने जैसा लिखा है वैसा लिखनेका पूरा अधिकार है।

"आप मुझसे सहमत होंगे कि सत्यको छिपाना भी असत्यका ही एक स्वरूप है।

जब आप स्याहको स्याह समझे तब उसे स्याह न कहना कायरता होगी। सत्य और निर्भयताका बहुत निकट सबंध है।

"महात्माजी, क्या आपके दिलमे ऐसा लगता है कि स्वामीजीका खून, एक मुसलमान गुंडेका अमानुषिक, असभ्य और क्रूर कार्य था जिसके लिये मुसलमान समाजको शर्मिंदा होना चाहिए? आप इसे ऐसा माननेसे इनकार क्यो करते है? उसकी और उसके कामकी और इसके लिए जिम्मेदार लोगोंकी, उनकी जो हिन्दू नेताओंको काफिर कहते है यानी उन गर्म दिमाग मुसलमान धर्म-प्रचारकों और पगले मौलवियोंकी निन्दा करनेके बदले आप खूनीका बचाव करने लगे हैं और मुसलमानोंकी ओरसे दर गुजरी पेश करते है। आपने डायरका तो बचाव नहीं किया था। क्यो यूरोपियन भाई नही हैं?

"आगे आप कहते हैं कि इस्लामका अर्थ है शान्ति। क्या यही सत्य है? कुरानमे इस्लामकी जो शिक्षा दी जाती है और उसके जन्मसे आजतक मुसलमान लोग इसका जैसा पालन करते आये, उसका अर्थ शान्ति कभी नही है। ऐसी साफ-साफ गलत बात आप क्यो लिखते हैं। बौद्ध, इसाई और हिन्दू धर्म भले ही शान्ति सिखलाते हों मगर इस्लाम नहीं। क्या आप बतलावेंगे कि आप ऐसा क्यो सोचते और लिखते है।

"सरकारकी निंदा करते समय तो आपने सवालोंको कभी उलझाया नहीं। आर्यसमाजकी निन्दा करते समय भी आपने सवालोंको नहीं उलझाया, सिद्ध दोषोंके लिए भी मुसलमानोकी निन्दा करते हुए आप क्यों डरते हैं?

"मुझे निश्चय है कि अगर किसी मुसलमान नेताके साथ किसी हिन्दूने ऐसा काला काम किया होता तो (भगवान् न करे कि ऐसा हो) आपने खूनी और हिन्दू जातिकी निन्दा करनेमे कुछ उठा न रक्खा होता। आप हिन्दुओंसे मातम मनाने, उपवास करने, हड़ताल करने, मृतात्माके लिए स्मारक खड़ा करने और कितनी बाते करनेको कहते। अपने सगे भाई मुसलमानोंसे आप पक्षपातका व्यवहार क्यों करते हैं?

"सत्य वक्ता किसी वस्तुका भय नही करता, इस्लामकी तलवारका भी खौफ नहीं खाता। मैं आशा करता हूँ कि अपने प्रसिद्ध पत्रमे आप इनका जवाब देंगे।"

लेखक साफगो है। उसके पत्रसे उसकी सरगर्मी टपकती है और उसका पत्र लोगोके वर्तमान भावका द्योतक है।

अगर मुझे सन्त कहा भी जा सकता हो तो भी अभी सन्त कहनेमें बहुत देर है। मैं सन्त हूँ, ऐसा तो मुझे अपने आप किसी प्रकार नहीं मालूम होता। मगर मुझे मालूम होता है कि अनजाने चाहे मै लाखों न करने योग्य काम कर लूँ या करने योग्य करनेमे चूक भले ही जाऊँ मगर सत्यका सेवक हूँ। पत्र लेखक ने ठीक अनुमान किया है कि 'सन्तके भेसमे मैं नीति-चतुर आदमी नहीं हूँ।' मगर चूंकि सत्य ही सबसे बड़ी बुद्धिमत्ता है इसलिए कभी-कभी मेरे काम सबसे बड़ी नीति-चतुराईके अनुकूल मालूम पड़ते हैं। मगर मुझे आशा है कि सत्य और अहिंसाकी नीतिके सिवाय मुझमें और कोई नीति-चातुर्य नहीं है। स्वदेश और स्वधर्मके उद्धारके लिए

भी मैं सत्य और अहिंसाको छोड़ नहीं सकता। इतना कहनेका अर्थ यह है कि दोनोंमें किसीको भी मैं नही छोड़ सकता।

स्वामीजीकी हत्याके विषयमें लिखते समय मैंने सत्यको छिपाया नहीं है। मैं उस कांडको हूबहू वैसा ही समझता हूँ जैसा कि पत्र-लेखकने बयान किया है। मगर हत्यारेके लिए मुझे वैसी ही दया आती है जैसी जेनरल डायरके लिए मुझे आती थी। पत्र-लेखक यह न भूल जायँ कि जेनरल डायरके ऊपर मुकदमा चलानेका मैंने कभी नहीं समर्थन किया। मैं यह दावा जरूर रखता हूँ कि कोई यूरोपियन भी मेरे लिए वैसा ही भाई है जैसा कि कोई हिन्दुस्तानी मुसलमान या हिन्दू।

हत्यारेके विषयमे मेरे भाव ये हैं कि वह खुद धर्मके नामपर बुरे और अधार्मिक प्रचारका शिकार है। इसीसे मैंने इस हत्याके लिए अखबारोंको दोषी ठहराया है जिन्होने सर्वसाधारणकी बुद्धि बिगाड़ दी है। मौलवियों और उन सब लोगोंको, जो स्वामीजीके प्रति घृणाकी आग जलानेवाले थे, इस हत्याका मैं दोषी ठहराता हूँ।

मगर मैं इस्लामको उसी अर्थमे शान्ति-धर्म मानता हूँ जिसमें ईसाई, बौद्ध या हिन्दू-धर्मको मानता हूँ। निःसन्देह शान्तिकी मात्रामे अन्तर है मगर उन धर्मोंका उद्देश्य है शान्ति। मैं कुरानके वे वाक्य जानता हूँ जो इसके विरुद्ध पेश किये जा सकते हैं मगर वेदोंसे भी तो ऐसे ही वाक्य निकालना उतना ही संभव है। अनार्योंके विरुद्ध वचनोंका और क्या अर्थ लगेगा? जरूर, उनका इस युगमें दूसरा ही अर्थ है मगर एक समय उनका भयंकर रूप अवश्य था। हम हिन्दुओंका अछूतोंके साथके व्यवहारका और क्या अर्थ है? चलनी तो भला सूपपर न हंसे। बात यह है कि हम सब किसीका विकास हो रहा है। मैंने अपना मत प्रकट कर दिया है कि इस्लामके अनुयायियोंकी तलवार और छूरी बात बातपर निकला करती है। मगर वह तो कुरानकी शिक्षाकी बदौलत नहीं है। मेरी समझमे उसका कारण है वह स्थिति जिसमें इस्लामका जन्म हुआ था। ईसाई धर्मका इतिहास खून-खराबीसे भरा पड़ा है मगर इसका कारण ईसाकी त्रुटि नहीं है, किन्तु यह है कि ईसाकी उच्च शिक्षाका जिस स्थितिमे प्रचार हुआ वह उसे ग्रहण करने योग्य न थी।

ये दोनो, क्रिस्तान धर्म और इस्लाम, अभी कलके ही धर्म हैं। अभी उनका अर्थ लगाया ही जा रहा है। मौलवियोंके इस हकको कि वे मुहम्मदकी शिक्षाओंका आखिरी अर्थ लगा सकते हैं मैं वैसे ही इनकार करता हूँ जैसे कि ईसाकी शिक्षाओंका अर्थ लगानेके पादरियोंके हकको। दोनोका ही अर्थ लगता है उन लोगोके जीवनसे जो उनका पालन अपने जीवनमे शान्ति और पूरे आत्म-बलिदानसे कर रहे हैं। शोरगुल कुछ धर्म नहीं है और बड़ी बुद्धिमे ही कुछ बड़ी विद्या नहीं होती। धर्मका स्थान हृदय है। हम हिन्दुओ, ईसाइयो, मुसलमानों और दूसरे धर्मवालोंको अपने अपने धर्मका भाष्य अपने हृदयके रक्तसे लिखना होगा, और किसी प्रकार नहीं।

हिन्दी-नवजीवन
२० जनवरी, १९२७

हिन्दू-मुस्लिम-एकता

महासभाके अध्यक्षने जब मुझे तारसे खबर दी कि महासमितिकी बैठकमें हिन्दू-मुस्लिम प्रश्नवाला प्रस्ताव सर्वानुमतिसे मंजूर हो गया है, तब मुझे बहुत भारी आनन्द नहीं हुआ। तारमें प्रस्तावके मजमूनके बारेमें काफी खबर थी। जब अध्यक्ष साहब मुझसे मिलनेके लिए नन्दी आये और पूछने लगे कि 'क्या आप इस प्रस्तावपर लिखेंगे?' मैंने जवाब दिया कि 'मैं इसपर ऐसा कुछ भी नहीं लिख सकता जिससे कुछ सहायता हो सके।' इस मुलाकातके कुछ ही दिन बाद, मुझे एक मित्रका सन्देश मिला, जिसका भाव यह था—हमारे बीच आज तो दंगे उपद्रव आदि हो रहे हैं, उसके लिए आप जिम्मेदार हैं। अगर आप ख्वाहमख्वाह हिन्दुओंको खिलाफतके मसलेमें न घसीटते तो ये दुःखद घटनायें नहीं घटतीं। पर अब इनसे देशको बचानेकी शक्ति भी केवल आप हीके हाथोंमें है।'

इस सन्देशका अनुवाद करते हुए मैंने मूलकी भाषाकी कटुताको बहुत सौम्य कर दिया है। मालूम होता है मानो वह मुझे हिन्दू-मुस्लिम एकतामें अपनी अटल श्रद्धा घोषित करनेको बुला रहा है। मुझे इस बातपर जरा भी अफसोस नहीं हो रहा है कि मैंने खिलाफतके आन्दोलनमें भाग लिया। वह तो अपने मुसलमान देशभाइयोंके प्रति मेरा कर्तव्य था। यदि हिन्दू अपने भाइयोंकी मुसीबतमें उनकी सहायता नहीं करते, तो वह उनकी भारी गलती होती।

आजकी परिस्थिति चाहे कितनी ही खराब हो, मुसलमानोंकी आनेवाली पुश्तें हिन्दुओंके इस भाईचारेके सलूकको कृतज्ञताके साथ याद करेंगी। पर भविष्यकी बात जाने दीजिए। चूँकि इस बातमें मेरा अटल विश्वास है कि भलेका फल सदा भला ही होता है खिलाफतके बारेमें मैंने जो कुछ किया है उसका मैं तो समर्थन ही करूँगा, इसलिए इन मित्रके तानेको मैंने शक्तिपूर्वक सह लिया।

पर मैं चाहता हूँ कि इन दोनों जातियोंमें शान्ति स्थापना करनेमें अपनी शक्ति भर सहायता करके उनकी आशाको पूरी कर सकता हूँ क्योंकि मेरा तो इस एकतामें और उसकी आवश्यकतामें आज भी उतना ही अटल विश्वास है। अगर वह मेरे प्राणोंसे प्राप्त होती है तो मैं हिन्दू-मुस्लिम एकताके लिए अपने प्राण भी समर्पण कर देना चाहता हूँ, और मैं आशा करता हूँ कि मुझमें अपने प्राणोंको अर्पण कर देनेकी शक्ति भी है। बड़ी खुशीके साथ मैं कभी खतम न होनेवाला एक उपवास शुरू कर सकता हूँ जैसा कि मैंने दिल्लीमें सन् १९२४में करीब-करीब किया; हाँ, इससे हिन्दुओं और मुसलमानोंका पत्थरका सा दिल पसीजता और पलट सकता। परन्तु अभी इस तरहका प्रायश्चित करनेके लिए परमात्माकी ओरसे मुझे कोई संकेत नहीं

मिला है। अगर प्रायश्चित एक आत्मशुद्धिका भी काम है, तो उसके पहले एक आत्मशुद्धिका सच्चा प्रयत्न हो जाना जरूरी है। पर स्पष्ट ही अभी उस महान प्रायश्चितके योग्य मेरी आत्मशुद्धि नहीं हो पायी है।

अगर आजकल पाठक मुझे इन पृष्ठोंमें इस प्रश्नको बार-बार उल्लेख करते हुए नहीं पाते हैं, तो इसका कारण यही है कि वह दुःख इतना गहरा चला गया है कि उसे शब्दोंमे प्रकट नहीं किया जा सकता। इन लज्जाजनक उपद्रवोंके करने वाले चाहे हिन्दू हो या मुसलमान, मेरे नजदीक यह बात कोई महत्व नहीं रखती। यह जान लेना काफी है कि हम लोगोंमे कुछ लोग एक शान्तिशील परमात्माकी निन्दा कर रहे हैं, और धर्मके पवित्र नामपर अमानुष कुकर्म कर रहे हैं। मैं यह भी नहीं जानता हूँ कि न तो खून-खच्चरसे और न बदला लेनेके ख्यालसे निर्दोष मनुष्योंका बध करनेसे धर्मकी रक्षा हो सकती है। धर्मकी रक्षा तो—अगर वह धर्मके पवित्र नामके योग्य है—तो अनुयायियोंकी पवित्रता, नम्रता, और ऊँचेसे ऊँचे दर्जेकी निर्भयता द्वारा ही की जा सकती है। बस वही सच्ची शुद्धि और सच्चा धर्म प्रचार है।

इसलिए महासमितिके प्रस्तावका मुझपर कोई असर नहीं हुआ। क्योंकि मैं जानता हूँ कि हमने अभी अपने हृदयोंको नहीं बदला है, और न हमने अभी अपने अन्दरसे एक दूसरेके प्रति भयको निकाल बाहर किया है। जो समझौता इन दोनो शर्तोंको पूरा नहीं करता, वह वृथा है।

दूसरे मेरा ख्याल है कि एक राष्ट्रके भिन्न-भिन्न अंगोंके बीच जो समझौता हो, वह पूर्ण तथा स्वेच्छापूर्वक हो और स्वेच्छापूर्वक ही उसका पालन भी हो। अगर स्वराज्यके ख्यालसे वह समझौता किया गया है तो उसे अपनी अंतिम मंजूरी और अमलके लिए किसी सरकारी कानूनपर निर्भर नहीं रहना चाहिए। अगर हमारी अपनी संस्थायें उसे मंजूर कर लें तो वह सम्पूर्ण और बाध्य समझना चाहिए। इसका अमल भिन्न-भिन्न दलोंके नेताओंकी प्रतिष्ठापर निर्भर। रहे यदि न हो और यदि हमे अहिंसामें भी श्रद्धा न हो तो खुल्लम खुल्ला युद्ध छेड़ दिया जाय जाय और भली या बुरी तरह उसमे लड़ लिया जाय, और उसका जो नतीजा हो उसके अनुसार ही यह प्रश्न तै हो जाय। पर एक विदेशी सत्ताके पास जा कर यह कहना कि हमारा निर्णय कर दो, या संगीनकी नोकपर शान्ति कायम कर दो, स्वराज्यकी योग्यताकी नहीं, कमजोरीकी निशानी है।

अगर लड़ाकू लोगोंपर हमारा अर्थात् नेता कहे जाने वाले लोगोंका कोई प्रभाव न हो, तो हमारे समझौते झूठे और व्यर्थ हैं। सच्चे स्वराज्यकी बात सोचनेके पहले, जनताके दिलमें हमे स्थान और प्रभाव प्राप्त कर लेना जरूरी है। यह सीख लेना जरूरी है कि हम खुद कैसे बरते। उस समझौतेका दिल्लीपर कोई असर नहीं हुआ, और हमारे लिये अत्यंत लज्जाकी बात है कि वहाँ बकरा-ईदपर शान्तिके रक्षक हम नहीं बल्कि सरकार ही रही।

मेरा अहिंसा धर्म एक महान् शक्ति है। उसमें कायरता और कमजोरीके लिये जरा भी स्थान नहीं। एक हिंसाका उपासक अहिंसाका भक्त बन सकता है, पर एक कायरसे तो कभी अहिंसक बननेकी आशा ही नहीं की जा सकती। इसलिए मैंने कई मर्तबा इन पृष्ठोंमें लिखा है कि यदि कष्ट-सहन अर्थात् अहिंसा द्वारा हम अपने स्त्रियों और पूजा-स्थानोंकी रक्षा नहीं कर सकते हों तो, और यदि हम पुरुष हो तो, कमसे कम हमें सशस्त्र प्रतिकार करके जरूर उनकी रक्षा करनी चाहिए। दो लड़ते हुए दलोंके बीच शान्ति-स्थापन करनेके लिए तथा हमारी स्त्रियोंकी रक्षा करनेके लिए सरकारसे कहना या उससे ऐसी आशा करना निरी कायरता है और जब तक हम ऐसे कायर बने रहेंगे, स्वराज्यकी आशा करना व्यर्थ है। सुव्यवस्थित समाजमें तो सरकार केवल पुलिसका काम करती है पर हाल ही में दिल्ली और लाहौरमें की गयी तैयारियोंको पुलिसका काम नहीं कहा जा सकता। मतभेद तो हमेशा बने ही रहेंगे। पर हमें उनको आपसी पंचायत द्वारा मिटाना सीख लेना चाहिए, फिर वे मतभेद धार्मिक हों या अन्य प्रकार के। यदि हम स्वराज्य चाहते हैं तो शासकोंका सामना हमें मिलकर एकतापूर्वक करना चाहिए, और संसारको दिखा देना चाहिए कि अपने मामलोंको सुलझानेकी शक्ति और बुद्धि हमारे अंदर है।

यदि हमारे बीच ऐसे कोई नेता पुरुष न हों जिन्हें हम अपने पंच बना सकें और जो हमें न्याय और पक्षपात शून्य राय दे सकते हों तो, और यदि हम इतने उद्दंड और जंगली हों कि पंचके निर्णय सुनने तक न ठहर सकते हों या उसे सुन लेनेपर उसका पालन न कर सकते हों तो हमें खूब मनमाना लड़ कर अपने दिमाग दुरुस्त कर लेना चाहिए। हाँ, हम चाहे या न चाहें, सरकार शान्ति–रक्षा या अपनी रक्षाके खयालसे जरूरही हमारी इस लड़ाईमें भी विघ्न करेगी। पर यदि लड़ाकू दल हिम्मत रक्खेंगे और उससे सहायता न माँगेंगे तो वह हमें जरा भी कमजोर नहीं कर सकती और ऐसे युद्धमें मारकाट करने वाले एक हत्याराका बचाव क्यों किया जाय? उसे फाँसीपर लटकने दिया जाय। पूजा-स्थानोंको तोड़ने वाले निर्भयता-पूर्वक सामने आकर कहें कि हमने यह धर्मके लिए किया है, जो चाहो सजा दे दो। निर्दोष राहगीरोंकी हत्या करने वाले भी अपने आपको पुलिसको सौंप दें और कहें कि हमने यह सब खुदाके लिये किया है। निःसन्देह वह बड़ा निर्दय और हृदयहीन सुनायी देता होगा। पर मैंने तो केवल वह रास्ता बतानेका यत्न किया है जो हमारे वर्तमान तरीकोंसे अधिक सीधा और कमजोर है।

और यदि हम सभ्य आदमियोंकी तरह पंचायतोंसे काम नहीं ले सकते, या ब्रिटिश न्याय और बन्दूकोंकी बिना सहायता माँगे शूर जंगली जातिके समान युद्ध करके भी अपने झगड़ोंका निपटारा नहीं कर सकते, तो सुधारोंके रूपमें हमें केवल एक ही चीजके मिलनेकी आशा करनी चाहिए। और वह है, नौकरशाहीके हाथों

मिलने वाली दलालीका बढ़ा हुआ हिस्सा। दूसरे शब्दोंमें, यों कहें कि सरकार करोड़ों मूक भारतीयोंको लूटनेमें उसका साथ देनेके बदलेमे हमारी दलालीको कुछ और बढ़ा देगी। ध्यान रहे कि हम जो कुछ भी समझौता आपसमें करें, वह ऐसा नहीं जो हमें उस खराब स्थितिमे जाकर डाल दे।

हिन्दी-नवजीवन
१६ जून, १९२७

❀

"रंगीला रसूल"

इस पत्रिकापर जो वादविवाद छिड़ा है उसमें शामिल होनेकी लालचको मै आकिल या दूसरे पत्र-प्रेषकोंकी तरफसे प्रेरणा होनेपर भी अबतक रोक सका हूँ। मैंने ऐसे पत्र-लेखकोंको खानगी तौरपर जवाब देनेका प्रयत्न किया था, परन्तु अभी अभी इतने पत्र आने लगे हैं कि उन सबका खानगी तौरपर जवाब देना मेरी शक्तिके बाहरकी बात है। आखिरमे बिहारके एक मुसलमान प्रोफेसरका पत्र मिला है। उन्होने मुझे किसी अखबारकी कतरन भेजी है, जिससे मुझपर यह आक्षेप करता हुआ एक पत्र छपा है कि साधारण तौरपर हिन्दू नेताओंने खामोशी अख्त्यार करनेकी जो साजिश की है, मैंने भी उसमे शामिल होना पसंद किया है। प्रोफेसर साहब कहते हैं कि मैं इसका खरा जवाब दूँ। मैं खुशीसे इसका जवाब दूँगा, इस आशासे कि मेरे पत्र-लेखकोंको मेरे शुद्ध विश्वाससे संतोष हो और वे मेरी खामोशीका कारण समझ ले। क्योंकि मै किसी एक स्थानिक अखवारके सिवा दूसरे अखबार नहीं पढ़ता हूँ, हिन्दू नेताओंकी 'खामोशीकी साजिश'के बारेमें कुछ भी नहीं जानता हूँ।

अभी मैं 'हिन्दू' (मद्रास) को अक्सर पढ़ता हूँ, और मुझे स्मरण है कि मैंने उसमे 'रंगीला रसूल'के विरुद्ध एक सख्त लेख पढ़ा था। जहाँ तक इससे मेरा संबंध है, जब बहुतसे मुसलमानोंको उसके अस्तित्वकी खबर भी नहीं थी, उसकी एक नकल मुझे मिली थी। मेरे संवाददाताकी सचाईकी परीक्षा करनेके लिये मैंने उसे पढ़ा और १९ वीं जून १९२४ के 'यंग इन्डिया'मे उसपर यह टिप्पणी लिखी।

एक मित्रने मुझे 'रंगीला रसूल' नामकी एक उर्दू पुस्तिका भेजी है। उसपर लेखकका नाम तो नहीं दिया गया है पर वह मैनेजर आर्य पुस्तकालय लाहौरकी तरफसे प्रकाशित की गयी है। पुस्तकका खुद नाम ही दिल दुखानेके लिए काफी है, और जो बातें उसमें लिखी गई हैं वे भी वैसी ही हैं। मै शिष्ट सभ्य पाठकोंका

दिल दुखाये बिना उसके कुछ वाक्योंका अनुवाद पेश नहीं कर सकता। मैंने अपने दिलसे पूछा कि सिवा लोगोंके उभाड़नेके ऐसी पुस्तकें लिखने और छापनेका दूसरा क्या मतलब हो सकता है? मुसलमानोंके नबीको बुरा कहनेसे या गालियाँ देनेसे क्या एक भी मुसलमान अपना मजहब छोड़ देगा और उस हिन्दूको भी जिसका यकीन हो पक्का नहीं है इससे क्या फायदा हो सकता है? इसलिए धर्म-प्रचारके कार्यमेंतो ऐसी पुस्तकसे कोई लाभ नहीं। पर इससे जो हानि होती है वह साफ है।

एक दूसरे मित्रने पब्लिक प्रिंटिंग प्रेस लाहौरमें छपी एक पत्रिका भेजी है। इसका नाम "शैताने" है। उसमें मुसलमानोंकी ऐसी बुराई की गयी है कि जिसका अनुवाद मैं यहाँ दे ही नहीं सकता। मुझे ऐसी पत्रिकाओंका भी पता है जिसमें मुसलमानोंकी तरफसे भी ऐसी ही गाली-गलौज की गयी। किन्तु इससे हिन्दुओं और आर्य-समाजियोंकी तरफसे प्रकाशित गालियोंका समर्थन नहीं हो सकता और न यह उसका कोई जवाब ही है। यदि मुझे ऐसी खबर न मिलती कि ऐसी पत्रिकायें या पुस्तकें लोग चावसे पढ़ते है तो मैं इनपर जरा भी ध्यान न देता। ऐसे साहित्यके प्रचारको रोकने या कमसे कम उसके घटानेका उपाय स्थानिक नेताओंको ढूढ़ निकालना चाहिए और बजाय इसके एक दूसरे धर्मके प्रति सहिष्णुता प्रकट करनेवाला शुद्ध साहित्य लोगोंमें फैलाना चाहिए।

इसपर आर्यसमाजियोंने विरोध किया और उन्होंने आर्यसमाजियोंके और उसके संस्थापक ऋषि दयानन्दके खिलाफ लिखी और भी बदतर पत्रिकायें और परचे भेजे। उनका यह कहना था कि 'रंगीला रसूल' और दूसरे ऐसे लेख जिनका ऊपर जिक्र हुआ है ऐसे मुसलमानोंके पर्चे और लेखोंके जवाबमें लिखे गये थे। उसपर मैंने १० वीं जुलाई १९२४ के 'यंग इंडिया' में यह दूसरी टिप्पणी लिखी।

'रंगीला रसूल' नामक न पढ़ने लायक पुस्तिका तथा 'शैतान' नामक निन्दनीय पर्चेके सम्बन्धमें मैंने जो उद्गार प्रकट किये थे उसके सिलसिलेमें आर्य-समाजियोंकी तरफसे ढेरके ढेर पत्र आये है। वे मेरी बातकी सचाईके तो कालय है पर कहते हैं, कुछ मुसलमान पर्चोंका भी यही हाल है और पहले उन्होंने यह गाली-गलौज शुरू की तब आर्य-समाजी उसका वैसा ही जवाब बतौर बदलेके देने लगे। पत्र-लेखकोंने मेरे पास ऐसे कुछ पर्चे भेजे भी है। उनके कुछ हिस्सोंको पढ़नेकी व्यथा मैंने सहन की है। उनके कुछ हिस्सोंकी भाषा तो दिलको दहला देती है। उन्हें यहाँ उद्धृत करके मैं इन पत्रोंको कलंकित नहीं करना चाहता। एक मुसलमान-लिखित स्वामी दयानन्दके एक जीवन-चरितकी प्रति भी मुझे मिली है। मुझे कहते हुए दुःख होता है कि यह बहुतांशमें उन महान धर्म-सुधारकका तोड़ा-मरोड़ा चरित है। उनके किये हर कामपर लेखकने जहर उगला है। एक पत्र-लेखक इस बातकी बड़ी बुरी तरह शिकायत करते हैं कि मेरे लेखोंने मुसलमान लेखकों और वक्ताओंका

हौसला इतना बढ़ा दिया है कि वे अब आर्य-समाज और समाजियोंसे और भी ज्यादह गाली-गलौज करने लगे है। एकने हाल ही की हुई लाहौरकी एक सभाका हाल लिखकर भेजा है जिसमें आर्यसमाजपर ऐसी ऐसी गालियोंकी वृष्टि की गई कि जिनको लिखते हुए लेखनी कांपती है। यह कहनेकी कोई आवश्यकता नहीं कि ऐसी कार्रवाइयोंके साथ मेरी कुछ हमदर्दी नहीं हो सकती। मैंने जो कुछ अपनी राय आर्य-समाजके बारेमें प्रकाशित की है, उसके होते हुए भी मैं आर्य-समाजके संस्थापक का एक नम्र प्रशंसक होनेका दावा रखता हूँ। उन्होने कितनी ही कुप्रथायें हटा दिखाई हैं जो हिंदू-समाजको भ्रष्ट कर रही थीं। उन्होने संस्कृत विद्याके पठन पाठनका शौक बढ़ाया। उन्होंने अन्धविश्वासको ललकारा। अपने शुद्ध चरित्रके द्वारा उन्होंने अपने कालके समाजका स्वर ऊँचा कर दिया। उन्होंने निर्भयता सिखायी और कितने ही निराश होनेवाले युवकोंमें नई आशाका संचार किया। और न मै उनकी राष्ट्रीय सेवासे वेखबर हूँ। आर्य-समाजने राष्ट्रीय सेवाके लिए कितने ही सच्चे और स्वार्थत्यागी कार्यकर्ता दिये है। उसने हिन्दुओंमें स्त्री-शिक्षाका जितना प्रचार किया है उतना ब्रह्मसमाजको छोड़कर शायद ही किसी हिन्दू संस्थाने किया हो। कुछ अनजान लोगोने यहाँ तक कह डाला है कि मैंने श्रद्धानन्दजीके विषयमें वे बातें इसलिए लिखी है कि वे मेरी बातोंकी आलोचना किया करते हैं। परन्तु उनका यह दोषारोपण मुझे उनके गुरुकुलमें किये मार्ग-दर्शक कार्यको फिरसे स्वीकार करते हुए नहीं रोक सकता। ऐसी हालतमें मै जहाँ एक ओर समाज, सत्यार्थ प्रकाश, ऋषि दयानन्द तथा स्वामी श्रद्धानन्दजीके विषयमे प्रकाशित अपने उद्गारोंका एक भी शब्द वापस लेना नहीं चाहता, वहां दूसरी ओर फिर मैं दुहराता हूँ कि मैंने बिल्कुल मित्र-भावसे वह आलोचना की है और इस अभिलाषासे की है कि समाज उन त्रुटियोंसे मुक्त होकर जिनकी ओर मैंने उसका ध्यान दिलाया है, अधिक सेवा कर सके। मैं चाहता हूँ कि वह समयके साथ कदम बढ़ाते हुए चले, खण्डन-मण्डन वृत्तिको छोड़ दे और अपनी रायपर कायम रहते हुए दूसरे संप्रदायवालोंके साथ उसी सहिष्णुताका परिचय दे जिसका दावा वह खुद अपने लिए करता है। मैं चाहता हूँ कि वह अपने कार्यकर्ताओं पर निगाह रक्खे और तमाम कलंक लगानेवाले लेखों-पत्रों आदिको वन्द कर दे। यह कोई जवाब नही है कि मुसलमानोंने पहले इस निन्दा-कार्यको शुरू किया है। मुझे पता नहीं कि उन्होंने ऐसा किया या नहीं। पर मैं इतना जरूर जानता हूँ कि अगर उनकी बातोंके जवाबमें वैसी ही बातें न कही जातीं तो थककर वे आप चुप हो जाते। मैंने तो समाजियोंसे शुद्धितकको छोड़ देनेको नहीं कहा है। पर मैं उनसे और मुसलमानोंसे भी यह प्रार्थना जरूर करूँगा कि वे अपने शुद्धिके वर्तमान ख्यालपर फिरसे जरूर विचार करें।

उन मुसलमान लेखकों और वक्ताओंसे जिनके निस्वत मेरे पास खत आये हैं, मैं यह कहना चाहता हूँ कि अपने प्रतिपक्षीको मनचाही गालियाँ देकर वे न तो अपनी नेकनामीको बढ़ाते हैं और न अपने मजहबकी। आर्य-समाज और समा-

जियोंको गालियाँ देकर वे न तो अपना फायदा कर सकते हैं और न इस्लामकी खिदमत कर सकते हैं।

इस प्रकार मैंने मुसलमानोंके क्रोधका अनुमान पहलेसे ही कर लिया था। परन्तु इस आन्दोलनमें हमारा और उनका मेल यहीं तक है। इस आन्दोलनने जो रूप धारण किया है उसको मैं पसंद नहीं कर सकता हूँ। मैं उसे जरूरतसे बहुत ज्यादा और उभाड़नेवाला मानता हूँ। जस्टिस दिलीपसिंह पर आक्षेप करनेकी कोई जरूरत न थी। यह अनुचित और पागलपन था। यह नहीं कि न्यायखातेपर संस्कारका असर न पड़ता हो, परन्तु उसपर लोगोंके आक्षेप, अपमान और भयका भी असर होता हो तो फिर वह न्यायका काम करने योग्य नहीं है। जहाँ तक न्यायाधीशकी प्रामाणिकतासे संबंध था, इससे किसी भी मुसलमानको संतोष होना चाहिए था कि उन्होंने पत्रिकाकी काफी निन्दा की थी। परन्तु उन्होंने कानूनकी उस दफाका जो अर्थ किया उसके कारण उनपर ऐसे सख्त आक्षेप नहीं होने चाहिए थे। दूसरे न्यायाधीशोंने उसका दूसरा अर्थ किया है यह कहना यहाँ कोई सुसंगत बात नहीं है। इससे पहले भी न्यायाधीशोंने प्रामाणिकताके साथ एक ही दफाके जुदे-जुदे अर्थ किये मालूम हुए हैं। इस दफाको मजबूत करनेका आन्दोलन अक्लमन्दीका काम हो सकता है। परन्तु मुझे इसमें शक है। इस दफाको अधिक शक्तिशाली बनानेसे उसका उपयोग अपने ही खिलाफ होगा और पहलेकी तरह ब्रिटिश अधिकारको दृढ़ करनेमें उसका इस्तेमाल होगा। परन्तु हिन्दू मुसलमान ऐसे लेखोंको जाब्ता फौजदारीमें लाना चाहते हों तो इन्हें ऐसा आन्दोलन करनेका अधिकार है।

सरकारसे रक्षा पानेके संबंधमें मेरे विचार बड़े सख्त हैं। ऐसा समय था कि जब हम कुछ विशेष जानते थे और ऐसे मामलोंमें अदालतोंसे रक्षा पानेको तिरस्कारकी दृष्टिसे देखते थे। 'रंगीला रसूल' जैसे मुस्लिम-विरोधी लेखोंको बन्द करना हिन्दुओंका काम है और हिन्दू-विरोधी लेखोंको बन्द करना मुसलमानोंका। नेताओंका तो कीचड़ उछालने वाले इन लोगोंपर कुछ भी प्रभाव नहीं रहा है या उन्हें उनके साथ सहानुभूति है। कुछ भी हो सरकारसे रक्षा पाकर हम एक दूसरेके प्रति सहिष्णु नहीं बन सकते हैं। दूसरेके धर्मको तिरस्कारकी दृष्टिसे देखने वाला शख्स कानून अधिक व्यापक और सख्त होनेपर दूसरेके धर्मपर बुरे आक्षेप करनेके लिए या क्रोध भड़काने लायक लेख लिखनेके लिए, कानूनके पंजेसे बचकर मार्ग ढूँढ़ेगा। और मैं यह भी देखता हूँ कि आजकल हम बुद्धिमान राष्ट्रवादीकी तरह या धार्मिक मनुष्यकी तरह काम नहीं कर रहे हैं। हम लोग तो धर्मके बहाने एक दूसरेपर पागलोंकी तरह बैर लेना चाहते हैं।

मेरेको पत्र लिखने वालोंको—हिन्दुओंको और मुसलमानोंको—दोनोंको यह समझना चाहिए कि आजकल वर्तमान वायुमण्डलसे मैं बह रहा हूं। मैं यह पूरी तरह जानता हूँ कि हिन्दू हो या मुसलमान, इन लड़ने वालोंपर मेरा कुछ भी प्रभाव

नहीं पड़ता है। मैं यह स्वीकार करता हूँ कि इसके लिए मेरा बताया उपाय समयके अनुकूल नहीं है। इसलिए खामोश रह कर ही मैं देशकी उत्तम सेवा कर सकता हूँ। सच्ची हिन्दू-मुसलिम एकताकी आवश्यकता और उसके संभव होनेमें मुझे जितना अटल विश्वास है उतना ही अटल विश्वास मुझे अपने बताये इसके उपायमें है। इसलिए गोकि इसमें मेरी लाचारी तो स्पष्ट है परन्तु मै निराश कतई नहीं हूँ। क्योंकि मैं यह मानता हूँ कि चुपचाप प्रार्थना करना अक्सर प्रकट कामसे अधिक परिणामजनक होता है, मै हमेशा इस श्रद्धाके साथ प्रार्थना किया करता हूँ कि शुद्ध हृदयकी प्रार्थना कभी निष्परिणाम नहीं होती। मैं अपनी शक्ति भर यह प्रयत्न करता हूँ कि मैं प्रार्थनाका ऐसा शुद्ध साधन बनूँ कि मेरी प्रार्थना स्वीकार हो।

हिन्दी-नवजीवन
२२ सितम्बर, १९२७

हिन्दू-मुसलिम ऐक्य

हालमें जब मै दिल्ली गया था डॉक्टर अंसारीने मुझसे कहा कि 'मैंने कलकत्तेमें विश्वस्त आदमियोंके मुँहसे सुना था कि आपको हिन्दू-मुसलिम ऐक्यमें न तो विश्वास रहा है और न दिलचस्पी ही। और आप अली बिरादरान जैसे मुसलमान दोस्तोंसे अलग ही अलग बचे फिरते है।' इसलिए डॉक्टर अंसारीने सुझाया कि मैं दिल्लीकी किसी सार्वजनिक सभामें अपना विश्वास जाहिर करूँ। मै इस सलाहको और नहीं तो इसीलिए नहीं मान सका कि हकीम साहेब अजमलखाँ और स्वामी श्रद्धानन्दकी दिल्ली आज गुंडोंकी दिल्ली हो रही है जहाँ मेरे लिये ठहरना भी मोहाल है, भाषणकी तो कोई बात नहीं। खैर मैंने डॉक्टर अंसारीसे वायदा किया कि जितनी जल्दी हो सकेगी मैं अपनी स्थिति साफ करनेकी कोशिश करूँगा। अब मैं वह करता हूँ।

हिन्दू-मुसलिम एत्तहाद और दूसरे सभी समाजोंकी एकतामें मेरा विश्वास पहले ही जैसा दृढ़ है। हाँ, उसे सफल करनेका मेरा तरीका बदल गया है। पहले मै सभाएँ करने, प्रस्ताव करनेमें शामिल होता था, और इस तरह एकता करना चाहता था। अब इन बातोंमें मेरा विश्वास नहीं रह गया है। उनके लिए हमारे यहाँ वातावरण नहीं है। अविश्वास, शक, डर और असहायपनेसे भरी हुई हवामें, मेरी समझमें इन तरीकोंसे एकता होनेके बदले, उसमें बाधा पड़ती है। मैं इसलिए परमात्मासे प्रार्थना और ऐसे व्यक्तिगत दोस्ताना कामोंपर भरोसा रखता हूँ। इसलिए एकता पैदा करनेके लिए की गयी सभाओंमें जानेकी मुझे कोई ख्वाहिश नहीं रही है। तो भी इसके मानी यह नहीं हैं कि मैं ऐसे प्रयत्नोंको बुरा समझता हूँ। इसके उलटे, जिन्हें वैसी सभाओंमें विश्वास है, वे उन्हें जरूर करें। मैं उनकी पूरी सफलता चाहूँगा।

दोनों ही जातियोंकी मनोवृत्तिसे मेरा मेल नहीं बैठता। अपने खयालसे दोनों ही कह सकते हैं कि मेरा तरीका असफल रहा है। मै जानता हूँ कि जिनकी रायकी कुछ कीमत है, उन लोगोंके बीच में अत्यन्त ही लघुसंख्यक दलमें हूँ। इन सभाओं वगैरहमें शामिल होकर मै कोई उपयोगी सेवा तो कर नहीं सकता। और चूंकि सच्ची एकताको स्थापित देखनेके सिवाय मेरा दूसरा स्वार्थ नहीं है, इसलिए जहाँ मैं हाजिर होकर सेवा नहीं कर सकता, वहां मै न जाना ही सेवा समझता हूँ।

मेरे लिए तो सत्य और अहिंसाको छोड़कर और किसी जरिये आशा नहीं है। मैं जानता हूँ कि जब सब कुछ असफल होगा, तब वे सफल होंगे। इसलिए चाहे मैं एक ही लघुसंख्यामे हो जाऊं या मेरी ओर बहुमत हो मगर मै तो वही रास्ता चलूँगा जो मुझे जान पड़ता है कि ईश्वर दिखलाते हैं। महज सामयिक नीतिके तौरपर आज अहिंसा किसी कामकी नहीं है। यह वैसी नीतिके तौरपर तभी कारगर हो सकती है जब कि हमारे बीच इसके विरुद्ध चलनेवाली शक्तियाँ न होंगी। मगर जब कि हमसे उनका मुकाबिला पड़ता है जो हिंसासे खास हालतोमे काम लेना अपना ध्येय मानते हैं तो कामचलाऊ नीतिके तौरपर अहिंसाका सहारा टूट जाता है। अहिंसामे पूर्ण विश्वासीके विश्वासकी कसौटीका समय तभी आता है। इसलिए मैं और मेरे विश्वास दोनोकी ही आज कसौटी हो रही है। और अगर हम सफल होते मालूम न पड़े तो आलोचक मेरे ध्येयको दोष देनेके बदले मुझे दोष देवें। मैं जानता हूँ कि कभी-कभी मै अपने ध्येयके विरुद्ध लड़नेको लाचार हो जाता हूँ। अबतक मै अपनेको ऐसा नहीं बना सका हूँ कि हिंसाका विचारभी न कर सकूँ। मगर परमात्माकी दी हुई सारी शक्ति लगाकर मै प्रयत्न कर रहा हूँ।

अब शायद पाठक समझ गये होंगे कि मै पहले जैसा अली बिरादरानके साथ क्यों नहीं रहता। अब भी मै उनकी मुठीमे हूँ। वे अब भी मुझे सगे भाइयो जैसे प्रिय हैं। मुसलमानोंके गाढ़े दिनपर उनका साथ देनेके लिए मुझे अफसोस नहीं है। अगर फिर अवसर आया तो मैं वही करूँगा। अगर्चे हम दोनोका उद्देश्य एक ही है मगर रास्ते एक नहीं हैं। वे तो मुझे शिमले और कलकत्तेकी सभाओंमें ले जाते। कोहाटके दंगेके बादसे घटनाओंको समझनेमे हम लोग एक राय नहीं हो सके हैं। मगर वह दोस्ती ही किस कामकी जो इसीपर निर्भर हो कि हर बातमे हमारी रायें मिलती रहें। सच्ची दोस्ती ऐसी होनी चाहिए जो सच्चे मतभेदको, चाहे वह कैसा ही तीव्र क्यो न हो, बरदाश्त करे। मै मानता हूँ कि हमारे मतभेद सच्चे हैं और इसलिए जो मेरे और अली बिरादरान तथा दूसरे मुसलमान मित्रोंके बीच जिनका नाम पाठक सहज ही बूझ सकते हैं, जिन्हें दोस्तीके टूटने या उसमे कमीका शक था, जान जॉय कि वह पहले जैसी अब भी पक्की बनी हुई है।

हिन्दी-नवजीवन
८ दिसम्बर, १९२७

राष्ट्रीय महासभा-एकता

डॉक्टर अंसारीके भाषणकी विशेषता थी, एकताके लिए उनकी बल इच्छा। वे जानते थे कि एकता स्थापित करनेकी उनसे आशा की जाती थी। और अगर यह काम किसी सिर्फ एक आदमीके बूतेकी बात थी तो वह आदमी अवश्य डॉक्टर अंसारी ही थे। राष्ट्रका दिया हुआ सर्वश्रेष्ठ सम्मान उन्होने इसलिए स्वीकार किया कि उन्हें राष्ट्रमे, इस कार्यमे और अपने आपमे विश्वास था। उन्होंने इस महत्वाकांक्षाकी पूर्तिके लिए उठा तो अवश्य ही कुछ नहीं रक्खा था। भाग्यने भी उनका साथ दिया। श्रीयुत श्रीनिवास ऐयंगरने भी उस समय अपनी साहसिकतासे उन्हें सहायता पहुंचायी। शिमलेकी आंशिक विफलताके बाद कोई सभापति उनके जैसा काम करनेका साहस नहीं कर सकता था। मगर श्रीनिवास ऐयंगर तो पीछे हटनेवाले आदमी नहीं हैं। उन्होने अली बिरादरान, डॉक्टर अंसारी और मौलाना अबुल कलाम आजादको अपनी ओर कर लिया और अपने स्वाभाविक जोरो शोरसे अपना प्रस्ताव स्वीकार करा ही लिया। उन्होंने कोई एक ही हठ नहीं पकड़ लिया था। जब आखिर उनके प्रस्तावका बाजों और गो-कुशीवाला भाग उन्हें दिखलाया गया, जिसके कारण प्रायः सारीकी सारी ही बात बिगड़ी जा रही थी, और उनके उसके बदलेमें दूसरी बात सुझायी गयी, तो उन्होने सच्चे मनसे, खूब खुलासगीसे और उदारताके साथ वह दोष स्वीकार कर लिया और कहा कि इस संशोधनसे मूल प्रस्ताव बहुत अधिक अच्छा हो जाता है। मुसलमानोने भी अवसरको संभाल लिया शुरूमे उन्हे कुछ हिचकिचाहट झिझक तो थी ही, मगर अन्तमे उन्होने भी बिना किसी उज्रके इस सुधारको मान लिया। जहाँतक हो सके लोगोकी साधारण इच्छाको माननेकी पूरी नियतसे ही मालवीयजी आये थे। वे यह बात जानते थे और सब कोई समझते थे कि अगर वे चाहें तो एकताका रास्ता बन्द हो सकता है मगर उन्होने यह नहीं किया। बेशक कई संशोधन जो वे जरूरी समझते थे उन्होंने पेश किये, मगर अगर उनके संशोधन अस्वीकृत होते तो भी वे मूल प्रस्तावका विरोध करनेवाले नहीं थे। शायद पंडित मालवीजीयसे पुराना दूसरा कोई कांग्रेस-वादी नहीं है। महासभाके प्रति उनकी भक्ति अतुलनीय है। उनका देश-प्रेम ऊँचेमे ऊँचे प्रकारका है। मगर अबतक मेरे मुसलमान मित्र बराबर ही साम्प्रादायिकता बनाम राष्ट्रीयताके सम्बन्धमे उनके सदुद्देश्योमे मेरे विश्वासकी कीमत घटाया करते थे। जहाँ कहीं हिन्दू-मुसलिम प्रश्नपर मेरा उनका मतैक्य नहीं हुआ है, तब भी मैं उन्हें शककी निगाहसे नहीं देख सका हूँ। इसलिए मेरे लिए यह बहुत बडी खुशीकी बात थी कि अली भाइयोंने एकताके प्रस्तावपर उनके उस महान भाषणको स्वीकार किया।

जबतक हिन्दू और मुसलमान नेता एक दूसरेकी नीयतों, भाषणों और कामोंमें अविश्वास करते हैं, तबतक सम्पूर्ण प्रस्तावोंके स्वीकृत होनेपर भी सच्ची एकता नहीं हो सकती। आइये हम आशा करें कि महासभामें जो विश्वास पैदा हुआ, वह कायम रहेगा और एक दूसरेसे फैलकर बढ़ता जायगा। मालवीयजीके भाषणकी खुशीमें मौलाना मुहम्मदअलीने कहा कि अब मुसलमान लार्ड विण्टर-टनसे लघु-संख्याओंकी हिफाजतकी प्रार्थना नहीं करना चाहते क्योंकि यह काम मालवीयजी ज्यादा अच्छी तरह कर सकते हैं। अगर कोई एक हिन्दू अकेले ही मुसलमानोंको हिन्दुओंकी ओरसे ऐसी रक्षाका वचन दे सकता है तो वह केवल मालवीयजी ही हैं। मालवीयजी यह कहकर दिखा सकें या नहीं मगर मौलाना साहेब और दूसरे मुसलमान और दूसरी लघु-संख्याएँ हमेशेके लिए यह खयाल छोड़ देवें कि कोई तीसरा हमारी रक्षा करेगा या करनेकी उससे उमेद रखनी चाहिए।

अगर बहुसंख्याएँ यह रक्षण न देवें तो उनसे यह जबरन छीनना इसकी बनिस्बत कहीं अच्छा होगा कि कोई तीसरा बुलाया जाय जो दोनोंको कमजोर करे, जलील करे, और राष्ट्रको गुलाम बनाये रक्खे। इसलिए मेरे लिए तो महासभाका सबसे बड़ा काम था हार्दिक भावनाका यह परिवर्त्तन।

जहाँ तक अधिकांश हिन्दुओंसे मतलब है? सिर्फ बाजा और गायके सवाल-से उनका संबंध है। इस प्रस्तावका मूल रूप तो बिलकुल ही बुरा था। अंतमें विषय-समितिसे स्वीकृति होकर वह जिस रूपमें निकला, उसके बारेमें सिर्फ इतना ही कहा जा सकता है कि वह निर्दोष है, और हमारे राष्ट्रीय विकासकी इस स्थितिमें उसका सबसे अच्छा वही रूप स्वीकृत हो सकता था। कमसे कम मैं तो उसपर खुशियाँ नहीं मना सकता हूं। मैं तो उसे सिर्फ कामचलाऊ प्रस्तावके ही रूपमें रहने दे सकता हूँ, मगर तौभी उससे बहुत कुछ हो सकता है। अगर महासभाकी अपील हिन्दुओं और मुसलमानोंके दिलमें घर कर सके और दोनों सम्प्रदाय एक दूसरेके भावोंकी उसी प्रकार रक्षा करें जैसे कि वे अपने दावे पेश करते हैं, तो शान्ति तुरन्त हो सकती है, स्वराज सहज ही मिल सकता है।

राष्ट्रके सामने अँग्रेजी साम्राज्यकी ताकतकी जो शेखी बड़ी उद्धततासे लार्ड बरकेनहेड बघार रहे हैं उसका सबसे अच्छा और गौरवपूर्ण जवाब यही होगा कि हम परस्पर सिरफुड़ौवलकी बेवकूफी समझकर उसे छोड़ देवें।

इसलिए महासभाकी अपीलकी जाँच करनेसे लाभ होगा। मैं जानता हूँ कि गायोंके बारेमें हिन्दुओंके भावोंकी रक्षा करनेके लिए क्या करना होगा।

जबतक मुसलमान स्वेच्छापूर्वक खुराक या बकरीद दोनोंके ही लिए गो-वध बिलकुल ही बंद नहीं कर देते, यह होनेकी नहीं है। अगर कोई जालिम शस्त्रके बलपर गायको कसाईके हाथसे बचाये रहे तो इससे हिन्दू धर्मको संतोष नहीं होगा।

हिन्दुस्तानमे हिन्दू धर्मको इस्लाम इससे अच्छा उपहार नहीं दे सकता कि वह गो-वध इस तरह स्वेच्छापूर्वक बंद कर देवे। और मैं इस्लामसे इतना अधिक परिचित हूँ कि मै यह दावा करता हूँ कि इस्लाम गो-वधको अनिवार्य नहीं बताता मगर अपने अनुयायियोंको इसलिए लाचार जरूर करता है कि वे अपने पड़ोसियों के भावोंका जहाँ तक संभव होवे, सम्मान करें।

मेरे लिए मस्जिदोंके आगे बाजेका सवाल गो-कुशीके बराबर महत्वपूर्ण नहीं है। मगर इसका भी महत्व इतना बढ़ गया है कि उसकी उपेक्षा करनी बेवकूफी होगी। यह तो मुसलमानोंके कहनेकी बात है कि उनके भावोंकी रक्षाके लिए क्या करना चाहिये। और अगर मस्जिदोंके आगे बाजे बजाना कतई बंद करनेसे ही मुसलमानोंके भावोंकी रक्षा हो सकेगी तो बिना एक क्षण भी सोचे हुए ऐसा करना हिन्दुओंका कर्त्तव्य है। अगर हमे हार्दिक एकता चाहिये तो हममेसे हर एकको यथेष्ट स्वार्थ-त्याग करनेको तैयार रहना चाहिये। अगर यह अत्यंत इष्ट फल होना है तो डॉक्टर अंसारीको शान्ति-दल भेजने होंगे जो इस संदेशका प्रचार करें और जनतासे भी इसे स्वीकार करावें।

क्या हमारे पास इस संदेशका प्रचार करनेके लिए काफी इमानदार, मिहनती और इच्छुक प्रचारक हैं? आइए, हम आशा करे कि हैं।

हिन्दी-नवजीवन
५ जनवरी, १६२८

हमारा कर्त्तव्य

गोधरामे जो करुणा-जनक दुर्घटना हो गयी, और जिसके कारण भाई पुरुषोत्तम दास शाहने वीरतापूर्वक मृत्युकी भेंट की, उसके बारेमे 'नवजीवन' मे मैंने एक टिप्पणी लिखी थी। उसका शीर्षक दिया था 'गोधरामे हिन्दू-मुसलमानोके बीच लड़ाई'। यह कितने एक हिन्दू भाइयोको न रुचा। उसमेसे कितनोंने क्रोध भरे पत्र लिखे और शीर्षक सुधारनेको कहा। मैं उसका शीर्षक नहीं सुधार सका। एकका मरण हो या अनेकका, दो पक्ष आमने सामने लड़ें या एक मारे और दूसरा मरे मगर तौ भी अगर यह सब लड़ाईके ही कारण हुआ हो तो यह लड़ाईमें ही आवेगा। क्या गोधरामें और क्या दूसरे स्थानोमे, किन्तु आज हिन्दू-मुसलमानोके बीच लड़ाई है चलती है। सौभाग्यसे अबतक गॉव उससे अछूते रहे है। और कुछ ही शहरोंको छो

कर बाकी सभी छोटे बड़े शहरोंमें, एक या दूसरे रूपमें लड़ाई ही चालू रही है। अपने पास आये पत्रोंमेंसे भी मैं यही देखता हूँ कि गोधरामें जो कुछ हुआ, वह लड़ाईका ही परिणाम है—इसे कोई इनकार करता हुआ नहीं जान पड़ता है।

इसलिए अगर महज लेखके नामकी फिरयाद करके लेखक शान्त रहते तो मैं यहाँ कुछ भी न लिखता, और उन फिरयाद करने वालोंको अलग-अलग जवाब देकर शान्त हो जाता।

किन्तु दूसरे पत्र जो आये हैं, उनमें मुझपर दूसरे ही कारणसे क्रोध फूट निकला है। किसी स्वयंसेवकने एक लम्बा पत्र लिखा है, जिसका सारांश यह है—"आप लिखते हैं कि मैंने हिन्दू-मुसलमानोंकी लड़ाईके विषयमें मौन लिया है। जब आपने हमसे खिलाफतमें मदद दिलवायी थी, तब मौन क्यों नहीं लिया था? आपने अहिंसाकी बात करते समय क्यों न मौन लिया? अब जब दोनों लड़ रहे हैं तब आप मौन धारण कर बैठे हैं। यह कहाँका न्याय है? इसमें अहिंसा कहाँ आयी? दो घटनाओंकी ओर आपका ध्यान खींचता हूँ।

एक हिन्दू व्यापारीने मुझसे कहा—

"मेरी दूकानमें आकर मुसलमान चावलके बोरे ले जाते हैं। वे दाम नहीं देते और मुझसे मागना भी पार नहीं लगता। क्योंकि अगर मागू तो वे मेरी वखार ही लूटेंगे। इसलिए मुझे हर महीने दससे पद्रह बोरेतक मुफ्त देने पड़ते हैं और एक बोरेमें ५ मन चावल होता है।"

दूसरे कहते हैं—

"हमारे मुहल्लोंमें मुसलमान आकर हमारे देखते हुए ही हमारी स्त्रियोंका अपमान करते हैं। और हम एक शब्द नही बोल सकते। अगर हम कुछ बोले तो अपना भोग पावे। इस बारेमें हम कुछ फिरयाद भी नही कर सकते।

"अब आप ऐसी घटनाओंमें क्या सलाह देंगे? अहिंसा-धर्म किस प्रकार चलावेंगे? इसका भी जवाब मौन खाते ही लिखियेगा क्या?"

इस प्रकारके प्रश्नोंके जवाब नवजीवनमें दिये जा चुके हैं। मगर तौ भी वे फिर फिर पूछे ही जाते हैं, इसलिए उनका जवाब देना उचित है।

अहिंसा कुछ डरपोकका, निर्बलका धर्म नहीं है। वह तो बहादुर और जानपर खेलनेवालेका धर्म है। तलवारसे लड़ते हुए जो मरता है, वह अवश्य बहादुर है, किन्तु जो मारे विना धैर्यपूर्वक खड़ा-खड़ा मरता है, वह अधिक बहादुर है। इसलिए जो मारके डरके चावलके बोरे दे देता है, वह डरपोक है, कायर है, अहिंसक नहीं है, वह अहिंसाके तत्त्वको नही जानता है।

मारके डरसे जो अपनी स्त्रियोंका अपमान सहन करता है, वह मर्द न रहकर नामर्द बनता है। वह न है पति बनने, या पिता बनने या भाई बननेके लायक। ऐसे आदमियोंको फिरयाद करनेका अधिकार नहीं है। जहाँ नामर्द बसते हैं वहाँ बदमाश तो होंगे ही।

ऐसी घटनाएं हिन्दू-मुसलमानोंके झगड़ेसे परे हैं। जहाँ मूर्ख होंगे, वहाँ ठग भी होंगे ही। उसी तरह जहाँ नामर्द होंगे, वहाँ गुण्डे भी होंगे ही। पीछे वे भले ही हिन्दू हों चाहे या मुसलमान। झगड़ा शुरू होनेके पहले भी ऐसी घटनाएं हुआ ही करती थीं। इसलिए वहाँपर प्रश्न यह नहीं है कि अमुक जातिसे कैसे बदला चुकाया जाय अथवा उसे कैसे भला बनाया जाय। किन्तु सवाल यह है कि जो नामर्द हों वे कैसे मर्द बनाये जायँ। जो चतुर है, स्याने हैं, वे अगर हिन्दू-मुसलमान लड़ाईके मूलमें रही हुई दोनो जातियोकी निर्बलताको देख जायँ तो हम इन झगड़ोका हल तुरत ही निकाल सकते हैं। दोनोको बलवान बनना है, दोनोको चतुर बनना है। दोनो अथवा एक समझकर होशियार बने तो यह हुआ अहिंसाका मार्ग, दोनों हारकर होशियार बनेंगे तो यह हिंसाका मार्ग होगा। मनुष्य-समाजमें यानी स्वतंत्रताको पूजनेवाले समाजमें कायरको स्थान नहीं है। स्वराज कायरके लिए नहीं है।

इसलिए ये घटनाएं लिखकर अहिंसाकी निन्दा करनी, या मुझपर रोष करना, मेरी दृष्टिमे व्यर्थ है। १९२१ के सालमे बेतियाके अनुभवके बादसे ही मै कहता हूँ कि जो मरकर अपनी या अपनोंकी रक्षा नही कर सकता, उसे मारकर अपनी या अपने संगीकी रक्षा करनेका अधिकार है, यह उसका धर्म है। जिसमे इतनी शक्ति न हो, वह नपुंसक है। उसे कुटुंबका मालिक या पालक होनेका अधिकार नहीं है। उसे अरण्यका सेवन करना चाहिये अथवा वह हमेशे लाचारकी स्थितिमें रहेगा, उसे रोज चींटीके समान पेटके बलपर रेंगनेके लिए तैयारीमें रहना चाहिए।

मेरे पास एक मात्र अहिंसाका ही मार्ग है। मुझे हिंसाका मार्ग रुचता नहीं है। उसे सिखानेकी शक्ति मै नही पैदा करना चाहता। आज जो वातावरण फैला हुआ है उसमे अहिंसाके प्रचारको स्थान नहीं है। इसलिए मैं चालू लड़ाइयोंके बारेमे मौन धारण कर बैठा रहा हूँ। अपनी ऐसी लाचारीका प्रदर्शन मुझे प्रिय नहीं हो सकता। मगर ईश्वरका यह कायदा नहीं है कि हमेशे हमे जो अप्रिय हो, वह न होने देवे, और प्रिय हो वही होने देवे। फिर ईश्वर निराधारका ही बेली है,

> 'निर्बलके बल राम,
> जब लगि अपनो बरत्यो, नेक सरयो नहि काम,
> निर्बल होय बलराम पुकारयो आयो आधे नाम।

यह सब जानता हूँ इसलिए अपनी लाचारीको सहन कर रहा हूँ, और विश्वास रखता हूँ कि मुझे किसी दिन ईश्वर ऐसा मार्ग बतलावेगा कि जिसे ग्रहण करके लोगोको बता सकूँगा। यह विश्वास मै जरा भी नहीं खो बैठा हूँ कि हिन्दू-मुसलमानको किसी न किसी दिन एक होना ही है। यह हम कैसे जाने कि ये कब और कैसे मित्र बनेंगे। भविष्यकी सरदारीका इजारा, ईश्वरने अपने ही हाथोमे रखा है। हमे उसने विश्वास रूपी नौका दी है। उसमें हम बैठें तो सहज ही शंका रूपी समुद्रको पार कर जायेंगे।

हिन्दी–नवजीवन
११ अक्टूबर, १९२८

हिन्दू-मुस्लिम प्रश्न

इसके अलावा हिन्दू-मुस्लिम प्रश्नपर 'एक युवक हृदय'ने जो लिखा, उसमेंसे नीचेके फिकरे उतारता हूँ—

"यह समझ कर कि हिन्दू मुसलमानोंके बीच एकता करानेके आपके प्रयत्न निष्फल जाते हैं, आप उस सबंधमें जो लगभग मौन धारण कर बैठे हैं, वह मुझे ठीक नहीं लगता है। भले ही इस सबंधमें आप मौनका सेवन करें। किन्तु क्या आपका यह फर्ज नहीं है कि जहाँ-जहाँ तूफान होते हों, वहाँकी पूरी हकीकत मँगाकर, विचार करके दोषीको दोषी कहिए। भले ही आप कोई सक्रिय भाग न लेवें, मगर दोनों पक्षोंकी बातें निष्पक्षतासे सुननेके बाद आपकी निगाहमें जो कुसूरवार ठहरे उसे स्पष्ट शब्दोंमें कहना क्या देशके हितको नुकसान करने वाला है? गोधरा तथा सूरतमें जो झगड़े हुए हैं, उनके बारेमें जो ढग आपने अख्तियार किया था वह सचमुच ही योग्य नहीं है। कानेको काना कहनेकी जो शूरवीरता आप और जगह दिखलाते हैं वह इस प्रसगपर कहाँ चली जाती है? हरि! हरि! मुझे सचमुच ही आपके ढगपर आश्चर्य होता है। अंतमें इस सबंधमें आपसे मेरी यह नम्र प्रार्थना है कि आप हिन्दुओंको अगर वे आपकी व्याख्या वाली अहिंसाका पालन न कर सके तो, उन्हें जो लोग निष्कारण हैरान करते हों, उनका विरोध करनेकी सलाह देवें और जो मुसलमान भाई हिन्दुओंको दुश्मनके रूपमें देखते हों उनके प्रति तिरस्कारकी भावना सख्त और स्पष्ट शब्दोंमें प्रकट कीजिए।"

इस विषयकी बाबत भी मैं अपनी स्थिति बतला गया हूँ। मेरी उमेद है कि इसमें ऐसी कोई बात नहीं है कि मैं किसीके डरसे अपनी राय नहीं प्रकट करता हूँ। किन्तु जहाँ मेरा लिखना प्रस्तुत न हो, या राय कायम करने लायक काफी मसाला मेरे पास न हो अथवा जहाँ मेरा क्षेत्र न हो वहाँ मैं मौनको अपना धर्म मानता हूँ। हिन्दू-मुस्लिम प्रश्नके बारेमें मेरी दवा अभी दो पक्षमेंसे एक भी कुबूल करनेको तैयार नहीं है। इसलिए मेरा कहना अप्रस्तुत हो जाता है और यह प्रश्न हालमें तो मेरे क्षेत्रके बाहर गया हुआ गिना जायगा।

अब बात रही हुए और होने वाले हुल्लड़ोंके बारेमें सम्मति दर्शानेकी। जबकि मैंने इस प्रश्नको अपने क्षेत्रके बाहर गिना, तब मुझे उसके बारेमें सम्मति देनेकी जरूरत भी नहीं रह जाती है और जबतक मैं दोनों पक्षोंका जो कुछ कहना हो, जाँच उसकी न कर लूँ, तबतक मेरा राय देने बैठना अयोग्य, अविनयी गिना जायगा। इसमें अन्याय भी हो जा सकता है। जिस प्रश्नको मैं सुलझा न सकूँ, उसके बारेमें अपने आप ही पूछताछ करने भी क्यों जाऊँ?

किन्तु इसके ऊपरसे कोई यह न माने कि मैंने इस प्रश्नके संबंधमें हमेशाके

लिए अपने हाथ धो लिये हैं। मै तो एक कुशल वैद्यके समान, जिसे अपनी दवापर श्रद्धा है अपने समयकी राह देख रहा हूं। मेरा दृढ़ विश्वास है कि इस असाध्य जैसे जान पड़ने वाले रोगोके लिए मेरी ही दवा रामबाण है और उसका प्रयोग एक या दोनो ही पक्षोंको करना पड़ेगा।

इस बीच जिन्हें लड़ना होगा, वे मेरे कहे विना भी लड़ लेंगे। उसमें किसीके प्रोत्साहनकी आवश्यकता नहीं रहती है। मैं यह तो नहीं चाहता कि कोई अपनी निर्बलतासे लड़े और नामर्दी दिखलावे। नामर्दीमेसे अहिसाकी वीरता नहीं पैदा हो सकती। हिसा अहिसा दोनोमें बहादुरीकी आवश्यकता तो है ही। अहिंसा वीरताकी पराकाष्ठा है।

हिन्दी—नवजीवन
६ सितम्बर, १९२८

❀

श्री जिनासे बातचीत

बम्बईमें श्री जिनासे मेरी जो बातचीत हुई है, उसे लेकर हवामें किले बाँधनेकी कोई जरूरत नहीं देखता हूँ। पश्चिमी देशोंकी सफल और उज्वल यात्राके बाद श्रीमती सरोजिनी देवी जबसे स्वदेश आयी हैं, हिन्दू-मुस्लिम ऐक्यको सफल बनानेके लिए वह बराबर प्रयत्न कर रही हैं, उपाय सोच रही हैं। इसी इरादेसे वह एक दूसरेकी मुलाकातके लिए भी कोशिश कर रही थीं। चूँकि आते ही वह बम्बई ठहरी थीं, सहज ही श्री जिनासे मिलकर उन्होने अपने कामका श्रीगणेश कर दिया और इलाहाबादमें मुझसे कहा कि मैं बम्बई जाकर शीघ्र ही श्री जिनासे और अली भाइयोसे किसी दिन मिल लूँ। इसी कारण मैं बम्बई गया था। पहले श्री जिनासे मिला और बादमे अली भाइयोसे। हमारी बातचीत मित्रोका वार्तालाप थी। दोनो वार्तालापोका एक दूसरेसे कोई सम्बन्ध न था। वास्तवमें वे मित्रोंकी आपसमें बातचीत ही थी। अतएव उन्हें कोई खास महत्व देनेकी जरूरत नहीं होनी चाहिए। मुझे कोई प्रतिनिधिका अधिकार प्राप्त नहीं है, और न मैं किसी प्रतिनिधिकी हैसियतसे गया ही था। हाँ इतना जरूर है कि मैं स्वभावतः ही शान्ति और समझौतेके तमाम मार्गोंकी छानबीन कर डालना चाहता हूँ। और यही वजह है कि जिन लोगोका भारतमें थोड़ा भी प्रभाव है, उनकी मनोदशाका परिचय पानेकी एक भी संधि खोता नहीं। अतएव जनताके लिए तो यही अच्छा है कि वह इन वार्तालापोंके परिचय या विषयको लेकर बड़ी-बड़ी आशाएं न बांधे। अगर इनका कोई परि-

णाम निकला ही तो जनता भी अवश्य उसे जानेगी। इस दर्मयान जिनका प्रार्थनामें विश्वास है, वे मेरे साथ मिलकर प्रार्थना करें कि इस देशकी हिन्दू-मुसलमान और दूसरी सब जातियोंमें शीघ्र ही एकता या सन्धि हो जाय। और जो लोग मेरे समान खुद भी हमारी उन्नतिके लिए—हमारी ही नहीं बल्कि सारी दुनियाकी प्रगतिके लिए भी—ऐसी एकताको अनिवार्य समझते हैं वे उसे पानेकी जीतोड़ मेहनत करें। सचाईके साथ किया गया प्रत्येक छोटासे छोटा प्रयत्न हमें एकताके निकट पहुँचाएगा।

हिन्दी-नवजीवन
१५ अगस्त, १९२६

❀

थोड़े सवाल-जवाब

सत्याग्रह शुरू करनेकी बातें चल रही हैं, इस बारेमें कुछ मित्रों और टीकाकारोंके पूछे हुए सामयिक प्रश्नोंका जवाब देना आवश्यक है।

प्र०—आप इतने अधीर तो नहीं न हो गये हैं कि सरकारको अपने इरादों और योजनाओंकी इत्तिला किये विना, और उसे आपको सन्तुष्ट करने या गिरफ्तार करनेका मौका दिये विना ही आप सत्याग्रह छेड़ देंगे ?

उ०—जो लोग मेरे पिछले कामोंसे वाकिफ हैं उन्हें जानना चाहिए कि चोरीसे या अधीर होकर कोई काम करना मैं सत्याग्रहके विरुद्ध मानता हूँ। एक भी सच्चा कदम आगे बढ़ानेसे पहले मैं वाइसरायको अपने इरादेकी इत्तिला जरूर करूँगा। अपने विरोधी या नामधारी दुश्मनोंसे सत्याग्रही कोई बात छिपा नहीं रखता।

प्र०—क्या लाहौरमें आपने यह नहीं कहा था कि सविनय कानून भंगके लिए खासकर बड़े पैमानेपर कर न देनेकी लड़ाई लड़नेके लिए देश तैयार नहीं है ?

उ०—मुझे यह तो आज भी विश्वास नहीं है कि देश तैयार है। लेकिन पहले जो बात मैं साफ तौरसे नहीं देख पाता था वही आज मुझे दियेके समान स्पष्ट प्रतीत हो रही है और वह यह है कि हम यह नहीं कह सकते कि अहिंसाका जो वातावरण आज नहीं है, वह कल बन जायगा; इसके विपरीत हम देख रहे हैं कि आजकल देशमें हिंसक वातावरण बढ़ रहा है और अगर अहिंसावादी चुपचाप बैठे रहें तो शायद यह बढ़ता ही रहेगा, क्योंकि देशके नौजवान अधीर हो उठे हैं। मुझे विश्वास है कि चूँकि सन् १९२१ में महासभाने सत्याग्रह करनेका निश्चय किया था, इसलिए इनमेंसे बहुतेरे लोगोंने अपने हिंसात्मक कार्यक्रमको मुल्तवी कर दिया था। जैसे-जैसे मैं यह कहता हूँ कि देश सविनय कानून भंग करनेके लिए तैयार नहीं है, वैसे ही वैसे

नौजवान अधिक चंचल या अस्थिर चित्त बनते गये हैं। अतएव अब मैं यह महसूस करता हूं कि अगर अहिंसामें हिंसाको दबा देनेकी शक्ति है—और मुझे विश्वास है कि है—तो हिंसाकी धधकती हुई ज्वालाओंके बीच भी अहिंसाका चमत्कार सफल होना चाहिए। लेकिन इस संबंधमें एक कठिनाई यह थी कि चूंकि कांग्रेस सारे हिन्दुस्तानकी प्रतिनिधि सभा होनेका दावा करती है, इसलिए, क्या महासभा वादियोंके और क्या औरोंके, हरएक हिंसाकाण्डकी जिम्मेदारी अपने सिर लिए बिना कांग्रेस सविनय कानून भंग नहीं कर सकती। अब इस भद्र अवज्ञाकी जिम्मेदारी अपने सिर लेकर मैंने इस मर्यादाके बंधनका तोड़ खोज निकाला है। क्योंकि मैं तो किसीका प्रतिनिधि नहीं हूँ, अतएव जिन्हें स्वयं अपने साथ लड़ाईमें शामिल करूंगा; उन्हींके लिए जिम्मेदार भी रहूँगा। इसलिए फिलहाल तो जो लोग आश्रमके नियमोंका पालन कर रहे हैं और कुछ समय पहलेसे तदनुसार बरत रहे हैं, उन्हींको मैं अपनेमें शामिल करना चाहता हूँ। यह सच है कि लड़ाईके दरम्यान देशमें मार-काट शुरू हो जानेपर, अप्रत्यक्ष रीतिसे क्यों न हो, मगर उसकी जिम्मेदारी मेरे ही सिर रहेगी। लेकिन ऐसी जिम्मेदारी तो हमेशा ही रहेगी। वैसे तो आज मैं ब्रिटिश सरकारके साथ, जितना कम और अनिच्छासे ही क्यो न हो, जो सहयोग कर रहा हूँ उसके फलस्वरूप जनतापर होनेवाले शासकोंके अत्याचारका मैं जितना भागीदार हूं उससे कुछ ही अधिक जिम्मेवार मुझे दूसरोंके हिंसाकाण्डके लिए समझा जाना चाहिए। मसलन, आज मैं प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूपसे कर देकर सरकारके साथ सहयोग कर रहा हूँ। मैं नमक खाता हूं और इतने हीसे जानबूझ कर सरकारके साथ सहयोग कर लेता हूं।

एक दूसरी बात जो मुझे पहलेकी अपेक्षा आज स्पष्टतम प्रतीत होती है, यह है: ब्रिटिश साम्राज्यका पोषण करनेके लिए इस देशमें जिस तरह राज्य किया जाता है वह हिंसाकी महामूर्ति है। यह राज्य तो जान बूझकर हिंसाकी ही बुनियाद पर खड़ा किया गया है, और दूसरी ओर हमारे अधीर देशभक्त हिंसाके जालमें फँस गये हैं। वे नहीं जानते कि उनकी भद्दी और निष्फल खूनखराबीसे वे इस राज्यकी सहायता कर रहे हैं और जिसका नाश करना चाहते हैं उसीकी जड़ मजबूत बना रहे हैं। अब जब कि हिंसाके सम्पूर्णावतार इस राज्यको मेरी अहिंसा सहन कर रही है तो उन अज्ञान, अधीर युवकोंकी हिंसाको क्यो न सह लेगी? आज मैं यह स्पष्ट ही अनुभव कर हूं कि मेरी अहिंसाके प्रयोग ब्रिटिश कुराज्यके खिलाफ अपना काम कर रहे हैं और उनसे इस कुराज्यकी नींव कुछ हदतक जरूर ही हिली है। ठीक इसी तरह यदि आज मैं अपनी सारी हिम्मत इकट्ठा करके अहिंसाका प्रयोग करूँ अर्थात् सविनय कानून भंग छेड़ दूं तो उतावले देशभक्तोंकी राज्य विरोधिनी हिंसाको भी मेरी अहिंसा डिगा देगी। लड़ाईका सारा नियंत्रण-भार अपने हाथोंमें लेकर मैं इस दूसरे प्रकारकी हिंसाके जोखमको बहुत ही कम किये देता हूं। इतना कह चुकने-पर भी 'टाइम्स ऑव इण्डिया' ने मेरे इरादोंका जो वर्णन किया है, मेरे विचारसे

उसमें सत्य है। मैं जो कदम बढ़ाया चाहता हूँ उसे वह 'जुआखोरका आखिरी दाव' कहता है—भले कहे। मैंने अपनी जिन्दगी भर एक जुआ ही खेला है। सत्यकी खोजके मेरे अकथ प्रयत्नोंमें और अपनी श्रद्धाके अनुसार निःशंक होकर अहिंसा संबंधी प्रयोग करते रहनेमें मैंने चाहे जैसे भयंकर खतरेका सामना करनेमें कसर नहीं रक्खी है। यह करते हुए अगर मैंने कोई गलती की है, तो हरएक देश और हरएक युगके सुप्रसिद्ध शास्त्रियोंने जो गलती की थी वैसी ही गलती मुझसे भी हुई होगी। उन्होंने अपने जीवनके साथ कोई कम बाजियाँ नहीं दी हैं।

प्र०—लेकिन आपको तो हिन्दू-मुस्लिम एकतामें बड़ा भारी विश्वास था न, अब वह क्या हुआ? बगैर इस एकताके आपके पूर्ण स्वराजका भी क्या होगा?

उ०—इस एकताके बारेमें मेरी श्रद्धा जैसी पहले थी वैसी ही आज भी है। मैं ऐसा स्वराज्य नहीं चाहता, जिसमें एक छोटीसे छोटी कौमके साथ भी अन्याय हो तो फिर ताकतवर मुसलमानों और उन्हींकी बराबरीके सिक्खोंके साथ अन्याय करनेवाले स्वराज्यको मैं क्यों चाहने लगा? लाहौरकी महासभामें एकताका जो प्रस्ताव पास हुआ है वह इससे पहले महासभाने इस दिशामें जितने भी प्रयत्न किये थे, उन सबका निचोड़ है। लाहौरके प्रस्तावकी मन्शा है कि महासभा कौमी सवालोंको कौमी ढंगसे हल नहीं करेगी, लेकिन अगर ऐसे सवालोंको हल करना उसके लिए लाजिमी ही हो पड़ेगा तो वह किसी ऐसे ही फैसलेका विचार करेगी, जिससे न्यायकी इच्छुक कौमको न सिर्फ न्याय मिले बल्कि वह सन्तुष्ट भी हो। यह धारणा है कि जो संग्राम मैं छेड़नेवाला हूँ उससे देशकी सारी जनतामें स्वतंत्र होनेकी शक्ति पैदा होगी। जबतक सब दल एक नहीं होंगे, स्वतंत्रताका साक्षात्कार भी नहीं होगा। सत्याग्रहका कौमी सवालसे कोई सरोकार हो नहीं सकता। फिर भी यह दलील करना कि जबतक कौमी सवालका निपटारा न हो जाय सत्याग्रह शुरू नहीं किया जाना चाहिए, तेलीके बैलको भूल-भुलैयाका-सा है—यह कहना ठीक नहीं कि जबतक कौमी सवालका निपटारा न हो सत्याग्रह न छेड़ा जायगा। यह सम्भव है कि सत्याग्रह शुरू न हो तबतक यह सवाल भी हल न हो सके। मुझे आशा है कि अगर महासभाने कौमी सवालका प्रस्ताव शुद्ध नीयतसे किया है और अगर वह इस बारेमें एकनिष्ठ बनी रही तो वह एक ताकतवर मध्यस्थ या बिचवई साबित होगी और कमजोरसे कमजोर कौमके हितकी भी भली-भाँति रक्षा कर सकेगी। ऐसी महासभाके सदस्य जनताके सच्चे सेवक होंगे, सत्ता या अधिकारके लोलुप नहीं। पूर्ण स्वराज्य या एकताकी सिद्धितक वे सरकारी ओहदों या सरकारकी कृपा पानेके लिए छोटी-छोटी कौमोंके साथ स्पर्धा नहीं करेंगे। खुशनसीबी कहिये कि धारासभाओंसे महासभाका अब कोई ताल्लुक नहीं रह गया है। इन्हीं धारासभाओंने कौमी जहरके पैदा करनेमें अधिकसे अधिक भाग लिया है। हाँ, यह एक दुःखद बात जरूर है कि आज महासभाके सदस्योंमें ज्यादातर हिन्दू ही हैं। लेकिन अगर महा-

सभाके हिन्दू कौमी या जातीय दृष्टिसे विचार करना छोड़ देंगे, और दूसरी कौमोंको जो सहूलियतें बराबरीसे नहीं मिलती हैं, उनसे आप भी मुँह मोड़ लेंगे तो उनके इस कामसे दूसरी कौमोका अविश्वास फौरन ही मिट जायगा और अच्छेसे अच्छे मुसलमान, सिख, पारसी, ईसाई, यहूदी, और अपने आपको भारतीय माननेवाले दूसरे सब उनके साथ हो जायँगे। पर महासभा इस आदर्शतक किसी दिन पहुँचे या न पहुंचे, मेरा मार्ग तो सदाकी भाँति साफ ही है। सब कौमोकी एकता मेरे लिए कोई नयी चीज, नया प्रेम नहीं है। मैं समझने लगा तभीसे मैंने इस एकताको अपने प्राणसे भी बढ़कर माना है और तदनुसार ही मैं बरतता आया हूँ। सन् १८८९ में एक युवकको हैसियतसे जब मैं विलायत गया था तब भी कौमी एकताके बारेमें मेरी श्रद्धा आज ही की भाँति जागृत थी। १८९३ मे जब मैं दक्षिण अफ्रीका गया तो वहाँ भी मैंने इस एकताको ही केन्द्र बनाकर अपने जीवनका एक-एक कदम आगे बढ़ाया था। इस तरहका बद्धमूल प्रेम सारे संसारका राज्य मिलनेपर भी छोड़ा नहीं जा सकता। उलटे मुझे तो विश्वास है कि आगामी संसारके कारण जन-साधारणका ध्यान कौमी सवालसे हटकर हरएक धर्म और हरएक पंथके भारत वासियोके सामूहिक कल्याणके प्रश्नकी ओर आकर्षित होगा, वहीं जाकर ठहरेगा।

प्र०—तो क्या आप ब्रिटिश जनताका विरोध करने वाली, उससे बैर बाधने वाली एक शक्ति खड़ी करने जा रहे हैं?

उ०—कभी नहीं। इस लोक या परलोकको किसी भी चीजके मुकाबले मुझे अहिसा ज्यादा प्यारी है। सत्यके प्रति भी मेरे हृदयमे इतना ही प्रेम अवश्य है, क्योकि मेरे मनमें तो सत्य और अहिसा दोनों एक ही अर्थके सूचक हैं। और बगैर अहिंसाके सत्यके निकट पहुँचना या सत्यका दर्शन करना अशक्य है। यदि मेरे जीवनमें भिन्न-भिन्न धर्मोंके बीच कोई भेद नहीं है, तो भिन्न-भिन्न विचार-मार्गों, पंथो अथवा जातियोके बीच भी कोई भेद नहीं है। मैं यह मानता हूँ कि हर तरहकी विभिन्नता होते हुए भी मनुष्य आखिर मनुष्य ही है। इस लड़ाईके छेड़नेमें भारतीयोंके प्रतिका प्रेम मेरे लिए जितना प्रेरक कारण है उतना ही प्रेरक कारण अंग्रेजोके प्रतिका प्रेम भी है। मैं स्वयं कष्ट सहकर उनका हृदय-परिवर्तन करना चाहता हूँ, उनका नाश नहीं चाहता।

प्र०—लेकिन क्या आप यह नही सोचते कि हमारे इस स्थूल जगतमें आपके ये स्वप्न कभी सच्चे सिद्ध नहीं होंगे?

उ०—अगर ऐसा ही हो तो भले हो। मै जानता हूँ कि मुझपर ऐसे आरोप लगाये जाते हैं। भूतकालमें मेरे स्वप्न सच्चे सिद्ध हुए हैं, उपयोगी हो पड़े हैं, तो फिर यह आखिरी स्वप्न ही व्यर्थ क्यो होगा? यदि व्यर्थ ही हुआ तो नुकसान केवल मेरा और मेरे प्रभावमे आने वालोका ही होगा। लेकिन अगर सरकारको मेरे इस सपनेका बुरा नतीजा साफ दिखायी पड़ता हो तो वह जब चाहे तब मेरे शरीरपर

अपना अधिकार जमा सकती है। अगर मेरे सत्याग्रह छेड़नेकी धमकीके कारण किसी अंग्रेजकी जान आजकी अपेक्षा अधिक खतरेमें पड़ती हो तो कश्मीरसे कन्या-कुमारी और करांचीसे डिब्रूगढ़के बीच होने वाली तमाम खून-खराबीको दबा देनेके लिए ब्रिटिश सरकारका राजदण्ड काफी लम्बा और समर्थ है।

एक बात और। तमाम राजनीतिज्ञ और समाचारपत्रोंके सम्पादक मुझसे 'अपील' करनेके बजाय सरकारसे 'अपील' करें और वह जो अत्याचार आज सदियों से इस देशपर करती आ रही है उन्हें दूर करनेके लिए उसे समझावे, तो सत्याग्रह संग्रामको छेड़नेकी आवश्यकता भी न रह जाय। इन अन्यायों या अत्याचारोंमेंसे कुछका जिक्र तो मैं इन पत्रोंमें एक हद तक कर चुका हूँ।

हिन्दी-नवजीवन
२७ फरवरी, १९३०

हिन्दू-मुस्लिम एकता

कौमी सवालके बारेमें मेरे रुखको लेकर आजकल तरह-तरहकी गलतफहमियाँ फैलायी जा रही हैं। अतएव यहाँ किसी तरहकी दलील न करके मैं जितने स्पष्ट शब्दोंमें अपनी स्थितिको व्यक्त कर सकता हूँ, करूँगा।

१—पिछले चालीस वर्षोंसे इस बारेमें मैं जो विचार रखता आया हूँ, आज भी कायम हैं।

२—मैं मानता हूँ कि और-और बातोंकी तरह ही, जिन्हें मैं बराबर दोहराता रहा हूँ, कौमी एकताके बिना ही स्वराज्य कायम नहीं हो सकता।

३—वर्तमान आन्दोलनकी मंशा स्वराज्य या स्वतंत्रता स्थापित करना नहीं है, बल्कि लोगोंमें स्वराज्य पानेकी शक्ति उत्पन्न करना है।

४—जब यह शक्ति पैदा हो जायगी और पूर्ण स्वराज्य कायम करनेका मौका आवेगा, तब मुसलमानों और दूसरी जातिके भाइयोंको राजी करना ही होगा। मगर वे राजी न हुए तो आपसमें ही लड़ाई शुरू हो जायगी। लेकिन मैं तो इस आशा पर जी रहा हूँ कि अगर हम यह ताकत पैदा करनेमें कामयाब हुए तो हमारी आपसी फूट और एक दूसरेका अविश्वास काफूर हो जायगा।

५—नेहरू विधानके रद हो जानेसे, कौमी सवालके निपटारेकी बात भी स्वभावतः रद हो गयी है। लाहौर महासभा वाले प्रस्तावमें यह बात स्पष्ट ही कही गयी है कि चूँकि सिखों और मुसलमानोंको नेहरू विधानके अनुसार कौमी सवालके

इलसे संतोष नहीं हुआ है, इसलिए सब दलोंको सन्तुष्ट करनेके लिए इस सवालपर फिरसे विचार करना होगा।

६—मेरा जाना हुआ एक अहिंसात्मक उपाय तो यह है कि हिन्दू अल्पमतवाली जातियोंको जितना वे चाहें ले लेने दें। मुझे तो अल्पमतवालोंके हाथमें देशके शासनको सौंपते हुए भी हिचकिचाहट न होगी। युद्ध कोई कल्पना-जगत्की बात नहीं है। मेरे विचारसे यह उपाय सब तरहके खतरोंसे खाली है। क्योंकि स्वतंत्र राज्यमें तो शासनकी सच्ची शक्ति लोगोंके हाथमें रहेगी। इस शक्तिका परिचय आजकल मिल रहा है। अगर जनता अपनी शक्तिका अनुभव करके समयके साथ सार्वजनिक हितके लिए उसका उपयोग करे तो महान् शक्तिशाली राज्य भी उसके सामने सर्वथा निरुपाय बन सकता है। गुजरातमें आज लोग सफलताके निकट तक पहुंच चुके हैं, लेकिन शर्त इसमें यही है कि आज वे जिस संगठन और शक्तिका परिचय दे रहे हैं वह सच्ची और स्वयंस्फूर्त होनी चाहिए। यदि अन्धविश्वासके कारण वे यह सब कर रहे हैं तो सफलता नहीं मिलेगी। पाठक यह याद रक्खें कि देशके शासनमें उसकी आबादीके मुकाबिलेमें बहुत ही थोड़े लोग जिम्मेवारी और हुकूमतकी जगहोंपर काम किया करते हैं। सारी दुनियाका यही अनुभव रहा है कि सच्ची ताकत और सम्पत्ति तो उन्हीं लोगोंके हाथोंमें होती है जो शासनकी बागडोर थामे नहीं होते। हम लोग अपने देशमें हुकूमतके पीछे पागल बने हैं, क्योंकि हमारे देशवासी अज्ञान हैं और सहज ही ठगे तथा चूसे जा सकते हैं। वर्तमान शासनकी नस-नसमें सड़न पैदा हो गयी है। अहिंसात्मक शक्तिसे प्राप्त स्वतंत्रता निश्चित ही इस तरहकी बुराइयोंको प्रायः मिटा देगी। अतएव ऊपर मैंने कौमी झगड़ोंको सुलझानेका जो तरीका बताया है, वह अत्यन्त व्यावहारिक है। पर बात तो यह है कि आजकी अपनी मनोदशामें हम अपने रातदिनके अनुभवों और विरासतमें मिले ज्ञानके विरुद्ध किसी अन्य बातका विचार ही नहीं कर सकते। तथापि इससे अधिक स्पष्ट और क्या हो सकता है कि स्वतंत्र भारत हमारे वर्तमान अनुभवोंकी परिधिसे परेकी ही कोई चीज होगी? आलोचक चाहें तो कह सकते हैं कि अहिंसा और उसके द्वारा प्राप्त भारतकी स्वतंत्रता मात्र मेरे कल्पना-जगत्की ही चीजें हैं। इसका मैं यही जवाब दिया चाहता हूँ कि अगर इस लड़ाईके अन्तमें भी भारतवर्ष गुलाम बना ही रहा अथवा यदि नामधारी स्वतंत्रताको लोगोंने हिंसासे प्राप्त किया तो ईश्वरकी कृपासे उस समय तक मैं जिन्दा नहीं बचूँगा। मैं यह कबूल करता हूँ कि हथियार-बलसे प्राप्त की गयी स्वतंत्रतामें अल्पमतवालोंको अपनी रक्षा आप ही करनी पड़ेगी। परन्तु इसके लिए तो उन्हें इस सरकारकी कृपासे विशेष परिश्रम नहीं करना होगा। क्योंकि सरकार तो एक जातिको दूसरी जातियोंसे भिड़ाकर ही अपना उल्लू सीधा करती है। मेरे आलोचकोंकी कठिनाई यही है कि वे या तो मेरे सिद्धान्तोंकी उपेक्षा करते हैं या उनमें उन्हें श्रद्धा नहीं है।

लेकिन मैं तो अविचलित ही हूँ, क्योंकि अब अधिक समय तक वे उसकी उपेक्षा या अविश्वास नहीं कर सकेंगे।

७—जिसे लोग मेरी असंगति कहते हैं, वह उन लोगोंके लिए जो अहिंसाके रहस्यको ठीक-ठीक समझते हैं, असंगति नहीं है, फिर भले ही उनका यह समीचीन तर्क या बुद्धि सम्मत ही क्यों न हो।

८—सत्याग्रह द्वारा नमक-करको मिटाने, शराब और मादक द्रव्योंके व्यवहार-को बन्द करने तथा खादीके जरिये विदेशी कपड़ोंका बहिष्कार करनेमें किसी प्रकारके शककी गुंजाइश नहीं हो सकती। अतएव मैं निःशंक होकर सबको इस लड़ाईमें हाथ बँटानेके लिए निमन्त्रित करता हूँ। जो इस आन्दोलनमें भाग नहीं लेते वे किसी भी विचारगम्य स्थितिमें बुराईका विरोध करनेकी ताकतको अपनेमें पैदा करनेकी सन्धिसे हाथ धोते हैं।

९—एक अहिंसाको छोड़कर और बिना किसी विशेष शर्तके मैं यह संग्राम छेड़ चुका हूँ। इसका सीधा-सादा और सहज कारण यह था कि अन्यथा इस लड़ाईमें अहिंसाकी ही दुर्गति होनेकी बहुत सम्भावना थी। मैं अपनी ताकत भर इस तरहकी आपत्तिको चुपचाप बैठे सहन नहीं कर सकता था। मैंने तत्काल ही अनुभव किया कि अगर अहिंसा एक जबर्दस्त शक्ति है तो उसमें हिंसापर विजय पानेमें और उसमें से गुजर कर अपना रास्ता ढूंढ़ लेनेकी ताकत होनी चाहिए।

हिन्दी-नवजीवन
२४ अप्रैल, १९३०

❀

'गांधीजी' ग्रंथमालाके खण्डोंकी सूची

पहला खण्ड—(प्रथम भाग) भारतीय नेताओंकी श्रद्धाजलियां (प्रकाशित)

(द्वितीय भाग) भारतीय तथा रियासती नेताओंकी श्रद्धांजलिया (प्रकाशित)

दूसरा खण्ड—संसारके समाचार-पत्र तथा पत्रकारोंकी श्रद्धांजलियां

तीसरा खण्ड—विदेशोंकी श्रद्धांजलियां

चौथा खण्ड—कवियोंकी श्रद्धाजलियां (प्रकाशित)

पांचवा खण्ड—जीवन-चरित (प्रेसमें)

छठा खण्ड—गांधीजी सम्बन्धी संस्मरण

सातवां खण्ड—भारतको गांधीजीकी देन

आठवां खण्ड—गांधीजीके महत्वपूर्ण भाषण

नवा खण्ड—गांधीजीके पत्र (महत्त्वपूर्ण मूल-पत्रोंके चित्रोंके साथ)

दसवां खण्ड—अहिंसा (चार भागमें) (गांधीजीकी लेखनीसे) (प्रकाशित)

ग्यारहवां खण्ड—हिन्दू-मुसलिम एकता (,, ,,) (प्रथम भाग प्रकाशित)

बारहवां खण्ड—अछूतोद्धार (,, ,,) (प्रेसमें)

तेरहवां खण्ड—शिक्षा (,, ,,)

चौदहवां खण्ड—महिलाएं (,, ,,)

पन्द्रहवा खण्ड—गांधीजीका राजनीतिक दृष्टिकोण

सोलहवा खण्ड—गांधीजीका आर्थिक दृष्टिकोण

साम्प्रदायिक समस्या—खंड ११—प्रथम भाग

(नवजीवन ट्रस्ट, अहमदाबादकी आज्ञासे)

गांधीजी

खंड

ग्यारह

साम्प्रदायिक समस्या

प्रथम भाग

सम्पादक-मण्डल

मूल्य एक रुपया आठ आना मात्र

(प्रथम संस्करण : फरवरी १९५०)

मुद्रक तथा प्रकाशक

जयनाथ शर्मा

व्यवस्थापक

विद्यापीठ मुद्रणालय

बनारस छावनी

सूची

❀

प्रकाशकका वक्तव्य

'गांधीजी' ग्रन्थमालाका यह आठवाँ प्रकाशन ग्रन्थमालाके ग्यारहवें खंडका प्रथम भाग है। साम्प्रदायिक समस्यापर पूज्य बापूकी लेखनीसे जो अमूल्य विचार-धारा मानव जगत्को प्राप्त हुई है उसका यह प्रथम संग्रह है। आशा है कि और दो भागोमे साम्प्रदायिक समस्या संबंधी लेख समाप्त होंगे। इस भागके संकलन तथा संपादनमें श्री विद्यारण्य शर्मासे बड़ी सहायता मिली है। हम इनके आभारी है।

काशीके प्रसिद्ध कांग्रेस कार्यकर्ता तथा गांधीभक्त श्री रामसूरत मिश्र, श्री कृष्ण-देव उपाध्याय, स्वर्गीय श्री वैजनाथ केडिया, स्वर्गीय श्री कन्हैयालालजी शास्त्री तथा कार्माईकल पुस्तकालयके संग्रहोंसे हमें बड़ी सहायता मिली है। हम उनके भी आभारी हैं।

इस भागके प्रकाशनकी अनुमति देकर श्री जीवनजी डाह्याभाई देसाई, व्यवस्था-पक ट्रस्टी, 'नवजीवन ट्रस्ट,' अहमदाबादने जो कृपा की है उसके लिए हम कृतज्ञ हैं।

'गांधीजी' ग्रन्थमालामें अबतक भारतीय नेताओंकी श्रद्धांजलियाँ दो भाग, कवियोंकी श्रद्धांजलियाँ एक भाग तथा बापूके अहिंसा संबंधी लेखोंका संग्रह चार भाग इस प्रकार सात भाग प्रकाशित हो चुके है। हमने यह क्रम रखा है कि जिस खंडकी सामग्री एकत्र होकर प्रकाशनके लिए तैयार हो जाती है वह खंड प्रकाशित कर दिया जाता है, इस कारण खंडोंके विज्ञापित क्रममे व्यक्तिक्रम तो पड़ता है किन्तु खंडोंकी क्रमसंख्या वही रहती है जो पहलेसे ही निश्चित हो चुकी है। क्रमशः सब खंड प्रकाशित किये जायँगे।

हमें हर्ष है कि ग्रन्थमालामे अबतकके प्रकाशित भागोंका प्रथम संस्करण बिलकुल समाप्त होगया है अब सब भागोंका द्वितीय संशोधित संस्करण प्रकाशित हो रहा है। भारतीय नेताओंकी श्रद्धांजलियोंका प्रथम भाग पुनः मुद्रित हो चुका है। अन्य भागोंका पुनः संस्करण तैयार हो रहा है। इस आशातीत प्रचारसे हमें जो बल उत्साह तथा साहस प्राप्त हो रहा है उससे पूर्ण विश्वास है कि हम गांधी-साहित्यके' प्रसार तथा प्रचारके शुभ अनुष्ठानमें सफल होंगे।

❀

आमुख

ग्रन्थमालाके इस भागमें हम पाठकोंके सम्मुख गांधीजीके साम्प्रदायिक समस्या सम्बन्धी लेखोंका उपस्थित करना प्रारम्भ कर रहे हैं। गांधीजीने मानव जीवनका हर पक्ष अहिंसाकी कसौटीपर कसा है। अहिंसाके द्वारा जीवनकी सभी समस्याओंका सुलझाव उन्होंने किया है। इन लेखोंमें उन्होंने देशवासियोंमें व्याप्त साम्प्रदायिक तनातनीपर इसी दृष्टिसे विचारकर समाधान प्रस्तुत किया है। देशभरके स्त्री-पुरुष, संप्रदायभेदका विना विचार किये, अपनी दिक्कतें पूज्य बापूके सम्मुख उपस्थित करते थे तथा वे उनका समाधान यंगइंडिया, नवजीवन, हरिजन सेवक आदि पत्रों द्वारा बराबर किया करते थे।

महात्माजीकी अहिंसा सम्बन्धी भावनाओंकी तरह ही साम्प्रदायिक समस्याके सुलझाव सम्बन्धी उनके भाव देखनेमें अव्यावहारिक और आदर्शरूप समझे जाते थे। लोग कहते थे कि पढ़ने और सुननेमें वह भले लगते हैं किन्तु दिन प्रतिदिनकी घटनाओंपर जब उसका उपयोग करना पड़ता था तब लोगोंको उसका प्रयोग कठिन तथा असम्भव सा लगता था। किन्तु बात ऐसी नहीं है। बापूके इन लेखोंके पढ़ने तथा ध्यानपूर्वक मनन करनेसे स्पष्ट ज्ञात होता है कि मानव जीवनकी हर समस्यापर विचारकर समाधान निकालनेके लिए अहिंसाकी भावना परमावश्यक है तथा इस भावनाके पनपनेके लिए विशेष मनःस्थितिकी आवश्यकता है और जब वह मनःस्थिति उत्पन्न हो जाती है तब सभी कठिनाइयोंका सामना मनुष्य कर सकता है तथा उनपर विजय पाकर मानव समाजको अधिक सौम्य तथा सभ्य बना सकता है।

देशमें व्याप्त साम्प्रदायिक द्वेषका समाधान भी इसी तत्वपर उन्होंने सुझाया है। अहिंसात्मक मनःस्थितिमें मनुष्य-मनुष्यके बीच व्याप्त साम्प्रदायिक विद्वेषको मानव किस प्रकार दूर कर सकता है यह इन लेखों द्वारा ज्ञात हो सकता है। अनेक बार अनेकोंने इस समस्याके सुलझानेमें अहिंसात्मक पद्धतिमें उत्पन्न अपनी-अपनी कठिनाइयोंका उल्लेख किया है तथा ऐसी हालतमें गांधीजीने उनका मार्ग-प्रदर्शन किया है। उनका कहना है कि जबतक मनुष्य साम्प्रदायिक भावनाओंको द्वेषके मार्गसे प्रेमके मार्गपर नहीं लाता तब तक उसका सच्चा कल्याण नहीं हो सकता। इस मार्ग परिवर्तनमें अनेक कठिनाइयोंका सामना धैर्यके साथ करना पड़ता है तथा कष्ट सहन और त्यागके पश्चात वह अवश्य विजयी हो सकता है। उच्च भावनाओंको लेकर सच्चे तथा शुद्ध प्रेमपूर्ण कार्य व विचारपद्धति द्वारा समस्याओंके हल करनेसे

ही मनुष्य अपना सच्चा धर्म पालन कर सकता है। इसी विचार धाराका प्रतिपादन उन्होंने साम्प्रदायिक समस्याके समाधानके लिए भी किया है।

देशवासियोंमें जो साम्प्रदायिक मनोमालिन्य फैला था उसे दूर करनेका जो सत्प्रयत्न उन्होंने किया उसमें उन्हें भी अनेक प्रकारकी विघ्न बाधाओंका सामना करना पड़ा था लेकिन वे अपने मार्गसे कदापि विचलित नहीं हुए। साम्प्रदायिक मापदंड द्वारा देशका विभाजन हो जाने पर तथा तज्जनित भयंकर मारकाट तथा भगदड़ने भी उन्हें अपने पथसे विचलित नहीं किया। देशका इतिहास बताता है कि इस समस्याके हल करनेका एकमात्र मार्ग पूज्य महात्माजीका दिखाया मार्ग ही है तथा उनका सिद्धान्त व्यावहारिक तथा उपादेय है। यदि मानव समाज अपनी संस्कृतिको नष्ट होनेसे बचाना चाहता है तो उसका मार्ग लाठी, छूरा, तलवार, गंड़ासा, तोप, बंदूक, आदि नहीं है। बल्कि प्रेमपूर्ण मनःस्थिति उत्पन्न कर मनुष्य अन्य मनुष्यके साथ मनुष्यताका व्यवहार कर ही कर अपनी संस्कृतिको केवल बचा ही नहीं सकता अपितु समृद्ध भी कर सकता है। इसीमें मनुष्यताका कल्याण है। हमें पूर्ण आशा तथा विश्वास है कि इस ग्रन्थमालाके ये खंड देश तथा संसारके कल्याणमें सहायक होंगे।

❀

हिन्दू-मुस्लिम मेल

एकतामें असीम बल है। इस कहावतको चरितार्थ करनेके लिये अनेक तरहकी किस्से तथा कहानियाँ पुस्तकोंमें लिखी मिलती हैं। पर हिन्दू-मुसलिम एकताने इसे प्रत्यक्ष प्रमाण द्वारा चरितार्थ कर दिया। यदि हमलोग अलग-अलग रहना चाहते हैं, तो हमारा पतन अवश्यंभावी है। जबतक भारतके हिन्दू-मुसलमान एक दूसरेका गला काटनेके लिये तैयार बैठे रहेंगे तबतक कोई भी विदेशी शक्ति उन्हें अपना दास बनाकर अपने आधीन कर सकती है। हिन्दू-मुसलमान मेलका यह अभिप्राय नही है कि केवल भारतीय हिन्दू तथा मुसलमानोंमें परस्पर मेल हो जाय बल्कि भारतकी उन समग्र जातियोंमें परस्पर भ्रातृ-भावकी स्थापना हो जाय जो भारतको अपना घर समझती है और अनन्तकालसे उसमें रहती आ रही हैं। इस एकताकी स्थापनाके लिये धार्मिक भेद-भावका विचार कोई विघ्न-बाधा नही पहुँचा सकता।

इस बातको मैं अच्छी तरह समझता हूँ कि इस तरहकी मेलकी नींवको हम-लोगोंने इतना दृढ़ नहीं कर दिया है कि वह हर तरहके भारको बर्दाश्त कर सके। मेलका यह पौधा अभी उगा है। इसकी डालियाँ बहुतही नर्म तथा मुलायम है। इसकी देख-रेखके लिये इसकी नितान्त आवश्यकता है। जिस समय नेलोरमें इसका प्रमाण मेरे सामने उपस्थित हुआ उस समय मुझे यह बात सूझी। मैंने उस समय देखा कि हिन्दू और मुसलमानोंका परस्पर संबन्ध संतोषजनक नही है। अभी दो वर्ष भी नहीं बीते है कि एक साधारणसी बातपर दोनों लड़ पड़े थे। कुछ हिन्दू बाजा बजाते हुये जा रहे थे। मार्गमें मस्जिद पड़ गई। उन्होंने बाजा बजाना बन्द नहीं किया। यह मुसलमानोंको असह्य था। बस, इसीको लेकर झगड़ा उठ खड़ा हुआ। हमलोगोंको उचित है कि इस तरहकी साधारण-साधारण बातोंको विकट धार्मिक प्रश्नोंमें न मिला लें। इसलिये यह आवश्यक नहीं है कि हिन्दू सदा बाजा बजाते ही चलें। इसके लिये यह कहनेकी आवश्यकता नहीं कि पुरानी नजीरोंसे प्रगट हो जायगा कि इस तरह यहाँ सदासे बाजा बजते चले आये है। मसजिदके समीपसे जाते हुये वे बाजा बजाना बन्द कर दे सकते है। मुसलमानोंके धार्मिक विश्वासके अनुसार मसजिदके चारों तरफ हर वक्त पूरी शान्ति रहनी चाहिये। इस शान्तिके लिये सबको प्रयास करना चाहिये। जो बात हिन्दूके लिये आवश्यक नहीं है वही एक मुसलमानके लिये आवश्यक हो सकती है और जो बातें हिन्दू धर्मके अनुसार आवश्यक नहीं हैं उनका त्याग कर देना—यदि ऐसा करनेकी प्रेरणा मुसलमानोंकी ओरसे हो—प्रत्येक हिन्दूका धर्म है। जरा-जरासी बातपर लड़ मरना अव्वल नम्बरकी बेवकूफीमें शामिल है। जिस मेल और एकताकी हमलोग आकांक्षा करते है वह तभी प्राप्त हो सकती है जब हमलोग एक दूसरेके प्रति उदारता तथा सद्भाव रखनेकी चेष्टा

करेगे। गौ माता हिन्दुओंको प्राणोंसे भी प्यारी है। इसलिये मुसलमानोंको उचित है कि वे इस विषयमें हिन्दू भाइयोकी मर्यादा रखें। प्रार्थनाके समय मुसलमानोंके लिये अटल शान्तिकी आवश्यकता है, इसलिये हिन्दुओको उचित है कि वे मुसलमानोंके इस भावकी रक्षा करे। यही पूर्णताकी कसौटी है। पर हिन्दू और मुसलमानोंमें बदमाशोंकी कमी नही है जो साधारणसी बातोंके लिये भी झगड़ जानेको तैयार रहेंगे। इस तरहके झगड़ोंके निपटाराके लिये हमे ऐसी पंचायतें बैठा देनी चाहिये जिनमें इस तरहके झगड़ोपर विचार हो और उनके निर्णयको सर्वमान्य समझा जाय। इन पंचायतोंकी मर्यादाको स्वीकार करानेके लिये जनताका ध्यान उनकी तरफ आकृष्ट करना चाहिये जिसमे उनकी उपयोगितापर किसी तरहका विवाद न उठ खड़ा हो।

मैं यह भी जानता हूँ कि अभी तक एक दूसरेका परस्पर विश्वास नहीं जम सका है। कितने हिन्दू है जो मुसलमानोंकी विपतपर सन्देह प्रगट करते हैं कि स्वराज्यमे मुसलमानोकी प्रधानता हो जायगी, मुसलमानोका राज्य कायम हो जायगा। उनकी धारणा है कि बृटिशका प्रभाव भारतसे उठ जाते ही यहाँके मुसलमान अन्य मुसलमान राज्योकी सहायतासे भारतमे पुनः एकबार मुसलमानी राज्य स्थापित कर लेंगे। उधर मुसलमानोके दिलमें यह चोर पैठा है कि हिन्दुओंकी संख्या हमसे कहीं अधिक है और इसका परिणाम यह होगा कि वे लोग हमे कुचल डालेंगे। इस तरहके भावोंने दोनोंका दिल दुर्बल बना डाला है। यदि और कुछ नहीं तो एक साथ रहनेकी अभिलाषा ही उन्हें शान्त और परस्पर विश्वासयुक्त रहने देनेके लिये प्रेरित करती। दोनों धर्मोंमेंसे ऐसी कोई बात नहीं है जिससे दोनो अलग-अलग होकर रहें। वह जमाना बीत गया जब किसीपर बलात्कार करके उसे जबर्दस्ती मुसलमान बना लिया जाता था। गौका प्रश्न अलग कर दीजिये; मुसलमानोके साथ हिन्दुओके वैमनस्यका कोई कारण नहीं रह जाता। मुसलमान धर्मके अनुसार गोबध आवश्यक नहीं है। मुख्य बात यह है कि आज तक हमलोगोने इस बातकी कभी चेष्टा नहीं की कि हमलोग आपसमें मिलकर समझौता कर ले और इस तरहके भेदभावको मिटाकर मेलसे रहना सीखे, और एक ही मातृ-भूमिके पुत्र बनकर प्रेम तथा सद्भावसे रहें। इस समय हम दोनोंके हाथमे एक अपूर्व सुअवसर आ उपस्थित हुआ है। खिलाफतका प्रश्न फिर नहीं उपस्थित होगा। यदि हमारे हिन्दू भाई मुसलमानोका सद्भाव प्राप्त करना चाहते हैं तो उनके लिये यह सबसे उपयुक्त अवसर प्राप्त हुआ है। उन्हें उचित है कि इस्लामके लिये मुसलमानोके साथ वे कट मरें।

यंग–इंडिया
११ मई, १९२०

हिन्दू-मुस्लिम मेल

यह कहनेकी आवश्यकता नहीं कि असहयोगकी सफलता शान्ति तथा अहिंसापर जितनी निर्भर करती है, हिन्दू-मुसलिम एकतापर भी उतनी ही निर्भर करती है। इस संग्रामको चलानेके लिये दोनोंपर भीषण बोझ लादा जायगा और यदि इस भारको दोनोंने संभाल लिया तो विजय उसके सामने नाचती फिरेगी।

इसकी पहली परीक्षा आगरेमे हुई (जिस समय गोवधका प्रश्न लेकर दंगा हो गया था)। अपनी-अपनी रक्षा तथा न्यायके लिये जब दोनो दल अधिकारियोंके पास गये, उन्होंने उपहास करके कहा कि शौकत अलीके पास जाओ, गान्धीको खोजो। भाग्यवश उस समयके लिये उपयुक्त आदमी मिल गया। हकीम अजमलखॉ कट्टर मुसलमान है। साथ ही हिन्दुओंका भी उनपर अटल विश्वास रहता है। अपने साथियोंके साथ फौरन आगरा पहुंचे। समझौता करा दिया। इस समय दोनों दल पूर्ववत् मित्र बन गये हैं। इसी तरहकी दूसरी दुर्घटना दिल्लीके पास हुई। वहाँ भी हकीमजीके प्रभावने शान्ति स्थापित की। यदि हकीमजी वहॉ ठीक समय पर न पहुँच गये होते तो अनर्थ मच गया होता। पर अकेले हकीमजीके लिये कब सम्भव है कि शान्तिका झण्डा लिये सब जगह इस तरहके झगड़े मिटानेके लिये ठीक समय पर पहुँच सकें। और न मैं ही सब जगह पहुँच सकता हूँ, न मौलाना शौकत अली ही पहुँच सकते है। पर तो भी विच्छेद कराने के लिये जितने भी प्रयत्न किये जांय सबको विफल कर दोनों दलोंमें पूर्ण एकताकी स्थापना होनी चाहिये।

आगरेमे अधिकारियोसे सहायताके लिये प्रार्थना क्यो की गई ? यदि हमलोग असहयोग आन्दोलनको थोड़ा भी सफल बनाना चाहते हैं तो पहली आवश्यकता इस बातकी है कि परस्पर कलहके निपटारेके लिये हमे सरकारकी सहायताका ध्यान छोड़ देना चाहिये। यदि हमलोग अपने परस्पर झगड़ेके निपटारेके लिये ब्रृटिश सरकारकी सहायताकी अपेक्षा करते हैं, या किसी अभियुक्तको दण्ड देनेके लिये उसके पास जानेकी आवश्यकता समझते हैं तो हमारे असहयोगका सारा कार्यक्रम व्यर्थ और निष्फल समझिये। प्रत्येक गॉव या नगरमें कमसे कम एक हिन्दू और मुसलमान तो ऐसा अवश्य ही होना चाहिये जो दोनो दलोंको लड़नेसे रोक सके और वे यदि लड़ भी जॉय तो उनका निपटारा भी कर सकें। कभी-कभी तो सगे भाई ही लड़ पड़ते हैं। प्रारम्भिक अवस्थामे कहीं-कहीं इस तरहका प्रयत्न कर सकते हैं। हमे खेदके साथ लिखना पड़ता है कि हमलोगोंने—जिन्हें सार्वजनिक काम करनेका अभिमान है—जनताकी मानसिक स्थिति समझने तथा उनपर अपना प्रभाव डालनेका बहुत ही कम प्रयास किया है। उनमेसे जो बदमिजाज या झगड़ालू हैं, उनका तो हमलोगोने ख्याल ही नहीं किया है। जब तक हमलोग जनसाधारण पर अपना पूरा प्रभाव

नहीं डाल लेते और जब तक हमलोग उद्दंडोंको अपने वशमें नहीं कर लेते तबतक इस तरहकी बदमिजाजीकी घटनायें कभी-कभी अवश्य हुआ करेगी। पर ऐसी शोक-जनक घटनाओंके उपस्थित हो जानेपर हमें सरकारका मुँह ताकना छोड़ देना चाहिये। हमलोगोंको इस समय क्या करना चाहिये यह हकीमजीने दो स्थलोंपर प्रत्यक्ष करके दिखला दिया है।

जिस एकताके लिये हम लोग चेष्टा कर रहे हैं वह एकता बनावटी एकता नहीं होनी चाहिये। बल्कि हिन्दू और मुसलमानोंका दिल एकमें मिल जाना चाहिये। उन्हें यह बात अच्छी तरहसे समझ लेनी चाहिये कि जब तक हिन्दू और मुसलमान एक ग्रन्थिमें सदाके लिये बँध नहीं जाते, एक रस्सीमें बट नहीं जाते, तबतक जिस स्वराज्यका सुख-स्वप्न देखा जा रहा है वह प्रत्यक्ष दृष्टिगोचर नहीं हो सकता। केवल सन्धि या मेलसे यह काम नहीं सिद्ध हो सकता। जबतक दोनों एक दूसरेसे लड़ते रहेंगे यह संभव नहीं है। यह मेल दो बराबरी हैसियतवालोंका मेल होना चाहिये जिसमें दोनों बराबरी हैसियतसे मिलते हैं और एक दूसरेकी धार्मिक भावोंकी मर्यादा स्वीकार करते हैं और उसका समुचित आदर करते हैं।

यदि कुरान धर्ममें कोई ऐसी बात होती जिसके कारण मुसलमान लोग हिन्दुओंको अपना सहज बैरी समझते या हिन्दुओंके धर्मशास्त्रमें कोई बात होती जिसके कारण हिन्दू लोग मुसलमानोंको अपना जानी दुश्मन मानते तो मैं इस तरहके मेलको सर्वथा असंभव समझता और इस ओरसे सर्वथा निराश हो जाता।

यदि हमलोगोंको यही धारणा है कि हमलोग अतीत कालसे आपसमें लड़ते आये हैं, एक दूसरेके लिये शत्रु ही बने रहे हैं, अवसर पानेपर एक दूसरेका गला काटनेके लिये सदा तैयार रहे हैं; इसीलिये भविष्यमें भी यदि ब्रिटेन हमलोगोंको अपनी शक्तिशाली बाहुओं द्वारा फासले पर रखनेका यत्न न करता रहेगा तो हम फिर भी आपसमें कट मरेंगे, तो हमें यही कहना पड़ेगा कि हमलोगोंने अपने इतिहासका ठीक तरहसे मनन नहीं किया है। हिन्दू-धर्मशास्त्र तथा मुसलमान धर्मका हमने जहाँ तक मनन किया है उससे हम इसी परिणाम पर पहुँचे हैं कि हिन्दू-धर्मशास्त्रमें ऐसी कोई बात नहीं, जिसके आधार पर हम इस तरहकी धारणा कर लें। यह बात सब कोई स्वीकार कर सकते हैं कि स्वार्थी पुरोहितों या धर्माध्यक्षोंने समय-समय पर हमें उभार कर एक दूसरेको लड़नेके लिये विवश किया है। यह भी स्वीकार किया जा सकता है कि ईसाई राजाओंकी तरह मुसलमान बादशाहोंने भी इस्लाम धर्मके प्रचारके लिये तलवारकी सहायता ली थी अर्थात् उन्होंने बलपूर्वक मुसलमान बनानेका यत्न किया था। पर अब वह समय नहीं रहा। यद्यपि वर्तमान युगके सिरपर अनेक तरहकी बुराइयोंका टीका लगा है तो भी वह इस समय धर्म प्रचारमें इस तरहका बलात्कार स्वीकार करनेके लिये तैयार नहीं है, जैसे वह बलात्कार दासताको देखना नहीं चाहता। वर्तमान युगके विकासवादके फेरमें पड़कर ईसाई तथा इस्लाम धर्मकी

अनेक भ्रमात्मक बातें दूर हो गई। इस युगमें एक भी ऐसा मुसलमान नहीं दिखाई देता जो धर्म प्रचारके हेतु किसी तरहकी ज्यादती या बलात्कारका समर्थन करता हो। इस समय जिन बातोंका प्रभाव मनुष्य-हृदय पर पड़ सकता है उसके मुकाबिले तलवारका प्रभाव कुछ नहीं है।

यद्यपि पश्चिमीय जातियाँ रक्त-पात, धोखेबाजी, दगाबाजी आदिके प्रयोगमें अब भी प्रवीण हैं और उसका धड़ाधड़ प्रयोग करती है तो भी समस्त मानव समाज धीरे-धीरे उन्नतिके पथ पर आगे बढ़ता जा रहा है। भारत यदि आज हिन्दू-मुस्लिम एकताका प्रश्न हल करके अहिंसात्मक असहयोग द्वारा आत्म-त्यागके सहारे अपनी स्वतंत्रता स्थापित कर लेगा तो वह संसारको एक नया मार्ग दिखला देगा जिसकी सहायतासे लोग वर्तमान युगके पंकजसे बाहर निकलेंगे।

यंग-इंडिया
६ अक्टूबर, १९२०

हिन्दू-मुस्लिम मेल

कुछ दिन होते हैं कि मिस्टर कान्डलरने मुझसे पूछा था कि क्या आप हिन्दू-मुस्लिम एकताको चाहते हैं और आप यदि इसके लिये आतुर हो तो क्या आप उनके साथ खान-पान और व्याह शादीका सम्बन्ध भी चला सकते है? इसी प्रश्नको दूसरे ढंगसे कुछ और मित्रोंने मुझसे पूछा है। उनका प्रश्न है कि क्या हिन्दू-मुस्लिम एकताके लिये सहभोज और वैवाहिक सम्बन्ध भी आवश्यक होगा? यह प्रश्न करनेके बाद उन्होंने लिखा है यदि वास्तवमें हिन्दू-मुस्लिम एकताके लिये सहभोज और असवर्ण विवाह भी आवश्यक है तो यह एकता हर तरहसे असम्भव है। क्योंकि करोड़ों सनातन धर्मावलम्वी हिन्दू इसके लिये तैयार नहीं हो सकते। वे लोग तो सहभोजके लिये भी तैयार नहीं हो सकते, असवर्ण विवाहका तो प्रश्न विचारके एकदम बाहर है।

मेरा विचार उन लोगोंके साथ है जो जाति-पांतिके विभागको अनुचित या हानिकारक नहीं मानते हैं। वर्ण व्यवस्थाका नाम बड़े ही उदार सिद्धान्तोंके अनुसार दिया गया था और इससे राष्ट्रीय उन्नतिमें बड़ी सहायता मिलती थी। जिन लोगोंका कहना है कि राष्ट्रीय विकासके लिये सहभोज और असवर्ण विवाह आवश्यक है, वे भ्रममें हैं और पाश्चात्यके संसर्गसे उनके हृदयमें इस तरहके भाव उदय हुये हैं। जीवनकी शुद्धताके लिये अन्य स्वास्थ्य-सम्बन्धी जितनी बातें आवश्यक हैं, भोजनकी शुद्धता भी उतनी ही आवश्यक है और यदि मानव समाजने भोजन पर

इतना जोर न डाल दिया होता तो आज हमलोग जीवनकी अन्य बातोंकी तरह भोजनको भी एकतामें ही करते होते। हिन्दुओंका सदाचार कमसे कम यही शिक्षा देता है और आज भी हजारों हिन्दू ऐसे पाये जांयगे जो अपना भोजन किसीके सामने करना पसन्द नहीं करेंगे। मुझे ऐसे अनेक पुरुष तथा स्त्रियोंके नाम याद हैं जो भोजन एकदम एकान्तमें करते थे पर जिन्हें किसीसे किसी प्रकारका घृणा या राग-द्वेष नहीं था, वल्कि वे पूर्ण मैत्रीके साथ रहते थे।

विवाहका सवाल और भी टेढ़ा है पर मेरा तो यह कहना है कि यदि एक भाई और बहिन परस्पर पूर्ण मेलके साथ रह सकते हैं तो हमें इसमें कोई भी आपत्ति नहीं दिखाई देती कि मेरी पुत्री मुसलमानको अपना भाई समझकर और उसी तरह किसी मुसलमानकी पुत्री मुझे अपना भाई समझकर पूर्ण मेलके साथ न रहें। धर्म और विवाहके सम्बन्धमें मेरे विचार बड़े ही कट्टर हैं। खान-पान या विवाह आदिके सम्वन्धमें अपने मतपर जितना अधिक अधिकार रख सकेंगे धार्मिक दृष्टिसे हम उतने ही ऊँचे रहेंगे। यदि आज यह सम्भावना हो जाय कि प्रत्येक नवयुवकको मेरी लड़कीके साथ विवाह करनेका पूरा अधिकार है या मुझे संसारकी सभी जातियों-के साथ सहभोजमें खाना पड़ेगा तो मैं यहींसे निराश हो जाऊँगा कि इस संसारमें पुनः एकता स्थापित नहीं हो सकती। मैं इस बातको दावेके साथ कह सकता हूँ कि मैं संसारकी सभी जातियों और प्राणियोंके साथ मेलसे रहता हूँ। आज तक मैंने किसी मुसलमानसे क्रोध तक नहीं किया है। फिर भी वर्षोंसे मैंने इनके साथ सिवा फल आदिके और कुछ नहीं खाया है। जिस बर्तनमें मेरे लड़केने भोजन किया है और जिस गिलासमें पानी पिया है वह जबतक माँजा न जाय मैं प्रयोगमें नहीं ला सकता। पर इस तरहके व्यवहारसे मैंने आज तक न तो किसी मुसलमानका जी दुखाया न किसी ईसाईका जी दुखाया है और न इसके लिये मेरा लड़का ही कभी मुझसे असन्तुष्ट हुआ है। इसके अतिरिक्त सहभोज या असवर्ण विवाहसे कलह, वैर और विरोधकी रुकावट होते नहीं दिखाई दी है। भारतवर्षका इतिहास इस तरहके प्रमाणोंसे भरा है। कौरवों और पाण्डवोंको ही ले लीजिये। दोनों चचेरे भाई थे। खान-पान और ब्याह-शादी सब एक था। तो भी वे एक दूसरेका गला काटनेको उतारू हो गये। यही बात वर्तमान सभ्य संसारमें भी देखनेको आ रही है। अंग्रेज और जर्मन एक ही खूनके हैं। एक ही वंशका रक्त एक दोनोंकी धमनियोंमें वह रहा है, वैवाहिक सम्बन्ध भी बहुत ही नजदीक रहा है। पर तिसपर भी दोनों एक दूसरेका गला काटनेके लिये तैयार हो गये और वह वैमनस्य आज भी उसी तरह वर्तमान है।

इससे यह भाव निकला कि एकताके लिये विवाह या सहभोज आवश्यक पदार्थ नहीं है। यद्यपि इसका प्रतिरूप अवश्य है। पर यदि हम व्यर्थका दवाव या जोर एक दूसरे पर देने लगें तो वह मार्गका कंटक सहजमें हो सकता है, जैसे आजकल हिन्दू-मुस्लिम एकताके लिये हो रहा है। यदि हम लोग इस धारणाको हृदयागम

कर लेते हैं कि हिन्दू-मुस्लिम एकता तबतक स्थापित नहीं हो सकती जबतक हिन्दू मुसल्मानोमे खान-पान, व्याह-शादी भी न प्रचलित हो जाय तो हम लोग अपने बीचमे एक बनावटी बांध खड़ा कर देते हैं जो शायद जन्म-जन्मान्तरमें भी नही तोड़ा जा सकता और यदि आज मुसलमान नवयुवकोंके हृदयमे यह भाव आ जाय कि हिन्दू लड़कियोंके साथ वैवाहिक सम्बन्ध स्थापित करना जायज है तो इस बढ़ती हिन्दू-मुसलिम एकतामे घोर बाधा पड़नेकी संभावना है। यदि इस तरहकी निर्मूल आशंका भी हिन्दुओंके हृदयमे उत्पन्न हो गई तो वे मुसलमानोंको अपने घरमे घुसने तक न देंगे, सम्मानके साथ बैठाना तो दूर रहा जैसा कि अब शनैः शनैः होने लगा है। मेरी समझमे प्रत्येक हिन्दू और मुसलमान नवयुवकको यह बात भलिभांति समझ लेनी चाहिये कि जहाँ तक संबंध है उसके अधिकार बहुत ही नियंत्रित है।

मेरी समझमे वैवाहिक और खान-पानका सम्बन्ध स्थापित कर लेने पर न तो मुसलमान ही अपना धर्म बचा सकेंगे और न हिन्दू ही। पर सच्चा मेल वही होगा जिसमें एकता और सद्भावकी पूर्ण स्थापनाके साथ ही साथ अपनी-अपनी धार्मिक मर्यादा पर भी उतना ही ख्याल हो क्योंकि हम लोग इस बातकी चेष्टा कर रहे हैं कि कट्टरसे कट्टर हिन्दू और मुसलमान भी परस्पर मेलसे रहें और पुराने वैर-भावको भूल जॉय।

इतना कहनेके बाद यह प्रश्न उठता है कि हिन्दू-मुस्लिम एकताका मर्म क्या है और उसकी स्थापना किस प्रकार हो सकती है? इसका उत्तर बहुत ही सहज है। इसका आधार है—एक आदर्श, एक ध्येय और एक भाव। इसकी उन्नतिका मूल्य है—उस एक आदर्शको लेकर पूर्ण मेलके साथ-साथ चलना, सहनशीलताका भाव प्रगट करना और एक दूसरेके दुःख-सुखमे साथी बने रहना और यथासाध्य सहायता करना। इस समय हमारे सामने एक आदर्श उपस्थित है। हम सभी चाहते है कि यह देश स्वतंत्र हो जाय और अपना शासन आपसे आप करने लगे। विपत्ति भी हम-लोगोंके ऊपर घहराती है। इस समय हम देख रहे है कि खिलाफतके साथ अन्याय करके ब्रिटेनने मुसलमानोके हृदयो पर मर्माघात किया है। हमलोग जानते है कि खिलाफतकी मांग न्यायपूर्ण है तो इसके लिये हमे दत्तचित्तसे मुसलमानोंके साथ हो जाना चाहिये। मुसलमान की सच्ची मैत्री प्राप्त करनेके लिये इससे उत्तम कोई भी तरीका नहीं हो सकता। इस उपायसे आप मुसलमानोंके सद्भावको जितना खरीद सकते हैं उतना हजारो बारका सहभोज और विवाह काम नहीं कर सकता।

परस्पर सहनशीलता प्रत्येक जातिके लिये प्रत्येक अवस्थामें लाभदायक होती है। यदि हिन्दू मुसलमानोंकी उपासनाके कायदे-कानून तथा तरीकेको नापसन्द करें; उनके रस्म-रिवाज तथा चाल-चलनके ढंगसे घृणा करें, तथा उसी तरह मुसलमान भी हिन्दुओंकी मूर्ति-पूजाको घृणाकी दृष्टिसे देखे अथवा उनके रस्म-रिवाजको नापसन्द

करें तो फिर दोनोंमे मेल नहीं हो सकता और हमलोग शान्तिसे नहीं रह सकते। जो कुछ हम बरदाश्त करते है उसे ही बर्दाश्त करनेमें किसी तरहकी असुविधा नहीं है। बरदाश्त तो उसे करना चाहिये। जो विरोधी बातें हैं, जैसे मैं शराबसे परहेज करता हूँ और सदा यही भाव रखता हूँ कि लोग इससे अलग हो जॉय पर यदि कोई हिन्दू-मुसलमान या ईसाई इसे पीता है तो मैं उससे घृणा नही करता। उसी तरह मैं भी उन लोगोसे आशा करता हूं वे भी मेरे परहेजपनेकी मर्यादा रखेंगे। आजतक हिन्दू-मुसलमानोके कलहका प्रधान कारण यही रहा है कि दोनोंमेसे एकमें भी सहन-शीलता नहीं रही और दोनों अपना-अपना मन एक-दूसरेपर जबरदस्ती लाद देना चाहते थे।

यंग–इंडिया
२५ फरवरी, १६२१

हिन्दुओं सावधान !

बिहार असहयोगके लिये सबसे उत्तम भूमि है। बिहारका हिन्दू-मुस्लिम ऐक्य आदर्श है। इसलिये यह देख कर खेद हुआ कि उस ऐक्यपर आघात पहुंचनेकी आशंका है। जितने उदार प्रकृतिके हिन्दू-मुस्लिम नेता मुझसे मिले, सभोंने एक स्वरसे मुझसे कहा कि हिन्दू-मुसलमानोमे मतभेदकी आशंका उठ गई है। इससे हम लोग बड़े ही चिन्तित है और उसे रोकनेके लिये हर तरहकी चेष्टायें कर रहे हैं। लोगोंने मुझसे कहा कि चन्द हिन्दुओने यह अफवाह फैला दी है कि मैंने हिन्दू और मुसलमान दोनोंको मांसके प्रयोगसे रोक दिया है और मांस खाना निषेध कर दिया है। इसका परिणाम यह हुआ है कि कुछ अतिशय कट्टर शाकाहारियोंने लोगोंके घरों-से जबरदस्ती मछली और मांस निकालकर फेंक दिया। मैं जानता हूँ कि अनेक स्थानों पर मेरे नामपर अन्याय किया जा रहा है। पर यह घटना मुझे विचित्र प्रतीत हुई। लोग जानते है कि मैं कट्टर निरामिषभोजी सुधारक हूं। पर सब लोग इस बातको नहीं समझते कि अहिंसाका भाव सबके लिये बराबर है और इसलिये मैं मांसाहारियों-से भी बिना किसी असद्भावसे मिलता जुलता रहता हूँ। न तो गौ-रक्षाके लिये मैं किसी मनुष्यका बध कर सकता हूँ और न किसी मनुष्यकी रक्षाके लिये गो-वध कर सकता हूँ, चाहे दोनोंका महत्व कितना ही प्रबल क्यों न हो। मैं यही पर यह कह देना चाहता हूँ कि निरामिषभोजी होना हमारे असहयोग कार्यक्रमका अङ्ग नहीं है और न मैंने इस प्रकारकी मंत्रणा दी है। जिन लोगोने मेरे नाम पर इस तरहकी कार्यवाई की है मैं उन्हें जानता भी नहीं। मै पक्का विश्वास दिला देना चाहता हूँ कि यदि हमने कहीसे भी हिंसाका भाव प्रगट किया और शान्ति भङ्ग हुई तो हमारा सारा उद्देश्य विफल हो जायगा। हिन्दुओंको यह कभी भी उचित नहीं है कि वे मुसल-

मानोंको मांस—गो-मांस तक—खानेसे रोके। इसी प्रकार निरामिषभोजी हिन्दुओंको भी मांस-मछली खानेवाले हिन्दुओं पर किसी तरहका दबाव नहीं डालना चाहिये। मै तलवारके बलपर भारतको परहेजी नहीं बनाना चाहता। हिंसासे राष्ट्रका सदाचारिक ह्रास सबसे अधिक हुआ है। हम लोगोंके हृदयमे भयने सबसे प्रबल स्थान जमा लिया है। यदि असहयोगी लोगोंको अपने दलमें लानेके लिये बल प्रयोग करेंगे तो इससे बढ़कर दूसरी कोई भी भूल वे नहीं कर सकते। इस तरह वे नौकरशाहीके हाथके खिलौने बन जायेंगे। असहयोगके प्रचारमे लेश-मात्र भी बलात्कार मार्गमे भीषण बाधा उपस्थित कर देगी।

गो-रक्षाका प्रश्न बड़ा विकट प्रश्न है। इसका महत्व हिन्दुओकी दृष्टिमें सबसे अधिक है। गो-माताके लिये मेरे हृदयमे जो सम्मान है उसमे जरा भी कमी नहीं आ सकती। जब तक हिन्दुओंमें गो-रक्षाकी योग्यता नहीं हो जाती, वे अपने कर्तव्य का पालन नही कर सकते। इस योग्यताको प्राप्त करनेका दो मार्ग है—आत्मबल और पशुबल। और गो-रक्षाके लिये बल प्रयोग करना हिन्दू-शास्त्रको शैतानके हाथमे सौंप देना है और गो-रक्षाके मूल कारणको कलुषित तथा निन्दनीय बना देना है। किसी मुसलमानने लिखा है—"गो-मांसका प्रयोग इस्लाम धर्मके अनुसार अभी केवल जायज समझा जाता है, पर जिस दिन हिन्दू लोग इसके लिये बल प्रयोग करना आरंभ कर देंगे उसी दिनसे यह मुसलमानोका परम धार्मिक कर्तव्य हो जायगा।" केवल आत्मात्यागसे ही हिन्दू लोग गोमाताकी रक्षा कर सकते हैं। मेरी समझमें गोरक्षाके लिये हिन्दूओंके हाथमे एक ही उपाय है और वह यह है कि इन्हें इस संकट या आपत्तिके समय मुसलमानोका साथ देना चाहिये और उनकी सहायता कर उनका सद्भाव प्राप्त करना चाहिये। इतना करके उन्हें इस विश्वास पर चुपचाप बैठ रहना चाहिये कि इसका बदला मुसलमान भाई अवश्य मर्यादाके साथ चुकावेंगे अर्थात् अपने हिन्दू-भाइयोंकी इज्जत और मर्यादाका ख्याल रखकर वे गौकी रक्षा अवश्य करेंगे। इसके लिये हिन्दुओंको सबसे पहले मुसलमानोके प्रति हिंसाका भाव छोड़ देना चाहिये। आत्म-त्याग और विश्वास आत्म-बलके गुण हैं। हमने सुना है कि बड़े-बड़े मेलोमें यदि मुसलमानके हाथमें गाय या बछड़े या बकरियाँ देखी जाती हैं तो लोग उन्हें बलात् उनसे छीन लेते हैं। जो हिन्दु इस तरहका आचरण करते हैं वे हिन्दू और गोवंश दोनोके शत्रु हैं। गोवंशके रक्षाका सबसे उत्तम और बढ़कर उपाय खिलाफतकी रक्षा करना है। इसलिये मुझे पूर्ण आशा है कि प्रत्येक हिंदू हिसा या जोर-जुल्मका जरा भी भाव नहीं दिखावेगा और न किसी मुसलमानपर हाथ छोड़कर अपने हाथको कलंकित करेगा चाहे वह गोरक्षाके लिये हो, अन्य जीवकी रक्षाके लिये हो अथवा किसी अन्य प्रयोजनसे हो।

यंग-इंडिया
१९ मई, १९२१

हिन्दू-मुस्लिम मेल

यह बात अब सबपर प्रगट हो गई है कि जबतक हिन्दू तथा मुसलमानोंमें मैत्री नहीं स्थापित हो जाती, देश उन्नतिके पथपर अग्रसर नहीं हो सकता। यह भी सबको विदित है कि जिस सिमेन्टसे ये दोनो जोड़े गये हैं वह सूखकर कड़ी नहीं हो गई है, वह अभी सर्द है और उखड़ सकती है। परस्पर अविश्वास अबतक बना है। राष्ट्रके नेताओंको यह बात भली-भांति विदित हो गई है कि जबतक दोनोंका परस्पर विश्वास दृढ़ नहीं हो जाता, तथा साथ काम करनेके लिये दोनो तैयार नहीं हो जाते, भारत उन्नतिके पथपर अग्रसर नहीं हो सकता और न सच्ची उन्नति ही कर सकता है। जनताकी परिस्थितिमे परिवर्तन अवश्य हो गया है, पर स्थायी सुधार अभी तक आशाजनक नहीं हुआ है। अभी तक मुसलमान जन-साधारण स्वराज्यकी आवश्यकता पर वही प्रधानता देनेको तैयार नहीं है जो हिन्दु देते हैं। सार्वजनिक सभाओंको ही ले लीजिये, मुसलमानोंकी संख्या उतनी देखने में नहीं आती जितनी हिन्दुओंकी रहती है। यह काम जबर्दस्ती या दबाव डाल कर नहीं कराया जा सकता। पर अभी इसमें विलम्ब नहीं हुआ है। मुसलमानोंमें राजनैतिक स्पर्धा उठानेके लिये जितने समयकी आवश्यकता है उतना समय अभी तक नहीं बीता है। इस थोड़ेसे समयमें जो कुछ हुआ है उसका अनुमान करके हताश होनेका कोई कारण नहीं है। इसके थोड़े ही दिन पहले मुसलमान जनता कॉग्रेसके नाम तकको नहीं जानती थी, उसके प्रति सर्वथा उदासीन थी—उसकी कार्यवाहीमें भाग लेना तो दूरकी बात थी। पर आज वही मुसलमान जनता सैकड़ों और हजारोंकी संख्यामें कांग्रेसका सदस्य बन रही है। इसे साधारण बात नहीं कह सकते।

पर इतनेसे ही काम नहीं चल सकता। इस कामको सफल बनानेका कार्य हिन्दुओं पर है। जहॉ कहीं वे मुसलमानोंको उदासीन देखें उन्हें प्रोत्साहन देकर मैदानमें ले आवें। हिन्दुओंके मुँहसे बहुधा इस बातकी शिकायत सुननेमें आती है कि मुसलमान जनता न तो कांग्रेस संगठनमे भाग लेती है और न तिलक स्वराज्य फण्डके लिये चन्दा देने तथा बटोरनेमे उत्साह दिखाती है। पर क्या इसके लिये उन्हें उत्साहित किया गया है? क्या उन्हें अभी भी शामिल होनेके लिये बुलाया गया है? प्रत्येक जिलेमें, नगरमें तथा गाँवमे हिन्दू जनताका यह धर्म होना चाहिये कि वह मुसलमान जनताके पास जाती और उन्हें मैदानमे आनेके लिये प्रोत्साहित करती। जबतक हम लोगोमें ऊंच-नीच, बड़े-छोटेका भाव बना रहेगा तबतक हम लोगोंमें सच्ची समता कभी भी स्थापित नहीं हो सकती। जहॉ दो बराबरीके मनुष्य काम कर रहें हैं वहॉ संरक्षता या इस तरहके प्रश्नको हम लोगोंने अपने मनमें यही समझ लिया है कि इनसे मैत्री करके इस प्रश्नको हल करना असंभव है।

पर इस समय वे संकटमें हैं। हमलोग उनकी सहायताके लिये उनका साथ दे रहे है। यह काम हमलोग जानबूझकर कर रहे हैं। पर इसके लिये हमें इनसे किसी वदलेकी आकांक्षा नहीं रखनी चाहिये। यदि हमने किसी प्रतिदानके भावसे प्रेरित होकर उनकी सहायता की तो फिर उस सहायताका कोई मूल्य नहीं रह जाता। मैत्री लेन-देनके व्यवहारसे नहीं चल सकती। मैत्रीमें किसी भेद-भावका विचार नहीं रहता। सेवा एक तरहका धर्म है और धर्म एक तरहका ऋण है, और उस ऋणका प्रतिशोध न करना पाप और महापाप है। यदि हमलोग वास्तवमें मुसलमानोंके साथ मैत्री स्थापित करना चाहते है तो हमें उनकी सहायता अवश्य करनी चाहिये, इसे हमे वतलानेकी आवश्यकता नहीं है। इस भारको हम उनके ही मत्थे छोड़ देते है। हमलोग जो सहायता दे रहे है उसके वदलेमें हमें किसी तरहके उपकारकी मांग उनके सामने रखनेकी आवश्यकता नही है। इस तरहका उपकार तो खरीदा हुआ उपकार समझा जायगा और मुसलमान लोग इसे लेना स्वीकार न करे तो, उन्हें किसी तरहका दोष नहीं देना चाहिये। इन कारणोंसे मुझे पूरी आशा है कि विहार तथा अन्य प्रान्तके हिन्दू सावधान हो जायंगे और अव्वल दर्जेकी सहनशीलता प्रगट करने की चेष्टा करेंगे। चाहे इस वकरीदके अवसरपर मुसलमान लोग कुछ भी क्यों न करे, हमें उन्हें पूरी स्वतंत्रता दे देनी चाहिये कि वे क्या करते हैं।

हमलोग मुसलमानोंपर जितना दवाव डालनेकी चेष्टा करेंगे उतना ही अधिक गोवध वढ़ता जायगा। इसलिये इस संवन्धमें हमें यही उचित है कि हम कुछ न वोलें और सारी वात मुसलमानोंकी मर्यादा और कर्तव्य-ज्ञानपर छोड़ दें। यदि पूर्ण संयमके साथ इस कामको निष्पन्न करलें तो हम गो-रक्षाके लिये आवश्यकता-से अधिक प्रयास कर चुकेंगे।

गो-रक्षाका उपाय मुसलमानोंके साथ लड़ने या उन्हें मार डालनेमें नहीं हो सकता। इसके लिये मेरी समझमें एक ही वात दिखाई देता है और वह यह है कि हम लोग खिलाफतके साथ न्याय करानेके लिये मुसलमानोंके साथ प्राण देनेके लिये तैयार हो जायें और यदि आवश्यकता आ पड़े तो मर मिटें, पर गो-रक्षाका नाम न लें, उसकी चर्चा तक न करें। गो-रक्षा भी एक तरहकी आत्म-शुद्धि है। इसे एक तरह-की तपस्या समझनी चाहिये। जिस समय हम विना प्रयोजनके प्राण देनेको तैयार हो जाते हैं और उस बलिदानसे किसी तरहकी आकांक्षा नही रखते उस समय हमारी यातनाकी चर्चा ईश्वर तक पहुंचती है और उसका सिंहासन हिल उठता है। ईश्वर उसकी रक्षाके लिये तुरंत तैयार हो जाता है। यही धर्मका मर्म है और यदि एक मनुष्य भी इस योजनाके अनुसार काम करता है तो उसका फल अवश्य प्राप्त होता है। एक बात और है कि मैं इस बातको पूर्ण दृढ़ता तथा साहसके साथ कह सकता हूँ कि हिन्दू धर्म-शास्त्रके मर्यादाके अनुसार यह कहींसे भी सिद्ध नहीं होता कि हम केवल मात्र गो-रक्षाके लिये किसी मनुष्यका प्राण ले लें। इस तरह-

के आचरणको हिन्दू धर्मके अनुसार है नहीं कह सकते। इस समय प्रश्न यह उपस्थित है कि कितने हिन्दू, मुसलमानोंका साथ देनेको तैयार हैं? कौन लोग बिना किसी बदलेके ख्यालसे मुसलमानोंकी धार्मिक रक्षाके लिये अपना सर्वस्व अर्पण कर देनेके लिये तैयार हैं? यदि हिन्दुओंकी ओरसे इस प्रश्नका उत्तर धार्मिक उत्साहके साथ निकला तो इससे हम केवल मुसलमानोंकी स्थायी मैत्री ही नही प्राप्त कर लेंगे, वल्कि हम गो-रक्षाके प्रश्नको सदाके लिये हल कर लेगे। पर हमे इन मुसलमान भाइयोंके बड़े-से-बड़े नेताओसे भी कोई खास आशा नही करनी चाहिये। वे हमारी सहायता मात्र कर सकते है। जो लोग प्ररम्परासे गो-वध करते आ रहे हैं और ऐसा करते समय जिन्होने हिन्दुओंके चित्तको प्रवृत्ति पर जरा भी ध्यान नहीं दिया है, उनके हृदयके भाव इस तरह एकाएक नहीं पलट सकते, पर ईश्वरकी प्रेरणा अपरम्पार है। एक क्षणमे न जाने वह क्या से क्या कर सकता है, वह क्षणभरमे उनकी चित्तकी वृत्ति बदल सकता है और उसमे दयाका भाव भर सकता है। यदि प्रार्थनाके साथ ही साथ तपस्या भी की जाय तो उसका महत्व बहुत अधिक बढ़ जाता है। ईश्वर केवल उसी तरहकी प्रार्थनाको सुनता है।

अब मैं अपने मुसलमान भाइयोंसे दो शब्द कहना चाहता हूँ। यदि उद्दण्ड और उद्धत प्रकृतिका कोई जिद्दी हिन्दू कोई काम कर दे तो उन्हें उससे उत्तेजित नहीं होना चाहिये। उत्तेजित किये जाने पर जो आत्म-संयम नहीं खोता, अन्तिम विजय उसीकी होती है। उन लोगोको यह बात अच्छी तरह समझ लेनी चाहिये कि जिन हिन्दुओमे जरा भी विचार है वे इस समय मुसलमानोंके साथ किसी लाभके भावसे प्रेरित होकर नहीं गये हैं। प्रत्येक हिन्दूका यह विश्वास है कि मुसलमानोकी मांग न्यायोचित है, खिलाफतके साथ अन्याय किया गया है और इस तरहके न्यायोचित काममे मुसलमानोंकी सहायता करना भारतकी सेवा करना है, क्योंकि दोनो एक ही भूमिसे पैदा हुये हैं, एक ही जलवायुमे रहते हैं, एक ही भारत-माताका पयपान करते हैं और अन्न खाते है।

यंग—इंडिया
२८ जुलाई १९२१

❀

राज-भक्तिमें दस्तन्दाजी

कुछ समय पहले बम्बईके लाट साहबने लोगोंको चेतावनी दी थी कि अब हमको गम्भीरतासे काम लेनी है और हम अधिक समय तक जिस तर्जके भाषण किये जा रहे हैं उन्हें गंवारा नहीं कर सकते। अब अली-भाइयोंके सम्बन्धमें जो प्रेस-नोट उन्होंने जाहिर किया है, उसमें उन्होंने अपनी गम्भीरताके मतलबको साफ किया है। अलीभाइयों पर यह जुर्म लगाये जानेवाला है कि उन्होंने फौजके सिपाहियो की राजभक्तिको डिगानेका प्रयत्न किया है और राजद्रोही भाषण किये हैं। लेकिन कहना पड़ेगा कि मुझे यह ख्याल तक नहीं होता था कि बम्बईके लाट साहब इस विषयमें इतनी बुरी तरहसे अज्ञान होंगे। इससे यह साफ जाहिर होता है कि उन्होंने इस बात पर ध्यान ही नहीं रखा कि इन पिछले बारह महीनोंमें हिन्दुस्तानके अन्दर क्या-क्या घटनाएं हुईं। मालूम होता है कि उन्हें पता तक नहीं है कि राष्ट्रीय महासभाने तो पिछले साल सितम्बरमें ही फौजी सिपाहियोंकी राजभक्तिमें हाथ डाल दिया है और सेन्ट्रल खिलाफत कमेटीने तो उससे भी पहले तथा खुद मैंने तो इन सबके पहले इस विषय पर अपनी आवाज उठाई! क्योंकि यह सुझानेका श्रेय या निन्दाका पात्र तो मैं ही हूँ कि हिन्दुस्तानको यह पूरा हक है कि वह सिपाहियोंसे, तथा सरकारके हर एक नौकरसे, फिर चाहे वह किसी जगह पर क्यों न काम करता हो, यह कहे कि इस सरकारने जो जो अत्याचार किये हैं उनके पापके भागी तुम भी हो। करॉचीमें जो खिलाफत कान्फ्रेन्स हुई थी उसने तो सिर्फ कांग्रेसकी इसी आवाजकी प्रतिध्वनि, इस्लामके भाषामें की थी। इस्लामके सम्बन्धमें मुसलमानोंके धर्म-गुरु ही कुछ कहनेके अधिकारी हैं। लेकिन हिन्दू-धर्म और राष्ट्रीय-धर्मकी तरफसे यह कहनेमें मुझे तनिक भी संकोच नहीं होता कि जिस सरकारने हिन्दुस्तानके मुसलमानोके साथ दगाबाजी की है और जो पंजाबके अमानुषिक अत्याचारोंकी अपराधिनी है उसके यहाँ सिपाही बनकर नौकरी करना महापाप है। यह बात मैं कितनी ही जगह खुद सिपाहियोंकी मौजूदगीमें कह चुका हूँ और अगर आज तक मैंने हरएक सिपाहीसे अलग अलग यह बात नही कही है तो इसका सबब यह नहीं है कि हम ऐसा चाहते नहीं हैं बल्कि यह है कि हममें उनकी जीविका चलानेका सामार्थ्य अभी नहीं आया है। लेकिन मैं सिपाहियोंसे यह कहते हुये कभी नहीं हिचका हूँ कि यदि तुम कांग्रेस या खिलाफतके भरोसे न रहकर, खुद ही अपनी गुजरका जरिया पैदा कर सकते हो तो तुम तुरंत इस्तीफा दे दो। और मैं वादा करता हूँ कि ज्यो ही चरखा हरएक घरमें स्थायी हो जायगा और ज्योंही हिन्दुस्तानी यह महसूस करने लगेंगे कि बुनाईके द्वारा कोई भी आदमी किसी भी दिन अपनी गुजर बामिजाज और इज्जतके साथ कर सकता है, त्यों ही मैं हरएक हिन्दुस्तानी सिपाहीसे अलग-अलग यह कहते हुये जरा भी आगा-पीछा न करूंगा कि तुम अपनी नौकरी छोड़ दो, जुलाहेका काम करने लगो, फिर

ऐसा करनेके लिये मुझे गोली भी मार दी जाय तो मुझे परवाह नही। क्योंकि क्या हिन्दुस्तानको पराधीन रखनेमे इन सिपाहियोका प्रयोग नहीं किया गया है? क्या जालियांवाला बागके बेगुनाह लोगोके हत्याकाण्डके लिये उनका उपयोग नहीं किया गया है? क्या चांदपुरमे उस खौफनाक रातमे बेकसूर मर्दों, औरतों और बच्चोंको घरसे बाहर निकालनेमें उनका उपयोग नहीं किया गया? क्या मेसोपोंतामियाके मानी-धनी अरबोको अपने अधीन करनेके लिये इन सिपाहियोंका उपयोग नहीं किया गया है? क्या मिश्रवालोको पददलित करनेमे इनका उपयोग नही किया गया है? ऐसी हालतमे कोई भी हिन्दुस्तानी जिसमें मनुष्यताका कुछ भी तेज है और कोई भी मुसलमान जिसे अपने मजहबका कुछ भी फक्र है किसी तरह वही बात महसूस किये विना नहीं रह सकता जो कि अली भाइयोने की है? इन फौजके सिपाहियोका उपयोग किसी शूरवीरकी तरह, जिसका धर्म यही है कि दीन दुर्बल लोगोकी आजादी और इज्जतकी रक्षा करे, करनेके बजाय ज्यादातर भड़ैत जल्लादोकी तरह किया गया है। लाट साहबने हमलोगोंको कहकर कि अगर गोरे सोल्जर और सिपाही न होते तो मलाबारमें क्या हो जाता, हमारी अधमसे अधम वृत्तिका सहारा ढूँढ़ा है। मैं लाट साहबको बतला देना चाहता हूँ कि मलाबारके हिन्दू और मुसलमान दोनो मिलकर मोपलाओंको शान्त कर दिये होते। अगर खिलाफतका सवाल दरपेश न होता तो मुमकिन होता कि मोपलाका उत्पात बिल्कुल हुआ ही न होता और इससे भी गये गुजरे अगर मान लें कि मुसलमान और मोपला आपसमे मिल जाते तो हिन्दू-धर्म अहिंसाके ही सिद्धान्तका अवलम्बन करके हरएक मुसलमानको अपना दोस्त बना लेता या हिन्दूओं-के शौर्यकी परीक्षा और आजमाइश हो जाती। हिन्दू और मुसलमानके भेदको उत्तेजना देकर बम्बईके लाटने खुद अपना और अपने कार्यका (फिर वह चाहे जो हो) बड़ा बिगाड़ कर लिया है और अपने उस नोटके द्वारा हिन्दुओंको अनुमान करने का मौका देकर उनका बड़ा अपमान किया है कि हम बेकस और बेबस प्राणी हैं। हममें न तो अपने बाल-बच्चोकी, न अपने देशकी या अपने धर्मकी रक्षा करनेकी शक्ति है और न उनपर मर-मिटनेकी ही जुर्रत है। परन्तु अगर लाट साहबका यह ख्याल सही है तो हिन्दू लोग जितनी ही जल्दी मर-मिटें, इन्सानियतके लिये उतना ही बेहतर होगा। लेकिन इस जगह मै लाट साहबको यह याद दिलाना चाहता हूँ कि यह कहना कि आज अंग्रेजी राज्यमे हिन्दुस्तानी इतने पौरुषहीन हैं कि वे लुटेरोसे—फिर वह चाहे मोपला मुसलमान हों और चाहे आराके क्रोधोन्मत्त हिन्दू हों—अपनी रक्षा नही कर सकते। यह तो अंग्रेजी राज्य पर बड़ेसे बड़ा कलंक लगाना है।

हॉं, लाट साहबने अली भाइयोंका जो उल्लेख किया है वह उनके राजभक्तिमें दस्तन्दाजी करनेके उल्लेखसे तो कम अक्षम्य है, क्योंकि वे यह बात जरूर जानते होंगे कि राजद्रोह तो कांग्रेसका रूप ही हो गया है इस 'क़ानून द्वारा संस्थापित सरकार' के प्रति अप्रीति पैदा करनेका व्रत तो प्रत्येक असहयोगियोने धारण कर लिया है।

असहयोग आन्दोलन तो एक धार्मिक और पूर्ण आन्दोलन है और वह इस सरकारका उच्छेद करनेके उद्देश्यसे ही, बहुत विचारके उपरान्त उठाया गया है। इसलिये यह कानूनकी रूहसे, ताजीरात-हिन्दकी भाषामें जरूरही राजद्रोहात्मक है। लेकिन यह आविष्कार कोई नया नहीं है। लार्ड चेम्सफोर्ड इस बातको जानते थे, लार्ड रीडिंग भी जानते हैं। अब यह ख्यालमें नहीं आ सकता कि बम्बईकी सरकार इस बातको नहीं जानती हो। यह बात आपसमें तय हो चुकी थी कि जबतक यह आन्दोलन हिंसाका अवलम्बन न करेगा तबतक इसमें किसी तरहका खलल नहीं डाला जायगा।

पर इसपर यह कहा जा सकता है कि सरकारको यह अख्तियार है कि जब वह देखे कि अब तो यह आन्दोलन वाकई अपने तर्जे-अमलकी हस्तीको ही डांवॉडोल करने लगा है तब वह अपनी नीति बदल दे। मैं उसके अधिकारको नामंजूर नहीं करता। एतराज तो लाट साहबके उस नोटपर है। उसका मजमून इस तरहसे लिखा गया है कि जिससे अनजान लोग यह ख्याल करें कि सिपाहियोंको राजभक्तिसे हटाना और राजद्रोह करना मानो कोई नये जुर्म हैं जो अली भाइयोंने इस वक्त किये हैं और मानो यह पहला ही मौका है जो लाट साहबका ध्यान इस ओर गया है।

जो हो, अब तो यह साफ जाहिर है कि कांग्रेस और खिलाफतके कार्यकर्त्ताओं-का क्या कर्तव्य है। हमें दयाकी भीख नहीं मांगनी है। हम सरकारसे इसकी उम्मीद भी नहीं करते। हमने कभी यह प्रार्थना तक नहीं की कि जबतक हम अहिंसाका अवलम्बन कर रहे हैं तबतक हम जेलसे मुक्त रहें। अगर हम राजद्रोहके लिये भी जेल भेजे गये तो अब किसी तरहकी शिकायत न करेंगे। इसीलिये अब हमारा आत्म-सम्मान और आत्मव्रत यह चाहता है कि हम शान्त, स्थिर और अहिंसाके पाबन्द रहें। हमें तो अपने उसी निश्चित राहपर चलना है। हमें उसी बातको हजारों जगहोंसे दुहराना चाहिये जो अली भाइयोंने सिपाहियोंके संबन्धमें कहा है और हमें खुल्लम-खुल्ला परन्तु तरतीबके साथ इस सरकारके प्रति अप्रीतिका प्रचार करना चाहिये। यह तबतक करते रहना चाहिये जबतक कि सरकार हमें गिरफ्तार न कर ले। परन्तु यह काम हमें क्रोधित होकर "जैसाको तैसा" की रीतिसे नहीं बल्कि अपना धर्म समझकर करना चाहिये। हमें अली भाइयोंकी तरह खादी पहनना चाहिये और 'स्वदेशी' के मंत्रका प्रचार करना चाहिये, मुसलमानोंको स्मर्ना और अंगोरा सरकारके लिये चन्दा जमा करना चाहिये। हमें स्वराजकी प्राप्तिके लिये और खिलाफत तथा पंजाबके अत्याचारोंके निपटाराके लिये, अली भाइयोंकी तरह हिन्दू-मुसलमानकी एकताके लिये और अहिंसाके मंत्रका प्रचार करना चाहिये।

सब जोखोंका समय आ पहुँचा है। परन्तु जिस रोगीमें पार कर जानेका सामर्थ्य है उसके लिये तो यह अच्छा ही अवसर है। अगर खतरेंको सामने देखते हुये भी एक ओर तो हम चट्टानकी तरह मजबूत रहें और दूसरी तरफ अधिक आत्म-संयम रखें तो हम निश्चय ही इसी साल अपने मंजिले-मक़सूदको पहुँच जायँगे।

यंग-इंडिया
२९ सितम्बर, १९२१

हिन्दू-मुसलिम मेल बनावटी

'माडर्न रिव्यू' के वर्त्तमान अंकमें हिन्दू-मुस्लिम मेलपर एक नोट निकला है। इसका उत्तर देना आवश्यक है। चतुर सम्पादकने "बनावटी" शीर्षक देकर लिखा है कि यह मेल या एकता केवल ऊपरी या दिखौवा है, इसकी तहमें कुछ नहीं है। मेरी समझमें ऐसी बात नही है। यह मेल बनावटी या दिखौआ न होकर स्थायी रूप ग्रहण कर रहा है। यह बात अवश्य है और मैंने पिछले लेखोंमे यह बात स्वीकार भी की है कि यह मेल अभी नया है, पक नहीं गया है, इसीलिये इसको सावधानीसे पकड़ना होगा। पर यदि दोनों एक ही तरहकी विपत्ति या आशंकाकी सम्भावनाको भलीभांति समझते हैं तो इसे वनावटी या दिखौवा कहनेका कोई अवसर उपस्थित नही होता।

मुझे यह बात खेदके साथ लिखनी पड़ती है कि अभीतक हमलोगोंके चित्तमें से आत्माभिमान या पक्षपात दूर नहीं हो गया है। परस्पर एक दूसरेको आशंकाकी दृष्टिसे देखते हैं। प्राचीन समयमें जो-जो अत्याचार किये गये हैं, उनकी अशुभ स्मृति अभी भी दूर नहीं हुई है। आज भी हमलोग निर्वाचन आदिमें योग्यताकी परवाह नहीं करते, केवल धार्मिक धारणा या विश्वासके सहारे ही चलते हैं। इन बातोंपर विचार करना है। जब दोनों दल इस बातको जानते हैं और इन कारणोंके रहते भी जब परस्परमे मेल करनेकी चेष्टा कर रहे हैं तो मेलको दिखौवा या बनावटी कहना तो उचित नहीं प्रतीत होता।

यह कहना भी उचित नहीं है और साथ ही सच भी नहीं है कि खिलाफत कमेटीने गो-हत्या रोकनेके लिये जो अपील की है उसपर मुसलमानोंने ध्यान नहीं दिया है। सबसे बढ़कर हर्षकी बात तो यह होनी चाहिये कि खिलाफत कमेटीके लोग—जो स्वयं मुसलमान हैं—गो-हत्या बन्द करनेकी चेष्टा कर रहे हैं। इसके अलावे 'माडर्न रिव्यू'के सम्पादकको मैं इस बातका विश्वास दिलाना चाहता हूँ कि खिलाफत कमेटीकी अपीलका बहुत ही अच्छा प्रभाव पड़ा है। क्या यह साधारण बात है कि गो-रक्षाका समस्त भार मुसलमानोंने अपने ऊपर ले लिया है। क्या वह दृश्य साधारण था जिस समय मियां छोटानी और खत्री अपने मुसलमान भाइयोंसे गायें लेकर हिन्दुओंके हाथों सौंप रहे थे ? क्या उस दृश्यको देखकर हृदय उमंगसे नहीं भर जाता था ?

यह बात मैं स्वीकार करता हूं कि मैं और मुहम्मदअली दोनो इस बातकी सदा चेष्टा करते हैं कि किसी तरह एक दूसरेको धार्मिक आघात नहीं पहुंचा सकें। पर यदि न्यायसे काम लिया जाय, सची बात कही जाय तो इसके लिये हम लोगोंको

नीचा भी नहीं दिखा सकता। हम लोगोंके लिये मेल-बनावटी नहीं है, दिखौवा नहीं है, बल्कि इसका महत्व हम लोगोंकी दृष्टिमें इतना अधिक है कि इसको चरितार्थ करनेके लिये हमलोग अपना प्राणतक निछावर कर सकते हैं। मैं इतना संतोषके साथ लिख सकता हूं कि हमारे दौरेमें एक बार भी यह अवसर उपस्थित नहीं हुआ है जब हमलोगोंके मनमें किसी तरहका क्षोभ या रोप उत्पन्न हुआ हो या एक दूसरेकी कार्यवाईसे हम दुःखी हुये हों। सम्पादक महोदयने अपने निम्नलिखित वाक्यका वज्र-प्रहार बहुतही बुरी तरह किया। इसके मर्माघातसे हृदय विदीर्ण हो गया है। उन्होंने लिखा है:—"दोनों भाषणोंके पढ़नेसे स्पष्ट हो जाता है कि एककी चेष्टामें तो सुदूर खिलाफतके साथ न्याय कराने तथा तुर्कोंको उनके विजित प्रदेशोंको लौटा देनेके लिये और दूसरेकी सारी चेष्टामें भारतको पूर्ण स्वाधीन बना देने के लिये लक्ष्य है खिलाफतके साथ न्याय करना। मुहम्मद अली मुसलमान हैं। मुसलमान धर्मके अनुसार खिलाफत प्रश्नके साथ न्याय करना उनका प्रधान कर्तव्य है और मैं खिलाफतके प्रश्नमें इसलिये तन-मनसे लगा हूँ कि इस संकटके समय मुसलमानों-का साथ देकर हम उनकी मैत्री प्राप्त करते हैं। इस तरह मुसलामनके तेज छुरेसे गो-माताकी रक्षा होजाती है। हिन्दूका कर्तव्य गो-माताकी रक्षा करना है। साथ ही हम दोनों स्वराज्यके लिये उतने ही उत्सुक हैं। क्योंकि हम दोनों इस बातको समझते और जानते हैं कि स्वराज्यसे ही हमारे धर्मकी रक्षा हो सकती है। इसे लोग संकीर्ण विचार भले ही कहें पर इसके छिपानेकी कोई आवश्यकता नहीं प्रतीत होती। यदि भारत अपनी शक्तिके प्रयोगसे खिलाफतके साथ न्याय कर देता है तो हम उसे स्वराज्य प्राप्ति समझते हैं। हमारे मैत्री तथा धर्मका आधार प्रेम है। मैं प्रेमके द्वारा ही मुसल-मानोंकी मैत्री प्राप्त करना चाहता हूँ। यदि एकतरफा भी प्रेम काम करेगा तो हमारी एकता दृढ़ समझिये। मौलाना मुहम्मद अलीके बारेमें यह कहना कि वे जिस उर्दूका प्रयोग करते हैं, उसे अधिकांश बंगाली नहीं समझ सकते, अनर्गल है। मैं इस बातको भलिभांति जानता हूँ कि अपने भाषणोंमें मौलाना मुहम्मद अली यथासम्भव सरल उर्दूका ही प्रयोग करते हैं।

इस बातको मैं भी अत्यन्त खेदके साथ स्वीकार करता हूँ कि इस समय भी ऐसे हिन्दू—मुसलमान हैं जो परस्पर विश्वास न रखनेके कारण विदेशी शक्तियोंका प्रभुत्व आवश्यक समझते हैं। यही सब कारण हम सबके मार्गमें अतिशय कठिनाई उपस्थित कर रहे हैं और हमलोग अपने ध्येय तक नहीं पहुंच सकते हैं। दुःख तो इस-बातका है कि हम लोग अभीतक इस बातको समझ नहीं सके हैं कि स्वतंत्र होकर हम लोगोंमें परस्पर कलहकी संभावना, विदेशी शक्तिके पञ्जेके तले रहनेसे कहीं उत्तम और श्रेयस्कर है। यदि हम लोगोंकी यही धारणा है कि ब्रिटिश सरकारने अपने बलिष्ठ हाथके प्रयोगसे हम लोगोंको अलग कर रखा है और हमलोग आपसमें लड़ नहीं रहे हैं तो हमारी यही हार्दिक इच्छा है कि हम लोग इस तरहके युद्धके लिये जितने शीघ्र मुक्त कर दिये जायँ उतना ही अच्छा है, क्योंकि इससे हममें साहस

होगा, धैर्य आवेगा, वल-वीर्य वढ़ेगा और हम अपनी तथा अपने धर्मकी रक्षा करने योग्य हो जॉयगे। यदि हमलोग जान-बूझकर आपसमे लड़ें तो यह कोई नई वात नहीं होगी। कदाचित इसी तरहके युद्धसे हम अपना होश सॅभाल लें। ब्रिटेनका इतिहास यही वतलाता है। ये लोग प्रायः २१ वर्षोंतक आपसमे लड़ते रहे और इतने वर्षोंतक लड़नेके वादही वे शान्त होकर रहने लगे। फ्रांसका इतिहास भी इस तरहके उदाहरणोंसे भरा है। फ्रांसमे जो परस्पर संग्राम चला था, जिस क्रूरताके साथ फ्रांसवाले आपसमें लड़ रहे थे जो-जो अत्याचार उन्होंने एक दूसरे पर किया था उसका संसारका इतिहास मुकाविला ही नहीं कर सकता। अमेरिकाको ही ले लीजिये, स्वतंत्रता प्राप्त हो जानेपर उसे भी इसी तरहके संग्राममे प्रवृत्ति होना पड़ा था इसलिये केवलमात्र इस आशंकासे कि हमलोग आपसमें लड मरेंगे हमे अपना वल, अपना पौरुष तथा अपना साहस किसी भी तरह घटाना नहीं चाहिये। चतुर सम्पादक भी इस एकताकी अभिलाषा उसी तरह रखते है जिस तरह हममे से कोई भी व्यक्ति रखता है, क्योंकि उन्होने लिखा है कि इस एकताके लिये आदिसे अन्त तकको परिवर्तनकी आवश्यकता है। जड़से लेकर पत्ते तक नया भाव लानेकी आवश्यक्ता है। पर उन्होंने इस समूल परिवर्तनके लिये कोई उपाय नहीं वताया है। उन्होने यह समझ लिया है कि इस लेख (सम्पादकीय) को पढ़नेवाले उसे स्वयं ढूंढ़ निकालेंगे। उचित तो यह था कि उन्होंने इसका उपाय भी वतला दिया होता और उसके व्यवहारकी विधि भी लिख दी होती। उनकी अभिलाषा शायद यह है कि हम लोग खान-पान और शादी-विवाहका विचार आरंभसे ही छेड़ दे। अर्थात् असवर्ण विवाह और खान-पान भी आरंभ करे। यदि उनका यही भाव है और यदि वास्तवमे समझते हैं कि स्वराज्य इसी तरह प्राप्त होसकता है तो मुझे खेदके साथ लिखना पड़ता है कि उस विधिसे स्वराज्य पानेके लिये हमे सदियों प्रतीक्षा करनी पड़ेगी। इसका अभिप्राय यह हुआ कि हिन्दू लोग अपना सनातनधर्म छोड़ दे। मै यह नहीं कहता कि यह करना अच्छा है या वुरा। पर इस तरहका सुधार व्यावहारिक और राजनीतिके दायरेके वाहर है। यदि कोई दिन ऐसा भी आया कि लोगोंके विचारमें इस तरहके परिवर्तन आगये और इसके द्वारा हिन्दू-मुस्लिम एकताको स्थापना हुई तो हम इसे हिन्दू-मुस्लिम एकता कह भी नहीं सकते। वर्तमान आन्दोलनका क्या अभिप्राय है? वर्तमान आन्दोलन यह चाहता है कि हिन्दू-मुस्लिमका पूर्ण एकता हो जाय। परन्तु इसके लिये न तो हिन्दू ही अपना धर्म छोड़े न मुसलमान ही अपने धर्मसे अलग हों। यही कारण है कि मैं वहुधा अपने भाषणोंमे उपस्थित जनतासे यह वात कहा करता हूँ कि हिन्दू-मुस्लिम एकता किस तरह होनी चाहिये इसका अनुमान मुझे और मुहम्मद अलीको देखकर आपलोग कर लीजिये। मै इस वातको अभिमानके साथ कहता हूँ कि हम दोनों अपने धर्मके कट्टर पक्षपाती है। चाहे मेरे हृदयमे अली-वन्धुओंके लिये कितना भी प्रगाढ़ प्रेम क्यों न हो पर मैं उनके लड़केके साथ अपनी लड़कीकी शादी करनेके लिये कभी भी तैयार नहीं हो सकता। और न वे ही इसके लिये तैयार हो सकते

हैं। यद्यपि वे इस बातको समझते और जानते हैं कि मेरा लड़का इतना सुधारक हो गया है कि वह उनकी पुत्रीका पाणिग्रहण करनेके सर्वथा योग्य होगया है। मैं उनका भोजन कभी भी ग्रहण नहीं करता और मेरे धार्मिक कट्टरपनकी वे पर्याप्त मर्यादा रखते हैं, उसका समुचित आदर करते हैं। इतने पर भी मैं दृढ़तापूर्वक कह सकता हूं कि जो मैत्री हमलोगोंमें है, जिस तरहके दृढ़ बन्धनमें हम लोगोंका दिल बंधा हुआ है उसका मुकाबिला करनेवाला कोई भी उदाहरण नहीं मिल सकता और सर्व-साधारणको इस बातका विश्वास दिलाना चाहता हूं कि हम लोगोंकी यह मैत्री दिखावटी या बनावटी नहीं है, बल्कि इसका दृढ़ आधार है, यह स्थायी है और इसमें हम लोगोंकी भावनाओंके पूर्ण मर्यादाका भार भरा हुआ है, और मुझे इस बातकी आशंका कहींसे भी प्रतीत नहीं होती कि यदि आज-ब्रिटिश सरकार हम लोगों पर कृपा करके यहाँसे चली जाय तो अली-बन्धु या उनके साथी अन्य मुसलमान मेरी स्वतंत्रता अपहरण करेंगे या मेरे धर्मपर प्रहार करेंगे। मुझे इस तरहकी आशंका नहीं है, क्योंकि एक तो मैं जानता हूँ कि मैं ईश्वरसे डरता हूँ और उसने कह रखा है कि जो मुझसे डरता है उसकी रक्षाकी मैं सदा चेष्टा किया करता हूँ। इससे मुझे पक्का विश्वास है कि आवश्यकताके समय वह हमारी रक्षा अवश्य करेगा। दूसरा कारण अली-बन्धुओंकी मर्यादाका है। वे इतने गिर नहीं गये हैं कि ईश्वरके नियमोंको इस तरह कुचल डालेंगे। यद्यपि मैं जानता हूँ कि ताकतमें वे मुझसे इतना बढ़े-चढ़े हुए हैं कि मेरे तरह दस या बारह आदमी भी उनका कुछ नहीं बिगाड़ सकता। वे अकेले एकको एक साथ ही परास्त कर सकते हैं। इसलिये व्यक्तिगत उदाहरणके आधार पर मैं समस्त भारतके लिये इसी धारणा पर पहुचता हूँ और इसी धारणाके अनुसार मैंने यह दिखलानेकी चेष्टा की है कि हिन्दू मुस्लिम एकता तभी स्थापित हो सकती है जब हम लोगोंके दिलमें एक दूसरेके लिये सहन-शीलता हो और अपनेमें दृढ़ विश्वास हो। इससे हम यह भी प्रगट करते हैं कि मानव प्रकृतिकी सौम्यताको हम भली-भांति स्वीकार करते हैं।

यंग-इंडिया
२० अक्टूबर, १९२१

❀

मोपला-उत्पातका अर्थ

स्काटलेन्डसे एक सज्जन मुझसे जवाव तलव करते है कि अभी तक आप अपने अखवारमे मोपला-उत्पातके संवन्ध अपने विचार क्यों नही प्रगट किये। इसका फल यह हुआ है कि इंगलैन्डमे जो लोग भारतीय प्रश्नोके मनन करने के प्रेमी हैं उनका यह ख्याल होता चला है कि हिन्दुस्तानमे मुसलमानोकी वादशाहत कायम हो गई है। हाँ, यह फटकार विल्कुल ही वेजा नहीं है, लेकिन मैंने अपनी तरफसे फर्ज अदा करनेमें किसी तरह मुँह नहीं मोड़ा है। मेरा तो इसमे कोई चारा ही नहीं रहा। मैंने खुद कालीकट जाकर इस उपद्रवकी असलियतको जानना चाहा था और मुझे विश्वास था कि मै उसमे अवश्य सफल होता। लेकिन सरकारकी इच्छा कुछ और ही थी। मुझे यह विश्वास करते दुःख होता है किन्तु यह मेरा विश्वास है कि वहाँके अधिकारी इस उपद्रवका अन्त करना नहीं चाहते और यह तो उन्हें अवश्य ही अभीष्ट नहीं है कि इस उपद्रवका अन्त शान्तिके साथ करनेका श्रेय असहयोगियोको मिले। वे तो फिर एक वार दिखाने के लिये लालायित हो रहें है कि केवल अंग्रेजो फौज ही हिन्दुस्तानमें शान्ति कायम रख-सकती है। इस दशामे सरकारके इस फरमानकी अवज्ञा करके कि आप मलावार न जाइये सरकारसे मुठभेड़ न कर सका।

मै वहाँके हाकिमोकी निस्वत अपना ख्याल अच्छा वनाना पसन्द करता हूं। यह मानना तो मेरे स्वभावके विपरीत हैं कि मनुष्य जाति स्वभावतः नीचा है। किन्तु नौकरीशाहीकी नीचताके तो इतने सवूत मेरे आस-पास हैं कि वह अपना मतलब गाँठनेके लिये चाहे जो कर वैठनेमें कभी न हिचकिचायेगी। मेरे चम्पारन जानेके पहले चम्पारनके किसानो पर किये गये अत्याचारोंकी जो कथाएँ मैंने सुनीं थीं, उनपर मुझे विश्वास नहीं होता था। मेरा यह कथन अक्षरशः सत्य है। परन्तु जव मैं वहाँ पहुंचा तो मैंने देखा कि वहाँकी हालत जो मैंने सुनी थी उससे भी अधिक खराव थी। मैं इस बातको नहीं मानता था कि जालियांवाला वागकी तरह वेगुनाह लोग कही बिना हिदायत दिये ही जान-बूझकर कत्ल किये जाते होंगे। मुझे यह विश्वास ही नही होता था कि मनुष्य भी कहीं जबरदस्ती पेटके वल रेंगाया जाता होगा। किन्तु मै जव पंजाव पहुंचा तव मै वहाँकी हालत देखकर भौंचक रह गया कि ओफ इतना तो मैंने सुना भी नहीं था। और यह सव किया तो गया कहनेके लिये शान्ति और व्यवस्थाके नामपर परन्तु दरअसल एक झूठी प्रतिष्ठाकी दोपमय शासन-प्रणालीकी और अस्वाभाविक विचारकी जड़ मजबूत करने के लिये। हाँ, यह सव सच है कि विहारके तत्कालीन छोटे-लाट तीव्र विरोधका सामना करते हुये भी न्याय कर पाये थे। परन्तु वास्तवमें वह एक अपवाद ही था और उसके कारण मैं भी अपवादात्मक ही था और इसलिये मुझे मालूम होता है कि यह मोपला-उत्पात तो अपने पापोंके वोझके कारण रसातलको जानेवाली इस शासन प्रणालीके लिये एक खास आशीर्वाद ही है।

यह मोपला उपद्रव हिन्दू और मुसलमानोंके जांचके लिये एक कसौटी है। क्या इस आघातको सहते हुये हिन्दुओंकी मित्रता टिक सकेगी? और क्या मुसलमान लोग मोपलाओंकी करतूतोंको अपने दिलके भीतरीसे भीतरी हिस्सेमें भी नापसन्द कर सकते है? केवल समय ही असली बातको बता सकता है। किसी न टाली जा सकनेवाली बातको विवश होकर तात्विक रीतिसे या जवानी कबूल करना हिन्दुओंकी मित्रताका लक्षण नहीं है। हिन्दुओंके दिलमें यह विश्वास और साहस होना चाहिये कि हम ऐसे धर्मान्धतासे उत्पन्न होनेवाले उत्पातोंके होते हुये भी अपने धर्मकी रक्षा कर सकते है। मोपलाओंकी इस उन्मत्ततापर कोरी जवानी नापसंदगी प्रगट करना ही मुसलमानोंकी मित्रताका लक्षण नहीं है। मोपलाओंने जो लोगोंको जबरदस्ती धर्म-भ्रष्ट कर दिया है और लूटमारकी है उससे स्वभावतः ही मुसलमानोंको शर्म आनी चाहिये। उनका सिर नीचा होजाना चाहिये और उन्हें इस तरह चुपचाप और कारगर ढंगसे काम करना चाहिये कि जिससे आयन्दा उनकेसे कट्टरसे कट्टर लोग भी ऐसा न कर सके। मेरा तो यह मत है कि मोपलाओंकी उन्मत्ततापर हिन्दू समाज शान्त है और सुसंस्कृत मुसलमानोंको इस बातपर सच्चे दिलसे अफसोस हुआ है कि मोपलाओंने उनके धर्मकी आज्ञाओंका उल्लंघन किया है।

मोपला उत्पातसे एक और शिक्षा मिलती है। वह यह है कि प्रत्येक व्यक्तिको आत्म-रक्षा करनेकी विद्या सिखाई जानी चाहिये। इसके लिये हमारे शरीरको प्रतिकार करनेकी शिक्षा देनेके बजाय हमारे मनको ही अधिक तैयार करने की जरूरत है। अबतक हमारे मनको अपनेको दीन समझनेकी शिक्षा मिलती रही है। बहादुरी शरीरका गुण नहीं। मैंने ऐसे कायरोंको देखा है, जो बड़े मोटे-ताजे थे और ऐसे अद्वितीय साहसी लोगोंको भी देखा है जिनका बदन बिल्कुल दुबला-पतला था। मैंने बड़े लम्बे-चौड़े, मोटे-ताजे और हट्टे-कट्टे अफ्रीकाके 'जुलू' लोगोंको एक अंग्रेज लड़केके सामने गऊ बन जाते और जहाँ अपनी ओर तमंचेका मुँह देखा कि दुम दबाते हुये देखा है। मैंने एमिली हाबहास नामकी एक बोअर-रमणीको देखा है, जिसका शरीर लकवेसे बेकार होगया है। लेकिन उसमें हद दर्जेका साहस था। उस अकेली कुलीन स्त्रीने वीर बोअर सेना-नायकोंके और उसी तरह बोअर स्त्रियोंके गिरते हुये जोशको जीवित रखा है। हमें कमजोरसे कमजोर आदमियोंको भी संकटोंका सामना करने और अपने पराक्रमका परिचय देने की विद्या सीखानी चाहिये। अधिक निन्दनीय बात कौनसी थी? नादान मोपला भाइयोंकी धर्मान्धता या उन हिन्दू भाइयोंकी कायरता जिन्होंने बकरी बन कर कलमा पढ़ लिया, चुटिया कटवाली और पैजामा पहन लिया? कहीं मेरे कथनका उल्टा अर्थ न लगा लीजियेगा। मैं तो हिन्दू और मुसलमान दोनोंमें यह शान्त साहस पैदा करना चाहता हूँ कि बिना दूसरेकी जानपर हाथ उठाये खुद ही अपनी जान देने के लिये तैयार रहें। अगर किसीमें इतना साहस नहीं है तो उस हालतमें मैं यह चाहता हूँ कि कायरकी तरह दुम दबाकर भागनेकी अपेक्षा, वह मरने व मारनेकी विद्याको प्राप्त करे।

क्योंकि इस तरह कायरता दिखानेवाला आदमी भाग जाने पर भी मानसिक हिंसा करता है। उसके भाग जानेका कारण यही है कि मारनेका कार्य करते हुये उसमें मरनेका साहस नहीं था।

इस मोपला-उत्पातसे हमें एक और भी सबक मिलता है। हम अपने देशकी किसी भी जातिको गहरे अन्धकारमें न रहने दें। और न हम अपनेको उसके पंजेमें फँसने दें। हमारे अंग्रेज 'भाग्य-विधाताओं'का तो मोपलाके सभ्य नागरिक बननेमें, सहिष्णुता धारण करनेमें और इस्लामके रहस्य समझनेमें कोई हित नहीं था। परन्तु हमने भी इस अज्ञान देश-भाइयोंकी ओर सदियोंसे ध्यान नहीं दिया। हमारे हृदयमें अभी इतना प्रेम जाग्रत नहीं हुआ है कि जिससे हम कहीं भी किसीको दयालुताकी आवश्यकताके विषयमें अज्ञान या बिना किसी अपराधके अन्न-वस्त्रहीन न देखें। अगर हम समयपर ही न जगे तो हमें तमाम छोटी-छोटी दबी हुई जातियोंमें ऐसाही दुःखान्त नाटक दिखाई देगा। इस वर्तमान जाग्रतिका असर तमाम जातियोंपर हो रहा है। अगर हम अपने कियेका प्रायश्चित न करें और उनके साथ पूरा न्याय न करें तो ये 'अछूत' और नोस-हबसी कहलानेवाली जातियाँ अपने प्रति किये गये हमारे अत्याचारोंकी गाथा सारे संसारको सुनावेगी।

यंग-इंडिया
२० अक्टूबर, १९२१

हिन्दू और मोपला

मौलाना हसरत मोहानी हमलोगोंमें बड़े जीवटके आदमी है। वे जितने धीर है उतने ही दृढ़ भी हैं और स्पष्टवादी भी वे उसी तरह हैं। बृटिश सरकारके प्रति तथा अंग्रेजोंके प्रति उनके हृदयमें घृणाके जो भाव भरे हैं, उसके सामने उन्हें मोपलोंके आचरणमें कोई दोष दिखाई नही देता। मौलाना साहबका कहना है कि युद्धके समय जो कुछ कहा जाय वह सब ठीक और उचित है। उनका पक्का विश्वास है कि मोपलोंने धर्मके लिये ही संग्राम किया है। इसलिये मोपलोंके ऊपर किसी तरहका दोषारोपण नही किया जा सकता। धर्म और सदाचारका यह परिच्छित्त रूप है। पर मौलाना हसरत मोहानीकी दृष्टिमें धर्मके नामपर अधर्माचरण भी धार्मिक है। जहाँतक मैं जानता हूं इस्लाम-धर्म इस तरहकी बातोंका प्रतिपादक नहीं है। इस सम्बन्धमें मैंने अनेक मुसलमानोंसे बातचीत भी की है। वे भी मौलाना साहबके मतसे सहमत नहीं हैं।

मै अपने मलाबारके साथियोंसे यही कहूंगा कि वे मौलानाकी बात न सुनें। यद्यपि धर्मके बारेमें उनका इस तरहका विचित्र मत है तथापि मैं जानता हूं

कि हिन्दू-मुस्लिम एकता और राष्ट्रीयताका उनसे बढ़कर कट्टर समर्थक दूसरा नहीं है। उनका हृदय उनकी बुद्धिसे कहीं उत्तम है पर इस समय वह गलत मार्गपर जा रहा है।

मलाबारवालोंकी यह धारणा भ्रान्त है कि मोपलोंके अत्याचारकी निन्दा भारतके अन्य मुसलमानोंने नहीं की है और उलटा उसका प्रतिपादन किया है। इस्लाम-धर्मका कहना है कि संग्राममें भी औरतें, बच्चे और बूढ़ोंकी रक्षा करो। उन्हें किसी तरहका संकट सहना न पड़े। इस्लाम-धर्म प्रतिकूल अवस्थामें जेहादका समर्थन नहीं करता। इस्लाम-धर्मकी जो जानकारी मुझे है उसके अनुसार तो मैं यही कह सकता हूँ कि अपनी प्रेरणासे मोपले जेहाद कभी भी नहीं कर सकते थे। मौलाना अब्दुल बारीने मोपलोंके अत्याचारोंकी कड़ी निन्दा की है।

पर यदि मुसलमान उन अत्याचारोंकी निन्दा न भी करें तो? हिन्दुओंने सौदेके तौरपर तो मुसलमानोंके साथ मैत्री की नहीं है? मैत्री शब्दसे ही प्रगट होता है कि इस तरहकी कोई बात नहीं है। यदि हमलोगोंने राष्ट्रीय आदतें प्राप्त की होतीं तो मोपला भी हिन्दू ही हो सकते हैं। मोपलोंकी कट्टरतापर हिन्दुओंको उतना विचार नहीं करना चाहिये जब कि वे अपनी कट्टरतापर उतना विचार नहीं करते। यदि मोपलोंके बजाय आज हिन्दुओंने हिन्दुओंको लूटा होता तो क्या उनके ऊपर मुकदमा चलाया जाता? इस तरहके घटनाओंके प्रतिकारके ढूंढ़ निकालने को जितनी जिम्मेदारी हिन्दुओंके ऊपर है उतनी ही मुसलमानोंके ऊपर है। यदि कोई मुसलमान हिन्दूके ऊपर या हिन्दू मुसलमानके ऊपर अत्याचार करता तो वह अत्याचार एक भारतीय द्वारा दूसरे भारतीयपर समझना चाहिये और उसकी जिम्मेदारी हम सबको ओढ़नी चाहिये तथा उस बुराईको दूर करनेके लिये यत्न करना चाहिये। हिन्दू-मुस्लिम एकताका यही अभिप्राय है। जिस राष्ट्रीयतामें यह भाव नहीं वह राष्ट्रीयता किसी कामकी नहीं। राष्ट्रीयता-क्षेत्र जातीयताके क्षेत्रसे विस्तृत है। इस अभिप्रायसे हमलोग प्रथम भारतीय हैं और पीछे हिन्दू, मुसलमान, पारसी और ईसाई हैं।

इसलिये मोपलोंके अत्याचारोंके विषयमें मौलाना हसरत मोहनीने जो मत प्रगट किया उसके लिये खेद प्रगट करते हुये भी हमें समस्त मुसलमानोंके ऊपर दोषारोपण नहीं करना चाहिये और न मौलानाको मुसलमानोंकी हैसियतसे दोष देना चाहिये। हमें यह भाव रखकर दुःख प्रगट करना चाहिये कि हमारा एक हिन्दुस्तानी भाई यह नहीं देखता कि हमारा दूसरा हिन्दुस्तानी भाई अत्याचार कर रहा है। अगर हमलोग इस तरहकी घटनाओंका सम्बन्ध किसी जातिसे रखेंगे तो हममें एकता नहीं स्थापित हो सकती।

हमारे विरोधी कह सकते हैं कि ये सब वाहियात बातें हैं क्योंकि इनमें वास्तविकता नहीं है। ये केवल ख्याली हैं। पर मेरा कहना है कि जबतक सिद्धान्तोंके

अनुकूल अवस्था न बनालेंगे और जबतक सिद्धान्तोंको वर्तमान अवस्थाके उपयुक्त नहीं बनालेंगे हममे दृढ़ता नहीं आसकती।

भारतीय हैसियतसे हिन्दू भारतीय मोपलोंकी बुराई दूर करनेकी चेष्टा करें तो इसमें असम्भव बात क्या है? यदि हिन्दुओंसे कहा जाय कि आप साहस ग्रहण कीजिये, दृढ़ बनिये और मरते दमतक जबर्दस्ती किसी मतको स्वीकार न कीजिये तो इसमें हानि क्या है? मुझे यह सुनकर प्रसन्नता हुई कि अनेक हिन्दू ऐसे थे जिन्होंने मोपलोंकी जबरदस्तीके बनिस्बत प्राण देना ही उचित समझा। यदि ये लोग बिना किसी राग या द्वेषके मरे हैं तो उन्होने सच्चे हिन्दूकी हैसियतसे प्राण दिया है। क्योंकि उन्होंनेको अपनेको उस कुलके सच्चे भारतीय अथवा सच्चा मनुष्य होनेका परिचय दिया है। यदि इनके प्राण लेनेवाले मुसलमान न होकर हिन्दू ही होते तो भी वे इसी तरह प्राण दे दिये होते। यदि हिन्दू-मुस्लिम एकता परस्परके बदलौन या सौदेपर ही ठहर सकती है तो वह वाहियात चीज है। क्या पति-पत्नीका सम्बन्ध केवल दोनोंके सद्भावपर ही निर्भर करता है? क्या पति खराब है या पत्नी बुरी है इसलिये दोनोंका सम्बन्ध नहीं रह सकता। यदि पत्नी-पति वैवाहिक सम्बन्धोंको इसी तरह बदलौन समझने लगेंगे तो विवाहकी कोई मर्यादा नहीं रह जायगी। यदि पत्नीका आचरण उसे पतनकी ओर ले जाता है तो पतिका कर्तव्य है कि वह उसे और नजदीक घसीट ले। उस समय पतिका स्नेह दूना हो जाना चाहिये। इसलिये जिस समय मुसलमान या मोपलोंसे विपत्तिकी अधिक सम्भावना हो या विपत्ति आ चुकी हो उस समय हिन्दूको उनके प्रति और भी घनिष्ठता दिखलानी चाहिये। यदि मेल सच्चा है तो कड़े-से कड़े आघातपर भी उसे नहीं टूटना चाहिये। यह बन्धन अटूट होना चाहिये।

जो कुछ मैंने ऊपर कहा है सब स्वार्थसे भरा है। क्या एक हिन्दू अपने शरीरसे अपने धर्म और देशकी अधिक परवाह करता है। यदि इसका उत्तर 'हाँ' है तो उस हिन्दूको उस मूर्ख तथा अनजानकार मुसलमानसे कभी नहीं लड़ना चाहिये, जिसे न देशका ख्याल है न धर्मका। ये सब बातें ठीक उस सौतकी सी हैं जिसने लड़केके दो टुकड़े करके साराका सारा अपनी सौतको दे दिया।

थोड़ी देरके लिये मान लीजिये—यद्यपि यह सब सच नही है—कि मोपलोंके अत्याचारोंका सभी मुसलमान समर्थन करते हैं तो क्या इससे हिन्दू-मुस्लिम एकता टूट जायगी? यदि यह एकता इस तरह टूट गई तो क्या इससे हिन्दुओंकी अवस्था किसी भी तरह अच्छी हो सकती है या सुधर सकती है। क्या वे लोग अपने शत्रु मोपलो और मुसलमानोंसे बदला लेनेके लिये विदेशी शक्तियोंकी सहायता लेंगे और इस तरह उनका नाश कराकर अपनी दासताकी बेड़ी और भी मजबूत करावेंगे?

असहयोगका सिद्धान्त सर्वव्यापी है। जिस तरह यह एक वंशके लिये पूर्ण

रहसे लागू है। शक्ति और आत्मसंयम प्राप्त करनेका यह एक तरीका है। हिन्दू और मुसलमानोंको आपसमें मिल जानेके पहले संसारभरके मुकाबिलेमें अकेले खड़ा होनेकी शक्ति और योग्यता प्राप्त कर लेनी चाहिये। यह मेल कमजोर शक्तियोंके बीच नहीं होना चाहिये। बल्कि उन लोगोंके बीच होना चाहिये जिन्हें अपनी शक्तिपर भरोसा है। मुसलमानों या हिन्दुओंकी यह दुर्बलता होगी यदि वे उन स्थानोंमें जहाँ उनकी संख्या नितान्त कम है—अपने धर्मकी रक्षाके लिये हिन्दू या मुसलमानोंपर भरोसा करेंगे। असहयोग आत्म-विकासका सिद्धान्त है।

पर यदि बलिष्ठ शक्ति पशुवत आचरण करे और दुर्बलोंको सतावे तो यह सिद्धान्त किसी भी तरह उपयोगी नहीं हो सकता। क्योंकि उस अवस्थामें जो उनसे बलवान होगा वह उन्हें भी कुचल देगा। इसलिये यदि मुसलमान धार्मिक जीव बनकर रहना चाहते हैं तो उन्हें अपने भीतर शक्तिका संचय करना चाहिये। उन्हें शक्तिवान साथ ही नम्र होना चाहिये। हिन्दुओंको उचित है कि वे मोपलोंकी इस क्रूरताका पता लगावें। उस समय उन्हें विदित होगा कि वे निर्दोष नहीं हैं। आज तक उन्होंने मोपलोंकी फिकर नहीं की थी। आजतक या तो वे कृषक उन्हें दास समझते रहे या उनसे भय खाते रहे। उन्होंने मित्र अथवा पड़ोसीकी तरह उन्हें नहीं देखा और न उनका सुधार किया और न उनकी मर्यादा रखी है। इस समय मोपलों या मुसलमानोंको दोष देना उचित नहीं है। यह मैं स्वीकार करता हूँ कि प्रत्येक हिन्दू मुसलमानोंकी सहायता और सहानुभूतिकी आशा करता है फिर भी उसे अपने अन्दर शक्तिका समुच्चय कर अपने आप अपनी सहायता करनी चाहिये। यदि मुसलमान खिलाफतकी रक्षाके लिये हिन्दुओंकी मददका भरोसा करे तो इस्लामके लिये इससे दुःखद बात और क्या हो सकती है। हिन्दुओंसे मुसलमानोंको इसलिये सहायता मिल रही है क्योंकि हिन्दुओंका यह धर्म है। मुसलमान बिना किसी बाधाके हिन्दुओंकी सहायता स्वीकार करें पर उनका अन्तिम विश्वास ईश्वरके सहारे ही रहना चाहिये। क्योंकि निःसहायोंका वही एक मात्र सहायक है। मालाबारके हिन्दुओंको भी यही भाव ग्रहण करना चाहिये।

यंग-इंडिया
२६ जनवरी, १९२२

❀

मौलाना मुहम्मद अलीपर इल्जाम

एक सज्जन लिखते है कि मौलाना मुहम्मद अलीने अपने एक भाषणमें कहा है कि गान्धीजी एक महा-अधम मुसलमानसे भी हीन हैं। गुजराती अखबारोंमें इस किस्मके लेख आ रहें है। वे साहब लिखते हैं कि मौलाना साहब ऐसा कभी नहीं कह सकते। तथापि 'नवजीवन'के पाठकोंको यह बात स्पष्ट कर देनी चाहिये कि बात दरअसल क्या है, जिससे गलतफहमी दूर हो जाय।

मुझे बड़े अफसोसके साथ लिखना पड़ता है कि महज गुजरातीमें ही नहीं बल्कि अंग्रेजी अखबारोंमे भी यह बात फैली है और उसके विषयमें चर्चा भी खूब हुई है।

भगवान-जाने हुआ क्या, पर हिन्दू-मुसलमानके दरम्यान आजकल गलतफहमीकी हवा बहुत बढ़ रही है। एक दूसरेके अन्दर अविश्वास फैल गया है। मैं जानता हूँ कि इसके कुछ कारण हैं। उनकी चर्चा करनेकी यहाँ जरूरत नहीं मालूम देती। उत्तर-भारतमें हिन्दी-उर्दू अखबारोंने तो हद कर दी है। डा० अनसारी लिखते है कि मानो ऐसा मालूम होता है कि दूसरोंपर इल्जाम लगाना, झूठी अफवाहें फैलाना, एक दूसरेके मजहबको बदनाम करना और इस प्रकार एक दूसरेको बदनाम करना ही उन अखबारोंने अपना कर्त्तव्य ठान लिया है और जान पड़ता है कि यही उनके रोजगार बढ़ानेका जरिया हो गया है। इस बीमारीको किस तरह रोकें, यह समस्या विकट हो गई है। उसको हल करना मेरी समझमें धारा-सभा-प्रवेशकी बनिस्बत ज्यादह जरूरी और मार्केकी है। मुझे निश्चय है कि इसको हल करनेपर ही राज-तंत्र संचालनकी हमारी क्षमता अवलंबित है। यदि हम देशके सम्मुख उपस्थित प्रश्नोंको हल कर सके तो आज ही स्वराज्य हमारे हाथोंमे रखा है। जबतक हम इन गुत्थियोंको न सुलझा सकेंगे, तबतक स्वराज्य असंभव है। इन उलझनोंको दूर करनेमे धारासभा असमर्थ है।

पर इस लेखमे मैं इन कठिनाइयोंकी छान-बीन करना नहीं चाहता। यहाँ तो मै मौलाना साहबपर किये गये एतराजकी जांच करना चाहता हूँ।

मौलाना साहबके मूल कारणपर—लखनऊकी एक सभामे उनसे एक सवाल पूछा गया। उसका जवाब उन्होंने दिया। 'महात्मा गान्धीके धर्म-सिद्धान्तकी बनिस्बत एक व्यभिचारी मुसलमानके धर्म-सिद्धान्तको मै ज्यादा अच्छा समझता हूँ। इसमें मौलाना साहबने व्यभिचारी मुसलमान और महात्मा गान्धीजीकी तुलना नहीं की, बल्कि दोनोंके धार्मिक मतकी तुलना की है। अब जरा यह भी देखें कि यह तुलना उन्हें क्यो करनी पड़ी? मौलाना तो गान्धी-परस्त या गान्धी-पूजक हो गये हैं। गान्धी-परस्त होना यानी गान्धीको मूर्ति मान लेना अर्थात् यह मान लेना कि

दुनियामें उनके ऐसा कोई नहीं। ऐसा करना मानों गान्धीका धर्म कबूल करना है। यह है मौलाना साहबपरका इल्जाम। कितने ही मुसलमानोंके इस इल्जामका जवाब मौलानाने पूर्वोक्त वाक्योंमें दिया है। तो क्या इसका यह अर्थ हुआ कि मुसलमानोंको संतुष्ट करते हुए उन्होंने हिन्दुओंका दिल दुखाया? पूर्वोक्त वचन यदि मौलाना किसी दूसरी जगह कहे होते तो उसपर बिल्कुल टीका-टिप्पणी नहीं होती। हिन्दू अखबारोंने उनके भाषणका बिल्कुल उलटा अर्थ किया। उन्होंने लिखा कि मौलाना व्यभिचारी मुसलमानको 'महात्मा' गान्धीसे अच्छा समझते हैं। हमने देखा कि मौलानाने ऐसी बात नहीं कही। इतना ही नहीं, बल्कि उन्होंने स्वामी श्रद्धानन्दके नाम पत्र भेजे जिसमें महात्मा गान्धीको सर्वोत्तम मनुष्य माना है।

पर हाँ, उन्होंने 'महात्मा'के धर्म-सिद्धान्तको व्यभिचारी मुसलमानसे कनिष्ठ माना है, उससे विरोध जरा भी नहीं, उलटा लगभग सारा संसार सिद्धान्त और सिद्धान्तीमें यह भेद मान रहा है।

मेरे कितने ही ईसाई मित्र मुझे अच्छा आदमी मानते हैं। फिर भी इसलिये कि वे अपने धर्मको मेरे धर्मसे श्रेष्ठ मानते हैं हमेशा ईश्वरसे प्रार्थना करते हैं कि मैं ईसाई हो जाऊँ। दक्षिण अफ्रीकाके एक ऐसे मित्रका पत्र दो-तीन सप्ताह पहले मिला, जिसमें वे लिखते हैं—'आपके छुटकारेका समाचार जानकर मुझे बड़ी खुशी हुई। आपके लिये मैं ईश्वरसे प्रार्थना करता हूँ कि वह आपको सुबुद्धि दे कि जिससे आप ईसामसीहको और मुक्ति देनेकी उसकी शक्तिको मानने लगें। यदि आप यह कर सकें तो आपके काम तुरंत फलीभूत हो जायें।' इस तरह अनेक ईसाई मित्र चाहते हैं कि मैं ईसाई हो जाऊँ।

अच्छा, अधिकांश हिन्दू भी क्या करते हैं? क्या अच्छेसे अच्छे ईसाई या मुसलमान-धर्म-सिद्धान्तसे वे अपने धर्म-सिद्धान्तको सर्वोत्तम नहीं मानते? यदि वे ऐसा न मानते हों, तो वे क्या अपने कन्याकी शादी अच्छेसे अच्छे मुसलमान या ईसाईसे करेंगे? यही क्यों, हिन्दुओंमें भी किसी अच्छेसे अच्छे शख्सको नहीं, बल्कि अपने सम्प्रदायके या जातिके सर्वोत्तम मनुष्यको देंगे। इससे क्या सूचित होता है? यही कि पर-धर्मसे स्वधर्मको वे श्रेष्ठ मानते हैं।

मेरी नाकिस रायमें मौलानाने अपनी राय जाहिर करके अपने दिलकी सफाई और धर्म-श्रद्धाको सिद्ध कर दिया है। मेरी तो उन्होंने दूनी इज्जत की। एक तो मित्रके रूपमें दूसरा मनुष्यके रूपमें। मित्रके रूपमें मेरी इज्जत इस तरह की कि उन्होंने मेरे सम्बन्धमें अपनी यह धारणा करली कि वे मेरे सम्बन्धमें जो चाहे कहें, पर मैं उसमें अपना अपमान न मानूँगा और मैं उनके भावको गलत न मानूँगा। मनुष्यके रूपमें मेरी इज्जत इस तरह की कि हम दोनोंके धर्म भिन्न होते हुए भी, अपने धर्मको मेरे धर्मसे श्रेष्ठ मानते हुए भी मुझे सर्वोत्कृष्ट मनुष्य मानते हैं। यह कितनी श्रद्धा! यदि संसार मुझे अच्छा मानता है तो उसके इस वहमको

मै समझ सकता हूँ। परन्तु मेरे निकट रहनेवाले मेरे मित्र, मेरे अनेक छिद्रोंको देखते हुये मुझे सर्वोत्तम माने, यह कितनी अजीव वात है ?

किसी भी मनुष्यको सर्वोत्कृष्ट मानना, मुझे तो बड़ा खतरनाक मालूम होता है। उसके दिलको ईश्वरके सिवा कौन बड़ा जान सकता है ? उस मनुष्यके बनिस्वत जिसके दिलकी गन्दगी प्रकट होती रहती है उस मनुष्यका मिलान होना चाहिये जो अपनी गन्दगीको छिपा कर रखता है। पहले मनुष्यको तो मुक्ति मिलनेकी संभावना है, क्योंकि उसकी गन्दगी प्रकट हो गई, अर्थात् उसके निकलनेका रास्ता खुल गया। दूसरे मनुष्यकी जिसने अपने दिलकी गन्दगीको मुहरवन्द करके रखा है, गन्दगी अन्दरकी अन्दर ही पड़ी रहती है और वह जहरीले जन्तुकी तरह उसे नोच खायगी। उसका छुटकारा इस जन्ममें असंभव है और इसीसे शास्त्रोंने सत्यको सर्वोपरि माना है। इसीसे शास्त्रोंने पापको छिपाना मना किया है। यदि हम किसी भी मनुष्यको सर्वोपरि मान सकते हों तो यह निश्चय उनकी मृत्युके वाद ही किया जा सकता है।

मैं खुद तो अपना विश्वास नही करता, दूसरोंका विश्वास करना मुझे बहुत आसान मालूम होता है। ऐसा करते हुये यदि मुझे धोखा होगा, तो इससे मेरी कुछ आर्थिक हानि हो सकती है। दुनियां मुझे सीधा भोला कह सकती है, पर यदि मैं अपना विश्वास करके गाफिल रहूँ तो मेरा नाश हो जाय। पाठकों ! इस मौकेपर मैं यह भी कह देता हूँ कि एक बार मै अपना विश्वास करके ईश्वर-कृपासे डूबते-डूबते बचा हूँ। दूसरी बार अपने एक व्यभिचारी मित्रने मुझे बचाया। वे तो खुद बचनेकी हालतमे नही थे, परन्तु वे मुझे निर्मल समझते थे। अतएव यह समझकर कि इसे तो इस पापमे हरगिज नहीं पड़ना चाहिये उन्होंने मुझे मोह-निद्रासे जाग्रत किया। हम एक दूसरेकी चौकसी करें तो खुद हमारी भी रक्षा हो और संसारको भी अपने दुखसे बचा सके। इसीसे स्वराज्यकी सच्ची व्याख्या यह है "स्वराज्य उस राज्यको कहते है जो खुद अपनेपर किया जाता है।" 'आप भला तो जग भला' इस कहावतमें बहुतेरा अर्थ भरा हुआ है।

अपने विषयको छोड़कर मै गूढ़ चर्चामे नहीं चला गया था। बल्कि यह बात इसी विषयसे सम्वन्ध रखती है। मित्र लोग जब मुझे सर्वोत्कृष्ट मानते है तब मेरे रोंगटे खड़े हो जाते हैं। यदि मैं खुद ऐसा मानने लगूँ तो मेरा पतन हुये विना न रहे। क्योंकि मुझे तो अभी बहुत ऊँचा चढ़ना बाकी है। मेरे लोभकी सीमा नहीं। मुझे अभी असंख्य शत्रुओको जीतना है। ज्यों-ज्यो मै गहरा विचार करता हूँ त्यों-त्यो मुझे अपनी त्रुटियाँ दिखाई देती हैं। जब यह सोचता हूँ तब मेरे मनमें यह विचार उठता है कि सचमुच सर्वोत्कृष्ट मनुष्य कैसा होगा ? यह विचार करते हुए मेरे मनमे मोक्षाकी और उसके द्वारा मिलनेवाली अति आनन्दकी कुछ कुछ कल्पना होती है कि ईश्वर-तत्व सिद्ध हो सकता है ?

अब पाठक शायद यह समझ सकें कि मौलाना साहबने मुझे सर्वोत्कृष्ट मानकर मेरी कितनी इज्जत की है। उसके इस कथनका अर्थ क्या है, यह बात पाठकको उनके पत्र पढ़नेसे अधिक अच्छी तरह मालूम होगी।

स्वामीजीने मौलानाके इस खतका स्वागत किया और उनके दिलकी सफाई-पर उन्हें धन्यवाद दिया। मौलानाको हिन्दुओंका मित्र माना और जिन लोगोंने मौलानापर इल्जाम लगाकर महासभासे इस्तीफा देनेका नोटिस दिया था उन्हें नोटिस वापस लेनेकी सिफारिश की। परन्तु साथ ही उन्हें यह भी बताया कि मेरे धर्मके अनुसार तो अकेले सिद्धान्तकी कोई कीमत नहीं। मनुष्यके शील और आचार-पर उसकी कीमत आंकी जाती है। इसका जवाब देकर मौलानाने स्वामीजीके लेखकी शंका भी दूर की। मौलाना यह बात नहीं मानते कि सिद्धान्तीको अपने सिद्धान्तके अनुसार आचरण करनेकी जरूरत नहीं। उन्होंने तो सिर्फ दो कायदोंकी तुलनाकी और बताया कि उसमें ऊंचा कौन है। अच्छेसे अच्छा कानून—हाँ, यदि उसके अनुसार न चलें तो उसे कुछ फल नहीं मिलता—यह बात उन्होंने अपने दूसरे पत्रमें प्रकट की है।

इसलिये मौलाना मुहम्मद अलीके कथनका तात्पर्य सिर्फ इतना ही निकलता है कि सबको अपना-अपना धर्म अच्छा मालूम होता है। इस वचनका विरोध कौन हिन्दू कर सकता है? यह राईका पर्वत किस प्रकार हुआ और इसके न होने देनेका उपाय क्या है, इसका विचार फिर कभी करेंगे।

नव-जीवन
१३ अप्रैल, १९२४

❀

हिन्दू-मुसलमान

हिन्दू-मुसलमानोंमें जो तनाजा पड़ गया है उसके सम्बन्धमे मैं अपने विचारोंको प्रगट करनेके लिये तैयार न था और न हूँ। मेरे विचार तो निश्चित हो चुके है; परन्तु मित्रोंके सुभीतेके लिये मैंने उन्हें प्रकट नहीं किया है। वे अभी विचार कर रहे है। इसीसे ढिलाई हो रही है। परन्तु वीसनगर (गुजरात) में जो घटना घटी है उसके संबंधमें मैं बिल्कुल चुप नहीं रह सकता। यदि मुझे पत्र-संचालन करना है तो मौका पेश आनेपर मुझे अपने विचार अवश्य प्रकट करने चाहिये।

वीसनगर जाकर अब्बास तैयबजी साहब और श्री महादेव देसाईने समझौता करानेका प्रयत्न किया और वह किस प्रकार बेकार हुआ उसका हृदय-भेदी चित्र श्री महादेव देसाईने मुझे भेजा है। उससे मालूम होता है कि हिन्दुओंने रामनवमीके दिन रामजीका जुलूस निकाला। बाजा बजते जा रहे थे। वह जब मसजिदके नजदीक आया तब नंगी तलवारवाले मुसलमान मुकाबिला करनेके लिये तैयार नजर आये। जुलूस कोई २४ घन्टे बाद पुलिसके रखवालीमे वहाँसे गुजरने लगा।

तफसीलकी बातें मै छोड़े देता हूँ। हिन्दू अपना बाजा बजानेका हक नहीं छोड़ते थे और मुसलमान बाजा बजाने देना नहीं चाहते थे। फिर भी ज्यों-त्यों करके हुल्लड़ तो रुका, पर इसका श्रेय उनमेसे किसी भी पक्षको नहीं मिल सकता। श्रेयका पात्र तो अकेले पुलिस है।

अब फिर ऐसी खबर मिली है कि कितने ही पशुओंको तलवारसे किसीने लुक-छिपकर जख्मी कर दिया है और मालूम हुआ है कि एक पशु तो मर भी गया है। हिन्दुओंने मुसलमानोके साथ अपना सम्बन्ध तोड़ दिया है।

जुलूसकी घटना हो चुकनेके बाद वीसनगरके एक प्रख्यात सज्जन श्री महासुखलाल चुन्नीलालने एक तेज व्याख्यान दिया। उसमे उन्होंने सफेद टोपीवालोंको संबोधन करके कहा कि आप जो भी यत्न कीजिये, पर हिन्दू-मुस्लिम-एकता नहीं हो सकती। श्री महासुखलालने हिन्दुओंको असहयोगकी सलाह दी है।

वीसनगरके हिन्दुओकी संख्या मुसलमानोसे बहुत ज्यादह है। फिर भी वे मुसलमानोसे बहुत डरते है। मुसलमान अपनी तलवारको म्यानमे रखना नहीं चाहते।

मै मानता हूँ कि ऐसा कोई अचल धार्मिक नियम नहीं है कि धार्मिक जुलूसके बाजे जहाँ एक दफा बजने शुरु हुये कि वे लगातार बजते हुए ही रहें। मै यह भी मानता हूँ कि मुसलमान भाइयोंके भावोंको आघात न पहुंचे। इसलिये कुछ खास मौकोपर बाजा बजाना बन्द कर देना हिन्दुओका फर्ज है। पर मै यह भी उतनी ही दृढ़ताके साथ मानता हूँ कि मुसलमानोंकी तलवारसे डरकर बाजे बन्द करना

अधर्म है। जिस प्रकार हिन्दू-मुसलमानोंको दबाकर उन्हें गो-वध करनेसे नहीं रोक सकते उसी प्रकार मुसलमान भी जबरन हिन्दुओंके बाजे बन्द नहीं कर सकते। यदि दोनोंको मित्रता प्यारी हो तो दोनों अपनी-अपनी गरजसे गो-वध और बाजे बजाना बंद कर दें। मै यह भी मानता हूँ कि यदि एक अपना फर्ज न अदा करे तो दूसरेको अपने फर्जसे न चूकना चाहिये। पर दोमेंसे एक भी तहस-नहस हो जानेपर भी तलवारके सामने सिर झुकावे, नहीं झुका सकते, न झुकाना चाहिये।

मौका पड़नेपर शान्त असहयोग करना हर शख्सका हक है। यह नहीं कि सरकारके साथ असहयोग हो सकता है, पर आपसमें नहीं। यह भी नहीं कि हिन्दू-मुसलमानके ही साथ करें और एक हिन्दू दूसरे हिन्दूके साथ या एक मुसलमान दूसरे मुसलमानके साथ न कर सके। सिद्धान्तकी बातमें तो संभव है कि बाप-बेटेमें भी असहयोग करना पड़े।

पर सवाल यह है कि ऐसा मौका बीसनगरके हिन्दुओंके सामने आ खड़ा हुआ है या नहीं ? मेरी नाकिस रायके मुताबिक ऐसा मौका खड़ा नहीं हुआ है। गूढ़ और पेचीदा सवालका फैसला हर गाँवके हिन्दू-मुसलमान खुद-मुख्तार होकर नहीं कर सकते। जीता पक्ष भले ही यह माने कि इसका नतीजा अच्छा हुआ। परन्तु इसका स्थायी परिणाम बुरा ही होगा। फिर यह भी माननेका कोई कारण नहीं कि एक पक्षकी जीत होनेसे उसके सहधर्मियोंको लाभ होगा। बीसनगरमें हिन्दू संख्या-बल, राज-बल अथवा असहयोग-बलसे मुसलमानोंको झुका ले तो इसे क्या हुआ ? दूसरे गाँवमें जहाँ मुसलमानोंके लिये अनुकूल अवसर होगा वहाँ वे हिन्दुओंको दबावेंगे—क्या यह बात बीसनगरके हिन्दुओंको अच्छी लगेगी ? बीसनगरके हिन्दुओंका रास्ता आरम्भमें चाहे भले ही मीठा हो, पर परिणाममें वह जहरीला है। अतएव गीता-मतके अनुसार त्याज्य है।

मुझे याद दिलानेकी जरूरत नहीं है कि बीसनगरके हिन्दुओंको मैं यह नहीं कहता कि दबकर बाजा बजानेका हक छोड़ दें। मैं यह भी नहीं कहता कि वे कभी असहयोग न करें। किन्तु यह राय जरूर नम्रताके साथ देता हूँ जो ब्योरा मुझे मिला है वह यदि ठीक हो तो हिन्दुओंके इस असहयोगमें जल्दीबाजी हो रही है। इसके पहले जो-जो काम उन्हें करना चाहिये वे कर नहीं पाये हैं। यदि उनमें समझदारी हो तो राज-सत्ताकी सहायता कमसे कम लें। सुनता हूँ कि बीस नगरमें सत्ताधिकारियोंने 'अपना काम शान्ति और चतुराईके साथ निष्पक्ष हो कर' किया। तटस्थ हिन्दुओंके द्वारा मिले समाचारोंके आधारपर यह लिख रहा हूँ। तटस्थ मुसलमानके दिलपर क्या असर हो रहा है यह मै नहीं जानता।

परन्तु हम तो राज-सत्ताकी सहायता कमसे कम लेना चाहते हैं। हम चार सालसे इस सिद्धान्तकी पुष्टि कर रहे हैं। अतएव हमें यह विचार करनेकी जरूरत है कि राज-सत्ताकी बिचवाईके अतिरिक्त हम क्या करें ? बीसनगरके हिन्दुओंको

फिलहाल मुसलमानोंकी तलवारका भय नहीं। सत्ताधिकारियोंने उन्हें इस भयसे बचाया है और बचा रहे हैं। इसलिये अब उन्हें सुलहके रास्ते खोजनेकी जरूरत है। क्या उन्होंने वीसनगरके बाहरके हिन्दू-मुसलमानोंकी सलाह और सहायता ली है? उन्होंने अली भाइयोको कुछ लिखा है? हकीमजीको लिखा है? संभव है ये कुछ न कर सकें। पर हिन्दुओंका फर्ज है कि वे उनसे सहाता मांगें। हिन्दुओंने गुजरातके अग्रगण्य पुरुप वल्लभभाईकी सलाह ली? उन्होंने अब्बास साहबको बात न सुनी—उनकी अवहेलना की—इसके लिये उनसे माफी मांग कर उनकी सुलाह ली है?

परन्तु श्री सुखलाल कहते हैं कि दाढ़ी और चोटीकी कभी बन ही नहीं सकती। हिन्दू अपना निपटारा खुद करलें। यदि वे सफेद टोपीवालोंकी बात मानेंगे तो वे हिन्दू न रहकर मुसलमान हो जॉयगे। इस सज्जनसे मैं नम्रतापूर्वक पूछता हूं कि यदि उनके विचार वैसे ही हैं जैसे मेरे पास पहुंचे हैं तो वे भूल करते हैं। सफेद टोपीवालोंमे हिन्दू और मुसलमान दोनों हैं। मैं उन्हें यकीन दिलाता हूँ कि सफेद टोपीवालोंमेंके हिन्दू अपना हिन्दूपन नहीं गवॉ देंगे। हमारा झगड़ा इस वक्त सफेद या काली टोपीका नहीं है। सफेद टोपीवाले बुरे हो तो होते रहें, मै उनकी सफाई क्या दूँगा? सफाई तो सबका अपना-अपना आचार देता है। पर यह धारणा मुझे भयंकर मालूम होती है कि हिन्दू-मुसलमानोंमे एकता हो ही नहीं सकती। इस विचारमे धार्मिक दोप है। यह विचार हिन्दू संस्कृतिके विरुद्ध है। हिन्दू धर्ममें किसीका सर्वथा नाश नहीं है। अर्थात् सबके अन्दर एक ही आत्मा रम रहा है। हिन्दू यह कही नही सकता कि दूसरोंको स्वर्ग तभी मिलेगा जब वे भी उन्हींको मानें जिसे वह खुद मानता हो। मै यह नहीं जानता कि मुसलमान ऐसा मानते हैं या नहीं। परन्तु मुसलमान शौकसे यह मानते रहें कि तमाम हिन्दू काफिर हैं और वे स्वर्गके अधिकारी नही हो सकते। पर हिन्दू-धर्म हमे यह शिक्षा देता है कि हम ऐसे पर भी प्रेम करें। और उन्हें प्रेमपाशमे बांध लें। क्योंकि हिन्दू-धर्म किसी अन्य धर्मकी अवहेलना नहीं करता। वह सबको कहता है—स्वधर्ममे ही श्रेय है।

व्यवहारकी दृष्टिसे भी यह मानना कि हिन्दू-मुसलमानोकी एकता असंभव है, मानो हमेशाके लिये गुलामी कबूल करना है। जो हिन्दू यह मानते हो कि सात करोड़ मुसलमानको हिन्दुस्तानसे नेस्त-नाबूद कर सकते हैं, वे गहरी नींदकी खुर्राटें ले रहे है। यह कहते हुये मुझे जरा भी संकोच नहीं होता।

फिर इसीलिये कि बीसनगरमे हिन्दू-मुसलमान लड़ते है, यह क्यो मान लें कि हिन्दुस्तानके सात लाख गावोंमे भी जहॉ दोनो जातियाँ बसती है, दोनो लड़ते हैं? सारे हिन्दुस्तानसे ऐसे अनेक देहात है जहाँ हिन्दू-मुसलमान खुद सगे भाईकी तरह रहते है—इतना ही नहीं बल्कि वे यह भी नही जानते कि कितने ही शहरोंमें और उनके नजदीक गावोंमे हम लड़ रहे हैं।

अतएव धर्म और व्यवहार दोनोंकी दृष्टिसे विचार करते हुये बीसनगरमें

इन समझदार हिन्दूको समझना चाहिये कि हिन्दू-मुसलमानमें इत्तफाक सम्भव और आवश्यक है। असहयोगकी सलाह देनेवाले इन सज्जनको यह भी सूचित कर देना चाहता हूँ कि असहयोगका ही अर्थ है पीछेसे सहयोग किया जाय। असहयोग मलीनताको धोनेकी क्रिया है। एक ही ईश्वरके इस जगतमें किसी भी जीवके साथ सर्वदा असहयोग नहीं हो सकता। यह विचार कल्पनाके बाहर है। क्योंकि यह कल्पना ईश्वरकी स्वभाविकताका विरोध करती है।

इसलिये मै वीसनगरके हिन्दुओंसे प्रार्थना करता हूँ कि वे वल्लभभाई तथा अब्बास साहबको बुलावें और उनसे कहें कि हमारा झगड़ा मिटा दीजिये। यदि उन्हें इन असहयोगियोंका विश्वास न हो तो वे शौकसे सहयोगियोंको बुलावें। गुजरातमें बहुतेरे ऐसे सहयोगी हिन्दू-मुसलमान हैं जो उन्हें मदद देंगे। जबतक वीसनगरके हिन्दू समझौतेके तमाम उपाय न आजमा लें, तबतक उन्हें असहयोग करनेका अधिकार प्राप्त नहीं होता। यह तो हिन्दू भाइयोंके लिये हुआ।

मुसलमान भाइयोंने गहरी भूल की है। मुसलमान तवारीखें कहती हैं कि इस्लामकी उज्वलता तलवारके जोरपर कायम नहीं रही है। इस्लामकी तलवारने इस्लामकी रक्षा भले ही की हो; इस्लामने इन्साफ और गैर-इन्साफका केवल फैसला नही किया। आजतक कोई धर्म जगतमें महज तलवारपर जीवित नहीं रह पाया है। जब-तब तलवार खींच लेनेकी आदत ही खराब है, धर्मका नाश करनेवाली है। विधर्मी होते हुये भी मैं वीसनगरके मुसलमानोंको यह बात अवश्य कहना चाहता हूँ। इस्लामको उज्वल किया है उसके फकीरो, सूफियो और तत्वज्ञानियोंने। उन्होंने अपनी या अपने मजहबकी रक्षा तलवारके बलपर नही की, बल्कि अपनी रूहानी ताकतपर की है। इस्लामकी तारीख यही साबित करती है।

वीसनगरके मुसलमानोको चाहिये कि वे अपनी तलवारको अब म्यानमें रखे। तलवारके बलपर वे हिन्दुओको मस्जिदके पास बाजे बजानेसे नहीं रोक सकते। तीस-चालीस वर्षसे हिन्दू बाजे बजाते आये है। उन्हें एकाएक बाजा बजानेसे रोकना कठिन काम है। तलवारसे यह काम नहीं हो सकता। दुनियाका यह कायदा है कि जैसा हमको मालूम होता है वैसा ही दूसरोको मालूम होता है। यदि कोई हिन्दू किसी मुसलमानसे जबर्दस्ती कोई हक मांगे तो वे न देंगे। इसी प्रकार हिन्दुओंसे जबर्दस्ती कुछ भी नही ले सकते। यह बात वीसनगरके मुसलमान भाइयोंको शान्त चित्त विचारकर समझ लेनी चाहिये, जो उनके लिये हितकर होगी।

मै यह नहीं कहता कि इसलिये कि हिन्दू चालीस वर्षसे बाजा बजाते आ रहे हैं, वह भूल हो तो भी, बाजे बन्द नहीं किये जा सकते। परन्तु बेजा बात तलवारके बलपर सुधारी नहीं जा सकती। उसका तो एक ही तरीका है, मेल-जोल, समझौता। वीसनगरके हिन्दुओको यदि उनकी भूल हो तो दिखाना चाहिये। उन्हें समझा-बुझाकर काम ले। यदि वे न समझें और बाजा बजाते ही जाँय तो इससे मुसलमान-

५

की नमाज रुकी न रहेगी। नमाजका रुकना न रुकना नमाजीके दिलपर मुनहसर करता है। मैंने ऐसा पढ़ा है कि पैगम्बर साहब ऐसी हालतमें भी जब कि लड़ाई चल रही हो, तलवारोंकी चमचमाहट हो रही हो, घोड़े हिनहिना रहे हो, तीर सूॅ-सूॅ कर रहे हों, शान्त चित्तसे एकान्त होकर नमाज पढ़ सकते थे। उन्होने मक्काके बुत-परस्तोंके दिल प्रेमके बलपर हर लिये थे। पैगम्बर साहब जो नमूना अपनी विरासतमें दे गये हैं उसे बीसनगरके मुसलमान क्यों भूलते है? नमाज पढ़ना उनका फर्ज है। यह तो कुरान-शरीफमें है। पर यह नहीं पढ़ा, न सुना कि यदि दूसरे लोग बाजा बजाते हों तो जबरन बन्द करा देनेका हक उन्हें है और उसे बन्द करा देना मुसलमानोका फर्ज है। हिन्दुओको वे प्रेमसे समझा सकते हैं। यदि हिन्दू न मानते हों तो बीसनगरके बाहरके हिन्दू-मुसलमानोसे मदद ले सकते हैं। मेल जोल और समझौतेके बिना न तो हिन्दुओके लिये कोई रास्ता है न मुसलमानोंके लिये।

क्या बीसनगरके मुसलमान स्वराज्य नहीं चाहते? क्या उन्हें गुलामी ही पसन्द है? क्या मुसलमान खिलाफतके प्रति अपना फर्ज अदा कर चुके हैं? गुलामीमें रहनेवाले मुसलमान खिलाफतकी सच्ची सेवा कर सकते हैं? हिन्दुओंके साथ पक्की-दिली दोस्ती किये बिना खिलाफतको रोशनी दे सकेंगे? अच्छा, यह मान लें कि खिलाफतका सवाल उनके सामने नहीं है। तो क्या वे अपने वतन हिन्दुस्तानमें अपने हम-वतन हिन्दुओंके साथ हमेशा दुश्मनीके ही नाते रहना चाहते है?

हिन्दू-मुसलमान-संबंधी दूसरे कितने ही सवालोंका विचार हम 'नवजीवन' में करेंगे। पर झगड़ोका फैसला या तो पंचायतकी मार्फत या अदालतकी मार्फत हो सकता है। एक दूसरेको धर्मके अथवा दूसरे किसी चीजके नामपर आपसमें तलवार चलाना हराम समझना चाहिये। मुसलमानोंसे हिन्दुओंका हमेशा डरते रहना जिस प्रकार हिन्दुओंको शोभा नहीं देता उसी प्रकार उन्हें डराना मुसलमानोंको भी शोभा नहीं देता। डरानेवाला और डरनेवाला दोनो भूल करते हैं। दोमें किसका दर्जा बड़ा है यह मैं नही कह सकता। पर यदि किसी एकको पसन्द ही करना पड़े तो मैं जरूर डरनेवालेके झुण्डमें जा बैठूॅ और डरानेवालेके साथ पूरा-पूरा असहयोग करूॅ। मुझे निश्चय है कि डरनेवालेपर तो खुदा रहम करेगा और डरानेवालेको उसकी तकब्बरीके लिये अपने पास खड़ा न रहने देगा।

हिन्दी-नवजीवन
४ मई, १९२४

❀

बोहराओंका डर

एक बोहरा सज्जन लिखते हैं:—

"आज हिन्दू-मुस्लिम एकताका सवाल बडा ही महत्व-पूर्ण हो रहा है। इस एकतासे हम ढाई लाख बोहरोंकी जाति डरती है।"

"आपकी यह राय है कि जबतक हिन्दू-मुस्लिम एकता दृढ न हो तबतक स्वराज्य मिलना असंभव है। मैं भी यही मानता हूं।

"तब सवाल यह है कि क्या इस एकतामे हमारी जाति भी आ जाती है? यदि आती हो तो हिन्दू, मुसलमान, यहूदी, पारसी, ईसाई आदिके नामोंमे 'बोहरा' शब्द भी लिखते रहिये। इससे हमारी जाति जो इस एकतासे डरती है उसका डर दूर हो जायगा; क्योंकि पहले मुगल बादशाहतके जमानेमें हमारी जातिपर तरह-तरहके अत्याचार किये गये थे। उसका मुख्य कारण है हमारा मुसलमानोंके साथ धार्मिक मतभेद।

"यदि हिन्दू-मुसलमान एकता हो और कभी स्वराज्य मिले तो फिर इस बातका क्या यकीन कि मुसलमान लोग हमपर बलात्कार न करेंगे? ७ करोड मुसलमानोंमे हम ढाई लाख बोहरा किस खेतकी मूली हैं? यदि इस बातका यकीन हमारी कौमको हो जाय कि फिर से हमपर अत्याचार न हो और 'नवजीवन'मे आप खास हमारी जातिके लिये ऐसे लेख लिखें कि जिससे हमारी धार्मिक स्वतंत्रता कायम रहे तो आपका बडा उपकार होगा और जो डरका वहम घुस गया है वह आपके लेखसे निर्मूल होगा। क्योंकि हमारी कौम यह मानती है कि वर्तमान राजतत्रमे हम खुश है और हमारे धर्मपर अत्याचार नहीं होता। इसी प्रकार स्वराज्य मिलने पर भी हमारी कौम निर्भय रहनी चाहिये।"

इस पत्रसे ऐसी कितनी ही बाते मैंने निकाल डाली हैं जो जुल्मोंको साबित करनेके लिये लिखी गई थीं। भूतकालके झगड़ोंको ताजा करनेके लिये इससे किसी-को लाभ नहीं। इन बोहरा भाईने जो प्रश्न उठाया है वह गूढ़ है। 'नवजीवन'में उसपर टीका-टिप्पणी करनेसे उसका फैसला नहीं होता। हिन्दू, मुसलमान, ईसाई आदिके साथ जोड़ देनेसे भी संतोष नहीं मिलता। हिन्दू-मुस्लिम-एकताका नाम आज कितने ही वर्षोंसे सुनाई दे रहा है। पर आज वह ऐक्य नहीं है। यह ऐक्य व्याख्यानोंसे होनेवाला नहीं। बेचारी मेरी दुबली-पतली कलम और जबान भी क्या कर सकती है। हर कौमको यह समझ लेना चाहिये कि एकतामें प्रत्येक कौमका हित है, हर एक धर्मको रक्षा है। आपससे शुद्ध प्रेम रखना चाहिये। धर्मान्धताकी जगह सहनशीलता होनी चाहिये और सबसे बड़ी बात तो यह सीखनी चाहिये कि धर्मकी खातिर या धर्मके नामपर एक दल दूसरे दलपर बलात्कार न कर सके। यदि हिन्दू और मुसलमान इतनी ही बातका पालन करें तो दूसरी कौमें अपने आप निर्भय होजाती हैं। बोहराओंका नाम अलगसे लेनेकी

जरूरत मुल्कके न होनी चाहिये। वे भी मुसलमान हैं। यदि मुसलमान हिन्दूके साथ लाठीसे लड़ना भूल जाय तो अपने आपसमें भी लड़ना भूल जायगा। अतएव हिन्दू-मुसलमानके बीच सच्ची यानी दिलकी सफाई हो जायगी तो एक धर्मके जुदे-जुदे फिरकोंमें भी हो जायगी और यदि उसमें सफलता न मिली और हर मौकेपर एक दूसरेसे लड़नेकी ही नौबत आती रही तो फिर हमें सदाके लिये गुलामी पसन्द करनी पड़ेगी। 'सरकार बहादुर चिरंजीव रहें और हमें एक दूसरेके गलेपर छुरी फेरने से रोकते रहें' यह हिन्दू-मुसलमान सबका नया कलमा हुआ और यही नया धर्म। देखना चाहिये कि हिन्दू-मुसलमान दोमेंसे किसी एकमें अक्ल है या नहीं। आजकी हालतमें एक लाभ है, यह अधिक दिनों तक नहीं रह सकती। चार-छः महीनेमें जो निश्चय दोनों कौमें करेंगी उससे मालूम हो जायगा कि हिन्दुस्तानके भाग्यमें दूसरे पचास साल और गुलामी बदी है या थोड़े ही समयमें स्वराज्य लिखा है।

हिन्दी-नवजीवन
११ मई, १९२४

हिन्दू-मुसलमानोंका तनाजा: उसका कारण और उपाय

हिन्दुओंका इल्जाम

पं० बनारसीदास चतुर्वेदीकी मार्फत टांगनिका (पूर्वी-अफरीका) में रहनेवाले एक हिन्दू सज्जनने मुझे एक संदेशा भेजा था:

"गान्धीजीसे कहना कि मुल्तानमें जो हिन्दुओंपर जोरो-जुल्म हुआ है उसके जिम्मेवार आप हैं।"

अबतक मैंने यह संदेशा नहीं छापा था। क्योंकि मैं इस आला मसलेपर अपने ख्यालात जाहिर करनेके लिये तैयार न था। परन्तु यह संदेश आनेके बाद मेरे पास रोज खतपर खत चले आ रहे हैं, जिनमें तो बहुतेरे मशहूर मित्रोंके हैं, कितने ही तो यहाँ तक कहते है कि मोपलाओंकी ज्यादतियोंके लिये भी मैं ही जिम्मेवार हूँ। परन्तु खिलाफतकी तहरीकके पैदा होने के बाद जितने हुल्लड़ हुए और जहाँ हिन्दुओंको जान-मालका नुकसान उठाना पड़ा, उनके लिये मैं ही जवाबदेह हूं।

इनकी दलील इस किस्मकी है:—"आपने कहा है कि खिलाफतके मामलेमें मुसलमानोंका साथ दो। इससे खुद अपनेको इस मामलेके साथ एक कर दिया है। इससे इसको इतना रुतबा मिल गया कि जितना कभी न मिलता। आपकी इस कार्रवाई-से ही मुसलमान जाग पड़े और एक हो गये। इससे मौलवियोंको जो इज्जत मिली वह पहले कभी न मिली थी और अब खिलाफतका निपटारा हो गया तो जगे हुये मुसलमानोंने हिन्दुओंके खिलाफ एक प्रकारकी जेहाद छेड़ दी है। मेरे इस इल्जामका

कारण मैंने एक सीधी-सादी समझमें आने लायक जुबानमें यहाँ दिया है। कितने ही खतोंमें तो ऐसी-ऐसी गालियाँ दी गई हैं जिन्हें अखबारमें नहीं छाप सकता। यह तो हुई हिन्दुओंके इल्जामकी बात।

मुसलमानोंके इल्जाम

एक मुसलमान दोस्त लिखते है :—

"मुसलमान कोम बड़ी भोली-भाली और दीन-परस्त है। इससे उसने दिलमे ख्याल किया कि खिलाफतपर बड़ी आफत आ गुजरी और उसकी हिफाजत महज हिन्दू और मुसलमानकी मुत्तहिदा आवाजसे ही हो सकती है। इन सीधे-भोले लोगोंने आपकी फसीह तकरीरोंसे जोशमे आकर सरकारी मदरसों, अदालतों और धारा-सभाओंका बहिष्कार करनेमें सबसे पहले कदम बढाया। अलीगढकी सबसे नामी सस्थाको—सर सैयद अहमद जैसे शख्सकी सारी जिन्दगीकी तपस्याका बल कह सकते है, वह ऐसी तमाम-सस्थाकी नाक थी और वह ठीक थी—वह सस्था इसकी बदोलत मिट्टीमे मिल गई। क्या आप हिन्दुओंकी कोई ऐसी सस्था दिखा सकेंगे जो इस कदर बरबाद हुई हो। मै बीसो तुल्बाको जानता हूँ जिनसे कहा गया है कि तुम्हे मजहबन पढ़ाई छोड़ देनी चाहिये और उनकी पढाई बरबाद हो गई। ये लोग आसानीके साथ विश्व-विद्यालयकी ऊची पदवियाँ और इनाम पा सकते थे। ऐसा करके वे अपनी और कौमकी नेकनामी करते। इसके खिलाफ हिन्दू तुलबाकी दुनियासे बहुत थोडे लोगोंने स्कूल कालेज छोड़े और जिन्होंने छोड़े थे वे भी तहरीकको ठण्डा पडते हुये देखते ही फिर जाकर भरती हो गये। वकीलोंका भी यही हाल हुआ। उन दिनो आपने किया तो दोनो कौमोंमे एकदिली कायम करने जैसा कुछ ही काम, और सारी दुनियामे शोहरत मचा दी कि इत्तहादकी बुनियाद मजबूत हो गई। बेचारी भोली-भाली मुसलमान कौमने यह सब सच माना, जिसका फल यह मिला कि अजमेर, लखनऊ, मेरठ, आगरा, सहारनपुर, लाहौर तथा दूसरी जगह मानिन्द जानवरोंके वे पीटे गये। मि० मुहम्मद अली जैसे निहायत आला दरजेके पैदायशी, अखबार-नवीस जिनका गैर-मामूली 'कामरेड' अखबार मुसलमान कौमकी भारी खिदमत कर रहा था, आपकी तरफ कर लिये गये, और अब तो कौमके हिसाबसे गोया कहींके हुए ही नही। आपके हिन्दू-अगुआ लोग शुद्धि और सगठनके रास्ते मुसलमान कौमको कमजोर बनानेकी कोशिश कर रहे हैं। फिर आपके इस तग-ख्याल फैसलेने कि धारा-सभाओंमे न जाना चाहिये मुसलमान कौमको बहुत बेजा धक्का पहुचाया है। क्योंकि अच्छे कारन्दाज लोगोका एक बहुत बडा हिस्सा धारा-सभाओंके मुतअल्लिक फतवेकी बदौलत धारा-सभामे न गया। इन तमाम वाकयातपर गौर करते हुये क्या आप यह सच्चे दिलसे नहीं महसूस करते कि आप चन्द मुसलमान अशखासको भी अपने दलमे रखकर मुसलमान कौमका गहरा नुकसान कर रहे हैं?"

मैंने यह खत पूरा नहीं दिया है। लेकिन इन चन्द जुमलोंमें मुझपर मुसलमानोंकी तरफसे किये गये इल्जामका मतलब आ जाता है।

मैं बेकसूर हूँ

इन दोनों इल्जामोंके मुतअल्लिक मुझे यही कहना है कि मैं बे-कसूर हूँ। बल्कि मुझे इतना और कहना चाहिये कि यह जो कुछ हुआ है उसपर मुझे जरा भी अफसोस नहीं होता है। अगर मै खुदाई फरिश्ता या पैगम्बर होता और जो कुछ वाकयात हुये हैं इन्हें पहलेसे देख पाता तो भी मैं खिलाफतकी तहरीकमें कूदे विना नहीं रहता। मेरा तो मजबूत ख्याल है कि गो दोनो कौमोंमे चाहे आज कितना ही कड़वापन क्यो न फैल गया हो पिछली तहरीकसे दोनोको फायदा ही पहुंचा है। हमारी कौमी तालीमके लिये आम-लोगोंमे रोशनी फैलाना और उनको अपनी हालतको समझाना जरूरी था। यह एक ही चीज हमारे नजदीक एक बड़ा फायदा है। मै ऐसी कोई बात न करूंगा जिससे लोगोंकी खुली ऑखे फिर मुंद जायँ और वे लेट लगा जायें। हमारी होशियारी और लियाकत इसीमें है कि हम लोगोंकी कूवतको ठीक-ठीक रास्ता दिखावें। इस वक्त जो नजारा हम अपनी आखोंके सामने देख-रहे है वह बेशक काविल-रंज और अफसोस है, लेकिन हमे अगर अपनेपर पक्का एतवार हो तो इससे घबरा जानेकी मुत्लक जरूरत नहीं है। मौजूदा तूफान आने-वाले अमन-अमानका निशान है। यह अमन हमारी कूवत और ताकतके ज्ञानका फल होगा, थकावट और ना-उम्मेदीकी वजहसे आनेवाली सुस्ती उसकी वायस न होगी।

लोग मुझसे यह न चाहेंगे कि मै मुल्कमे जगह जगह हुये दंगो और लड़ाई-झगड़ोंके मुतअल्लिक फैसला दूँ। मैं मुत्लक नही चाहता कि काजी बनूँ और यदि चाहूँ भी तो इन्साफ देने लायक मसाला मेरे नजदीक नहीं है।

मोपला लोग

मै इन झगड़ोकी वजूहातके मुतअल्लिक दो अल्फाज कहूँगा। मलाबारके मोपला-फसादसे हिन्दुओंका दिल जरूर खट्टा हो गया। इसमे सच बात क्या है, यह कोई नहीं जानता। हिन्दुओका कहना है कि मोपलोंके जोरो-जब्रका बयान नहीं किया जा सकता। डाक्टर महमूदका बयान है कि इन ज्यादतियोंके बारेमे तिलको ताड़ बनाया गया है। हिन्दू लोग मोपलोको बहुत तंग और परेशान करते थे और जब्रन मुसलमान बनानेकी अफवाहोमे एक भी सच न साबित हुई। एक मिसाल बताई जाती थी। तहकीकात करनेपर वह सच साबित न हुई। डा० महमूद कहते हैं कि इस बातमें खुद हिन्दू लोग गवाह है। मोपला-बाबके ये दोनो रूख मैंने इसलिये पेश किये है कि लोग मेरे साथ इस बातमे मुत्तफिक राय हों कि दरअसल सच बातको खोज निकालना गैर-मुमकिन है और हमारे आयन्दा चलनेका कायदा बनानेके लिये यह जरूरी भी नहीं है।

मुलतान, आगरा, सहारनपुर, अजमेर वगैरह मुकामातपर हिन्दुओंके जानो-मालका सबसे ज्यादह नुकसान हुआ है। सब लोग इस बातको सही मानते हैं।

पलवलकी खबर है कि वहाँके हिन्दुओंने मुसलमानोंको एक खास-मसजिदको पुख्ता बनानेसे रोका। कहा जाता है कि उन्होंने पक्की दीवारोंका एक हिस्सा भी गिरा दिया। मुसलमानोंको गाँवके बाहर निकाल भी दिया और जबतक मुसलमान इस बातपर राजी न हो कि यहाँ मुसलमान एक भी मसजिद खड़ी न करें और बांग न दे तबतक उन्हें गाँवमें रहने न देंगे। कहते हैं कि कोई एक सालसे ज्यादह अर्सेसे यह हालत वहाँ है। कहा जाता है कि जिन मुसलमानोंको उन्होंने निकाल दिया वह रोहतकके आस-पास कच्ची झोपड़ियां बनाकर रहते हैं। एक और भी मुखबिर मुझे खबर करते हैं कि ब्याढह, जिला धारवाड़के मुसलमानोंने मसजिदके सामने बाजा बजानेपर एतराज किया, इसपर हिन्दुओंने मसजिदकी हत्तक की, मुसलमानोंको पीटा और पीछे उनको सताया भी।

इन मिसालोंको मैं बतौर साबित मामलेके पेश नहीं कर रहा हूँ; बल्कि महज यह दिखानेके लिये पेश कर रहा हूँ कि मुसलमानोंकी भी यह फरियाद है कि हिन्दुओंने हमें भी कम नहीं सताया।

परन्तु इतना तो जरूर कहा जा सकता है कि जहाँ मुसलमान लोग साफ तौरपर कमजोर थे और हिन्दू ताकतवर थे (जैसे कटारपुर और आरामें) वहाँ पड़ोसी हिन्दू-भाइयोंके हाथों बेरहमीसे पीटे गये। बात यह है कि जब इन्सान-का खून उबल उठता है और बदख्याली तथा बदगुमानीका बोल-बाला होता है तब इन्सान जानवर बन जाता है और मिस्ल जानवरके पेश आता है, फिर वह चाहे अपनेको हिन्दू कहलवाता हो या ईसाई या और कुछ कहलाता हो।

फसादोंका अड्डा

इन तमाम फसादोंका अड्डा पंजाब है। मुसलमानोंकी शिकायत है कि फजलुल हक साहबने डरते-डरते मुसलमानोंकी तादाद सरकारी मुलाजमतमें ठीक-ठीक रखनेकी कोशिश की। इसी बातपर हिन्दुओंने चारों तरफ शोरगुल मचा दिया। ऊपर मैंने जिस खतका हिस्सा नकल किया है उसके लेखक भारी शिकायत करते हैं कि जहाँ हिन्दू किसी मुहकमेका अफसर होता है वहाँ वह हमेशा मुसल-मानोंको सरकारी नौकरीमें न घुसने देनेकी बड़ी खबरदारी रखता है।

इस तरह हमारे झगड़ेकी वजूहात महज मजहब ही नहीं। मैंने जिन इल्जामोंका वर्णन किया है वे एक-एक शख्ससे ताल्लुक रखते हैं लेकिन आम-लोगोंका दिल व्यक्तिगत रायका प्रतिविम्ब होता है।

अहिंसासे घबड़ा उठे

लेकिन इन सबका जो नजदीकी संबंध है वही सबसे ज्यादह खतरनाक है। ऐसा मालूम होता है कि दिमाग रखनेवाले लोग अहिंसा—अदम-तशद्दुद—से घबड़ा उठे हैं। इन लोगोंकी समझमें अभी अहमदाबाद तथा वीरमगाँवके दंगोंके बादके और उसके बाद बम्बई और आखिरको चौरी-चौराकांडके बाद मेरी सत्याग्रहको

मुल्तवी रखनेकी वात नहीं आई। आखिरी दंगेके वक्त मैंने जो किया वह आखिरी वात थी। वस दिमाग रखनेवाले लोगोंने समझा कि अब थोड़े दिनोंके अन्दर सत्याग्रहकी—और इसलिये स्वराज्यकी—भी तमाम उम्मीदें फजूल हैं। अहिंसापर उनका एतबार सहज ऊपरी था। दो साल पहले एक मुसलमान दोस्तने मुझसे दिल खोलकर कहा था:—

"मैं आपके अहिंसा धर्मको नहीं मानता और अगर औरोंको नहीं तो कमसे कम अपने मुसलमान भाइयोंको तो मैं इसे सीखने देना नहीं चाहता। जिन्दगीका कानून तो हिंसा ही है। अहिंसा धर्मके मानी जो आप कहते हैं उससे यदि स्वराज्य मिलता हो तो मुझे दरकार नहीं। मैं तो अपने दुश्मनसे जरूर नफरत रखूंगा।"

ये एक इमानदार शख्स हैं। मैं उनकी वड़ी इज्जत करता हूँ। दूसरे एक वड़े भारी मुसलमान दोस्तकी भी ऐसी खबर आई है। मुमकिन है कि वह गलत हो; पर जिन्होंने लिखा है वे ऐसे नहीं हैं।

हिन्दुओंकी नफरत

अहिंसाकी यह नफरत अकेले मुसलमानोंमें देखी जाती सो बात नहीं। मेरे हिन्दू-दोस्तोंने भी भरसक ऐसी ही बातें बहुत जोशके साथ कही हैं। मैं हद दर्जे तकके अहिंसा-धर्मकी हिमायत करता हूं। इससे कितने ही ने मेरा अपनेको हिन्दू कहानेका हक भी छीन लिया है। उनका कहना है कि मैं प्रच्छन्न छिपा हुआ, ईसाई हूं। मुझसे बड़ी संजीदगीके साथ कहा गया है कि भगवद् गीताका यह अर्थ करनेमें कि उसमें शुद्ध अव्यभिचार-अहिंसा-धर्मका उपदेश दिया गया है, मैं गीताके अर्थका सचमुच अनर्थ करता हूं। मेरे कितने ही हिन्दू मित्र मुझसे कहते हैं कि खास-खास मौकेपर हिंसाको भगवद्-गीताने मनुष्यका धर्म माना है और उसके लिये वह कर्तव्य बताया गया है। कुछ ही दिन पहले एक भारी विद्वान शास्त्रीजीने गीताके मेरे अर्थपर गुस्सा और नफरत जताते हुये कहा कि कितने ही टीकाकारोंने गीताका जो अर्थ निकाला है कि गीतामें दैवी और आसुरी संपत्तिके सनातन युद्धका वर्णन है और गीतामें आसुरी संपत्तिको बिना संकोच और बिना दया-माया निर्मूल करना हमारा कर्तव्य बताया गया है, उसको यथार्थ माननेका कोई भी आधार नहीं है।

अहिंसाके खिलाफ इन तमाम रायोंको इतने मुफस्सिल तौरपर यहाँ इसलिये देता हूं कि कौमी मामलेकी जो तदबीरें मेरे पास है उसे समझनेके लिये इन ख्यालातोंको समझ लेने की जरूरत है।

इस तरह आजकल जो नजारा मैं अपने आस-पास देख रहा हूं वह अहिंसाके ख्यालके फैलावके खिलाफ एक जबरदस्त रुकावटी ख्याल है। मुझे ऐसा मालूम होता है कि अहिंसाकी एक जबरदस्त लहर उठती चली आ रही है। हिन्दू मुसलमानोंका तनाजा अहिंसाके मुतअल्लिक फैली बेदिलीकी एक शकल है।

इस सवालका विचार करते वक्त मेरा ख्याल न करना चाहिये। मेरा मजहब तो मेरे और मेरे सिरजनहारके दरम्यानकी बात है। अगर मै हिन्दू हूंगा तो सारी हिन्दू-दुनियाँके छोड़ देनेपर मेरा हिन्दूपन मिट नहीं सकता। फिर भी मैं इतना जरूर कहूंगा कि अहिंसा ही तमाम मजहबोंका आखिरी मकसद है।

एक हद तक अहिंसा

परन्तु हिन्दुस्तानसे तो मैंने यह कभी नही कहा कि वह उस हद दर्जे तक ही अहिंसाको कबूल करे जिसका कि इल्जाम मुझपर लगाया गया है, अगर किसी और वजहसे नहीं तो महज इसी वजहसे कि मै अपनेको इस बातके लिए पूरा लायक नही मानता कि इस पुराने पैगामको फिर एक बार हालकी दुनियाको सुनाऊँ। मै मानता हूं कि यह मेरे जहन-नशीन सोलहो आना हो गया है और मेरे दिलमे भी अच्छी तरह जम गया है। फिर भी अभी वह मेरे रगो-रेशोंमे जज्ब नहीं हो पाया है और मैं समझता हूं कि ऐसी बातको न पेश करनेमे ही मेरे कामकी मजबूती है जिसको मैंने अपनी जिन्दगीमे बार-बार न आजमा लिया हो। फिर अपने देश भाइयोको अहिंसा-धर्म उनके आखिरी और सबसे बढ़कर धर्मके तौरपर नही, बल्कि जुदा-जुदा कौमोके बाहमी ताल्लुकातमे अपना बर्ताव ठीक-ठीक रखनेके लिए और स्वराज्य हासिल करनेके लिये ही उसे मंजूर करनेकी बात मैं कह रहा हूं। हिन्दू मुसलमान, ईसाई, सिख, पारसी—किसी कौमको अपने बाहमी तफरकों और झगड़ोका फैसला, एक दूसरेका सिर फोड़कर हरगिज न करना चाहिये। स्वराज्य हासिल करनेकी हमारी तदबीरे भी हिंसा-रहित होनी चाहिये। इसे मै हिन्दुस्तानके सामने कमजोर हथियारके तौरपर नहीं बल्कि जोरावरके हथियारके तौरपर पेश करनेकी हिम्मत करता हूं। हम हिन्दू-मुसलमानोको हमेशा यह पुकारते हुये सुनते है कि "मजहबकी बातमें जबरदस्ती न होनी चाहिये। लेकिन अगर कोई हिन्दू गायको बचानेके लिये एक मुसलमानकी जान लेनेको तैयार हो तो यह मजहबकी बातमे जबर्दस्ती नहीं तो क्या है ? यह तो गोया किसी मुसलमानको जब्रन हिन्दू बनाना ही हुआ। उसी तरह अगर मुसलमान हिन्दुओको मसजिदके सामने जब्रन बाजे बजानेसे रोकनेकी कोशिश करें तो वह भी जबर्दस्ती नही तो क्या है ? मजहब तो वह चीज है कि चाहे कितना ही गोलमाल और गुल-गपाड़ा क्यों न होता रहे, इन्सान खुदाकी बन्दगीमें—ईश्वर-प्रार्थनामे—तल्लीन हो जाय। अगर हम अपनी मजहबी ख्वाहिशोंके मामलेमे एक दूसरेपर जबरदस्ती करके उससे अपना चाहा करानेकी फजूल कोशिश करना इसी तरह कायम रखेंगे तो हमारी आयन्दा नस्ल हम दोनो कौमोको अधर्मी और जंगली ही समझेगी। एक लाख अंग्रेजोकी नस्ल ठिकाने लानेके लिये ३० करोड़ लोगोको हाथ उठानेका इरादा करते हुये शर्मसे डूब मरना चाहिये। इन लाख लोगोके दिलको बदल देना, अगर आप ऐसा न चाहते हो, तो उन्हें इस मुल्कसे विदा कर देना, इस इतनेसे कामके लिये हमे तलवारकी नही, सिर्फ निश्चयका कस्द कर लेनेकी जरूरत है। अगर इस बातकी कमी होगी तो हमसे तलवार भी नहीं खिच

६

सकेगी। फिर अगर हम निश्चय बल हासिल कर लेंगे तो हम देखेंगे कि हमे तलवार-की जरूरत ही न रही।

इस तरह ऊपरकी कही बातोको ही हासिल करनेके लिये अहिंसा-तत्व-अदम तशद्दुको अख्तयार करना हमारी कौमी हस्तीके लिये बिल्कुल कुदरती और उतनीही जरूरी शर्त है। इसीके जरिये हम अपनी सामुदायिक जिस्मानी ताकतसे अच्छी तरह काम लेना सीखेंगे। अभी तो हम इस ताकतको लड़कर ही गवाँ रहे हैं और नतीजा यह होता है कि ऐसी हरएक लड़ाई झगड़ेके बाद हर फरीक ज्यादा ही ज्यादा कमजोर होता है। इसके अलावा तलवारकी ताकतपर की गई हर एक राज्यक्रान्ति भी, अगर उसकी हिमायतपर तमाम कौम न हो तो, महज पागलपन ही माना जाना चाहिये। अगर मुल्क हिमायतपर है तो असहयोग-तर्के-मवालातके तकरीबन किसी भी हिस्सेके जरिये इस गरजको बिना एक बूँद लहू गिराये लोग पूरा कर सकते हैं।

मैं यह नही कहता कि चोरो और डाकुओके साथ, या अगर विदेशी लोग आपपर हमला करें तो उनके साथ भी आप अदम तशद्दुदसे काम लें। परन्तु इसके लिये कि ऐसे खतरेके वक्त ज्यादा काबलियत और खूबीके साथ मुकाबिला करे हमें अपने जोशको अपने कब्जेमें रखनेकी आदत डालना जरूरी है। जरा जरासी बातोंमें तलवार खींच लेना ताकतका नहीं, कमजोरीका निशान है। आपसका जूता-पैजार जिस्मानी कूवतकी नहीं बल्कि नामर्दीकी तालीम है। जो अहिंसाका तरीका मैं बता रहा हूँ, उसमे कमजोरीका जरा भी अन्देशा नहीं, बल्कि इसी तरीकेपर, अगर लोग चाहें तो, खतरेके समय बाकायदा और बातरतीब तलवार चला सकेंगे।

हमारी खाम-ख्याली

जो लोग यह मान रहे हैं कि अहिसाकी तालीमसे हम प्रमादी और अकर्मण्य बन रहे है वे अगर एक लहमेके लिये भी सोचकर देखेंगे तो उन्हें मालूम होगा कि हम सच्चे मानीमे कभी अहिंसापरायण रहे ही नहीं। हाँ, यह बात सच है कि हमने प्रत्यक्ष शारीरिक-हिंसा-जिस्मानी तशद्दुद नहीं किया, किन्तु हमारे दिलमें तो हिसा सुलगी रहती थी। अगर हमने सच्चे दिलसे अपने इरादे और जुबानपर इस तरह कब्जा रखा होता कि उनका और हमारी जिस्मानी हरकतका मेल पूरा-पूरा बना रहता तो आज हमको जो थकावट मालूम होती है वह हरगिज न होती। अगर हम अपनी अन्तरात्माके प्रति अपने दिलसे सच्चे बने रहते तो अबतक हमने बेमिसाल हेतु-बल और निश्चय बल हासिल कर लिया होता।

अटल-शर्त

अहिसाके मुतअल्लिक इस खाम ख्यालीका इतना लम्बा चौड़ा जिक्र मैंने इसलिये किया कि मुझे यकीन है कि अगर हम एक बार अपने दिलमे अहिसापर,

ऊपर वाले दो ही मकासिद हासिल करनेके लिये एतबार रख सकें (यदि पहले सचमुच ही एतबार रहा हो) तो आज जो तनाजा हिन्दू मुसलमानोमें पड़ गया है वह जल्दी दूर हो जाय; क्योंकि मेरी रायमें दोनों कौमोंके बाहमी ताल्लुकातके लिये अहिंसाका इस्तेमाल एक ऐसी अटल शर्त है जो इस तनाजेका इलाज करने वाले किसी भी ठहरावकी पेशबन्दीके लिये जरूरी है। दोनो कौमोमें इतना समझौता आमतौरपर जरूर होना चाहिये कि कुछ भी हो जाय लेकिन दोमेंसे एक भी फरीक मनमानी न करे, खुद ही कानून न बन बैठे; बल्कि जहाँ जहाँ और जब जब किसी जगह झगड़ा खड़ा हो जाय वहाँ झगड़ेकी तमाम बातोंका फैसला या तो पंचायतके मार्फत हो या फरीकैन चाहें तो अदालतमें फैसला करावें। जुदा जुदा कौमोंके बाहमी ताल्लुकातके लिये तो अहिंसाके मानी सिर्फ इतने ही हैं, इससे ज्यादह नही। दूसरे अल्फाजमें कहे तो जिस तरह मामूली दुनियादारीकी बातोमें एक दूसरेके सिर फोडनेपर आमादा नहीं हो जाते उसी तरह मजहबी मामलोंमें भी न हो। इतना एक ही इकरार होना तमाम फरीकोंमें इसी वक्त जरूरी है और इतना कर सकें तो मुझे यकीन है कि तमाम बातें अपने आप ठीक हो जायँगी।

जबतक यह पहली शर्त कायम और मंजूर न की जाये तबतक हम जुदा-जुदा कौमकी गलतफहमी दूर करनेके लिये न जरूरी जमीन तैयार कर सकेंगे और न कोई कायमी बाइज्जत समझौतेपर आ सकेंगे।

गुण्डे और नामर्द

अच्छा, मान लीजिये दोनो कौमें इस शुरुवाती शर्तको कबूल करनेमें एक राय हो जायँ, तो अब दोनो कौमोंमें तनाजा पैदा करने वाले जो हमेशाके कारण है उनका विचार करना चाहिये। मुझे रत्ती भर शक नहीं कि हिन्दू मुसलमानके झगड़ोंकी मिसालोंमें हिन्दू लोग भी ज्यादहतर ढीले साबित होते हैं। मेरा जाती तजरुबा इस ख्यालको मजबूत करता है कि मुसलमान अमूमन गुण्डे होते हैं और हिन्दू अमूमन नामर्द होते हैं। रेलगाड़ीमें, रास्तोमें तथा ऐसे ही झगड़ोका निपटारा करनेके जो मौके मुझे मिले हैं उनमें मैंने यही देखा है। भला अपनी नामर्दीके लिये हिन्दुओंको मुसलमानोको दोष देना मुनासिब है? जहाँ नामर्द रहते हैं वहाँ गुण्डे लोग जरूर ही रहेंगे। कहते हैं कि सहारनपुरमें मुसलमानोंने घर लूटे, तिजोरियाँ तोड़ डालीं और एक जगह एक हिन्दू औरतको बेइज्जत भी किया। इसमें गलती किसकी? यह सच है कि मुसलमान अपनी इन बुरी और वहशी करतूतोंकी सफाई किसी तरह नही दे सकते; पर मैं तो मुसलमानोंपर उनके गुण्डेपनके लिये गुस्सा होनेके बजाय बहैसियत एक हिन्दूके हिन्दुओंकी नामर्दीका ख्याल करके ज्यादा शरमिन्दा होता हूँ। जिनके घर लूटे गये वे अपने माल-असबाबकी हिफाजत करते हुये वहाँ मर क्यो न गये? जिन बहनोंकी बेइज्जती हुई नाते-रिश्तेदार उस वक्त कहाँ गये थे? क्या वे कुछ भी जवाब देनेके जिम्मेदार नहीं? मेरे अहिंसा-धर्ममें

खतरेके वक्त अपने अजीजोंको मुसीबतमें छोड़कर भाग खड़े होनेके लिये जगह नही है। मारना या नामर्दीके साथ भाग खड़ा होना—इनमेंसे यदि मुझे किसी बातको पसन्द करना पड़े तो मेरा वसूल कहता है कि मारनेका हिंसाका रास्ता पसन्द करो। क्योंकि अगर मैं अंधेको कुदरतका जौहर देखना सिखा सकूँ तो नामर्दको अहिंसाधर्म सिखा सकूँ। अहिंसा वहादुरीकी हद है और मुझे यह जाती तजरुबा है कि हिंसाके रास्तेमें तालीम पानेवाले लोगोंको अहिंसाकी श्रेष्ठता सावित करनेमें मुझे कठिनाई नहीं हुई। पहले जब मैं खुद डरपोक था, तो मैं भी हिंसाका भाव रखता था। लेकिन ज्यों-ज्यों मेरा डरपोकपन दूर होने लगा त्यों-त्यों मैं अहिंसाको कीमत समझने लगा। जो हिन्दू अपने कर्तव्यकी जगह छोड़कर ऐसे समय भाग खड़े हुए जब कि उसमें खतरेका सामना करना पड़ता था, तो वे इसलिये नहीं भागे कि वे अहिंसा-परायण थे, या वे मारनेसे डरते थे, वल्कि इसलिये कि वे मरना नहीं, अपनी जानको किसी किस्मकी तकलीफ पहुचाना नहीं चाहते थे। जब खरगोश शिकारी कुत्तेसे डरकर भागता है तब वह अहिंसाके ख्यालसे नही भागता है। वेचारा उसकी शक्ल ही देखकर घवड़ा जाता है और जान लेकर भाग खड़ा होता है। जो हिन्दू अपनी जान बचाकर भाग गये वे हँसते हुये अगर अपनी छाती खोलकर अपनी जगह खड़े रहे होते और वहाँ मर मिटते, तो वे सच्चे अहिंसा-परायण कहे जाते, उनका यश और गौरव छा जाता, उनका धर्म चमक उठता और उनपर हमला करनेवाले मुसलमान उनका दोस्त बन जाते। अगर वे अपनी जगह खड़े होकर दो दो हाथ ही करते तो वेहतर था—हालांकि उनका यह काम उतना शरीफाना न होता। अगर हिन्दू लोग मुसलमान गुण्डोको अपने कदरदां दोस्त बनाना चाहते हैं तो उनको भारीसे भारी खतरोंके सामने मजबूत होकर मरनेके लिये तैयार होना चाहिये।

रास्ता

लेकिन अखाड़े इनकी तदबीर नहीं हैं। मै अखाड़ोंको बुरा नहीं कहता। बल्कि मैं तो जिस्मानी तरक्कीके लिये उनकी जरूरत समझता हूँ। पर उस हालतमें वे सबके लिये होने चाहिये। अगर हिन्दू मुसलमानोंके झगड़ेके वक्त उनसे मदद लेनेके इरादेसे वे खोले जाते हों तो उनसे कुछ भी मतलब न निकलेगा। क्या मुसलमान ऐसा दाव नहीं खेल सकते? ऐसी छिपी या खुल्लम-खुल्ला पेशबन्दीसे सिवा बाहम शक बढ़ने और चिढ़ पैदा होनेके और कुछ पैदा नहीं हो सकता। इन झगड़ोंको तो कुछ थोड़े दिमागदार लोग ही गैर मुमकिन कर सकते हैं और उसके लिये पंचायतका तरीका फैलाना चाहिये और उसका फैसला लोगोंसे मनवाना चाहिये।

नामर्दीकी दवा जिस्मानी तालीम नहीं, बल्कि खतरोंका सामना वहादुरीसे करना है। जबतक मझले दर्जेके डरपोक हिन्दू अपने जवान लड़कों-बच्चोंके वदन पर मुलायम कपड़े पहनाकर उनके अन्दर अपना डरपोकपन फैलाकर बाज न आवेंगे तवतक यह खतरेसे दुम दवानेकी और जोखिम सिरपर लेनेकी ख्वाहिश

बराबर बनी रहेगी। उन्हें अपने लड़कोंको अकेला छोड़नेका साहस करना चाहिये—वे उन्हें जोखिमोमें पड़ने दें यदि उसमें वे मर भी जायँ तो हर्ज नहीं। एक छोटे बौने आदमीमें भी शेरका दिल हो सकता है, और बड़ा हट्टा-कट्टा जुलू भी अंग्रेज लोगोंके सामने बकरी बन जाता है। हर एक गाँववालोंको अपने गाँवसे ऐसे शेरदिल और जवाँमर्द खोज निकालने होंगे।

बुराईके बीज

गुण्डोंके सिर दोष लगाना भूल है। जबतक कि हमलोग उनके आस-पास वैसी हालत और सूरत न पैदा करें तबतक वे बदमाशी नहीं कर पाते। १९२१ में शाहजादेकी तशरीफ आवरीके दिन बम्बईमें जो वाकया हुआ उसमें मैंने खुद अपनी आँखों देखा। हमने उनके बीज बोये थे और गुण्डोंने उसकी फसल काट ली। हमारे आदमी उनकी पुश्तपर थे। मुल्तान, सहारनपुर और दूसरी जगह जहाँ-जहाँ वे काली करतूतें हुई हैं मैं बेखटके वहाँ-वहाँके इज्जतदार मुसलमानोंको (किसी एक ही मामलेमें सब लोग नहीं) उनका जिम्मेवार मानता हूँ। इसी तरह कटारपुर और आराके भी इज्जतदार हिन्दुओंको बिला हिचकिचाहट वहाँके कुकर्मोंका जिम्मेदार मानता हूँ। अगर यह बात सच है कि पलवलमें हिन्दुओंने कच्ची मसजिदकी जगह पक्की मसजिद बनवाना रोक दिया, तो यह काम गुण्डे लोग नहीं कर रहे हैं, वहाँके इज्जतदार हिन्दू ही उसके लिये जिम्मेदार माने जाने चाहिये। हमको अपनी यह चाल कि हमेशा आबरूदार लोगोंको दोषारोपणसे बचा लें, जरूर छोड़ देनी चाहिये।

इसलिये मैं यह मानता हूँ कि अगर हिन्दू लोग अपनी हिफाजतके लिये गुण्डोंका संगठन करेंगे तो भारी गलती करेंगे। उन्हें लेनेके देने पड़ जायँगे। या तो बनियों, ब्राह्मणोंको अगर अहिंसाके जरिये नहीं तो जिस्मानी ताकतके जरिये ही सही, अपनी हिफाजत खुद करनेका मुहावरा करना होगा या अपने जान-माल और औरतोंको गुण्डोंके हवाले करना पड़ेगा। गुण्डोंकी एक अलहदा जाति ही समझिये वे चाहे हिन्दू हों या मुसलमान हों।

अछूतोंका इस्तेमाल

एक जगह बड़े तपाकके साथ यह बात कही गयी थी कि एक गाँवमें अछूतोंकी हिफाजतमें (क्योंकि वे मौतसे नहीं डरते थे) हिन्दुओंका जलूस एक मसजिदके सामनेसे (धूम-धामसे गाते बजाते हुए) बिला खरखशे निकल गया।

पवित्र कामका यह एक निहायत बेजा दुनियावी इस्तेमाल है। अछूत भाइयोंके ऐसे बेजा इस्तेमालसे न तो आमतौरपर हिन्दू धर्मका फायदा है, न खासकर अछूतोंका। इस तरह कुछ मशकूक तौरपर महफूज जलूस भले ही कुछ मसजिदोंसे सही-सलामत निकल जायँ, पर इसका नतीजा यह होगा कि बढ़ता हुआ तनाजा ज्यादा बढ़ेगा और हिन्दू-धर्म नीचे गिरेगा। मझले दर्जेके लोग यदि मुखालिफ होते हुए भी गाते-बजाते निकलना चाहते हों तो उन्हें या तो पीटनेके लिए तैयार होना

चाहिये या एक इज्जत आबरूदार शख्सकी तरह उनसे दोस्ती करनेके लिए तैयार रहना चाहिये।

हिन्दुओने पिछले जमानेमें दलित भाइयोंके साथ जो ज्यादतियाँ कीं और अब भी कर रहे हैं, उसके लिए जरूर प्रायश्चित करना होगा। ऐसी हालतमें हमें जो उनका कर्जा चुकाना है, उसे अदा करनेके बदलेमें हम उनसे किसी चीजकी उम्मीद नही कर सकते। अगर हम अपनी नामर्दी छिपानेके लिए उनका इस्तेमाल करेंगे तो हम उनके दिलमे ऐसी आशाएँ पैदा करेंगे जिसे हम कभी पूरा नहीं कर पावेंगे और अगर ईश्वर उसका बदला हमसे ले तो वह हमारे उनके साथ किये गये अमानुषी बरतावकी ठीक-ठीक सजा मानी जायगी। अगर हिन्दू-जातिके पास मेरी किसी भी कदर पहुँच हो तो मै उससे प्रार्थना करूँगा कि वह मुसलमानोंके हमलोसे बचानेके लिए उन्हें अपनी ढाल न बनावें।

बे-एतबारीका हंगामा

इस बढ़ते हुए तनाजेका एक और सबल प्रमाण है हमारे अच्छेसे अच्छे लोगोंके दरम्यान बढ़ती हुई बेएतबारी। मुझे पण्डित मालवीयके बारेमें चेतावनी दी गयी है! उनपर यह इल्जाम है कि उनकी घातें बड़ी गहरी-छिपी हुई होती हैं। कहा जाता है कि वे मुसलमानोंके खैरख्वाह नहीं हैं। यहाँ तक कि वे मेरे रुतबेकी हसद करने वाले बताये जाते हैं। जबसे १९१५ में हिन्दुस्तान आया, तबसे मेरा उनके साथ बहुत समागम है और मैं उन्हें अच्छी तरह जानता हूँ। मेरा उनके साथ गहरा परिचय रहता है। उन्हें मैं हिन्दू-संसारके श्रेष्ठ व्यक्तियोंमे मानता हूँ। कट्टर और पुराने ख्यालातके होते हुए भी बड़े उदार विचार रखते हैं। वे मुसलमानोंके दुश्मन नहीं है। उनके पास किसीकी हसद रखना गैर-मुमकिन है। उनकी दर्या-दिली ऐसी है कि उसमे उनके दुश्मनोंके लिए भी जगह है। उन्हें कभी हुकूमतकी चाह नही रही और जो हुकूमत आज उनके पास है वह उनकी मातृ-भूमिकी आजतककी लम्बी और अखण्ड सेवाका फल है। ऐसी सेवाका दावा हममेंसे बहुत कम लोग कर सकते हैं। उनकी और मेरी खासियत जुदी-जुदी है; लेकिन हम दोनो एक दूसरेको सगे भाईकासा प्यार करते हैं। मेरे और उनके बीच कभी जरा भी बिगाड़ न हुआ। हमारे रास्ते जुदे-जुदे हैं। इसलिए हमारे बीच स्पर्धा और डाहका सवाल पैदा ही नहीं हो सकता।

लालाजी

दूसरे शख्स जिनपर अविश्वास किया जाता है लालाजी हैं। मैंने तो लालाजी को एक बच्चेके मानिन्द खुले दिल वाला पाया है। उनके त्यागकी जोड़ लगभग हुई नहीं। मेरी उनसे हिन्दू-मुसलमानके बारेमे एक बार नहीं अनेक बार बातें हुई हैं। वे मुसलमानोंके साथ मुत्लक दुश्मनी नहीं रखते। लेकिन उन्हें जल्दी एकता हो जानेमे शक है। वे ईश्वरसे प्रकाश पानेके लिये प्रार्थना कर रहे हैं। खुद शंकित रहते

हुये भी वे हिन्दू-मुस्लिम एकताके कायल हैं। क्योंकि जैसा कि उन्होंने मुझे कहा है वे स्वराज्यके कायल है। वे मानते है कि ऐसी एकताके विना स्वराज्य स्थापित नहीं हो सकता। तो भी वे यह नहीं जानते कि यह एकता किस तरह और कब होगी। मेरा उपाय उन्हें पसन्द है परन्तु उन्हें इस बातमें शक है कि हिन्दू लोग उसका मर्म समझ पायेंगे या नहीं और अगर समझ पावेंगे तो उसकी शराफतकी कद्र करेंगे या नहीं। यहाँ इतना मैं कह देता हूँ कि मैं अपनी तदबीरको उदात्त—शरीफाना—नहीं कहता मेरे ख्यालमें तो यह बिलकुल ठीक और हो सकने लायक तदबीर है।

आर्य समाज

स्वामी श्रद्धानन्दजीपर भी लोग विश्वास नहीं करते हैं। मैं जानता हूँ कि उनकी तकरीरें ऐसी होती हैं जिनसे कई बार बहुतोंको गुस्सा आ जाता है, परन्तु ये भी हिन्दू-मुस्लिम एकताको जरूर चाहते है। पर बदकिस्मतीसे वे यह मानते हैं कि हरएक मुसलमान आर्य-समाजी बनाया जा सकता है। जैसे कि बहुतेरे मुसलमान मानते हैं कि हरएक गैर-मुस्लिम किसी न किसी दिन इस्लामको कुबूल कर लेगा। श्रद्धानन्दजी निडर और बहादुर आदमी हैं। अकेले हाथो उन्होंने गंगाजीके किनारे-पर तराईके जंगलको एक जगमगाते गुरुकुलके रूपसे बदल दिया। उन्हें अपने तथा अपने कामपर अच्छा एतबार है। पर वे जल्दबाज है और थोड़ीसी बातपर जोशमें आ जाते है। आर्य-समाजकी परम्पराकी विरासत उन्हें मिली है। स्वामी दयानन्द सरस्वतीको मैं बड़े आदरकी दृष्टिसे देखता हूँ। मैं मानता हूँ कि उन्होंने हिन्दू-धर्मकी भारी सेवा की है। उनकी बहादुरीके संबन्धमें कोई सवाल ही नहीं उठ सकता। पर उन्होंने अपने हिन्दू-धर्मको संकुचित तथा तंग बना दिया है। आर्य-समाजकी बाइबिल 'सत्यार्थ प्रकाश'को मैंने दो बार पढ़ा है। जब यरोडा जेलमें मैं आराम कर रहा था तब उसकी तीन प्रतियाँ कुछ दोस्तोंने मुझे भेजी थीं। ऐसे महान सुधारकका लिखा इतना निराशाजनक ग्रन्थ-मायूस करनेवाली किताबमैंने नहीं पढ़ी। उन्होंने सत्यकी और बिल्कुल सत्यकी ही हिमायत करनेका दावा किया है, पर ऐसा करते हुये उनसे अनजानमें जैन-धर्म, इस्लाम, ईसाई-मजहब और खुद हिन्दू-धर्मके अर्थका अनर्थ हो गया है। जिन्हें इन महान धर्मोंकी थोड़ी भी वाकफियत है वे सहज ही देख सकते हैं कि इन महान सुधारकसे किस तरह भूलें हो गई हैं। उन्होंने दुनियाके सबसे ज्यादा सहनशील और उदार धर्मको बिल्कुल तंग बना डालनेकी कोशिश की हैं और खुद गो कि मूर्ति भंजक थे, तो भी उनकी कोशिशोका फल हुआ है सूक्ष्मसे सूक्ष्म रूपमें मूर्ति-पूजाकी स्थापना होना। क्योंकि उन्होंने वेदके एक-एक अक्षरको ईश्वर स्वरूप बना दिया है और इस जमानेके विज्ञानके हरएक तथ्य वेदमें थे, यह साबित करनेकी कोशिश की है। आज आर्य-समाजकी जो इतनी इज्जत हैं, वह मेरी नाकिस रायमें, सत्यार्थ-प्रकाशकी शिक्षाके गुणके कारण नहीं बल्कि उसके संस्थापकके महान और उदात्त शीलकी बदौलत है। जहाँ-जहाँ आप आर्य-समाजको देखेंगे वहाँ-वहाँ चेतना और प्राण दिखाई देगा। ऐसा होते

हुए भी संकुचित दृष्टि और विवाद प्रिय स्वभाव होनेके कारण दूसरे फिरकेके लोगोंके साथ और जब वे न मिलें तो आपसमे झगड़ा करते है ।

स्वामी श्रद्धानन्दजीमें इस जोशका बहुत कुछ अंश है । पर इन तमाम दोषोंके होते हुये भी मै उन्हें ऐसा नहीं समझता जो समझाये न समझे । मुमकिन है कि आर्य-समाज और स्वामी श्रद्धानन्दजीका जो खाका मैंने यहां खींचा है, उससे वे नाराज हों । यह कहनेकी जरूरत नही कि मेरे दिलमे उनका दिल दुखानेकी जरा भी इच्छा नहीं है । मै आर्य-समाजियोंको चाहता हूं; क्योंकि मेरे कितने ही साथी आर्य-समाजियोंमे हैं । स्वामीजीको तो मैं उन्हीं दिनोंसे चाहने लगा हूँ, जब मैं दक्षिणी अफ्रीकामे था । हाँ, अब मै उन्हें ज्यादा अच्छी तरह पहचानने लगा हूँ। पर इससे मेरा प्रेम उनके प्रति कम नहीं हो पाया है । मेरा प्रेम ही मुझसे यह कहलवा रहा है ।

श्री जयरामदास

मुझे जिनके बारेमें चेतावनी दी गयी है उनमें सबसे आखिरी नम्बर है श्री जयरामदास और डा० चोइथरामका । जयरामदासके नामपर तो मैं कसम खा सकता हूँ । इनसे ज्यादा सच्चा आदमी मुझे जिन्दगीमे अभी नहीं मिला । जेलमें इनके चाल-चलनपर हम लोग लट्टू थे । इनकी नेकचलनीकी सीमा न थी । इनके दिलमें मुसलमानके खिलाफ रत्तीभर भाव नहीं । डा० चोइथरामसे मेरी जान-पहचान पहलेसे है, पर मै उन्हें पूरी तरहसे नहीं जानता । परन्तु जितना मैं उन्हें जानता हूँ उतनेपरसे मै उनका परिचय सिवा इसके दूसरी तरह देनेसे इन्कार करता हूँ कि वे हिन्दू-मुस्लिम एकताके हामी हैं । अभी यह फेहरिस्त खतम नहीं हुई है । जो कुछ महसूस होता वह यह है कि इन तमाम हिन्दुओं और आर्य-समाजियोंको अब भी हिन्दू-मुस्लिम एकताकी ओर जीत लेनेकी जरूरत रही हो तो फिर 'हिन्दू-मुस्लिम-एकता' इन लफ्जोंके मेरे लिये कुछ मानी नहीं रह जाते और मुझे अपनी इस जिन्दगीमे ऐसी एकता प्राप्त करनेके बारेमें नाउम्मेदी ही रखनी चाहिये ।

मौ० अब्दुलबारी

पर इन मित्रोंपरके ये इल्जाम ही इसका सबसे बुरा हिस्सा नहीं है । जैसी हिन्दुओंके बारेमे चेतावनियाँ मुझे दी गई हैं वैसी ही मुसलमानोंके विषयमे भी मिली है । यहाँ मै सिर्फ तीन ही नाम पेश करूँगा । मौलाना अब्दुल बारी साहब एक धर्मोन्मत्त हिन्दू-द्वेषीके रूपमे मेरे सामने पेश किये गये है । मुझे उनके कितने ही लेख दिखाये गये हैं, जिन्हें मैं समझ नहीं सकता । मैंने तो इस विषयमें उनसे पूछ-ताछ भी नहीं की क्योंकि वे तो खुदाके ऐसे भोले-भाले बच्चे हैं । मैंने उनके अन्दर किसी तरहका छल-कपट नहीं देखा है । बहुत बार वे बिना विचारे कह डालते हैं कि जिससे उनके दिलोजानी दोस्तोंको परेशानी उठानी पड़ती है । पर वे कड़वी बातें कह डालनेमें जितनी जल्दी करते हैं उतनी जल्दी अपनी भूलकी बातोंकी माफी

मांगनेके लिए भी तैयार रहते है। जिसवक्त जो वात वोलते है उसवक्त वें सच्चे दिलसे वोलते हैं। उनका गुस्सा और माफी दोनों सच्चे दिलसे होती है। एक बार वे मौलाना मुहम्मदअलीपर विना योग्य कारणके विगड़ वैठे। मै उस वक्त उनका मेहमान था। उनके मनमे लगा कि मुझे भी कुछ सख्त शब्द कह डाला। उसी वक्त मौलाना मुहम्मदअली और मैं कानपुर जानेके लिए स्टेशन जानेकी तैयारीमे थे। हमारे विदा हो जानेके वाद उन्हें पता लगा कि उन्होने हमारे साथ बेजा वरताव किया। मौ० मुहम्मद अलीके साथ सचमुच वे-जाइयतकी थी, मेरे साथ नहीं। पर उन्होंने तो हम दोनोके पास कानपुरमे अपनी तरफसे कुछ लोगोको भेजकर हम लोगोसे माफी मांगी। इस वातसे वे मेरी नजरोमे ऊंचे उठ गये। ऐसा होते हुए भी मैं कबूल करता हूँ कि मौलाना साहव किसी वक्त एक खतरनाक दोस्तका काम दे सकते है। पर मेरा मतलव यह है कि ऐसा होते हुए भी वे दोस्त ही रहेंगे। उनके पास 'खानेके और दिखानेके और' यह वात नहीं। उनके दिलमें कोई दांव-पेच नहीं। ऐसे दोस्तमे हजारो ऐव होते हुए भी मै उनकी गोदीमे अपना सिर रखकर वामिजाज सोऊँगा। क्योकि मै जानता हूँ कि ये छिपकर वार कभी नही करेंगे।

अली-विरादर

ऐसी ही चेतावनी मुझे अली भाइयोके वारेमे दी गयी है। मौ० शौकतअली तो वड़ेसे बड़े शूरवीरोंमेसे एक हैं, उनमे कुरवानीका अजीव माद्दा है और उसी तरह खुदाके मामूलीसे मामूली मखलूकको चाहनेकी उनकी प्रेम-शक्ति भी अजीव है। वे खुद इस्लामपर फिदा हैं; पर दूसरे मजहवोसे वे नफरत नहीं करते। मौ० मुहम्मदअली इनके दूसरे कालिव है। मौ० मुहम्मदअलीमे मैंने बड़े भाईके प्रति जितनी अन्योन्य निष्ठा देखी है उतनी कहीं नहीं देखी। उनकी बुद्धिने यह बात तय कर ली है कि हिन्दू-मुसलमान-एकताके सिवा हिन्दुस्तानके छुटकारेका दूसरा उपाय नहीं। उनका 'पान-इस्लाम-वाद' हिन्दू-विरोधी नहीं। इस्लाम भीतर और बाहरसे शुद्ध हो जाय और वाहरके हर किस्मके हमलोसे संगठित होकर टक्करें ले सके ऐसी स्थिति देखनेकी तीव्र आकांक्षापर कोई कैसे एतराज कर सकता है। कोको-नाड़ाके उनके भाषणका एक हिस्सा वहुत ही काविल-एतराज वतलाकार मुझे दिखाया गया था। मैंने मौलानाका ख्याल उसपर खींचा, उन्होने उसी दम कबूल किया कि हाँ, वाकई यह भूल हुई। कुछ दोस्तोने मुझे खबरकी है कि मौ० शौकतअलीके खिलाफत परिषद वाले भाषणमे कितनी ही वातें काबिल एतराज हैं। यह भाषण मेरे पास है, परन्तु उसे पढ़नेका समय मुझे न मिल पाया। मैं यह जरूर जानता हूँ कि यदि उसमे कोई सचमुचमे ऐसी बात होगी जिससे किसीका दिल दुखित हो, तो मौ० शौकत-अली ऐसे लोगोमे पहले शख्स है जो उसको दुरुस्त करनेके लिए तैयार हैं।

यह बात नहीं कि अली भाई दोषोसे खाली हों। मै खुद भी दोषोसे भरपूर हूँ। इससे इन भाइयोकी दोस्तीकी खोज करने और उसकी कीमत समझनेमे मै हिचकिचाता नहीं। अगर उनके अन्दर कुछ ऐब हैं तो उनसे ज्यादा गुण भी है

और मै उनके ऐवोंके रहते हुए भी उन्हें चाहता हूँ। जिस प्रकार ऊपर बता मित्रोका त्याग करके मै हिन्दुओके अन्दर कोई पुख्ता काम नही कर सकता, उसं प्रकार मै इन मुसलमान दोस्तोके विना एकताके लिए मुसलमानोमें भी काम करनेकी आशा नहीं रख सकता। यदि हममेसे वहुतेरे लोग पूर्णताको पहुँचते होते तो हमारे अन्दर झगड़े होते ही क्यो? पर हम सब अपूर्ण प्राणी हैं और इसीसे हम सबको एक दूसरेकी अनुकूल बातें खोजकर और ईश्वरका भरोसा रखकर एक ध्येयके लिए मरना चाहिये।

हमारे कितने ही उम्दासे उम्दा लोगोके दिलमे वहम और अविश्वासका वायुमण्डल दूर करनेके लिए मुझे कुछ खास-खास व्यक्तियोंके बारेमे लिखना पड़ा। मुमकिन हो कि मेरा अन्दाज पाठकोको न जंचा हो। जो कुछ हो; लेकिन यह जरूरी था कि मै अपना अन्दाज पाठकोके सामने पेश कर दूँ। भले ही उनका ख्याल मुझसे जुदा हो।

सिन्धकी मिसाल

ऐसा गहरा अविश्वास असली सत्यकी खोजको प्रायः गैर-मुमकिन कर देता है। डा० चोइथरामकी तरफसे मुझे खबर मिली है कि सिंधमे एक हिन्दूके धर्मान्तरकी जब्रन कोशिश की गयी। उस शख्सने जब धर्मान्तर करनेसे इन्कार किया तब उसके मुसलमान साथियोने उसे जानसे मार डाला। यदि यह खबर सच हो तो सचमुच इसे सुनकर रोंगटे खड़े हो जाते हैं। यह खबर मिलते ही मैंने सेठ हाजी अब्दुल्ला हारूँको तार देकर हालत पूछी। उन्होने बड़ी मुहब्बतके साथ तुरन्त जवाब दिया कि कहते हैं उस शख्सने खुदकशी की है। फिर भी वे ज्यादा तहकीकात कर रहे हैं। मुझे आशा है कि इस मामलेमे हमको सच्ची खबर मिलकर रहेगी। मैंने तो इस बातका जिक्र यहाँ इसलिए किया है कि जहाँ आस पास अविश्वास फैल रहा हो वहाँ काम करते हुए कितनी दिक्कतोंका सामना करना पड़ता है। एक और वाकया भी है; लेकिन जबतक उसके मामलेमें ज्यादा एतबारके लायक तफसील न मिलेगी तबतक मै उसका जिक्र नहीं करूँगा। मेरी दरख्वास्त इतनी ही है कि हिन्दू या मुसलमान किसीके भी खिलाफ अगर कोई बात लोग सुनें तो एक तो वे खुद शान्त रहें और दूसरे उसके संबन्धमे जब बात करें तो उतनी ही, वैसी ही करें जो साबित की जा सके। मैं अपनी तरफसे यह वादा करता हूँ कि ऐसी जो कुछ खबरें मुझे मिलेगी उनकी फिर वे कितनी ही मामूली और फजूल क्यों न हो, मैं काफी तहकीकात करूँगा और उतना जरूर किये रहूंगा जितना एक शख्सके किये हो सकता है। मुझे उम्मीद है कि बहुत ही थोड़े समयमे हमारे पास काम करनेवालोकी फौज तैयार हो जायगी, जिसके सभ्योका फर्ज यह होगा कि ऐसी हर एक शिकायतकी जांच करे, फरियादीका इन्साफ करावें और ऐसी तजवीज करें कि जिससे आयन्दा ऐसे झगड़े खड़े होनेके कारण दूर हो जायँ।

बंगालमें अत्याचार

बंगालसे खबरें आ रही हैं कि वहाँ हिन्दू-स्त्रियोंपर ज्यादती हो रही है। वे अगर आधी सच हो तो भी उनसे क्षोभ पैदा होता है। यह जानना कठिन है कि आज कल चारों ओर ऐसे जरायम क्यों फूट निकले हैं। उसी तरह उन हिन्दुओंके संबन्धमें भी जबान सँभालकर बोलना कठिन है, जो उन भ्रष्ट की गयी बहनोंके नाते-रिश्तेदार हैं। और उन कामान्ध होकर बेकसूर औरतोंपर हैवानकी तरह ज्यादती करनेवालोंकी पशुताके बारेमें क्या कहें? वहाँके मुसलमानोंको लाजिमी है कि वे इन अत्याचारियोंको खोज निकालें खास तौरपर सजा दिलानेके लिए नहीं, बल्कि इसलिए कि भरसक फिर ऐसी ज्यादतियां न होने पावें। दो-चार बदमाशोंको किसी कोने-कुचरेसे खोजकर पुलिसके सिपुर्द कर देना कोई बड़ी बात नहीं है। परन्तु इससे समाजमें ऐसे जरायमका होना बन्द नहीं होता। इसके लिए तो पूरे सुधारका कोई उपाय अख्तयार करके उसके असली कारणोंकी ही जड़ काट डालनेकी जरूरत है। क्या हिन्दुओंमें और क्या मुसलमानोंमें ऐसे लोग जरूर हैं जो खुद नेकचलन हैं और ऐसे लोगोंके अन्दर काम करना मंजूर करेंगे। यही बात काबुलियों और पठानोंके जुल्मके बारेमें कही जा सकती है। काबुलियोंका इस बातसे हिन्दू मुसलमानके सवालके साथ कुछ सम्बन्ध नहीं है; पर हम अगर यह न चाहते हों कि अकेले पुलिसकी दयापर ही जिन्दा रहें तो ऐसे सवालोंको भी हमें हाथमें लेना होगा और उसका निबटारा करना होगा।

शुद्धि और तबलीग

परन्तु वह बात जो इन झगड़ोंकी जड़को पानीसे सींच रही है शुद्धि या धर्मान्तर करनेका मौजूदा तरीका है। मेरी रायके मुताबिक तो ईसाइयोंकी तरह और सबसे कम इस्लामकी तरह दूसरे मजहबवालोंको भ्रष्ट करके अपने मजहबमें मिला लेनेकी विधि हिन्दू धर्ममें है ही नहीं। ऐसा मालूम होता है कि इस बातमें आर्य-समाजियोंने ईसाइयोंकी नकल की होगी यह आजकलका तरीका मुझे बिल्कुल अच्छा नहीं मालूम होता। इससे अबतक श्रेयके बजाय अ-श्रेय ही ज्यादा हुआ है। धर्मान्तर महज अपने दिलसे संबन्ध रखनेवाली और इन्सान तथा उसके सिरजनहारसे संबन्ध रखनेवाली बात है। फिर भी यह इतनी बाजारू चीज बना दी गयी है इसके द्वारा खास करके स्वार्थ-भाव जागृत किया जाता है। आर्य-समाजी उपदेशक जब दूसरे धर्मोंका खन्डन करनेके लिए खड़ा होता है तब उसे जो मजा आता है वैसा शायद किसी बातमें न आता होगा। मेरा हिन्दू धर्मका भाव तो मुझे यह शिक्षा देता है कि तमाम धर्म थोड़े-बहुत अंशमें सच्चे हैं। सबकी उत्पत्ति एक ही ईश्वरसे है। फिर भी सब धर्म अपूर्ण हैं। क्योंकि वे हमें अपूर्ण मनुष्यके द्वारा मिले हैं। सच्चा शुद्धि-कार्य तो उसे कहें कि हर शख्स—स्त्री हो या पुरुष—अपने-अपने धर्ममें रहकर पूर्णत्व प्राप्त करनेकी कोशिश करे। ऐसी स्थितिमें शील ही मनुष्यकी कसौटी है। अगर मनुष्य नीति और सदाचारमें आगे न बढ़ता हो तो फिर एक घरसे निकलकर दूसरे घरमें

जाने से क्या फायदा ? जहाँ हमारे घरमे रहनेवाले लोग ही हरदम अपने चाल चलनसे ईश्वरका सरेदस्त इन्कार करते हो वहा मै उस ईश्वरकी सेवाके लिए वाहरके लोगोको भ्रष्ट करके अपने घरमें लानेकी कोशिश करूँ (क्योकि शुद्धि या तवलीगके माने यही होता है) तो ऐसी कोशिशके क्या मानो हो सकते हैं ? पहले अपने घरकी आग बुझावो यही कहावत इस समय दुनियाकी वातोंकी वनिस्वत धार्मिक वातोंमें ज्यादा सच सावित होती है।

परन्तु ये मेरे निजी ख्यालात हैं। अगर आर्य-समाजियोंका यह ख्याल हो कि उनकी अन्तरात्मा उन्हें उसके लिये प्रेरित कर रही है तो उन्हें इस हलचलको चलानेका पूरा हक है। ऐसा अन्तर्नाद किसी भी तरहको समयकी मर्यादा या उपयोगिताकी कैदको कबूल न करेगा और इतनी ही वातसे कि कोई आर्य-समाजी उपदेशक या मुसलमान मौलवी अपनी अन्तरात्माकी प्रेरणासे अपने धर्मका प्रचार करता हो, हिन्दू मुस्लिम एकताको धक्का पहुँचता हो तो पक्का समझना चाहिये कि ऐसी एकता कोरी जबानी होगी, क्यों हम इन कामोंसे इतना घबरावें ? हाँ, वे काम, सचाई, ईमानदारीके साथ किये जाने चाहिये। अगर मलकाना राजपूतोको फिर हिन्दू-धर्ममें शामिल होना था तो जब वे चाहें उन्हें ऐसा करनेका पूरा-पूरा हक था। परन्तु अपने धर्मका प्रचार करनेके लिए दूसरे धर्मोंकी निन्दा करनेकी प्रवृत्ति नही चलने दी जा सकती। क्योंकि इससे सहिष्णुता लोप हो जायगी। ऐसे प्रचारका मुकावला करनेका सबसे अच्छा उपाय यह है कि आमतौरपर उसकी निन्दा करें। हरएक हलचल प्रतिष्ठित होनेका स्वांग बनाती है; परन्तु जिस दम लोक-मत इस ढोंगकी पोल खोल देगा उसी दिन प्रतिष्ठाके अभावसे वह लोप हो जायगा। मैं सुनता हूँ कि आर्य-समाजी और मुसलमान लोग औरतोंको सरेदस्त भगा ले जाकर धर्मान्तर करानेकी चेष्टा करते हैं। मेरे सामने आगा-खानी साहित्यका ढेर पड़ा हुआ है। उसे गौरके साथ पढ़नेकी फुरसत अभी मुझे न मिल सकी। पर मुझे यकीन दिलाया गया है कि "उसमे हिन्दू धर्मकी टूटी-फूटी बाते भरी हुई हैं। मैं जितना कुछ पढ़ पाया हूँ 'उससे मैं इतना तो देख सका हूँ कि उसने श्रीमान आगाखानको हिन्दू अवतार बताया है यह जानना जरूर मजेदार होगा कि खुद श्रीमान आगाखान इसके बारेमें क्या ख्याल करते हैं। कितने ही खोजे लोग मेरे दोस्त हैं। उनसे मैं सिफारिश करता हूँ कि वे इस साहित्यको जरूर पढ़ जावें। एक महाशयने मुझसे कहा है कि आगाखानी—सम्प्रदायके कितने ही कर्त्ता वेपढ़े गरीब हिन्दुओंको रुपया उधार देते है और पीछेसे कहते हैं कि अगर तुम इस्लाममें मिल जाओ तो रुपया तुमसे न लिया जायगा। इसे मै खिलाफ कानून लालच देकर धर्म-भ्रष्ट करनेका जुर्म कहूँगा। परन्तु सबसे ज्यादा बुरा तरीका तो देहलीके एक साहवका है इन्होंने एक छोटीसी पुस्तक बनाई है। उसे मैं शुरूसे आखिरतक देख गया हूँ। इसमे इस्लामके उपदेशकोंको इस वातकी मुफस्सिल हिदायतें दी गयी हैं कि वे किस तरह इस्लामका प्रचार करें। इसकी शुरुआत इस ऊंचे वसूलको लेकर की गयी है कि इस्लाम खुदाकी

एकताका प्रचारक है। इस महा-सिद्धान्तका प्रचार लेखकके कथनके अनुसार हर तरहके मुसलमानको बिना किसी ऊंच-नीचके भेद-भावके करना जरूरी है। जासूसोंका एक छिपा मुहकमा खोलनेकी हिमायत की गई है। उसके लोगोंका काम होगा कि वे गैरमुस्लिम आबादीमें किसी बहाने जरूर जावें। इस बातपर जोर दिया गया है कि वेश्यायें, गाने-बजानेका पेशा करनेवाली औरतें, फकीर, सरकारी नौकर, वकील, डाक्टर, कारीगर सब लोग इस मुहकमेमें शामिल हों। अगर इस प्रकारके धर्म-प्रचारकी इज्जत लोगोंमें होती रहे तो इस्लामके पैगम्बरके महान पैगामका अनर्थ करनेवाले ऐसे वेषधारी बक-उपदेशकों (उन्हें मै सच्चा प्रचारक न कह सकूँगा) की छिपी करतूतोंसे एक भी हिन्दू-घर सही-सलामत न रह पावेगा। प्रतिष्ठित हिन्दुओंके मुँहसे मैंने यह सुना है कि यह किताब निजामके राज्यमे बहुत पढ़ी जाती है और उसमें सुझाये तरीकोंके मुताबिक वहाँ काम भी खूब हो रहा है।

एक हिन्दूकी हैसियतसे मुझे अफसोस होता है कि ऐसे तरीके जिनकी नैतिक श्रेष्ठतामें शक है, एक नामी उर्दू लेखककी तरफसे फैलाये जा रहे है जिनके पाठकोंकी संख्या बहुत बड़ी है। मेरे मुसलमान मित्र मुझे बताते है कि कोई प्रतिष्ठित मुसलमान उसमे बताये तरीकोंको पसन्द नहीं करता है। पर सवाल यह नहीं है कि प्रतिष्ठित और पढ़े-लिखे मुसलमान उस किताबके बारेमें क्या ख्याल करते है, बल्कि सवाल तो यह है कि मुस्लिम जनताका एक बहुत-बड़ा हिस्सा उनको मानता और उनके मुताबिक चलता है कि नहीं।

पंजाबके अखबार

पंजाबके अखबारों एक हिस्सा तो बिल्कुल बे-ह्या हो बैठा है। उसके बाज-बाज लेख तो बिल्कुल गन्दे होते हैं। ऐसे कितने जुमलोंको पढ़ जानेकी महाव्यथा मैंने सहन की है। एक तरफ आर्य-समाजी या हिन्दू-पत्र और दूसरी तरफ मुसलमान लेखक इन अखबारोंके संचालक है। दोनोंने एक दूसरेको गालियाँ देने और एक दूसरेके मजहबकी बुराई करनेकी मानो शर्त बद ली है। मै सुनता हूँ कि इन अखबारोंके खरीददारोंकी संख्या काफी बड़ी है। प्रतिष्ठित लोगोंके वाचनालयोंमे भी ये अखबार जाते हैं। मैंने यह भी सुना है कि लोगोंकी गालियों और निन्दाके उद्योगको सरकारकी शह है। इस बातपर भरोसा करते हुए मैं झिझकता हूँ। पर यदि जरा देरके लिए यह मान लें कि यह तमाम बातें सच हैं तो पंजाबी, भाई-बहनोंको उचित है कि वे अपने प्रान्तकी इस बढ़ती हुई बदनामीको बिना विलम्ब रोकनेका उद्योग करें।

मैं समझता हूँ कि मै इन दोनों जातियोंके झगड़ोंकी पुरानी और नई, तमाम वजूहातकी छान-बीन कर चुका हूँ, अब झगड़ेके उन दोनों कारणोंकी जांच करें जो सदासे चले आ रहे हैं।

गो-वध

पहला है गो-बध। गो-रक्षाको मैं हिन्दू-धर्मका प्रधान अंग मानता हूँ—प्रधान

इसलिए कि वह ऊंचे दरजेके लोग तथा आम लोग दोनोंके लिए सामान्य हैं फिर भी इस मामलेमे जो हमारा रोष हमेशा मुसलमानोंपर ही रहता है वह मेरी समझमें किसी तरह न आ पाया। अंग्रेजोके लिए रोज कितनी ही गायें कटती हैं, पर उसके लिए हम शायद ही चूँ भी करते हों। पर जब कोई मुसलमान गायको कत्ल करता है तब हम आग-बबूला हो उठते हैं। गायके नामपर जितने झगड़े हुए हैं उनमें सिवाय पागलपनके और फजूल शक्ति-क्षयके और कुछ न था। इससे एक गायकी भी रक्षा न हुई। उल्टे मुसलमान ज्यादा हठीले हुए हैं और फलतः गायें ज्यादा कटने लगी हैं। मैंने देखा है कि १९२१ ई० मे मुसलमानोंकी अपनी राजी-खुशीसे और उदारताकी कोशिशोसे जितनी गायें बची थीं उतनी पिछले दस-बीस वर्षों हिन्दुओंकी कोशिशोसे न बची होगी। गो-रक्षाकी शुरुआत तो हमीको करनी होगी हिन्दुस्तानमे मवेशियोंकी जो दुर्गति है वह दुनियाके किसी हिस्सेमे नहीं है। हि गाड़ीवानोको अपने थके मॉदे लोथ जैसे बैलोंको बेरहमीसे आर चुंभोते हुए देखक मेरी ऑंखोंसे आसू बह निकले हैं। हमारी आधापेट रहनेवाली मवेशी हमारी जाग बदनामी है। गायोंकी गरदनें इसलिए मुसलमानकी छुरीका शिकार होती हैं कि ह हिन्दू खुद गो-विक्रय करते हैं। ऐसी हालतमे एक मात्र पुख्ता और जेबा देनेवा उपाय यही है कि हम मुसलमानोंके हृदयको जीत लें और गायकी रक्षाका का उनकी शराफतपर छोड़ दें। गो-रक्षा मण्डलियोको पशुओंको खिलाने-पिलाने और, उनपर गुजरनेवाली घातक ज्यादतियोंकी तरफ और चरागाहोके दिन दिन होनेवाले लोपको अटकानेकी तरफ, मवेशियोकी परवरिशकी तरफ, गरं ग्वालोसे उन्हें खरीद लेनेकी तरफ और आजकलकी पिंजरापोलोंकी आदर्श स्वा लम्बी दुग्धशालाएं (डेयरियाँ) बनानेकी तरफ ध्यान देना उचित है। अगर हि इनमेंसे एक भी बातको करते हुए चूकें तो वे ईश्वर और मनुष्यके सामने कसूरव होंगे। यदि मुसलमानोंके द्वारा होनेवाले गो-वधको वे न रोक सकते हों तो इस पाप उनके सिर न चढ़ेगा; पर जब गायकी रक्षाके लिए वे मुसलमानोके साथ लड़ झगड़ा करते हैं तब वे अवश्य पापके-भागी होते हैं।

बाजे और मसजिद

मसजिदके सामने बाजे बजाने और अब तो हिन्दू-मन्दिरोंमे आरती करनेके मसलेपर मैंने प्रार्थनापूर्वक विचार किया है। गो-वधका सवाल जिस तरह हिन्दुओके लिए कड़ुवा घाव है उसी तरह मुसलमानोंके लिए बाजे और आरती कड़ुवे घाव हैं और जिस तरह हिन्दू लोग मुसलमानोसे जबरन गो-कशी बन्द नहीं करा सकते उसी तरह मुसलमान भी हिन्दुओंसे बाजे-बजाना या आरती करना तलवारके बलपर नहीं रुकवा सकते। उन्हे हिन्दुओंकी भलमनसाहतपर एतबार करना चाहिए। एक हिन्दूकी हैसियतसे मैं तो हिन्दुओको जरूर सलाह दूँगा कि सौदा करनेकी भावना न रखते हुए मुसलमान भाइयोके भावोका आदर करें। और जहाँ जहाँ हो सके वहाँ-वहाँ उन्हें निबाह लेना उचित है। मैंने सुना है कि कितने ही

जगह हिन्दू जान-बूझकर और मुसलमानोंको चिढ़ानेके लिए ठीक नमाज पढ़नेकी शुरुवातके ही वक्त आरती शुरू करते हैं। यह एक मूर्खतापूर्ण और मित्रता-विरोधका कार्य है। मित्रतामें यह बात मान ली जाती है कि मित्रके भावोंका खूब ख्याल रखा जाय। इसमें विचार करनेकी जरूरत नहीं रहती। फिर भी मुसलमानोंको हिन्दुओंके गाने-बजानेको जोरोजुल्म करके रोकनेकी इच्छा कभी न रखनी चाहिए। मार-पीटकी धमकी अथवा मार-पीटसे डरकर किसी कामको करना मानो अपने आत्म-सम्मान और धार्मिक भावनाको तिलांजलि देना है। पर जो शख्स कभी धमकीसे नहीं डरता वह खुद इसी तरह अपना चलन रखेगा जिससे दूसरेके चिढ़नेका मौका कमसे कम आवे और यह भरसक ऐसे मौकोंको टालेगा।

इस दृष्टिसे देखें तो इतनी बात साफ है कि हम अभी ऐसी अवस्थाको नहीं पहुँच पाये हैं जहाँ दोनों जातियोंमें किसी किस्मके ठहरावकी संभावना हो। गो-वध तथा बाजे बजानेके बारेमें मेरी समझमें तो किसी तरहका बदला या सौदा या ठहराव हो ही नहीं सकता। बिल्कुल अपनी-अपनी राजी-खुशीसे दोनों फरीकैनको इस दिशामें कोशिश करनेकी जरूरत है—अर्थात किसी भी तरहके ठहरावकी बुनियादके तौरपर इन बातोंका उपयोग नहीं किया जा सकता।

कौमी ठहराव

हाँ, राजनैतिक मामलोंके लिये किसी ठहराव या समझौतेकी सूरत होना अलबत्ते चाहने योग्य है, परन्तु मेरे पहलूसे तो दोनों जातियोंके बीच मित्रताकी भावना होना किसी भी पक्के ठहरावके पहलेकी अनिवार्य शर्त है। क्या आज दोनो जातियाँ सच्चे दिलसे यह माननेके लिये तैयार है कि दोनो कौमोंका किसी किस्मका फैसला—वह मजहबी हो या और तरहका—शरीरबलके द्वारा यानी एक दूसरेकी हड्डी तोड़ कर न करेंगे। मुझे तो यकीन हो चुका है कि जहाँ अगुआ लोगोंकी लड़ने की चाट न हो वहाँ सर्वसाधारण जनतामें लड़ने या सिर फुड़ौवल करनेकी प्रवृत्ति जराभी नहीं पाई जाती। इसीलिये अगर अगुआ लोग यह मंजूर कर लें कि सब लोग आपसके लड़ाई-झगड़ोंको जंगली और अधार्मिक समझकर, दूसरे तमाम सभ्य देशोंकी तरह इस देशसे बारह पत्थर बाहर करदें, तो साधारण जनता तुरन्त इस भावको अपना लेगी—इसमें मुझे जरा भी शक नहीं।

राजनैतिक मामलोंमें तो एक असहयोगीकी हैसियतसे मुझे इस बातसे कोई दिलचस्पी नहीं। पर आयन्दा समझौतेके लिये मैं चाहता हूँ कि बहुसंख्यक यानी बड़ा फरीक होनेके कारण हिन्दुओंको उचित है कि वे बदले या सौदेका ख्याल न रखते हुये हकीम अजमल खाँ जैसे किसीके हाथमें कलम सौंप दें और वे जो फैसला करदें उसे सिर झुका कर मंजूर करलें। सिखो, ईसाइयो, पारसियो आदिके बारेमें भी मैं ऐसा ही निपटारा करूँगा। मेरी नजरमें तो यही एक वाजिब, न्याय और सम्मान तथा शोभापूर्ण रास्ता है। यदि हिन्दू लोग जुदी-जुदी जातियोंके बीच एकता चाहते

हों तो उन्हें छोटी-छोटी जातियोंपर विश्वास रखनेकी हिम्मत पैदा करना जरूरी है। दूसरी किसी भी बुनियादपर किया हुआ समझौता मुँह में कहीं न कहीं खटाई जरूर रक्खेगा। सर्वसाधारण जनताको न तो धारा सभामें बैठना है न म्युनिसिपल कौन्सिलर होना है और अगर हम सत्याग्रहके शस्त्रका यथार्थ उपयोग करना जान गये हों तो हम जानते हैं कि किसी भी अन्यायी हाकिमपर वह हथियार उठाया जा सकता है और उठाया ही जाना चाहिये—फिर भले ही वह हाकिम हिन्दू हो या मुसलमान अथवा किसी और कौमका हो। उसी प्रकार न्यायी हाकिम अथवा प्रतिनिधि हमेशा और एक समान अच्छा होता है। फिर भले ही वह हिन्दू हो या मुसलमान! हमे जातिकी भावनाको आखिरकार छोड़ना ही होगा। इसलिये बहुमतको खुद आगे बढ़कर कम तादादवालोंको अपनी नेकनीयतीका यकीन करा लेना चाहिये। हर किस्म का समझौता हमेशा उसी समय होता है जब कि बहुमतवाला फरीक अल्पमतवालेके जवाबकी राह देखे बिना कदम आगे बढ़ावे।

सरकारी महकमोंकी नौकरियोंके बारेमें मैं तो मानता हूँ कि कौमी—तअस्सुबके भावोंको अगर इस प्रदेशमे भी घुसने देंगे तो हमारे तंत्रमें यह बिल्कुल घातक साबित होगा। यदि राजतंत्रको सुचारु रूपमें चलाना हो तो सबसे काबिल लोगको ही उसमें रखना चाहिये। हाँ उनमें दलादली या पक्षपात न होना चाहिये। अर्थात् हमें यदि पांच इंजीनियरकी जरूरत हो तो हर जातिमेसे एक एक इंजीनियर लेनेका तरीका ठीक न होगा। बल्कि सबसे ज्यादा काबिल पाँच जनोंको ही वह मिलनी चाहिये। फिर चाहे पांच पारसी हों या मुसलमान सबसे निचले दरजेकी जगहोंपर, जरूरी मालूम हो तो, जुदी-जुदी जातियोंके एक निष्पक्ष मन्डलकी निगरानीमें एक इम्तहान लेकर उसके नतीजेके अनुसार भरती की जाय।

परन्तु इन नौकरियोंका बँटवारा हरएक कौमकी तादादके लिहाजसे हरगिज न होना चाहिये। प्रजासत्तात्मक राज्यमें उन जातियोंके लिये जो तालीममें पिछड़ी हुई हैं तालीम जैसी बातमें जरूर खास रिआयतकी जाय। यह बहुत आसान बात है। पर जिन लोगोंको बड़े बड़े सरकारी पदों पर काम करनेकी महत्वाकांक्षा है उनके लिये आवश्यक इम्तहानोमे पास होना लाजिमी होना चाहिये।

मेरी श्रद्धा

मेरे नजदीक तो आज देशके सामने एक ही मसला ऐसा है जिसका निबटारा तुरन्त होना चाहिये। वह है हिन्दू-मुसलमानका। मै श्री-जिनाकी रायका बिल्कुल कायल हूँ कि हिन्दू-मुसलमान एकताके ही मानी स्वराज्य है। जबतक इस दुःखी देश में हिन्दू-मुसलमानकी एक दिली हमेशाके लिये नहीं होती तब तक मुझे तो कोई अच्छा फल मिलने की उम्मीद नहीं दिखाई देती। मै यह भी मानता हूँ कि ऐसी एकता जल्दी स्थापित की जा सकती है। क्योंकि यह बिल्कुल कुदरती और जीवनकी तरह जरूरी है और क्योंकि मनुष्य स्वभावपर मुझे विश्वास है। मुसलमान हरएक बातके लिये

जवाबदेह होंगे। खुद मेरा ऐसे मुसलमानोंके समूहसे सामना पड़ा है जिन्हें बुरा कह सकते है। फिर भी मुझे एक भी ऐसा मौका याद नहीं पड़ता जिसमें उनके साथ अपने व्यवहारके लिए कभी पछताना पड़ा हो। मुसलमान लोग बहादुर हैं, दर्यादिल हैं। जिस वक्त उनके दिलसे शक निकल जायगा उसी दम वे विश्वास करने लगेंगे। फिर हिन्दू खुद जहाँ काँचके मकानोमें रहते हों वहाँ उन्हें अपने मुसलमान पड़ोसीके घरपर पत्थर फेंकनेका कोई अधिकार नहीं। जरा गौर करके देखिये कि हम खुद दलित जातियोपर क्या-क्या जुल्म ढहाते हैं और अब भी ढहा रहे है। यदि काफिर शब्द नफरतसे भरा हुआ है तो चाण्डालमें कितना तिरस्कार है? पर दलित जातियोंके साथ हम जो सलूक कर रहे हैं उसकी मिसाल दुनियाके किसी मजहबसे नहीं मिलती। अफसोसकी बात तो यह है कि यह बदसलूकी अबतक जारी है। जरा वाईकोमपर नजर फेंकिए न! इन्सानियतके हकके श्री गणेश तकके लिये कैसा संग्राम छिड़ा हुआ है। ईश्वर सीधे रास्ते सजा नहीं देता। उसकी गति न्यारी है। कौन कह सकता है कि हमारे आजके तमाम दुःख इस घोरतम पापके फल न होंगे? इस्लामकी तवारीख-में यदि इस्लामकी नैतिक ऊँचाईमें कहीं-कहीं खामी दिखाई देती है तो उसके बजाय उसके चमकीले सफोकी भी कमी नहीं है। पर इस्लाम उसकी तरक्की और बड़ाईके दिनोंमे भी ऐसा नहीं था जो कि दूसरेके मजहबको गवारा न कर सके। सारी दुनि-याको उसने अपने बड़प्पनसे चकित कर दिया था। जब कि पश्चिम अंधेरेमें गोता खा रहा था तब पूर्व दिशाके आकाशमे एक चमकीला सितारा निकला और उसने दुःख-पीड़ित दुनियाको रोशनी दी, दिलासा दिया। इस्लाम कोई झूठा धर्म नहीं है। हिन्दू लोग आदरके साथ उसका अध्ययन कर देखेंगे तो उन्हें दिखाई देगा और मैं जिस तरह उसे चाहता हूँ उसी तरह वे भी चाहेंगे। यदि वह इस देशमें वहशियाना और मजहबी पागलपनसे भरा हुआ हो गया है तो इस तरह उसे विकृत बनानेमे हमारा हिस्सा कुछ कम नहीं है। अगर हिन्दू लोग अपने घरको ठीकठाक कर लें तो इस बातमे जरा भी शक नहीं कि इस्लाम भी उसका ऐसा ही जवाब देगा जो उसकी पुरानी उदार परम्पराके जेबा होगा। सारी हालतकी कुंजी हिन्दुओके हाथमें है। अगर हम अपने डरपोकपन और नामर्दीको खदेड़ देंगे, हम दूसरोंपर विश्वास करने लायक बहादुर बनेंगे तो सब लोग अच्छे हो जायँगे।

हिन्दी-नवजीवन
१ जून, १९२४

❀

आर्य-समाजका विरोध

आगराके आर्य-समाजकी तरफसे मुझे नीचे लिखा तार मिला है :—

"आर्य-समाज, ऋषि दयानन्द, स्वामी श्रद्धानन्दजी सत्यार्थ-प्रकाश और शुद्धि-आन्दोलनके बारेमें आपने जो बड़े उदाहरण प्रगट किये हैं उनसे आगरा आर्य-समाज अपना विरोध प्रगट करता है। उसे विश्वास है कि आर्य-समाजके सिद्धान्तोंका पूरा परिचय न होनेके कारण अनजानमें वे लिखे गये हैं। (वह) आपसे सादर प्रार्थना करता है कि आप अपने विचारोंपर फिरसे विचार करें और उसके द्वारा जो अनर्थ होनेकी सम्भावना है उसे दूर करें।"

मैं इस तारको इसलिए छाप रहा हूँ कि मुझे निश्चय है कि आगरा-समाज, आर्य-समाजकी रायको बहुत कुछ प्रकट करता है। उसके उत्तरमें मैं इतना ही कह सकता हूँ कि मैंने समाज या ऋषि दयानन्द या स्वामी श्रद्धानन्दजीके विषयमें एक भी शब्द गहरा विचार किये बिना नहीं लिखा है। मैं अपनी रायको आसानीसे दबाकर रख सकता था। लेकिन जब कि उसका प्रस्तुत प्रकरणसे संबंध है तब सत्यका अवलम्बन करते हुए मैं ऐसा न कर सका। हिन्दू-मुस्लिम वैमनस्य हमारे आंखोंके सामने है। उसको दूर करनेकी जरूरत मुल्कके सामने गहरी है। वह वस्तु स्थितिकी ओर आंखें मूँदकर या उसे दबाकर नहीं की जा सकती। ऐसे मौक़ेपर जो बात सत्य दिखाई दे उसे कहना जरूरी हो जाता है—फिर वह चाहे कड़वी क्यों न लगे। लेकिन मैं इस बातका दावा नहीं कर सकता कि मुझसे भूल नहीं होती। अभीतक मुझे ऐसी कोई बात नहीं दिखाई दी जिससे मैं अपने ख्यालातको तब्दील करूँ। मैं अज्ञानकी बातको भी नहीं मान सकता। मैंने सत्यार्थ-प्रकाशको जरूर पढ़ा है। मैं स्वामी श्रद्धानन्दजीसे भी गहरा परिचय रखता हूँ। इसलिए मैंने वे बातें सोच समझकर ही लिखी है। पर अगर कोई आर्य-समाजी मुझे इस बातको समझा दे कि किसी बातमें मुझसे गलती हुई है तो मैं खुशीके साथ अपनी गलतीको कबूल करूँगा, उसके लिए माफी मांगूँगा और अपनी तमाम गलत बातको वापस ले लूंगा।

हिन्दी-नवजीवन
८ जून, १९२४

❀

हिन्दू-मुस्लिम एकता

हिन्दू-मुसलमानोंके तनाजेका सवाल हिन्दुस्तानके देश-सेवकोंके लिए सबसे बड़ा सवाल है। उसपर मैं अपना लम्बा-चौड़ा बयान पिछले सप्ताहमें जाहिर कर चुका हूँ। उसीका सार यहाँ दे देता हूँ। दोनों मजहबोंके लोग इस मामलेमें अपनी तरफसे अपना-अपना फर्ज किस तरह अदा करते हैं, इसका फैसला हमारी आयंदा नस्लें करेंगी। हिन्दू-धर्म और इस्लामके उसूल चाहे कितने ही अच्छे क्यों न हों, दोनोंकी जाँच करनेका सिर्फ एक ही साधन है—वह है आमतौरसे उनके अनुयायियों-पर होनेवाला उनका असर। अब उस वक्तव्यका सार सुनिये:—

कारण

(१) इस अनबनका दूरवर्ती कारण है मोपलोंकी बगावत,

(२) श्री फजली हुसेनका पंजाबके महकमेमें, तालीममें मुसलमानोंकी तादादके मुताबिक सरकारी नौकरियोंका बँटवारा करना और फलतः हिन्दुओंकी तरफसे उसकी मुखालिफत होना,

(३) शुद्धि-आन्दोलन,

(४) सबसे ज्यादा सबल कारण है अहिंसासे जी ऊब उठना और इस अन्देशे-का होना कि अहिंसाकी ज्यादा दिनोंतक तालीम मिलनेसे दोनों कौमें बदला चुकाने और आत्म-रक्षा करनेके उसूलको भूल जायंगी,

(५) मुसलमानोंका गो-वध करना और हिन्दुओंका बाजा बजाना,

(६) हिन्दुओंका दब्बूपन और इस कारण हिन्दुओंकी मुसलमानोंपर ना-एतबारी,

(७) मुसलमानोंका गुण्डापन,

(८) हिन्दुओंकी मुन्सिफ-मिजाजीपर मुसलमानोंका अविश्वास।

इलाज

(१) इसके सुलझानेकी सबसे बढ़िया कुंजी है तलवार खींचनेके बजाय पंचायतमें फैसला करानेका रिवाज डालना।

ऐसा सच्चा लोक-मत होना चाहिए कि जिसके कारण फरियादी फरीकैनको कानून अपने हाथोंमें ले लेना गैर-मुमकिन हो जाय। हरएक दावा या तो खानगी पंचायतमें पेश हो, और अगर फरीकैन असहयोगके कायल न हों तो अदालतमें दावा दायर करें।

(२) यह डर और ख्याल कि घूँसेके बदलेमें घूँसा जमाना छोड़कर अहिंसा-भावसे कायरता उत्पन्न होगी अज्ञानके फल हैं। यह दूर होना चाहिए।

(३) अगर कौमके लोग एकताके कायल हों तो उनके अन्दर बढ़ता हुआ बाहमी अविश्वास विश्वासके रूपमें बदल जाना चाहिए।

(४) हिन्दुओंको मुसलमान गुण्डोंसे न डरना चाहिए और मुसलमानको चाहिए कि अपने हिन्दू भाईको सताना अपनी शानके खिलाफ समझें।

(५) हिन्दुओंको यह न सोचना चाहिए कि हम मुसलमानोंसे जब्रन गो-कशी बन्द करा देंगे। वे मुसलमानोंके साथ दोस्ती करके यह विश्वास रखें कि वे खुद अपनी खुशीसे अपने हिन्दू पड़ोसीकी खातिर गो-कशी बन्द कर देंगे।

(६) और न मुसलमानको ही यह ख्याल करना चाहिए कि वे हिन्दुओंको जबर्दस्ती बाजा बजाने या आरती करनेसे रोक सकेंगे। उन्हें भी हिन्दुओंको अपना दोस्त बना लेना चाहिए और विश्वास रखना चाहिए कि वे मुसलमानोंके उचित भावोंका ख्याल रखेंगे।

(७) हिन्दुओंको चाहिए कि वे लोक-निर्वाचित संस्थाओंके प्रतिनिधित्वके सवालको मुसलमानों तथा दूसरी जातियोंपर छोड़ दें और वे जो फैसला करें उसको सच्चे दिलसे, शराफतके साथ मान लें। अगर मेरा बस चले तो हकीम अजमलखाँ साहबको पूरा सरपंच बना दूँ और उन्हें पूरी आजादी दे दूँ कि मुसलमानों, सिखों, ईसाइयों, पारसियों तथा दूसरी जातियोंसे सलाह मशवरा करें या जो बेहतर समझें करें।

(८) जब राष्ट्रीय सरकार हो उसमें नौकरियाँ लियाकतके हिसाबसे दी जायँ। जुदा-जुदा कौमोंका एक मण्डल बनाया जाय और उसके द्वारा इम्तहान हो कर जो लायक साबित हों उन्हें जगहें दी जायँ।

(९) शुद्धि या तबलीगके काममें खलल नहीं डाला जा सकता; लेकिन दोनोंका काम सचाई और ईमानदारीके साथ होना चाहिए और सुशील लोग ही इस कामको करें। दूसरे मजहबपर कोई हमला न किया जाय। छिपे तौरपर किसी किस्मका प्रचार कार्य न किया जाय और न इसके लिए इनाम ही बांटे जायं।

(१०) गन्दे और गाली-गलौज भरे लेखों—खासकर पंजाबके कुछ अखबारोंकी बुरी प्रवृत्तिको रोकनेके लिए—उनके खिलाफ लोकमत तैयार किये जायं।

(११) अगर हिन्दू लोग अपना डरपोकपन न छोड़ें तो कुछ न होगा। उन्हींकी बाजी सबसे ज्यादा है और इसलिए उन्हींको सबसे ज्यादा त्याग करनेके लिए तैयार होना चाहिए।

लेकिन यह इलाज अमलमें किस तरह लावें? हिन्दुओंके इस खब्तको कौन दूर करे, कौन उन्हें इस बातका कायल करे कि गो-रक्षाका सबसे अच्छा तरीका है गायके प्रति अपने कर्तव्यका पालन करना, मुसलमान भाइयोंसे छेड़खानी करना नहीं और दीनके दीवाने मुसलमानोंको कौन समझावे कि जब कोई हिन्दू मसजिदके सामने बाजा बजाता हो तो उसका सिर फोड़ना धर्म नहीं, अधर्म है, सवाब नहीं, अजाब

है। इसके बाद हिन्दुओंको भी कौन इस बातको जहन-नशीन करे कि अगर इन लोक-निर्वाचित और मजाकिये संस्थाओमे छोटी जातियोके प्रतिनिधि ज्यादा भी रहें तो उसमें उनका बिगाड़ न होगा ? ये सवाल है जो यथार्थ है और इस उपायको अमलमे लानेकी कठिनाइयाँ जतलाते हैं।

पर उपाय एक-मात्र और रामबाण है कि तमाम मुश्किलात दूर करनी होगी। सच पूछिये जो कठिनाई है वह स्पष्ट है, अगर सिर्फ मुट्ठी भर ही हिन्दू और मुसलमान ऐसे हो जिनका जिन्दा एतबार इस इलाजपर हो तो बाकी सब काम आसान है।

यही क्यों, बल्कि अगर कुछ इने-गिने हिन्दू ही हो या मुसलमान ही हो, जिनमें ऐसा विश्वास हो तो भी यह उलझन चुटकी बजाते सुलझ जाय। बस वे अपनेको इस कामको अर्पण करदें तो दूसरे लोग अपने आप उनका साथ देने लगेंगे। यदि सिर्फ एक ही फिरकेके लोग इस बातको मान ले तो भी काफी है। हाँ, वह मुश्किल जरूर ज्यादा है। यह काफी इसलिये है कि इस इलाजमे सौदागिरी-लेन-देन करने की जरूरत नहीं है। इसको मिसाल लीजिये, हिन्दुओंको चाहिये कि वे गायके मामलोमे मुसलमानोको तंग करना छोड़ दे और सो भी बिना इस बातकी आशा रखे कि मुसलमान इसपर क्या कार्रवाई करेंगे। प्रतिनिधित्वके सम्बन्धमे मुसलमानोका जो कुछ मतालबा हो उसे भी वे मान ले, बदलेमे कुछ आशा रखे बिना और अगर मुसलमान लोग हिन्दुओंके बाजे बजाते हुए या आरतीको जब्रन बन्द करनेपर जिद करे तो हिन्दू बराबर बाजे बजाते रहें, और एक-एक हिन्दू वहीपर मर मिटे, बिना हाथ उठाये। तब मुसलमानोंको शर्म खाकर देखते-देखते सीधे रास्तेपर आ जाना पड़ेगा। मुसलमान भी, अगर चाहें तो ऐसा ही कर सकते हैं और हिन्दुओंको शरमिन्दा करके उन्हें सीधे रास्तेपर ला सकते हैं। हाँ इसके लिये हमें विश्वास करनेकी हिम्मत होनी चाहिये।

किन्तु असली सूरतमे बात ऐसी न होगी, बल्कि इससे उलटा। यदि कार्यकर्त्ता लोग खुद अपने तईं सच्चे हो जायंगे तो दोनो फरीक एक साथ एक-दूसरेकी ओर आने लगेंगे मगर बदकिस्मतीसे ऐसे कार्यकर्त्ता हमारे पास नहीं हैं। हमारे दिलोंपर विकारो और पहलेके बुरे ख्यालोंका ज्यादातर राज्य है। हर शख्स अपने हमदीनके ऐबों और बुराइयोंके छिपानेकी कोशिश करता है और इससे अविश्वास और सन्देहका दायरा हमेशा बढ़ता चला जाता है।

मैं उम्मीद करता हूँ कि आगामी महासमितिकी बैठकमे काम करनेका ऐसा तरीका हमलोग मालूम कर लेंगे जिससे इन तनाजोंका अन्त जल्द ही आ जायगा।

मुझे यह बताया गया है कि सरकारकी तरफसे इन तनाजोको ताननेकी कोशिश हो रही है। मैं समझता हूँ कि ऐसा न होगा। मगर मान लीजिये कि अगर वह ऐसा ही कर रही है, तो बेशक हमारा काम है कि हम खुद अपनी तरफसे सचाई और ईमानदारीके साथ काम करके उनकी कोशिशोको बेकार कर दें।

हिन्दी-नवजीवन

८ जून, १९२४

गुजराती आर्य-समाजियोंके प्रति

समस्त हिन्दुस्तानके आर्य-समाजोंके तार और पत्र मुझे मिले हैं। उसका जवाब मैं 'यंग-इंडिया' में दे चुका हूँ। गुजरातके आर्य-समाजी भी गुस्सा हुए हैं। मैं यह आशा जरूर रखता था कि वे तो मेरे अर्थका अनर्थ नहीं करेंगे; क्योंकि शायद मेरी बातका मतलब ज्यादा समझते हैं। गुजरातियोंके पांच पत्र तो मैं पढ़ चुका हूँ, और भी अभी होंगे। उन्हें भी बहुत दुःख हुआ है। वे मुझे माफ करें। जो बात मुझे सच मालूम होती है उसे मै सरल भावसे कहता हूँ। उससे बुरा माननेकी क्या जरूरत है? यह बात मेरी समझके बाहर है। किसीकी अप्रिय बातसे यदि हमें निरन्तर दुःख होता रहे तो फिर हममे सहिष्णुता कब और किस तरह आवेगी?

इन पाँचों पत्रोमें मेरे साथ दलील करनेकी कोशिश बहुत कम की गई है। एक महाशय तो इतने गुस्सा हुए हैं कि मुझे आत्महत्या करनेकी सलाह देते हैं। वे लिखते हैं कि आपके द्वारा अगर लाभ पहुँचता हो तो भी देश उसे लेनेके लिए तैयार नहीं है। इसलिए इसके द्वारा आपसे प्रार्थना करता हूं कि अब राम-नामका भजन करके स्वर्ग प्राप्त करनेकी कोशिश करें। दूसरे लोग लिखते हैं कि मै मुसलमानोंकी ही तरफदारी करता हूँ। इसके अलावा एक सज्जन अखबारोंसे लेकर हिन्दुओंके दुःखकी कहानी सुनाते हैं।

इन सब बातोंका बहुत कुछ जवाब मेरे 'यंग-इंडिया'में लिखे लेखमें आ जाता है। यहाँ इतनी बात और कहना चाहता हूँ कि यह सारा क्रोध असहिष्णुताको साबित करता है। एक दूसरेकी टीकाको सहन करनेकी शक्ति अभी हमारे अन्दर नहीं आई। सार्वजनिक जीवनमें यह बात बड़ी जरूरी है। हिन्दुओंपर जो मुसीबतें आती हों उनकी जाँच करनेके लिए मै तैयार हूँ। अखबारोंमें छपनेवाली तमाम बातोंको माननेके लिए मैं तैयार नहीं। तमाम पाठकोंसे मै कहता हूं कि वे उनका बहुतेरा हिस्सा सही न समझा करें। मेरे नाम पत्र भेजनेवाले भाई यदि मुसलमानी अखबारोंको पढे तो देखेंगे कि उनमे कितने ही आक्षेप हिन्दुओंपर किए जाते हैं। हिन्दू लोग उसका क्या जवाब दे सकते हैं? हिन्दू अखबारोंकी तरह उनके अखबारोंमें भी बहुतेरी बातें बनावटी रहती हैं।

संगठनके द्वारा यदि हिन्दू अपने डरको छोड़ सकते हों, तो मैं संगठनमें शामिल हो सकता हूं। संगठनका अर्थ सिर्फ मैं अखाड़ा ही समझता हूँ। उसमें मै नही पड़ता; क्योंकि मै जानता हूँ कि इससे तुरंत बचाव नहीं हो सकता। उसके लिए ही निर्भयता प्राप्त करनी चाहिए। यदि वह अखाड़ेके द्वारा आ सकती हो तो हिन्दू शौकसे अखाड़े बनावें। मैंने यह तो कभी नही लिखा कि अखाड़े न बनायें

जायँ। गुजरातके पुराणी भाईके अखाड़ेका मैंने कभी निषेध नहीं किया। यही नहीं, बल्कि मैं अपनी पसंदगी ही बतलाई है। मेरे कहनेका मतलब सिर्फ इतना ही है कि मुसलमानोंके हमलेसे अपनेको बचानेका उपाय संगठन नहीं है। उससे उलटा झगड़ा बढ़ता है, घटता नहीं।

इस सवालका निपटारा इस तरह प्रश्न करनेसे हो सकता है। क्या हिन्दू-मुस्लिम ऐक्य चाहते हैं? उसकी जरूरत है? अगर जरूरत हो और आवश्यक हो तो हिन्दुओंको प्रतीकारकी तैयारी छोड़नी पड़ेगी या सरकारकी तरह शरीर-बलके द्वारा मुसलमानोंका भी मुकाबिला करके, खूनकी नदियाँ बहाकर शान्ति प्राप्त करनी पड़ेगी। वह भी हिन्दू-मुसलमानके संबंधमें असंभव है। क्योंकि सरकारके बारेमें तो आशय यह है कि अंग्रेजोंके साथ दुश्मनी करके उन्हें यहाँसे बाहर निकाल दें। सम्भव है कि यह किसी तरह संभवनीय हो, क्योंकि अंग्रेज लोग इस देशको अपना मुल्क नहीं मानते। वे यदि घबड़ा उठें तो अपने घर चले जा सकते हैं। परन्तु मुसलमानोंका तो हिन्दुओंकी तरह यही देश है। उन्हें हिन्दुस्तानसे भगा देना बिल्कुल असंभव मानता हूँ। अतएव उनके साथ शान्ति-पूर्वक रहना ही एकमात्र उपाय है अथवा यह कि हम अपने जीवनकी बागडोर अंग्रेजोंके हवाले कर दें।

अब इस बातका विचार करें कि हमें करना क्या है? मुसलमान लोग हमारी स्त्रियोंका जो हरण करते हैं उससे हमें अपनेको बचाना है। यह बात तो खुद हरएक हिन्दू जानको हथेलीपर रखकर ही कर सकता है। तमाम मुसलमान तो स्त्रियोंका हरण करते ही नहीं? फर्ज कीजिये कि कितने ही लोग धर्मके नामपर ऐसा करते हैं। पर ऐसा हिन्दू स्त्रियोंका अपहरण क्या कितने ही हिन्दू स्वयं नहीं करते हैं। फर्क सिर्फ इतना ही है कि हिन्दू-हरणकर्त्ता अपनी विषय-वासनाकी तृप्तिके लिए ऐसा करते हैं। उससे उनकी रक्षा करनेकी शक्ति अगर हमारे अन्दर न हो तो वह हमें कौन ला देगा? ऐसी व्याधियोंका स्थायी और तुरंत फलदायी इलाज मैंने बताया है। वह है सत्याग्रह अर्थात् बिना प्रहार किए खुद मर मिटना। यह तो स्त्री और बालक भी कर सकता है। क्या इसका अभ्यास तमाम हिन्दुओंको न करना चाहिए? प्रहार करनेकी शक्ति प्राप्त करनेके लिए शरीर-बल प्राप्त करनेकी जरूरत रहती है। मरनेकी शक्ति प्राप्त करनेके लिए आत्म-बलकी जरूरत है। यदि समझमें आ जाय तो आत्म-बल प्राप्त करना ज्यादा आसान है। जो शख्स अपंग हो वह भला शरीर बल कहाँसे लावेगा। आत्मा तो किसीकी अपंग होती ही नहीं। स्थिरताके साथ विचार करके मैं इतना तो सीख सकता हूँ कि यदि मेरे अजीजोंपर कोई हमला करे तो मैं उनकी हिफाजत करते हुए मर मिटूँ।

पर ऐसी तैयारी करनेके लिए मुझे शान्त स्वभावकी आदत डालनी चाहिए। मुझे अपने गुस्सेको रोककर उससे नवीन शक्ति पैदा करनी चाहिए। यदि ऐसा ही हो तो मुझे अखबारोंके लेखोंको पढ़कर आग-बबूला न हो जाना चाहिए। जिस जगह

रक्षा करनेको मेरा जी चाहे वहाँ मुझे पहुँच जाना चाहिए और वहाँ मर-मिटना चाहिए।

जिस प्रकार योद्धाओंकी सेना हो सकती है उसी प्रकार सत्याग्रहियोंका संघ हो सकता है। हजारों धारालाओंके लिए अकेले रविशंकर बस हो रहे हैं। रविशंकर तो अभी जीवित हैं। सैकड़ों रविशंकर पैदा होकर हमलोंसे निर्बल हिन्दुओंको बचा सकते हैं और ऐसा करते हुए निर्बलको बलवान भी बना सकते है।

यह तो हुई हमलोंकी बात। गायकी रक्षाके लिए तो हिन्दुओंको मुसलमानोंपर जबर्दस्ती तो हरगिज न करनी चाहिए। उनके दिलको जीतकर ही वे गायोंकी रक्षा करें।

मसजिदोंके सामने जहाँतक हो सके बाजे न बजावें, मुसलमानके साथ सलाह-मशवरा करें और मुसलमान अगर न माने और बेजा तरीकेपर दबावें तो बिल्कुल न दबे, बराबर बाजा बजाते रहें और ऐसा करते हुए वहाँ मर मिटे।

इसके अलावा जो और बातें हैं वे न-कुछ हैं। अर्थात् यह कि धारा-सभामें कितने मुसलमान जायं। मै तो जितने जाना चाहें सबको जाने दूँगा। आज तो मेरी आंखोके सामने यह सवाल पैदा ही नहीं होता। जो असहयोगका पालन कर रहे हैं उनको धारा-सभा या सरकारी नौकरीका विचार करनेकी जरूरत ही नहीं रहती।

हिन्दी-नवजीवन
१५ जून, १९२४

❀

आर्य-समाज

सारे हिन्दुस्तानके आर्य-समाजी भाइयोंने मुझपर क्रोधकी झड़ी लगाना शुरू कर दिया है। ऐसे तारों और खतोंका मेरे पास ढेर पड़ा हुआ है जिनमें आर्य-समाज, उसके महान् संस्थापक तथा स्वामी श्रद्धानन्दजीके संबन्धमे हिन्दू-मुसलमानवाले निवेदनमें किये मेरे उल्लेखका विरोध किया गया है। गाजियाबाद, मुल्तान, देहली, सक्खर, कराची, जागरान, सिकन्दराबाद, लाहौर, सियालकोट, इलाहाबाद वगैरह कितने ही मुकामोंसे ये खत और तार आये हैं। इनमे उन पत्रोंकी गिनती नहीं की गई है जो कितने ही लोगोंने अपने तौरपर मुझे लिखे हैं।

इनमें ज्यादातर खत इस बातकी उम्मीद रखते होंगे कि मैं उनके एतराजोंको छापूँ। कितने ही महाशयोंने तो मुझसे ऐसा करनेका इसरार भी किया है। मैं इन

सज्जनोंका मनोरथ पूरा करनेमें लाचार हूँ। इसलिये मैं उनसे माफी चाहता हूँ। कितने पत्रों और तारोंका मजमून पिछले हफ्तेमें प्रकाशित आगरेवाले तारसे मिलता-जुलता है। सबमें आर्य-समाज, सत्यार्थ-प्रकाश, ऋषि दयानन्द, स्वामी श्रद्धानन्दजी और शुद्धि आन्दोलनपर उनके ख्यालमे मैंने जो हमला किया है, उसपर क्रोध प्रकट किया गया है। मुझे अफसोसके साथ कहना पड़ता है कि मेरे विचार अभीतक ज्योंके-त्यों बने हैं।

मेरे सामने जो बाते पेश की गई हैं, उन्हें मैंने गौरसे पढ़ा है। जिन लोगोने आर्य-समाज-सम्बन्धी बातोंमे मेरे अज्ञानकी कल्पना की है उन्होने शायद मेरे लिए खुलासाका रास्ता रहने देनेके लिए ऐसा किया है। पर बदकिस्मतीसे मैने अपने लिए ऐसा कोई रास्ता रहने नही दिया है। मै यह नहीं कह सकता कि सत्यार्थ-प्रकाश और आर्य-समाजके सामान्य सिद्धान्तोंसे मै नावाकिफ हूँ। मै इस तरह भी अपनी सफाई नहीं दे सकता कि आर्य-समाजके बारेमे पहलेसे ही मुझे कुछ वहम था। बल्कि मैंने पूरी श्रद्धा और भक्तिके साथ उसकी खोज की है।

ऋषि दयानन्दके शीलके प्रति मेरा हमेशा असीम आदर-भाव रहा और है भी। उनके ब्रह्मचर्यको मैंने अपने लिए हमेशा अनुकरण योग्य माना है। उनकी निर्भयताने मुझे हमेशा मुग्ध किया है। इसके अलावा अगर मेरे अन्दर कुछ भी प्रांतियताके भाव हों तो ऋषि दयानन्द मेरी ही तरह एक काठियावाड़ी थे, यह बात भी मेरे लिए कोई कम फख्रकी नहीं है। पर मेरा बस न था। मुझे अपनी इच्छाके खिलाफ उन नतीजोंपर पहुँचना पड़ा है और मैंने जाहिर भी उसी वक्त किया है जब ऐसा मौका पेश आया। अगर मैं इस मौकेपर उनका जिक्र करते हुए हिचकिचाता तो वह मेरी भारी कमजोरी होती। समाजी भाइयोंसे मेरी प्रार्थना है कि निर्मल भाव-से प्रकट की गई मेरी रायपर गुस्सा होनेके बदले पहले वे मेरी टीकाको सीधे अर्थमे ले, उसकी छानबीन करे। अगर कहीं मेरी भूल होती हो तो मुझे दिखावें और अन्तको मेरी राय उनसे न मिले तो परमात्मासे प्रार्थना करे कि मुझे ज्ञान प्राप्त हो।

दो चिट्ठियोंमे मुझे चुनौती दी गई कि मै अपने निर्णयोके सबूत पेश करूँ। इसपर किसीको एतराज नही हो सकता और चन्द ही दिनोमे अपने निर्णयोकी पुष्टिमे सत्यार्थ-प्रकाशके वचन पेश करनेकी आशा रखता हूँ। मित्रोसे मै यही चाहता हूँ कि वे धार्मिक चर्चामे मुझे न खींचे। मै तो सिर्फ वह सामग्री पेश करके खामोश रहूँगा जिसके सहारे मै उन नतीजोंपर पहुँचा हूँ।

स्वामी श्रद्धानन्दजीके बारेमे मेरे लिए सबूत या दलील पेश करनेका कोई सवाल पैदा नही होता। उनसे मेरी मित्रता होनेका दावा पिछले लेखमें कर ही चुका हूँ। उसपर ध्यान देकर टीकाकार लोग यदि इस मामलेमे उनके और मेरे बीचमे न पड़े तो मिहरबानी होगी। फिर उनके संबंधमे मेरी राय चाहे कुछ होती रहे, मै उनके साथ झगड़ा नहीं कर सकता। मेरी टीका मित्रभावसे हुई है।

शुद्धिके बारेमे भी मेरे टीकाकार अपने महाक्रोधमे मेरे लेखकी मर्यादा न रख

पण्डित मालवीयजी मुसलमानोंके दुश्मन नहीं हैं। वे तो मुसलमानोंके खुल्लम-खुल्ला दुश्मन हैं। सूरजकी रोशनीकी तरह खुले दुश्मन हैं। मैं तो कहता हूँ कि खुद भी हिन्दू आपकी इस बातको नहीं मानेंगे। लाला लाजपतराय भी पण्डित मालवीयजीकी तरह एक थैलीके चट्टे-बट्टे हैं। जयरामदास और चोइथरामके बारेमें तो खुद आप अपने ही साथ बेइन्साफी कर रहे हैं। मुसलमानोंके साथ उनका सलूक हर अखबार पढ़नेवालेका चिरागकी तरह रोशन है। मैं आपको यकीन दिलाता हूँ कि आप इन हिन्दू नेताओंकी तारीफ और मुसलमान अगुओंकी बुराई करके हिन्दू-मुस्लिम एकताका एक धागा भी मजबूत न कर पावेंगे।"

इसी तरह हिन्दू मित्र मुझे कहते हैं कि मैं जबतक अली-भाइयों और मौलाना बारी साहब पर एतबार रखता रहूँगा तबतक हिन्दू-मुस्लिम एकता गैर-मुमकिन है। मैं इन तमाम मित्रोंसे कहता हूँ कि अगर इन मौजूदा हिन्दू और न मुसलमान नेताओंपर एतबार रखा जाय तो एकताकी आशा इनके मर जानेके बाद भले ही की जा सके। फिर वे कहते हैं—

"आपको आगाखानी साहित्य और तबलीगका जिक्र करनेकी क्या जरूरत थी? उनके बदौलत हमारी राष्ट्रीय हलचलको जरा भी नुकसान नहीं पहुचा। वे तो निहायत ही शान्तिके साथ अपना तबलीग-काम कर रहे हैं। आप मुसलमानोंके प्रचारके वाहियात तरीकोंका जिक्र करते हैं। पर जरा शुद्धि आन्दोलनको तो देखिये। आपने यह लिखकर अपने सिरपर एक जोखिम उठा ली है कि उस पुस्तिकामें लिखी तदबीरोंके मुताबिक निजाम रियासतमें तेजीके साथ काम हो रहा है। यह लिखकर गोया आपने जानबूझकर एक मुस्लिम-रियासतपर हमला किया है।"

इन लेखककी तबीयतका रुख उन कार्यकर्त्ताओंकी तरह मालूम होता है जो चाहते हैं कि हम जिन बातोंको जानते हो उनके बारेमें अपने खयालात जाहिर न करें बल्कि उन्हें चुपचाप दबा दें। हाँ, मैं इस बातको तो समझ सकता हूँ कि हम हर एक गन्दी चीजको सब लोगोंके सामने पेश न करें; पर जो बातें साफ तौरपर हमारी नजरोंके सामने आती है और जो हर शख्सके दिमागमें चक्कर खा रही है उनकी ओर हम आँखें नहीं मूँद सकते। अपने जोशकी धुनमें लेखक इस बातपर ध्यान रखना भूल गये हैं कि मैंने किसी मुस्लिम-रियासतपर हमला नहीं किया। मैंने तो इतना ही कहा है कि "मैंने सुना है कि मेरे निवेदनमें वर्णित तबलीगका काम निजाम-रियासतमें जोर-शोरके साथ हो रहा है।"

लेखक और भी लिखते हैं—

"मेरी समझमें नही आता कि गो-वध और बाजे एक ही श्रेणीमें कैसे आ सकते हैं? मुसलमानोंके लिये कुरानमे हुक्म है कि गोकी कुरबानी करो, मगर हिन्दुओंको ऐसी कोई धर्माज्ञा नही है कि वे मसजिदोंके सामने बाजा बजाया करें। हिन्दुओंको सरकारी

अस्पतालो और दफ्तरोंके सामने बाजा बन्द करना पड़ता है। मगर उनकी हठ-धर्मी उन्हे मसजिदके सामने बाजे बन्द कर देनेकी इजाजत नही देती।"

लेखक इस बातको जान ले कि कुरानमे मुसलमानोंको गायकी कुर्बानी करनेको नहीं कहा गया है। हाँ, कुछ मौकोंपर कुछ प्राणियोंकी कुर्बानीका हुक्म कुरान अलबत्ते देती है जिनमें गाय भी शामिल है। इससे गायकी कुर्बानी कोई अनिवार्य नही है। परन्तु जब कि वह जायज मानी गई है और जब कोई तीसरा शख्स मुसलमानोसे जबरदस्ती उसे बन्द कराता है तब वह उसके लिये जरूरी हो जाती है। इसी तरह हिन्दुओके लिये भी मसजिदोंके सामने बाजा बजाना जरूरी नहीं है, तो भी जब मुसलमान तलवारके जोरपर हिन्दुओका बाजा मसजिदके सामने बन्द करनेपर आमादा होते हैं तो वह हिन्दुओका धर्म हो जाता है। इसलिये ठीक तो यह है कि इन दोनों बातोका निपटारा दोनोंकी मरजीपर ही छोड़ देना चाहिये।

हिन्दी-नवजीवन
१५ जून, १६२४

❀

मुसलमानोंकी तरफ़दारी

मुसलमानोंकी तरफदारी करनेका इल्जाम फिरसे मुझपर लगाया जाने लगा है और अबकी दुगुने जोर-शोरके साथ। टीकाकारोंका कहना है कि मै हिन्दुओके ऐबोंको बढ़ाकर कहता हूँ और मुसलमानोकी बुराइयोंको घटाकर। एक तरहसे मैं इस इल्जामको कबूल करता हूँ। यदि हम ठीक-ठीक फैसला देना चाहते हों तो हमको जो बातें जैसी हैं उनको उसी रूपमे देखनेके तथा बढ़िया कुदरती कानूनके मुताबिक रास्तेपर चलना चाहिए। लेकिन हम उसके खिलाफ चलनेके आदी हो गये हैं। हम अपने ही दोषोंको तो कम आंकते हैं और हमारे प्रतिपक्षीके दोषोंको बढ़ाकर कहते हैं। इसीसे असहिष्णुता बढ़ती है। अगर हमारे अन्दर उदारता और सहिष्णुता हो तो हम अपने प्रतिपक्षियोंको भी उसी तरह देखनेका प्रयत्न करेंगे जिस तरह वे खुद अपनेको देखते हैं। हमारी कोशिशमें हम कामयाब चाहे न हों; पर हम उन्हें असली रूपमें जरूर देख पावेंगे। ऐसी हालतमें जो मेरी हिन्दुओंके दोषोंकी अत्युक्ति समझी जाती है वह ऐसी दिखाई मात्र देती है। लेकिन एक टीकाकार कहते हैं—

"आप मौलाना अब्दुल बारीको खुदाका भोलाभाला बताते हैं, पर हमें इसपर भरोसा नहीं होता। हम सयुक्त-प्रान्तके लोग जानते हैं। हमे तो वे झूठी बड़ाई चाहनेवाले, झूठ बोलनेवाले और भरोसा न करनेवाले मालूम होते हैं।"

मैं उन्हें यह यकीन दिला देना चाहता हूँ कि अगर मैं मौलाना साहबको ऐसा पाता तो मैं बेखटके ऐसा कह देता। मैंने कहा कि वे एक खतरनाक दोस्त हैं इसमे उनके खिलाफ मुझे जो बुरीसे बुरी बातें मालूम हैं वे आ जाती हैं। कुछ टीकाकार समझते हैं कि मै मुसलमानोसे राजनैतिक मतलब गाँठनेके लिए उनकी चापलूसी कर रहा हूँ। वे ऐसा हरगिज न माने। मेरे लिए ऐसा करना गैर-मुमकिन है। क्योंकि मै जानता हूँ कि खुशामदसे एकता नहीं हो सकती। शिष्टाचार और सौजन्यको हमे भूलसे चापलूसी न मान बैठना चाहिए और न जहालतको निर्भयता।

हिन्दी-नवजीवन
१५ जून, १९२४

❀

जहरीला साहित्य

एक मित्रने मुझे "रंगीला रसूल" नामकी एक उर्दू पत्रिका भेजी है। उसपर लेखकका नाम तो नहीं दिया है पर वह मैनेजर, आर्य-पुस्तकालय, लाहौरकी तरफसे प्रकाशित की गई है। पुस्तकका नाम ही खुद दिल दुखानेके लिए काफी है और जो बाते उसमें लिखी गई हैं वे भी वैसी ही हैं। मैं शिष्ट-सभ्य पाठकोंका दिल दुखाये बिना, उसके कुछ वाक्योंका अनुवाद पेश नहीं कर सकता। मैंने अपने दिलसे पूछा कि सिवा लोगोंको उभाड़नेके ऐसी पुस्तकें लिखने और छापनेका दूसरा क्या मतलब हो सकता है। मुसलमानोंके नबीको बुरा कहनेसे या गालियाँ देनेसे क्या एक भी मुसलमान अपना धर्म छोड़ देगा और उस हिन्दूको भी जिसका यकीन ही पक्का नहीं है इससे क्या फायदा हो सकता है? इसलिए धर्म-प्रचारके कार्यमे तो ऐसी पुस्तकसे कोई लाभ नहीं। पर इससे जो हानि होती है वह साफ है।

एक दूसरे मित्रने पब्लिक प्रिंटिंग प्रेस लाहौरसे छपी एक पत्रिका भेजी है इसका नाम "शैतान" है। उसमें मुसलमानोकी ऐसी बुराई की गई है कि जिसका अनुवाद मै यहाँ दे ही नहीं सकता। मुझे ऐसी पत्रिकाओंका भी पता है जिसमें मुसलमानोंकी तरफसे भी ऐसी ही गाली-गलौज की गई है। किन्तु इससे हिन्दुओं और आर्य-समाजियोंकी तरफसे प्रकाशित गालियोंका समर्थन नहीं हो सकता और न यह उसका कोई जवाब ही है। यदि मुझे ऐसी खबर न मिलती कि ऐसी पत्रिकाएँ या पुस्तकें लोग चावसे पढ़ते हैं तो मै इसपर जरा भी ध्यान नहीं देता। ऐसे साहित्यमें

प्रचारको रोकने या कमसे कम उसके घटानेके उपाय स्थानिक नेताओंको ढूंढ़ निकालने चाहिएँ और उसके बजाय एक दूसरेके धर्मके प्रति सहिष्णुता प्रकट करने वाला शुद्ध साहित्य लोगोंमें फैलाना चाहिए।

हिन्दी-नवजीवन
२२ जून, १९२४

❀

हिन्दू क्या करें ?

हिन्दू-मुस्लिम तनाजे संबंधी मेरे निवेदनके बारेमे बहुतेरे पत्र मेरे पास आये हैं। पर उसमे कोई बात नई या जानने योग्य नही है। अतएव मैंने उन्हें प्रकाशित नही किया। परन्तु बाबू भगवानदासने इस बारेमे एक पत्र लिखकर कितने ही सवाल किये हैं। वे मानते हैं कि अबतक जो कितनी बातें ठीक-ठीक न मालूम हुई थीं वे इसके द्वारा हजारों लोगोंको मालूम हो जांयगी। फिर भी वे समझते हैं कि इसकी चिकित्सा और भी गहरी होनी चाहिए और इलाज भी कड़ा और जल्दी होना चाहिये।

उनके पत्रका सार इस तरह है —

(१) "आप कहते हैं कि साधारण तौरपर मुसलमान गुण्डे होते है और हिन्दू डरपोक। यदि यह सच है तो इसका कारण क्या हो सकता है? हिन्दू और मुसलमान असलमे भिन्न-भिन्न जातियोंसे पैदा नही हुये है। ९९ फी सदी मुसलमान हिन्दुओंके ही वंशज हैं।

भिन्न-भिन्न जातिके बहुतेरे हिन्दू योद्धाओंने लड़ाईके वक्त मुसलमान सिपाही या ईसाई सिपाहियोंसे कुछ कम बहादुरी नहीं दिखाई है। फिर भी ऐसी लड़ाइयोंमे तो नहीं, लेकिन जैसा कि आप कहते हैं, छोटे-छोटे झगड़ोंमे एक डरानेवाला समझा जाता है और दूसरा डरपोक। इसका क्या सबब? क्या इन दोनो कौमोंके धर्म-तत्त्वमे ही यह बात नहीं पाई जाती कि जिससे एक सबल बने और दूसरा निर्बल? केवल अन्त्यजोंके सम्बन्धमे ही हमने जो आपसमें अस्पृश्यताकी बुराई फैला दी है, उसीसे तो हम कही पशु नही बन गये हैं? डरपोक डरानेवालेको पैदा किये बिना कैसे रह सकते हैं? इस्लाम भी आज हिन्दू धर्मके मुआफिक गिरा हुआ नजर आता है। लेकिन फिर भी उसमे हिन्दू धर्मके बनिस्बत कितनी ही बातें अच्छी हैं। उसमे एक दूसरेके प्रति अस्पृश्यताका भाव नहीं है। जरूरतके वक्त एक दूसरेका साथ देनेका भाव उसमे जरूर पाया जाता है।

(२) आप कहते है कि हिन्दू खुद अपनेको स्वच्छ कर ले तो मुसलमान भी अपनी तरफसे उसका उचित प्रत्युत्तर देंगे। लेकिन सफाई किस तरह करनी चाहिये?

जबरदस्ती मुसलमान बनाये गये मलाबारके हिन्दुओंको फिर हिन्दू बनानेमे बनारसके पण्डितोंको जूडी चढ आई। ईसाई लोग मुसलमानोंको क्या ईसाई नहीं बनाते हैं? फिर मुसलमान उनसे क्यों नही चिढते? हमारे शुद्धि और सगठन कार्यका कोई ढग ही नहीं है। हमारे पण्डितों और पुरोहितोंको अभिमान छोडकर यह बात जाहिर कर देनी चाहिये कि जो शख्स अपनेको हिन्दू कहलवाना चाहे वह हिन्दू ही है और उस हिन्दूके साथ अन्य सब हिन्दुओंको खाना-पीना करना चाहिये। आज तो हम सब हिन्दू मनुष्य हैं यह भी स्वीकार करनेके लिये तैयार नही है।

(३) आप कहते है कि हमने बीज बोये और गुन्डोंने फसल काट ली। यह किस तरह? दोनों कौमोंके नेताओंकी मक्कारीकी वजहसे या समझौतेका प्रयत्न नहीं किया गया इस वजहसे?

(४) आप कहते हैं कि हमारे बडे-बडे नेताओंमें परस्पर अविश्वास बढता जाता है, यह अविश्वास क्यो और कैसे बढता जाता है? क्या इसका कारण यह नहीं है कि हम सब "स्वराज्य, स्वराज्य" चिल्लाते हैं लेकिन स्वराज्यका अर्थ जुदा-जुदा करते हैं?

(५) आप लिखते हैं कि "हमको एक दूसरेके स्वभावमे से अनुकूल तत्व ढूंढ निकालने चाहिये और उनके द्वारा मित्र-भाव बढाना चाहिये।" इसको जरा खुलासेसे समझाइयेगा? आप कैसी मैत्री चाहते हैं? व्यक्तिकी व्यक्तिके साथ, कौमकी कौमके साथ, एक पक्षकी दूसरे पक्षके साथ या धर्मकी धर्मके साथ?

(६) आप राजकीय झगड़े निबटानेके लिये हकीम साहबके हाथमें कलम सौंप देना चाहते हैं। इसका सबब वे पहले सज्जन हैं और फिर मुसलमान यह होगा या उनमें धर्मांधता नहीं है यह? लेकिन खुदा न करे, अगर उनके हाथ-पैर न चलते हों तो क्या आप दूसरे नाम बता सकेंगे? इस कामका भार एक बार एक ही सज्जनपर डालनेके बजाय क्या उत्तम-स्त्री पुरुषोंकी बनी एक पञ्चायतके जिम्मे नहीं किया जा सकता?

(७) जैसा कि आपने कहा है, सब कबूल करते हैं कि हिन्दू-मुसलमान एकता ही स्वराज्य है। हृदयकी सन्धिके बिना कुछ भी नहीं हो सकता। फिर भी हम क्यो लड़ते हैं? क्या सिर्फ हमें यह कहते ही रहना चाहिये कि एक हो जाओ, एक हो जाओ या एक होनेके मार्ग ढूंढकर, सब धर्मोंके समान तत्व खोज निकाल उन्हें जाहिर करना चाहिये? क्या यह अच्छा न होगा?"

पहले दो सवालोंका जबाब तो खुद लेखकने दे दिया है। मेरी रायमें वे एक हदतक ही सच हैं। यद्यपि हिन्दुस्तानके बहुतांश मुसलमान और हिन्दु एक ही 'नस्ल'से सम्बन्ध रखते हैं, तो भी धार्मिक परिस्थितिने उनको एक दूसरेसे भिन्न बना दिया है। मैं इस बातको मानता हूँ और मैंने देखा भी है कि विचारोंके कारण मनुष्यका रूप और स्वभाव बदल जाता है। सिख लोग इस बातकी ताजी मिसाल हैं। मुसलमान लोगकी तादाद आमतौर पर कम है—इससे उनकी जातिमें गुण्डापन आ गया है। फिर वे एक नई परम्पराके वारिस हैं। इससे एक नई जीवन प्रणालीके

योग्य मर्दानगी दिखाई देती है। मेरी रायमें तो कुरानमें अहिंसाका एक मुख्य स्थान है। पर १३०० सालके साम्राज्य विस्तारने मुसलमान-जातिको योद्धा बना दिया है इसलिये उनमें उग्रता भी आ गई है। गुण्डापन उग्र स्वभावका एक कुदरती पर अनावश्यक फल है। हिन्दू की सभ्यता प्राचीनतम है। वे मुख्यतः अहिंसा-परायण हैं। उनकी सभ्यता उन अनुभवोंको पार कर गई है, जिनमेंसे ये दो नई जातियाँ गुजर रहीं है। अगर हिन्दु धर्ममें आजकलके अर्थमें कभी साम्राज्यवादिता रही हो तो अब वह जमाना चला गया और उसने या तो अपने आप या कालचक्रके गतिके अधीन हो उसका त्याग कर दिया है। अहिंसा-भावकी प्रधानता होनेके कारण शस्त्रास्त्रोंका प्रयोग कुछ ही जातियों तक मर्यादित हो गया और वे जातियाँ भी विद्वान, निःस्वार्थ और आध्यात्मिक दृष्टिसे बढ़े-चढ़े लोगोंकी व्यवस्थाके आधीन रहती थी। इसलिये हिन्दू समाजमें लड़नेके आवश्यक गुण नहीं है। परन्तु अपनी आध्यात्मिक शिक्षासे हाथ धो बैठनेके कारण वे शस्त्रकी जगह किसी दूसरे कारगर साधनका प्रयोग करना भूल गये। और उसकी उपयोग-विधि न जाननेके कारण तथा उसकी रुचि भी न होनेके कारण उनकी नम्रता भीरुता और कायरताकी हद तक पहुंच गई है। इस तरह यह पाप उनकी सज्जनताका एक कुदरती फल हो गया, जो कि अनावश्यक है। ऐसे मत रखते हुये, मैं नहीं ख्याल करता कि हिन्दुओंकी एकान्तिकता—अपनेको किसीमें शामिल न करना—बुरी होते हुये भी उससे उनकी भीरुताका अधिक संबंध है। आत्म-रक्षाके लिए अखाड़ोंके उपयोगपर जो मेरा विश्वास नहीं उसका कारण भी यही है। हाँ, शारीरिक उन्नतिके लिए मैं जरूर उनको कीमती समझता हूँ। मगर आत्म-रक्षाके लिए तो मैं आध्यात्मिक शिक्षा-दीक्षाको ही पुनर्जीवित करना पसन्द करूँगा। आत्म-रक्षाका सबसे अच्छा और चिरस्थायी साधन आत्म-शुद्धि है। मैं इन मिथ्या भयोंसे डरनेवाला नहीं हूँ। अगर हिन्दू लोग सिर्फ आत्म-विश्वास रखें और अपनी परम्पराके अनुसार बर्ताव करें तो उन्हें गुण्डापनसे डरनेकी कोई जरूरत न रहे। ज्योंही वे वास्तविक आध्यात्मिक शिक्षाको फिरसे ग्रहण करेंगे त्योंही मुसलमानोंका दिल उनकी तरफ खींचने लगेगा। वे ऐसा किये बिना नहीं रह सकते। अगर मेरे पास सिर्फ कुछ ऐसे हिन्दू-युवकोंकी एक टोली हो जाय जो खुद अपनेपर भरोसा रखते हों और इसलिये मुसलमानोंपर भी जिनका भरोसा हो तो वह दल कमजोर लोगोंके लिये एक ढालका काम देगा। वे (हिन्दू-युवक) इस बातकी शिक्षा देंगे कि बिना मारे किस तरह मरना चाहिये। मेरी अकलमें दूसरा रास्ता नहीं। जब हमारे पूर्वज लोगोंपर संकट आ पड़ता था तब वे तपस्या-शुद्धि करने जाते थे। वे अपने शरीरको असहाय पाकर परमेश्वरसे प्रार्थना करते और उसे उनकी पुकारपर दौड़नेके लिये मजबूर होना पड़ता। लेकिन इसपर मेरे हिन्दू-मित्र कहेंगे "हाँ बेशक—मगर ईश्वरने तो धनुष-बाण लेकर अवतारोंको भेजा है।" इसकी सत्यतासे इन्कार करनेसे मेरा यहाँ संबंध नहीं। मेरा कहना सिर्फ इतना ही है कि हिन्दूलोग कारणकी अवहेलना करके फल कैसे प्राप्त कर सकते हैं? जब हम काफी तपस्या कर चुकेंगे तब

१०

कहीं लड़ाईका समय आ सकता है। मैं पूछता हूँ क्या हमने अपनेको काफी शुद्ध वना लिया है? क्या अपने अस्पृश्यताके पापोंके लिये हम अपनी राजी-खुशीसे प्रायश्चित कर चुके है।

व्यक्तिगत निर्मलताकी वातोको तो जाने दीजिये। क्या हमारे धर्माचार्य और धर्म-गुरु आदर्श रूप हैं? जवतक हम महज मुसलमानोंके छिद्र ढूंढनेमें ही अपनी सारी शक्ति लगाते रहेंगे तबतक मानो हम अधरमें अपने हाथ-पैर फट-फटाते रहेंगे। जो वात अंग्रेजोंके लिये है वही मुसलमानोके लिये है। अगर हमारे दावे सच हैं तो अंग्रेजोंकी बनिस्वत मुसलमानोके हृदयको जीतना वहुत ही कम मुश्किल है। लेकिन हिन्दू मेरे कानमें आकर कहते हैं कि हमे अंग्रेजोसे तो कुछ उम्मीद है पर मुसलमानों से नहीं। मैं उनसे कहता हूँ कि अगर आपको मुसलमानोंकी कुछ आशा नहीं है तो अंग्रेजोसे जो आप आशा रखते हैं वह निराशामें परिणित हुये बिना नहीं रहेगी।

दूसरे सवालोंका जवाव थोड़ेमें दिया जा सकता है। गुण्डे लोग इसलिए आ खड़े हुए कि मुखिया लोग उन्हें चाहते थे। अगुआ लोग एक दूसरेपर अविश्वास रखते थे। जहाँ हेतु स्पष्ट हो वहाँ अविश्वास उत्पन्न नहीं होता। जब बहुतसे कारण या हेतु होते हैं और जब वे जाने तो नहीं जाते पर महसूस होते रहते हैं तब उनसे अविश्वास पैदा होता है। हम कभी इस वातको प्रत्यक्ष नही कर पाये हैं कि हमारे स्वार्थ एक हैं। हर फरीक अपने तौरपर यह मानता हुआ मालूम होता है कि हम दूसरेको किसी न किसी तरकीबसे हटा देंगे। पर मुझे यह कबूल करते हुये जरा भी संकोच नहीं होता जैसा कि बाबू भगवानदासने कहा है कि हमारा यह जानना भी है कि हम किस किस्मका स्वराज्य चाहते हैं, इस अविश्वाससे बहुत कुछ ताकत रखता है। पहले मेरा खयाल ऐसा न था। लेकिन उन्होने मुझे यरवदा जेलमे सर जार्ज लाइडके मेहमान होनेके पहले ही अपने मतका बहुत कुछ कायल कर लिया था और मैं तो अब पूरा-पूरा उनके मतमे मिल गया हूं।

'अनुकूल बातों' से मेरा अभिप्राय तमाम व्यक्तियों और जनसमूहके सामाजिक, धार्मिक और राजनैतिक संबंधोंकी अनुकूल बातोंसे है। जैसे—धार्मिक बातोमे मतभेदके स्थानोको खोजनेकी बनिस्वत मुझे दोनोंकी अच्छी और एकताकी बातें ढूंढ़नी चाहिए। अपने धार्मिक मन्तव्योंपर कायम रहते हुए मैं जहाँ-जहाँ हो सकता है सामाजिक बातोंमें दोनोके बीचकी खाई पाटनेकी कोशिश करूंगा। राजनैतिक क्षेत्रमें कार्यकी एकताके लिए मैं अपने रास्तेसे कुछ हट जाना भी पसन्द करूंगा।

दोनोका फैसला कर देनेके लिए मैंने हकीम साहबका नाम इसलिए सूचित किया कि उनके प्रति सब आदर भाव रखते हैं। पर मै तो ऐसे मुसलमानके हाथोंमे भी कलम देते हुये न हिचकूँगा जिसकी धर्मांधता और हिन्दुओंकी निस्बत बुरे ख्याल पहलेसे मशहूर हो? क्योंकि एक हिन्दूके नाते मुझे जानना चाहिए कि अगर वह हर प्रान्तमे मुसलमानोंको ज्यादा जगह दे देगा तो भी मेरी उससे कुछ भी हानि न

होगी। निर्वाचन-संस्थाओंके लिए जगहोंके देने या लेनेमें सिद्धान्तकी कोई हानि नहीं होती। इसके अलावा तजरुबेने मुझे यह शिक्षा दी है कि जब भारी जिम्मेवारी एक ही शख्सके सिरपर रख दी जाती है तब वह अपने आप कसौटीपर चढ़ जाता है और उसका स्वाभिमान या ईश्वरका डर उसे समचित्त बना देता है।

अन्तको किसी घोषणा-पत्र या किसी और चीजसे कुछ काम न बनेगा जब तक कि हममे कुछ लोग भी, फिर हम चाहे इने गिने ही हो, उसके अनुसार चलने न लग जायँ।

हिन्दी-नवजीवन
२२ जून, १९२४

❀

फिरसे आर्य समाजी

इतने आर्य-समाजी मित्रोंने आर्य-समाज-सम्बन्धी (उनकी रायमे) अज्ञान और उन सिद्धान्तोंकी उत्तमत्ताके विषयमें इतने लम्बे-चौड़े प्रवचन लिखकर भेजे हैं कि मैं इस बातके लिये उत्सुक हो रहा था कि कमसे कम एक पत्र तो जरूर छापूँ जिससे पाठकोंको यह मालूम हो जाय कि आर्य-समाजी मेरी टीकाको किस दृष्टिसे देखते है। अन्तको मुझे एक ऐसा पत्र मिला और उसे मै खुशीके साथ प्रकाशित कर रहा हूँ। पत्र-लेखक है आचार्य रामदेव, गुरुकुल कांगड़ी। उसमेसे मैंने सिर्फ एक वाक्य निकाल डाला है। जो मेरी रायमें जल्दी लिखा गया होगा और जिसमे खुद उन्हींके साथ इन्साफ न होता था। उसके निकाल डालनेसे उनकी दलीलमें कुछ कमी नहीं पड़ती और आर्य-समाजके संस्थापककी उनके द्वारा गाई गई कीर्तिमे भी किसी बातकी खामी नहीं होती। आचार्य रामदेवका पत्र नीचे देता हूँ—

"यग-इन्डियामें लिखे हिन्दू-मुस्लिम एकता सबन्धी आपके लेखको पढकर मुझे बडा ही रज हुआ। मैंने अपने जीवनमे ऐसे महान पुरुषकी कलमसे ऐसा निराशाजनक लेख कभी नहीं पढा था। इस लेखके द्वारा पजाब और युक्त-प्रान्तमे बडी नाराजगी और बेचैनी फैल गई है। स्थितिको सुधारनेके बजाय इसके द्वारा हिन्दुओंके दिल उबल उठे हैं और कितने ही विचारशील आर्यसमाजी इस नतीजेपर पहुँचे हैं कि आप इस्लामका इतना पक्षपात और आर्यसमाजका इतना विरोध रखते हैं कि आर्यसमाजके साथ ऐसा गहरा अन्याय—चाहे अनजानमें हो—किये बिना नही रह सकते थे। आर्यसमाजके आध्यात्मिक सिद्धान्तोपर हमला करनेकी कोई जरूरत न थी और हिन्दू—मुसलमानके प्रश्नके साथ उसका कुछ सबध भी न था। आपके आक्षेप न तो युक्तिपूर्ण ही थे और न इस समय आप

शास्त्रार्थके लिये ही तैयार हैं। आर्यसमाजके वेद-विषयक इस विश्वासका कि वेद अपौरुषेय है, हिन्दू-मुसलमान तनाजेसे उतना ही सम्बन्ध है जितना कि आपके सिद्धान्तोंका सत्य महासभाकी फूटसे है। ····"फिर यदि श्रुतियोंपर विश्वास रखना संकुचितता है तो इस्लाम भी उतना संकुचित है जितना कि वैदिक धर्म क्योंकि ऐसा विश्वास रखना मुस्लिम-धर्मका मुख्य अंग था; इस्लामके उस सौभाग्यके युगमें भी जिसका वर्णन आपने बड़े उत्साहसे किया है। आपका यह अभिप्राय है कि महर्षि दयानन्दने ही सबसे पहले वेदोंकी सत्यता और निभ्रान्तताके सिद्धान्तकी घोषणा की, वास्तवमें निर्मूल है और यह प्रकट करता है कि उस शख्सने—फिर वह कितना ही बड़ा हो—उन विषयोंका अध्ययन नही किया है। उसका उनपर कलम चलाना कितना खतरनाक है। मैं आदरपूर्वक यह बताना चाहता हूँ कि उपनिषद्, मनुस्मृति, षड्दर्शन, पुराण और शंकराचार्य, रामानुज, माध्वाचार्य, चैतन्य तथा अन्य मध्य-कालीन साधु-सन्तों और विद्वानोंके ग्रंथ सब इसी सिद्धान्तका प्रतिपादन करते हैं। फिर यह मत कि वह तमाम विद्याओं (पदार्थ-विज्ञान भी उसमें शामिल है) का बीज है कोई नया नहीं है। तमाम प्राचीन शास्त्रवेत्ता, जैसे आर्यभट्ट भास्कराचार्य, इसको मानते थे। इसके अलावा आधुनिक वैदिक विद्वान जैसे पावगी, परमशिव ऐयर, द्विजदास दत्त—जिनमें कोई आर्यसमाजी नही है—अपने तौरपर विचार करते हुये इसी नतीजेपर पहुचे हैं। पता नहीं आप जानते हैं या नहीं कि अरविन्द घोषने यह बात लोगोंके सामने प्रकट की है कि अकेले स्वामी दयानन्दने ही वेदकी टीकाके सच्चे प्रामाणोंका आविष्कार किया है। इन प्रामाण्य विद्वानोंके प्रमाण, जिन्होंने सारा जीवन वेदोंके अध्ययनमें बिताया है, एक ऐसे महात्माके अप्रासंगिक उद्गारोंसे मिथ्या नहीं हो सकते—फिर उसका चरित्र कितना ही उँचा हो और मनुष्य जातिके प्रति उसका हृदय चाहे कितना प्रेम-परिलुत हो, जिसने लगातार पांच साल भी मूलपरसे वेद-वेदांगोंका अध्ययन न किया हो। तमाम जातियों और धर्मोंके सबसे बडे नेताकी हैसियत रखते हुये आपने धार्मिक खन्डन-मन्डनमे पडकर अच्छा न किया। सत्यार्थ प्रकाशके बारेमें आपने जो सामान्य सिद्धान्त बनाये हैं, वे तो बडे ही अनुचित हैं। मालूम होता है कि आपने पहले दस समुल्लासोंको नही पढा है, जिनमें उपासना, ब्रह्मचर्य, शिक्षा, विवाह-संस्कार, सन्यास, राजनीति, मुक्ति, ज्ञान, वेद और भक्ष्याभक्ष्यका विवेचन किया गया है और जो ग्रन्थका मुख्य भाग है। इन समुल्लासोंमे दूसरे धर्मोंको स्पर्श तक नहीं किया गया है। इनको छोडकर आप आखिरी चार अध्यायोंपर कूद गये हैं। बात यह है कि बहुत समय पहले ही आप इस विचित्र नतीजेपर पहुँच चुके थे कि स्वामी दयानन्द असहिष्णु थे। आपने सत्यार्थप्रकाशको जल्दीमे पढा है और उसपर आपके इस पूर्व-विचारने उसे दूषित कर दिया है। आपकी हालत उस न्यायाधीशकी सी हुई जो फरयादी की बात सुनकर सजा दे देता है और फिर उसके बचावकी सूरत निकालता है, जिससे कि अपने सजाके फैसलेका समर्थन किया जा सके। जिन लोगोने स्वामी दयानन्दके ग्रन्थोंको ध्यानसे पढ़ा है—आपके मित्र एण्ड्र्यूज साहब भी उनमें हैं या जिन्हें उनके चरणोंमे बैठनेका सौभाग्य प्राप्त हुआ जैसे ए० ओ० ह्यूम, पादरी स्काट, सर सैयद अहमद, रानाडे, तैलंग, मालबारी, रघुनाथ राव और बिशननारायन दर—उन्होंने बिना दिक्कत यह बात कही है कि

वे अपने कालके एक अत्यन्त सहिष्णु धर्म-सुधारक थे और उनके मानव प्रेममें जाति, देश, वर्ण और संस्कृत आदिकी सीमा न थी। अब मैं खतम करता हूं। मेरा यह लिखना छोटे मुँह बड़ी बात समझी.जा सकती है। मेरे हृदयमें आपके प्रति प्रेम, आदर और भक्ति है। उसीके बलपर मैं अपनी सफाई दे सकता हूं। प्रेम और भक्तिमें ऐसी अद्भुत शक्ति है कि वह छोटे आदमीको भी बड़े आदमीसे कुछ निवेदन करनेकी हिम्मत दे देती है। विशेष विनय,

भवदीय
रामदेव

मैं हमेशा कहता हूँ कि मेरी राजनीति मेरे धर्मका अनुसरण करती है। मैं राजनैतिक क्षेत्रमें इसीलिये पड़ा हूँ कि मैं अपने धार्मिक जीवन अर्थात् सेवामय जीवनको उससे प्रभावित हुये विना व्यतीत न कर सका। यदि उसके बदौलत मेरे धार्मिक जीवनमें बाधा पड़ेगी तो मुझे उसका त्याग कर देना होगा। इसलिये मैं इस सिद्धान्तसे सहमत नहीं हो सकता कि एक राजनैतिक नेता होनेके कारण मुझे धार्मिक बातोंमें न बोलना चाहिये। मैंने आर्य-समाजके बारेमें इतना इसलिये लिखा है कि वह अपने उपयोगिताको खोता जा रहा है और उसकी मौजूदा कारवाइयोंसे देशको हानि पहुँच रही है। उनका एक मित्र और हिन्दू होनेके कारण मुझे उन लोगोंसे कहनेका हक है जिनके मतों और विचारोंका उद्गम-स्थान एक ही है। यदि वहाँ मैं भिन्न धर्मोंके गुण-दोषकी समीक्षा करता होता तो अवश्य ही मुझे इस्लामके बारेमें भी अपने विचार प्रकाशित करने पड़ते।

मैं इकबाल करता हूँ कि मैंने मूल वेदोंको नहीं पढ़ा। पर मुझे उनका इतना ज्ञान अवश्य है कि मैं अपने लिये कुछ विचार बांध सकता हूं। आचार्य रामदेवका यह ख्याल गलत है कि महर्षि दयानन्दके संबन्धमें मेरा ख्याल पहलेसे ही खराब था। आचार्य रामदेवने जिन महान् पुरुषोंका उल्लेख ऊपर किया है उसके द्वारा उस महान् सुधारककी की गई स्तुतिके ठीक-ठीक शब्द मुझे मालूम नहीं हैं। पर उनके साथ इस स्तुतिमें शामिल होते हुये भी मैं अपनी रायपर कायम रह सकता हूँ। मैं अपनी पत्नीकी त्रुटियोंको जानता हूँ। पर इसलिये मैं उसे कम प्यार नहीं करता। मेरे टीकाकार विचार करते समय यह भूल कर बैठते हैं कि चूंकि मैंने उनके समाज-संस्थापकपर टीका-टिप्पणी की है इसलिये मेरा उनके प्रति प्रेम और आदर नहीं है। मैं आचार्य रामदेवको यकीन दिलाता हूँ कि मैंने सत्यार्थ-प्रकाशके तमाम समुल्लासोंको पढ़ा है। उन्हें यह न भूलना चाहिये कि किसी मनुष्यके नैतिक उपदेशके उच्च होते हुये भी उसका दर्शन संकुचित हो सकता है। मेरे कितने ही मित्र जो नैतिक शिक्षाओंको बहुत ऊँचे दरजेका मानते हैं। मेरे जीवन-सम्बन्धी विचारों और दृष्टि-विन्दुको संकुचित और धर्मोन्मत्ततासे पूर्ण मानते हैं। मैं उनकी इस टीका-टिप्पणीसे बुरा नहीं मानता—हालांकि मैं मानता हूँ कि जीवन-विषयक मेरा दृष्टि-विन्दु विशाल है और मैं मनुष्य जातिके अत्यन्त सहनशील लोगोंमें खपने योग्य हूँ। मैं

अपने आर्य-समाजी मित्रोंको यकीन दिलाता हूँ कि यदि मैंने उनकी आलोचना की हो तो वह उसी दृष्टिसे की है जिस दृष्टिसे मेरी आलोचना उन्हें करनेका अधिकार है। इसलिये हम दोनों अपना हिसाब चुकता कर लें। वे मुझे देशमें सबसे अधिक अज्ञानी और असहिष्णु समझते रहें और मुझे अपनी रायपर कायम रहने दें।

हिन्दी-नवजीवन
२२ जून, १९२४

❀

खतरनाक रिवाज

१२ जूनके 'हिन्दू'में मैंने एक मजमून पढ़ा जो कि मेरे साथकी 'बातचीत'के नामसे प्रकाशित हुआ है। हाँ, मुझे एक सज्जनके साथ बहुत देरतक बातचीतकी बात याद पड़ती है। पर मुझे यह जरा भी ख्याल न था कि वे 'इंटरव्यू' लेनेके लिये आये हैं। मैंने समझा कि उनके दिलमें दरहकीकत कुछ शंकाएँ है और वे उन्हें दूर करना चाहते हैं। इसलिये मैंने बड़े ध्यानसे बड़ी देर तक शान्तिके साथ उनसे बातचीत की और उनके तमाम सवालोंके जवाब दिये। चूंकि मेरे पास वक्त बहुत ही कम रहता है अतएव मैंने इतनी देर तक 'इंटरव्यू' करनेसे जरूर इन्कार कर देता। मेरे पास छिपावकी कोई बात नहीं रहती। अगर लोगोंको मुझसे या मेरे निस्बत कोई बात मालूम हो जाय तो वे उसे प्रकाशित कर देनेके लिये पूरे आजाद हैं। हाँ, मैं यह जरूर नहीं चाहता कि उलट-पुलट या तोड़-मरोड़कर पेश की जाँय। अगर वे छापनेके पहले मुझे बता दें तो मुझे कोई एतराज न हो। पूर्वोक्त 'इंटरव्यू' और कुछ नहीं, मैंने जो कुछ कहा इसका नष्ट-भ्रष्ट खाका है। मिसालके तौरपर जैसे उसमें कहा गया है कि मैंनेकहा हरएक मुसलमान आवारा होता है। लीजिये, मैंने तो किसी सपनेसे भी इसका ख्याल न किया होगा कि हरएक मुसलमान आवारा होता है। हकीम साहबको आवारा नहीं मानता और न इसी तरह अपने सैकड़ो मुसलमान दोस्तोमेंसे किसीको ऐसा समझता हूँ। हाँ मैं कितने ही मुसलमान गुण्डोको तो जानता हूँ। पर किसी आवारा मुसलमानसे काम नहीं पड़ा है। मैं तो हरएक मुसलमानको गुण्डा तक नहीं समझता। मुझपर यह कहनेका इल्जाम लगाया गया है कि सरकार अभी मेरी उतनी परवाह नहीं कर रही है। पर हां, मैंने देशमें एक छः महीने दौरा किया कि उसकी रूह कांप उठेगी। पर मैं एक ओर बड़े अभिमानके साथ यह समझता हूँ कि सरकार कभी मेरे लेखों और कामोंको उदासीन दृष्टिसे नहीं देखती है और दूसरी ओर मेरी नम्रता इस बातका ख्याल नहीं करने देती कि मेरे किये दौरेसे सरकार डर जायगी। हाँ, अगर

किसी भी कोशिशसे सच्ची हिन्दू-मुस्लिम एकता कायम हो जाय तो वह जरूर डर जाय। जो सज्जन मुझसे मुलाकात करने आये थे, वे खादीमें एक धोखेबाजी करने वालेकी बात करते है। मै अपने साथ काम करनेवाले लोगोंसे बातचीत कर रहा था। उसके सुननेका जो अवसर उन्हें मिला उसका यह दुरुपयोग मात्र है। खादीमे धोखेबाजी होनेकी बात चल रही थी। मुझे पता नहीं कि दरअसल कहीं ऐसी धोखेबाजी चल रही है। मैने सिर्फ यहां भारी गलतियोंके ही उदाहरण दिये हैं। इसमें कोई शक नहीं है कि मुलाकाती सज्जनने अच्छे ही भावसे ये बातें लिखी होंगी। पर ऐसे सदाशय मित्र जो कि अपनी जिम्मेवारीको न समझकर काम करते हैं दुराशय प्रतिपक्षियोंसे ज्यादह नुकसान पहुँचाते हैं। अतएव जो लोग मुझसे मिलनेके लिये आते हैं उनसे मेरी प्रार्थना है कि वे तबतक मुझपर मिहरबानी रखें जबतक मै लोगोंकी दृष्टिमे प्रतिष्ठित हूँ। जब मै अप्रतिष्ठित हो जाऊँ तब वे मेरे लेखों और कार्योंमें जो चाहे करें। मै उन लोगोसे भी निवेदन करता हूँ कि जो मेरी मुलाकातकी बातचीत पढ़ा करते हैं कि उन मुलाकातोंपर ध्यान न दिया करें जिन्हे मेरी मंजूरी नहीं मिली हो।

हिन्दी-नवजीवन
२६ जून, १६२४

❀

डाक्टर महमूद और जब्रन धर्मान्तर

हिन्दू-मुस्लिम तनाजे संबंधी मेरे निवेदनमें आये जब्रन धर्मान्तरके सिलसिलेमें मेरे पास कई खत आये है। कुछ तो गुस्सोसे भरे हैं और कुछ गालियोंसे भी। हॉ, श्री माधवन नायरका एक ऐसा खत था जो शान्त-चित्तसे लिखा गया था और जिसमें लेखककी चिन्ता प्रगट होती है। उसमें उन्होने उस बातका विरोध किया था जिस बातका आरोप मैंने डाक्टर महमूदपर किया था। वह पत्र मैंने डाक्टर महमूदके पास भेजकर जवाब मॉगा, जिससे कि पाठकोंके सामने उनका भी कथन पेश कर सकूँ। मगर मेरा खत पहुँचनेके पहले डा० महमूद मेरे नाम इसी सिलसिलेमें एक खत भेज चुके थे, क्योंकि उनके पास भी इसके विरोधमे बहुतेरे पत्र पहुँचे थे। यहाँ मैं डाक्टर महमूदके उर्दू खतका आवश्यक अंश देता हूँ।

"मेरे पास अक्सर हिन्दू अहबाबके खतूत आये है जिनमे वह मुझपर इलजाम लगाते हैं कि मैंने मलाबारके मुतअल्लिक आपको गलत खबर दी। बाज खतूतमे मुझे सख्त गालियॉ भी दी गई हैं। मेरे ख्यालमे उन लोगोंका गुस्सा हक व जानिब है। आपको किसी कद्र गलतफहमी हुई। मैंने आपसे यह अर्ज किया था कि खतना करके जबरदस्ती मुसलमान

वनानेकी मिसाल नही मिलती। सिर्फ एक वाकयाका जिक्र किया गया जो कि मि० एण्ड्रयूजने देखा है। लेकिन उसकी भी तसदीक नहीं हो सकी। बाकी सरपर टोपी पहनाकर, औरतको कुरती पहनाकर, चोटी काटकर मुसलमान बनानेकी तो बहुतसी मिसाले हैं। जो लेख मैंने श्वेबको लिखाया था उसमें भी यही था। मेहरबानी फरमाकर 'यग-इडिया'मे इसकी तरदीद कर दीजिये। वर्ना कुछ असके बाद इसपर भी अखबारातमे बहस शुरू हो जायगी।"

मैं देखता हूँ, मेरे हाथो डा० महमूदके साथ अन्याय हो गया है। मैं तो खतना करके ही जब्रन धर्मान्तर किये गये लोगोंकी बात सोच रहा था, इसी ख्यालसे हिन्दुओके दिलको भारी चोट पहुँची है। जो हो पर और बातोंसे ज्यादह इसी बातने मेरे दिलपर असर डाला है।

डाक्टर महमूदने जिस वक्तव्यका जिक्र ऊपर किया है वह इस प्रकार है—

"जब्रन धर्मान्तर—

(अ) खतना करके। आखो देखा गवाह नहीं। कोई सीधा सबूत नहीं मिलता। कोई मिसाल नही दी गई। हिन्दूओमेसे विश्वासपात्र लोग कहते हैं कि तीन-चार मामले ऐसे हुये हैं। इस तरहकी एक घटनाका सीधा सबूत यही है कि श्री एण्ड्रयूजने एक खतना किये शख्सको देखा था। मैंने उसकी तसदीक नहीं कराई।

(आ) कलमा पढाया जाना

(इ) (१) जब्रन (२) महज डरसे जिसमे दरअसल जबर्दस्ती नहीं की गई हो

(ई) चोटी काटना

(उ) हिन्दू मर्दोंको टोपी पहनाना

(ऊ) हिन्दू औरतोको कुरती पहनाना

(अ) से लगाकर (ई) तकमे अन्दाजन १८०० से २००० लोगो तक (हिन्दुओंके कथनके अनुसार) धर्मान्तरित किये गये। मुसलमान लोग इस सख्याको कुछ सैकडा बताते हैं।"

मैंने सोचा कि मेरा वक्तव्य स्पष्ट है। यद्यपि मैंने श्री एन्ड्रयूजका नाम नहीं लिया था तो भी यह बात सबको मालूम थी कि उन्होने एक ऐसे शख्सका जिक्र किया है जिसका खतना जबर्दस्ती किया गया था। इस बातपर ध्यान रखने मेरे आशयको समझनेमें कोई गलती नहीं हो सकती थी। पर अब मै देखता हूँ कि जब्रन मुसलमान बनाये हुये आदमियोको जाहिरा तौरसे कम तादाद बताकर डाक्टर महमूदपर पक्षपातका दोष लगानेका अवसर लाकर उनको नाजुक अवस्थामे डाल दिया। मुझे इस अनिच्छित गलतीपर अफसोस है। कसमकशके बीच कोई शख्स बहुत सावधानी नहीं रख सकता, न बहुत ठीक-ठीक बात कर सकता है डाक्टर महमूदके साथ न्याय करनेकी कोशिश करते हुये मुझसे उनके साथ अन्याय हो गया है। मैं पाठकोको यकीन दिलाता हूँ कि हरएक बातमे मै वस्तु-स्थितिसे जरा भी दूर नहीं गया हूँ और तमाम अतिरंजित या नमक-मिर्च लगी बातोको मैंने एक ओर हटा दिया है। जो कुछ कागजात मेरे पास है उसमे तमाम पक्षके लोगोंके

खिलाफ भयंकर बातें लिखी हुई हैं। लेकिन हर बातमें मैंने इलजामोंको बहुत ही सौम्य-रूप दे दिया है और जिन बातोंपर मै अपनी राय कायम न कर सका उन्हें सिर्फ उस पक्षकी तरफसे पेश भर कर दिया है और इस तरह उनके इल्जामको बहुत सौम्य बना दिया है।

हिन्दी-नवजीवन
२६ जून, १६२४

❀

बकरीद

बकरीदके त्योहारका समय हिन्दूओ और मुसलमान दोनोके लिये चिन्ताका होता है। यदि हम परस्पर सहिष्णुता और एक दूसरेका लिहाज रखे तो ऐसी स्थिति न हो। जो मुसलमान पशुओकी कुर्बानीको जायज मानते है और इसीलिये जो गो-तककी कुर्बानी करते हैं उसमे हिन्दुओको क्यो दस्तन्दाजी करनी चाहिये ? इसी तरह मुसलमानोको क्यो गायकी कुर्बानी और सो भी इस ढंगसे करनी चाहिये जिससे हिन्दुओके भावोको आघात पहुँचे ? क्यो मुसलमानोको १९२१की उसी शराफतका फिर परिचय न देना चाहिये जब उन्होने अपने हिन्दू-सहवासोके भावोका लिहाज रखनेके लिये खुद ही गायको बचानेका उपाय अपने सिर लिया और दरहकीकत हजारो गायोको बचाया भी, जिससे खुद हिन्दुओने भी तसलीम किया। निश्चय हो बकरीदके दिन मुसलमानोको खास तौरपर हिन्दुओके प्रति प्रेम-भाव पैदा करनेकी कोशिश करनी चाहिये और हिन्दुओको चाहिये कि मुसलमानोके धार्मिक रस्म-रिवाजोका लिहाज रखें, फिर भले ही वे उन्हें कितने ही अप्रिय हो। उसी प्रकार जिस प्रकार कि मूर्ति-पूजा मुसलमानोको अप्रिय होते हुये भी वे उसका लिहाज रखनेकी उम्मीद उनसे करते है। परमात्मा खुद अपने कामके लिये हमको जिम्मेवार मानेगा, हमारे सहवासीके कामके लिये नहीं।

हिन्दी-नवजीवन
१३ जुलाई, १६२४

❀

जैसे वे वैसे आप

'रंगीला-रसूल' नामक न पढ़ने लायक पुस्तिका तथा 'शैतान' नामक निन्दनीय पर्चेके सम्बन्धमें मैंने जो उद्गार प्रगट किये थे उसके सिलसिलेमे आर्य-समाजियोकी तरफसे ढेरके ढेर पत्र आये है। वे मेरी सचाईके तो कायल हैं पर कहते हैं, कुछ

मुसलमान पर्चोंका भी यही हाल है और पहले उन्होंने गाली-गलौज शुरू की तब आर्य-समाजी वैसा ही जवाब बतौर बदलेके देने लगे। पत्र लेखकोंने मेरे पास कुछ ऐसे पर्चे भेजे भी हैं। उनके कुछ हिस्सेको पढ़नेकी व्यथा मैंने सहन की है। उनके कुछ हिस्सेकी भाषा तो दिलको दहला देती है। उन्हें यहाँ उद्धृत करके इन पत्रोंमें कलंकित नहीं करना चाहता। एक मुसलमान-लिखित स्वामी दयानन्दके जीवन-चरित्रकी एक प्रति भी मुझे मिली है। मुझे यह कहते हुए दुःख होता है कि बहुतांशमें उन महान् धर्म-सुधारकका तोड़ा मरोड़ा चरित्र है। उनके किये हुए कामोंपर लेखकने जहर उगला है। एक पत्र लेखक इस बातकी बहुत बड़ी शिकायत करते हैं कि मेरे लेखोंने मुसलमान लेखकों और वक्ताओंका हौसला इतना बढ़ा दिया है कि वे आर्य-समाज और समाजियोंको और भी ज्यादा गाली-गलौज करने लगे हैं। एकने हाल ही हुई लाहौरकी एक सभाका हाल लिखकर भेजा है जिससे आर्य-समाजपर ऐसी-ऐसी गालियोंकी वृष्टि की गयी है कि जिनको लिखते हुए लेखनी काँपती है। यह कहनेकी कोई आवश्यकता नहीं कि ऐसी कारवाइयोंके साथ मेरी कुछ भी हमदर्दी नहीं हो सकती। मैंने जो कुछ अपनी राय आर्य-समाजके बारेमें प्रकाशित की है, उसके होते हुए भी मैं आर्य-समाजके संस्थापकका एक नम्र प्रशंसक होनेका दावा करता हूँ। उन्होंने कितनी ही कुप्रथाएँ हमें दिखायी हैं जो हिन्दू समाजको भ्रष्ट कर रही थीं। उन्होंने संस्कृत विद्याके पठन-पाठनका शौक बतलाया है। उन्होंने अन्ध विश्वासको ललकारा है। अपने शुद्ध चरित्रके द्वारा उन्होंने अपने कालके समाजका स्तर ऊँचा कर दिया है। उन्होंने निर्भयता सिखायी और कितने ही निराश होनेवाले नवयुवकोंमें नयी आशाका संचार किया और न मैं उनकी राष्ट्रीय सेवासे बेखबर हूँ। आर्य-समाजने राष्ट्र-सेवाके लिए कितने ही सच्चे और स्वार्थ-त्यागी कार्यकर्ता दिये हैं उन्होंने हिन्दुओंमें स्त्री-शिक्षाका जितना प्रचार किया है उतना ब्रह्म समाजको छोड़कर शायद ही किसी हिन्दू संस्थाने किया हो। कुछ अनजान लोगोंने यहाँतक कह डाला है कि मैंने श्रद्धानन्दजीके बारेमें वे बातें इसलिए लिखी हैं कि वे मेरी बातोंकी आलोचना किया करते हैं। परन्तु उनका यह दोषारोपण मुझे उनके गुरुकुलमें किये गये मार्ग-दर्शक कार्यको फिरसे स्वीकार करते हुए नहीं रोक सकता। ऐसी हालतमें मैं जहाँ एक ओर आर्य-समाज, सत्यार्थप्रकाश, ऋषि दयानन्द और स्वामी श्रद्धानन्दके विषयमें प्रकाशित अपने उद्गारोंका एक भी शब्द वापस लेना नहीं चाहता, वहाँ दूसरी ओर मैं फिर दुहराता हूँ कि मैंने बिल्कुल मित्र-भावसे वह समालोचना की है और इस अभिलाषासे की है कि समाज उन त्रुटियोंसे मुक्त होकर जिनकी ओर मैंने उसका ध्यान दिलाया है, अधिक सेवा कर सके। मैं चाहता हूँ कि वह समयके साथ कदम बढ़ाते हुए चले, खंडन-मंडन वृत्तिको छोड़ दे और अपनी रायपर कायम रहते हुए दूसरे सम्प्रदायवालोंके साथ उसी सहिष्णुताका परिचय दे जिसका दावा वह खुद अपने लिए करता है। मैं चाहता हूँ कि वह अपने कार्यकर्ताओंपर निगाह रखे और तमाम कलंक लगानेवाले लेखों-पत्रोंको बन्द कर दें।

यह कोई जवाब नहीं है कि मुसलमानोंने पहले इस निन्दा कार्यको किया है। मुझे पता नहीं कि उन्होंने किया या नहीं। पर मैं जरूर जानता हूँ कि अगर उनके बातोंके जवाबमें वैसी ही बातें कहीं जाती तो थककर वे अपने आप चुपचाप हो जाते। मैंने तो समाजियोंसे शुद्धि तकको छोड़ देनेको नहीं कहा है। पर मैं उनसे और मुसलमानोंसे भी यह प्रार्थना जरूर करूँगा कि वे अपने शुद्धिके वर्तमान ख्यालपर फिरसे जरूर विचार करें।

उन मुसलमान लेखकों और वक्ताओंसे जिनके निस्वत मेरे पास खत आये हैं, यह कहना चाहता हूँ कि अपने प्रति-पक्षीको मनचाही गालियाँ देकर वे न तो अपनी नेकनामीको बढ़ाते हैं और न अपने मजहबको। आर्य-समाज और समाजियोंको गालियाँ देकर वे न तो कुछ अपना फायदा कर सकते हैं और न इस्लामकी खिदमत कर सकते हैं।

हिन्दी-नवजीवन
१३ जुलाई, १९२४

❀

देहली और नागपुर

देहलीने अपने मुखपर कालिख लगा लिया है। देहलीके दंगे इस बातको सूचित करेंगे कि वहाँ असहयोगकी हस्ती नहीं रह गयी है क्योंकि सरकारके साथ असहयोग करनेका अभिप्राय है लोगोंमें परस्पर स्नेह होना। लेकिन देहलीमें पिछले सप्ताह सरकारकी बनिस्बत हमारे आपसमें ही अधिक असहयोग दिखायी दिया। महासभा और खिलाफत कमेटीके लोग लोगोंमें शान्ति न स्थापित कर सके। पुलिस और फौजको उसका श्रेय प्राप्त होनेवाला था। इसका गौरव उन्हें और शर्म हम हैं। मुझे जो चिट्ठियाँ मिली हैं उनसे मालूम होता है कि हमारे स्वयंसेवक लोग शान्ति कायम करनेकी कोशिशमें गड़बड़ा गये और उन्होंने उन लोगोंकी सेवा-सुश्रुषाका भार अपने सिर लिया जो पुलिसके द्वारा नहीं बल्कि अपने आपसमें लड़कर घायल हुये थे।

इस सारी खुराफातका कारण बताया जाता है कुछ हिन्दुओंके द्वारा एक मुसलमान युवकके पीटे जानेकी खबर। अगर वह लड़का मर भी गया होता तो कौन बात थी? मुसलमान लोग हाल ही कायम हुई पंचायतों या सरकारी अदालतोंके द्वारा उसका इलाज कर सकते थे।

अच्छा मान लिजिये कि हिन्दुओंने एक मुसलमान लड़केको पीटा और उसपर कुछ मुसलमानोंने हिन्दुओंपर हमला किया, तब दूसरे हिन्दुओंने, फिर कोई भी

हो, क्यों उसके बदलेमें हाथ उठाया ? क्योंकि जो चिट्ठियाँ मुझे प्राप्त हुई हैं उसके अनुसार यह लड़ाई तमाम बस्तीमें जहाँतक हिन्दुस्तानी बसे हुए थे, फैल गयी थी। उन्हीं खतोमे यह भी लिखा है कि अगरचे लड़ाई इतनी फैल गयी थी तो भी देहली निवासियोंका प्रधान भाग उससे अछूता रहा, यही नहीं बल्कि ऐसा भी हुआ कि हिन्दुओंने मुसलमानोको पनाह दी है और मुसलमानोने हिन्दुओंको। हाँ, इसमें कोई भी शक नहीं कि यह बात सराहनीय है। पर बात यह है कि देहलीका प्रधान भाग हुल्लड़बाजोको रोक नहीं सका। सच बात तो यह है कि हमलोग अभी इन उपद्रवी शक्तियोंपर कब्जा नही कर पाये है।

नागपुरका भी यही हाल मालूम होता है। अबतक वहाँसे बहुत थोड़ी खबरें आ पाई है। पर यह बात स्पष्ट है कि नागपुरके हिन्दू और मुसलमान हम सबलोगोंके एक होकर सरकारसे लड़ने (यह लड़ाई शान्तियुक्त ही हो सकती है) की अपेक्षा आपसमे दिल खोलकर लड़ना ज्यादा फायदेमन्द समझते हैं।

इस तरह अगर देहली और नागपुरमे किसी भी रूपमें अधिकांश लोगोंकी प्रकृतिके चिन्ह हो तो हमें बहुत समयके लिए हिन्दू-मुस्लिम एकताको नमस्कार कर लेना होगा और इसलिए आजादीके लिए जोर-शोरका कोशिश करनेकी अपेक्षा सदैव गुलामीमे ही रहना मंजूर होगा।

मगर मुझे मायूसी नहीं होती। मौलाना शौकतअलीकी तरह मेरा यह विश्वास है कि ये झगड़े चन्दरोजा है और थोड़े ही दिनोमें दोनो जातियां अवश्य एक शान्तिमय कार्यक्रमके अनुसार काम करने लगेंगी।

यदि हम सचमुच किसी ऐसे कार्यक्रममें लग जाना चाहते हैं तो मैं देहली और नागपुर दोनोंके महासभावादी और खिलाफतियोंको इत्तला दे देना चाहता हूँ कि किसी भी फरीकको किसी भी हालतमे अदालतोका दरवाजा खटखटानेकी जरूरत नहीं है और ये तमाम झगड़े पंचायतमे फैसला किए जाँय। वकील लोग फिर वे चाहे वकालत करते हो या न करते हो इस बातमे कुछ मदद कर सकते हैं। बस वे इस मामलेकी अदालतमे पैरवी करनेसे इन्कार कर दें और दोनो फरीकको दिखावें कि इससे कुछ भी हासिल नहीं हो सकता। उलटा शायद नुकसान ही हो। वे उन्हें यह यकीन दिला सकते हैं कि यदि आप सचमुच सच्ची शान्ति चाहते हो तो वह अदालतोंके जरिये हरगिज नहीं मिल सकती।

हिन्दी-नवजीवन
२० जुलाई, १९२४

दुःखद चित्र

अमृतसरसे एक मुसलमान सज्जन बड़े दुःखके साथ लिखते हैं—

"आजकल उत्तर भारत और पंजाबमें हिन्दुओं और मुसलमानोंके दो-दो हाथ होनेके समाचार रोज सुनाई देते हैं। इससे यह साबित होता है कि दोनों जातियाँ अपने देशमें उठनेवाले प्रश्नका निपटारा करनेमें असमर्थ हैं। यही नहीं, बल्कि अनेक वर्षोंके लोगोंके बने इस विशाल देशके राज्यकी बागडोर अपने हाथोंमें लेनेके अयोग्य हैं। दोनोंका विरोध मिटानेका आपका उद्योग बेशक सफल हुआ था। पर आप जहाँ जेलमें पहुँचे कि तुरत ही झगडालू लोगोंने सिर उठाया। आपके जेल जानेके पहले जहाँ-जहाँ दोनों जातियोंमें प्रेम-भाव और समभाव था वहाँ-वहाँ आज फूट और दुश्मनी फैली हुई है। पंजाबके तमाम बड़े-बड़े शहर इन दोनों जातियोंकी लड़ाईके अखाड़े हो गये हैं और यह आशा नहीं दिखायी देती कि भूतकालका मीठा सम्बन्ध फिर कभी दिखायी देगा।

क्या इस रोगके असाध्य होनेके पहले आप कुछ इलाज नहीं कर सकते? कृपा करके पंजाब पधारिये और खुद अपनी आंखों सब हाल देखिये। जबतक आप फिर उस स्थितिको नहीं ला पावें तबतक आपकी खादीकी हलचल फजूल है। कहाँ १९१९ का अमृतसर कहाँ आजका! अमृतसरकी आबादी कोई दो लाख है। पर उसमेंसे ५० आदमी भी मुश्किलसे दिखायी देंगे। सो भी इसी कारण कि वे महासभाकी समितियोंके कोई न कोई पदाधिकारी हैं और यह सारी स्थिति हिन्दू और मुसलमानोंकी फूटका परिणाम है। आप इस मूल कारणपर कुल्हाड़ी चलाइये, बस दूसरी सब बातें अपने आप दुरुस्त हो जायँगी। अफसोस! संगठनकी बुनियाद किसी बुरी साइतमें रखी गई मालूम होती है।"

पत्र-लेखक द्वारा चित्रित यह चित्र निःसन्देह कुछ अधिक काला है। पंजाबमें अगर हिन्दुओं और मुसलमानोंमें रोज खुल्लम-खुल्ला दो-दो हाथ होते हैं तो वहाँ रहना कठिन हो गया होगा। पर मुझे इस बातमें कोई सन्देह नहीं कि बाह्य दृष्टिसे तो पंजाब दूसरे किसी भी प्रान्तके बराबर ही शान्त है। फिर यह सज्जन सारा दोष संगठनके ही मत्थे मढ़ते हैं। यह उनकी भूल है। रोग तो था ही। हाँ, संगठनके कारण वह बढ़ जरूर गया है। दोनों जातियाँ अपनी-अपनी समता खो बैठी हैं।

यदि पंजाबियोंने हिन्दू-मुसलमान तनाजेके कारण खादी छोड़ दी हो तो खादी और देशके प्रति उनका प्रेम दिखौआ भर रहा होगा, परन्तु मैं इस बातको नहीं मानता कि देश-भक्ति औरोंसे कम है। इसलिए खादी कम होनेका कारण कहीं और खोजना होगा। इसका स्पष्ट कारण तो यह है कि लोगोंका यह विश्वास जाता रहा कि खादीके बिना स्वराज्य नहीं मिल सकता। मलमल तथा केलिकोसे सूचित ऐश व आरामकी जिन्दगी बसर करनेकी इच्छा बढ़ गयी है। तमाम प्रान्तोंमें पंजाब ही ऐसा है जो अगर चाहे तो विदेशी कपड़ेका बहिष्कार आज ही कर दे। पर वह चाहता ही नहीं। मैंने लोगोंको यह कहते हुए सुना है कि कितने ही हिन्दू इसलिए खादी पहननेसे इनकार करते हैं कि वह मुसलमानोंकी बुनी होती है और मुसलमान इसलिए इन्कार

करते हैं कि उन्हें स्वराज्यसे कोई वास्ता नहीं वे तो अंग्रेजोंको निकाल देना चाहते हैं और उनकी जगह पुराना मुसलमानी राज्य कायम करना चाहते हैं और यह भी कहा जाता है कि अगर हिन्दू और मुसल्मान दोनों एक सामान्य ध्येयके लिए चर्खेके सूत्रसे बँध जॉय तो पुराना राज्य नहीं कायम किया जा सकेगा। मगर यह सब फटे दिमागकी भाप है। ऐसी बातोंका विचार करने तककी फुरसत गरीब हिन्दू और मुसलमानोंको नहीं होती। वे तो खुशी-खुशी चर्खा चलाकर २–४ रुपयेकी आमदनी बढ़ानेके लिए उत्सुक रहते हैं।

परन्तु खादी कम होनेकी तथा पूर्वोक्त पत्रमें जो बातें बढ़ावर कही गयी हैं उन्हें छोड़ दीजिये तो भी इस बातसे कोई इन्कार नहीं कर सकता कि दोनों जातियोंमें वैमनस्यने बड़ा गम्भीर रूप धारण कर लिया है। क्या इस बातसे कोई आंखें मूंद सकता है कि देहलीमें नेता लोग अपना वजन और पहुँच खो बैठे हैं?

पर खुशकिस्मतीसे फिर अक्लमन्दीके दिन आते दिखायी देते हैं। जाटों और कसाइयोंको एक दूसरेका सिर फोड़नेकी अपनी बेवकूफी दिखायी दी है और कहते हैं कि उनमें सुलह हो गयी है। पर सबसे आशाजनक खबर तो दूसरे पत्रोंसे मिलती है। उनमें यह खबर है कि एक ओर जहाँ खून खराबी करनेपर तुले हुए दीवाने थे वहाँ दूसरोंकी जान बचानेका निश्चयकर रखनेवाले समझदार स्त्री-पुरुष भी वहाँ थे और ऐसी मिसाल एक दो ही नहीं बल्कि इतनी ज्यादा तादादमें है कि जिससे जाना जाता है कि दिल्लीमें जितनी इच्छा लड़ाईमें थी उतनी ही शांतिकी भी थी। लड़ाई स्वाभाविक नहीं बल्कि वह तो निरोग शरीरपर उठनेवाली गाँठकी तरह क्षणिक है। पर शान्ति स्वभाविक है, चिरस्थायी है। दोनो जातियाँ यदि एक बार इस बातका निश्चय कर लें कि हम एक दूसरेके धार्मिक रिवाजोंका लिहाज रखेंगे तो फिर कोई बात मुश्किल नहीं। मेरे पंजाब जानेके विषयमें यह बात छिपी नहीं रह गयी है कि मेरा दिल उन जगहोंपर जानेके लिए तड़प रहा है, जहाँपर तनाजा फैला हुआ है। इच्छा तो अपार है। सिर्फ शरीर दिलको पीछे हटाता है। जहाँ मैं देखूंगा कि अब सफर करनेमें तन्दुरुस्तीके लिए ज्यादा खतरा नहीं है फौरन मौलाना शौकत अलीके साथ सिंध और पंजाब जानेका इरादा करता हूँ।

हिन्दी-नवजीवन
२७ जुलाई, १९२४

हिन्दू–मुस्लिम एकता

देहलीके हालके फसादोंपर प्रकाशित हकीम अजमल खाँका वक्तव्य जिस किसीने पढ़ा होगा वह उसमे छिपे गहरे असन्तोषको मालूम किये बिना न रहा होगा। कमसे कम उसका एक अंश दिये बिना मैं नहीं रह सकता।

"देहलीके फसादोंके वक्त जो कुछ वाकयात हुये उनमें सबसे ज्यादा शर्मनाक और दिल दहलानेवाले वाकयात हैं—औरतोंपर दुष्टतापूर्ण और नामर्दाना हमले होना। जहाँ तक मुझे मालूम हुआ एक ही मुसलमान महिलाके साथ हिन्दुओंने दुर्व्यवहार किया है, परन्तु इससे ज्यादा बुरी बात तो यह है कि १५ता०के फसादके वक्त कुछ ऐसे लोग जो दीने-इस्लामके पुजारी होनेका दावा रखते हैं। सिर्फ हिन्दू मंदिरपर हमला करके और मूर्तियोंको तोड़ फोड़ कर ही सतुष्ट नही हुये बल्कि औरतों और बच्चोंपर भी नामर्दाना हमला करने में न सकुचाये। स्त्री-जातिकी पवित्रता, इज्जत तथा हुर्मतके प्रति अपने हम-दीन लोगोंके इस दुष्ट भावके ख्याल मात्रसे मुझे घोर मनस्ताप होता है और मेरी रूह कांप उठती है। ऐसे गुनाहगारोंकी जितनी ही निन्दा की जाय थोड़ी है और मैं तमाम सच्चे मुसलमानोंसे अपील करता हूँ कि वे मुक्तकंठसे बिना आगा पीछा सोचे इस नीचताकी निन्दा करें। मैं जमाअत-उलेमा और खिलाफत कमेटियोंको दावत देता हूँ कि वे उठ खड़ी हो जायँ और इस्लामकी सारी श्रेष्ठताको ऐसी जंगली निरंकुशताकी निन्दा करने और आयंदा ऐसा न होनेमें लगावें। सच्चे मुसलमानकी हैसियतसे ऐसी करतूतोंको बिल्कुल नामुमकिन कर देना हमारा नैतिक फर्ज है और अगर हम इसमें कामयाब न हों तो हम इस कौमी आजादी और स्वराज्यकी कोशिशोंमें हारे हुये ही हैं।,,

एक सज्जन हमें उलहना देते है कि हकीम साहबने जिन हमलोंका जिक्र किया है उनपर आपने अपने वक्तव्यमें कुछ भी नहीं कहा। फसादकी बिल्कुल पहली खबरों-के आधारपर मैंने अपनी टिप्पणी लिखी थी। उनमें इन हमलोंका कोई भी जिक्र न था। उसके बाद हालतने बुरा रंग पलटा। यह खबर इतनी गम्भीर थी महज डरा-वने तारोंपर सर्व-साधारणके सामने टीका टिप्पणी नही की जा सकती थी। इसलिये मैंने देहलीके मित्रोंसे चिट्ठीपत्री शुरू की। परन्तु अबतक मै किसी काबिल टीका टिप्पणी करनेकी हालतमे नहीं पहुँचा हूँ। खुशकिस्मतीसे मौलाना मुहम्मद अली अब दिल्ली पहुँच गये है। वे तहकीकात कर रहे हैं और उन्हें मैंने सुझाया है कि यदि किसी तरह मुमकिन हो तो महासभाके सभापतिके नाते अपनी आरंभिक तह-कीकातकी रिपोर्ट प्रकाशित करें। इस मामलेमे मुझे अपने कर्तव्यका पूरा ख्याल है। फिलहाल मेरा स्थान वहीं मौलाना साहबके साथ है। लेकिन डाक्टरोंकी सलाहसे अभी रुक रहा हूँ। अबतक जो कुछ पथ्य-परहेज करना पड़ता है वह सब शायद जरूरी न हो, क्योंकि यद्यपि मै बाहर आता जाता नहीं हूँ तो भी काम बहुत कुछ कर सकता हूँ। लेकिन जहाँ तक मुमकिन है मैं खतरेको बचाना चाहता हूँ। जो मित्र मुझे इस अवसरपर मेरे कर्तव्यकी याद दिलाते हैं उन्हें मैं यकीन दिलाता हूँ कि मैंने बिला शर्त अपनेको मौलाना मुहम्मद अलीके विचारपर छोड़ दिया है और मैंने यह कह दिया है कि यदि मेरी जरूरत आपको देहलीमें तुरंत मालूम हो तो मेरी तन्दु-रुस्तीका ख्याल न करना और यों हीं हर हालतमे मैं जल्द ही दिल्ली जानेकी तैयारी कर रहा हूँ। पर अगर मौलाना मुहम्मद अली मेरा वहाँ जल्द आना जरूरी न सम-

झते हों तो मै अगस्तके अन्ततक सफर करना नहीं चाहता। अहमदाबादमें मेरी तन्दुरुस्ती बिगड़ गई इसीलिये श्री विठलभाई पटेलसे अनुरोध किया गया है कि आप बम्बई कारपोरेशनकी ओरसे मुझे दिया जानेवाला अभिनन्दन-पत्र अगस्तके अन्तमें देनेकी तजवीज करे। परन्तु यदि दिल्ली जानेकी जरूरत होगी तो मैं बम्बई जानेके पहले वहाँ जानेमे आगा-पीछा न करूंगा।

हिन्दी-नवजीवन
३ अगस्त, १६२४

❀

यह उपाय ?

एक पत्र लेखक हिन्दू-मुसलमान-समस्याका निपटारा इस प्रकार सुझाते हैं:—

"मुसलमान हिन्दुओंका लिहाज तभी करेंगे जब उन्हे खबर पड़ेगी कि हिन्दू शरीर बलमे उनका मुकाबला कर सकते हैं और उसी अवस्थामें दोनोमें एकता होनेकी सम्भावना होगी। इसलिए आपको ऐसी कोशिश करनी चाहिए जिससे हिन्दू–जातिका शरीर बलवान हो। हरएक गॉव और शहरमे अखाडे खोलना और पौष्टिक भोजन देना चाहिए। आप उन्हे उपदेश दीजिये कि वे लड़के लड़कियोंकी शादियोंमे बहुत खर्च न करे और २१वर्ष तक ब्रह्मचर्यका पालन करे। ऐसा करके आप हिन्दू–जातिकी भारी सेवा करेंगे और फलतः स्वराज्य भी तुरन्त मिल जायगा।"

इस महाशयकी इच्छा तो ऐसी मालूम होती है कि हिन्दू और मुसलमानको पशु-कोटिमे उतारकर दोनोकी एक दूसरेसे मुठभेड़ होती रहे। पर वे इस बातको भूल जाते हैं कि पशुओमे प्रेम नहीं होता। हॉ, मै यह जरूर चाहता हूँ कि तमाम हिन्दू बलवान हो। मैं यह भी चाहता हूँ कि वे दुनियांके किसी आदमीसे न डरें। ये बातें केवल हिन्दू-मुस्लिम ऐक्यके लिये नहीं, बल्कि इस ऐक्यके बाद राष्ट्र अविचल बना रहें, इसके लिये भी आवश्यक है। पर मै जानता हूँ कि केवल शरीर-बलसे एकता नहीं हो सकती। यदि हम दोनोमे आपसमे प्रेम न हो तो हमेशा चूहे-बिल्लीकी तरह हमारे अन्दर बैर-भाव रहेगा। और मैं अपना जीवन ऐसी स्थिति पैदा करनेके लिये अर्पण करना नहीं चाहता कि हथियार बांधकर दोनो जातियाँ एक दूसरेके हमलोको रोकें। मैं तो चिरकालीन शान्ति चाहता हूँ। वह केवल पर-धर्म सहिष्णुतासे ही पैदा हो सकती है। यह बात तो अब पुरानी पड़ गई। हम केवल यही चाहते हैं कि क्या अंग्रेजोंका और हमारा तथा क्या हिन्दुओका और क्या मुसलमानोका हृदय-परिवर्तन हो। दूसरी सब बाते अपने आप दुरुस्त हो जायंगी।

पत्र-लेखक शरीर-बलकी प्राप्ति ब्रह्मचर्य बताते हैं। शरीर-बल प्राप्त करनेके लिये आत्म-संयम करनेका विचार करना मानो हीरेको कौड़ीके दाम बेचना है। क्या बृटिश सोल्जर सैन्डो बननेके लिये आत्म-संयमका पालन करते हैं ? पत्र-लेखकसे मैं सिफारिश करता हूँ कि उनके उपायोसे निकलनेवाले परिणामोका हिसाब वे लगा देखे। हमारे पास दस हजार सच्चे ब्रह्मचारी हो तो क्या बात हो ? ऐसी सेनाके जरिये तो हम मुसलमान, अंग्रेज आदि सबके हृदयको जीत सकते हैं। क्या यह बात इन महाशयकी समझमे नही आती कि उनके ब्रह्मचारी उस तरीकेसे लड़नेसे इन्कार कर देगे जो उन्होने सुझाया है ? ऐसा करनेको उन्हें जरूरत भी नही होगी।

हिन्दी-नवजीवन
१० अगस्त, १९२४

ॐ

जान-बूझकर किया गया अपमान

यदि मुरादाबादके जिला मजिस्ट्रेटकी विज्ञप्तिपर विश्वास किया जा सके तो उसमे जो समाचार प्रकाशित हुए है वे बड़े दिल दहलानेवाले और बेकरारी पैदा करनेवाले हैं। कहा जाता है कि दो मन्दिर अपवित्र किये गये हैं और वहाँ एकत्रित हिन्दुओपर हमला किया गया था। इस प्रकार जान-बूझकर मन्दिरोको अपवित्र करनेका कोई कारण नहीं बताया जाता। अमेठी, जिला लखनऊमे कहा जाता है कि ऐसा ही हुआ है। वहाँ कहते है मैजिस्ट्रेटके हुक्मके खिलाफ हिन्दुओने शंख फूके। यदि उन्होने ऐसा किया तो यह काम मैजिस्ट्रेटका था कि वह उन शंख बजानेवालोको सजा देता, किन्तु मुसलमानोका यह काम हरगिज न था कि वे एक बड़ी तादादमे मन्दिरमें घुस जाते और हमला करते और उसे अपवित्र कर देते। इसमे कोई शक नहीं कि ऐसे हमलोको मदद करनेवाली कोई संगठित जमात है। यह जमात उन लोगोकी है जो हिन्दू-मुसलमानोमे मनमुटाव पैदा करते है और हिन्दू-मुस्लिम-एकतामे जान बूझकर रोड़े डालते है। समझमे नहीं आता कि ऐसे काम करनेवालोको इससे क्या हासिल होगा। इससे इस्लामकी इज्जत नहीं बढ़ सकती और वह लोकमान्य नहीं हो सकता। यदि किसी दुनियावी लाभ पानेके लिये ऐसे काम किये जाते हैं तो वह भी नहीं मिल सकता। यदि वे ऐसे उपायोसे सरकारकी मिहरबानीकी आशा रखते हो तो उनका यह भ्रम थोड़े ही दिनोमे दूर हो जायगा।

हिन्दी-नवजीवन
२४ अगस्त, १९२४
१२

गुलबर्गाका पागलपन

पिछले सप्ताहमें मैंने इशारा किया था कि हिन्दुओंके मन्दिरोंके अपवित्र करनेकी जो हवा चल रही है, उसकी सहायताके लिये जरूर कोई संगठित जमात है। गुलबर्गा यह ताजी मिसाल है। हिन्दुओंकी तरफसे यदि मुसलमान भड़काये भी गये हों तो इससे क्या ? क्या मुसलमानोंका इस तरह टूट पड़ना भयानक नहीं दिखाई देता ? मन्दिरोंका अपवित्र करना किसी भी हालतमें समर्थनीय नही कहा जा सकता। मौलाना शौकत अलीने जब सांभर और अमेठीका हाल सुना तो वे चौंके और गरज कर कहा कि अगर किसी दिन हिन्दूलोग मुसलमानोंकी मसजिदोंको नापाक करके इसका बदला लें तो वे ताज्जुब न करें। मौलाना साहबके इन क्रोध-पूर्ण वचनोंको सुनकर मुमकिन है कि हिन्दूलोग फूल उठें, या उनके दिलको गुदगुदी होने लगे। पर मुझे ऐसा नहीं होता और मैं हिन्दुओंको सलाह देता हूँ कि वे भी अपनेको इससे बचावें। वे इस बातको अच्छी तरह समझ लें कि जब-जब मुसलमान धर्मान्ध होकर हिन्दुओंपर टूट पड़े हैं या टूट पड़ते है तब-तब बहुतेरे हिन्दुओंसे अधिक कहीं मेरे दिलको चोट पहुँचा है और पहुँचता है। मुझे इस बातका पूरा ध्यान है कि मुझे इस बारेमें मेरी जिम्मेदारी क्या है। हाँ, मैं यह जानता हूँ कि बहुतेरे हिन्दुओंका दिल यह कहता है कि ऐसे बहुतेरे दंगे व फसादका जिम्मेदार मैं हूँ। क्योंकि, उनका कहना है कि सोई हुई मुसलमान जनताको जाग्रत करनेमें मेरा ही गहरा हाथ है। मैं इस इल्जामको पसन्द करता हूँ और यद्यपि मुझे अपनी इस कृतिपर जरा भी पछतावा नही होता, तथापि मैं जानता हूँ कि उनकी दलील पुरजोर है। इसलिये अगर और किसी वजहसे नही तो इसी अपनी बढ़ी हुई जिम्मेवारीके ख्यालसे ही मुझे, बहुतेरे हिन्दुओंकी अपेक्षा उन मन्दिरोंके अपवित्र किये जानेकी दुर्घटनाओंपर अधिक दुःख होना चाहिये। मैं मूर्तिपूजक भी हूँ और मूर्ति-भंजक भी हूँ, पर उस अर्थमें जिसे मैं इन शब्दोंका सही अर्थ मानता हूँ। मूर्ति-पूजाके अन्दर जो भाव हैं मैं उसका आदर करता हूँ। मनुष्य जातिके उत्थानमें उससे अत्यन्त सहायता मिलती है और मैं अपने प्राण देकर भी उन हजारों पवित्र देवालयोंकी रक्षा करनेका सामर्थ्य अपने अन्दर रखना पसन्द करूँगा जो हमारी इस जननी जन्म-भूमिको पुनीत कर रहे हैं। मुसलमानोंके साथ जो मेरी मित्रता है उसके अन्दर यह बात पहले ही से ग्रहीत की हुई है कि वे मेरी मूर्तियों और मेरे मंदिरोंके प्रति पूरी-पूरी सहन शीलता रखेंगे। मैं मूर्ति भंजक इस मानेमें हूं कि मैं उस धर्मान्धताके रूपमें छिपी सूक्ष्म मूर्ति-पूजाका सिर तोड़ देता हूँ, जो कि अपनी ईश्वर-पूजाकी विधिके अलावा दूसरे लोगोंकी पूजा विधिमें किसी गुण और अच्छाईको देखनेसे इनकार करती है। इस किस्मकी सूक्ष्ममूर्ति पूजा बुत-परस्ती ज्यादह घातक है, क्योंकि यह उस स्थूल और प्रत्यक्ष पूजासे जिसमें कि एक पत्थरके टुकड़े या सुवर्णकी मुर्तिमें ईश्वरकी कल्पना कर ली जाती है अधिक सूक्ष्म और धोखा देनेवाली है।

हिन्दू-मुस्लिम-ऐक्यके लिये यह आवश्यक है कि मुसलमान लोग आपद्धर्मके तौरपर नहीं, व्यवहार नितिके तोरपर नही बल्कि अपने मजहबका एक अंग समझ कर दूसरोंके मजहबके साथ सहिष्णुता रखे तबतक जबतक कि वे लोग अपने-अपने मजहबोंको सच्चा मानते रहें। इसी तरह हिन्दुओंसे भी यह आशा की जाती है कि वे अपना धर्म और ईमान समझकर दूसरेके धर्मोंके प्रति उसी सहिष्णुताका परिचय दें—फिर हिन्दुओंको अपनी भावनाके अनुसार वे चाहें कितने ही तिरस्कारके योग्य मालूम हों। इसलिये हिन्दुओंको चाहिये कि वे बदला लेनेकी इच्छाको अपने दिलोंमें जगह न दें। सृष्टिकी उत्पत्तिसे लेकर आजतक हम बदलेकी अर्थात् हिंसाकी आजमायश करते आ रहे हैं और अबतकका तजुरबा हमें बतलाता है कि वह बुरी तरह बेकार साबित हुई। उससे जहरीले असरसे हम आज बुरी तरह छटपटा रहे हैं। जो कुछ हो, पर हिन्दुओंको चाहिये कि मन्दिरोंके तोड़े जानेपर भी वे मसजिदोंकी ओर उंगली तक न उठावें। यदि वे बदलेका अवलम्बन करेंगे तो उनकी बेड़ियाँ और भी मजबूत हो जायंगी और ईश्वर जाने क्या-क्या दुर्गति उनकी होगी। इसलिये हजारों मन्दिर तोड़-फोड़कर मिट्टीमें क्यों न मिला दिये जाँय, मैं एक भी मसजिदको न छूऊंगा और इस तरहके दीनके दीवाने लोगोंके दीनो-ईमानसे अपने धर्म-कर्मको ऊंचा साबित करने की उम्मीद रक्खूंगा। ऐसे समय यदि मैं सुनूँगा कि पुजारी लोग अपनी-अपनी मूर्तियोंकी रक्षा करते हुए सुरपुरको चले गये तो मेरा कलेजा उछल उठेगा। ईश्वर घट-घट व्यापी है। वह मूर्तिमें भी विद्यमान है फिर भी वह अपने और अपनी मूर्तिके अपमान और तोड़-फोड़को चुपचाप सहन कर लेता है। पुजारियोंको भी चाहिये कि वे अपने भगवानकी तरह अपनी मन्दिरकी रक्षाके लिये कष्ट सहन करें और मरना सीखें। यदि हिन्दू लोग बदलेमें मसजिदें तोड़ने लगेंगे तो वे अपनेको भी उन्हीं लोगोंकी तरह धर्मान्ध साबित करेंगे जो कि मन्दिरोंको अपवित्र करते हैं और तिसपर भी अपने धर्मकी रक्षा तो वे हरगिज़ न कर सकेंगे।

अब मै उन मुसलमानोंसे कहता हूँ कि जो छिपे हुए हैं और जो इन मन्दिरोंके तोडनेमें भीतर ही भीतर शरीक हैं—"याद रक्खो, इस्लामकी जाँच तुम्हारी करतूतोंसे हो रही है। मैंने अभी तक एक भी ऐसा मुसलमान नहीं देखा है जिसने इन हमलोंकी ताईदकी हो—फिर वे भले किसीके उभाड़े जानेपर क्यों न किये गए हों। मुझे जहाँ तक दिखाई देता है, हिन्दुओंकी तरफसे, अगर हो तो, आपको उभड़नेका मौका बहुत ही कम दिया गया है। पर अच्छा, फर्ज कीजिये कि बात इसके खिलाफ हुई है अर्थात् हिन्दुओंने मुसलमानोंको दिक करनेके लिये मसजिदके नजदीक बाजे बजाए और यहाँ तक कि एक मीनार परसे एक पत्थर उखाड़ लिया। तो भी मैं कहनेका साहस करता हूँ कि मुसलमानोंको मन्दिरोंको अपवित्र न करना चाहिये था। बदलेकी भी आखिर हद होती है। हिन्दूलोग अपने देवालयोंको अपने जानसे अधिक मानते हैं। हिन्दुओंके जानका नुकसानका तो ख्याल किया जा

सकता है। पर उनके मन्दिरोंको हानि पहुँचाने का नहीं। धर्म जीवनसे बढ़कर है। इस बातको याद रखिये कि दूसरे धर्मोंके साथ तात्विक तुलना करनेमे चाहे किसीका धर्म नीचा उतरता हो, परन्तु उसे तो अपना वह धर्म सबसे सच्चा और प्रिय ही मालूम होता है। परन्तु जहाँ तक अनुमान पहुंचता है हिन्दुओंकी तरफसे मुसलमानोंको उभाड़नेका मौका ही नहीं दिया गया है। मुलतानमे दो मन्दिर अपवित्र किये गये है, उस समय उन्हें हिन्दुओंने कहाँ उभाडा था? मेरे हिन्दू-मुस्लिम तनाजेवाले लेखमे हिन्दुओंके संबन्धमे जो मसजिदोंको अपवित्र करनेकी बात कही गई है उसके सबूत एकत्र करनेकी कोशिश मै कर रहा हूं। परन्तु अबतक मुझे उसका कुछ भी सबूत नही मिला है। अमेठो, सांभर और गुलबर्गाकी जो खबरें प्रकाशित हुई हैं, ऐसे कामोंको करके आप इस्लामकी कीर्तिको बढ़ाते नहीं हैं। अगर आप इजाजत दें तो मै कहूँगा कि इस्लामके इज्जतका मुझे उतना ही ख्याल है जितना मुझे अपने मजहबका है। यह इसीलिये कि मै मुसलमानोंके साथ पूरी, खुली और दिली दोस्ती चाहता हूं। पर मै यह कहे विना नहीं रह सकता कि ये मन्दिरोंको अपवित्र करनेकी घटनायें मेरे हृदयके टुकड़े-टुकड़े कर रही हैं।

देहलीके हिन्दुओ और मुसलमानोंसे मै कहता हूँ—"यदि आप इन दो जातियोंमें मेल मिलाप करना चाहते हों तो आपके लिये यह अनमोल अवसर है। अमेठी, साँभर और गुलबर्गामे जो कुछ हुआ है उसे देखनेके बाद आपका यह दुहरा कर्तव्य हो जाता है कि आप इस मसलेको हलकर डालें। हकीम अजमलखाँ साहब और डा० अनसारी जैसे मुसलमानके सहवासका सौभाग्य आप लोगोंको प्राप्त है, जो कि अभी कलतक दोनो जातियोंके विश्वासपात्र थे। इस तरह आपकी परम्परा उच्च चली आई है। अपनी दलबन्दियोंको तोड़कर ऐसी दिली दोस्ती कायम करके जो किसी तरह न टूट पावे इन लड़ाई-झगड़ोंको अच्छे फलमे परिणत कर सकते हैं। मैंने तो अपनी सेवाएं आपके हवाले कर ही दी है। यदि आप मुझे दोनोंका मध्यस्थ बनाना पसन्द करेंगे तो मै देहलीमे अपनेको दफनानेके लिये तैयार हूं। और उन दूसरे सज्जनोंके साथ जिन्हें आप तजवीज सकेंगे, सच्ची बातोंका पता लगानेकी कोशिश करूंगा। इस सवालके स्थायी निपटारेके लिये आवश्यक बात है कि हम पहले इस बातकी पूरी तहकीकात करें कि पिछली जुलाईमें दर हकीकत क्या-क्या हुआ और यह क्योंकर हो पाया। मैं आपसे प्रार्थना करता हूँ कि आप शीघ्र ही किसी बातको तय कर दीजिये। यह हिन्दू-मुसलमानोंका सवाल ऐसा सवाल है जिसके ठीक-ठीक हल होने पर ही नजदीकी भविष्यमे भारतका भाग्य अवलंबित है। देहली अगर चाहे तो इस सारे सवालको हलकर सकती है; क्योंकि देहली जो कुछ करेगी, वह बहुत संभव है उसीका अनुसरण दूसरी जगह हो।

हिन्दी-नवजीवन

३१अगस्त, १९२४

फिर नागपुर

डाक्टर मुंजेने मुझे चेताया है कि मैं नागपुरके हिन्दू-मुस्लिम तनाजेके बारेमें कुछ न लिखूँ। यह तीसरी दफा नागपुरके हिन्दू-मुसलमान लड़े हैं और एक दूसरेके साथ मारपीट की है। क्या उन्होंने इस बातका अहद कर लिया है कि जब हम अपने पशु बलको आजमा देखेंगे, तब कहीं जाकर शान्तिके साथ किसी सुलहके लिये विचार करेंगे? क्या दोनोंके वैमनस्यके रोकनेका दूसरा कोई उपाय नहीं हो सकता? ऐसा मालूम होता है कि नागपुरमें दोनों दलोंमें बराबर-बराबर दम-खम है। इतना होते हुए भी उन्हें जल्द ही पता लग जायगा कि हमें लठ-बाजी करनेसे कुछ भी हासिल नहीं हो सकता। अवश्य ही नागपुरमें ऐसे कितने ही समझदार और तटस्थ हिन्दू तथा मुसलमान होंगे जो दोनोंके झगड़ोंका निपटारा करा दें और पिछली बुराइयोंको भुलवा दें। मन्दिरोंके अपवित्र किये जानेकी तरह इक्के-दुक्के राहगिरोंपर टूट पड़नेका नया तरीका और निकल पड़ा है। बहुतेरे झगड़े तो क्षणिक होते हैं और उनका कारण होता है छोटी-मोटी बातोंमें बातका बढ़ जाना और लोगोंका उभड़ उठना। लेकिन बेकसूर लोगोंपर टूट पड़ना तो यही दिखलाता है कि दोनों ओरसे ऐसी कोशिशें जान-बुझकर और किसी खास तजवीजके मुताबिक हो रही हैं। पर जबतक दोनों दलवालोंकी तरफसे ठीक-ठीक और विश्वसनीय समाचार न मिले तबतक हमें चुपचाप होकर सहन करना लाजिमी है। ऐसी अवस्थामें मैं सिर्फ इतनी आशा भर कर सकता हूँ कि समझदार और तटस्थ लोग दोनों जातियोंमें राजी-रजामन्दीके साथ स्थायी शान्ति करा देनेमें कोई बात न उठा रखेंगे।

हिन्दी—नवजीवन
७ सितम्बर, १९२४

❀

एक उपदेश

"मुसलमानोंकी चापलूसी करनेकी ऐसी लत आपको पड़ गई है कि आप हमेशा यही मानते हुये दिखाई देते हैं कि आप उन्हें उसी अवस्थामें हिन्दुओंके साथ रख सकते हैं जब कि उन्हें बिल्कुल दोषी न मानें। पर अब तो आपको न्यायकी दृष्टिसे दोनों पक्षोंमें निन्दा अथवा स्तुति बाट देनी पड़ेगी। क्योंकि निर्बल और सीधे लोगोंकी ही हमेशा गलती निकालने और बलवान तथा जाहिल लोगोंकी चापलूसी करनेकी नीतिमें बुद्धिमानी नहीं है।"

एक हिन्दू मित्रने मुझे एक लम्बा चौड़ा उपदेश सुनाया था। उसका यह एक छोटासा टुकड़ा है। मै जानता हूँ कि दूसरे अनेक हिन्दू ऐसा ही विचार रखते होंगे। पर सच बात यह है कि वहम और आवेशसे भरे वायुमण्डलमें मेरी निष्पक्षताके पक्षपात समझ लिये जानेकी बहुत आशंका है। यदि मैं इस्लाम अथवा मुसलमानोका जरा भी बचाव करता हूँ तो उन हिन्दुओंको आमतौरपर चोट पहुंचाती है जो इस्लाम अथवा मुसलमानोके अन्दर किसी भी अच्छी चीजको देखनेसे इन्कार करते हैं। परन्तु इससे मैं विचलित नहीं होता। क्योंकि मै जानता हूँ कि किसी न किसी दिन मेरे हिन्दू आक्षेपक मेरी दृष्टिकी यथार्थताको कबूल करेंगे। शायद वे इस बातको भी मानेंगे कि जबतक एक पक्ष दूसरे पक्षकी दृष्टिबिन्दु समझने, उसकी कदर करने और उसके लिये कुछ झुकनेको तैयार न हो तबतक एका होना असंभव है। इसके लिये बड़ा दिल चाहिये और उदारता चाहिये। हमें उस तरह दूसरोंके साथ बर्ताव करना चाहिये जिस तरह हम चाहते हो कि दूसरे लोग हमारे साथ करे।

हिन्दी-नवजीवन
७ सितम्बर, १९२४

❀

हिन्दू-मुसलमान ऐक्य

सूरतकी सभामे हिन्दू-मुस्लिम एकताके संबन्धमें कुछ बोलनेका मौका मिला था। कितने ही सज्जनने संगठनके विषयमे मेरे विचार जानना चाहे थे। उसके बाद एक मुसलमान सज्जनका पत्र मुझे मिला। उसमें उन्होंने कितनी बातें लिखी थीं। अब मै देखता हूं कि गुजरातमे भी झगड़ेका भय दिखाई देता है। वीरनगरका मामला अभी शान्त हुआ नहीं माना जा सकता। मांडलमें कुछ उपद्रव हुआ। अहमदाबादमे कुछ खलबली हुई। उमरेठमे भी कुछ डर है। यही हालत और प्रांतोंमें भी, जैसे भागलपुर (बिहार) में, हो रही है।

यह सवाल दिन-दिन गम्भीर होता जा रहा है। एक बात तो शुरुवातमें ही तय हो जानी चाहिये। यह बात बराबर कही जाती है कि इन झगडोमें सरकारी लोगोका हाथ है। यह बात यदि सच हो तो मुझे दुःख होगा, ताज्जुब तो कुछ भी न होगा। क्योंकि सरकारकी तो नीति ही है हममें फूट डाले रखना—हमे अलहदा-अलहदा रखना। सो सरकार यदि यह चाहती हो कि हम लड़े-झगड़े तो आश्चर्यकी बात नहीं और दुःख तो इसपर होगा कि अभी तक दोनो कौम अपना-अपना स्वार्थ नहीं समझ पाई हैं। जिन्हे लड़ाई-झगड़ा करने की आदत पड़ रही है उन्हीं लोगोंमें

तीसरा शख्स झगड़ा करा सकता है। ब्राह्मणों और बनियोंमें तो सरकारकी ओरसे झगड़ा करानेकी बात अबतक नही सुनी गई है। सुन्नी मुसलमानोंमे भी लड़ाई करानेका हाल नहीं सुना। पर यह हिन्दू-मुसलमानोमे झगड़े फसाद पैदा करती है, क्योंकि ये जातियाँ बहुत बार लड़ी और लड़ चुकी हैं। जब हम लड़नेका रास्ता छोड़ देंगे तभी हमें सुखसे स्वराज्य नसीब हो सकता है, नहीं तो वह असंभव है।

जबतक हिन्दू डरा करेंगे तबतक भी झगड़े होते ही करेंगे। जहाँ डरपोक होता है वहाँ डरानेवाला मिल ही जाता है। हिन्दुओंको समझ लेना चाहिये कि जबतक वे डरते रहेंगे तबतक उनकी रक्षा कोई न करेगा। मनुष्यका डर रखना यह सूचित करता है कि हमारा ईश्वरपर अविश्वास है। जिसे यह विश्वास न हो कि ईश्वर हमारे चारो ओर है, सर्वव्यापी है, या यह विश्वास शिथिल हो, वे अपने बाहु-बलपर विश्वास रखते हैं। हिन्दुओंको दोमेंसे एक बात प्राप्त करनी होगी। यदि ऐसा न करेंगे तो हिन्दू-जातिके नष्ट हो जानेकी संभावना है।

पहला मार्ग है, केवल ईश्वरपर विश्वास करके मनुष्यका डर छोड़ देना। यह अहिंसाका रास्ता है तथा उत्तम है। दूसरा है, बाहुबलका अर्थात् हिंसाका मार्ग। दोनों मार्ग संसारमे प्रचलित है और हमें दोमेंसे किसी भी एकको ग्रहण करनेका अधिकार है। पर एक आदमी एक ही समय दोनोंका उपयोग नहीं कर सकता।

यदि हिन्दू-मुसलमान दोनो बाहुबलका ही रास्ता ग्रहण करना चाहते हों तो फिलहाल शीघ्र ही स्वराज्यकी आशा छोड़ देना ही उचित है। तलवारकेन्यायसे ही यदि सुलह करनी हो तो दोनोंको पहले खूब लड़ लेना होगा, खूनकी नदियाँ बहेंगी। दो-चार खून होनेसे या पाँच-पचीस मन्दिर तोड़नेसे फैसला नही हो सकता।

मैं संगठनके खिलाफ हूँ भी और नही भी। संगठनका मतलब है अखाड़ा और अखाड़ोंके जरिये हिन्दू-गुण्डोंको तैयार करना। यह हालत तो मुझे दयाजनक ही मालूम होती है। गुण्डोंके द्वारा धर्मकी रक्षा नही हो सकती। यह तो एक भयके बदले, उसके अलावा, मानो दूसरा भय तैयार किया जाना है। यदि ब्राह्मण, वैश्य आदि ही अखाड़ोंके द्वारा अपनी शारीरिक उन्नति करें और करनेके लिये तैयार हो तो मुझे कुछ भी आपत्ति नहीं। मुझे तो यकीन है कि उन्हे लड़ाई लड़नेके लायक शक्ति प्राप्त करनेमें बहुत समय लगेगा। अखाड़ोंके लिये अखाड़े खोलना बिल्कुल ठीक है। मुसलमानोंको लड़ाईमे शिकस्त देनेका इलाज अखाड़ा नहीं है। मुझे इसमे जरा भी शक नहीं है।

यदि हम मुसलमानोंके दिलको जीतना चाहते हों तो हमें तपश्चर्या करनी होगी। हमें पवित्र बनना होगा, हमें अपने ऐबोंको दूर कर देना होगा। अगर वे हमारे साथ लड़ें तो हमें उलटकर प्रहार न करते हुये हिम्मतके साथ मरनेकी विद्या सीखनी होगी। डरकर, औरतों, बालबच्चों और घर-बारको छोड़कर भाग जाना

और भागते हुये मर जाना, मरना नहीं कहाता। बल्कि उनके प्रहारके सामने खड़ा रहना और हँसते-हँसते मरना हमें सीखना होगा।

मैं मुसलमानोंको भी यही सलाह दूँगा। पर वह अनावश्यक है। क्योंकि वे डरानेवाले माने गये हैं। सामान्य अनुभव यह है कि वे मरनेमें बहादुर हैं। इसलिये उन्हें हिन्दूओंके बाहु-बलसे बचनेका रास्ता दिखानेकी जरूरत नहीं रह जाती। उन्हें तो यह विन्ती करनी होगी कि 'भाई साहब, अपनी तलवार म्यानमें रखिये। अपने गुण्डोंको अपने कब्जेमें रखकर सुलहसे काम लीजिये। मुसलमानोंको हिन्दूओंकी तरफसे दूसरे भय चाहे हों—आर्थिक भय है। बकरीदके दिन उनकी क्रियामें रुकावट डालनेका भय है। पर उन्हें हिन्दुओंके हाथों पिटनेका डर हरगिज नही है। इसलिये उन्हें तो मैं यही कहूँगा कि आप लाठी या तलवारके बलपर इस्लामकी रक्षा नहीं कर सकते। लाठीका युग अब चला गया। धर्मियोंकी कसौटी उनकी पवित्रताके द्वारा होगी। धर्मकी रक्षा आप गुण्डोंके हाथोंमें जाने देंगे तो इस्लामको भारी नुकसान पहुचावेंगे। फिर इस्लाम फकीरोंका, खुदा-परस्तलोगोंका धर्म नहीं रहेगा।

यह तो साधारण विचार हुआ। मौलाना हसरत मोहानी कहते हैं कि मुसलमानोंको चाहिये कि वे हिन्दुओंके खातिर गायको बचावें और हिन्दू मुसलनानोंसे छूत न मानें। वे कहते है कि उत्तर भारतमें मुसलमान भी अस्पृश्य माने जाते हैं। मैंने मौलाना साहबसे कहा, मैं तो ऐसी बातमें सौदा या बदला नहीं करूँगा। मुसलमान यदि हिन्दूओंके लिये गाय बचाना अपना धर्म समझें तो गायको बचावें फिर हिन्दू चाहे अच्छा सलूक करें चाहे बुरा। हिन्दू यदि मुसलमानोंको अस्पृश्य मानते हों तो यह पाप है। मुसलमान चाहे गो-बध करें या न करें, पर हिन्दूओंको चाहिये कि वे मुसलमानोंको अछूत न मानें। अर्थात जो व्यवहार चार जातियाँ एक दूसरेके साथ स्पर्श आदिके बारेमें रखती हैं, वही हिन्दूओंको मुसलमानोंके साथ रखना चाहिये। इस बातको तो मैं स्वयसिद्ध मानता हूँ। हिन्दू-धर्म यदि मुसलमानोंके या अन्य धर्मियोंके तिरस्कारकी शिक्षा देता हो तो उसका नाश ही होगा। इसलिये बिना सौदे-सट्टेके दोनोंको अपना-अपना घर करना साफ चाहिये। गायको बचानेके लिये मुसलमानोंके साथ दुश्मनी करना गायको मारनेका रास्ता है और दुहरा पाप है। यदि विधर्मीलोग गो-बध करें तो इससे हिन्दू धर्मका लोप न होगा। पर हिन्दू गायको न मारें। उनका यह धर्म है। पर क्या विधर्मी पर जबरदस्ती करके उसके हाथसे गायको छुड़ाना उनका धर्म हो सकता है? हिन्दूलोग भारतमें स्वराज्य चाहते है, हिन्दू राज्य नहीं। हिन्दू राज्यमें भी यदि सहिष्णुताका पालन हो तो मुसलमान और ईसाई दोनोंके लिये जगह होनी चाहिये। हिन्दू राज्यमें भी यदि दोनो जातियाँ समझ बूझकर अपनी खुशीसे गो-कुशी बन्द कर दें, तभी हिन्दू धर्मकी शोभा मानी जायगी। परन्तु हिन्दुओंके लिये हिन्दू राज्यकी इच्छा करना ही, मैं देश-द्रोह मानता हूँ।

अब रहा बाजेका झगड़ा। बाजेका झगड़ा दिनपर दिन बढ़ता दिखाई देता है। सूरतवाला पत्र कहता है कि हिन्दू-धर्ममें बाजा बजाना अनिवार्य नहीं है। इसलिये हिन्दुओंको चाहिये कि मुसलमानोंके भावोंको आघात न पहुँचानेके लिहाजसे मसजिदोंके सामने बाजे बजाने बन्द कर दें। मैं चाहता हूँ यह बाजेकी बात उतनी ही आसान हो जितनी कि पत्र-लेखक बताते हैं। पर हकीकत इसके खिलाफ है। हिन्दू-धर्मकी कोई भी विधि ऐसी नहीं है जो बिना बाजा बजाये हो सकती है। कितनी ही विधियाँ तो ऐसी हैं जिनमें शुरुसे आखिरतक बाजा बजाना जरूरी है। हाँ, इसमे भी हिन्दुओंको इतनी चिन्ता जरूर रखनी चाहिये कि मुसलमानोंका दिल न दुखने पावे। बाजा धीमे बजाया जाय, कम बजाया जाय, यह सब लेन-देनकी नीतिके अनुसार हो सकता है और होना चाहिये। कितने ही मुसलमानोंके साथ बातें करनेसे मुझे ऐसा मालूम होता है कि इस्लाममें कोई ऐसा फरमान नहीं है जिससे दूसरोंके बाजेको बन्द कराना लाजिमी है। इसलिये मसजिदके सामने विधर्मीके बाजे बजानेसे इस्लामको धक्का नहीं पहुंचता। अतएव यह बाजेका सवाल झगड़ेका मूल न होना चाहिये।

ऐसा होते हुये भी कितनी ही जगह मुसलमान भाई जबरदस्ती बाजे बन्द कराना चाहते है। यह नागवार है। जो बात विनयके खातिर की जाती है, वह जोरो-जब्रके खातिर नहीं की जा सकती। विनयके सामने झुकना धर्म है और जोरो-जब्रके सामने झुकना अधर्म है। मारके डरसे यदि हिन्दू बाजा बजाना छोड़ें तो हिन्दू न रहेगें। इसके लिये सामान्य नियम इतना ही बताया जा सकता है कि जहाँ हिन्दू लोगोने समझ-बूझकर बहुत समयसे मसजिदके सामने बाजे बन्द करनेका रिवाज रक्खा है वहाँ उनको उनका पालन अवश्य करना चाहिये। जहाँ वे हमेशा बाजा बजाते आये हैं वहाँ उन्हें बजानेका अधिकार होना चाहिये। जहाँ झगड़ेकी संभावना हो और हकीकतके बारेसे मतभेद हो वहाँ हिन्दू और मुसलमान दोनो पक्षोंकी मार्फत ठहराव करा लेना चहिये।

जहाँ अदालतने बाजे बजानेकी मुमानियत की हो, वहाँ हिन्दूलोग कानूनको अपने हाथोमे न लें।

मुसलमानोंको भी जबर्दस्ती हिन्दूका बाजा बन्द करानेकी जिद छोड़ देनी चाहिये।

जहाँ मुसलमान बिल्कुल न मानें, अथवा जहाँ हिन्दुओपर जबर्दस्ती किये जानेका अन्देशा हो और जहाँ अदालतसे बाजे-बजानेकी बन्दी न हो वहाँ हिन्दुओंको निडर होकर बाजे-बजाते हुए निकल जाना चाहिये और मुसलमान चाहे कितनी ही मार-पीट करें, हिन्दू उसे सहन करें। इस तरह जितने बाजा बजाने वहाँ बलिदान कर दें—इसमें धर्म और आत्म-सम्मान दोनोंकी रक्षा है।

जहाँ हिन्दुओंमे आत्म-बल न हो, वहाँ उन्हें अपने बचावके लिये मारपीट करनेका अधिकार है।

मारकर अथवा मारते हुए मरकर धर्मकी रक्षा करनेकी जहाँ जरूरत दिखाई दे, वहाँ दोनों दलको अदालत या सरकारकी शरण जानेका विचार छोड़ देना चाहिये। यदि कदाचित एक पक्ष सरकारकी या अदालतकी सहायता ले तो भी दूसरेको खामोश रहना चाहिये। यदि अदालतमे गये बिना काम ही न चले तो अदालतोंमे बनावटी सबूत हरगिज न दिये जायं।

मारपीटका यह कायदा है कि पेटभरके मार खाने और मारनेके बाद दोनो लड़वैय्या ठण्डे पड़ जाते हैं और दूसरोंकी सहायता लेने नहीं जाते।

जिस जगह दोनो फरीकने लड़नेका निश्चय किया हो वहां उन्हें पीछे बदला चुकानेका या औरोंकी सहायता लेनेका विचार छोड़ देना चाहिये।

एक मुहल्लेका झगड़ा दूसरे मुहल्लेमें न जाना चाहिये। स्त्रियाँ, बूढ़े अपंग और बालकोंपर तथा शान्त रहनेवाले लोगोंपर हमला न करना चाहिये। यदि इतने नियमोंका पालन होता रहे तो भी समझा जायगा कि कुछ तो मर्यादा रखी जाती है।

डरकर भाग खड़े होना, मन्दिर छोड़ देना, बाजे बजाना बन्द कर देना या अपनी रक्षा न करना, यह मनुष्यता नहीं है, यह तो नामर्दी है। अहिंसा वीरताका लक्षण है—भीरु, डरपोक मनुष्य यह तक नहीं जान सकता कि अहिंसा किस चिड़ियाका नाम है।

अतएव दोनों कौमोंके सर्वसाधारण लोगोंको समझदारीसे काम लेना चाहिये, हिम्मत रखनी चाहिये, एकको डर छोड़ना चाहिये—दूसरेको डर दिखानेकी आदत छोड़ते अभी समय लगेगा। इस बीच दोनो जातियोंके समझदार लोगोंको हर झगड़ेके मौकेपर पंचायतका पालन करनेका प्रयत्न करना चाहिये। समझदार-वर्गकी हालत नाजुक है। परन्तु उसे चाहिये कि सारी शक्ति सर्वसाधारणको शान्त बनाये रखनेमे ही लगावे।

हिन्दी-नवजीवन
१४ सितम्बर, १९२४

❀

गांधीजीका खुलासा

[देहलीसे गान्धीजीके उपवासके समाचार सत्याग्रह-आश्रम तथा अहमदाबादमें बुधवार रातको आये थे। गुरुवारको सुबह एसोशिएटेड प्रेसके तार द्वारा गान्धीजीका खुलासा हमें मिला। यहाँ उसका अनुवाद दिया जाता है।]

इन दिनो देशमे जो दुर्घटनाएं हो रही हैं वे मेरे लिये असह्य हो गई हैं और इसमें मेरी असहाय अवस्था तो मुझे और भी असह्य हो रही है।

मेरा धर्म मुझे कहता है कि जब अनिवार्य संकट उपस्थित हो और कष्ट असह्य हो जाय तब उपवास और प्रार्थना करनी चाहिये। अपने घनिष्ठ आत्मियोंके सम्बन्धमे भी मैंने ऐसा ही किया है।

अब तो यह भी देखता हूँ कि मेरे हर तरहके लिखने और कहनेसे हिन्दुओं और मुसलमानोंमे एकता नहीं हो सकती। इसलिये मैं आजसे २१ दिनका उपवास प्रारम्भ करता हूँ। ८ अक्टूबर बुधवारको वह पूरा होगा। अनशनके दिनोमे सिर्फ पानी और उसके साथ नमक लेनेकी मैंने छुट्टी रक्खी है। यह अनशन प्रायश्चितके रूपमें भी है और प्रार्थनाके रूपमे भी। यदि अकेला प्रायश्चित रूप होता तो इसे सर्वसाधारणके सामने प्रकाशित करनेकी आवश्यकता न थी। परन्तु इस बातके प्रगट करनेका सिर्फ एक ही प्रयोजन है। मुझे आशा करनी चाहिये कि मेरा यह प्रायश्चित हिन्दू और मुसलसानोके लिये जो कि आजतक मेल-मिलापसे काम करते आये हैं, आत्मघात न करनेके लिये एक कारगर प्रार्थना हो जाय। मै तमाम जातियोके नेताओसे, अंग्रेजतकसे, सविनय प्रार्थना करता हूं कि वे धर्म और मनुष्यताके लिये लांछन-रूप इन झगड़ोंको मिटानेके हेतु एक जगह एकत्र होकर विचार करे। आज तो ऐसा ही जान पड़ता है, मानों हमने ईश्वरको तख्तसे उतार दिया है। आइये, हम फिरसे अपने हृदय-रूपी सिहासनपर उसे अधिष्ठित करे।

हिन्दी-नवजीवन
२१ सितम्बर, १९२४

❀

मैं मुसलमान क्यों नहीं होता ?

एक मुसलमान भाई लिखते हैं—

"आपका दावा है कि 'मै सत्यचाहक, सत्यशोधक और सत्य-ग्राहक हूं'। साथ ही आपने यह भी लिखा हैं कि 'इस्लाम मिथ्या धर्म नही है।' खुदाका खास फरमान है कि दुनियाके हर शख्सको इस्लाम कबूल करना चाहिये। फिर भी आप मुसलमान क्यों नही होते? एक हिन्दू लीडरका ध्यान जब मैने इस बातको ओर खींचा तब उन्होंने कहा कि यह तो गान्धीजीने मुसलमानोको खुश करनेके लिये लिख दिया है। गान्धीजीके दिलमे इस्लामी मुहब्बत नही है।"

इस भाईने आग्रहपूर्वक जवाब मांगा है। यह धर्म कहीं नहीं सुना कि जितनी बातें मिथ्या न हों, वे हर आदमीको करनी चाहिये। जिस तरह मैं

इस्लामको मिथ्या नहीं मानता उसी तरह ईसाई, पारसी, यहूदी धर्मको भी मिथ्या नहीं मानता। तो फिर मैं किस धर्मको कुबूल करूँ ? फिर मैं हिन्दू धर्मको भी मिथ्या नहीं मानता। ऐसी अवस्थामे मुझ जैसे सत्य-शोधकको क्या करना चाहिये ? मुझे तो इस्लामकी खूबियाँ दिखाई दीं, इससे मैंने कहा कि वह धर्म मिथ्या नहीं है। यह कहनेकी जरूरत इसलिये हुई कि इस्लामपर हमले होते हैं और मुसलमान-भाइयोंके साथ मैं मित्रता रखना चाहता हूँ। इससे मैंने उनके धर्मका बचाव किया। सबको अपना-अपना धर्म औरोंसे श्रेष्ठ मालूम होता है। इससे वे उसमे रहते हैं। इसी न्यायके अनुसार हिन्दू-धर्म मुझे मिथ्या नहीं मालूम होता। यही नहीं बल्कि सबसे श्रेष्ठ मालूम होता है। इसीलिये मैं हिन्दू-धर्मका पल्ला पकड़कर बैठा हूँ—जिस तरह बालक माँके साथ रहते हैं। परन्तु बालक जिस प्रकार पर-माताका तिरस्कार नहीं करता, उसी प्रकार मैं भी पर-धर्मका तिरस्कार नहीं करता। अपने धर्मके प्रति मेरा जो प्रेम है वह मुझे शिक्षा देता है कि दूसरोंके अपने धर्मके प्रति प्रेमको भी कदर करनी चाहिये। यह बात हरएक हिन्दू-मुसलमान सीखें, यह प्रार्थना मेरी ईश्वरके दरबारमे हमेशा पहुंचती रहती है।

हिन्दी-नवजीवन
२१ सितम्बर, १९२४

❀

सबसे बड़ी समस्या

देहली जाते हुए रास्तेमे अपनी डाक देखते हुए मुझे नीचे लिखा पत्र मिला। दो-तीन व्याकरण-दोषोंको सुधार उसे प्रायः शब्दशः यहाँ देता हूँ—

"नागपुरके मुसलमान पागल हो रहे हैं। मैं यद्यपि हिन्दू हूँ फिर भी मैंने नागपुरमें हिन्दुओंकी तरफसे की गई हलचलसे अपनेको बड़ी कोशिशसे दूर रखा है। मेरा अहिंसा और हिन्दू-मुस्लिम-एकतामें पूरा विश्वास है। आप विश्वास रखें कि मुझमें ऐसा साम्प्रदायिक जोश नहीं है। लेकिन नागपुर और दूसरी जगहोंमें की गई मुसलमानोंकी करतूतोंको देखकर तो मेरी इस विश्वासकी बड़ी कड़ी परीक्षा हो रही है। जो सबसे अधिक करुणाजनक बात है वह तो यह है कि एक भी जिम्मेवार मुसलमानने जाहिरा तौरपर इसके खिलाफ कुछ भी नहीं कहा है। यदि डाक्टर मुजे और वीर उदेराम तथा कोष्ठी लोग न होते तो न जाने इन मुसलमानोंने क्या-क्या किया होता। मैं इसे जानता हूँ कि प्रेममे सौदा नहीं होता। इस बातको भी नहीं मानता हूँ कि प्रेममे सर्वस्व अर्पण करना ही होता है। लेकिन मैं इस बातको नहीं भूल सकता कि प्रेमके लिये जो आहुति दी जाय, जो दुःख सहना पड़े वह सब स्वेच्छासे होनी चाहिये। इसमें जबरदस्ती नहीं हो सकती। हिन्दू शक्तिशाली होनेकी वजहसे या अपनी

इच्छासे नहीं झुकता है, बल्कि अपनी कमजोरीकी वजहसे और इच्छा न होने पर भी दब जाता है। मुझे तो यह ख्याल होता है कि हिन्दूलोग सिर्फ मुसलमानके गुलाम बननेके लिये ही ब्रिटिशोंकी गुलामीको दूर करनेका प्रयत्न कर रहे हैं। आपका दिलको हिला देनेवाला लेख 'गुलबर्गाका पागलपन' इस मामलेमें आपके ख्यालातकी गहराईको जाहिर करता है।

आपने कई मर्तबा यह जाहिर किया है कि आप कायरतासे हिंसाको अधिक पसन्द करते हैं। आपने कुछ दिनों पहले 'यंग इंडिया'में यह भी लिखा था कि मुसलमान औसत दर्जेका गुण्डा होता है और हिन्दू भीरु। अफसोस है कि यह बिल्कुल सच है। अन्यथा यह कैसे हो सकता था कि नागपुरके मुसलमान जो बहुत थोड़े हैं, हिन्दुओंकी एक बहुत बड़ी संख्याके खिलाफ इस तरह बराबर उठ खड़े हो जाते। सच बात तो यह है कि गरीब हिन्दूकी न तो कोई इज्जत करता है और न कोई डरता है। डार्विन सच्चा था या नहीं इसका निर्णय करना मेरा काम नहीं है। किन्तु एक बात तो बिल्कुल स्पष्ट है कि कमजोरोंके लिये इस संसारमें स्थान नहीं है। उन्हें या तो शक्तिशाली बनना चाहिये या अपना अस्तित्व ही मिटा देना चाहिये। अगर हिन्दूलोग जीना चाहते हैं तो उन्हें अपना संगठन करना चाहिये और शक्तिशाली बनना चाहिये। उन्हें हलचल करनी चाहिये और अपने देव (मूर्तियों) और स्त्रियोंकी रक्षाके लिये जान देनेकी दैवी कला सीखनी चाहिये।

लेकिन वे तो भीरु है। उनसे कोई आशा नहीं रखी जा सकती। उनके लिये अहिंसाका कुछ भी अर्थ नहीं है। यह तो उनकी भीरुता छिपानेका एक बहाना—आवरण बन गया है। उन्हें अहिंसा सिखाना तो गोया ऐसा मालूम होता है जैसे अकालमें भूखसे पीड़ित लोगोंको भूख मिटानेके लिए आवश्यक खाना दिये बिना ही उन्हें खानेमें संयम रखनेकी शिक्षा देना या बीमार या कमजोर आदमीको वह खाना खिलाना जिसे हजम करना मजबूत आदमीको भी मुश्किल हो। यह उन्हें कुछ भी फायदा पहुंचानेके बजाय सिर्फ नुकसान ही नुकसान पहुंचावेगा।

यदि आप इस विचार परंपराको स्वीकार करें तो क्या आपको यह स्वीकार न करना पड़ेगा कि सच्ची और स्थायी हिन्दू-मुस्लिम-एकताके लिये हिन्दुओंको निर्भय-बहादुर बनना चाहिये? क्या उन्हें अपने स्त्रियों और मन्दिरोंकी की गई बेइज्जतीका बदला लेना न सीखना चाहिये? जो कमजोर है वही समाजके बड़े भारी दुश्मन हैं। वे अपनेको और शक्तिशाली दोनोंको बिगाड़ते है। शक्तिशालीको उनपर जुल्म करनेका मौका देकर वे बिगाड़ते है। कमजोरी उन दोनोंको शाप देती है जो स्वयं कमजोर हों या जो कमजोर पर जुल्म करता हो? हाँ, हिन्दुओंको उचित है कि वे दाँतके बदले दाँत उखाड़कर बदला न लें। वे मुसलमान स्त्रियोंकी पवित्रताको जबरदस्ती भ्रष्ट न करें और मसजिदोंको अपवित्र न करें या तोड़ न डालें। पर अहिंसा तो उनसे बहुत दूर है। इसलिये क्या आप उन्हें यह सलाह न देंगे कि वे इन बुराई करनेवालोंको सबक सिखाना सीख लें? अहिंसाकी कीमत करनेकी आशा उनकी तरफसे रखनेके पहले क्या उन्हें शारीरिक-बलका प्रयोग करके अपनी रक्षा करनेकी शक्ति बढ़ानेकी जरूरत नहीं है? क्या हिन्दुओंकी भलाई, सच्ची हिन्दू-मुसलमान मैत्री और इसके फलस्वरूप स्वराज्यका सही रास्ता नहीं है? ये ख्यालात मेरे दिमागमें

बहुत दिनोंसे घूम रहे थे। मैंने स्वयं अपने दिलमें इसके उत्तर पानेकी दलीलें की, लेकिन संतोषप्रद उत्तर न मिला। इसलिये मैं आपसे सलाह लेना चाहता हूँ। मैं 'यंग इंडियामें' इसका उत्तर पानेके लिये बहुत उत्कंठित हूँ। आप अपने सुभीतेको देखकर जितनी जल्दी बन पड़े इसका उत्तर दे दीजियेगा।

मैं अपना पत्र तो नहीं लेकिन नाम गुप्त रखना चाहता हूँ।"

इस खतके हरएक हिस्सेसे लेखककी सरगर्मी मालूम होती है। उनकी दलीलें जहाँतक पहुँचती हैं पुख्ता हैं, पर ज्यों ही लेखकके विचारों और उनसे फलित होनेवाले उप-सिद्धान्तोंको कार्यरूपमें परणित करनेका विचार उठता है त्यों ही हमारे सामने कठिनाई खड़ी हो जाती है। पाठकोंने पिछले सप्ताह मेरा 'हिन्दू-मुसलमान-ऐक्य' नामक लेख पढ़ा होगा। वह लेख हिन्दू और मुसलमान दोनों मित्रोंके सवालोंके जवाबमें लिखा गया था।

मेरी तो इस समय बहुत ही करुणाजनक हालत हो रही है। यह हमारे राष्ट्रकी परीक्षाका समय है और यह कहना सच होगा कि हजारोंलोग इस मौके पर रहनुमाईके लिये मेरी ओर आँखें गड़ाए हैं। खिलाफत आन्दोलनमें मैंने बहुत बढ़कर योग दिया है। मैंने बेखटके और बिला खौफके, बिना बदला मिलने की आशाके सब कुछ दे देनेके सिद्धान्तका प्रतिपादन किया है। मेरे इस विचार प्रणालीमें कुछ भी दोष नहीं है। पत्र-लेखकका सवाल यह है—क्या मेरा विचार वर्तमान स्थितिके लिये ठीक है? क्या हिन्दुओंके पास देनेके लिये कुछ है? कोई बिना लिये उसी अवस्थामें दे सकता है जब खुद उसके पास काफी होगा।

अब आइये इसपर जरा विचार करें।

लेखक और मैं दोनों इस बातपर तो सहमत हैं कि हिन्दू डरपोक हैं। तब सवाल यह है कि वे निर्भय और वीर कैसे हों? उनका भय अपने बदनके रगो-रेशोंको और हड्डियोंको मजबूत बनानेसे दूर होगा या उनकी आत्मामें निर्भयताका, वीरताका संचार होनेसे होगा? पत्र-लेखक कहते हैं कि दुनियाँमें कमजोरके लिये कहीं जगह नहीं है। कमजोरसे उनका मतलब मैं समझता हूँ शरीरसे कमजोर है। यदि हाँ, तो उनका विचार ठीक नहीं। दुनियाँमें ऐसे बहुतसे जीवधारी हैं जो मनुष्योंसे शरीरमें बहुत ज्यादह बलवान और मजबूत हैं पर फिर भी मनुष्य-जाति अभीतक जीती-जागती मौजूद है। बहुतसी शरीर-बलमें बढ़ी-चढ़ी मानव जातियाँ अबतक लुप्त हो चुकी हैं और भी लोप हो रही हैं। ऐसी अवस्थामें जहाँतक मनुष्य-जातिसे ताल्लुक है यों कहना चाहिये 'दुनियाँमें उनके लिये जगह नहीं है जिसकी आत्मा कमजोर हो।'

जहाँ तक मेरा संबंध है, मैं तो अपना पासा फेंक चुका हूँ। तमाम धर्मोंमें अहिंसा एक समानतत्व है। कुछ धर्मोंमें उसपर औरोंकी अपेक्षा ज्यादह जोर दिया गया है पर सब इस बातमें सहमत हैं कि उसका अत्यधिक प्रचार नहीं हो सकता। पर हां इस बातका यकीन होना चाहिये कि वह अहिंसा है, भीरुताका आच्छादन नहीं

अब इस समस्याको हल करनेके लिये हमें रास्ते चलते लोगोंपर ध्यान देनेकी जरूरत नहीं है। बल्कि हमें अपनी ही स्थितिका विचार करना चाहिये; क्योंकि हमीलोग उन रास्ते चलते लोगोंके पीछे-पीछे रहते हैं और पुतलियाँ नचाया करते हैं। इसीलिये हमें इस बातकी चिन्ता रखनी चाहिये कि हम खुद कोई काम डरकी वजहसे न करें। मैं हाथापाही और मुठभेड़से नफरत करता हूं, पर हाँ, उसमें भी एक प्रकारकी वीरता है और उसे मैं अब लोगोंके सामने ला रहा हूँ। बड़े शौकसे बड़े भाई मौ० शौकत अलीके साथ हाथापाही करनेमें दिलचस्पी लूंगा। पर कब? जब हम दोनोंको यह यकीन हो जायगा कि अब तो बिना एक दूसरेका खून बहाए एकताका कोई उपाय ही बाकी नहीं रह गया है और जब हम देखेंगे कि हम दोनों भी सुलहसे एक साथ नहीं रह सकते तब मैं जरूर बड़े भाईसे कहूँगा तो फिर आओ, दो-दो हाथ करके सफाया कर लें। मैं जानता हूँ कि वे अपने भरे-पूरे पंजेमें पकड़ मरोड़कर मुझे टुकड़े-टुकड़े कर सकते हैं। लेकिन बस, उसी दिन हिन्दू-धर्म आजाद हो जायगा। अथवा वे एक हट्टे-कट्टे मल्लकी ताकत रखते हुए मेरे हाथों मर जाँयगे तो इस्लाम हिन्दुस्तानमें आजाद हो जायगा। उस अवस्थामें वे मानो आम तौरपर मुसलमानोंके हिन्दुओंको डराने-धमकानेका प्रायश्चित कर लेंगे। पर मैं इस बातसे तो सख्त नफरत रखता हूँ कि दोनों दलोंके गुण्डोंके बीच यह खूनी खिलवाड़ होता रहे। अपने भुजबलकी आजमाइशके सहारे जो सुलह होगी वह अन्तको कटुतामें बदले बिना न रहेगी। हिन्दुओंकी भीरुता दूर करनेका उपाय तो यह है कि हिन्दुओंका पढ़ा लिखा समाज इन गुण्डोंसे लड़ें। हम शौकसे लाठियोंका तथा दूसरे स्वच्छ हथियारोंका इस्तेमाल करें। मेरी अहिंसा उसे बरदाश्त कर लेगी। उसमें हमारा संहार हो जायगा। पर उससे हिन्दू और मुसलमान दोनोंके दिलकी मलामत दूर हो जायगी। उससे हिन्दुओंकी भीरुता तुरंत दूर हो जायगी। पर अगर मौजूदा तरीका जारी रहा तो हर जमात अपने-अपने गुण्डाका गुलाम हो जायगा। इसका फल यह होगा कि फौजी हुकूमतका दौर-दौरा हो जायगा। इंगलैण्ड भी इसके खिलाफ मुल्की हुकूमतकी प्रधानताके लिये लड़ा था। उसकी जीत हुई और वह जीवित है। लार्ड कर्जनने हमें बहुत दुःख पहुंचाया है। पर उस समय उनका कहना बहुत ठीक था और उन्होंने बहुत वीरताका परिचय दिया था जब कि उन्होंने मुल्की हुकूमतकी प्रधानताके लिये आवाज उठाई थी। जब कि रोमपर सैनिक सत्ताका दौरा-दौरा हुआ उसका पतन हो गया। इस ख्यालके खिलाफ कि हमारे धर्मकी रक्षाका सूत्र गुण्डोंके हाथमें चला जाय, ठेठ मेरी अन्तरात्मासे ऊँची आवाज उठती है। इसलिये फिलहाल, हिन्दुओंको ही अपनी नजरमें रखकर बड़े अदब और सरगर्मीके साथ हरएक समझदार हिन्दूको चेतावनी देना चाहता हूँ कि अपने मन्दिरोंकी, अपनी और अपने बीबी-बच्चोंकी रक्षाके लिये गुण्डोंकी सहायतापर इसर न रखें। अपने कमजोर शरीरोंको लेकर ही उन्हें खुद अपने जगहपर खड़े रहकर बिना मारे अथवा मारकर मर मिटनेका निश्चय करना चाहिये। यदि जमनालालजी और उनके साथी शान्ति-रक्षा करते हुए मर भी जाते

तो उनकी मृत्यु बड़ी गौरवपूर्ण होती। डा० मुंजे या मैं यदि अकेले हाथों अपने मन्दिरोंकी रक्षा करते हुये मर जायं तो यह हमारे लिये गौरवपूर्ण मृत्यु होगी। वह होगी हमारे हृदयकी निर्भयता और वीरता।

पर इनके अलावा ऐसे काम भी किये जा सकते हैं जिसमे उससे कम बहादुरी दरकार हो। हमे नागपुरके बारेमें सच्ची हकीकत खोज निकालनी चाहिये। मैं डा० मुंजेसे इसके लिये चिट्ठी पत्री कर रहा हूँ। देहलीके हिन्दू-मुसलमानोसे अनुनय विनय कर रहा हूँ कि वे मुझे वहाँके फसादका मूल कारण बता दें। मैंने पंचायतके लिये अपनेको उनके हवाले कर दिया है। चाहे वे मुझे, अकेले पर सौप दें या औरोंको भी शामिल करें। अभी तक वहाँकी दुर्घटनाका कोई विश्वस्त विवरण नहीं मिलता। मैं आपेसे बाहर कैसे होऊँ ? मुझे इस बातका यकीन नहीं हुआ है कि हर बातमें और हर जगह अकेले मुसलमानोंका कसूर है। मुझे पता नहीं शुरुवाती बाइस क्या था ? पर हाँ मैं यह जरूर जानता हूँ कि दोनों फरीकोंकी तरफके अखबार बेतहाशा सीधे-भोले हिन्दुओं और सीधे-सादे मुसलमानोंके दिलोमें जहर फैला रहे हैं। मैं यह भी जानता हूँ कि खानगी बात-चीतमें यह जहर और भी ज्यादह फैलाया जा रहा है और बातें इस तरह बढ़ा-चढ़ाकर छापी जाती हैं जिसकी कोई हद नहीं। इस अन्धकार, दुबिधा और निराशाके सागरके तहतक पहुँचनेमें मैं कोई बात उठा न रक्खूँगा। यह हिन्दू-मुस्लिम-ऐक्य राष्ट्रके तमाम स्वच्छ सार्वजनिक जीवनको नष्ट करनेकी धमकी दे रहा है। उसके ठीक-ठीक निपटारेके लिये यह अनिवार्य है कि पहले घटनाओं और हकीकतोंका एक सच्चा विवरण तैयार किया जाय। इस तनाजेका निपटारा करनेकी मेरी आन्तरिक अभिलाषा भी इस बातका एक कारण है जिसने मुझे स्वराजियोंकी तथा औरोंकी शरण जानेपर मजबूर किया है।

हिन्दी-नवजीवन
२१ सितम्बर, १९२४

'गांधीजी' ग्रंथमालाके खण्डोंकी सूची

पहला खण्ड—(प्रथम भाग) भारतीय नेताओंकी श्रद्धांजलियां (प्रकाशित)

(द्वितीय भाग) भारतीय तथा रियासती नेताओंकी श्रद्धांजलियां (प्रकाशि

दूसरा खण्ड—संसारके समाचार-पत्र तथा पत्रकारोंकी श्रद्धांजलियां

तीसरा खण्ड—विदेशोंकी श्रद्धांजलियां

चौथा खण्ड—कवियोंकी श्रद्धांजलियां (प्रकाशित)

पांचवां खण्ड—जीवन-चरित (प्रेसमें)

छठा खण्ड—गांधीजी सम्बन्धी संस्मरण

सातवां खण्ड—भारतको गांधीजीकी देन

आठवां खण्ड—गांधीजीके महत्वपूर्ण भाषण

नवां खण्ड—गांधीजीके पत्र (महत्वपूर्ण मूल-पत्रोंके चित्रोंके साथ)

दसवां खण्ड—अहिंसा (चार भागमें) (गांधीजीकी लेखनीसे) (प्रकाशित)

ग्यारहवां खण्ड—हिन्दू-मुसलिम एकता (,, ,,) (प्रथम भाग प्रकाशित)

बारहवां खण्ड—अछूतोद्धार (,, ,,) (प्रेसमें)

तेरहवां खण्ड—शिक्षा (,, ,,)

चौदहवां खण्ड—महिलाएं (,, ,,)

पन्द्रहवां खण्ड—गांधीजीका राजनीतिक दृष्टिकोण

सोलहवां खण्ड—गांधीजीका आर्थिक दृष्टिकोण

सत्रहवां खण्ड—गांधीजीका धार्मिक दृष्टिकोण

अठारहवां खण्ड—गांधीजीके 'राम'

उन्नीसवां खण्ड—प्रार्थनोत्तर प्रवचन

बीसवां खण्ड—गांधीजीके प्रयोग

इक्कीसवां खण्ड—प्रवासी भारतीय

बाईसवां खण्ड—विद्रोही गांधी

तेईसवां खण्ड—गांधीजीका 'स्वराज्य'

चौबीसवां खण्ड—चित्रावली

पचीसवां खण्ड—विविध

अपनी प्रतियां तुरन्त सुरक्षित कराइये

अहिंसा चतुर्थ भाग खण्ड १०

(नवजीवन, अहमदाबादकी आज्ञासे)

गां
धी
जी

खण्ड दस

अहिंसा

(चतुर्थ भाग)

सम्पादक-मण्डल

कमलापति त्रिपाठी (प्रधान सम्पादक)
कृष्णदेवप्रसाद गौड़
काशीनाथ उपाध्याय 'भ्रमर'
करुणापति त्रिपाठी
विश्वनाथ शर्मा (प्रबंध सम्पादक)

मूल्य डेढ़ रुपया

(प्रथम संस्करण : नवम्बर, १९४९)

प्रकाशक
जयनाथ शर्मा
व्यवस्थापक
काशी विद्यापीठ प्रकाशन विभाग
बनारस छावनी

मुद्रक
पं० पृथ्वीनाथ भार्गव
अध्यक्ष
भार्गव भूषण प्रेस, गायघाट
काशी

सूची

प्रकाशकका वक्तव्य

गांधीजी ग्रन्थमालाका यह सातवां प्रकाशन ग्रंथमालाके दसवे खंड अहिंसाका चतुर्थ भाग है। अहिंसाके सिद्धान्तोंपर पूज्य बापूकी लेखनीमें जो अमूल्य धारा जगतको प्राप्त हुई है उसका यह चतुर्थ संग्रह है। इस भागमें पूज्य बापूके अहिंसा संबंधी लेख समाप्त हो गये।

अहिंसा खंडके चार भागोंमें प्रायः १९२१ से, जबसे बापूने भारतके राजनीतिक आन्दोलनका सक्रिय रूपसे नेतृत्व ग्रहण किया, सन् १९४८ तकके लेखोंका संग्रह है। तिथिके क्रमसे लेख दिये गये हैं। बापूका अंतिम और सबसे बड़ा 'अंगरेजों-भारत छोड़ो' आन्दोलन छिड़नेके कारण हरिजन-सेवकका प्रकाशन १५ अगस्त १९४२ से १० फरवरी १९४६ तक बन्द था। इस कारण इन वर्षोंमें कोई लेख प्रकाशित नहीं हुए।

इस भागके संकलन तथा संपादनमें श्री लीलाधर शर्मा 'पर्वतीय', श्री विद्यारण्य शर्मा तथा श्री बानेश्वरी प्रसादसे सहायता मिली है। काशीके प्रसिद्ध कांग्रेस कार्यकर्ता तथा गांधी भक्त श्री रामसूरत मिश्र, श्री कृष्णदेव उपाध्याय तथा स्वर्गीय श्री बैजनाथ केडिया तथा कारमाइकल पुस्तकालयके संग्रहोंसे हमें बड़ी सहायता मिली है। इस भागके प्रकाशनकी अनुमति देकर श्री जीवनजी डाह्याभाई देसाई (व्यवस्थापक ट्रस्टी, 'नवजीवन' ट्रस्ट, अहमदाबाद) ने कृपा की है। उपर्युक्त सज्जनोंके हम अत्यन्त आभारी है।

हमें हर्ष है कि जनताने हमारे प्रयासका स्वागत किया। इसीके फलस्वरूप अवतकके प्रकाशित ६ प्रकाशनोंकी पहली आवृत्ति समाप्त हो गयी और नित्यप्रति ग्राहकोंकी मांग आती रहती है। हम शीघ्र ही द्वितीय आवृत्ति

प्रकाशित करनेमें समर्थ होंगे। गांधीजी ग्रन्थमालाके इस अंकको मिलाकर सात प्रकाशन हो चुके अर्थात् श्रद्धाञ्जलियां भाग एक, दो, कवियोंकी श्रद्धाञ्जलियां, अहिंसा प्रथम, द्वितीय, तृतीय तथा चतुर्थ भाग। बीचके खण्डोंकी सामग्रीका संकलन हो रहा है। ज्यों ज्यों खण्ड तैयार होते जायेंगे प्रकाशित होते रहेगे। अछूतोद्धारके दो भागोंकी सामग्री प्रेसमें है। आशा है शीघ्र ही तैयार करके हम पाठकोंकी सेवामे प्रस्तुत कर सकेंगे।

❀

आमुख

गांधीजीके जीवन, उनके प्रयोगों और उनकी सफलताका आधार सत्य और अहिंसा रहा है। वे उसीके लिये जिये और उसीके लिये अपने उन्होंने प्राणोंकी आहुति दी। अहिंसा प्रायः सभी मुख्य धर्मोंका मूल आधार रही है। यद्यपि अहिंसाका तात्विक उपदेश तो उनके पहिले भी अनेक मनीषियोंने दिया किन्तु आदर्शवाद और यथार्थवादका कल्याणकारी सामञ्जस्य गांधीजीके उपदेशोंमें ही था। उन्होंने उसे मूर्त रुप दिया और भारतके असंख्य नर नारियोंको अहिंसाके पथपर चलाकर दासतासे मुक्त कराया। यह उनके जीवनकी सबसे बड़ी सफलता थी।

यद्यपि स्वाधीनता प्राप्तिके बाद ही दुर्भाग्यवश एकबार फिर साम्प्रदायिकता और हिंसाका विष फैल गया था और आशंका हो रही थी कि यदि यह हिंसा न रुकी तो आजादी नष्ट हो जायगी। फिर भी बापूकी तपस्या, त्याग और जागरुकताका ही परिणाम था कि इतने थोड़े समयमें नोआखालीसे पंजाब तक फैली साम्प्रदायिकता और हिंसाकी आग इतनी जल्दी ठंडी पड़ गयी। आशा है देशमें इसी प्रकार शान्ति बनी रहेगी और हम संसारके सम्मुख सिर ऊंचा करके कह सकेंगे कि हमें अपने राष्ट्रपितापर गर्व और हम उनके आदर्शपर चलनेकी चेष्टा करते हैं।

इस भागमें उनकी अहिंसा सम्बन्धी लेखमाला समाप्त हो गयी। इन लेखोंसे उन्होंने अहिंसाके सब व्यापक पहलुओंपर विचार करनेकी निश्चित योजना बनायी है। अपने श्रद्धालु भक्तोंसे लेकर कटु आलोचकों तकका समाधान करनेकी कोशिश की है। स्वाधीनता आन्दोलन चलाते समय उनके जो विचार थे, उनकी मान्यताएं थीं, उनके अनुसार स्वाधीनता प्राप्तिके बाद कांग्रेस सरकारें साम्प्रदायिकताकी आग अहिंसासे न रोक सकीं। उन्हें फौज और पुलीसका

आश्रय लेना पड़ा। इसकी उन्हें बहुत चोट थी फिर भी उन्होंने अपना प्रयत्न जारी रखा था।

उनका विश्वास था कि यद्यपि देखनेमें सब ओर हिंसा व्याप्त जान पड़ती है। फिर भी यदि देखा जाय तो मनुष्य दिन प्रतिदिन अपने हिंसक स्वभावको छोड़कर अहिंसाकी ओर बढ रहा है। मनुष्यकी सभ्यताका विकास उसे अहिंसाकी ओर ले जा रहा है। एक दूसरेको मार कर खा जाने वाले मनुष्यने पहिले पशुओंका शिकार और आगे चलकर खेती करके अपने उदरका पोषण शुरू किया। इसमें अहिंसाकी भावना ही थी। आगे चलकर गॉव और शहर बसानेमें कुटुम्बकी भावना आयी जो अब स्वाभाविक होती जा रही हो।

मनुष्य पशु रूपमें हिंसक हो सकता है किन्तु आत्माके रूपमें तो वह अहिंसक रहता है। बापूने तो महायुद्धको, जो हिंसाकी पराकाष्ठा समझा जा सकता है, हिंसाकी होली समझा था। उनका ख्याल था कि इसमें हिंसाका अन्त होकर अहिंसाकी विजय होगी।

जीवन भर उपदेशों और व्यहारिकताके साथ अपनी कार्यविधिसे बापूने हमें सिखलाया कि मानव जातिसे प्रेम करो, अत्याचार और अनाचारसे घृणा करो किन्तु घृणा किसी व्यक्तिसे न हो। जीवनका मार्ग शान्तिमें, प्रेम और धर्ममे हो घृणा और विद्वेषमें नही। महायुद्धसे पीड़ित संसार आज एटम बमके इस युगमें अनुभव करने लगा है कि उनके उपदेशोंसे ही संसारमें फिरसे शान्ति, सुख और वैभवकी स्थापना हो सकती है।

❀

इतना खराब तो नहीं !

एक मित्र, एक अंग्रेज मित्रके पत्रमेंसे निम्नलिखित हिस्सा भेजते हैं:—

"क्या आपको लगता है कि महात्माजीके हरेक अंग्रेजके प्रति निवेदनका एक भी अंग्रेजके दिलपर अच्छा असर हुआ होगा? शायद इस अपीलके कारण जितना वैर-भाव बढा है, उतना हालमें किसी दूसरी घटनासे नही बढा। आजकल हम एक अजीबो-गरीब और नाजुक जमानेमें से गुजर रहे हैं। क्या करना चाहिये, यह तय करना बहुत ही कठिन है। कम-से-कम जिस बात में साफ खतरा दीखता हो, उससे तो बचना ही चाहिये। जहाँ-तक मै देखता हूँ, महात्माजीकी शुद्ध अहिंसाकी नीति हिन्दुस्तानको अवश्य ही बरबादीकी तरफ ले जायगी। मै नही जानता कि वह खुद इसपर कहाँतक चलेगे। उनमें अपने आपको अपनी सामग्रीके मुताबिक बनानेकी अजीब शक्ति है।"

मै तो जानता हूँ कि एक नही, अनेक हृदयोपर मेरे निवेदनका अच्छा असर हुआ है। मै यह भी जानता हूँ कि कई अंग्रेज मित्र चाहते थे कि मै कोई ऐसा कदम उठाऊँ। मगर उन्हे मेरी यह बात पसन्द आयी है, यह मेरे लिए चाहे कितनी ही खुशीकी बात क्यो न हो, मै इसपर सन्तोष मानकर बैठना नही चाहता। मेरे पास इस अंग्रेज भाई की टीकाकी कीमत काफी है। इस ज्ञानसे मुझे सावधान होना चाहिए। अपने विचारोको प्रगट करनेके लिए शब्दोको और ज्यादे सावधानीसे चुनना चाहिये। मगर नाराजगीके डरसे, भले ही वह नाराजगी प्रिय-से-प्रिय मित्रकी क्यो न हो, जो धर्म मुझे स्पष्ट नजर आता है, उससे मै हट नहीं सकता। यह निवेदन निकालनेका धर्म इतना जबरदस्त और आवश्यक था कि मेरे लिए उसे टालना अशक्य था। मै यह लेख इस वक्त लिख रहा हूँ, यह बात जितनी निश्चित है, उतनी ही निश्चित यह बात भी है कि जिस ऊँचाईपर पहुँचनेका मैंने ब्रिटेनको निमंत्रण दिया है, किसी-न-किसी दिन दुनियाको वहाँ पहुँचना ही है। मेरी श्रद्धा है कि जल्दी ही दुनिया जब इस शुभ दिनको देखेगी, तब हर्षके साथ वह मेरे इस निवेदनको याद करेगी। मै जानता हूँ कि वह दिन इस निवेदनसे नजदीक आ गया है।

अंग्रेजोंसे अगर यह प्रार्थना की जाय कि वह जितने बहादुर आज है, उससे भी ज्यादा बहादुर और अच्छे बनें, तो इसमें किसी भी अंग्रेजको बुरा क्यो लगे? वह ऐसा करनेके लिए अपनेको असमर्थ बतला सकता है, मगर उसके दैवी स्वभावको जागृत करनेके लिए निवेदन उसे बुरा क्यो लगे?

इस निवेदनके कारण भला, वैर-भाव क्यो पैदा हो? निवेदनके तर्जमें या विचारमे वैर-भाव पैदा करनेवाली कोई चीज ही नही है। मैंने लड़ाई बन्द करनेकी सलाह नही दी। मैंने तो सिर्फ यह सलाह दी है कि लड़ाईको मनुष्य-स्वभावके योग्य, दैवी तत्त्वके लायक बुलंद पायेपर ले जाया जाय। अगर ऊपर लिखे पत्रका छिपा अर्थ यह है कि

गांधीजी

यह निवेदन निकालकर मैंने नाजियोंके हाथ मजबूत किये हैं, तो जरा-सा भी विचार करने पर यह शका निर्मूल सिद्ध हो जायेगी। अगर ब्रिटेन लड़ाईका यह नया तरीका अख्त्यार कर ले, तो हेर हिटलर उससे परेशान हो जायेंगे। पहली ही चोटपर उन्हें पता चल जायगा कि उनका विशाल अस्त्र-शस्त्रका सामान सब निकम्मा हो गया है। योद्धाके लिए तो युद्ध उसके जीवनका साधन है, भले वह युद्ध स्वरक्षणके लिए हो या दूसरो पर आक्रमण करनेके लिए। अगर उसे यह पता चल जाता है कि उसकी युद्ध-शक्तिका कुछ भी उपयोग नहीं, तो वह बेचारा निर्जीव सा हो जाता है।

मेरे निवेदनमें एक बुजदिल आदमी एक बहादुर राष्ट्रको अपनी बहादुरी छोडनेकी सलाह नहीं दे रहा है, न एक सुखका साथी एक मुसीबतमें आ फँसे अपने मित्रका मजाक ही उड़ा रहा है। मै पत्र लेखकको कहूँगा कि इस खुलासेको ध्यानमें रखकर फिरसे एकबार मेरा वह निवेदन पढें।

हाँ, हेर हिटलर और सब आलोचक एक बात कह सकते है कि मै एक बेवकूफ आदमी हूँ, जिसको दुनियाका या मनुष्य स्वभावका कुछ भी ज्ञान नहीं है। यह मेरे लिए एक निर्दोष प्रमाण-पत्र होगा, जिसके कारण न वैर-भाव पैदा होना चाहिए, न क्रोध। यह प्रमाण-पत्र निर्दोष होगा, क्योकि मुझे पहले भी कई ऐसे प्रमाण-पत्र मिल चुके हैं। उनकी यह सबसे नयी आवृति होगी और मै आशा रखता हूँ कि सबसे आखिरकी नहीं, क्योकि मेरे बेवकूफीके प्रयोग अभी खत्म नहीं हुए।

जहाँतक हिन्दुस्तानका वास्ता है, अगर वह मेरी शुद्ध अहिंसाकी नीतिको अपनाये, उसे नुकसान पहुँच ही नही सकता। अगर हिन्दुस्तान एकमतसे उसे नामजूर करता है, तो भी उससे देशको किसी प्रकारका नुकसान नहीं होगा। नुकसान अगर होगा तो उन लोगोका जो 'मूर्खता' से उसपर अमल करते रहेगे। पत्र-लेखकने यह कह करके कि "महात्माजी अपने-आपको अपनी सामग्रीके मुताबिक बनानेकी अजीब शक्ति रखते हैं" मेरा बड़ा भारी गुण बताया है। मेरी सामग्रीकी बाबत मेरे स्वाभाविक ज्ञानने मुझे ऐसी श्रद्धा दी है कि जो हिलाई नहीं जा सकती। मुझे अन्दरसे महसूस होता है कि सामग्री तैयार है। इस अन्दरूनी आवाजने आजतक मुझे कभी धोखा नहीं दिया। मगर मुझे पिछले अनुभवकी बुनियाद पर कोई बड़ी इमारत नहीं तैयार करनी चाहिए। मेरे लिए तो एक ही कदम बस है।

हरिजन-सेवक
३ अगस्त, १९४०

❀

अहिंसाकी परीक्षा

जो अपने आपको पूर्ण अहिंसा भक्त मानते हैं, और राजाजी इत्यादिने जो कदम उठाया है, इसे गलत समझते हैं, उनकी कडी परीक्षा होने वाली है । मैं मानता हूँ कि राजाजी रास्ता भूल गये हैं और राजाजी मानते हैं कि मैं राह भूल गया हूँ। राजाजीकी मान्यता सच्ची हो और मेरी झूठी, यह उतना ही सभव है, जितना कि मेरी मान्यताका सत्य होना और राजाजीकी मान्यताका झूठा होना। सच और झूठका आखिरी निर्णय तो भविष्य ही करेगा ।

मगर क्योंकि मुझे अपनी मान्यताकी सचाईके विषयमें लवलेश मात्र भी शंका नहीं है, इसलिए जिन लोगोका अभिप्राय मेरे जैसा है, उन्हे कांग्रेसमेंसे निकल जानेकी सलाह देते हुए मुझे जरा भी संकोच नहीं हुआ। मगर इसका अर्थ यह नहीं कि उन्हे आज ही निकल जाना है--निकल जानेकी उनकी तैयारी हो, इतना काफी है । निकल जानेका निर्णय वह लोग मुझ पर छोड़ दें। निकलनेसे पहले उन्हे इतना विचार करना होगा कि उनके निकलनेसे साथियोको आघात नहीं पहुँचना चाहिए। निकल जानेकी बात उनकी समझमें न आये, तो धैर्यपूर्वक मुझे उन्हें समझाना होगा। कांग्रेसमेंसे उन लोगोको निकल जानेकी सलाह देनेमें कांग्रेसका ही हित है, यह उन्हे समझना होगा। हम दोनो यह मानते हैं कि वाहरके आक्रमणके सामने मुल्ककी रक्षा अहिंसाके द्वारा की जा सके, तो ज्यादा अच्छा होगा इसलिए ऐसा एक वर्ग हो जो अपना जीवन अहिंसाकी सफलताको सिद्ध करनेमें दे दें, तो उसका होना वांछनीय है। मगर ऐसे वर्गका होना हितकर है तो वह स्पष्ट है कि वह कांग्रेससे बाहर ही रह सकता है। कांग्रेसको चाहिए कि वह उस वर्गको केवल सहन ही न करे, बल्कि उसका स्वागत करे। जहाँतक हो सके उसकी मदद करे, उसे अपनाये। अर्थात् कांग्रेस और इस वर्गके बीच जरा भी वैमनस्य न हो, कोई गलतफहमी न हो। इससे उलटा जो पहले था, उससेभी ज्यादा अच्छा संबध हो।

ऐसा शुभ परिणाम लानेके लिए यह आवश्यक है कि अहिंसा-भक्त अपने पुराने साथियोंकी आलोचना मनमें भी न करें। उन्होने पहले क्या-क्या किया है उसकी याद उन्हे न दिलायें। अगले कथनोमें कोई भूल रही हो, तो मनुष्यका धर्म है कि वह उसे सुधारे। मगर यह भी संभव है कि उनके अगले वचनोका जो अर्थ दूसरे करते हैं, वह अर्थ वह स्वयं उन वचनोमें न देखते हो; इसलिए उत्तम मार्ग यही है कि एक दूसरेके मतभेदोको प्रेमपूर्वक सहन किया जाय। एक दूसरे को बर्दाश्त करनेकी खातिर दोनो अलग-अलग काम करें, और ऐसा करते हुए जहां हो सके, वहाँ एक दूसरेकी मदद करें।

ऐसा वातावरण बनानेमें कुछ देर लगना संभव है। हम सब इस दिशामें प्रयत्न करेंगे, तो सफलता अवश्य मिलेगी।

इस दरम्यान, सब लोग मेरे सुझाये रचनात्मक कार्योंमें लगे रहे। उनमें अधिक प्रगति करें। पूर्ण अहिंसा-भक्तोकी सूची हरेक प्रान्तमें एक या एकसे ज्यादा नेता तैयार करें। वक्त आनेपर हरेक प्रान्तके मुख्य अहिंसा-भक्तोको एकत्र करनेकी मेरी धारणा है। मगर मै एक भी कदम पक्की तरह विचार किये बगैर नहीं उठाऊँगा।

हरिजन-सेवक
१० अगस्त, १९४०

❀

अहिंसा असंभव है?

"अहिसा एक अमोघ हथियार है। जिस मनुष्य ने अहिसा शक्तिको पूर्णतया साध्य कर लिया है, उसका मुकाबिला दुनियाकी कोई भी शक्ति नही कर सकती। इसे हम सिद्धान्त रूपसे भले ही स्वीकार कर ले, मगर जब यह विचार करने बैठते है कि व्यवहारमें यह कहाँतक सभव है, तब दूसरे कई प्रश्न खडे हो जाते है। भले ऐसा कोई सहयोगी हो कि जो सिंह, बाघ, भेडिया, जैसे हिंसक प्राणियोको भी अपने प्रभावसे गाय, बकरी जैसा गरीब बना सके, पर साधारण जनसमूह तो बाघ, भेडिया इत्यादिसे बचनेके लिए बन्दूक या दूसरे ऐसे ही साधन का उपयोग कर सकते है।

"आपके जैसा अनन्त प्रभाव रखनेवाला मनुष्य विचार मात्रसे दूसरोको जीत सकता है। लेकिन साधारण जन-समूह तो अपने लाभके लिए कचहरी, वकील या अन्य साधनोका ही उपयोग करता है। अनत भूत कालमे भी, अहिसा शक्ति प्राप्त करके व्यवहारमें उसका आचरण करनेवाले व्यक्ति हमने विरलेही चुने है। भगवान बुद्धने थोडे समयके लिए अपनी विचार प्रणालीके अनुसार समाजका नेतृत्व किया, मगर बादमें समाज, भगवान बुद्धके मार्ग-दर्शन को भूलकर कुत्तेकी पूँछ की तरह फिर पूर्ववत् ही आचरण करने लगा। भूतकालका विचार करते हुए यह बात असंभव मालूम होती है कि समाज अधिकाधिक अहिसाकी दिशामें जायगा। इसी कारण हमारे ऋषि-मुनियो ने समाजको एक तरफ रखकर सत्य और अहिंसाकी सिद्धिके लिए बनवास का सेवन किया होगा। आपके प्रभावसे थोडसे लोग भलेही अहिसाका अभ्यास करनेको ललचायें, मगर सारे समाजका इस तरफ आना असंभव ही मालूम होता है। —अर्थात् जैसे मनुष्य बाघ, भेडिया इत्यादिसे बचनेके लिए बन्दूक या ऐसे ही दूसरे हथियारोंका उपयोग-करता है, उसी तरह समाज हिन्दुस्तानकी स्वतत्रता प्राप्त करनेके लिए अहिसाके सिवाय दूसरे साधनको ढूढें, यह संभावित मालूम होता है। जैसे ककहरा पढता हुआ बालक तिलक-गीता जैसे ग्रथ नही समझ सकता उसी तरह अहिंसा अमोघ शस्त्र है इस वस्तुको विषयोमे तल्लीन मनुष्य या समाज कैसे समझ सकता है? आपकी प्रतिभाके कारण

थोडेसे लोग भले ही चकाचौंधमें आ जायें, मगर इस चीजको सब लोग मानने लगें, यह असंभव है। यहाँपर विषय-भोग कैसे किया जाये, इसीमें स्पर्धा होती है, ऐसे समाजसे अहिंसाकी सिद्धिकी आशा कैसे की जा सकती है और एक यह भी बात याद रखनी चाहिये।

"जैसे किसी आदमीको इंजीनियर या डाक्टर बनना हो तो उसे कालेजमें जानेके सिवाय दूसरा चारा ही नहीं है, उसी तरह उससे भी अनन्त महाकठिन अहिंसा शास्त्रके लिए कितनी तैयारियोंकी आवश्यकता होगी? कितने ही महाविद्यालय खोलने पडेंगे, जिनमें केवल अहिंसा और सत्यकी ही सिद्धिका शास्त्र सिखाया जाता होगा। उसके बदले, आज तो विलासोंका कैसे उपभोग किया जाये और कैसे उन्हें बढाया जाये, इन्हीं बातोंकी शोध हुआ करती है। ऐसे समाजको अहिंसाकी ओर कैसे ले जाया जाये? क्या वह उधर जायगा? आज तो यह असंभव सा लगता है। आप इसका उत्तर देंगे तो मैं आपका आभारी हूँगा।"

इस पत्रमें लेखकने जो शंकाएँ उठायी हैं, ऐसी शंकाएँ अनेक लोगोंके मनमें पैदा होती हैं। मैंने अलग-अलग जगह ऐसी शंकाओंका समाधान भी करनेका प्रयत्न किया है। मगर चूँकि कांग्रेसकी कार्य-समितिके प्रस्तावके कारण लोग इस विषयपर विचार करने लग गये हैं, इसलिए ऊपर लिखी शंकाओंपर चर्चा करनेकी आवश्यकता मालूम होती है।

उक्त पत्रकी ध्वनि यह है कि अहिंसाका साम्राज्य असंभव है और ऐसा नहीं लगता कि अहिंसाकी तरफ समाजने कुछ प्रगति की है। बुद्ध जैसोंने कुछ प्रयत्न किया। थोडी-बहुत सफलता उनके जीते जी उन्हें भले ही मिली, मगर बादमें समाज तो जहाँ था वहींका वहीं खड़ा है। अहिंसा व्यक्तिगत धर्म हो सकती है। समाजके लिए वह निरर्थक है और हिन्दुस्तानको भी अपनी मुक्तिके लिए हिंसाका ही मार्ग ग्रहण करना पड़ेगा।

मुझे लगता है कि इस दलीलके मूलमें ही दोष है। अन्तिम वाक्य तो अवश्य गलत है। क्योंकि कांग्रेसने स्वराज्य-प्राप्तिके लिए तो अहिंसाका मार्ग कायम रखा ही है। इतना ही नहीं, बल्कि कांग्रेस एक कदम आगे-बढ़ी है। अन्दरूनी झगड़े-फसाद, दंगे वगैरह शान्त करनेके लिए भी अहिंसाको ही रखा है या नहीं, इस विषयमें शंका उत्पन्न होती है। पर अखिल भारतीय कांग्रेस समितिने यह स्पष्ट निर्णय किया है कि वहाँ भी अहिंसाका ही उपयोग करना है। केवल बाहरी आक्रमणके लिए कांग्रेसने सेनाकी आवश्यकता स्वीकार की है। इसमें भी हम देख चुके हैं कि अखिल भारतीय समितिकी खासी अच्छी संख्याने इस प्रस्तावके खिलाफ विरोध प्रगट किया है। ऐसे सिद्धान्तके प्रश्नमें यदि विरोध हो, तो उसे ध्यानमें तो रखना ही पडता है। कांग्रेसकी नीतिका निर्णय तो बहुमत ही कर सकता है, मगर लघुमतके अभिप्रायका इससे उच्छेद नहीं हो जाता। यह अभिप्राय तो रहता ही है। जहाँ अमल करनेका सवाल आये, वहाँ लघुमतके लिए बहुमतके पीछे चलनेका धर्म पैदा होता है। जहाँ सिद्धान्तका मतभेद हो, वहाँ मतभेद तो खड़ा ही है,

और उसके अनुसार अवसर आनेपर अमलमें भी भेद पैदा हो जायगा। तात्पर्य यह है कि सर्वांगीण अहिंसा को भी समाजमें स्थान मिला है यह बताता है कि सामाजिक अहिंसा ठीक-ठीक आगे बढी है। अब यहीं खड़ी रहेगी, आगे बढेगी या नहीं, यह अलग प्रश्न है। इसलिए लेखककी शकाको कांग्रेसके प्रस्तावसे तो मदद नहीं मिलती। उल्टे इस प्रस्तावसे तो उनकी शंकाका अमुक अशमें निवारण होना चाहिए। मैं एक बडा व्यक्ति हूं। मेरे प्रभावमें आकर समाजने कुछ-कुछ किया भी, मगर मेरे बाद वह सब खत्म हो जायगा ऐसा कहना कतई ठीक नही है। कांग्रेसमें अनेक विचारक पडे हुए है। मौलाना स्वय महान् विचारक है, वह तीव्र बुद्धिके है। उनका अध्ययन विस्तृत है। अरबी, फारसीके अध्ययनमें उनके जोड़का विद्वान मिलना कठिन है। अनुभवने उन्हे सिखाया है कि अहिंसासे ही हिन्दुस्तान आजाद होगा। अन्दरूनी विग्रहके लिए भी अहिंसासे ही काम लिया जाय, यह उनका आग्रह था। पडित जवाहरलाल नेहरू किसीसे चकचौंधिया जाँय, ऐसी बात नहीं। उनका अँग्रेजी अध्ययन किसीसे कम नहीं है। काफी विचारके बाद उन्होने स्वराज्य प्राप्तिके लिए अहिंसाका मार्ग स्वीकार किया है। यह सच है कि वह यह कहते है कि अगर अहिंसाके मार्गसे स्वराज्य प्राप्ति कठिन हो और वह हिंसासे मिल सके तो हिंसा का मार्ग स्वीकार करनेमें उन्हे संकोच नहीं होगा। किन्तु हमारे विषयके लिए यह बात अप्रस्तुत है। दूसरे अनेक ऐसे प्रौढ़ नाम है, जो स्वराज्य प्राप्तिके लिए केवल अहिंसाको ही साधन रूप मानते है। मेरे मरनेके बाद यह सब लोग अहिंसा को छोड देंगे, ऐसा विचार तक मनमें लाना उनका और मनुष्य स्वभावका अपमान करना है। हरएक मनुष्यमें व्यक्तित्व है, यह मानकर हमें चलना चाहिये। अगर हम एक दूसरेके प्रति इतना आदर रखें, तो हम आगे बढेंगे, और यदि दुर्बल होगे तो एक दूसरेकी मददसे ऊपर चढेंगे। पत्र-लेखक या दूसरे कोई यह तो नहीं ही मानते होगे कि कांग्रेसने और बहुतसे नेताओने अहिंसाको अन्तिम नमस्कार कर लिया है। मैंने जो बताया है, उस मर्यादातक तो कांग्रेसकी नीति स्पष्ट हो गई है और कायम रही है। मै स्वीकार करता हूँ कि अहिंसाके विराट स्वरूपका विचार करते हुए कांग्रेसकी आँकी हुई मर्यादा अहिंसाको बहुत संकुचित कर देती है। इससे अहिंसाकी भव्यता ढक जाती है। मगर जो दलील यहाँ चल रही है, उसके लिए तो कांग्रेस की मर्यादित अहिंसा पूरा काम देती है, क्योकि यहाँ मै इतना ही बतानेका प्रयत्न कर रहा हूँ कि अहिंसाका क्षेत्र बढ़ता ही चला आता है। कांग्रेसका अहिंसाको मर्यादित रूपमें स्वीकार करना इस दलीलका पर्याप्त समर्थन करता है।

जहांसे कुछ भी ऐतिहासिक प्रमाण मिलने शुरू हुए है, उस कालसे लेकर आजतकके जमानेपर नजर डालते है, तो हम देखते है कि मनुष्य अहिंसा-मार्गपर ही चलता आया है। हमारे पूर्वज एक-दूसरेको खा जाते थे। बादको वह शिकारपर गुजारा करने लगे एक दूसरेको खानेसे उन्हे घृणा होने लगी। इसके बाद शिकारपर जिन्दा रहनेसे भी उन्हे शर्म आयी। इसलिए मनुष्यने जमीन खोदना शुरू किया। वह जमीनसे अनेक प्रकारका भोजन प्राप्त करने लगा। उसने जगलमें मंगल कर दिया। इधर-उधर भटकते हुए जिन्दगी वितानेके बजाय

उन्होंने एक जगह स्थिर होकर रहना पसन्द किया। गाँव और शहर बसाये। कौटुम्बिक भावना जाग्रत हुई, जिसने और आगे बढकर स्वाभाविक भावनाका रूप ले लिया। यह सब उत्तरोत्तर बढती हुई अहिंसाकी निशानियाँ हैं। हिंसा वृत्ति धीरे-धीरे कम होती गयी। अगर ऐसा न होता, तो जिस तरह बहुतसे निचले दर्जेके प्राणियोंका लोप हो गया है, उसी तरह मनुष्य जाति भी आजतक खत्म हो गयी होती।

जो अनेक पैगम्बर और अवतार हो गये हैं, उन्होंने भी न्यूनाधिक मात्रामें अहिंसाका ही प्रवर्त्तन किया है। किसीने हिंसाका प्रचार करनेका दावा ही नहीं किया। करें भी कैसे? हिंसाका प्रवर्तन करना ही क्या था? पशुरूपमें तो मनुष्य हिंसक ही है। आत्माके रूपमें ही वह अहिंसक है। जब मनुष्यको आत्माका भान होता है, तब वह हिंसक रह ही नहीं सकता। या तो वह अहिंसा सीख जायगा, या नाशको प्राप्त होगा। इसीलिए पैगम्बरोंने, अवतारोंने, सत्य, ऐक्य, भ्रातृभाव, संयम, न्याय इत्यादिका उपदेश दिया है। तो भी हिंसा आज तक रही है, और वह भी इस हदतक कि पत्र-लेखकके जैसा विचारशील व्यक्ति भी हिंसाको ही अन्तिम उपाय मानता है। मगर जैसा हमने ऊपर बताया है, इतिहास और अनुभव उनके विरुद्ध हैं।

अगर हम इतना स्वीकार कर लें कि आजतक अहिंसा उत्तरोत्तर बढती ही गयी है, तो उससे अनायास ही यह मान्यता सिद्ध होती है कि उसे आगे बढते ही जाना है। इस जगतमें कोई वस्तु स्थिर नहीं है। सब कुछ गतिमान है। आगे न बढ़े तो पीछे गिरना ही है। गति चक्रके बाहर कोई जा नहीं सकता। उसके बाहर तो एक ईश्वर ही है, यदि है तो।

आज जो युद्ध चल रहा है, उसे हिंसाकी पराकाष्ठा कहा जा सकता है। मगर मेरी दृष्टिसे तो यह हिंसाकी होली है। लोगोंमें अहिंसाकी जितनी कद्र आज है, उतनी कभी नहीं थी, यह मैं तो देख ही रहा हूँ। और जितने प्रमाण पश्चिमसे मेरे पास आते रहते हैं, वह भी यही बताते हैं। ऐसी शुभ घड़ीमें कांग्रेसने जैसी-तैसी भी अहिंसाकी शरण ली है। लेखकको और उनके जैसे दूसरे सशंक लोगोंको शंका छोड कर, श्रद्धाके साथ इस अहिंसा यज्ञमें कूद पड़नेका मैं निमन्त्रण देता हूँ।

"देखो ना, मोती निकालनेवाला मरजीवा मोती निकालनेके लिए समुद्रमें डुबकी लगता है।

"देखो ना, मृत्युके मुँहमें जाकर वह मोतियोंकी मुट्ठी भरकर अपने हृदयकी पीड़ा मिटाता है:

"किनारेपर खड़े तमाशबीनके हाथ एक कौडी भी नहीं आती। प्रेम-पंथ पावककी ज्वाला है, उसे देखकर मनुष्य पीछे भागता है, पर जो उसके अन्दर चला गया है, उसे तो महा-सुख ही मिलता है; जलता तो देखनेवाला है।"

हरिजन-सेवक

१० अगस्त, १९४०

पूर्ण अहिंसावादी क्या करे ?

"प्रश्न---आप चाहते हैं कि हरएक प्रान्तमे पूर्ण अहिंसामें विश्वास रखनेवाले लोग हो। इस हालतमे क्या उनका सगठन होना कठीन न होगा ? या आप मानते है कि अहिंसा अकेली ही चल सकती है ?

उत्तर---पूर्ण अहिसाको तो न वाणीकी आवश्यकता है, न लेखनीकी, और अगर इन दोनो वलोकी आवश्यकता न हो, तो संघ-वलकी आवश्यकता हो ही नहीं सकती। अहिंसामयी स्त्री या पुरुषका संकल्पमात्र काम करता है। यह सत्य मेरी कल्पनामें आता है। मैंने ऐसा शास्त्रोमें पढ़ा है। मगर इसका अनुभव बहुत कम है। इतना कम कि मैं किसीके आगे उसे प्रमाणरूप माननेको नही रख सकता। इसलिए मैंने सुसगठित अहिंसा दलकी इच्छा और आशा रखी है। साथ ही, मैंने यह भी कहा है, कि हरएक प्रान्तमें इने गिने पूर्ण अहिसा-भक्त हो तो उनमें अकेले खडे रहनेकी शक्ति होनी ही चाहिए। अर्थात् सबके सब सैनिक हों और सेनापति भी। ऐसे अहिंसकोका सगठन हो, तो अहिंसाके बारे आज जो अविश्वास फैल रहा है, वह तुरत दूर हो जाय और काग्रेस आसानी पूर्ण अहिंसाको माननेवाली सस्था वन जाय।

हरिजन-सेवक
१७ अगस्त, १९४०

❀

नैतिक मदद

एक भाई लिखते है ---

"लडाईके आरंभमें आपने ब्रिटेनको मदद देनेकी वात की थी। इसका अर्थ सव लोग नही समझे। आपने शायद इसका अर्थ स्पष्ट किया भी नही है। मै 'हरिजन-वन्धु' हमेशा पढता हूँ। मगर उसमे मैने नैतिक मददका स्पष्ट अर्थ नही देखा। अनेक लोग अनेक अर्थ किया करते है। यु० प्रा० स०की वैठकमे खुद नेता लोग ही कहते थे कि वापू स्वय नैतिक मदद देनेको तैयार थे तो कांग्रेसने नया प्रस्ताव पास करके उससे ज्यादा क्या देनेको रहा है ? कांग्रेस तो ज्यादा लेकर थोडा देनेवाली है। वापू तो ऐसे हैं कि सव कुछ दे दे। अगर लडाईमात्र ही अनीतिमय है, तो उसे नैतिक मदद या आशीर्वाद भी कैसे मिल सकता है ? महाभारतमे जो मदद भगवान कृष्णने अर्जुनको दी थी, वह नैतिक या शस्त्रवलसे भी अधिक नाशक क्या नही थी ?"

अंग्रेजीमें तो मैंने नैतिकबलकी मर्यादा बतायी थी। हो सकता है, वह हरिजन-बन्धुमें पूरी तरह न आयी हो। अंग्रेजी लेखोंमें बहुत अध्याहार रखा जाता है। गुजराती अनुवादमें इसे छोड़ा जाय तभी स्पष्ट अर्थ निकल सकता है। नैतिक मददका मोटा अर्थ यहाँ पर यह था कि उसे प्राप्त करनेके लिए अंग्रेजोंको कुछ करना पड़ता था। इसे सौदा नहीं कहा जा सकता। ऐसी हालतमें अंग्रेज जो कुछ हिन्दुस्तानको देते, वह किसी माँगके उत्तरमें दिया हुआ न होता। मान लीजिये कि मेरे भाईके पास नैतिक बल है, जो उसने तपश्चर्या करके इकट्ठा किया है। मान लीजिये कि मुझे उसमेंसे कुछ चाहिए। अपने भाईसे माँगनेसे वह मुझे मिलनेका नहीं है। भाई तो देनेको तैयार है। मगर मुझमें लेनेकी योग्यता ही न हो तो मैं कहाँसे लूँ? नैतिक बल देनेसे दिया नहीं जा सकता, लेनेसे लिया जा सकता है जिसमें लेनेकी योग्यता हो, वह उसे लूट ले।

कांग्रेसके पास ऐसा नैतिक बल है। कांग्रेसने सत्य और अहिंसाका मार्ग स्वीकार किया है, वह उसकी तपश्चर्या है। उसमेंसे उसे जगत-मान्य प्रतिष्ठा मिली है। कांग्रेस यदि अंग्रेज सरकारको आशीर्वाद दे, तो जगत मानेगा कि अंग्रेज सरकारकी लड़ाईमें न्याय है। हिन्दुस्तानके करोड़ो लोग, जिनपर कांग्रेसका काबू है, वह भी मानने लगेंगे कि न्याय अंग्रेज सरकारके पक्षमें है। इस सारे-के-सारे सिलसिलेमें कांग्रेसको कुछ देनेको नहीं रहता। अंग्रेज सरकार अपनी कृतिसे इस हदतक नैतिक प्रतिष्ठा प्राप्त कर सकती है। यद्यपि इसमें कांग्रेस एक भी आदमी या एक भी पैसेकी मदद नहीं देती, तो भी उसकी नैतिक मदद, उसका आशीर्वाद अंग्रेज सरकारकी जीतके लिए निर्णयात्मक योग दे सकता है। यह मेरा अनुमान है। कांग्रेसके पास नैतिक बल है, यह भी तो मेरी केवल मान्यता ही है न? हो सकता है कि दर-असल कांग्रेसके पास ऐसा बल न हो। मगर यहाँपर यह सवाल नहीं उठता।

मगर यह अवसर तो बीत गया, ऐसा कहा जा सकता है। कांग्रेस यह मार्ग ग्रहण न कर सकी। यह ऐसी चीज नहीं थी, जो कृत्रिम रीतिसे की जा सके। उसके लिए सत्य और अहिंसाकी शक्तिमें जीता--जागता विश्वास होना चाहिए। कांग्रेसका बड़ा से बड़ा गुण यह है कि जो चीज अपने पास न हो, उसका ढोंग या दावा कांग्रेसने कभी नहीं किया, इसलिए कांग्रेसके प्रस्ताव दिप उठते हैं और उनमें बल रहता है।

कांग्रेसका हालका प्रस्ताव, जो बल प्रदान करने की इच्छा प्रकट करता है, वह तो मुख्यत आर्थिक है। यह सौदा भी है। मेरे कहनेका यह आशय बिलकुल नहीं कि इसमें कोई बुराई है या अनीति है। कांग्रेसने जो प्रस्ताव पास किया है, वह कांग्रेसके बहुमतकी मनोवृत्ति बताता है, इसलिए उसे शोभा देता है। मगर इससे कांग्रेसके पास जो प्रतिष्ठा थी, या मानी जाती थी वह गयी है सही। बहुतसे कांग्रेसवादियोंने यह निश्चय भले किया कि स्वराज्य हम अहिंसा-मार्गसे लेंगे, पर उसका यह अर्थ नही किया जा सकता कि अहिंसा-मार्गसे उसकी रक्षा भी करेंगे। जगतने तो शुरूसे माना है कि कांग्रेसने दुनियाको युद्ध-नाबूद करनेका सुवर्ण-मार्ग बताया है। किसीकी यह मान्यता नहीं थी, कि कांग्रेस महान् ब्रिटिश सल्तनतके हाथसे सत्ता तो अहिंसा द्वारा लेगी, मगर उसकी रक्षा उस मार्गसे नहीं करेगी।

भगवान कृष्णकी मदद मेरी दृष्टिसे नैतिक नहीं कही जा सकती। क्योंकि उनके पास तो सेना थी। वह खुद युद्धकी कलाके ज्ञाता थ। दुर्योधनने मूर्खता की जो कृष्णकी सेना ली। पर अर्जुनको जो चाहिए था, सो मिला—अर्थात् सेनापतिकी कला। इसलिए महाभारतका स्थूल अर्थ किया जाये तो भगवान् कृष्णका बल अवश्य अधिक नाशक था। क्योंकि कृष्णके युद्ध चातुर्यसे दुर्योधनकी अट्ठारह अक्षौहिणी सेनाका नाश पांडवोंकी सात अक्षौहिणी सेनासे हुआ। मगर यह सभी जानते हैं कि मैंने महाभारतको स्थूल काव्य नहीं माना। स्थूल युद्धका वर्णन करके कविने व्यक्ति और समष्टिमें सत्य और असत्य, हिंसा और अहिंसा, नीति और अनीतिके बीच जो सनातन युद्ध चल रहा है, उसका वर्णन किया है। स्थूल दृष्टिसे इस काव्यको देखा जाये, तो व्यास भगवानने यह सिद्धकर बताया है कि शस्त्र-बलके युद्धमें जीतनेवाला भी हारेके जैसा ही होता है। असंख्य योद्धाओमेंसे आखिर सात ही जीवित बचते हैं। और उन सातका भी क्या हाल हुआ, उसका हूबहू चित्र महाभारतकारने अंकित किया है। यह भी बताया है कि शस्त्र-बलके युद्धमें दोनो पक्ष छल-कपट करनेवाले ही हैं। प्रसंग आने पर युधिष्ठिर-जैसोंको भी असत्य का आश्रय लेना पड़ा था।

अब सिर्फ पत्र-लेखकके एक सवाल पर गौर करना बाकी रहता है। अगर युद्ध-मात्र अनीति-मय है, तो उसमें किसीको भी नैतिक मदद या आशीर्वाद कैसे दिया जा सकता है? मैं मानता हूँ कि युद्धमात्र नीतिके विरुद्ध है। मगर दोनो पक्षोके हेतुपर गौर करें, तो हो सकता है कि एकका हेतु शुद्ध हो और दूसरेका अशुद्ध। जैसे मान लीजिये कि 'अ' 'ब' का मुल्क छीनना चाहता है। दोनो ही तलवारसे लड़ते हैं। यद्यपि मैं तलवारके बलको नहीं मानता, तो भी 'ब' अवश्य मेरी मदद और आशीर्वादका अधिकारी है।

हरिजन-सेवक
१७ अगस्त, १९४०

❀

शूरवीरोंकी अहिंसा

नीचे लिखा प्रश्न पूछा गया है :—

"आप कहते है कि अहिंसा शूरवीरोकी है, कायरोके लिए नही। लेकिन मेरी मान्यताके अनुसारके हिन्दुस्तानमें शूरवीर है ही नही। शायद हम शूरवीर होने का दावा करे, मगर जगत कैसे इस दावेको स्वीकार कर सकता है, क्योकि सारा जगत जानता है कि हिन्दुस्तानके पास शस्त्र है ही नही, इसलिए वह अपनी रक्षा आप करनेके लिए अशक्त है। तो फिर शूरवीरो-की अहिंसा सीखनेके लिए हमें क्या करना चाहिये ?"

आपका यह मानना कि हिन्दुस्तानमें शूरवीर हैं ही नहीं, ठीक नहीं है। विदेशियोंने

एकबार कायर ठहरा दिया, इसलिए हम भी अपने आपको कायर मानने लगे, यह हमारे लिए शर्मकी बात है। बहुत बार ऐसा होता है कि आदमी जैसा अपने-आपको मानता है, वैसा ही बन जाता है। अगर मैं हमेशा यह रटता रहूँ कि अमुक काम मुझसे हो ही नहीं सकता, तो सभव है, कि आखिरमें वह काम करनेके अयोग्य बन जाऊँ। इससे उलटा, अगर मै यह विश्वास रखूँ और मानूं कि मैं यह करूँगा ही, तो आरभमें मुझमें उसकी शक्ति न हो, तो भी उसे मैं प्राप्त कर लूँगा। फिर आप कहते है कि संसार हमें आज कायर मानता है। यह भी सही नही है। सत्याग्रहकी लड़ाईके बाद जगतने हिन्दुस्तानको कायर मानना छोड़ दिया। पश्चिममें कांग्रेसकी प्रतिष्ठा पिछले २० वर्षोंमें अधिक बढी है। हमारे पास शस्त्र नहीं है, तो भी हम स्वराज्य प्राप्त करनेकी आशाका सेवन कर रहे है और हम स्वराज्यके बहुत नजदीक पहुँच गये है। जगत यह सब आश्चर्यचकित होकर देखा करता है, और हमारी हलचलमें जगतको शान्तिकी और जगतको रक्तकी वैतरणीमेंसे उबारनेकी आशाकी किरणें देखता है। दुनियाका अधिकांश यह मानने लगा है कि जगतमें वैर-भावको मिटाना है, और खूनी लड़ाइयाँ बन्द होनी है तो यह कांग्रेसकी अपनायी हुई नीति द्वारा ही होगा। इसलिए आपकी शंका और डरको स्थान नहीं है।

अब आप देख सकते है कि हिन्दुस्तानके पास शस्त्र नहीं है यह चीज अहिंसा-मार्गमें विघ्न रूप नहीं है। यह बात सच है कि अंग्रेज सरकारने बलात्कारसे हमारे शस्त्र छीनकर महादोष और अन्याय किया है। पर अगर ईश्वर प्रसन्न हो या यूँ कहिये कि हममें उस अन्यायका भी उपयोग कर सकनेकी बुद्धि हो, तो अन्यायमेंसे भी लाभ निकल सकता है। यही हिन्दुस्तानके बारेमें हुआ है।

अहिंसाके शिक्षणके लिए शस्त्रोकी आवश्यकता रहती ही नहीं। अगर शस्त्र हो भी तो वह फेंक देने चाहिए, जैसे कि खां साहबने फेंक दिये है। जो लोग यह कहते है कि अहिंसा सीखनेके पहले हिंसा सीखनी चाहिये, उनकी बात तो 'पापी ही पुण्यवान बन सकता है' यह कहने जैसी हुई।

जैसे हिंसाकी तालीममें मारना सीखना जरूरी है, इसी तरह अहिंसाकी तालीममें मरना सीखना पड़ता है। हिंसामें भयसे मुक्ति नहीं मिलती, किन्तु भयसे बचनेका इलाज ढूँढनेको रहता है। अहिंसामें भयको स्थान ही नहीं। भयमुक्त होनेके लिए अहिंसाके उपासकको उच्च कोटिकी त्यागवृत्ति विकसित करनी चाहिए। जमीन जाये, धन जाये, शरीर भी जाय, इसकी वह परवाह ही न करे। जिसने सब प्रकारके भयको नहीं जीता, वह पूर्ण अहिंसाका पालन नहीं कर सकता। इसलिए अहिंसाका पुजारी केवल ईश्वरका ही भय रखे और दूसरे सब भयोको जीत लेवे। ईश्वरकी शरण ढूँढनेवालोको आत्मा शरीरसे भिन्न है यह भान होना ही चाहिये और आत्माका भान होते ही क्षणभंगुर शरीरका मोह उतर जाता है। इस तरह अहिंसाकी तालीम, हिंसाकी तालीमसे एकदम उल्टी होती है। बाहरकी रक्षाके लिए हिंसाकी जरूरत पड़ती है, आत्माकी, स्वमानकी रक्षाके लिए अहिंसाकी आवश्यकता है।

ऐसी अहिंसा घरमें बैठे-बैठे नहीं सीखी जाती। उसके लिए साहसकी आवश्यकता है। हम भयमुक्त हुए हैं या नहीं, यह जाननेके लिए हमें जंगलमें मंगल करना-सीखना चाहिए। श्मशानमें भटकना चाहिए, शरीरका दमन करके, अनेक कष्ट सहन करनेकी शक्ति प्राप्त करनी चाहिये। दो आदमियोंको लड़ते देखकर जो मनुष्य कांपने लगता है या भाग जाता है वह अहिंसक नहीं, कायर है। ऐसे झगड़ोंको रोकनेमें अपनेको कुर्बान कर जोखिम उठाकर, अहिंसक अपनी परीक्षा करता है। संक्षेपमें, अहिंसककी बहादुरी हिंसककी बहादुरी से बहुत आगे जाती है। हिंसककी निशानी उसके हथियार है, वह फिर भाला हो, तलवार हो, बर्छी हो चाहे तमंचा, अहिंसकका हथियार तो 'रामनाम' है। इतना लिखकर मैंने अहिंसा सीखनेवालों को कोई पाठ्यक्रम नहीं दिया, मगर इससे पाठ्यक्रम बनाया जा सकता है।

ऊपरके लेखसे आप देख सकेंगे कि इन दो प्रकारकी वीरताओंमें कोई समानता ही नहीं है। एकका अन्त है, दूसरेका अन्त ही नहीं है। 'सेरके लिए सवा सेर' का न्याय अहिंसा पर लागू होता ही नहीं। अहिंसा अजेय है। ऐसा बल हम प्राप्त कर सकेंगे या नहीं, इस तरहकी शंका मनमें न लाइये। पिछले बीस वर्षका इतिहास हमें विश्वास दिलानेके लिए पर्याप्त होना चाहिए।

हरिजन-सेवक
३१ अगस्त, १९४०

❀

कुछ जरूरी प्रश्नोत्तर

एक लक्षण

सवाल--आप कहते हैं कि अहिंसकको सब कुछ खो देनेके लिए तैयार रहना चाहिये। चूंकि इनका संबन्ध आत्मासे नहीं है, किन्तु शरीरसे है, अगर हम सब कुछ खो देनेको तैयार रहे, तो फिर हिंसक या अहिंसक युद्धकी आवश्यकता ही क्या है? युद्ध तो इसलिए करना पड़ता है न कि हम अपने धन-जनको आक्रमणकारीके हमलेसे बचाएं। साथ ही साथ आप यह भी कहते हैं कि यदि अपने धन-जनकी हिफाजतकी इच्छा हमारे मनमे होगी, तो हमारी आत्मा अशुद्ध हो जायगी। इन दोनोंका मेल कैसे होगा?

उत्तर--आपका प्रश्न बहुत अच्छा है। मैंने जो लिखा है वह अहिंसक सेनाके लिए है। हिन्दुस्तानको ही लीजिये। करोड़ों लोग अहिंसक सेनामें भर्ती नहीं होंगे। लेकिन उनकी रक्षाके लिए जो सत्याग्रही बनेंगे, उनको सर्वस्वका मोह छोड़ना होगा।

धर्म संकट

प्र०—मै एक बार स्टेशनसे दूर रेलके नजदीकसे जा रहा था। मैंने एक नवयुवकको ठीक रेलके पास खड़े देखा। मुझे शक हुआ कि वह रेलसे कटकर आत्महत्या करना चाहता है। इसलिए मैंने उसे वहाँसे हट जानेको कहा। वह थोड़े ही मेरी माननेवाला था? मैंने बहुत मिन्नत की, लेकिन उसने एक न सुनी। मैंने उसकी जान बचानेका निश्चय किया। मैंने उससे लड़ाई की, उसे कुछ खून निकला। मुझे थकान मालूम होने लगी। लेकिन रेलके चले जानेतक मैंने उसे पकड़े रखा। अगर मैं नहीं लड़ता तो वह मरनेवाला था ही। मैंने क्या किया—हिंसा या अहिंसा? जब मैंने लड़ाई शुरू की, तब मुझे कुछ ख्याल नहीं था कि मैं हिंसा कर रहा हूँ या अहिंसा, और अब भी कुछ निर्णय नहीं कर सकता हूँ।

उत्तर—अच्छा ही हुआ कि आपने उस समय हिंसा अहिंसाका ख्याल नहीं किया। जगत इस तरह नहीं चलता है। अभ्याससे हममें एक आदत हो जाती है और उसके मुताबिक मौका आनेपर हम चलते हैं। वैसा ही आपने किया है। मुझे तो कुछ शक नहीं कि आपका वह कार्य अहिंसक और बहादुरीका था। आपने उस नवयुवककी जान बचायी, इसलिए आप उसके सच्चे दोस्त सिद्ध हुए। जैसे एक सर्जन अपने मरीजकी जान बचानेके लिए मरीजको दर्द होते हुए भी चीर-फाड करके उसे बचाता है, ऐसा आपने किया। धन्यवाद!

हरिजन-सेवक
७ सितम्बर, १९४०

❀

हुल्लड़में अहिंसा

एक दोस्त लिखते हैं—"मैं नही समझ सकता कि हुल्लड जैसे प्रसंगोमे अहिंसा कैसे असरकारक परिणाम ला सकती है। आपही ने कहा है कि बलिदान करनेवाला जिसके सम्बन्धमे आया हो उसी पर उसके बलिदानका असर भी होगा। अब हुल्लड के प्रसंगपर जो गुण्डे मारामारीके लिए निकलते है वह मरनेवालेके संबन्धमें तो कभी आये ही नही होते। ऐसी हालतमें उसे बलिदानवालेको मारनेसे कैसे हिचकिचाहट होगी। उसके सामने यह सवाल ही नही पैदा हो सकता है कि मै किसको मार रहा हूँ, किस कारणसे मारता हूँ?"

यह प्रश्न बहुत विचार करने योग्य है। पत्र लिखनेवाले भाई खुद अपनी जिन्दगीको खतरेमें डालकर हुल्लडमें कूद चुके है। मै इस प्रश्नके बारेमें आगे भी लिख चुका हूँ लेकिन

यह एक ऐसी चीज है कि जो बार-बार दुहरायी जा सकती है। दुःखकी बात तो यह है कि कॉंग्रेसके सभ्योंका ध्यान शान्ति द्वारा हुल्लड़का उपाय ढूंढनेकी तरफ गया ही नहीं। उन्होंने सरकारके सामने लडनेतक ही अपनी अहिंसक शक्ति बढायी है। मैं बता चुका हूँ कि जो अहिंसा वही तक जाकर अटक जाती है, वह अहिंसा कही ही नहीं जा सकती है। निःशस्त्र प्रतीकार हम उसे भले कहे। परन्तु यह तो एक प्रकारकी सरकारको तग करनेकी युक्ति ही कहलायेगी। दूसरे शब्दोंमें, यह एक तरहकी हिंसा ही ठहरी। हुल्लड़को शान्त उपायोसे रोकनेके लिए दिलमें सच्ची अहिंसा होनी चाहिए। गुण्डोसे भी प्रेम होना चाहिये। ऐसा करनेकी वृत्ति एका-एक नही आ सकती। यह तो कोशिश करनेसे ही आती है। जब हुल्लड़ न हो, उस समय कोशिश की जा सकती है। जहाँ हम रहते है वहाँ होनी चाहिये। जिन लोगोको गुण्डा माना जाता है उनकी हमें जान-पहचान करनी चाहिये। शान्तिका साधक अपने आस-पासके समाजके किसी अगको ऐसे रहने न देगा। सबके साथ मीठा सम्बन्ध बांधेगा, सबकी सेवा करेगा। गुण्डे लोग कहीं आकाशसे तो नहीं उतरते। भूतकी तरह जमीनके पेटसे भी नहीं निकलते। उसकी उत्पत्ति समाजकी कुव्यवस्थासे ही होती है। इसलिए समाज उसके लिए जिम्मेदार है। गुंडोको समाजका मर्ज या एक किस्मकी सड़ान समझना चाहिए। ऐसा मानकर उस मर्जके कारण ढूँढ़ना चाहिए। कारण हाथ लगनेपर इलाज फिर किया जा सकता है। अबतक तो इस दशामें प्रयत्न तक भी नहीं किया गया। जागे तबसे सुबह इस सुभाषितके अनुसार यह प्रयत्न अब शुरू कर देना चाहिए। इस बारेमें अब कोशिश शुरू हो गयी है। सब अपनी २ जगह कोशिश करें। ऐसी कोशिशोकी सफलतामें ही इस सवालका जवाब समाया है।

हरिजन-सेवक
१४ सितम्बर, १९४९

❀

अहिंसामें व्यायामका स्थान

व्यायामशालाओमें, अखाड़ेमें, तलवार, भाले, जमैये, आटापाटा इत्यादिको स्थान होता है। कॉंग्रेसके स्वयसेवकोको कई प्रकारकी कवायदें सिखायी जाती है, और उसके अलावा ऊपर बताई हुयी तालीम भी कई जगह दी जाती है। इस विषयमें मुझे कुछ पत्र मिले है, लेखक अहिंसाकी दृष्टिसे इस विषयमें मेरे ख्यालात जानना चाहते हैं। विषयकी चर्चा शुरू करनेके पहले एक महत्वकी बात कहना आवश्यक समझता हूँ। हिंसक लश्करकी भर्तीमें आनेवालोकी सिर्फ शारीरिक परीक्षा की जाती है। उसमें बूढे, स्त्री और छोटे लड़के नहीं लिये जायेंगे। वैसे ही रोगियोको भी नहीं ले सकेंगे और ऐसी मर्यादा हिंसक लश्करके लिए आवश्यक भी है।

लेकिन अहिंसक संघके लिए नियम बिल्कुल उल्टा है। उसमें भर्ती होनेवालोके शरीरकी नहीं, बल्कि दिलकी परीक्षा होती है, इसलिए उस संघमें महारोगवाले, बूढ़े, स्त्री, और नवजवान, लूले, लंगडे और अंधे भी शामिल हो सकते हैं और विजय पा सकते हैं। मारनेकी शक्ति पानेके लिए लम्बी तालीम लेनी पड़ती है। मरनेकी शक्ति तो जिनकी इच्छा होती है उनमें आ ही जाती है, दस बारह सालका लडका पूर्ण सत्याग्रही हो सकता है। ऐसे कई दृष्टान्त भी मिलते हैं। लेकिन दस बारह सालका लड़का हिंसक लश्करमें आ ही नहीं सकेगा। चाहे उसकी कितनी ही तीव्र इच्छा हो, उसकी शारीरिक संपत्ति अपूर्ण होनेके कारण लश्करमें भर्ती नहीं हो सकेगा। लेकिन कोई ऐसा न समझे कि चूँकि अहिंसक संघमें महारोगी और बालकको भी स्थान हो सकता है, इसलिए सत्याग्रहीको शारीरिक सपत्तिका कुछ ख्याल ही नही करना पडता है। अहिंसामें ऐसे कार्य करने पडते है जो कि मजबूत शरीरवाले ही कर सकें। इसलिए यह सोचना अति आवश्यक है कि अहिंसक मनुष्यको किस प्रकारकी शारीरिक तालीम लेनी चाहिए।

जो नियम हिंसक लश्करके लिए है, उनमें से कुछ ही अहिंसक लश्करको लागू हो सकेंगे। हिंसक लश्करके पास तलवार इत्यादि सिर्फ दिखाने या शोभाके लिए नहीं होगा। लेकिन उसका उपयोग दूसरेके प्राणलेनेके लिए होगा। अहिंसक सघवालोको ऐसे हथियारोका उपयोग न होनेके कारण वे उसको बोझ समझेंगे, और हो सके तो उसमेंसे खेती इत्यादिमें उपयोग हो ऐसा सामान उत्पन्न करेंगे; उसको शस्त्रके रूपमें देखनेमें उन्हे शर्म लगेगी। हिंसक सिपाहीको शिकार करना सिखाकर हिंसाकी तालीम दी जायगी। अहिंसकको न शिकार करनेका समय ही मिलेगा, न इच्छा होगी। अहिंसककी तालीम बीमारोकी सेवा करनेकी, अपने जानकी चिन्ता न करते हुए संकटमें पड़े हुए लोगोको बचानेकी, जहाँपर चोर-डाकूका भय हो वहाँ पहरा देनेकी और उनको ऐसा न करनेको समझाते-समझाते मर मिटनेकी होगी। हिंसक और अहिंसकका लिबास भी अलग ही होगा। हिंसक अपनी रक्षाके कारण बख्तर पहनेगा, सामनेवालोंपर प्रभाव डाल सकें ऐसी पोशाक पहनेगा। अहिंसकको न किसीके साथ लड़ना है, न किसीपर प्रभाव डालना है। इसलिए उसका पोशाक सादा और गरीबोसे मिलती-जुलती रहेगी। उसका उपयोग सिर्फ शरीर ढकनेका और धूप जाड़ोसे बचनेका होगा। हिंसक सिपाहीका रक्षक सिर्फ उसके शस्त्र ही होंगे— चाहे वह मुँहसे ईश्वरका नाम लेता भी हो, उसको अपने शस्त्रकी खातिर करोड़ो रुपयेका खर्च करनेमें कभी हिचकिचाहट नहीं होगी। अहिसकका एक ही, पहला और आखिरी शस्त्र ईश्वरके प्रति पूर्ण–अटूट विश्वासका होगा। साफ है कि हिंसककी और अहिंसककी मनोवृत्तिमें आसमान और जमीनका सा फर्क है।

हिंसक चौबीसो घन्टे अपने शत्रुको मारने, मरवानेकी युक्ति सोचता रहेगा और ईश्वरकी जो प्रार्थना करता होगा वह भी अपने दुश्मनके नाश करनेकी। अंग्रेजी जनताका गीत यहाँ सोचने लायक है। उसमें अंग्रेजी राजाकी रक्षाके लिए ईश्वरसे प्रार्थना की गयी है। दुश्मनको धोखेबाज गिना है और ईश्वरसे उसका संहार मांगा है। यह गीत लाखों अंग्रेज एक सुरमें ऊँचे स्वरमें खड़े होकर शानसे गाते हैं। यदि ईश्वर दयावान

हो तो ऐसी प्रार्थना कैसे सुने ? लेकिन गानेवालेके मनपर तो उसका असर होता ही है और लडाईके समय पर तो यह गीत गानेवालोके दिलोमें दुश्मनके प्रति घृणा और रोष भभक उठाते है। हिंसक लड़ाई जीतनेकी शर्त ही यह है कि दुश्मनके प्रति गुस्सा प्रतिदिन बढाना। अहिंसकके शब्दकोषमें कोई बाह्य दुश्मन ही नहीं है, लेकिन जो दुश्मन माना जाता होगा, उसके प्रति भी मनमें तो दया-प्रेम ही होगे। वह ऐसा मानता होगा कि कोई भी मनुष्य जान बूझकर दुष्ट नहीं होता। हरेक मनुष्यमें योग्यायोग्य सोचनेके शक्ति है ही, और वह शक्ति पूरी विकसे तो अहिंसामें ही उसका परिवर्तन हो जाये। इसलिए अहिंसक मनुष्य ईश्वरसे यही मांगेगा कि दुश्मनको सुबुद्धि दे और उसका भला करे। उसकी निरन्तर प्रार्थना यह होगी कि खुदकी दयावृत्ति बढे और आत्मबल भी बढे, ताकि वह हँसते मुँह मौतकी भेंट कर सके।

ऐसे दोनोकी मनोवृत्तिमें महान भेद होनेके कारण दोनोकी शारीरिक तालीम भी अलग ही होगी।

लश्करी तालीम तो हम सब कम-ज्यादा मात्रामें जानते है। अहिंसाकी तालीम और प्रकारकी ही होती है। उस तरफ हमारा ध्यान ही नहीं गया है। उस प्रकारकी तालीम पुराने जमानेमें थी या नहीं, उसकी हमने जाँच नहीं की है। मेरा मानना है कि वैसी तालीम पूर्वकालमें दी जाती थी, और आज भी भले टूटी फूटी सही, कहीं कहीं दी जाती है। अनेक प्रकारके हठयोग-प्रयोग उसकी तालीम है। उसमें जो शरीर-शिक्षा है, उसमें शरीरका आरोग्य, शरीर सुदृढ़ बनाना, ठंड-धूप सहनेकी शक्ति बढाना, शरीरकी चपलता बढ़ाना, इसका समावेश होता है। इसका प्रयोग और उसमें क्या-क्या शक्ति भरी हुई है, उसकी शास्त्रीय पद्धतिके अनुसार जाँच करनेकी कोशिश कुवलयानंदजी कर रहे है। आज उनकी प्रगति कहाँतक पहुँची है और कुवलयानन्दजी अपने प्रयोग अहिंसाको ध्येय समझकर कर रहे है या नही, यह मैं नहीं जानता। यहाँ हठयोगके प्रयोगका उल्लेख करके मेरा प्रयोजन सिर्फ प्राचीन वस्तुकी ओर ध्यान खींचनेका ही है। मेरा मानना है कि उसमें सुधार और वृद्धिकी गुंजाइश है। मैं नहीं जानता कि हठयोगके आचार्योंके सामने सामाजिक अहिंसाकी कल्पना थी या नहीं। ज्यादातर ऐसी क्रियाओके पीछे व्यक्तिगत मोक्षकी भावना ही होती है। आसनादिका प्रयोजन शरीरको कसकर मनोवृत्तिपर काबू लानेका था। आज हमारे सामने सामाजिक अहिंसाका सवाल है। वह सब धर्मिओपर लागू पडती है, इसलिए जो नियम बनें वह भी ऐसे होने चाहिए जो अहिंसाको मानने वाले सब बर्दाश्त कर सकें और यहाँ कल्पना अहिंसक लड़ाई लडनेवालोका यानी सत्याग्रहियोका संघ स्थापित करनेकी है। इसलिए पुराने जमानेमें जो कुछ हुआ, उसे मार्ग-दर्शक समझकर आज नये नियम बनने चाहिए।

जिन चीजोकी सत्याग्रहियोको आवश्यकता है वह अब सोचें। यदि सत्याग्रही पूर्ण निरोगी नहीं होगा तो शायद पूर्ण रूपसे वह निडर नही बनेगा। उसमें दिन-रात एक ही पैर खड़े रहनेकी शक्ति होनी होगी। ठंढ-धूप, बारिश सहन करते हुए भी वह बीमार नहीं होगा। जहाँ भय हो, जहाँ आग लगी हो वहाँ दौड़ जानेकी शक्ति उसमें होनी चाहिए। निर्जन जंगलमें, स्मशानमें, निडरपनसे अकेले घूमनेकी शक्ति होनी चाहिये। चाहे कितनी मार पडे,

घायल हो जाय, भूखो मरे तब भी वह चूँ-चा नहीं करेगा, न घबडायेगा और न अपना स्थान छोड़ेगा। दगेमें मौका न मिले ऐसा होनेपर भी उसमें कूद पड़नेकी युक्ति और शक्ति सत्याग्रहीमें होनी चाहिए। कहीं आग लगी हो, और ऊपरकी मंजिलमें रहते हुए लोगोको बचाना है तो ईश्वरका स्मरण करते-करते वहाँ पहुँच जानेकी इच्छा और शक्ति उसमें होनी चाहिए। नदीमें कहीं बाढ़ आयी हो और उसमें कोई डूबता हो, कोई कुएँमें गिरा हो तो उसको बचानेके खातिर कूद पडनेकी शक्ति सत्याग्रहीमें होनी चाहिए।

इस फिहरिस्तको जितनी विस्तृत करना चाहे उतनी कर सकते हैं। सारांश मात्र इतना ही है कि जहाँ दुःख हो, वहाँ मदद करने दौड़ जानेकी, और चाहे हमें कितना ही दुःख कोई दे तब भी हँसते मुँह बर्दाश्त करनेकी शक्ति होनी चाहिए। जो मैंने लिखा है उसे जो हजम कर सके है, वह आसानीसे तालीमके नियम बना सकेंगे, ऐसा मेरा पूर्ण विश्वास है। इस तालीमके मूलमें ईश्वर-श्रद्धा है। यह न होनेपर सब प्रकारकी तालीम मौकेपर निकम्मी साबित होगी। कांग्रेसमें कई लोगोको तो ईश्वरका नाम लेते शर्म आती है, कहकर मेरे वचनका कोई अनादर न करे। मैं तो सत्याग्रहके शास्त्रको मैंने जैसा जाना और अपनाया है उसीके अनुसार यह लेख लिख रहा हूँ। सत्याग्रहीका शस्त्र एकमात्र ईश्वर ही है, फिर चाहे उसे किसी नामसे पहिचानें, उसके बिना वह राक्षसी शस्त्र धारण करनेवालोके सामने निर्बलसा प्राणी है। असख्य लोग ऐसे ही दबकर चलते हैं। लेकिन जिसका एकमात्र ईश्वर ही रक्षक है, उसे बाहरी शक्ति चाहे कैसी भी भयकर हो, झुका नहीं सकेगी।

जिस तरह ईश्वर-श्रद्धाकी आवश्यकता है, वैसे ही ब्रह्मचर्यकी भी है। बिना ब्रह्मचर्य न तो उसमें तेज होगा, न आत्मिक बल होगा और न निशःस्त्र होते हुए भी दुनियाके सामने खडे रहनेकी शक्ति होगी। यहाँ मैंने ब्रह्मचर्यकी जो व्यापक व्याख्या की है वह भले न मानी जाय ब्रह्मचर्यके मानी सिर्फ वीर्य-रक्षा भले मानी जाय। कम खुराकसे और बिना बाहरकी मददसे जिसे जीवन-निर्वाह करना हो, उसे हर हालतमें वीर्य-सग्रह करना ही होगा। मनुष्यकी वह बडीसे बडी पूँजी है। जो उसका सग्रह कर सके, वह नित्य नया बल पाता रहेगा। जो जानते हुए या अनजानसे वीर्य खर्च करता है, वह आखिरमें निर्वीर्य बनेगा। उसमें जो बल होना चाहिए वह नहीं आयेगा। वह वीर्य-संग्रह कैसे किया जाय, यह मैं कई बार लिख चुका हूँ। पाठक उसे पढ़ें और उसपर अमल करें। जो आँखसे या स्पर्शसे भोग करता है, वह कभी वीर्य-सग्रह नहीं कर पायेगा और जिसको छप्पन तरहके भोगकी आदत है वह भी न कर सकेगा। बाढके सामने चलते न थकनेका सकल्प जैसे व्यर्थ जाता है वैसे ही नियमोका अनादर करके वीर्य-सग्रह करनेकी आशा व्यर्थ जायगी और ऐसा प्रयत्न करनेवाला आखिरमें ब्रह्मचर्यका दावा न करते हुए मर्यादित विषय-तृप्ति करनेवालोमें भी निर्बल सिद्ध होगा। विचारसे विषय करनेवालेकी कभी तृप्ति तो होती नहीं, इसलिए वह आखिरमें निर्वीर्य, मंदबुद्धि और पृथ्वीपर बोझ सा हो जायगा, ऐसे लोग कभी सत्याग्रही नहीं बन सकेंगे, वैसे ही जिनको धनकी लालसा है वे भी नहीं हो सकेंगे।

यह तो मैंने सत्याग्रहीकी शारीरिक तालीमकी बुनियादी बातें लिखी है, उसके मुताबिक कोई भी व्यायाम-रचना हो सकेगी।

अव तो इतना स्पष्ट होना चाहिए कि सत्याग्रही तालीममें तलवार, भाले, तमचेको स्थान नही है। उसे देखनेकी या छूने तककी आवश्यकता नहीं है, क्योकि उससे भी भयकर शस्त्र आज मौजूद हैं। रोज नये-नये निकलते जाते हैं। चाहे कैसे भी भय--काल्पनिक या अनुभवमें आये हुए हो, उसको--पीजानेकी शक्ति जिसको वढाना है, वह तलवारका अनुभव लेकर किस भयसे मुक्त होगा ? ऐसा करते कोई भयमुक्त हुआ सुना नहीं है। महावीर आदि अहिसा सीखे वह उनको शस्त्रका अनुभव ज्ञान था उस कारण नहीं। लेकिन होते हुए भी वह भयमुक्त हुए और उन्होने अहिसा सीखी। जरा सोचनेपर पता चलेगा कि जिसने हमेशा तलवारका आश्रय लिया है, उसको तलवार छोड़ना कठिन जचेगा। हाँ, लेकिन जो शस्त्रधारी अपने शस्त्र फेंक देगा उसकी अहिसा सच्ची और स्थायी बननाका संभव है सही, लेकिन उसका अर्थ यह कभी न किया जाय कि सच्चे अहिसक बननेके लिए पहले शस्त्र धारण करना ही चाहिए। ऐसा अर्थ दूसरे क्षेत्रमें करें तो अर्थ यह निकलेगा कि डाकू ही साहूकार बन सकता है। रोगी ही निरोगी वन सकता है, विषयी ही ब्रह्मचारी वन सकता है। सच बात यह है कि हमें प्रस्तुत वायुमंडलके वाहर निकलकर तटस्थतासे सोचनेकी आदत ही नही है, और छिछला विचार करनेकी आदत होनेके कारण हम कुछ परिणाम पा नही सकते हैं और भ्रमजामलमें फसे रहते है।

हरिजन-सेवक
१२ अक्टूबर, १९४०

❀

मेरी कोई नहीं सुनता ?

उर्ध्व बाहुर्विरोम्येषः नैव कश्चिच्छ्रुणोति मे।
धर्मादर्थश्च कामश्च सधर्मः किं न सेव्यते।।

"मैं ऊचा हाथ करके पुकारता हूँ, पर मेरी कोई सुनता नहीं! धर्ममें ही अर्थ और काम समाया हुआ है, ऐसे सरल धर्मका सेवन लोग क्यों नहीं करते हैं ?"

बापूजी अणे पिछले शनिवारको दिल्लीमें कुछ मिनटके लिए मेरे पास आ गये थे। हम साथ-साथ काम कर रहे हों या विरोधी दिशामें जा रहे हो, बापूजी अणे मेरे प्रति हमेशा प्रेम भाव रखते हैं। इसलिये जब कभी उन्हें समय मिलता है राम राम कर जाते हैं, विचारोंका विनिमय कर जाते है, और कभी-कभी तो उनके पास श्लोकोंका जो भंडार भरा पड़ा उनमेसे कुछ वानगी भी दे जाते है। दिल्लीमें जब वे मुझसे मिलने आये तब कॉंग्रेसमेसे मेरे एकदम निकल जानेका उन्होने कुछ विरोध सा किया, मगर दरअसल तो उन्होने मुझे इसपर बधाई ही दी। "कॉंग्रेसको या किसीको भी आपको नाराज नही करना चाहिये। आप तो अपने रास्ते जांय। आपने अंग्रेजीके प्रति

जो लिखा है, उसे मैंने देखा है। वह लोग सुननेवाले नहीं, पर आपको इससे क्या पडी है? आपका काम तो जिसको आप धर्म मानते है, वह सबको सुनानेका ही है। देखो न, अभीके समय कांग्रेसने ही आपकी नही सुनी। स्वयं व्यासकी किसीने नही सुनी, तो किसी दूसरेकी बात ही क्या है? महाभारत जैसा ग्रन्थ लिखकर अन्तमें उन्होंने एक श्लोक लिखा है, जो भारत सावित्रीके नामसे प्रख्यात है।" यह कहकर ऊपर लिखा श्लोक मुझे सुनाया। यह श्लोक सुनाकर उन्होने मेरी श्रद्धाको दृढ किया, और बताया कि मैने जो मार्ग पसन्द किया है वह दुर्गम है।

मगर मुझे यह मार्ग ऐसा कठिन लगा ही नहीं है। भले ही आज सरदार और मै अलग-अलग रास्तेपर जाते हुए दिखाई देते हो, पर इसमें हमारे दिल थोड़े ही अलग हुए है? उनको अलग रास्ते जानेसे मै रोक भी सकता था पर ऐसा करना मुझे ठीक नही लगा। राजाजीकी दृढ़ताके आगे इस तरहका आग्रह अधर्म गिना जाता। राजाजीको भी मै रोक सकता था। पर ऐसा करनेके बदले मैंने उन्हें उनके रास्ते जानेको उत्ते-जन दिया। ऐसा करना मैंने अपना धर्म समझा। अगर मुझमें आज जो नया सा मालूम पडता है, उस क्षेत्रमें अहिंसाके प्रयोगको सफल करके बतानेकी शक्ति होगी, तो मेरी श्रद्धा टिकी रहेगी। जनताके बारेमें मेरा जो अभिप्राय है वह सच्चा होगा, तो सरदार और राजाजी पहलेकी तरह मेरा हाथ ऊचा करेंगे।

मगर यह नया-सा लगनेवाला क्षेत्र है कहाँ? कॉंग्रेसके प्रस्तावों और 'हरिजन'के लेखोंका अध्ययन करनेवालोके लिये यह नया-सा लगनेवाला क्षेत्र नया नहीं है। सरकारके खिलाफ लडनेकी अहिंसा एक क्षेत्र है। इसे मैंने हमेशा कमजोरका हथियार कहा है। इसका उपयोग हिन्दुस्तानने करके देख लिया है और बहुत हदतक यह प्रयोग सफल हुआ कहा जा सकता है। हम यह कह सकते हैं कि इस किस्मकी अहिंसा भी कॉंग्रेसमें स्थायी स्थान पा चुकी है।

दूसरा क्षेत्र है हमारे आपसके झगड़ोमें जैसे कि हिन्दू-मुस्लिम फसाद और अराज-कता मचनेपर जो उपद्रव होगे, उनमें अहिंसाका उपयोग। ऐसे वक्तपर हम अहिंसाका ऐसा सफल प्रयोग अभीतक नहीं कर सके जो प्रत्यक्ष देखा जा सके। इसलिये जब अराज-कताका भय हमारी आँखोके सामने नाच रहा है तब कॉंग्रेसवाले क्या करें? डडेका जवाब डडेसे दें या डडेवालोंके आगे सिर झुकाकर, मारको बर्दाश्त करके दें? इस प्रश्नका उत्तर जितना हम समझते है उतना सरल नहीं है। इसकी पेचीदगीमें न जाकर, मै इतना ही कहूँगा कि ऐसे वक्तपर कॉंग्रेसवाले स्वयं मरकर जितना बचा सकते है उतना बचायें, दूसरोंको मारकर कभी नहीं। विना मारे मर जानेवालोंने अपनी जिम्मेदारी सौ फी सदी अदा की है। परिणाम तो ईश्वरके हाथमें है। यह अहिंसा दुर्बलकी अहिंसा नहीं है यह तो स्पष्ट है। इसमें जेल जानेका लाभ नही है। सरकारके प्रति हृदयमें विष भरा हो तो भी उसे छिपाकर जेलमें जा सकते है; असहयोग कर सकते है। मगर जहाँ तलवार, छुरी, लाठी, पत्थर आदिका धड़ल्लेसे उपयोग हो रहा हो, वहाँ अकेला आदमी

क्या करे? मनमें द्वेष रखनेवाला क्या तलवारके वारको झेलेगा? यह स्पष्ट है कि ऐसा वार सहनेवालेका हृदय प्रेम और दयासे सराबोर होना चाहिये। जो मनुष्य विरोधी को अपना अंग समझता है, वही उसका वार झेलेगा और उसे वह फूलके समान गिनेगा। ऐसा एक आदमी अच्छेके संयोगोंमें हजारोंका काम कर सकता है इसके लिये ऊंचे प्रकारके हृदय-बलकी आवश्यकता है।

जो स्त्री या पुरुष ऐसी शक्ति बता सकता है, वह बाहरी आक्रमणका सामना अच्छे प्रकारसे कर सकता है। यह तीसरा क्षेत्र है। कांग्रेसकी कार्यवाहक समिति माना कि भीतरी आक्रमणके लिये अहिंसाका प्रयोग फिर भी चल सकता है, पर बाहरसे चढ़ाई करके आनेवाले शत्रुके खिलाफ अहिंसाके द्वारा लड़नेकी शक्ति हिन्दुस्तानमें नहीं है। मुझे उनके इस अविश्वासके कारण दुख होता है। मैं नहीं मानता कि हिन्दुस्तानके करोड़ों निशस्त्र लोग इस व्यापक क्षेत्रमें अहिंसाका प्रयोग सफल नहीं कर सकेंगे। कांग्रेसके दफ्तरमें जिनका नाम है, वह जिनकी श्रद्धा डगमगा गई हो ऐसे 'सरदार' सरीखे, सरकारको यह दृढ़ विश्वास बताकर आश्वासन दे सकते हैं कि अहिंसा ही एक ऐसा हथियार है जो हिन्दुस्तानके योग्य है। कदाचित कोई कांग्रेसी ऐसी शंका करें कि 'हिन्दुस्तानमें जो इतने लड़नेवाले पड़े हैं उनका क्या होगा?' मेरी समझमें यह खास कारण है कि सब कांग्रेसी केवल अहिंसक सेनाके द्वारा ही रक्षा करनेकी तालीम लें। यह प्रयोग नया ही है। बीस वर्षसे एक क्षेत्रमें अहिंसाका सफल प्रयोग करनेवाले कांग्रेसी यह नया प्रयोग न करें, तो फिर दूसरा कौन करेगा? मेरा यह अटल विश्वास है कि हमारे पास आवश्यक संख्यामें अहिंसक सेना हो तो इस नये क्षेत्रमें भी हमें विजय मिल सकती है और जो करोड़ो रुपये आज फिजूल खर्च हो रहे हैं वे बच सकते हैं।

इसलिये मैं यह आशा लगाये बैठा हूं कि प्रत्येक गुजराती स्त्री, पुरुष, अहिंसाको दृढ़तासे पकड़े रहेंगे और सरदारको विश्वास दिलायेंगे कि वह लोग कभी हिंसक बलका प्रयोग नहीं करेंगे। हिंसक बलका प्रयोग करके जय पानेकी भी आशा हो तो उस जयका त्याग कर देंगे, पर अहिंसात्मक बलका नहीं। भूल करके भी हम भूल न करना सीखेंगे। जितनी बार गिरेंगे उतनी बार फिर उठकर खड़े हो जायंगे।

हरिजन-सेवक
१३ जुलाई, १९४०

❀

खाँ साहबकी अहिंसा

जहाँ हर तरफ "शुद्ध अहिंसा" की होली जल रही है, वहाँ खाँ साहबकी जीती जागती अहिंसा कायम है यह बात हमारे लिये चिराग जैसी रोशन है। खाँ साहबका निवेदन मनन करनेके काबिल है। खाँ साहबको शोभा भी यही देता है। खाँ साहब पठान है। पठान तो तलवार, बन्दूक लेकर पैदा हुये हैं ऐसा कहा जा सकता है।

रौलट एक्टकी लडाईके जमानेमें जब खुदाई खिदमतगार आमादा हुये, तब खाँ साहबने उनके हथियार छुडवा दिये। सरकारके साथ तो लड़ना ही था लेकिन खाँ साहबने अहिंसाका सच्चा तजुरबा दूसरी ही जगह पाया। पठानोमें बदला लेनेका कानून ऐसा सख्त है कि अगर एक खानदानमें खून हो गया हो तो उसका बदला खूनसे ही लेकर छुटकारा होता है। एक बार खूनका बदला लिया, तो फिर उस खूनका बदला लेना होता है। इस तरह पीढी दर पीढी खूनका बदला खूनसे लेनेका कहीं अन्त ही नहीं आता था। यह भी हिंसाकी हद और हिंसाका दिवाला था क्योंकि इस तरह खूनका बदला लेते–लेते खानदान बरबाद हो जाते थे। खाँ साहबने पठानोकी ऐसी बरबादी देखी और अहिंसामें उनकी बेहतरी पायी। उन्होंने सोचा कि यदि मैं पठान लोगोको समझा सकूँ कि हमको न सिर्फ खूनका बदला नहीं लेना है बल्कि खूनको भूल जाना है, तो एक दूसरेसे बदला लेना बन्द हो जायेगा। हम जिन्दा रह सकेंगे और जिन्दगीको कामयाब भी कर सकेंगे। यह नकदका सौदा है। उनके अनुयायियोने उसपर अमल किया। अब ऐसे खुदाई खिदमतगार पाये जाते हैं, जो खूनका बदला लेना भूल गये हैं। यह ताकवतरकी अहिंसा या सच्ची अहिंसा कही जा सकती है।

अगर खा साहब कांग्रेसमें रहते तो उनकी जिन्दगीका काम खाकमें मिल जाता। वह पठानोसे किस मुँहसे कहते कि 'तुम लडाईमें भरती हो जाओ? वह बदला न लेनेका कानून अब रद्द हुआ समझो।' ऐसी भाषा पठान समझ ही नहीं सकते। वह तो तुरत यही जवाब देते कि जर्मनी अपना बदला ले रहा है, इंगलैण्ड मुकाबला कर रहा है, यह हार जायगा तो खुद लड़ाईकी तैयारी करेगा। इसलिये इस लडाईमें और हमारे खूनका बदला खूनसे लेनेमें रत्ती भर भी फर्क नहीं। ऐसी दलीलोके सामने खाँ साहबकी जबान बन्द हो जाती, इसलिये उन्होने अपना ही काम जारी रखना पसन्द करके कांग्रेससे निकल जानेका फैसला किया। खाँ साहबको अहिंसाका पैगाम पहुँचानेमें कहाँतक कामयाबी हुई वह मैं नहीं जानता। इतना ही जानता हूँ कि खाँ साहबकी श्रद्धा दिमागी नहीं, केवल दिलसे निकली हुई है, इसलिये वह हमेशा कायम है। अब कबतक उनके चेले उनकी तालीममें लगे रहेंगे यह खुद खाँ साहब भी नहीं कह सकते और न इसकी उन्हें परवाह है। उनको तो अपना फर्ज पूरा करना है। परिणाम

खुदापर छोड दिया है। उनकी अहिंसाका आधार कुरान शरीफ है, खाँ साहब पक्के मुसलमान हैं। वह लगभग एक वर्ष तक मेरे साथ रहे। बावजूद बीमार होनेके, उन्होने न कभी नमाज कजाकी और न रोजा। खाँ साहबके दिलमें दूसरे मजहबोके प्रति आदर है। उन्होने गीताका भी थोड़ा अभ्यास किया है। वह हमेशा बहुत कम पढते है। लेकिन जो पढते या सुनते है वह अगर अमलमें लानेके काबिल हो तो उसपर अमल करनेमें उन्हें देर नही लगती। वह लम्बी-चौडी दलीलोमें नही पड़ते। जरा समझा और तुरन्त हां या ना कह सकते है। अगर खाँ साहबको पूरी सफलता हासिल हुई, तो उससे बहुत सी उलझने सुलझ सकती है। आज तो कुछ नही कहा जा सकता। चाक पर मिट्टी है, मटका उतरेगा या गागर, इस बातको तो खुदा ही अच्छी तरह जानता है।

हरिजन-सेवक
२० जुलाई, १९४०

❀

अहिंसाका सर्वोत्तम क्षेत्र

पिछले हफ्ते मैंने अहिंसाके तीन क्षेत्रोंके बारेमें लिखा था। आज चौथे और सर्वोत्तम क्षेत्रकी तरफ ध्यान खींचना चाहता हूँ। यह है कौटुम्बिक क्षेत्र। यहां 'कौटुम्बिक' शब्दको जरा विस्तृत रूपमें समझना चाहिये। जिस सस्थाके हम सदस्य हो, उसके सब सदस्योको एक कुटुम्ब रूप ही समझना चाहिए। इस क्षेत्रमें अहिंसाका प्रयोग सफल ही होना चाहिये, न हो तो समझना चाहिये कि हममें शुद्ध अहिंसाका पालन करनेकी शक्ति नही है। क्योकि जिस प्रेमका पालन हम अपने कुटुम्ब या अपनी सस्थामें अपने सगे सम्बन्धियो या साथियोके प्रति करते है, उसी प्रेमका पालन हमें अपने शत्रु या चोर, डाकूके प्रति भी करना है। यदि हम पहलेमें निष्फल हुए, तो दूसरेमें सफल होनेकी आशा रखना 'आकाश–पुष्प' प्राप्त करनेकी आशा रखने जैसा है।

आम तौरपर यह मान लिया जाता है कि कुटुम्ब या सस्थामें हम अहिंसाका पालन न कर सकें तो भी राजनीतिमें हम उसका पालन कर लेंगे। यह निरा भ्रम है। जिसका हम आजतक पालन करते आये है, उसे अहिंसाका नाम देना, अहिंसाको बदनाम करना है। ऐसी लूली–लँगडी अहिंसा हमें अनीके समय काम दे ही नहीं सकती। अहिंसाकी बारह खडी तो कुटुम्बमें ही सीखी जा सकती है। अगर हम यहां उत्तीर्ण हो गये, तो फिर सब क्षेत्रोंमें उत्तीर्ण हो सकेंगे, यह मै अनुभवसे कह सकता हूँ। क्योंकि अहिंसक मनुष्यके लिये तो सारा जगत एक अपना कुटुम्ब है। जो ऐसा मानता है वह किससे डरेगा? और किसे डरायेगा? कहा जा सकता है कि इस शर्तके अनुसार तो अहिंसक बहुत कम

रह जायंगे। ऐसा होना सम्भव है। लेकिन यह मेरी शर्तका जवाब नहीं। जो अहिंसाको माननेवाले हैं, उन्हें तो अहिसा पालनकी शर्त तो जान ही लेनी चाहिये। इससे भड़क कर अहिंसाका त्याग करना हो, तो भले ही कर दिया जाये। जब कांग्रेस कार्यसमितिने अपनी स्थिति साफ कर दी है, तो अहिसा-पालनका दावा करनेवालोके लिये यह समझ लेना अत्यन्त आवश्यक है कि अहिंसा उनसे क्या चाहती है। फिर भले ही ऐसा करनेमें अहिंसाकी सेना छोटी रह जाये। छोटी भले ही हो, पर यदि वह सच्ची होगी तो किसी रोज उससे वड़ी होनेकी आशा की जा सकती है। मगर झूठीमेंसे तो छोटी या बडी कुछ भी बननेकी नहीं।

मेरे लिखनेका कोई यह अर्थ न करें कि इन शर्तोंको सम्पूर्ण पालन करनेवाले ही अहिंसक दलमें रह सकते हैं। जो लोग इन शर्तोंको स्वीकार करते हैं और इनके पालन करनेका उत्तरोत्तर अधिक प्रयत्न करते हैं, ये सब इस दलमें भरती हो सकते हैं। यह दल सम्पूर्ण अहिंसकोका नही किन्तु अहिसाके पालनका शुद्ध प्रयत्न करनेवालोंका होगा।

पचास वर्षसे मेरा प्रयत्न मेरे जीवनको उत्तरोत्तर अहिंसामय बनाने और साथियोको ऐसी प्रेरणा देनेका रहा है। मेरा मत है कि इस प्रयत्नमें अच्छी मात्रामें सफलता मिली है। जैसे-जैसे बाहरका वातावरण निर्बल और निराशाजनक मालूम होता है, वैसे-वैसे मेरा उत्साह और मेरी श्रद्धा बढ़ती जाती है और मैं अहिंसाकी शर्तोंको अधिक स्पष्टतासे देखता हूँ।

हरिजन-सेवक
२० जुलाई, १९४०

❀

अहिंसा कैसे सीखी जाय?

प्रश्न—आप अहिसा-अहिंसा चिल्लाते रहते हैं, मगर इससे लोगोमें अहिंसा आनेवाली नही। अब जब कि आपने गुजरातीमें लिखना शुरु किया है, तो आपको लोगोको बताना चाहिये कि बलवानकी अहिंसाको या शुद्ध अहिसाको वे किस तरह अपने जीवनमें उतार सकते है।

उत्तर—प्रश्न आपका अच्छा है और ठीक मौकेपर पूछा गया है। आपके पूछनेके पहले ही मैं इस प्रश्नका जवाब अनेक बार टुकड़े-टुकड़े करके कई जगह दे चुका हूँ। मगर मुझे यह स्वीकार करना चाहिये कि मुझे याद नहीं पडता कि इसी एक प्रश्नको लेकर अलगसे मैंने लिखा है। इसपर जितना चाहिये उतना वजन मैंने नहीं दिया। मेरा समय सरकारके साथ लड़नेकी तैयारीमें गया है। आजतक यही उचित भी था। मगर मैंने देखा

तो उनकी महत्ता कहाँ रही ? पानी जैसे हर रोजके इस्तेमालके पदार्थमें जो शक्ति है उसका भी अन्त हम नहीं पा सके, उसकी कितनी कुछ शक्ति तो हमें चकित कर देती है। तो अहिंसा जैसी सूक्ष्मतम शक्तिको हमें इस तरह तुच्छ समझकर फेंक नहीं देना चाहिये, बल्कि उसकी अनन्त शक्तियोंकी शोध धैर्य और विश्वाससे करनी चाहिये। देखते ही देखते इस शक्तिका महान प्रयोग हम खासी अच्छी तरह सफल कर सके हैं। मैंने इस प्रयोगको बहुत नीचा स्थान दिया है। इसे अहिंसाका नाम तक देते हुये मुझे संकोच लगता है। तो भी जिस तरह कहा जाता है कि राम-नामके प्रतापसे पानी पर पत्थर तैरे, उसी तरह अहिंसाके नामसे जो प्रवृत्ति चली उससे देशमें भारी जागृति हुई और हम आगे बढे। जिनका विश्वास अविचल है, वे इस प्रयोगको और आगे बढ़ा सकते हैं। हिंसा करनेवाले सब जडवत् होते हैं, इस वाक्यमें अतिशयोक्ति है। कुछ लोग जरूर पागल-जैसे बन जाते हैं। ऐसे अपवाद रूप मामलेके ऊपरसे हम अपनी नीति निश्चित करने बैठेंगे, तो सम्भव है, हम भूलमें पड जाय। नियमोंको सामान्य अनुभवपरसे बनाना चाहिये। यही सुरक्षित रास्ता है। और सामान्य अनुभव यह है कि बहुत सी हिंसाका निवारण अहिंसाके द्वारा हो जाता है। इस अनुभवपरसे हम यह अनुमान लगा सकते हैं, कि तीव्र हिंसाका प्रतिकार तीव्र अहिंसासे हो सकता है।

अब हम घडी भरके लिये जड़ वस्तुका विचार करें। जो मनुष्य पत्थरसे सिर मारेगा उसका निश्चय ही सिर फूटेगा। मान लीजिये कि हमारी तरफ वेगसे पत्थर आ रहा है, उसके सामने जानेसे दुःखद मृत्यु आनेवाली है इसलिये रास्तेसे खिसक जानेसे हम बच सकते हैं। पर खिसकनेका कोई रास्ता ही न हो, तो धैर्यसे हम जहाँ हो, वहीं खडे होकर पत्थरको पडने दें तो चोट कमसे कम आयेगी और मृत्यु भी आयेगी तो वह दुःखद नहीं होगी।

इसी विचार-श्रेणीको लम्बा करके हम यह कल्पना कर सकते हैं कि पागल आदमीका अगर कोई सामना न करे, तो अन्तमें वह थक ही जायगा। यह क्यों नहीं हो सकता कि अनेक मनुष्योंके प्रेममय बलिदानसे पागलका पागलपन ही जाता रहे ? अत्यन्त पागलोंके भी बुद्धिमान् होनेके उदाहरण देखे गये हैं।

तात्पर्य यह है कि अहिंसाकी शक्तिका कोई माप नहीं। जिसमें धीरज होगा, वह जरूर उसका रस लूटेगा।

हरिजन-सेवक
२७ जुलाई, १९४०

दो सोचने लायक खत

एक विवेकी भाई लिखते हैं :—

"पूर्ण अहिंसावादियोंके नाम माँगे गये। तब मुझे नाम भेजनेकी इच्छा हुई थी लेकिन मैंने अपने आपको रोक लिया क्योंकि (१) मेरे आचरणमें अहिंसा कम है, (२) दिलमें अंग्रेजोंके प्रति द्वेष भाव है। लंदन या इंग्लैंडकी आजकल विनाशकारी खबरें पढकर खुशी होती है। दिल ऐसा ही चाहता है कि अंग्रेज हारें। मैंने सोचा कि यही हकीकत् आपको लिख देना ठीक है। आपको कभी मैं धोखा न दूंगा।"

दूसरा खत दक्षिणी अफ्रीकासे आया है उसमें लिखा है :—

"समझमें नहीं आता कि जिन गोरोंको कालोंकी कोई परवाह नहीं और ऐसी लडाईके वक्तमें भी जो रंगभेदकी बातें कर रहे है उनके लिये हमें (हिन्दुस्तानियोंको) क्या करना चाहिये ? हम क्यों जान दें ? हाल ही में एक विद्यार्थी योरपसे लौटा है। वह कहता है कि ब्रिटिश स्टीमरोंमें जगह होनेपर भी स्टीमरवाले हिन्दुस्तानियोंको जगह देनेमें हिचकते हैं। ऐसी घटनायें देखकर यहाँ बहुतसे हिन्दुस्तानी और हब्शी यही सोचते हैं कि हमारे वास्ते तो ब्रिटिश एवं बोअर, नाजी और गोरे दोनों समान हैं। दक्षिणी अफ्रीकामें अगर नाजी राज्य होता तो क्या हिन्दुस्तानियों और हब्शियोंको आजकी अपेक्षा अधिक कष्ट सहना पडता ? कई लोग तो ऐसा भी कहते हैं कि अंग्रेज मुंहसे तो मीठी बातें करते हैं लेकिन करते तो अपना मनमाना ही हैं। हिटलर साफ-साफ सुनाता है। फिर वह बुरा क्यों ? हमें पता तो चले कि हम कहाँ हैं ?"

इन दोनों खतोंकी भाषामें फर्क है मगर भाव दोनोंका एक ही है। दोनों ही अंग्रेजोंके प्रति नफरत और उन्हें मदद देनेकी अनिच्छाके सूचक हैं। ऐसी हालतमें रास्ता निकालना मुश्किल है। लेकिन अहिंसा ऐसे समय पर अपना ही तेज् दिखाती है।

पहले तो हमें अंग्रेज और अंग्रेजोंकी चालबाजी इन दोनोंकी भिन्नता समझनी चाहिए। उनकी चालबाजीकी हम विवेकपूर्वक टीका भले ही करें परन्तु उनसे नफरत न करें। गलतियां तो सबसे होती हैं। मनुष्यमात्र गुणदोषका पुतला है। हमारी गलतीके लिए लोग अगर हमें गाली दें तो हमें अच्छा न लगेगा। परन्तु अगर प्रेमसे कोई हमारी गलती बताये तो हम शायद सुननेके लिए तैयार हो जाय। यही न्याय हमें अंग्रेजोंके संग बर्ताव करते समय लगाना चाहिये। उनकी गलतियां हम भले ही उनको बतायें लेकिन उनका बुरा न चाहें। यही प्रार्थना करें कि उन्हें सद्बुद्धि मिले, न कि यह कि उनका नाश हो।

सत्याग्रहकी उत्पत्ति इसी मनोवृत्तिमेंसे हुई है। इसी महान् नियमपर हम पिछले बीस सालसे चलते आये हैं। मैं मानता हूँ कि उससे हमें बहुत लाभ हुआ है। कोई वजह नहीं कि वर्तमान युद्धमें हम अंग्रेजोंकी हार चाहें। दक्षिण अफ्रीकाके खतमें ठीक ही

लिखा है 'अंग्रेज और नाजी इन दोनोंमेंसे हम किसीको पसन्द नहीं कर सकते।' इसके लिए और भी पुष्टिकारक दलील चाहिए तो वह दक्षिणी अफ्रीकासे मिलती है। रंगभेदकी वहाँ पराकाष्ठा है। वहाँ काली चमडीवाला हर कोई गोरोंसे अदना दर्जेका समझा जाता है। नाजी इससे ज्यादा क्या कर सकते थे? इसलिए हमारी स्थिति निष्पक्षताकी होनी चाहिये। यह सही है कि हिन्दुस्तानको हम अंग्रेजोसे आजाद करना चाहते है लेकिन इसके लिए यह जरूरी नहीं है कि हम जर्मनीका नाश चाहें। हमारी आजादी हम अपनी ताकतसे हासिल करेंगे और अपने ही ताकतसे उसकी हिफाजत भी करेंगे। इसमें हमें अंग्रेजोंकी या दूसरे बाहरवालोंकी मददकी जरूरत नहीं। जिनका अहिंसापर विश्वास है वे तो अहिंसा बल ही पर इसकी प्राप्ति तथा हिफाजतका आधार रक्खेंगे।

हमारे देशमें एक वर्ग ऐसा भी है जो मानता है कि हथियारोंसे ही आजादी मिल सकती है और हथियारोसे ही आजादीकी रक्षाकी जा सकती है। उनकी स्थिति आजकलके सकटमें नाजुक जरूर है। अगर हमें आजादी हथियारोसे हासिल करनी है तो वह बिना अंग्रेजोकी मदद लिये हासिल हो नहीं सकती। इसका मतलब यह हो जाता है कि हमें युद्धमें अंग्रेजोकी मदद करनी चाहिए। हथियारोसे उनकी मदद दें तो चाहते न चाहते उनकी तावेदारीमें और भी जाते हैं। मदद देनेपर भी अगर उनकी हार हो तो हमें किसी दूसरी सत्ताका तावेदार बनना पड़ेगा। दूसरे शब्दोमें हिन्दुस्तान कढाईसे निकलकर भट्ठीमें पड़ेगा। आज हिन्दुस्तानको किसीके प्रति भी बैर नहीं। हिटलर वगैरह सब अपने दिलमें खूब जानते है कि अगर आज हिन्दुस्तान लड़ाईमें शरीक है तो वह कोई अपनी इच्छासे या खुशीसे नहीं। हिन्दुस्तान पराधीन है इसलिए उसके पास खुशी या रंजका सवाल ही नहीं। बात तो यह है कि वह सवाल तो कांग्रेसने ही उठाया है, और वह इसलिए कि उसके पास अहिंसाका अस्त्र है। जिनका अहिंसामें विश्वास नहीं उनसे हमारी कोई तकरार नहीं। वे अपने रास्तेपर जायं हम अपने रास्तेपर चलेंगे। ऐसा करते हुए हमें पता चल जायगा कि हिन्दुस्तान कहाँ खड़ा है। अगर कांग्रेसने अपने मुहपर ताला लगाया होता तो कांग्रेसकी अहिंसाकी नीति सदाके लिए सो जाती। उसको जिन्दा रखना कांग्रेसका धर्म था। इसलिए कांग्रेसको कुछ न कुछ करना जरूरी है। वह क्या होगा, यह हमें जल्दी ही मालूम हो जायगा।

इसलिए ऊपर दिए हुए दोनो पत्रोके लेखकोको मेरी सूचना है कि वे बुद्धिपूर्वक अपने दिलमेंसे द्वेष, रोष, और तिरस्कारको हटा दें। ये निर्बलताकी निशानियाँ है। इनसे मुक्त होकर अगर वे अहिंसाका रास्ता ग्रहण करेंगे तो दुनियामें वे कुछ काम करके दिखा सकेंगे। और उस महान् शक्तिके प्रचारमें अपना हिस्सा भी देंगे। कांग्रेसकी मांग सिर्फ अपने लिए नहीं, सारे देश और विश्वकी सेवाके लिए है।

इसलिए हमारे सच्चे दिलसे यही प्रार्थना निकल सकती है. "ईश्वर सब लडने-वालोका भला करें।"

हरिजन-सेवक

१९ अक्टूबर, १९४०

एक दुःखद घटना

सेवाग्रामसे चलते समय सरदार वल्लभभाई पटेलने हाल ही खेडा जिलेमें पड़े एक डाकेका किस्सा सुनाया। डाकू बन्दूकें लेकर आये। आते ही उन्होंने मारपीट शुरू की और लूटपाट कर भाग गये। यह सुनकर मैंने यह महसूस किया मानो मेरा अपना ही घर लूट गया! मैं सोचने लगा कि अगर ऐसा सकट मुझपर आये, तो मैं क्या करूगा? सहज ही मनमें यह विचार भी उठा कि ऐसे मौकोपर कॉंग्रेसवालोंको क्या करना चाहिये। इसके बाद तो विचारधारा कुछ ऐसी उमडी कि रोके न रुक सकी। उसने मुझपर पूरा अधिकार कर लिया। मैं सोचमें डूब गया: गुजरातमें कॉंग्रेसने लगातार एक ही दिशामें काम किया है। उसे सरदार जैसा सरदार मिला है। फिर वहाँ ये डाके कैसे? यह लूटमार कैसी? ऐसी हालतमें वहाँ काग्रेसका असर कितना समझा जाय? काग्रेसियोके खयालमें लोग शायद यह सोचने लगे है कि अगर मुल्कमें अग्रेज सरकारकी हुकूमत न रही, तो देशकी सारी हूकूमत अपने आप काग्रेसजनोके हाथमें चली जायगी। लेकिन ऐसी कोई बात है नहीं। पिछले २० वर्षोसे हम इस दिशामें कोशिश करते आ रहे है, पर वह कोशिश अबतक फूली फली नहीं है। कॉंग्रेसने खुद जिस हथियारको अपनाया था, उसमें उसका पूरा-पूरा विश्वास न था। यही वजह है कि आज काग्रेस अहिंसाका जितना कुछ सफल उपयोग कर सकी है, वह सिर्फ कमजोरके हथियारके रूपमें। लेकिन हुकूमत तो ताकतवालोकी ही चल सकती है। चुनांचे अहिंसक राज तो वे ही चला सकते है, जिन्होने अहिंसाकी चढी-बढी ताकतको पहचाना हो। अगर इस तरहकी कोई ताकत हमारे पास होती, तो न हिन्दू-मुसलमानोंके झगड़े होते और न लुटेरे लूट-मार कर सकते। कहा जा सकता है कि ऐसी ताकत तो हजरत ईसा या भगवान बुद्धमें ही हो सकती है। लेकिन यह ठीक नहीं; क्योंकि न तो हजरत ईसाने और न भगवान बुद्धने ही राजनीतिके क्षेत्रमें अहिंसाका प्रयोग किया, या यो कहिये कि उनके जमानेमें आज की-सी राजनीति थी ही नहीं। इसलिए कांग्रेसका प्रयोग एक नया प्रयोग है। मगर काग्रेसवालोने इसे श्रद्धापूर्वक, ज्ञानपूर्वक और प्रामाणिकतापूर्वक नहीं किया। अगर इस प्रयोगमें काग्रेसवाले इन तीनो चीजोसे काम लेते, तो जिस ऊंचाईपर काग्रेस आज पहुंची है, उससे कहीं ऊचे वह पहुंच चुकी होती।

लेकिन मैं गयी-गुजरीपर आँसू बहाना नहीं चाहता। उसका जिक्र इसीलिए करता हूँ कि उससे वर्तमानको सुलझानेमें मदद हो। अब भी मौका है—समय रहते चेत गये तो वाजी हाथमें रह सकेगी, वर्ना हाथसे निकल जायगी – सत्ता तो बलवानके गलेमें ही जयमाला डालेगी। फिर वह बल चाहे शरीरका हो, चाहे हृदयका हो, और अगर आप 'आत्मा' शब्दसे न चौंके, तो आत्माका हो। हृदयबल ही शुद्ध आत्मबल है। अगर हम शारीरिक बलसे सत्ता प्राप्त करना चाहते है, तो पिछले बीस सालो से जो तालीम हमने अपने लोगोको दी है, उसपर पानी फेरना होगा, और उससे विलकुल उलटे ढंगकी एक

नयी तालीम नये सिरेसे देनी होगी। इसमें काफी वक्त लगेगा। आज जब मुसीबत सिर पर मडरा रही है, इतना वक्त हम कहाँसे लायेंगे? ऐसे वक्त तो जो ताकत जिसके जिसके पास है, उसीके जरिये हुकूमत हासिल करनेकी कोशिश उसे करनी होगी। इसलिए मेरी यह पक्की राय है कि अगर कभी कांग्रेसके हाथमें हुकूमत आयी भी तो वह सिर्फ हृदय बल या आत्मबलके जरिये ही आयेगी।

यह बल भी नया है। नये सिरेसे इसे पैदा करनेके लिए आज हमारे पास समय और सामान नही है। जिसने अबतक अहिंसाका उपयोग निर्बलके हथियारके रूपमें किया है, वह यकायक उसे सबलके हथियारके रूपमें किस तरह चला सकेगा? बात ठीक है। फिर भी मेरे खयालमें आज तुरन्त तो हम अहिंसक बलका ही प्रयोग कर सकते हैं। इसमें खतरेकी कोई बात नहीं है, और असफलता भी सफलता बन जाती है। हो सकता है कि जनता आज इस दिशामें जो कुछ करना चाहती है, उसे करनेमें असमर्थ रहे, फिर भी वह गड्ढेमें तो हरगिज न गिरेगी। न नामर्द या कायर ही बनेगी। कोई उसे नामर्द कह भी न सकेगा। इसके खिलाफ, अगर वह शरीरबलका यानी हिंसाका रास्ता अख्तियार करती है, तो मुमकिन है कि वह नामर्द साबित हो, और इस नये व अनजाने रास्तेपर चलनेवाले मर कट भी जायँ।

इसलिए कांग्रेसजनोंको चाहिये कि वे आज ही से तथाकथित डाकुओं और लुटेरोंको ढूढ़ निकालनेमें लग जाय, और उनको समझने व समझानेकी कोशिश करें। यह सच है कि ऐसे सेवक मांगनेसे नही मिल सकते। लेकिन कांग्रेसवालोंको समझना चाहिये कि यह काम जितना जोखिमका है, उतना ही महत्वपूर्ण भी है। इसके लिये हजारोंकी जरूरत चाहे न हो, कुछकी जरूरत तो है ही।

दूसरा काम हमारे सामने ऐसे लोगोंको तैयार करनेका है, जो उपद्रव या लूट-मारके समय लुटेरोंसे मिलें और उनको समझाने या रोकनेकी कोशिशमें घायल होने या मरनेको तैयार रहें। इस कामके करनेवाले भी ज्यादा नहीं हो सकते; फिर भी एक खासी अच्छी तादादमें इस तरहके शान्तिदल तैयार होने चाहिये। नही तो अन्धाधुन्धीका वक्त आ जाने पर न सिर्फ कांग्रेसकी लाज जायगी, बल्कि अबतककी उसकी सारी कमाई मिट्टीमें मिल जायगी।

तीसरा काम, धनवानोंको अपना धर्म सोच लेनेका है। अगर अपनी जायदादकी हिफाजतके लिए उन्होंने सिपाही वगैरह रखे, तो मुमकिन है कि लूटमारके हंगामेमें ये रक्षक ही उनके भक्षक बन जायें। चुनांचे धनवानोंको या तो हथियार चलाना सीख लेना चाहिये या अहिंसा की दीक्षा ले लेनी चाहिये। इस दीक्षाको लेने और देनेका सबसे उत्तम मन्त्र है—

'तेन त्यक्तेन भुंजीथा.'

यानी, 'अपनी दौलतका त्याग करके तू उसे भोग।' इसको जरा विस्तारसे समझाकर कहूँ तो यह कहूंगा कि तू करोड़ो खुशीसे कमा, लेकिन समझ ले कि तेरा धन सिर्फ तेरा नहीं, सारी दुनियाका है; इसलिए जितनी तेरी सच्ची जरूरतें हो, उतनी पूरी करनेके बाद जो बचे उसका उपयोग समाजके लिए कर। शान्तिकी साधारण अवस्थामें तो इस नतीजेपर

अमल नही हुआ, लेकिन सकटके इस समयमे भी अगर धनिकोने इसे नही अपनाया, तो दुनियामें वे अपने धनके और भोगके गुलाम बनकर ही रह सकेंगे, और अन्तमें शरीर-बलवालोकी गुलामीमें बध जायेगे।

इसमें तो शक नही कि इस लड़ाईके अन्तमे धनिकोंकी सत्ताका अन्त होनेवाला है, और गरीबोंका सिक्का चलनेवाला है। फिर चाहे शरीरबलसे चले चाहे आत्मबलसे। शरीरबलसे प्राप्तकी हुई सत्ता मानव देहकी तरह क्षणभगुर होगी, जब कि आत्मबलसे प्राप्त सत्ता आत्माकी तरह अजर और अमर रहेगी।

हरिजन-सेवक
१ फरवरी, १९४२

✿

वही सनातन समस्या

प्रश्न—जबतक धन दौलत है, हर हालतमें उसकी हिफाजत होनी ही चाहिये। फिर क्या वजह है कि आप इस चीजको नही समझ पाते ? प्रत्येक स्थितिमें हिंसासे बचे रहनेका आपका आग्रह बिलकुल अव्यावहारिक और असगत है। मेरे विचारमें अहिंसा कुछ चुने हुए लोगोके ही कामकी चीज हो सकती है।

उत्तर—इस सवालका जवाब इन पृष्ठोमें और 'यंग इंडिया' मे भी कई बार किसी न किसी रूपमें दिया जा चुका है। लेकिन यह एक सनातन सवाल है। इसलिए मेरा काम है कि जितनी बार यह पूछा जाय, मैं इसका जवाब दूं। और, जब प्रश्नकर्ताके सामने सच्चे जिज्ञासु पूछते है, तब तो जवाब दिये ही बनता है। मेरा दावा यह है कि आज भी जब हमारे समाजकी रचनाका आधार सोच समझ कर अपनायी हुई अहिंसा नहीं है, सारे ससारमें आदमी एक दूसरेकी भलमनसाहतपर ही जी रहा है और अपनी दौलतको बचाये हुए है। अगर ऐसा न होता तो, दुनियामें बहुत ही थोड़े और बहुत ही क्रूर आदमी बचे होते। लेकिन हकीकत यह नहीं है। परिवारमें लोग परस्पर स्नेहके बन्धनसे बधे रहते है, और परिवारोकी तरह ही सभ्य माने जानेवाले मानवसमाजमें राष्ट्रोंके अलग अलग दल भी परस्परके इन बन्धनोसे बधे है। फर्क इतना ही है कि वे जीवनमें अहिंसाके नियमको सर्वोपरि नही मानते। इसका मतलब यह हुआ कि अभी उन्होने इसकी असीम शक्तियोकी थाह नही लगायी है। मैं यह कहूंगा कि अबतक सिर्फ अपनी जड़ताके कारण ही हम यह मानते रहे हैं कि अहिंसाका सम्पूर्ण पालन अपरिग्रह आदि सयम-सूचक व्रतोको धारण करनेवाले कुछ इने गिने लोग ही कर सकते हैं। बात यह है कि यदि हमें अहिंसाके क्षेत्रमें नित नयी शोध करनी हो, और मानवजातिपर शासन

करनेवाले इस सनातन और महान् नियमकी नयी-नयी शक्तियोंका समय-समयपर ससारको परिचय कराना हो, तो इसके लिए यम नियमोंका पालन आवश्यक है। अगर ससारका यही सर्वश्रेष्ठ नियम है, तो यह सबके लिए कल्याणकारक होना चाहिये। जो अनेक असफलताए हमारे देखनेमें आती है, वे इस नियमकी नहीं, इसका पालन करनेवालोंकी है। क्योंकि उनमेंसे कइयोंको तो यह पता तक नहीं रहता कि वे जाने–अनजाने इस नियमके अधीन हो रहे है। जब माँ अपने बच्चेके लिए खुद मरनेको तैयार हो जाती जाती है, तब वह अनजाने ही इस नियमका पालन करती है। मै पिछले पचास बरससे लोगोको यह समझाता रहा हूँ कि वे इस नियम को समझ बूझकर अपनायें और असफल होनेपर भी इसके पालनमें दत्तचित्त बने रहें। पचास वर्षके इस प्रयोगका परिणाम आश्चर्यजनक हुआ है और अहिंसामें मेरी श्रद्धा उत्तरोत्तर बढती गयी है। मै दावेके साथ कहता हूँ कि लगातार प्रयत्न करते रहनेसे एक समय वह आयेगा जब लोग सर्वत्र ईमानदारीसे कमाये हुए धनका स्वेच्छासे लिहाज करेंगे और उसकी रक्षामें सहायक होगे। इसमें शक नहीं कि यह धन पापका धन न होगा। और इसमें उन असमानताओका उद्धत-प्रदर्शन भी न होगा, जिसमें आज हम घिरे हुए हैं। अहिंसाके व्रतधारीको अन्याय और अनीतिसे कमाये जानेवाले धनसे आतकित न होना चाहिये क्योंकि उसके पास हिंसाका सफल प्रतीकार करनेके लिये सत्याग्रह और असहयोगका अहिंसक शस्त्र मौजूद है। जहाँ कहीं भी इस शस्त्रका सच्चाईके साथ पर्याप्त उपयोग किया गया है वहाँ हिंसक शस्त्रोकी कोई आवश्यकता ही नहीं रह गई है। अहिंसाके सम्पूर्ण शास्त्रको जनताके सम्मुख रखनेका दावा तो मैंने कभी नहीं किया। उसके लिए ऐसा दावा कभी किया भी नहीं जा सकता। जहाँतक मै जानता हूँ, किसी भी भौतिक शास्त्रके लिए, यहाँ तक कि गणित जैसे निश्चित शास्त्रके लिए भी, इस तरहका दावा नहीं किया जा सकता। मै तो एक सत्यशोधकमात्र हूँ, और प्रश्नकर्त्ताकी तरह सत्यकी इस शोधमें मेरा अनुसरण करनेवाले मेरे कुछ साथी भी है। अपने इन साथियोको मै दावत देता हूँ कि वे सत्यकी इस अत्यन्त कठिन किन्तु अतिशय रसपूर्ण शोधमें मेरा साथ दें।

हरिजन-सेवक
१५ फरवरी, १९४२

सच हो, तो अमानुष है

मारवाड़ी रिलीफ सोसायटीके समाज-सेवा-विभागके अवैतनिक मन्त्री लिखते हैं:—

"कलकत्तेकी मारवाडी रिलीफ सोसाइटीकी ओरसे वर्मा और मलायाकी ओरसे भागकर आये हुए लोगोको जातपात, धर्म या वर्णके भेदका कोई खयाल न रखते हुए मदद पहुँचानेका जो काम चल रहा है, उसका वहुत ही सक्षिप्त ब्यौरा मुझे आपके सामने पेश करना है और एक अतिशय गभीर प्रश्नके बारेमें आपकी मूल्यवान् सलाह माँगनी है। रेल, सडक या समुद्रके रास्ते जो हजारो निराश्रित लोग रोज कलकत्ते आते हैं, उनके लिये भोजनकी, डाक्टरी मददकी और उन्हें उनके वतनतक पहुँचा देनेकी सुविधा कर देनेका भार सोसायटीने अपने सिर लिया है। कई वहनोके लिये तात्कालिक प्रसवका भी प्रवन्ध किया गया है। आनेवालोमें जो वेकार होते है, उन्हें कलकत्तेकी प्रतिष्ठित पेढियोके सहयोगसे उनके लायक काम दिलानेका प्रयत्न भी सोसायटी कर रही है।

इस सवधमें मुझे आपको एक वहुत ही दुखद घटनाकी खवर देनी है। इस घटनाके वारेमें मेरा कर्त्तव्य क्या है, सो आप कृपापूर्वक मुझे वतलायेंगे, तो मैं आभारी हूँगा।

१४ मार्चकी रातको चटगाँव मेलके आनेके कुछ ही समय वाद, जब मैं कुछ स्वय-सेवकोके साथ मेलसे आये हुए लोगोकी आवश्यकताओका प्रवन्ध कर रहा था, एक गोरे सैनिकने आये हुए लोगोमेंसे एक गरीवके छोटे बालकको पकडकर रेलगाडीके नीचे फेंक दिया। यद्यपि मैं आपकी अहिंसाके पुण्यपथका एक नम्र अनुयायी हूँ, तो भी मैं उस वक्त अपनेको और अपने साथी स्वयसेवकोको वहुत ही मुश्किलसे रोक सका और वह गोरा सैनिक अपनी इस पाशविक करतूतके लिये मार खाते खाते वच गया। मैंने तुरन्त ही इसकी सूचना स्टेशनके सैनिक अधिकारियोको दी। लेकिन उन्होने रत्तीभर भी सहानुभूति नही दिखायी। वादमें मैं इसी प्रश्नको लेकर श्री के० सी० सेन, आई० सी० एस०से मिला, और यद्यपि उन्होने मामलेकी वाजाव्ता जाँच करनेका वादा किया था, तो भी अभीतक परिस्थितिको सुधारनेके लिये कुछ नही किया गया है। स्टेशनके प्लैटफार्मपर अव भी रातमें वहुतेरे गोरे सैनिक चक्कर काटा करते है, और डर रहता है कि कही रिलीफ सोसायटीके स्वयसेवको और प्रजाजनोके साथ इन गोरे सैनिकोकी भिडन्त न हो जाय। इस डरको तुरन्त ही मिटानेकी जरूरत है। मैंने वगाल काग्रेस नागरिक-सरक्षण-समितिके सामने भी यह मामला पेश किया है।

वडी कृपा होगी यदि आप नीचे लिखे मुद्दो पर मुझे अपनी सलाह देंगे

(१) क्या मैं इस प्रश्नको लेकर समाचारपत्रोमें आन्दोलन खडा करूँ?

(२) मान लीजिये कि कोई गोरा सैनिक किसी असहाय मुसाफिरकी स्त्रीके साथ

कोई बेहूदा बरताव करे, तो क्या हम उसे चुपचाप सहलें, या उसके साथ जार जा दस्तीका व्यवहार करे ?

यदि आप इस संबंधमें अपनी राय 'हरिजन' द्वारा व्यक्त करेंगे, तो उससे हमें बहुत मदद मिलेगी। ऊपर दी हुई घटनाकी सच्चाईके बारेमें मैं सब प्रकारकी जिम्मेदारी लेने को तैयार हू।"

गोरे सैनिकोंके दुर्व्यवहारके बारेमें मेरे पास बहुतेरे पत्र मय सबूतके आये हैं, लेकिन मैंने उन्हे दबाये रखा है। परन्तु जब-जब मैंने महसूस किया कि उनको दबा रखना नामर्दगी नहीं तो अनौचित्य अवश्य मानी जायगी, तभी मैंने उन्हें प्रकाशित किया है। मेरी रायमें इस पत्रका न सिर्फ आम जनताकी सुरक्षाकी दृष्टिसे, बल्कि गोरे सैनिकों और सरकारकी दृष्टिसे भी अधिकसे अधिक प्रचार होना चाहिए। मारवाड़ी रिलीफ सोसायटी पिछले पचीस सालसे काम करनेवाली सारे देशमें प्रसिद्ध एक पारमार्थिक संस्था है। उसके पास धन है और अच्छे कार्यकर्ता भी हैं। जनतामें सोसायटीकी इतनी साख तो है ही कि उसके कार्यकर्ताओंकी उपस्थितिमें कोई सैनिक किसीके साथ दुर्व्यवहार न कर सकेगा। उक्त सैनिकने, इस पत्रके अनुसार जैसा व्यवहार किया है, उससे तो मालूम होता है कि या तो उसका सिर फिर गया था या वह शराबके नशेमें चूर था। मुझे विश्वास है कि जबतक इस मामलेका पूरा पक्का फैसला न हो जायगा सोसायटी इसे छोड़ेगी नहीं। और मुझे यह भी विश्वास है कि सरकारी अधिकारी इस मामलेको दबानेकी कोशिश नहीं करेंगे, बल्कि जैसा मेरे पत्र-लेखकने लिखा है, अगर ठीक वैसी ही साबित हो, तो उसका ठीक-ठीक मुआवजा भी देंगे।

यह तो इस घटनाकी चर्चा हुई। पत्र-लेखक चाहते हैं कि यदि भविष्यमें फिर ऐसी ही घटनाएं हों, तो उन्हें क्या करना चाहिये, इस सम्बन्धमें मैं उन्हें अपनी सलाह दूं। ऐसे मौकोंपर हिंसा और अहिंसाका व्यवहार एक ही सा हो सकता है। स्वयंसेवकोंको चाहिये था, कि यदि वे पकड़ सकते, तो उस गोरे सैनिकको पकड़ लेते और उसे उस बालकको हाथ लगानेसे रोकते, या उसके पाससे बालकको छीन लेते; फिर भले ही इस रोकने या छीननेमें उस सैनिकको कोई चोट ही क्यों न आती। बालकको छुटा लेनेके बाद या उसको छुड़ानेकी कोशिशमें असफल होनेके बादके व्यवहारका आधार तो छुड़ानेवालेके हिंसक या अहिंसक हेतुपर निर्भर करेगा। यदि उनका हेतु अहिंसक होगा, तो वे अपराधीके प्रति उदारता और सुजनताका व्यवहार करेंगे। लेकिन उन्हें अपनी उदारता और सुजनताका प्रयोग विचारपूर्वक और बुद्धिपूर्वक करना होगा। सब परिस्थितियोंके लिए आचरणका कोई सर्वमान्य नियम पहलेसे बनाकर रखना कठिन है। मैं तो सिर्फ यही कह सकता हूं कि वास्तविक उदारताका व्यवहार तभी हो सकता है, जब अपराधी स्वयं दिलसे अपने अपराधको स्वीकार करता हो। मैंने दक्षिण अफ्रीकामें ऐसे अनेक दृश्य देखे हैं, जिनमें रेलवे स्टेशनोंपर गोरो द्वारा अपमानित अफ्रीकन अपना अपमान

करनेवाले उन उद्दण्ड गोरोंसे कहते थे : "भैया, ईश्वर तुम्हें तुम्हारी इस असभ्यताके लिए माफ करेगा ।" यह सुनकर वे गोरे उन्हें मारनेके उपरान्त गाली न देते, तो खिलखिला-कर हंसते जरूर। ऐसे अवसरोंपर मैं खुद तो चुप रहा हूँ और अपमानको पी गया हूँ। मैं अच्छी तरह जानता हूँ कि अफ्रीकनोंकी वह तथाकथित उदारता निरी यान्त्रिक चीज होती थी, और उसके लिए गोरोंके मनमें तिरस्कारका पैदा होना उचित ही था। मेरे व्यवहारमें भीरुता थी । मैं अपने लिए अधिक अपमान न्यौतना नहीं चाहता था । और उसके लिए मुझे कोई कानूनी कारवाई तो करनी ही न थी। उन दिनोंमें मैं अपने अहिंसक आचरणको मूर्त्तरूप देनेका यत्न कर रहा था। अगर मुझमें सच्ची हिम्मत होती, तो मैं सद्भावपूर्वक अपना अपमान करनेवालोंकी भर्त्सना करता, और बुरेसे बुरे परिणामके लिए तैयार रहता ।

थोड़ा विषयान्तर करके भी मैंने व्यक्तिगत अपमान या आघातके मौकोंपर अहिंसक व्यवहार किस प्रकारका हो सकता है, इसकी यहाँ समीक्षा कर ली है। लेकिन जिस बालकको चोट पहुचायी गयी, उसका क्या? और पत्र-लेखकने जिस दुर्व्यवहार या आघातकी कल्पना की है उसका क्या? मैं मानता हूँ कि अहिंसक आचरण किसी दूसरे प्रकारका नहीं हो सकता, न होना चाहिये। अपनेको पहुचनेवाली और अपने आश्रितोंको पहुंचनेवाली चोटके बीच जो भेद प्रायः किया जाता है, वह अनुचित नहीं तो अकारण तो है ही। किसीसे यह आशा नहीं रखी जाती कि वह अपने लिए जो करेगा, उससे अधिक अपने आश्रितोंके लिए करे। निःसन्देह वह अपने आश्रितोंकी इज्जत बचानेके लिए अपना बलिदान करेगा, लेकिन साथ ही उससे यह भी आशा रखी जायगी कि वह अपने लिए भी वैसा ही करे। अगर वह इसके खिलाफ कुछ करेगा तो नामर्द गिना जायगा। और अगर वह अपनी इज्जत आबरूकी रक्षा नहीं कर सकेगा, तो अपने आश्रितोंकी इज्जतको भी नहीं बचा सकेगा। लेकिन मैं स्वीकार करता हूँ कि सच्चा अहिंसक आचरण केवल बौद्धिक दलीलोंसे सिद्ध नहीं होता। आचरणसे पहले बुद्धिका उपयोग करना आवश्यक है। लेकिन आचरणकी शुद्धता तो बारबारके अभ्याससे और शायद बारबारकी असफलताके बाद ही प्राप्त हो सकेगी ।

हिंसक व्यवहार किस प्रकारका होना चाहिये, उसकी पड़ताल करनेकी तो सचमुच यहाँ कोई जरूरत ही नहीं है ।

हरिजन-सेवक
२९ मार्च, १९४२

अहिंसाकी कसौटी

"एक अर्थमें मैं आज भी शान्तिवादिनी हूँ, यानी मैं मानती हूँ कि ईसाइयोंमें आत्मबल द्वारा पशुबलका सामना करनेका सामर्थ्य होना चाहिये। उन्नीस सौ वर्षोंके वाद भी आज हम कुछ व्यक्तिगत मामलोंमें और छोटे पैमानेपर ही ऐसा कर सकते है, यह विचार मनको व्यथासे भर देता है। लेकिन जो शक्ति हमारे अन्दर सचमुच नही है, जिसके लिये भूतकालमें हमने कोई तालीम नही ली, और न जिसके आवश्यक नियमोका पालन ही किया, उसके बारेमें यह मान लेना कि वह हमारे अन्दर है, और फिर वैसा ही व्यवहार करना, इसमें मुझे तो निरा शेखचिल्लीपन ही मालूम होता है। जिन्होने आवश्यक नियमोका पालन नही किया है, उनमें आखिरी वक्त, ऐन संकटके समय, वह शक्ति नही आती। हममें वह आयी नही। अतएव एक ओर खडे रहकर कुछ न करनेकी अपेक्षा तो मैं जिन सिद्धान्तोको सहज ही उचित और मानव जातिके भविष्यके लिये अत्यन्त महत्वपूर्ण मानती हूँ, उन सिद्धान्तोकी रक्षाके लिये जो कुछ मुझसे हो सकता है, सो करना पसन्द करूँगी। निष्क्रिय होकर बैठे रहना बुरीसे बुरी चीज है।

इसलिये जब मेरे शान्तिवादी मित्र मुझसे पूछते है कि क्या आप ईसा मसीहके बम बरसाने या बन्दूक दागनेकी कल्पना कर सकती है ? तो मुझे यह जवाब देनेका अधिकार है कि 'नही', मैं वैसी कल्पना नही कर सकती, लेकिन मैं यह भी तो नही सोच सकती कि वे एक किनारे खडे रहेंगे और कुछ भी न करेंगे ?'

मेरे एक नजदीकी रिश्तेदारने पिछले युद्धके आरंभमें मुझसे कहा था अगर आप आत्मबल द्वारा युद्धको रोक सकती है, तो रोकें। न रोक सकती हो तो जो कुछ कर रहा हूँ, मुझे करने दें। और आपका अगर यह खयाल सच हो कि यह युद्ध अपने आपमें इतनी घृणित चीज है कि इसमें शामिल होना भी घृणापात्र बन जाना है, तो इन सब चीजोको बारबार यो ही होने देनेकी अपेक्षा अपनी जानको जोखिममें डालकर भी इन्हें रोकनेका यथाशक्ति प्रयत्न करना, और ऐसा करते हुए घृणापात्र बनना पडे, तो बनना मैं पसन्द करता हूँ।' मेरे ये रिश्तेदार पिछले युद्धमें काम आये थे और युद्धसे उतनी ही नफरत रखते थे जितनी कोई भी शान्तिवादी रख सकता है।

भगवान ईसा मसीहने कहा था . 'जो अपने जीवनकी आहुति देता है, वही अमर जीवन पाता है।' क्या इसमें और ऊपरवाले कथनमें अर्थकी बहुत कुछ समानता नही है।"

डाक्टर रायडनके इस लेखका बहुत ही विचारपूर्ण जवाब देनेकी जरूरत है मैं बराबर पश्चिमके शान्तिवादियोके सम्पर्कमें रहता आया हूँ। मेरी रायमें डाक्टर राय डनने अपने इस लेखमें अहिंसा सम्बन्धी अपने पहलेके विचारोको तिलाञ्जलि दे दी है अगर कुछ लोगोने व्यक्तिशः, छोटे पैमाने पर, ईसामसीहके अहिंसा सम्बन्धी उपदेशोंप

अमल किया है, तो यह माना जा सकता है कि सतत आचरण व अभ्यास द्वारा बहुतेरे लोगोंके लिए बडे पैमानेपर भी, उस तरहका जीवन शक्य हो सकता है। इसमें शक नहीं कि जो 'शक्ति दरअसल आदमीमें नहीं है, उसके होनेकी कल्पना करके वैसा व्यवहार करना' अनुचित और मूर्खतापूर्ण है। लेकिन यह विदुषी लेखिका कहती है कि 'जिन्होने आवश्यक नियमोका पालन नही किया है, उनमें आखिरी वक्त, ऐन संकटके समय, वह शक्ति नहीं आती।'

मै यह सुझाना चाहता हूँ कि इस त्रुटिका पता चलनेके बाद उसे मिटानेमें थोड़ा भी समय न खोना चाहिये। इसीमें हम कुछ करते है, यही नही, बल्कि सच्चा काम करते है। इसके विपरीत आचरण करके अपने धर्मको भूल जाना सचमुच बुरेसे बुरा काम है।

और मै यह नही मानता कि 'निष्क्रिय होकर बैठे रहना बुरीसे बुरी चीज है। उदाहरणके लिए, जिस इलाजमें जहरको अपने आप निकल जाने देना जरूरी है, उसमें कुछ न करना, हितकर ही नहीं, कर्त्तव्यरूप भी होता है।

इस वक्त निराशा या नाउम्मेदीका कोई कारण नही। आन बानके इस मौकेपर अपने अंगीकृत धर्मको छोडनेका तो और भी कम कारण है। क्यो नहीं शान्तिवादी अंग्रेज एक ओर हट जाय और अपने समूचे जीवनका नये सिरेसे निर्माण करें? शायद वे सम्पूर्ण शान्ति स्थापित न कर सकेंगे, लेकिन वे उसकी पक्की नींव डाल देंगे और धर्मविषयक अपनी श्रद्धाका दृढ़तम परिचय देंगे। आजकी इस उथल-पुथलके जमानेमें जब अविचल श्रद्धावाले लोग मुट्ठी भर ही है, उनका कर्त्तव्य हो जाता है कि वे अपनी धार्मिक श्रद्धाके अनुसार आचरण करके दिखायें, फिर चाहे उसका कोई प्रकट प्रभाव ससारके घटना-चक्रपर पडता न दिखायी पडे। उन्हें यह मानकर चलना चाहिये कि उनके कार्यका प्रत्यक्ष परिणाम भी यथावसर प्रकट होकर रहेगा। उनकी यह दृढता सशयात्माओंको आकर्षित किये बिना नहीं रह सकती। मै यह भी कहा चाहता हूँ कि डाक्टर मॉड रायडन जैसे लोग निरे अनुयायी नहीं, वे अगुआ है। उन्हें अपने मसीहाके गिरि प्रवचनका कठोर अनुशीलन करके तदनुसार अपना जीवन बनाना चाहिये; जब वे ऐसा करेंगे, तो तुरन्त ही उन्हें पता चलेगा कि उन्हें बहुत कुछ छोडना है और बहुत कुछ नये तौरपर बनाना है। बडीसे बडी जिस चीजका त्याग उन्हें करना है, सो तो साम्राज्यवादके फलका त्याग है। लन्दनवालोकी मौजूदा अटपटी जिन्दगी और उनकी महगी रहन-सहन एशिया, अफ्रीका और दुनियाके दूसरे हिस्सोसे खिचकर आनेवाले अटूट धनके कारण ही सम्भव हो सकी है। यद्यपि 'हर अंग्रेज' के नाम लिखे गये मेरे पत्रकी चारो ओरसे कडी आलोचना हुई है, तो भी मै उसके एक-एक शब्दपर कायम हूँ। मुझे दृढ विश्वास है कि उस पत्रमें कैसी भी संगठित और भीषण हिंसाके विरुद्ध जो उपाय मैंने सुझाया है, उसे आनेवाले जमानेकी प्रजा स्वीकार करेगी। और, अब जब कि दुश्मन हिन्दुस्तानके दरवाजेपर आकर खड़ा है, आचरणका जो तरीका मैंने पहले ब्रिटिश जनताके सामने पेश किया था, उसीको मै अपने देश भाइयोके सामने रख रहा हूँ। शायद मेरे देश भाई मेरी सलाह मानें, शायद न भी मानें। तो भी मै अपने पथसे विचलित नहीं होऊंगा। उनके उसे अस्वीकार करनेसे अहिंसा असफल सिद्ध नहीं हो सकेगी। हाँ, अपनी अपूर्णताके

आरोपको मैं मान लूंगा। लेकिन सत्याग्रही अपने प्रयोगमें दूसरोंको शामिल होनेका न्यौता देनेसे पहले सम्पूर्णता प्राप्त करनेकी राह नहीं देखता; शर्त्त सिर्फ यह है कि उसकी श्रद्धा पहाड़की तरह अचल होनी चाहिये। डाक्टर रायडनके रिश्तेदारने जो सलाह उन्हें दी थी और जिसका उल्लेख अपनी सहमतिके साथ उन्होंने ऊपर किया है, बिलकुल गलत है। अगर युद्ध घृणास्पद है, तो उसमें शामिल होकर कोई उसकी बुराइयोंको कैसे दूर कर सकता है? फिर चाहे आप आत्मरक्षाके लिए लडनेवालोंके दलमें ही क्यों न शामिल हो और उसके लिए अपने प्राणोको ही सकटमें क्यो न डाल दें? क्योंकि आत्मरक्षा करनेवालोको भी वे ही सब घृणित कार्य करने पड़ते है, जो कि दुश्मन करता है; और अगर दुश्मनपर विजय पाना है, तो वे सब काम दूने जोरसे करने पड़ते है। इस प्रकार प्राण गँवानेसे प्राण बचते तो नहीं, बल्कि व्यर्थ नष्ट होते है।

डाक्टर रायडनके गिरजाघरमें, जहाँ प्रार्थनाकी शक्तिके सम्बन्धमें जाग्रत श्रद्धाका खूब प्रचार होता है, मै गया हूँ और उनके प्रार्थना प्रवचनमें हाजिर रहा हूँ। जब चारो तरफसे घोर अन्धकारने उन्हें घेर लिया था, तब उन्होंने आन्तरिक प्रार्थना द्वारा बल और आश्वासन और सच्चे कर्मकी प्रेरणा क्यों नहीं प्राप्त की? आज भी स्थिति ऐसी नहीं है कि बिगड़ी सुधर न सके। उन्हें और उनके शान्तिवादी साथियोको, जिनमें कइयोसे परिचित होनेका सौभाग्य मुझे प्राप्त है, हिम्मतसे काम लेना चाहिये और कुछ समयके लिए जो श्रद्धा शिथिल हो गयी थी, उसके लिए पीटरकी तरह पश्चात्ताप करके अपनी अहिंसा-विषयक पुरानी श्रद्धाको नये उत्साहके साथ जाग्रत करना चाहिये। उनकी इस जाग्रतिसे युद्ध-प्रयत्नको कोई विशेष हानि न होगी, किन्तु युद्ध विरोधी प्रयत्नको बहुत गति प्राप्त होगी। यदि मनुष्यको मनुष्यकी तरह जीना है और दो पैरोवाला पशु नहीं बन जाना है, तो यह प्रयत्न देरमें नहीं, बल्कि जल्दी ही सफल हुए बिना न रहेगा।

हरिजन-सेवक
५ अप्रैल, १९४२

❀

अहिंसात्मक प्रतिकार

जापान हमारा दरवाजा खटखटा रहा है। अहिंसात्मक तरीकेसे हम इसका क्या जवाब देंगे? अगर हिन्दुस्तान आजाद होता तो जापानको देशमें घुसनेसे रोकनेके लिए अहिंसक उपायोसे काम लिया जा सकता था। परन्तु आजकी हालतमें तो हमारी भूमिपर पैर रखनेके साथ ही सत्याग्रह द्वारा उसका मुकाबिला किया जा सकता है। मसलन, सत्याग्रही उसे हर तरहकी मदद देनेसे इनकार करेंगे। पानी तक न देंगे। क्योंकि अपने देशको हड़पनेमें किसीकी मदद करना उनका कोई फर्ज नहीं होता। हाँ, अगर

कोई जापानी रास्ता भूल गया हो और प्याससे मर रहा हो, और एक इन्सानके नाते मदद माँगता हो, तो उस प्यासे जापानीको पानी देंगे क्योंकि सत्याग्रही किसीको अपना दुश्मन नहीं मान सकता। मान लीजिये कि जापानी, सत्याग्रहियोंको पानी देनेके लिए मजबूर करें, तो उस हालतमें उन्हें उनका विरोध करते करते मर मिटना होगा। यह सोचा जा सकता है कि वे तमाम सत्याग्रहियोंको मौतके घाट उतार देंगे। हमारे इस अहिंसात्मक प्रतिकारका आधार यह आस्था है कि आखिर आक्रमणकारी अहिंसक सत्याग्रहियोंको कतल करते करते मनसे और शरीरसे भी थक जायगा। वह सोचमें पड जायगा कि आखिर वह कौन-सी नयी (उसके नजदीक) ताकत है जो चोट पहुंचानेकी कोशिश तक नहीं करती और सहयोग देनेसे इनकार है? नतीजा यह होगा कि शायद वह और अधिक कतल न करेगा। लेकिन हो सकता है कि सत्याग्रही जापानियोंको अत्यन्त हृदयहीन पायें और देखें कि उन्हें इस बातकी जरा भी परवाह नहीं है कि वे कितनोंको कतल करते हैं। उस हालतमें भी जीत अहिंसक प्रतिकारियोंकी ही रहेगी, क्योंकि उन्होंने झुकनेके बजाय मर मिटना पसंद किया है।

लेकिन जिस तरह मैंने लिखा है, उस तरह बिलकुल आसानीसे यह सब नहीं हो जायगा। आज देशमें कमसे कम चार दल हैं। पहला दल अंग्रेजोंका और उनके द्वारा खडी की गयी फौजोंका है। जापानियोंने एलान किया है कि हिन्दुस्तान पर उनकी कोई नजर नहीं, उनका झगड़ा सिर्फ अंग्रेजोंके साथ है। इसमें उन्हें कई हिन्दुस्तानियोंकी, जो इस समय जापानमें हैं, मदद मिल रही है। उनकी तादादका अंदाज लगाना मुश्किल है, मगर जरूर काफी तादाद ऐसे लोगोंकी है, जो जापानी एलानपर भरोसा करते हैं और मानते हैं कि जापानी उन्हें अंग्रेजी हुकूमतके जुएसे आजाद करके अपने घर लौट जायगे। अंग्रेजी हुकूमतका बोझ ढोते ढोते वे इतने थक चुके हैं, कि परिवर्त्तनकी दृष्टिसे फिर वह कितना ही बुरा क्यों न हो, वे जापानी जुएका भी स्वागत करनेको तैयार हो सकते हैं। यह दूसरा दल है। तीसरा दल तटस्थ लोगोंका है। वे अहिंसक तो नहीं हैं, फिर भी ब्रिटेन या जापान दोनोंमेंसे किसीकी भी मदद नहीं करना चाहते।

चौथा और आखिरी दल अहिंसक प्रतिकार करनेवालोंका है। अगर वे मुट्ठी भर भी रहे, तो उनका अहिंसक विरोध भविष्यके लिए एक उदाहरणस्वरूप ही रहेगा; इससे अधिक और कोई प्रभाव वह पैदा न कर सकेगा। वे शान्तिके साथ अपनी अपनी जगहपर अटल रहकर मर मिटेंगे, किन्तु आक्रमणकारीके आगे घुटने न टेकेंगे। वे वायदोंके धोखेमें न फसेंगे। वे किसी तीसरे दलकी, मददसे अंग्रेजी हुकूमतसे छुटकारा नहीं चाहेंगे। वे पूरी तरह अहिंसक युद्धके अपने तरीकेमें ही विश्वास रखेंगे, दूसरे किसीमें नहीं। उनकी लडाई उन करोड़ों बेजबान हिन्दुस्तानियोंके लिए है, जो जानते तक नहीं कि मुक्ति या आजादी किसे कहते हैं। उनके हृदयमें न अंग्रेजोंके प्रति कोई द्वेष है, न जापानियोंके लिए कोई खास प्रेम। वे उन दोनोंका उसी तरह भला चाहते हैं, जिस तरह सबोंका। वे तो यही चाहते हैं कि अंग्रेज व जापानी दोनों धर्मके मार्ग पर चलें। वे मानते हैं कि अकेली अहिंसा ही सब हालतोंमें दुनियाको ठीक रास्तेपर

चला सकती हैं। इसलिए यदि पर्याप्त साथियोंके अभावमें अहिंसाका ध्येय सिद्ध न हो तो भी वे अपना मार्ग छोड़ें नहीं, बल्कि मरते दमतक उसपर डटे रहें।

अहिंसाके साधकोंके सामने आज एक कठिन साधना उपस्थित है। लेकिन जिन्हें अपने ध्येयमें श्रद्धा है, उन्हें कोई भी कठिनाई परास्त नहीं कर सकती।

एक विकम और लम्बी यातनाका समय हमारे सामने है। सत्याग्रहियोंको चाहिये कि वे असम्भव काम करनेकी कोशिशमें न पड़ें। उनकी बाह्य-शक्तियां सीमित हैं। मसलन आज आसाम बहुत ही खतरेमें है, लेकिन केरलके सत्याग्रही सैनिककी यह जिम्मेदारी नहीं कि वह उसकी रक्षाके लिए वहाँ दौड़ा जाय। अगर आसाममें अहिंसात्मक वृत्ति है, तो वह अपने आपको अच्छी तरह संभाल लेगा। और अगर उसमें वह चीज नहीं है, तो केरलके अहिंसक सत्याग्रहियोंका कोई भी जत्था उसकी या किसी दूसरे प्रान्तकी मदद नहीं कर सकेगा। केरलवाले केरलमें ही अपनी अहिंसाका परिचय देकर आसाम वगैरहकी मदद कर सकते हैं। अगर जापानी फौजके पाँव हिन्दुस्तानमें जम गये, तो वह सिर्फ आसाममें ही नहीं अटकी रहेगी। अंग्रेजको हरानेके लिए उसे सारे देशमें छा जाना होगा। अंग्रेज चप्पा चप्पा जमीनके लिए लड़ेंगे। अगर हिन्दुस्तान उनके हाथसे निकल गया तो शायद यह कहा जा सकेगा कि उन्होंने अपनी पूरी पूरी हार कबूल कर ली है। लेकिन ऐसा हो, चाहे न हो, इतनी बात तो बिलकुल साफ है कि जापान तबतक दम न लेगा जबतक सारा हिन्दुस्तान उनके हाथमें न आ जाय। इसलिए अहिंसक प्रतिकारियोंको अपनी अपनी जगहपर ही रहना चाहिये।

यहाँ एक बात स्पष्ट कर देना जरूरी है। जहा अंग्रेजी फौजकी 'दुश्मन' के साथ वास्तविक भिड़न्त हो रही हो, वहां सत्याग्रहियोंका सीधी तरह अहिंसक प्रतिकार करना शायद अनुचित होगा। अगर हिंसक और अहिंसक प्रतिकारका मिश्रण हो जाय या वे एक दूसरेके अंग बन जांय, तो वह प्रतिकार न रहेगा।

इसलिए जो बात मैं बारबार कहता रहा हूँ, उसीको फिर यहाँ दोहराता हूँ: दृढ़ निश्चयके साथ रचनात्मक कार्यक्रमको चलाना ही अहिंसात्मक काररवाईकी सबसे अच्छी तैयारी और तरीका है। जो कोई भी यह मान बैठेगा कि रचनात्मक कार्यक्रमके आधारके बिना भी वह अहिंसक बल दिखा सकेगा, परीक्षाके समय वह बुरी तरह नाकामयाब होगा। यह तो वैसी ही बात होगी कि कोई बिलकुल निहत्था और भूखका मारा आदमी किसी खा पीकर टंच और हथियारोंसे लैस सिपाहीका सामना करनेकी कोशिश करे। उसकी हार तो निश्चित ही है। मेरी रायमें, जिसे रचनात्मक कार्यक्रममें विश्वास नहीं, उसमें भूखसे पीड़ित करोड़ो देशवासियोंके प्रति कोई मूर्तिमन्त भावना नहीं। और जिसमें यह भावना नहीं, वह अहिंसक लड़ाई लड़ नहीं सकता। अपने जीवनमें मैंने यह पाया है कि ज्यो ज्यो मैं देशके दरिद्रनारायणोंके साथ तद्रूप होता गया, त्यों त्यो मेरी अहिंसाका विस्तार बढ़ता गया। अपनी कल्पनाकी अहिंसासे अब भी मैं बहुत दूर हूँ। क्योंकि मूक मानवताके साथ तन्मय होनेकी अपनी कल्पनासे मैं अभी बहुत दूर नहीं हूं क्या ?

हरिजन-सेवक
१२ अप्रैल, १९४२

अहिंसा धर्म या साधन

सवाल—कई साल पहले मैंने आपसे पूछनेकी धृष्टता की थी कि चूकि आपने अहिसाको काग्रेसमें धर्मके रूपमें नही वल्कि साधनके रूपमें स्थान दिया है, इसलिये क्या यह डर नही है कि ऐन आनवानके मौकेपर यह अहिसा वेकार हो जाय ? आपने कहा था, 'मैं ऐसा नही समझता।' क्या अब भी आपका वही विचार वना हुआ है ? क्या आप आज अहिसाके माननेवालोका एक ऐसा मडल नही खड़ा कीजियेगा, जिसे आप छोटे छोटे दलोमें सारे देशमें भेज सकें ? आज तो प्राय यही मालूम होता है कि हमने समय खोया है और अब हम इतने तैयार नही हैं कि जिम्मेदारी उठा सकें।

जवाब—हाँ, अपनी इस रायपर मैं कायम हूँ कि काग्रेसके सामने अहिसाको साधनके रूपमें पेश करके मैंने ठीक ही किया था। अगर मुझे अहिसाको राजनीतिमें दाखिल करना था, तो जो मैंने किया, उससे भिन्न मैं कुछ कर ही न सकता था। दक्षिण अफ्रीकामें भी मैंने उसे साधनकी दृष्टिसे ही दाखिल किया था। वहाँ वह सफल हुई, क्योकि सत्याग्रहियोकी सख्या कम थी और उन्हें छोटेसे क्षेत्रमें काम करना था, इससे उन्हें आसानीके साथ अकुशमें रखा जा सकता था। यहाँ हम एक विशाल देशमें फैले हुए अनगिनत लोग थे। फलत. उन्हें न तो आसानीसे अकुशमें रखा जा सकता था, न तालीम दी जा सकती थी; तिसपर भी—जिस तरह काम करके दिखाया, वह अद्भुत था। वह इससे भी अच्छा काम और अच्छा परिणाम दिखा सके होते लेकिन जो फल मिला, उसके लिए मेरे मनमें थोडी भी निराशा नहीं है। यदि मैंने अहिसाको धर्म माननेवाले व्यक्तियोसे आरम्भ किया होता, तो शायद मुझे एक अपनेसे ही उसकी समाप्ति करनी पडती। मैं स्वयं अपूर्ण था, अपूर्ण स्त्री-पुरुषोसे मैंने उसका आरम्भ किया था और एक अनजान-अछूते समुद्रमें मैं चल पड़ा था। भले जहाज अपने मुकामपर न पहुंचा हो, पर यह तो साबित हो चुका है कि वह आँधी-तूफानका ठीक ठीक सामना कर सकता है, और यह ईश्वर की कृपा है।

हरिजन-सेवक
१९ अप्रैल, १९४२

❀

अगर वे आ जांय

प्रश्न —(१) अगर जापानी आ जाय, तो हम अहिंसा द्वारा उनका मुकाबला किस तरह करेंगे ?

प्रश्न—(२) अगर हम उनके हाथ पड जायं, तो हमें क्या करना चाहिये ?

उत्तर—(१) ये प्रश्न आन्ध्र देशसे आये हैं, जहाँ लोग सचमुच या भ्रमवश यह महसूस करते हैं कि हमला शीघ्र ही होनेवाला है। मैंने अपना उत्तर इन पृष्ठोंमें पहले ही दे दिया है। उन्हें न हम खाने-पानीका सामान देंगे, न रहने के लिए जगह, और न उनसे लेन देनका कोई सम्बन्ध ही रखेंगे। उन्हें यह लगना चाहिये कि हम उन्हें यहाँ बिलकुल नहीं चाहते। परन्तु मैं मानता हूँ कि व्यवहारमें यह बातें उतनी सीधी और आसान नहीं, जितनी इस प्रश्नसे और मेरे इस उत्तरसे लगती है। यह समझना कि जापनी मित्रभावसे यहाँ आयगे, केवल एक जड-मान्यता है। किसी भी आक्रमणकारीने आजतक यह नहीं किया। वे तो जहाँ जाते हैं, वहाँकी जनतापर मौत और तबाही ही बरसाते हैं, और जो कुछ उन्हें चाहिये, लूट-खसोट कर ले जाते हैं। इसलिए अगर किसी जगह लोग प्रचण्ड आक्रमणका सामना नहीं कर सकते, और मरनेसे डरते हैं, तो उन्हें ऐसी जगहसे चले जाना चाहिये, ताकि दुश्मन उनसे जबरदस्ती बेगार न ले सकें।

(२) अगर कुछ लोग दुर्भाग्यवश युद्धके बंदी बना लिये जाय या वैसे ही दुश्मनके हाथ पड़ जायं, तो हुक्म पाकर वे बेगार करनेसे इनकार करनेपर गोलीसे उडा दिये जा सकते हैं। अगर बंदी हसते मुंह मौतका सामना करते हैं, तो वे कर्त्तव्यमुक्त हो जाते हैं। वे अपनी और अपने देशकी लाज रख चुकते हैं। अगर सशस्त्र मुकाबला भी करते, तो भी इससे बढ़कर और वे क्या कर सकते थे ? बहुत करते तो इतना ही कि चंद जापानियोको कतल कर डालते और बदलेकी काररवाईके तौरपर उनके भयकर अत्याचारोको खामखाह न्योतते।

अगर हम जिन्दा पकड़ लिये जायं और शत्रु हमें अपने अधीन बनानेके लिए अकल्पनीय तकलीफें दे, तब अलबत्ता मामला ज्यादा पेचीदा हो जाता है। उस सूरतमें हम न तो उसकी यन्त्रणाके वश होंगे और उसके हुक्मके आगे सिर झुकायेंगे बल्कि उसका मुकाबला करते करते अपनी जानपर खेल जायगे और अपने मानकी रक्षा कर लेंगे। लेकिन हमें बतलाया गया है कि दुश्मन हमें जानपर खेल जाने भी न देगा, क्योंकि उसका हेतु तो यह है कि वह हम पर ज्यादासे ज्यादा जुल्म कर सके, जिससे दूसरे नसीहत लें।

परन्तु मैं समझता हूँ कि अगर कोई व्यक्ति अमानुषी यातनाओंकी अपेक्षा सचमुच मृत्युको अच्छा समझता है, तो वह इज्जतके साथ मरनेका कोई न कोई रास्ता निकाल ही लेगा।

हरिजन-सेवक

अहिंसाका क्या होगा?

प्रश्न—परन्तु अपनी अहिंसाके बारेमें आप क्या कहते हैं? स्वतन्त्रता मिलनेके बाद आप किस हद तक अपनी इस नीतिको अमलमें लायेंगे?

उत्तर—यह सवाल आज उठता ही नही। अपन इन लेखोमें मै प्रथम पुरुष एक वचनका जो प्रयोग करता हूँ, सो तो जगह बचानेके लिए है। मेरी कोशिश हिन्दुस्तानकी भावना प्रकट करनेके लिए है। हिन्दुस्तान एक बडा मुल्क है, जिसमें हिंसक अहिंसक सब है। हिन्दुस्तानकी राष्ट्रीय सरकार क्या नीति अखतियार करेगी, मै नही कह सकता। सम्भव है, अपनी प्रबल इच्छाके रहते हुये भी मै तबतक जीवित ही न रहूं। लेकिन अगर उस वक्त तक मै जिन्दा रहा तो अपनी अहिंसक नीतिको यथासम्भव सम्पूर्णताके साथ अमलमें लानेकी सलाह दूंगा। विश्वकी शान्ति और नव-विधानकी स्थापनामें यही हिन्दुस्तानका सबसे बडा हिस्सा भी होगा। मुझे आशा तो यह है कि चूंकि हिन्दुस्तानमें इतनी लड़ाक जातिया है, और चूंकि स्वतन्त्र हिन्दुस्तानकी सरकारके निर्णयमें उन सबका हिस्सा होगा, इसलिए हमारी राष्ट्रीय नीतिका झुकाव मौजूदा सैन्यवादसे भिन्न किसी अन्य प्रकारके सैन्यवादकी तरफ होगा। मै यह उम्मीद तो जरूर ही रखूगा कि एक राजनीतिक शस्त्रकी हैसियतसे अहिंसाकी व्यावहारिक उपयोगिताका हमारा पिछला बाईस सालका प्रयोग बिलकुल विफल नहीं जायगा और सच्चे अहिंसावादियोका एक मजबूत दल हिन्दुस्तानमें पैदा हो जायगा। जो कुछ भी हो, लेकिन अगर स्वतन्त्र हिन्दुस्तानके साथ मित्र राज्योकी सन्धि हो जाय, तो वह उनके ध्येयके लिए जरूर ही बडी मददगार साबित होगी। जब कि मौजूदा गुलामीकी हालतमें तो वह युद्ध-प्रयासमें बधके ही हो सकता है, और असम्भव नही कि ऐन आनबानके मौकेपर वह वास्तविक खतरेका कारण साबित हो।

हरिजन-सेवक
२१, जून, १९४२

❀

एक चुनौती

मेरे सामने डाकसे आये हुए तीन खत पडे है। इन खतोमें मुझे इस बातके लिए झिड़का गया है कि मै सिन्ध जाकर हूरोसे रूबरू बातचीत क्यो नहीं करता? इनमेंसे दो तो दोस्ताना ढगके हैं। तीसरेके लेखक एक आलोचक है, जिन्हें अहिंसामें श्रद्धा नहीं है। इस तीसरे पत्रका जवाब देनेकी जरूरत मालूम पडती है। पत्रका मुख्य अश इस प्रकार है

"मै गहरी दिलचस्पीके साथ आपके लेख पढता रहता हूँ, क्योकि मै देखना चाहता

हुँ कि आपके अन्ध-भक्तोपर और अज्ञान जनतापर उनका क्या असर पडता है। अतएव मै आपका आभारी हूँगा, यदि आप नीचे लिखे मुद्दोपर कुछ रोशनी डाल सकेंगे, खास-तौरपर तीसरे और चौथे मुद्दोपर, जो अहिंसाके बारेमें बुनियादी और नये सवाल पेश करते हैं।

"आप अपने आश्रममें बहुतेरे सत्याग्रहियोको तैयार करते रहे है। उन्हें आपकी सीधी देखरेखका और शिक्षाका लाभ मिलता ही होगा। आप पुकार पुकार कर यह कहते आये हैं कि अहिंसाके जरिये हिंसाका सामना प्रभावशाली ढंगसे किया जा सकता है। आज पूर्वमें जापानियोके हमले और पश्चिममें हूरोकी बगावत शुरू हो चुकी है। जिस अहिंसाका उपदेश आप एक अरसेसे करते आये है, और जिसको आचरणमें लानेके लिये कई दिनोसे अनुकूल अवसरकी राह देखी जाती रही है, क्या उसपर अमल करनेका यह मौका नही है?

"लेकिन कुछ कर दिखानेके बदले आप तो 'हरिजन'मे लेख लिखकर ही सन्तुष्ट हो रहते हैं। अगर हिटलर और स्तालिन भी अपनी फौजको जगह जगह भेजनेके बदले 'प्रवदा'में या ऐसे ही किसी दूसरे अखबारमें सिर्फ लेख ही लिखा करें, तो आप उन्हें क्या कहियेगा? सिंधकी धारासभाके सदस्योको इस्तीफे देकर हूरोके बीच जानेकी सलाह देनेके बदले आप अपने तालीमयाफ्ता सत्याग्रहियोके एक दलको वहा भेजकर अपने सिद्धान्त-की परीक्षा क्यो नही करते?

"क्या सत्याग्रहियोका अपना यह धर्म या कर्तव्य नही है कि वे देशमें जहां कही उपद्रव हो, वहाँ जाकर उनका सामना करें? क्या आप यह कहना चाहते हैं कि जब आपके आश्रमपर संकट आ खडा होगा, तभी उसका सामना किया जायगा, उससे पहले नही? और अगर यही बात हो तो क्या आपका सिद्धान्त निष्क्रियताका सिद्धान्त नही बन जाता?"

मुझे इसमें कोई शक नहीं कि अगर मैं खुद सिन्ध जा सकता, तो अवश्य ही कुछ न कुछ कर सका होता। पहले मैं ऐसे काम कर चुका हूं और उनमें कुछ सफल भी हुआ हूं। अब मैं इतना बूढा हो गया हूं कि इस तरहकी यात्रा नहीं कर सकता। जो थोड़ी ताकत मुझमें बची है, उसे मैं अपनी उस लडाईके लिए सुरक्षित रख रहा हूं, जो मुझे अपने जीवनकी आखिरी लड़ाईसी मालूम होती है।

मैंने अपने जीवनका यह ध्येय कभी नहीं बनाया कि जहां जहां लोगोंपर संकट आये, वहां वहां पहुंचकर मैं उन्हें संकटसे मुक्त करूं, और पुराने जमानेके शूर सामन्तोकी तरह इसे अपना एक पेशा ही बना लू। मैं तो नम्रतापूर्वक लोगोको यह बतानेकी कोशिश करता रहा हूं कि वे खुद अपनी कठिनाइयोको किस तरह हल कर सकते हैं। सिन्धके बारेमें मैं फिर कहता हूं कि मेरी सलाह सच ही है। कांग्रेसजनोका यह स्पष्ट कर्त्तव्य था कि वे हूरोंके प्रदेशमें जाते और उनको शान्तिके मार्गपर लानेकी कोशिशमें अपने आपको खपा देते। अगर अहिंसामें उन्हें श्रद्धा न थी, तो वे हथियारोंका भी उपयोग कर सकते थे। अहिंसाके

बंधनसे मुक्त होनेके लिए उन्हें कांग्रेससे भी इस्तीफा दे देना चाहिये था। अगर हमें स्वतन्त्र बननेकी क्षमता प्राप्त करनी है, तो अहिंसासे हो या हिंसासे, आत्मरक्षाकी कला हमें सीखनी ही होगी। हरएक नागरिकको यह सीखना चाहिये कि दुःखमें अपने पड़ोसी-की मदद करना उसका धर्म है ।

अगर मै इन आलोचकोके सुझाये हुए तरीकोंको अख्तियार करता तो लोगोको परोपजीवी बनानेमें ही सहायक हुआ होता। इसलिए यह अच्छा ही हुआ कि मैंने दूसरो-की रक्षा करनेकी तालीम नही ली। अगर मरनेके बाद मेरे लिए यह कहा जा सके कि मैंने अपने जीवनका अधिकांश लोगोको स्वावलम्बी बनानेमें और प्रत्येक परिस्थितिमें आत्मरक्षाकी शक्ति प्राप्त करनेका मार्ग दिखानेमें ही बिताया, तो उससे मुझे सन्तोष होगा।

पत्र-लेखकने यह सोचकर बडी भूल की है, कि लोगोको सकटसे बचाना ही मेरे जीवनका ध्येय है। इस तरहका दावा तो डिक्टेटर ही करते है। लेकिन कोई तानाशाह अभीतक यह साबित नहीं कर सका कि उसका यह दावा सच है।

यही नही पत्र-लेखक तो मेरे बारेमें यह भी मानते है कि जब आश्रमपर ऐसा कोई सकट आ पड़ेगा, तो वह भली भाति उसका प्रतिकार कर सकेगा। अगर ऐसा हुआ तो मुझे बहुत ही सन्तोष होगा और मैं मानूगा कि मेरा जीवन-कार्य पूरी तरह सफल हुआ। लेकिन मैं तो इसका भी दावा नहीं कर सकता। सेवाग्रामका आश्रम तो सिर्फ कहनेको ही 'आश्रम' है। लोगोने उसे आश्रम कहना शुरु किया, और आश्रम नाम चल पड़ा। असलमें तो वह ऐसे पचरगी लोगोंका जमघट है, जो भिन्न भिन्न उद्देश्योको लेकर वहाँ आते और रहते हैं। समान उद्देश्यको लेकर स्थायी रूपसे रहनेवाले तो उनमें मुश्किलसे पाँच—छः जन ही होंगे । परीक्षाका समय आनेपर ये थोड़ेसे लोग किस हदतक खरे उतरेंगे, सो तो अभी देखना बाकी है।

बात यह है कि अहिंसा ठीक उसी तरह काम नहीं करती, जिस तरह हिंसा करती है। उसका तरीका उलटा है। सशस्त्र आदमी स्वभावतः अपने शस्त्रोपर आधार रखता है। जो मनुष्य जान बूझकर नि.शस्त्र बन जाता है, वह उस अदृश्य शक्तिपर आधार रखता है, जिसे कवि अपनी भाषामें—'ईश्वर' और वैज्ञानिक 'अज्ञात' कहते है। लेकिन 'अज्ञात' का अर्थ 'अभाव' ही नहीं करना चाहिये। जो सभी ज्ञात और अज्ञात शक्तियोका आधार स्वरूप है, वही ईश्वर है। इस आधार स्वरूपिणी शक्तिमें जिस अहिंसाका विश्वास नहीं, वह अहिंसा कूडे करकटकी तरह निकम्मी चीज है।

मुझे आशा है कि आलोचक सज्जन अपने प्रश्नके गर्भमें रही हुई भूलको समझ सकेंगे। और साथ ही यह भी अनुभव करेंगे कि जिस सिद्धान्तपर मैंने अपने जीवनका निर्माण किया है, वह निष्क्रियताका नहीं ; बल्कि अतिशय क्रिया-शीलताका सिद्धान्त है।

दरअसल तो उन्हें अपने सवाल इन शब्दोमें पूछना चाहिये था· "आप वाईस दरससे

हिन्दुस्तानमें काम कर रहे हैं, फिर भी क्या वजह है कि आप अबतक इतनी तादादमें ऐसे सत्याग्रहियोंको तैयार नहीं कर सके जो बाहरी और भीतरी संकटोंका सामना कर सकें ?" इसके जवाबमें मैं यही कहूंगा कि एक समूचे राष्ट्रको अहिंसक शक्तिकी तालीम देनेके लिए बाईस सालका समय कुछ भी नहीं है। लेकिन इसका यह मतलब भी नहीं कि उचित अवसर आनेपर काफी तादादमें लोग इस शक्तिका परिचय दे ही न सकेंगे। वह अवसर अब आया प्रतीत होता है। इस लड़ाईमें आम जनताके साथ सैनिकोंकी और हिंसाके साथ अहिंसाकी भी समान रूपसे परीक्षा हो रही है।

हरिजन-सेवक
२८ जून, १९४२

(हरिजन-सेवक १५ अगस्त, १९४२ से १० फरवरी १९४६ तक बन्द था)

द्वेष कैसे मोड़ें ?

हवामें द्वेष छा गया है। और अधीर देशभक्त, अगर वैसा मुमकिन हो तो, आजादीके मकसदको आगे बढानेके लिए हिंसाके जरिये भी उसका खुशीसे उपयोग कर लेना पसंद करेंगे। मेरा कहना यह है कि यह बात किसी भी वक्त और हर कहीं गलत होगी। मगर जिस देशमें आजादीके लिए लडनेवालोंने दुनियाके आगे यह घोषित कर दिया कि उनकी नीति सत्य और अहिंसाकी नीति है, वहाँ तो ऐसा करना और भी गलत और नामुनासिब होगा। उनका कहना है कि द्वेषको मुहब्बत यानी प्यारमें नहीं बदला जा सकता। जो लोग हिंसाको मानते हैं, वे सहज ही यों कहकर इसका उपयोग करेंगे 'अपने दुश्मनको मार डालो, उसे और उसकी सम्पत्तिको जरूरतके मुताबिक खुले तौरपर या छिपकर, जैसे भी मुमकिन हो नुकसान पहुँचाओ।' इसका नतीजा यह होगा कि दोनों तरफसे बदलेका दौरदौरा होगा। पिछला महायुद्ध, जिसकी चिनगारियाँ अभी तक ठंडी नहीं पड़ी हैं, द्वेषके प्रयोगके दिवालियेपनकी जोरोंसे घोषणा कर रहा है। और अभी यह देखना बाकी है कि कथित विजेता सचमुचमें विजयी हुए हैं या कि अपने दुश्मनोंको गिराने की कोशिश और चाहमें खुद ही कहीं गिर गए हैं। आखिर यह एक बुरा खेल है। इस देशके कुछ कर्मठ विचारक कामके तरीकेमें कुछ सुधार सुझाते हुए कहते हैं : "हम अपने दुश्मनको तो कभी नहीं मारेंगे, मगर उसकी सम्पत्तिको जरूर बरबाद करेंगे।" जब मैं यह कहता हूँ कि वह 'उसकी सम्पत्ति है' तो मैं शायद उसके साथ अन्याय करता हूँ; क्योंकि यह ध्यान देनेकी बात है कि कथित शत्रु साथमें अपनी कोई सम्पत्ति नहीं लाया है और जो थोडी बहुत लाया भी है, उसकी हमसे कीमत वसूल करता है। इसलिए जिसे हम बरबाद करते हैं वह तो दरअसल हमारी ही सम्पत्ति है। उसका ज्यादातर हिस्सा चाहे वह आदमियोंकी सूरतमें हो या चीजोंकी, वह यहीं पैदा करता है। इसलिए

जो बात है, वह यही कि सम्पत्तिपर उसका कब्जा है। इस सम्पत्तिकी बरबादीका मुआवजा हमें नाकके बल देना पड़ता है। और बेगुनाहोंको उसकी कीमत चुकानी पड़ती है। ताजीरी टैक्स या दण्डात्मक कर और उससे जुड़ी हुई ज्यादतियोंका यही मतलब होता है। इसलिए वह अहिंसा, जिसमें किसीको न मारना ही शामिल हो, मुझे हिंसात्मक तरीकेसे बेहतर नजर नहीं आती। उसका मतलब है—धीरे धीरे सताना। और जबतक यह धीमापन बेकार हो जायगा, तो हम फौरन मारने पर उतारू हो जायंगे और परमाणु-बमका इस्तेमाल करने लगेंगे जो कि हिंसाका आखिरी हथियार है। इसलिए सन् १९२०में मैंने द्वेषको ठीक दिशामें मोड़नेके लिए अहिंसा और उसके लाजिमी जोड़ीदार सत्यका प्रयोग सुझाया था।

द्वेष करनेवाला द्वेषकी खातिर द्वेष नहीं करता, यानी इसलिए करता है कि वह द्वेषपात्र था, आदमियोंको अपने देशसे निकाल देना चाहता है। इसलिए वह हिंसक तरीकेकी तरह अहिंसक तरीकेसे भी अपना मकसद हासिल कर लेगा। पिछले २५ वर्षोंसे राजी या नाराजीसे, कांग्रेस अपनी खोयी हुई आजादीको हासिल करनेके लिए जनताके सामने हिंसाके मुकाबले अहिंसाकी हिमायत करती रही है। हमने जो तरक्की की है, उससे देख लिया है कि अहिंसाके जरिये हम जितनी जल्दी और जितना ज्यादा जनताके दिलको जगा सके हैं उतना पहले कभी नहीं कर सके थे। फिर अगर सच कहें तो और सच कहना ही चाहिए—हमारी अहिंसक कार्रवाई अधकचरी ही रही है। कितनों ने दिलमें हिंसाको छिपाये रखकर केवल जबानसे अहिंसाका उपदेश दिया। किन्तु सीधी सादी जनताने हमारे दिलोंमें छिपे हुए भावोंका मतलब समझ लिया और उसकी अनजानी प्रतिक्रिया वैसी नहीं हुई, जैसी होनी चाहिये थी। दम्भने सद्गुणकी प्रशंसा तो की है, किन्तु वह सद्गुणकी जगह नहीं ले सकता था। इसलिए मैं अहिंसा पर ज्यादा जोर देता हूँ। मैं अज्ञानवश ऐसा नहीं करता, बल्कि उसके पीछे मेरा साठ सालका अनुभव है। यह नाजुक वक्त है। आज जनता भूखों मर रही है। देशकी मौजूदा जरूरतोंमें अहिंसाका प्रयोग किस तरह किया जाय, बुद्धिमान पाठकको इसके अनेक उपाय सूझ जायेंगे।

आजाद हिन्द फौजका जादू हमपर छा गया है। नेताजीका नाम जपने लायक बन गया है। उनकी देशभक्ति किसीसे कम नहीं है। (वर्तमानकालका प्रयोग मैं जानबूझकर कर रहा हूँ)। उनकी बहादुरी उनके सारे कामोंमें चमक रही है। उनका मकसद बुलन्द था पर वे नाकामयाब रहे। नाकामयाब कौन नहीं रहा? हमारा काम तो यह देखना है कि हमारा मकसद बुलन्द हो, और हम नेक मकसद हों। सफलता यानी कामयाबी हासिल कर लेना हर किसीके भाग्यमें नहीं लिखा होता। इससे ज्यादा तारीफ मैं नहीं कर सकता क्योंकि मैं जानता था कि उनका काम विफल होने ही वाला है, और अगर वह अपनी आजाद हिन्द फौजको विजयी बनाकर हिन्दुस्तानमें ले आये होते, तो भी मैंने यही कहा होता, क्योंकि इस तरह आम जनता अपने अधिकारोंको न पा सकी होती। नेताजी और उनकी फौज हमको जो सबक सिखलाती है, वह तो त्यागका, जात-पांतके भेदसे रहित एकता और अनुशासनका सबक है। अगर उनके प्रति हमारी भक्ति समझदारी

और विवेकपूर्ण होगी तो हम उनके इन तीनों गुणोंको पूरी तरह अपनायेंगे। लेकिन हिंसा-का तो बिलकुल त्याग ही करेंगे ।

मैं यह नहीं चाहूँगा कि आजाद हिन्द फौजका आदमी यह सोचे या कहे कि वह या उसके साथी हिन्दुस्तानकी जनताको हथियारोंके जरिये गुलामीसे छुटकारा दिलवा सकते हैं। लेकिन वह अगर नेताजीका और उनसे भी ज्यादा देशके वफादार हैं, तो वह जनताको—स्त्री, पुरुष और बच्चोंको—बहादुर बनने और त्याग करने, और एक हो जानेकी शिक्षामें अपनी ताकत खर्च करेगा। तभी हम दुनियाके आगे कमर सीधी करके खड़े हो सकेंगे। लेकिन अगर वह केवल हथियारबन्द सैनिक ही बना रहा, तो वह जनताके सिरपर सवारी ही गाँठेगा और तब उसके स्वयसेवकपनेकी कोई ज्यादा कीमत न रहँ जायगी। इसलिए मैं कप्तान शाहनवाजके इस बयानका स्वागत करता हूँ कि नेताजीके योग्य अनुयायी बननेके लिए, हिन्दुस्तानकी धरती पर आनेके बाद, वह कांग्रेसकी सेनामें एक विनीत, अहिंसक सिपाही बनकर काम करेंगे।

हरिजन सेवक
२४ फरवरी, १९४६

❀

सवाल जवाब

सवाल—आप तो मछली खानेवालोंको मछली खिलानेकी बात लिखते हैं? क्या खानेवाला हिंसा नहीं करता? खिलानेवाला उसमें भागीदार नहीं बनता?

ज०—दोनोंमें हिंसा भरी है। भाजी खानेवाला भी हिंसा करता है। जगत हिंसामय है। देह धारण करनेका मतलब है, हिंसामें शरीक होना। ऐसी हालतमें अहिंसा धर्मका पालन करना है। वह किस तरह किया जाय, सो मैं कई बार बता चुका हूँ। मछली खानेवालेको जबरदस्ती मछली खानेसे रोकनेमें बहुत ज्यादा हिंसा है। मछली मारनेवाले, मछली खानेवाले, और मछली खिलानेवाले जानते भी नहीं कि वे हिंसा करते हैं। और अगर जानते भी हैं, तो उसे लाजिमी समझ कर उसमें भाग लेते हैं। लेकिन जबरदस्ती करनेवाला घोर हिंसा करता है। बलात्कार अमानुषी कर्म है। जो लोग आपसमें लड़ते हैं, जो धन कमाते समय आगा-पीछा नहीं सोचते, जो दूसरोंसे बेगार लेते हैं, जो ढोरों या मवेशियोंपर हदसे ज्यादा बोझ डालते हैं, उन्हें लोहेकी या दूसरी किसी आरसे गोदते हैं, वे जानते हुए भी ऐसी हिंसा करते हैं जो रोकी जा सकती है। मछली या मांस खानेवालोंको ये चीजें खाने देनेमें जो हिंसा है, उसे मैं हिंसा नहीं मानता। मैं उसे अपना धर्म समझता हूँ। अहिंसा परम धर्म ही है। हम उसका पूरा पूरा पालन न कर सकें तो भी उसके सच्चे स्वरूपको समझ कर हिंसासे जितना बच सकें, बचें।

हरिजन सेवक
२४ मार्च, १९४६

दया और निर्दयता

दयाकी निर्दयताके सामने, अहिंसाकी हिंसाके सामने, प्रेमकी द्वेषके सामने और सत्यकी झूठके सामने ही परीक्षा हो सकती है। यह बात सही हो तो यह कहना गलत होगा कि खूनीके सामने अहिंसा बेकार है। हां, यो कह सकते हैं कि खूनीके सामने, अहिंसाका प्रयोग करना अपनी जान देना है। लेकिन इसीमें अहिंसाकी परीक्षा है। विशेषता इसकी यह है कि जो लाचारीसे मर जाता है, वह अहिंसाकी परीक्षामें पास नही होता। जो मरते हुये भी खूनीपर क्रोध नहीं करता, और मनमें उसके लिए ईश्वरसे क्षमा भी माँगता है, वही अहिंसक है। ईसा मसीहके बारेमें इतिहास यही कहता है। जिन्होंने उन्हें सूलीपर चढाया, मरते-मरते भी उन्होंने उनके लिए ईश्वरसे प्रार्थना की: "हे ईश्वर! जिन्होंने मुझे सूलीपर चढाया है, उन्हें तुम माफ करना।" ऐसी दूसरी मिसालें सब धर्मोंमें मिल सकती हैं। लेकिन क्राइस्टकी यह बात सारे संसारमें मशहूर है।

यह एक अलग बात है कि ऊपर बतायी हुई हदतक हमारी अहिंसा न पहुँची हो। अपनी कमजोरीके कारण या इसलिए कि हमें अनुभव नहीं है, हम अहिंसाकी भव्यताको नीचे न उतारें। यह ठीक नही होगा। हमारी समझ ही उलटी हो, तो हम उसकी आखिरी चोटी तक नहीं पहुँच सकते। इसलिए अहिंसाकी शक्तिको बुद्धिसे जानना जरूरी है।

हरिजन-सेवक
२८ अप्रैल, १९४६

❀

अहिंसक सेवा-दल

एक बार मेरे सुझानेसे ही शान्तिदल कायम करनेकी कोशिश हुई थी। लेकिन उसका कोई नतीजा नहीं निकला। उनसे इतना सीखनेको मिला कि शांतिदल बड़े पैमानेपर काम नहीं कर सकते। बड़े बड़े दलोको चलानेके लिए सजा नहीं, तो सजाका डर होना चाहिये और जरूरत मालूम होनेपर सजा भी दी जानी चाहिये। ऐसे हिंसक दलमें आदमीके चाल-चलनको नहीं देखा जाता। उसके कद और डीलडौलको ही देखा जाता है। अहिंसक दलमें ठीक इससे उलटा होता है। उसमें शरीरकी जगह गौण होती है। शरीर ही सब कुछ नहीं है, यानी चरित्र सब कुछ है। ऐसे चरित्रवान्को पहचानना मुश्किल है। इसलिये बड़े-बड़े शांतिदल कायम नहीं किये जा सकते। वे छोटे ही होंगे। हर गाँव या हर मुहल्लेमें होंगे। मतलब यह कि जो जाने-पहचाने लोग हैं, उन्हींकी टुकड़ियां [बनेंगी। वे मिलकर

ज०—झगड़ा करनेवालोंको फायदा तभी होता है, जब कि उनका मुकाबिला कमजोरकी अहिंसासे हो। बहादुरकी अहिंसा तो किसी भी हालतमें पूरी तरह हथियारोंसे लैस एक बहादुरसे या समूची फौजसे भी मजबूत होती है।

स० ४—अगर हिन्दुस्तानके लोगोंका एक दल अपने स्वार्थके लिये—जो न सिर्फ दूसरोंके खिलाफ है, बल्कि बुनियादी तौरपर अन्यायपूर्ण भी है—तलवारसे काम ले, तो आपकी नीति क्या कहेगी? एक गैर-सरकारी संस्थाके लिये तो ऐसे मौकोंपर सत्याग्रह करना मुमकिन है, मगर क्या ऐसी हालतमें हुकूमत करनेवालोंके लिये भी सत्याग्रह करना मुमकिन है।

ज०—सवालमें ऐसी मिसाल ली गयी जो कभी पेश आ नहीं सकती। अहिंसात्मक राज्य ज्यादासे ज्यादा समझदार जनताकी मरजीके मुताबिक चलनेवाला और उसके मनकी बात समझकर उस तरह काम करनेवाला होना चाहिये। ऐसे राज्यमें जिस दलकी कल्पना की गयी है वह नहींके बराबर ही होगा। वह उस बड़े बहुमतकी निश्चित मरजीके खिलाफ, जिसकी कि राज्य नुमाइन्दगी करता है, खड़ा ही नहीं हो सकता। आजकी सरकार जनतासे बाहरकी चीज नहीं है। वह बहुत बड़े बहुमतकी इच्छा ही है। अगर उसे अहिंसात्मक ढंगसे जाहिर करें तो वह एकका नहीं, बल्कि एकके खिलाफ निन्यानबेका बहुमत होगा।

स० ५—क्या ज्यादा मजबूत फौजी ताकतवालेका सत्याग्रह कमजोर फौजी ताकतवालेसे ज्यादा कारगर नही है ?

ज०—ये दोनों विरोधी बातें हैं। जिसके पास मजबूत फौजी ताकत है वह सत्याग्रह कर ही नहीं सकता। मसलन अगर रूस अहिंसासे काम लेना चाहे, तो पहले उसे अपनी सारी हिंसक ताकतको छोड़ देना होगा। इसमें सच्चाई यह है कि जो एकबार फौजी ताकतोंमें बढ़े-चढे थे वे अपने विचार बदल दें, तो न सिर्फ दुनियाको, बल्कि अपने विरोधियोंको भी वे अपनी अहिंसा दिखा सकते हैं। जो लोग पक्के अहिंसक हैं, वे इस बातकी परवाह नही करेंगे कि उनके मुखालिफ मजबूत फौजी ताकतवाले हैं या कमजोर हैं।

स० ६—एक अहिंसक सेनाके लिये किस तरहके अनुशासन और ट्रेनिंगकी जरूरत है ? क्या कुछ बातोंमें उसकी ट्रेनिंग मौजूदा फौजी ट्रेनिंगसे मिलती-जुलती न होगी ?

ज०—मौजूदा फौजी ट्रेनिंगके शुरूका कुछ बहुत थोड़ा हिस्सा अहिंसक सेनाकी ट्रेनिंगमें शामिल हो सकता है। जैसे अनुशासन, कवायद, कोरस, झण्डा, सिग्नलिंग और इसी तरहकी दूसरी चीजें। ये सब भी बिलकुल फौजी ढगसे नहीं सिखाये जायेंगे, क्योंकि इनकी बुनियाद ही दूसरी है। एक अहिंसक सेनाके लिये जिस तालीमकी ठीक ठीक जरूरत है, वह है ईश्वरमें अटल विश्वास, अहिंसक सेनाके सेनापतिके हुक्मका अपनी मरजीसे पूरा पालन और सेनाके हिस्सोंमें बाहरी और अन्दरूनी दोनों तरहका पूरा-पूरा सहयोग।

स० ७—क्या आजकी हालतमें यह अच्छा नही होगा कि हिन्दुस्तान और इंगलैंड जैसे मुल्क किसी भी फौजी कदमको उठानेसे पहले सत्याग्रहकी आजमाइशको पूरा मौका देनेका इरादा रखते हुए भी—अपनी फौजी काबलियतको पूरा बनाये रहें ?

ज०—ऊपर दिये हुए जवाबोंसे यह साफ हो जाना चाहिये कि जबतक हिन्दुस्तान और इंगलैंड अपनी पूरी फौजी काबलियतको कायम रखते हैं, वे किसी भी हालतमें सत्याग्रहके साथ न्याय नही कर सकते। साथ ही, यह बिलकुल सही है कि फौजी ताकतें अपने आपसके झगडोंको शान्तिके साथ मिटानेके लिये बराबर समझौतेकी बात चलाती रहती हैं। लेकिन यहाँ हम लडाईकी शरण लेनेके पहले होनेवाली शान्तिकी इब्तदाई बातचीतकी चर्चा नही कर रहे हैं। हम तो यह सोच रहे हैं कि लड़ाईके नामसे पहचाने जानेवाले हथियारबन्द झगडेकी जगह, जिसे खुले लफ्जोमें कत्लेआम कहा जा सकता है आखिर किस चीजको दी जाय।

हरिजन-सेवक
१२ मई, १९४६

हिंसा कैसे रोकें

स०—कुछ दिन पहले मैं पूनामें एक अंग्रेज मिलिटरी अफसरसे मिला था। वह विलायत जा रहे थे। उन्होने मुझसे कहा कि अब हिन्दुस्तानमें हिंसा बढ रही है और आगे और भी बढेगी। लोग अहिंसाके रास्तेको छोडते जा रहे हैं। उन्होने यह भी कहा. "हम लोग हिंसामें विश्वास करते हैं। हिंसासे हमारा जीवन बधा पडा है। कई गुलाम देशोंने हिंसाके जरिये अपनी आजादी हासिल की है। और आज वे सुखसे दिन बिता रहे हैं। हमने हिंसाको रोकनेके लिये अणु-गोला भी निकाला। दुनिया जानती है कि किस तरह-थोडे वक्तके अन्दर ही हमने खूखार लडाईको अणु-गोलेकी मददसे बन्द कर दिया।"

साहब बहादुर और कहने लगे "हिन्दुस्तानमें महात्मा गाँधीने लोगोको अहिंसाका रास्ता बताया है। क्या गाँधीजीने अणु-गोले जैसी कोई चीज निकाली है, जिसका इस्तेमाल करनेसे लोग फौरन अहिंसाके रास्ते आ जायँ और देशमें शान्तिका राज्य कायम हो जाय? क्या अब गाँधीजीका अणुगोला देशको हिंसाके रास्ते जानेसे रोक नही सकता?"

फिर वह मुझसे बोले "आप अपने गाँधीजीसे क्यो नही कहते कि वे इस वक्त देशपर अपनी शक्ति छोड दें, जिससे लोग हिंसाके रास्तेको त्याग दें और फिरसे सब मिलकर अहिंसा अखतियार कर लें। मैं तो कहता हूँ कि अगर गाँधीजी इस भीषण हिंसाको, जो आज सारे हिन्दुस्तानमें फैल रही है, अभीसे नही रोकेंगे, तो बादमें उनको बहुत ही दुःखी होना पडेगा और उनका इतने दिनोका काम बरबाद-हो जायगा।"

आशा है, आप कृपाकर इन अंग्रेज अफसरकी शंकाका जवाब देंगे।

ज०—इस सवालमें काफी विचारदोष पाता हूँ। अणु-गोलेने हिंसाको नहीं रोका है। लोगोंके मनमें तो हिंसा भरी ही है। और तीसरी लड़ाईकी तैयारियां होती दिखायी पड़ती है। यह कहना फिजूल है कि हिंसासे किसीको सुख-चैन मिला है। फिर भी यह कोई नहीं कहता कि हिंसासे कुछ हो ही नही सकता।

मैं हिंसाको रोक न सकूं तो मुझे पछताना पड़ेगा ऐसी कोई बात अहिंसामें हो ही नहीं सकती। कोई भी आदमी हिंसाको रोक नहीं सकता। ईश्वर ही हिंसाको रोक सकता है। मनुष्यको तो वह निमित्तमात्र बनाता है। हिंसा किसी बाहरी प्रयोगसे रोकी नही जा सकती। लेकिन इसका यह मतलब नही कि कोई बाहरी प्रयोग हो ही नहीं सकता या होता नहीं। बाहरी उपायोंके होते हुए भी वह रुकी तो वह ईश्वरकी कृपासे रुकेगी। हाँ, इतना तो कहूँगा कि ईश्वरकी कृपा रूढ़ प्रयोग है। ईश्वर अपने कानूनके मुताबिक ही चलता है। इसलिए हिंसा उस कानूनके मुताबिक ही रुकेगी। हम ईश्वरके सब कानूनोंको जानते नहीं है, न कभी पूरे-पूरे जानेंगे। इसलिये जो प्रयत्न हमसे बन सके, हम करते रहें। इतना और भी कह दूं कि मेरा विश्वास है कि हिन्दुस्तानमें अहिंसाका प्रयोग काफी हद तक सफल हुआ है। मैं मानता हूँ कि सवालमें जो निराशा जाहिर की गयी है उसकी कोई गुंजाइश नही है। आखिर अहिंसा जगतका एक महान् सिद्धान्त है। उसे कोई मिटा नहीं सकता। मेरे जैसे हजारोंके उसपर अमल करते-करते मर जानेसे भी वह सिद्धान्त मिट नहीं सकता। मर कर ही अहिंसाका प्रचार बढ़ेगा।

हरिजन-सेवक
१९ मई, १९४६

❀

धर्म और अधर्मका विवेक

एक भाई लिखते हैं :—

"५ मईके 'हरिजन-बन्धु'में आपने लिखा है कि आपकी अहिंसामें भयानक प्राणियोंको मसलन शेर, भेड़िया, साँप, बिच्छू वगैरहको मार डालनेकी गुंजाइश है।

"आप कुत्तो वगैरहको खाना नहीं देते। गुजराती समाजके अलावा और भी बहुतसे लोग हैं, जो जानवरोंको खिलाना पुण्य समझते हैं। आजकल जब कि खुराककी इतनी तंगी है, ऐसा खयाल नामुनासिब हो सकता है। मगर इतनी बात तो है कि ये जानवर (कुत्ते वगैरह) आदमीकी काफी सेवा करते हैं। इन्हें खिलाकर इनसे काम लिया जा सकता है।

"आपने डरबनसे स्व० श्री रायचन्द्र भाईसे २७ सवाल पूछे थे। उनमें एक सवाल यह भी था कि जब साँप काटने आये, तो क्या किया जाय? उन्होंने जवाब दिया था कि

आत्मार्थी सांपको नही मारेगा। साँप काटे तो उसे काटने देगा। मगर अबकी तो आप दूसरी बात कह रहे हैं। ऐसा क्यो ?"

इस बारेमें मैं काफी लिख चुका हूँ। उन दिनों सवाल पागल कुत्तोंके मारनेका था। काफी चर्चा हुई थी। मगर मालूम होता है कि वह सब चर्चा भूल गयी है।

मैं जिस अहिंसाका पुजारी हूँ, वह निरी जीव-दया ही नहीं है। जैन-धर्ममें जीव-दया पर खूब जोर दिया गया है। वह समझमें आता है, मगर उसका यह मतलब हरगिज नही है कि इन्सानको छोड़कर हैवानोंपर दया की जाय। मैं मानता हूँ कि जहाँपर जानवरोंपर दया करनेकी बात लिखी है, वहां मनुष्यपर दया करनेकी बात तो मान ही ली गयी है। ऐसा करनेमें हद छूट गयी है। और अमलमें तो जीव-दयाने टेढ़ा रूप ही लिया है। जीव-दयाके नाम पर अनर्थ हो रहा है। बहुतसे लोग चीटियोंको आटा डालकर संतोष मानते हैं, मानो आजकलकी जीव-दयामें जान ही नहीं रही। धर्मके नामपर अधर्म चल रहा है। पाखण्ड फैल रहा है।

अहिंसा सबसे ऊँचा धर्म है। वह बहादुरोंका धर्म है, कायरोंका कभी नहीं। दूसरे मारें, हिंसा करें, और हम उससे फायदा उठावें और मानें कि हमने धर्मका पालन किया है, तो यह अपने आपको धोखा देना नहीं हुआ तो और क्या हुआ ?

जिस गाँवमें रोज बाघ आता है, वहाँ नामका अहिंसावादी नही रहेगा। वह तो वहाँसे भाग जायगा और जब कोई दूसरा आदमी उस बाघको मार डालेगा, तब वापस आकर अपने घर-बारपर कब्जा करेगा। । यह अहिंसा नहीं है। यह तो डरपोककी अहिंसा है। बाघको मारनेवालेने कुछ बहादुरी तो दिखायी। मगर जो दूसरेकी हिंसासे लाभ उठाता है वह कायर है। वह कभी अहिंसाको पहचान नही सकता।

देहधारीको कुछ न कुछ हिंसा तो करनी ही पड़ती है ? असल धर्म एक होते हुए भी उसके बारेमें हर एककी समझ अलग-अलग होती है। इसलिये सब अपनी शक्ति और समझके मुताबिक चलते हैं। एकका धर्म दूसरेके लिये अधर्म हो सकता है। मांस खाना मेरे लिये अधर्म है, मगर जो मांसपर ही पला है, जिसने मांस खानेमें कोई बुराई नही मानी, वह मुझे देखकर मांस छोड़ दे, तो उसके लिये वह अधर्म होगा।

मुझे खेती करनी हो, जंगलमें रहना हो, तो खेतीके लिये लाजिमी (अनिवार्य) हिंसा मुझको करनी ही पड़ेगी। बन्दरों, परिन्दों और ऐसे जन्तुओंको, जो फसल खा जाते हैं, खुद मारना होगा या कोई ऐसा आदमी रखना होगा जो उन्हें मारे। दोनो एक ही चीज है। जब अकाल सामने हो, तब अहिंसाके नामपर फसलको उजड़ने देना मैं तो पाप ही समझता हूँ। पाप और पुण्य स्वतन्त्र चीजें हैं। एक ही चीज एक समय पाप और दूसरे समय पुण्य हो सकती है।

आदमीको शास्त्र-रूपी कुयेंमें डूब नही जाना है बल्कि गोताखोर बनकर शास्त्ररूपी समुद्रमेंसे मोती निकालना है।

इसलिये कदम-कदमपर आदमीको हिंसा और अहिंसाका विवेक करना होता है। इसमें न शर्मकी गुंजाइश है न डरकी।

हरिनो मारग छे शूरानो, नहि कायरनुं काम जोने।
(हरिका रास्ता बहादुरोका है, डरपोकोका उसमें कोई काम नहीं।)

आखिर श्री रायचन्द्र भाईने तो यही लिखा था कि अगर मुझमें शक्ति हो और मैं आत्माको पहचानना चाहता होऊँ, तो सांपके काटने आनेपर मुझे चाहिये कि मैं उसे काटने दूं। मैंने तो उसका खून मिलनेसे पहले या बादमें आज तक सांपको कभी मारा ही नहीं। इसे मैं अपनी बहादुरी नहीं समझता। मेरा आदर्श तो यह है कि मैं सांप और बिच्छूसे बेधड़क खेल सकूं। मगर आज तो मेरा यह एक मनोरथ ही है। मैं नहीं जानता कि यह मनोरथ कभी फलेगा या नहीं, और अगर फले तो कब? मैंने अपने आदमियोंको सब जगह सांप और बिच्छू मारने दिये हैं। मैं चाहता तो उन्हें रोक सकता था। मगर रोकता कैसे? इन जानवरोंको अपने हाथमें पकड़कर दूसरोंको निडर बनानेकी हिम्मत मुझमें नहीं थी। न होनेकी मुझे शर्म थी। मगर वह मेरे या उनके किस काम की? राम-नामकी कृपा होगी, तो मुझे आशा करनी चाहिये कि किसी रोज ऐसा करनेकी भी हिम्मत आ जायगी। मगर तब तक मैं तो ऊपर बताया हुआ धर्म ही जानता हूँ। धर्म भी तजरबेसे सीखा जाता है, कोरी पंडिताईसे नहीं।

हरिजन-सेवक
९ जून, १९४६

❀

एटम-बम और अहिंसा

कुछ अमेरिकन दोस्त कहते हैं कि एटम बमसे ही अहिंसा निकलेगी। शायद वे यह कहना चाहते हैं कि जिस तरह ठूंस-ठूंस कर मिठाइयाँ खानेसे आदमीका मन मिठाईसे ऊब जाता है, उसे मतली होने लगती है, उसी तरह एटम बमकी तबाहीको देखकर दुनियाके दिलमें हिंसाके लिये नफरत पैदा हो जायगी। मगर वह थोड़े दिनोंके लिये होगी। जैसे ऊब मिटते ही आदमी फिर मिठाइयां खाने बैठ जाता है, उसी तरह एटम बमकी बात-के नजारेका असर दूर होते ही दुनियाँ दूनी रफ्तारसे हिंसाकी तरफ दौड़ेगी?

कई बार बुराईमेंसे भलाई निकलती है। मगर वह खुदाकी हिकमत है, इन्सानकी नहीं। इन्सानके हाथों तो हम यही देखते हैं कि भलाईका नतीजा भला और बुराईका नतीजा बुरा होता है। बेशक यह सम्भव है कि एटामिक ताकत (अणुशक्ति) का—जिसे अमेरिकन वैज्ञानिकोंने और फौजियोंने तबाहीके लिये इस्तेमाल किया है—इस्तेमाल

भलाईके लिये भी हो सकते हैं। मगर अमेरिकन दोस्तोंके कहनेका मतलब यह नहीं था। वे ऐसे भोले-भाले न थे कि कोई ऐसा सवाल पूछते जिसका एक ही जवाब हो सकता है। आग लगानेवाला तबाही और नुकसानके लिये आगका इस्तेमाल करता है, जब कि गृहिणी उसी आगका इस्तेमाल इन्सानको कूवत देनेवाला खाना पकानेमें करती है। जहां तक मैं देख सकता हूं एटम बमने इन्सानकी ऊँची से ऊँची भावनायें, जो उसे युगोसे कायम रखती चली आ रही हैं, खतम कर डाली हैं। पुराने जमानेमें लड़ाईके कुछ ऐसे कानून जरूर होते थे जो उसे कुछ बरदाश्त करने लायक बनाते थे। अब हम उनका असल रूप देख रहे हैं। आज जोर-जबरदस्तीको छोडकर लडाईका दूसरा कोई कानून ही नहीं है। एटम बमने मित्र राज्योको एक खोखली जीत तो दी, पर साथ ही उसने थोड़े वक्तके लिये जापानकी आत्माका खून कर दिया है। लेकिन बरबाद करनेवाले राष्ट्रकी आत्माका क्या हुआ, यह कहना आज कठिन है। कुदरत किस तरह अपना काम करती है, यह समझना बड़ा मुश्किल है। इस रहस्य (राज)का पता तो हम इस किस्मकी दूसरी चीजोके तजरबेसे ही लगा सकते हैं। अपनेको या अपने नुमाइन्देको गुलामीके पींजरेमें रखे बिना कोई आदमी किसीको गुलाम नहीं रख सकता। इससे कोई यह न समझे कि जापानने अपने निन्दनीय सपनोको पूरा करनेके लिये जो बुरे काम किये, उनका मैं बचाव करना चाहता हूँ; दोनो पक्षोमें फरक तो सिर्फ दरजेका ही था। मैं मान लेता हूँ कि जापानकी लालच ज्यादा बुरी थी। मगर इससे जिनकी लालच कम बुरी थी, उन्हें यह हक हासिल नहीं हो जाता कि वे राक्षस बनकर जापानके एक इलाकेमें समूचे मर्द, औरतो और बच्चोका नाश कर डालें।

एटम बमकी इस बेहद दर्दनाक कहानीसे हमें सबक तो यह सीखना है कि जिस तरह हिंसासे हिंसाको नहीं मिटाया जा सकता, उसी तरहसे एक बमको दूसरे बमसे नहीं मिटाया जा सकता। इन्सान सिर्फ अहिंसाकी मार्फत ही हिंसाके गढ़ेमेंसे निकल सकता है। नफरतको सिर्फ प्यारसे ही जीता जा सकता है। नफरतके सामने नफरत दिखानेसे वह और भी फैलती और गहरी होती है। मैं जानता हूँ कि जो बात मैं कई बार कह चुका हूँ और जिसपर अमल करनेकी मैंने भरसक कोशिश भी की है, उसीको मैं आज दुहरा रहा हूँ। असलमें तो पहले भी मैंने कोई नयी बात नहीं कही थी। मैंने जो कहा था, वह तो सनातन सत्य (कदीमी सचाई) है। हाँ, इतनी बात जरूर है कि मैंने, कोई किताबी बात नहीं कही थी। मैं यह मानता हूँ कि जो चीज मेरी रग-रगमें भरी है उसीको मैंने जोरदार शब्दोमें कहा है। साठ साल तक इस चीजको जीवनके हर एक क्षेत्रमें आजमाकर मेरी श्रद्धा और भी पक्की हुई है, और दोस्तोके तजरबेसे भी उसे ताकत मिली है। यह एक ऐसी जड़की सच्चाई है कि आदमी अगर अकेला हो तो भी बगैर किसी झिझकके इसपर डटकर खड़ा रह सकता है। मैक्समूलरने बरसो पहले कहा था "जबतक सत्यपर विश्वास रखनेवाले मौजूद हैं, सत्यको दुहराना ही पडेगा।" मैं इस बातको मानता हूँ।

हरिजन-सेवक

७ जुलाई, १९४६

८

खामख्वाह क्यों मारें ?

अलीगढ़से यह सूचना आयी है :

"९ जूनके 'हरिजन-सेवक'के चौथे पृष्ठपर आप लिखते हैं कि 'बन्दरो, परिन्दो, और ऐसे जन्तुओंको, जो फसल खा जाते हैं, खुद मारना होगा, या कोई ऐसा आदमी रखना होगा, जो उन्हें मारे।' इस सवधमें मैं यह निवेदन करना चाहता हूँ कि अगर फसलको खा जानेवाले जानवरोको मारे वगैर ही फसलकी रक्षा आसानीसे हो सकती हो, तो उन्हें मारना जरूरी नही होना चाहिये। मिसालके लिये मैं आपको सूचना देता हूँ कि मेरे चाचाने रातको बैटरीकी रोशनी बन्दरोकी ओर फेंक फेंककर उन्हें अपने खेत छोडनेके लिये मजबूर कर दिया। इस तरह बन्दरोको मारनेके बजाय बैटरीके प्रयोगसे भगानेका मार्ग (रास्ता) आप क्यो न स्वीकार करें और पेश करें ?"

यह सूचना पहले विचारसे तो अच्छी लगती है। लेकिन दूर तक विचार करनेसे लगता है कि बैटरीसे काम नहीं चल सकेगा। उससे मेरे खेतकी कुछ रक्षा हो सकेगी, मगर इर्द-गिर्दकी नहीं। स्वार्थी बनकर दूसरोका नुकसान करना मेरे लिये तो ठीक नहीं होगा। वह भी हिंसा होगी। हिंसाके नामपर ऐसी हिंसा करनेमें हम झिझकते नहीं, जैसे कि हम अपने आँगनसे दूसरेके आँगनमें साँप फेंकते हैं, कचरा डालते हैं। शुद्ध अहिंसा बताती है कि अगर बन्दर वगैरहसे बचना आवश्यक है, तो उनको मार डालना आवश्यक हो जाता है। सामान्य नियम तो यही है कि जितनी हिंसासे हम बच सकें, उतनीसे बचना हमारा धर्म है। सामाजिक अहिंसा ही समाजके लिये हो सकती है। व्यक्तिको जहाँ तक वह जा सकता है, जाना होगा। हर समय, हर कदमपर, ध्यानसे विचार करना परम कर्त्तव्य है। बगैर विचारे रूढ़ि धर्मपर चलनेसे हमारी गति रुक जाती है।

हरिजन-सेवक
७ जुलाई, १९४६

*

सवाल-जबाब

स०—कांग्रेस स्वराज्य हासिल करनेके लिये ब्रिटिश हुकूमतके खिलाफ अहिंसासे लडे और हुकूमत पाये हुए कांग्रेसी मन्त्रिमडल गलत रास्ते चलकर तूफान मचानेवाले भाइयोको गोलियोसे भूनकर शान्ति (अमन) कायम करनेकी कोशिश करें, क्या ये दोनो बातें मेल खाती है ? धारा सभाके मत्री और मेम्बर अपने भाइयोके साथ कुरबान होनेके लिये अहिंसासे काम न लेना चाहते हो, तो आपके रविशकर महाराज और साने गुरूजी जैसे इने-गिने लोगोको छोडकर दूसरे लोगो और हुकूमत पाये हुए सारे कांग्रेसियोको ब्रिटिश सल्तनतके खिलाफ बरती जानेवाली अहिसा कायरो या डरपोकोकी अहिंसा नही कही जायगी ?

ज०—आपका उठाया हुआ हिंसा और अहिंसाका सवाल तो बहुत पुराना हो गया है। इस बारेमें बहुत कुछ कहा जा चुका है। अगर दूसरोकी तरह आपके दिलमें भी अहिंसा अभीतक न पैठी हो, तो आप उसे फेंक दीजिये। इसमें मै किसी तरहका दोष नहीं देखता। और दूसरे इसमें दोष देखते है, इसीलिये आप भी देखें, ऐसा कोई कायदा नहीं। इसके बरखिलाफ कायदा तो यह है कि ऋषियोने जिस बातको माना हो, सन्तोने जिसे बरता हो, उसे हमारा दिल कबूल करे, तो ही हम उस बातको मानें और वैसा बरताव करें। यहाँ सवाल यह खडा होता है कि अगर ऋषियोंने गलत कायदा माना हो, और सन्तोंने उसे बरता हो, लेकिन हमारा दिल और किसी बातको ही मानता हो, तो हम उसके मुताबिक बरताव करें या नही। इसका जवाब इतना ही हो सकता है कि हर एक इन्सान खुद जोखिम उठाकर उसे बरत सकता है। सुधार या नयी खोज इसी तरह होती है। हम यह जानते है कि हमारे शंकराचार्य छुआछूतका समर्थन (ताईद) करते है। फिर भी हम तो इसे दिल और दिमागका कलकरूप (कालिख) ही मानते है। भले ही दूसरे इसमें, हमारी इस धारणा और बरतावमें, नुक्स देखते हों।

हरिजन-सेवक
४ अगस्त, १९४६

❀

हड़तालें

अखबारोंमें खबर छपी थी कि डाकवालोंकी मौजूदा हडतालको मैंने आशीर्वाद दिये हैं, मगर यह सच नहीं है। असल बात यह है कि एक रोज कनू गांधी एक डाकियेको मेरे पास नमस्कार करनेके लिये ले आये। उन दिनो हडताल शुरू हुई थी। डाकियेने मेरे आशीर्वाद मांगे। मैंने उनसे कहा कि अगर उनकी हड़ताल वाजिब है, वे सब बिलकुल अहिंसक रहे, तो उन्हें जरूर ही कामयाबी मिलेगी। इसका यह मतलब नहीं कि मैंने इस हड़तालको आशीर्वाद दिया था। मगर मैंने क्या कहा था, और डाक-वालोंकी हड़ताल जायज थी या नाजायज, इस बहसको अभी छोड़ दें। चूंकि मैं अपने आपको अहिंसक हडताल चलानेमें माहिर समझता हूँ, इसलिये मेरा धर्म है कि इस हड़तालके और सब दूसरी हडतालोके चलानेवालोंको और आम जनताको भी अहिंसक हड़तालकी शर्तें समझा दूं।

जाहिर है कि बिना वजनदार वजूहातके हड़ताल होनी ही न चाहिये। नाजायज हडतालको न तो कामयाबी हासिल होनी चाहिये और न किसी हालतमें उसे आम-रिआयाकी हमदर्दी मिलनी चाहिये।

आमतौर पर लोगोको मालूम ही नहीं हो सकता कि हडताल जायज है या नाजायज सिवाय इसके कि हडतालकी ताईद कोई ऐसे लोग करें, जो गैर जानिबदार यानी निष्पक्ष हों और जिनपर आमलोगोका पूरा विश्वास हो। हड़ताली खुद अपने मामलेमें राय देनेके हकदार नहीं। इसलिये या तो मामला ऐसे पचके हाथमें सिपुर्द करना चाहिये, जो दोनों तरफके लोगोको मंजूर हों, या उसे अदालती फैसलेपर छोडना चाहिये। जब इस तरीकेसे काम किया जाता है, तो आमतौरपर पब्लिकके सामने हड़तालका मामला पेश करनेकी नौबत ही नहीं आती। अलबत्ता कभी-कभी यह जरूर होता है कि मगरूर मालिक पंचके या अदालतके फैसलेको ठुकरा देते हैं, या गुमराह मजदूर अपनी ताकतके बल मालिकसे जबरदस्ती और भी रियायतें पानेके लिये फैसलेको मजूर करनेसे इनकार करते हैं। ऐसी हालतमें मामला आम रिआयाके सामने आता है। जो हडताल माली हालतकी बेहतरीके लिये की जाती है, उसमें सियासी या राजनीतिक मकसदकी मिलावट नहीं होनी चाहिये। ऐसा करनेसे सियासी तरक्की कभी नहीं हो सकती। बल्कि होता यह है कि अकसर हड़तालियोको ही इसका नतीजा भोगना पडता है। चाहे उनकी हडतालका असर आम लोगोंकी जिन्दगी पर पडे या न पडे। सरकारके सामने कुछ दिक्कतें जरूर खडी हो सकती है, लेकन इसकी वजहसे उनकी हुकूमतका काम रुक नहीं सकता। अमीर लोग रुपया खर्च करके अपनी डाकका बन्दोबस्त खुद कर लेंगे, लेकिन असल मुसीबत तो गरीबोको झेलनी पडती है, जिनकी पीढ़ीसे चली आयी एक अहम सहूलियत बन्द हो जाती है। ऐसी हडतालें तो तभी करनी चाहिये,

जब इन्साफ़ करानेके सब जरिये नाकाम साबित हो चुके हों। आज तो सब सूबोंमें लोगोंकी अपनी सरकारें काम कर रही हैं। हड़ताल करनेसे पहले डाकवालोंका यह धर्म था कि वे उनके साथ मशवरा करते। जहाँतक मैं जानता हूँ कि सरदार वल्लभभाई पटेल, श्री बालासाहब खेर और श्री मगलदास पकवासा इस मामलेके बीचमें पड़े हैं। अगर डाकवालोंने उनकी सलाहको ठुकरा दिया है, तो कहना होगा कि उन्होंने यह खतरनाक कदम उठाया है। अगर ये सब ताकतवर यूनियनें अपनी निजकी हुकूमतका और कांग्रेसकी वर्किंग कमेटीके मेम्बरोंका कहना न सुनेंगी, तो इसके मानी होंगे कि वे कांग्रेसको भी नहीं मानतीं। उन्हें ऐसा करनेका हक तभी हो सकता है, जब कांग्रेस उनके स्वार्थको बेचने लगे।

हमदर्दी दिखानेके लिये भी दूसरोंको उस वक्त तक हड़ताल नहीं करनी चाहिए जबतक यह साबित न हो जाय कि हड़तालियोंने सभी कानूनी और जायज जरियोंको आजमा लिया है और उसमें वे नाकाम रहे हैं, या यह साबित न हो जाय कि कांग्रेसने उन्हें धोखा दिया है, या उनके हितकी खबरदारी नहीं रक्खी है, या खुद कांग्रेसने संगठित और जिद्दी मालिकोंसे इन्साफ पानेके लिये हमदर्दीमें हड़ताल करनेकी आवाज न उठाई हो।

आज तो हुकूमतको बेकार बनानेके लिये सारे मुल्कमें हड़तालें करानेकी बात सुनी जाती है। हड़तालके जरिये हुकूमतको बेकार बनानेका यह कदम एक आखिरी सियासी कदम है और यह कदम उठानेका हक सिर्फ कांग्रेसको ही होना चाहिये, दूसरी किन्हीं यूनियनोंको नहीं, फिर वे कितनी ही ताकतवर क्यों न हों। अगर आजादी हासिल करनेके लिये कांग्रेस ही आम लोगोंकी सबसे बड़ी और अहम संस्था है, तो हुकूमतको बेकार बनानेका काम भी उसीके हाथ रहना चाहिये। फिलहाल कांग्रेस तजवीजशुदा विधान-सभाको कामयाब बनानेकी कोशिशमें लगी हुई है। उसके इस काममें बेहद मुश्किलें पेश आनेवाली हैं। ऐसी हड़तालोंसे सिर्फ उसके रास्तेमें बहुत ज्यादा रुकावटें पैदा हो सकती हैं।

ऊपरकी इन बातोंसे जाहिर है कि एक सियासी हड़तालकी अपनी अलग जगह है और उनको माली हड़तालोंके साथ न तो मिलाना चाहिये और न उनका आपसमें वैसा कोई रिश्ता रखना चाहिये। अहिंसक लड़ाईमें सियासी हड़तालकी अपनी एक खास जगह होती है। ऐसी हड़ताल गहरे सोच-विचारके बाद ही की जाती है— जब-तब और ज्यों-त्यों नहीं। ऐसी हड़तालें बिलकुल खुली होनी चाहियें और उनमें गुण्डाशाहीकी कोई गुंजाइश नहीं होनी चाहिये। इसलिये सब तरहके हड़तालियोंको मैं नरमीके साथ यह सुझाना चाहता हूँ कि वे पंचके या अदालतके फैसलेको मंजूर करनेका साफ साफ एलान करें और कांग्रेसकी रहनुमाई हासिल करके उसकी सलाहपर चलें। और, जो लोग हमदर्दी दिखानेके लिये हड़ताल करते हैं, उनसे मैं कहूँगा कि वे तबतक अपनी हड़ताल बन्द रखें जबतक कांग्रेस तजवीजशुदा विधान-सभाके कामको सफल बनानेकी कोशिशमें लगी है, और सूबोंकी सरकारें आम लोगोंके नुमाइन्दोंके हाथमें हैं।

हरिजन-सेवक
११ अगस्त, १९४६

असल बात चूक गये

नीचे लिखे हुए सवाल एक अंग्रेज मिलिटरी अफसरने भेजे हैं। उन्होंने २८ जुलाई, १९४६के 'हरिजन' में मेरा आजादीपर लेख बड़ी दिलचस्पीसे पढ़ा है। यह अफसर एक फौजी इंजीनियर है। अमेरिका और यूरोपमें खूब घूमे हैं और अपनी आंखोंसे जर्मनीमें लड़ाईकी तबाही और बरबादी देख चुके हैं।

स॰—उस आदर्श हुकूमतमें (और बेशक यह हुकूमत आदर्श होगी) आदमी बाहरके हमलोंसे किस तरह बच सकता है? आजकल जब कि मशीनका दौर-दौरा है, अगर हुकूमतके पास नये से नये हथियारोंसे लैस फौज न होगी, तो ऐसे हथियारोंवाली एक फौज हमला करके मुल्कको जीत सकती है और वहाँके रहनेवालोंको अपना गुलाम बना सकती है।

सवाल पूछनेवाले भाई कहते हैं कि उन्होंने मेरे लेखको बड़े ध्यानसे बार-बार पढ़ा है और फौजी आदमी होनेके बावजूद उसे पसन्द भी किया है। मगर साफ पता चलता है कि मेरे लेखमें जो असल बात है, उसे वे चूक गये हैं। वह यह है कि एक व्यक्तिकी तरह एक कौम चाहे वह कितनी ही छोटी क्यों न हो, और कौम तो क्या, एक जमात भी हथियारोंसे लैस सारी दुनियाके खिलाफ अपनी इज्जतकी हिफाजत कर सकती है। लेकिन शर्त यह है कि उसमें सब एक मतके हों और उनमें इस हिफाजतके लिये पक्का इरादा हो। यही लोगोंकी शक्तिकी खूबसूरती है जिसकी मिसाल नहीं मिल सकती। यही अहिंसक बचाव है, जो किसी मंजिलपर भी न हार जानता है, न हार मानता है। इसलिये जिस कौम या गिरोहने हमेशाके लिये अहिंसाका रास्ता अपना लिया हो, वह अणुगोलेसे भी गुलाम नहीं रखा जा सकता।

हरिजन-सेवक
१८ अगस्त, १९४६

❀

हिंसा क्या कर सकती है?

अगर अखबारोंकी रिपोर्टोंपर भरोसा किया जाय, तो यह मानना पड़ेगा कि सिन्धके जिम्मेदार मन्त्री और करीब-करीब सारे हिन्दुस्तानके उतने ही जिम्मेवार लीगी खुले आम साफ लफ्जोंमें हिंसाका प्रचार कर रहे हैं। धोखेबाजीके बजाय साफ बात कहना अपने आपमें एक खूबी है। लेकिन जब वह बेहयाईकी शकल ले लेती है, तो वह बुराई बन जाती है, जिससे बचना चाहिये, फिर भले वह एक लीगीमें हो या किसीमें। एक कहावत है—'ऐसा हर एक मुसलमान गद्दार है, जो लीगमें शरीक नहीं है।' दूसरा कहता है: 'हिन्दू काफिर है, उसे काफिरकी सजा मिलनी चाहिये।'

मुस्लिम लीगका सीधा कदम क्या है ? और वह कैसे उठाया जायगा उसे कलकत्ताने प्रत्यक्ष कर दिखाया है।

इससे फायदा किसे हुआ ? आम मुसलमानो या अमनपसन्द इस्लामको माननेवालोको तो सचमुच इससे फायदा नहीं हुआ। इस्लामके मानी ही जब्त (संयम) और अमन है। एक दूसरेको सलाम करते वक्त 'अस्सलाम आलेकुम' कहा जाता है, उसका भी मतलब यही होता है 'खुदा आपको अमन और सलामती बख्शे।'

जिन्दगीमें हिंसा (तशद्दुद)की जगह हो सकती है, लेकिन उस हिंसाकी नही, जो हमने कलकत्तामें देखी है। अखबारोंकी रिपोर्टोको सच मानकर ही यह बात कही जा रही है। बिना सोचे विचारे की जानेवाली हिंसाके जरिये किसी भी ढंगका पाकिस्तान हासिल नहीं किया जा सकता। जब मैं बिना सोचे विचारे की जाने वाली हिंसाकी बात लिखता हूँ तो कुदरती तौरपर यह मान लेता हूँ कि समझ-बूझकर भी हिंसा की जा सकती है, फिर वह किसी भी शक्लमें क्यो न हो। लेकिन कलकत्ताने जो कर दिखाया वह समझ-बूझकर की जानेवाली हिंसाकी मिसाल नहीं है।

बिना सोचे विचारे की जानेवाली हिंसा हमारे मुल्कमें ब्रिटिश या दूसरी विदेशी हुकूमतकी जिन्दगीको बढानेमें मदद करती है। मेरा विश्वास है कि कैबिनेट मिशनने जिस स्टेट पेपरका एलान किया है, उसके बनानेवाले यह चाहते है कि हिन्दुस्तानकी हुकूमतकी बागडोर शान्तिसे हिन्दुस्तानके नुमाइन्दोके हाथ सौंप दी जाय। लेकिन अगर हमें ब्रिटिश संगीनो और मशीनगनोंके इस्तेमालकी जरूरत महसूस होती है, तो अंग्रेज यहाँसे जानेवाले नहीं। और अगर वे चले भी गये, तो उनकी जगह कोई दूसरी विदेशी हुकूमत ले लेगी। अगर हर वक्त, जब-जब ब्रिटिश संगीनोंका इस्तेमाल किया जाता है, हम यही दलील पेश करते रहे कि विरोधी पक्षके भड़कानेवाले जासूस ही जानबूझकर ऐसे दगे कराते है, तो हम भारी खतरा उठायेंगे। बेशक, कभी ऐसा भी होता है। लेकिन हमेशा यह दलील काम नहीं देगी।

पिछले कुछ वक्तसे कलकत्ता काफी बदनाम रहा है। पिछले कुछ महीनोसे उसने कई खूंखार प्रदर्शन देखे है। अगर इस बदनामीको और थोड़े वक्त तक सहारा मिला तो कलकत्ता महलोंका शहर न रह जायगा—वह भूतोका शहर बन जायगा।

कितना अच्छा हो कि कलकत्तेकी हिंसा बाँझ साबित हो और उसे सारे मुल्कमें फैलानेका सकेत न बने। बेशक यह मुस्लिम लीगके लीडरोपर ही मुनहसिर है; फिर भी दूसरे नेता अपनी जिम्मेदारीसे बरी न होंगे। वे बदला ले सकते हैं। लेकिन बदलेसे बचना आसान और सीधी बात है बशर्ते इसकी सच्ची चाह हो। बदला लेना बडी पेचीदा चीज है। ईंटका जवाब ईंटसे या ईंटका जवाब पत्थरसे भी दिया जा सकता है।

हरिजन-सेवक
२५ अगस्त, १९४६

जहर का उतार

कलकत्तेमें हाल ही में जो शर्मनाक और अफसोसनाक वारदातें हो गयीं, उनका हूबहू बयान देनेके बाद एक भाई लिखते हैं :—

"ऐसे मौकोपर हमारा फर्ज क्या होना चाहिये ? ऐसे वक्त कांग्रेस तो आम जनताको कोई साफ हिदायतें नही देती। दूर बैठकर अहिंसाकी नसीहत देनेसे कोई फायदा नही होता। अगर इस बार कलकत्तेमें अहिंसात्मक विरोध किया जाता, तो उसका नतीजा यह होता कि एक-एक हिन्दू मारा जाता और हिन्दुओकी तमाम जायदाद बरबाद हो जाती।"

कलकत्तेकी वारदातोपर कांग्रेसकी वर्किंग कमेटी जिस निश्चयपर पहुँची, जो अखबारोमें छप चुका है, उसके आखिरी हिस्सेमें कमेटीने साफ लफ्जोमें राह दिखायी है। कमेटीने कहा है कि "आपसकी मारकाट घसकी हिंसासे बन्द नही हो सकती। उसका इलाज तो बाहमी समझौता, दोस्ताना बातचीत, और अगर जरूरत हो तो सालसी (पच) फैसलेसे ही हो सकता है।" इस साफ, सीधी, और काबिल अमल बातको माननेके लिये अहिंसामें विश्वासकी जरूरत नही। बात यह है कि अगर कलकत्तेके तमाम हिन्दू जानबूझ कर हिम्मतके साथ, बिना बदला लिये मर जाते, तो वे न सिर्फ हिन्दू धर्मको बल्कि समूचे हिन्दुस्तानको बचा लेते, और उससे हिन्दुस्तानमें इस्लाम भी शुद्ध या पाक बन जाता।

लेकिन असलमें हुआ क्या ? हमारी आपसकी जंगली मार-काटको बन्द करनेके लिये अंग्रेजी फौज़को बीचमें पड़ना पड़ा। उसकी इस दस्तन्दाजीसे न हिन्दुओको कोई फायदा पहुँचा, न मुसलमानोको। फर्ज कीजिये कि कलकत्तेका यह जहर सारे देशमें फैल जाय और ब्रिटिश संगीनें और बदूकें एक दूसरेपर छुरेबाजी करनेसे रोकें, तो इसका मतलब क्या होगा ? यही कि अभी काफी अरसे तक हिन्दुस्तानको ब्रिटेनकी या उसके जैसी सल्तनतकी गुलामी करनी पड़ेगी। और यह गुलामी उस वक्त तक बनी रहेगी, जबतक हिन्दू मुसलमान दोनोंके होश ठिकाने न आ जायं। ऐसा तभी होगा जब तीसरी ताकतके बिना वे आपसमें लड़-भिड़ कर लस्त-पस्त हो जायँगे, और बाहमी समझौता कर लेंगे। या जब दोमेंसे कोई एक दल बड़ीसे बड़ी जोखिम उठाकर भी हिंसा छोड अहिंसाको अपना लेगा। आज हालत यह है कि आम रिआयाको आजकलकी लडाईके नयेसे नये हथियार चलानेकी न तो कोई तालीम मिली है, और न ऐसे कोई हथियार ही उसके पास हैं। चुनांचे आपसकी मारकाटमें किसीको कोई कामयाबी तो मिल ही नही सकती। अहिंसाके लिये किसी तरहकी बाहरी तालीम जरूरी नहीं होती। उसके लिये एक ही चीज की जरूरत है—हमें अपने दिलमें यह तय कर लेना चाहिये कि हम बदला लेनेकी गरजसे किसीको नहीं मारेंगे और बिना बदला लिये हिम्मतके साथ मौतका सामना करेंगे।

अहिंसापर मेरा कोई यह 'सरमन', प्रवचन या उपदेश नही बल्कि एक सीधी सादी समझकी बात है। अगर हमें इस कानूनमें अटूट श्रद्धा हो, बइन्तहा एतकाद या विश्वास हो, तो बुरीसे बुरी खिजलाहटकी हालतमें भी हम सब्रसे काम लेंगे, चुपचाप सब सहेंगे। मगर बदला लेनेका ख्याल तक मनमें न लावेंगे। इसे मैंने बहादुरोंकी अहिंसा कहा है।

अफसोस इस बातका है कि आजतक किसी बड़े पैमानेपर इस तरहकी बहादुराना अहिंसा हममें पायी नही जाती। बाज लोग तो यहाँ तक कहते है कि ऐसी अहिंसाका पालन तो एक छोटा गिरोह भी नही कर सकता, फिर करोड़ोकी तो बात ही क्या? वे कहते है कि इस तरहकी अहिंसा तो विरले लोग ही दिखा सकते है। अगर अहिंसा ऐसे कुछ ही लोगोके लिये महफूज रहे तो कहना होगा कि वह मानवजातिकी इन्सानी दुनियाके किसी कामकी नहीं।

जो कुछ भी क्यों न हो, इतनी बात साफ है कि अगर आम तौरपर लोग बहादुरोकी अहिंसा दिखानेके लिये तैयार नही है, तो उन्हें अपने बचावके लिये हिंसाके इस्तेमालकी तैयारी रखनी होगी। इस हिंसामें किसी तरहकी जालसाजी या धोखेबाजी न बरती जानी चाहिये। इसमें सिर्फ अपने बचावकी बात ही सामने रहनी चाहिये। इसमें किसी तरहकी नामर्दगी या जगलीपन नही होना चाहिये। इसलिये इसमें कोई पोशीदगी या लुकाछिपी न होगी। पीछेसे आकर पीठमें छुरा भोकने या गिरफ्तारीसे बचनेके लिये छिपते फिरनेकी इसमें कोई गुंजाइश नहीं रहेगी। मैं जानता हूँ कि हम लोग निहत्थे हैं और हथियार चलाना नहीं जानते। यह अच्छी बात है या नहीं, इसपर मुखतलिफ रायें हो सकती है। लेकिन इससे तो कोई इन्कार नहीं कर सकता कि अपने बचावके लिये इन्सानको हथियार चलानेकी तालीम लेना कोई जरूरी नहीं। इसके लिये तो मजबूत हाथो और मजबूत दिलकी ही जरूरत होती है।

जाहिर है कि दूसरेको चोट पहुँचानेमें हिंसा है, लेकिन दिलमें दूसरेको चोट पहुँचानेका खयाल रखते हुए भी डरपोकपनकी वजहसे अपनी या अपने पड़ोसीकी हिफाजतके लिये तैयार तक न होना तो शायद और भी बुरी हिंसा है।

ऐसी हालतमें नेता लोग क्या करें? नये मत्री या वजीर क्या करें? उन्हे हमेशा कौमी एकता पैदा करनेकी कोशिश करनी चाहिये—किसीसे डरकर नहीं, बल्कि इस खयालसे कि वह जरूरी है, बुनियादी चीज है। मैं मुसलमानोको या गैर-हिन्दुओको अपना सगा भाई समझता हूँ। यह मैं किसीको खुश करनेके लिये नही समझता, बल्कि इसलिये समझता हूँ कि वे भी उसी भारतमाताके–मादरे हिन्दके—बच्चे है। चूंकि वे मुझसे नफरत करते है या मुझे अपना भाई नहीं समझते, इसलिये यह नहीं कहा जा सकता कि वे मेरे भाई नहीं है। बावजूद उनकी नाराजगीके मुझे अपनी मुहब्बतसे उन्हें जीतना ही है। नये मन्त्रियोको यह फैसला कर लेना चाहिये कि वे काली या गोरी किसी भी ब्रिटिश फौजकी मदद नही लेंगे और न ब्रिटिशोकी तैयार की हुई पुलिसका ही इस्तेमाल करेंगे।

न फौज, न पुलिस, कोई भी हमारा दुश्मन नहीं। लेकिन अबतक फौज और पुलिसका इस्तेमाल लोगो पर गुलामीका जुआ लादनेमें हुआ है उनकी मदद करनेके लिये नहीं। इसलिये अब तो फौज और पुलिसका इस्तेमाल तामीरी कामोके लिये किया जाना चाहिये, क्योंकि यह काम उनके बूतेका है। फौजको तो खास तौरपर इसकी तालीम मिली होती है। फौजवाले बातकी बातमें तम्बुओंका शहर खडा कर सकते है। वे जानते है कि पानी किस तरह मुहय्या किया जा सकता है, उसे कैसे साफ रक्खा जा सकता है, और सफाईका किस तरह पूरा पक्का इन्तजाम किया जा सकता है। इसमें शक नहीं कि वे मारना और मारते-मारते मर जाना भी जानते हैं। उनके कामके इस पहलूसे जनता अच्छी तरह वाकिफ है। लेकिन किसी भी हालतमें यह उनका सबसे बडा और सगीन काम नहीं। हमें तो उनके रचनात्मक या तामीरी कामकी ही कदर, तारीफ और नकल करनी चाहिये। मार-काटका हैवानियत भरा काम जो वे करते हैं, वह इन्सानियतके खिलाफ है, मगर दूसरी यानी तामीरी काम खासतौर पर इन्सानियतका काम है और वह साफ और पाक काम है। हमें चाहिये कि हम अपनी कोशिश भर फौजको इन्सान बनायें और उसके अच्छे कामोकी नकल करें। यह कोशिश करने लायक है, लेकिन ऐसी कोशिश वे लोग ही कर सकते है, जो फौजियोके आस-पासकी शान-शौकत और तड़क-भडकसे चौंधिया नहीं जाते, और उसके दबदबेमें नहीं आते। यह तभी हो सकेगा जब हम सब तन और मनसे बदलेका ख्याल छोडकर मौतका सामना करनेको तैयार हो जायेंगे।

हरिजन-सेवक
८ सितम्बर, १९४६

❀

कांग्रेसी मंत्री और अहिंसा

श्री शकररावदेव लिखते हैं :

"लोगोकी समझमें यह बात नही आ रही है कि जो लोग अपनेको सत्याग्रही कह रह थे वे वजीर बनते ही फौज और पुलिसका इस्तेमाल क्यो करते है ? लोग मानते हैं कि धर्म या व्यवहारके रूपमें मानी हुई- अहिसाका यह भग है। और हमारे ऊपरी ख्यालसे यह सच भी मालूम होता है। काग्रेसी मत्रियोके विचारोमें और वर्तावमें जो विरोध दिखाई देता है, उसका समर्थन करना आसान न होनेके कारण हमारे कार्यकर्त्ता उलझनमें पड जाते हैं, और इस विसगतिसे—बेमेल चीजसे—लाभ उठानेवाले कांग्रेसी या काग्रेसी प्रचारकोका मुकाबला करना उनके लिये मुश्किल हो जाता है।

"आम तौर पर काग्रेसियोकी अहिसा कमजोरोकी अहिसा ही रही है। हिन्दुस्तामकी मौजूदा हालतमें यही हो सकता था, इसे तो आप भी जानते है। आप कहते हैं कि

ताकतवरकी अहिंसामें तेज होता है, फिर भी कमजोरको तगडा बनानेके लिये आपने अहिंसाका इस्तेमाल करना मजूर किया है। यही नही, बल्कि आप उसके नेता भी बने। इस तरह दुर्बल या कमजोर होते हुए भी आज उसके हाथमें सत्ता आई है। यह असभव है कि जो लोग अग्रेजी हुकूमतके खिलाफ अहिंसासे लडे, वे ही अब हाथमें ताकत लेकर मुल्कमें दगा-फसादके वक्त भी अहिंसाका इस्तेमाल करके उसे मिटानेको तैयार हो। अगर वे ऐसी कोशिश भी करें, तो न वे उसमे कामयाब होगे और न इस काममें उन्हें आम-लोगोकी हमदर्दी ही मिलेगी।

"मैंने आपसे पूछा था कि क्या सत्याग्रही अपने हाथमें ताकत या हुकूमतकी बाग-डोर ले सकता है? अगर ले सकता है, तो उस ताकत या हुकूमतके जरिये वह अहिंसा कैसे आगे बढ सकता है? मेहरबानी करके आप इसपर थोडी रोशनी डालिये। जिसने अहिंसाको धर्म माना है, वह कभी हुकूमतमें शामिल होना पसन्द न करेगा। और, मेरी राय है, उसे ऐसा करना भी न चाहिये। लेकिन मैं मानता हूँ कि जिन्होंने अहिंसाको सिर्फ नीति या व्यवहारकी दृष्टिसे अपनाया है, उनके लिये पद या ओहदा लेनेमें कोई दिक्कत न होनी चाहिये। बहुतेरे काग्रेसियोने ओहदे सभाले है, और इसके लिये आपने उन्हें इजाजत दी है। ऐसी हालतमें सवाल यह उठता है कि उन मन्त्रियो या वजीरोसे जो अहिंसा मानते है, आपका यह उम्मीद रखना कि कम-से-कम वे खुद तो दगा-फसाद के मौकोपर अहिंसाका इस्तेमाल करें, कहाँ तक मुनासिब है? अहिंसाके जरिये ताकत या हुकूमत हासिल कर लेनेके बाद उसका इस्तेमाल किस तरह किया जाय, जिससे हुकूमत ही गैर-जरूरी हो जाय? अगर ऐसा कोई रास्ता आप न सुझायेंगे, तो हमारे अपने मकसद तक पहुँचनेके लिये यह एक अधूरा साधन माना जायगा।"

मेरे खयालसे इसका जवाब आसान है। कुछ अरसेसे मैंने यह कहना शुरू कर दिया है कि कांग्रेसके विधान या कानूनसे 'सत्य और अहिंसा' को हटा देना चाहिये अगर हम यह मानकर चलें कि काग्रेसके विधानसे ये दोनो हटें या न हटें, फिर भी इससे हट ही गये है, तो स्वतत्र रूपसे हम समझेंगे कि कोई काम सही है या नही।

मैं मानता हूँ कि जब तक लौकिक राज-कारबारमें फौज या पुलिसका इस्तेमाल होगा तबतक हम अग्रेजी सल्तनत या दूसरी किसी परदेशी सल्तनतके मातहत ही रहेंगे—फिर चाहे देशका कारबार काग्रेसवालोके हाथमें हो या दूसरो के। फर्ज कीजिये कि काग्रेसी वजारत या मत्रिमडलोको अहिंसामें विश्वास नहीं है। यह भी मान लीजिये कि लोग यानी हिन्दू, मुसलमान और दूसरे हिन्दुस्तानी फौजका और पुलिसका सहारा चाहते है। अगर ऐसा है, तो वह उन्हें मिलता रहेगा। जो काग्रेसी अहिंसामें पूरा विश्वास रखते है, वे फौज या पुलिसकी मदद लेनेको अच्छा न समझेंगे। इसलिये वे इस्तीफा दे सकते है। इसके मानी यह हुए कि जब तक लोगोंमें आपसमें फैसला करने की ताकत नहीं आती तब तक हुल्लड़बाजी होती रहेगी और हममें अहिंसाका सच्चा बल पैदा हो न होगा।

अब सवाल यह रहा कि ऐसा अहिंसक बल किस तरह पैदा हो सकता है?

इस सवालका जवाब अहमदावादसे आये हुये एक तारके जवाबमें ता० ४ अगस्तको मैं दे चुका हूँ। जब तक हममें बहादुरी और मुहब्बतके साथ मरनेकी ताकत पैदा नहीं होती, तबतक हममें वीरोंकी अहिंसाका बल नहीं आ सकता।

अब सवाल यह है कि आदर्श समाजमें कोई राजसत्ता या एक बिलकुल अराजक समाज बनेगा? मेरे ख्यालमें ऐसा सवाल पूछनेसे कुछ फायदा नहीं हो सकता। अगर हम ऐसे समाजके लिये मेहनत करते रहें, तो वह किसी हद तक बनता रहेगा। और उस हद तक लोगोंको उससे फायदा पहुँचेगा। युक्लिडने कहा है कि लाइन वही हो सकती है, जिसमें चौड़ाई न हो, लेकिन ऐसी लाइन या लकीर न तो आज तक कोई बना पाया न बना पायेगा। फिर भी ऐसी लाइनको ख्यालमें रखनेसे ही प्रगति या तरक्की हो सकती है। और हर एक आदर्शके बारेमें यही सच है।

हां, इतना याद रखना चाहिये कि आज तक दुनियामें कहीं भी अराजक समाज मौजूद नहीं है। अगर कभी कहीं बन सकता है तो उसका आरम्भ हिन्दुस्तानमें ही हो सकता है। क्योंकि हिन्दुस्तानमें ऐसा समाज बनानेकी कोशिश की गई है। आजतक हम आखिरी दरजेकी बहादुरी नहीं दिखा सके। मगर उसे दिखानेका एक ही रास्ता है, और वह यह है कि जो लोग उसमें मानते हैं, वे उसे दिखावें।

हरिजन-सेवक
१५ सितम्बर, १९४६

क्या यह बुजदिली नहीं?

स०—आपकी रायमें कायरता या बुजदिली अहिंसा नहीं, बल्कि अन्यायका विरोध करना अहिंसा है। आप मान चुके हैं कि बेगुनाह आदमियोंको—जैसे कि सविनय-आज्ञा-भंग करनेवाले होते हैं—गिरफ्तार करना और जेल भेजना अन्याय है। लेकिन आपने खुशीसे गिरफ्तार होजाना और जेल जाना मंजूर किया है। क्या यह बेमेल और कायरतापूर्ण नहीं है?

ज०—आपके सवालसे साफ मालूम होता है कि आप नहीं जानते कि अहिंसा किस तरह काम करती है। अन्यायी कानून खुद एक किस्मकी हिंसा है। उसे तोड़नेवालेको गिरफ्तार करना उससे भी बड़ी हिंसा है। अहिंसाका कानून कहता है कि हिंसाका मुकाबला हिंसासे नहीं, बल्कि अहिंसासे करना चाहिये। हर एक कानूनको तोड़नेकी सजा मुकर्रर है। मेरे किसी कानूनको अन्यायपूर्ण कहनेसे ही तो वह वैसा नहीं बन जाता। फिर भी मेरी रायमें वह अन्याय तो है ही। सरकारको हक है कि जब तक वह कानून उसकी किताबमें मौजूद है, तब तक वह उसकी तामील करावे। और मेरा धर्म यह है कि मैं

उसका मुकाबला अहिंसाके जरिये करूँ। ऐसा करनेके लिये मैं उस कानूनको तोड़ूंगा और शान्तिसे गिरफ्तार होकर जेल जाऊँगा। इसे मैं उस हद तक बहादुरीका काम समझता हूं, जिस हद तक कि बहादुरी इसके लिये जरूरी है। अगर यह भी मान लिया जाय कि एक मामूली कैदी-का-सा सलूक मेरे साथ हो तो भी मेरी दिमागी हालतमें वह कोई फर्क नही पैदा कर सकता। तो भी यहाँ यह सवाल बेमौजूं है कि आज मेरे जैसे आदमीके लिये जेल जाना कोई मुश्किल और तकलीफदेह नही रहा है। इस तरह गिरफ्तारीकी मुखालिफत न करना अहिंसाकी एक लाजिमी शर्त हो जाती है, कायरताकी निशानी हरगिज नहीं। इसके बर-खिलाफ मुखालिफत करना, यानी गिरफ्तार होनेसे इनकार करना, सचमुचकी शेखीबाजी और बेसमझ हिंसा कही जायगी। इसे बुजदिलका डींग मारना तक कहा जा सकता है।

हरिजन-सेवक
२२ सितम्बर, १९४६

❀

सवाल-जवाब

स०—दुनियामें जिधर देखो उधर मारा-मारी, दूसरोके हक छीनना, और जिसकी लाठी उसकी भैंसवाली मसल सिद्ध करनेकी बात चल रही है। और यह भी इगलैंड और अमेरिका जैसे देशोमें हो रहा है, जहाँ लोकमतको ही सबसे ऊंची जगह दी गई है। ऐसी हालतमें आपकी अहिंसा क्या कर सकती है? इसके बारेमें आपने विचार प्रकट किया है?

ज०—जिसकी लाठी उसकी भैंसवाली कहावत चल रही है यह सच है। मगर इगलैंड और अमेरिका में लोकमतको सबसे ऊँची जगह दी गई है, यह मानना मेरी समझ-में भूल है। लोगोंकी आवाज यानी परमेश्वरकी आवाज। इसीलिये हम लोग कहते है कि पच यानी परमेश्वर। मगर जहाँ पंच ही दूसरोको खा जायँ, वहाँ यह कैसे कहा जा सकता है कि पंचोकी आवाज परमेश्वरकी आवाज है। अमेरिका और इगलैंड रगदार लोगोंकी मेहनत पर निर्भर है। वे लोगोको चूसते है, यह तो हम देखते ही है। इनकी मिसाल देनेकी जरूरत नहीं। दूसरो पर जीनेवालोसें भी सहयोग हो सकता है। इसलिये उनकी आवाज पंचकी आवाज नहीं कही जा सकती। जहाँ पंचकी आवाज परमेश्वरकी आवाजके समान हो वहाँ पंच दूसरोका खून चूसकर जीनेसे इनकार करेगा। उसकी तराजूके एक पलड़ेमें सत्य और दूसरेमें अहिंसा होगी। इसलिये वह तराजू हमेशा पूरा तौलेगा। इसमें मेरा जवाब आ जाता है। मेरी अहिंसा लूली नहीं। दुर्बल भी नहीं। वह सबसे बढ़ी-चढी चीज है। क्योंकि जहाँ अहिंसा है, वहाँ सच है। और सच है तो परमेश्वर है। परमेश्वर कैसे काम करता है, सो मैं नहीं जानता। इतना जानता हूँ कि वह

सब जगह है। और जहां वह है, वहां खैर ही है। यानी वहां सबके लिये एक सा न्याय है ही। दुनियाके जिस हिस्सेमें सत्य और अहिंसाका सिक्का चलेगा, वहीं परम शान्ति और परम सुख होगा। अगर शान्ति और सुख कहीं नहीं है, तो हमें समझना चाहिये कि सत्य और अहिंसा भी आज लुप्त है। मगर वे बिलकुल गायब तो हो ही नहीं सकते। इसलिये जिसे विश्वास है, वह विश्वासरूपी नावमें बैठकर तरेगा और आखिर सबको तारेगा।

हरिजन-सेवक
२९ सितम्बर, १९४६

सच और अहिंसाको न छोड़ें

एक सेवाभावी भाई अपना नाम देकर कहते हैं:—

"आपका हफ्तेवार अखबार 'हरिजन-बन्धु' मैं नियमित मँगाता हूँ और पढता हूँ। १५ सितम्बरके 'हरिजन-बन्धु'के ३१७वें पन्नेपर श्री शंकरराव देवको दिये गये जवाबमें आपने लिखा है—'मैंने कुछ समयसे कहना शुरू कर दिया है कि कांग्रेसके विधान (निजाम)में से सच और अहिंसाको निकाल देना चाहिये।'

"आजकी हालातमें ऐसा होगा, तो कांग्रेसपर से लोगोंका विश्वास उठ जायगा। लोग ऐसा समझेंगे कि जबतक कांग्रेसके हाथमें ताकत नही आई थी, वह लोगोंको सच और अहिंसापर चलनेको समझाती थी। आज ताकत हाथमें आते ही अपने विधानमेंसे सच और अहिंसाको निकालनेकी सोच रही है।

"शायद लोग यह भी समझें कि मुस्लिम लीगने 'सीधे सामने' का जो ठहराव पास किया है, उसका सामना करनेके लिये आप इन दो लफ्जोंको निकाल देनेकी बात कहते हैं।

"अगर कांग्रेसके विधानमें, ये दो शब्द, जिनके जरिये कांग्रेस इतना आगे बढी है, और आज ऊंची चोटी पर बैठी है, निकल जायेंगे, तो कांग्रेस फौरन नीचे गिर जायगी। उसकी आबरू हलकी पड जायगी। आप ही कहते थे कि सच और अहिंसा बिना आपके एक कदम भी आगे नही चल सकते।

"किस कारण लोग कांग्रेसवालोंको विश्वासके लायक, दयालु, सेवाभावी, हिम्मत-वाले वगैरह वगैरह मानते आये हैं? सच और अहिंसाके ही कारण। सच और अहिंसा उसकी जड है। जडके नाश होनेसे सारा का सारा दरख्त अपने आप सूख जायगा। आपको तो यह कोशिश करनी चाहिये कि वह जड ज्यादा से ज्यादा गहरी हो।"

अहिंसाका दावा करनेवाला मैं अच्छा काम करनेके लिये भी किसीको मजबूर कैसे

कर सकता हूँ ? एक महान् अंग्रेजने कहा है कि आजाद रहकर भूल करनी भली, मगर मजबूर होकर अच्छा करना बुरा है। मैं इस बातको मानता हूँ। कारण साफ है। जो दूसरोंके दबावसे अच्छा रहता है उसका दिल अच्छा नही रहता है, उलटा ज्यादा बिगड जाता है। और जब दबाव हट जाता है तो अंदर रहा बिगाड़ ऊपर आ जाता है।

और किसी एक व्यक्ति (शख्स) के पास तो किसीपर दबाव डालनेकी ताकत होनी ही न चाहिये। कांग्रेसकी जबरदस्ती किसीसे सच या अहिंसापर अमल नहीं करवा सकती। ऐसी चीज खुशीका सौदा ही होना चाहिये।

सच और अहिंसाको कांग्रेसके विधानमेंसे निकालनेकी बात पेश किये मुझे एक साल-से ज्यादा अरसा हो गया है। लीगकी तरफसे हिंसा अहिंसाका ख्याल किये बिना सीधा सामना करनेकी बात आई, उससे पहले ही मेरी यह सूचना निकल चुकी थी। मेरी सलाहका लीगके ठहरावके साथ कोई ताल्लुक नहीं। तो भी जिन्हे मेरी बातमें दाँव-पेंच-की बदबू आया ही करे, उनके लिये मेरे पास कोई इलाज नहीं है।

मेरी सलाहके पीछे जोरदार कारण है। सच और अहिंसाका बहाना करके कांग्रेसका झूठ और हिंसासे बचना, कोई मामूली आधार नही। अगर कांग्रेसी दिखावा न करे, और सचमुच सच और अहिंसाके इन दो खभोंको पकड़े रहे, तो इससे अच्छा और क्या हो सकता है ?

मैं तो कभी यह इच्छा या ख्वाहिश कर ही नहीं सकता कि ताकत हाथमें आनेपर कांग्रेसी सच और अहिंसाकी उस सीढीको छोड़ दे, जिसके कि सहारे वे इतने आगे बढ़े हैं। मैं मानता हूँ कि कांग्रेस अगर ताकत पाकर इस सीढ़ीको छोड़ेगी, तो उसका तेज (नूर) बिलकुल मन्द पड़ जायगा।

एक और भूलसे सबको बचना चाहिये। जो विधान (निज़ाम) में नहीं लिखा उसपर किसीको अमल नहीं करना चाहिये, ऐसी बात तो है ही नहीं। मैंने तो आशा रखी ही है, कि सच और अहिंसाके विधानमें से निकल जाने पर भी सब या ज्यादातर कांग्रेसी अपनी इच्छासे उनपर अमल करेंगे और करते करते मरेंगे भी।

एक भूल, जिसका जिक्र इन सेवाभावी भाईने नहीं किया, सुधार दूं। कांग्रेसके विधान में पुरअमन और योग्य (लेजिटिमेट) लफ्ज हैं उन्हें अहिंसक (नानवायोलण्ट) और सच्चा (ट्रूथफुल) माननेका मुझे हक नहीं। कांग्रेसके पास धर्म नहीं, कर्म ही है। अंग्रेजीमें उसे 'पालिसी' कहेंगे। मेरे हकका तो सवाल ही नही। मगर जबतक कर्म चलता है, तबतक वह धर्म हो जाता है, यानी उसपर अमल करनेका बन्धन होता है। अगर शान्ति या अमनका मतलब अशान्ति या बेअमनी भी हो सकता है, और योग्यका मतलब झूठ भी हो सकता हो, तो मेरी सलाहकी कोई जगह नहीं रह जाती।

हरिजन-सेवक
२१ सितम्बर, १९४६

हिंसाके तरीके

सीधी लकीर एक ही होती है। अहिंसा एक सीधी लकीर है। जो लकीरें सीधी नहीं, वे कई तरहकी होती हैं। जिस बच्चेने कलम पकड़ना सीख लिया है, वह और कितनी ही तरहकी लकीर चाहे खींच ले, मगर एक सीधी लकीर नहीं खींच सकता। धोखेमें अगर एक आध बार बन जाय तो दूसरी बात है। कई लोग पूछते हैं कि मैंने जिस हिंसाकी इजाजत दी है, क्या उसमें वे सब बात आ सकती हैं, जिनका वे अपने खतमें जिक्र करते हैं। यह अजीब बात है कि सभी खत अंग्रेजीमें लिखे हुए हैं। इन लिखनेवालोंको मेरा लेख दुबारा पढ़ जाना चाहिये। तब उन्हें मालूम हो जायगा कि क्यों मैं इन सवालोंका जवाब नहीं दे सकता। शायद मैं इसलिये भी जवाब देने लायक नहीं हूँ कि मैंने कभी हिंसा की ही नहीं। असलमें तो मैंने कभी हिंसाकी इजाजत भी नहीं दी। मैंने बहादुरी और डरपोकपनके दो दरजोंका ही बयान किया है। कानूनी चीज तो अहिंसा ही है। यहाँ सुझाये गये अर्थमें हिंसा कभी जायज नहीं हो सकती—यानी इन्सानके बनाये कानूनकी रूसे नहीं, बल्कि इन्सानके लिये कुदरतके बनाये कानूनकी रूसे हिंसा कभी कानूनी नहीं हो सकती। अपने या किसी निरअपराधके बचावके लिये जो हिंसा की जाती है, वह भी वैध या कानूनी तो नहीं होती, फिर भी वह बहादुरीका काम जरूर है जो डरकर शरण जानेसे कहीं अच्छा है। डरपोकपन किसीको शोभा नहीं देता—न आदमीको, न औरतको। हिंसामें भी बहादुरीकी कई किस्में और कई दरजे होते हैं। हर एक आदमीको इसका फैसला खुद करना चाहिये। दूसरा कोई न तो उसे कर सकता है, न उसे करनेका हक है।

हरिजन-सेवक
२७ अक्टूबर, १९४६

❀

श्रद्धाको चुनौती

(अमेरिकाकी 'एसोशिएटेड प्रेस' नामकी खबर भेजनेवाली संस्थाके संवाददाताने ता० ६–११–'४६के दिन जो सवाल पूछे थे, और गांधीजीने जो जवाब दिये थे, वे नीचे दिये जाते हैं:—)

सवाल १—सन् १९४२ की अशान्ति, आजादहिन्द फौजकी कार्रवाई और उससे ताल्लुक रखनेवाली अशान्ति, हिन्दुस्तानके शाही नौकादलके खलासियोंकी बगावत, कलकत्ता और बंबईके दंगे, कश्मीर जैसी देशी रियासतों में होनेवाली हलचलें, और हालके कौमी

दंगे—हिन्दुस्तानके इतिहासमें अभी-अभी जो घटनायें घट गई, उनसे पता चलता है कि हिन्दुस्तानके समाजमें अहिंसाने अभी अपनी जड नही जमाई है। तो क्या इन सब बातोको देखते हुये नही कहा जा सकता कि आपका अहिंसा-धर्म नाकाम साबित हुआ है ?

ज०—ऐसे किसी आम नतीजे पर पहुँचना बहुत खतरनाक है। आपने जिन-जिनका जिक्र किया है, वे सब जरूर ही हिंसाके काम कहे जा सकते हैं, लेकिन उससे हरगिज नहीं कहा जा सकता कि अहिंसा धर्म नाकाम साबित हुआ है। ज्यादासे ज्यादा आप यह कह सकते है कि आम लोगोकी मजमूई जहनियतको बदलनेके लिये काम करनेके जिस तरीकेकी जरूरत है, वह तरीका मुझे अभी नहीं मिला है, या उसे मैं अभीतक खोज नहीं सका हूँ। लेकिन मेरा दावा यह है कि हिन्दुस्तानके सात लाख गावोंमें रहनेवाले करोड़ो लोग उस हिंसामें शरीक नहीं हुए है, जिसका जिक्र आपने किया है। हिन्दुस्तानी समाजके जीवनमें अहिंसाकी भावनाने जड जमाई है या नहीं, यह सवाल अभी खड़ा ही है, और इसका ठीक-ठीक जवाब तो मेरी मौतके बाद ही दिया जा सकता है।

स०—२—अपनी प्रकृतिमें बहादुरोंकी अहिंसाको सिद्ध करनेके लिये आदमी अपने रोज-रोजके जीवनमें क्या करे ? यानी वह कम से कम किस तरहके कामोको, किस कार्य-क्रमको, अपनाये ?

ज०—अपने जीवनमें बहादुरोकी अहिंसाका विकास करनेकी ख्वाहिश रखनेवाले आदमीको सबसे पहले अपने मनसे या विचारोसे कमसे कम बुजदिलीका मैल धो डालना चाहिये, और इस तरह साफ बने हुए विचार या दिमागके पीछे चलकर हर एक छोटा या बडा काम करना चाहिये। मसलन अहिंसाकी साधना करनेवाला अपने बड़े अफसरकी धाकसे दब नहीं जायगा, और न उसपर गुस्सा ही करेगा। साथ ही, वह अपनी ज्यादा-से ज्यादा आमदनी वाली जगहको छोड़नेके लिये भी तैयार रहेगा। अपना सब कुछ छोड देने पर भी अहिंसाके साधकके दिलमें अपने सेठ या नौकरी दिलानेवालेके लिये चिढ या गुस्सा न हो, तो कहा जायगा कि उसमें बहादुरोकी अहिंसा प्रकट हुई है। दूसरी मिसाल लीजिये। फर्ज कीजिये कि हमारे साथ सफर करनेवाला कोई मुसाफिर मेरे लडके पर हमला करनेकी धमकी देता है, और मेरे उसे समझानेकी कोशिश करनेपर वह मुझ ही पर उलट पडता है। अगर ऐसे समयमें मै उसका तमाचा अपनी शान और भलमनसाहतके साथ स्वीकार कर लू, और मनमें उसके लिये कोई बुरा ख्याल न रखूं तो कहा जायगा कि मैंने बहादुरोकी अहिंसासे काम लिया। ये बातें हर आदमीकी जिन्दगीमें रोज-रोज होती रहती है, और ऐसी कई दूसरी मिसालें आसानीसे दी जा सकती हैं। इस तरहके हर मौके पर मै अपने मिजाजपर काबू रखनेमें सफल होऊँ, और उलट कर तमाचा या घूंसा मारनेकी ताकत होनेपर भी चुप रह जाऊँ, तो मुझमें बहादुरोकी अहिंसाका विकास हो, वह मुझे कभी दगा न दे, और कट्टरसे कट्टर विरोधियोको उस अहिंसाकी दाद देनी पड जाय।

हरिजन-सेवक
१७ नवम्बर, १९४६

१०

बहनोंकी दुविधा

सवाल—जब बदमाश लोग किसी औरत पर हमला करें, तो उसे क्या क्या करना चाहिये? वह भाग जाय या हिंसासे उनका मुकाबला करे? यानी वह भाग जानेके लिये डोंगियाँ तैयार रखे, या हथियारोंसे अपना बचाव करनेको तैयार रहे?

जवाब—इस सवालका मेरा जवाब बहुत सीधा व सादा है। क्योंकि मेरे ख्यालमें हिंसाकी कोई तैयारी नहीं हो सकती। अगर ऊँचीसे ऊँची किस्मकी हिम्मत बढानी हो, तो हमें अहिंसाके लिये ही सारी तैयारी करनी चाहिये। बुजदिलीकी बनिस्बत हिंसाको हमेशा तरजीह देनेकी निगाहसे ही हिंसा बरदाश्त की जा सकती है। इसलिये मैं खतरेके वक्त भाग निकलनेके लिये डोंगियाँ तैयार न रखूंगा। अहिंसक आदमीके लिये खतरेका कोई समय होता ही नहीं। उसे तो मौतकी खामोश और शानदार तैयारी करनी होती है। इसलिये कहींसे कोई मदद न मिलनेपर भी अहिंसक औरत या मर्द हँसते-हँसते मौतका सामना करेगा, क्योंकि सच्ची मदद तो भगवानसे ही मिलती है। मैं इसके सिवा दूसरी कोई बात सिखा नहीं सकता, और जो मैं सिखाता हूँ, उसीपर अमल करनेके लिये मैं यहाँ आया हूँ। मैं नहीं जानता कि मुझे ऐसा मौका कभी मिलेगा-या दिया जायगा। जो औरतें गुण्डोंके हमला करनेपर बगैर हथियारके उनका सामना नहीं कर सकतीं, उन्हें हथियार रखनेकी सलाह देनेकी जरूरत नहीं। वे तो वैसा करेंगी ही। हथियार रखने या न रखने की इस हमेशाकी पूछताछमें जरूर ही कोई न कोई खामी है। लोगोंको कुदरती तौरपर आजाद रहना सीखना पड़ेगा। अगर वे मेरी इस खास नसीहतको याद रखें कि अहिंसासे ही सच्चा और कारगर मुकाबला किया जा सकता है तो वे इसीके मुताबिक अपना व्यवहार बना लेंगे और बगैर सोचे समझे ही क्यों न हो मगर दुनिया तो यही करती रही है। क्योंकि दुनियाकी हिम्मत ऊँचेसे ऊँचे नमूनेकी यानी अहिंसासे पैदा हुई हिम्मत नहीं है। इसलिये वह अपनेको ऐटमबमसे लैस रखनेकी हद तक पहुँची है। जो लोग उसमें हिंसाकी व्यर्थताको नहीं देख पाते, वे कुदरती तौरपर अपनेको अच्छेसे अच्छे हथियारोंसे लैस रखे बिना न रहेंगे।

जबसे मैं दक्खिनी अफ्रीकासे लौटा हूँ, तभीसे हिन्दुस्तानमें अहिंसाकी सोची-समझी तालीम बराबर दी जा रही है और उसका जो नतीजा निकला है, सो हम देख चुके हैं।

सवाल—क्या किसी औरतको गुंडोंके सामने झुकनेके बजाय खुदकुशी करनेकी सलाह दी जा सकती है?

जवाब—इस सवालका ठीक-ठीक जवाब देनेकी जरूरत है। नोआखालीके लिये रवाना होनेके पहले मैंने दिल्लीमें इसका जवाब दिया था। कोई भी औरत आत्म-समर्पण करनेके बजाय यकीनन खुदकुशी करनेकी सलाह ज्यादा पसन्द करेगी। दूसरे शब्दोंमें

जिन्दगीकी मेरी स्कीममें आत्म-समर्पणकी कोई जगह नहीं है। लेकिन मुझसे यह पूछा गया था कि आत्म-हत्या या खुदकुशी कैसे किया जाय? मैंने तुरत जवाब दिया कि आत्महत्याके साधन सुझाना मेरा काम नहीं और ऐसी हालतमें आत्महत्याकी मंजूरी देनेके पीछे यह विश्वास था और है कि जो आत्महत्या करनेके लिये भी तैयार है, उनमें ऐसे मानसिक विरोध और आत्माकी ऐसी पवित्रताके लिये वह जरूरी ताकत मौजूद है, जिसके सामने हमला करनेवाला अपने हथियार डाल देता है। मैं इस दलीलके आगे नही बढ़ सकता, क्योंकि उसमें आगे बढनेकी गुंजाइश नही है। मैं कबूल करता हूँ कि इसके लिये जिस पक्के सबूतकी जरूरत है, वह मिल नहीं रहा है।

सवाल—अगर अपनी जान देने और हमला करनेवालेकी जान लेनेमें से किसी एकको चुननेका सवाल हो तो आप क्या सलाह देंगे?

जवाब—जब अपनी जान देने या हमला करनेवालेकी जान लेनेमेंसे किसी एकको पसन्द करनेका सवाल हो, तो बेशक, मैं पहली चीजको ही पसन्द करूँगा।

हरिजन-सेवक
९ फरवरी, १९४७

❀

अहिंसा-जीवनका सत्य

सवाल—आपकी अहिंसाकी सीखसे प्रभावित होनेवाले हिन्दू शायद जल्दी ही मुस्लिम लीगियो द्वारा दबा दिये जायेंगे। आज लोग आमतौर पर यह महसूस करने लगे हैं, क्योंकि उनका विश्वास है कि मुसलमानोको छिपे-छिपे हथियारबन्द किया जा रहा है।

जवाब—यह मान लेना खतरनाक है। अगर यह सच है, तो सूबा सरकारोंके लिये बडी बदनामीकी बात है। हर हालतमें मेरी बडी इच्छा है कि हिन्दुओपर मेरी अहिंसाकी सीखका असर पडे। अहिंसाकी ताकत हथियारोंकी बड़ीसे बड़ी ताकतसे भी कहीं बड़ी है। अगर लोग किसी उपदेशककी सीखकी हँसी उड़ावें, तो इसके लिये वह जिम्मेदार नहीं। क्या हम नहीं जानते कि लापरवाह विद्यार्थी जामेट्रीके दावे साबित करनेके लिये कैसी बेसिरपैरकी दलीलें देते है? लेकिन क्या इसका दोष शिक्षकोके माथे मढा जाय? मेरे बारेमें ज्यादासे ज्यादा यही कहा जा सकता है कि मैं अहिंसाकी सीख देने लायक नहीं हूँ। अगर यह ठीक है तो हम भगवानसे प्रार्थना करें कि मेरा वारिस मुझसे बहुत ज्यादा काबिल और ज्यादा कामयाब साबित हो।

सवाल—हिन्दुस्तानमें अंग्रेजोके चले जानेके बाद, मुमकिन है कि देशमें चारो तरफ अन्धेर और अराजकताका बोलबाला हो जाय। यह अंदेशा है कि यदि राष्ट्रवादियोने

जल्दी ही बन्दूकों और पिस्तौलोंसे अपनी हिफाजत करना नहीं सीखा, तो उन्हें मुसीबतें सहनी पड़ेंगी। मुस्लिम लीग, जिसके मेम्बर लड़ाईमें ही विश्वास करते हैं, आखिर उन्हें कुचल देगी। पाकिस्तान बने या न बने, लेकिन मुसीबत तो आ ही रही है। क्योंकि साम्राज्यवादी छिपे तौरसे उसमें मदद कर रहे हैं। क्या देशकी आइन्दा सियासी हालतको ध्यानमें रखते हुए आप अहिंसाके उसूलमें कोई ऐसी तबदीली नहीं करेंगे, जिससे लोग अपनी हिफाजत कर सकें?

जवाब—जैसा कि आपका ख्याल है, अगर राष्ट्रवादी लोग मुस्लिम लीगसे डरते हैं, तो वे अपनी आजकी इज्जत और शोहरतके लायक नहीं हैं। क्या वे लोग मुस्लिम लीगको अपनी सेवाके क्षेत्रसे बाहर रख सकते हैं? मैं यहां वोट पानेकी तरकीबके बारेमें नहीं सोच रहा हूं। मैं तो मुसलमानोंको दूसरोंकी तरह हिन्दुस्तानी ही मानता हूं। राष्ट्रवादियोंको उनकी परवाह करनी चाहिये और उनकी तरफ ध्यान देना चाहिये। अगर नेताओंने अहिंसामें विश्वास करना छोड़ दिया है, तो उन्हें हिम्मतके साथ साफ-साफ ऐसा कह देना चाहिये और अपनी गलती सुधार लेना चाहिये। मैं खुद तो अपने अहिंसाके उसूलमें तबदीली नहीं कर सकता, अहिंसा मेरे लिये एक उसूल ही नहीं, वह मेरे जीवनका सत्य बन गई है; जिसका आधार मेरा बरसोंका तजरबा है। जो आदमी बार बार मीठे सेब खा चुका है, उसे उन्हें कड़वे कहनेके लिये कैसे राजी किया जा सकता है? जो मीठे-मीठे सेबोंको कड़वे कहते हैं, वे लोग सेब नहीं खाये बल्कि सेबकी तरह दिखाई देनेवाले कोई दूसरे फल खाये हैं। अहिंसाको साम्राज्यवादियोंके छिपे या खुले कामोंसे डरना नहीं चाहिये। यहां मैं दलीलके लिये यह मान लेता हूं कि सवालमें सुझाये गये ढंगपर साम्राज्यवादी अपना काम कर रहे हैं।

हरिजन-सेवक
२५ मई, १९४७

❀

हिंसाका मुकाबला कैसे किया जाय?

सवाल—लीगके नेता और उसके अनुयायी अपनी मुराद हासिल करनेके लिए अहिंसामें एतबार नहीं करते। इस हालतमें यह किस प्रकार संभव है कि लीगवालोंका हृदय जीता जाय, या उन्हें इस बातका विश्वास दिया जाय कि हिंसात्मक साधन बुरा है?

जवाब—हिंसाका सही प्रतिकार अहिंसासे हो सकता है। यह सनातन सत्य है। जिस भाईने सवाल किया है, उनका विश्वास अहिंसापर नहीं हो सकता। क्योंकि इस अहिंसारूपी शस्त्रके आगे हिंसक शस्त्र, चाहे वह एटमबम ही क्यों न हो, बेकार होता है। यह बिलकुल दूसरी बात है कि ऐसे बुलन्द शस्त्र जाननेवाले लोग बहुत कम होते हैं। उस (अहिंसक) शस्त्रके उपयोगमें जान और दिलकी ताकतकी काफी दरकार होती है। उसमें

मिलिटरी स्कूल-कालेजोंमें बरसों तालीम लेनेकी बात नहीं होती। लेकिन दिल साफ करनेकी जरूरत होती है। जितनी मुश्किल हमको हिंसाका सामना करनेमें आती है, वह सब हमारे दिलकी कमजोरीकी निशानी है। दूसरी बात यह भी है कि अब तो कायदे आजम जिन्नाने ऐसी बुलन्द बात कही है कि अपने हकको पानेके लिये यानी पाकिस्तान पानेके लिये हिंसाका इस्तेमाल करना मुनासिब नही है।

यह बात उन्होने सरहदी सूबोसे जो लोग उनसे मिलने गये थे, उनसे साफ-साफ लफ्जोंमें कही है। उसे हम न भूलें।

सवाल—बहुतसे लोगोंका ऐसा ख्याल होता जा रहा है कि पाकिस्तानके समर्थकोंके साथ सघर्ष-शायद हिंसात्मक ढग का—होना अनिवार्य है। अगर राष्ट्रवादी ऐसा समझें कि जबतक लीग पजाब और बगालके बँटवारेके लिए सहमत नही हो जाती, तबतक पाकिस्तानकी माँग ठीक नही है, तो काग्रेसी किस साधनका अवलम्बन करें ?

जवाब—अगर पहले सवालका जवाब ठीक समझमें आया है, तो दूसरा सवाल उठ ही नहीं सकता। फिर भी बात साफ करनेके कारण मैं जवाब दे रहा हू। अगर जिन्ना साहबका कहना सब मुसलमान या लीगी मुसलमान मान लें, तब तो हिंसात्मक ढगका झगडा हो ही नही सकता और हिन्दू बडी तादादमें अहिंसाका सहारा लें, तो मुसलमान कितनी भी हिंसा करें, वह हिंसा बेकार होगी। एक बात और भी समझ लेनी चाहिये। जो लोग अहिंसाके पुजारी है वे गैर मुनासिब ख्याल तक भी न करें, ऐसा काम तो कर ही नहीं सकते। इसलिये अगर पाकितान ठीक नहीं है, तो बंगाल और पजाबके टुकड़े भी ठीक नहीं है।

सवाल—अधिकतर समाजवादियोका यह विश्वास है कि सामाजिक क्रान्ति होनेसे हिन्दू-मुसलिम झगडा पीछे पड जायगा और आर्थिक सवाल पीछे पड जायेगे। क्या आपकी समझसे यह अच्छा होगा कि ऐसी क्रान्ति हो ? क्या इससे राम-राज्य कायम होनेमें मदद मिलेगी ?

जवाब—सामाजिक क्रान्तिसे हिन्दू मुसलिम झगडा कुछ हदतक तो ढीला पड़ेगा। इतना तो हम सबको साफ होना चाहिये कि झगड़ोके बहुतसे कारण होते है। हिन्दू-मुस्लिम झगड़ा मिट जानेसे सब झगडे मिट जाते हैं ऐसा तो नहीं कह सकते। इतना ही कहा जाय कि हिन्दू-मुसलिम झगड़ोने एक भयंकर रूप ले रखा है। छोटे मोटे दूसरे झगड़े मिट जानेसे इस भयंकरताका रूप कम हो जायगा, इसमें शक नहीं।

जब गुलामी मिटकर आजादी आती है, तब समाजकी सारी व्याधियाँ (बुराइयाँ) ऊपर आ जाती हैं ! इससे भड़कनेका मैं कोई कारण नहीं पाता। अगर ऐसे मौके पर हमारा मन स्थिर रहे, तो सब साफ हो जाता है। हर हालतमें आर्थिक सवालको हल होना ही है।

आज आर्थिक असमानता है। समाजवादी जड़में आर्थिक समानता है। थोड़ोको करोड और बाकीको सूखी रोटी भी नहीं, ऐसी भयानक असमानतामें राम-राज्यका दर्शन

करनेकी आशा कभी न रखी जाय। इसलिये मैंने दक्षिणी अफ्रीकामें ही समाजवादको स्वीकार किया था। मेरा समाजवादियों और दूसरोंमें यही विरोध रहा है कि सब सुधारोंके लिये सत्य और अहिंसा ही सर्वोपर (सबसे अच्छा) साधन है।

सवाल—आप कहते हैं कि राजा, जमींदार और पूंजीपति संरक्षक बनकर रहें। आपके ख्यालमें क्या ऐसे राजा, जमींदार या पूंजीपति अभी मौजूद हैं? या वर्तमान राजा वगैरहमें से किन्हींके इस प्रकार बदल जानेकी उम्मीद है?

जवाब—मेरे ख्यालसे ऐसे राजा, जमींदार और पूंजीपति अभी हैं। इसका मतलब यह नहीं है कि वे पूरे-पूरे संरक्षक बन गये हैं। लेकिन उनकी गति उस ओर है।

मौजूदा राजा वगैरहके संरक्षक बननेकी उम्मीद रखी जाती है या नहीं, यह सवाल पूछने लायक है।

मेरी दृष्टिसे यह उम्मीद जरूर रखी जाय। वे लोग अपने आप संरक्षक न बनें, तो समय उन्हें बनावेगा। अथवा उनका नाश हो जायगा। जब पंचायत-राज बनेगा, तब लोकमत सब कुछ करवा लेगा।

जमींदारी, पूंजी अथवा राजसत्ताकी ताकत तबतक ही कायम रह सकती है, जबतक आम लोगोंमें अपनी ताकतकी समझ नहीं होती। लोग रूठें तो राजा जमींदार, या पूंजीपति क्या कर सकता है? पंचायत-राजमें पंचका ही चलनेवाला है और पंच अपना काम कानूनसे कर लेता है। अगर पंचका कारोबार अहिंसासे चलेगा, तो तीनों मालिक कानूनसे संरक्षक बनेंगे और हिंसासे चलेगा, तो उनकी मालिकी बुझ जायगी।

हरिजन-सेवक
१ जून, १९४७ ई०

❀

अहिंसा

(१५-६-४७ को प्रार्थना सभामें पढ़कर सुनाये गये गाँधीजीके लिखित सन्देशमेंसे नीचेका हिस्सा लिया गया है)

दुनियाके अनेक देशोंसे जो मुझसे सवाल पूछा गया है आज मैं उसीका जवाब देना पसन्द करूँगा। वह सवाल इस तरह है:—

आपके देशमें सियासी पार्टियाँ अपना अपना सियासी मकसद आगे बढ़ानेके लिये हिंसाका दिन-दिन ज्यादा इस्तेमाल करने लगी हैं। इसकी वजह आप बतायें? ब्रिटिश हुकूमतको खत्म करनेके लिये पिछले तीस सालसे अहिंसाका जो तरीका अपनाया गया, कहीं उसीका तो नतीजा नहीं है? क्या अभी भी दुनियाके लिये आपका अहिंसाका संदेश

काम आ सकता है ? मैंने सवाल पूछनेवालोंकी भावनाओंका अपने शब्दोंमें यहाँ सार दिया है।

इसके जवाबमें मुझे अहिंसाका नहीं बल्कि अपना दिवालियापन कबूल करना चाहिये। इसके पहिले मैंने साफ साफ कह दिया है कि पिछले तीस वर्षोंमें जिस अहिंसाका इस्तेमाल किया गया, वह कमजोरोंकी अहिंसा थी। मेरा यह जवाब ठीक या काफी है कि नहीं यह तो दूसरोंको बताना होगा। इसके बाद एक दूसरी बात भी स्वीकार करनी होगी कि आजके बदले हुए संयोगोंमें कमजोरोंकी अहिंसा कुछ काम नहीं दे सकती। हिन्दुस्तानको बहादुरोंकी अहिंसाका तजुरबा नहीं है। अगर मैं बराबर यह कहता रहूँ कि बहादुरोंकी अहिंसा दुनियामें सबसे बड़ी शक्ति है, तो उससे मेरा कोई मतलब हल नहीं होता। इस सत्यका लगातार बड़े प्रमाणमें प्रत्यक्ष प्रयोग कर दिखानेकी जरूरत है। मुझमें जितनी शक्ति है, उसका पूरा पूरा इस्तेमाल करके मैं यही कर दिखानेकी कोशिश कर रहा हूँ। अगर मेरी बेहतरीन काबिलियत बहुत थोड़ी हो, तो उससे क्या ?

कहीं मैं शेखचिल्लीके रास्ते तो नहीं जा रहा हूँ ? मैं ऐसी फिजूलकी खोजमें अपने पीछे चलने या अपना साथ देनेके लिये दूसरोंको क्यों कहूँ ? ये सब सवाल पूछने लायक हैं। इन सबका मेरा जवाब बिलकुल सीधा और सरल है। मैं किसीको अपने पीछे चलने या अपना साथ देनेके लिये नहीं कहता। हर एक स्त्री और पुरुषको अपने अन्तरकी आवाजको मानना चाहिये। अगर कोई स्त्री या पुरुष अपने अन्तरकी आवाजको न सुन सके तो उसे अपनी योग्यताके मुताबिक जितना हो सके कर गुजारना चाहिये। लेकिन कोई स्त्री या पुरुष भेड़की तरह दूसरोंके पीछे न चले।

एक और भी सवाल पूछा गया है और पूछा जाता है.........अगर आपको विश्वास है कि हिन्दुस्तान गलत रास्ते जा रहा है, तो आप गलत काम करनेवालोंसे क्यों संबंध रखते हैं ? आप अकेले अपने सही रास्तेपर क्यों नहीं जाते ? और आप यह श्रद्धा क्यों नहीं रखते कि आपकी बात सच होगी ही। आपको छोड़ देनेवाले आपके दोस्त और अनुयायी आपको फिर खोज लेंगे। यह बिलकुल उचित सवाल है। मैं इसके खिलाफ कोई दलील देनेकी कोशिश नहीं करूँगा। मैं सिर्फ यही कहूँगा कि मेरी श्रद्धा पहले जैसी आज भी वही है। हो सकता है कि मेरा कामका तरीका गलत है। आजकी अटपटी हालतमें तो पहलेकी परखी हुई और पुरानी मिसालें ही दिशा बतानेके लिये हमारे सामने हैं। लेकिन एक बातका ध्यान रखना होगा। किसीको जड़ मशीनकी तरह काम नहीं करना चाहिये। इसलिये मुझे सलाह देनेवाले सब लोगोंसे मैं यही कहूँगा कि मेरे साथ धीरजसे काम लीजिये और मेरी इस श्रद्धामें शामिल भी हो जाइये कि आजकी दुःखी दुनियाके उद्धारके लिये तलवारकी धार जैसी अहिंसाके दुर्गम मार्गके सिवा दूसरी कोई आशा नहीं है। हो सकता है कि इस सत्यको साबित करनेमें मेरे जैसे करोड़ों आदमी असफल रहें लेकिन यह असफलता अहिंसाके सनातन नियमकी नहीं, बल्कि उन करोड़ोंकी होगी।

बहादुरों की अहिंसा

कांग्रेस प्रेसीडेंटने कांग्रेस महासमितिके अपने आखिरी भाषणमें कहा था कि गांधीजीने "जिस तरह ब्रिटिश हुकूमतके खिलाफ लड़नेका अहिंसक तरीका बताया था उसी तरह वे फिरकेवाराना लड़ाईका मुकाबला करनेके लिये कोई अहिंसक तरीका नहीं बतला सके। गांधीजीने कहा था कि वे अंधेरेमें भटक रहे हैं। उन्हें कोई रास्ता नहीं सूझता। हालांकि उन्होंने कहा था कि वे नोआखाली और बिहारके अपने कामसे सारे हिन्दुस्तानकी हिन्दू-मुसलमानकी समस्याको हल कर रहे हैं, फिर भी मैं यह नहीं समझ सका कि आम पैमानेपर अहिंसाका यह तरीका किस तरह काममें लाया जा सकता है। इसीलिये मैं आज गांधीजीके साथ नहीं हूँ और मैंने हिन्दुस्तानके बँटवारेकी बात मान ली है।"

गांधीजीका जवाब था कि मेरे अंधेरेमें भटकनेका दरअसल यह मतलब है कि मैं यह नहीं जानता कि लोगोंको अपना दृष्टिकोण कैसे समझाऊँ। मेरा यह विश्वास है कि फिरकेवाराना लड़ाईको रोकनेके लिये भी अहिंसाका हथियार उसी तरह कारगर साबित हो सकता है, जिस तरह वह ब्रिटिश हुकूमतके खिलाफ लड़ी गई हमारी आजादीकी लड़ाईमें कारगर साबित हुआ है। उस समय लोगोंने अहिंसाके जरिये लड़नेमें मेरा साथ दिया था। क्योंकि वे जानते थे कि जबरदस्त ब्रिटिश हथियारोंका मुकाबला और किसी तरह नहीं किया जा सकता। लेकिन वह कमजोरोंकी अहिंसा थी। फिरकेवाराना लड़ाईमें उस अहिंसासे काम नहीं चल सकता। उसके लिये तो बहादुरोंकी सच्ची अहिंसा की जरूरत है।

प्रार्थना-सभामें बोलते हुए गांधीजीने कहा, "मैं कमजोरोंकी अहिंसाको या बहादुरोंकी अहिंसाको जनतामें फैलानेकी अपनी नाकाबिलियतको मंजूर करता हूँ। मैं लोगोंमें बहादुरोंकी अहिंसा नहीं पैदा कर सका। इससे कोई यह न समझे कि मैं इस अनमोल गुणको पैदा करने और बढ़ानेका तरीका नहीं जानता। बहादुरोंकी अहिंसाकी साधनाकी सबसे पहली शर्त यह है कि हम अपने दिलमें रामकी जीती-जागती हस्तीको महसूस करें। इस चेतनाको पानेके लिये मन्दिर जानेकी जरूरत नहीं। रोज ईश्वरका नाम जपना कोई खास मानी रखता है। हम यह मान लें कि हिन्दुस्तानके लाखों करोड़ों आदमी रोज किसी खास वक्तपर भगवानको राम, अल्ला, खुदा, अहुरमज्द या जेहोवाके नामसे याद करते हैं। लेकिन अगर ईश्वरका नाम जपनेवाले लोग यदि शराब पीते हैं, व्यभिचार करते हैं, बाजारोंमें सट्टा खेलते हैं, जुआ खेलते हैं और काला बाजार वगैरा करते हैं तो उनका रामधुन गाना बेकार है। उलटे यह उनके लिये शर्मकी बात होगी। एक गन्दे और बेईमानी-भरे दिलवाला आदमी कभी ईश्वरकी सबको पवित्र करनेवाली हस्तीको महसूस नहीं कर सकता। इसलिये यह कहनेकी बनिस्बत कि बहादुरोंकी अहिंसा सिखानेके लिये कोई प्रोग्राम नहीं तैयार किया गया, यह कहना ज्यादा सच होगा (अगर यह हकीकत हो) कि हिन्दुस्तान बहादुरोंकी अहिंसा सीखनेके लिये तैयार नहीं है। यह कहना बिलकुल ठीक होगा कि अभी मैंने जो बहादुरोंकी अहिंसाका प्रोग्राम बताया है वह उतना लुभावना

नहीं है जितना कमजोरोंकी अहिंसाका प्रोग्राम साबित हुआ है। मुझे उम्मीद है कि जो लोग रोज प्रार्थना-सभामें मेरा भाषण सुनने आते हैं, कमसे कम वे तो अपनी जिन्दगीमें बहादुरोंकी अहिंसापर अमल करके दूसरोंको रास्ता दिखायेंगे।

हरिजन-सेवक
२९ जून, १९४७

ॐ

अमेरिकासे

रिचर्ड ग्रेग साहिब अमेरिकासे लिखते हैं:—

"न्यूयार्कके एक अखबारने नयी दिल्लीसे आयी हुई यह खबर दी है कि आपने १२५ वर्ष जिन्दा रहनेकी आशा छोड दी है। और यह कि आजकी हिंसाकी बाढमें हिन्दुस्तानमें आपके लिए कोई जगह नही है। अगर यह खबर बिलकुल ठीक हो, तो मैं आपसे प्रार्थना करता हूँ कि आप अपनी बातको बदल दें। मेरी रायमें हिन्दुस्तानकी मौजूदा हिंसासे—अगर यह १५ साल भी चले—हिन्दुस्तानको और दुनियाको उतना खतरा नही है जितना कि आपके न रहने से होगा।

"हिन्दुस्तान सभ्यता तथा गहरी और मजबूत आध्यात्मिक (रूहानी) शक्तिका स्रोत है। दुनियामें उसकी सभ्यतासे बढकर और कोई दूसरी सभ्यता नही है। वह सबसे ज्यादा टिकाऊ भी है हालाँ कि भौतिकवादके पीछे पागल हुए पश्चिमके सम्पर्कमें आने और धर्मको भुला देनेके कारण हिन्दू सस्कृति और सभ्यताको बहुत नुकसान हुआ है। फिर भी हिन्दू सभ्यता आज सबसे बढी-चढी है। ज्यादातर दुनिया हिंसा, लालच और ईश्वरको भूल जानेके कारण जल्दी ही बरबाद हो जायगी, लेकिन मुझे आशा है कि अन्तमें हिन्दुस्तानका एक हिस्सा तो ऐसा बचेगा—फिर वह कितना ही छोटा क्यो न हो—जो दुखी जगतको आध्यात्मिक शक्ति, जीवन और सन्तोष देगा। वही दुनियाके लिये रूहानी आसरा और आशाका दीप होगा।

"आप हिन्दू सभ्यताके सबसे बडे प्रतीक हैं। आपका जिन्दा रहना सारी दुनियाके लिये बडा महत्व रखता है। अगर आज सिर्फ पाँच ही आदमी आपकी बात मानते हो, और ईमानदारीसे अहिंसाके रास्ते चलते हो, तो क्या परवाह है? अनुयायियोकी कम सख्या ही अहिंसाको उठा सकेगी और आध्यात्मिक शक्तिको ऊँचा चढा सकेगी। जब मनुष्य जाति अपने दुख दर्दसे बेहतर सबक सीखेगी (इसी तरह ज्यादा लोग सीख ..
दूसरे लोग भी दुनियाकी मुसीबतोसे बचनेके लिये इस रूहानी सोतेकी तरफ
क्या ईश्वरसे यह कहनेका हक है कि अगर हिंसा (जो मनुष्यकी

अरसे तक चलती रही, तो हम सब प्रयत्न छोड देंगे ? मैं यह बात साहस करके आपसे इसलिये कहता हूँ कि मैं बहुत चाहता हूँ कि आप हमारे साथ रहें।

"मैं थोडा और विस्तारसे कह दूं। बरसों तक बडी सावधानीके साथ जो आर्थिक अध्ययन किया है, उसने यह बता दिया है कि दुनियामें कई तरहके आर्थिक उतार और चढावके दौर आते रहते हैं। एक दौर आया था ५४ साल का जब थोक मालकी कीमतका जमाना था। दूसरा आया था १८ साल का जब स्थावर सम्पत्तिकी हलचल थी। तीसरे तरहका दौर आया ९ साल का। एक और किस्मका दौर आया साढे तीन सालका। बाजारकी सारी बडी-बडी मण्डियों पर इन्हीका असर पडा है। ये सब आर्थिक दौर १९५१–५२में सबसे निचले दर्जे पर पहुँचने वाले हैं। अब हम शायद सबसे भयकर आर्थिक मन्दीके युगमें प्रवेश कर रहे हैं। यह दुनियाके दूसरे व्यवसायी राष्ट्रोंके साथ अमेरिका पर भी छा जाने वाली है। इस समय ग्रेट ब्रिटेन अमेरिकाकी आर्थिक मदद पर निर्भर करता है। मेरा विश्वास है कि जब अमेरिका ग्रेट ब्रिटेनको अनिवार्य रूपसे मदद देना बन्द कर देगा, तब हिन्दुस्तानमें अंग्रेजोंकी दस्तन्दाजी खत्म हो जायगी। मैं मानता हूँ कि अगर रूस और अमेरिकाके बीच दूसरी बडी लडाई हुई—जैसा कि आज मुमकिन दिखाई देता है—तो मौजूदा पश्चिमी सभ्यताका और दुनियापर सफेद आदमीकी हुकूमतका खात्मा हो जायगा। मेरा विचार है कि तब हिन्दुस्तानको सर्वनाशसे बचानेका मौका मिलेगा। यह मेरी आशा है। मैं प्रार्थना करता हूँ कि आप १२५ वर्ष जीनेकी कोशिश करें ताकि भगवानके सेवकके नाते आप उस बडे महत्वके समयमें अपना फर्ज अदा कर सकें। उस वक्त दुनियाको और हिन्दुस्तानको आज से भी ज्यादा आपकी जरूरत होगी। चूंकि यह नैतिक दुनिया है और ईश्वरके नियमोंके मुताबिक चलती है, इसलिये लगातार सदियों तक इन नियमोंको तोडनेके कारण मनुष्य-जातिको दुःख-दर्द तो उठाना ही पडेगा। मनुष्योंके दुःखका कारण राष्ट्रोंकी सरकारें भी हैं, जिन्होंने खास तौर पर ईश्वरीय नियमोंको तोडा है। इन दुःखदर्दोंके बारेमें सोचनेमें भी भय मालूम होता है। लेकिन अगर वे न आयें, तो समझना चाहिये यह विश्व नैतिक (इखलाकी) नहीं है। इसलिए दुःख ही हमारे आशावादका सबूत है। दुःख ही हमारे इस विश्वासका सबूत है कि दुनियामें ईश्वरके नियम सर्वोपरि हैं। जिस तरह आदमी गुरुत्वाकर्षणके नियमोंको नहीं तोड सकता, उसी तरह वह ईश्वरीय नियमोंको भी नहीं तोड सकता।

"भगवानकी कृपासे आप जिन्दे रहें। मेहरबानी करके आप पस्त-हिम्मत न हों और हिन्दुस्तान और दुनियाकी खातिर पूरे १२५ बरस जीनेका इरादा न छोडें। जैसा कि मैंने आपको पिछले पत्रमें लिखा है, जब राष्ट्र और गिरोहोंकी सियासी सत्ताका फेरबदल होता है उस दरमियान और उसके तुरत बाद हमेशा हिंसा होती ही है। ऐसा अमेरिकामें भी हुआ था। जब १३ अमेरिकन उपनिवेश १७७६में ब्रिटेनसे अलग हुए थे, तब हमारे यहाँ भी दंगे और लडाइयाँ हुई थीं। उसे 'शामका गदर' कहा जाता था। सारे पश्चिमका इतिहास भी यही बताता है। हिन्दुस्तानके काफी हिस्से पर पश्चिमी विचारोंका असर पडा है, इसलिये वहाँ भी हिंसाकी बाढ आ गयी है। लेकिन जब दूसरी लडाई आयेगी और हिन्दुस्तानी

निश्चित रूपसे यह देख लेंगे कि मजहबसे दूर रहनेवाली पश्चिमी सभ्यता दुनियाको कहाँ ले जाती है, तब मुझे उम्मीद है कि वे पश्चिमकी हिंसक सभ्यतासे जरूर मुह फेर लेंगे। ''

जो खबर ग्रेग साहबने पढी वह बहुत हद तक ठीक है। जब मैंने जाना कि मुझमें काफी अनासक्ति नहीं है तो मैंने १२५ बरस जीनेकी आशा खो दी। अपने गुस्से और भावनाओपर मैं इतना काबू नहीं पा सका हूँ कि मैं १२५ बरस जीनेकी उम्मीद कर सकू। एक दिन इस दुःखद बातका मुझे अनुभव हुआ कि मुझमें जरूरी अनासक्ति नहीं है। जिस आदमीका जीवन सेवामय नहीं है, उसे जीनेका कोई हक नहीं है और गीतामें लिखा है कि जिसमें अनासक्ति नही, वह पूरी पूरी सेवा नही कर सकता।

अपनी कमियोका सच्चा इकरार करनेसे आत्माका भला होता है, इससे आदमीको अपनी कमियोको दूर करनेकी शक्ति भी मिलती है। 'हरिजन'के पाठकोको जानना चाहिये कि मैं अपनी कमियोको दूर करनेकी हर कोशिश कर रहा हूँ, ताकि मैं खोयी हुई आशाको फिर पा लू। इस सिलसिलेमें मुझे यह भी दोहरा देना चाहिये कि जो कोई अपना जीवन मनुष्यकी सेवामें अर्पण कर देता है, उसे यह उम्मीद रखनेका हक जरूर है। इसे एक शेखचिल्लीका सपना हरगिज नहीं समझना चाहिये। मुझे और मेरे जैसे दूसरे कोशिश करनेवालोको इसमें सफलता न मिले, तो इससे यह साबित नहीं होगा कि १२५ बरस जिन्दा रहना नामुमकिन है।

मैंने यह कहा है कि हिंसक समाजमें मेरे लिये कोई जगह नहीं है। लेकिन इस कथनका अखबारी रिपोर्टमें बतायी गयी मेरी निराशासे कोई सबंध नहीं है। मैं जान बूझकर यहाँ 'रिपोर्टमें बतायी गयी' विशेषणका उपयोग करता हूँ। क्योकि मैं निराशाके ख्याल तकको अपने दिलमें जगह नहीं देना चाहता। यह लाजिमी नही है कि मैंने उस वक्त जो कहा वह आज भी सच हो। मैं कहता हूँ कि वह आज इतना सच नहीं है।

इतना तो स्पष्ट हो जाना चाहिये कि हिंसक समाजमें अहिंसाके पुजारीके लिये कोई जगह नहीं हो सकती। फिर भी यह संभव है कि वह पूरे १२५ साल तक जिन्दा रहे और लगातार कोशिश करके उस समाजमें अपने लिये जगह बना लेनेकी उम्मीद रखे। मेरे दूसरे कथनके यही माने है। मैं समाजमें रहते हुए भी समाजका नहीं हूँ। ऐसा करनेसे मैं हिंसाका विरोध बताता हूँ।

क्या तीस सालकी अहिंसाकी कोशिशका नतीजा हिंसा ही निकला? इस सवालका जवाब तो मैं अपने प्रार्थनाके बाद भाषणमें बता चुका हूँ। मेरी आशा है कि हिंसा हिन्दुस्तानके गाँवोमें अभी नहीं पहुँची है। जो भी हो, मैं ग्रेग साहबकी आगाहीसे सहमत हूँ कि "हमें ईश्वरसे यह तो कभी नही कहना चाहिये कि अगर हिंसा (इन्सानकी मूर्खता) हमारी आशाके मुताबिक खास समयके भीतर खत्म न हो, तो हम अपने सारे प्रयत्न, जहाँ तक जी सकें वहाँ तक जीनेका प्रयत्न भी, छोड़ देंगे।" मुझे लगता है कि न्यूयार्कके अखबारोमें जो खबर गयी वह अपूर्ण थी। इसी वजहसे ग्रेग साहबके दिलमें शंका पैदा हुई। मुझे आशा है कि मैं ईश्वरका जज कभी नहीं बन सकता।

हरिजन-सेवक
२९ जून १९४७

गायको कैसे बचाया जाय?

हिन्दू धर्म और हिन्दुस्तानी जीवनकी माली व्यवस्थामें गायकी क्या जगह है, इसके बारेमें लोग बहुत ही कम जानते हैं। हिन्दुस्तान विदेशी हुकूमतसे आजाद तो हो गया लेकिन साथ ही देशकी सारी पार्टियोंकी एक रायसे उसके दो टुकडे भी हो गये हैं। इससे आम लोगोंमें विश्वास पैदा हो गया है कि वे एक हिस्सेको हिन्दू हिन्दुस्तान और दूसरेको मुस्लिम हिन्दुस्तान कहने लगे हैं। इस विश्वासका समर्थन नहीं किया जा सकता है। फिर भी दूसरे सारे झूठे विश्वासोंकी तरह हिन्दू हिन्दुस्तान और मुस्लिम हिन्दुस्तानका यह विश्वास भी बड़ी कठिनाईसे दूर होगा। सच बात तो यह है कि जो कोई अपने आपको इस देशकी सन्तान कहते हैं और हैं, वे सब हिन्दुस्तानी संघ और पाकिस्तानके एक से नागरिक हैं। फिर वे किसी भी धर्म या रंगके हों।

फिर भी प्रभाववाले हिन्दू बहुत बड़ी तादादमें यह झूठा विश्वास करने लगे हैं कि हिन्दुस्तानी संघ हिन्दुओंका है इसीलिये उन्हें कानूनके जरिये अपने उस विश्वासको गैर-हिन्दुओंसे भी जबरन मनवाना चाहिये। इसीलिये, यूनियनमें गायोंकी हत्याको रोकनेका कानून बनवाने के लिये सारे देशमें जोशकी एक लहर सी फैल रही है।

ऐसी हालतमें—जिसकी नींव मेरी रायमें अज्ञान है—हिन्दुस्तानमें दूसरों जैसा ही गायका भक्त और समझदार प्रेमी होनेका दावा करते हुए मुझे अच्छेसे अच्छे ढंगसे लोगोंके इस अज्ञानको दूर करनेकी कोशिश करनी चाहिये।

सबसे पहले हम यह समझ लें कि धार्मिक मानोंमें गायकी पूजा बड़े पैमानेपर सिर्फ गुजरात, मारवाड, यू० पी०, और बिहारमें ही होती है। गुजराती और मारवाडी लोग साहसी व्यापारी होते हैं, इसलिये वे इस बारेमें बडीसे बड़ी आवाज उठानेमें कामयाब हुए हैं। लेकिन गोहत्याके खिलाफ आवाज उठानेके साथही साथ वे अपनी व्यापारी बुद्धिको हिन्दुस्तानके पशु-धनकी रक्षाके बड़े मुश्किल सवालको हल करनेमें नहीं लगा रहे हैं।

अपने धर्मके आचार-विचारको दूसरे धर्मके लोगोंपर लादना बिलकुल गलत चीज है।

अगर गो-रक्षाके सवालको सिर्फ माली जरूरतकी निगाहसे ही देखा जाय तो वह बडी आसानीसे हल किया जा सकता है। लेकिन शर्त यह है कि उसपर सिर्फ माली आधारपर ही विचार किया जाय। उस हालतमें दूध न देनेवाले सारे मवेशी, अपने पालनेके खर्चसे भी कम दूध देनेवाली गायें और बूढ़े और बेकार जानवर बिना किसी हिचकिचाहटके मार डाले जाने चाहिये। इस बेरहम माली व्यवस्थाको हिन्दुस्तानमें कोई जगह नहीं है, हालाँ कि आपसी विरोधवाले मतोंके इस देशके लोग कई कठोर काम करनेके अपराधी हो सकते हैं और सचमुच हैं।

अब सवाल यह है कि जब गाय अपने पालन-पोषणके खर्चसे भी कम दूध देने लगती है, या दूसरी तरहसे नुकसान पहुँचानेवाला बोझ बन जाती है, तब बिना मारे उसे कैसे बचाया जा सकता है? इस सवालका जवाब इस तरह थोड़ेमें दिया जा सकता है :

(१) हिन्दू, गाय और उसकी सन्तानकी तरफ अपना फर्ज पूरा करके उसे बचा सकते हैं। और वे ऐसा करें, तो हमारे जानवर हिन्दुस्तान और दुनियाके गौरव बन सकते हैं। आज इससे बिलकुल उलटा हो रहा है।

(२) जानवरोंके पालन पोषणका सायंस सीखकर गायकी रक्षा की जा सकती है। आज तो इस काममें पूरी अन्धा-धुन्धी चलती है।

(३) हिन्दुस्तानमें आज जिस बेरहम तरीकेसे बैलोंको बधिया बनाया जाता है, उसकी जगह पश्चिमके हमदर्दी भरे और नरम तरीके काममें लाकर उसे बचाया जा सकता है।

(४) हिन्दुस्तानके सारे पिंजरापोलोंका पूरा पूरा सुधार किया जाना चाहिये। आज तो हर जगह पिंजरापोलका इन्तजाम ऐसे लोग करते हैं जिनके पास न तो कोई योजना होती है और न वे अपने कामकी जानकारी ही रखते हैं।

(५) जब ये महत्वके काम कर लिये जायंगे, तो मुसलमान खुद दूसरे किसी कारणसे नहीं तो अपने हिन्दू भाइयोंकी खातिर ही मास या दूसरे मतलबके लिये गायको न मारनेकी जरूरतको समझ लेंगे। पढ़नेवाले यह देखेंगे कि ऊपर बतायी हुयी जरूरतके पीछे एक खास चीज है। वह है अहिंसा, जिसे दूसरे शब्दोंमें प्राणीमात्रपर दया कहा जाता है। अगर इस सबसे बड़े महत्वकी बातको समझ लिया जाय, तो दूसरी सब बातें आसान बन जाती हैं। जहाँ अहिंसा है, वहाँ अपार धीरज, भीतरी शान्ति, भले-बुरेका ज्ञान, आत्म-त्याग और सच्ची जानकारी भी है। गो-रक्षा कोई आसान काम नहीं है। उसके नामपर देशमें बहुत पैसा बरबाद किया जाता है। फिर भी अहिंसाके न होनेसे हिन्दू गायके रक्षक बननेके बजाय उसके नाश करनेवाले बन गये हैं। गो-रक्षाका काम हिन्दुस्तानसे विदेशी हुकूमतको हटानेके कामसे भी ज्यादा कठिन है।

हरिजन-सेवक
३१ अगस्त, १९४७

❀

अहिंसा कहां, खादी कहां?

काठियावाड़से एक भाई लिखते हैं :—

"दूसरे सूबोंकी तरह यहाँ काठियावाडमें भी खादी और अहिंसा परसे अपनी श्रद्धा हटा लेनेवालोंकी तादाद बढ़ती जा रही है, ऐसी दलीलें पेश करनेवाले आज कांग्रेसी हैं और गान्धी-भक्त भी हैं।"

इस खतमें इस तरहकी बहुतसी बातें लिखी हैं, मगर मैंने तो सिर्फ उसमेंसे मुद्देकी बात निकाल ली है।

इस छोटेसे वाक्यमें तीन विचारदोष हैं। मैं पहले कई बार समझा चुका हूँ कि काठियावाड़ या दूसरे प्रदेशोंने अहिंसामें या खादीमें श्रद्धा रक्खी ही नहीं थी। मैंने यह मानकर अपने आपको धोखा दिया था कि लोग अहिंसाका पालन करते हैं और खादीको उसकी निशानीकी तरह अपनाते हैं। अहिंसाके नामपर लोगोंने कमजोरोंको शान्त रक्खा, मगर उनके दिलोंसे तो हिंसा कभी गई ही नहीं। अब तो इस बातको हम अच्छी तरहसे देख सकते हैं। काठियावाडमें राम नहीं है, यह बात तो जब मैं राजकोटके किस्सेके बारेमें गया था, तभी साफ मालूम हो गई थी। इसलिए यह कहनेमें कोई सार नहीं है कि आज काठियावाड़की श्रद्धा कम होती जा रही है।

राजनीतिमें अहिंसा नहीं चल सकती, ऐसा कहना भी ठीक नहीं है। जब आप परदेशी हुकूमतके खिलाफ लडे, तब वह राजनीति नहीं थी, तो और क्या था? अब तो राजनीति बहुत थोड़ी है। आज धर्मके नामपर लूट-पाट होती है। लोगोंने परदेशी हुकूमतके खिलाफ लडनेमें जो शान्ति रक्खी, वह आज मानो खत्म हो गयी है।

तीसरा दोष यह है कि इसमें कांग्रेसी और गाँधी-भक्तोंके बीच भेद किया गया है। इस भेदको मैं बिलकुल बेबुनियाद मानता हूँ। अगर कोई गाँधी-भक्त हो, तो वह मैं ही हूँ। मगर मुझे उम्मीद है कि ऐसा घमण्ड मुझमें नहीं है। भक्त तो भगवानके होते हैं। मैं तो अपनेको भगवान नहीं मानता। फिर मेरे भक्त कैसे? और यह कैसे कहा जा सकता है कि अपने आपको गाँधीभक्त कहनेवाले लोग कांग्रेसी नहीं हैं? कांग्रेसके ऐसे अनगिनत सेवक हैं जो उसके चार आना मेम्बर भी नहीं हैं। उनमेंसे मैं भी एक हूँ। इसलिए यह भेद कृत्रिम है।

आज देशमें कई चीजें चल रही हैं। उनमे मेरा जरा भी हिस्सा नहीं है, यह बात मुझे जोर-जोरसे कहनी चाहिये मैं कह तो चुका हूँ कि यह छिपी बात नहीं है कि कांग्रेसने हुकूमत संभाली, तबसे वह अहिंसाको तिलांजलि दे चुकी है। मेरी रायमें, कांग्रेस सरकारने खुराक और कपड़ेपर जिस तरह अंकुश रखा है, वह घातक है।

मेरी चले, तो मैं अनाजका एक दाना भी बाहरसे न खरीदूं। मेरा विश्वास है कि आज भी हिन्दुस्तानमें काफी अनाज है। सिर्फ कंट्रोलकी वजहसे देहातके लोग उसे छिपाकर रखनेकी जरूरत महसूस करनेको लाचार हुए हैं। अगर लोग मेरी बात मानते होते, तो हिन्दू, सिख और मुसलमानोके बीच कभी लडाई नही होती। साफ बात यह है कि मेरी बातकी आज कोई कीमत नहीं रही। मेरी आवाजकी कीमत अब अरण्य-रोदन या जगलोंमें रोनेके बराबर हो गई है।

खादीको अहिंसासे अलग करें तो उसके लिए थोडी जगह जरूर है। मगर अहिंसाकी निशानीके रूपमें जो उसका गौरव होना चाहिये, वह आज नहीं है। राजनीतिमें हिस्सा लेनेवाले जो लोग आज खादी पहनते हैं, वे रिवाजकी वजहसे ऐसा करते हैं। आज जय खादी-की नहीं, बल्कि मिलके कपडेकी है। हम मान बैठे हैं कि अगर मिलें न हो, तो करोड़ो इसानोको नंगा रहना पडे। इससे बडा भ्रम और क्या हो सकता है? हमारे देशमें काफी कपास है, करघे हैं, चरखे हैं। कातने-बुननेकी कला है, फिर भी यह डर हमारे दिलोमें घर कर गया है कि करोडो लोग अपनी जरूरतकी कमी पूरी करनेके लिये अपने कातने-बुननेका काम अपने हाथोमें नहीं लेंगे। जिसके दिलमें डर समा गया है, वह उस जगह भी डरता है, जहाँ डरका कोई कारण नहीं होता, और डरसे जितने लोग मरते है, उतने रोगसे या मौतसे नही मरते हैं?

हरिजन सेवक
२ नवम्बर, १९४७

❀

अहिंसा उनका क्षेत्र नहीं!

एक अखबारी रिपोर्टमें बताया गया है कि मेजर जनरल करिअप्पाने अहिंसाके बारेमें नीचे लिखी बातें कही हैं :—

"आजकी हालतमें हिन्दुस्तानको अहिंसासे कोई फायदा नही होगा। सिर्फ ताकतवर फौज ही हिन्दुस्तानको दुनियाके सबसे बडे राष्ट्रोमें जगह दिला सकती है।"

मुझे डर है कि अहिंसाके बारेमें ऊपरकी बात कहकर बहुतसे निष्णातो या माहिरोकी तरह जनरल करिअप्पा अपनी हदसे बाहर चले गये है और अनजानमें ही उन्होने अहिंसाकी ताकतके बारेमें बड़ी गलत कल्पना कह बतायी है। कुदरती तौरपर अपने क्षेत्रमें काम करते हुए, उन्हें अहिंसाकी ताकत और उसके कामका बहुत छिछला ज्ञान ही हो सकता है। जीवन भर अहिंसापर अमल करनेके कारण मैं अहिंसाका माहिर होनेका दावा करता हूं। हालांकि मैं बहुत अपूर्ण हूं। साफ और निश्चित शब्दोमें मै यह कहना

चाहता हूँ कि मैं जितना ज्यादा अहिंसापर अमल करता हूँ, उतना ही साफ मुझे यह दिखाई देता है कि मैं अपने जीवनमें अहिंसाको पूरी तरह उतारनेकी हालतसे कोसों दूर हूँ। इस तथ्य या सच्चाईकी जानकारी, जो कि दुनियामें सबसे भारी फर्ज है, न होनेसे ही जनरल करिअप्पाने यह कहा है कि आजके जमानेमें हिंसाके सामने अहिंसा कुछ नहीं कर सकती। लेकिन मैं तो हिम्मतके साथ यह कहता हूँ कि इस ऐटम-बमके जमानेमें शुद्ध अहिंसा ही ऐसी ताकत है जो हिंसाकी सारी चालोंको नीचा दिखा सकती है। जनरल करिअप्पा जिन्हें अब फौजी साइन्स और फौजी अमलके अपने जानकार ब्रिटिश उस्तादोकी मदद नहीं मिल सकती, इस तरह अपनी सीमाको न लाघते तो अच्छा होता। जनरल करिअप्पासे ज्यादा बडे बडे जनरलोने काफी समझदारी और नम्रतासे साफ साफ शब्दोमें यह कबूल किया है कि अहिसाकी ताकत क्या कुछ कर सकती है, इसके बारेमें उन्हें कहनेका कोई हक नहीं है। हम फौजी साइंस और फौजी अमलका भयानक दिवालियापन उसकी पैदायशकी जगहोमें देख रहे हैं। जो आदमी सट्टा बाजारमें जुआ खेलकर दिवालिया बना है, उसे क्या उस खास तरहके जुएकी तारीफके गीत गाने चाहिए ?

हरिजन सेवक
१६ नवम्बर, १९४७

❀

अहिंसा की मर्यादा

एक सज्जनने मुझे खत लिखा है। उसका सार इस तरह है :—

"व्यक्तिगत अहिंसा समझी जा सकती है। दोस्तोके बीचकी समाजी अहिसा भी समझमें आ सकती है। लेकिन आप तो कहते है कि दुश्मनोके सामने भी अहिंसाका इस्तेमाल किया जा सकता है। यह तो आकाशके फूल सी असभव बात मालूम होती है। मेहरबानी करके आप यह हठ छोड दें तो अच्छा हो। अगर आप अपना यह हठ नही छोडेंगे तो आज तक की कमाई हुई आबरू खो देंगे। आप महात्मा माने जाते है, इसलिये समाजके बहुतसे लोग आपके रास्ते चलकर दुखी और पामाल हो रहे है और आगे भी होंगे। इसमे समाजको नुकसान हो रहा है।"

जिस अहिंसाकी हद एक व्यक्ति तक है, वह समाजके कामकी नहीं। मनुष्य समाजी जीव है। इसलिए उसकी शक्तियाँ ऐसी होनी चाहिए कि समाजके सब लोग कोशिशसे उन्हें अपनेमें बढ़ा सकें। दोस्तोके बीच ही जो सीखा और बढाया जा सके, वह गुण विनय या नम्रता है। उसमें अहिंसाका थोडा अश है। लेकिन वह अहिंसाके नामसे पहचाने जाने लायक नही है। अहिंसाके सामने वैरका त्याग होना ही चाहिये, यह महा-

वाक्य है। यानी जहाँ वैर अपनी आखिरी हद तक पहुँच चुका हो, वहाँ इस्तेमाल की जानेवाली अहिंसा भी ऊँचीसे ऊँची चोटी तक पहुँची हुई होनी चाहिये। यह अहिंसा सीखनेमें बहुत समय लगेगा। सभव है पूरी जिन्दगी खतम हो जाय। लेकिन उससे वह बेकार या निरर्थक नहीं हो जाती। इस अहिंसाके रास्ते चलते चलते कई अनुभव होंगे। वे दिनो दिन ज्यादा भव्य और प्रभावशाली होंगे। अहिंसाकी आखिरी चोटीपर पहुँचनेपर उसकी सुन्दरता कैसी होगी, इसकी झांकी यात्रीको रोज-ब-रोज देखनेको मिलती रहेगी और उसकी खुशी व उत्साह बढेगा। इसका मतलब यह नही लगाया जा सकता कि मुसाफिरको रास्तेमें दिखलाई देनेवाले सारे दृश्य मीठे और लुभावने मालूम होंगे। अहिंसाका रास्ता गुलाबके फूलोकी सेज नही, वह कांटोका रास्ता है। प्रीतम कविने गाया है कि 'हरिनो मारग छे शूरानो, नहि कायरनु काम जोने।'

इस समयका वातावरण इतना जहरीला बन गया है कि हम सयाने और अनुभवी लोगोके वचन याद रखनेसे इन्कार करते है। रोज रोज होनेवाले छोटे मोटे अनुभवोको भी नही देख सकते। बुराईका बदला भलाईसे चुकाना चाहिए, यह बात सबके मुंह पर होती है। इसका रोज रोज अनुभव भी होता है। फिर भी हम यह क्यों नही देख सकते कि अगर यह दुनिया वैरसे भरी होती, तो इसका कभी अन्त हो गया होता? आखिरमें दुनियामें प्रेम ही बढता गया। उससे दुनिया टिकी है और टिकती है।

इतनी बात सच है कि अहिंसाकी तालीम लेनी होती है और उसे बढाना पडता है। उसकी गति ऊपर को होती है इसलिए उसको ऊँची से ऊँची चोटी तक पहुँचनेमें बड़ी मेहनत करनी पडती है। नीचे उतरनेमें मेहनत नही पड़ती। हम सब इस बारेमें अशिक्षित है, इसलिए जीवनमें मारकाट, गाली गलौजसे ही हमारा स्वाभाविक अनुभव होता है।

अहिंसा अनुभवसे मँजे हुए आदमीको ही चुनती है।

हरिजन सेवक
१४ दिसम्बर, १९४७

❀

क्या मैं इसका अधिकारी हूँ?

मेहमानदारी करनेवाले हिन्दुस्तानका किनारा छोडनेसे पहले रेवरेण्ड डा० जोन-हेनिस होम्सने मुझे एक लम्बा खत लिखा था। उसमें वह कहते हैं —

"बेशक, हालके महीनोमें होनेवाली दुःखभरी घटनाओंसे आप बहुत ज्यादा दुःखी हुए हैं—उनके बोझसे आप दबसे गये हैं—लेकिन आपको यह कभी नही महसूस करना चाहिये कि इससे आपकी जिन्दगीके कामको किसी तरहका धक्का लगा है। मनुष्य स्वभाव

ज्यादा सहन नही कर सकता—वह बहुत बडे दवावके नीचे टूट पडता है—और इस मामलेमें वह दबाव जितना अचानक था, उतना ही भयानक भी था। लेकिन इस मौके पर भी हमेशाकी तरह आपका उपदेश सच्चा और आपका नेतृत्व ठोस बना रहा। आपने अकेले हाथो हिन्दुस्तानको बरबादीसे बचा लिया और अब पल-भरके लिये जो हार दिखायी दी, उसमेंसे जीतको जन्म दिया। पिछले कुछ महीनोको मैं आपके अनोखे जीवनकी बडी-से-बडी विजयके महीने मानता हूँ। इन अधेरेसे भरे दिनोमें आप जितने महान साबित हुए है, उतने पहले कभी न हुए थे।"

मुझे ताज्जुब होता है कि क्या यह दावा साबित किया जा सकता है? इसमें मुझे जरा भी शक नही कि अहिंसाके बारे में डा० होम्सने जो कुछ कहा है, उससे कई गुना साबित करके दिखाया जा सकता है। मेरी कठिनाई बुनियादी है। क्या डा० होम्सने अहिंसाकी जितनी तारीफ की है, उसके उतने गुण भी दुनियाको दिखाने लायक योग्यता मैंने हासिल कर ली है? मैं अहिंसाके कामोको कितने ही अपूर्ण रूपसे क्यो न जानू, फिर भी उसके बारेमें ऐसे दावे जिन्हें बिना किसी शकके साबित न किया जा सके पेश करनेमें ज्यादा से ज्यादा सावधानी रखना मैं हर कारणसे जरूरी समझता हूँ।

हरिजन सेवक
११ जनवरी, १९४८

अहिंसा कभी नाकाम नहीं जाती

एक यूरोपियन भाई और गांधीजीके बीच जो खत आये गये हैं वे सबके लाभके लिये नीचे दिये जाते हैं।

यूरोपियन भाई लिखते हैं :—

"राय वाकरने आपके काम पर, जो सराहनेके काबिल है, "सोर्ड आफ गोल्ड" नामक एक किताब लिखी है, जिसे पढकर रोंगटे खडे हो जाते हैं। मैंने उस किताबको ध्यानसे पढ़ा। उससे पता चला कि आपने जिन्दगी भर अहिंसापर चलने और दूसरोको चलानेकी पूरी कोशिश की है। किताब पढकर मेरी तसल्ली हो गई कि कम से कम जहाँ तक हिन्दुस्तानके नेताओ और आम लोगोका सवाल है, अपनी अपार लगनकी बदौलत आपको अपने काममें कामयाबी मिली है। ब्रिटेनने जो जाहिरा तौरपर इस तरह नेकदिली और दोस्तीके साथ हिन्दुस्तान छोड दिया, उससे यह उम्मीद मालूम होती है कि अहिंसाकी कदर सिर्फ आपके ही मुल्क तक महदूद नही है। मालूम होता है हिंसाकी मजबूत, मोटी दीवार पहली बार कही कही कुछ टूटी है, और इन्सानी समाजके लिये कुछ भले दिन आनेवाले हैं।

पर जार्ज डेवीजके 'पीस न्यूज' के आखिरी एडीशनमें यह छपा है कि आप

खुद एक तरह अपनी हार मान रहे हैं। उसे पढकर मुझे उतनी ही मायूसी हुई। मेरा दिल यह पढकर बडा दु:खी हुआ कि आपको खुद आज जो मायूसी अपने दिलमें महसूस हो रही है, वह पहले कभी नही हुई थी। यह सच है कि ईश्वर आदमी की कामयाबी नही देखता, बल्कि उसकी सच्चाई और प्रेम देखता है। फिर भी यह देखकर दुख होता है कि इन्सानी समाज हिंसामें इतना डूबा हुआ है कि आपने और आपके थोडेसे साथियोने जिन्दगी भर जो रूहानी ताकत दिखाई है और जबरदस्त कुर्बानियाँ की है, उनका भी समाजपर असर नही हुआ है।

"मैं मानता हूँ कि चीजोकी असलियतको जितनी अच्छी तरह आप देख और समझ सकते है। फिर भी मैं नहीं मान सकता कि आपकी इतनी जबरदस्त और बहादुरीकी कोशिशें निकम्मी जायें और इन्सानी समाजपर उनका असर न हो। आपने अपने शब्दोसे और अपने कामोसे जो अच्छे बीज मेहनतके साथ लगातार अपने चारो तरफ बोये है, वे फिजूल जायँ, यह दिल नहीं मानता।

"जो भी हो कम से कम (और मुझे भरोसा है कि जो बात मै कहता हूँ वही करोडोके दिलसे निकल रही है) मैं अपना जरूरी फर्ज समझता हूँ कि आप जिस चीजको इन्सानी समाजके भले और उसके छुटकारेका एकमात्र रास्ता मानते थे उसके लिये आपने जो अपनी सारी जिन्दगी दे दी, उसके लिये मैं दिलसे आपका हद दरजेका अहसान मानू।"

जिस रिपोर्टका आपने जिक्र किया है, वह मैंने नही देखी। कुछ भी हो, मैंने जो कुछ भी कहा है, उसका मतलब अहिंसाकी नाकामीसे नहीं है। मैंने जो कुछ कहा है उसका मतलब यह है कि मैं खुद वक्तपर इस बातको न देख सका कि जिसे मैंने अहिंसा समझा था, वह अहिंसा थी ही नही बल्कि कमजोरोका पैसिव रेसिस्टेंस—निष्क्रिय विरोध—था, जो किसी मानीमें भी कभी अहिंसा कहा ही नहीं जा सकता। आज हिन्दुस्तानमें जो भाई भाईकी लडाई हो रही है, वह सीधा नतीजा उन ताकतोका है जो तीस बरसके कमजोरोके कारनामोने पैदा कर दी है। इसलिए आज जो दुनिया भरमें हिंसा फूट पडी है उसे ठीक ठीक देखनेका सही तरीका यही है कि हम इस बातको समझें कि मजबूत लोगोकी उस अहिंसाका ढंग, जिसे कोई जीत ही नहीं सकता, अभी हमने बिलकुल पूरी तरह समझ नहीं पाया है। सच्ची अहिंसाकी ताकतका एक माशा भी कभी जाया नहीं जा सकता। इसलिए हमें यह घमड नहीं करना चाहिये—और न आप जैसे दोस्तोको इस धोखेमें रहना चाहिये कि मैंने अपने अन्दर भी कोई बडी बहादुरी भरी और टकसाली अहिंसा दर्शायी है। मैं सिर्फ इतना दावा कर सकता हूँ कि मैं बिना रुके उस तरफ बढ़ा चला जा रहा हूँ।

मेरी इस बातसे अहिंसामें आपका विश्वास मजबूत हो जाना चाहिये और इसमे आपको और आप जैसे दोस्तोको इस रास्ते पर और तेजीसे बढनेमें मदद मिलनी चाहिये।

हरिजन सेवक

११ जनवरी, १९४८

[३० जनवरी १९४८ को सायंकालकी प्रार्थनाके
लिये जाते समय हत्यारेकी गोलीसे
मानवताके पुजारी विश्व-वद्य
महात्मा गाधीका देहावसान
हो गया ।]

गांधीजी

खण्ड दस

अहिंसा

(तृतीय भाग)

सूची

❀

मूल्य डेढ़ रुपया

(प्रथम संस्करण : जून, १९४९)

प्रकाशक
जयनाथ शर्मा
व्यवस्थापक
काशी विद्यापीठ प्रकाशन विभाग
बनारस छावनी

मुद्रक
पं० पृथ्वीनाथ भार्गव
अध्यक्ष
भार्गव भूषण प्रेस, गायघाट
काशी

सूची

❀

थी। और जगतका इधर इतने दिनोंका इतिहास बता रहा है कि महात्मा गांधीका अहिंसाका सिद्धांत ही व्यावहारिक और उपादेय है। यदि सारी संस्कृतिको नष्ट होनेसे बचाना है तो महात्माजीकी अहिंसाकी भावनाका ही जगतमें प्रचार करना उचित होगा।

महात्माजीके जीवनमें ही इस जड़वादके युगमें अहिंसाकी ओर लोगोंका कम ध्यान था। लोग उसे केवल दार्शनिक सिद्धान्त समझ रहे थे यद्यपि महात्माजीने सफलतापूर्वक अपने जीवनके प्रत्येक क्षेत्रमें इसका उपयोग किया। आज उनके गत हो जानेपर तो हम लोग अहिंसाको प्रायः भूल गये है और हमारी सारी विपत्तियों तथा कठिनाइयोंकी मूलमें यही है। इसलिये इस समय इस वातकी अधिक अपेक्षा है कि हम अहिंसाके सिद्धांतोंका अध्ययन करें, मनन करें, प्रचार करे। हमें पूर्ण आशा है कि गाधीजी ग्रंथ मालाके ये खंड-देश तथा संसारके कल्याणमे सहायक होंगे।

❀

राष्ट्रपिता

बड़े-बड़े राष्ट्रोंके लिए अहिंसा

चेकोस्लोवाकियाके सम्बन्धमें लिखे हुए मेरे हालके लेखोंपर जो आलोचनाएँ हुई हैं, उनमेंसे एक चीजका जवाब देनेकी जरूरत मालूम पड़ती है।

कुछ आलोचकोंका कहना है कि चेकोंको मैंने जो उपाय सुझाया वह तुलनात्मक रूपसे कमजोर है। क्योंकि अगर वह चेकोस्लोवाकिया जैसे छोटे राष्ट्रोंके लिये है, और इंगलैण्ड, फ्रांस या अमेरिका जैसे बड़े-बड़े राष्ट्रोंके लिये नहीं, तो यदि उसका कोई महत्व भी हो तो भी वह अधिक मूल्यवान नहीं है।

लेकिन मेरे आलोचक मेरे लेखको फिरसे पढ़ें तो वे देखेंगे कि मैंने बड़े राष्ट्रोंको जो यह बात नहीं सुझाई इसका कारण उन देशोंका बड़ा होना या दूसरे शब्दोंमें मेरी भीरुता तो है ही, पर इसकी एक और भी खास वजह है। बात यह है कि वे मुसीबतजदा नहीं थे और इसलिये उन्हें किसी उपायकी भी जरूरत नहीं थी। डाक्टरी भाषामें कहूं तो चेकोस्लोवाकियाकी तरह रोगग्रस्त नहीं थे। उनके अस्तित्वको चेकोस्लोवाकियाकी तरह कोई खतरा नहीं था। इसलिये महान राष्ट्रोंसे मैं कोई बात कहता तो वह 'भैंसके आगे बीन बजाने' जैसा ही निष्फल होती।

अनुभवसे मुझे यह भी मालूम हुआ कि सद्गुणोंकी खातिर लोग सद्गुणी मुश्किलसे ही बनते हैं। वह तो आवश्यकतावश सद्गुणी बनते हैं। परिस्थितियोंके दबावसे भी कोई व्यक्ति अच्छा बने तो उसमें कोई बुराई नहीं, लेकिन अच्छाईके लिये अच्छा बनना उससे श्रेष्ठ है।

चेकोंके सामने सिवा इसके कोई उपाय ही न था कि या तो वे शांतिके साथ जर्मनीके आगे सिर झुका दें या अकेले ही लड़कर निश्चितरूपसे विनाशका खतरा उठायें। ऐसे अवसरपर मुझ जैसेके लिये यह आवश्यक मालूम हुआ कि वह उपाय पेश करूँ जिसने बहुत कुछ ऐसी ही परिस्थितियोंमें अपनी उपयोगिता सिद्ध कर दी है। चेकोंसे मैंने जो कुछ निवेदन किया, मेरी रायमें बड़े राष्ट्रोंके लिये भी वह उतना ही मौजूं है।

हाँ, मेरे आलोचक यह पूछ सकते हैं जबतक हिन्दुस्तानमें ही मैं अहिंसाकी सौ फी सदी सफलता करके न बतला दूं तबतक किसी पश्चिमी राष्ट्रसे उसके न कहनेकी जो कैद खुद ही अपने ऊपर लगा रक्खी है, उसके बाहर मैं क्यों गया? और खासकर अब, जब कि मुझे इस बातमें गम्भीर सन्देह होने लगा है कि कांग्रेसजन अहिंसाके अपने ध्येय या नीतिपर वस्तुत कायम हैं या नहीं? जब मैंने वह लेख लिखा तब कांग्रेसकी वर्त्तमान अनिश्चित स्थिति और अपनी मर्यादाका जरूर ध्यान था। लेकिन अहिंसात्मक उपायमें मेरा विश्वास हमेशाकी तरह दृढ था और मुझे ऐसा लगा कि ऐसे आड़े वक्त मैं चेकोंको अहिंसात्मक उपाय ग्रहण करनेको न कहूँ तो यह मेरी कायरता होगी। क्योंकि ऐसे करोड़ों आदमियोंके लिये, जो अनुशासनहीन हैं और अभी हालमें पहलेतक उसके आदी नहीं थे, जो बात अंतमें शायद असंभव साबित हो, वह

सम्मिलित रूपसे कष्ट-सहनके लायक छोटे और अनुशासनयुक्त राष्ट्रके लिये सम्भव हो सकती है। मुझे ऐसा विश्वास रखनेका कोई हक नहीं है कि हिन्दुस्तानके अलावा और कोई राष्ट्र अहिंसात्मक कार्यके लिये उपयुक्त नहीं है। अब मैं जरूर कबूल करूँगा कि मेरा यह विश्वास रहा है और अब भी है कि अहिंसात्मक उपाय द्वारा अपनी स्वतंत्रता फिरसे प्राप्त करनेके लिये हिन्दुस्तान ही सबसे उपयुक्त राष्ट्र है। इससे विपरीत आसारोंके बावजूद, मुझे इस बातकी उम्मीद है कि हमारा जनसमुदाय, जो कांग्रेससे भी बड़ा है, केवल अहिंसात्मक कार्य ही अपनायेगा। क्योंकि भूमण्डलके समस्त राष्ट्रोंमें हमीं ऐसे कामके लिये सबसे अधिक तैयार हैं। लेकिन जब इस उपायके तत्काल अमलका मामला हमारे सामने आया, तो चेकोंको उसे स्वीकार करनेके लिये कहे बगैर मैं न रह सका।

मगर बड़े-बड़े राष्ट्र चाहें, तो चाहे जिस किसी दिन इसको अपनाकर गौरव ही नहीं बल्कि भावी पीढियोंकी शाश्वत कृतज्ञता भी प्राप्त कर सकते हैं। अगर वे या उनमेंसे कुछ विनाशके भयको छोड़कर निःशस्त्र हो जायँ तो बाकी सब फिरसे अक्लमंद बननेमें अपने आप सहायक होंगे। लेकिन उस हालतमें इन बड़े-बड़े राष्ट्रोंको साम्राज्यवादी महात्वाकांक्षा तथा भूमण्डलके असभ्य तथा अर्द्ध-सभ्य कहे जानेवाले राष्ट्रोंके शोषणको छोडकर अपने जीवन-क्रमको सुधारना पड़ेगा। इसका अर्थ हुआ पूर्ण-क्रांति। पर बडे-बड़े राष्ट्र साधारण रूपमें विजयपर विजय प्राप्त करनेकी अपनी धारणाओंको छोड़कर जिस रास्तेपर चल रहे हैं, उससे विपरीत रास्तेपर वे एकदम नहीं चल सकते। लेकिन चमत्कार पहले भी हुए हैं और इस बिलकुल नीरस जमानेमें भी हो सकते हैं। गलतीको सुधारनेकी ईश्वरकी शक्तिको भला कौन सीमित कर सकता है। एक बात निश्चित है। शस्त्रास्त्र बढानेकी यह उन्मत्त दौड अगर जारी रही, तो उसके फलस्वरूप ऐसा जन-संहार होना लाजिमी है जैसा इतिहासमें पहले कभी नहीं हुआ। कोई विजयी बाकी रहा तो जो राष्ट्र विजयी होगा उसकी विजय ही उसके जीते-जी मृत्यु बन जायगी इस निश्चित विनाशसे बचनेका इसके सिवा कोई रास्ता नहीं है कि अहिंसात्मक उपायको, उसके समस्त फलितार्थोंको साहसपूर्वक स्वीकार कर लिया जाय। प्रजातंत्र और हिंसाका मेल नहीं बैठ सकता। जो राज्य नामके लिये आज प्रजातंत्री हैं उन्हें या तो स्पष्ट रूपसे तानाशाहीका हामी हो जाना चाहिये, या अगर उन्हें सचमुच प्रजातंत्री बनना है तो, उन्हें साहसके साथ अहिंसक बन जाना चाहिये। यह कहना बिलकुल वाहियात है कि अहिंसाका पालन केवल व्यक्ति ही कर सकते हैं, राष्ट्र हर्गिज नहीं, जो व्यक्तियोंसे बने हैं।

हरिजन सेवक
१२ नवम्बर, १९३८

❀

आत्म-रक्षा कैसे करें ?

पंजाबके एक कालेजकी लड़कीका एक अत्यंत हृदयस्पर्शी पत्र करीबन दो महीनेसे मेरी फाइलमें पडा हुआ है। इस लडकीके प्रश्नका जवाव जो अभीतक नहीं दिया इसमें समयके अभावका तो एक वहाना था। किसी न किसी तरह इस कामसे अपनेको मैं बचा रहा था, हालांकि मैं जानता था कि इस प्रश्नका क्या जवाव देना चाहिये। इस बीचमें मुझे एक और पत्र मिला। यह पत्र एक ऐसी बहनका लिखा हुआ है, जो बहुत अनुभव रखती है। मुझे ऐसा महसूस हुआ कि कालेजकी इस लड़कीको जो यह बहुत वास्तविक कठिनाई है, उसका मुकाबला करना मेरा कर्त्तव्य है, और इसकी अब मैं और अधिक दिनोंतक उपेक्षा नहीं कर सकता। पत्र उसने शुद्ध हिन्दुस्तानीमें लिखा है, जिसका एक भाग मैं नीचे उद्धृत कर रहा हूँ—

"लडकियों और वयस्क स्त्रियोंके सामने उनकी इच्छाके विरुद्ध, ऐसे अवसर आ जाया करते है, जव 'उन्हें अकेली जानेकी हिम्मत करनी पडती है—या तो उन्हें एक ही शहरमें एक जगहसे दूसरी जगह जाना होता है या एक शहरसे दूसरे शहरको। और जब वे इस तरह अकेली होती हैं, तव गदी मनोवृत्तिवाले लोग उन्हें तग किया करते हैं। वे उस वक्त अनुचित और अश्लील भाषा तकका प्रयोग करते हैं। अगर भय उन्हें रोकता नहीं है तो इससे भी आगे वढनेमें उन्हें कोई हिचकिचाहट नहीं होती। मैं यह जानना चाहती हूँ कि अहिंसा ऐसे मौकोंपर क्या काम दे सकती है। हिंसाका उपयोग तो है ही। अगर किसी लडकी या स्त्रीमें काफी हिम्मत हो, तो उसके पास जो भी साधन होंगे उन्हें वह काममें लायेगी और बदमाशोंको एक वार सवक सिखा देगी। वे कमसे कम हगामा तो मचा सकती हैं, जिससे कि लोगोंका ध्यान आकर्षित हो जाय, और गुडे वहाँसे भाग जायें। लेकिन मैं यह जानती हूँ कि इसके परिणाम-स्वरूप विपत्ति सिर्फ टल जायगी, यह कोई स्थायी इलाज नही है। अशिष्ट व्यवहार करनेवाले लोगोंका अगर पता है तो मुझे विश्वास है कि उन्हें अगर समझाया जाय, तो वे आपकी प्रेम और नम्रताकी वातें सुनेंगे। पर उस आदमीके लिए आप क्या कहेंगे, जो साइकिलपर चढा हुआ किसी लडकी या स्त्रीको देखकर, जिसके साथ कोई मर्द साथी नहीं है, गदी भाषाका प्रयोग करता है? उसको दलील देकर समझानेका आपको मौका नही। आपकी उससे फिरसे मिलनेकी कोई सम्भावना नहीं। हो सकता है कि आप उसे पहचाने भी नहीं। आप उसका पता भी नहीं जानते। ऐसी परिस्थितियोंमे वह बेचारी लडकी या स्त्री क्या करे? मैं अपना ही उदाहरण देकर आपको अपना अनुभव बताती हूँ। २६ अक्तूवरकी रातकी वात है। मैं अपनी एक सहेलीके साथ ७-३० वजेके करीव एक खास कामसे जा रही थी। उस वक्त किसी मर्द साथीको ले जाना नामुमकिन था, और काम इतना जरूरी था कि टाला नहीं जा सकता था। रास्तेमें एक सिक्ख युवक साइकिलपर जा रहा था। वह कुछ गुन-गुनाता जाता था। जवतक हम सुन सके, उसने गुनगुनाना जारी रखा। हमें यह मालूम था कि यह हमें लक्ष करके ही गुन-गुना रहा है। हमें उसकी यह हरकत बहुत नागवार मालूम हुई। सडकपर कोई चहल-पहल

नहीं थी। हमारे चन्द कदम जानेके वाद वह लौट पडा। हम उसे फौरन पहचान गये, हालांकि वह अब भी हमसे खासे फासलेपर था। उसने हमारी तरफ साइकिल घुमायी। ईश्वर जाने, उसका इरादा उतरनेका था, या सिर्फ यूँही हमारे पाससे गुजरनेका। हमें ऐसा लगा कि हम खतरेमें हैं। हमें अपनी शारीरिक वहादुरीमें विश्वास नहीं था। मैं एक औसत लडकीके मुकाबले शरीरसे कमजोर हूँ। लेकिन मेरे हाथमें एक वडी-सी किताब थी। यकायक किसी तरह मेरे अन्दर हिम्मत आ गयी। साइकिलकी तरफ मैंने उस किताबको जोरसे मारा और चिल्ला कर कहा "चुहलवाजी करनेकी तू फिर हिम्मत करेगा ?" वह मुश्किलसे अपनेको सभाल सका, और साइकिलकी रफ्तार बढा वहाँसे रफूचक्कर हो गया। अव अगर मैंने उसकी साइकिलकी तरफ किताव जोरसे न मारी होती तो वह अन्ततक इसी तरह अपनी गदी भाषासे हमें तग करता जाता। यह तो एक मामूली, वल्कि नगण्य-सी घटना है, पर मैं चाहती हूँ कि आप लाहौर आते और हम हतभागिनी लडकियोंका दास्तान खुद अपने कानों सुनते। आप निश्चय ही इस समस्याका ठीक-ठीक हल ढूँढ सकते हैं। सवसे पहले आप मुझे यह वतायें कि ऊपर जिन परिस्थितियोंका वर्णन मैंने किया है उनमें लडकियाँ अहिंसाके सिद्धान्तका प्रयोग किस तरह कर सकती हैं। और कैसे अपने आपको बचा सकती हैं। दूसरे स्त्रियोंको अपमानित करनेकी जिन युवकोंमें यह वहुत बुरी आदत पड गयी है उनको सुधारनेका क्या उपाय है ? आप यह उपाय न सुझाइयेगा कि हमें उस नयी पीढीके आनेतक इतजार करना चाहिये और तवतक हम इस अपमानको चुपचाप बर्दाश्त करते रहें, जिस पीढीने बचपनसे ही स्त्रियोंके साथ भद्रोचित व्यवहार करनेकी शिक्षा पायी होगी। सरकारकी या तो इस सामाजिक बुराईका मुकावला करनेकी इच्छा नहीं या ऐसा करनेमें वह असमर्थ है। और हमारे बडे-वडे नेताओंके पास ऐसे प्रश्नके लिये वक्त नहीं। कुछ जब सुनते हैं कि किसी लडकीने अशिष्टतासे पेश आनेवाले नवयुवककी अच्छी तरहसे मरम्मत कर दी है, तो कहते हैं 'शावाश, ऐसा ही सव लडकियोंको करना चाहिये।' कभी-कभी किसी नेताको हम विद्यार्थियोंके ऐसे दुर्व्यवहारके खिलाफ छटदार भाषण करते हुए पाते हैं। मगर ऐसा कोई नजर नहीं आता, जो इस गम्भीर समस्याका हल निकालनेके लिये निरन्तर प्रयत्नशील हो। आपको यह जानकर कष्ट और आश्चर्य होगा कि दीवाली और ऐसे ही दूसरे त्यौहारोंपर इस किस्मकी चेतावनीकी नोटिसें निकला करती हैं कि रोशनी देखनेके लिये औरतोंको घरोंसे वाहर नहीं निकलना चाहिये। इसी एक वातसे आप जान सकते हैं कि दुनियाके इस हिस्सेमें हम किस कदर मुसीवतोंमें फँसी हुई हैं। ऐसी-ऐसी नोटिसोंको जो लिखते हैं न तो वे ही कुछ शर्म खाते हैं, और न पढनेवाले ही कि ऐसी चेतावनियाँ क्या उन्हें निकालनी चाहियें ?"

एक दूसरी पजावी लड़कीको यह पत्र मैंने पढनेके लिये दिया था। उसने भी अपने कालेज-जीवनके निजी अनुभवके आधारपर इस घटनाका-समर्थन किया। उसने मुझे वताया कि मेरे सवाददाताने जो कुछ लिखा है, वहुत-सी लककियोंका अनुभव वैसा ही होता है।

एक और अनुभवी महिलाने लखनऊकी अपनी विद्यार्थिनी मित्रोंके अनुभव लिखे हैं। सिनेमा, थियेटरोंमें उनकी पिछली लाइनमें बैठे हुए लडके उन्हें दिक करते हैं और उनके

लिये जैसी भाषाका प्रयोग करते हैं, उसे मैं अश्लीलके सिवा और कोई नाम नहीं दे सकता। उन लडकियोंके साथ किये जानेवाले भद्दे मजाक भी पत्र-लेखिकाने मुझे लिखे हैं, लेकिन मैं उन्हें उद्धृत नहीं कर सकता।

अगर सिर्फ तात्कालिक निजी रक्षाका सवाल हो,तो इसमें सन्देह नहीं कि उस लड़कीने जो अपनेको शारीरिक दृष्टिसे कमजोर बताती है, जो इलाज, साइकिल सवारपर जोरसे किताब मारकर किया, वह बिलकुल ठीक है। यह बहुत पुराना इलाज है। मैं 'हरिजन' में पहले भी लिख चुका हूँ कि यदि कोई व्यक्ति जबर्दस्ती करनेपर उतारू होना चाहता है, तो उसके रास्तेमें शारीरिक कमजोरी भी रुकावट नहीं डालती, भले ही उसके मुकाबलेमें शारीरिक दृष्टिसे विरोधी बहुत बलवान हो। और हम यह भली-भाँति जानते हैं कि आजकल तो जिस्मानी ताकत इस्तेमाल करनेके इतने ज्यादा तरीके ईजाद हो चुके हैं कि एक छोटी, लेकिन काफी समझदार लड़की किसीकी हत्या और विनाशतक कर सकती है। जिस परिस्थितिका जिक्र पत्र-लेखिकाने किया है, वैसी परिस्थितियोंमें लड़कियोंको आत्मरक्षाके तरीके सिखानेका रिवाज आजकल बढ रहा है। लेकिन लड़की यह भी खूब समझती है कि भले वह उस क्षण आत्मरक्षाके हथियारके तौरपर अपने हाथकी किताब मारकर बच गयी हो, लेकिन इस बढती हुई बुराईका यह कोई असली इलाज नहीं है। भद्दे या अश्लील मजाकके कारण बहुत घबड़ाने या डरनेकी जरूरत नहीं, लेकिन इनकी ओरसे आँख मूँद लेना भी ठीक नहीं। ऐसे सब मामले अखबरोंमें छपा देने चाहिये। ठीक-ठीक मालूम होनेपर शरारतियोंके नाम भी अखबारोंमें छप जाने चाहियें। इस बुराईका भण्डाफोड़ करनेमें किसीका झूठा लिहाज नहीं करना चाहिये। सार्वजनिक बुराईके लिये प्रबल लोकमत जैसा कोई अच्छा इलाज नहीं है। इसमें कोई शक नहीं कि इन मामलोंको जनता बहुत उदासीनतासे देखती है, लेकिन सिर्फ जनताको ही क्यों दोष दिया जाय? उनके सामने ऐसी गुस्ताखीके मामले भी तो आने चाहिये। चोरीतकके मामलोंके लिये उन्हें पता लगाकर छापा जाता है, तब कहीं जाकर चोरी कम होती है। इसी तरह जबतक ऐसे मामले भी दबाये जाते रहेंगे, इस बुराईका इलाज नहीं हो सकता। बुराई और पाप भी अपने शिकारके लिये अन्धकार चाहते हैं। जब उनपर रोशनी पड़ती है, वे खुदबखुद खत्म हो जाते हैं।

लेकिन मुझे यह भी डर है कि आजकलकी लड़कीको भी तो अनेकोंकी दृष्टिमें आकर्षक बनना प्रिय है। वह अतिसाहसको पसंद करती है। मालूम होता है कि पत्र-लेखिकाने जिस साहसका जिक्र किया है, वह असाधारण है। आजकलकी लड़की वर्षा या धूपसे बचनेके उद्देश्यसे नहीं, बल्कि लोगोंका ध्यान अपनी ओर खींचनेके लिये तरह-तरहके भडकीले कपड़े पहनती है। वह अपनेको रंगकर कुदरतको भी मात करना और असाधारण सुन्दर बनना चाहती है। ऐसी लडकियोके लिये कोई अहिंसक मार्ग नहीं है। मैं इन पृष्ठोंमें बहुत बार लिख चुका हूँ कि हमारे हृदयमें अहिंसाकी भावनाके विकासके लिये भी कुछ निश्चित नियम होते हैं। अहिंसाकी भावना बहुत महान प्रयत्न है।

विचार और जीवनके तरीकेमें यह क्रांति उत्पन्न कर देता है। यदि मेरी पत्र-लेखिका और उस तरहका विचार रखनेवाली लड़कियाँ ऊपर बताये गये तरीकेसे अपने जीवनको बिलकुल ही बदल डालें, तो उन्हें जल्दी ही यह अनुभव होने लगेगा कि उनके सम्पर्कमें आनेवाले नवजवान उनका आदर करना तथा उनकी उपस्थितिमें भद्रोचित व्यवहार करना सीखने लगे हैं। लेकिन यदि उन्हें मालूम होने लगे कि उनकी लाज और धर्मपर हमला होनेका खतरा है, तो उनमें उस पशु-मनुष्यके आगे आत्मसमर्पणके बजाय मर जानेतकका साहस होना चाहिये। कहा जाता है कि कभी-कभी लडकीको इस तरह बाँधकर या मुँहमें कपड़ा ठूँसकर विवश कर दिया जाता है कि वह आसानीसे मर भी नहीं सकती, जैसी कि मैंने सलाह दी है। लेकिन मैं फिर भी जोरोंके साथ यह कहता हूँ कि जिस लड़कीमें मुकाबलेका दृढ संकल्प है, वह उसे असहाय बनानेके लिये बाँधे गये सब बन्धनोंको तोड़ सकती है। दृढ संकल्प उसे मरनेकी शक्ति दे सकता है।

लेकिन यह साहस और यह दिलेरी उन्हींके लिये सभव है, जिन्होंने इसका अभ्यास कर लिया है। जिनका अहिंसापर दृढ विश्वास नहीं है, उन्हें रक्षाके साधारण तरीके सीखकर कायर युवकोंके अश्लील व्यवहारसे अपनेको बचाना चाहिये।

पर बडा सवाल तो यह है कि युवक साधारण शिष्टाचार भी क्यों छोड दें, जिनसे भली लड़कियोंको हमेशा उनसे सताये जानेका डर लगता रहे? मुझे यह जानकर दु:ख होता है कि ज्यादातर नौजवानोंमें बहादुरीका जरा भी माद्दा नहीं रहा। लेकिन उनमें एक वर्गके नाते नामवर होनेकी डाह पैदा होनी चाहिये। उन्हें अपने साथियोंमें होनेवाली प्रत्येक ऐसी वारदातकी जाँच करनी चाहिये। उन्हें हरएक स्त्रीको अपनी मा और बहनकी तरह आदर करना चाहिये। यदि वे शिष्टाचार नहीं सीखते, तो उनकी बाकी सारी लिखायी-पढायी फिजूल है।

और क्या यह प्रोफेसरों और स्कूल-मास्टरोंका फर्ज नहीं है कि वे लोगोंके सामने जैसे विद्यार्थियोंकी पढाईके लिये जिम्मेवार होते हैं उसी तरह उनके शिष्टाचार और सदाचारके लिये भी उनको पूरी तसल्ली दें?

हरिजन सेवक
३१ दिसम्बर, १९३८

❀

राजकोट

राजकोटकी लड़ाई जैसी शानके साथ शुरू हुई थी उसी तरह अभी हालमें ही समाप्त भी हो गयी है, लेकिन अभी तक उसके बारेमें मैंने शायद ही कुछ कहा हो। मेरी खामोशीकी यह वजह नहीं कि उसमें मेरी दिलचस्पी न हो। इस राज्यके साथ मेरे जो गहरे ताल्लुकात रहे हैं उनके कारण यह तो सम्भव ही नहीं है। इस रियासतमें मेरे पिता दीवान थे। इसके अलावा, वर्तमान ठाकुर साहबके पिता, जिनका कि अब स्वर्गवास हो चुका है, मुझे अपने पिताकी तरह मानते थे। मेरी खामोशीकी बात तो यह थी कि सरदार वल्लभभाई इस आन्दोलनकी आत्मा थे और उनकी या उनके कामकी प्रशंसा करना आत्म-स्तुति करनेके समान होगा।

इस लड़ाईने यह बतला दिया है कि अगर सामान्य प्रजा काफी तौरसे उसपर अमल करे, तो अहिंसात्मक असहयोग क्या नहीं कर सकता है। राजकोटकी प्रजाने इस लड़ाईमें जो एकता, दृढता और कष्ट-सहनकी क्षमता बतलायी है उसकी मुझे बिलकुल आशा नहीं थी। लेकिन लोगोंने बतला दिया है कि अपने शासककी बनिस्बत वे महान हैं और अहिंसात्मक कार्यमें एकमत प्रजाके सामने अंग्रेज दीवानकी भी कुछ नहीं चल सकती।

मेरे पास जो कागजात हैं उनसे मैं जानता हूं कि रेजिडेण्टके समर्थनसे सर पैट्रिक कैडलने जो कुछ किया वह ठाकुरसाहबके नौकरकी हैसियतसे बड़ा अशोभनीय है। उन्होंने तो इस तरहका काम किया मानों वही राज्यके मालिक हों। इस बातका कि वे शासक जातिके हैं, याने अंग्रेज हैं, और उनकी नियुक्ति केन्द्रीय सत्ता द्वारा हुई है, उन्होंने बड़ा दुरुपयोग किया है और वे यह मानकर चले कि अपनी मनमानी करनेका उन्हें पूरा अख्तियार है। यह लिखते वक्ततक मैं यह नहीं जानता कि वह नौकरीसे हट गये या क्या हुआ। मेरे पास जो पत्र-व्यवहार है उनसे जाहिर होता है कि अंग्रेज दीवानका रखना कहाँतक अक्लमन्दीकी बात है। इसपर राजाओंको गम्भीरताके साथ विचार करना चाहिये। केन्द्रीय सत्ताको भी अपने रेजिडेण्टोंपर इस बातकी निगरानी रखनी चाहिये कि उसकी घोषणाओंके शब्दोंपर ही नहीं बल्कि उनमें निहित भावनापर भी अमल होता है या नहीं।

जो राजा रेजिडेण्टोंके डरसे मरे जाते हैं, आशा है, वे राजकोटके इस उदाहरणसे जान जायेंगे कि अगर वे सच्चे हैं और उनकी प्रजा वस्तुतः उनके साथ है, तो उन्हें रेजिडेण्टोंसे डरनेकी कोई जरूरत नहीं। निस्सन्देह उन्हें यह महसूस करना चाहिये कि सार्वभौम सत्ता न तो शिमलामें है, न व्हाइटहालमें, बल्कि उनकी प्रजामें-ही उसका निवास है। अपनी अहिंसात्मक शक्तिपर विश्वास रखनेवाली जागृत प्रजा तो सशस्त्र शक्तियोंके किसी भी सम्मिलनके सामने स्वतंत्र ही रहती है। राजकोटमें तीन महीनेके अन्दर जो कुछ हुआ वही हरएक रियासतमें हो सकता है, बशर्ते वहांकी प्रजा भी वैसी ही हो, जैसी कि राजकोटकी साबित हुई है।

मैं यह दावा नहीं करता कि राजकोटकी प्रजामें अहिंसाका वह अद्‌भुत गुण आ गया है, जो किसी भी झगड़ेका मुकाबला कर सकता है। लेकिन राजकोटने यह बतला दिया है कि सारी प्रजा द्वारा संगठित रूपसे ग्रहण की हुई मामूली अहिंसा भी कितना काम कर सकती है।

राजकोटकी प्रजाका काम निश्चय ही महान है, लेकिन सत्याग्रहीके रूपमें उसकी सच्ची परीक्षा तो अभी होनी ही है। उसने जिन गुणोंसे विजय प्राप्त की है, उसे कायम रखनेके लिये भी उन्हीं गुणोंपर वह कायम न रही, तो सारा किया-कराया चौपट हो जायगा। सारे हिन्दुस्तानमें एक लम्बे अभ्यासके बाद कांग्रेसवालोंने सविनय अवज्ञा करनेकी अपनी क्षमता तो दिखला दी है, लेकिन रचनात्मक अहिंसाकी अपनी योग्यता अभी उन्हें बतलानी है। हो सकता है कि सविनय अवज्ञा तो हिंसासे निश्चित होनेपर भी काम लायक समझ ली जाय। लेकिन रचनात्मक कार्यक्रममें हिंसाका छिपना मुश्किल है, उसमें हिंसाका आसानीसे पता चल जाता है। और हिंसाका जरा भी समावेश विजयको भी एक जालमें परिणत कर देता है और वह विजय एक भ्रम साबित होती है। अतः क्या प्रजा आवश्यक निःस्वार्थ और आत्म-त्याग दिखलायेगी? अपना और अपने आश्रितोंका स्वार्थ-साधन करनेके प्रलोभनसे क्या वह दूर रहेगी? खुद सत्ता पानेके लिये जरा भी छीना-झपटी करनेसे बहुसख्यक लोगोंको वह लाभ नहीं होगा जो ऐसे बुद्धिसत्तापूर्ण और निश्चयी नेतृत्वसे होगा जिसके आज्ञा पालनके लिये सब स्वेच्छापूर्वक तैयार हों। काठियावाड अन्दरूनी कुचक्रोंके लिये प्रसिद्ध है। उसमें जहाँ वीरोंको पैदा करनेकी खासियत है वहाँ राजनीतिज्ञोंकी ऐसी जाति भी मौजूद है जिसके जीवनका एकमात्र उद्देश्य अपना स्वार्थ सिद्ध करना है। अगर इन राजनीतिज्ञोंकी चली तो राजकोटमें राम-राज्य नहीं होगा। राम-राज्यका मतलब तो है सर्वतोमुखी स्वार्थ-त्याग। उसके लिये लोगोंको अपने ऊपर अपने आप अकुश लगाना होगा। प्रजा अगर रचनात्मक अहिंसाको असली रूप दे, तो राजकोटकी प्रजाका ऐसा प्रभाव पडेगा जिससे राजकोट आसानीके साथ एक अनुकरणीय उदाहरण बन जायगा।

इसलिये विजयके इस अवसरपर आत्मसतोष करने और व्यर्थकी खुशियाँ मनानेके बजाय विनम्रता, आत्म-निरीक्षण और ईश्वर-प्रार्थनासे काम लेना चाहिये। मैं सब कुछ उत्सुकताके साथ देखता रहूँगा और ईश्वरसे प्रार्थना करूँगा।

हरिजन सेवक
७ जनवरी, १९३९

❋

अहिंसा क्या बेकार गयी है?

अपने लेखपर हुई इस आलोचनाका कि यहूदी तो पिछले २००० वर्षसे अहिंसक ही रहे, मैंने जो जवाब दिया था, उसपर एक सम्पादकीय लेखमें 'स्टेट्समैन' ने लिखा है—

"पास्टर नीमोलर और लूथेरन चर्चपर हुए अत्याचारोंकी बात सारी दुनियाको मालूम है; अनेक पास्टरों और साधारण ईसाइयोंने पोपकी अदालतों, हिंसा और धमकियोंके कष्टोंको बहादुरीके साथ बर्दाश्त किया और बदले या प्रतिहिंसाका ख्याल किये बगैर वे सत्यपर कायम रहे। लेकिन जर्मनीमें कौन-सा हृदय-परिवर्तन नजर आता है?

"बाइबिलके रास्ते चलनेवाले संघों (बाइबिल सरचर्स लीगों) के जिन सदस्योंने नाजी सैनिकवादको ईसाके शान्ति-संदेशका विरोधी मानकर ग्रहण नहीं किया, वे आज जेलखानों और नजरबन्द-कैम्पोंमें पड़े सड़ रहे हैं और पिछले पाँच सालसे उनकी यही दुर्दशा हो रही है। कितने जर्मन ऐसे हैं जो उनके बारेमें कुछ जानते हैं? या जानते भी हैं तो उनके लिए कुछ करते हैं?

"अहिंसा चाहे कमजोरोंका शस्त्र हो या बलवानोंका, किन्हीं अत्यन्त विशेष परिस्थितियोंके अलावा वह सामाजिकके बजाय व्यक्तिगत प्रयोगकी ही चीज मालूम पड़ती है। मनुष्य अपनी खुदकी मुक्तिके लिये प्रयत्न करता रहे, राजनीतिज्ञोंका संबंध तो कारणों, सिद्धान्तों, और अल्पसंख्यकोंसे है। गान्धीजीका कहना है कि 'हर हिटलरको उस साहसके सामने झुकना पड़ेगा जो उसके अपने तूफानी सैनिकों द्वारा प्रदर्शित साहससे निश्चित रूपेण श्रेष्ठ है।' अगर ऐसा होता, तो हम सोचते हैं कि हर वान ओसीट्ज़की जैसे मनुष्यकी उसने जरूर तारीफ की होगी। मगर नाजियोंके लिए साहस उसी हालतमें गुण मालूम होता है कि जब उनके अपने ही समर्थक उससे काम लें, अन्यत्र वह 'मार्क्सवादी' यहूदियोंकी धृष्टतापूर्ण उत्तेजना हो जाती है। गांधीजीने इस विषयमें कारगर रूपमें कुछ करनेमें बड़े-बड़े राष्ट्रोंके असमर्थ होनेके कारण अपना नुसखा पेश किया है। यह ऐसी असमर्थता है जिसके लिये हम सबको अफसोस है और हम सब चाहते हैं कि यह न रहे। यहूदियोंको उनकी सहानुभूतिसे चाहे बड़ा आश्वासन मिले, लेकिन उनकी बुद्धिमें इससे ज्यादा मदद मिलनेकी संभावना नहीं है। ईसामसीहका उदाहरण अहिंसाका सर्वश्रेष्ठ उदाहरण है और उनको जिस बुरी तरह मारा गया उससे हमेशाके लिये यह सिद्ध हो गया है कि सांसारिक और भौतिक रूपमें यह बड़ी बुरी तरह असफल हो सकती है।"

मैं तो यह नहीं समझता कि पास्टर नीमोलर और दूसरे व्यक्तियोंका कष्ट सहन बेकार साबित हुआ है। उन्होंने अपने स्वाभिमानको कायम रखा है और यह साबित कर दिया है कि उनकी श्रद्धा किसी भी कष्ट-सहनसे विचलित नहीं हो सकती। हर हिटलरके दिल पिघलानेके लिए वे काफी साबित नहीं हुए इससे केवल यही जाहिर होता है कि हर हिटलरका दिल

पत्थरसे भी कठोर चीजका बना हुआ है। मगर सख्तसे सख्त दिल भी अहिंसाकी गर्मीसे पिघल जायगा और इस हिसाबसे अहिंसाकी ताकतकी तो कोई सीमा ही नहीं।

हरएक कार्य बहुतसे ताकतोंका परिणाम है, चाहे वे एक दूसरेके विरुद्ध असर करनेवाली ही क्यों न हों। ताकत कभी जाया नहीं होती। यही हम मैकेनिक्सकी किताबोंमें पढ़ते हैं। मनुष्यके कामोंमें भी यह उसी तरहसे लागू है। असलमें बात यह है कि एक मामलेपर हमें आमतौरपर यह मालूम होता है कि वहाँ कौन-कौनसी ताकत काम कर रही है और ऐसी हालतमें हम हिसाब लगाकर उसका नतीजा भी पहले बता सकते हैं। जहांतक मनुष्यके कामोंका ताल्लुक है, वे ऐसी मुख्तलिफ ताकतोंके परिणाम होते हैं कि जिनमेंसे बहुतसी ताकतोंका हमें इल्मतक नहीं होता।

लेकिन हमें अपने अज्ञानको इन ताकतोंकी क्षमतामें अविश्वास करनेका कारण नहीं बनाना चाहिए। होना तो यह चाहिए कि अज्ञानके कारण हमारा इसमें और भी ज्यादा विश्वास हो जाय। चूंकि अहिंसा दुनियाकी सबसे बड़ी ताकत है और काम भी यह बहुत छिपे ढंगसे करती है, इसलिए इसमें बहुत भारी श्रद्धा रखनेकी जरूरत है। जिस तरह ईश्वरमें श्रद्धा रखना हम अपना मुख्य धर्म समझते हैं उसी तरह अहिंसापर श्रद्धा रखना धर्म समझना चाहिए।

हर हिटलर एक आदमी मात्र ही तो है और उसकी जिन्दगी एक औसतन आदमीकी नाचीज जिन्दगीसे बड़ी नहीं है। अगर जनताने उसका साथ देना छोड़ दिया, तो उसका जायाशुदा ताकत होगी। मानव-समाजके कष्ट सहनको उसकी तरफसे कोई जवाब न मिलनेपर मैं निराश नहीं हुआ हूँ। मगर, मैं यह नहीं मान सकता कि जर्मनोंके पास दिल नहीं है या संसारकी दूसरी जातियोंकी अपेक्षा वे कम सहृदय हैं। वे एक न एक दिन अपने नेताके खिलाफ विद्रोह कर देंगे। अगर समयके अन्दर उनकी आंखें न खुलीं और जब वे ऐसा करेंगे तब हम देखेंगे कि पास्टर नीमोलर और उसके साथियोंकी मुसीबतों और कष्ट-सहनने जागृति पैदा करनेमें कितना काम किया है।

सशस्त्र संघर्षसे जर्मन हथियार नष्ट किये जा सकते हैं, पर जर्मनीके दिलको नहीं बदला जा सकता, जैसा कि पिछले महायुद्धकी पराजय नहीं कर सकी। उसने एक हिटलर पैदा किया जो विजयी राष्ट्रोंसे बदला लेनेपर तुला हुआ है और यह बदला किस तरहका है, इसका जवाब वही होना चाहिए जो स्टीफेन्सनने अपने साथियोंको दिया था, जो गहरी खाई पाटनेसे हताश हो गये थे और जिससे पहले रेलवेका निकलना नामुमकिन हो गया था। उसने अपने साथियोंसे, जिनमें विश्वासकी कमी भी थी, कहा कि "विश्वास बढ़ाओ और गढ़ेको भरे चले जाओ। वह अथाह नहीं है और इसलिए वह जरूर भर जायगा।" इसी तरह मैं इस बातसे मायूस नहीं हुआ हूँ कि हर हिटलर या जर्मनीका दिल अभीतक नहीं पिघला है। इसके बखिलाफ मैं यही कहूँगा कि मुसीबतोंपर मुसीबतें सहते चले जाओ जबतक कि अन्धोंको भी यह नजर आने न लगे कि दिल पिघल गया है।

जिस तरह पास्टर नीमोलरकी मुसीबतें बर्दाश्त करनेके कारण शान बढ गयी है, उसी तरह अगर एक यहूदी भी बहादुरीके साथ डट कर खड़ा हो जाय और हिटलरके हुक्मके आगे सर झुकानेसे इन्कार कर दे तो उसकी शान भी बढ जायगी और अपने भाई यहूदियोंके लिए मुक्तिका रास्ता साफ कर देगा।

मेरा यह विश्वास है कि अहिंसा व्यक्तिगत गुण नही है, बल्कि एक सामाजिक गुण है जिसे कि दूसरे गुणोकी तरह विकसित करना चाहिए। इसमें कोई शक नहीं कि समाज अपने आपसके कारोबारमें अहिंसाका प्रयोग करनेसे ही व्यवस्थित होता है। मै जो कहना चाहता हूँ, वह यह है कि इसे एक बड़े राष्ट्रीय और अन्तर्राष्ट्रीय पैमानेपर काममें लाया जाय।

मै "स्टेट्समैन" द्वारा जाहिरकी गयी इस रायसे सहमत नहीं हूँ कि हजरत ईसाकी मिसालने हमेशाके लिये यह साबित कर दिया है कि अहिंसा सांसारिक बातोंमें नाकामयाब साबित होती है। हालाकि मै जात-पांतके दृष्टिकोणसे अपने आपको ईसाई नहीं कह सकता मगर ईसाने अपनी कुर्बानीसे जो उदाहरण कायम किया है उससे मेरी अहिंसामें अखंड श्रद्धा और भी बढ गयी है और अहिंसाके इसी सिद्धान्तके अनुसार मेरे तमाम धार्मिक और सांसारिक काम होते है। मुझे यह भी मालूम है कि सैकड़ो ईसाई ऐसे है जिनका ऐसा ही विश्वास है। अगर ईसाने हमें अपने तमाम जीवनको विश्व-प्रेमके सनातन सिद्धान्तके अनुसार बनानेका संदेश नहीं दिया तो उनका जीवन और बलिदान बेकार है।

हरिजन सेवक
१४ जनवरी, १९३९

❀

"मेरे अहिंसा-धर्ममे खतरेके वक्त अपने अजीजोको मुसीबतमे छोडकर भाग खड़े होनेके लिए जगह नही। मारना या नामर्दीके साथ भाग खडा होना, इनमेंसे यदि मुझे किसी बातको पसद करना पड़े तो मेरा उसूल कहता है कि मारनेका, हिंसाका, रास्ता पसन्द करो।"

—गाधीजी

प्रेम-एक सार्वजनिक नीति

एक भारतीय ईसाई लिखते है–

"यहूदियोंवाले आपके लेखपर तरह-तरहकी काफी आलोचना हुई है। मैं बस एकतक रहना चाहता हूँ। वह यह कि ईसाने जिस प्रेमकी शिक्षा दी वह व्यक्तिगत गुण है, समाज या समूहकी नीति वह नहीं हैं।

"ईसाके जीवनकी शिक्षा सबके लिए है। एकत्रित भावमें वह उससे कम लागू नहीं है जितनी व्यक्तिगत तौरपर। इससे इनकार करना ईसाई धर्मकी मूल सचाईको ही इनकार कर देना है। ईसा प्रकाशकी भाँति दुनियाका भार कम करनेके लिए आये। वह पैगम्बरोंकी परम्परा और जगत-नियमको पूरा करने आये। वह मसीहा थे जिनकी कबसे प्रतीक्षा थी। अनुयायियोंने मनुष्य जातिका त्राता कहकर उन्हें अपनाया। वह तबकी व्यवस्थासे एकदम असतुष्ट थे। उस समयके यहूदी पुरोहितों और पडितोंके दभ और घमडसे उनको इतनी तकलीफ हुई थी कि उन्हें ईसाने 'जहरीली औलाद' और 'सफेद ताबूत' तक कहा। उन्होने घूसखोरीका और दूसरी खराबियोंका खुला विरोध किया। मदिरके आँगनमें पैसा सामने लेकर बैठनेवाले तबके यहूदी पडोंकी चौकियोंको उलट-पलट दिया। उनको डपटा कि तुम लोगोंने ईश्वरके मदिरको चोरोंका घर बना लिया है। जात-बेजातके साथ खाकर और वेश्याओंको तसल्लीकी बातें कहकर उन्होंने छूआछूतके पापको लानत भेजी।

"उन्होंने जरूर कहा कि जो राज्यका है वह राजाको दो। पर जो ईश्वरका है उसे ईश्वरके प्रति उन्होंने समर्पित होने दिया। राज्यके भागको राजाको दे देनेका मतलब ही यह है कि राज्य कुछ हडपे नहीं। अगर राजा ऐसा करे तो इसमें उसे सहयोग नहीं दिया जा सकता। उनके उपदेशोंने लोगोंमें आवेश भर दिया। क्योकि वह उपदेश क्रातिकारी था और सार्वजनिक था। नहीं तो अधिकारियोंको क्यों चिन्ता होती कि उस पुरुषको गिरफ्तार करके मौतकी सजा दें जिसमें फैसला देनेवाला जज तक भी 'पापकी कोई रेख'न देख सका?

"असलमें अधिकारियोंने ईसामसीहकी शिक्षामें उस शक्तिका बीज देखा जिसका आचरण हो तो वह उनकी समाजके सारे ढाँचेही को ढा दे। जब प्रभुने यरूशलमपर आँसू गिराये तो यह रोना व्यक्तियोंके ऊपर न था, वह तो आँसू उस समूची व्यवस्थापर बहाये गये थे जो यहूदी-समाजको सत्यानाशकी ओर धकेल रही थी। उन्होंने कहा तो एकके लिए नहीं, तमामके सम्बोधनके लिये साधिकार कहा था कि मार्ग वह है, सत्य वह है, जीवन वह है, और एक और अकेली ही राह है जो सच्चे लक्ष्यतक पहुँचेगी, और वह प्रेमकी राह है। जो एक गालपर तुम्हें मारे उनके सामने तुम दूसरी गाल भी कर दो, जो तुमसे द्वेष करे, उससे तुम प्रेम करो, दूसरेकी आँखका तिल बतानेसे पहले अपनी आँखका पहाड देखो; दुखमें सुख मानो, जो कष्ट देते हैं, उनके लिए

प्रार्थना करो ; अपराधीको हजारपर हजार बार क्षमा करो, हीनकी सेवा करो, और सब छोड-कर ईसाका अनुसरण करो। ये मूल तत्त्व हैं उस शिक्षाके जो सार्वजनिक है। इसीके लिये ईसा जिये और ईसा मरे। शिष्योंको उन्होंने अपने जीवन और उदाहरण द्वारा जगतको इस शिक्षाका प्रकाश देनेको कहा। उन शिष्योंने भी स्वय एक नये समाजके निर्माणकी प्रेरणा अपनेमें अनुभव की। ईसाई धर्मका आरभिक चर्च इसका उजागर प्रमाण है। उसको अपने शहादतके पवित्र खूनसे सींचकर उन्होंने खडा किया। उसे 'ईसामसीहकी काया' कहा जाता है। नये टेस्टामेटका एक सबसे सुन्दर भाग है कौरिंथियनवाला १३ वाँ अध्याय। सत पाल द्वारा वह उस समय लिखा गया जब कौरिंथका चर्च आपसी झगडोंसे छिन्न-भिन्न हो रहा था। सतकी उस वाणीमें जो प्रेमका सदेश है वह सामूहिक कर्मका आदेश ही तो है। 'युद्ध-प्रबुद्ध चर्च' यह शब्द जो चला वह अवश्य उस ईसाई-सघका प्रतीक है जिसने बुराईकी ताकतोका मुकाबिला माना, और विरोधके लिए प्रेमका अस्त्र हाथ मे लिया जो सबको जीत लेता है।

"सहज हो सकता है कि हम आन्तरिक साहस और श्रद्धाकी कमीके कारण ईसाकी शिक्षाको व्यक्तिगत आचरणका नियम बताकर अलग कर दें। लेकिन वह खतरनाक होगा। यही तो है जिसने ईसाई धर्मी माने जानेवाले राष्ट्रोंको आजकी-सी खेदजनक हालत तक ला दिया है।

"बेशक अहिंसाका फल हमेशा हमारी इन आँखोंके सामने देखने लायक नहीं होता। शहीद अपनी शहादतका फल अपने जीवनमें सदा नहीं देख पाते। पर निस्वार्थ प्रेम फल माँगता ही कब है? वह तो लोक-कल्याणको देखता है, जो उसका अतरग है। समाजको एक ऊँचे तलतक उठानेकी उसमें प्रेरणा है, और मानव-प्रकृतिमें अपरिमित विश्वास। प्रेमकी राह चलना आसान नहीं है, यह तो ठीक ही है। और अगाध प्रेमके सिवा अहिंसा और दूसरी वस्तु क्या है? लेकिन प्रेमको समाज-नीतिसे बाहर और अलग कर डालना तो ईसाके धर्मको इनकार कर देना ही नहीं है, बल्कि ससारके सब बडे धर्मोका ही निषेधकर देना है।

"राष्ट्रीय या अन्तर्राष्ट्रीय पैमानेपर अहिंसाको अभी काफी नहीं परखा गया है। पर जहाँ गाँधीजी द्वारा उसका प्रयोग हुआ है, उसको सफलता ही मिली है। 'लाठी और भैंस' वाली नीतिके ताबे होकर क्या योरप ईसामसीहकी शिक्षाको खुल्लमखुल्ला झुठला ही नहीं रहा है? यह सवाल है, जो तमाम ईसाई देशोंके सामने है। सबसे अधिक स्वतन्त्रताका सबूत क्या इसमें है कि ताकतका मुकाबला वैसी ही पाशवी ताकतके हथियारोंसे किया जाय? या कि यह भी हो सकता है कि आदर्श और स्थायी स्वतन्त्र राष्ट्र अथवा राष्ट्रों द्वारा स्वेच्छापूर्वक बहाये गये उनके खूनमेंसे ही उत्पन्न होगी?

"ओह क्रास, जिससे कि मेरा सिर सीधा रहता है,
मैं तुमसे भागना न चाहूँ,
धूलमें मिला हूँ, जीवन-दीप बुझ रहा है
पर धरतीसे खिल उठेगा, प्रभाकी भाँति
यह जीवन, जिसका अन्त न होगा।"

भावनासे नहीं, बल्कि कांग्रेसकी मौलिक नीतिका भंग करने और अनुशासनहीन कृत्यके लिये--इतना ही मेरे लिये काफी था। राजाओंके दुष्कृत्यों पर मैंने 'हरिजन' में अक्सर प्रकाश डाला है, पर इसलिये नहीं कि लोग उनपर गुस्सा उतारें, बल्कि लोगोंको यह बतानेके ही एक मात्र हेतुसे कि वे उन दुष्कृत्योंका मुकाबला अहिंसक होकर किस प्रकार कर सकते हैं। उड़ीसामें खासा सुन्दर काम चल रहा था, इस बातके मैं काफी प्रमाण दे सकता हूं। इस हत्याने, वहांके आंदोलनमें, जो ठीक तरहसे चल रहा था, खलल डाल दिया है। राणपुर आज भयानक जंगल बन गया है। निर्दोष और दोषी सभी भाग-भागकर छिप रहे हैं। दमनसे बचनेके लिये वे घर-बार छोड़-छोड़कर घरोंको वीरान करते जा रहे हैं, क्योंकि यह बात तो है नहीं कि केवल वास्तविक अपराधी ही दमनकी चक्कीमें पिसेंगे। किसी-न-किसी रूपमें वहां आतंक फैलाया जा रहा है, और सारे हिन्दुस्तानको लाचार होकर यह सब देखना पड रहा है। सत्ताधारी अपने अफसरोंकी--खासकर गोरे अफसरोंकी--हत्याका, सलूक करना किसी दूसरे तरीकेसे जानते ही नहीं। पर मुझे अपनी दलीलको अधिक विस्तार देनेकी जरूरत नहीं। हाथ-कंगनको आरसी क्या? दोनों ही मार्गोंकी आज हिन्दुस्तानमें परीक्षा हो रही है। कार्यकर्त्ताओंको दोनोंमेंसे एक मार्ग चुन लेना है। मैं यह जानता हूं कि भारतवर्ष केवल अहिंसाके ही मार्गसे स्वतंत्र होगा। जो कार्यकर्त्ता कांग्रेसमें रहकर इससे अन्यथा विचार रखते हैं अथवा उलटी रीतिसे काम लेते हैं, वे अपने आपको तथा कांग्रेसको धक्का पहुंचा रहे हैं।

हरिजन सेवक
२८ जनवरी, १९३९

❀

"डरकर भाग जाना कायरता है और कायरतासे न तो समझौता हो सकेगा, न अहिंसाको ही कुछ मदद मिलेगी। कायरता हिंसाकी एक किस्म है और उसे जीतना बहुत दुश्वार है। हिंसासे प्रेरित मनुष्यको हिंसा छोडकर अहिंसाकी उत्तम शक्तिको ग्रहण करनेको समझानेमें सफल होनेकी आशा की जा सकती है, लेकिन कायरता तो सब प्रकारकी शक्तिका अभाव है।"

--गांधीजी

राजकोट

राजकोटकी लडाईसे मुझे व्यक्तिगत दिलचस्पी है। क्योंकि वहीं मैंने मैट्रिक तथा अपनी सारी शिक्षा पायी थी और अनेक वर्षोंतक मेरे पिता वहाँ दीवान रहे। यहाँके लोगोंको जो तमाम मुसीबतें उठानी पड रही हैं, उनके बारेमें मेरी पत्नी इतना ज्यादा महसूस करती है कि मेरी ही तरह वृद्ध और राजकोट जैसी जगहके, जहाँ हरेक उसे जानता है, जेल-जीवनमें होने-वाली कठिनाइयोंको बहादुरीके साथ बर्दाश्त करनेमें मुझसे कम समर्थ होते हुए भी उसे ऐसा लगता है कि उसे राजकोट जाना ही चाहिये। और सम्भवतः पाठकोंके हाथमें यह लेख पहुँचनेतक वह वहाँ चली भी जायगी।

लेकिन मैं तो इस लडाईपर तटस्थ रूपसे ही विचार करना चाहता हूँ। इस सम्बन्धमें दिया हुआ सरदारका वक्तव्य इस दृष्टिसे एक कानूनी दस्तावेज है कि उसमें एक भी शब्द फालतू नहीं है ओर न उसमें कोई ऐसी बात है जिसका असंदिग्ध सबूतसे समर्थन होता हो। और उस सबूतमें, जिसमेंसे अधिकांश उन लिखित दस्तावेजों पर मुनहसिर है, वक्तव्यमें परिशिष्टके रूपमें जुड़े हुए हैं।

जो समझौता हुआ उसमें एक ब्रिटिश अफसर भी साझीदार था। उसे इस बातपर गर्व था कि वह ब्रिटिश सत्ताका प्रतिनिधि है। उसने शासकपर शासन करनेकी उम्मीद की थी। इसलिए वह इतना मूर्ख नहीं था कि वह सरदारके फन्देमें आ जाता। अतएव समझौतेको कायर राजाने नहीं तोडा। ब्रिटिश रेजिडेण्टको कांग्रेस और सरदारसे इसलिये नफरत थी कि वे ठाकुर साहबको दिवालिया बनने और शायद गद्दी छिननेसे बचाना चाहते हैं। लेकिन कांग्रेसके प्रभावको वह नहीं मिटा सका। इसलिए ठाकुर साहब अपनी प्रजाको दिये हुए अपने वायदेको पूरा करें, उससे पहले ही उसने उनसे उसे तोड़वा दिया। सरदारको राजकोटसे जो समाचार मिल रहे हैं उनपर विश्वास किया जाय, तो रेजिडेण्ट ब्रिटिश सिंहके लाल-लाल जबड़े दिखाकर प्रजासे मानों यह कह रहा है कि –

"तुम्हारा शासक तो हमारे हाथका खिलौना है। मैंने उसे गद्दीपर बैठाया है और उतार भी सकता हूँ। वह भलीभाति जानता था कि उसने मेरी इच्छाके विरुद्ध काम किया है। इसलिए उसके अपनी प्रजाके साथ समझौता करनेके कामको मैंने चौपट कर दिया है। तुम जो कांग्रेस और सरदारके साथ सम्बन्ध रखते हो, उसके लिए मैं तुम्हें ऐसा सबक दूँगा जिसे तुम एक पीढीतक भी नहीं भूलोगे।"

शासकको एक तरहसे कैदी बनाकर उसने राजकोटमें दमनचक्र शुरू कर दिया है। सरदारको मिले एक ताजा तार में कहा गया है कि–

"बेचारे भाई जसानी और दूसरे स्वयंसेवक गिरफ्तार हो गये। २६ स्वयंसेवक रातके

वक्त एजेंसीकी सीमामें दूरकी जगह ले जाकर बुरी तरहसे पीटे गये। गांवमें भी स्वयं सेवकोंके साथ ऐसा ही व्यवहार हो रहा है। एजेंसीकी पुलिस स्टेट एजेंसीका नियन्त्रण कर रही है और गैर फौजी सीमामें निजी मकानोंकी तलाशी ले रही है।"

ब्रिटिश भारतमें सविनय-अवज्ञाके दिनोंमें ब्रिटिश अधिकारी जो कुछ करते थे ब्रिटिश रेजिडेण्ट वही पुनरावृत्ति कर रहा है।

मैं जानता हूँ कि राजकोटकी जनता इन सब पागलपनका खुद पागल हुए बगैर मुकाबला कर सकती है और अपनेपर होनेवाली क्रूरताओंको शांति मगर बहादुरीके साथ बर्दाश्त करके विजयी ही नहीं होगी बल्कि ठाकुर साहबको भी आजाद करेगी। वह यह सिद्ध कर देगी कि कांग्रेसकी सार्वभौम सत्ताके मातहत वही सच्चा शासक है। लेकिन अगर वह पागल हो जाय, और दुर्बल प्रतिशोधका ख्याल करके हिंसात्मक कामोंका सहारा ले, तो उसकी हालत पहलेसे भी बदतर हो जायगी और तब कांग्रेसके सार्वभौमत्वका कोई असर नहीं पडेगा। कांग्रेसकी सार्वभौम सत्ता तो ठीक उसी तरह उन्हींके काम आती है जो अहिंसाके झंडेको अपनायें, जैसे कि ब्रिटेनकी सार्वभौम सत्ता 'जिसकी लाठी उसकी भैंस'के सिद्धान्तको माननेवालोंके ही काम आती है।

राजकोटकी प्रजाका जब शासक और उसकी जरा-सी पुलिससे ही नहीं बल्कि साम्राज्यके अनुशासनयुक्त गिरोहोंसे मुकाबला है, तब कांग्रेसका क्या कर्त्तव्य है?

पहली और स्वाभाविक बात यह है कि राजकोटकी प्रजाकी रक्षा और इज्जतके लिए कांग्रेसी मन्त्रिमंडल अपनेको जिम्मेदार बना ले। यह सच है कि गवर्नमेंट आफ इण्डिया ऐक्ट मंत्रियोंको रियासतोंके बारेमें कोई अधिकार नहीं देता। लेकिन वे एक ऐसे शक्तिशाली प्रांतके शासक हैं, जिसमें राजकोट तो एक छोटा-सा टुकडा मात्र है। इस हैसियतसे गवर्नमेंट आफ इण्डिया ऐक्टके बाहर भी उनके अधिकार और कर्त्तव्य हैं जो और भी अधिक महत्वपूर्ण हैं। फर्ज कीजिये कि भारतमें जितने भी गुण्डे हो सकते हों वे सब राजकोटमें जा बसें, और यह भी समझ लीजिये कि वहांसे वे हिन्दुस्तान भरमें उत्पात मचायें, तो स्पष्टतया मंत्रियोंका यह अधिकार और कर्त्तव्य होगा कि बम्बईमें रहनेवाले ब्रिटिश प्रतिनिधिके द्वारा वे सार्वभौम सत्तासे राजकोटकी स्थिति सुधारनेको कहें। और सार्वभौम सत्ताका यह फर्ज होगा कि वह या तो ऐसा करे या मंत्रियोंको खो दे। क्योंकि हरएक मंत्री पर ऐसी हरएक बातका असर पड़े बिना नहीं रह सकता, जो उसके प्रान्तकी भौगोलिक सीमामें हो, फिर चाहे वह उसके कानूनी दायरेके बाहर ही क्यों न हो,—खासकर जब कि वह बात उसकी शालीनतापर भी चोट पहुँचाती हो। उन भागोंमें उत्तरदायी शासन है या नहीं, यह देखना चाहे मंत्रियोंका काम न भी हो; लेकिन अगर उन भागोंमें प्लेग फैले या मारकाट मचे तो उसपर ध्यान देना उनका काम जरूर है, नहीं तो उनके शासनको लानत है और वह खाली भ्रम ही है। इस प्रकार उड़ीसाके मंत्री अगर तालचेरके २६,००० निराश्रितोंको उनकी रक्षा और भाषण तथा सामाजिक व राजनीतिक रूपमें हिलने-मिलनेकी आजादीका पूरा आश्वासन देकर उनके घर पहुँचानेमें कामयाब न हों, तो वे आरामके साथ अपनी कुर्सियोंपर नहीं बैठे रह सकते।

जो कांग्रेस आज ब्रिटिश सरकारके साथ मिलकर काम कर रही है वह ब्रिटिश सरकारके सामन्त देशी राज्योंके अन्दर दुश्मन और विदेशी मानी जाय, यह बात तो असह्य है।

राजकोटमें ब्रिटिश रेजिडेण्टकी प्रेरणासे प्रजाकी आजादीके फरमानमें जो विश्वासघात किया गया है वह ऐसी गलती है जिसको यथासभव जल्दी से जल्दी दुरुस्त करना ही चाहिये। यह तो ऐसा जहर है जो सारे शरीरमें व्याप्त हो रहा है। क्या वाइसराय महोदय राजकोटके महत्त्वको समझकर इस जहरको दूर करेंगे ?

हरिजन सेवक
४ फरवरी, १९३९

❀

देशी राज्योंमें 'गुण्डाशाही'

गाँधीजीने वर्धासे गत ९ फरवरीको नीचे लिखा वक्तव्य प्रकाशित किया है—

हालमें राजकोट और जयपुरपर मैंने जो कई लेख लिखे हैं उनके सम्बन्धमें मेरे आलोचकोंने मुझपर यह आरोप किया है कि मैंने उन लेखोमें असत्य और हिंसासे काम लिया है। ऐसे आलोचकोंको जवाब देना मेरा फर्ज है। सचमुच जबसे मैंने सार्वजनिक जीवनमें प्रवेश किया है, तभीसे मेरे सम्बन्धमें इस किस्मके आरोप किये गये। मगर मैं यह सहर्ष कह सकता हूँ कि बादको मेरे आलोचकोंको यह कबूल करना पड़ा कि मैं असत्यपूर्ण और हिंसात्मक भाषा इस्तेमाल करनेका दोषी नहीं था, और मेरे वक्तव्योंका आधार उनमें मेरा विश्वास होता था, द्वेषकी भावना उनमें कभी नहीं होती थी।

आज भी ठीक वही बात है। मैं अपनी जिम्मेदारी भलीभाँति समझता हूँ। मैं जानता हूँ कि मेरे अनेक देशवासी मेरे वक्तव्योंमें असदिग्ध श्रद्धा रखते हैं। मेरे वक्तव्योंके समर्थनमें मुझसे प्रमाण माँगे गये हैं। मैंने प्रमाण पेश भी कर दिये हैं।

सरदार पटेलने राजकोटपर जो वक्तव्य दिया है, उसमें रेजिडेण्टके उन शब्दोंको भी उद्धृत कर दिया है, जो उसने कांग्रेस और उनके खुदके बारेमें कहे थे। रेजिडेण्ट, ठाकुर साहब और उनके सलाहकारोंके बीच, जिनमें सर पेट्रिक मेडेल भी थे, जो बातचीत हुई थी, उसका तमाम खुलासा मेरे पास है। अभी तो नहीं, लेकिन अगर जरूरत समझी गयी तो उसे मौका आनेपर प्रकाशित कर दिया जायगा।

संगठित गुण्डाशाही प्रदर्शित करनेके सम्बन्धमें हकीकत प्रकाशित कर दी गयी है। मैं मानता हूँ कि इसमें रेजिडेंटका हाथ है, क्योंकि उसीने रियासतमें एजेंसीकी पुलिसको भेजा है। अत उसके एजेण्टोंकी कारगुजारियोंकी जिम्मेदारी उसपर होनी ही चाहिये।

इसी तरह, जयपुरमें जो कुछ हो रहा है, उसकी जिम्मेदारी ब्रिटिश प्रधान मन्त्रीपर है। सेठ जमनालाल बजाजको 'फुटबाल' बनाकर बार-बार जयपुरसे ठुकरा देना, जब कि उन्हें अपनी जन्मभूमिमें प्रवेश करनेका पूरा हक्क है, निश्चय ही निहायत अनुचित कार्रवाई है।

अगर मैं ऐसे कामोका चित्रण करूँ, तो मुझे अपनी भाषामें हिंसासे काम लेनेका दोषी नहीं ठहराया जाना चाहिये। हिंसाका दोषी तो मैं तब हूँगा, अगर मैं काठियावाड़के रेजिडेंट या जयपुरके प्रधान मन्त्रीके खिलाफ कोई द्वेष-भावना फैलानेका काम करूँ। क्योंकि मुझे यह मालूम होना चाहिये कि वे, सभव है, कि बहुत ही आदरणीय व्यक्ति हो, पर उनका आदरणीय होना राजकोट या जयपुरकी प्रजाके लिए किस कामका? सत्य और अहिंसाका पुजारी होनेके नाते, मेरा काम तो यह है कि मैं बगैर किसी भयके जो नग्न सत्य हो उसे जाहिर कर दूँ? साथ ही अन्याय करनेवालोके प्रति असद्भावना भी प्रदर्शित न करूँ। मेरी अहिंसाको सत्यपर मुलम्मा चढ़ानेकी जरूरत नही। इसलिए मुझपर यह इलजाम नहीं लगाया जाना चाहिये कि मैं किसी कौमके साथ दुश्मनी रखता हूँ।

नग्न सत्यको छिपाकर या उसपर मुलम्मा चढाकर मैं लोगोको हिंसाके पथसे हटानेमें सफल नहीं हो सकता। यह कहकर या खुद अपने आचरणके द्वारा दिखाकर कि घोर-से घोर अन्याय करनेवालोका भी भला चाहना न केवल उचित ही है, बल्कि लाभकारी भी है, मैं प्रजाको हिंसापथसे हटानेकी जरूर आशा करता हूँ।

नरेशोकी रक्षा करना सार्वभौम सत्ताका फर्ज है, मगर उनके अधीन रहनेवाली प्रजाकी रक्षा करना भी निश्चय ही उसका उतना ही फर्ज है। मुझे लगता है कि सार्वभौम सत्ताका यह भी फर्ज है कि वह उस समय नरेशोकी सहायता करना छोड दे, जब यह साबित हो जाय कि अमुक राजा अपनी प्रजाको प्रारभिक अधिकार देनेके लिए भी तैयार नहीं है और उसके एक नागरिकको बुरी तरह इधर-उधर घुमाया जा रहा है, और अदालतमें भी उसे पैर नहीं रखने दिया जाता, जैसा कि जयपुरमें हो रहा है।

हिन्दुस्तानमें रियासतकी घटनाओपर मैं जितना ही अधिक विचार करता हूँ, मुझे तो ऐसा दिखायी देता है कि अगर सार्वभौम सत्ता इन दुःखद घटनाओको लाचारीकी दृष्टिसे देखती रही, तो इस अभागे देशका भविष्य अधकारमय ही समझना चाहिये। राजकोट और जयपुरकी घटनाओसे हमें पता चल सकता है कि दूसरे राज्योमें भी क्या-क्या होनेवाला है। महाराजा बीकानेरने नरेशोको सलाह तो यह ठीक ही दी है कि उन्हें मिलकर काम करना चाहिये, पर नेतृत्व उन्होने गलत दिया।

पुचकारने और दुतकारनेकी नीतिसे नरेश कहीके भी न रहेगे। इससे तो कटुता और जिद्दो-जहद ही पैदा हुई हैं। सभव है कि रियासतोकी प्रजा, नरेशोकी तरह, मिलकर काम न कर सके, पर वे उनके या ब्रिटिश भारतके लोगोके साथ विदेशियोका-सा व्यवहार न कर सकेंगे। आज तमाम नरेश मिल भी जायें, तब भी प्रजामें इतनी काफी जागृति पैदा हो चुकी है कि उनके द्वारा किये जानेवाले दबावका भी वह डटकर मुकाबला कर लेगी।

हरिजन सेवक

११ फरवरी, १९३९

अहिंसाका अमल

"यूरोपके सकट और पश्चिमोत्तर सीमाप्रान्तके बारेमें 'हरिजन' के हालके अकोमे आपने जो कुछ लिखा, उसे मैं बडी दिलचस्पीके साथ पढता रहा हूँ। लेकिन अहिंसाकी समस्यामे एक बात ऐसी है, जिसके बारेमे समय होता तो मैं सेगाँवमे ही आपसे बातचीत करता, क्योकि उसका उल्लेख आप या तो कभी करते ही नही, या कभी कदाचित ही करते है। आप कहते है कि अहिंसात्मक असहयोगको जिस रूपमे आपने पेश किया है उस रूपमे वह उस हिंसाका जबाब है जो अब सारे ससारका ध्वस करनेपर उतारू है। ऐसी भावना और ऐसे कामका जो महान असर हो सकता है उसके बारेमे कोई सन्देह नही। लेकिन शत्रु-मित्र सबके लिए एक समान निस्वार्थ प्रेमकी अहिंसात्मक भावनाको सफल होनेके लिए क्या यह जरुरी नही है कि वह शासनके उदार, लोकतन्त्रात्मक और वैध रूपमे प्रदर्शित हो? कानून और सरकारके बगैर समाज कायम नही रह सकता। अन्तर्राष्ट्रीय शान्ति तबतक स्थापित नही हो सकती, जबतक विभिन्न राष्ट्र वैधानिक शासनकी ऐसी पद्धतिको स्वीकार न कर ले जो उन्हे एकता और कानून प्रदान करके उनकी अराजकताका खात्मा कर दे। इसमें कोई शक नही कि किसी-न-किसी दिन ईश्वरीय कानून मनष्योके दिल व दिमागोपर इस तरह अकित हो जायगा कि उसका पालन करानेके लिए किसी मानवी कानून या शासनकी कोई जरूरत नही होगी, बल्कि व्यक्तिगत रूपमें वे खुद ही उसके निर्देशक बन जायेंगे। लेकिन यह अन्तिम बात है। इस स्वर्गीय लक्ष्यकी ओर बढनेका आरभ इस रूपमें होना जरूरी है कि सबसे पहले विविध जातियाँ, धर्म और राष्ट्र एक ऐसे विधानके अन्तर्गत एकता रखनेको रजामद हो, जिसके द्वारा उनकी एकता और पारस्परिक सदस्यता कायम हो। जिन कानूनोंके मातहत वे उनपर सार्वजनिक विचारोपरान्त बहुमतके निश्चयके किसी रूपमे जारी होते है और जहाँ स्वेच्छापूर्वक उनका पालन नहीं होता वहाँ, समझाने-बुझाने और उदाहरण पेश करनेसे काम न चलनेपर युद्धके रूपमें नहीं बल्कि पुलिसके बलपर उनका पालन कराया जाता है। खुदमुख्तार राष्ट्रोंके बीच रचनात्मक अहिंसाकी भावनासे काम लेनेसे हम सघ-शासन (फेडरेशन) के किसी-न-किसी रूपपर ही पहुँचेगे। क्योकि ऐसा किये बगैर वह कामयाब नहीं हो सकती। वह प्रभावकारक रूपमें कायम है, इसका सबूत सघात्मिक पद्धति का सामने आना होगा। इस प्रकार यूरोपकी समस्याका एकमात्र सच्चा हल यही है कि २५ प्रजाओं और राष्ट्रोंका एक प्रजातंत्रात्मक विधानके मातहत एक सघ बनाया जाय, जो ऐसी सरकारका निर्माण करे जो यूरोपकी समस्याओंपर निगाहकर उनके प्रतिस्पर्धी और परस्पर-विरोधी राष्ट्रोंके रूपमें उनके लिए कानून बना सके। इसी रूपमें भारतीय समस्याका एकमात्र हल यह है कि ग्रेट ब्रिटेनके नियन्त्रणके लिए वहाँ डेमोक्रेटिक कॉंस्टीट्यूशन कायम किया जाय। और जो यूरोप भारतके लिए ठीक है, कालांतरमें वही सारी दुनियाके लिए ठीक और युद्ध रोकनेका एकमात्र अतिम साधन है। दिल और दिमागमें ऐसा परिवर्तन करनेका, जिनसे राष्ट्र सघीय लोकतन्त्रात्मक विधानको स्वीकार कर सकें, अहिंसात्मक असहयोग सर्वोत्तम और शायद एकमात्र

साधन है। लेकिन लोकतंत्र संघ-शासनकी प्राप्तिकी ऐसी आवश्यकता है, जिससे इसकी सफलता का निश्चय होता है और जिसके बिना यह कामयाब नहीं हो सकती। इस बातपर मैं हमेशा बड़ी दिलचस्पीसे ध्यान देता रहा हूँ और निश्चय ही मुझे आश्चर्य है कि आप यह खयाल करते मालूम पड़ते हैं कि अहिंसात्मक असहयोगका अमल अपनेमें ही काफी है और यह आप कभी नहीं कहते कि मनुष्यों, जातियों, धर्मों राष्ट्रोंको मिलानेवाली लोकतन्त्रीय शासन-पद्धति ही वह लक्ष्य है जिसपर इसे ले जाना चाहिये, हालाँकि उसकी प्राप्ति हृदयके आध्यात्मिक परिवर्तनके फलस्वरूप ही संभव है और बल या हिंसा अथवा चालाकीसे उसे प्राप्त नहीं किया जा सकता।

"भारतीय शासन-विधानके पक्षमें अप्रत्यक्ष रूपसे दलील करनेके लिए मैं यह नहीं लिख रहा हूँ, हालाँकि उस समस्यासे भी स्पष्ट ही इसका संबंध है। गवर्नमेण्ट आफ इंडिया ऐक्ट लोकतन्त्रीय संघ शासनके सिद्धांतका स्पष्टतः एक बहुत अपूर्ण रूप है, जिसको चलाना हो तो तेजी के साथ उसका विकास होना आवश्यक है। उसके लिए जो खास दलील हमेशा मैंने दी है वह यह है कि मौजूदा हालतमें प्रान्तों, रियासतों, मुसलमानों और हिन्दुओंको एक सूत्रमें पिरोनेवाले एकमात्र वैधानिक समझौतेका वही ऐसा आधार है जिसको अमली रूप दिया जा सकता है और जैसा कि आमतौरपर समझा जाता है उससे कहीं ज्यादा विकासके बीज उसमें मौजूद हैं। अगर आपका आध्यात्मिक संदेश लोगोंको इसके लिए प्रेरित करे, तो इसका विकास शीघ्रतासे और आसानीसे हो सकता है। मेरा उद्देश्य इस वैधानिक समस्याके बारेमें आपकी कोई राय प्राप्त करना नहीं है, लेकिन इस पत्रके पूर्व भागमें जिस बृहत्तर प्रश्नका समावेश है उसका मैं जरूर जबाब चाहता हूँ।"

लार्ड लोथियनका यह पत्र मुझे जनवरीकी शुरूआतमें मिला था, लेकिन आवश्यक कार्योंके कारण इससे पहले मैं इसमें उठाये हुए एक महत्वपूर्ण सवालकी चर्चा न कर सका।

निश्चित रूपसे अहिंसापर निर्भर समाजमें शासनका रूप क्या हो, इस बारेमें कुछ लिखनेसे मैं जान-बूझकर बचता रहा हूँ। सारा समाज अहिंसापर उसी प्रकार कायम है जिस प्रकार गुरुत्वाकर्षणसे पृथ्वी अपनी स्थितिमें बनी हुई है। लेकिन जब गुरुत्वाकर्षणके नियमका पता लगा, तो इस शोधके ऐसे परिणाम निकले, जिनके बारेमें हमारे पूर्वजोंको कुछ भी ज्ञान न था। इसी प्रकार जब निश्चित रूपसे अहिंसाके नियमानुसार समाजका निर्माण होगा तो उसका ढांचा खास-खास बातोंमें आजसे भिन्न होगा। लेकिन पहलेसे ही मैं यह नहीं कह सकता कि सम्पूर्णतया अहिंसापर निर्भर शासनका रूप कैसा होगा।

आज तो अहिंसाके नियमकी उपेक्षा करके हिंसाको ऐसा स्थान दिया हुआ है मानो वही शाश्वत नियम है। इसलिए इंगलैण्ड और फ्रांसमें जिन लोकतंत्रोंको हम काम करते हुए देखते हैं वे केवल नामके ही लोकतंत्र हैं। क्योंकि सभी हिंसापर नाजी जर्मनी, फासिस्ट इटली या सोवियट रूससे कुछ ही कम निर्भर हैं। फर्क सिर्फ यह है कि पिछले तीन देशोंमें हिंसा लोकतंत्रीय देशोंकी बनिस्बत कहीं ज्यादा अच्छे रूपमें संगठित है। फिर भी हम देखते हैं कि शस्त्रास्त्रके मामलेमें एक-दूसरेसे बढ़ जानेकी आज पागलोंकी तरह होड़ मच रही है। और मनुष्य

होनेपर, जिसका कि एक दिन होना अनिवार्य है, अगर इन लोकतंत्रोंकी विजय हुई तो वह सिर्फ इसलिए होगी,क्योंकि उनके पीछे यह ख्याल करनेवाली प्रजाओंका सहारा होगा कि अपने यहाँके शासनमें हमारी भी आवाज है,जब कि दूसरे तीन राष्ट्रोंमें वहाँकी प्रजाएँ ही अपने यहाँकी तानाशाहियोंके खिलाफ विद्रोह कर दें।

मैं यह मानता हूँ कि अहिंसाको राष्ट्रीय पैमानेपर स्वीकृत किये बगैर वैधानिक या लोकतंत्रीय शासन जैसी कोई चीज नही हो सकती,इसलिये मैं अपनी शक्तिको इस बातका प्रतिपादन करनेमें लगाता हूँ कि अहिंसा हमारे व्यक्तिगत, सामाजिक , राजनीतिक, राष्ट्रीय और अन्त-राष्ट्रीय जीवनका नियम है। मैं समझता हूँ कि मैंने प्रकाश देख लिया है, हालाँ कि देखा है कुछ धुंधले रूपमें ही। फिर भी सावधानीके साथ इसीलिये लिखता हूँ, क्योकि मैं यह ढोंग नहीं करता कि मैंने उस सारे नियमको जान लिया है। जहाँ अपने प्रयोगों की सफलताओंको मैं जानता हूँ वहाँ अपनी असफलताओंका भी मुझे ज्ञान है। लेकिन सफलताएँ इतनी काफी हैं कि मेरे अन्दर एक अमर आशा पैदा हो गयी है।

यह मैं अक्सर कहता रहा हूँ कि अगर साधनोकी सावधानी रक्खी जाय तो ध्येय अपनी फिक्र खुद कर लेगा। अहिंसा साधन है, और लक्ष्य हरएक राष्ट्रके लिए है पूर्ण स्वाधीनता। अन्तर्राष्ट्रीय सघ तभी होगा जब कि उसमें शामिल होनेवाले राष्ट्र पूरी तरह स्वाधीन हों। जो राष्ट्र अहिंसाको जितना हृदयंगम करेगा उतना ही वह स्वाधीन होगा। एक बात निश्चित है। अहिंसापर आधार रखनेवाले समाजमें छोटे—से-छोटा राष्ट्र भी बडे-बडे राष्ट्रके समान ही होगा। बड़प्पन और छोटेपनका भाव बिलकुल नहीं होगा।

इसपरसे यह परिणाम निकलता है कि गवर्नमेण्ट आफ इडिया एक्ट तो खाली दिखावा है, जिसका स्थान एक ऐसे एक्टको लेना चाहिये जो खुद राष्ट्रके द्वारा ही बनाया जाय। जहाँतक प्रान्तीय स्वराजका सम्बन्ध है,किसी हदतक उसको सम्हालना सम्भव लगा, वैसे उसके अमलका मेरा अपना जो अनुभव है वह किसी भी प्रकार सुखद नहीं है।

कांग्रेसी सरकारोंका जनतापर वैसा अहिंसात्मक प्रभाव नहीं है जिसकी कि मैंने उनसे आशा की थी।

लेकिन संघ-शासनका ढाँचा तो मेरे लिए सोचनेके लायक भी नहीं है, क्योकि उसमें अ-समानोंकी साझीदारीकी कल्पना की गयी है, फिर वह चाहे ढीली ही क्यों न हो। रियासतें कितनी असमान हैं, इसका ऐसे बुरे रूपमें प्रदर्शन किया जा रहा है जिसके लिए मैं तैयार नहीं था। इसलिए गवर्नमेण्ट आफ इंडिया ऐक्टमें जिस संघ-शासनका समावेश है उसे मैं बिल्कुल असभव मानता हूँ।

इस प्रकार अपने आप यह परिणाम निकलता है कि जबतक अहिंसाको खाली नीतिके बजाय एक जीवित शक्ति याने अटूट ध्येयके रूपमें स्वीकार न कर लिया जाय, तबतक मुझ जैसोंके लिए, जो अहिंसाके हामी हैं, वैधानिक या लोकतंत्रीय शासन एक दूरका स्वप्न ही है। जब कि मैं विश्व-

व्यापी अहिंसाका हामी हूँ, मेरा प्रयोग हिन्दुस्तान तक ही सीमित है। यहाँ उसे सफलता मिले, तो संसार बिना किसी प्रयत्नके उसे स्वीकार कर लेगा। मगर इसमें एक बड़ा 'लेकिन' मौजूद है। विघ्नोंकी मुझे चिन्ता नहीं। घोर अन्धकारमें भी मेरा विश्वास बड़ा उज्ज्वल है।

हरिजन सेवक
११ फरवरी, १९३९

❀

यहाँ क्या अहिंसा नहीं है ?

अन्नामलाई यूनिवर्सिटीके एक शिक्षकका पत्र मुझे मिला है, जिसमें वह लिखते हैं:—

"गत नवम्बरकी बात है, पाँच या छ विद्यार्थियोके एक समूहने सगठित रूपसे यूनिवर्सिटी-यूनियनके सेक्रेटरी—अपने ही साथी एक विद्यार्थीपर हमला किया। यूनिवर्सिटीके वाइस-चासलर श्री श्रीनिवास शास्त्रीने इसपर सख्त ऐतराज किया और उस समूहके नेताको यूनिवर्सिटीसे निकाल दिया तथा बाकीको यूनिवर्सिटीके इस तालीमी सालके अन्ततक पढाईमे शामिल न करनेकी सजा दी।

"सजा पानेवाले इन विद्यार्थियोसे सहानभूति रखनेवाले इनके कुछ मित्रोने इसपर क्लासोसे गैरहाजिर रहकर हडताल करनी चाही। दूसरे दिन उन्होने अन्य विद्यार्थियोसे सलाह की और उन्हे भी इसके विरोध-स्वरूप हडताल करनेके लिए समझाया-बुझाया। लेकिन इसमें उन्हे सफलता नही मिली, क्योकि विद्यार्थियोके बहुमतको लगा कि छ विद्यार्थियोको जो सजा दी गयी है, वह ठीक ही है और इसलिए उन्होने हडतालियोका साथ देने या उनके प्रति किसी तरह की हमदर्दी जाहिर करनेसे इन्कार कर दिया।

"इसलिए दूसरे दिन कोई २० फीसदी विद्यार्थी पढने नही आये, वाकी ८० फीसदी हस्वमामूल हाजिर रहे। यहाँ यह वता देना ठीक होगा कि इस यूनिवर्सिटीमे कुल ८०० के करीव विद्यार्थी है।

"अव यह निकला हुआ विद्यार्थी होस्टलमें आया और हडतालका सचालन करने लगा। जैसे हडतालको नाकामयाव होते देख, शामके वक्त उसने दूसरे साधनोका सहारा लिया। जैसे, उदाहरणके लिए, होस्टलके चार प्रमुख रास्तोपर लेट जाना, होस्टलके कुछ दरवाजोको बन्द कर देना, और कुछ छोटे लडकोको खासकर निचले दर्जेके वच्चोको, जिनको की अपनी त्रान गानने

लिये डराया-धमकाया जा सकता है, उनके कमरोमें बन्द कर देना, आदि। इससे तीसरे पहर कोई पचास-साठ व्यक्ति बाकी विद्यार्थियोको होटलसे बाहर आनेसे रोकनेमे सफल हो गये।

"अधिकारियोने इस तरह दरवाजे बन्द देखकर 'फेनसिंग' को खोलना चाहा। जब यूनिवर्सिटीके नौकरोकी मददसे वे फेनसिगको हटाने लगे, तो हडतालियोने उससे बने हुये रास्तो पर पहुँचकर दूसरोको इधरसे उधर कालेज जानेसे रोका। अधिकारियोने धरना देनेवालोको पकडकर हटाना चाहा, लेकिन वे कामयाब न हो सके। तब परिस्थितिको अपने काबूसे बाहर पाकर उन्होने इस गडबडकी जड उस निकाले हुये विद्यार्थीको होस्टलकी हदसे हटानेकी पुलिससे प्रार्थना की, जिसपर पुलिसने उसे वहाँसे हटा दिया। इसपर स्वभावत कुछ और भी विद्यार्थी खीझ उठे और हडतालियोके प्रति सहानभूति दिखाने लगे। अगले दिन हडतालियोके होस्टलकी सारी 'फेनसिंग' हटायी हुई मिली तब वे कालेजकी हदमे घुस गये और पढाईके कमरोमे जानेवाले रास्तोपर लेटकर धरना देने लगे। तब श्री श्रीनिवास शास्त्रीने डेढ महीनेकी लम्बी छुट्टी करके २९ नवम्बरसे १६ जनवरीतक यूनिवर्सिटीको बन्द कर दिया।

"अखबारोको उन्होने एक वक्तव्य देकर विद्यार्थियोसे अपील की कि वे छुट्टीके बाद घरसे शिष्ट और सुखद भावनाओके साथ पढनेके लिये आये।

"लेकिन कालेजके फिरसे खुलनेपर इन विद्यार्थियोकी हलचल और भी तेज हो गयी, क्योकि छुट्टीमे इन्हे से और सलाह मिल गयी थी। मालूम पडता है कि वे राजाजीके भी पास गये थे, लेकिन उन्होने हस्तक्षेप करनेसे इन्कार कर वाइस चासलरका हुक्म मनानेके लिये कहा। उन्होने वाइस चासलरकी मार्फत हडतालियोको दो तार भी दिये, जिनमे उनसे हड-ताल बन्द करके शान्तिके साथ पढाई शुरू कर देनेकी प्रार्थना की।

"अच्छे विद्यार्थियोके सामान्य बहुमतपर, हाला कि इन तारोका अच्छा असर पडा, मगर हडतालिये अपनी बातपर अडे रहे।

धरना देना अब भी जारी है। यह तो लगभग मामूली हो गया है, और लगभग पचास सहानुभूति रखनेवाले ऐसे है जो सामने आकर हडताल करनेका साहस तो नही रखते पर अन्दर ही अन्दर गडबड मचाते रहते है।

"ये रोज इकट्ठे होकर आते और क्लासोके दरवाजेपर पहली मजिलकी क्लासोपर जाने वाले जीनेपर लेट जाते, और इस तरह विद्यार्थियोको क्लासोमे जानेसे रोकते है। लेकिन शिक्षक-दूसरी ऐसी जगह जाकर पढाई शुरू कर देते है कि धरना देनेवाले उनसे पहले नही पहुच पाते। नतीजा यह होता है कि हर घटे पढाईका स्थान यहासे वहा बदलना पडता है, और कभी-कभी तो खुली जगहमे पढाना पडता है, जहा कि धरना देनेवाले लेट नही सकते। ऐसे अवसरोपर वे शोर-गुल मचाकर पढाईमे विघ्न डालते है, और कभी-कभी अपने शिक्षकोका व्याख्यान सुनते हुये विद्यार्थियोको परेशान कर डालते है।

"कल एक नयी बात हुई। हडतालिये क्लासोके अन्दर घुस आये और लेटकर चिल्लाने

लगे, और कुछ हडतालियोने तो, मैने सुना है, शिक्षकके आनेसे पहले ही बोर्डपर लिखना भी शुरू कर दिया था। कमजोर शिक्षक अगर कही मिल जाते है, तो इनमेसे कुछ हडतालिये उन्हें डराने फुसलानेकी भी कोशिश करते है। सच तो यह है कि उन्होने वाइसचासलरको भी यह धमकी दी थी कि अगर उन्होने हमारी मागे मजूर नही की, तो हिंसा और रक्तपातका सहारा लिया जायगा।

"दूसरी महत्वपूर्ण बात जो मुझे आपको कहनी चाहिये वह यह है कि हडतालियोको कुछ नगरसे बाहरी आदमी मिल जाते है—जो यूनिवर्सिटीमे घुसनेके लिये गुडोको भाडेपर लाते है। असलियत तो यह है कि मैने बहुतसे ऐसे गुन्डो और दूसरे आदमियोको, जो कि विद्यार्थी नही है, बरामदेके अन्दर और दूसरे क्लासोके कमरोके पास भी घूमते हुये देखा है। इसके अलावा विद्यार्थी वाइस-चासलरके बारेमे अपशब्दोका भी व्यवहार करते है।

"अब जो कुछ मै कहना चाहता हूँ वह यह है—हम सब याने कई शिक्षक और विद्यार्थियो की भी एक बडी तादाद यह महसूस कर रही है कि हडतालियोकी ये प्रवृत्तिया सत्यपूर्ण और अहिंसात्मक नही है और इसलिये सत्याग्रहकी भावनाके विरुद्ध है।

"मुझे विश्वस्त रूपसे मालूम हुआ है कि कुछ हडतालिये विद्यार्थी इसे अहिंसा ही कहते है। उनका कहना है कि अगर महात्माजी यह घोषणा कर दे कि यह अहिंसा नही है तो हम इन प्रवृत्तियोको बन्द कर देगें।"

यह पत्र १७ फरवरीका है और काका कालेलकरको लिखा गया है, जिन्हे कि वह शिक्षक अच्छी तरह जानते हैं। इसके जिस अंशको मैंने नहीं छापा उसमें इस बारेमें काका साहबकी राय पूछी गयी है कि विद्यार्थियोके इस आचरणको क्या अहिंसामय कहा जा सकता है और भारतके कितने ही विद्यार्थियोंमें अवज्ञाकी जो भावना आ गई है उस पर अफसोस जाहिर किया गया है।

पत्रमें उन लोगोके नाम भी दिये गये है, जो हड़तालियोंको अपनी बातपर अड़े रहनेके लिये उत्तेजना दे रहे हैं। हड़तालके बारेमें मेरी राय प्रकाशित होनेपर किसीने, जो स्पष्टतया विद्यार्थीही मालूम पड़ता है, मुझे एक गुस्सेसे भरा हुआ तार भेजा जिसमें लिखा था कि हडतालियों का व्यवहार पूर्ण अहिंसात्मक है। लेकिन ऊपर मैंने जो विवरण उद्धृत किया है वह अगर सच है तो मुझे कहनेमें कोई पशोपेश नहीं है कि विद्यार्थियोका व्यवहार सचमुच हिंसात्मक है। अगर कोई मेरे घरका रास्ता रोक दे तो निश्चय ही उसकी हिंसा वैसी ही कारगर होगी जैसे दरवाजेसे बल-प्रयोग द्वारा मुझे धक्का देनेमें होती है।

विद्यार्थियोको अगर अपने शिक्षकोंके खिलाफ सचमुच कोई शिकायत है, तो उन्हें हड़ताल ही नहीं बल्कि अपने स्कूल या कालेजपर भी धरना देनेका हक है; लेकिन इसी हद तक कि पढ़नेके लिये जानेवालोसे विनम्रताके साथ न जानेकी प्रार्थना करें। बोलकर या परचे बाँटकर वे ऐसा कर सकते है। लेकिन उन्हें रास्ता नहीं रोकना चाहिये, न उनपर कोई अनुचित दबाव ही डालना चाहिये जो कि हड़ताल करना नहीं चाहते।

और हडताल भला विद्यार्थियोने की किसके खिलाफ है ? श्री श्रीनिवास शास्त्री भारतके एक सर्वश्रेष्ठ विद्वान हैं। शिक्षकके रूपमें उनकी तभीसे ख्याति रही है,जब कि इनमेंसे बहुतेरे विद्यार्थी या तो पैदाही नही हुये थे या अपनी किशोरावस्थामें ही थे। उनकी महान विद्वत्ता और उनके चरित्रकी श्रेष्ठता दोनो ही ऐसी चीजें है जिसके कारण संसारकी कोई भी यूनिवर्सिटी उन्हें अपना वाइस-चांसलर बनानेमें गौरवानुभव ही करेगी।

काका साहबको पत्र लिखनेवालोने अगर अन्नामलाई यूनिवर्सिटीकी घटनाओका सही विवरण दिया है तो मुझे लगता है कि शास्त्रीजीने जिस तरह परिस्थितिको सम्हाला वह बिलकुल ठीक है। मेरी रायमें विद्यार्थी अपने आचरणसे खुद अपनी ही हानि कर रहे हैं। मैं तो उस मतको माननेवाला हूं जो शिक्षकोके प्रति श्रद्धा रखनेमें विश्वास करता है। यह तो मैं समझ सकता हूं कि जिस स्कूलके शिक्षकके प्रति मेरे मनमें सम्मानका भाव न हो उसमें मैं न जाऊँ, लेकिन अपने शिक्षकोकी बेइज्जती या उनकी अवज्ञाको मैं नहीं समझ सकता। ऐसा आचरण तो असज्जनोचित है और असज्जनता सभी हिंसा है।

हरिजन-सेवक
४ मार्च, १९३९

❀

क्या करें ?

एक प्रिंसपलने, जो अपना नाम जाहिर नही करना चाहते है, नीचे लिखा महत्वपूर्ण पत्र भेजा है —

"निम्नलिखित आवश्यक प्रश्नोका हल करनेके लिये क्षुब्ध मन दूसरोकी तर्क-सगत सम्मति चाहता है। ''शान्ति सघ लोम प्लेज यूनियन'' जिसे किसीभी परिस्थितिमे हिंसाका आश्रय लेनेसे इकार करके युद्धका विरोध करनेके लिये स्वर्गीय डिक शेफर्डने कायम किया था कि प्रतिज्ञाका पालन करना क्या हमारे ससारकी मौजूदा हालतमे ठीक और व्यवहारिक तरीका है ?"

'हाँ' के पक्षमें नीचे लिखी दलीलें है—

(१) संसारके महान् आध्यात्मिक शिक्षकोने अपने आचरण द्वारा हमें यह शिक्षा दी है कि किसी बुराईका अन्त केवल अच्छे उपायोसे ही हो सकता है, बुरे उपायोसे हर्गिज नहीं, और किसी भी तरहकी हिंसा (खासकर युद्धकी, चाहे वह एकमात्र तथाकथित आत्मरक्षणके लिये ही क्यो न हो) निःस्सन्देह बुरा उपाय ही है; फिर उसका उद्देश्य चाहे कुछ भी हो। इसलिये हिंसाका प्रयोग तो सदा ही गलत है।

(२) वर्तमान हिंसा और मुसीबतके वास्तविक कारण युद्धसे कभी दूर नहीं हो सकते। 'युद्धका अन्त करनेके लिये' प्रयोग होनेवाले पिछले युद्धने यह बात भलीभाँति सिद्ध कर दी है और यही हमेशा सत्य रहेगी। इसलिये हिंसा अव्यवहारिक है।

(३) जो लोग यह महसूस करते हैं कि (वे चाहे छोटी-छोटी बातोके लिये न लडें, फिर भी) स्वतत्रता और प्रजातत्रकी रक्षाके लिये तो उन्हें लडना ही चाहिये, वे भ्रममें है। मौजूदा परिस्थितियोमें युद्धका अन्त चाहे विजयमें ही क्यो न हो, फिर भी उससे हमारी रही-सही स्वतत्रताओका उससे भी अधिक निश्चित रूपमें अन्त हो जाता है जितना कि किसी आक्रमणकारीकी जीतसे होता। क्योंकि आजकल सफलताके साथ कोई युद्ध तबतक नहीं लडा जा सकता जब तक सारी जनताको फौजी न बना डाला जाय। उस फौजी समाजमें, जो कि दूसरे युद्धके फलस्वरूप जरूर पैदा होगा, चाहे जीत उसमें किसीकी क्यों न रहे, वन्धक बनकर रहनेकी अपेक्षा जान-बूझकर अहिंसात्मक रूपमें अत्याचारका प्रतिरोध करते हुये मर जाना कहीं बेहतर है।

'नहीं' के पक्षमें नीचे लिखी दलीले हैं--

(१) अहिंसात्मक प्रतिरोध उन लोगोके मुकाबिलेमें ही कारगर हो सकता है, जिनपर कि नैतिक और दया-मायाके विचारोका असर पड़ सकता है। फासिज्मपर ऐसी बातोका न केवल कोई असर ही नहीं पड़ता, बल्कि फासिस्ट लोग खुले आम उसे कमजोरीका निशान बतलाकर उसकी खिल्ली उडाते हैं। सब तरहके प्रतिरोध खत्म करनेमें किसी पशोपेशकी, या उसके लिये चाहे जितनी पाशविकतासे काम लेनेकी, वह परवाह नहीं करता। इसलिये फासिज्मके आगे अहिंसात्मक प्रतिरोध ठहर नहीं सकेगा। अतएव अहिंसात्मक प्रतिरोध वर्तमान परिस्थितियोमें बुरी तरह अव्यवहारिक है।

(२) लोकतत्रीय रक्षाके लिये होनेवाले हिंसात्मक प्रतिरोधमें (याने युद्ध या युद्ध की आमलाजिमी भर्तीके समय) सहयोग देनेमें इन्कार करना एक तरहसे उन्हीं लोगोकी मदद करना है, जो स्वतत्रताको नष्टकर रहे है। फासिस्ट आक्रमणको निःस्सन्देह इस बातसे बडी उत्तेजना मिली है कि प्रजातत्रमें जनताके ऐसे भी आदमी रहे है जो अपनी रक्षाके लिये लडना नहीं चाहते और युद्ध होनेपर भी अपनी सरकारोका विरोध करेंगे और इस प्रकार युद्ध शुरु होने या किसी तरहकी लाजिमी सैनिक भर्ती होनेपर अपनी सरकारोकी निन्दा करेंगे (और इस प्रकार रुकावट चाहेगें)। ऐसी हालतमें, रक्षाके हिंसात्मक उपायोपर जान-बूझकर आपत्ति करनेवाला न केवल शान्तिवृद्धिमें अप्रभावकारी रहता है, बल्कि वस्तुत. जो लोग उसे भग कर रहे हैं उनकी मदद करना है।

(३) युद्ध स्वतत्रताको भले ही नष्ट कर दे, लेकिन अगर प्रजातत्र बरकरार रहे तो कमसे कम उसका कुछ अंश फिरसे प्राप्त करनेकी कुछ सभावना तो रहती है, जब कि फासिस्टोको अगर ससारका शासन करने दिया जाय तो उसकी बिलकुल कुछ गुंजराइश ही नहीं है। इसलिये अत.करणसे युद्धपर आपत्ति करनेवाले लोग लोकसत्तात्मक शक्तियोको कमजोर करते हुये विरोधियोकी मदद करके अपने ही उद्देश्यको नष्ट कर रहे हैं।

लाजिमी सैनिक भर्तीवाले किसीभी देशमें, यहाँतक कि खतरेकी सभावनावाले ग्रेट-ब्रिटेनमें भी, नौजवानोके लिये इस प्रश्नका हल होना बहुत जरूरी है। लेकिन दक्षिण अफ्रीका, मिस्र या आस्ट्रेलिया जैसे देशोमें, जिन्हे शायद चढाईकी सभावनाका मुकाबला करना पड़े, और हिन्दुस्तानमें, जिसमे 'पूर्ण स्वाधीनता'के समय शायद जापान या मुस्लिम देशोकी गुट्टकी चढाईकी सभावना रहे, यह अभी अमलमें उतना महत्वपूर्ण नहीं है।

ऐसी सभावनाओ (वल्कि कहना चाहिये कि हकीकतो) के सामने क्या हरएक तीव्र-बुद्धि रखनेवालेको (फिर वह चाहे जवान हो या वृद्ध) क्या इस बातका निश्चय न होना चाहिये कि उसके करनेके लिये कौन-सा तरीका सही और व्यवहारिक है? यह एक ऐसी समस्या है जिसका किसी-न-किसी रूपमें या (अगर रोज नही तो किसी न किसी दिन) हममें हरएकको खुद सामना करना पडेगा। क्या आपके वाचक इन सब बातोको स्पष्ट करनेमें सहायक हो सकते है? जिन्हे इस बातका निश्चय न हो कि समय आनेपर उन्हे इसका क्या जवाब देना चाहिये, वे इसपर विचार करके इस बारेमें निश्चय कर सकते है। हाँ, जिन्हे अपने जवाबका निश्चय हो उन्हे मेहरबानी करके दूसरोको भी वैसा ही निश्चित बनानेमें मदद करनी चाहिये।

शान्तिकी प्रतिज्ञा लेनेवालेके प्रतिरोधके पक्षमें जो दलीलें दी गयी है उनके बारेमें तो कुछ भी कहनेकी जरूरत नहीं है। हाँ, प्रतिरोधके विरुद्ध जो दलीलें दी गयी है उनकी सावधानीके साथ छान-बीन करनेकी जरूरत है। इनमेंसे अगर पहली दलील सही हो तो वह युद्ध विरोधी आन्दोलनकी ठेठ जडपर ही कुठराघात करती है। इसका आधार इस कल्पना पर है कि फासिस्टो और नाजियोका हृदय पलटना सभव है। उन्हीं जातियोमें वे पैदा हुये है जिनमें कि तथाकथित प्रजातंत्रवादियो, या कहना चाहिये खुद युद्ध-विरोधियोका जन्म हुआ है। अपने कुटुम्बियोमें वे वैसे ही मृदुता, वैसे ही प्रेम, समझदारी व उदारतासे पेश आते है जैसे युद्धविरोधी इस दायरेके बाहर भी शायद पेश आते हो।

अन्तर सिर्फ परिमाणका है। फासिस्ट और नाजी तथाकथित प्रजातन्त्रोके दुर्गुणोके कारण ही न पैदा हुये हो तो निश्चय ही वे उनके सशोधित सस्करण है। किर्ली पेजने पिछले युद्धसे हुये संहारपर लिखी हुई अपनी पुस्तिकामें बताया है कि दोनो ही पक्षवाले झूठ और अति-शयोक्तिके अपराधी थे। वरसाईकी सन्धि विजयी राष्ट्रो द्वारा जर्मनीसे बदला लेनेके लिये की गयी सन्धि थी। तथाकथित प्रजातंत्रोने अबसे पहले दूसरोकी जमीनोको जवरदस्ती अपने कब्जेमें किया है और निर्दय दमनको अपनाया है। ऐसी हालतमें अपने पूर्वजोने तथाकथित पिछडी हुई जातियोका अपने भौतिक लाभके लिये शोषण करनेमें जिस अवैज्ञानिक हिंसाकी वृद्धि की थी, मेसर्स हिटलर ऐन्ड कम्पनीने उसे वैज्ञानिक रूप दे दिया तो उसमें आश्चर्यकी बात ही क्या है? इसलिये अगर यह मान लिया जाय, जैसा कि माना जाता है, कि ये तथाकथित प्रजातंत्रवादी अहिंसाका एक हद्द तक पालन करनेसे पिघल जाते हैं तो फासिस्टो और नाजियोके पाषाण हृदय पिघलानेके लिये कितनी अहिंसाकी जरूरत होगी, यह त्रैराशिकसे मालूम किया जा सकता है। इसलिये पहली दलील तो निकम्मी है, और इसमें कुछ तथ्य माना भी जाय तो भी उसे ध्यानसे बाहर निकाल देना होगा।

अन्य दो दलीले व्यवहारिक है। शान्तिवादियोको ऐसी कोई बात तो न करनी चाहिये जिससे उनकी सरकारोके कमजोर पड़नेकी सम्भावना हो! लेकिन इस भयसे उन्हे यह दिखा देनेके एकमात्र कारगर अवसरको नही गंवा देना चाहिये कि सभी तरहकी युद्धोकी व्यर्थतामें उनका अटूट विश्वास है। अगर उनकी सरकारें पागलपनके साथ युद्ध विरोधियोको शहीद बनाने लगें, तो उन्हे अपनी करनीके फलस्वरूप होनेवाली अशान्तिके परिणामोको सहना ही पड़ेगा। प्रजातत्रोको चाहिये कि वे व्यक्तिगत रूपसे अहिंसाका पालन करनेकी स्वतत्रताका आदर करें। ऐसा करनेपर ही संसारके लिये आशा-किरणोका उदय होगा।

हरिजन सेवक
१५ अप्रैल, १९३९

❀

नया तरीका

बिहार प्रान्तान्तर्गत चम्पारन जिलेके वृन्दावन गावमे होनेवाले गान्धी-सेवा-सघके पाचवें अधिवेशनमे गान्धीजीने जो प्रवचन दिया, उसका साराश नीचे दिया जाता है।

राजकोटसे चलते वक्त जो वक्तव्य मैंने दिया था, उसीकी एक-दो बातोकी मै इस भाषणमें चर्चा करूँगा। किशोर लालने अहिंसाके मुख्य फलितार्थोंका विस्तारसे जो वर्णन किया है वह ठीक ही है, याने हमारी हिंसासे हमारे प्रति हमारे विरोधीका रुख सख्त होनेके बजाय नरम होना चाहिये, इससे उसका दिल पिघलना चाहिये और उसके अन्दर हमारे लिये सहानूभूतिकी भावना जागृत होनी चाहिये। हिंसाका काम जो कुछ उसके रास्तेमें आये उस सबको नष्ट करना है, तो अहिंसाका काम हिंसाके मुँहमें अपने आप चले जाना है। अहिंसाके वातावरणमें किसीको अपनी अहिंसाकी अग्नि-परीक्षाका अवसर नहीं मिलता। उसे तो तभी कसौटी पर कसा जा सकता है जब कि हिंसासे मुकाबला हो।

मैं यह सब जानता हूँ और इसे अमलमें लानेका सदा प्रयत्न करता रहा हूँ, लेकिन मैं यह नहीं कह सकता कि अपने विरोधियोके दिल पिघलानेमें सदा सफल रहा हूँ। राजकोटने मेरे मनमें इस बातकी बड़ी तीव्रतासे अनुभूति करा दी है। मै अपने मनमें सोच रहा था कि दरबार वीरा वालाका हृदय परिवर्तन करनेमें हम अबतक क्यों असफल रहे है? इसका सीधा जवाब यह है कि अहिंसात्मक रूपमें हमने उनके साथ व्यवहार नहीं किया है। हमने उन्हे बुरा भला कहा है, और सत्याग्रही क्या करते है इसपर मैंने पूरा ध्यान नहीं दिया है। मैंने अपनी वाणीपर भले ही काबू रक्खा हो, लेकिन दूसरोकी वाणी पर मैंने वैसा काबू नहीं रक्खा।

रेजिडेण्ट मि० गिब्सनसे बातचीत करते हुये जब मैंने यह कहा कि कमेटी बनानेका काम ठाकुर साहबपर ही छोड़ दिया जाय,जिसे कुछ मि० गिब्सनने साहसकी बात बतायी उस समय अंधेरेमें उजालेकी तरह यह बात मेरे ध्यानमें आयी। तभी मुझे यह बात सूझी जिसे मैंने नया तरीका कहा है। वह बात खतरेसे खाली नही है, यह इसीसे स्पष्ट है कि जो कुछ वहाँ हो रहा था उन सबको मुझे रोक देना पड़ा है। राजकोटकी लडाईमें अपने उपवासके समय मुझे सम्राटके प्रतिनिधिके हस्तक्षेपका सहारा लेना पड़ा, और उसके बाद उनके राजकोट-स्थित प्रतिनिधि रेजिडेण्टसे मैं मदद माग रहा हूँ। जब मैंने वह 'साहसपूर्ण' बात कही तो मुझे आश्चर्य है कि क्यो मैं सर्वोच्च सत्ताको भुलाकर एकमात्र राज्यपर ही सारा ध्यान लगानेकी नहीं सोच रहा था। लेकिन शायद ऐसे साहसकी हिम्मत नहीं थी। अभी भी मैं यह निश्चय नहीं कर सका हूँ कि राजकोटके मामलेमें मुझे सर्वोच्च सत्ताके पास नहीं जाना चाहिये, ग्वायर-एवार्डको लोगोको फाड़ देनेकी सलाह देनी चाहिये, और नये सिरेसे राज्यके साथ ही सब मामला शुरू करना चाहिये। उस हालतमें मेरा सत्याग्रह सिर्फ राज्यके साथ होगा, और राजकोटके अधिकारियोका हृदय-परिवर्तन करनेके लिये मुझे अपने प्राणोकी भी बाजी लगा देनी होगी। तब उस समय अद्‌भुत प्रयोगशाला याने राजकोटपर ही मेरे सारे प्रयोग सीमित होगे। मेरी निराशाकी तहमें मेरी अहिसाका कोई प्रभाव हो तो, अहिंसाकी दृष्टिसे, ये प्रयोग निश्चय ही अधिक सपूर्ण होगें।

अहिंसावादी

अब कांग्रेसकी सड़न या अस्वच्छताको लीजिये। भला काग्रेसमें इतनी गन्दगी क्यो होनी चाहिये ? और इन सब गन्दगीके होते हुये हम "कांग्रेसवादी" नामके पात्र कैसे हो सकते हैं ? आपमेंसे कुछ लोग गान्धीवादी कहलाते है। गान्धीवादी नाम कोई रखनेके काबिल नहीं हैं। इसके बजाय तो अहिंसावादी क्यो न कहा जाय, क्योकि गान्धी तो अच्छाई और बुराई, निर्बलता और बल, हिंसा और अहिंसाका सम्मिश्रण है, पर अहिंसामें कोई मिलावट नहीं है। अब बतलाइये कि अहिंसावादीकी हैसियतसे क्या आप यह कह सकते है कि आप शुद्ध अहिंसाका पालन कर सकते है?क्या आप यह कह सकते है कि अपने विरोधीके तीरोको आप अपने मनमें उससे बदला लेनेकी संभावना रक्खे बगैर छाती खोलकर ओढ़ लेते है ? क्या आप कह सकते हैं कि अपनी नुक्ताचीनीपर आप नाराज और क्षुब्ध नहीं होते ? मुझे भय है कि बहुतसे लोग ऐसी कोई बात नहीं कह सकते।

आप इसपर उलटे यह कहेगें कि खुद आपने ही इस हदतक अहिंसाका पालन करनेका दावा अभी नहीं किया है। ऐसा हो तो मैं मानता हूँ उस हदतक अहिसा--पालन सदोष रहा है। अहिसा तो अपने दोषोको बढ़ाकर और अपने विरोधीके दोषोको कम करके बताती है। अहिंसावादी अपनी आखोके तिनकेको पहाड़ समझता है और अपने विरोधीके पहाडको तिनका समझता है। पर हमने तो इससे अन्यथा किया है।

देशी राज्योका जहाँतक सवाल है हमने कहा यह है कि हम राजाओको नष्ट नहीं करना

चाहते, हम तो उनके शासनमें सुधार करके उन्हे परिवर्तित भर करना चाहते हैं। पर हमारी वाणीने अक्सर हमारे दावोको झूठा ही साबित किया है।

राजकोटके बारेमें यद्यपि मैंने यह वक्तव्य दिया हैं, लेकिन मैं यह आपको विश्वास दिलाता हूँ कि मैं राजकोटको मँझधारमें नही छोडूँगा। अपने कार्यकर्ताओका साथ छोडकर उन्हें मार्ग-भ्रष्ट होनेका ही मौका न दूँगा। अगर मैं ऐसा करूँ तो जरूर वह सठिया जानेकी निशानी होगी, लेकिन मैं सठिया गया हूँ, ऐसा मुझे नहीं मालूम पड़ता। इसके विरुद्ध मैं तो इस बातकी प्रार्थना कर रहा हूँ कि वहांके कार्यकर्ताओकी शक्ति दिनदूनी बढे। मैं तो पहले तरीकेमें एक तीव्र परिवर्तन भर करनेको कह रहा हूँ।

आप लोगोंमें भी गंदगी

यह कहनेके बाद अब मैं गान्धी-सेवा-संघपर आता हूँ। अबतक मैंने जो कुछ कहा हैं उसपर आपने ध्यान रक्खा हो तो आप यह शायद समझ गये होंगे कि हमें अपनेको थोडा बहुत नये सांचेमें ढालना पडेगा। हमें अपने तई अपनी तरह छान-बीन करके यह पता लगाना पडेगा कि कसौटीपर हम कहाँतक खरे उतरते हैं। अगर हम उसमें खरे न उतरते हो, तो हमारे लिये यह बेहतर होगा कि हम अपने सदस्योकी संख्या घटा दें। सत्य और अहिंसामें हृदयसे श्रद्धा रखनेवाले २० भी सच्चे सदस्य हो तो वह २०० ऐसे सदस्योसे अच्छे रहेंगे जो इस ओरसे उदासीन हो। क्योकि वे तो एक दिन हमें सर्वनाशपर ले जायेंगे, जब कि २० के बदौलत शायद सच्चे सदस्योकी ही संख्या २०० तक पहुँच जाये।

गन्दगी तो क्या संघमें भी नहीं आ गयी है? सघके सदस्योने क्या धूर्त्तता, सन्देह और पारस्परिक अविश्वासको नहीं अपनाया है? सब सदस्योको मैं नहीं पहचानता, मैं तो सिर्फ कुछके ही नाम जानता हूँ। इसलिये अपनी व्यक्तिगत जानकारीमें नहीं बल्कि अपने मर्यादित अनुभवके आधारपर ही मैं यह कह रहा हूँ। बदकिस्मतीसे जमनालालजी यहाँ नहीं हैं। जिनकी बहुत सी संस्याओसे उनका सम्बन्ध है, उनके अनुभवोमें उन्होने अक्सर मेरे साथ हिस्सा बढाया है। उनके निर्विघ्न रूपसे चलनेमें कठिनाई क्यो होनी चाहिये? भला, हम पूर्ण विश्वासके साथ अपने कार्यकर्ताओको देशके एक भागसे दूसरे भागका काम सम्हालनेके लिये क्यो नहीं भेज सकते?

ईश्वरमें जीवित श्रद्धा

यह सब मैं आपके दोष निकालनेके लिये नही कह रहा हूँ, बल्कि इसलिए कि अनुशासन और हमारे सिद्धान्तोका कड़ाईसे पालन करनेकी जरूरतको आप अच्छी तरह महसूस कर लें। सत्याग्रहीकी ईश्वरमें जीवित श्रद्धा होनी चाहिये। यह इसलिये कि ईश्वरमें अपनी अटल श्रद्धाके सिवाय उसके पास कोई दूसरा बल नहीं होगा। बगैर उस श्रद्धाके सत्याग्रहका अस्त्र वह किस प्रकार हाथमें ले सकता है? आप लोगोमेंसे, जो ईश्वरमें ऐसी जीवित श्रद्धा न रखते हों, उनसे तो मैं यही कहूँगा कि वे गान्धी-सेवा-सघको छोड़ दें और सत्याग्रहका नाम भूल जायं।

अहिंसाका प्रतीक

आप लोगोमेंसे ऐसे कितने हैं कि जिनकी चर्खेमें जीवित श्रद्धा है ? क्या आप उसे हृदयसे अहिंसाका प्रतीक मानते हैं ? अगर हमारी ऐसी श्रद्धा है तो हमारी कताईमें स्वतः एक शक्ति होगी। कताई तो बल्कि सविनय अवज्ञासे भी अधिक शक्तिशाली है; सविनय अवज्ञासे क्रोध और द्वेषभावनाको उत्तेजन मिल सकता है, पर कताईसे ऐसा कोई दुर्भाव उत्तेजित नहीं होता। २० साल पहले मैंने अपने चर्खेमें अपनी श्रद्धाका एलान किया था। आज मैंने २० वर्षके अनुभवके बलपर फिर उसी अडिग श्रद्धाका एलान करता हूँ। अगर आपको लगता है कि आपके हृदयमें चर्खेके प्रति ऐसी श्रद्धा नही है, तो मैं आपसे कहूँगा कि आप सत्याग्रहको भूल जायें।

श्री प्रजापति मिश्रने बताया था कि यहाँसे पांच मीलके चक्करमें जितने गाँव आते हैं उनमें उन्होने चर्खेको दाखिल करा दिया है। इसमें गर्व करनेकी ऐसी क्या बात है ? लक्ष्मी बाबूने एक सुन्दर प्रदर्शिनीका आयोजन किया है, पर उसमें कोई ऐसी चीज नहीं है जो मुझे हर्षोन्मुक्त कर सके। विहारमें तो, जिसे कि इतने तमाम सुन्दर कार्यकर्त्ताओको पैदा करनेका गर्व है, ऐसा एक भी घर नहीं होना चाहिए, जिसमें चर्खा न हो। बिहारकी तो हम सूरत बदल सकते हैं, अगर हमें यह मालूम हो जाय कि चर्खेमें कितनी शक्ति और कितनी सामर्थ्य है। मैं अपनी उन हजारो भखो मरनेवाली बहिनोकी बातें नहीं कर रहा हूँ, जिन्हे अपने पेटके लिए कमाना जरूरी है, बल्कि मैं उन लोगोके बारेमें बातें कर रहा हूँ जो सत्य और अहिंसामें श्रद्धा रखनेका दावा करते हैं। जिस क्षण वे यह जान जायेंगे कि चर्खा अहिंसाका प्रतीक है, उनके सामने एक नया प्रकाश आ जायगा, समयके अपव्ययको वे एक गुनाह समझने लगेंगे, वे किसीके दिलको दुखानेवाली भाषाका प्रयोग नहीं करेंगे और न उनके मनमें कभी निरर्थक विचार उठेंगे।

चर्खा स्वतः एक निर्जीव वस्तु है, पर जब हम उसमें अमुक गुणोका आरोप कर देते हैं, तव वह एक सजीव वस्तु बन जाता है। रामनाम तक देखा जाय तो स्वतः निर्जीव है, किन्तु वह भगवानका एक जीवित प्रतीक बन गया है। क्योकि लाखो-करोडो मनुष्योने उसमें अपना भक्ति-भावको प्रतिष्ठित किया है। चर्खा एक पापी मनुष्य भी चला सकता है और राष्ट्रकी सम्पत्तिको बढा सकता है। मैं ऐसे लोगोको जानता हूँ जिन्होने मुझे बताया कि चर्खेकी मधुर सगीतने उनकी विषय-वासना और दूसरे विकारोका शमन कर दिया है।

हिंदुस्तानमें मैंने जो सत्याग्रहकी कल्पना कर रखी है उसके लिये चर्खा इसी कारण इतना आवश्यक हो गया है। जब मैंने १९०८में 'हिंद स्वराज' लिखा तव चर्खा देखा भी नहीं था ; मैंने तो दरअसल करघेको चर्खा समझा था। लेकिन उस समय भी चर्खा मेरे लिये अहिंसाका एक प्रतीक था। इसलिए मैं एक वार फिर कहूँगा कि अगर लोगोकी चर्खेमें इस तरहकी जीवित श्रद्धा नहीं है, तो वे सत्याग्रहमें न कूदें। वे अपने बलपर भले ही सत्याग्रह करें, पर वे मेरा कोई उपयोग नहीं कर सकेंगे।

कांग्रेसमें गंदगी

कांग्रेसकी गन्दगीके प्रश्नके सम्बन्धमें मैं यह कहूँगा कि उसे निर्मूल करनेका सर्वोत्तम उपाय यह है कि हम खुद अपनी शुद्धि करें। संगठनात्मक अंगसे संबध रखनेवाली समस्याको तो कांग्रेस हल कर लेगी। सत्य और अहिंसा आपलोगोंकी अपेक्षा उसके लिए कुछ कमकी महत्वकी चीज नहीं है। फिर कांग्रेस उसे बदल सकती है, पर आप लोग ऐसा नहीं कर सकते।

प्रचार कमसे कम

अब मैं दो शब्द उसके विषयमें कहूँगा, जो गान्धीवाद कहा जाता है, और उसके प्रचारके बारेमें भी। सत्य और अहिंसाका प्रचार जितना इन सिद्धान्तोंके अनुसार वस्तुतः आचरण करनेसे होता है, उतना पुस्तकोंमें नहीं होता। सत्य-आचरणका जीवन पुस्तकोंसे कहीं ज्यादा महत्व रखता है। मैं यह नहीं कहता कि हम पुस्तकें या पत्र प्रकाशित न करें। मैं तो केवल यही कहता हूँ कि वे आवश्यक नहीं हैं। अगर हम अहिंसा और सत्यके सच्चे भक्त हैं, तो ईश्वर हमें कठिन-से-कठिन समस्याओंको हल करनेकी आवश्यक शक्ति दे देगा। विरोधीके दृष्टिकोणको समझनेकी नीयतका इस भक्तिमें समावेश हो जाता है। उसकी मनोवृत्तिमें उतरनेका और उसका दृष्टिकोण समझनेका सच्चा प्रयत्न हमें करना ही चाहिए। हिंसाके मुंहमें अहिंसाका सीधे चले जानेका यही अर्थ है। अगर हमारे मनकी इस प्रकारकी वृत्ति हो तो हम अहिंसाके सिद्धान्तोंका प्रचार करनेकी आशा कर सकते हैं। बगैर इसके कितावों और अखबारोंका प्रचार-कार्य कोई अर्थ नहीं रखता। आपको शायद यह मालूम नहीं है कि मैं 'यंग इंडिया'को किस उपेक्षाके साथ चलाया करता था। 'यंग इडियाका' प्रकाशन जब बन्द कर देना पड़ा, तब मैंने इसके लिए एक आंसू भी नहीं बहाया था। मगर सत्याग्रह, जिसकी कि मदद करना, इसका उद्देश्य था, बच गया। कारण कि सत्याग्रह किसी बाहरी मददपर निर्भर नहीं करता, वह तो अपनी सारी शक्ति अन्दरसे प्राप्त करता है।

हरिजन सेवक
१३ मई, १९३९

❀

सत्य के पास अपनी रक्षाके लिए अमोघ शक्ति है। सत्य ही जीवन है और ज्योंही यह किसी मानव-व्यक्तिमें अपना घर कर लेता है त्योंही यह अपने को फैला लेता है।"

—गांधीजी

अहिंसाका मार्ग

२४ एप्रिलको जब यहांसे मैं कलकत्तेके लिए रवाना हुआ, तब मैंने यह कहा था कि राजकोट मेरे लिए एक प्रयोगशाला साबित हुआ है। इसका सबसे ताजा प्रमाण मेरी इस घोषणामें है, जो मैं कर रहा हूँ। सहयोगियोके साथ बहुत वाद-विवादके बाद मैं आज शामको ६ बजे इस निर्णयपर पहुँचा हूँ कि भारतके चीफ जस्टिस द्वारा दिये हुये निर्णयका मैं परित्याग कर दूं।

मैं अपनी गलती स्वीकार करता हूँ। उपवासके अन्तमें मैंने यह कहा था कि मेरा यह उपवास जितना सफल हुआ है उतना इससे पहलेका और कोई उपवास सफल नही हुआ। मगर अब मैं देखता हूँ कि वह हिंसासे रजित था। उपवास करके मैंने सार्वभौम सत्ताकी दस्तदाजी चाही, ताकि वह ठाकुर साहबको अपनी प्रतिज्ञा पूरी करने के लिए प्रेरित करे। यह 'अहिंसा'का हृदय-परिवर्तनका मार्ग नहीं है, यह तो हिंसा तथा 'दबाव' डालनेका मार्ग है। अगर मेरा उपवास ठाकुर साहबके ही प्रति होता और मैं उनके तथा उनके सलाहकार श्री वीरावालाके हृदयको पिघला सकता और ऐसा करते हुए मर जानेमें भी संतोष मानता तो मेरा उपवास शुद्ध होता। मेरे रास्तेमें अगर अगणित कठिनाइयां न आतीं, तो मेरी आंखें न खुलतीं। दरबार श्री वीरावाला ग्वायर-निर्णयको दिलसे नहीं पसन्द करते थे। इसलिए उन्होने देरी लगानेमें हर एक मौकेका लाभ उठाया'। निर्णय तो मेरा मार्ग प्रशस्त करनेके बदले मुसलमानो और भायातोको मेरे विरुद्ध नाराज करनेंमें बहुत बड़ा कारण बन गया। निर्णयके पहले हम लोग दोस्तोकी तरह मिले थे। अब मुझपर स्वेच्छासे और बगैर किसी विचारके वचन-भग करनेका आरोप किया जाता है। यह मामला चीफ जस्टिसके पास जानेवाला था कि वे इस बातका निर्णय कर दें कि मैं आरोपित वचन-भंगका दोषी हूँ या नहीं।

मुसलिम काउन्सिल और गिलासिया असोसिएशनके वक्तव्य मेरे सामने हैं। अब चूंकि मैंने ग्वायर-निर्णयसे मिलने वाले लाभको छोड देनेका निश्चय किया है, अत उन दोनो मामलोका जबाब देना मेरे लिए जरूरी नहीं रह गया है। जहाँ तक मेरा ताल्लुक है, मुसलमान और भायात कोई भी चीज ठाकुर साहबसे, जो वे कृपापूर्वक दें, प्राप्त कर सकते हैं। केस तैयार करनेके लिए मैंने उनको जो तकलीफ दी, इसके लिए मैं उनसे क्षमा चाहता हूँ। अपनी कमजोरीकी हालतमें आवश्यक जोर डलवानेके लिए मैं वायसरायसे क्षमा मांगता हूँ। चीफ जस्टिसको मैंने कष्ट पहुँचाया, इसलिए उनसे भी क्षमा-याचना करता हूँ, क्योकि मैं अच्छी तरह जानता होता, तो उन्हें वह कष्ट न उठाना पड़ता, जो उन्होने उठाया और सर्वोपरि, मैं ठाकुर साहब और श्री वीरावालासे भी क्षमा चाहता हूँ।

जहांतक दरबार श्री वीरावालका संबंध है, मुझे यह कबूल करना चाहिए कि अपने दूसरे सहयोगियोकी भांति मैं भी उनके संबंधमें बुरे विचार रखता था। मैं यहां इस बातपर

"अगर जर्मनीमे कोई यहूदी गान्धी पैदा हो जाय, तो वह लगभग पाच ही मिनट क्र
कर सकेगा, और फौरन उसका सिर उडा दिया जायगा।"

मगर इससे मेरा मामला खारिज नहीं हो जाता और न इससे मेरी अहिंसाकी शक्तिमें
जो श्रद्धा है उसे कोई धक्का लगता है। जिन अधिनायकोका अहिंसामें कोई विश्वास नहीं है
उनकी भूख शान्त करनेके लिए हजारो नहीं तो सैकड़ोके बलिदानकी आवश्यकता तो होगी ही,
यह मै कल्पना कर सकता हूँ। बड़ी से बड़ी हिंसाके सामने भी अहिंसा अपनी अमोघ-शक्ति दिखाती
है। यह अहिंसाकी व्याख्याका सच्चा सूत्र है। ऐसे ही प्रसगोपर उसके गुणकी असल कसौटी होती
है। कष्ट उठानेवालोको अपने जीवन-कालमें परिणाम देखनेकी जरूरत नहीं। उन्हें तो यही
श्रद्धा रखनी चाहिये कि यदि उनकी मृत्युके बाद उनका सिद्धान्त जीवित रह गया तो परिणामका
आना निश्चित ही है। हिंसाका तरीका अहिंसाके तरीकेसे कोई बहुत बडी 'गारटी' नहीं दिलाता।
वह तो इतनी कम गारटी दिलाता है कि जिसकी कोई हद नहीं। कारण यह है कि अहिंसाके
पुजारीकी श्रद्धाका उसमें अभाव होता है।

लेखककी बहस इस बात पर है कि–

"मैंने यहूदियोकी समस्यापर बगैर उस एकाग्रता और सत्यकी तीव्र शोधके लिख मारा,
जिनसे कि अन्य समस्याओसे पेश आते समय, मै साधारणतया काम लेता हूँ।"

इसपर तो मै इतना ही कह सकता हूँ कि जहाँ तक मुझे मालूम है, जब मैंने वह लेख
लिखा तब न तो मुझमें एकाग्रताका अभाव था और न सत्यकी तीव्र शोधका ही। लेखकका
दूसरा आरोप कहीं अधिक गंभीर है। उनका ख्याल है कि मेरे हिन्दू-मुसलिम ऐक्यकी हिमा
यतने मुझे अरबोके दावेके प्रति पक्षपाती बना दिया, खासकर जब कि उस पहलूका स्वभावतः
हिन्दुस्तानमें जोर दिया गया है। मैंने अक्सर यह कहा है कि मुसलमानोकी मित्रता हासिल
करनेकी तो बात ही क्या है, हिन्दुस्तानकी मुक्तिकी खातिर भी मै सत्यको नहीं बेचूगा। लेखकका
ख्याल है कि जिस तरह मैंने खिलाफतके प्रश्नके सबधमें गलती की थी उसी तरह यहूदियोंके
प्रश्नके संबधमें भी गलती कर रहा हूँ। इतना अधिक समय गुजर जानेपर भी मैंने जो खिला
फतका मामला हाथमें लिया था उसपर मुझे जरा भी अफसोस नहीं है। मै यह जानता हूँ कि
मेरा यह आग्रह साबित नहीं करता कि मेरा रुख कहाँ तक सही था। जरूरत केवल इतना
भर जान लेने की है कि अपने १९१९-२०के कार्यके बारेमें मै आज क्या विचार रखता हूँ।

मै इस बातको जानता हूँ और मुझे इस बातका दुःख है कि मेरे उस लिखनेसे न तो
'ज्यूइश फ्रांटियर'के संपादककोही संतोष होगा, और न मेरे अनेक यहूदी मित्रोको ही। फिर भी
मै यह दिलसे चाहता हूँ कि किसी-न-किसी तरह जर्मनीके यहूदियोका उत्पीडन खत्म हो
जाय, और फिलस्तीनका सवाल इस तरह तय हो जाय कि जिससे सभी संबंधित पक्षोंको
संतोष हो सके।

हरिजन सेवक
२७ मई, १९३९

जड़ मूलका मतभेद

प्रश्न—"सारी जड तो आप और सुभाष बाबूके बीच मूलभूत मतभेदोकी है ? क्या आप सक्षेपमे वतला सकते है कि वे मतभेद क्या है ?"

उत्तर—हमारे पत्र-व्यवहारसे यह बात जाहिर है, लेकिन मै उसे प्रकाशित करनेके लिए स्वतंत्र नहीं हूँ।" (इसके बाद तो सुभाष बाबू उसे प्रकाशित कर चुके है।) लेकिन मैं समझता हूँ कि हमारे मतभेद जग-जाहिर है। ब्रिटिश सरकारको चुनौती देनेकी जो बात उन्होंने कही है उसीको ले लीजिये। वह समझते है कि ब्रिटिश सरकारको चुनौती देनेके लायक स्थिति है, पर मुझे लगता है कि आज अहिंसात्मक लड़ाई छेड़ना और चलाना अशक्य है। जो लोग हिंसामें विश्वास करते हैं उनपर हमारा कोई नियंत्रण नहीं है। राणपुर, रामदुर्ग और कानपुर इस बातके संकेत है। युक्तप्रान्तके कानपुर तथा अन्य नगरोंकी स्थितिपर पन्तजीका अहिंसात्मक नियंत्रण बहुत कम है और जिन कठिनाइयोका हमें सामना करना पड़ रहा है, शिया-सुन्नीका झगड़ा उसका एक नया नमूना है। न केवल गैर-कांग्रेसियोपर ही हमारा काबू नहीं है बल्कि खुद कांग्रेसियोपर भी हमारा बहुत कम काबू है। एक समय था जब देशके अधिकांश लोग हमारी बात सुना करते थे, आज तो अनेक कांग्रेसवादी भी हमारे हाथोमें नहीं है। नमक-सत्याग्रहके दांडी-मार्चका संगठन करनेकी आज मेरी हिम्मत नहीं है। आज तो सारा वातावरण उलटा हमारे अनुपयुक्त है। लेकिन सुभाष बाबूका विचार इससे उलटा है।

अब कांग्रेसियोमें फैली हुई गन्दगीको लीजिये। कांग्रेसमें जो गन्दगी फैल रही है उसे दूर करनेके लिए मै सारे कांग्रेस-तंत्रको ही शाइस्तगीके साथ दफना देनेके लिए तैयार हूँ। कार्य-समितिके सब सदस्योको मैं अपने इस विचारपर सहमत कर सकता हूँ, यह मैं नहीं जानता। लेकिन यह मैं जानता हूँ कि शायद सुभाष बाबूको मै अपने साथ सहमत नहीं कर सकता।

सक्षेपमें, मेरा यह विश्वास है कि हिंसा और गन्दगीका आज बोलबाला है। लेकिन वह इस बारेमें मुझसे सहमत नहीं है। इसलिए उनकी योजनाएं और कार्यक्रम मेरी योजनाओ और कार्यक्रमोसे भिन्न ही होने चाहिये।

प्रश्न—समाजवादियो और प॰जवाहरलाल नेहरूके साथ भी क्या आपका ऐसा ही मतभेद है ?"

उत्तर—दूसरी बातोको मिलाकर गोलमाल न कीजिये। चुनौतीकी कल्पना मूलसे ही सुभाष बाबूकी है और कितने लोग इसे स्वीकार करते है यह मैं नही जानता। इसके अलावा जवाहरलाल और दूसरे समाजवादी मित्रोमें भी मतभेद है। समाजवादियोंसे मेरा जो मतभेद है उसे सब जानते है। मेरा विश्वास है कि मनुष्यका स्वभाव सुधर सकता है और उसके लिए हमें प्रयत्न करना चाहिये। वे लोग इसमें विश्वास नहीं करते। लेकिन मुझे आपको बता

देना चाहिये कि हम लोग एक दूसरेके अधिकाधिक निकट आ रहे हैं । या तो वे मेरी ओर खिंच रहे हैं या मैं उनकी ओर खिंच रहा हूँ । जवाहरलालका जहाँ तक सवाल है, हम जानते हैं कि हममेंसे किसीका भी एक दूसरेके बिना काम नहीं चल सकता, क्योंकि हमलोगोमें ऐसी आत्मीयता है जिसे कोई बौद्धिक मतभेद नष्ट नहीं कर सकते ।

लेकिन मैं आपसे कुछ और भी कहूँगा । अगर आप सब अपने ध्येयके प्रति सच्चे हैं तो जो सवाल आपने किये वे किये ही नहीं जाने चाहिये थे । हम तो सर्वधर्म-समानत्व यानी सब धर्म-विश्वासोके प्रति समान श्रद्धामें विश्वास करते हैं । इसलिए जिन्हे दक्षिणपन्थी और वामपन्थी कहा जाता है, उनकी मान्यताओंमें भी हमें समान श्रद्धा रखनी चाहिये । लेकिन जैसे इस्लाम और ईसाई धर्मके प्रति समान श्रद्धाका अर्थ यह नहीं है कि मैं उन दोनोंमेंसे किसी धर्मको अंगीकार कर लू । इसी प्रकार समान श्रद्धाका यह मतलब नहीं होना चाहिये कि आप दूसरोंके विचारोंको अपना लें । मेरी समान श्रद्धा तो मुझे इसी बातके लिए बाध्य करती है कि उनके दृष्टिकोणको मैं समझ लूं जिससे कि जिस दृष्टिकोणसे वे अपने धर्मको देखते हैं उसकी मैं कद्र कर सकू । इसका अर्थ यह हुआ कि जिन बातोंमें भिन्नता हो उनपर हम ध्यान न दें। उन्हीं बातोपर जोर दें जिनमें मतैक्य हो ।

और एकताकी सब संभव बातोंका पता लगानेमें भला कोई कठिनाई क्यों होनी चाहिये ? किसी बातका पता लगानेका राजमार्ग है विश्वास और सरल स्वभाव । बाइबिलमें दो सुनहरे नियम है । बाइबिलकी बात जो मैं कह रहा हूँ उसका यह मतलब नही कि हमारे शास्त्रोंमें ऐसे उपदेश नहीं है, लेकिन इस समय मुझे उन्हींकी याद आ रही है । याने "विरोधीके साथ तू फौरन समझौता कर ले" और "अपने रोषपर आजके सूरजको अस्त न होने दे" । जबतक आप इसके अनुसार आचरण न करें आप संघके उपयुक्त सदस्य नहीं है, क्योंकि इन दोनो ही नियमोका उद्गम अहिंसाका यह सिद्धान्त ही है । सीधे हिंसाके मुहमें चले जानेका दूसरा कोई अर्थ ही नहीं है ।

जब मुझे यह बताया गया कि आपमेंसे कुछ लोगोके दिलमें सरदारके बारेमें सदेह है तब मुझे यह लगा कि आपसे यह कहूँ । आपको उनके पास सीधे जाना चाहिये और उनसे कैफियत माँगनी चाहिये । अगर आपको उनके जवाबसे संतोष न हो, आपके विचारमें उनकी सफाई अहिंसाकी कसौटीपर खरी न उतरे, तो आप सरदारसे कहें कि वे गांधी-सेवा-संघसे अलग हो जायें ।

मैं आशा करता हूँ कि ये मतभेद अस्थायी हैं । पर वे काममें बराबर रुकावटें डाल रहे हो, और दूर होना असभव हो गया हो, तब तो जितनी ही जल्दी हम सघको खतम कर दें उतना ही अच्छा । क्योंकि संघकी कल्पनामें सत्य और अहिंसाकी शक्तियोको सगठित करनेकी संभावना है । पर हमें हमेशा ही अपने मतभेदोपर बहस करते रहना है, तो हमें यह मानना चाहिये कि कम से कम हम लोगोमें इन महान व्यक्तियोके संगठित करनेकी क्षमता नहीं है ।

लेकिन आपने जो यह आवश्यक प्रश्न पूछा है—

रचनात्मक कार्य और अहिंसाके बीच क्या संबध है ? इन दोनोका क्यो इतना घनिष्ठ सवध है ?

इस प्रश्नपर मुझे यह चीज ले जाती है। मेरा ख्याल है कि यह काफी स्पष्ट हो गया है कि बगैर अहिंसाके हिन्दू-मुसलिम ऐक्य, मादक-द्रव्य-निषेध और अस्पृश्यता-निवारण असम्भव है। रहा सिर्फ चर्खा। अहिंसाका प्रतीक चर्खा कैसे बन गया है ? यह तो मै पहले ही कह चुका हूँ कि असल चीज तो वह भावना है, जिससे कि इसे आप देखते है, जिन गुणोकी आप उसमें स्थापना करते है। चर्खेमें कोई ऐसी आनुषगिक वस्तु नहीं है। गायत्री मत्रको ही लीजिए। जो प्रभाव उसका मुझपर पडता है वही प्रभाव अहिदुओपर नहीं पड सकता। कलमाका मुसलमानोपर जो असर पडता है वह मुझपर नहीं पड सकता। यही बात चर्खेके बारेमें है। चर्खेमें स्वतः ऐसा कोई गुण नहीं है जो अहिंसाकी शिक्षा दे सके और स्वराज हासिल करा सके। पर आप उसकी उन प्रतिष्ठित भावनाओके साथ साधना करेंगे और वह तद्रूप हो जायगा। उसका प्रत्यक्ष मूल दरिद्रनारायणकी सेवा है, पर उसका यह अर्थ करना कि उसे अहिंसाका प्रतीक या स्वराज्यके लिए एक आवश्यक शर्त होनी चाहिए, जरूरी नहीं। मगर हमने १९२०से चर्खेका सवध अहिंसा और स्वतत्रताके साथ जोड़ दिया है।

फिर आत्मशुद्धिका भी कार्यक्रम है, जिसके साथ भी चर्खेका घनिष्ठ सवंध है। घरके कते सूतका मोटा-झोटा खद्दर जीवनकी सादगी और पवित्रताको जाहिर करता है।

'बगैर चर्खेके, बगैर हिंदू-मुसलिम-एकताके और बगैर अस्पृश्यता-निवारणके सविनय अवज्ञाका आन्दोलन कोई चल ही नहीं सकता। सविनय अवज्ञाके मूलमें तो यह कल्पना निहित है कि हम अपने बनाये नियमोका स्वेच्छासे पालन करें। बगैर इसके किया हुआ सविनय-भंग तो निर्दय मजाक होगा। यह चीज है, जो मुझे राजकोटकी प्रयोगशालामें अनुभव हुई और इसपर मेरा दूना विश्वास हो गया। अगर एक भी मनुष्य तमाम शर्तोंको पूरा कर ले, तो वह भी स्वराज्य प्राप्त कर सकता है। मै ऐसे आदर्श सत्याग्रहकी स्थितिसे अब भी दूर हूँ। राउलेट ऐक्टके विरोधमें जब सत्याग्रह शुरू किया गया, तब हमारे पास केवल मुट्ठीभर ही आदमी थे, लेकिन उन मुट्ठीभरसे हमने खासा बड़ा तंत्र बना लिया। चूँकि मै अपूर्ण सत्याग्रही हूँ, इसलिए तो आपका सहयोग माँग रहा हूँ। ऐसा करते हुए मै खुद आगे बढ़ता हूँ, क्योकि मेरी अन्तर्शोध कभी बन्द नहीं होती। कोई इतना जराजीर्ण नहीं हो गया है कि इसमें वह आगे न बढ़ सके, मै तो निश्चय ही नहीं हुआ हूँ। सत्याग्रहका जन्म ट्रासवालमें हुआ था। कुछ ही हजार लोगोंने वहाँ उसका प्रयोग किया था। यहाँ लाखोंने प्रयोग किया। ६ एप्रिल १९१९को मद्राससे किये गये आह्वानका जो करोड़ो लोगोंने जवाब दिया और एक साथ उठ खड़े हुए उसकी कल्पना भी किसीने की थी ? किन्तु आखिरी जीतके लिए रचनात्मक कार्यक्रम लाजिमी है। सचमुच, आज तो यह मेरी धारणा है कि अगर हम चर्खेका कार्यक्रम अहिंसाका प्रतीक स्वरूप समझकर पूरा न करेंगे—फिर उसमें चाहे जितना समय लगे—तो हम राष्ट्रके प्रति बेवफा साबित होगे।

हरिजन सेवक

३ जून, १९३९

उलझन क्यों ?

मुझे दुःख है कि देशी राज्योंके संबंधमें मैंने जो वक्तव्य हालमें दिये हैं उन्होंने ऐसे लोगोंको भी परेशानीमें डाल दिया है जिन्हें कि मेरे लेखों और कार्योंको समझनेमें कोई कठिनाई नहीं हुई। किन्तु राजकोटके मेरे वक्तव्योंने, राजकोटके मेरे कार्योंने और त्रावणकोर सबंधी मेरे वक्तव्यने, इन सबने मिलकर मूल उलझनको और पेचीदा बना दिया है। प्यारेलाल और पीछेसे महादेव मेरे लेख तथा कार्योंको उनके सच्चे अर्थमें समझानेका वीरतापूर्वक प्रयत्न कर रहे हैं। मैं यह जानता हूं कि ये अपने प्रयत्नसे गलतफहमीको कुछ हदतक दूर कर सके हैं। पर मैं देखता हूं कि मुझे खुद भी कुछ समझानेकी जरूरत है। इसलिए अपने हालके लेखों तथा कार्योंका जो अर्थ मैं समझता हूं उस अर्थको जनताके समक्ष रखनेका प्रयत्न मुझे करना ही चाहिए।

सबसे पहले तो इन कार्यों तथा लेखोंका जो अर्थ नहीं है वह कह दूं। एक तो यह कि व्यक्तिगत, सामूहिक या जन-साधारणके सत्याग्रहसे संबंध रखनेवाले मेरे विचारोंमें कोई तबदीली नहीं हुई। उसी प्रकार, कांग्रेस और राजाओंके बीच अथवा राजाओं और उनकी प्रजाके बीच किस तरहका संबंध होना चाहिए इस विषयमें मेरे विचारोंमें भी कोई परिवर्तन नहीं हुआ और मेरी उस रायमें भी कि सार्वभौमसत्ताने इतने दिनों तक देशी राज्योंकी प्रजाके प्रति अपने जिस कर्तव्यकी बुरी तरह अवगणना की है उसका पालन करना आज बहुत जरूरी है—कोई अन्तर नहीं पड़ा। मेरा पश्चाताप तो मेरी एक ही भूलके सबंधमें था, और वह यह कि जिस ईश्वरके नामपर राजकोटमें मैंने अनशन किया था उसके चरणोंमें चित लगाये रखनेकी ओर मैंने अन्तरमें अविश्वासका स्थान दिया, और वायसरायके हस्तक्षेपसे प्रभुके कार्यकी पूर्ति करनेका प्रयास किया। ईश्वरपर आधार रखनेके बदले वायसरायपर आधार रखनेमें था यों कहिये कि ठाकुर साहबको ठिकाने लगानेके लिए वायसरायको ईश्वरकी मददसे बुलानेका मैंने प्रयत्न किया। मेरा यह काम निरी हिंसाका था। इस प्रकारकी हिंसाके लिए मेरे अनशनमें जरा भी स्थान नहीं हो सकता।

इस राजकोट-प्रकरणने मेरे जीवनमें जिस नये सत्य-दर्शनकी वृद्धि की वह यह है कि ठेठ १९२०से लेकर राष्ट्रीय आंदोलनके सबधमें जिस अहिंसाका दावा हम करते आ रहे हैं वह अद्‌भुत होते हुए भी सर्वथा विशुद्ध नहीं थी। अत. जो परिणाम आजतक हुए वे यद्यपि असाधारण कहे जा सकते हैं तथापि हमारी अहिंसा यदि बिलकुल विशुद्ध होती तो उसके परिणाम बहुत अधिक मूल्यवान साबित होते। मन-वाणी सहित सम्पूर्ण अहिंसाकी लड़ाईमें विरोधीमें स्थायी हिंसावृत्ति कभी पैदा हो नहीं सकती। लेकिन मैंने देखा कि देशी राज्योंकी लड़ाईने राजाओं तथा उनके सलाहकारोंमें हिंसावृत्ति पैदाकर दी है। कांग्रेसके प्रति अविश्वाससे आज उनका अन्तर भरा हुआ है। जिसे वे कांग्रेसकी दस्तदाजी कहते हैं, उस

दस्तंदाजीकी उन्हे जरूरत नही। कितने ही राज्योमें तो कांग्रेसका नाम लेना भी अप्रिय हो गया है। ऐसा होना नहीं चाहिए था।

इस अनुसन्धानका मुझपर जो असर हुआ वह बडे महत्वका है। इसमें भावी सत्याग्रहियोके प्रति मै अपनी अपेक्षाओ और मार्गोमें सख्त बन गया हूँ। इसके परिणामस्वरूप मेरी संस्था घटकर बिलकुल नगण्य हो जाय, तो मुझको उसकी चिन्ता नही होनी चाहिए। यदि सत्याग्रह एक ऐसा व्यापक सिद्धान्त है, जो सभी परिस्थितियोमें लागू हो सकता है, तो मुट्ठीभर साथियोके जरिये लडाई लडनेका कोई अचूक तरीका मुझे जरूर खोज लेना चाहिए। और मैं जो नये प्रकाशकी धुंधली सी झलक देखनेकी बात करता हूँ इसका अर्थ यही है कि मुझे सत्यका दर्शन होते हुए भी अभी कोई ऐसी विश्वसनीय कार्य-पद्धति नहीं मिली कि ऐसे मुट्ठी-भर आदमी किस तरह प्रभावकारी अहिंसक लडाई लड सकते है। जैसा कि मेरे सारे जीवनमें होता आया है, संभव है कि पहला कदम उठानेके बाद ही अगला कदम सूझे। मेरी आत्मा मुझसे कहती है कि जब ऐसा कदम उठानेका समय आयेगा, तब योजना तो उसकी सामने आ ही जायगी।

मगर अधीर आलोचक कहेगा, 'समय तो प्रस्तुत ही है, आप ही तैयार नहीं हो रहे हैं।' इस आरोपको मैं नही मानता। मेरा अनुभव इससे उलटा है। कुछ वर्षोसे मैं यह कहता आ रहा हूँ कि सत्याग्रह फिरसे शुरू करनेका अभी मौका नहीं। क्यो ? कारण स्पष्ट है।

राष्ट्रव्यापी सत्याग्रह जारी करनेका अचूक जरिया बनने जैसी कांग्रेस आज नहीं रही है। उसका कलेवर भारी हो गया है। उसमें सडन या गन्दगी आ गयी है। कांग्रेसवादियोमें आज अनुशासन नहीं। नये-नये प्रतिस्पर्धी समुदाय खड़े हो गये हैं, जो, अगर उनकी चले और उन्हे बहुमत प्राप्त हो जाय तो, कांग्रेसके कार्यक्रममें जड़मूलका परिवर्तन कर दें। ऐसा बहुमत वे प्राप्त नहीं कर सके, यह चीज मुझे कुछ आश्वासन देनेवाली नहीं। जिनका बहुमत है उनको भी अपने कार्यक्रममें जीवित श्रद्धा नहीं है। किसी भी दृष्टिसे महज बहुमतके बलपर सत्याग्रह शुरु करना व्यावहारिक कार्य नहीं। देशव्यापी सत्याग्रहके पीछे तो सारी कांग्रेसकी ताकत होनी चाहिए।

अलावा इसके, साँप्रदायिक तनातनी है, जो रोज-ब-रोज बढ़ती जा रही है। जिन विभिन्न जातियोसे मिलकर राष्ट्र बना है उनके बीच सम्मानपूर्ण सुलह और एकताके बगैर आखिरी सत्याग्रहकी लड़ाईकी कल्पना नामुमकिन है।

अन्तमें प्रान्तीय स्वायत्त शासनको लेता हूँ। मेरा अब भी यह विश्वास है कि इस दिशामें कांग्रेसने जिस कामको अपने सरपर लिया है उसके साथ हमने उचित न्याय नहीं किया है। यह भी स्वीकार करना चाहिए कि गवर्नरोने मिलकर मंत्रियोके काममें बहुत कम दखल दिया है। पर दस्तदाजी—कभी-कभी तो खीज पैदा करनेवाली दस्तदाजी—कांग्रेसवादियो और कांग्रेस मन्त्रिमण्डलोके तरफसे हुई है। जब तक कांग्रेसी कारोबार चला रहे है, तबतक लोकपक्षीय

हिंसा या दंगे तो होने ही नहीं चाहिए थे। आज तो मंत्रियोंकी बहुत बड़ी शक्ति कांग्रेसवादियोंकी माँगें और विरोधको निबटानेमें खर्च होती है। अगर मंत्री लोकप्रिय नहीं है, तो उन्हें बरखास्त किया जा सकता है, और कर देना चाहिए। इसके बजाय हो क्या रहा है कि उन्हे तो काम करने दिया जाता है, पर बहुतसे कांग्रेसवादियोंका उन्हे सक्रिय सहयोग नही मिलता!

दूसरे सब उपायोंको खलास किये बगैर आखिरी कदम उठाना सत्याग्रहके हर एक नियमके विरुद्ध है।

इसके जवाबमें कुछ औचित्यके साथ यह जरूर कहा जा सकता है कि मैंने जो शर्तें बनायी हैं उन सबको पूरा करनेका अगर आग्रह रक्खा गया, तो सविनय कानून-भंग असंभव ही हो जायगा। क्या यह आपत्ति वजनदार कही जा सकती है? हरएक कामको स्वीकार करनेके साथ शर्तें तो उसमें रहती ही हैं। सत्याग्रह इसका कोई अपवाद नहीं। पर मेरी अन्तरात्मा मुझसे कहती है कि मौजूदा असंभव स्थितिमें छुटकारा पानेके लिए सत्याग्रहका कोई-न-कोई सक्रिय तरीका—यह जरूरी नहीं कि वह सविनय भंग ही हो—मिलना ही चाहिए। हिंदुस्तान आज ऐसी असंभव स्थितिका सामना कर रहा है, जो बहुत दिन नहीं चल सकती। समझमें आ सकने लायक समयके अन्दर या तो उसे अहिंसक लड़ाईका कोई-न-कोई तरीका ढूंढ निकालना ही होगा या उसे हिंसा या अराजकतामें फँसना पड़ेगा।

हरिजन सेवक
१ जुलाई १९३९

"सत्य विधायक है, अहिंसा निषेधात्मक है। सत्य वस्तु का साक्षी है, अहिंसा वस्तु होने पर भी उसका निषेध करती है। सत्य है असत्य नही है। हिंसा है, अहिंसा नही है। फिर भी अहिंसा ही होना चाहिये। यही परम धर्म है। सत्य स्वयंसिद्ध है। अहिंसा उसका सम्पूर्ण फल है, सत्य में वह छिपी हुई है। वह सत्य की तरह व्यक्त नही है।"

गांधीजी

अनुचित जोर

यह पूछा गया है कि–

"जिस स्वराजके लिए हम लडाई लड रहे है उसका क्या होगा ? गान्धीजीका अहिंसामें अगाध विश्वास, जो पहले किसी समयकी अपेक्षा आज वहुत अधिक गहरा हो गया है, उन लोगोको कैसे सहायता पहुँचायेगा, जो जल्दी ही स्वराज्य चाहते है। गान्धीजी अहिंसाको जिस रूपसे देखते है, उस रूप पर इतना जोर देनेसे स्वराज्य क्या एक ऐसा स्वप्न तो नही वन जायगा जिसका पूर्ण होना ही कठिन हो ?

(गान्धीजीने अपना वक्तव्य समझाते हुए उसका यह जवाब दिया)–

जैसा कि मैंने अक्सर कहा है, मेरे लिए तो यह सच है कि स्वराज्यसे पहले अहिंसा आती है। मै अराजकता और लालक्रान्तिके द्वारा शक्ति हासिल करनेकी जरा भी इच्छा न करूँगा, क्योकि मै सबसे कमजोर और छोटे मनुष्यके लिए भी स्वतन्त्रता चाहता हूँ और यह तभी हो सकता है, जब अहिंसा से हम स्वतन्त्रता प्राप्त करें। यदि हम ऐसा नही करेंगे तो कमजोर मर जायगा और सिर्फ ताकतवर ही सत्तापर अधिकार करेगा, उसका उपयोग करेगा।

फिर आप लोग भी दरअसल कुछ काम करना चाहते है, तो अहिंसाको और सब बातोसे पहिले रखे बगैर नहीं रह सकते। जब अहिंसाको मान लिया तब उसे और सब बातोसे पहिले रखना ही होगा। और सिर्फ इसी हालतमें विरोधी अहिंसाका मुकाबला नहीं कर सकता। अगर ऐसा नहीं करेंगे, तो यह एक खाली पोल, और प्रभाव और शक्तिसे रहित निस्तेज वस्तु हो जायगी। एक सिपाही जब अपनी जान हथेलीपर रखकर लडता है, तभी उसकी दुर्दमनीय शक्तिका विरोध करना कठिन हो जाता है। अहिंसाके सिपाहीके लिए भी यही बात है।

"लेकिन इस नीचे उतरनेसे काम कैसे चलेगा ? किस तरह हमे अपने उत्तरदायी शासनका ध्येय प्राप्त करनेमें सफलता मिलेगी ?" एक दूसरे मित्रने पूछा।

आज जब हम उत्तरदायी शासनकी बातें करते है तब इससे रियासतोके अधिकारी भयभीत हो जाते है। वे समझते है कि उसका परिणाम होगा लालक्रान्ति और अराजकता। उनकी दलीलमें वजन नहीं है, लेकिन फिर भी उन्हें तो ईमानदार समझना चाहिए। अगर आप मेरी सलाह समझ लें, तो आप कहेगे 'कुछ समयके लिए हम स्वराज्यको भूल जायँ। हम जनताके प्राथमिक अधिकारोको प्राप्त करनेके लिए लडेंगे, ताकि रिश्वतखोरी आदि खराबियाँ दूर हो सकें।' सक्षिप्तमें, आप अपना सारा ध्यान शासन-प्रबधकी तफसीली बातोमें लगा देंगे। तब अधिकारी डरेंगे नहीं और इससे आपको उत्तरदायी शासनका सारतत्व मिल जायगा। भारतवर्षमें मैंने जो कुछ कार्य किया है

उसका यही इतिहास है। यदि मैं सिर्फ स्वराज्यकी बात करता, तो मैं बिलकुल असफल रह जाता। तफसीलकी बातोंपर ध्यान देनेसे हम शक्ति ग्रहण करते गये।

दांडी-कूचके समय मैंने क्या किया था? मैंने पूर्ण स्वराज्यकी अपनी मांगको कम करके सिर्फ ११ माँगों तक सीमित कर दिया था। पहले पहल तो मोतीलालजी मुझपर बहुत बिगड़े। "इस तरहसे झंडा नीचा करनेसे आखिर आपका मतलब क्या है?" उन्होंने कहा। लेकिन उन्होंने जल्दी ही देख लिया कि अगर उन मांगोंको मान लिया जाय, तो आजादी हमारा दरवाजा खटखटाने लगेगी।

मैं अपने दिलकी उथल-पुथल भी आपको समझा दूं। जैसा कि आपको बता चुका हूँ, मैंने समझा था कि रियासतोंमें हम जल्दी ही उत्तरदायी शासन हासिल कर लेंगे। लेकिन अब हमें मालूम हुआ है कि हम सब लोगोको अहिंसाके मार्गपर एकदम अपने साथ नहीं ले जा सकते। आप कहते हैं कि सिर्फ थोड़ेसे गुण्डे ही हिंसा करते हैं। लेकिन अहिंसात्मक स्वराज्य प्राप्त करनेकी शक्तिका अर्थ है कि उससे पहले हममें गुण्डोपर ही काबू पानेकी ताकत हो, जैसे कि असहयोगके दिनोमें हमने क्षणिक शक्ति प्राप्त कर ली थी। अगर आपका हिंसाकी ताकतो पर भी पूरा काबू है, अगर आप सर्वोच्च ब्रिटिश सत्ताकी बिना परवा किये या मेरी अथवा कांग्रेसकी बाहरी सहायताकी अपेक्षाके बिना आखिरी दमतक लड़ाई जारी रखनेके लिए तैयार है, तो आपको कुछ समयके लिए भी अपनी मांग कम करनेकी जरूरत नहीं। तब तो दरअसल आप मेरी सलाहकी जरूरत ही नहीं समझेंगे।

लेकिन जैसा कि आप भी मानते है, आपकी हालत ऐसी नहीं है। जहां तक मैं जानता हूँ भारतकी और भी किसी रियासतमें ऐसी स्थिति होती, तो मेरे कहे बगैर भी कई स्थानोपर सत्याग्रह स्थगित नहीं किया जाता।

हरिजन सेवक
१ जुलाई, १९३९

❀

"वे तो मरना जानते हैं उन्हे मैं अपनी अहिंसा सफलता पूर्वक सिखा सकता है, जो मरनेसे डरते है उन्हें मैं अहिंसा नहीं सिखा सकता।"

—गांधीजी

अहिंसा बनाम हिंसा

एक सप्ताह पहले मैंने राजकोटके सवालको छोडा था वहींसे मुझे फिर उसपर विचार करना चाहिए। सिद्धान्तरूपसे यदि किसी एक भी व्यक्तिमें अहिंसाका पर्याप्त विकास हो गया, तो वह अपने क्षेत्रमें हिंसाका भले ही वह बहुत व्यापक और उग्ररूपमें हो—मुकाबला करनेके साधनोंको ढूंढ सकता है। मैंने बारबार अपनी अपूर्णता स्वीकार की है। मैं पूर्ण अहिंसाका मिसाल नही हूँ। मै तो अभी विकास कर रहा हूँ। अहिसाका जितना विकास मुझमें अभीतक हुआ है, अवतककी उत्पन्न परिस्थितियोंका मुकाबला करनेके लिए वह काफी पाया गया है। लेकिन आज चारो ओर हिंसामय वातावरणका मुकावला करनेके लिए मै अपनेको असहाय अनुभव करता हूँ। राजकोट सबंधी मेरे वक्तव्यपर 'स्टेट्समैन'में एक बहुत चुभता हुआ लेख निकला था। संपादकने उसमें बताया था कि अग्रेज लोगोने कभी हमारे आन्दोलनको सच्चा सत्याग्रह नहीं समझा। लेकिन व्यवहार-कुशल होनेकी वजहसे उन्होने इस झूठी कल्पनाको जारी रहने दिया, हालां कि वे जानते थे कि यह भी एक हिंसात्मक विद्रोह था। यह प्रत्यक्षरूपसे हिंसात्मक इसलिए नहीं हो सका, क्योकि विद्रोहियोके पास हथियार नहीं थे। मै अपनी याददाश्तसे ही 'स्टेट्समैन'से यह दे रहा हूँ। जब मैंने यह लेख पढा मैंने महसूस किया कि इस दलीलमें वजन है। उन दिनोंकी घटनाओंको जैसा मैं देखता था उस तरह यद्यपि उस आंदोलनको विशुद्ध अहिंसात्मक संघर्ष मानता था, फिर भी इसमें सन्देह नहीं कि सत्याग्रहियोमें हिंसा अवश्य मौजूद थी। मुझे यह भी स्वीकार करना चाहिए कि अगर मुझमें अहिंसाका पूर्ण भान होता, तो मै इससे थोड़ा-सा विचलित होनेको जोरोसे महसूस करता और मेरी यह भावुकता अहिंसामें किसी तरहकी मिलावटके वरखिलाफ विद्रोह कर बैठती।

मुझे ऐसा प्रतीत होता है कि हिंदुओ और मुसलमानोने एक साथ मिलकर सत्याग्रह करनेमें मेरी आँखोपर पट्टी बाँध दी और मैं अहिंसाको नहीं देख सका, जो वहुतसे लोगोके दिलोमें दुवककर बैठी थी। अंग्रेज लोग बड़े कुशल राजनीतिज्ञ शासक है। वे तो सही रास्ता पसन्द करते है, जिसमें कम से कम संघर्ष हो। उन्होंने जब देखा कि कांग्रेस जैसी बड़ी संस्थाको डरा-धमकाकर कुचलनेकी अपेक्षा उससे समझौता कर लेना ज्यादा फायदेमन्द है, तव वे वहांतक झुक गये जहाँतक झुकना जरूरी समझा। मेरी अपनी यह धारणा है कि हमारा पिछला सघर्ष क्रियामें प्रधानतः अहिंसात्मक था। भविष्यके इतिहास-लेखक भी इसे इसी रूपमें ग्रहण करेंगे। लेकिन सत्य और अहिंसाके शोधकके नाते मुझे यदि अहिंसा हृदयमें नहीं है, तो सिर्फ क्रियामें देखकर संतोष नहीं कर लेना चाहिए। पहाड़की चोटीपरसे मुझे यह घोषणा करनी चाहिए कि उन दिनोकी अहिंसा उस अहिंसासे वहुत नीचे थी, जिसका कि मैं प्रायः वर्णन करता रहा हूँ।

दिल दिमागके सहयोगके बिना सिर्फ क्रियामें अहिंसाका वांछनीय परिणाम नहीं निकलता। हमारी अपूर्ण अहिंसाकी सफलता आज सबके सामने है। हिन्दुओं और मुसलमानोके बीच जो झगड़ा चल रहा है, उसे देखिये दोनो एक दूसरेसे लडनेके लिए कमर कस रहे है। असहयोगके दिनोमें जिस हिंसाको दिलोमें आश्रय दे रखा था, आज वह हमपर ही हावी हो गयी है। वह हिंसात्मक शक्ति, जो जनतामें पैदा हो चुकी थी, किन्तु एक उद्देश्यको पानेके प्रयत्नमें जिसे बांध रक्खा था, आज खुल पड़ी हैं और हम उसका आपसमें एक दूसरेके खिलाफ इस्तेमाल कर रहे हैं।

यही बात, भले ही कुछ कम उग्र रूपमें हो, कांग्रेसियोके आपसी झगडोमें और कांग्रेसी सरकारोके दमनकारी उन उपायोमें देखी जा सकती है, जिन्हें वे अपने प्रान्तका शासन प्रबध करनेके लिए लाचार होकर इस्तेमालमें ला रहे हैं।

यह कहानी साफ बता रही है कि किस तरह आजका सारा वातावरण हिंसासे पूर्ण हो गया है। मुझे यह भी आशा है कि इससे यह भी साफ हो जायगा कि जबतक इस वातावरणको ही बिलकुल बदल न दिया जायगा, अहिंसात्मक सार्वजनिक आन्दोलनका चलना असभव है। चारो ओरसे होनेवाली घटनाओकी ओरसे आँखें बन्द कर लेना खुद आफत बुलाना है। मुझे यह सलाह दी गयी कि अगर मै सार्वजनिक सत्याग्रहकी घोषणा कर दू तो सब अन्दरूनी झगड़े खत्म हो जायेंगे। हिन्दू-मुसलमान आपसी मतभेद दूर करके मिल जायेंगे और कांग्रेसी आप ही ईर्ष्या-द्वेष और अधिकारोकी लड़ाई भूल जायेंगे। लेकिन स्थितिका मेरा अध्ययन बिलकुल विपरीत है। यदि आज अहिंसाके नामपर कोई सामूहिक आन्दोलन शुरू कर दिया गया तो, वह स्वयं संगठित और कुछ हालतोमें संगठित हिंसामें परिणत हो जायगा। इससे कांग्रेस बदनाम हो जायगी, स्वराज्य-प्राप्तिके कांग्रेसके युद्धपर आफतका पहाड़ टूट पड़ेगा और बहुतसे घर तबाह हो जायेंगे। यह मुमकिन है कि जो मैं चित्र खींच रहा हूँ, मेरी अपनी दुर्बलताका परिणाम है और यह बिलकुल झूठा हो। अगर ऐसा है, तो जबतक मै अपनी उस दुर्बलताको दूर न कर दू, मै किसी ऐसे आन्दोलनका नेतृत्व नहीं कर सकता जिसमें महान दृढ संकल्प और शक्तिकी जरूरत हो।

लेकिन अगर मै कोई शुद्ध प्रभावकारी अहिंसात्मक उपायकी तलाश नहीं करता, तो हिंसाका फूट पड़ना भी निश्चित-सा है। जनता अपनी इच्छाओ और शक्तिको प्रगट करना चाहती है। उसे सिर्फ उस रचनात्मक कार्यमें संतोष नहीं है, जो मैंने बताया है और जिसे कांग्रेसने सर्वसम्मतिसे पास कर लिया है। जैसा कि मै पहले भी कह चुका हूँ रचनात्मक कार्यक्रमकी ओर लोगोका पूरा ध्यान न देना ही इस बातका सबूत है कि कांग्रेसियोने अहिंसाको केवल बाहरी तौरसे स्वीकार किया है, वह उनके दिलकी चीज नहीं बनी।

लेकिन अगर हिंसा फूट पडी, तो वह बिना किसी कारणके नहीं फूटेगी। हमारा स्वराज्य-स्वप्न अभी बहुत दूर है। केन्द्रीय सरकार आमदनीका जो ८० फी सदी भाग खुद

हड़प जाती है, लोगोको पीस रही है और उनकी आकांक्षाओंको कुचल रही है, उसकी गैर-जिम्मेदारी अब दिन-ब-दिन असह्य होती जा रही है ।

अधिकांश रियासतोमें भी भीषण निरकुशताकी भावना बढ रही है । मैं इस जिम्मेदारीको स्वीकार करता हूँ कि मैंने कुछ रियासतोमें 'सविनय-भंग' आन्दोलनको स्थगित करा दिया है । इसका परिणाम हुआ है प्रजा और राजा——दोनोका नैतिक पतन । लोग तो पस्त-हिम्मत हो गये है, और सोचने लगे है कि सब कुछ चला गया है । राजाओका पतन उनके इस विचारमें है कि अब प्रजासे डरनेकी कोई जरूरत नही । उसे कोई असली अधिकार देनेकी जरूरत नही । दोनो गलतीपर है । इस परिणामसे मैं निराश नहीं हुआ । दर-असल, मैंने इन परिणामोकी पेशीनगोई पहले ही कर ली थी, जब मैं जयपुरके कार्यकर्ताओके साथ इस सलाहपर विचार कर रहा था, कि वे सत्याग्रह आन्दोलन स्थगित कर दें, भले ही वह सत्याग्रह नियमो और नियत्रणोमें रहकर चलाया जा रहा था । प्रजामें नैतिक पतन तो यह बताता है कि उनके विचार तथा वाणीमें अहिंसा नहीं थी । और जब जेल जाने और भारी प्रदर्शनोका जोश और नशा खत्म हुआ, लोगोने यह समझा कि लड़ाई खत्म हो गयी । राजाओने भी एकदम यह परिणाम निकाल लिया कि सत्याग्रहियोंके विरुद्ध कठोर बर्ताव बरतकर और भोलेभाले लोगोको दिखाऊ सुधारो द्वारा फुसलाकर वे अपनी निरंकुशताको और भी दृढ़ कर सकते है ।

लेकिन प्रजा और राज्य दोनों इस तरह सही परिणामपर पहुँच सकते थे । प्रजा तो मेरी सलाहकी गहराईको पहचानती और शक्ति और दृढ़ संकल्पसे रचनात्मक कार्य द्वारा अपनी शक्ति और क्षमताको बढाती । और राजा लोग सत्याग्रह बन्द होनेसे उत्पन्न अवसरका लाभ उठाकर, न्यायकी खातिर न्याय करते, अपनी प्रजाके बुद्धिमान किन्तु अग्रगामी लोगोको कुछ वास्तविक सुधार देकर संतुष्ट करते । लेकिन यह तभी हो सकता था, जब कि वे समयकी भावनाको पहचानते । आज भी प्रजाके लिए या राजाओके लिए बहुत देर नहीं हुई । वे अब भी उस सचाईको समझ सकते हैं ।

इस सिलसिलेमें मुझे सर्वोच्च सत्ताको भूलना नही चाहिए । इस प्रकारके लक्षण मुझे प्रतीत हो रहे है कि सर्वोच्च सत्ता राजाओंको दी गयी अपनी इस पिछली घोषणापर पछता रही है कि प्रजा जो सुधार चाहती है, उन्हे देनेकी राजाओको पूरी आजादी है । इस तरहकी कानाफूसी ज़ोरोसे होती हुई मालूम दे रही है कि घोषणाको अक्षरशः पालन करना लाजिमी नहीं है । यह रहस्य सभी जानते है कि राजाओमें ऐसा कोई भी काम करनेका सहास नहीं है जिससे उनके ख्यालमें सर्वोच्च सत्ता नाराज हो सकती है । वे ऐसे लोगोसे बात भी नहीं करना चाहेंगे, जिनसे कि उनकी बातचीत सर्वोच्च सत्ता न पसंद करती हो । जब राजाओपर इतना भारी प्रभाव डाला जाता है, यह स्वाभाविक है कि बहुतसी रियासतोमें शासकोकी भीषण निरंकुशताके लिए सर्वोच्च सत्ताको भी जिम्मेदार माना जाय । इसलिए कभी इस अभागे देशमें हिंसा फूट पडी तो, उसकी जिम्मेदारी सभीपर,

सर्वोच्च सत्तापर, राजाओंपर और सबसे ज्यादा कांग्रेसियोंपर पड़ेगी। सर्वोच्च सत्ता और राजाओंने कभी अहिंसक होनेका दावा नहीं किया। उनकी शक्तिका आधार और स्रोत है हिंसाका प्रयोग है। लेकिन कांग्रेसने १९२०से अहिंसाको अपनी निश्चित नीतिके रूपमें स्वीकार कर रखा है और इसमें सन्देह नहीं कि उसने इसपर चलनेकी भी कोशिश की है। लेकिन चूंकि कांग्रेसियोंने अपने दिलोंमें अहिंसाको स्थान नहीं दिया, इसलिए उन्हें इस दोषका फल भुगतना ही चाहिये, भले ही वह दोष किसी इरादेसे न किया गया हो। अबके नाजुक समयमें वह दोष ऊपर फूट पड़ा है और ऐसा लगता है कि किसी दोषपूर्ण उपायसे इस समस्याका हल नहीं हो सकता। अहिंसाका उद्देश्य उत्पीडन या दबाव किसी भी तरह नहीं हो सकता। इसका तो उद्देश्य हृदय-परिवर्तन है। हम राजाओंका दिल नहीं बदल सके, हम अंग्रेज शासकोंका दिल नहीं बदल सके। यह कहना बेकार है कि शासकोंको अपनी इच्छासे अपने अधिकार छोड देनेके लिए प्रेरित करना असंभव है। मैंने यह दावा किया है कि सत्याग्रहका एक नया परीक्षण है। जब कांग्रेसी इसपर एक बार सच्चे दिलसे अमल करेंगे तब समय ही बतायेगा कि यह सफल हुआ है या असफल। अगर एक नीतिपर भी ईमानदारीसे चलना हो तो पूरे दिलसे चलना चाहिए। हमने ऐसा नहीं किया। इसलिए पहले इसके कि सर्वोच्च सत्तापर राजाओंसे हम यह उम्मीद करें कि वे न्याय करें, हम कांग्रेसियोंको चाहिए कि हम स्वयं अपनेको बदलें।

लेकिन अगर कांग्रेसी अहिंसाकी ओर आजतक जितना बढ चुके हैं उससे आगे न बढ़ें और सर्वोच्च सत्ता व राजाओंनेभी अपनी इच्छासे आवश्यक कदम न उठाया, तो देशको हिंसाके लिए तैयार रहना चाहिए, बशर्ते कि नये 'टेकनिक'ने अहिंसात्मक संघर्षका कोई ऐसा तरीका न निकाल लिया हो, जो हिंसाके प्रभावशाली रूपमें सफल हो सकता हो और बुराइयोंको दूर कर सकता हो। हिंसा सफल नहीं होगी, सिर्फ यह हकीकत हिंसाको फूट पड़नेसे रोक नहीं सकती। महज वैधानिक आन्दोलनसे काम न चलेगा।

हरिजन सेवक
८ जुलाई, १९३९

"मेरा मतलब यह है कि हमारी अहिंसा उन कायरों की न हो जो लडाईसे डरते हैं, खून से डरते हैं, हत्यारों की आवाजसे जिनका दिल को पता है। हमारी अहिंसा तो पठानोंकी अहिंसा होनी चाहिये।"

—गांधीजी

दोषी नहीं

सत्याग्रह सबधी कांग्रेसी प्रस्तावपर इस समय जो वाद-विवाद चल रहा है, उसके बारेमें डा० राममनोहर लोहियाने मुझे एक लम्बा और युक्तियुक्त पत्र भेजा है। उसका एक अश ऐसा है, जिसपर सार्वजनिक रूपसे विचार करनेकी आवश्कता है। वह यह है—

"आपके निश्चित कार्यक्रममे सत्याग्रहका जो सिद्धान्त है उससे जरा भी इधर-उधर होना आप स्वीकार नही करेगे। क्या यह सभव नही है कि आपके कार्यक्रमके अलावा अन्य कार्यक्रमोका आधार वनानेके लिए सत्यागहके सिद्धान्तको विश्वव्यापी वना दिया जाय? शायद यह सभव नही है, लेकिन आपके खिलाफ मेरी यही दलील है कि आपने ऐसे किसी प्रयोगको प्रोत्साहन नही दिया है। मत्रिमडल सवधी और रचनात्मक हलचलके आपके कार्यक्रमको आज लोग सर्वथा पर्याप्त नही समझते, इसलिए वे किसानो और मजदूरोंके कार्यक्रमोको आजमा रहे है। ये नये कार्यक्रम ऐसे है, जिनमे सामान्य रूपमे सत्याग्रहकी कोई हलचल न होनेपर भी स्थानीय हलचल वनी रहती है। सामान्य रूपमे सत्याग्रह शुरू करनेका तरीका जवतक आपको न मिल जाय, तवतक क्या आप इन छोटे सत्याग्रहोको रोक देगे? ऐसा करनेमे उस आराजकताके फैलने का डर है जो दमनसे उत्पन्न होती है। अहिंसात्मक सामूहिक कारवाई उन विरली और वहुत वेशकीमत सौगातोमेंसे एक है, जो सारे इतिहासमे मनुष्य-जातिने प्राप्त की है, मगर यह हो सकता है कि हम उसको सभाल कर रखना और जारी रखना न जाने।"

मेरे निश्चित कार्यक्रममें सत्याग्रहका जो स्थान है उससे जरा भी इधर-उधर होनेको न केवल मैंने मना ही नहीं किया बल्कि अक्सर नये कार्यक्रमोको भी निमंत्रित किया है।

यह मैं पहले ही वतला चुका हूँ कि कांग्रेसवादियोकी उदासीनताका कारण यह नहीं है कि उस कार्यक्रममें कुदरतन कोई खराबी है, बल्कि दरअसल वात यह है कि अहिंसामें उनका जीवित विश्वास नहीं है। भला इससे बढकर और क्या बात हो सकती है कि विभिन्न जातियोमें पूर्ण एकता हो, अस्पृश्यता दूर हो जाय, शराबकी दुकानें बन्द करके शराबसे होनेवाली आमदनीका बलिदान कर दिया जाय और मिलके कपड़ेकी जगह खादी ले ले? मेरा तो कहना है कि हिंदू-मुसलमान अपने आपसके अविश्वासको दूर करके सगे भाइयोकी तरह न रहे, हिंदू अगर अस्पश्यताके अभिशापको छोड़कर अपनेको शुद्ध न करें और इस प्रकार उन लोगोके साथ निकट संपर्क स्थापित न करें जिन्हे सदियोसे उन्होने समाजसे वहिष्कृत कर रखा है, भारतके धनी पुरुष-स्त्री अगर अपने आप अपने ऊपर इसलिए कर न लगायें कि जो गरीब लोग शराब तथा अन्य नशोके मजबूरन शिकार होते है, शराब तथा अन्य नशीली चीजोकी दुकानें बन्द होकर उनके लिए वह प्रलोभन न रहे, और अन्तमें लाखो अधभूखोके साथ तादात्म्य करनेके लिए अगर हम मिलके कपड़े का शौक छोड़कर भारतकी झोपड़ियोमें लाखो हाथोसे वननेवाली खादीको न अपना लें तो अहिंसात्मक

स्वराज्य असंभव है। रचनात्मक कार्यक्रमके खिलाफ जो कुछ भी लिखा गया है, उसमें इसके वास्तविक गुण या अहिंसात्मक स्वराज्यकी दृष्टिसे इसके महत्वके खिलाफ संतोषजनक दलील एक भी नहीं मिली है, बल्कि मैं तो यह कहनेका साहस करता हूँ कि अगर सब कांग्रेसवादी अपनी शक्ति इस रचनात्मक कार्यक्रमपर केन्द्रित कर दें, तो देशमें अहिंसाका वातावरण जल्दी ही पैदा हो जायगा जिसकी सौ फी सदी सत्याग्रहके लिए आवश्यकता है।

डा० लोहियाने संभावित नये कार्यक्रमके रूपमें किसानोंकी हलचलका उल्लेख किया है। मुझे खेदपूर्वक यह कहना पड़ता है कि अधिकांश मामलोंमें किसानोंको अहिंसात्मक कार्यकी शिक्षा नहीं दी जा रही है। उन्हें तो लगातार उत्तेजनाकी हालतमें तैयार रखा जा रहा है और उनमें ऐसी आशाएँ पैदा की जा रही हैं जो हिंसात्मक संघर्षके बगैर कभी पूरी नहीं हो सकतीं। यही बात मजदूरोंके विषयमें कही जा सकती है। मेरा अपना अनुभव तो मुझे यही बतलाता है कि मजदूर-किसान दोनोंको प्रभावकारक अहिंसात्मक कार्यके लिए संगठित किया जा सकता है, बशर्ते कि कांग्रेसवाले ईमानदारीसे इसके लिए प्रयत्न करें। लेकिन अगर अहिंसात्मक कार्यक्रमकी अन्तिम सफलताके बारेमें उनका विश्वास न हो, तो वे ऐसा नहीं कर सकते। इसके लिए जो कुछ जरूरत है वह यही है कि मजदूर किसानोंको इसकी उपयुक्त शिक्षा दी जाय। उन्हें यह बतलानेकी जरूरत है कि अगर वे उपयुक्त रूपसे संगठित हों तो पूंजीपतियोंको अपनी पूंजीसे जो सम्पत्ति और आसायश मिलेगी उससे ज्यादा सम्पत्ति और आसायश वे अपने परिश्रमसे प्राप्त कर सकते हैं। फर्क सिर्फ इतना ही है कि पूंजीपतियोंका रुपयेके बाजारपर नियंत्रण रहता है, जब कि मजदूरोंका मजदूरीके बाजारपर उतना नियंत्रण नहीं होता। यह जरूर है कि मजदूरोंके चुने हुए नेताओंने उनकी अच्छी तरह सेवा की होती तो उन्हें उस अदम्य शक्तिका अच्छी तरह भान हो जाता जो अहिंसाकी उपयुक्त शिक्षा मिलनेपर प्राप्त होती है। लेकिन इसके बजाय मजदूरोंको अपनी मांगें पूरी करानेके लिए डरानेवाले उपायोंसे काम लेनेपर आधार रखना सिखलाया जा रहा है। जिस तरहकी शिक्षा आज आमतौरपर मजदूरोंको मिल रही है उससे वे अज्ञानी बने रहते हैं और अंतिम बलके रूपमें हिंसापर ही आधार रखते हैं। इस तरह किसानों या मजदूरोंकी वर्तमान हलचलको सत्याग्रहकी तैयारीके लिए नया कार्यक्रम मानना मेरे लिए संभव नहीं है।

अपने आसपास जो कुछ मैं देख रहा हूँ, वह निश्चय ही अहिंसात्मक लड़ाईकी ही नहीं बल्कि हिंसात्मक विस्फोटकी भी तैयारी है, फिर वह चाहे अनजाने और बिना चाहे ही क्यों न हो। इसे अगर मेरे पिछले बीस वर्षोंके प्रयत्नका फल बतलाकर मुझे इसके लिए जिम्मेदार ठहराया जाय तो मुझे अपना दोष स्वीकार करनेमें कोई हिचकिचाहट नहीं होनी चाहिए। मैं ही इन पृष्ठोंमें इस बारेमें बहुत कुछ नहीं कह चुका हूँ? लेकिन मेरे दोष स्वीकारमें तबतक कोई लाभ नहीं होगा जबतक उसके फलस्वरूप हम उलटे न लौटें, और जो गलती हम कर चुके हैं उसे दुरुस्त कर लें। इसका मतलब यह हुआ कि पूर्ण स्वराज्य

ाकी प्राप्तिके लिए अहिंसात्मक उपायोंमें उचित विश्वास रखा जाय। जब हमारे अन्दर ा विश्वास हो जायगा तब कांग्रेसके अन्दर होनेवाली सब तू-तू मैं-मैं बन्द हो जायगी, ाके लिए फिर व्यर्थके झगड़े-टण्टे न होंगे और एक दूसरेपर कीचड उछालनेके बजाय स्पर सहायताकी भावना होगी। लेकिन यह हो सकता है कि कांग्रेसवादी यह विश्वास रने लगे हो कि मेरी व्याख्यावाली अहिंसा अब निकम्मी हो गयी है या उसको प्राप्त ना सभव नहीं है। उस हालतमें कांग्रेसवादियोके सब दलोका एक नियमित या अनिय- त सम्मेलन हो या कांग्रेस महासमितिकी विशेष बैठक हो, और उसमें इस बातका विचार ्या जाय कि क्या ऐसा वक्त नहीं आ गया है जब हम अहिंसाकी नीति और उसके लस्वरूप बने हुए रचनात्मक कार्यक्रमपर फिरसे विचार करें और ऐसा कोई कार्यक्रम ायें जो कांग्रेसियोकी वर्तमान मनोवृत्तिके अनुकूल हो? यह हरएक कांग्रेसवादीका काम कि वह बारीकीके साथ आत्म-निरीक्षण करके इस मुख्य समस्यापर विचार करे। गिरा- टकी नीतिपर चलना न तो कांग्रेसके लिए प्रतिष्ठाकी बात है न इसमें उसकी सुरक्षा ही । इस तरहके सम्मेलनको मैं पसन्द करूँगा जिससे हम यह भूल जायँ कि हम अलग- लग दलोसे सबधित हैं और यह याद रखें कि हम शुरूसे अन्ततक राष्ट्रके ऐसे सेवक हैं। न्होने एक मनसे राष्ट्रकी आजादीकी लडाई लड़नेकी शपथ ले रक्खी है। आज तो कांग्रेसमें ूट पड रही है, जो हर्गिज न होनी चाहिए।

रिजन सेवक
१९ जुलाई, १९३९

युद्ध संबन्धी-प्रस्ताव

युद्ध संबंधी प्रस्तावपर भी मेरी पूरी हार हुई। मुझसे मसविदा तैयार करनेके लिए कहा गया था। इसी तरह पं० जवाहरलाल नेहरूसे भी कहा गया था। अपने मसविदेपर मुझे गर्व था, पर जल्दी ही मेरा गर्व दूर हो गया। मैंने देखा कि जबतक मैं दलील और आग्रहसे काम न लूं मेरा प्रस्ताव पास नहीं हो सकता, लेकिन ऐसी इच्छा मुझे नहीं थी। तब हमने जवाहरलालजीका प्रस्ताव सुना और मैंने तुरन्त यह स्वीकार कर लिया कि उसमें मेरे प्रस्तावसे अधिक सच्चाई है और वह देशके, बल्कि सिलाकर कार्य-समितिके मतको अच्छी तरह व्यक्त करता है। मेरा प्रस्ताव तो पूर्णत. अहिंसापर आधार रखता था। कांग्रेस अगर दिलसे अहिंसापर, उसके पूरे रूपपर विश्वास करती हो, फिर वह चाहे नीतिके तौरपर ही क्यो न हो, तो यह उसकी कसौटीका समय था। लेकिन कुछ व्यक्तिगत अपवादोको

छोड़कर कांग्रेसजन यह मानते हैं, कि सत्ता प्राप्त करनेके लिए सरकारसे लड़नेमें ही इसका उपयोग है। लेकिन कांग्रेसके पास संसारके लिए अहिंसाका कोई सन्देश नहीं है, चाहे अपने खुशीसे मैं भले ही मानूं कि कांग्रेसके पास ऐसा संदेश है। दोनो प्रस्तावोके सारतत्वमें कोई बड़ा फर्क हो यह जरूरी नहीं है। खुद हिंदुस्तानमें जो हिंसा हो रही है और कांग्रेसी सरकारोको जो पुलिस और फौजकी मदद लेनेके लिए मजबूर होना पडा उसको देखते हुए संसारके सामने अहिंसाकी घोषणा करना मजाक ही मालूम पड़ता है। उसका न तो हिंदुस्तानपर कोई असर पड़ता न ससारपर। इतनेपर भी अगर खुद अपने तईं में सच्चा हूं तो जो प्रस्ताव मैंने बनाया उसके सिवा और कोई नहीं बन सकता था। उसका जो नतीजा हुआ उसने यह साबित कर दिया है कि कांग्रेससे अपना बाजाब्ता संबंध तोड़कर मैंने ठीक ही किया।

कार्य-समितिकी बैठकमें मैं इसलिए शरीक नही हुआ कि उसके प्रस्तावो या उसकी सामान्य नीतिपर मेरी छाप पडे। मैं तो अहिंसाके अपने मिशनको पूर्ण करनेके लिए ही उनमें शामिल हुआ। जबतक वे लोग मेरी उपस्थिति चाहते हैं, मैं उनके कामो और उनके द्वारा कांग्रेसजनोके आचरणमें अहिंसापर जोर देनेके लिए वहाँ चला जाता हूं। हम सब एक ही मार्गके यात्री हैं। वे, सब यदि हो सके तो पूरी तरह मेरे साथ चलेंगे। लेकिन जैसे मैं अपने तईं सच्चा रहना चाहता हूँ इसी तरह वे भी अपने तईं और उस देशके प्रति सच्चे रहना चाहते हैं जिसका कि इस समय वे प्रतिनिधित्व कर रहे हैं। मैं जानता हूँ कि अहिंसाकी प्रगति जाहिरा तौरपर बहुत धीमी प्रगति है। लेकिन अनुभवने मुझे बतलाया है कि हमारे सम्मिलित लक्ष्यका यही सबसे निश्चित मार्ग है। लड़ाई और शस्त्रास्त्रसे न तो भारतको मुक्ति मिल सकती है, न ससारको। हिंसा तो न्याय प्राप्तिके लिए भी निष्फल साबित हो चुकी है। अपने इस विश्वासके साथ अहिंसामें पूरी श्रद्धा रखनेमें अगर कोई मेरा साथी न हो, तो मैं अकेला ही इस पथपर चलनेके लिए मैं तैयार हूँ।

हरिजन सेवक
२६ अगस्त, १९३९

❀

"दया की निर्दयताके सामने अहिंसा की हिंसाके सामने, प्रेमकी द्वेषके सामने और सत्यकी झूट के सामने ही परीक्षा हो सकती है। यह बात सही हो तो यह कहना गलत होगा कि खूनीके सामने अहिंसा बेकार है। हां, यो कह सकते हैं कि खूनीके सामने अहिंसाका प्रयोग करना अपनी जान देना है। लेकिन इसीमें अहिंसाकी परीक्षा है।"

—गांधी

हर हिटलरसे अपील

गत चौबीस अगस्तको लन्दनसे एक वहिनने मुझे यह तार दिया—

'कृपा करके कुछ कीजिये । दुनिया आपकी रहनुमाईकी राह देख रही है ।'

लन्दनके दूसरी वहिनका तार मुझे यह मिला—

'मैं आपसे अनुरोध करती हूँ कि पशुवलमे न होकर विवेकमे आपकी जो अचल श्रद्धा है उसे शासको और प्रजाके सामने अविलम्व प्रगट करनेका विचार करे ।'

मैं इस आसन्न विश्व-सकटके वारेमें कुछ कहनेमें हिचकिचा रहा था, जिसका कुछ राष्ट्रोके ही नही वल्कि सारी मानवजातिके हितपर असर पडेगा । मेरा ऐसा ख्याल है कि मेरे शब्दोका उनलोगो पर कोई प्रभाव नहीं पडेगा, जिनपर लडाईका छिड़ना या शान्तिका कायम रहना निर्भर करता है। मैं जानता हूँ कि पश्चिमके वहुतसे लोग समझते है कि मेरे शब्दोकी वहाँ प्रतिष्ठा है। म चाहता हूँ कि मै भी ऐसा समझता । चूकि मै ऐसा नहीं समझता, इसलिये मै चुपचाप ईश्वरसे प्रार्थना करता रहा कि वह हमें युद्धके सकटसे वचाये। लेकिन यह घोषणा करनेमें मुझे जरा भी हिचकिचाहट नहीं मालूम होती कि मेरा विवेकमें विश्वास है। अन्यायके दमनके लिए या झगड़ोके निपटारेके लिए अहिंसाका दूसरा नाम ही विवेक है। विवेकका अर्थ मध्यस्थका किया हुआ किसी झगडेका वाध्यकारी निर्णय अथवा युद्ध नहीं है। मै अपने विश्वासपर सबसे अधिक जोर यही कहकर दे सकता हूँ कि यदि मेरे देशको हिंसाके द्वारा स्वतंत्रता मिलना संभव हो तो भी मैं स्वय उसे हिसाके द्वारा प्राप्त न करूँगा। 'तलवार से जो मिलता है वह तलवारसे हर लिया जाता है'—इस वुद्धिमानीके कथनमें मेरा विश्वास कभी नष्ट नहीं हो सकता। मेरी यह कितनी प्रवल इच्छा है कि हर हिटलर संयुक्तराष्ट्रके राष्ट्रपतिकी अपीलको सुनें और अपने दावेकी जाँच मध्यस्थोको करने दें जिनके चुननेमें उनका उतना ही हाथ होगा जितना कि उन लोगोका जो उनके दावेको ठीक नहीं समझते ।

हरिजन सेवक
२ सितम्वर, १९३९

❀

पहेलियाँ

एक प्रसिद्ध काँग्रेसवादी पूछते है—

"(१) इस युद्धके वारेमे अहिंसासे मेल खानेवाला आपका व्यक्तिगत रुख क्या है?

"(२) पिछले महायुद्धके वक्त आपका जो रुख था वही है या भिन्न?

(३) अपनी अहिंसाके साथ आप काग्रेससे, जिसकी नीति इस सकटमे हिंसापर आधार रखती है, कैसे सक्रिय सम्पर्क रखेगे और उसकी कैसे मदद करेगे?

(४) इस युद्धका विरोध करने या उसे रोकनेके लिये आपकी ऐसी ठोस तजवीज क्या है जिसका कि आधार अहिंसापर हो?"

इन प्रश्नोके साथ मेरी ऊपरसे दिखलायी पड़नेवाली असंगतियो या मेरी अगम्यताकी लम्बी और मित्रतापूर्ण शिकायत भी है। ये दोनो ही पुरानी शिकायतें हैं, जो शिकायत करनेवालो-की दृष्टिसे तो विलकुल वाजिब हैं, पर मेरी अपनी दृष्टिसे बिलकुल गैरवाजिव है। इसलिए अपने शिकायत करनवालों और मुझमें मतभेद तो होगा ही। मै तो सिर्फ यही कहूँगा, कि जब मैं कुछ लिखता हूँ तो यह कभी नही सोचता कि पहले मैंने क्या कहा था। किसी विषयपर पहले जो कुछ मैं कह चुका हूँ, उससे सगत होना मेरा उद्देश्य नही है, बल्कि प्रस्तुत अवसरपर मुझे जो सत्य मालूम पड़े उसके अनुसार करना मेरा उद्देश्य है। इसका परिणाम यह हुआ है कि मैं सत्यकी ओर निरन्तर बढ़ता ही गया हूँ। अपनी याददाश्तको मैंने व्यर्थके बोझसे बचा लिया है और इससे भी बढ़कर बात यह है कि जब कभी मुझे अपने पचास वर्ष पहलेतकके लेखोंकी तुलना करनी पड़ी है, तो अपने ताजासे ताजा लेखोसे उन दोनोमें मुझे कोई असगति नहीं मिली है। फिर जो मित्र उनमें असंगति देखते है, उनके लिये अच्छा यह होगा कि जबतक पुरानेसे ही उन्हें कोई खास प्रेम न हो, वे उसी अर्थको ग्रहण करें, जो मेरे सबसे ताजा लेखोसे निकलता हो। लेकिन चुनाव करनेसे पहले उन्हें यह देखनेकी कोशिश करनी चाहिये कि ऊपरसे दिखायी देनेवाली असगतियोके बीच क्या एक मूलभूत स्थायी सगति नहीं है?

जहाँतक मेरी अगम्यताका सवाल है, मित्रोको यह विश्वास रखना चाहिए कि अपने विचार सवद्ध होनेपर उन्हे दबानेका प्रयत्न मैं कभी नहीं करता। अगम्यता कभी कभी तो सक्षेपमें कहनेकी मेरी इच्छाके कारण होती है, और कभी-कभी जिस विषयपर मुझसे राय देनेके लिए कहा जाये उसके सम्बन्धके मेरे अपने अज्ञानके कारण भी होती है।

नमूनेके तौर पर इसका एक उदाहरण दूँ। एक मित्र, जिनके और मेरे बीच दुरावकी बात कभी नहीं रही रोपके बजाय क्षोभसे लिखते है—

"भारतके युद्धकी अभिनय-स्थली होनेपर जो कुछ अघटनीय घटना नहीं हुई, या

गान्धीजी अपने देशवासियोको यह सलाह देनेको तैयार है कि शत्रुकी तलवारके सामने वे सीने खोल दे ? कुछ समय पहले ,वह जो कुछ कहते उसके लिये मै अपनेको वचन-बद्ध कर लेता, लेकिन अब और अधिक विश्वास मुझे नही रहा है ।"

मै उन्हे विश्वास दिला सकता हूँ कि, अपने हालके लेखोके बावजूद वह मुझमें इतना विश्वास रख सकते है कि अब भी मै वही सलाह दूँगा जैसी कि वह आशा करते है कि मैंने पहले दी होती या जैसी मैंने चेको या एबिसीनियनोको दी है। मेरी अहिंसा सख्त चीजकी बनी हुई है। वैज्ञानिकोको सबसे मजबूत जिस धातुका पता होगा उससे भी यह ज्यादा मजबूत है। इतनेपर भी मुझे खेदपूर्वक इस बातका ज्ञान है कि इसे अभी इसकी असली ताकत प्राप्त नहीं हुई है। अगर वह प्राप्त हो गयी होती, तो ससारमें हिंसाकी जिन अनेक घटनाओको मै असहाय रूपसें रोज देखा करता हूँ उनसे निपटनेका रास्ता भगवान मुझे सुझा देता। यह मै धृष्टतापूर्वक नहीं बल्कि पूर्ण अहिंसाकी शक्तिका कुछ ज्ञान होनेके कारण कह रहा हूँ। अपनी सीमितता या कमजोरीको छिपानेके लिये मै अहिसाकी शक्तिको हल्का नहीं आँकने दूँगा। अब पूर्वोक्त प्रश्नोके जवाबमें कुछ पक्तियाँ लिखता हूँ—

(१) व्यक्तिगत रूपसे मुझपर तो युद्धकी जो दहशत सवार हुई है वैसी पहले कभी नहीं हुई थी। आज मै जितना दिलगीर हूँ उतना पहले कभी नहीं हुआ। लेकिन इससे भी बड़े खौफका कारण आज मै वैसी स्वेच्छापूर्ण भर्ती करनेवाला सार्जेन्ट नहीं बनूँगा जैसा पिछले महायुद्ध के वक्त मै बन गया था। इतने पर भी यह अजीबसा मालूम पडेगा कि मेरी सहानभूति मित्र-राष्ट्रोके ही साथ है। जो भी हो, यह युद्ध पश्चिममें विकसित प्रजातंत्र और हर हिटलर जिसके प्रतीक है उस निरकुशताके बीच होनेवाले युद्धका रुप धारण कर रहा है। रूस इसमें जो हिस्सा ले रहा है, वह यद्यपि दु:खद है, फिर भी हमें उम्मीद करनी चाहिये कि इस अस्वाभाविक मेलसे, चाहे अनजाने ही क्यो न हो, एक ऐसा सुखद घोल पैदा होगा जो क्या शक्ल इख्तियार करेगा यह पहलेसे कोई नहीं कह सकता। अगर मित्र राष्ट्रोका उत्साह भग न हो, जिसका जरा भी कोई आसार नहीं है, तो इस युद्धसे सब युद्धोका अन्त हो सकता है—ऐसे भीषण रूपमें तो जरूर ही जैसे कि हम आज देख रहे है। मुझे उम्मीद है कि भारत, यद्यपि अपने आन्तरिक भेद-भावोसे छिन्न-भिन्न हो रहा है, तथापि इस इच्छित उद्देश्यकी पूर्ति तथा अबतककी अपेक्षा शुद्ध प्रजातत्रके प्रसारमें प्रभावकारक भाग लेगा। निसन्देह, यह इस बातपर निर्भर है कि संसारके रगमंचपर जो सच्चा दुखद नाटक हो रहा है उसमें वर्किग कमेटी अन्ततोगत्वा कैसा भाग लेगी। इस नाटकमें हम अभिनेता और दर्शक दोनो ही है। मेरा मार्ग तो निश्चित है। चाहे मै वर्किग कमेटीके विनम्र मार्ग-दर्शकका काम करू, या, अगर इसी बातको बिना किसी आपत्तिके मै कह सकूँ तो कहूँगा कि, सरकारके—मेरा मार्ग प्रदर्शन उनमेंसे एकको या दोनोको अहिसाके मार्गपर ले जाना होगा, चाहे वह प्रगति सदा अगोचर ही क्यो न रहे। यह स्पष्ट है कि मै किसी रास्तेपर किसीको जबरदस्ती नहीं चला सकता, मै तो सिर्फ उसी शक्तिका उपयोगकर सकता हूँ, जो इस अवसरके लिये ईश्वर मेरे हृदय व मस्तिष्कमें देने की कृपा करें।

(२) मै समझता हूँ कि इस प्रश्नका जवाब पहले प्रश्नके जवाबमें आ गया है।

(३) अहिंसाकी ही भाँति हिंसाके भी दर्जे होते हैं। वर्किंग कमेटी इच्छापूर्वक अहिंसाकी नीतिसे नही हटी है। सच तो यह है कि वह ईमानदारीके साथ अहिंसाके वास्तविक फलीतार्थोंको स्वीकार नहीं कर सकती। उसे लगा कि बहुसंख्यक कांग्रेसजनोंने स्पष्ट रूपसे कभी भी नहीं समझा कि बाहरसे आक्रमण होनेपर वे अहिंसात्मक साधनोंसे देशकी रक्षा करेंगे। सच्चे अर्थोंमें तो उन्होंने सिर्फ यही समझा है कि ब्रिटिश सरकारके खिलाफ कुल मिलाकर अहिंसाके जरिये वे सफल लड़ाई लड़ सकते हैं। अन्य क्षेत्रोंमें कांग्रेसजनोंको अहिंसाके उपयोगकी ऐसी शिक्षा मिली भी नही है। उदाहरणके तौरपर साम्प्रदायिक दंगों या गुन्डेपनका अहिंसात्मक रूपसे सफल मुकाबिला करनेका निश्चित तरीका उन्होंने अभी नहीं खोज पाया है। यह दलील अन्तिम है, क्योंकि वास्तविक अनुभव पर इसका आधार है। अगर इसलिये अपने सर्वोत्तम साथियोंका मैं साथ छोड़ दूँ कि अहिंसाके विस्तृत सहयोगसे वे मेरा अनुसरण नहीं कर सकते, तो मैं अहिंसाका उद्देश्य नहीं साधूँगा। इसलिये इस विश्वासके साथ मैं उनके साथ ही रहा कि अहिंसात्मक साधनसे उनका हटना बिलकुल संकीर्ण क्षेत्रतक ही सिमित रहेगा और वह अस्थायी ही होगा।

(४) मेरे पास कोई खास योजना तैयार नहीं है, क्योंकि मेरे लिये भी यह नया ही क्षेत्र है। फर्क सिर्फ इतना ही है कि साधनोंका मुझे चुनाव नही करना है, चाहे मैं वर्किंग कमेटीसे मंत्रणा करूँ या वाइसरायके साथ, वह साधन सदा शुद्ध अहिंसात्मक ही होने चाहिये। इसलिये जो मैं कर रहा हूँ, यह खुद ही ठोस योजनाका अंग है। और बातें मुझे दिन-ब-दिन सूझती जायगी। जैसे कि मेरी सब योजनाओंके बारेमें हमेशा हुआ है। असहयोगका प्रसिद्ध प्रस्ताव भी मेरे दिमागमें कांग्रेस महासमितिकी उस बैठकमें जो १९२० में कलकत्तेमें हुई थी और जिसमें वह प्रस्ताव पास हुआ, कोई २४ घंटे से भी कम समयमें आया, और असली रूपमें यही हाल दांडी-कूचका रहा। पहले सविनय भंगकी नींवे भी, जिसे उस वक्त निष्क्रिय प्रतिरोधका नाम दिया गया, प्रसंग-वश, भारतीयोंकी उस सभामें पड़ी, जो इन दिनोंके एशियाई-विरोधी कानूनका मुकाबिला करनेके उपाय खोजनेके उद्देश्यसे १९०६में जोहन्सवर्गमें हुई थी। सभा में जब मैं गया तो उस प्रस्तावकी पहलेसे मुझे कोई कल्पना नहीं थी। वह तो उस सभामें ही सूझा। इस सृजन शक्तिका अभी भी विकास हो रहा है, लेकिन फर्ज कीजिये कि ईश्वरने मुझे पूरी शक्ति प्रदान की है (जैसे कि वह कभी नही करता) तो मैं फौरन अंग्रेजसे कहूँगा कि वे शस्त्र रख दें, अपने सब अधीन देशोंको आजाद कर दें 'छोटे इंगलैण्डवासी कहानेमें ही गर्वानुभव करें और संसारके सब निरंकुशतावादियोंके बुरे से बुरा करनेपर भी उनके आगे सिर न झुकायें। तब अंग्रेज बिना प्रतिरोधके मरकर इतिहासमें अहिंसात्मक वीरोंके रूपमें अमर हो जायंगे। इसके अलावा, भारतीयोंको भी मैं इस दैवी शहादतमें सहयोग करनेके लिये निमंत्रित करूँगा। यह कभी भी न टूटनेवाली साझेदारी होगी जो तथाकथित शत्रुओंमें नहीं बल्कि उनके अपने शरीरोंके खूनसे लिखे अक्षरोंमें अंकित हो जायगी। लेकिन मेरे पास ऐसी सामान्य सत्ता नहीं है। अहिंसा तो धीमी प्रगतिका पौदा है, वह अदृश्य परन्तु निश्चित रूपमें बढ़ता है और इस खतरेको लेकर कि मेरे बारेमें भी गलत-फहमी होगी, मुझे उस 'और' भी क्षीण आवाजके अनुसार ही काम करना चाहिये।

हरिजन सेवक
३० सितम्बर, १९३९

अहिंसाकी अद्भुत शक्ति

एक पठान दोस्त जो मुझे प्रवासमें मिले, हिंसक कार्योंके बारेमें बातचीत करते हुये बोले—

"हमारी सरकार इतनी मजबूत है कि हमारे किसी भी हिंसक कार्यको चाहे कितना ही सगठित क्यो न हो, बडी आसानीसे दबा सकती है। मगर आपकी अहिंसा तो अजेय है। आपने हमारे देशको एक अजीब हथियार दिया है। दुनियामे ऐसी एक भी सरकार नही जो अहिंसाको जेर कर सके।'

मेरे इन दोस्तने अहिंसाके बारेमें जो अद्वितीय विचार मेरे सामने रखा है उसके लिये मैंने उनकी तारीफ की। एक ही वाक्यमें उन्होने अहिंसाके अनुपम सौन्दर्यको रख दिया। हिन्दुस्तान इनकी स्वाभाविकता और अनायासपूर्ण रीतिसे इसके सब फलितार्थोको अगर समझ भर सके। तो वह बडे-से-बडे हमलावरोके मुकाबलेमें अजेय रह सकता है। अहिंसाकी शिक्षा पाये हुए लोगोपर हमला हो ही नही सकता। अर्थात् सबसे कमजोर राज्य भी अगर अहिंसाकी कलाको सीख जाय, तो वह अपनेको हमलेसे बचा सकता है। लेकिन एक छोटा-सा राज्य चाहे वह शस्त्रोसे कितना ही सुसज्जित क्यो न हो, अच्छे अस्त्र-शस्त्रधारी राष्ट्रोके गुटके बीच अपना अस्तित्व कायम नही रख सकता। उसे अपनेको या तो मिटा देना पडता है नहीं तो ऐसे गुटमेंसे किसी एक राष्ट्रके सरक्षणमें रहना भी पड़ता है। जैसा कि प्यारेलालने मेरे सीमाप्रान्तके प्रवासमें लिखा है। बादशाह खानका कहना है—

"अगर हम अहिंसाका सबक न सीखते, तो हमारी बडी दुर्गति होती। हमने तो उसे अपने पूरे स्वार्थसे अपनाया है। हम तो जन्मसे ही लडाके है और हम इस रिवाजको आपसमें ही लडकर जारी रखते आये है। एक दफा एक कुनबेमे या कबीलेमे एक बार खून हुआ कि उसका बदला लेना एक इज्जतकी बात समझी जाती है। आमतौरपर हम लोगोमें मुआफी जैसी कोई चीज पायी ही नही जाती है। और इसलिये वहा सिर्फ बदलेमें हिंसा, प्रतिहिंसा और प्रतिहिंसा ही है। इस तरह यह विनाशचक्र कभी खत्म ही नही होता। इसमे शक नही कि अहिंसा बतौर मुक्तिके हमारे पास आयी है।"

सरहद प्रान्तके लिए जो कुछ सही है वह हम सब लोगोके लिए भी सही है। अनजानमें हम उस हिंसाके विनाशचक्रमें घूमते रहते हैं। थोड़ा सा विचार, विवेक और अनुभव इस चक्करमेंसे हमें निकाल सकते है।

हरिजन सेवक
७ अक्तूबर, १९३९

❀

(३) अहिंसाकी ही भाँति हिंसाके भी दर्जे होते हैं। वर्किंग कमेटी इच्छापूर्वक अहिंसाकी नीतिसे नहीं हटी हैं। सच तो यह है कि वह ईमानदारीके साथ अहिंसाके वास्तविक फलीतार्थोंको स्वीकार नहीं कर सकती। उसे लगा कि बहुसंख्यक कांग्रेसजनोंने स्पष्ट रूपसे कभी भी नहीं समझा कि बाहरसे आक्रमण होनेपर वे अहिंसात्मक साधनोंसे देशकी रक्षा करेंगे। सच्चे अर्थोंमें तो उन्होंने सिर्फ यही समझा हैं कि ब्रिटिश सरकारके खिलाफ कुल मिलाकर अहिंसाके जरिये वे सफल लड़ाई लड़ सकते हैं। अन्य क्षेत्रोंमें कांग्रेसजनोंको अहिंसाके उपयोगकी ऐसी शिक्षा मिली भी नहीं है। उदाहरणके तौरपर साम्प्रदायिक दंगों या गुन्डेपनका अहिंसात्मक रूपसे सफल मुकाबिला करनेका निश्चित तरीका उन्होंने अभी नहीं खोज पाया है। यह दलील अन्तिम है, क्योंकि वास्तविक अनुभव पर इसका आधार हैं। अगर इसलिये अपने सर्वोत्तम साथियोंका मैं साथ छोड़ दूँ कि अहिंसाके विस्तृत सहयोगसे वे मेरा अनुसरण नहीं कर सकते, तो मैं अहिंसाका उद्देश्य नहीं साधूँगा। इसलिये इस विश्वासके साथ मैं उनके साथ ही रहा कि अहिंसात्मक साधनसे उनका हटना बिलकुल संकीर्ण क्षेत्रतक ही सिमित रहेगा और वह अस्थायी ही होगा।

(४) मेरे पास कोई खास योजना तैयार नहीं है, क्योंकि मेरे लिये भी यह नया ही क्षेत्र है। फर्क सिर्फ इतना ही है कि साधनोंका मुझे चुनाव नहीं करना है, चाहे मैं वर्किंग कमेटीमें मन्त्रणा करूँ या वाइसरायके साथ, वह साधन सदा शुद्ध अहिंसात्मक ही होने चाहिये। इसलिये जो मैं कर रहा हूँ, यह खुद ही ठोस योजनाका अंग है। और बातें मुझे दिन-ब-दिन सूझती जायंगी। जैसे कि मेरी सब योजनाओंके बारेमें हमेशा हुआ है। असहयोगका प्रसिद्ध प्रस्ताव भी मेरे दिमागमें कांग्रेस महासमितिकी उस बैठकमें जो १९२० में कलकत्तेमें हुई थी और जिसमें वह प्रस्ताव पास हुआ, कोई २४ घंटे से भी कम समयमें आया, और अमली रूपमें यही हाल डांडी-कूचका रहा। पहले सविनय भंगकी नींव भी, जिसे उस वक्त निष्क्रिय प्रतिरोधका नाम दिया गया, प्रसंग-वश, भारतीयोंकी उस सभामें पड़ी, जो इन दिनोंके एशियाई-विरोधी कानूनका मुकाबिला करनेके उपाय खोजनेके उद्देश्यसे १९०६में जोहन्सवर्गमें हुई थी। सभा में जब मैं गया तो उस प्रस्तावके पहलेसे मुझे कोई कल्पना नहीं थी। वह तो उस सभामें ही सूझा। इस सृजन शक्तिका अभी भी विकास हो रहा है, लेकिन फर्ज कीजिये कि ईश्वरने मुझे पूरी शक्ति प्रदान की है (जैसे कि वह कभी नहीं करता) तो मैं फौरन अंग्रेजसे कहूँगा कि वे शस्त्र रख दें, अपने सब अधीन देशोंको आजाद करदें 'छोटे इंगलैण्डवासी कहानेमें ही गर्वानुभव करें और संसारके सब निरंकुशतावादियोंके बुरे से बुरा करनेपर भी उनके आगे सिर न झुकायें। तब अंग्रेज बिना प्रतिरोधके मरकर इतिहासमें अहिंसात्मक वीरोंके रूपमें अमर हो जायंगे। इसके अलावा, भारतीयोंको भी मैं इस दैवी शहादतमें सहयोग करनेके लिये निमंत्रित करूँगा। यह कभी भी न टूटनेवाली साझे-दारी होगी जो तथाकथित शत्रुओंमें नहीं बल्कि उनके अपने शरीरोंके खूनसे लिखे अक्षरोंमें अंकित हो जायगी। लेकिन मेरे पास ऐसी सामान्य सत्ता नहीं है। अहिंसा तो धीमी प्रगतिशील पौधा है, वह अदृश्य परन्तु निश्चित रूपमें बढ़ता है और इस खतरेको लेकर कि मेरे बारेमें भी गलत-फहमी होगी, मुझे उस 'और' भी क्षीण आवाजके अनुसार ही काम करना चाहिये।

हरिजन सेवक
३० सितम्बर, १९३९

इस विचारको रखते हुये कि किसी न किसी तरह भारत सच्ची अहिंसा सीख लेगा, मुझे यह नही हुआ कि निःशस्त्र रक्षाके लिये अपने सहकर्मियोंसे ऐसी शिक्षा लेनेको कहूँ। इसके विपरीत, मैं तो तलवारकी सारी कलाको और मजबूत लाठियोंके प्रदर्शनको अनुत्साहित ही करता रहा और गतके लिये मुझे आज भी पश्चाताप नही है। मेरी आज भी वही ज्वलंत श्रद्धा है कि संसारके समस्त देशोंमें भारत ही एक ऐसा देश है जो अहिंसाकी कला सीख सकता है, और अब भी वह इस कसौटीपर कसा जाय, तो संभवत: ऐसे हजारो स्त्री-पुरुष मिल जायँगे, जो अपने उत्पीड़कोंके प्रति बगैर कोई द्वेष भाव रक्खे खुशीसे मरनेके लिए तैयार हो जायँगे। मैंने हजारोंकी उपस्थितिमें बार-बार जोर देकर कहा है कि बहुत सभव है कि उन्हे ज्यादा से ज्यादा तकलीफें झेलनी पड़ें। यहाँ तक कि गोलियोंकाभी शिकार होना पड़े। नमक-सत्याग्रहके दिनोंमें क्या हजारो पुरुषों और स्त्रियोंने किसी भी सेनाके सैनिकोंके ही समान बहादुरीके साथ तरह-तरहकी मुसीबतें नहीं झेली थी? हिन्दुस्तानमें जो सैनिक योग्यता अहिंसात्मक लड़ाईमें लोग दिखा चुके हैं उससे भिन्न प्रकारकी योग्यता किसी भी आक्रमणकारीसे लड़नेके खिलाफ आवश्यक नही है—सिर्फ उसका प्रयोग एक बृहत्तर पैमानेपर करना होगा।

एक चीज नही भूलनी चाहिये। नि:शस्त्र भारतके लिए यह जरूरी नहीं कि उसे जहरीली गैसो या बमोसे ध्वस्त होना पड़े। मेगनट लाइनने सिग्रफेडको जरूरी बना दिया है। मौजूदा परिस्थितियोंमें हिन्दुस्तानकी रक्षा इसलिए जरूरी हो गयी है कि वह आज ब्रिटेनका एक अग है। स्वतंत्र भारतका कोई शत्रु नहीं हो सकता। यदि भारतवासी दृढ़तापूर्वक सिर न झुकानेकी कला सीख ले और उसपर पूरा अमल करने लगें, तो मैं यह कहनेकी जुर्रत करूँगा कि हिन्दुस्तानपर कोई आक्रमण नही करना चाहेगा। हमारी अर्थनीति इस प्रकारकी होगी कि शोषकोंके लिए प्रलोभनकी कोई वस्तु नहीं होगी।

लेकिन कुछ कांग्रेसजन कहेगे कि–

"ब्रिटिशकी बातको दरकिनार कर दिया जाय, तबभी हिन्दुस्तानमे उसके सीमान्तोपर बहुत सी सैनिक जातियां रहती है। वे मुल्ककी रक्षाके लिए, जो उनका भी उतना ही है जितना कि हमारा युद्ध करेगी।"

यह बिल्कुल सत्य है इसलिए इस क्षण मैं केवल कांग्रेसजनोंकी बात कर रहा हूँ। आक्रमणकी हालतमें वे क्या करेंगे? जबतक कि हम अपने सिद्धान्तपर मर मिटनेके लिए तैयार न हो जायेंगे, हम सारे हिन्दुस्तानको अपने मतका नही बना सकेंगे।

मुझे तो विरुद्ध रास्ता अपील करता है। सेनामें पहलेसे ही उत्तर हिन्दुस्तानके मुसलमानो, सिक्खो और गोरखोंकी बहुत बड़ी संख्या है। अगर दक्षिण और मध्यभारतके जनसाधारण कांग्रेसका सैनिकीकरण कर देना चाहते है, जो उनका प्रतिनिधित्व करती है, तो उन्हे उनकी (मुसलमान, सिख वगैरहकी) प्रतिस्पर्धामें आना पड़ेगा। कांग्रेसको तब सेनाका एक भारी बजट बनानेमें भागीदार बनना पड़ेगा। यह सब चीजें कांग्रेसकी सहमति लिये बगैर सम्भवत: हो जांय। सारे संसारमें तब यह चर्चाका विषय बन जायगा कि कांग्रेस ऐसी

कसौटीपर

कार्यसमितिके सदस्योंके साथ चर्चा करते हुए मैंने देखा कि अहिंसा-शस्त्रसे ब्रिटिश सरकारके खिलाफ लड़नेके आगे, उनकी अहिंसा कभी नहीं गयी। मैंने इस विश्वासको दिलमें जगह दे रक्खी थी कि संसारकी साम्राज्यवादकी सबसे बड़ी सत्ताके साथ लड़नेमें गत बीस बरसके अहिंसाके तर्कपूर्ण परिणामको कांग्रेस-जनोंने पहचान लिया है। लेकिन अहिंसाके जैसे बड़े-बड़े प्रयोगोंमें कल्पित प्रश्नोंके लिए मुश्किलसे ही कोई गुंजाइश होती है। ऐसे प्रश्नोंके उत्तरमें मैं खुद कहा करता था कि जब हम वस्तुतः स्वतन्त्रता हासिल कर लेंगे तभी हमें यह मालूम होगा कि हम अपनी रक्षा अहिंसात्मक तरीकेसे कर सकते हैं या नहीं। लेकिन आज यह प्रश्न कल्पित नहीं है। ब्रिटिश सरकार हमारे मुआफिक कोई घोषणा करे या न करे, कांग्रेसको ऐसे किसी रास्तेका निर्णय करना ही पड़ेगा, जिसे कि वह भारतपर आक्रमण होनेकी हालतमें अख्तियार करेगी। हालांकि सरकार-के साथ कोई समझौता न हो, तब भी कांग्रेसको अपनी नीति घोषित करनी ही होगी और उसे यह बतलाना पड़ेगा कि आक्रमण करनेवाले गिरोहका मुकाबला वह हिंसात्मक साधनोंसे करेगा या अहिंसात्मक।

जहाँतक कि मैं कार्यसमितिके सदस्योंकी मनोवृत्तिको, खासी पूरी चर्चाके बाद, समझ सका हूँ, उसके सदस्योंका ख्याल है कि अहिंसात्मक साधनोंके जरिये सशस्त्र आक्रमणसे देशकी रक्षा करनेके लिये वे तैयार नहीं हैं।

यह दुखद प्रसंग है। निश्चय ही अपने घरसे शत्रुको निकाल बाहर करनेके लिये जो उपाय अख्तियार किये जाते हैं, उन उपायोंसे जो कि, उसे (शत्रुको) घरसे बाहर रखनेके लिये अख्तियार किये जायें—न्यूनाधिक रूपमें मिलते जुलते होने ही चाहिएं। यह पिछला (रक्षाका) उपाय ज्यादा आसान होना चाहिये। बहरहाल, हकीकत यह है कि हमारी लड़ाई बलवानकी अहिंसात्मक लड़ाई नहीं रही है। यह तो दुर्बलके निष्क्रिय प्रतिरोधकी लड़ाई रही है। यही वजह है कि इस महत्वके क्षणमें हमारे दिलोंसे अहिंसाकी शक्तिमें ज्वलंत श्रद्धाका कोई स्वेच्छा-पूर्ण उत्तर नहीं मिला। इसलिए कार्य-समितिने यह बुद्धिमानीकी ही बात कही है कि वह इस तर्क-पूर्ण कदम उठानेके लिये तैयार नहीं है। इस स्थितिमें दुःखकी बात यह है कि कांग्रेस अगर उन लोगोंके साथ शरीक हो जाती है, जो भारतकी सशस्त्र रक्षाकी आवश्यकतामें विश्वास करते हैं, तो इसका यह अर्थ हुआ कि गत बीस वर्ष योंही चले गये, कांग्रेसवादियोंने निःशस्त्र युद्ध विज्ञान सीखनेके प्राथमिक कर्तव्यके प्रति भारी उपेक्षा दिखायी और मुझे भय है कि इतिहास मुझे ही, लड़ाईके सेनापतिके रूपमें दुखजनक घातके लिये जिम्मेवार ठहरायेगा। भविष्यका इतिहास कहेगा कि यह तो मुझे पहले ही देख लेना चाहिये था कि राष्ट्र बलवानकी अहिंसा नहीं बल्कि केवल निर्बलका अहिंसात्मक निष्क्रिय प्रतिरोध सीख रहा है, और इसलिये, इतिहासकारके कथनानुसार, कांग्रेसजनोंके लिए सैनिक शिक्षा मुझे मुल्तवी कर देनी चाहिए थी।

हिन्दू-मुस्लिम दंगे

अगर कोई इस बातका सबूत चाहे कि कांग्रेसकी अहिंसा सचमुच स्थगित या निष्क्रिय हिंसा थी, तो इसका सबूत हिन्दू-मुसलिम दंगोंमें प्रदर्शित प्रभावकारी हालां कि बिल्कुल अनुशासन-हीन हिंसाके रूपमें दिया जा सकता है। यदि खिलाफत आन्दोलनमें भाग लेनेवाले हजारों हिन्दू-मुसलमान सच्चे दिलसे अहिंसक होते तो वे आज एक दूसरेके प्रति इतने हिंसापूर्ण न होते,जितने कि आजकल वे लगातार पाये जाते हैं। और यह भी कहा जा सकता है कि इन दंगोंमें भाग लेनेवाले सबको गैर-कांग्रेसी करार दे दिया जाये, तो कांग्रेसको आम जनताकी संस्था कहना छोड़ देना पड़ेगा। क्योंकि दंगोंमें भाग लेनेवाले हिन्दू और मुसलमान आम जनतामेंसे ही निकलते हैं। फिर इसके अलावा हम कांग्रेसी सभाओंमें यह भी देखते हैं कि प्रतिस्पर्धी कांग्रेसी एक दूसरेके विरुद्ध भी हिंसापर उतर आते हैं। कांग्रेसके चुनावोंमें दिखाया जानेवाला अनुशासन-भंग और फरेब ही इस बातका प्रमाण है कि कांग्रेसमें भी हिंसा मौजूद है। इसलिए यह कहना कि कौन कांग्रेसी—यदि कोई है—अहिंसक है, कठिन है। यदि अहिंसक कांग्रेसी अधिक संख्यामें होते और यदि हिन्दू मुस्लिम दंगोंमें प्रभावकारी भाग लिया होता तो वे इन दोनोंको बन्द कर सकते थे या कमसे कम इन्हें बन्द करनेकी कोशिशमें अपनी जान दे सकते थे। यदि ज्यादातर कांग्रेसी सच्चे अहिंसक होते तो मुसलमान भी यह मानते कि कांग्रेसियों पर मुस्लिम विरोधी होनेका दोष नहीं लाया जा सकता। कांग्रेसियोंके लिए इतना ही कहना काफी नहीं है कि उनका रुख बिल्कुल निर्दोष है। मैं भले ही कानूनी तौरपर कचरा उतर आऊँ लेकिन अगर हिंसाकी तराजूपर मेरे कामोंको तौला जाय तो वे भी बुरी तरह असफल सिद्ध हो सकेंगे। लेकिन अहिंसा तो शूरवीरों तथा दृढ़ लोगोंकी ही अहिंसा होनी चाहिये। अहिंसाकी भावना आंतरिक श्रद्धासे उत्पन्न होनी चाहिये इसलिए मैंने यह कहनेमें कभी भी संकोच नहीं किया कि यदि हमारे हृदयोंमें हिंसा है तो अपनी नपुंसकता छिपानेके लिए अहिंसाकी चोला पहननेकी अपेक्षा हिंसात्मक रहना ही अच्छा है। नपुंसकताकी अपेक्षा हिंसा ही हमेशा अच्छी है। एक हिंसकसे कभी भी अहिंसक होनेकी उम्मीद की जा सकती है, लेकिन नपुंसकसे कभी ऐसी आशा नहीं की जा सकती है।

हरिजन सेवक
२१ अक्तूबर, १९३९

❀

चीजमें शरीक है या नहीं। संसार तो आज हिन्दुस्तानसे कुछ नयी और अपूर्व चीज देखनेकी प्रतीक्षा में है। कांग्रेसने भी वही पुराना जीर्णशीर्ण कवच धारणकर लिया, जिसे कि ससार आज धारण किये हुये है, तो उसे उस भीड़-भड़क्कामें कोई नहीं पहचानेगा। कांग्रेसका नाम तो आज इसलिए है कि वह सर्वोत्तम राजनीतिक शस्त्रके रूपमें अहिसाका प्रतिनिधित्व करती है। काग्रेस मित्र-राष्ट्रोको अगर इस रूपमें मदद देती है कि उसमें अहिंसाकी प्रतिनिधि बननेकी क्षमता है तो वह मित्र-राष्ट्रोके उद्देश्यको एक ऐसी प्रतिष्ठा और शक्ति प्रदान करेगी, जो युद्धका अन्तिम भाग्य निर्णय करनेमें अनमोल सिद्ध होगी किन्तु कार्यसमितिके सदस्योने जो इस प्रकारकी अहिसाका इजहार नहीं किया है, इसमें उन्होने ईमानदारी और बहादुरी ही दिखायी है।

इसलिए मेरी स्थिति अकेले मुझतक ही सीमित है। मुझे अब यह देखना पडेगा कि इस एकान्त पथमें मेरे साथ कोई दूसरा सहयात्री है या नहीं। अगर मैं अपनेको बिलकुल अकेला पाता हूँ तो मुझे दूसरोको अपने मतमें मिलानेका प्रयत्न करना ही चाहिये। अकेला होऊँ या अनेक साथ हो, मैं अपने विश्वासको अवश्य घोषित करूँगा कि हिन्दुस्तानके लिये यह बेहतर है कि वह अपने सीमान्तोकी रक्षाके लिये भी हिंसात्मक साधनोका सर्वथा परित्याग कर दे। शस्त्रीकरणकी दौड़में शामिल होना हिन्दुस्तानके लिये अपना आत्मघात करना है। भारत अगर अहिसाको गवाँ देता है तो ससारकी अन्तिम आशापर पानी फिर जाता है। जिस सिद्धान्तका गत आधी सदीसे मैं दावा करता आ रहा हूँ उसपर मैं जरूर अमल करूँगा। और आखिरी साँसतक मैं यह आशा रक्खूँगा कि हिन्दुस्तान अहिंसाको एक दिन अपना जीवन सिद्धान्त बनायेगा, मानव जातिके गौरवकी रक्षा करेगा और जिस स्थितिसे मनुष्यने अपनेको ऊँचा उठाया, ख्याल किया जाता है, उसमें लौटनेसे उसे रोकेगा।

हरिजन सेवक
१४ अक्तूबर, १९३९

❀

"जीवन को मृत्यु की शय्या समझकर चले। इस मौतके बिछौने में अकेले न सोयें। हमेशा यमदूतको साथ लेकर सोये। मृत्यु (देवता) से कहे कि अगर तू मुझे ले जाना चाहता है तो ले जा, मै तो तेरे मुंह में नाच रहा हूँ। जब तक नाचने देगा, नाचूगा, नही तो तेरी ही गोद में सो जाऊँगा।"

—गांधीजी

की भी कसौटी है। हालांकि प्रस्तावमें कोई ऐसी बात नहीं कही गई है, मगर कमेटीके इच्छानुसार सविनय-भगके नियन्त्रण तथा आयोजनका काम मेरे ऊपर छोड़ दिया गया है। यह कहनेकी कोई भी जरूरत नहीं कि मेरे पास इसके सिवा कोई बल नहीं, न कभी था, कि रजिस्टरमें दर्ज और गैरदर्ज काग्रेसजनोका विशाल समूह कमेटी द्वारा, या जब 'यग इंडिया' और 'नवजीवन' निकलते थे तब उसके द्वारा और अब 'हरिजन' और 'हरिजन-सेवक' द्वारा जारी की गयी हिदायतोपर जानबूझकर और स्वेच्छापूर्वक अमल करे। इसलिए जब मुझे मालूम हो कि मेरी हिदायतोपर कोई अमल नहीं होता, तो काग्रेसजन देखेंगे कि मैं चुपचाप मैदानसे हट जाऊँगा।

लेकिन अगर लड़ाईका आम नियन्त्रण मेरे हाथमें रहता तो, मैं चाहूँगा कि अनुशासनका पूरी कडाईसे पालन हो। जहां तक मैं देख सकता हूँ, जबतक काग्रेसजन अहिंसा और सत्यपर पहिलेसे ज्यादा ध्यान न देंगे और पूर्ण अनुशासन न दिखायेंगे तबतक किसी बडे पैमानेपर सविनय-भंगकी कोई भी सभावना नही है और जबतक अधिकारियो द्वारा हम इसके लिए बाध्य न किये जायँ, उसकी कोई जरूरत भी नहीं पडेगी।

हम जीवन-मरणके युद्धमें प्रवृत्त हैं। हिंसाका वातावरण हमारे आसपास छाया हुआ है। देशके लिए यह भारी कसौटीकी घडी है। घपलेबाजीसे काम नही चलेगा। अगर काग्रेसजनोको ऐसा लगे कि उनमें अहिंसा नहीं है, अगर वे अंग्रेज अधिकारियोके प्रति या काग्रेसकी मुखालिफत करनेवाले अपने देशवासियोके प्रति अपनी कटुताको दूर न कर सकें, तो उन्हे खुलेआम यह कह देना चाहिए, और अहिंसाका परित्याग कर मौजूदा वर्किंग कमेटीको बदल देना चाहिए। इससे कोई नुकसान न होगा। लेकिन कमेटी और उसकी हिदायतोंमें विश्वास न रखते हुए उसे कायम रखनेसे बहुत बडी हानि होगी। जहाँतक मैं देख सकता हूँ, सत्य और अहिंसाका कड़ाईके साथ पालन किये बगैर हिन्दुस्तानको स्वतंत्रता नही मिल सकती। अगर मेरी सेना ऐसी हो कि जिन शस्त्रोसे मैं उसे सुसज्जित करूँ, उनकी क्षमतामें उसे सन्देह हो, तो मेरे सेनापतित्वसे कोई लाभ न होगा। अपने देशके शोषणका मैं वैसा ही पक्का दुश्मन हूँ जैसा कि कोई हो सकता है। विदेशी जुएसे अपने देशको पूर्ण मुक्त करनेके लिए भी मैं उतना ही अधीर हूँ जितना कि कोई गरम से गरम काग्रेसवादी हो सकता है। लेकिन एक भी अंग्रेज या भूमण्डलपर किसी भी मानवप्राणीसे मुझे घृणा नहीं है। मित्रराष्ट्रोकी अगर मैं मदद नही कर सकता, तो उनका सर्वनाश भी मैं नहीं चाहता। कांग्रेसकी मेरी आशापर ब्रिटिश सरकारने बुरी तरह पानी फेर दिया है, मगर उनकी परेशानीसे मैं कोई फायदा नहीं उठाना चाहता।

मेरा प्रयत्न और मेरी प्रार्थना तो यही है और होगी, यथासाध्य कम से कम समयके अन्दर आपसमें लड़नेवाले राष्ट्रोके बीच सम्मानपूर्ण सुलह हो जाय। मैंने यह आशा बाँध रक्खी थी कि ब्रिटेन और हिन्दुस्तानके बीच सम्मानपूर्ण सुलह और साझेदारी हो जायगी और जो भीषण रक्तपात मानवताको अपमानितकर खुद जीवनको ही भाररूप बना रहा है उससे बचनेका रास्ता निकालनेमें शायद मैं अपना विनम्र भाग अदा कर सकूंगा। लेकिन ईश्वरकी इच्छा तो कुछ और ही थी।

हरिजन-सेवक
२४ अक्तूबर, १९३९

❀

किन कारणोंसे ?

किसी काममें असफल होनेका सबसे अच्छा तरीका यह है कि अपने विरोधीको खूब गालियां दी जायें, और उसकी कमजोरीसे फायदा उठाया जाये। लड़ाईके दूसरे प्रकारके बारेमें सत्य चाहे जो हो, पर सत्याग्रहमें तो यह माना गया है कि असफलताके कारणोंको खुद अपने ही अन्दर ढूंढना चाहिए। ब्रिटिश सरकारने कांग्रेसकी इस आशापर कि, सरकार कोई अपेक्षित घोषणा करेगी, जो पानी फेर दिया है उसका एकमात्र कारण वे कमजोरियां ही हैं, जो कांग्रेसके संघटन और कांग्रेसजनोंमें आ गयी हैं।

सबसे बड़ी कमजोरी यह है कि अहिंसा और उसके अनेक फलितार्थोंकी हमने पूरी कद्र नहीं की। इसी एक महान दोषसे हमारी दूसरी सब कमजोरियां पैदा हुई हैं। हमने कायिक अहिंसाका तो खासा अच्छा पालन किया है, पर अपने दिलोंमें हमने हिंसाको आश्रय दे रक्खा है। इसलिए सरकारके मुकाबलेमें हमारी अहिंसा, हमारी सक्रिय हिंसाकी अयोग्यताका परिणाम है। यही वजह है कि हम अपने आपसके बर्तावमें हिंसाकी तरफ बहक गये हैं। कमेटियोंमें हम एक-दूसरेके साथ लड़ते-झगड़ते और कभी-कभी तो घूंसेबाजी तकपर उतर आते हैं। वर्किंग कमेटीके आदेशोंको अमलमें लानेसे हमने इन्कार कर दिया है। प्रतिस्पर्धी दल हमने अलग बना लिये हैं, जो सत्ताको छीनना चाहते हैं। हिंदू और मुसलमान जरा-जरासे एतराजपर लड़ बैठते हैं। साम्प्रदायिक मतभेद जो दूर नहीं हो सके हैं, इसके लिए कांग्रेसजन आंशिक रूपसे जरूर जिम्मेवार हैं। यह सब ठीक है कि हम अपनी फूटके लिए ब्रिटिश सरकारको दोषी ठहराते हैं। पर इस तरह हम अपनी वेदनाको बढ़ाते ही हैं। यह हमें मालूम था कि फूट डालकर राज करनेकी नीति १९२०में भी थी, और तब भी हमने हिन्दू-मुसलिम ऐक्यको अपने रचनात्मक कार्यक्रममें रक्खा था। हमने ऐसा इसलिए किया था कि हमें यह आशा थी कि हमारे रास्तेमें सरकार द्वारा रोड़े अटकाये जानेके बावजूद हम कौमी एकता हासिल कर लेंगे। अधिक क्या कहें, उस वक्त प्रतीत भी ऐसा होता था कि उस एकताको हमने हासिल कर लिया है।

हमारी कमजोरियोंके ये उदाहरण भयकर हैं। कांग्रेसको अपनी पूरी ऊंचाईतक पहुंचनेमें इन्होंने बाधा डाली है, और हमारी अहिंसाकी प्रतिज्ञाओंको मजाक बना दिया है। हमारी असफलताके कारणोंका यदि मेरा विश्लेषण सही है, तो यह संतोषकी बात है कि इनका इलाज किन्हीं बाहरी परिस्थितियोंपर नहीं, किन्तु खुद हमारे ऊपर निर्भर करता है। हमें अपना खुदका संघटन इतना सुव्यवस्थित और इतना शुद्ध और शक्तिशाली बना लेना चाहिए कि जो हमारे लक्ष्यकी ओर बढ़नेमें बाधा डालते हैं वे हमें सम्मानकी दृष्टिसे देखने लगें; यह सम्मान हम उनमें डर पैदा करके नहीं, बल्कि उन्हें अपनी अहिंसात्मक वाणी और [illegible] प्रभाव देकर ही प्राप्त कर सकते हैं।

वर्किंग कमेटीका प्रस्ताव जहां इस बातका सबूत है कि कांग्रेस हिन्दुस्तानकी [illegible] करनेके लिए सच्चाईके साथ प्रयत्न कर रही है, वहां वह कांग्रेसजनोंके अनुशासन [illegible] किया

यह लेखकके पत्रका सार है। मैं जानता हूँ कि इसमें जो रवैया प्रकट किया गया है वही अनेक अंग्रेजोंका है। वे कोई अच्छा रास्ता सुझानेके लिए मेरी तरफ देख रहे हैं। मेरे सत्तर साल पूरे होनेके उपलक्षमें सर राधाकृष्णन्ने जो अभिनन्दन-ग्रन्थ छपाया है उससे शान्तिके हजारों उपासकोंकी आशाएँ गहरी हो गयी हैं। मगर यह तो मैं ही जानता हूँ कि इन आशाओंकी पूर्तिके लिए मैं कितना कमजोर साधन हूँ। भक्तोंने मुझे जो श्रेय दिया है उसका मैं हकदार नहीं रहा हूँ। मैं अभी यह साबित नहीं कर सका हूँ कि हिन्दुस्तान बलवानोंकी अहिंसाका कोई बढ़िया उदाहरण दुनियाके सामने पेश करता है और न यह कि हमला करने वालोंके खिलाफ सशस्त्र युद्धके सिवाय कोई और भी कारगर उपाय हो सकता है। इसमें कोई शक नहीं कि हिन्दुस्तानने तो यह दिखा दिया कि कमजोरोंके हथियारके रूपमें निष्क्रिय अहिंसा कामकी चीज है। यह भी सही है कि आतंकवादके बजाय अहिंसा उपयोगी है। मगर मैं यह दावा नहीं कर सकता कि यह कोई नयी या बड़ी बात है। इससे शान्तिके आन्दोलनको कुछ भी मदद नहीं मिलती।

मेरे पिछले लेखका पत्र-लेखकने जो हवाला दिया है उसमें और कांग्रेसकी माँगके साथ मेरे एकरस हो जानेमें विरोध दिखायी दे तो कोई अचरजकी बात नहीं है। मगर विरोध जैसी चीज असलमें है नहीं। उस वक्त क्या, मैं तो अब भी अहिंसाका बलिदान करके आजादी नहीं लूँ। आलोचक यह ताना दे सकता है कि ब्रिटिश सरकारसे जो घोषणा चाही जा सकती है वह कर दे तो आप मित्र राष्ट्रोंकी मदद करने लगेंगे और इस तरह हिंसाके भागीदार बन जायेंगे? यह ताना वाजिब होता, अगर बात यह न होती कि कांग्रेसकी सहायता तो शुद्ध नैतिक सहायता होगी। कांग्रेस न धन देगी, न जन। उसके नैतिक प्रभावका उपयोग भी शान्तिके लिए किया जायगा। मैं इस अखबारमें पहले ही कह चुका हूँ कि मेरी अहिंसा बचाव और हमला करनेवाली अलग अलग किस्मकी हिंसाओंको मानती है। यह सही है कि अन्तमें यह भेद मिट जाता है, मगर आरम्भमें तो उसका मूल्य है ही। मौका पड़ने पर अहिंसावादी व्यक्तिके लिए यह कहना धर्म हो जाता है कि न्याय किस तरफ है। इसलिए मैंने अबीसीनिया, स्पेन, चेकोस्लोवाकिया, चीन और पोलैंडके निवासियोंकी सफलता चाही थी, हालाँकि मैंने हर सूरतमें यह चाहा था कि वे लोग अहिंसात्मक मुकाबिला करते। मौजूदा मामलेमें अगर चेम्बरलेन साहबने जो ऊँची बातें कही हैं उनपर अमल करके ब्रिटेन अपना दावा कांग्रेसके सामने सच्चा साबित कर दे और हिन्दुस्तान आजाद घोषित कर दिया जाये, तो वह अपना सारा नैतिक प्रभाव शान्तिके पक्षमें खर्च कर देगा। मेरी रायमें जो हिस्सा मैं इस काम में ले रहा हूँ वह बिल्कुल अहिंसात्मक है। कांग्रेसकी माँगके पीछे कोई सौदेकी भावना नहीं है। वह माँग है भी तो खालिस नैतिक। न सरकारको तंग करनेकी इच्छा है। सविनय-भंग भी जल्दीबाजीमें शुरू न होगा। इस बातकी सावधानी रखी जा रही है कि कांग्रेसकी माँग पर जो भी उचित आपत्ति हो उसका समाधान किया जाय और वांछित घोषणा करनेमें ब्रिटेनको जो भी कठिनाई मालूम हो उसे कम किया जाय। जो अधीर कांग्रेसी, अहिंसात्मक ही सही, लड़ाईके लिए छटपटा रहे हैं उनपर खूब जोर डाला जा रहा है। मैं खुद यह चाहता हूँ कि शान्ति-स्थापनके काममें मैं कारगर हिस्सा लेनेके योग्य हो जाऊँ। ऐसा मैं उसी हालतमें कर सकता हूँ, जब हिन्दुस्तान सचमुच ब्रिटेनका आजाद साथी बन जाय, भले ही कानूनी क्रियाएँ युद्ध खतम होनेके बाद होती रहें।

वही पार लगायेगा

"प्रिय वन्धु,

मेरा आपसे परिचय नही है, पर जव सन् १९३१मे आप डार्वेन (लंकाशायर) आये थे, उस समय मेरी पत्नी और मै आपको अपना मेहमान वनानेवाले थे। पर उससे कुछही पहले हमको वर्लिन चले जाना पडा। वहाँ हमने पिछले महायुद्धके वाद भूखो मरते वच्चोमे कष्ट-निवारणका काम किया था। इस वार भी हम ५॥ वर्ष जर्मनीमे रहे। इससे हमे वहाँके ताजे हालातका खासा ज्ञान है। हमे वहाँके वहुतसे लोगोके साथ प्रेम भी हो गया है।

इस लडाईके शुरूमे 'हरिजन'मे आपकी कुछ पक्तियाँ पढकर मुझे वडी दिलचस्पी पैदा हुई और प्रेरणा मिली। आपने लिखा था कि, 'अगर हिंसासे मेरे देशकी आजादी मिलती हो तो भी मै उस कीमतपर उसे नही लूगा। मेरा यह अटल विश्वास है कि तलवारसे ली हुई चीज उसी तरह चली भी जाती है।' मेरे मित्र अगाथा हैरिसनने भी मुझे आपके कुछ लेख वताये। इनसे मुझे युद्धके वारेमे आपका रवैया समझनेमे मदद मिलती है। फिर भी मेरे मनपर चिन्ताका भार है। मै वही आपके सामने रखना चाहता हूँ।

आजकल वहुतसे पक्के शान्ति-प्रेमियोका भी यह हाल है कि जव कभी उनके देशोकी स्वतंत्रता वुरी तरह छिनी जाती है तो वे खुद भले ही युद्धसे अलग रहे, मगर वे समझते है कि खोई हुई आजादीको वापस लेनेके लिए लडना अनिवार्य ही नही, उचित भी है। क्या ऐसे वक्तमे आप जैसे आध्यात्मिक नेता और ईश्वरीय दूतका यह फर्ज नही है कि आगे वढकर युद्धके पागलपनके वजाय कोई दूसरा ऐसा रास्ता सुझाये जिसमे आपसके झगडे तो दूर हो ही सके, वुराईका मुकावला और राजनीतिक उद्देश्योकी पूर्ति भी हो सके? मेरी समझमे नही आया कि जिस उत्तम मार्गके आप अगुआ है उसकी संसारके आगे घोषणा न करके आप युद्धसे पैदा हुई स्थितिसे भारतकी स्वतन्त्रताके हकमें लाभ उठानेकी छोटी-सी वात क्यो सोच रहे है। मुझे लगता है कि शायद मै आपको समझनेमें गलती कर रहा हूँ। मै चाहता हूँ कि परमात्मा आपके देशकी शुभाशाएँ पूरी करे, मगर यह साम्राज्यवादी व्रिटेनको हिंसात्मक युद्धमे मदद देकर किसी सौदेकी तरह पूरी न हो, वल्कि [illegible] और पहलेसे अच्छा जगत-निर्माण करनेकी योजनाके सिलसिलेमे होनी चाहिए।

करे, प्रतिज्ञाकी दृष्टिसे इसका इतना महत्त्व नही है जितना इस बात का कि आप कर सकते हैं। कुछ भी हो, आज तो आर्थिक ढगके आन्दोलनकी छूट है।

"ये दोनो सवाल तो प्रतिज्ञा के इस पहलूसे पैदा होते है कि क्या-क्या नही किया जा सकता। एक तीसरा सवाल इस बारेमे खडा होता है कि क्या-क्या करना जरूरी है। बेशक यह आवश्यक है कि जो कोई प्रतिज्ञा ले उसे समाजकी अर्थ-व्यवस्था एक जगह केन्द्रित न करनेके उसूलमें अपना क्रियात्मक विश्वास जाहिर करनेको तैयार रहना चाहिए। इस विश्वासका असली रूप क्या हो यह भले ही काल-प्रयाहके साथ तय हो सकता है। प्रतिज्ञा लेनेवालेको सिर्फ चरखेके बारेमे इतना विश्वास होना चाहिए कि कपडेका उद्योग थोडे लोगोके हाथोसे पूरी तरह निकालकर अधिक-से-अधिक लोगोके हाथोमे दिया जा सकता है, और इसके लिए कोशिश भी होनी चाहिए।

"मैंने आलस्य और दूसरे कारणोसे होनेवाली व्यवहारकी अनियमितताओका बिलकुल जिक्र नही किया है। ऐसा तो सभी प्रतिज्ञाओ और श्रद्धाओके बारेमें होता है। सिर्फ ऐसी गलतियोको दूर करनेकी इच्छा जरूर होनी चाहिए।

"मै नही जानता कि प्रतिज्ञाका यह अर्थ सही है या नही, और आपको स्वीकार हो सकता है या नही। मुझे यह भी पता नही कि मेरे समाजवादी साथियोको यह पसन्द आयेगा या नही। शायद आपकी राय जल्दी मालूम होना देशके लिए अच्छा होगा। मगर पहले ही इतनी देर हो चुकी है कि स्वाधीनता-दिवसके लिए तो यह राय काम नही आ सकेगी।"

जो बात मैं कई बार कह चुका हूँ उसे दोहराने की जरूरत तो नहीं है, मगर वह बात यह है कि प्रतिज्ञाका कानूनी और अधिकारपूर्ण अर्थ तो कार्यसमिति ही बता सकती है। मेरे बताये हुए अर्थका महत्त्व तो वहीं तक है जहाँतक कि लोगोको मान्य है।

संक्षेपमें मैं इतना कह सकता हूँ कि डॉक्टर लोहियाका लगाया हुआ अर्थ मंजूर कर लेनेमें मुझे कोई आपत्ति नहीं है। कांग्रेसकी कोशिशका अन्तमें कुछ भी परिणाम निकले, प्रतिज्ञाके बारेमें जो चर्चा हो रही है उससे जनताको अच्छी राजनीतिक शिक्षा मिल रही है। और देशमें अलग-अलग विचारके लोगोकी राय स्पष्ट होती जा रही है।

हालांकि मोटे तौर पर डॉक्टर लोहियासे मेरी राय मिलती है फिर भी यह अच्छा होगा कि प्रतिज्ञाका अपना अर्थ मैं अपनी ही भाषामें बता दूँ। प्रतिज्ञामें सारी बातें नहीं आ गयी। इससे तो यही मालूम होता है कि कार्यसमिति कहाँ तक मेरे साथ जा सकती थी। अगर देशका दृष्टिकोण मैं अपना-सा बना सका तो आयंदा समाज-व्यवस्थाकी बुनियाद ज्यादातर चरखे और उससे निकलनेवाले सारे फलितार्थोपर खड़ी की जायेगी। उसमें वे सब चीजें शामिल होगीं जिनसे देहातियोंकी भलाई हो। लेखकने जिन उद्योगोका जिक्र किया है जबतक वे देहातो और देहाती जीवनका गला न घोटने लगें तबतक उन उद्योगोका स्थान भी रहेगा। मेरी कल्पनामें यह जरूर है कि देहातकी दस्तकारियोके साथ-साथ बिजली, जहाज बनाना, कलें तैयार करना और इसी तरहके दूसरे उद्योग भी रहेगे। मगर कौन मुख्य और कौन गौण रहें, इसका क्रम उलट जायगा। आजतक बड़े-बड़े कारखानोंकी योजना इस तरह बनती रही है जिससे गाँवो और

लेकिन मैं हूँ कौन ? जो ईश्वर मुझे देता है इसके अलावा मेरे पास कोई ताकत नहीं है। सिर्फ नैतिक प्रभावके अलावा मेरी देशवासियो पर भी कोई सत्ता नहीं है। इस समय ससार पर जिस भीषण हिंसाका साम्राज्य है उसकी जगह अहिंसा स्थापित करनेके लिए ईश्वर मुझे शुद्ध अस्त्र समझता होगा तो वह मुझे बल भी देगा और रास्ता भी दिखायेगा। मेरा बडे-से-बडा हथियार तो मूक प्रार्थना है। इस तरह शान्ति-स्थापनका काम ईश्वरके समर्थ हाथोमें है। उसके हुक्मके विना पत्ता भी नहीं हिल सकता। उसका हुक्म उसके कानूनकी शकलमें ही जारी होता है। वह कानून सदा वैसा ही रहता है, कभी बदलता नहीं। उसमें और उसके कानूनमें कोई भेद भी नहीं है। हम उसे और उसके कानूनको किसी आइनेकी मददसे पहचान सकते हैं और वह धुधला-सा। पर उस कानूनकी जो हलकी-सी झलक दिखायी देती है वह मेरे अन्तरको आनन्द, आशा और भविष्यमें श्रद्धासे भर देनेके लिए काफी है।

हरिजन-सेवक
९ दिसम्बर, १९३९

❀

अमली अहिंसा

डॉ. राममनोहर लोहिया लिखते हैं:—

"क्या आजादीकी प्रतिज्ञाका यह अर्थ है कि स्वतत्र भारतके लिए ऐसी सामाजिक व्यवस्था मे विश्वास रखा ही जाये जिसकी बुनियाद सिर्फ चर्खे और मौजूदा रचनात्मक कार्यक्रम पर होगी? मुझे खुदकोतो ऐसा लगता है कि ऐसी बात नही है। प्रतिज्ञामे चर्खा और गांवोंकी दस्तकारियाँ शामिल है, मगर यह बात नही है कि प्रतिज्ञामे दूसरे उद्योगो और आर्थिक प्रवृत्तियोंकी गुजाइश ही नही। इन उद्योगोंमे बिजली, जहाज बनाने, कलें तैयार करने आदिका नाम लिया जा सकता है। फिर भी यह सवाल रह जाता है कि जोर किस पर दिया जाय? इस बारेमें प्रतिज्ञाने सिर्फ इस हदतक फैसला होना है कि इतना विश्वास रखना तो जरूरी है कि चर्खा और ग्रामोद्योग भावी समाज-व्यवस्थाके ऐसे हिस्से होंगे जिन्हे अलग नही किया जा सकता और उनपरसे विश्वास हटाकर दूसरे उद्योगोपर विश्वास नहीं रखा जा सकता।

"क्या प्रतिज्ञासे तुरत यह जरूरी हो जाता है कि और सब कार्रवाई करना छोड़ दिया जाय और सिर्फ वही किया जाय जिसका आधार मौजूदा रचनात्मक कार्यक्रम पर हो? मुझे तो ऐसा लगता है कि यह जरूरी नहीं। लगान, कर, ब्याज, और जनताकी प्रगतिके मार्गमें और भी जो आर्थिक रुकावटें हैं उनके विरुद्ध आन्दोलन करनेमें तो कोई बाधा नहीं दिखाई देती। मिसालके लिए यह नामुमकिन नहीं है कि जब आप सत्याग्रह शुरू करना पसन्द करें तब आप साथ ही लगानबन्दी और करबन्दीका आन्दोलन चलानेका निश्चय करें। आप मसलन ऐसा करें तो

काम करते थे। यह मेहनत किसी को भाररूप नहीं लगती थी। उसमें आनन्द आता था। शामका समय पढने-लिखनेमें जाता था। सत्याग्रही सेनाका अग्रणी-दल इन्हीं स्त्री, पुरुषो और लड़कोंका हुआ। इनसे ज्यादा वीर या सच्चे साथी मुझे नहीं मिल सकते थे। हिन्दुस्तानमें दक्षिण अफ्रीकाका-सा ही अनुभव रहा और मुझे भरोसा है कि उसमें कुछ सुधार ही हुआ। सभी लोग मानते हैं कि अहमदाबादका मजदूर-सगठन भारतमें सबसे बढिया है। उसका काम जिस ढंगसे शुरू हुआ था उसी तरह चलता रहा तो अन्तमें वहाँकी मिलोमें मौजूदा मालिको और मजदूरोकी मालिकी होकर रहेगी। यह स्वाभाविक परिणाम न निकला तो पता चल जायगा कि सगठनकी अहिंसामें खामियाँ थीं। बार्डोलीके किसानोने वल्लभभाईको सरदारकी पदवी दी और अपनी लड़ाई फतह की। बोरसद और खेडाके किसानोने भी वैसा ही किया। ये सब बरसोसे रचनात्मक कार्यक्रम पर अमल कर रहे हैं। मगर इस अमलसे उनके सत्याग्रही गुणोका ह्रास नहीं हुआ है। मुझे पूरा यकीन है कि सविनय-भंग हुआ तो अहमदाबादके मजदूर और बार्डोली और खेड़ाके किसान भारतके और किसी भी हिस्सेके किसानो और मजदूरोसे जौहर दिखानेमें पीछे नहीं रहेंगे। चौंतीस सालके सत्य और अहिंसाके लगातार प्रयोग और अनुभवसे मुझे दृढ विश्वास हो गया है कि यदि अहिंसाका ज्ञानपूर्वक शरीर-श्रमके साथ सबध न होगा और हमारे पड़ोसियोके साथ रोजमर्राके व्यवहारमें उसका परिचय न मिलेगा तो अहिंसा टिक नहीं सकेगी। यह है रचनात्मक कार्यक्रमका रहस्य। यह साध्य नहीं है, साधन है ; मगर है इतना अनिवार्य कि उसे साध्य भी समझ लें तो बेजा नहीं। 'अहिंसक विरोध'की शक्ति रचनात्मक कार्यक्रमपर ईमानदारीके साथ अमल करनेसे ही पैदा हो सकती है।

हरिजन-सेवक
२७ जनवरी, १९४०

❀

अहिंसा, इस्लाम और सिक्ख धर्म

प्र०—सब धर्मोका आदर करनेका उपदेश देकर आप इस्लामकी ताकतको तोड़ते हैं। आप पठानोकी बन्दूकें छीनकर उन्हे नामर्द बना देना चाहते हैं। इस हालतमें हममें और आपमें मेल तो कहीं हो ही नहीं सकता।

उ०—मैं नहीं जानता कि खिलाफतके दिनोमें इस सबंधमें आपके क्या विचार थे। मैं आपको हालहीका थोड़ा इतिहास बता दूँ। खिलाफत्-आदोलनकी नीव मैंने ही डाली थी। अली-बन्धुओकी रिहाईके लिए जो हलचल हुई थी उसमें भी मेरा हाथ था। इसलिए जब अली-बन्धु रिहा हुए तो वे और ख्वाजा अब्दुल मजीद, श्वैब कुरेशी, मुअज्जम अली और मैं, हम सब मिले और कार्यकी एक योजना निकाली जिसे सब लोग जानते हैं। उन सबके साथ मैंने अहिंसाके सब पहलुओपर चर्चा की और उन्हे बताया कि सच्चे मुसलमानोकी भाँति अगर वे अहिंसाको स्वीकार न कर सकें तो मेरे लिए उनके पास कोई जगह नहीं रहेगी। वे मेरी बातके कायल तो हो गये, मगर उन्होने कहा कि बिना हमारे उलेमाओकी ताईदके वे इसपर अमल न कर सकेंगे। और इसलिए स्वर्गीय प्रिंसिपल रुद्रके मकानपर कुछ

ग्रामोद्योगोका नाश हुआ। आनेवाली शासन-व्यवस्थामें बड़े उद्योग गाँवो और उनकी कारीगरीके मातहत रहेगे। मैं समाजवादियोकी इस मान्यतासे सहमत नहीं हूँ कि जब बड़े कारखानो की योजना बनानेवाला और उसका मालिक, राष्ट्र हो जायगा तब जीवनके लिए जरूरी चीजें बड़े कारखानोमें तैयार करनेसे आम लोगोका भला होगा। हेतु तो पश्चिमी और पूर्वी दोनो तरह की कल्पनामें एक ही है, यानी यह कि सारे समाजको अधिक-से-अधिक सुख मिले और जिस घिनौने भेदभावके कारण एक तरफ करोड़ो नंगे-भूखे और दूसरी ओर मुट्ठीभर मालदार आदमी रहते है वह भेदभाव मिट जाय। मेरा विश्वास है कि यह उद्देश्य तभी सफल हो सकता है जब ससारके अच्छे और विचारशील लोग मान लें कि अहिंसाके आधार पर ही न्यायपूर्ण समाज-व्यवस्था रची जा सकती है। मेरी रायमें गरीबोके हाथमें हिंसा द्वारा सत्ता लानेकी कोशिश अंतमें पार नहीं पडेगी। जो चीज हिंसासे हासिलकी जाती है वह उससे बढकर हिंसाके सामने नहीं टिक सकती, और हाथसे निकल जाती है। अगर काग्रेसवादी अपने अहिंसाके ध्येय पर सच्चे रहे और उसपर अमल करें तो भारतका उद्देश्य पूरा हुआ ही समझना चाहिए। इस सच्चाईकी परीक्षा है रचनात्मक कार्यक्रमको पूरा करना। जो लोग आम जनताके विचारोको भड़काते है वे जनता और देश, दोनोका नुकसान करते है। उनका हेतु ऊँचा होता है, इस बातसे यहाँ सरोकार नहीं। काग्रेसवादी रचनात्मक कार्यक्रम पर पूरी तरह और सच्चाईके साथ अमल क्यो नहीं करना चाहते? जब सत्ता हमारे हाथमें आ जायगी, तब दूसरे कार्यक्रमोपर विचार करनेका वक्त आयगा। मगर हम तो शेखचिल्ली ठहरे। दंतकथा है न-कि भैस खरीदनेसे पहले ही उसके बॅटवारेके बारेमें साझीदार झगड़ बैठे। इसी तरह स्वराज तो मिला नहीं और हम है कि अपने जुदा-जुदा कार्यक्रमोके बारेमें बहस और झगडे कर रहे है! सुशीलताका तकाजा है कि जब बहुमतने एक कार्यक्रम मजूर कर लिया तो सभी उसपर सच्चाईके साथ अमल करें।

इसमें तो कुछ भी शक नहीं है कि कांग्रेसके कार्यक्रमके जिन दूसरे अंगोसे उस कार्यक्रमकी अबतक शोभा बढ़ी है और जिनकी तरफ डॉक्टर लोहियाने सकेत किया है उन्हें प्रतिज्ञाके कारण छोड़ देनेकी जरूरत नही है। हर तरहके अन्यायके विरुद्ध आन्दोलन करना तो राजनीतिक जीवनका प्राण है। मेरा जोर इसी बात पर है कि उस आन्दोलनको रचनात्मक कार्यक्रमसे अलग कर देनेसे उसमें हिंसाकी झलक आ ही जायगी। मै अपनी बात उदाहरण देकर समझाऊँ। अहिंसाके प्रयोगोसे मैं यह सीखा हूँ कि असली अहिंसाका अर्थ सब लोगोंका शरीर-श्रम है। एक रूसी दार्शनिक बोंडरेफने इसे रोटीके लिए श्रम कहा है। इसका परिणाम यह होगा कि लोगोंमें आपसमें गहरे-से-गहरा सहयोग हो। दक्षिण अफ्रीकाके पहिले सत्याग्रही सबकी भलाई और सम्मिलित कोषके लिए मेहनत करते थे और उन्हें उड़ते पक्षियोकी सी बेफिक्री रहती थी। उनमें हिन्दू, मुसलमान (शिया और सुन्नी), ईसाई (प्रोटेस्टेंट और रोमन कैथोलिक), पारसी और यहूदी सभी थे। अंग्रेज और जर्मन भी थे। धन्धेके लिहाजसे उनमें वकील, इमारत और बिजलीकी विद्या जाननेवाले इंजीनियर, छापनेवाले और व्यापारी थे। सत्य और अहिंसाके व्यवहारसे धार्मिक झगडे मिट गये थे और हमने सब धर्मोंमें सत्यके दर्शन करना सीख लिया था। दक्षिण अफ्रीकामें मैंने जो आश्रम कायम किये उनमें एक भी मजहबी झगडा हुआ हो ऐसा मुझे याद नहीं आता। सब लोग छपाई, बढ़ईगिरी, जूते बनाना, बागबानी, इमारत और इनके

काम करते थे। यह मेहनत किसी को भाररूप नही लगती थी। उसमें आनन्द आता था। शामका समय पढने-लिखनेमें जाता था। सत्याग्रही सेनाका अग्रणी-दल इन्हीं स्त्री, पुरुषो और लडकोका हुआ। इनसे ज्यादा वीर या सच्चे साथी मुझे नहीं मिल सकते थे। हिन्दुस्तानमें दक्षिण अफ्रीकाका-सा ही अनुभव रहा और मुझे भरोसा है कि उसमें कुछ सुधार ही हुआ। सभी लोग मानते हैं कि अहमदाबादका मजदूर-संगठन भारतमें सबसे बढिया है। उसका काम जिस ढगसे शुरू हुआ था उसी तरह चलता रहा तो अन्तमें वहांकी मिलोमें मौजूदा मालिको और मजदूरोकी मालिकी होकर रहेगी। यह स्वाभाविक परिणाम न निकला तो पता चल जायगा कि सगठनकी अहिंसामें खामियां थीं। बार्डोलीके किसानोने वल्लभभाईको सरदारकी पदवी दी और अपनी लड़ाई फतह की। बोरसद और खेडाके किसानोने भी वैसा ही किया। ये सब बरसोसे रचनात्मक कार्यक्रम पर अमल कर रहे हैं। मगर इस अमलसे उनके सत्याग्रही गुणोका ह्रास नहीं हुआ है। मुझे पूरा यकीन है कि सविनय-भंग हुआ तो अहमदाबादके मजदूर और बार्डोली और खेड़ाके किसान भारतके और किसी भी हिस्सेके किसानो और मजदूरोसे जौहर दिखानेमें पीछे नहीं रहेगे। चौंतीस सालके सत्य और अहिंसाके लगातार प्रयोग और अनुभवसे मुझे दृढ विश्वास हो गया है कि यदि अहिंसाका ज्ञानपूर्वक शरीर-श्रमके साथ सबध न होगा और हमारे पड़ोसियोके साथ रोजमर्राके व्यवहारमें उसका परिचय न मिलेगा तो अहिंसा टिक नहीं सकेगी। यह है रचनात्मक कार्यक्रमका रहस्य। यह साध्य नहीं है, साधन है, मगर है इतना अनिवार्य कि उसे साध्य भी समझ लें तो बेजा नही। 'अहिंसक विरोध'की शक्ति रचनात्मक कार्यक्रमपर ईमानदारीके साथ अमल करनेसे ही पैदा हो सकती है।

हरिजन-सेवक
२७ जनवरी, १९४०

❀

अहिंसा, इस्लाम और सिक्ख धर्म

प्र०—सब धर्मोंका आदर करनेका उपदेश देकर आप इस्लामकी ताकतको तोड़ते हैं। आप पठानोकी बन्दूकें छीनकर उन्हे नामर्द बना देना चाहते है। इस हालतमें हममें और आपमें मेल तो कहीं हो ही नहीं सकता।

उ०—मैं नहीं जानता कि खिलाफतके दिनोमें इस संबधमें आपके क्या विचार थे। मैं आपको हालहीका थोड़ा इतिहास बता दूं। खिलाफत–आदोलनकी नींव मैंने ही डाली थी। अली-बन्धुओकी रिहाईके लिए जो हलचल हुई थी उसमें भी मेरा हाथ था। इसलिए जब अली-बन्धु रिहा हुए तो वे और ख्वाजा अब्दुल मजीद, शुऐब कुरेशी, मुअज्जम अली और मैं, हम सब मिले और कार्यकी एक योजना निकाली जिसे सब लोग जानते हैं। उन सबके साथ मैंने अहिंसाके सब पहलुओपर चर्चा की और उन्हे बताया कि सच्चे मुसलमानोकी भांति अगर वे अहिंसाको स्वीकार न कर सकें तो मेरे लिए उनके पास कोई जगह नहीं रहेगी। वे मेरी बातके कायल तो हो गये, मगर उन्होने कहा कि बिना हमारे उलेमाओकी ताईदके वे इसपर अमल न कर सकेंगे। और इसलिए स्वर्गीय प्रिंसिपल रुद्रके मकानपर कुछ

उलेमाजमा हुए। प्रिंसिपल रुद्रके जीवन-कालमें जब-जब दिल्ली आता था, उन्हींके घरपर ठहरता था। इन उलेमाओंमें और-और लोगोंके साथ मौलाना अबुल कलाम आजाद, मरहूम मौलाना अब्दुल बारी, मौलाना अब्दुल मजीद और मौलाना आजाद सुभानी भी थे। ये नाम मैं अपनी याददाश्तसे ही लिख रहा हूँ। पहले दोको तो मुझे अच्छी तरह याद है। बाकी उस समय न भी रहे हो तो बादमें शामिल जरूर हो गये थे। मौलाना अबुल कलाम आजादने इस बहसमें प्रमुख भाग लिया था। सबने यह फैसला किया कि अहिंसामें विश्वास करना इस्लाममें जायज ही नहीं, बल्कि जरूरी भी है, क्योंकि इस्लाममें अहिंसाको हमेशा हिंसासे ज्यादा पसन्द किया गया है। यह बात गौर करनेके काबिल है कि सन् १९२० में, जब कांग्रेसने अहिंसाको स्वीकार किया, उससे पहलेकी यह घटना है। मुसलमानोंके कई बड़े-बड़े जलसोंमें मुस्लिम विद्वानोंने अहिंसापर बहुतसे व्याख्यान और उपदेश दिये। बादमें बिना किसी दुविधाके सिक्ख भी आये और उन्होंने अहिंसापर मेरे विचारोंको कान लगाकर सुना। ये महान् और गौरवशाली दिन थे। अहिंसा तो संक्रामक ही साबित हुई। उसके जादूसे जनतामें इतनी जागृति हुई जितनी पहले इस देशमें कभी नहीं देखी गयी थी। सब कौमोंने अनुभव किया कि वे एक हैं और उन्होंने सोचा कि अहिंसासे उन्हें एक ऐसी ताकत मिल गयी जिसका मुकाबिला कोई कर नहीं सकता। वे उजले दिन गये और अब ऊपरके जैसे- सवालोंके जवाब देनेके लिए मुझे गम्भीरतासे बाध्य होना पड़ा रहा है। अहिंसामें वह श्रद्धा मैं आपको नहीं दे सकता जोकि आप उसमें नहीं रखते हैं। वह श्रद्धा तो ईश्वर ही आपको दे सकता है। मेरी श्रद्धा तो अब भी वैसी ही अचल है। आप और आप जैसे दूसरोंकी मेरी प्रवृत्तियोंपर सन्देह करनेके बावजूद भी मेरा यह दावा है कि एक-दूसरेके धर्मके प्रति आदर एक शान्तिदायक समाजमें स्वाभाविक रूपसे ही होता है। विचारोंका खुला घात-प्रतिघात और किसी भी दशामें असम्भव है। धर्म हमारे स्वाभावकी बर्बरताको संयत करनेके लिए है, उसे ढीला छोड़ देनेके लिए नहीं। ईश्वर केवल एक है, यद्यपि नाम उसके अनेक हैं। क्या यह आप आशा नहीं करते कि मैं आपके धर्मका आदर करूँ? यदि आप यह आशा करते हैं, तो क्या मैं आपसे नहीं चाह सकता कि आप भी मेरे धर्मका आदर करें? आप कहते हैं कि मुसलमानोंकी हिन्दुओंके साथ कुछ भी समानता नहीं है। आपके इस अलगावके बावजूद भी संसार धीरे-धीरे विश्वव्यापी भाईचारेकी ओर कदम बढ़ा रहा है। वहाँ जाकर मानव-जाति एक राष्ट्र हो जायगी। सामान्य लक्ष्यकी ओर जो कूच हो रहा है, उसे न तो आपही रोक सकते हैं, न मैं रोक सकता हूँ। पठानोंको नामर्द बनानेका जवाब तो बादशाह खानसे मिलेगा। हमसे मिलनेसे पहले ही उन्होंने अहिंसाको स्वीकार कर लिया था। उनका विश्वास है कि पठानोंका अहिंसाके द्वारा ही उज्ज्वल भविष्य बन सकता है। अहिंसा न होती तो और नहीं तो उनकी आपसी खूरेजी ही उन्हें आगे बढ़नेसे रोके रहती और उनका ख्याल है कि अहिंसाको स्वीकार करनेके बाद ही पठान सीमाप्रान्तमें जम सके हैं और ईश्वरके सेवक खुदाईखिदमतगार बने हैं।

हरिजन-सेवक

१० फरवरी, १९४०

अहिंसा बनाम स्वाभिमान

प्रश्न—मैं एक विश्वविद्यालयका छात्र हूँ। कल शामको हम कुछ लोग सिनेमा देखने गये थे। खेलके बीचमें ही हममेंसे दो बाहर गये और अपनी जगहोंपर रूमाल छोड़ गये। लौटने पर हमने देखा कि दो अंग्रेज सिपाही उन बैठकोंपर बेतकल्लुफीसे कब्जा किये हुए हैं। उन्होंने हमारे मित्रोंकी साफ-साफ चेतावनी और अनुनय-विनयकी कुछभी परवाह नहीं की और जब जगह खाली करनेके लिए कहा गया तो उन्होंने इन्कार ही नहीं किया, लड़नेको भी आमादा हो गये। उन्होंने सिनेमाके मैनेजरको भी धमका दिया। वह हिन्दुस्तानी था, इसलिए आसानीसे दब गया। अन्तमें छावनीका अफसर बुलाया गया तब उन्होंने जगह खाली की। वह न आया होता तो हमारे सामने दो ही उपाय थे। या तो हम मारपीट पर उतर पड़ते और स्वाभिमानकी रक्षा करते या दबकर चुपचाप दूसरी जगह बैठ जाते। पिछली बातमें बड़ा अपमान होता।

उत्तर—मैं स्वीकार करता हूँ कि इस पहेलीको हल करना मुश्किल है। ऐसी स्थितिका अहिंसक तरीकेपर मुकाबिला करनेके दो उपाय सूझते हैं। पहला यह कि जबतक जगहें खाली न हों अपनी बातपर मजबूतीसे अड़े रहना। दूसरा यह कि जगह छीन लेनेवालोंके सामने जान-बूझकर इस तरह खड़े हो जाना कि उन्हें तमाशा दिखायी न दे। दोनों सूरतोंमें आपकी पिटाई होनेका जोखम है। मुझे अपने उत्तरसे सन्तोष नहीं है। मगर हम जिस विशेष परिस्थितिमें हैं, उसमें इससे काम चल जायगा। बेशक, आदर्श जवाब तो यह है कि निजी अधिकार छिन जानेकी हम परवाह न करें, बल्कि छीननेवालोंको समझायें। वे हमारी न सुनें तो सम्बन्धित अधिकारियोंसे शिकायत कर दें और वहाँ भी न्याय न मिले तो मामला ऊँचीसे-ऊँची अदालतमें ले जायें। यह कानूनका रास्ता है। समाजकी अहिंसक कल्पनामें इसकी मनाही नहीं है। कानूनको अपने हाथमें न लेना असलमें अहिंसक मार्ग ही है। पर इस देशमें आदर्श और वस्तुस्थितिका कोई सम्बन्ध नहीं है, क्योंकि जहाँ गोरोंका और खास तौर पर गोरे सिपाहियोंका मामला हो वहाँ हिन्दुस्तानियोंको न्याय मिलनेकी प्रायः कुछ भी आशा नहीं हो सकती। इसलिए जैसा मैंने सुझाया है कुछ वैसा ही करनेकी जरूरत है। मगर मैं जानता हूँ कि जब हममें सच्ची अहिंसा होगी तो कठिन परिस्थितिमें होनेपर भी हमें बिना प्रयत्नके ही कोई अहिंसक उपाय सूझे बिना नहीं रहेगा।

हरिजन-सेवक
१७ फरवरी, १९४०

❋

नोआखालीके हिन्दुओंको मेरी सलाह

मेरे मलिकंदा-प्रवासके समय नोआखालीसे मनोरञ्जन बाबू और अन्य मित्र अपने इलाकेके हिन्दुओंकी मुसीबतोंके बारेमें मुझसे मिलने आये। मनोरंजन बाबू कुछ दिनोंसे इस विषयमें मुझसे पत्र-व्यवहार भी कर रहे थे। मैंने शिकायतोंकी जांच नहीं की है। इसके लिए मेरे पास न वक्त था, न इच्छा थी। यह प्रान्तीय कांग्रेस तथा अन्तमें केन्द्रीय संस्थाके अधिकार-क्षेत्रकी बात है। लेकिन मुझे मोटे तौरपर सलाह देनेमें कोई दिक्कत नहीं हुई। उनका मामला, कमोवेश, सक्खर-प्रकरण जैसा ही है। मात्रामें बहुत ज्यादा अन्तर है। लेकिन मैं पूरी तरह अनुभव करता हूँ कि नोआखालीमें जिस तरह की विस्तृत गुण्डई फैली बतायी जाती है, उसका मकाबला कोई भी लोक निर्वाचित सरकार सफलतापूर्वक नहीं कर सकती। यह तत्वतः एक आत्म-रक्षाका मामला है। आत्म-सम्मान और आबरूकी रक्षा दूसरोंके जरिये नहीं की जा सकती। इनकी रक्षा तो हरेक स्त्री-पुरुषको खुद करनी चाहिए। सरकार तो ज्यादा-से-ज्यादा इतना कर सकती है कि अपराध या जुल्म हो जानेके बाद अपराधीको सजा दे दे। पर वह अपराध होने ही न देनेका विश्वास नहीं दिला सकती—जहाँतक सजा रोकका काम देती है वहाँतक इस दिशामें वह कुछ कर सकती है। आत्म-रक्षा हिंसात्मक और अहिंसात्मक दो तरीके की हो सकती है। मैंने सदा अहिंसात्मक रक्षाकी सलाह दी है और उसीपर जोर दिया है। लेकिन मैं इतना मानता हूँ कि हिंसात्मक रक्षाकी तरह ही अहिंसात्मक रक्षाका भी ज्ञान प्राप्त करना पड़ता है। हिंसात्मक रक्षाके लिए जिस तरहकी शिक्षा और तैयारीकी जरूरत पडती है उससे इसकी शिक्षा और तैयारी भिन्न है। इसलिए अगर अहिंसात्मक आत्मरक्षणकी शक्तिका अभाव है, तो हिंसात्मक साधनों और उपायोंका आश्रय लेनेमें कोई हिचकिचाहट नही होनी चाहिए। किन्तु चूँकि मनोरंजन बाबू एक पुराने कांग्रेसी है, इसलिए उन्होंने कहा—"आप तो कहते हैं कि मैं आत्मरक्षाके लिए भी प्रत्याक्रमण नहीं करूँगा?" मैंने उत्तर दिया—"अवश्य, मेरा मत तो यही है। लेकिन गया-कांग्रेसमें एक प्रस्ताव पास हुआ था कि आत्म-रक्षार्थ बल-प्रयोग कांग्रेसियोंके लिए क्षम्य है। मैंने कभी इस प्रस्तावको उचित नहीं बताया है। अगर आत्मरक्षाके लिए हिंसा क्षम्य मान ली जाय तो अहिंसा निरर्थक हो जाती है। आक्रमणकारी राष्ट्रके विरुद्ध राष्ट्रीय प्रतिरोध आत्मरक्षणके सिवा और क्या है? इसलिए आपने जिस स्थितिका वर्णन किया है उसमें अपनी रक्षाके लिए यदि हिंसात्मक उपायोंका सहारा लेनेकी सोचते हो तो मैं कांग्रेससे अलग हो जानेकी सलाह दूँगा।" मनोरंजन बाबूने पूछा—"लेकिन मान लीजिए, मैंने गयावाला प्रस्ताव स्वीकार कर लिया तो क्या पीडित हिन्दुओंकी रक्षा करनेमें मुझपर साम्प्रदायिकताका अपराध लगाया जा सकेगा?" मैंने उत्तर दिया—"हर्गिज नहीं। पहली बात यह कि कांग्रेसी होनेसे आपका हिन्दू होना खत्म नहीं हो जाता। साम्प्रदायिकताके दोषी आप तब होंगे जब गलत या सही हर हालतमें हिन्दुओंका पक्ष लें। इस मामलेमें आप हिन्दुओंकी रक्षा इसलिए नहीं करते कि वे हिन्दू हैं, बल्कि इसलिए करते हैं कि वे पीड़ित हैं। मैं आशा करूँगा कि अगर आप मुसलमानोंको हिन्दुओं द्वारा

पीड़ित होते देखें तो उनकी भी रक्षा करें। कांग्रेसी सम्प्रदाय-भेद मानता है, उसे मानना चाहिए।"

इसके बाद मिलनेवालोंने कांग्रेसके झगडोंपर बातचीत की और मुझसे कहा कि कांग्रेसकी तरफसे सहायता पानेसे निराश हो जानेके कारण बहुतेरे हिन्दू हिन्दू-महासभामें शामिल हो गये हैं। उन्होंने मुझसे पूछा कि क्या हमलोग भी ऐसा कर सकते हैं। मैंने उनसे कहा कि सिद्धान्ततः तो मुझे इसमें आपत्ति की कोई बात नही दिखायी देती। पर मैं इसका निर्णय नही कर सकता कि स्थानीय परिस्थितियोंके अनुसार यह उचित होगा या नही। लेकिन अगर मैं कांग्रेसी होऊँ और मुझे महसूस हो कि उस हैसियतसे मैं प्रभावशाली तरीकेपर कुछ नहीं कर सकता तो मैं उस संस्थामें शामिल होनेसे नही हिचकूँगा, जो प्रभावशाली ढंगपर सहायक हो सके। पर इसके साथ मैंने यह भी कह दिया कि कोई जिम्मेदार कांग्रेसी कांग्रेस-संस्थामें पदाधिकारी होते हुए हिन्दू-महासभाका, जो स्पष्टतः एक साम्प्रदायिक संस्था है--सदस्य नहीं हो सकता। सारा सवाल कठिनाइयोंसे भरा हुआ है। इस अवसर पर शान्ति, सचाई और हिम्मतकी जरूरत है। अगर कांग्रेस प्रभावशाली रूपसे अहिंसात्मक नही बनेगी तो साम्प्रदायिकता की विजय निश्चित है। अगर वह अहिंसासे खेलवाड़ करेगी तो खुद आचरणमें साम्प्रदायिक हो जायेगी। क्योंकि कांग्रेसियोंमें हिन्दुओंका बहुमत है और अगर उन्हे अहिंसाके प्रभावशाली उपयोगका ज्ञान नही होगा तो फिर उनका हिंसाकी तरफ बहक जाना निश्चित है। मेरे मनमें तो यह बात बिल्कुल स्पष्ट है कि कांग्रेस तभी असाम्प्रदायिक रह सकती है, जब यह सब मामलोंमें अहिंसात्मक रहे। ऐसा नही हो सकता कि यह सिर्फ शासकोंके प्रति अहिंसात्मक रहे और दूसरोंके प्रति हिंसात्मक हो। यह मार्ग तो अयश और विनाशका मार्ग है।

हरिजन-सेवक

२ मार्च, १९४०

सर्वोत्तम वृत्तियाँ कैसे जगायें ?

अंग्रेजोंके एक हिन्दुस्तानी हिमायती लिखते हैं:--

"अगर हमारा उद्देश्य अपनी अहिंसाके जरिये अंग्रेजोंकी अच्छी-से-अच्छी वृत्तियाँ जागृत करना और इस तरह आपसमें विश्वास पैदा करना है, तो इसमे हम बुरी तरह असफल हुए है। हमने जो कुछ कहा है, उसके अनुसार किया नही। हमारी अहिंसाका सबसे अच्छा समय (यानी जब हमने इंगलैंडके प्रति कम-से-कम घृणा पैदा की) वह था, जब प्रान्तोंमे कांग्रेसका शासन था। गवर्नरोंके साथ व्यक्तिगत सम्पर्कके कारण आपसमे विश्वास पैदा हुआ था। उस वक्त भी दिल द्वेषसे खाली न थे, लेकिन अब तो सारा वायुमण्डलही फिरसे इंगलैंडके प्रति घृणा-ही-घृणाके मारे तीव्र हो रहा है। सद्भावकी जगह कटुता और विश्वासकी जगह अविश्वास बढ रहा है। हमारे सारे कामों और दलीलोंसे अंग्रेजोंकी बुरी-से-बुरी वृत्तियाँ जागृत हो रही है। हमने अपनी अहिंसाका या सद्भाव बढानेकी इच्छाका क्या प्रत्यक्ष प्रमाण दिया है ? बेशक, सशस्त्र विद्रोह

और अविनयपूर्ण आज्ञाभंग करके दबानेकी गुंजायश नही रखी गयी है। लेकिन आज्ञा-भंगकी धमकी तो है ही, और चूंकि शुद्ध अहिंसा भी अभी तो नही है इसलिए लडाईकी धमकी मात्रसे भी हिंसक विचार जागृत हुए बिना नही रह सकते और जिस सद्भावके बढानेकी प्रतिज्ञा ली गयी थी उसकी कोई आशा दिखायी नही देती। तो फिर क्या लेन-देनके आधार पर किया गया समझौता अधिक उपयुक्त साधन नही है, जिससे

(१) अहिंसक वायुमण्डल उत्पन्न किया जा सके,

(२) सद्भाव पैदा हो सके,

(३) अंग्रेजोकी सर्वोत्तम वृत्तियाँ जागृत की जा सके, और

(४) परस्पर सहयोगके जरिये स्वाधीनता-प्राप्तिका जल्दीका रास्ता खोजा जा सके?"

इस दलीलसे लेखकके हृदयकी तो तारीफ होती है, लेकिन वे अहिंसाके तरीकेको नहीं समझे। वे आधी बात मानकर चले है। हमारा लक्ष्य अंग्रेजोकी सर्वोत्तम वृत्तियाँ जागृत करना ही नहीं है, बल्कि अपना काम करते हुए जागृत करना है। हम अपने मार्गपर चलना छोड दें तो उनकी सद्वृत्तियाँ न जगाकर उनकी दुर्वृत्तियोको बल पहुँचायेंगे। सद्वृत्तियोको जगानेका अर्थ खुश करना नहीं है। जब हमें किसी बुराईसे निपटना है तो हमें बुराई करनेवालेको अशांत करनेकी जरूरत हो सकती है। हमें उसके सद्गुणोका विकास करना है तो यह जोखम उठाना ही पड़ेगा। मैंने अहिंसात्मक उपायको जहर न फैलने देनेवाले और हिंसक उपायको जहर मारनेवाले इलाजकी उपमा दी है। दोनोका उद्देश्य बुराईको मिटाना ही है और इसलिए उनसे कुछ-न-कुछ अशान्ति तो होती है। अक्सर वह अनिवार्य होती है। पहला इलाज बुराई करनेवालेको हानि नहीं पहुँचाता।

जहाँ मैं समालोचक मित्रकी इस बातसे सहमत हूँ कि हमारी अहिंसा शुद्ध नहीं रही है, वहाँ मैं इस ख्यालसे सहमत नहीं हूँ कि हम बुरी तरह असफल हुए है। मैं यह नहीं मान सकता कि कांग्रेसी शासनका समय अहिंसाका सर्वोत्तम समय था। उन दिनो अहिंसा निष्क्रिय रही। एक पक्ष दूसरेको खुश रखनेकी कोशिश करता था। दोनोके दिलोमें तो और ही कुछ था, पर ऊपरसे एकही नीति पर चलते दिखाई देते थे। अहिंसाका कोई प्रत्यक्ष प्रमाण हमने दिया है तो यह दिया है कि कांग्रेसके असरसे हिंसक कार्रवाई बिल्कुल नहीं होने पायी है। बहुत नजदीक होनेके कारण हम इस बातका सही-सही माप करनेमें असमर्थ है कि करोड़ो स्त्री-पुरुषोने कितना भारी संयम रखा है। मैं कबूल कर लेता हूँ कि अभी हमारे दिलोसे अहिंसा नहीं निकली है। मगर जनताके आश्चर्यजनक संयमको देखकर मुझे बहुत आशा होती है कि दिलोकी हिंसा समय पाकर विरोधीके लिए सद्भावमें बदल जायेगी। समालोचककी नीतिको मैं भीरुता कहूँगा, उसपर चलनेसे यह बात कभी पैदा नहीं होगी। वैर-भाव तभी नष्ट होगा जब उसे भूखो मारनेके लिए काफी असेंतक संयम रखा जायगा। अन्तमें जाकर अंग्रेजोके मनपर भी इसका असर उतना ही अच्छा होगा। अंग्रेजोको पता लग जायेगा कि जहाँतक अहिंसासे काम लिया गया वहाँतक वह सच्ची थी और दिलोमें उनके खिलाफ शिकायत रखते हुए भी साधारण जनता बहुत संयम रख सकी।

समझौतेका तो आधार ही लेन-देनकी वृत्तिपर होता है, मगर बुनियादी बातोंपर समझौता करना आत्म-समर्पण होता है, क्योंकि इसमें देना-ही-देना होता है, लेनेको कुछ नहीं होता। समझौतेका समय उसी वक्त आ सकता है जब बुनियादी मामलोंपर दोनो एकमत हो, अर्थात् ब्रिटिश सरकार यह निश्चय कर लेगी कि जिस विधानके अनुसार हिन्दुस्तानमें शासन होगा उस विधानको अंग्रेज नही हिन्दुस्तानी बनायें। वे विधानके मामलेको चुने हुए भारतीय प्रतिनिधियोकी पंचायतके सुपुर्द करनेको राजी नहीं हो रहे है, यह एक खतरनाक घूंट है। कम तादादवालोको जरा भी डरनेकी जरूरत नहीं, क्योकि उनके लिए जिन संरक्षणोकी आवश्यकता होगी उनका निर्णय उन्हींके अपने प्रतिनिधि करेंगे। राजाओको भी डरनेकी जरूरत नहीं, क्योकि वे न चाहे तो शामिल न हो। जो पक्ष सफल बाधा डाल सकता है और डाल रहा है वह अकेला प्रबल पक्ष या शासक पक्ष ही है। यह पक्ष जबतक इस नतीजेपर न पहुँच जाय कि वह राज नहीं कर सकता या नहीं करना चाहता तबतक कोई समझौता न होगा।

हरिजन-सेवक
३० मार्च, १९४०

३

चर्खा-स्वराज-अहिंसा

एक सज्जन लिखते है कि अब जब कि सविनय अवज्ञा-भंगका वातावरण बन रहा है, पुनरावृत्तिकी परवा न करके भी, मुझे एक ही लेखके अन्दर अपनी इस दलीलका सार दे देना आवश्यक है कि चर्खा, स्वराज और अहिंसामें क्या व्यापक सम्बन्ध है। मै बड़ी खुशीके साथ उनकी बात मानकर यह प्रयत्न करता हूँ।

चर्खा मेरे लिए तो जनसाधारणकी आशाओका प्रतिनिधित्व करता है। जनसाधारणकी स्वतंत्रता, जैसी भी वह थी, चर्खेके खात्मेके साथ ही खत्म हुई। चर्खा ग्रामवासियोके लिए खेतीका पूरक धंधा था, और खेतीकी इससे प्रतिष्ठा थी। विधवाओका यह बन्धु और सहारा था। ग्रामवासियोको वह काहिलीसे भी बचाता था, क्योकि इसमें कपाससे रुई व बिनौलो को अलग-अलग करना, रुईकी धुनाई, कताई, मँडाई, रंगाई, बुनाई आदि अगले-पिछले सभी उद्योग शामिल थे। गांवके बढ़ई और लोहार भी इसके कारण काममें लगे रहते थे। चर्खेसे सत्तर करोड गाँव आत्म-निर्भर बने हुए थे। चर्खेके जानेसे घानीसे तेल निकालने जैसे अन्य ग्रामीण उद्योग भी नष्ट हो गये। इन उद्योगोका स्थान किन्हीं नये उद्योगोने नहीं लिया, इसलिए गाँववाले अपने विविध धंधोंसे वंचित हो गये और अपनी उत्पादक बुद्धि तथा जो थोड़ी-बहुत सम्पत्ति उन धंधोंसे मिल सकती थी उसको भी खो बैठे।

दूसरे जिन देशोंमें दस्तकारियोका नाश हुआ है उनकी उपमासे हमारा काम नहीं चलेगा, क्योंकि वहाँ ग्रामवासियोको उनकी क्षतिपूर्ति करनेवाली कुछ सहूलियतें तो मिल गयी है जबकि

और अविनयपूर्ण आज्ञाभंग करके दबानेकी गुजायश नही रखी गयी है। लेकिन आज्ञा-भगकी धमकी तो है ही, और चूकि शुद्ध अहिंसा भी अभी तो नही है इसलिए लडाईकी धमकी मात्रसे भी हिंसक विचार जागृत हुए बिना नही रह सकते और जिस सद्भावके बढानेकी प्रतिज्ञा ली गयी थी उसकी कोई आशा दिखायी नही देती। तो फिर क्या लेन-देनके आधार पर किया गया समझौता अधिक उपयुक्त साधन नही है, जिससे

(१) अहिंसक वायुमण्डल उत्पन्न किया जा सके,

(२) सद्भाव पैदा हो सके,

(३) अंग्रेजोकी सर्वोत्तम वृत्तियाँ जागृत की जा सकें, और

(४) परस्पर सहयोगके जरिये स्वाधीनता-प्राप्तिका जल्दीका रास्ता खोजा जा सके ?"

इस दलीलसे लेखकके हृदयकी तो तारीफ होती है, लेकिन वे अहिंसाके तरीकेको नहीं समझे। वे आधी बात मानकर चले हैं। हमारा लक्ष्य अंग्रेजोकी सर्वोत्तम वृत्तियाँ जागृत करना ही नहीं है, बल्कि अपना काम करते हुए जागृत करना है। हम अपने मार्गपर चलना छोड दें तो उनकी सद्वृत्तियाँ न जगाकर उनकी दुर्वृत्तियोको बल पहुँचायेंगे। सद्वृत्तियोको जगानेका अर्थ खुश करना नहीं है। जब हमें किसी बुराईसे निपटना है तो हमें बुराई करनेवालेको अशांत करनेकी जरूरत हो सकती है। हमें उसके सद्गुणोका विकास करना है तो यह जोखम उठाना ही पड़ेगा। मैंने अहिंसात्मक उपायको जहर न फैलने देनेवाले और हिंसक उपायको जहर मारनेवाले इलाजकी उपमा दी है। दोनोका उद्देश्य बुराईको मिटाना ही है और इसलिए उनसे कुछ-न-कुछ अशान्ति तो होती है। अक्सर वह अनिवार्य होती है। पहला इलाज बुराई करनेवालेको हानि नहीं पहुँचाता।

जहाँ मैं समालोचक मित्रकी इस बातसे सहमत हूँ कि हमारी अहिंसा शुद्ध नहीं रही है, वहाँ मैं इस ख्यालसे सहमत नहीं हूँ कि हम बुरी तरह असफल हुए हैं। मैं यह नहीं मान सकता कि काग्रेसी शासनका समय अहिंसाका सर्वोत्तम समय था। उन दिनो अहिंसा निष्क्रिय रही। एक पक्ष दूसरेको खुश रखनेकी कोशिश करता था। दोनोके दिलोमें तो और ही कुछ था, पर ऊपरसे एकही नीति पर चलते दिखाई देते थे। अहिंसाका कोई प्रत्यक्ष प्रमाण हमने दिया है तो यह दिया है कि कांग्रेसके असरसे हिंसक कार्रवाई बिल्कुल नहीं होने पायी है। बहुत नजदीक होनेके कारण हम इस बातका सही-सही माप करनेमें असमर्थ हैं कि करोड़ो स्त्री-पुरुषोने कितना भारी सयम रखा है। मैं कबूल कर लेता हूँ कि अभी हमारे दिलोसे अहिंसा नहीं निकली है। मगर जनताके आश्चर्यजनक संयमको देखकर मुझे बहुत आशा होती है कि दिलोकी हिंसा समय पाकर विरोधीके लिए सद्भावमें बदल जायेगी। समालोचककी नीतिको मैं भीरुता कहूँगा, उसपर चलनेसे यह बात कभी पैदा नहीं होगी। वैर-भाव तभी नष्ट होगा जब उसे भूखो मारनेके लिए काफी अर्सेतक संयम रखा जायगा। अन्तमें जाकर अंग्रेजोके मनपर भी इसका असर उतना ही अच्छा होगा। अंग्रेजोको पता लग जायेगा कि जहाँतक अहिंसासे काम लिया गया वहाँतक वह सच्ची थी और दिलोमें उनके खिलाफ शिकायत रखते हुए भी साधारण जनता बहुत संयम रख सकी।

उन्हे रखते हुए मुझे यह घोषणा करने दीजिए कि मैंने जो शर्तें रखी हैं उनकी पूर्ति हुए बिना मैं सविनय-भंगका एलान नहीं कर सकता।

हरिजन-सेवक
१३ अप्रैल, १९४०

❀

श्री जयप्रकाशका एक प्रस्ताव

श्री जयप्रकाशनारायणने मेरे पास एक प्रस्तावका नीचे लिखा मसविदा भेजा था, और मुझे लिखा था कि अगर मैं इस प्रस्तावमें दी गयी तस्वीरसे सहमत होऊँ, तो इसे रामगढमें होनेवाली काग्रेस-कार्यसमितिके सामने पेश कर दूँ। प्रस्ताव इस प्रकार था:—

"काग्रेस और राष्ट्रके सामने आज एक महान् राष्ट्रीय उथल-पुथलका अवसर उपस्थित है। आजादीकी आखिरी लडाई जल्द ही लडी जानेवाली है, और यह सब ऐसे समय हो रहा है, जब महान् शक्तिशाली परिवर्तनोके द्वारा सारा ससार जडसे हिलाया जा रहा है। दुनिया भरके विचारक लोग आज इस बातके लिए चिंतित हैं कि इस यूरोपीय युद्धके महानाशमेसे एक ऐसी नयी दुनियाका जन्म हो, जिसकी जड राष्ट्रो-राष्ट्रो और मनुष्यो-मनुष्योके बीचके सद्भावपूर्ण सहयोगपर कायम की गयी हो। ऐसे समय काग्रेस स्वतत्रताके अपने उन आदर्शोंको निश्चित-रूपसे व्यक्त कर देना आवश्यक समझती है, जिनपर कि वह अडी हुई है और जिनके लिए वह जल्दी ही देशकी जनताको अधिक-से-अधिक कष्ट सहनेका न्यौता देनेवाली है।

"स्वतत्र भारतीय राष्ट्रका काम होगा कि वह राष्ट्रोके बीचमे शान्ति-स्थापना करे, सम्पूर्ण नि शस्त्रीकरणके लिए यत्नशील रहे और राष्ट्रीय झगडोको किसी स्वतत्रतापूर्वक स्थापित अन्तर्राष्ट्रीय सत्ता द्वारा शान्तिपूर्वक निबटानेकी कोशिश करे। वह खासतौरपर अपने पडोसी देशोके साथ, फिर वे महान् शक्तिशाली साम्राज्य हो या छोटे-छोटे राष्ट्र, मित्र बनकर रहनेका यत्न करेगा और किसी भी विदेशी राज्य या प्रदेश पर अपना अधिकार जमानेकी इच्छा न करेगा।

"देशके सभी कायदे-कानून सर्वसाधारण जनता द्वारा स्वतत्रतापूर्वक व्यक्त की गयी इच्छाके अनुसार बनाये जायँगे, और देशमें शान्ति और सुव्यवस्था कायम रखनेका अन्तिम आधार जनसाधारणकी स्वीकृति और सम्मति पर ही रहेगा।

"स्वतत्र भारतीय राष्ट्रमे जनताको सम्पूर्ण व्यक्तिगत और नागरिक स्वतत्रता होगी एव सास्कृतिक और धार्मिक मामलोमे पूरी आजादी दी जायगी। पर इसका यह मतलब नही होगा कि हिन्दुस्तानकी जनता अपनी राष्ट्रीय पचायत द्वारा अपने लिए जो शासन-विधान तैयार करेगी उसको हिंसा द्वारा उलट देनेकी आजादी किसीको रहेगी।

भारतीय ग्रामीणोंको व्यावहारिक रूपमें ऐसी कोई सुविधा नहीं मिली है। पश्चिमके जिन देशोंका उद्योगीकरण हुआ है वे अन्य राष्ट्रोका शोषण कर रहे है, जब कि हिन्दुस्तान स्वय ही एक शोषित देश है। इसलिए गाँववालोको अगर आत्मनिर्भर बनना है तो सबसे स्वाभाविक बात यही हो सकती है कि चर्खे और उससे सम्बन्धित सब चीजोका पुनरुद्धार किया जाय।

यह पुनरुद्धार तभी हो सकता है जब कि बुद्धि और देशभक्ति-वाले स्वार्थत्यागी भारतीयोकी सेना दिलोजानसे गाँवोमें चर्खेका सन्देश फैलानेके काममें लग जाये और ग्रामीणोकी निस्तेज आँखोमें आशा और प्रकाशकी ज्योति जगमगा दे। वास्तविक सहयोग और वयस्क-शिक्षाके प्रसारका यह बहुत बड़ा प्रयत्न है। चर्खेके शान्त किन्तु निश्चित और जीवनप्रद 'रिवोल्यूशन' की तरह ही इससे शान्त और निश्चित क्रान्ति होती है।

चर्खेके बीस बरसके अनुभवने मुझे इस बातका विश्वास करा दिया है कि मैने उसके पक्ष में यहाँ जो दलीलें दी है वह बिल्कुल सही हैं। चर्खेने गरीब मुसलमानों और हिन्दुओकी लगभग एक समान ही सेवा की है। इसके द्वारा कोई पाँच करोड रुपया बिना किसी दिखावे और शोरगुलके गाँवोके इन लाखो कारीगरोकी जेबोमें पहुँच चुका है।

इसलिए बिना किसी हिचकिचाहटके मैं कहता हूँ कि सभी धर्म-विश्वासोवाले जनसाधारणकी दृष्टिसे चर्खा हमें जरूर स्वराजतक ले जायगा। क्योकि चर्खा गाँवोको उनके उपयुक्त स्थानपर पहुँचाकर ऊँच-नीचके भेद-भावको नष्ट करता है।

लेकिन चर्खा स्वराज नहीं ला सकता। बल्कि असलियत तो यह है कि जबतक राष्ट्रका अहिंसामें विश्वास न हो तबतक यह आगे नहीं बढेगा। क्योकि यह काफी उत्तेजक नहीं है। आजादीके लिए छटपटानेवाले देशभक्त चर्खेको हल्की नजरसे देखनेके आदी है। स्वातन्त्र्य-प्रेमी तो लडकर विदेशी शासकका अन्त करनेके जोशमें भरे हुए है। वे सारे दोष उसीमें निकालते है और अपनेमें कोई खराबी नहीं समझते। वे ऐसे देशोके उदाहरण देते है जिन्होने खूनकी नदियाँ बहाकर आजादी पायी है। सो अहिंसाके बिना चर्खा बिलकुल बेलुत्फ और बेकार है।

१९१९ ई० में भारतके स्वातन्त्र्य-प्रेमियोके सामने अहिंसा स्वराज-प्राप्तिके एकमात्र और निश्चित साधनके रूपमें रखी गयी थी और चर्खा अहिंसाके प्रतीकके रूपमें। १९२१में इसे राष्ट्रीय झण्डेमें गौरवपूर्ण स्थान मिला। लेकिन अहिंसा हिन्दुस्तानके हृदयकी गहराई तक नहीं गयी, इसलिए चर्खेको उसका उपयुक्त महत्त्व कभी नहीं मिला। उसे वह तबतक मिलेगा भी नहीं, जबतक कि कांग्रेसजनोकी भारी तादाद अहिंसामें जीवित श्रद्धा न रखने लगे जाय। जब वे ऐसा करेंगे तो बिना किसी दलीलके खुद ही यह समझ लेंगे कि अहिंसाका चर्खेके सिवा और कोई प्रतीक नहीं है और इसको सर्वमान्य बनाये बिना अहिंसाका कोई प्रत्यक्ष प्रदर्शन नहीं होगा। और यह तो सभी मानते है कि अहिंसाके बगैर अहिंसात्मक कानून-भग नहीं हो सकता। मेरी दलील गलत हो सकती है, मेरा आधार भी गलत हो सकता है। लेकिन मेरे जो विचार है

उन्हें रखते हुए मुझे यह घोषणा करने दीजिए कि मैंने जो शर्तें रखी हैं उनकी पूर्ति हुए विना मैं सविनय-भंगका एलान नही कर सकता।

हरिजन-सेवक
१३ अप्रैल, १९४०

❀

श्री जयप्रकाशका एक प्रस्ताव

श्री जयप्रकाशनारायणने मेरे पास एक प्रस्तावका नीचे लिखा मसविदा भेजा था, और मुझे लिखा था कि अगर मैं इस प्रस्तावमें दी गयी तस्वीरसे सहमत होऊँ, तो इसे रामगढ़में होनेवाली कांग्रेस-कार्यसमितिके सामने पेश कर दूँ। प्रस्ताव इस प्रकार था:—

"कांग्रेस और राष्ट्रके सामने आज एक महान् राष्ट्रीय उथल-पुथलका अवसर उपस्थित है। आजादीकी आखिरी लडाई जल्द ही लडी जानेवाली है, और यह सब ऐसे समय हो रहा है, जब महान् शक्तिशाली परिवर्तनोके द्वारा सारा ससार जडसे हिलाया जा रहा है। दुनिया भरके विचारक लोग आज इस वातके लिए चिंतित हैं कि इस यूरोपीय युद्धके महानाशमेंसे एक ऐसी नयी दुनियाका जन्म हो, जिसकी जड राष्ट्रो-राष्ट्रो और मनुष्यो-मनुष्योके बीचके सद्भावपूर्ण सहयोगपर कायम की गयी हो। ऐसे समय कांग्रेस स्वतंत्रताके अपने उन आदर्शोको निश्चित-रूपसे व्यक्त कर देना आवश्यक समझती है, जिनपर कि वह अड़ी हुई है और जिनके लिए वह जल्दी ही देशकी जनताको अधिक-से-अधिक कष्ट सहनेका न्यौता देनेवाली है।

"स्वतंत्र भारतीय राष्ट्रका काम होगा कि वह राष्ट्रोके बीचमे शान्ति-स्थापना करे, सम्पूर्ण निःशस्त्रीकरणके लिए यत्नशील रहे और राष्ट्रीय झगडोको किसी स्वतंत्रतापूर्वक स्थापित अन्तर्राष्ट्रीय सत्ता द्वारा शान्तिपूर्वक निबटानेकी कोशिश करे। वह खासतौरपर अपने पडोसी देशोके साथ, फिर वे महान् शक्तिशाली साम्राज्य हो या छोटे-छोटे राष्ट्र, मित्र वनकर रहनेका यत्न करेगा और किसी भी विदेशी राज्य या प्रदेश पर अपना अधिकार जमानेकी इच्छा न करेगा।

"देशके सभी कायदे-कानून सर्वसाधारण जनता द्वारा स्वतंत्रतापूर्वक व्यक्त की गयी इच्छाके अनुसार वनाये जायँगे, और देशमे शान्ति और सुव्यवस्था कायम रखनेका अन्तिम आधार जनसाधारणकी स्वीकृति और सम्मति पर ही रहेगा।

"स्वतंत्र भारतीय राष्ट्रमे जनताको सम्पूर्ण व्यक्तिगत और नागरिक स्वतंत्रता होगी एवं सांस्कृतिक और धार्मिक मामलोमें पूरी आजादी दी जायगी। पर इसका यह मतलब नहीं होगा कि हिन्दुस्तानकी जनता अपनी राष्ट्रीय पंचायत द्वारा अपने लिए जो शासन-विधान तैयार करेगी उसको हिंसा द्वारा उलट देनेकी आजादी किसीको रहेगी।

"देशकी राष्ट्रीय सरकार राष्ट्रके नागरिकोके बीच किसी प्रकारका भेदभाव न रखेगी। प्रत्येक नागरिकको समान अधिकार रहेगे। जन्म और परम्पराके कारण मिलनेवाली सभी सुविधाएँ या भेदभाव मिटा दिये जायँगे। न तो सरकार द्वारा किसीको कोई पद या उपाधि दी जायगी और न परम्परागत सामाजिक दर्जेके कारण ही कोई किसी उपाधिका हकदार माना जायगा।

"राज्यका राजनीतिक और आर्थिक संगठन सामाजिक न्याय और आर्थिक स्वतंत्रताके सिद्धान्तोपर किया जायगा। इस संगठनके फलस्वरूप जहाँ समाजके प्रत्येक व्यक्तिकी राष्ट्रीय आवश्यकताओकी पूर्ति होगी, वहाँ इसका उद्देश्य केवल भौतिक आवश्यकताओकी तृप्ति ही न रहेगा बल्कि अपेक्षा यह रखी जायगी कि इसके कारण राष्ट्रका हर एक व्यक्ति स्वास्थ्यपूर्ण जीवन विता सके और अपना नैतिक और बौद्धिक विकास कर सके। इसके लिए और समाजमें समताकी भावनाको स्थापित करनेके लिए राज्य द्वारा छोटे पैमानेपर चलनेवाले ऐसे उद्योग-धंधोको प्रोत्साहित किया जायगा जो व्यक्तियो द्वारा या सहयोगी संस्थाओ द्वारा सभीके समान हितकी दृष्टिसे चलाये जायेंगे। बडे पैमानेपर सामूहिक रूपसे चलनेवाले सभी उद्योग-धंधोको अन्तमें जाकर इस तरह चलाना होगा कि जिससे उनका अधिकार और आधिपत्य व्यक्तियोके हाथसे निकलकर समष्टिके हाथमें आ जाय। इस लक्ष्यकी सिद्धिके लिए राज्य यातायातके भारी साधनो, व्यापारी जहाजो, खानो और दूसरे बडे-बडे उद्योग-धंधोका राष्ट्रीयकरण शुरू कर देगा। वस्त्र-व्यवसायका प्रबन्ध इस तरह किया जायगा कि जिससे उत्तरोत्तर उसका केन्द्रीकरण रुके और विकेन्द्रीकरण बढे।

"गाँवोंके जीवनका पुनः संगठन किया जायगा, उन्हे स्वतंत्र स्वायत्त इकाई बनाया जायगा और जहाँतक संभव होगा अधिक-से-अधिक स्वावलंबी बनानेका यत्न किया जायगा। देशके जमीन सम्बन्धी कानूनोमें जड-मूलसे सुधार किया जायगा, और यह सुधार इस सिद्धान्तपर होगा कि जमीनका मालिक उसे जोतनेवाला ही हो सकता है। और हर एक काश्तकारके पास उसकी ही जमीन होनी चाहिए, जिससे वह अपने परिवारका उचित रीतिसे भरण-पोषण कर सके। इससे जहाँ एक ओर जमीदारीकी अनेक प्रथाएँ बन्द हो जायेंगी, वहाँ खेतोमें गुलामीकी प्रथा भी नष्ट हो जायगी।

"राज्य वर्गोंके हितो या स्वार्थोंकी रक्षा करेगा, लेकिन जब ये स्वार्थ गरीबो या पददलितोके स्वार्थमें बाधक होगे तो राज्य गरीबो और पददलितोके स्वार्थकी रक्षा करके सामाजिक न्यायकी तुलाको समतौल रखेगा।

"राज्य द्वारा चलाये जानेवाले राज्यके सभी उद्योग-धंधोके प्रबन्धमें मजदूरोको अपने चुने हुए प्रतिनिधि भेजनेका अधिकार रहेगा और इस प्रबन्धमें उनका हिस्सा सरकारी प्रतिनिधियोके बराबर होगा।

"देशी राज्योमें सम्पूर्ण प्रजातंत्रात्मक सरकारें स्थापित होगी और नागरिकोकी समताके तथा सामाजिक भेदभावको मिटानेके सिद्धान्तके अनुसार राजाओ और नवाबोके रूपमें देशी रियासतोमें कोई नामधारी शासक नही रहेगे।"

"कांग्रेसके सामने देशकी शासन-व्यवस्थाका यही चित्र है, और इसीको स्थापित करनेका वह यत्न करेगी। कांग्रेसका यह दृढ विश्वास है कि इस व्यवस्थाके कारण हिन्दुस्तानमे रहनेवाली सभी जातियो और धर्मोके लोग सुखी, सम्पन्न और स्वतंत्र रहेगे और इन तत्वोकी नीवपर सब मिलकर एक महान् और गौरवशाली राष्ट्र निर्माण करेंगे।"

मुझे श्री जयप्रकाशका यह प्रस्ताव पसन्द आया और मैंने कार्य-समितिको उनका पत्र और प्रस्तावका यह मसविदा पढकर सुनाया। लेकिन समितिने यह सोचा कि रामगढ़-कांग्रेसमें एक ही प्रस्ताव पास करनेकी बातपर डटे रहना जरूरी है, और पटनामें जो मूल प्रस्ताव पास हुआ था उसमें किसी प्रकारका परिवर्तन करना इष्ट नहीं है। समितिकी यह दलील निरपवाद थी; इसलिए प्रस्तुत प्रस्तावके गुण-दोषोकी चर्चा किये बिना ही उसे छोड़ दिया गया। मैंने श्री जयप्रकाशको अपने प्रयत्नके परिणामसे सूचित कर दिया। उन्होंने मुझे लिखा कि इसके बाद आपको संतोष देनेवाली सबसे अच्छी बात यह होती कि मैं उनके इस प्रस्तावको अपनी पूरी, या जितनी मैं दे सकूँ उतनी, सहमतिके साथ प्रकाशित कर दूँ।

श्री जयप्रकाशकी इस इच्छाको पूरा करनेमें मुझे कोई कठिनाई नहीं मालूम देती। एक ऐसे आदर्शके नाते, जिसे देशके स्वतंत्र होते ही हमें कार्य रूपमें परिणत करना है, श्री जयप्रकाशकी एक सूचनाको छोडकर शेष सभी सूचनाओका आमतौर पर समर्थन करता हूँ।

मेरा दावा है कि आज हिन्दुस्तानमें जो लोग समाजवादको अपना ध्येय मानते हैं, उनसे मैं बहुत पहले समाजवादको स्वीकार कर चुका था। लेकिन मेरा समाजवाद मेरे लिए सहज था, वह पुस्तकोसे ग्रहण नहीं किया गया था। अहिंसामें मेरे अटल विश्वासका ही वह परिणाम था। कोई भी आदमी, जो सक्रिय अहिंसामें विश्वास करता है, सामाजिक अन्यायको, फिर वह कही भी क्यो न होता हो, बर्दाश्त नहीं कर सकता—वह उसका विरोध किये बिना नहीं रह सकता। जहाँतक मैं जानता हूँ, दुर्भाग्यवश पश्चिमके समाजवादियोने यह मान लिया है कि अपने समाजवादी सिद्धान्तोको ये हिंसा द्वारा ही अमलमें ला सकते है।

मैं सदासे यह मानता आया हूँ कि नीच-से-नीच और कमजोर-से-कमजोरके प्रति भी हम जोर जबर्दस्तीके जरिये सामाजिक न्यायका पालन नहीं कर सकते। मैं यह भी मानता आया हूँ कि पतित-से-पतित लोगोको भी मुनासिब तालीम दी जाय तो अहिंसक साधनो द्वारा सब प्रकारके अत्याचारोका प्रतिकार किया जा सकता है। अहिंसक असहयोग ही उसका मुख्य साधन हैं। कभी-कभी असहयोग भी उतना ही कर्त्तव्य रूप हो जाता है, जितना कि सहयोग। अपनी विफलता या गुलामीमें खुद सहायक होनेके लिए कोई बँधा हुआ नहीं है। जो स्वतत्रता दूसरोके प्रयत्नो द्वारा-फिर वे कितने ही उदार क्यो न हो——मिलती है, वह उन प्रयत्नोके न रहनेपर कायम नहीं रक्खी जा सकती। दूसरे शब्दोमें, ऐसी स्वतत्रता सच्ची स्वतंत्रता नहीं है। लेकिन जब पतित-से-पतित भी अहिंसक असहयोग द्वारा अपनी स्वतंत्रता प्राप्त करनेकी कला सीख लेते है, तो वे उसके प्रकाशका अनुभव किये विना नहीं रह सकते।

इसलिए जब मैंने श्री जयप्रकाशके इस प्रस्तावको पढा और देखा कि वे देशमें जिस किस्मकी

शासन-व्यवस्था कायम करना चाहते हैं, उसका आधार उन्होंने अहिंसाको ही माना है, तो मुझे खुशी हुई। मेरा यह पक्का विश्वास है कि जिस चीजको हिंसा कभी नहीं कर सकती, अहिंसात्मक असहयोग द्वारा सिद्ध की जा सकती है और उससे अंतमें जाकर अत्याचारियोंका हृदय-परिवर्तन भी हो सकता है। हमने हिन्दुस्तानमें अहिंसाको उसके अनुरूप मौका अभीतक दिया ही नहीं, फिर भी आश्चर्य है कि अपनी इस मिलावटी अहिंसा द्वारा भी हम इतनी शक्ति प्राप्त कर सके हैं।

जमीनके बारेमें श्री जयप्रकाशकी सूचनाएँ भड़कानेवाली हो सकती हैं; लेकिन वे दरअसल वैसी हैं नहीं। प्रतिष्ठित जीवनके लिए जितनी जमीनकी आवश्यकता है, उससे अधिक किसी आदमीके पास नहीं होनी चहिए। ऐसा कौन है, जो आज इस हकीकतसे इन्कार कर सके कि आम जनताकी घोर गरीबीका मुख्य कारण आज यही है कि उसके पास उसकी अपनी कही जानेवाली कोई जमीन नहीं है?

लेकिन यह याद रखना चाहिए कि इस तरह के सुधार ताबड़तोड़ नहीं किये जा सकते। अगर ये सुधार अहिंसात्मक तरीकोंसे करने हैं, तो जमींदारों और गैरजमींदारों दोनोंको सुशिक्षित बनाना लाजिमी हो जाता है। जमींदारोंको यह विश्वास दिलाना होगा कि उनके साथ कभी जोर जबर्दस्ती नहीं की जायगी, और गैरजमींदारोंको यह सिखाना और समझाना होगा कि उनसे उनकी मर्जीके खिलाफ जबरन कोई काम नहीं ले सकता, और कष्ट-सहन या अहिंसाकी कलाको सीखकर वे अपनी स्वतंत्रता प्राप्त कर सकते हैं। अगर इस लक्ष्यको हमें प्राप्त करना है, तो ऊपर मैंने जिस शिक्षाका जिक्र किया है उसका आरम्भ अभीसे हो जाना चाहिए। इसके लिए पहली जरूरत ऐसे वातावरणको तैयार करने की है, जिसमें पारस्परिक आदर और सद्भावका सुमेल हो। उस अवस्थामें वर्गों और आम जनताके बीच किसी प्रकारका कोई हिंसात्मक संघर्ष हो नहीं सकता।

इसलिए यद्यपि अहिंसाकी दृष्टिसे श्री जयप्रकाशकी सूचनाओंका सामान्य समर्थन करनेमें मुझे कोई कठिनाई नहीं मालूम होती, तो भी मैं राजाओं सम्बन्धी उनकी सूचनाका समर्थन नहीं कर सकता। कानूनकी दृष्टिसे वे स्वतंत्र हैं। यह सच है कि उनकी स्वतंत्रताका कोई विशेष मूल्य नहीं है, क्योंकि एक प्रबल शक्ति उनका संरक्षण करती है। लेकिन हमारे मुकाबिलेमें वे अपनी स्वतंत्रताका दावा कर सकते हैं। श्री जयप्रकाशकी प्रस्तावित सूचनाओंमें जो बातें कहीं गयी हैं, उनके अनुसार अगर अहिंसात्मक साधनों द्वारा हम स्वतंत्र हो जायँ, तो उस हालतमें मैं ऐसे किसी समझौतेकी कल्पना नहीं करता, जिसमें राजा लोग अपनेको खुद ही मिटाने को तैयार होंगे। समझौता किसी भी तरहका क्यों न हो, राष्ट्रको उसका पूरा-पूरा पालन करना ही होगा। इसलिए मैं तो सिर्फ ऐसे समझौतेकी ही कल्पना कर सकता हूँ जिसमें बड़ी-बड़ी रियासतें अपने दर्जेको कायम रखेंगी। एक तरहसे यह चीज आजकी स्थितिसे कहीं बढ़कर होगी, लेकिन दूसरी दृष्टिसे राजाओंकी सत्ता इतनी सीमित रह जायगी कि जिससे देशी रियासतों की प्रजाको अपनी रियासतोंमें स्वायत्त-शासनके वे ही अधिकार प्राप्त होंगे, जो हिन्दुस्तानके दूसरे हिस्सोंकी जनताको प्राप्त रहेंगे। उनको भाषण और लेखन व मुद्रणकी

स्वतंत्रता और शुद्ध न्याय निरपेक्ष रूपसे प्राप्त रहेगा। शायद श्री जयप्रकाशको यह विश्वास नहीं है कि राजा लोग स्वेच्छासे अपनी निरंकुशताका त्याग कर देंगे। मुझे यह विश्वास है। एक तो इसलिए कि वे भी हमारी ही तरह भले आदमी हैं, और दूसरे इसलिए कि शुद्ध अहिंसा की अमोघ शक्तिमें मेरा सम्पूर्ण विश्वास है। अतः अंतमें यह कहना चाहता हूँ कि क्या राजा-महाराजा और क्या दूसरे-सभी सच्चे और अनुकूल बन जायेंगे, जब हम खुद अपने प्रति अपनी श्रद्धाके प्रति-यदि हममें श्रद्धा है-और राष्ट्रके प्रति सच्चे बनेंगे। इस समय तो हम अधकचरी हालतमें हैं। ऐसी अधकचरी श्रद्धासे स्वतंत्रताका मार्ग कभी नहीं मिल सकता। अहिंसाका आरम्भ और अंत आत्म-निरीक्षणमें होता है—"जिन खोजा तिन पाइयां गहरे पानी पैठ।'

हरिजन सेवक
२० अप्रैल, १९४०

स्वतंत्र भारत और सत्याग्रह

अमेरिकासे लिखते हुए एक मित्र यह दो प्रश्न उपस्थित करते हैं:—

१-"यदि यह मान लिया जाय कि सत्याग्रहमे भारतकी स्वतंत्रता प्राप्त कर लेनेका सामर्थ्य है तब स्वतन्त्र भारतमें उसके राज्यकी नीतिके रूपमें स्वीकार कर लिये जानेकी क्या संभावनाएं हैं? दूसरे शब्दोमें, क्या एक बलिष्ठ और स्वतंत्र भारत आत्मरक्षाके असली रूपमें सत्याग्रह पर निर्भर रहेगा, अथवा युगोसे चली आनेवाली उसी यौद्धिक प्रथाका आश्रय लेगा, चाहे उसका रूप कितना ही आत्म-रक्षात्मक क्यो न हो? इसीको विशुद्ध सैद्धान्तिक समस्याके रूपमें रखा जाय, तो क्या सत्याग्रह केवल ऐसे प्रबल युद्धके समय ही स्वीकार किया जायगा जब कि बलिदानकी भावना पूरे जोरपर काम कर रही हो, या वह ऐसी सर्वोपरि सत्ताके हथियारके रूपमें भी स्वीकार किया जा सकेगा, जिसको न तो बलिदानके सिद्धान्तपर काम करनेकी आवश्यकता है, और न जिसके पास इसकी गुजाइश ही है?"

२-"फर्ज कीजिए कि स्वतंत्र भारत सत्याग्रहको राज्यकी नीतिके रूपमें स्वीकार करता है, तब वह किसी बलिष्ठ राज्यके संभावित आक्रमणसे अपनी रक्षा किस प्रकार करेगा, इसीको सैद्धान्तिक समस्याके रूपमें रखा जाय तो सीमाप्रदेश पर हमला होनेकी दशामें आक्रमणकारी सेनाके मुकाबले सत्याग्रहके रूपमें क्या कार्र-वाईकी जायगी? और एक ऐसे सम्मिलित कार्यक्षेत्रके स्थापित होनसे पहले, जैसा आज राष्ट्रवादी हिन्दुस्तानियो और अंग्रेजी सरकारके बीचमें है, आक्रमणकारीका मुकाबला करनेका भी क्या तरीका हो सकेगा? अथवा, सत्याग्रहियोको अपनी कार्रवाई तबतक बंद कर देनी होगी, जबतक कि विरोधी मुल्क पर कब्जा न जमाले।"

निश्चय ही प्रश्न सैद्धान्तिक है। साथ ही, मैंने सत्याग्रहके सम्पूर्ण शास्त्रपर अधिकार प्राप्त

नहीं किया है। इसलिए वे असामयिक अर्थात् समयसे पहले भी है। परीक्षण अभी शुरू ही है। वह अभी आगे बढ़ी हुई अवस्थामें नहीं है। जिस तरहका यह परीक्षण है उसमें परीक्षणकर्त्ताका एक बारगी एक कदमके संबधमें निश्चय हो जाना जरूरी है। सुदूरवर्त्ती दृश्य देखना उसका काम नहीं है। इसलिए मेरे उत्तर सर्वथा काल्पनिक ही हो सकते है।

जैसा कि मैं पहिले कह चुका हूँ, सच तो यह है कि स्वतंत्रता-प्राप्तिके अपने इस संग्राममें भी हम विशुद्ध अहिंसासे काम ले रहे है।

पहिले प्रश्नके उत्तरमें, अभी जहाँतक मै देख पाता हूँ, मुझे भय है कि सत्याग्रहको सिद्धान्तके रूपमें राज्यकी नीति मान लिये जानेकी संभावना बहुत कम है। और भारत जब स्वतंत्रता प्राप्त करनेके बाद अहिंसाको अपनी नीति नहीं मानता है, तब दूसरा प्रश्न निरर्थक हो जाता है।

लेकिन अहिंसाकी क्षमताके सम्बन्धमें मै अपना व्यक्तिगत विचार प्रगट कर दूं। मेरा विश्वास है कि अगर जनताका बहुसंख्यक भाग अहिंसात्मक हो, तो राज्यका शासन-कार्य अहिंसाके आधारपर चलाया जा सकता है। जहाँतक मै जानता हूं, भारत ही एक ऐसा देश है, जिसके ऐसा राज्य हो सकनेकी संभावना है। इसी विश्वासके आधारपर मै अपना प्रयोग चला रहा हूँ। इसलिए अगर यह मान लिया जाय कि भारत विशुद्ध अहिंसाके जरिये स्वतंत्रता प्राप्त कर लेता है, तो उन्हीं साधनोसे वह उसकी रक्षा भी कर सकता है। एक अहिंसात्मक व्यक्ति या समुदाय बाहरके आक्रमणोकी कल्पना या तैयारी नहीं करता। इसके विपरीत ऐसा व्यक्ति या समुदाय यह दृढ़ विश्वास रखता है कि कोई भी उसकी शांतिमें विघ्न नहीं डालेगा। अगर कोई अकल्पित बात हुई तो अहिंसाके लिए दो मार्ग खुले है। एक, आक्रमणकारीका अधिकार हो जाने देना, किन्तु उसके साथ सहयोग न करना। इस प्रकार फर्ज कीजिए कि नीरोका आधुनिक प्रतिरूप भारतपर आक्रमण करे, तो राज्यके प्रतिनिधि उसे अन्दर आ जाने देंगे, लेकिन उससे कह देंगे कि जनतासे उसे किसी प्रकारकी सहायता नहीं मिलेगी। वह आत्मसमर्पण के बजाय मर जाना पसंद करेगी। दूसरा तरीका यह है कि जिन लोगोंने अहिंसाकी पद्धतिसे शिक्षा पायी है, उनके द्वारा अहिसात्मक मुकाबला किया जाता है। वे निहत्थे ही आगे आकर आक्रमणकारीकी तोपोकी खाद्य-सामग्री बनेंगे। दोनो ही बातोकी तहमें यह विश्वास निहित है कि नीरोतकमें भी एक हृदय होता है। स्त्री-पुरुषोके निरंतर झुण्ड के-झुण्डमें आक्रमणकारीकी इच्छापर आत्मसमर्पण करनेके बजाय बिना किसी मुकाबलेके केवल मरते जानेका अकल्पित दृश्य अन्तमें आक्रमणकारी और उसकी सेनाके हृदयको पिघलाये बिना न रहेगा। व्यावहारिक दृष्टिसे बलपूर्वक मुकाबला करनेकी अपेक्षा संभवत इसमें जनहानि अधिक नही होगी। और शस्त्रालयो तथा किलेबंदीपर किसी प्रकारका खर्च न होगा। लोगोको मिली हुई अहिंसाकी शिक्षा उनकी नैतिक उच्चताको इतना बढा देगी, जिसकी कल्पना भी नहीं की जा सकती। इस तरहके स्त्री-पुरुष व्यक्तिगतरूपसे सशस्त्र युद्धमें दिखायी जानेवाली वीरताकी अपेक्षा कहीं अधिक ऊंचे दर्जेकी वीरता दिखा सकते है। हर हालतमें बहादुरी मरनेमें है, मारनेमें नहीं। अंतमें अहिंसात्मक प्रतिरोधमें पराजय जैसी कोई वस्तु है ही नहीं। मेरी कल्पनाका यह कोई जवाबमें जवाब नहीं है कि पहले कभी

ऐसा नही हुआ। मैंने कोई असंभव चित्र नही खींचा है। मेरे बताये हुए व्यक्तिगत अहिंसाके उदाहरणोसे इतिहासके पन्ने-के-पन्ने भरे पड़े हैं। यह कहने या माननेके लिए कोई आधार नही है कि स्त्री-पुरुषोके समूह पर्याप्त शिक्षाके बाद समष्टि या राष्ट्रके रूपमें अहिंसात्मक आचरण नहीं कर सकते। निश्चय ही मानव-समुदायके अबतक के अनुभवका सार यह है कि मनुष्य किसी न किसी तरह जीवित रहना चाहता है। इस तथ्यसे मैं यह नतीजा निकालता हूँ कि प्रेम ही वह कानून है जिससे कि मानव-समुदाय शासित होता है। हिंसा अर्थात् घृणाका साम्राज्य हुआ होता तो हम कभीके लोप हो गये होते। और फिर भी दुख की बात है कि सभ्य कहे जानेवाले पुरुष और राष्ट्र अपने आचरण इस प्रकारके रखते हैं मानो समाजका आधार हिंसा हो। प्रेम ही जीवनका श्रेष्ठ और एकमात्र कानून है, यह सिद्ध करनेके लिये प्रयोग करनेमें मुझे अकथनीय आनद आता है। इसके विपरीत दिये जानेवाले अगणित उदाहरण मेरे इस विश्वासको नहीं हिला सकते। भारतकी मिश्रित अहिंसातकसे इसको समर्थन मिला है। लेकिन अगर किसी अविश्वासीको विश्वास करानेके लिए इतना काफी नहीं है, तो एक सुहृद समालोचकको इसपर सहानुभूतिपूर्वक विचार करनेके अर्थ प्रेरित करनेके लिए काफी है।

हरिजन सेवक
२० अप्रैल, १९४०

❀

अहिंसा फिर किस कामकी ?

एक हिन्दुस्तानी मित्रके पत्रका सार नीचे दे रहा हूँ:—

"दिल दुखता है नार्वेकी दर्दभरी कहानी सुनकर। वे लोग हिम्मतसे लडे तो सही, लेकिन अधिक बलवान दुश्मनके मुकाबलेमें हार बैठे। इससे हिंसाकी निरर्थकता साबित होती है। लेकिन क्या हम दुनियाकी समस्याको हल करनेके लिए कुछ अहिंसा सिखा रहे हैं? ब्रिटेनको परेशान करके क्या हम जर्मनीको उत्साहित नही कर रहे हैं? नार्वे और डेनमार्क हमारे रुखको कैसे ठीक समझ सकते हैं? उनके लिए हमारी अहिंसा किस कामकी। चीन और स्पेनको हमनें जो इमदाद दी, उसके बारेमें भी वह गलतफहमी कर सकते हैं। आपने जो फर्क किया है वह केवल इसलिए कि एक साम्राज्यवादी ताकतको आप मदद नही देना चाहते, हालाँकि वह एक अच्छे कामके लिए लड रही है। पिछली लडाईमें आपने भर्ती करवायी, लेकिन आज आपका ख्याल बिलकुल दूसरा है। फिर भी आप कहेगे कि यह सब ठीक है। यह कैसे? मैं तो नही समझता हूँ।"

डेनमार्क और नार्वेके अत्यंत सुसंस्कृत और निर्दोष लोगोकी किस्मतपर अफसोस करनेवालोमें लेखक अकेले ही नहीं है। यह लडाई हिंसाकी निरर्थकता दिखला रही है। फर्ज किया

जाय कि हिटलर मित्र-राज्योंपर विजय हासिल कर ले, तो भी वह ब्रिटेन और फ्रांसको हर्गिज गुलाम नहीं बना सकेगा। उसका अर्थ है दूसरी लड़ाई। और अगर मित्र-राज्य जीत जांय, तो भी दुनियाकी बेहतरी नहीं होगी। लड़ाईमें अहिंसाका सबक सीखे बिना और अहिंसाके जरिये जो फायदा उठाया है, उसे छोड़े बगैर वह अधिक शिष्ट भले ही हो, पर कुछ कम बेरहम नहीं होंगे। चारों ओर, जिन्दगीके हर पहलू में न्याय हो, यह अहिंसाकी पहली शर्त है। मनुष्यसे इतनी अपेक्षा करना शायद अधिक समझा जाय, लेकिन मैं ऐसा नहीं समझता। मनुष्य कहांतक ऊँचा जा सकता है और कहांतक गिर सकता है, इसका निर्णय हम नहीं कर सकते, पश्चिमके इन मुल्कोंको हिन्दुस्तानकी अहिंसाने कोई सहायता नहीं पहुचायी है। इसका कारण यह है कि यह अहिंसा अभी खुद बहुत कमजोर है। उसकी अपूर्णता देखनेके लिए हम उतने दूर क्यों जायं? कांग्रेसकी अहिंसाकी नीतिके बावजूद हम अपने देशमें एक दूसरेके साथ लड़ रहे हैं। खुद कांग्रेस पर भी अविश्वास किया जा रहा है। जबतक कांग्रेस या उसके जैसा कोई और गिरोह सब लोगोंकी अहिंसा पेश न करे, दुनियामें इसका सचार हो नहीं सकता। स्पेन और चीनको जो मदद हिन्दुस्तानने दी, वह केवल नैतिक थी। माली सहायता तो उसका एक छोटा-सा रूप था। इन दोनों मुल्कोंके लिए जो अपनी आजादी रातों-रात खो बैठे, शायद ही कोई हिन्दुस्तानी हो जिसे उतनी ही हमदर्दी न हो। यद्यपि स्पेन और चीनसे उनका मामला जुदा है, उनका नाश चीन और स्पेनके मुकाबलेमें शायद ज्यादा मुकम्मिल है। दरअसल तो चीन और स्पेनके मामलेमें भी खास फर्क है। लेकिन जहांतक हमदर्दीका सवाल है। उसमें कोई अन्तर नहीं आता है। बेचारे हिन्दुस्तानके पास इन मुल्कोंको भेजनेके लिए सिवाय अहिंसाके और कुछ नहीं है। लेकिन जैसा कि मैं कह चुका हूं, यह अभी तक भेजनेके लायक चीज नहीं हुई है; वह ऐसी तब होगी, जब हिन्दुस्तान अहिंसाके जरिये आजादी हासिल कर लेगा।

अब रहा ब्रिटेन का मसला। कांग्रेसने उसे कोई परेशानीमें नहीं डाला है। मैं यह घोषित कर चुका हूं कि मैं कोई ऐसा काम नहीं करूंगा जिससे उसे कोई परेशानी हो। अंग्रेज परेशान होंगे, अगर हिन्दुस्तानमें अराजकता होगी। कांग्रेस, जबतक मेरी बात मानेगी तबतक इसका समर्थन नहीं करेगी।

कांग्रेस जो नहीं कर सकती वह यह है; वह अपना नैतिक प्रभाव ब्रिटेनके पक्षमें नहीं डाल सकती। नैतिक प्रभाव मशीनकी तरह कभी नहीं दिया जा सकता। उसे लेना न लेना ब्रिटेनके ऊपर निर्भर करता है। शायद ब्रिटेनके राजनेता सोचते हैं कि ऐसा कौन नैतिक बल है जो कांग्रेस दे सकती है।

उनको नैतिक बलकी दरकार ही नहीं। शायद वह यह भी सोचते हैं कि इस लड़ाईमें फंसी हुई इस दुनियामें उन्हें किसी चीजकी जरूरत है तो वह माली सहायता है। अगर ऐसा वे सोचते हैं, तो ज्यादा गलती भी नहीं करते हैं। यह ठीक ही है, क्योंकि लड़ाईमें नीति नाजायज होती है। यह कहकर कि ब्रिटेनका हृदय-परिवर्तन करनेमें सफलताकी संभावना नहीं है, लेखकने ब्रिटेनके पक्षमें सारा मामला हार दिया। मैं ब्रिटेनकी बुराई नहीं चाहता। मुझे

दुख होगा, अगर उसकी हार हो। लेकिन जबतक वह हिन्दुस्तानका कब्जा न छोड़े, कांग्रेसका नैतिक बल ब्रिटेनके काम नही आ सकता। नैतिक प्रभाव तो अपनी अपरिवर्तित शर्त पर ही काम करता है।

जब मैंने खेड़ामें भर्ती की थी, तबकी और आजकी मेरी वृत्तिमें मेरे मित्रको कोई फर्क नजर नहीं आता। पिछली लड़ाईमें नैतिक प्रश्न नहीं उठाया गया था। कांग्रेसने अहिंसाकी प्रतिज्ञा उस वक्त नहीं ली थी। जो नैतिक प्रभाव उसका आम जनतापर आज है वह तब नहीं था। मैं जो करता था, निजी तौरसे करता था। मैं लड़ाईकी कान्फ्रेंसमें भी शरीक हुआ था, और वादा पूरा करनेके लिए, अपनी सेहतको भी खतरेमें डालकर मैं भर्ती करता रहा। मैंने लोगोसे कहा कि अगर उन्हे हथियारोकी जरूरत हो, तो फौजी नौकरीके जरिये उन्हे जरूर प्राप्त कर सकते हैं। लेकिन अगर वह मेरी भाँति अहिंसक हो तो मेरी भर्तीकी अपील उनके लिए नहीं थी। जहातक मैं जानता था, मेरे दर्शकोमें एक भी आदमी अहिंसाको माननेवाला नहीं था। उनकी भर्ती होनेकी अनिच्छाका कारण यह था कि उनके दिलोमें ब्रिटेनके लिए वैर-भाव था। लेकिन ब्रिटेन की हुकूमतको खत्म करनेका एक जाग्रत निश्चय धीरे-धीरे इस वैर-भावका स्थान ले रहा था।

तबसे हालात बदल चुके हैं। पिछली लडाईमें हिन्दुस्तानकी ओरसे सार्वजनिक सहायता मिलनेके बावजूद ब्रिटेनकी वृत्ति रौलट ऐक्ट और ऐसे ही रूपोमें प्रकट हुई। अंग्रेजरूपी खतरेका मुकाबला करनेके लिए कांग्रेसने असहयोगको स्वीकार किया। जलियानवाला बाग, साइमन कमीशन, गोलमेज कांफ्रेंस और थोड़े-से लोगोकी शरारतके लिए सारे बंगालको कुचलना, यह सब बातें उसकी यादगार हैं।

जब कि कांग्रेसने अहिंसाकी नीतिको स्वीकार कर लिया है, मेरे लिए आवश्यक नहीं कि मैं भर्तीके लिए लोगोके पास जाऊं। कांग्रेसके जरिये मैं थोड़े-से रंगरूटोकी अपेक्षा बहुत ही बेहतर सहायता दे सकता हूँ, लेकिन यह जाहिर है कि ब्रिटेनको उसकी जरूरत नहीं। मैं तो चाहता हूँ, पर लाचार हूँ।

हरिजन-सेवक
४ मई, १९४०

❀

निर्णय कौन करे ?

(नीचे लिखी मुलाकात अमेरिकाके 'न्यूयार्क-टाइम्स' पत्रके प्रतिनिधिसे गांधीजीकी हुई थी---अमृतकौर)

प्रश्न---ब्रिटेनकी तरफसे, मैंने सुना है, यह कहा गया है कि, "इस युद्धके अन्तमे दुनियाकी पुनः रचना किस प्रकार की होगी, यह हम कह नही सकते। भारतके प्रश्नको दुनियाके प्रश्नोसे अलग नही किया जा सकता। यदि जर्मनीकी जीत होती है तो औपनिवेशिक दर्जा, पूर्ण स्वतन्त्रता आदि शब्दोके अर्थ तब शायद बहुत भिन्न हो, अथवा कुछ भी न रहें। तो फिर भारत वेस्ट-मिनिस्टर-स्टेच्यूटके औपनिवेशिक दर्जेको आज स्वीकार कर ले और शान्ति-परिषदके समय अवसरसे लाभ उठाये, तो इसमें क्या बुराई है ? वर्तमान परिस्थितियोमें औपनिवेशिक दर्जा ही ज्यादा-से-ज्यादा भारतको हम दे सकते हैं।" आपने खुद यह कहा है कि, "ब्रिटेन और फ्रास अगर हार जाते है, तो उस स्थितिमें भारतकी आजादीका क्या मूल्य ?" क्या इन मुद्दोपर आप अधिक प्रकाश डालेंगे ?

उत्तर---भारतका कानूनी दर्जा--फिर वह औपनिवेशिक दर्जा हो या जो भी हो---लड़ाईकी समाप्तिके बाद ही आ सकता है। हालमें निर्णय करनेका प्रश्न यह नहीं है कि फिल-हाल भारत औपनिवेशिक दर्जेसे संतोष मान ले। इस वक्त तो इतना ही प्रश्न है कि ब्रिटिश नीति आखिर क्या है ? क्या ग्रेट ब्रिटेन अब भी यह मानता है कि भारतका दर्जा निश्चित करनेका केवल उसका ही एक मात्र अधिकार है, या यह निर्णय करनेका एकमात्र अधिकार भारतका है ? यह प्रश्न अगर न उठाया गया होता, तो आज जो चर्चा उठी है वह न उठती। यदि वह उठी है---और उसे उठानेका भारतको हक था---तो इस स्थितिमें मेरा जो कुछ वजन है उसे कांग्रेसकी तरफ डालना मेरा फर्ज था। यह होते हुए, वायसरायसे अपनी पहली मुलाकातके बाद मैंने खुद अपनेसे जो प्रश्न पूछा था उसे आज भी मै पूछ सकता हूं कि "ब्रिटेन और फ्रांस अगर हार जाते है, तो भारतकी आजादीका क्या मूल्य ?" ये महान् राष्ट्र हार जायँ तो यूरोप और दुनियाका इतिहास कैसा लिखा जायगा, यह कोई पहलेसे नहीं बता सकता। अतः मेरा प्रश्न स्वतत्र दृष्टिसे भी महत्त्वका है। इस चर्चाका प्रस्तुत मुद्दा तो यह है कि भारतके सबन्धमें न्यायका आचरण करके ब्रिटेन मित्रराष्ट्रोकी जीतका यकीन करा सकता है, क्योकि फिर सारे संसारका सुशिक्षित लोकमत इस बातका साक्ष्य देगा कि उनका पक्ष न्यायसंगत है।

प्रश्न--फिलहाल भारतको अलग रखकर १५ गोरी प्रजासत्ताओका एक सघ-तंत्र बनाने-सबन्धी मि० स्ट्रेटकी योजनाके बारेमें, अथवा यूरोपके राष्ट्रो तथा ब्रिटिश प्रजासमूह (इनमें भी भारतको तो बाहर ही रखा गया है) का एक संघतत्र बनानेकी दरख्वास्तके बारेमे आपने कुछ राय

स्थिर की है ? रंगीन जातियोका गोरो द्वारा जो शोषण हो रहा है उसे रोकनेके लिए इतने विशाल सघ-तत्र मे दाखिल होनेकी क्या आप भारतको सलाह देंगे ?"

उत्तर—दुनियाके तमाम राष्ट्रोका एक विश्वव्यापी सघ-तन्त्र बनता हो तो मै उसका अवश्य स्वागत करूँगा। सिर्फ पश्चिमके राष्ट्रोका संघ-तत्र तो एक अपवित्र संगठन होगा और मानव-जातिके लिए वह भय सिद्ध होगा । मेरी रायके अनुसार तो भारतको अलग रखकर किसी भी संघ-तत्रकी कल्पना करना अब असंभव है। भारत इस स्थितिसे गुजर चुका है कि उसकी उपेक्षा करके दुनियाकी किसी भी व्यवस्थाका विचार किया जा सके।

प्रश्न—आपने अपने जीवनकालमे युद्ध द्वारा इतना बडा संहार और सर्वनाश देखा है जितना बडा दुनियाके इतिहासमे पहले कभी देखनेमें नही आया । और इतने पर भी आप अब भी अहिंसाको ही नयी सस्कृतिका आधार रूप मानते है ? क्या आपको यह विश्वास है कि आपके देशवासी इसे बिना किसी पर्दगीके स्वीकार करते है ? आप बारबार इस बातपर जोर देते हैं कि सविनय-भग शुरू करनेसे पहले आपकी शर्तोंका पूरा-पूरा पालन होना चाहिए। क्या अब भी आप अपनी उन शर्तोंसे चिपटे हुए है ?

उत्तर—आपकी यह बात सही है कि दुनियामें आज ऐसा भीषण संहार जारी है जैसा कभी सुननेमें नहीं आया। मगर अहिंसा विषयक मेरी श्रद्धाकी परीक्षाकी भी यही सच्ची घड़ी हैं। मेरे आलोचकोको भले ही विचित्र मालूम दे, फिर भी मै यह कहूंगा कि अहिंसा विषयक मेरी श्रद्धा-ज्योति अखंड रीतिसे आज भी वैसी ही प्रज्वलित है। अपने जीवन-कालमें अहिंसाको जितने अंशोमें मै देखना चाहता हूं उतने अंशोमें उसका दर्शन कदाचित् न हो। पर यह जुदा प्रश्न है। इससे मेरी श्रद्धा विचलित नहीं हो सकती। और इसीलिए सविनय-भंग शुरू करनेसे पहिले अपनी शर्तोंका पूरा पूरा पालन करानेके विषयमें मै जरा भी झुकनेको तैयार नहीं। क्योकि सारे संसारका उपहास-पात्र बननेका जोखिम उठाकर भी मै अपनी इस मान्यताको छोड़ने वाला नहीं कि भारतके बारेमें तो अहिंसा और चर्खेके बीच निश्चय ही अटूट संबन्ध है। जिस तरह ऐसे चिन्ह या लक्षण है कि जिनके द्वारा आप नग्न आंखोसे हिंसाको पहचान सकते है, उसी तरह चर्खा मेरे लिए अहिसाका एक अचूक प्रतीक हैं। चाहे जो हो, अपनी श्रद्धापर अटल रहकर उसकी सिद्धिके लिए खप जानेमें मुझे कोई भी चीज नहीं रोक सकती। भारतके सामने आज जो अनेक पेचीदी समस्याएं उपस्थित हैं, उन्हे हल करनेके लिए दूसरा कोई तरीका मेरे पास नहीं है ।

प्रश्न—भारत अपनी इच्छानुसार अपना राज्य-तंत्र चलाये, आप यह घोषणा करना चाहते हैं। आप यह भी कहते है कि "यह हो सकता है कि श्रेष्ठ पक्तिके अंग्रेज और भारतवासी इकट्ठे होकर बैठ जायँ और तबतक उठनेका नाम न लें जबतक कि ऐसा फार्मूला न बनालें जो कि दोनोको स्वीकार हो। अंग्रेज कहते है कि "रक्षाके कार्यमे, व्यापारिक स्वार्थोंमे और देशी राज्योमें हमारे पक्के हित सबन्ध रहे हैं।" जैसा कि आप कहते हैं, श्रेष्ठ पक्तिके अंग्रेजो और श्रेष्ठ पक्तिके भारतीयोको इस संबन्धमें मैत्रीपूर्ण देन-लेनकी भावनासे (१९२२के एंग्लो-ईजिप्ट सधिमे इस भाषाका प्रयोग किया गया था) काम करने देनेके लिए क्या आप राजी है ?

उत्तर—अगर श्रेष्ठ पक्तिके अंग्रेज और श्रेष्ठपक्तिके भारतवासी जबतक किसी समझौतेपर न पहुंचे, तबतकके लिए अलहदा न होनेके पक्के इरादेसे मिलकर बैठ जांय, तो मेरी कल्पनाके अनुसार लोकप्रतिनिधि-सभा बुलानेका कोई रास्ता जरूर निकल आयगा। अलबत्ता, ध्येयके सम्बन्धमें तो इस मिश्र जमातको एक रायका होना ही चाहिए। अगर इसी बातपर अनिश्चय हो तब तो उससे सिवा वितंडावादके और कुछ हासिल होनेका नहीं। इसलिए ऐसा मंडल यदि विचार करनेके लिए बैठे, तो आत्म-निर्णयका सिद्धान्त उसमें आरंभसे ही सबको मान्य होना चाहिए।

प्रश्न—मान लीजिये कि भारत आपके जीवनकालमें स्वतंत्र हो जाय फिर अपना शेष जीवन आप किस काममे बितायेंगे ?

उत्तर—यदि भारत मेरे जीवन-कालमें स्वतंत्र हो जाय और मुझमें शक्ति शेष रहे तो मैं तो शासन-जगतसे बाहर रहकर चुस्त अहिंसाके आधारपर राष्ट्र-निर्माणके काममें अपना उचित हिस्सा लूं।

हरिजन सेवक
४ मई, १९४०

❀

प्रजातंत्र और अहिंसा

प्रश्न—एक अमेरिकन मित्रने पूछा है, 'आप ऐसा क्यो कहते है कि प्रजातन्त्रको यदि कोई चीज बचा सकती है, तो केवल अहिंसा ही बचा सकती है ?'

उत्तर—क्योंकि जबतक प्रजातंत्रका आधार हिंसापर है, वह दीन-दुर्बलोकी रक्षा नहीं कर सकता। दुर्बलोके लिए ऐसे राजतंत्रमें कोई स्थान नहीं है। प्रजातन्त्रका अर्थ मैं भी समझा हूँ कि इस तंत्रमें नीचे-से-नीचे और ऊँचे-से-ऊँचे आदमीको आगे बढ़नेका समान अवसर मिलना चाहिए, लेकिन सिवा अहिंसाके ऐसा कभी हो ही नहीं सकता। ससारमें कोई देश ऐसा नहीं, जहाँ कमजोरोके हककी रक्षा बतौर फर्जके होती हो। अगर गरीबोके लिए कुछ किया भी जाता है तो वह मेहारबानीके तौरपर किया जाता है। आपलोगोमें तो कहावत ही है कि 'कमजोरको तो मरना ही है'। अमेरिकाको ही देखो। आपकी सारी जमीन चंद जमींदारोके कब्जेमें है। इन बड़ी बड़ी जायदादो की रक्षा गुप्त या प्रकट हिंसाके बिना हो नहीं सकती। पश्चिमका आजका प्रजातंत्र जरा हलके रंगका नाजी और फासिज्म-तंत्र ही है। ज्यादा-से-ज्यादा प्रजातंत्र, साम्राज्यवादकी नाजी और फैसिस्ट चालको ढंकनेके लिए

एक आडम्बर है। आज युद्ध क्यों हो रहा है? क्योंकि जर्मनी भी लूटमें हिस्सा लेना चाहता है? जिस तरहसे ब्रिटेन हिन्दुस्तानको हड़पकर गया, वह क्या प्रजातंत्रका ढंग था? दक्षिण अफ्रीकामें प्रजातंत्र क्या अर्थ रखता है? वहांका तत्र गढ़ही गया है देशके असल मालिक काले हबशियोंके विरुद्ध गोरोंकी रक्षा करनेके लिए। उत्तर अमेरिकाने गुलामीकी प्रथाको नष्ट करनेके लिए जो काम किया उसके बावजूद, आपलोगोंका इतिहास तो इससे भी काला है। आपलोगोंने अमेरिकाके हबशियोंके साथ जो सलूक किया है वह एक शर्मनाक किस्सा है। यह है आपका प्रजातत्र, जिसे बचानेके लिए यह युद्ध लड़ा जा रहा है। इसमें भारी दंभकी बू आती है। इस समय मैं अहिंसाकी परिभाषामें बात कर रहा हूँ, और हिंसाका नगा स्वरूप दिखा रहा हूँ। हिन्दुस्तान सच्चा प्रजातंत्र बननेका प्रयत्न कर रहा है, ऐसा प्रजातत्र जिसमें हिंसाके लिए कोई स्थान न होगा। हमारा हथियार सत्याग्रह है। उसका व्यक्त स्वरूप है चर्खा, ग्राम-उद्योग संघ, उद्योगके जरिये प्राथमिक शिक्षा-प्रणाली, अस्पृश्यता-निवारण, मद्य-निषेध और अहिंसक तरीकेसे मजदूरोंका संगठन, जैसा कि अहमदाबादमें हो रहा है, और साम्प्रदायिक-ऐक्य। इस कार्यक्रमके लिए जनताको सामुदायिक रूपमें प्रयत्न करना पडता है, और सामुदायिक रूपसे जनताको शिक्षण भी मिल जाता है। इन प्रवृत्तियोंको चलानेके लिए हमारे पास बड़े बड़े संघ हैं, पर कार्यकर्त्ता पूरी तरह स्वेच्छासे इस काममें आये हैं। उनके पीछे अगर कोई शक्ति है, तो वह उनकी अत्यन्त दीन-दुर्बलोंकी सेवा-भावना है। यह तो हुआ अहिंसक युद्धका स्थायी भाग। इसमें से अहिंसक तरीकेसे सत्ताका सामना करनेकी शक्ति पैदा होती है। यह सामना सविनय भंग और असहयोग कहलाता है। असहयोगका अंतिम रूप कर देनेसे इन्कार करना है। आप जानते हैं कि हमने काफी बड़े पैमानेपर सविनय-भंग और असहयोगका प्रयोग किया है। उसमें सफलता भी हमें काफी मिली है। यह प्रयोग एक ऊंचे भविष्यकी आशा दिलाता है। आजतक हमारी लड़ाई कमजोरकी लड़ाई रही है। पर हमारा उद्देश्य बलवानकी अहिंसक लड़ाईकी शक्ति प्राप्त करनेका है। आपके ये युद्ध प्रजातंत्रको कभी सुरक्षित नहीं बना सकेंगे। पर यदि भारतीय इतना आगे बढ़ सकें, या यूं कहो कि ईश्वरने मुझे इस प्रयोगको सफल बनानेके लिए आवश्यक शक्ति और बुद्धि दी, तो भारतका प्रयोग प्रजातंत्रको सुरक्षित बना सकेगा।

हरिजन-सेवक
१८ मई, १९४०

❀

हमारा कर्त्तव्य

"नाजी जर्मनी द्वारा किये जानेवाले इधरके और भी क्रूरतापूर्ण हमलोका ख्याल रखते हुए और इस वाकयाको आँखोके सामने रखते हुए कि ब्रिटेन आज मुसीबतमें पड गया है और चारो ओर आपदाओसे घिरा हुआ है, क्या अहिंसाका यह तकाजा नही है कि हम उससे कह दें कि यद्यपि हम अपनी स्थितिसे जरा भी नही हट रहे है और जहाँ तक उसके साथ हमारे ताल्लुकात और हमारे भविष्यका सम्बन्ध है, हम अपनी माँगमे तिलभर कमी न करेंगे, फिर भी मुसीबतोसे घिरे होनेकी हालतमे उसे तग या व्यग्र करनेकी 'हमारी इच्छा नही है, इसलिए फिलहाल सत्याग्रह आन्दोलनके विषयमे सारे ख्यालात और सब तरहकी बातें हम निश्चितरूपसे मुलतवी कर देते है। आज नाजीवाद स्पष्टत जैसे प्रभुत्वके लिए उठ रहा है, क्या हमारा मन उसकी कल्पनाके खिलाफ विद्रोह नही करता है? क्या मानवीय सभ्यताका सम्पूर्ण भविष्य खतरेमें नही है? यह ठीक है कि विदेशी शासनसे अपनेको स्वतत्र करना भी हमारे लिए जिन्दगी और मौतका ही सवाल है। लेकिन जब ब्रिटेन एक ऐसे आक्रमणकारीके मुकाबले खडा है, जो निश्चितरूपसे जंगली उपायोका इस्तेमालकर रहा है, तब क्या हमें ऐसी समयोचित और मानवीय भाव-भगी न ग्रहण करनी चाहिए जो अतमें हमारे विरोधीके दिलको जीत ले? फिर अगर इसका उसपर कुछ असर न हो और इज्जत आबरूके साथ कोई समझौता नामुमकिन ही बना रहे, तो भी क्या हमारे लिए यह एक ज्यादा ऊँची और श्रेष्ठ बात न होगी कि हम अहिंसात्मक युद्ध तब छेडें, जब वह (ब्रिटेन) आजकी तरह चारों तरफसे मुसीबतोसे घिरा न हो? क्या इसके लिए हमें अपने अन्दर और ज्यादा ताकतकी जरूरत न पडेगी? और चूकि ज्यादा ताकतकी जरूरत पडेगी, इसलिए क्या इसका अर्थ अधिक और ज्यादा टिकाऊ लाभ नही होगा और क्या यह आपसमें सिर फोडनेवाली दुनियाके लिए एक ऊचा उदाहरण न होगा? क्या यह इस बातका भी प्रमाण नही होगा कि अहिसा प्रधानतया बलवानोका अस्त्र है?"

नार्वेके पतनके बाद कई पत्र-लेखकोके जो पत्र मुझे प्राप्त हुए है उनकी भावना इस पत्रमें कदाचित ठीक ठीक जाहिर हुई है। यह इन पत्र-लेखकोंके दिलोकी शराफतका सबूत है। पर इसमें वस्तुस्थितिके प्रति ठीक समझका अभाव है। इन पत्रोमें ब्रिटिश प्रकृतिका ख्याल नही किया गया है। ब्रिटिश जातिको गुलाम जातिकी हमदर्दीकी कोई जरूरत नहीं है। क्योंकि वह इस गुलाम जातिसे जो कुछ चाहे ले सकती है। वह वीर और स्वाभिमान जाति है। नार्वे जैसी एक नहीं अनेक विघ्न बाधाओसे भी वह लोग पस्त-हिम्मत होनेवाली नहीं है। अपने आगे आनेवाली किसी भी दिक्कतका सामना करनेमें वे भली-भाँति समर्थ है। युद्धमें भारतको किस तरह क्या हिस्सा लेना है इस बारेमें उसको खुद कुछ कहनेका हक नहीं है। उसे तो ब्रिटिश मन्त्रिमंडल की इच्छामात्रसे इस युद्धमें अपनेको घसीटना पडा है। उसके साधनोका ब्रिटिश मन्त्रिमडलकी इच्छानुसार इस्तेमाल किया जा रहा है। हम शिकायत नहीं कर सकते। हिन्दुस्तान एक पराधीन देश है और ब्रिटेन इस पराधीन देशको उसी तरह दुहता

रहेगा जिस तरह अतीत कालमें दुहता रहा है। ऐसी स्थितिमें कांग्रेस क्या भाव-भंगी, क्या रुख अख्तियार कर सकती है ? उसके वशमें जो सबसे ऊंची भाव-भगी थी उसे वह अब भी ग्रहण किये हुए है। वह देशमें कोई फिसाद खडा नही करती है। खुद अपनी ही नीतिके कारण वह इससे बच रही है। मै कह चुका हूँ और फिर दुहराता हूँ कि मै हठवश ब्रिटेनको तंग करनेके लिए कोई काम नही करूगा। ऐसा करना सत्याग्रहकी मेरी धारणाके प्रतिकूल होगा। इसके आगे जाना कांग्रेसकी ताकतके बाहर है।

निस्सन्देह, कांग्रेसका फर्ज है कि स्वतत्रताकी अपनी मांगका अनुसरण करे और अपनी शक्तिकी पूरी सीमातक सत्याग्रहकी तैयारी जारी रक्खे। इस तैयारीकी खासियतका मान करना चाहिए। खादी, ग्रामोद्योगो और साम्प्रदायिक एकताको बढ़ाना, अस्पृश्यताका निवारण, मादक-द्रव्य-निषेध तथा इस उद्देश्यसे कांग्रेस सदस्य बनाना और उनको ट्रेनिंग देना। क्या इस तैयारी को मुल्तवी कर देना चाहिए ? मै तो कहूगा कि अगर कांग्रेस सचमुच अहिंसात्मक बन गई और अहिंसाकी नीतिके पालनमें उसने ऊपर बताए हुए रचनात्मक कार्यक्रमको सफलतापूर्वक निबाह लिया, तो निस्सन्देह वह स्वतत्रता प्राप्त कर सकेगी। तभी हिन्दुस्तानके लिए अवसर होगा कि वह एक स्वतंत्र राष्ट्रकी हैसियतसे यह फैसला करे कि उसे ब्रिटेनको कौनसी मदद किस तरह देनी चाहिए।

जहांतक मित्र राष्ट्रोका हेतु संसारके लिए शुभ है वहांतक उसमें कांग्रेसकी देन यह है कि वह अहिंसा और सत्यका अमली तौरपर पालन कर रही है और बिना कमी व विलब किये पूर्ण स्वतत्रताके अपने ध्येयका अनुसरण कर रही है।

कांग्रेसकी स्थितिकी परीक्षा करने और उसकी न्याय्यताको स्वीकार करनेसे आग्रहपूर्वक इनकार करके और गलत सवाल खड़े करके ब्रिटेन असलमें खुद अपने ही हेतुको नुकसान पहुंचा रहा है। मैने जिस तरहकी विधान-परिषदका प्रस्ताव किया है उसमें एकके अलावा और सब दिक्कतें हल हो जाती है—बशर्ते कि इस एकको भी दिक्कत मान लिया जाय। इस परिषदमें हिन्दुस्तानके भाग्यनिर्णयमें ब्रिटिश-हस्तक्षेपके लिए अलबत्ता कोई गुजाइश नहीं है। अगर इसे एक दिक्कतकी शकलमें पेश किया जाय, तो कांग्रेसको तबतक प्रतीक्षा करनी पड़ेगी जबतक यह न मान लिया जाय कि यह न सिर्फ कोई दिक्कत नहीं है, बल्कि यह कि आत्म-निर्णय हिन्दुस्तानका निर्विवाद अधिकार है।

अच्छा होगा कि इस बारेमें एक न एक बहाना खड़ा करके सत्याग्रहकी घोषणा करनेमें मेरी अनिच्छाका दोषारोपण करते हुए जो पत्र मुझे मिले है उनका भी जिक्र मै कर दूं। इन मित्रोको जान लेना चाहिए कि अहिंसा-अस्त्रके सफल प्रदर्शनके लिए मै उनसे ज्यादा चिन्तित हूँ। इस शोधके अनुगमनमें मै ऐसा लगा हूँ कि अपनेको एक पलका विश्राम नहीं दे रहा हूँ। निरंतर मै प्रकाशके लिए प्रार्थना कर रहा हूँ। लेकिन बाहरी दबावके कारण मै सत्याग्रह छेड़नेमें जल्दबाजी नहीं कर सकता— ठीक वैसे, जैसे कि बाहरी दबावके कारण मै उसको छोड़ नही सकता। मै जानता हूँ कि यह मेरी सबसे बड़ी कसौटीकी घड़ी है। यह दर्शानेके लिए मेरे पास

बहुत ज्यादा सबूत है कि बहुतेरे कांग्रेस-कर्मियोंके हृदयमें काफी हिंसा भरी है और उनमें स्वार्थकी मात्रा भी बहुत ज्यादा है। अगर कांग्रेस कार्यकर्त्ता अहिंसाकी सच्ची भावनासे ओत प्रोत होते, तो स्वतंत्रता हमें १९२१ में ही मिल गयी होती और हमारा इतिहास आज कुछ दूसरा ही लिखा गया होता। लेकिन मुझे शिकायत नहीं करनी चाहिए। जो औजार मेरे पास है उन्हींसे मुझे काम करना है। मैं इतना ही चाहता हूं कि कांग्रेसी लोग मेरी ऊपरसे दीख पड़ने वाली अक्रियताका कारण जान लें।

हरिजन-सेवक
२५ मई, १९४०

❀

सत्याग्रह अभी नहीं

पाठकोंको इसी अंकमें अन्यत्र डॉ० राममनोहर लोहियाका लेख पढ़नेको मिलेगा, जिसमें तुरंत सत्याग्रह छेड़ देनेकी दलील है। विश्व-शान्ति कायम करनेके लिए उन्होंने जो नुसखा बताया है मैं उसकी ताईद करता हूँ। अपने नुस्खेको स्वीकार करानेके लिए वह तुरंत सत्याग्रह छेडवाना चाहते हैं। यहाँ मेरा उनसे मतभेद है। अगर डॉ० लोहिया अहिंसाकी क्रियाकी मेरी धारणाको मानते हैं, तो वह तुरंत मान लेंगे कि सत्याग्रहके जरिये अंग्रेजोको ठीक दिशामें प्रभावित करनेके लिए इस वक्त वातावरण नहीं है।

डॉ० लोहिया यह कबूल करते हैं कि ब्रिटिश सरकारको तंग नहीं करना चाहिए। मुझे भय है कि सविनय-अवज्ञाकी तरफ बढाये गये किसी भी कदमसे उसको परेशानी जरूर होगी। अगर मैं अभी सविनय-अवज्ञा शुरू करता हूं, तो उसका सारा तात्पर्य ही नष्ट हो जायगा।

देश अगर स्पष्ट रूपसे अहिंसात्मक होता और उसमें पूण अनुशासन होता, तो मैं बगैर किसी हिचकिचाहटके सत्याग्रह शुरू कर देता। पर दुर्भाग्यवश कांग्रेसके बाहर बहुतेरे ऐसे दल हैं जिनका न तो अहिंसा और न सत्याग्रहमें विश्वास है। खुद कांग्रेसके अन्दर भी अहिंसाकी क्षमताके विषयमें सब तरहके मत रखनेवाले लोग हैं। भारतकी रक्षाके लिए अहिंसाके प्रयोगमें विश्वास रखनेवाले कांग्रेसी तो अंगुलियोपर गिने जा सकते हैं। यद्यपि हम लोगोंने अहिंसाकी तरफ काफी लंबे डग भरे हैं तो भी अभीतक हम ऐसी मंजिलपर नहीं पहुचे हैं जहाँ कि हम अजेय होनेकी आशा कर सकें। इस वक्त कोई भी गलत कदम रखनेका नतीजा यह होगा कि कांग्रेसने जो महान् नैतिक प्रतिष्ठा प्राप्त की है उसका अंत हो जायगा। हम लोगोंने काफी तौरपर यह दिखा दिया है कि कांग्रेस साम्राज्यवादका साथ छोड चुकी है और वह आत्म-निर्णयके निर्बाध अधिकारसे कममें किसी तरह संतुष्ट न होगी।

अगर ब्रिटिश सरकार भारतको अपने-आप ही अपने विधान और मर्यादाका निर्णय करनेका अधिकार रखनेवाले स्वतन्त्र देशके रूपमें घोषित नही करती, तो मेरा मत है कि मित्र-राष्ट्रोंके बीच हो रही लड़ाईकी गर्मी शांत हो जाने और भविष्यके अधिक स्पष्ट होनेतक हमें प्रतीक्षा करनी चाहिए। हम ब्रिटेनके विनाशसे अपनी स्वतंत्रता नहीं चाहते। यह अहिंसाका तरीका नहीं है।

लेकिन अगर सचमुच हममें ताकत है, तो उसका प्रदर्शन करनेके अनेक अवसर हमें मिलेंगे। चाहे कोई पक्ष विजयी हो, सुलह तो होगी ही। उस वक्त हम अपनी ताकतका असर डाल सकते हैं।

क्या हममें वह ताकत है? क्या आधुनिक सैनिक सामग्रीसे रहित होनेपर भारतके मनमें शांति है? क्या आक्रमणके खिलाफ अपनी रक्षामें असमर्थ होनेके कारण भारत अपनेको असहाय नहीं महसूस करता? क्या कांग्रेसवाले तक अपने आपको सुरक्षित अनुभव करते है? अथवा, क्या वे यह महसूस नहीं करते कि कम-से-कम अभी चंद सालोंतक हिन्दुस्तानको ब्रिटेन या किसी दूसरी शक्तिकी मददकी जरूरत पड़ेगी? अगर हमारी यह दुर्भाग्यपूर्ण दुर्दशा है, तब हम लड़ाईके बाद किसी सम्मानपूर्ण सुलह व विश्वव्यापी निःशस्त्रीकरण के काममें कोई प्रभावकारक योग देनेकी आशा कैसे कर सकते हैं? इसके पहिले कि हम पश्चिमके पूर्णतः शस्त्र-सज्जित राष्ट्रोंको प्रभावित करनेकी उम्मीद करें, हमें पहिले अपने ही देशमें शक्तिमानोंकी अहिंसाके सामर्थ्यका प्रदर्शन करना होगा।

लेकिन बहुत-से कांग्रेसी अहिंसाके साथ खिलवाड़ कर रहे हैं। वे किसी भी तरह सविनय-अवज्ञा शुरू कर देनेकी बात सोचते हैं, जिससे उनका मतलब जेलोंको भर देना होता है। सत्याग्रहमें निहित महान् शक्तिकी यह बच्चों जैसी व्याख्या है। चाहे इससे लोगोंको उबकाई आये, मगर मैं बार बार दोहराता रहूंगा कि सच्चे रचनात्मक प्रयत्नके आधार बिना अथवा अपराधीके हृदयमें शुभ भावना पैदा किये बगैर जेल जाना हिंसा है, अतः सत्याग्रहमें यह मना है। मनुष्यकी बुद्धि अबतक जितने भी अस्त्रोंका निर्माण कर सकी है उन सबकी सम्मिलित शक्तिसे भी अहिंसा द्वारा उत्पन्न शक्ति कहीं बढ-चढ़कर है। इसलिए सत्याग्रहमें अहिंसा ही प्रधान निर्णायक अंग है। भारतके इतिहासके इस अत्यन्त विषम क्षणमें मैं उस शक्तिसे खिलवाड़ नही करूंगा जिसकी प्रच्छन्न संभावनाओंकी खोज मैं नम्रतापूर्वक लगभग ५० वर्षोंसे कर रहा हूं। सौभाग्य-वश, अन्ततोगत्वा तो मैं अपनी शक्तिका सहारा लेनेके लिए खुद तो हू ही। मुझसे कहा गया है कि लोग रातों-रात अहिंसात्मक नहीं बन जा सकते। मैंने कभी नही कहा कि बन सकते हैं। लेकिन मैंने इतना माना है कि अगर उनमें वैसा बननेकी दृढ इच्छा है तो उचित शिक्षणसे वे वैसे बन सकते है। जो लोग सत्याग्रह करना चाहें उनके लिए सक्रिय अहिंसा जरूरी है, लेकिन सत्याग्रहके अर्थ चुने गये लोगोंके साथ सहयोग करनेवालोंके लिए दृढ संकल्प और उचित शिक्षण काफी है। कांग्रेसने जो रचनात्मक कार्य निर्धारित कर दिया है वही उचित शिक्षण है। तैयारी हो जानेकी हालतमें शायद कांग्रेसकी देन सही तरीकेपर लड़ाई खत्म करनेकी दिशामें सबसे अधिक प्रभावकारी होगी।

यद्यपि हिन्दुस्तानके निःशस्त्रीकरणके मूलमें बलात्कार है, फिर भी अगर राष्ट्र उसे एक धर्मके रूपमें स्वेच्छापूर्वक अंगीकार करले और भारत घोषणा कर दे कि वह शस्त्रोंसे अपनी रक्षा नहीं करेगा, तो यूरोपकी स्थितिपर इसका ठोस असर हो सकता है। इसलिए जो लोग हिन्दुस्तानको अहिंसा द्वारा अपने भाग्यकी सिद्धि करते देखना चाहते हैं उन्हे सविनय-अवज्ञाका विचार किये बिना अपनी सपूर्ण शक्ति सच्चाईके साथ रचनात्मक कार्यक्रमकी पूर्तिमें लगा देनी चाहिए।

हरिजन-सेवक
१ जून, १९४०

❀

असंगति

प्रश्न—हालमे ही आपने लिखा था—"सविनय-अवज्ञाके जरिए अंग्रेजोको ठीक दिशामे प्रभावित करनेके लिए इस वक्त वातावरण नही है।" और उसी लेखमें आपने लिखा है, "देश अगर स्पष्टरूपसे अहिंसात्मक होता और उसमें पूर्ण अनुशासन होता, तो मैं बगैर किसी हिचकिचाहटके सत्याग्रह शुरू कर देता।" अब सवाल यह उठता है कि अगर कुछ समय बाद देश स्पष्टरूपसे अहिंसात्मक हो जाय, पर लडाई लम्बे अर्सेतक चलती रहे, तो क्या आप सविनय-अवज्ञा शुरू कर देंगे ? अगर आप शुरू करते हैं तो क्या इससे अग्रेज तंग न होगे ? अगर कांग्रेसके बाहरके दल अहिंसात्मक न होगे, तो क्या आप सविनय-अवज्ञा आरम्भ करनेमे हिचकिचायेंगे ?

उत्तरः—खुद समझ लेनेके लिए जो वाक्य छोड़ दिये गये हैं, उन्हे अगर आप मिलाकर पढ़ेंगे, तो आपको इसमें कोई असंगति न मालूम होगी। मौजूदा वातावरणका मतलब यह है कि जब अग्रेजोके घरोकी सुरक्षा खतरेमें है तब किसी भी चीजको बर्दाश्त करनेके लिए अंगरेज तैयार नहीं हैं। इसका तात्पर्य हमारी बहुत अपूर्ण अहिंसा भी है। अगर हम पूरे तौरपर, अतः स्पष्ट रीतिसे अहिंसात्मक हों, तो उसका मतलब यह होगा कि खुद अंग्रेज हमारी अहिंसाको मान लेंगे। कोई भी विशुद्ध अहिंसात्मक कार्य उनको परेशान नहीं कर सकता। बल्कि सच्ची बात तो यह है कि अगर हमारी अहिंसा पूर्ण होती तो हममें आन्तरिक कलह न होता, कांग्रेसमें झगड़े न होते, गैर-कांग्रेसियोके साथ हमारा कोई झगड़ा न होता। उस हालतमें तो सविनय-अवज्ञाके लिए कोई अवसर ही नहीं आता। इस आशयकी बातें अभी हालमें मैंने इन्हीं पृष्ठोमें लिखी हैं। आपने जो वाक्य उद्धृत किये हैं उनमें भी उसी बातको मैंने दूसरे ढंगसे कहा है। क्योंकि किसी सयुक्त राष्ट्र द्वारा उठाये जानेवाले अहिंसात्मक कदममें बिना किसी कडुआहटके होनेवाली उसकी लक्ष्यसिद्धि स्वयं ही छिपी रहती है। इस लिए जिस क्षण मेरी कल्पनाकी अहिंसा स्थापित हो जायगी उसी क्षण लड़ाईके लिए मैं तैयार हो जाऊँगा, फिर चाहे अंग्रेज किसी

भी मुसीबतमें घिरे हो। और जब वह अहिंसा आयेगी तो वह न सिर्फ हिन्दुस्तानको बचायेगी बल्कि ब्रिटेन और फ्रांसको भी बचा लेगी। लेकिन आपके लिए यह कहना ज्यादा अच्छा होगा कि मैंने निरर्थक लिख मारा, क्योंकि मैं जानता था कि जिस दरजेकी अहिंसा मैं चाहता हूं वह मेरे जमानेमें आनेवाली नहीं है। मैं तो एक अटूट आशावादी हूँ। कोई वैज्ञानिक दुर्बल हृदयसे अपने प्रयोग नहीं आरम्भ करता। मैं उन्हीं कोलम्बस और स्टीवेंसनके दलका हूँ, जिन्होंने कि जबर्दस्त कठिनाइयोंके बीच भी, निराशामें भी अपनी आशा कायम रखी। चमत्कारोंका युग अभी खतम नहीं हुआ है। जबतक ईश्वर है ये चमत्कार होते रहेंगे। आपके दूसरे सवालका जवाब ऊपर आ गया है। निस्सदेह यहां जो चित्र मैंने दिया है उसमें गैर कांग्रेसी वर्गों द्वारा भी अहिंसाके ग्रहण कर लेनेकी कल्पना शामिल है। पर पहले हमें अपना कर्त्तव्य करना है। पहले कांग्रेसको अपना घर व्यवस्थित कर लेने दीजिए।

हरिजन-सेवक
१५ जून, १९४०

❀

अहिंसा और खादी

श्री रिचर्ड बी० ग्रेगका एक पत्र कुछ दिन पहले मैंने उद्धृत किया था। अब उन्होंने दूसरा पत्र भेजा है, जिसे मैं पाठकोंको भी बताना चाहता हूँ:—

"पिछले हफ्ते अपने समाचारपत्रोंमें चार्ली एण्डरूजकी मृत्युकी खबर पढकर मुझे शोक हुआ। वह कितने प्यारे अच्छे आदमी थे। अपनी मृदुता, करुणा, वफादारी, स्नेह और प्रेममें शक्तिमान। उन्होंने दुनियाको बेहतर बनाया। हम उनका अभाव बहुत महसूस करेंगे, पर उनका महान् उदाहरण सदा जीवित रहेगा।

"जब पिछली मर्तबा मैंने आपको लिखा था उसके बादके इन सारे महीनोंमे अहिंसा और अहिंसात्मक विश्वास तथा मत-परिवर्तनके लिए अनुशासनकी समस्याओं और पाश्चात्य निरुक्तमें (पारिभाषिक शब्दोंमें) उनके तथा उनके हलका बयान किस प्रकार किया जा सकता है, इस सम्बन्धमें मुझमें बौद्धिक संघर्ष होता रहा है। मैं समझता हूँ कि मैंने आपको लिखा था कि अपनी 'पावर ऑव नान्-वायलेंस' (अहिंसाकी शक्ति) की पूर्तिके लिए सत्याग्रहके इन दो पक्षोंपर मैं एक पुस्तक लिख रहा हूँ। मैं पढता हूँ और सोचता हूँ, पढता हूँ और सोचता हूँ। पिछले चन्द हफ्तोंमे सारी चीजके ढाचेको मैं कही अधिक स्पष्टताके साथ देखने लगा हूँ। मेरी चेष्टा यह है कि पश्चिमी दुनियाको आपके सम्पूर्ण कार्यक्रमके औचित्य और व्यावहारिकताका अनुभव करा दूं।

"मुझे बडी खुशी हुई है कि पिछले कई महीनोंमें आपने बडे जोरोंके साथ यह बात कही है कि सरकारके विरुद्ध सत्याग्रहकी आम लड़ाईमें आपका नेतृत्व पानेके लिए पहले काग्रेसको सच्चाई

और वफादारीके साथ खादी-कार्यक्रमको अपनाना चाहिए। मुझे इसकी आवश्यकता स्फटिककी भाति स्पष्ट दिखायी दे रही है। आप बिलकुल ठीक कहते है।

"पर मामलेके इस पक्षको छोड दे, तो भी मै देख रहा हूँ कि जब वर्तमान युद्ध खत्म हो जायगा तो सारे यूरोपको आपके खादी कार्यक्रमकी और बिना किताबोके तरह-तरहकी दस्तकारियोके जरिये शिक्षा देनेकी आपकी योजनाकी जरूरत पडेगी। इगलैड और यूरोपका मध्यवर्ग बहुत दरिद्र हो जायगा। यही बात संयुक्त राज्य अमेरिका पर भी, संभवत यूरोप जैसी प्रवलताके साथ ही, घटित होगी, क्योकि हमारे यहाँ भी तो आर्थिक दृष्टिसे १९१९से १९३४ तक वैसी ही महान अधोगति आ चुकी है जैसी कि यूरोपके किसी भी देशमे आयी थी। हिन्दुस्तानके खादी आन्दोलनने जो अनुभव और यात्रिक अभिज्ञता प्राप्त की है वह युद्धके बादके वर्षोंमे अत्यन्त मूल्यवान सिद्ध होगी।

"युद्ध और उसकी सम्पूर्ण भयानकताओके बावजूद, मै अहिंसाके भविष्यके विषयमे आशासे पूर्ण हूँ। दुनियाके सारे इतिहासमे इससे पहले कभी अहिंसामें श्रद्धा रखनेवाले इतने आदमी नहीं हुए, मै कुल तादाद और शेष जन-संख्याके अनुपात दोनो ही दृष्टियोसे यह बात कह रहा हूँ। इसके पहले और कभी सब वर्गो, श्रेणियो, धर्मो और पेशोमें यह विश्वास पाया नही गया था। इसके पहले कभी इतने प्रतिष्ठित राजनीतिज्ञोने सच्चाई और स्पष्टताके साथ खुलेआम युद्ध और हिंसाकी गलती, निस्सारता और भयकर परिणामोका इजहार नही किया था। इसके पहले कभी इतने फौजी आदमी अपने तरीकेकी अंतिम प्रभावकारिता और उचितताके विषयमें इस कदर अनिश्चित नही थे।

"तमाम पिछले दो सालोमें, और जबसे लडाई शुरू हुई तबसे तो बडी तेजीके साथ ब्रिटेन और अमेरिकाके सगठित शान्ति-आन्दोलनोमें प्रगति हुई है। इसके पहले कभी उनका इतना विस्तार नही था। फिर यह केवल भावना नही है। समस्याके सम्पूर्ण पक्षोके विषयमे काफी तेज और गहरा विचार लोग कर रहे है।

"ग्रेट ब्रिटेनमे लाजिमी सैनिक भर्तीका कानून जिनपर लागू होता था उनमे नौ मार्च तक २६,६८१ आदमी सरकारी तौर पर अन्त करणसे युद्धपर आपत्ति करनेवालोकी सूचीमें लिखे जा चुके है, जब कि १९१४-१८के युद्धके सम्पूर्ण ४ वर्षोंमे केवल १६,००० ऐसे आदमी निकले थे। हालाँकि पहलेसे कोई बात निश्चितरूपमे नही कही जा सकती, फिर भी जो प्रमाण सामने है उनसे मालूम पडता है कि अगर सयुक्त राज्य भी युद्धमे घसीटा गया तो यहाँ भी युद्धके प्रति हार्दिक आपत्ति उठानेवालोकी सख्यामे इसी प्रकार बहुत बडी वृद्धि होगी। पिछले सालके जूनसे इस सालके मार्च महीने तक ग्रेट ब्रिटेनमें लाजिमी सैनिक भर्तीके लिए जो ५ या ६- मांगे हुई उनमे हार्दिक आपत्ति करनेवालोकी तादाद १ ६-सैकडासे लेकर २.२ सैकडा तक थी। अगर आप ख्याल करें किसभी देशोमें सचमुच प्रभावशाली या मुख्य सरकारी कामजनसंख्याके दो प्रतिशतसे ज्यादा आदमी नही करते, तो यह एक दिलचस्प तुलना होगी। फिर जब हम ब्रिटेनके शान्ति-आन्दोलनके नेताओकी उच्च बौद्धिक मर्यादापर ध्यान देते है तो इस तुलनाका बल और भी बढ जाता है। और यद्यपि किसीको अपने देशके बारेमे शेखी न मारनी चाहिए, फिर भी

मैं कह सकता हूँ कि इस 'देशमे शातिवादी' मूर्ख नही है। भले उनकी कीर्ति जगतव्यापी न हो। भविष्यके साथ इन तथ्योका सम्वन्ध ऐतिहासिक सादृश्यमे निहित है।

"१९१४-१८के युद्धके बाद वहुतेरे शातिवादी जो युद्धके समय वुरी तरह दडित हुए थे, प्रतिष्ठित नेता वन गये। इसी वातके होनेकी फिर सभावना है।

"युद्धके वाद उसमे शरीक होनेवाले सभी राष्ट्रो तथा वहुतेरे तटस्थ राष्ट्रोमे भी एक जोरदार शान्ति-आन्दोलन उठ खडा हुआ था। सभवत फिर यह वात होगी। पिछली वारके आन्दोलनका अधिकाश केवल भावना-मूलक था। इसलिए जव कडी कसौटीपर उसकी परख की गयी, तो वह भग हो गया। लेकिन तवसे वहुत अधिक मात्रामे और गहरा विचार इस दिशामे किया गया है और अव अहिंसामे विश्वास रखनेवाले लोग पहलेकी अपेक्षा कही अधिक स्पष्टताके साथ समस्याओ और अपनी कठिनाइयो और उन्हे हल करनेके सभव मार्गको समझने लगे है। भविष्यमे पहलेकी अपेक्षा वे कही ज्यादा असर डाल सकेंगे।

"इस लडाईके वाद घृणा और शका शायद उससे ज्यादा गहरी और प्रवल होगी, जितनी कि पिछले महायुद्धके वाद हुई थी। लेकिन साथ ही ज्यादा इमानदारी—अपने राष्ट्रकी पिछली भूलो और दोषोको स्वीकार करनेकी ज्यादा तैयारी दिखायी पडेगी, पुरानी आदतोको छोड कर नये तरीकोका प्रयोग करनेकी प्रवृत्ति भी अधिक होगी। सामूहिक जागरूकताकी वृद्धिके कारण अनन्त संघर्षके खतरोंके प्रति भी अधिक जानकारी होगी। कदाचित विप्लव और व्यवस्थाके बीच चुनावकी वहुत थोडी गुजाइश हो, पर मैं यही विश्वास करना चाहता हूँ कि स्थायी व्यवस्थाके लिए मनुष्यकी जो आकाक्षा है वह उसके भय और घृणासे कुछ ज्यादा ही शक्तिमान् निकलेगी। यह कुछ ऐसा होगा जैसे किसी पागलखानेके सब अधिवासी पारस्परिक हिंसाके एक भयकर विस्फोटके बाद, सुलह कर लेनेका निश्चय करे और अपने रोगकी चिकित्साके लिए एक सहकारी योजना बनालें।

"अगर यह सच है कि मनुष्यकी व्यवस्था और अपने जीवनके महत्त्वकी आकाक्षा भय और घृणासे बलवान है, तो एकमात्र जिस कार्यक्रमसे व्यवस्था और जीवनके महत्वकी स्थापना हो सकती है उसका मेरुदण्ड अहिंसा ही होगी। इसके कारण अहिंसामें जो लोग विश्वास रखते है उनके ऊपर एक बडी जिम्मेदारी आ जाती है। यह (अहिंसा) उनसे महान् विचार, अनुशासन और सामाजिक आविष्कारकी आशा रखती है। आपके खादी-कार्यक्रमको मै इनमेसे एक महान् सामाजिक आविष्कार मानता हूँ। वर्धा-शिक्षा-योजना ऐसा दूसरा आविष्कार है।

"एक पत्रमें श्री जे० सी० कुमारप्पाको कुछ ऐसी बातोके बारेमे लिख रहा हूँ, जिनपर अर्सेसे उनके साथ चर्चा करनेकी मेरी इच्छा रही है। इसमे चद सुझाव है जिनके विषयमे अ० भा० ग्रामोद्योग सघ प्रयोग-कर सकता है। इनमे एक सुझाव तो यह है कि नेप्थलीनकी कृमिनाशक गोलियोसे भरी हुई मसहरीकी जालीकी छोटी-छोटी थैलियाँ गाँवोके कुओमें लटकायी जायँ। ये थैलियाँ पानीकी सतहसे गज भर या उससे ज्यादा ऊपर रहे। इन गोलियोकी गन्धको मच्छर वहुत नापसन्द करते है और चूकि यह गन्धहीन वायुसे कुछ भारी होता है इसलिए पानीके

तल पर कम्वलकी तरह फैला रहेगा और जलको दूषित किये या मच्छरोको मारे विना ही वह मच्छरोको पानीमे अंडे देनेसे दूर रक्खेगा। गध पानीमें नही समाती। इस तरह मलेरियाके कीटाणुओकी पैदाइशको एक सस्ते,आसान और निर्दोप उपायसे रोका जा सकता है। मेरे वागमें एक छोटा खुला फौलादका वना कुड है। उसमे प्रयोग करने पर यह उपाय कारगर सावित हुआ है। मेरा ख्याल है कि इन गोलियोको अहमदावादके बाजारमे मैंने विकते देखा था इसलिए मैं मान लेता हूँ कि वे सुलभ है। पर अगर वे सुलभ न हो, तो भी कुछ तीव्र गन्धवाली वूटियाँ ऐसी मिल सकती है जो मच्छरोको भगानेके लिए वैसी ही काममे आ सकती है। गोलियोकी जगह इनका प्रयोग किया जा सकता है। कृमिनाशक गोलियाँ कुछ समयके वाद हवामें उड जाती है, इसलिए उनपर ध्यान रखना और समय-समयपर थैलियोमे नई गोलियाँ डालते रहना पडेगा।

"इसी धारणा पर दूसरी तरहसे भी अमल किया जा सकता है और वह यह कि गाँवके तालावो या नदियोके तटोपर कुछ विशेष जलप्रिय तीव्र गन्धवाली वनस्पतियाँ लगा दी जाय। ये वनस्पतियाँ पानीके बिलकुल पास होगी। ज्यादातर मच्छर अपने अंडे छिछले पानीपर देते है, इसलिए कीटडिंभ छोटी मछलियोका खाद्य वननेसे बच जा सकते है। अगर सही वनस्पतियाँ चुनी जायँ—वे जिनकी गन्ध मच्छडोको दूर भगानेवाली होती है—और इन स्थानोमें रोपकर उगाई जाये तो, सभवत इस तरकीबसे मलेरियाका विनाश किया जा सकता है। जो हो, मै इन दोनो तरीकोको प्रयोग करने योग्य समझता हूँ। 'मिंट' जातिकी बूटियाँ मच्छरोको रोकनेके लिए प्रसिद्ध है।"

श्री ग्रेग एक सावधान विचारक है। वह किसी चीजको पहलेसे ही नहीं मान लेते। उनके पत्रके अंतिम पैरेसे प्रकट होता है कि वह व्योरेकी वातोका कितना ध्यान रखते हैं और कैसी व्यावहारिक प्रकृतिके आदमी है।

लेकिन मै जानता हूँ कि तार्किक चिन्तनकी वडी-से-बड़ी मात्रा भी पृथ्वीपर अहिंसाका राज्य स्थापित न कर सकेगी। केवल एक ही चीज इस कामको कर सकती है और वह है राष्ट्रीय स्वतंत्रता प्राप्त करने और उसकी रक्षा करनेमें अहिंसा की सामर्थ्यको बिना किसी सदेहके प्रदर्शित कर सकनेकी भारतकी योग्यता।

हरिजन-सेवक
१५ जून, १९४०

हिटलरशाहीसे कैसे पेश आयें ?

हिटलर अंतमें कैसा ही साबित हो, हिटलरशाहीका जो अर्थ बन गया है वह हम जानते हैं। इसका अर्थ है बलका नग्न और क्रूर प्रयोग जिसे ठीक विज्ञानमें घटा दिया गया है और वैज्ञानिक शोधके साथ जिसे काममें लाया जा रहा है। इसका असर लगभग अदम्य होता है।

सत्याग्रहकी शुरुआतके दिनोंमें जब कि उसे निष्क्रिय प्रतिरोध ही कहा जाता था, जोहान्सवर्गके "स्टार" पत्रको शस्त्रास्त्रसे खूब सज्जित सरकारके खिलाफ मुट्ठी भर ऐसे भारतीयोंको उठते हुए देखकर, जो निःशस्त्र ही नहीं बल्कि चाहते तो भी संगठित हिंसाके अनुपयुक्त थे, बडा आश्चर्य हुआ। उनपर रहम खाकर उसने एक व्यग्य-चित्र छापा, जिसमें सरकारको अदम्य बल-सूचक स्टीम-रोलरका रूप दिया गया था और निष्क्रिय प्रतिरोधको ऐसे हाथीकी शकल दी गई थी, जो अपनी जगहपर आरामके साथ अडिग बैठा हुआ था। उसे अविचलित बल बतलाया गया था। अदम्य और अचल बलके बीच जो द्वन्द्व था उसकी बारीकीमें व्यंग्य-चित्रकार अच्छी तरह पहुंच गया। उस वक्त एक जिच पड़ी हुई थी। नतीजा जो हुआ वह हम जानते ही हैं। जिसे अदम्य चित्रित किया गया था उसका सत्याग्रहके अचल बलने, जिसे हम बदले की भावनाके बगैर कष्ट सहना कह सकते हैं, सफलतापूर्वक प्रतिरोध किया।

उस वक्त जो बात सत्य साबित हुई वह अब भी उतनी ही सत्य हो सकती है। हिटलरशाहीको हिटलरशाही तरीकोंसे कभी पराजित नहीं किया जा सकेगा। उससे तो दसगुनी तेज या ऊँचे दरजेकी हिटलरशाहीका ही पोषण होगा। हमारे सामने जो कुछ हो रहा है वह तो हिंसा और हिटलरशाहीकी भी निष्फलताका ही प्रदर्शन है।

हिटलरशाहीकी असफलतासे मेरा क्या मतलब है, यह मैं बतला दूं। इसने छोटे राष्ट्रोंको उनकी स्वतंत्रतासे वंचित कर दिया है। इसने फ्रांसको शांति-प्रार्थना करनेके लिए बाध्य किया है। जब यह लेख छपेगा, उस वक्त तक शायद ब्रिटेनको भी अपने सम्बन्धमें कुछ निश्चय कर लेना पड़े। मेरी दलीलके लिए तो फ्रांसका पतन ही काफी है। मेरे ख्यालमें, जो अनिवार्य था उसके आगे सिर झुकाकर और मूर्खतापूर्ण आपसी कत्लेआममें भागीदार बननेसे इन्कार करके फ्रांसीसी राजनीतिज्ञोंने असाधारण साहसका परिचय दिया है। अपना सबकुछ खोकर फ्रांसके विजयी बननेका कोई अर्थ नहीं है। स्वतंत्रताका जिन्हे उपभोग करना है उन सबका ही उसे प्राप्त करनेमें खात्मा हो जाये तो स्वतंत्रता-प्राप्तिका वह प्रयत्न उपहास्य हो जाता है। उस हालतमें वह महत्वाकांक्षाका निन्दनीय सतोष बन जाता है। फ्रांसीसी सैनिकोंकी वीरता विश्वविख्यात है। लेकिन शांतिका प्रस्ताव रखनेमें फ्रांसीसी राजनीतिज्ञोंने उससे भी बड़ी जो बहादुरी बतलायी है उसे भी दुनियाको जान लेना चाहिए। मेरे ख्यालमें फ्रांसीसी राजनीतिज्ञोंने यह मार्ग सच्चे सैनिकोंको शोभा देने लायक पूरे सम्मानपूर्ण तरीकेसे ग्रहण किया है। इसलिए मुझे आशा करनी चाहिए कि हेर हिटलर

इसके लिए कोई अपमानपूर्ण शर्तें न लगाकर यह दिखलायेंगे कि हालाकि वह लड़, निर्दयताके साथ सकते हैं, मगर कमसे कम, शान्तिके लिए वह दयाहीनतासे काम नहीं ले सकते।

अब हम फिर अपनी दलीलपर आयें। विजय प्राप्तकर लेनेपर हिटलर क्या करेंगे? क्या इतनी सारी सत्ताको वह पचा सकते है? व्यक्तिगत रूपमें तो वह भी उसी तरह खाली हाथ इस दुनियासे जायँगे जैसे सिकन्दर गये थे, जो उनके बहुत प्राचीन पूर्ववर्ती नहीं है। जर्मनोके लिए वह एक शक्तिशाली साम्राज्यकी मालिकीका आनंद नहीं, बल्कि टूटते हुए साम्राज्यको सम्हालनेका भारी बोझ छोड जायंगे। क्योकि सब जीते हुए राष्ट्रोको वे सदा सर्वदा पराधीन नही बनाये रख सकते, और इस बातमें भी मुझे सदेह है कि भावी पीढीके जर्मन उन कामोमें शुद्ध गर्वानुभव करेंगे जिनके लिए वे हिटलरशाहीको जिम्मेदार ठहरायेंगे। हिटलरकी इज्जत वे प्रतिभाशाली, वीर, अनुपम संगठन-कर्ता आदिके रूपमें जरूर करेंगे। लेकिन मुझे आशा करनी चाहिए कि भविष्यके जर्मन अपने महापुरुषोके बारेमें भी विवेकसे काम लेनेकी कला सीख जायंगे। कुछ भी हो, मेरे ख्यालमें यह तो मानना ही होगा कि हिटलरने जो मानव-रक्त बहाया है उससे ससारकी नैतिकतामें अणुमात्र भी वृद्धि नहीं हुई है।

इसके प्रतिकूल, आजके यूरोपकी हालतकी जरा कल्पना तो कीजिये। चेक, पोल, नार्वे-वासी, फ्रांसीसी और अंगरेज सबने अगर हिटलरसे यह कहा होता तो कितना अच्छा होता कि— "विनाशके लिए आपको अपनी वैज्ञानिक तैयारी करनेकी जरूरत नही है। आपकी हिंसाका हम अहिंसासे मुकाबिला करेंगे। इसलिए टैंको, जगी जहाजो और हवाई जहाजोके बगैर ही आप हमारी अहिंसात्मक सेनाको नष्ट कर सकेंगे।"

इसपर यह कहा जा सकता है कि इसमें फर्क सिर्फ यही रहेगा कि हिटलरने खूनी लड़ाईके बाद जो कुछ पाया है वह उसे लड़ाईके बगैर ही मिल जाता। बिल्कुल ठीक। लेकिन यूरोपका इतिहास तब बिल्कुल जुदे रूपमें लिखा जाता। अब जिस तरह अकथनीय बर्बरताओके बाद, कब्जा किया गया है तब शायद (लेकिन सिर्फ शायद ही) अहिंसात्मक प्रतिरोधमें ऐसा किया जाता। लेकिन अहिंसात्मक प्रतिरोधमें सिर्फ वही मारे जाते जिन्होने जरूरत पड़नेपर अपने मारे जानेकी तैयारी कर ली होती और वे किसीको मारे वा किसीके प्रति कोई दुर्भाव रखे बगैर मरते। मै यह कहनेका साहस करता हूँ कि उस हालतमें यूरोपने अपनी नैतिकताको काफी बढ़ा लिया होता और अन्तमें, मेरा ख्याल है, नैतिकताका ही शुमार होता है। और सब व्यर्थ है।

यह सब मैंने यूरोपके राष्ट्रोके लिए लिखा है। लेकिन हमारे ऊपर भी यह लागू होता है। अगर मेरी दलील समझमें आ जाय, तो क्या हमारे लिए यह समय ऐसा नहीं है कि हम बलवानोकी अहिंसामें अपने निश्चित विश्वासकी घोषणा करके यह कहे कि हम हथियारोकी ताकतसे नहीं बल्कि अहिंसाकी ताकतसे अपनी स्वतंत्रताकी रक्षा करना चाहते हैं?

हरिजन-सेवक
२२ जून, १९४०

खुश भी और रंजीदा भी

१८ तारीखको मैंने 'हरिजन'मे यह आशा प्रकट की थी.—"अगर मेरी दलील गले उतर गई है, तो क्या वक्त नही आ गया कि हम वीरोकी अहिंसामें अपनी अटल श्रद्धाकी घोषणा कर दें और कह दें कि हम अपनी आजादीकी रक्षा शस्त्र-बलसे नही करना चाहते, हम उसकी रक्षा अहिंसक बलसे ही करेंगे।"

२१ तारीखको वर्किंग कमेटीने जाहिर किया कि मौका आनेपर वह इस श्रद्धाको अमलमें नहीं ला सकेंगी। कमेटीको इससे पहले अपनी श्रद्धाको कसौटीपर कसनेका मौका नहीं आया था। पिछली बैठकमें उन्हे आनेवाली देशकी भीतरी अराजकता, और बाहरी आक्रमणके खतरेका सामना करनेका रास्ता निश्चित करना था।

मैंने कमेटीको बहुत समझाया। अगर आप लोग शूरवीरोकी अहिंसामें विश्वास रखते हैं, तो आज इसपर अमल करनेका मौका है। बहुतसे दल किसी प्रकारकी अहिंसामें विश्वास नहीं रखते। यही तो और भी बडा कारण है कि कांग्रेसवादी एकाएक आ पड़ी परिस्थितिका सामना अहिंसासे करें। अगर सबके-सब लोग अहिंसक रहते, तो अराजकता हो ही नहीं सकती थी और बाहरी आक्रमणका सामना करनेके लिए हथियार-बन्दीका प्रश्न ही नहीं उठ सकता था। हिंसा-बलका उपयोग करनेवाले दलोके बीचमें कांग्रेस ही एक ऐसा दल है जो अहिसा माननेवाला दल है, इसलिए कांग्रेसवादियोके लिए यह आवश्यक हो जाता है कि वह दिखा दें कि वह अपनी श्रद्धापर अमल भी कर सकते है।

मगर वर्किंग कमेटीके सदस्योको लगा कि कांग्रेस इसपर अमल नहीं कर सकेगी, इस तरह अमल करना उनके लिए एक नया ही अनुभव होगा। उनको पहले कभी ऐसी जोखमभरी परिस्थितिका सामना नहीं करना पड़ा है। कौमी फसादो वगैरा का निपटारा करनेके लिए शान्ति-सेना तैयार करनेकी मेरी योजना सर्वथा निष्फल हुई है। इस हालतमें कमेटी अब अहिं-सक नीतिसे काम नहीं ले सकती।

मेरी स्थिति भिन्न थी। कांग्रेसके लिए अहिंसा एक नीति मात्र थी। अगर वह निष्फल हुई, तो कांग्रेस उसे छोड़ सकती थी। अहिंसा आर्थिक और सामाजिक स्वतन्त्रता नही ला सकती। कांग्रेसके लिए तो वह निकम्मी है। मेरे लिए तो अहिंसा धर्म है। मुझे उसपर अमल करना ही है, भले ही मैं अकेला रह जाऊँ। अहिंसाका प्रचार मेरे जीवनका ध्येय है, सो मुझे हरएक परिस्थितिमें उसके पीछे लगे ही रहना है। मैंने देखा कि आज ईश्वर और मनुष्यके सामने मेरी श्रद्धाकी परीक्षाका मौका है। इसलिए कमेटीके कार्यकी जिम्मेदारीसे मैंने मुक्ति माँगी। आजतक कांग्रेसकी नीतिके संचालनकी जिम्मेदारी मुझपर रही है। मगर अब, जबकि उनमें और मुझमें मौलिक अंतर पाये गये, मैं ऐसा नहीं कर सकता था। उन्होने मान लिया कि कि मैं जो कहता था वह ठीक ही था और उन्होने मुक्ति दे दी। उन्होने एकबार फिर साबित कर

दिया कि जनताने उनमें जो विश्वास रखा है, वह बिल्कुल ठीक है। उन्हे यह विश्वास नहीं था कि वह खुद या जिनके वह नुमाइन्दे हैं वह इस नयी हालतमें अहिंसक नीति चला सकते हैं।

कमेटीके सामने यह भी प्रश्न था कि अहिंसाको शुद्ध समझकर जगत्ने उन्हें प्रतिष्ठा हैं। उस प्रतिष्ठाका और उनको और मुझको बांधनेवाली इन अदृष्ट चीजोंका उन्होंने बलिदा कर दिया। यह बलिदान भारी था। पर यद्यपि एक ही आदर्श या नीतिके अमलमें मतभेद पैदा हुआ है, उससे हमारी २० सालसे भी पुरानी मित्रतामें किसी तरहका फर्क थोड़े ही पड़ सकता है? मैं इस परिणामसे खुश हूँ और रंजीदा भी हूँ। खुश इसलिए कि मैं मतभेदको बर्दाश्त कर सका और ईश्वरने मुझे अकेले खड़े रहनेकी शक्ति दी। रंजीदा इसलिए कि जिनको मैं २० साल तक—जो आज एक दिनके जैसे लगते हैं—साथ रख सका, आज उन्हें साथ रखनेकी शक्ति मेरे शब्दोंमें नहीं रही। उनका साथ निभा सका यह मेरा सौभाग्य था और अभिमान भी। मैं जानता हूँ कि अगर ईश्वरने मुझे सच्ची अहिंसाका प्रदर्शन करनेका रास्ता सुझा दिया, तो यह तारका टूटना थोड़े दिनकी ही चीज रहेगी। अगर कोई रास्ता न निकला, तो यह साबित हो जायगा कि उन्होंने जुदाईका सदमा बर्दाश्त करके भी मुझे मेरे रास्तेपर जाने दिया। वह अकलमंदी थी। मेरी किस्मतमें मेरी नपुंसकताका दुःखद ज्ञान ही लिखा है तो भी जिस श्रद्धाने मुझे इतने वर्ष टिकाया है उसे मैं छोड़ूंगा नहीं। मैं नम्रतासे समझ लूंगा कि अहिंसाकी शक्तिको और आगे लेजानेके लिए मैं पात्र नहीं था।

मगर यह दलील और यह शंका इस मान्यता पर हैं कि वर्किंग कमेटी काग्रेस जनताके भावोंका प्रतिबिम्ब है। मैं जानता हूँ कि कमेटी इच्छा और आशा रखती है कि काग्रेस जनतामें वीरोंकी अहिंसा हो। अगर उनको यह पता चले कि कांग्रेसकी शक्तिका उनका माप कम था, तो उनको अजहद खुशी होगी। सम्भावना यह है कि बहुमतमें नहीं, पर एक खासी अच्छी छोटीसी अच्छी जमातमें वीरोंकी अहिंसा है। यह याद रखा जाय कि इस बारेमें दलील नहीं की जा सकती। वर्किंग कमेटीके सदस्योंके सामने सब दलीलें पेश थीं। किंतु अहिंसा हृदयका गुण है। वह बुद्धिपर प्रहार करनेसे नहीं पैदा हो सकता। इसलिए जरूरत इस चीजकी है कि अहिंसाकी इस नयी शक्तिका शान्त मगर निश्चयात्मक प्रदर्शन किया जाय। ऐसा करनेका मौका तो हर एकके सामने लगभग हर रोज आता है। साम्प्रदायिक फसाद हैं, डाके हैं, शब्द-युद्ध है। जो सच्चे अहिंसक हैं वह इन सब चीजों में अहिंसाका प्रयोग करेंगे। अगर काफी मात्रामें ऐसा किया जाय, तो उसका असर आसपास पर हुए बिना रह नहीं सकता। मुझे विश्वास है कि एक भी ऐसा काग्रेसवादी नहीं है, जो सिर्फ हठसे अहिंसा की शक्तिमें अविश्वास रखता हो। जो कांग्रेसवादी मानते हैं कि अन्दरूनी फसाद और बाहरी आक्रमणका सामना भी कांग्रेसको अहिंसाके द्वारा ही करना चाहिए, वह अपने प्रतिदिनके व्यवहारमें इस चीजका प्रदर्शन करके बतायें। जिस आदमीको एक लगन लगी हुई होती है उसके छोटे-से-छोटे काममें भी वह अपनी झलक दिखाती जाती है। इसलिए जिस आदमीपर अहिंसाका आधिपत्य है, वह अपने घर-परिवारमें, पडोसियोंके साथके अपने व्यवहारमें, व्यापारमें, काग्रेस-सभाओंमें, आम सभाओंमें और विरोधियोंका सामना करनेमें सब जगह

अहिंसाका प्रयोग करेगा। क्योंकि कांग्रेसवालोंने इस तरह अहिंसाका प्रयोग नहीं किया, वर्किंग कमेटी इस नतीजे पर पहुँची। उनका ऐसा कहना सही है कि कांग्रेसवाले अन्दरूनी फसाद और बाहरी आक्रमणके लिए सफल अहिंसक उपचार करनेकी तैयारी नहीं रखते। मामूली अहिंसक उपायसे जो परेशानी पैदा होती है वह स्थिर सत्ताको सार्वजनिक मांगके सामने झुकने पर मजबूर कर देती है। जाहिर है कि फसादके सामने ऐसी अहिंसा कुछ काम नहीं कर सकती। यहां तो हमें फसाद खड़ा करनेवालोंके प्रति हृदयमें किसी किस्मका द्वेष या गुस्सा न रखते हुए उनके हाथोंसे मर जाना है। अब तो यह स्पष्ट हो जाना चाहिए कि जिस अहिंसाको कांग्रेसने आजतक चलाया है उससे अबकी अहिंसा बिलकुल अलग किस्मकी है। मगर यही सच्ची अहिंसा है, और यही जगतको तबाहीसे बचा सकती है; अगर हिंदुस्तान जगतको अहिंसाका सन्देश न दे सका तो यह तबाही आज या कल आने ही वाली है। और कलके बदले आज इसके आनेकी सम्भावना अधिक है। जगत युद्धके शापसे बचना चाहता है, पर कैसे बचे इसका उसे पता नहीं चलता। यह चाबी हिन्दुस्तानके हाथमें है।

जब ऊपरका लेख लिखा और टाइप किया जा चुका था, मैंने पंडित जवाहरलालजीका बयान देखा। उसके एक-एक वाक्यसे मेरे प्रति उनका विश्वास और प्रेम टपकता है, पर इस कारण मेरे इस लेखमें कुछ तरमीम करनेकी जरूरत नहीं। अच्छा है कि पाठक यह जान लें कि हम दोनोंके मनपर कमेटीके निवेदनका स्वतत्र असर क्या हुआ। इस जुदाईका नतीजा भला ही होगा।

हरिजन-सेवक
२९ जून, १९४०

❋

क्या किया जाय?

प्रश्न—देशकी हालत दिन-ब-दिन गम्भीर होती जा रही है। सब जगह घबराहट बढ रही है। कहीं-कहीं तो बदमाशोंने हथियारबन्द जत्थे बनाने भी शुरू कर दिये हैं, ताकि सरकारकी शक्ति टूट जाय या कमजोर पड जाय, तो उससे पैदा होनेवाली अराजकताका वह लोग फायदा उठा सकें। भले ही यह खतरा आज निकट न हो, पर इसकी सभावनापर ध्यान न देना मूर्खता होगी। आप इससे सहमत होंगे कि आजतक पिछले २० वर्षमें जितनी भी अहिंसाकी तालीम देशको मिली है, उससे ऐसी अहिंसक शक्ति पैदा नहीं हुई है कि अराजकता और गुण्डईका सफलतासे मुकाबला किया जासके। जो लोग दिशा-सूचनाके लिए आपकी ओर आँख लगाये बैठे हैं, उनका क्या धर्म हो जाता है? क्या वह लोग सरकारकी प्रवृत्तियोंमें हिस्सा लें? अगर नहीं तो और क्या करें? निश्चय ही वह लोग हाथ-पर-हाथ रखकर तो नहीं बैठ सकते।

उत्तर—मैं नहीं कह सकता कि वर्किंग कमेटीके हालके बयानके बाद कांग्रेस सचमुच

क्या करेगी। अगर आप यह विश्वास रखते हैं कि अराजकता और ऐसी चीजोंका इलाज अहिंसाके द्वारा हो सकता है तो यह स्वाभाविक है कि आप अपने आपको, अपने पड़ोसियोंको और ऐसे लोगोंको जिनपर कि आप असर डाल सकते हैं, अहिंसक रक्षाके लिए तैयार करेंगे। आपका यह कहना बिलकुल ठीक है कि कोई भी जिम्मेदार आदमी आज बैठा-बैठा नहीं देख सकता। हिंसक तैयारीके लिए काफी अर्से पहलेसे तालीम लेनेकी आवश्यकता है। अहिंसाकी तैयारीमें मनको तैयार करनेका सवाल है। इसमें शक नहीं कि अराजकताकी सम्भावना है, मगर आप अहिंसक हैं, तो आप भयभीत नहीं हो जायेंगे। अराजकता आ रही है, यह मानकर नहीं बैठ जाना चाहिए। जैसे निश्चितरूपसे यह जानते हुए कि एक रोज मरना ही है, हम बैठे-बैठे सोचते नहीं रहते कि मृत्यु आ रही है। अगर बदकिस्मतीसे अराजकता आ ही जायगी, तो आप, आपके साथी और आपके अनुयायी उसे रोकनेके लिए अपने जीवनकी आहुति दे देंगे। जो लोग डाकू और बदमाश माने जानेवालोंको मारनेका प्रयत्न करते हुए अपनी जान दे देते हैं, वह कुछ ज्यादा श्रेष्ठ काम करते हैं, ऐसी बात नहीं है। शायद वह कुछ कम ही करते हैं। वह अपनी जान खतरेमें डालते हैं और उनकी मृत्युके बाद अन्धेरा ही अन्धेरा रह जाता है। इससे भी बुरी बात है कि हिंसाका जवाब हिंसासे देकर वह हिंसाकी अग्निमें ईंधन डालते हैं। जो लोग बिना सामना किये मर जाते हैं वह अपना पूरा निर्दोष बलिदान देकर हिंसाके कोपको शान्त भी कर सकते हैं। मगर यह सच्चा अहिंसक काम तभी हो सकता है, जब आपके हृदयमें यह विश्वास हो कि चोर-डाकू, जिससे आप डरते हैं, दरअसल वह और आप एक ही हैं। इसलिए अच्छा तो यह है कि उसके हाथों आप मरें, बजाय इसके कि वह आपका अज्ञानी भाई आपके हाथों मरे।

हरिजन-सेवक
२९ जून, १९४०

❀

अहिंसा और घबराहट

एक सज्जनने एक पत्र भेजा है। उसका नीचे दिया हिस्सा पाठकोंके लिए रोचक और बोधप्रद होगा।

"असहयोगकी पिछली हलचलमें मैंने वकालत छोड दी थी। १९२५के अन्तमें फिर शुरू कर दी। अब मैं कांग्रेसका सिर्फ चार आनेका मेम्बर हूँ। कचहरीमें वकालत करता हूँ और आदतन खादी पहनता हूँ। जबसे मित्र राष्ट्र हारने लगे हैं, देशमें घबराहट फैलने लगी है। ब्रिटेनकी पराजयके परिणामोंसे लोग डरते हैं, उन्हें गृहयुद्धका, साम्प्रदायिक बलवोंका, लूटमारका, आग लगाने और गुण्डाशाहीका डर है। आप अहिंसाके देवता हैं। कम-से-कम पिछले २० वर्षोंमें आपने अहिंसाका प्रचार किया है। जहाँतक मैं आपके लेखोंको समझ सका हूँ आप बहादुरोंकी

अहिंसाका प्रचार करते है। ऐसी अहिसा व्यापक प्रेममेंसे ही निकलती है, वह ज्यादती करनेवालोके प्रति और दुश्मनके प्रति भी प्रेम सिखाती है। अगर मैं सही समझता हूँ, तो आपके मतानुसार दुश्मनको नुकसान पहुँचानेकी ताकत रखते हुए भी हमे उसके साथ अहिंसक वर्ताव रखनेका प्रयत्न करना चाहिए।

"मगर आपकी इस सब शिक्षाका अमली नतीजा जो देखनेमे आता है वह यह है कि आपके अधिकाश अनुयायियोको इस किस्मकी अहिसाकी कल्पना ही नही है। वे अहिंसक है क्योकि वे मानते है कि अगर दुर्जनका सामना हिसासे करेंगे तो उसका कोप और वढेगा। इसका नतीजा यह होगा कि वह और भी ज्यादा हिंसाका इस्तेमाल करेगा, जिसको वह झेल नही सकेंगे। सो उनकी अहिंसाके पीछे प्रेम नही, डर और वुजदिली है। विचार यह है कि अपनी जान कैसे वचाये, यह नही कि उच्च आदर्शके लिए उसे खतरेमे डाले। मैं एक मिसाल देता हूँ — १९२२के असहयोगके दिनोमे एक सज्जन थे, जिनका अव देहान्त हो चुका है। क्रिमिनल लॉ एमेण्डमेंटके अनुसार वह गिरफ्तार हुए और कैद किये गये। वह एक अमन-पसन्द शहरी थे, राजनीतिमे उन्हे दिलचस्पी नही थी। मुझे यह आशा नहीं थी कि वह राजनीतिकी खातिर अपनी स्वतत्रताको खतरेमें डालेंगे। उन्हे जेलमे देखकर मुझे आश्चर्य हुआ। मैंने उनसे पूछा कि उन्होने खुशीसे जेल जानेकी हिम्मत कैसे की। उन्होने उत्तर दिया कि जेलके वाहर उन्हे ज्यादा नुकसानका डर था, उनपर छाप यह थी कि राजनीतिक हलचलके कारण सब जगह झगडे-फसाद होगे और उन्हे यकीन था कि आखिरमे सरकार गोली चलाने पर उतरेगी। उन्हे लगा कि जेलके अन्दर वह सुरक्षित रहेंगे और मौतसे वच जायेंगे। मेरी समझमे जव आपने लोगोको खुशीसे जेल जानेको कहा था, तव आपके मनमे यह चीज हरगिज नही थी। मेरी रायमे अगर कोई कमजोरीके कारण अहिंसक बनता है तो वह आक्रमण करनेवालेका कभी सामना नही करेगा। मेरा तो यह दृढ विश्वास है कि इन घवराहट और परेशानीके दिनोमे आपकी कलमसे निकले हुए चन्द लेख हमारे नौजवानोके हृदयमेंसे सव डर निकाल देंगे और उनमे एक जान डाल देंगे, जिससे वह समाजमे गुडईका सामना कर सकें। 'हरिजन'के पिछले अकमे एक ऐसा लेख निकल चुका है। मगर मेरा मत है कि जो लोग शारीरिक शक्ति तो रखते है, लेकिन घवराहटसे वेजान पडे हुए है, उनमे हिम्मत और वहादुरी लानेके लिए एक लेखमालाकी जरूरत है। मेरी रायसे अगर आप हर हफ्ते 'हरिजन' मे इस विषय पर थोडी-सी पक्तियाँ लिखनेकी कृपा करेंगे तो सब भय, हडकम्प और परेशानी अपने आप मिट जायगी। हमारी घवराहटसे गुडोकी हिम्मत और बढ रही है, जैसे ही हमारी घवराहट दूर हो जायगी हमारे समाजमे गुडे और वदमाश भी नही रहेंगे।

यह पत्र सामान्य कांग्रेसवादीकी मानसिक स्थितिका सही चित्र देता है। जिस अहिंसाका लेखकने उल्लेख किया है वह कभी हमें हमारे ध्येय तक नहीं पहुँचा सकती। अगर हम इसके द्वारा शूरवीरोकी सच्ची अहिंसा तक पहुँच सकते है तो मैं मानूंगा कि इस कमजोरोकी अहिंसासे भी हमें फायदा ही हुआ है। जिसने शूरवीरोकी अहिंसाका शस्त्र लिया है वह अकेले सारे दुनियाकी जबरदस्त-से-जबरदस्त ताकतोका एकसाथ मुकावला कर सकता है। हर एक कांग्रेसवालोको अपने दिलसे पूछना चाहिए कि क्या उनमें शूरवीरोकी अहिंसाको अपनानेकी हिम्मत है? इस आदर्श स्थितिको पानेके लिए किसी चीजकी जरूरत नहीं है सिवाय इसके

करके, तोलमापके जरिये पैदा नहीं हो सकता था । अगर दिलमें यकीन हो जाता कि मेरा रास्ता सही रास्ता था, तो उसपर अमल करना आसान था । जनताके उपर दबावके वक्त असर होता है। मेरे निवेदनका असर नहीं हुआ। इससे जाहिर होता है कि या तो मेरे शब्दोमें शक्ति नहीं या ईश्वरकी ही कुछ ऐसी इच्छा है कि जिसका हमें कुछ पता नही। यह निवेदन व्यथित हृदयसे निकला है। मैं उसे रोक नहीं सकता था। यह निवेदन केवल उसी क्षणके लिये नहीं लिखा गया था। मुझे पूर्ण विश्वास है कि उसमें बताया गया सत्य शाश्वत है।

अगर आजसे भूमिका तैयार न की गयी, तो युद्धके अन्तमें जब चारो ओर खिन्नता और थकानका वातावरण होगा नया तंत्र बनानेका समय ही नहीं रह जायगा। नया तत्र जो भी होगा वह जाने-अनजाने आजसे हम जो भी प्रयत्न करेंगे, उसीका परिणाम होगा। दर-असल, प्रयत्न तो मेरा निवेदन निकलनेसे पहले ही शुरू हो चुका था। आशा है कि निवेदनने उसे उत्तेजन दिया होगा और एक निश्चित दिशा दिखाई होगी। मेरी गैर अधिकारी नेताओं और ब्रिटिश प्रजाका मत ढालनेवालोको सलाह है कि यदि उन्हे यकीन हो गया है कि मेरा रास्ता सही है, तो वे उसे स्वीकार करानेका प्रयत्न करें। मेरे निवेदनने जो महान प्रश्न उठाया है, उसके सामने हिन्दुस्तानकी आजादीका प्रश्न तुच्छ बन जाता है। मगर मै इन दो अंग्रेज मित्रोके साथ सहमत हूँ कि ब्रिटिश सरकारका ढग शोचनीय है। लेकिन इन मित्रोने हिन्दुस्तानकी आजादीकी कल्पना करके उसके जो नतीजे निकाले हैं, वह सरासर गलत है । वह भूल जाते हैं कि मै इस चित्रसे बाहर हूँ। जिनके सिरपर कार्य-समितिके पिछले प्रस्तावकी जिम्मेदारी है, उनकी धारणा यही रही है कि स्वतत्र हिन्दुस्तान ब्रिटेनके साथ सहयोग करेगा । उनके पास जर्मनीके आगे झुकने या अहिंसक तरीकेसे सामना करनेका प्रश्न ही नहीं उठता ।

मगर, यद्यपि विषय दिलचस्प और ललचाने वाला है, तो भी मुझे हिन्दुस्तानकी आजादी और उसके फलितार्थोका विचार करनेके लिए यहाँ नहीं ठहरना चाहिये।

मेरे सामने इस भावके पत्र और अखबारकी कतरने पडी है कि जब काग्रेसने हिंसक फौजके जरिये हिन्दुस्तानकी रक्षाकी तैयारी न करनेकी आपकी सलाह नहीं मानी, तो आप अंग्रेजोको यह सलाह कैसे दे सकते है और उनसे कैसे आशा रख सकते है कि वह इसे स्वीकार करेंगे ? यह दलील देखनेमें ठीक मालूम देती है, मगर सिर्फ देखनेमें ही। आलोचक कहते हैं कि जब मै अपने लोगोको ही न समझा सका, तो मुझे यह आशा रखनेका कोई हक नहीं है कि आज जीवन और मौतकी लडाईके मँझधारमें पडा ब्रिटेन मेरी बात सुनेगा। मेरा तो जीवनमें एक खास ध्येय है । हिन्दुस्तानकी करोडोकी जनताने अग्रेजोकी तरह युद्धके कड़वे स्वाद नहीं चखे। ब्रिटेनने जिस मकसदकी दुनियाके सामने घोषणा की थी, अगर उसे हासिल करना है तो उसे अपनी नीति बिल्कुल बदल देनी होगी। मुझे ऐसा लगता है जैसे जानता हूँ कि क्या परिवर्तन करनेकी जरूरत है । जिस विषयकी यहां चर्चा हो रही है, उसमें मेरी कार्य-समितिको न समझा सकनेकी बात लाना असगत है।

ब्रिटेन और हिन्दुस्तानकी परिस्थितिमें कोई साम्य ही नहीं है। इसलिये, मुझे वह निवेदन लिखनेपर जरा भी पश्चाताप नहीं है। मैं इस बातपर कायम हूँ कि निवेदन लिखनेमें मैंने ब्रिटेनके एक आजीवन मित्रका काम किया है।

एक लेखक प्रत्युत्तरमें लिखते हैं:—"हेर हिटलरको अपना निवेदन भेजो न !" पहली बात तो यह है कि मैंने हेर हिटलरको भी लिखा था। मेरे पत्र भेजनेके कुछ समय बाद वह पत्र कुछ अखबारोंमें छपा भी था। दूसरी बात यह है कि हेर हिटलरको मेरा अहिंसक रास्ता अख्तियार करनेके लिए कहना कुछ अर्थ नहीं रखता। हेर हिटलर विजयपर विजय प्राप्त कर रहे हैं। उनसे तो मैं यही कह सकता हू कि अब बस करो। वह मैं कह चुका हूँ। मगर ब्रिटेन आज अपनी रक्षाके लिए लड रहा है। उसके आगे मैं अहिंसक असहयोगका सचमुच प्रभावकारी शस्त्र रख सकता हूँ। मेरा रास्ता ठुकराना हो तो उसके गुण-दोषोका विचार करके ठुकराया जाय, अनुचित तुलनाएँ करके या लूली-लँगडी दलीलें पेश करके नहीं। मैं समझता हूँ कि मैंने जो सवाल उठाया है वह सारे ससारके लिए महत्त्व रखता है। अहिंसक रास्तेकी उपयोगिताको सब आलोचक स्वीकार करते है। मगर वह खामखाह मान लेते है कि मनुष्य स्वभाव ऐसा बना है कि वह अहिंसक तैयारीका बोझ नही उठायेगा। लेकिन यह तो प्रश्नको टालनेकी बात है। मैं कहता हूँ कि आपने यह तरीका अच्छी तरह आजमाया ही नहीं है। जहाँ तक यह आजमाया गया है परिणाम आशाजनक ही आया है।

हरिजन-सेवक
२७ जुलाई, १९४०

❀

पाकिस्तान और अहिंसा

प्रश्न—एक गुजराती मुसलमान भाई लिखते है—

"मैं अहिंसाको हूँ मानता हूँ और पाकिस्तानको भी मानता हूँ। अब पाकिस्तानके लिए अहिंसक रीतिसे किस तरह काम करूँ?"

उत्तर—जिस वस्तुमें न्याय नही है वह अहिंसक रीतिसे प्राप्त नहीं की जा सकती जैसे चोरी अहिंसक रीतिसे नहीं की जा सकती। जिस तरह पाकिस्तानको मैं समझा हूँ, उस तरहसे वह न्याययुक्त नहीं है। मगर आप उसे न्याययुक्त मानते है, इसलिये आप उसके लिए आन्दोलन जरूर कर सकते है। यदि आप यह अहिंसक रीतिसे करेंगे, तो पहले जो पाकिस्तानका विरोध करते है, उन्हे आपको समझाना चाहिये। आप इस बारेमें निःस्वार्थ भावसे काम करते है, एसी छाप लोगोंपर पडनी चाहिए। विरोधियोका कहना आदरपूर्वक सुनना चाहिये और उनकी भूल हो तो आदरपूर्वक बतानी

चाहिये। अन्तमें मान लीजिये कि लोग आपकी नहीं सुनते और आपके इस मामलेकी सचाईके बारेमें आपकी मान्यता कायम रहती है, तो जो लोग आपके रास्तेमें विघ्न डालते ह, उनके खिलाफ आप अहिंसक असहयोगका प्रयोग कर सकते है। ऐसा करते हुए आप विरोधीको नुकसान नहीं पहुँचायेंगे, नुकसान पहुँचानेकी इच्छा नहीं करेंगे और आपको नुकसान होता हो तो उसे आप सहन कर लेंगे। आपका मामला तटस्थ जब रीतिसे उचित माना जाता होगा, तभी यह सब संभव होगा।

हरिजन-सेवक
३, अगस्त १९४०

❀

इसमें हिंसा है

ऐसा श्री सुरेन्द्रजी बोरीयादसे लिखते है--

'दु खी इसलिए कि इतने वर्षोसे जिनको मैंने अपना कथन समझता रहा, जिन्हे साथ लेकर चलनेका गौरवपूर्ण लाभ मुझे प्राप्त हुआ, उन्हे समझा सकनेकी शक्ति आज मेरे शब्दोमें गोया नही रही, और इतने वर्षोका प्रेम-भरा सम्बन्ध मानो कलकी बात हो गयी है'—यह वाक्य आपके लेखमें पढकर मुझे दु ख और आश्चर्य हुआ। आपके इस वाक्यमे क्या हिंसा नही है ?"

मेरी कलमसे ऐसा वाक्य निकल ही नहीं सकता, यह मैंने मान लिया और इस प्रकारका उत्तर भी दे दिया, क्योंकि इस तरह विचार तक रखनेमें हिंसा है। सरदारके साथ तो क्या, किसीके भी साथ मेरी प्रेमकी गाँठ नहीं टूट सकती। दुश्मनके प्रति भी प्रेम विकसित करनेकी शिक्षा देनेवाला मैं सरदार-जैसे साथियोके साथ बँधी प्रेम-गाँठको भला कैसे तोड सकता हूँ ? मालवीयजी, शास्त्रीजी जैसोके साथ मेरा मतभेद तो रहा ही है, तो भी उनके साथ मेरा प्रेम-संबन्ध जैसा था वैसा ही चलता आ रहा है। मतभेद होनेपर यदि प्रेम सम्बन्ध टूट जाय तो वह असहिष्णुताकी निशानी ह।

इसलिए सुरेन्द्रजीका पत्र पढ़कर मैंने "हरिजन-बन्धु" पढा। मैंने देखा कि मेरे 'हरिजन' के लेखका यह तर्जुमा है। असल लेख पढ़ा तो देखा कि मेरा वचन तो सर्वथा निर्दोष और अवसरके अनुसार है। "यह सब वर्षोका प्रेम-संबन्ध मानो कलकी बात हो गई," ऐसा अर्थ अंग्रेजीमें है ही नहीं। अंग्रेजीक. अर्थ तो इतना ही है कि "यह सब वर्ष मानो कल-के-से हो गये।" उसके ऊपर ही कहा जा चुका है कि 'बीस वर्षसे भी ऊपरकी हमारी मैत्रीमें कुछ फर्क नहीं पडा।" इसलिए मुझे दु.ख संबन्ध टूटनेका नहीं, बल्कि मेरे शब्दोमें जो शक्ति कलतक थी, वह एकाएक चली गयी उसका था, और है। प्रेम है, मगर साथियोको फिरसे जीत सकनेकी शक्ति अपने शब्दोंमें प्राप्त करनेके लिए मुझे तपश्चर्या

करनी चाहिए। इस लेखकी ध्वनि ही शुरूसे आखिरतक शिकायत बनाये रखनेकी है। दूसरा मुझसे हो ही नही सकता था।

परन्तु यह दोषमय तर्जुमा अकस्मात बताता है कि मैंने जो गुजरातीमें लिखनेका निश्चय किया है वह हर तरहसे ठीक ही है। चाहे कितना ही शक्तिशाली मनुष्य तर्जुमा करे फिर भी उसमें दोषोंका रह जाना सम्भव है। बाइबलका तर्जुमा चालीस बयालीस विद्वानोंने बैठकर किया था, तब भी उसमें भूलें चाहे थोड़ी ही सही मगर, रह तो गयी ही है। प्रेम-गांठ तो जैसी है, वैसी ही कायम रहेगी। समय बल्कि उसे ज्यादा मजबूत कर देगा। पर इनसे क्या? इतना तो स्पष्ट है ही कि कितना भी समझानेपर, बहुत महत्वकी बातमें हमारा मार्ग अलग पड गया है। ज्यों-ज्यों मैं विचार करता हूँ, त्यों-त्यों देखता हूं कि कांग्रेस अपने मार्गसे नीचे उतर गयी है। उसके पास जो मूलधन था, वह उसने खो दिया है। यह कहा जा सकता है कि यह मूलधन कांग्रेसके पास था ही नही, इसलिए उसे खोना क्या था? कांग्रेसकी अहिंसा तो स्थापित सरकारके साथ लडने तक ही परिमित थी। बाकी क्षेत्रोंके विषयमें तो कांग्रेसने कभी निर्णय किया ही नहीं था, करनेका अवसर ही नही था। व्यक्तिगत बचाव करनेकी छूट तो कांग्रेसने गयामें ही दे दी थी। इन दलीलोंके लिए स्थान तो है, मगर मैं देखता हूं कि काफी संख्यामें कांग्रेस-वादी यह मानते है कि अहिंसाके गर्भमें ऊपरके क्षेत्र आ ही जाते है। उसके बिना अहिंसा बिना सिरके धडकी तरह निर्जीव मानी जायगी। मगर जहाँ हृदयकी वीणा बज रही हो, वहाँ चाहे किसी भी पक्षकी दलीलोंका शब्द-जाल हो, उससे क्या फायदा?

ऐसी विषम स्थितिमें सरदार आदिने जो मार्ग ग्रहण किया है, वह उनके लिए शोभाप्रद है, क्योंकि उनका हृदय उन्हे प्रेरणा कर रहा है। सरदार भाषणकर्त्ता नहीं, कार्यकर्त्ता है। उनमें जो कुशलता है उसके अनुसार बिना आगा-पीछा देखे अपने काममें मस्त रहते है, और सदा रहे।

मेरा मार्ग मेरे सामने स्पष्ट है। मगर जो लोग आजतक हम दोनोंको एक समझकर काम करते आये है, वे क्या करें? उनकी स्थिति कठिन जरूर है। उनकी अहिंसा उनकी आत्मामें ओत-प्रोत न हुई हो, सिर्फ मेरी अहिंसाके आधारपर निभती हो, तो उनका धर्म है कि सरदारके पीछे चलें। सरदार मार्ग भूले है, ऐसा मैं मानता हूँ, या यों कहिये कि मेरे मार्गपर चलना उनकी शक्तिसे बाहर है। मेरी सम्मतिसे, मेरे प्रोत्साहनसे उन्होंने यह अलग रास्ता अख्तियार किया है। इसलिए जिनके मनमें शंकाको स्थान है, उन्हे सरदारके पीछे ही चलना चाहिए। मैं मानता हूँ कि सरदार अपनी भूल देखेंगे, या जो शक्ति उनमें नहीं है, ऐसा वह मान बैठे है, वह शक्ति जब उनमें आ जायगी, तब वह फिर मेरा रास्ता ग्रहण करेंगे। जब वह सुअवसर आयेगा, तब दूसरे सरदारके साथ मेरे मार्गपर आयेंगे। ऐसा करनेमें उनकी सुरक्षितता है।

मगर जिनके मनमें अपने मार्गके विषयमें शंका ही नहीं, जिन्होंने अहिंसाको अपना

लिया है और सब संकटोंमें सिर्फ अहिंसा-रूपी शस्त्रके द्वारा ही जिन्हे रक्षा करनी है, उनको चुपचाप कांग्रेससे निकल जाना चाहिए। अगर वे सच्चे अहिंसक होंगे, तो कांग्रेसमें दो पक्ष नही होने देंगे। कांग्रेसमेंसे निकल गये, तो दो पक्ष पड़नेकी बात ही कहाँ रही? कांग्रेससे निकलकर भी वह प्रतिपक्षी नहीं बनेंगे। कांग्रेसके अनेक अहिंसक कार्योंमें जहाँ सरदार मदद माँगेंगे, वहाँ मदद देंगे और जहाँ हुल्लड वगैरा होता होगा, वहां वह यथाशक्ति उसे मिटानेका प्रयत्न करेंगे। मेरी कल्पनाका एक छोटा-सा भी सत्याग्रही-मडल बने तो वह इष्ट है और बनना चाहिए और मैं मानता हूँ कि वह लोग अहिंसाका झडा अखंड फहराता हुआ रख सकेंगे। इतना ही नहीं, बल्कि कांग्रेसवादियोंके हृदयपर भी उसका असर डाल सकेंगे। बहुतसे कांग्रेसियोकी इच्छा तो है ही कि सब क्षेत्रोंमें अहिंसापर अमल हो, पर वह सम्भव है या नहीं इस बारेमें उन्हे शका है। इस शकाका निवारण करना मेरा और मेरे सहधर्मियोका कर्तव्य है।

हरिजन-सेवक,
३ अगस्त, १९४०

गांधी जी

खण्ड दस

आहिंसा

(द्वितीय भाग)

सम्पादक मण्डल

कमलापति त्रिपाठी (प्रधान सम्पादक)
कृष्णदेवप्रसाद गौड़
काशीनाथ उपाध्याय 'भ्रमर'
करुणापति त्रिपाठी
विश्वनाथ शर्मा (प्रबंध सम्पादक)

मूल्य डेढ़ रुपया

(प्रथम संस्करण : नवम्बर, १९४८)

प्रकाशक
जयनाथ शर्मा
व्यवस्थापक
काशी विद्यापीठ प्रकाशन विभाग
बनारस छावनी

मुद्रक
पं० पृथ्वीनाथ भार्गव
अध्यक्ष
भार्गव भूषण प्रेस, गायघाट
काशी

सूची

&

प्रकाशकका वक्तव्य

'गांधीजी' ग्रंथमालाका यह चौथा प्रकाशन 'अहिंसा' खंडका दूसरा भाग है। यह ग्रंथमालाके दसवें खंडका भाग है। इसका प्रथम भाग बापूकी विगत जयंतीके शुभ अवसरपर प्रकाशित हो चुका है।

पूज्य बापूकी लेखनीसे अहिंसाके सिद्धांतोंपर जो अमूल्य विचारधारा जगतको प्राप्त हुई है, उनका यह संग्रह है। आशा है कि अगले दो भागोंमें अहिसा संबंधी बापूके लेख समाप्त होंगे।

इस भागके प्रकाशनकी अनुमति देकर श्री जीवनजी डाह्याभाई देसाई (व्यवस्थापक-ट्रस्टी, 'नवजीवन' ट्रस्ट, अहमदाबाद) ने जो कृपा की है, उसके लिए हम उनके आभारी हैं।

प्रथम भागकी तरह ही इस भागके तैयार करनेमें हमें काशी विद्यापीठके भूतपूर्व अध्यापक स्वर्गीय श्री कन्हैयालालजी द्वारा संग्रहीत 'हिन्दी नवजीवन' से बडी ही सहायता मिली है। हम उनकी स्वर्गीय आत्माके प्रति कृतज्ञ हैं। काशीके प्रसिद्ध कांग्रेस-कार्यकर्त्ता तथा गांधीभक्त श्री रामसूरत मिश्रजीने भी अपने 'सग्रह'के उपयोगसे बड़ी सहायता दी है। हम उनके भी आभारी है।

ग्रंथमालाके आशातीत प्रचारसे हमें जो बल, उत्साह तथा साहस प्राप्त हुआ है उसके सहारे हमें विश्वास है कि गांधी-साहित्यके प्रचार तथा प्रसारके इस अनुष्ठानमें हम सफल सिद्ध होंगे।

गाधीजी ग्रंथमालाके अबतक प्रथम खण्डके दो भाग तथा दसवे खण्डके दो भाग, कुल चार प्रकाशन निकल चुके हैं। बीचके खंड अभी प्रकाशित होने हैं। इनके प्रकाशनके लिए सामग्री अभी संग्रहीत हो रही है।

❀

आमुख

गांधीजीके जीवनका वर्णन यदि एक शब्दमें किया जाय तो वह 'अहिंसा' है। उनके जीवनका स्वप्न, उनका सारा कार्यक्रम अहिंसाका ही स्वरूप था। इसीके लिये वह जीवित रहे और इसीके लिये मरे। उनके लेखों तथा कथनका अधिक भाग इसी विषयपर था और जो नहीं था वह भी इसी ध्येयका पूरक था। उनकी अहिंसा केवल सिद्धांत अथवा विचारकी सीमामें नहीं थी, न राजनीतिक आवश्यकताकी सामयिक पुकार थी। वह यदि मच्छर, पिस्सू और कीटाणुओंकी हिंसा करनेको बाध्य थे तो इसलिए नहीं कि इनकी हिंसा हिंसा न थी। केवल इसलिए कि विज्ञानने कोई ऐसी विधि नहीं बतायी, न मानव-जीवन इतना प्रशस्त हो सका जो इनकी हिंसा किये बिना मानव-समाजकी रक्षा कर सके। इनकी हिंसाको रोकनेमें वह असमर्थ थे और इसका उन्हें दुःख था। युद्धमें भी वह सम्मिलित हुये तो भी इसलिए नहीं कि हिंसा द्वारा विजय प्राप्त करनेमें उन्हें आनंद था, केवल इसलिए कि यदि संभव हो सके तो हिंसाकी शीघ्रातिशीघ्र समाप्त की जा सके।

अपने दृष्टिकोणको बार-बार उन्होंने समझाया। संसारके विचारकोंने कितनी बार उन्हें लिखा और सदा उन्होंने उन्हें समझाते हुये अपना विचार समाजके सामने रखा। लोगोंको उनके विचारमें असंगति भी देख पड़ी। किंतु वह असंगति न थी। जिस भांति हीरेके अनेक पहलू अलग-अलग होते हैं, और सबमेंसे अलग-अलग किरणोंका प्रकाश निकलता है किंतु मूलमें वह हीरा एक होता है, उसी प्रकार अहिंसा-संबंधी उनके विचार हैं। उनकी दृष्टिमें जगतके सारे प्राणी एक हैं, जहांतक जीवका संबंध है। उनमेसे किसीको हानि पहुँचाना हिंसा है। इतना ही नहीं, किसीके प्रति कुछ कहना जो उसे कष्ट पहुँचाये, हिंसा है। गाधीजी यहीं नहीं रुकते, किसीके प्रति हानि पहुंचानेवाली बात सोचना अहिंसामें ही सम्मिलित है! नैतिक आचारका स्तर इतना ऊँचा बनाना गांधीजीकी विशेषता थी। जबतक वह जीवित थे लोगोंका इस विषयमें अनेक शंकाएं थीं, किंतु लोग जानते हैं कि इसी अहिंसाने भारतको स्वराज्यकी विजय प्रदान की।

गांधीजी यह भी समझते थे कि इस अहिंसाकी शिक्षा संसारको यदि कोई दे सकता है तो वह देश भारत ही है। उनका कहना है कि स्वभावसे ही मनुष्य अहिंसक है। उसकी इस प्रवृत्तिको विकसित तथा उत्तेजित करना है। और इसके लिये सबसे उपयुक्त देश भारत है। इसलिए नहीं कि उसके पास अस्त्र-शस्त्र नहीं है, परंतु इसलिए कि शतियोंसे अहिंसाकी परंपरा यहां चली आ रही है और यहांके निवासियोंके प्रतिदिनके जीवनमें अहिंसाका महत्वपूर्ण स्थान है। भारत स्वयं उनकी शिक्षा ग्रहण नहीं कर सका, इससे उनकी शिक्षाकी सचाईमें कोई अंतर नहीं आता। संसारकी जो गतिविधि है उससे प्रतिदिन स्पष्ट होता जाता है कि संघर्ष और संग्रामका कहीं अंत नहीं है और इन सबका परिणाम मानवका, उसकी सभ्यताका और मानवताका विनाश है।

इन कारणोंसे और सभ्यताकी प्रगतिमें उचित पथ-प्रदर्शनके लिये गांधीजीके अहिंसा संबंधी प्रयोगोंका संसारके लिये और विशेषतः भारतके लिये महत्व है। इसलिए अहिंसा विषयक लेखोंका अधिकाधिक सचयन इस मालामें किया गया है। यह अहिंसाके लेखोका दूसरा संग्रह इस मालामें उपस्थित किया जा रहा है। इस विषयके उनके सही लेखोंको पढनेके पश्चात् उनकी अहिंसाकी दार्शनिक विचारधारा समझमे आ सकती है।

पूर्वकी भांति इन लेखोंकी भाषा वही है जो गांधीजीकी है, अथवा उन अनुवादोंकी जिन्हें उन्होंने स्वयं देखा था।

❀

"मेरे लिए सत्यसे परे कोई धर्म नही है, और अहिंसासे बढकर कोई परम कर्त्तव्य नही है। 'सत्यान्नास्ति परो धर्म' और 'अहिंसा परमो धर्म' इन दो सूत्रोमे धर्म शब्दके अर्थ भिन्न है। इनके मानी है, सत्यसे बढ़कर कोई ध्येय नही और अहिंसासे बढ़कर कोई कर्त्तव्य नही है। इस कर्त्तव्यको करते-करते ही आदमी सत्यकी पूजा कर सकता है। सत्यकी पूजाका दूसरा कोई साधन नही है। सत्यके लिए देशके नाशका भी साक्षी बनना पडे तो बनना चाहिए, देशको छोडना पडे तो छोडना चाहिए। यदि मेरा कोई सिद्धान्त कहा जाय तो वह इतना ही है। पर इसमे गाधीवाद जैसी कोई चीज नही है। मैंने जो कुछ लिखा है, वह मैंने जो कुछ किया है उसका वर्णन है, और मैंने जो कुछ किया है वही सत्य और अहिंसाकी सबसे बडी टीका (व्याख्या) है।"

—गाधीजी

राष्ट्रपिता

जैनी अहिंसा

एक जैन मित्र, जिन्होंने जैन दर्शन तथा दूसरे दर्शनोंका अभ्यास किया है, चालू चर्चाके विषयमे लम्बा पत्र लिखते हैं। वह विचारने जैसा है और बड़े विनय तथा शांतिसे दलील करनेवाले पत्रोंमेंसे यह एक है, इसलिए उनका सारांश नीचे दे रहा हू। ये मित्र लिखते हैः

"आपका अहिंसाका अर्थ लोगोंको किंकर्त्तव्यविमूढ बना देता है। हिंसाका सामान्य अर्थ किसी भी प्राणीको देहसे मुक्त करना है। और ऐसा न करना अहिंसा है। किसी भी जीवको पीडा न करना यह अहिंसा शब्दका अर्थ-विकास है। अत्र अहिंसा शब्दके अर्थमे किसी भी तरहके प्राणहरणका समावेश हो यह बात मेरे दिलमे नहीं वैठती। इसका अर्थ यह न करे कि कैसी भी परिस्थितिमें कैसा भी प्राणहरण उचित न गिना जायगा, ऐसा मै मानता हूँ। वस्तुतः नीतिका कोई भी नियम बिलकुल निरपवाद है ऐसा मुझे प्रतीत नहीं होता। 'अहिंसा परमो धर्मः' यह दिशासूचक महान धर्म है, किंतु अहिंसा यही परम धर्म है ऐसा नहीं कह सकते। इसीसे आप जिसे अहिंसक प्राणहरण समझते हैं वह धर्म हो सकता है परतु वह अहिंसक नहीं गिना जा सकता।"

मेरा तो ऐसा अभिप्राय है कि ज्यो-ज्यों जीवनका विकास होता है त्यों-त्यों शब्दोंके अर्थका भी विकास होता है। यह अनेक दृष्टांतोंसे प्रत्येक धर्ममें हम सिद्ध कर सकते हैं। हिंदूधर्ममें ऐसा एक शब्द 'यज्ञ' है। श्री जगदीश वसुके प्रयोग, शब्दोंके अर्थमे क्राति पैदा कर रहे हैं। उसी माफिक यदि हम अहिंसाकी साधना चाहते हों तो हमे अहिंसा शब्दके अर्थ-समुद्रमें कूद पड़ना ही होगा। अपने पूर्वजोंकी जमा की हुई पूँजीमे वृद्धि करना ही हमारा धर्म है। 'अहिसा परमो धर्मः' नामक सूत्रको हम नहीं सुधार सकते, परंतु यदि हमें उस पूँजीका वारिस बने रहना है तो हमें उसमे रखी हुई अमित शक्तिकी खोज करते रहना चाहिये। फिर भी मैं शब्दके झगड़ेमे पड़ना नहीं चाहता। मेरी वर्णनकी हुई परिस्थितिमे किया हुआ प्राणहरण अहिंसक न गिना जाय और धर्म माना जाय तो उसका विरोध करना मै नहीं चाहता। इन मित्रकी दूसरी शंका यह है—

'और जिस प्रसगमें आप पुत्रीके प्राणहरणको अहिंसक मानते हैं वह प्रयत्न करनेपर भी समझमें नही आता। ऐसे मौकेपर आक्रमण करनेवालेका प्राण लेना उचित हो सकता है, परतु पुत्रीका क्या दोष? ऐसा आक्रमण होनेसे लड़की क्या ऐसी अपवित्र हो जाती है कि फिर उसे जीवित रहनेका अधिकार ही नहीं रहता? ऐसे संयोगमे पुत्री लोकापवादके डरसे प्राण-हरण चाहे तो भी उसे ऐसे कामसे रोकना हमारा धर्म है।

यह क्या आप नहीं मानते ? जिसपर बरजोरीसे अत्याचार हुआ है ऐसी, और जिसमें आक्रमणसे हाथ-पैर कट गये हैं, उन दोनोंमें मुझे जरासा फर्क नहीं दीखता ।"

पुत्री अपवित्र हो जायगी इस भयसे मै उसका प्राणहरण नहीं कर सकता, परंतु यदि वह अपनी राय बतला सकती हो तो, वह यही चाहेगी, ऐसा माननेका कारण है, मै उसका प्राणहरण करूगा। लोकापवादसे डरकर यदि वह ऐसी याचना करे तो मै उसे अवश्य रोकूँ। परंतु यह स्वय किसी व्यभिचारीकी जबरदस्तीके वश होनेके बदले मृत्युको भेंट करना स्वतत्र रीतिसे चाहेगी ऐसा माननेपर और तभी मै उसका प्राणहरण करूगा। सीता ऐसी सती यह याचना स्वतंत्र रीति कर सकती है। ऐसा मेरा दृढ़ विश्वास है। अमुक परिस्थितिमें वीर पुरुष मृत्युको विशेष पसद करता है ऐसा हम जानते हैं और यह उचित ही है। मैं असत्य भाषण करूं उसकी अपेक्षा मृत्युको ही अधिक पसंद करूंगा, मैं व्यभिचार करने लग जाऊं उसकी अपेक्षा मृत्युको ही अधिक पसद करूँगा। मै मानता हूं कि शास्त्रोंकी भी यही आज्ञा है। ऐसी मृत्यु हजारों अथवा लाखों चाहते हैं ऐसा मेरा अनुभव है और इस विचारका विस्तृत प्रचार करना मैं आवश्यक समझता हूं। शीलभंग और दूसरे अंगके भगके दरमियान कोई भेद नहीं है इस बातका स्वीकार मुझसे नहीं हो सकता। परंतु दूसरे अग-भंगके विषयमें ऐसी वस्तुस्थितिकी कल्पना की जा सकती है कि जब मनुष्य उस अंग-भंगकी अपेक्षा मृत्युको अधिक प्रिय मानेगा।

तीसरी शंका यह है—

"अमुक परिस्थितिमे बन्दरोंको मार डालनेका अतिम इलाज विचारनेके बदले साधारण तौरसे दो चारको जख्मी करनेका उपाय या उसका विचार आप असह्य क्यों गिनते हैं ? अनेक अंधे-लूले एव असाधारण दर्दसे घिरे हुए प्राणियोंमे भी जीवित रहनेकी वृत्ति सबसे अधिक प्रबल होती है, यह क्या आप नहीं मानते ? हम किसीका दुःख न देख सकें इससे उसे मार डालनेका विचार करनेमें हमारी एकात स्वार्थ-बुद्धि छिपी हुई है, यह क्या आप नहीं मानते ?"

दो चार वंदरोंको जख्मी करनेका विचार मुझे असह्य लगता है क्योंकि दूसरे प्राणियोंके अनुभवसे मैं जानता हूँ कि उन वंदरोंको आखिर पीड़ित होकर मरना ही होगा। और यदि मै किसीको भी मारना उचित मान लूं तो उसे दुःखी करके मारनेकी अपेक्षा तत्क्षण मार डालना ही मैं अधिक पसंद करूंगा और मैं शायद जख्मी वन्दरोंके लिए अस्पताल खोलनेको तैयार न होऊँ फिर भी उन्हें जख्मी करनेमे दया-धर्म कहाँ रहा हुआ है यह मेरी समझके बाहर है। जो अंधे-लूले इत्यादि जीवित रहनेकी वृत्ति रखते हैं उन्हे ऐसा ज्ञान है कि कोई न कोई हमें सहायता देगा ही। परंतु किसी अंधेको हम निर्मनुष्य जगलमें छोड़ आवें

और उसके विषयमें नास्तिकताकी कल्पना करें और उसे किसीकी भी मदद मिलनेवाली नहीं है ऐसा उसके विषयमें मान ले तो ऐसी परिस्थितिमें मैं यह नहीं मानता कि वह जीवित रहना चाहेगा। हर किसी परिस्थितिमें प्राणीकी जीवित रहनेकी इच्छाको पुष्ट करना ही चाहिये ऐसा धर्म मैं नहीं स्वीकार करता हूँ।

चौथी शंका यह है—

"जैन धर्मका अहिंसाका विचार तीन सिद्धान्तोंपर आधार रखता है--

(१) ऐसी कोई परिस्थिति हो ही नहीं सकती जिसमें चाहे जैसी पीड़ा होनेपर भी कोई भी प्राणी समझके साथ जीवित रहनेकी भी आशाका त्याग करके दूसरोंके हाथसे मृत्यु चाहे। इसलिए कभी इस भाँतिके प्राणहरणको धर्म न गिनना चाहिये।

(२) हिंसासे भरी हुई अनेक प्रवृत्तियोंसे व्याप्त इस ससारमें, व्यवहारमें मुमुक्षु प्राणीको चाहिये कि जहाँतक बन सके बहुत कम प्रवृत्तियोंका सूत्रधार बनकर अहिंसाका आचरण करे।

(३) कई एक हिंसाएं प्रत्यक्ष होती है और कई एक अप्रत्यक्ष। उदाहरण स्वरूप खेती करनेमे प्रत्यक्ष हिंसा रखी हुई। अन्न खानेमे खेतीसे सबंध रखनेवाली अप्रत्यक्ष हिंसा रखी हुई है। जहाँ इन दो तरहकी हिंसामे एक भी हिंसासे बच सकनेका उपाय ही नहीं वहा प्रत्यक्ष हिंसासे यथाशक्ति दूर रह कर सुज्ञ मनुष्यको चाहिये कि अहिंसा धर्मका पालन करे।

इन तीन सिद्धातोंकी आप अवश्य चर्चा करेंगे। क्योंकि जैनियोंकी अहिंसा-दृष्टि और आपकी अहिंसा-दृष्टिमे एक महत्वका भेद यह दिखायी पड़ता है कि जैनियोंकी अहिंसा-दृष्टि निवृत्तिपर है, जब आपकी अहिंसा-दृष्टि प्रवृत्तिपर है। वर्तमान काल-धर्म कर्मपरायण है, इसलिए यदि अहिंसा देश और कालसे अनाधित धर्म हो तो अभीतक अहिंसाका विचार निवृत्तिकी ओर झुकनेके दृष्टिसे ही हुआ है। उसका कर्मप्रधान युगमे क्या स्वरूप हो सकता है और उसको व्यवहारमे कैसे वर्ता जा सकता है इस विषयपर लोगोंमें विचार-जाग्रति करनेकी परम आवश्यकता मुझे प्रतीत होती है।"

ऐसी सिद्धांत-चर्चामें उतरना मुझे प्रिय नही है। ऐसी चर्चा करनेमे हानि भी हो सकती है यह मैं जानता हूँ परंतु कुछ अशोंमें यह चर्चा मैंने ही स्वयं मांग ली है। इसलिए इन मित्रकी इच्छित सिद्धांत-चर्चाका मैं बिलकुल ही इन्कार नहीं कर सकता हूँ। पहले सिद्धांतके विषयमें मैं अपनी नम्र मान्यता इसी लेखमें प्रकट कर चुका हूँ। और मेरी ऐसी भी मान्यता है कि चाहे जैसी दशामें भी क्यों न हो, जीनेकी इच्छा प्राणी छोड़ ही नहीं सकता इस मान लिये गये सिद्धातमें हमारी भीरुता रखी हुई है। और उसीके कारण बहुतसी हिंसा हो रही है, और ऐसे ही सिद्धांतोका प्रतिपादन होता रहा तो हिंसा बढ़ेगी, घटेगी नहीं। मुझे प्रतीत होता

है कि जिस तरहसे पहला सिद्धांत यहां रखा गया है वह यदि सचमुच सिद्धांत ही हो तब तो वह मोक्षका विरोधी है। जो मनुष्य निरंतर मोक्षको याचना किया करते है वे हमेशा दूसरोंकी मृत्युसे अपना देह धारण करना नहीं चाहेंगे। मुमुक्षु तो इस जगतमें ठीक संख्यामें है ही। वे जीवित रहनेकी आकाक्षाको छोड़े हुए है, ऐसा हमें मानना ही पड़ेगा। मित्रके दिये गये सिद्धांतको ये मुमुक्षु भंग तो नहीं करते हैं ? अथवा इस सिद्धातको शायद इस तरह रखना मित्रने चाहा न हो। जिसने मोक्षको बुद्धिसे भी जाना नहीं है, ऐसी मूर्छावस्थामें पड़े हुए प्राणी-मात्र जीवित रहनेकी आकांक्षा नहीं छोड़ सकते। ऐसोंकी आकांक्षाके बीच जिसने आकांक्षाका त्याग किया है ऐसा मुमुक्षु अपना स्वार्थ साधनेको या अपने देहकी रक्षा करने क्यों आवेगा ? यदि मै इस मोक्ष-प्रकरणको छोड़ स्वदेश-प्रेम या कौटुम्बिक प्रेमके क्षेत्रका विचार करूँ तब भी मालूम पड़ता है कि जीवित रहनेकी आकाक्षा छोड़े हुए अनेक देश-प्रेमी, कुटुम्ब-प्रेमी, जगत-प्रेमी अपने कर्त्तव्यके विषयमें परायण रहते हैं। आज इस दुनियामें जीवितव्यकी आकांक्षा छोड़नेकी शिक्षा दी जा रही है। हर एक अवसर पर जीवित रहनेकी आकांक्षाको साथ लिए फिरना, इसमें मै तो स्वार्थकी पराकाष्ठा देखता हूँ। मेरे इस कथनका कोई अनर्थ न कर बैठे। उस आकांक्षाका त्याग किसीसे भी जबर्दस्ती नहीं कराया जा सकता। यहां तो मै सिर्फ जीवितव्यकी आकांक्षाके सिद्धांतके विरूद्ध दृष्टान्त दे रहा हूँ। और उस सिद्धांतके अंतर्गत रहे हुए अनर्थ बतला रहा हूँ।

दूसरा सिद्धांत, यदि सिद्धांत कहे जानेके योग्य है अथवा वह चाहे जिस नामसे पहिचाना जाय, उसको मैं स्वीकार करता हूँ।

तीसरे सिद्धातमें मित्रने जिस प्रकार उसे रखा है उसमे तो मैं बहुत दोष देख रहा हूँ। उस सिद्धांतका भयंकर नतीजा तो यह निकलता है कि जिस खेतीके बिना मनुष्य जीवित ही नहीं रह सकता वह खेती अहिंसा-धर्म पालन करनेवालेको, उसीपर जीवित रहते हुए भी, त्याग ही देना चाहिये। ऐसी स्थिति मुझे अतिशय पराधीनताकी और करुणाजनक प्रतीत होती है। खेती करनेवाले असख्य मनुष्य अहिंसा धर्मसे विमुख रहें, और खेती नहीं करनेवाले मुट्ठी भर मनुष्य ही अहिंसा सिद्ध कर सकें ऐसी स्थिति मुझे परम धर्मवाली अथवा उसे सिद्ध करनेवाली नहीं मालूम होती। उससे उलटा मुझे तो वह यह प्रतीत होता है कि सुज्ञ मनुष्य जबतक खेतीका सर्व-व्यापक उद्योग न करे तबतक वे नाममात्रके ही सुज्ञ हैं। वे अहिंसाकी शक्तिका नाम निकालनेमे असमर्थ हैं। खेती जैसे व्यापक उद्योगमे लगे हुए असख्य मनुष्योंको धर्मकी राहपर लगानेके वे लायक नहीं है। यदि यह सचमुच सिद्धातमे गिनी जानेवाली वस्तु हो तो उस विषयमे अहिंसाके उपासकका कर्तव्य है कि बार-बार विचार करे। खेतीके दृष्टांतका जरा विस्तार करे तो हास्यजनक परिणाम आता है। सांपको मारे विना यदि चल ही नहीं

सकता तो मुझे उपर्युक्त सिद्धांतानुसार उसे दूसरेसे मरवाना चाहिये, चोरको सजा देकर भगाना अनिवार्य हो तो उस हालतमे मुझे दूसरोंसे उसे दंड दिलाना चाहिये, मेरी रक्षामें रहे हुए बालकों और बालाओंका रक्षण जुल्मी मनुष्योंसे करना अनिवार्य हो तो मुझे वह दूसरोंसे करवाना चाहिये, और अहिंसा धर्मका अनुपालन करना चाहिये। मेरी दृष्टिमें यह धर्म नहीं है, अधर्म है, यह अहिंसा नहीं किन्तु हिंसा है, ज्ञान नहीं मोह है। सापकी, चोरकी, जुल्मगारकी प्रत्यक्ष भेट जबतक न करूँ तबतक मै भयमुक्त होनेका नहीं, और जबतक मै भयमुक्त न होऊँ तबतक अहिंसा-धर्मका पालन मेरे लिए वंध्यापुत्रके अस्तित्व जैसा ही रहेगा। और अहिंसा धर्मका जो एक महा-परिणाम आना चाहिए वह तो कभी आ ही नहीं सकता। अहिंसाके विषयमे शास्त्रोंकी शिक्षा तो यह है कि उसके सानिध्यमें चोर चोरी छोड़ेगा, हिंसक मनुष्य वा दूसरा प्राणी हिंसा छोड़ेगा, इस शिक्षाके सत्यका मै यत्किंचित पालन करनेसे भी अनुभव कर सका हूँ। जुल्मगार जुल्म छोड़ेगा। इसीसे मुझे मालूम होता है कि तीसरा सिद्धात जैसा वह रखा गया है उसमे कुछ भूल हुई है। परंतु यदि भूल न भी हुई हो तो और वास्तवमें जैनी अहिंसाका यह सिद्धांत हो तो भी मेरी बुद्धि या मेरा हृदय उसको स्वीकार कर ही नहीं सकते।

अब रहा प्रवृत्ति-निवृत्तिका झगड़ा। मै निवृत्ति-धर्मको मानता हूँ। परतु यह निवृत्ति प्रवृत्तिमे गुप्त रही हुई होनी चाहिये। देहमात्र प्रवृत्तिके बिना एक पल भर भी टिक नहीं सकता यह स्वयंसिद्ध वस्तु है। प्रत्येक सांस जो हम लेते हैं प्रवृत्ति सूचक है, वहां निवृत्तिका अर्थ यही हो सकता है कि शरीर निरंतर प्रवृत्त रहनेपर भी आत्मा निवृत्त रहे अर्थात् उसके विषयमें अनासक्त व्यवहार करे। इसलिए निवृत्ति-परायण मनुष्य सिर्फ परमार्थके खातिर ही अपनी प्रवृत्ति जारी रखे। अर्थात्, मुझे तो यह प्रतीत होता है कि अनासक्त रहकर परमार्थके खातिर की गयी प्रवृत्ति ही निवृत्ति है। फिर चाहे वह खेती हो या सूत कातना हो या अन्य कोई प्रवृत्ति हो जो कि परमार्थ कही जा सकती हो। इसलिए इस प्रकारके निवृत्ति धर्मको माननेवाले मुझ जैसेको यह जानना और खोजना आवश्यक है कि देहधारीसे अहिंसाका पालन किस तरह और किस अशतक हो सकता है। इस विचारको सादी भाषामें ही रख दूँ। खेती वगैरह मनुष्य जीवनके लिए अनिवार्य ऐसे उद्योगका करनेवाला अहिंसा धर्मको कैसे जाने, उसका पालन किस भाँति करे, यही मुझे तो मालूम करना है। धर्ममे सर्वव्यापक होनेकी शक्ति होनी चाहिये। यह जगतके सौवें हिस्सेका इजारा नहीं हो सकता। होना भी नहीं चाहिये। मेरा दृढ विश्वास है कि सत्य और अहिंसा—ये जगत्-व्यापी धर्म हैं। इसीसे तो उसके अर्थकी खोजमे जीवन खपा देते हुए भी मैं रस लूट रहा हूँ और उस रसको लूटनेको दूसरोंको भी आमंत्रण दे रहा हूँ।

हिन्दी नवजीवन

२५ अक्टूबर, १९२८

❀

फौजी विभागकी सूक्ष्म देख-रेख और प्रभुता रहने, आदि कारणोंसे देशके नौजवानोंकी मनोवृत्ति भी दिन-दिन ज़्यादातर लड़ाई-पसन्द होती जाती है। यही नहीं बल्कि डाकघर, समाचार-पत्र, रेडियो, सिनेमा, विज्ञान, कला आदि क्षेत्रोंके जीव भी धीरे-धीरे इसकी प्रभुतामें आते जाते हैं। इससे यह डर लगता है कि कहीं जगद्व्यापी युद्धकी जो तयारी और जो संगठन इस समय हो रहा है, उसके फन्देमे ये लोग भी शीघ्र ही न फस जाय, अगर यह हुआ ही तो इसकी वजहसे मानव जातिकी स्वतत्रताको, वाक्-स्वातत्र्य और विचार-स्वातन्त्र्यके जन्म-सिद्ध हकको और सामाजिक उन्नतिको सख्त आघात पहुँचेगा। अर्थात्, फौजी साधनों द्वारा देशके सरक्षणके लिए जो कीमत चुकानी पड़ती है, उसमें इसकी भी गिनती होनी चाहिये। इसपरसे पाठक समझ सकेंगे कि फौजी तैयारी द्वारा की गयी रक्षा ससारके लिए कितनी महँगी पड़ती और भविष्यमे कितनी अधिक महँगी पड़ेगी।

"लेकिन इससे भी अधिक चिंताकी बात तो यह है कि फौजी साधनपर बराबर अनन्त धन व्यय करते हुए भी आज जनता सुखकी नींद नहीं सो सकती। सभव है, दस-बीस सालतक जैसे-तैसे यह हालत निभ जाय, मगर आखिरकार तो इस नीतिके कारण निःसदेह ससार पतनके गड्ढेमे गिरकर रहेगा। कुछ समय पहले सिनेटर बोराने 'तैयारीके मानी' शीर्षकसे लिखते हुए ससारकी जनतापर दिनपर दिन बढनेवाले और सरकारी कर्जके बढ़ते हुए बोझकी तरफ खास तौरपर ध्यान खींचा था और कहा था—'भविष्यमें सरकारोंको अपनी शक्तिका अधिकसे अधिक उपयोग विरोधीके दलसे लड़नेमें नहीं' बल्कि अपनी रिआयाकी आर्थिक और राजनीतिक अशान्तिको दबानेमे करना होगा।' इसका नतीजा यह होगा कि राज्य जितने बड़े पैमानेपर फौजी तैयारी करेंगे, उतनी ही उनकी हालत सकटमय बनेगी। क्योंकि सरकार और रिआयाके बीचकी खाई अधिक गहरी होती ही जायगी और जनतामें निराशा तथा असन्तोषका वातावरण भी बढता ही जायगा। इस हालतको सरक्षणकी तैयारी कहना 'सरक्षण' शब्दका दुरुपयोग करना है जिसके वजहसे रिआयाका आर्थिक सकट घटनेके बदले बढ़ता है, वह तैयारी नहीं, बल्कि अ-तैयारी है।"

आजकल लोग सहज ही यह मान लेते हैं कि जो बात अमेरिका और इङ्गलैण्डके लिए उचित-अनुकूल है, वही हमारे लिए भी उचित होनी चाहिये। मगर उक्त लेखकने फौजी तैयारीके लिए आवश्यक खर्चके जो चौंकानेवाले आँकडे दिये है उनसे सचमुच हमें सावधान हो जाना चाहिये। आजकलकी युद्धकला केवल घातक शस्त्रोंको बनाने वाली कलाभर रह गयी है। उसमे वीरता या सहन-शक्तिको बहुत ही थोड़ा स्थान प्राप्त है। हजारों स्त्री-पुरुष और बालकोंको बटन दबाकर या ऊपरसे जहर बरसाकर निमिषमात्रमें नामशेष कर देना, मार डालना ही वर्तमान युद्धकलाकी पराकाष्ठा है।

क्या हम भी अपने संरक्षणके लिए इसी पद्धतिका अनुकरण किया चाहते हैं? हमें इसपर विचार क[illegible] कि क्या हमारे पास इस संरक्षणके लिए काफी [illegible]न या [illegible] दिन-दिन बढ़ते जाने वाले फौजी

खर्चकी शिकायत करते हैं, मगर यदि हम इङ्गलैण्ड या अमेरिकाकी नकल करने लगेंगे तो हमारा फौजी खर्च आजसे कहीं अधिक बढ जायगा।

आलोचक शायद पूछेंगे कि अगर किसी चीजके लिए यह संरक्षण आवश्यक ही हो तो उतना भार उठाकर भी उसकी रक्षा क्यों न की जाय? लेकिन बात तो यह है कि दुनिया आज इस गम्भीर सवालका जवाब खोजने लगी है कि आया यह संरक्षण कर्तव्य है अथवा नहीं। उक्त लेखक जोरदार शब्दोंमे जवाब देते हुए कहते है, 'किसी भी राज्यके लिए यह कर्त्तव्य नहीं।' अगर यह नियम सही-सच्चा हो तो हमें भी सेनाको बढ़ानेके झंझटमे न फंसना चाहिये। इसका यह अर्थ नहीं होता कि कोई हमसे जबरदस्ती शस्त्र छीन ले। यह सम्भव नहीं कि कोई परदेशी सरकार अपनी शासित जनतासे बलात् अहिंसाका पालन करा सके। हर एक देशकी रिआयाको स्वेच्छा-पूर्वक आत्म-विकास करनेकी पूरी-पूरी स्वतंत्रता होनी चाहिये। हमे यहां इस बातपर विचार करना है कि क्या हम पाश्चात्य देशोंकी नकल-भर करना चाहते हैं? वे आज जिस नरकमेंसे गुजर रहे हैं क्या हम भी उसी रास्ते गुजरना चाहते हैं? और भी आशा रखते हैं कि भविष्यमें किसी समय हम पुनः दूसरे पथके पथिक बन जायेंगे? या हम अपने सनातन शान्ति-पथपर दृढ़ रहकर ही स्वराज्य पाना चाहते और दुनियाके लिए एक नया मार्ग खोज देना चाहते हैं?

तलवार-त्यागकी इस नीति-भीरुताको कहीं कोई भी स्थान नहीं है। अपने संरक्षणके लिए हम अपना शस्त्रबल बढ़ावें और मारक शक्तिमें वृद्धि भी करें, तो भी अगर हम दुःख सहनेकी अपनी ताकत नहीं बढ़ाते तो यह निश्चय है कि हम अपनी रक्षा कदापि न कर सकेंगे। दूसरा मार्ग यह है कि हम दुःख सहन करनेकी ताकत बढाकर विदेशी शासनके चगुलसे छूटनेका प्रयत्न करें। दूसरे शब्दोंमें, हम शान्तिमय तपश्चर्याका बल प्राप्त करें। इन दोनों तरीकोंमें वीरताकी समान आवश्यकता है, यही नहीं, बल्कि दूसरेमें व्यक्तिगत वीरताके लिए जितनी गुंजाइश है, पहलेमें उतनी नहीं। दूसरे पथके पथिक बननेसे भी थोड़ी-बहुत हिंसाका डर तो रहता ही है, मगर यह हिंसा मर्यादित होगी और धीरे-धीरे इसका परिमाण घटता जायगा।

आजकल हमारा राष्ट्रीय ध्येय अहिंसाका है। मगर मन और वचनसे तो हम मानों हिंसाकी ही तैयारी करते हैं। सारे देशमें अधीरताका वातावरण फला हुआ है, ऐसे समय हमारे हिंसामें प्रवृत्त न होनेका एकमात्र कारण हमारी अपनी कमजोरी है। ज्ञान और शक्तिका भान होते हुए भी तलवार-त्याग करनेमें ही सच्ची अहिंसा है। मगर इसके लिए कल्पना-शक्ति और जगतकी प्रगतिके रुखको पहचाननेकी शक्ति होनी चाहिये। आज हम पाश्चात्य देशोंकी बाहरी तड़क-भड़कसे चौंधिया गये हैं, और उनकी उन्मत्त प्रवृत्तियोंको

भी प्रगतिका लक्षण मान बैठते हैं। फलस्वरूप हम यह नहीं देख पाते कि उनकी यह प्रगति ही उन्हें विनाशकी ओर ले जा रही है। हमें समझ लेना चाहिये कि पाश्चात्य लोगोंके साधनों द्वारा पश्चिमी देशोंकी स्पर्धामे उतरना अपने हाथों अपना सर्वनाश करना है। इसके विपरीत अगर हम यह समझ सकें कि इस युगमें भी जगत् नैतिक बलपर ही टिका हुआ है, तो अहिंसाकी असीम शक्तिमें हम अडिग श्रद्धा रख सकेंगे और उसे पानेका प्रयत्न कर सकेंगे। सब कोई इस बातको मंजूर करते हैं कि अगर सन् १९२२ में हम अन्ततक शान्तिपूर्ण वातावरण बनाये रखनेमें सफल होते तो हम अपने ध्येयको सम्पूर्ण सिद्ध कर सकते। फिर भी हम इस बातकी जीती-जागती मिसाल तो पेश कर ही सके थे कि यत्किंचित-सी अहिंसा भी कितनी असर करनेवाली हो सकती है। उन दिनों हमने जो तरक्की की थी, आज भी उसका प्रभाव कायम है। सत्याग्रह-युगके पहलेकी भीरुता आज हममें नहीं है। वह सदाके लिए मिट गयी है। अगर हम अहिंसासे बल पानेकी इच्छा रखते हैं तो हमें धैर्यसे काम लेना होगा, समयकी प्रतीक्षा करनी होगी। यानी, अगर सचमुच ही हम अपना रक्षण करते हों और संसारकी प्रगतिमें स्वयं भी हाथ बंटानेकी इच्छा रखते हों, तो उसके लिए तलवार-त्याग, पशुबल-त्यागके सिवा दूसरा कोई रास्ता ही नहीं है।

हिन्दी नवजीवन
५ सितम्बर, १९२९

❀

"दूसरेके लिए प्राणार्पण करना प्रेमकी पराकाष्ठा है और उसका शास्त्रीय नाम अहिंसा है। अर्थात यों कह सकते हैं कि अहिंसा ही सेवा है। संसारमें हम देखते हैं कि जीवन और मृत्युका युद्ध होता रहता है परन्तु दोनोंका परिणाम मृत्यु नहीं जीवन है।"

—गांधीजी

अहिंसा बनाम कायरता

डाक्टर हार्डीकरने मेरे पास एक विवरण भेजा है, जिसमें हिन्दुस्तानी सेवादलके कुछ स्वयंसेवकोंपर बागलकोट स्थानमें किये गये हमलेका वर्णन है। यह घटना पिछली जुलाई ता० ३१ को हुई कही जाती है। स्वयंसेवक पर्चे बाँटते हुए और बैंड बजाते हुए चले जा रहे थे। रास्तेमें एक ओर कुछ निचाईपर एक मस्जिद थी, जो दिखायी नहीं देती थी। स्वयंसेवकोंको इसका कुछ ख्याल नहीं रहा। वे मस्जिदके करीब तक बाजा बजाते ही रहे। मस्जिदमें जो लोग थे वे गुस्सेसे लाल-पीले होते हुए बाहर निकल आये, और जैसा कहा जाता है, स्वयंसेवकोंको पत्थर, लकड़ी, कुदाली और दूसरे हथियारोंसे मारने-पीटने लगे। डाक्टर हार्डीकरजीके कथनानुसार स्वयंसेवकोंने अनजानसे हुई भूलके लिए क्षमा माँगी, तो भी आक्रमणकारी हमला करते ही रहे। स्वयंसेवकोंने किसी भी तरह उसका विरोध नहीं किया। उन्होंने कानूनी कार्रवाई करना भी ठीक नहीं समझा। अब सवाल यह है कि स्वयंसेवकोंका यह संयम अहिंसक कहा जा सकता है या कायरता-पूर्ण। मेरी रायमें, यहाँ कायरताका कोई सवाल ही नहीं है। स्वयंसेवक अगर भाग जाते तो जरूर कायर कहलाते। मगर हकीकत तो यह है कि वे अपनी जगहपर डटे रहे, मार खाई, लेकिन मारका जवाब मारसे नहीं दिया। अहिसा और कायरता परस्पर विरोधी शब्द हैं। अहिंसा सर्वश्रेष्ठ सद्गुण है, कायरता बुरीसे बुरी बुराई है। अहिसाका मूल प्रेममें है, कायरताका घृणामें। अहिंसक सदा कष्ट-सहिष्णु होता है, कायर सदा पीड़ा पहुंचाता है। सम्पूर्ण अहिंसा उच्चतम वीरता है। अहिंसक व्यवहार कभी पतनकारी नहीं होता, कायरता सदा पतित बनाती हैं। मुझे स्वयसेवकोंके कार्यमें जरा भी कायरता नहीं दिखायी पड़ती। कोई भी उनके लिए उच्च कोटिकी वीरताका दावा नहीं करता। कहा जाता है कि लोगोंने ऐसे जंगली निर्दयतापूर्ण ढगसे हमला किया था कि कुछ मुसलमान स्त्रियोंने, जो पास ही खड़ी थीं, माफी माँग लेनेपर भी मारते रहनेके कारण आक्रमणकारियोंको खूब खरी-खोटी सुनायी थी। अगर वस्तुस्थिति ठीक बतायी गयी है, तो मेरी रायमे स्वयंसेवकोंका बर्ताव सराहनीय था और महासभाके अहिसक सिद्धान्तके बिलकुल अनुरूप था। ऐसे बर्तावकी योग्यता-अयोग्यताके सम्बन्धमें मतभेद भले हो, फिर भी स्वयंसेवकोंकी वीरताके सम्बन्धमें दो मत कदापि नहीं हो सकते। आहत स्वयंसेवकोंने कोई भी कानूनी कार्रवाई न करके महासभाके (काग्रेस) सिद्धान्तका निस्सन्देह पूरा-पूरा पालन किया है। मेरा अपना विश्वास तो यह है कि जैसे-जैसे स्वयंसेवक वीरता-पूर्वक और जान-बूझकर कष्ट सहनेकी अपनी शक्ति बढाते जायेंगे, वैसे-वैसे उनकी सेवाकी उपयोगिता बढ़ती जायगी और जब मौका आनबानका आवेगा तब वे बहुत ही ज्यादा उपयोगी हो पड़ेंगे।

हिन्दी नवजीवन

३१ अक्टूबर, १९२८

❀

'अमोघ अस्त्र'

अहिंसाप्रतिष्ठायां तत्सन्निधौ वैरत्यागः।

'अहिंसाके सामने द्वेष भाव ठहर नहीं सकता।'

"कार्यसमितिकी रायमें सविनय कानून-भगका आरम्भ और नियत्रण उन्हीं लोगों द्वारा होना चाहिये जो पूर्ण स्वराज्यकी प्राप्तिके लिए अहिंसाको अपना धर्म मानते हों, और चूँकि महासभाके संगठनमें सिर्फ ऐसे ही स्त्री-पुरुष नहीं हैं, वे लोग भी हैं जो देशकी मौजूदा हालतमे अहिंसाको एक आवश्यक कार्य-नीति समझते हैं, इसलिए यह कार्य-समिति महात्मा गाधीके प्रस्तावका स्वागत करती है और उन्हे तथा उनके साथ काम करनेवालोंको, जो ऊपर बतायी हुई हदतक अहिंसाको अपना धर्म मानते हैं, अधिकार देती है कि वे जब चाहें, जिस तरह चाहें, जिस हदतक ठहरायें, तब, उस तरह और उस हदतक सविनय कानून-भंग कर सकते हैं। कार्य-समितिको विश्वास है कि जो सग्राम छिड़ जायगा, कांग्रेसजन और दूसरे लोग सत्याग्रहियोंके साथ यथा-सम्भव हर तरह पूरा सहयोग करेंगे और बदला लेनेका अवसर होते हुए भी वे अहिंसाका सम्पूर्णतया पालन और रक्षण करेंगे। कार्य समिति यह आशा रखती है देशव्यापी आन्दोलनके छिड़ जानेपर वे सब लोग जो स्वेच्छासे सरकारके साथ सहयोग कर रहे हैं, मस्लन् वकील और वे जो उससे तथाकथित लाभ उठा रहे हैं, मस्लन विद्यार्थी, सरकारके साथ सहयोग करना या उससे लाभ उठाना, जैसा भी कुछ हो, छोड़ देंगे और आजादीकी इस आखिरी जगमे जी-जानसे कूद पड़ेंगे। कार्य-समितिको विश्वास है कि नेताओंकी गिरफ्तारी या सजाके बाद वे लोग जो पीछे रह जायँगे और जिनमें त्याग और सेवाका भाव होगा, कांग्रेसका सगठन करते रहेंगे और अपनी पूरी योग्यताके साथ आन्दोलनकी रहनुमाई करेंगे।"

कार्य-समितिके इस प्रस्तावसे मुझे इस कार्यके लिए स्वतंत्रताका परवाना मिल जाता है,पर दूसरी ओर वह मेरे हाथ-पॉव भी जकड़ देता है। पिछले महीनोंके लगातर परिश्रम और चिंतनके बाद यह नुस्खा मेरे हाथ लगा है। मेरे नजदीक इस प्रस्तावका 'राजनीतिक मूल्य उतना नहीं है जितना धार्मिक। कांग्रेसके नामसे सत्याग्रह करनेमें मेरे सामने तात्त्विक कठिनाइयाँ थीं। मैं महसूस करता था कि ऐसी संस्थाके द्वारा जिसमें अहिंसाके संबंधमे तरह-तरहके विचार रखनेवाले लोग हैं अहिंसाके कार्यक्रमको पूरी सफलताके साथ नहीं चला सकूँगा। क्यों कि अहिंसाका संचालन महज बहुमतके फैसलोंपर नहीं हो सकता। और अहिंसाके सिद्धांतका पूर्ण पालन करनेके लिए संभव है कि वह सारे ससारके साथ मेल न खा सके।

जिस व्यक्तिको अनेक वस्तुओंमेसे एक वस्तु पसंद करनी हो उसके सामने अपने मार्गको छोड़ देनेका प्रलोभन हमेशा खड़ा रहता है। उन लोगोंकी आंतरिक प्रेरणा, जो अहिंसाको सिर्फ कार्य-नीति मानते हैं, हिंसाकी गुंजाइशके समय उन्हें अपने रास्तेसे हटा सकती है। परंतु वे लोग जो अहिंसाको धर्म

मानते हैं और जिनके अंदर सचमुच अहिंसा भरी हुई है कभी गुमराह नहीं हो सकते। इसीलिए सत्याग्रहके समय कांग्रेसके बधनसे बाहर रहनेकी आवश्यकता दिखायी दी। और मुझे इस बातकी खुशी है कि कार्यसमितिके सदस्योंने मेरी स्थितिको बिलकुल ठीक और सही समझा।

अब मुझे आशा है कि इस प्रस्तावसे कोई गलतफहमी पैदा न होगी। यहाँ श्रेष्ठता या कनिष्ठताका कोई सवाल नहीं है। अहिंसाको धर्म समझनेवालोंकी अपेक्षा अहिंसाको कायनीति समझनेवाले किसी तरह हलके नहीं हैं, वैसे ही जैसे कि पीले और काले आदमीके बीच ऊँच-नीचका कोई भेद नहीं हो सकता। हर एक अपनी-अपनी बुद्धि और ज्ञानके अनुसार काम करता है।

अबकी दफा मेरी यह जिम्मेवारी बहुत भारी है। ऐसी जिम्मेवारी मैंने अबतक नहीं ली थी। लेकिन सिवा इसके और कोई चारा भी नहीं था। परतु यदि सचमुच अहिंसा ही मेरी एकमात्र पथ-प्रदर्शिका है तो मुझे विश्वास है कि सब तरह मंगल ही है, क्योंकि इस लेखके आरम्भमें दिये गये मंत्रके द्रष्टा ऋषिने कहा ही है कि 'अहिंसाके सामने द्वेषमात्र ठहर नहीं सकता, और बाईबिलमे भी तो यही कहा है।

"प्रेम पड़ोसीको किसी तरह नुकसान नहीं पहुँचाता,

"उसका मूलाधार विश्वास है,

"वह आशावादी है,

"वह अमोघ है—रामबाण है।"

कभी-कभी प्रेम मनुष्यको सविनय-भंग करनेपर मजबूर करता है। हाँ, वह खरतनाक तो जरूर है, परंतु जो हिंसा हमारे चारों ओर व्याप्त है, उससे ज्यादा खतरनाक हरगिज नहीं। आत्माका नाश करनेवाली हिंसाके तापसे बचनेका एकमात्र अहिंसात्मक उपाय यदि कोई है तो वह सविनय-भंग ही है। इसमें खतरा सिर्फ यही है कि सविनय-भंगके साथ ही साथ कहीं मारकाट न मच जाय। परंतु यदि ऐसा हुआ भी तो अब उसका उपाय मेरे हाथ लग गया है, लेकिन यह उपाय बारडोलीका-सा सविनय-भंग मौकूफ करनेका नहीं है। हिंसाके मुकाबिलेमें इस अहिंसात्मक सग्रामके एक बार शुरू होनेके बाद यह सबतक नहीं रुक सकती, जबतक एक भी अहिंसाका हामी बाकी बच रहेगा फिर वह हिंसा-काण्ड चाहे किसीकी तरफसे क्यों न उभाड़ा गया हो। अपनी जान देनेसे बढ़कर और कोई कुर्बानी मनुष्य नहीं कर सकता और अब इससे कम कुछ करना अहिंसामें अविश्वास प्रकट करनेके समान होगा।

हिन्दी नवजीवन

२० फरवरी, १९३०

हिंसावाद

श्री पेडीकी हत्या और सिक्ख लीगकी सभामें श्रीमती कार्टसके हत्यारेका वीरके रूपमें गुणगान बड़ी ही स्पष्टताके साथ इस दुःखद सत्यपर प्रकाश डालते हैं कि आज भी हिंसावादके बहुतसे पुजारी है। हत्यारोंकी प्रशंसा हदसे ज्यादा की जा रही है। अगर हम हरएक हत्यारेका गुणगान करते हैं, और यह इसलिए कि उसकी हत्याका हेतु राजनीतिक था तो हम कृत्यकी प्रशंसा करते-करते स्वयं वैसा कृत्य करने भी लगेंगे। सज्जनसिंह कावीकी भाँति प्रशंसित होना मेरे मनमें एक शक पैदा करता है और वह यह कि कांग्रेसमें भगतसिंहके प्रस्तावको जन्म देकर मैंने बुद्धिमानी नहीं की। मेरा हेतु तो बहुत स्पष्ट था। कार्यकी निन्दा की गयी थी, वीरता और त्यागकी भावनाकी प्रशंसाकी गयी थी। इसके मूलमें आशा यह थी कि इस तरह हम कार्य और उनके हेतुमें भेद कर सकेंगे और अंतमें राजनीतिक हत्या-जैसे कृत्यसे घृणा करना सीखेंगे, फिर चाहे उसका हेतु कितना ही ऊँचा क्यों न हो। परंतु कांग्रेसके प्रस्तावका असर शायद बिलकुल उलटा पड़ा है। ऐसा मालूम होता है, मानों उसके कारण स्वयं हत्याकी प्रशंसा करनेका लोगोंको पासपोर्ट मिल गया है। मैं अपने निश्चित और विचारपूर्ण मतको दोहराते हुए फिर कहता हूँ कि और देशोंके बारेमें वस्तुस्थिति चाहे जो हो, कमसे कम हिन्दुस्तानमें तो राजनीतिक हत्यासे देशको नुकसान ही पहुंच सकता है। यह सत्य आजकी दशामें और भी अधिक सवल बन जाता है, जब स्वतंत्रता प्राप्तिके लिए निहायत शान्त रीतिसे और बड़े पैमानेपर एक ऐसा प्रयोग किया जा रहा है, जिसे दुनिया अभी-अभी जानने लगी है। आखोंवाले देख सकते हैं कि इस प्रयोगकी उपयोगिता आशासे अधिक सिद्ध हो चुकी है और वह प्रायः सफलताके किनारेतक पहुंच चुका है। मैं दावेके साथ कहता हूँ कि अगर इन प्रयोगके दरम्यान राजनीतिक हत्याओं और मन-वचन-कर्मको कम या ज्यादा हिंसाने खलल न डाला होता तो अवतक भारत स्वतंत्र हो चुका होता।

अहिंसा कमजोरका शस्त्र नहीं, शक्तिशालीका है। अहिंसाका अर्थ अपराधको क्षमा करना और बदला न लेना है। संस्कृतमें एक कहावत है कि ('क्षमा वीरस्य भूषणम्') क्षमा वीरका भूषण है। इस गुणका परिचय युधिष्ठिरने उस वक्त दिया था जब विराट द्वारा हदसे अधिक उत्तेजित और अपमानित किये जानेपर भी उसने विराटको न सिर्फ माफ ही कर दिया, बल्कि भाई अर्जुनके क्रोधसे उनकी रक्षाके लिए असाधारण उपायोंसे काम लिया। अगर वह ऐसा न करते तो महाराज युधिष्ठिरका अपमान करने और उन्हें चोट पहुंचानेके अपराधमें अर्जुनने विराटको मार डाला होता।

अहिंसा कोई यांत्रिक क्रिया नहीं है। यह हृदयका सर्वोत्तम गुण है और अभ्याससे प्राप्त होनेपर ऐसा मालूम होता है कि यह गुण स्वाभाविक है, क्योंकि सचमुच यह वैसा है, और तब इसके स्वामीको आश्चर्य होता है कि इसे पानेमें उसे किसी भी प्रकारका कष्ट उठाना पड़ा है। शैतान भीतरसे कहता है कि घूँसेके बदले घूँसा मारनेसे बढ़कर स्वाभाविक और क्या है? और हमारे अंदर बैठा हुआ मनुष्य कहता है कि घूँसा मारनेवालेको क्षमा करनेसे बढ़कर अधिक स्वाभाविक और अधिक मनुष्यतापूर्ण और क्या है? घूँसा मारनेवाला अज्ञानमें था और अपने आपको भूला हुआ था। तो फिर घूँसा खानेवाला अज्ञानका परिचय क्यों दे और अपने आपको क्यों भूले? क्या वे अनेक पत्नियाँ मानवीसे अधिक हैं, जो अपने पशुतुल्य पतियोंके अत्याचार सहकर भी उन्हें क्षमा कर देती है। उनके लिए अच्छा तो यह होगा कि वे क्षमा करनेके साथ अपने पतियोंको सिर न चढावें और उन्हींके हितके लिए ऐसे अवसरोंपर उनके साथ सहयोग करना बन्द कर दें।

परंतु यहाँ मैं इस विषयकी गहराईमें उतरना नहीं चाहता। जो अहिंसाको मानते हैं वे उसकी शक्तिको पहचानें और मन, वचन, कर्मसे अहिंसक बने। और जिन्हें अबतक भी अहिंसक रीतिकी उपयोगितामें विश्वास नहीं है, और न हिंसाकी अचूकतामें ही जिनका विश्वास है, वे नीचे लिखी बातोंपर विचार करें—

१—भारतके करोड़ों लोग हिंसक तरीकोंके आदी नहीं हैं।

२—देशके देहातवालोंने कभी संगठित होकर किसी बड़े पैमानेपर हिंसाका उपयोग नहीं किया है।

३—भारतको एक राष्ट्र समझकर उसकी स्वतंत्रताकी उन्हें कोई निश्चित कल्पना नहीं है।

४—यूरोपमें लोगोंने हिंसक तरीकोंसे अपनी स्वतंत्रता प्राप्त की है, क्योंकि वे कम या ज्यादा अंशोंमें हथियार चलानेके अभ्यासी थे।

५—यूरोपकी जनताने शासनारूढ सत्तासे भी अधिक हिंसाका प्रयोग करनेमें समर्थ होनेके कारण अपने लिए स्वतंत्रता प्राप्त की है।

६—फिर भी कमसे कम यह शक है कि उन्हें, जिनमे अँग्रेज भी शामिल हैं, सच्ची स्वतंत्रता मिली है या नहीं। वहाँकी आम जनता आज भी यह महसूस करती है कि धनवान वर्गके लोग हमे कुचल रहे हैं, क्योंकि शासनकी बागडोर उनके हाथोंमें है। उनकी अनेक और बढ़ती हुई उलझनोंसे पूर्ण समस्याओंका ख्याल कीजिये।

(७) दूसरी ओर भारतमें हम जानते हैं कि केवल अहिंसक रीतिसे ही वर्तमान असाधारण लोक-जाग्रति हुई है जिसमें स्त्रियोंकी जाग्रति भी शामिल है।

(८) यह तो हमारे सामने साबित हो चुका है कि जहाँ लोगोंने गलती की है, हिंसक बने हैं, वहाँ उनकी हार हुई है। वे नीतिभ्रष्ट बने हैं और दबा दिये गये है।

अगर मैं पिछले बारह महीनोंका अधिक विचार करूं तो इस सूचीको और बढ़ा सकूं। पर आज तो यह जितनी है, उतनी ही मेरे लिए काफी है।

जिन लोगोंको हिंसक तरीकोंमें पूरा और पक्का विश्वास है, उनसे भी कहूंगा कि देश प्रेमका जो दावा आप अपने लिए करते है, उतना ही मुझे भी करने देंगे। अगर यह मंजूर है, तो आपको मेरी इस बातपर विश्वास लाना चाहिये कि अपने तरीकोंको मेरे तरीकोंके साथ मिलाकर आप देशकी पीड़ाको बढ़ाते हैं, दूर ठेलते है। मै जानता हू कि आपमेसे कुछ यह मानते हैं कि इक्के-दुक्के किसी अफसरकी हत्या कर देनेसे ध्येय प्राप्तिमे मदद मिलती है। पर उनका यह विश्वास बिलकुल निराधार है। इसके विपरीत मै तो यह जानता हू कि हर एक हत्याने मेरे मार्गमें आकर मुझे रोका है। मै जानता हू कि मेरी ही तरह आप भी शायद कहेंगे कि आप तमाम राजनीतिक कैदियोंके छुटकारेके लिए मुझसे ज्यादा आतुर हैं। पर आपको यह मानना चाहिये कि आतंक फलानेवाले तरीकोंसे उनकी मुक्ति दूर ही हट सकती है। इस सरकारका जसा संघटन है,और जैसा कि सब सरकारोंका होता है, उसे देखते हुए यह साफ है कि जबतक राजनीतिक हिंसा होती है, वे उन राजवन्दियोंको नहीं छोड़ेंगे, जिनपर हिंसाका आरोप सिद्ध हो चुका है। अतएव इन सब बातोंका विचार करके यदि आपने मेरी सलाह और प्रार्थना मानी और मानकर अपने कार्योंको ऐसे समय मुल्तवी रखा, जब सारा राष्ट्र मेरे प्रयोगकी परीक्षा कर रहा है, तब बड़ा अच्छा होगा।

हिन्दी नवजीवन
१६ अप्रैल, १९२१

❀

"अहिंसा श्रद्धा और अनुभवकी वस्तु है, एक सीमासे आगे तर्ककी चीज वह नहीं है।"

—गांधीजी

खून क्यों न खौल उठा ?

नीचे एक प्रश्न देता हूँ—

"हिन्दुस्तानको दुनियाके लोकमतकी कुछ न कुछ मदद मिली है तिसपर भी गाधीजी उसे पूरी क्यो कहते हैं ? निःशस्त्र शक्ति द्वारा लड़नेवाले राष्ट्रकी दशा एक स्त्रीकी सी है। उसे शस्त्रधारियोने जिन लाठी प्रहार आदि द्वारा अनेक प्रकारसे, अनेक जगहोंमें क्रूरतापूर्वक सताया है, यह देखकर दुनियामे जो पुण्यप्रकोप प्रज्ज्वलित होना चाहिये था, वह कहाँ हैं ? इस प्रकोपके अभावका अर्थ है मानवताका अभाव, यदि दुनिया आमतौरसे मानवताके अभावका परिचय दे तो सत्यके शस्त्रकी विजय कैसी होगी ? यदि सत्य और अहिसाकी विजय होती है, तो निःशस्त्र भारतीय जनताका खून बहते देख दुनियाका खून जैसा खौलना चाहिये, नहीं खौला है। गाधीजी इस बातको इसी रूपमें क्यों नही देखते ?"

पूरी मदद मिलनेकी बात मैंने कहीं भी कही हो, तो उसे अनजानमें की गयी अतिशयोक्ति समझना चाहिये। ऐसी कोई बात मैंने कही हो, तो वह मुझे बतानी चाहिये। मुझे इसकी बिलकुल याद नहीं आती।

'निःशस्त्र लड़नेवाले राष्ट्र'की शक्तिकी स्त्रीकी दशासे तुलना करके लेखकने अहिंसाकी और स्त्रीकी अवगणनाकी है। यदि पुरुषने स्त्रियोंको निचोड़ न डाला होता, अथवा स्त्री मौजमें फँसकर पुरुषके अधीन न हुई होती, तो वह अपनी अनन्त शक्तिको जगत्‌के सामने रख सकती थी। गत युद्धमें उसने अपनी शक्तिकी थोड़ी झाँकी करायी है। जब वे भी पुरुषोंकी बराबरीसे सेवा कार्यके लिए अवकाश प्राप्त कर लेंगी, अपनी संघशक्ति बढा लेंगी, तब इस देशको और जगतको उनकी अद्भुत शक्तिके दर्शन होंगे।

जिसके हाथमें अहिंसा रूपी शस्त्र है, वह कभी निःशस्त्र नहीं। उसके पास पाशवी शस्त्र भले ही न हों, पर उसके पास दिव्य शस्त्र होते हैं। अहिंसा ब्रह्मास्त्र है, और उसका मुकाबला करनेवाला एक भी शस्त्र आजतक विधाताने नहीं बनाया, न वह बना सकेगा। पर मै इतना कबूल करूँगा कि हिन्दुस्तानने अहिंसा-शस्त्रको पूरी तरह नहीं पहचाना है, हिन्दुस्तानने युक्तिरूपसे ही उसका उपयोग किया है। और यही वजह है कि वह कमजोरका हथियार जान पड़ता है। इसी कारण उक्त प्रश्न पैदा हो सका है, और इसीलिए दुनियांका खून नहीं खौल उठा। दुनियाने हमें नितान्त निर्दोष नहीं माना। उसने हमें होशियार युक्तिबाजके रूपमें पहचाना है। और ऐसोंपर पड़नेवाले लाठी प्रहारसे जितनी उत्तेजना पैदा हो सकती थी, हुई है। मै तो इस परसे त्रिराशिका हिसाब करूँगा। यदि युक्तिरूपमें प्रयुक्त अहिंसासे दुनियामें इतना कोलाहल मचा है, तो जब हिन्दुस्तान शुद्ध अहिसाको पहचान लेगा, कितना कोलाहल मचेगा? जवाब-दुनियांका खून खौल उठेगा।

हिन्दी नवजीवन
७ मई, १९३१

चींटीपर चतुरंगिनी

बम्बईसे नीचे लिखित विचारणीय शिकायत आयी है —

"जब कोई आदमी रास्ते चलते किसीकी जेबमें से अथवा किसी बच्चेके शरीर-परसे कोई कीमती चीज झपट लेनेकी कोशिश करता है, और वैसा करते हुए पकड़ा जाता है, तब लोग उसे इस कदर निर्दयताके साथ मारते हैं कि हमें मारनेवालोंके प्रति धिक्कारकी दृष्टिसे देखनेका मन होता है। ऐसी ही एक घटना ता० १८-६-३१ के दि[न] घटी। जब मैं भूलेश्वर जा रहा था, एक परदेशीसे प्रतीत होनेवाले आदमीने किसीकी जेब[में] हाथ डाला, या किसी बालकके गलेसे कोई चीज निकाल लेनेकी हिम्मत की; लेकिन वैसा करते हुए वह पकड़ा गया। इसपर रास्ता चलते लोग उसपर टूट पड़े और क्रूरतापूर्वक मारने लगे। किसीने उसकी गर्दनपर, किसीने पेटमें, तो किसीने पसलीमें घूँसे जमाने शुरू कर दिये। एक दुबला-पतला सा आदमी तो उसे छतरीसे इस प्रकार मारने लगा, जैसे आर चुभोकर बैलको मारा जाता है। मैं सोचता हूँ कि खुद बहुत ताकतवर न होनेकी वजहसे ही उसने छतरीका सहारा लिया होगा। इस मारपीटमें तिलकधारी भगत भी शामिल थे। इस प्रकार मार पड़ते देखकर मैंने और एक दूसरे भाईने उस छतरी मारने-वालेसे कहा—'इस प्रकार मारनेसे क्या हासिल होगा? आप इसे पुलिसके सिपुर्द कर दें। यों, पशुकी तरह मारनेसे हम अहिंसाका पाठ भूल जाते हैं।' उस आदमीने जवाब दिया 'मारें नहीं, तो क्या करें? आप भी भाई साहब खूब हैं। ऐसे चोरी करनेवालोंको तो मार डालना चाहिये, मार डालना!'

मैं मानता हूँ कि ऐसा जवाब देनेवाले सैकड़े अस्सी आदमी मिलेंगे। ऐसे लोग तो यही समझते हैं कि मैंने स्वय कभी बुरा काम किया ही नहीं है। यों जेबमेंसे कुछ ले लेनेका नाम ही चोरी नहीं है। बल्कि कई साहूकारी चोरियाँ भी होती हैं। जैसे, मालिकने विश्वास करके जो रुपये संभालनेको दिये हों, उनका अपने लिए उपयोग करना, या किसीसे घूस लेना, वगैरा। मैं मानता हूँ कि जिस मनुष्यकी चोरी हुई है, वह मारता हो, तो एक बात है, लेकिन रास्ते चलते हुए हरएक मनुष्यको मारनेका बिल्कुल हक नहीं है। इसपर आप दो सतरें नहीं लिखियेगा? लोग आपका कहा मानते हैं, और मानेंगे।"

लेखक मेरी सलाहका अमल होनेकी जितनी आशा रखते हैं, उतनी मैं नहीं रखता। अगर मेरी सलाह सर्वमान्य होती हो तो आज सब छोटे-बड़े, स्त्री-पुरुष, गरीब-अमीर कातते होते, खादी पहनते होते, कोई ऊँच-नीच या अस्पृश्य न होता, हिन्दू, मुसलमान, सिख वगैरा सगे भाईकी तरह होते, मालिक और मजदूर पिता पुत्रकी तरह अथवा बड़े-छोटे भाईकी तरह होते। संक्षेपमें आज

हम पूर्ण-स्वतन्त्रताका उपभोग करते होते। लेकिन मैं जानता हूँ कि मेरी आवाज या मेरी कलम बहुत दूर तक नहीं पहुंच सकती। ऐसा होते हुए भी चूंकि मैं गीताका अनुयायी बननेका प्रयत्न करता हूँ, निराशी रहनेकी कोशिश करता हूँ इसलिए जब लिखनेका मौका आ पड़ता है, तब लिखता और बोलता हूँ। उक्त शिकायतके कारण ऐसा एक मौका पेश है।

ऐसी फरियादका अनुभव असाधारण बात नहीं। बड़े शहरोंमें ऐसा अनुभव किसे न हुआ होगा? हम नामर्द हैं इसलिए गिरहकटपर, चींटीपर चतुरंगिनीकी तरह, चढाई कर देते हैं। अहिंसाका तो यहाँ सवाल भी पैदा नहीं होता। हिंसक, लेकिन बहादुर आदमी भी, इस तरह किसीपर कभी चोट नहीं करता। पकड़े गये चोर अथवा खूनीको भी दण्ड देनेका अधिकार प्रजाको नहीं है। प्रजा ऐसे आदमीको पकड़ सकती है, और यदि पकड़े, तो उसे पुलिसके सिपुर्द कर सकती है। इस प्रकार मारना गुनाह है, और अगर उक्त गिरहकट शिकायत करे, तो पुलिसका धर्म है कि वह मारनेवालोंको गिरफ्तार करे और मारके साबित हो जानेपर न्यायाधीशका यह धर्म है कि वह मारनेवालोंको दण्ड दे। और जैसा वर्णन है, यदि वैसी मार पड़ी हो, तो वह महाव्यथाका गुनाह गिना जायगा, जिससे मारनेवालेको जेल ही मिलेगा। लेकिन इस प्रकार मारनेवाला अपनेको सुरक्षित समझता है, क्योंकि चोरको मारनेकी प्रथा चल पड़ी है। बेचारे चोरकी बात सुने कौन?

सच है कि चोरको मारनेवाले बहुतेरे खुद सफेद चोर हैं। इसलिए पुराने जमानेमें जब लोगोंने एक वेश्याको पत्थर मारनेका निश्चय किया, तब ईसा मसीहने मीठी आवाजसे कहा था—'आपमें जो निर्दोष हों, पहला पत्थर फेंके।' कथाकारका कथन है कि किसीकी हिम्मत पत्थर फेंकनेकी न हुई। गूंगा बहरेपर क्या हँसे? उक्त गिरहकटको शायद खानेकी साँसत हो, जब सफेद चोर अपने भोगोंकी तृप्तिके लिए चोरी करता है। दोषित दोषितका न्याय नहीं कर सकता, इस विचारके विस्तारसे अहिंसाका जन्म हुआ है। लेकिन हम अहिंसाके सरोवर तक न पहुंचें, और सामान्य न्यायकी तलैया तक पहुंचे तो भी काफी है।

हिन्दी नवजीवन
२३ जुलाई, १९३१

❀

"सारा समाज अहिंसापर उसी प्रकार कायम है जिस प्रकार कि गुरुत्वाकर्षणसे पृथ्वी अपनी स्थितिमें बनी हुई है।" —गांधीजी

गारलिककी हत्या

बंगालके एक जज, श्री गारलिककी, जो अपनी समझके अनुसार अपना कर्त्तव्य-पालन कर रहे थे, यह हत्या, इसके करनेवालोंके लिए कलंक है। कलकत्ता और अन्यत्रके अंग्रेजोंमें इससे खलबली मचकर जो आन्दोलन हुआ है, उससे हमें कुछ आश्चर्य न होना चाहिये। वे व्यक्ति, जो अपनी नापसन्दके व्यक्तिकी हत्या करनेमें, फिर चाहे वह कितने ही देशभक्ति-पूर्ण उद्देश्यसे क्यों न की जाय, प्रसन्न होते है, उस उद्देश्यको, जिसकी सहायता पहुंचानेका दावा वे करते है, आगे नहीं बढाते। और गुप्त संस्थाओं द्वारा नियोजित हत्याएँ अपने निकटतम समीपवर्त्ती प्रत्येक व्यक्तिको संदिग्ध बना देती है। निःसन्देह एक अंग्रेज अफसरकी हत्याका असर सम्पूर्ण भारतके वातावरणपर होता है।

जो लोग इस प्रकारकी हत्याओंको सच्चे दिलसे नापसन्द करते है, उनका, प्रत्येकका, यह कर्त्तव्य है कि ऐसे कृत्योंके प्रति अपना तीव्र विरोध प्रकट करें और जहा कहीं भी वह हत्याकी नीतिमें विश्वास करनेवाले व्यक्ति पावे, उनसे बहस करे और यदि वे न सुने तो असहयोग कर दे। सत्याग्रह व्यक्तियोंका अपवाद नहीं करता। उपयुक्त वातावरण होनेपर सत्याग्रहका उपयोग अपने निजी मित्रोंके साथ कहीं अधिक सफलताके साथ किया जा सकता है, बनिस्बत उनके जो हमें अपना विरोधी अथवा शत्रु समझते हैं। जितना ही निकटतर सम्बध होगा, उतना ही अधिक प्रभावशाली सत्याग्रह होगा।

हमें समझ लेना चाहिए कि इन कृत्योंके प्रति प्रकट की गयी जरासी भी सहिष्णुता एवं उपेक्षा न केवल स्वराज्यको ही रोक देगी वरन् स्वराज्य शासनको असंभव नहीं तो कठिन अवश्य बना देगी। क्योंकि प्रचुर शस्त्रास्त्रयुक्त विदेशी सरकारके लिए तो हत्याकारी गुप्त संस्थाओके आन्दोलनकी मौजूदगीमें भी शासन-कार्य चलाना सभव हो सकता है। किन्तु सवथा जनताकी इच्छापर अवलम्बित शासन ऐसे हत्याकारी वातावरणमें सुव्यवस्थित रूपसे नहीं चल सकता। यह ख्याल करनेके लिए कोई आधार नहीं है, कि यह विचार कि अपनी नापसन्दके अधिकारी अथवा व्यक्तियोंकी हत्या करना उचित है, यदि इस समय लोकप्रिय हो भी गया तो स्वराज्य मिलनेपर उसी क्षण वह विलीन हो जायगा। इसलिए अत्यन्त स्वार्थ-युक्त ख्यालसे भी, वास्तविक स्वतन्त्रता प्रेमीके लिए यह आवश्यक है कि पेश्तर इसके कि बात अपने काबूके बाहरकी हो, ऐसे कृत्योको रोकनेके लिए अपनी सर्वोच्च शक्ति लगावे।

मेरे कानोंमें भनक आयी है कि अहिंसाके साथ साथ चलनेवाली हिंसा

अहिंसाको अवश्य सहायता पहुंचायगी। अहिंसाके कार्यक्रमके जनक और विषयके विशेषज्ञकी हैसियतसे, मैं अपने पूरे विश्वासके साथ घोषित कर देना चाहता हूँ, कि यह ख्याल करना कि हिंसा किसी प्रकार अहिंसाको सहायता पहुंचाती है, भारी भ्रम है। इस सम्बंधमें प्रचुर अनुभवके बलपर अवलम्बित मेरी गवाही ही निर्णयात्मक समझी जानी चाहिये। मैं यह बात जोरके साथ कह सकता हूँ कि राजनीतिक हत्याका प्रत्येक कार्य अहिंसात्मक आन्दोलनको हानि पहुंचाता है। प्रत्येक व्यक्ति जानता है किस प्रकार मुझे यह विचलित कर देता है। जिसे लोग बारडोलीकी महाभूल कहते हैं किन्तु जिसे मैं प्रथम श्रेणीकी बुद्धिमत्ताका काम मानता हूं, वह कांग्रेसवादी कहे जानेवाले व्यक्तियों द्वारा चौरीचौरामें किये जानेवाले घृणित कार्यके कारण ही हुई थी। यदि मैंने उस समय सत्याग्रह स्थगित न कर दिया होता, तो देश इतनी आश्चर्यजनक प्रगति न कर सकता, जितनी उसने कर ली है। प्रत्येक सम्बन्धित व्यक्तिको यह समझ लेना चाहिये कि मेरे चाहे या किये बिना ही यदि हत्याकी यह छूत फैलती गयी तो इससे सजीव अहिंसात्मक आंदोलनको स्वभावतः ही धक्का पहुंचेगा। प्रकृतिकी प्रत्येक वस्तुकी तरह इसके संचालनके भी अपने विशेष नियम हैं।

यहांपर, बम्बईके स्थानापन्न गवर्नरकी हत्याके लिए किये गये प्रयत्न संबधी मेरे लेखसे अंग्रेज समुदायमें जो असन्तोष पैदा हुआ है, उसपर एक नजर डालना अप्रासंगिक न होगा। असन्तोष पैदा होनेका कारण है मेरा एक यजमान द्वारा मेहमानकी हत्या और साधारण हत्याके बीच किया गया अन्तर। मेरा ख्याल था कि मैंने अपना अर्थ सर्वथा स्पष्ट कर दिया है, क्योंकि सर अर्नेष्ट हाटसन कालेजके मेहमान थे, इस अतिरिक्त कारणसे, मैंने अपराधकी गुरुता बढा दी थी। अवश्य ही प्रत्येक हत्या पापयुक्त और इसलिए निन्दाकी पात्र होती है। किन्तु निश्चय ही ऐसे कार्योंके सबधमें भी अपराधके दर्जे दो होते ही है। और इससे पहिले अकसर हो चुका है कि ऐसे कृत्यों-सम्बन्धी कुछ खास भद्दी बातोंसे सम्बन्धित व्यक्तियोंकी अन्तरात्मा दहल उठी और रोगकी वृद्धि रुक गयी। यही उद्देश्य था, जिसे ध्यानमें रखकर मैने उक्त अन्तर किया था और हत्याके कृत्यकी गंभीरता बतायी थी। और सच तो यह है कि मै जानता हू कि जिन लोगोंको प्रभावित करनेके लिए यह लेख लिखा गया था, उनमेंसे कुछपर इसका असर हुआ है। मैं अपने अंग्रेज आलोचकोंसे मेरे प्रति धैर्य रखनेके लिए कहता हूं। मैं उनकी उत्तेजनाको समझता हूँ। किन्तु अपनी गंभीरता खोकर और जहा सन्देह नहीं है, वहां भी सन्देह करके वे स्थितिको उन्नत न कर सकेंगे।

हिन्दी नवजीवन

६ अगस्त, १९३१

❀

ध्येयके प्रति सच्चे रहो

[महासमितिकी बम्बईकी बैठकमें हालही में की गयी हत्याओंकी निन्दा और कांग्रेसके अहिंसा ध्येयकी पुनःस्वीकृति-सम्बधी प्रस्ताव पेश करते हुए गांधीजीने जो भाषण दिया था, उसका संक्षिप्त सार नीचे दिया जाता है]

कांग्रेसवालोंकी जिम्मेवरी

मै अत्यन्त नम्रताके साथ कहना चाहता हूँ कि इस प्रस्तावके विवरणमें जितना कुछ है मेरे हृदयमें उससे कहीं अधिक भरा है। प्रस्तावका मसविदा मेरा खुदका बनाया हुआ है इसलिए मैं इसे स्पष्ट कर देना चाहता हूँ। मैं तो इससे और भी आगे जाना पसन्द करता, किन्तु यह प्रस्ताव उसी सीमाका द्योतक है, जहाँतक मेरा विश्वास है, कि मै आपको अपने साथ ले जा सकूँगा। मैं आपको बतला देना चाहता हूँ, कि कार्य-समितिमें इस प्रश्नपर पूर्ण मतैक्य था, और मैं चाहता हूँ कि यहांपर भी ऐसा ही हो। फिर भी मैं यह नहीं चाहता कि आप इसके भले-बुरे परिणामपर पूरी तरह विचार-विनिमय किये बिना ही इसे स्वीकार कर लें। यदि आपको यह पसद न आवे, तो इसे रद्द कर देनेमें आप न हिचकिचाएं। लेकिन यदि आप इसे पास कर देते है तो इसका अर्थ यह है कि आप इसके द्वारा यह घोषणा करते हैं कि हम न तो अंग्रेजोंको बेवकूफ बनाना चाहते हैं, न ससारको, बल्कि जबतक कांग्रेसका ध्येय सत्य और अहिंसाका है, तबतक हमारा यह अनिवार्य कर्त्तव्य है कि हम मन, वचन और कर्मसे सत्यवादी और अहिंसक रहें और जो लोग हमारे साथ नहीं हैं, उन्हें हिंसाके मार्गसे विरत कर इस ओर लानेका प्रयत्न करें।

सन् १९२० से, जबसे हमने इसे अपने ध्येय या आपके शब्दोंमें नीतिके तौरपर स्वीकार किया है, यह दलील बार बार दी गयी है कि गैर-कांग्रेसवालोंके अहिंसात्मक कृत्योंसे कांग्रेसका कोई ताल्लुक नहीं है और कांग्रेसको अपने ध्येयके प्रति दृढ रहते हुए, उन लोगोंको अकेला छोड़ देना चाहिये, जो इसमें विश्वास नहीं करते। और मै बराबर यह बताता चला आ रहा हू कि जिस तरह कांग्रेस सम्पूर्ण भारत अर्थात् पारसी, यहूदी, ईसाई, हिन्दू, मुसलमान और सिख सबके नामपर बोलनेका दावा करती है, और जिस तरह हम स्वराज्य केवल कांग्रेसवादियोंके लिये ही नहीं वरन् सारे देश भरके लिए प्राप्त करना चाहते है, उसी तरह प्रत्येक भारतीयके कृत्यकी जिम्मेवरी भी हमे स्वीकार करनी ही चाहिये। पिछले वर्ष युद्ध चलानेवाले केवल कांग्रेसवादी ही नहीं थे। कांग्रेसके साथ-साथ सारा देश लड़ा और हमने धन्यवादपूर्वक उसकी सहायता

स्वीकार की और उससे लाभ उठाया। पिछले साल जो अगणित ग्रामवासी युद्धमें सम्मिलित हुए, वे कहनेके लिए कांग्रेसवादी नहीं थे, किन्तु वे सब कांग्रेसके झण्डेके नीचे लड़े। हमें राजनीतिक हत्याकारियोंपर भी प्रभाव रखना ही चाहिये। और यह हम तभी कर सकते है जब हम उन्हें अपना भाई समझे और उनके कार्योंके लिए अपनेको जिम्मेवार ठहरावे।

मेरी यह सूचना नयी नहीं है। रौलट-बिल-सत्याग्रह उन्हीं लोगोंके हिंसात्मक कार्योंके कारण रोक दिया गया था, जो कांग्रेससे अपरिचित थे। बहु-आलोचित बारदोली-निर्णय भी इसीलिए हुआ था, क्योंकि हम चौरी चौराके उत्तरदायित्वसे इनकार नहीं कर सकते थे।

एक भूल

लेकिन अगर मैं आपको समझा न सकूँ, तो यह साफ कह दीजिये, किन्तु मैं जो कुछ कहता हूँ, यदि वह आपको पसन्द आवे, तो आपको यह प्रस्ताव सच्चे हृदयसे और उसके सब ध्वनितार्थों सहित स्वीकार करना चाहिये। पहिले जब हम लोगोंने हिंसात्मक कृत्योंकी निंदा की, तब हमने साथ ही नवयुवकोंके साहस और बलिदानकी प्रशसा भी की। मेरे विचारमें जब हमने कराचीमें भगतसिंहका प्रस्ताव पास किया, हम उस सीमा तक पहुंच गये थे। मैं अब अनुभव करता हूँ कि वह एक भूल थी। जो लोग भगतसिंहको जानते थे, उन्होंने मुझसे उसके सुन्दर चरित्र, अपूर्व साहस और बलिदानकी बात कही थी, और इसीलिए मैंने वह प्रस्ताव तैयार किया था। लेकिन मैं देखता हूँ कि प्रस्तावकी योग्यताको भुला दिया गया है और प्रशंसाओंका अनुचित लाभ उठाया जा रहा है। मुझे इससे गहरा दुःख हुआ है। कुछ लोगोंका कहना है कि मुझे दिल्लीके समझौतेको नवयुवकोंसे स्वीकार करवाना था; इसलिए उन्हें चकमा देनेके लिए यह प्रस्ताव बनाया गया था। ठीक, वे लोग जो ऐसा कहते हैं, मुझे नहीं जानते। भारतकी स्वतन्त्रता तकके लिए तो मैं झूठका सहारा लूँगा ही नहीं, फिर एक समझौतेकी स्वीकृति जैसी तुच्छ बातका तो कहना ही क्या। न गोलमेज-परिषदमें जाना ही मेरे लिए कोई बहुत बड़ी बात थी। यदि उक्त प्रस्तावको बनानेमें ऐसा कोई उद्देश्य छिपा होता, तो जनता और संसारके साथ यह एक धोखेबाजी होती। लेकिन मुझे अब यह साफ दिखायी देता है कि उद्देश्य कितना ही अच्छा क्यों न रहा हो, जिस ढंगसे प्रस्तावके शब्दोंकी योजना की गयी थी, वह भूल थी और इस समय हमने उसको बचाया है।

आतुरताका कारण

लेकिन मुझसे यह पूछा जाता है यदि तुम अपने नौजवानोंके कृत्योंका तिरस्कार करते हो, तो साथ ही सरकारके भी कार्योंकी निन्दा क्यों नहीं करते?

जो लोग इस तरहकी दलील देते हैं वे कांग्रेसको नहीं जानते । कांग्रेस इस शासन-प्रणालीका नाश करनेके लिए प्रतिज्ञाबद्ध है । और कोई भी निन्दा उसे सुधारनेमें सहायक नहीं होगी । कांग्रेसका अस्तित्व ही इस प्रणालीका प्रत्यक्ष तिरस्कार है। राजनीतिक हत्याओंकी निन्दाके साथ सरकारकी ज्यादतियोंका दुहराना विषयको पेचीदा बनाना और जोशीले युवकोंको गुमराह कर देना है । हमें उनसे साफ-साफ शब्दोंमें कह देना चाहिये कि परवा नहीं चाहे कितनी ही उत्तेजनाके कारण क्यों न हों, उन्हें हत्या बन्द करना ही चाहिये ।

फिर पूछा जाता है; लेकिन आप अहिंसाके मार्गसे वर्तमान प्रणालीको किस तरह नष्ट कर सकते हैं ? निश्चय ही सन् १९२० से देशने जो प्रगति की है, वह इसकी सफलताका काफी साफ सबूत है । लेकिन प्रश्न यह नहीं है कि हम सफल होंगे या नहीं । यह कांग्रेसका ध्येय है और उसे हमें ईमानदारीसे पूरा करना चाहिये । इसलिए हम किसी भी शकल या रूपमें हत्याकारी कृत्योंसे, जो अपने आस पास दिखायी दे रहे हैं, अपना सम्बन्ध नहीं रख सकते । जो लोग कांग्रेसके ध्येयमें विश्वास नहीं करते, उनको पूरा अधिकार है कि वे उसके दूर किये जानेके लिए आन्दोलन करें, और उस समय वर्तमान प्रस्तावकी कोई आवश्यकता न रहेगी । हमें अपने आपको या संसारको धोखा नहीं देना चाहिये ।

अब एक शब्द राष्ट्रीय समाचार पत्रोंसे भी । यदि वे चाहें तो बहुत मदद दे सकते हैं । उनमें अकसर ऐसे प्रकट शीर्षक देखे जाते हैं जिनसे राजनीतिक हत्याकी पसन्दगी जाहिर होती है । इसलिए उन्हें हिंसाका प्रोत्साहन देनेवाली जरासी सूचनासे भी सावधान रहना चाहिये ।

नौजवान मुझसे कहते हैं कि यदि मैं उनकी मदद नहीं कर सकता, तो मैं चुप ही रहूं और उनके मार्गमें रोड़े न अटकाऊँ । उन्हें मेरा यही उत्तर है कि यदि आप अंगरेज अधिकारियोंको मारना ही चाहते हैं तो उनके बजाय मुझे ही क्यों नहीं मार डालते ? अपने ढंगसे आपके मार्गमें रोड़े अटकानेके आपके आरोपका मैं अपनेको अपराधी स्वीकार करता हूं । यह मेरा ध्येय है । मुझपर दया न करो, मुझे सीधी राह ठिकाने लगा दो । लेकिन जबतक मेरे अन्दर प्राण हैं, मैं अपने ढगसे आपका विरोध करूँगा ही । यदि आप मुझे छोड़ते हैं, तो आप सरकारी नौकरोंपर, चाहे वे बड़े हों या छोटे, हाथ न डालिये ।

उन्हें फांसीकी ओर न ले जाइये

प्रस्तावके संशोधकोंकी आलोचनाका उत्तर देते हुए गांधीजीने अपने अन्तिम भाषणमें कहा—

कुछ वक्ताओंने मुझसे प्रस्तावमें सरकारका उल्लेख करनेवाले शब्द जोड़ देनेकी अपील की है । श्री अभ्यंकरने मेरे हिमालय जैसी भूल स्वीकार करनेके

साहस और संजीदा होनेकी प्रशंसा की है। ठीक, तब मैं उनसे कह देना चाहता हूं कि यह मेरी संजीदगीका ही कारण है कि मैं उनकी सूचना मंजूर नहीं कर सकता, क्योंकि वे जो कुछ चाहते हैं, वह प्रस्तावके 'उत्तेजनाका कारण दिये जाने पर भी' इन शब्दोंमें सन्निहित है। यदि आप सरकारकी हिंसापर शोर और अपने नौजवानोंके बलिदान और साहसपर तालियाँ बजाते रहेंगे, तो मै आपसे कह देना चाहता हूं कि आप उनमेंसे और कइयोंको फांसीके तख्तेकी ओर भेजनेमें सहायक होंगे और मैं आपको सावधान कर देना चाहता हूँ कि एक सांसमें अहिंसाका तिरस्कार करके और दूसरीमे उसके विपरीत साहसकी सराहना करके आप वस्तुतः यही कर रहे हैं।

रोड़े न अटकाइये

श्रीयुत अभ्यंकर मुझे चेतावनी देते हैं कि हमारे निन्दात्मक प्रस्तावका युवकोंपर कुछ असर नहीं होता। लेकिन वे गलती पर हैं। प्रत्येक शब्द जो हम यहाँ बोलते है, उनके कानों तक पहुंचता है। इससे कभी कभी वे नाराज होते है, किन्तु अकसर इसपर वे विचार करते हैं, और मैं आपसे नम्रतापूर्वक निवेदन करता हूं कि उसी हद्दतक हम उन्हें प्रभावित कर सकते है, जिस हद्दतक हम उत्सुक हों। इसलिए हमें साफ तौरपर बिना किसी हिचकिचाहटके उनसे कहना चाहिये कि उनके कार्य हमें सहायता नहीं पहुंचाते बल्कि उलटे बाधक होते है। नरीमैन कमेटीकी नियुक्तिका जिम्मेदार मैं ही था। मेरे लिए उसकी अभी कई बातें अधूरी हैं, लेकिन जो सामग्री अभी मौजूद है, उसके आधारपर भी मैं अभी कुछ नहीं कर सकता, क्योंकि इन नवयुवकोंके कार्य मुझे विवश कर देते हैं। जो लोग इन्हें जरा सा भी प्रोत्साहन देते हैं, वे उन लोगोंकी रिहाईको,जो अभी जेलोंमें पड़े हैं, मुश्किल बनाते हैं। समझौतेमें मैं उन कैदियोंको नहीं छुड़ा सका, किन्तु मुझे आशा थी कि मैं प्रार्थनाओं द्वारा उन्हें छुड़ा लूँगा। यदि आपने मुझे अपना विश्वासपात्र मान लिया है तो आपको मेरे तरीकोंपर भी विश्वास करना चाहिये। किन्तु यदि आप विश्वास नहीं करते, तो ईमानदारीका रास्ता यही है कि मुझे अस्वीकार कर दीजिये और ध्येयको बदल डालिये।

हिन्दी नवजीवन
२६ अगस्त, १९३१

❀

"मनुष्य मनुष्यके बीच मुकाबला करे तो मालूम होगा कि अहिंसक मनुष्यमे हिंसा करनेकी जितनी ही शक्ति होगी उतनी ही मात्रामे उसकी अहिंसाका माप हो जायगा।"
—गाधीजी

दूसरा रुख

फर्ग्यूसन कालेजके विद्यार्थीके बम्बईके अस्थायी गवर्नरकी हत्या करनेके प्रयत्नकी मैंने जो निन्दा की थी, उसका विरोध करते हुये एक संवाददाताने उपर्युक्त शीर्षकसे मुझे एक लंबा पत्र लिखा है। मैं उसका अत्यंत संक्षिप्त सारांश नीचे देता हूँ—

" 'गुजराती नवजीवन' के गताङ्कमें 'गाडपण' (पागलपन) शीर्षक आपका नोट पढ़कर मुझे अत्यन्त दुःख हुआ। मै आरम्भमें ही यह बात स्पष्ट कर देना चाहता हूँ कि सन् १६२१ से ही मैं अहिंसात्मक असहयोगी रहा हूँ और काग्रेसके अहिंसाके ध्येयको जितना अधिकसे अधिक सम्भव हो सकता है, विश्वासके रूपमें और स्त्रियोंके सतीत्वपर आक्रमण होने अथवा राष्ट्रीय झंडेके अपमान जैसे अपवादित अवसरोंके लिये नीतिके तौरपर स्वीकार करता हूँ। जबतक इन दोनोंपर कोई वास्तविक खतरा नहीं होता, तबतक अत्यन्त उत्तेजनाके समय भी सच्ची अहिंसा असम्भव हो सकती है। लेकिन जब कभी स्त्रियोंके सतीत्वपर हमला अथवा राष्ट्रीय झण्डेका अपमान होता हो, उस अवसरपर मुझे भय है कि मेरी अहिंसा गायब हो जायेगी, और यदि ऐसा न हो तो उसका कारण मेरा गुण न होगा, वरन् अधिकाश अवसरोंपर मेरी शारीरिक दुर्बलता और केवल कभी-कभी अपवादके रूपमें मेरा समझ-बूझ कर किया हुआ आत्म-सयम ही इसका कारण होगा। यदि मैं बिना किसी आत्म-श्लाघाके कह सकूँ, तो मैं कहना चाहूँगा कि शोलापुरके मार्शललाकी अवज्ञा करनेका विचार फैलानेवाला और वास्तविक अवज्ञाकर जेल जानेवाला पहिला व्यक्ति मैं ही था। यह सब कुछ अपनी सफाईके रूपमें है। अस्तु,

"मेरे विचारमें, जो व्यक्ति सर्वथा मृत्युके पजेमें फँसा हुआ है उसका तिरस्कार करनेसे कोई लाभ नहीं। वह तो केवल दयाका ही पात्र है। क्रियात्मक हिंसा ऐसा गुण या अवगुण है, जो न तो किसी बड़ीसे बड़ी सार्वजनिक प्रशसासे विकसित हो सकता है, क्योंकि यह एक जीवन और मरणका प्रश्न है, और न किसी तीव्रसे तीव्र सार्वजनिक निंदा अथवा सरकारी दमन या दोनोंसे समूल मिटाया ही जा सकता है, क्योंकि यह परिणाम है विद्रोही भावनाओंका। जो लोग फाँसीसे नहीं डरते वे जनताकी रायसे न हिचकिचायेंगे। गुण या अवगुण अपवाद है और केवल भयकर दमन अथवा स्त्रियोंके सतीत्वपर हमला होनेके बाद ही फूट निकलता है; उसका समूल नाश तभी हो सकता है जब या तो शासक अपने तर्ज-अमलको सुधारें या अपना अंत कर लें।

"हम अपने मृत्युकालके समीपतक सुरक्षित और निर्विघ्न रहनेकी न्याय्य इच्छा तभी रख सकते हैं, जब हम नेक और पाप भीरु हों, किंतु निकृष्टसे निकृष्टतम् पाप करनेके बाद यदि हमारे साथ कुछ धोखेबाजी की जाय, तो उससे दुःखी होनेका हमें क्या अधिकार है, और खासकर उस दशामें जब हमने बदला लेनेके खुले, उचित, ईमानदारीपूर्ण और बिना-धोखेबाजीके सब मार्ग रोक दिये हों? किसी भी बड़ेसे बड़े देशकी, भारतकी ख्याति दब्बूपनसे अन्याय एवम् जुल्म और पाशव अत्याचार सह लेनेमें नहीं है। 'प्रेम और

युद्धमें कुछ भी अनुचित नहीं है' यह एक आम कहावत है, और दो असमान दलोंमें यह कमजोरके लिए अधिक उपयुक्त है।

"अब यजमान और मेहमानकी फिलासफीको लीजिये। श्री हाटसन किसके मेहमान थे? क्या फरग्यूसन कालेजके? अवश्य ही वे प्रिंसिपलके और प्रोफेसरोंके मेहमान थे, किंतु अनिच्छुक विद्यार्थियोंके किसी भी हालतमें नहीं। क्या ऐसे माननीय मित्रको निमंत्रित करनेसे पहले विद्यार्थियोंकी राय ली गयी थी? क्या प्रिन्स आफ वेल्स, युवराज, भारत सरकारके और उसी दलीलसे भारतके मेहमान न थे? लेकिन उनका स्वागत किस प्रकार किया गया? इसीलिए इस मामलेमें असाधारण सयम न रख सकनेके लिए श्री गोगटेपर तो अंतिम दोषारोप होना चाहिये; असली जिम्मेवरी या गैरजिम्मेवरी प्रिंसिपल श्री महाजनीकी है और असली अपराधी या असली अर्थमें अपराधके लिए उकसानेवाला तो बम्बईका अस्थायी गवर्नर है, जिसे अच्छे बर्तावसे पेश आनेकी सलाह दी जानी चाहिये।

"मैं अस्थायी गवर्नरकी उस स्थिरचित्तता और साथ ही सर्दमिजाजीकी सराहना करता हूँ, जिससे उन्होंने हत्याके असफल प्रयत्नके तुरंत बाद श्री गोंगटेसे कहा—'मेरे बच्चे ऐसा करना बेवकूफी है' और पूछा—'तुम ऐसा किस कारणसे कर रहे हो?' किंतु अस्थायी गवर्नरका यह उदार और प्रेमपूर्ण भाव सर्वथा क्षणिक था। यदि उन्होंने इस तरह मानों कोई असाधारण बात हुई ही नहीं, श्री गोगटेको उसीपर छोड़कर उस भावको साहसपूर्वक जरा अधिक समयतक रक्षित रक्खा होता, तो देशके क्रांतिकारी समुदायकी मनोवृत्तिपर इसका कैसा अदभुत प्रभाव हुआ होता? सदैव अपने ए. डी. सी. (शरीर रक्षकों) और सेनाकी संरक्षतामें रहनेवाले अस्थायी गवर्नरको इक्के-दुक्के गोंगटेके ऐसे बेवकूफीके कामोंसे डरनेकी जरूरत नहीं। अब भी समय निकल नहीं गया है। विश्वाससे विश्वास पैदा होता है। क्षमा भयंकरसे भयकर शत्रुको पिघला देती है। किंतु क्षमा सबलकी ओरसे होनी चाहिये, निर्बलकी हर्गिज नहीं। इस ओर श्रीगणेश करनेके लिए अस्थायी गवर्नर उपयुक्त व्यक्ति हैं। किंतु समय-चिन्ह साफ तौरपर बताते हैं कि ऐसी सद्बुद्धिके उदय होनेकी बहुत कम सम्भावना है।"

क्योंकि यह लेख राजपूताना जहाजपरसे लिखा जा रहा है, इसलिए यह लिखे जानेके तीन सप्ताह बाद प्रकाशित होगा। किंतु दुर्भाग्यसे विषयके सदा ताजा होनेके कारण, लेखको बासी समझनेकी जरूरत नहीं। इस बातकी बड़ी आशंका है कि संवाददाताकी मनोवृत्ति उसी मनोवृत्तिकी परिचायक है जो बहुतसे विद्यार्थियोंमें फैली हुई है। लेकिन तरीका और भी अधिक जहरीला और हानिप्रद है क्योंकि वह ईमानदारीसे इख्तियार किया गया है। जैसा संवाददाताका कथन है, यह कहना अनुभवके विरुद्ध है कि भावुक नवयुवक आसपासके वातावरणका कुछ भी ख्याल न कर क्षणिक उत्तेजनाके अनुसार काम कर डालेंगे। उनकी साहसिक प्रवृत्तिके संबंधमें कुछ सदेह नहीं हो सकता, लेकिन मैं यह नहीं मानता, कि वे इतने अभिमान-शून्य हैं कि अपनी प्रशंसा अथवा निंदाकी ओर सर्वथा उदासीन हों। मुझे यह पूर्ण विश्वास है कि यदि उन्हें यह मालूम हो जाय

कि उनके कार्यकी सर्वत्र एक स्वरसे निंदा होगी, तो वे अपनी कीमती जिंदगीको हर्गिज यों ही न गवायेंगे। इसलिए मुझे इस बातमें जरा भी संदेह नहीं है कि जो लोग अनुभव करते हैं कि ऐसे कार्योंसे उद्देश्यको भयंकर हानि पहुंचती है, उनका यह कर्तव्य है कि ऐसे कार्योंकी एक स्वरसे निंदा करें। शोलापुरके मार्शलला या उसके अन्तर्गत होनेवाले कार्योंके लिए अस्थायी गवर्नरको जिम्मेदार ठहराना सर्वथा भ्रमात्मक है। यह तो प्रणालीका दोष है। इसलिए कांग्रेस इस मुख्य बातको अनुभव करके इस प्रणालीका नाश करनेका प्रयत्न कर रही है, शासकोंका नहीं। भारत जैसे विशाल देशकी एक शक्तिशाली संस्था द्वारा लूटनेके आधारपर स्थित प्रणालीको कार्यमें परिणत करनेका काम यदि किसी देवदूत या फरिश्तेके सुपुर्द किया जाय तो वह देवदूत भी अपनेको असहाय अनुभव करेगा, और अवसर आनेपर ठीक वही करेगा, जो अस्थायी गवर्नरने किया। दस-शीशधारी रावण कोई मानवी राक्षस नहीं था, वरन् रावणके रूपमें एक प्रथा थी, जिसके पुराने सिर काटते ही नये उग आते थे। और रामके लिए उक्त रावणका मार सकना तभी संभव हुआ, जब उनका ध्यान उस मूल स्थानकी ओर दिलाया गया, जहांसे सिर पैदा हो जाते थे।

हमारे सामने अनेक हत्यायें हुई हैं और मारे गये प्रत्येक अफसरकी जगह नयेकी नियुक्ति हो गयी, और शासनतंत्र वैसे ही मजेमें चलता रहा, जैसे हमेशा चलता था। लेकिन यदि हम एक बार बुराईकी जड़को ही उखाड़नेमें सफल हो सकें, तो न तो शोलापुर ही दुहराया जायगा, न अप्रिय फॉसियोंकी ही पुनरावृत्ति होगी। इसलिए जहांतक ऐसी बुराइयोंकी निंदाका संबंध है, जो नवयुवकोंके हृदयमें चुभती रहती हैं, मैं उनकी उतनी ही सख्तीसे निंदा करूंगा, जितनी कि वे करते हैं। उन्हें चाहिये कि वे लम्बी-चौड़ी दलीलें छोड़ दें और इस प्रणालीका नाश करनेमें कांग्रेसको सहयोग दें। व्यक्तियोंकी हत्याका मार्ग इस प्रणालीको जीवित रखनेका नया पट्टा दे देता है। अहिंसात्मक युद्ध उसके जीवनको घटाता है, और यदि उसे पूर्ण रूपसे अंगीकृत कर लिया जाय, तो इस प्रणालीके पूर्ण रूपसे मूल-विच्छेदका निश्चय कराता है। जो लोग संवाददाताकी तरह दलीलें देते हैं, उन्हें याद रखना चाहिये कि यदि हत्याकी नीतिकी प्रगति रोकी न गयी तो वह उल्टी हमारे अपने सिरपर पड़ेगी और इसलिए हमारी यह स्थिति पूर्व स्थितिसे भी बदतर होगी। हमें उक्त प्रणालीको नये पोशाकमे पुनरुज्जीवित करनेका अत्यंत भयंकर खतरा न मोल लेना चाहिये। सफेद आदमियोंके बजाय भूरे आदमियों द्वारा उसी प्रणालीके अनुसार शासनकार्य होनेके परिणाममें यदि अमर्याद अनर्थ नहीं तो वैसा ही अनर्थ अवश्य होगा, जैसा आज हो रहा है।

हिन्दी नवजीवन
२४ सितम्बर, १९३१

अहिंसापर बात-चीत

यह अजीब संयोगकी बात थी कि इन दिनोंमें शामकी प्रार्थनाके बादकी सब बातचीत अहिंसाके संबंधमें होती थी। स्वेजसे जहाजपर सवार हुए कुछ मिस्रके मित्र भी एक दिन बातचीतमें भाग ले सके।

एक शामको गांधीजीने कहा "जानेमें या अनजानेमें हम अपने दैनिक जीवनमें एक दूसरेके प्रति अहिंसक रहते हैं।" इस बातपर स्पष्ट रूपसे जोर देते हुए वे आगे कहने लगे—

"सब सुसंगठित समाजोंकी रचना अहिंसाके आधारपर हुई है। मैंने देखा है कि जीवन विघातके बीच रहता है और इसलिए विघातसे बढ़कर कोई नियम होना चाहिए। केवल उसी नियमके अन्तर्गत एक सुव्यवस्थित समाज समझा जा सकता है और उसीमें जीवनका आनंद है और यदि जीवनका यही नियम है, तो हमें उसे दैनिक जीवनमें बरतना चाहिये। जहाँ कहीं विसंगतता हो, जहाँ कहीं आपका विरोधीसे मुकाबला हो, उसे प्रेमसे जीतिये। इस तरह मैंने इसे अपने जीवनमें व्यवहृत किया है। इसका यह अर्थ नहीं कि मेरी सब कठिनाइयाँ हल हो गयीं। मुझे जो कुछ भी मालूम हुआ है वह यही है कि इस प्रेमके कानूनसे जितनी सफलता मिली है, विघातसे उतनी कदापि नहीं मिली। भारतमें इस नियमके प्रयोगका बड़ेसे बड़े प्रमाणमें प्रत्यक्ष प्रदर्शन कर चुके हैं। मैं इसलिए यह दावा नहीं करता कि अहिंसा तीस करोड़ भारतवासियोंके हृदयमें अवश्य ही घर कर गयी है; किंतु मैं इतना दावा अवश्य करता हूँ कि अन्य किसी भी संदेशकी अपेक्षा, इतने थोड़ेसे समयमें यह कहीं अधिक गहराईसे प्रवेश कर गयी है। हम सब समान रूपसे अहिंसक नहीं रहे, और अधिकांशके लिए अहिंसा नीतिके तौरपर रही है। इतनेपर भी चाहता हूँ कि आप देखें कि क्या अहिंसाकी संरक्षक शक्तिके अन्तर्गत देशने असाधारण प्रगति नहीं की है।"

एक दूसरे प्रश्नके उत्तरमें उन्होंने कहा—"मानसिक अहिंसाकी स्थिति तक पहुंचनेके लिए काफी कठिन प्रयत्नकी आवश्यकता रहती है। एक सिपाहीके जीवनकी तरह, चाहे हम चाहें या न चाहें, हमारे जीवनमें उसका अनुशासनकी तरह पालन होना चाहिये। लेकिन मैं यह स्वीकार करता हूँ कि जबतक उसके साथ दिमाग या मस्तिष्कका हार्दिक सहयोग न होगा, उसका केवल ऊपरी आचरण ढोंग होगा, और स्वयं उस व्यक्ति और दूसरोंके लिए हानिकारक होगा। पूर्णावस्था उसी दशामें प्राप्त होती है, जब मस्तिष्क, शरीर और वाणी इन तीनोंका समुचित एवं समान रूपसे मेल हो। किंतु यह गहरे मानसिक संघर्षका विषय है।

उदाहरणके लिए, यह बात नहीं कि मुझे क्रोध न आता हो, लेकिन मैं करीब करीब सब अवसरोंपर अपने भावोंको अपने वशमें रखनेमें सफल हो जाता हूँ। नतीजा कुछ भी हो मेरे मनमें अहिंसाके नियमका, मनसे और निरंतर पालन करनेके लिए सदैव सजग संघर्ष होता रहता है। ऐसा संघर्ष मुझे उसके लिये काफी शक्तिशाली बना देता है। अहिंसा शक्तिशाली अथवा ताकतवरका अस्त्र है। कमजोर आदमीके लिये वह आसानीसे ढोंग बन जा सकता है। भय और प्रेम परस्पर विरोधी बातें हैं। प्रेम इस बातकी परवा नहीं करता कि बदलेमें उसे क्या मिला है। प्रेम अपने और संसारके साथ युद्ध करता है और अन्तमें अन्य सब भावोंपर प्रभुत्व प्राप्त कर लेता है। मेरा और मेरे साथियोंका यह दैनिक अनुभव है कि यदि हम सत्य और अहिंसाके नियमको अपने जीवनका नियम बनानेका निश्चय कर लें तो हमारी प्रत्येक समस्याका हल अपने आप हो जायगा। मेरे लिये सत्य और अहिंसा एक ही सिक्केके दो बाजू हैं।

मैं यह नहीं जानता कि मनुष्य जाति प्रेमके नियम या कानूनका अनुसरण करेगी या नहीं। लेकिन इसमें परेशान होनेकी जरूरत नहीं। नियम अथवा कानून अपने आप काम करेगा; जिस तरह गुरुत्वकर्षणका नियम, हम चाहे मानें या न मानें, अपना काम करता रहेगा। जिस प्रकार एक वैज्ञानिक प्राकृतिक नियमोंके प्रयोग द्वारा आश्चर्यजनक बातें पैदा करता है यदि कोई व्यक्ति प्रेमका वैज्ञानिक यथार्थताके साथ प्रयोग करे तो वह इससे अधिक आश्चर्यजनक बातें पैदा कर सकेगा। क्योंकि अहिंसाकी शक्ति प्राकृतिक शक्तियों, उदाहरणार्थ बिजली आदिसे कहीं अधिक अनन्त, आश्चर्यजनक और सूक्ष्म है। जिस व्यक्तिने हमारे लिये प्रेमके नियम अथवा कानूनकी खोज की वह आजकलके किसी भी वैज्ञानिकसे कहीं अधिक बड़ा वैज्ञानिक था। केवल हमारी शोध अभी तक जितनी चाहिये इतनी नहीं हुई और इसलिये प्रत्येकके लिए उसके परिणाम देख सकना संभव नहीं है। कुछ भी हो यह उसकी एक विशेषता है, जिसके अन्तर्गत मैं प्रयत्न कर रहा हूँ। प्रेमके इस कानूनके लिए मैं जितना अधिक प्रयत्न कर रहा हूँ, उतना ही अधिक मुझे जीवनमें आनन्द—इस सृष्टिकी योजनामें मुझे आनन्द अनुभव होता है। इससे मुझे शान्ति मिलती है—प्रकृतिके रहस्योंका अर्थ जान पाता हूं जिनका वर्णन करनेकी शक्ति मुझमें नहीं है।"

हिन्दी नवजीवन

८ अक्तूबर १९३१

❀

हिंसाके विरुद्ध क्यों ?

एक सज्जन यह दलील देते है —

"आप आखिर क्यों हिंसाके विरुद्ध हैं ? क्या आपके ख्यालमें प्रत्येक 'हिंसा-कृत्य' में पाप है ? क्या यह अजीब सी बात नहीं है कि जब हम कोई हत्या या कत्ल देखें, तब एक तरहका डर, तरस और घिन महसूस करें, और संसारमें नित्य प्रति धीरे-धीरे जो रक्त चूसा जा रहा है उसे चुपचाप खड़े देखते रहें ? अगर किसीका यह विश्वास है कि सफल रक्तपातकी क्रांतिसे दुनियाकी हीन दशा बहुत कुछ सुधर जायगी, तो वह क्यों न हथियार उठावे ? मनुष्यकी प्रकृतिके बारेमें आप अत्यधिक आशावादी मालूम होते हैं, हालाँकि मैं अक्सर उसके विषयमे आपके कटु अनुभवोंको पढा करता हूँ। क्या आप यह अनुभव नहीं करते कि ससारके शासक आज इतने अधिक हृदयहीन हो गये हैं, कि जबतक वे फिरसे 'बच्चे' नहीं हो जाते, तबतक आपको या मनुष्यताको वे समझ ही नहीं सकते ? मेरे कहनेका यह अर्थ नहीं, कि वे पैदाइशसे ही बुरे हैं। मगर उनकी बुराई हाड़-मासमें इस कदर पैठ गयी है कि अपने आप उसे वे बदल ही नहीं सकते।"

दुनियाँके शासक अगर बुरे हैं, तो इसका यह कारण नहीं कि बिल्कुल प्रकृतिसे या सर्वथा जन्मसे ही वे ऐसे है, बल्कि अधिकांश सहवास या परिस्थितियोंके कारण उनमें यह बुराई आ गयी है और इसीसे मुझे आशा है कि वे सुधर सकते है। लेखकका यह कहना बिल्कुल ही सच है कि अपनी बुराईको वे अपने आप नहीं बदल सकते। अगर उनकी चारों ओरकी परिस्थितियोंने उन्हें अपना गुलाम बना लिया है, तो उनकी बुराई उन्हें कत्ल कर देनेसे नहीं बदली जा सकती, उसमें तो उनकी उन परिस्थितियोंके बदल देनेसे ही सुधार किया जा सकता है, पर वे परिस्थितियाँ हम प्रजा ही तो है। जैसी प्रजा, वैसा राजा। कुल मिला-कर असलमें प्रजाके विस्तृत संस्करण ही इन शासकोंको कहना चाहिये। मेरी यह दलील अगर ठीक है, तो शासकोंके प्रति किया हुआ हमारा कोई भी हिंसाकार्य 'आत्मघात' ही कहा जायगा। और चूँकि मैं न खुद अपघात करना चाहता हूँ, न अपने पड़ोसियोंको ऐसा करनेके लिए उत्तेजित करना चाहता हूँ, इसलिए मैं स्वयं अहिंसक बन जाता हूँ और अपने पड़ोसियोंसे भी यही मार्ग ग्रहण करनेको कहता हूँ।

फिर, हिंसा एक या अनेक जालिम शासकोंको नष्ट कर सकेगी सही, किंतु रावणके मस्तकोंकी तरह उनकी जगह वैसे ही दूसरे पैदा हो जायँगे, क्योंकि जड़ तो जायगी नहीं। वह जड़ तो हमारे अपने ही अंदर है। अगर हमने अपना सुधार कर लिया, तो हमारे शासक तो आप ही सुधर जायँगे।

लेखकने शायद यह कल्पना कर रखी है, कि 'अहिंसक मनुष्य' किसी अत्याचारको महसूस नहीं कर सकता और संसारमें नित्य धीरे-धीरे जो रक्त-शोषण हो रहा है, उसे वह चुपचाप खड़ा देखता रहता है। यह बात नहीं है। अहिंसा कोई निष्क्रिय शक्ति नहीं है, न लेखककी कल्पनाके अनुसार वह ऐसी बेबसीकी ही चीज है। सत्यके बाद असलमें अहिंसा ही संसारमें बड़ी-से-बड़ी सक्रिय शक्ति है। विफल तो वह कभी जाती ही नहीं। हिंसा सिर्फ ऊपरसे सफल मालूम देती है। किसीने कभी यह दावा नहीं किया कि हिंसासे सफलता बराबर मिलती ही है। अहिंसा कभी यह दावा नहीं करती कि उससे तत्क्षण प्रत्यक्ष फल मिल जाता है वह कोई जादूकी पुड़िया तो है नहीं। इसीसे उसमें असफलताएँ होती दिखायी देती हैं। हिंसामें जिसका विश्वास है, वह हत्यारेको मार डालेगा और अपने इस कामकी बड़ी शान बघारेगा। पर उसने 'हत्या' को तो मारा नहीं, बल्कि हत्यारेको मारकर उसने एक और हत्या कर डाली, और शायद हत्याका द्वार और भी खोल दिया। बैरसे तो बैर बढ़ता ही है, उसका शमन नहीं होता।

अहिंसक मनुष्य तो अपने प्रेम-बलका ही हत्यारेपर असर डालेगा। हत्यारेको दंड देकर वह उस हत्याको नहीं मिटा सकता। पर अपने प्रेमके द्वारा हत्यारेसे हत्या-कृत्यपर पश्चात्ताप करानेकी और उसके जीवनका मार्ग एकदम बदल देनेकी उसे आशा रहती है। अहिंसक मनुष्य तो सदा आत्म-निरीक्षण ही करेगा और इस परम सत्यका पता लगा लेगा कि—

"आत्मनः प्रतिकूलानि परेषा न समाचरेत्"

हमें वही बरताव दूसरोंके साथ करना चाहिये, जो हम उनसे अपने प्रति कराना चाहते हैं। यही सर्वोत्तम मार्ग है। अगर वह स्वय हत्यारा होता, तो वह अपने पागलपनके लिए अपना वध कभी न करवाना चाहता, वह तो यह चाहता कि हमे अपनेको सुधारनेका अवसर मिले। अहिंसक यह भी जानता है कि जिसे मैं बना नहीं सकता, उसे मिटाना भी नहीं चाहिये। मनुष्य-मनुष्यके बीचका एक-मात्र मुसिफ तो हमारा सिरजनहार ही है।

हरिजन सेवक
२८ सितम्बर, १९३४

❀

तर्क नहीं, किन्तु अनुभव

मेरी दृष्टिमें तो मेरी प्रत्येक प्रवृत्तिके लिए सत्यकी तरह अहिंसा भी मेरा शाश्वत-धर्म है। मनुष्येतर जीव सृष्टिके प्रति अपने व्यवहारमें अनेक बार इस धर्मका जो मैं पूर्ण आचरण नहीं कर सकता, वह मेरी आत्मनिर्बलता ही सिद्ध करता है, इससे अहिसा धर्मकी सत्यता अथवा मेरी तद्विषयक श्रद्धामें कमी नहीं आती, न आ सकती है। मैं तो केवल एक रंक साधक हूँ। सदा ठोकरपर ठोकर खाता रहता हूँ, तो भी निरंतर ऊपर चढ़नेका जतन करता हूँ। मेरी निष्फलता मुझे पहलेसे भी अधिक जाग्रत बनाती है और मेरी श्रद्धामें और भी अधिक शक्तिका सचार करती है। मै यह श्रद्धाकी आंखोंसे देख सकता हूँ कि सत्य और अहिसाके द्विविध धर्मके पालनमें इतनी अमोघ शक्ति है कि जिसकी हमें बहुत ही धुधली कल्पना है।

अगर इन दोनों तत्त्वोंको हमें अपने समस्त जीवनमें व्यापक बना लेना है, तो अस्पृश्यताके विरुद्ध हमने जो शुद्ध धार्मिक युद्ध छेड़ा है, उसमें तो इसकी बहुत अधिक आवश्यकता है। अतएव अमेरिकाके एक मित्रके लिखे पत्रका निम्नलिखित उद्धरण पाठकोंके आगे रखते हुए मुझे हर्ष होता है। इस पत्रमें मेरे अमेरिकन मित्रने अपने हृदयका भाव प्रकट किया है; इस बातका वर्णन करके कि उनकी मनोवृत्तियां किस तरह काम कर रही है, उन्होंने महा-मंथनपूर्वक शोध करनेके उपरांत अहिंसाके विषयमें जो श्रद्धा, अभी स्यात् वह सम्पूर्ण नहीं कही जा सकती प्राप्त की है, उसे व्यक्त किया है।

"आपके साथ अभी पिछली वेर मेरी जो बातचीत हुई थी, उससे आपने यह समझा होगा कि अहिंसाके बारेमें मेरी जो आस्था थी उसे अब मै गॅवाता जा रहा हूँ। इस सिद्धातके संबंधमें मुझे अनेक शंकाओंने परेशान कर रखा था और इसीसे मुझे आपके साथ बात करनेका इतना अधिक मन हुआ। मुझे ऐसा लगता है कि यह मेरी भारी नादानी थी, क्योंकि मुझे यह साफ-साफ समझ लेना चाहिये था कि महान नैतिक तथा आध्यात्मिक सत्य तर्कके द्वारा सिद्ध हो ही नहीं सकते। इन सत्योंको तो अनुभवकी आगमें ही कसना चाहिये। ऐसी कठिन कसनी मैंने अपने जीवनमें अभी कहाॅ की है? मुझे लगता है कि अहिंसाको अपने अनुभवसे शाश्वत-धर्म सिद्ध करनेके लिए जितनी तपस्या मैंने आजतक की है, उससे कई गुनी अधिक अभी करनी चाहिये।

"किंतु दूसरोंके जीवनमें इसका जो परिपाक हुआ है उसे मैं देखता हूॅ, और इसका जो फल लगा है उसे भी मैं देख सकता हूॅ और उससे मैं इसे अपनी धर्म-श्रद्धाके एक महान अगके रूपमें अंगीकार भी कर सकता हूॅ। राजेन्द्र बाबू जैसे पुरुषोंके निकट

संसर्गमें आना एक ऐसा सौभाग्य है, जिसके लिए मनुष्यको भगवान्का आभारी होना चाहिये। मैंने देखा है, राजेन्द्र बाबू और दूसरे कुछ व्यक्ति, जिनका नाम मैं बतला सकता हूँ और जिन्होंने अपने जीवनकी पतवार अहिंसाके ही आसरे चलायी है, वे लोभ, मोह, स्वार्थ, द्वेष, भय आदिको दूर करके ही शुद्ध हो सके हैं। अनेक लोग दूरवर्ती प्रकाशमय भविष्यकी झीनी झाँकी तो कुछ-कुछ ले सकते है, पर अंतरमें डेरा डाले हुए ये षड्रिपु उन्हें ऐसा सताते हैं कि वे बाह्य शत्रुओंके सामने युद्धमें विजय-लाभ नहीं कर सकते। आपके विरोधियोंपर अहिंसाका जो प्रभाव पड़ा है उसपर मैं इतना अधिक मुग्ध नहीं हूँ, किंतु आपपर और दूसरे मुठी भर मनुष्योंपर, जिन्होंने अहिंसा धर्मको अपने अंतरमें उतारा है, इसका जो प्रभाव पड़ा है मेरा मन तो उसीपर मंत्र-मुग्धवत् है।

"मै मानता हूँ, कि यह विश्व नीति-नियत्रित है। अतः जिस प्रकार दिनके बाद रात आती है, उसी प्रकार यह भी स्पष्टतः स्वयसिद्ध है, कि चारित्र्यका ऐसा सुदर विकास असत्यके प्रयोगोंसे हो ही नहीं सकता। और इसी तरह मै यह भी मानता हूँ कि ईसा-मसीहका यह वचन अततः सत्य ही है कि 'जो लोग तलवार उठायेंगे उनकी मौत तलवारसे ही होगी।'

"....मेरा विश्वास है कि आपको अपने युद्धको अंतिम विजयके लिए एक ही गुणके उपयोग करनेकी जरूरत है, और वह गुण है धीरज।

"....हिन्दुस्तानका आज आप जो नेतृत्व कर रहे हैं उसके बारेमें तो मैं इतना ही कहूँगा कि आपने नेतृत्वका यह गुण एक दिनमें विकसित नहीं किया और न यह गुण आपका जन्मजात ही है। मैं मानता हूँ कि आप सत्य-परायणताका दीर्घकालिक तप करके, लम्बे और कठिन अनुभवके परिणामस्वरूप ही, अपने जीवनको इतना ऊँचा उठा सके हैं। भले ही यूरोपके लोगोंको अहिंसा-पालनकी शिक्षा न मिली हो, पर मै यह नहीं मानता कि यूरोपमें मनुष्य-स्वभाव हिन्दुस्तानसे बिलकुल ही भिन्न होता है। इसलिए वे लोग भी आचरण-द्वारा ही अहिंसा-धर्ममें निष्णात हो सकते हैं। इसमें अनेक बार निष्फलता होगी, अनेक बार हिम्मत टूटेगी, अनेक बार पराजय होगी। आपके भी जीवनमे यह सब हुआ है और अब भी हो रहा है। लेकिन अगर यह सत्य है, तो इस शाश्वत-धर्मका त्याग तो किसी भी समय नहीं किया जा सकता।"

हरिजन सेवक
२८ सितम्बर, १६३४

❀

जीव मात्र एक हैं

गत मास में सात-आठ दिनके लिए बोरसद गया था। वहाँ मैंने अपने कई भाषणोंमें कहा था कि यद्यपि मै मानता हू कि प्लेगके कीटाणुवाले चूहे, पिस्सू भी मेरे लिए सहोदरके समान हैं, और जीनेका जितना अधिकार मुझे है उतना ही अधिकार उन्हें भी है, तो भी डा० पटेलके चूहे और पिस्सू मारनेके प्रयत्नका मै बिना संकोचके समर्थन करता हूँ।

एक पत्र-रिपोर्टरने, जिसे मेरी यह चूहों और पिस्सुओंके सहोदरपनकी बात सुनकर आश्चर्य हुआ, पर जिसने यह पर्वा नहीं की कि मैंने किस प्रसगपर यह कहा था, चटसे मेरी वह बात तार द्वारा अपने अखबारको भेज दी। सरदार पटेलकी तीक्ष्ण दृष्टि उस पैरेपर जा पड़ी, और उससे जो हानि होनेकी सम्भावना थी उसे सुधार देनेके लिए उन्होंने मुझसे कहा। मगर उन्होंने जो काम मुझे सौंप रखा था उससे मुझे फुर्सत नहीं थी, इसलिए मैंने यह कहकर लिखनेकी बात टाल दी कि जिन लोगोंका इस बातसे संबध है वे कभी मेरे कहनेका गलत अर्थ नहीं लगायेंगे।

लेकिन सरदारका कहना ठीक निकला। वह अर्द्धसत्यवाली खबर तारसे लदन भेज दी गयी। वहाँ जो लोग यूरोपमे मेरी ख्याति बढ़ानेके विषयमें चिंतित रहते है उन्हें वह पैरा पढ़कर क्षोभ हुआ। यद्यपि इतना तो वे समझते थे कि इस सहोदरपनके दावेमे मैंने बहुत-कुछ मर्यादाएँ तो रखी ही होंगी। उन्होंने मेरे पास उस पैरेकी कटिंग लेकर भेज दी। अब उन मित्रोंकी खातिर भी मै बाध्य हूँ कि अपनी स्थितिको साफ कर दूं। यद्यपि जो अर्द्धसत्य एक बार चल निकला, वह एकदम कैसे रोका जा सकता है ?

मै जिन लोगोंके आगे वहाँ भाषण दे रहा था, वे उन जंगली जानवरोंको भी नहीं मारते, जो नित्य ही उनकी खेतीका नाश करते रहते है। सरदारने अपने प्रचंड प्रभावका पूरा उपयोग जब किया, तब कहीं चूहोंका संहार वहां हो सका। इसके पहले बोरसद तालुकामे कभी एक भी चूहा या पिस्सू नहीं मारा गया था। लेकिन सरदारका उन लोगोंपर बहुत बड़ा उपकार था, इसलिए उनकी बातका विरोध वे नहीं कर सकते थे, और उन्होंने डा० भास्कर पटेलको चूहों और पिस्सुओंका संहार निर्बाध रीतिसे करने दिया। बोरसदमें जो काम हो रहा था उसकी मुझे रोज-ब-रोज खबर मिलती रहती थी।

जो काम वहाँ हुआ था उसपर मेरी स्वीकृति लेनेके लिए ही सरदारने मुझे बुलाया था। कारण कि यह काम अब भी जारी रहना था, हालाकि लोगोंको

अब खुद अपने स्वतंत्र प्रयत्नसे यह काम करना था। इसलिए अपनी सम्मतिपर जोर देनेके लिए मैने अहिंसा अर्थात् जीवमात्रकी अबध्यता तथा एकता विषयक अपनी अटल श्रद्धा अत्यंत स्पष्ट शब्दोंमें सुना दी।

किंतु श्रद्धा और क्रियाके बीच यह विरोध किस लिए ? विरोध तो अवश्य है ही। जीवन एक अभिलाषा है। उसका ध्येय पूर्णता अर्थात् आत्म-साक्षात्कारके लिए प्रयत्न करना है। अपनी निर्बलताओं या अपूर्णताओंके कारण हमें आदर्श नीचा नहीं करना चाहिये। मुझमें निर्बलता और अपूर्णता दोनों ही हैं। यह नहीं कि मुझे उनका दुःखद भान न हो। अपनी उन निर्बलताओं और अपूर्णताओंको दूर करनेमें सहायता देनेके लिए सत्य-भगवानके समक्ष मेरे हृदयमें मूक पुकार प्रति क्षण उठती रहती है। मै यह मानता हूँ कि साँप-बिच्छू, बाघ और प्लेग तथा पिस्सुओंसे मुझे डर लगता है। मुझे यह भी कहना चाहिये कि खतरनाक दिखायी देनेवाले डाकुओं और हत्यारोंसे भी मुझे डर लगता है। मैं यह जानता हूँ कि मुझे इनमेंसे किसीसे भी नहीं डरना चाहिये। पर यह कोई बुद्धिकी बहादुरीका काम नहीं है। यह तो हृदयका व्यापार है। सिवाय ईश्वरके और सबका भय त्याग देनेके लिए वज्र-सा कठोर हृदय चाहिये। अपनी निर्बलताओंके कारण बोरसदके लोगोंको मै यह सलाह तो नहीं दे सकता था कि आप लोग हत्यारे चूहों और पिस्सुओंको न मारे। पर मै यह जानता था कि यह छूट मानवी निर्बलताका ही परिणाम है।

तो भी अहिंसा और हिंसा संबंधी मेरे विश्वासोंमें उतना ही अंतर है, जितना उत्तर दिशा और दक्षिण दिशामें है या जितना अंतर जीवन और मृत्युके बीच है। मनुष्य अहिंसा, अर्थात् प्रेम धर्मके समुंदरमें जब अपने भाग्यकी किस्ती छोड़ देता है, तब वह नित्य विनाशका दायरा कम करता जाता है, और उतने अंशमें जीवन और प्रेमका क्षेत्र बढ़ाता जाता है। जो मनुष्य हिंसा अर्थात् द्वेषका आलिंगन करता है वह क्षण-क्षण अपने विनाशका क्षेत्र विस्तृत करता जाता है और उतने अंशमें मृत्यु तथा घृणाको बढाता है।

यद्यपि बोरसद वासियोंके आगे मैंने अपने सहोदरवत् चूहों और पिस्सुओंके विनाशका समर्थन किया, तो भी मने उन्हें जीवमात्रके प्रति अमर प्रेम-धर्मका महान सिद्धांत शुद्ध रूपमे बतलाया। यद्यपि इस जन्ममें उस सिद्धांतका पालन पूर्णतया मैं नहीं कर सकता, तो भी उसपर मेरी अटल श्रद्धा तो रहेगी ही। मेरी प्रत्येक असफलता मुझे उसके साक्षात्कारके अधिकसे अधिक समीप ले जाती है।

हरिजन सेवक
१८ जून, १९३५

अहिंसाका अर्थ

एक अंग्रेज मित्रने मुझे नीचे लिखा पत्र भेजा है—

" 'मद्रास मेल' में प्रकाशित आपके एक पत्रकी नकल इसके साथ नत्थी करके भेजता हूँ। उसे देखनेकी और मुझे यह बतलानेकी क्या आप कृपा करेंगे कि उसमें आपके ठीक-ठीक शब्द आये हैं या नहीं ? और यदि ठीक-ठीक आये हैं तो क्या आप कृपाकर यह समझायेंगे कि यहाँ आपने जो मत प्रगट किया है उसकी संगति आपके हमेशाके वक्तव्योंके साथ कैसे बैठती है ? मुझे तो ऐसा लगता है कि आजतक जितने सिद्धांतोंका उल्लेख मिलता है उनमें यह सबसे भयंकर है। यह तो किसी भी मनुष्यको कानून अपने हाथमें ले लेने और हत्या या दूसरी किसी भी तरहकी हिंसा करनेका आमंत्रण देता है। बहाना सिर्फ यह रहेगा कि वह या तो खुद डरता है या फिर उसके लिए हिंसाका एकमात्र विकल्प कायरताका मार्ग है जो हिंसासे भी बुरा है। अगर यह बात है तब तो बोलो 'जनरल डायरकी जय।'

'मद्रास मेल' की वह कतरन यह है—

"एक प्रसिद्ध कांग्रेसवादीने अपनी चिट्ठीमें आन्ध्र देशके एक गाँवके हिन्दू-मुसलमानोंकी तनातनी और मुसलमानोंकी सीनाजोरीका वर्णन किया था, साथ ही यह सलाह चाही थी कि ऐसी हालतमें क्या करना चाहिये। उसके उत्तरमें गांधीजी अपने एक निजी पत्रमें लिखते हैं—

'प्रिय मित्र,

आपकी वर्णनकी हुई यह स्थिति शोचनीय है। लोग अगर अपने मुसलमान भाइयोंसे डरते हैं तो उन्हें शारीरिक बलका प्रयोग करके अपनी रक्षा करनेका पूरा अधिकार है।

ऐसा न करना कायरताका काम समझा जायगा। कायरता किसी भी तरह अहिंसा नहीं कही जा सकती। कायरता तो खुली हुई और सशस्त्र हिंसासे भी बुरी प्रकारकी हिंसा है।"

मेरे पास उस पत्रकी नकल नहीं है, तो भी उसकी जो 'नकल' प्रकाशित हुई है उसमें मेरे विचारोंका सार आ जाता है। पत्र-लेखकका न तो नाम याद है, न मैं उसे पहचानता हूं। अगर वह कोई प्रसिद्ध कांग्रेसवादी होता तो मेरा विश्वास है कि मैं उसे जानता होता। जैसा 'मद्रास मेल' के संवाददाताने कहा है, मेरा वह पत्र एक प्रश्नके उत्तरमें लिखा हुआ निजी पत्र था। जिन परि-

स्थितियोंके लिए मैंने वह पत्र लिखा था उन परिस्थितियोंको लक्ष्यमें रखकर ही उसे पढ़ना चाहिये। मैंने वह पत्र अगर अपने पास रख लिया होता तो उसके मुख्य अंशको मैं अवश्य यहाँ उद्धृत करता। वह खासा लम्बा पत्र था। लेखकने उसमें गांवके लोगोंकी परिस्थितिका विस्तारके साथ वर्णन किया था और लिखा था कि हिन्दू यहांके असहाय और भयभीत हो गये हैं। अहिंसा क्या चीज है, यह वे बिल्कुल ही नहीं जानते। गांवके मुसलमानोंका जोरो-जुल्म दिन-दिन बढ़ता ही जा रहा है, और दूसरे गावोंके मुसलमान आ-आकर इस अत्याचारको और भी शह दे रहे हैं। ऐसी स्थितिमें गांववाले आखिर क्या करें? पत्र-लेखकने मुझसे यह प्रश्न पूछा था। उसे मैंने जो सलाह दी थी, वैसी सलाह ऐसी परिस्थितिओंमें मैंने हमेशा ही दी है। सन् १९२० में अली भाइयोंके साथ जब मैं भ्रमण कर रहा था, तब मेरे पास यह खबर आई कि बेतियाके पास एक गांवमें पुलिसने निरंकुशताके साथ मार-पीट और लूटपाट की है। इस विषयपर बेतियाके अपने सार्वजनिक भाषणमें मैंने कहा था और १५ दिसम्बर सन् १९२० के 'यंग इन्डिया'में इस संबंधमें एक लेख भी लिखा था, जिसका प्रासंगिक भाग इस लेखके अंतमें उद्धृत किया जाता है।

जो आदमी मरनेसे डरता है और जिसमें सामना करनेकी ताकत नहीं हैं उसे अहिंसाका पाठ नहीं पढ़ाया जा सकता। असहाय चूहोंको अहिंसक नहीं बना सकते, क्योंकि वह तो हमेशा ही बिल्लीके मुंहका ग्रास बना रहता है। उसमे अगर ताकत होती तो वह उस हत्यारी बिल्लीको खुशीसे खा जाता। पर वह तो बिल्लीको देखकर बिलमें छिपनेको भागता है। हम उसे कायर नहीं कहते क्योंकि प्रकृतिने उसका स्वभाव ही ऐसा बनाया है। मगर जो मनुष्य खतरा देखकर चूहेके ऐसा बर्ताव करता है, उसे अगर कायर या नामर्द कहें तो ठीक ही है। उसके दिलमें हिंसा और द्वेष भरा हुआ है, और खुद मार खाये बिना अगर वह शत्रुको मार सके तो उसे मारना भी चाहता है। ऐसा मनुष्य अहिंसासे लाखों कोस दूर हैं। उसे अहिंसाका उपदेश देना बिल्कुल ही अकारथ है। वीरताका लेश भी उसके स्वभावमें नहीं होता। अहिंसा समझ सकनेके पहले उस मनुष्यको यह सीखना होगा कि आक्रमण करनेवाले पहाड़ जैसे मनुष्यके सामने भी छाती खोलकर खड़ा हो जाना चाहिये और उसको आक्रमणसे अपनी रक्षा करते हुए जान भी चली जाय तो कोई पर्वा नहीं। इससे अन्यथा करते हैं तो उसकी कायरता और भी दृढ हो जाती है और अहिंसासे वह और भी दूर जा पड़ेगा। यह सही है कि मैं किसीको प्रत्याघात करनेमें मदद नहीं दूँगा, पर इस तरहकी अहिंसाकी ओटमें अगर कोई अपनी कायरताको छिपाता है, तो मैं उसे यह नहीं करने दूंगा। अहिंसा तो शूरवीरोंका मार्ग है—इस बातको न जाननेसे बहुतोंका यह सच्चा विश्वास रहा है कि जब कोई खतरा आवे—और खासकर जिसमें जान जानेका डर हो—तब सामना करनेके बजाय पीठ दिखाकर भाग जाना एक प्रकारका कर्तव्य है।

बतौर अहिंसाके एक शिक्षकके, जहाँतक मेरे लिए संभव है, ऐसे नामर्दीके खिलाफ मुझे जरूर लोगोंको आगाह कर देना चाहिये।

अहिंसा तो मानवके पास ऐसी प्रबलसे प्रबल शक्ति पड़ी हुई है कि जिसका कोई पार नहीं। मनुष्यकी बुद्धिने संसारके जो प्रचण्डसे प्रचण्ड अस्त्र-शस्त्र बनाये हैं उससे भी प्रचण्ड यह अहिंसाकी शक्ति है। संहार कोई भी मानव-धर्म नहीं है। मनुष्य अपने भाईको मारकर नहीं, बल्कि जरूरत हो तो उसके हाथसे मर जानेको तैयार रहकर ही स्वतन्त्रतासे जीवित रहता है। हत्या या अन्य प्रकारकी हिंसा, फिर चाहे वह किसी भी कारणसे की गयी हो मानव-जातिके विरुद्ध अपराध है।

किंतु मैं यह बिल्कुल स्पष्ट देखता हूँ कि अहिंसा-विषयक यह सत्य दुर्बल असहाय मनुष्योंको नहीं समझाया जा सकता। उन्हें तो आत्मरक्षा करनेकी ही बात समझनी चाहिये।

शंकाशील मनुष्य तब यह दलील देगा,'आप दुर्बल मनुष्यको अहिंसा सिखा नहीं सकते,और बलवानके पास ले जानेका आपका साहस नहीं। तो यह फिर क्यों नहीं मान लेते कि अहिसा अहिंसा द्वारा ही सिखायी जा सकती है। जब उसकी शक्ति और क्षमताका अचूक प्रदर्शन होगा, तब दुर्बल तो अपनी दुर्बलता छोड़ देंगे, और बलवानोंको अपने बलकी निरर्थकताका उसी क्षण पता चल जायगा और नम्र बनकर अहिंसाकी सर्वोत्कृष्टता स्वीकार कर लेंगे। सामूहिक प्रवृत्तिमें भी आप इस ध्येयको प्राप्त कर सकते है, यह बतानेका मेरा नम्र प्रयत्न है। इस अंग्रेज मित्र जैसे आलोचकोंसे मेरी यह प्रार्थना है कि वे जरा धीरज रखे।

आन्ध्रके पत्र-लेखकको मैंने जो खत लिखा था उससे इस अंग्रेज मित्रने जो परिणाम निकाला है वह मरी रायमें निकल ही नहीं सकता। जिस पत्रका मने जवाब दिया था उस पत्रके बिना इतना तो स्पष्ट ही है कि जब पुलिसकी मदद मौजूद है तब मनुष्यके सामने आत्म-रक्षा करनेका कोई मौका ही नहीं आता। पुलिस अगर अपना कर्तव्य पालन करती है, तो खुले आम हमला या मारपीट वह होने ही नहीं देगी। आत्म-रक्षाके लिए सामना करनेकी कानूनमें इजाजत है। मैंने जिन परिस्थितियोंकी चर्चाकी थी उसके सम्बन्धमें मैंने मान लिया था कि वहां पुलिस या कानूनकी पहुंच नहीं हो सकती। अपराध रोकनेकी अपेक्षा वे अपराधका दंड अधिक देते हैं, और अपराधका पता तो और भी कम लगाते है। इसलिए जहां शरीर होम देनेकी तत्परता न हो, वहां आत्म-रक्षाका मार्ग ही एक मात्र प्रतिष्ठित मार्ग है।

हरिजन सेवक
२९ जुलाई, १९३५

अद्वितीय शक्ति

मेरी प्रत्येक प्रवृत्तिके मूलमें अहिंसा रहती है, और इसीसे जिन तीन प्रवृत्तियोंमें मै अपना सरबस उड़ेलता दिखायी देता हूं, उनके मूलमे तो अहिंसा होनी ही चाहिये। ये तीन प्रवृत्तियां अस्पृश्यता-निवारण, खादी और गांवोंका पुनरुद्धार हैं। हिन्दू-मुसलमान-ऐक्य चौथी वस्तु है। इसके साथ मै अपने बचपनसे ही ओत-प्रोत रहा हूं। पर अभी मै इस विषयमें ऐसा कोई कार्य नहीं कर सकता, जो प्रत्यक्ष नजर आ सके। इसलिए इस दृष्टिसे मैंने इस विषयमे अपनी हार कबूल कर ली है। पर इसपरसे कोई यह कल्पना न कर ले, कि मै इस संबंधमें हाथ धो बैठा हूँ। मेरे जीते जी नहीं तो मेरी मृत्युके बाद हिन्दू और मुसलमान इस बातकी साक्षी देंगे कि मैंने हिन्दू-मुसलिम-ऐक्य साधनेका मंत्र-जप अन्त तक नहीं छोड़ा था। इसलिए आज, जब इटलीने अबीसीनियाके विरुद्ध युद्ध छेड़ दिया है, अहिंसाके विषयमें थोड़ा विचार कर लेना अप्रासंगिक तो नहीं किंतु आवश्यक ही है, ऐसा मैं देखता हूं। अहिंसाको जो धर्मके रूपमें मानते हैं उनकी दृष्टिमें उसे सर्वव्यापक होना चाहिये। अहिंसाको धर्म माननेवाले एक प्रवृत्तिमें अहिंसक रहें और दूसरीके विषयमें हिंसक, ऐसा कैसे हो सकता है? यह तो केवल व्यवहार-नीति मानी जायगी। इसलिए इटली जो युद्ध कर रहा है उसके धर्ममें अहिंसा-धर्मी उदासी नहीं रह सकता। यह होते हुए भी इस विषयमे अपनी राय बतलाने और अपने देशको मार्ग दिखलानेके लिए आग्रहपूर्ण सूचनाओंके प्रति मुझे इन्कार करना पड़ा है। बहुधा सत्य और अहिंसाके लिए मौन रूपी आत्म-निग्रह धारण करना ही पड़ता है। यदि भारतने बतौर राष्ट्रके सामाजिक अहिंसाको धर्म रूपमें स्वीकार किया होता, तो मैंने अवश्य ही कोई न कोई मार्ग, सक्रिय मार्ग, बता दिया होता। यह मै जानता हूं कि करोड़ोंके हृदयपर मुझे कितना अधिकार प्राप्त हो चुका है। पर उनकी बड़ी-बड़ी मर्यादाओंको भी मैं ठीक-ठीक समझ सकता हूँ। सर्वव्यापक अहिंसाके मार्गपर भारतकी पंचरंगी प्रजाको मार्ग दिखानेकी शक्ति ईश्वरने मुझे प्रदान नहीं की है। अनादि-कालसे भारतको अहिंसा-धर्मका उपदेश तो अवश्य मिलता आ रहा है, किन्तु समस्त भारतमे सक्रिय अहिंसा पूर्ण रूपसे किसी कालमें अमलमें लायी गयी थी, ऐसा मैंने भारतके इतिहासमें नहीं देखा। यह होते हुए भी अनेक कारणोंसे मेरी ऐसी अचल श्रद्धा है कि किसी भी दिन सारे जगतको भारत अहिंसाका पाठ पढायेगा। ऐसा होनेमे भले ही कई युग गुजर जांय। पर मेरी बुद्धि तो नही बतलाती है कि दूसरा कोई भी राष्ट्र इस कार्यका अगुआ बन सकता है।

अब हम जरा यह देखें कि इस अद्वितीय शक्तिके अंगमें क्या समाय।

है। कुछ ही दिन पहले इस चालू युद्धके संबंधमें अनायास ही कुछ मित्रोंने मुझसे नीचे लिखे ये तीन प्रश्न पूछे थे—

"१—अबीसीनिया, जिसे शस्त्र दुर्लभ है यदि अहिंसक हो जाय तो वह शस्त्र-सुलभ इटलीके मुकाबिलेमें क्या कर सकता है?

"२—यूरोपके पिछले महासमरके परिणाम-स्वरूप स्थापित राष्ट्र-संघका इंगलैंड सबसे प्रबल सदस्य है। इंगलैंड यदि आपके अर्थके अनुसार अहिंसक हो जाय तो वह क्या कर सकता है?

"३—भारतवर्ष आपके अर्थके अनुसार यदि अहिंसाको एकदम ग्रहण करले तो वह क्या कर सकता है?"

इन प्रश्नोंका उत्तर देनेके पहले अहिंसासे उत्पन्न होनेवाले इन पांच उपसिद्धांतोंका आ जाना आवश्यक मालूम होता है —

(१) मनुष्यके लिए यथा शक्य आत्म-शुद्धि अहिंसाका एक आवश्यक अंग है।

(२) मनुष्य-मनुष्यके बीच मुकाबिला करें तो ऐसा देखनेमें आयगा कि अहिंसक मनुष्यकी हिंसा करनेकी जितनी शक्ति होगी उतनी ही मात्रामें उसकी अहिंसाका माप हो जायगा।

यहाँ कोई हिंसाकी शक्तिके बदले हिंसाकी इच्छा समझनेकी भूल न करें। अहिंसकमें हिंसाकी इच्छा तो कभी नहीं हो सकती।

(३) अहिंसा हमेशा हिंसाकी अपेक्षा बढ़कर शक्ति रहेगी, अर्थात् एक मनुष्यमें उसके हिंसक होते हुए जितनी शक्ति होगी उससे अधिक शक्ति उसके अहिंसक होनेसे होगी।

(४) अहिंसामें हारके लिए स्थान ही नहीं है। हिंसाके अंतमें तो हार ही है।

(५) अहिंसा शब्दके संबंधमें यदि जीत शब्दका प्रयोग किया जा सकता है, तो यह कहा जा सकता है कि अहिंसाके अंतमें हमेशा ही जीत होगी। वास्तविक रीतिसे देखें तो जहां हार नहीं वहां जीत भी नहीं।

अब इन उपसिद्धांतोंकी दृष्टिसे ऊपरके तीन प्रश्नोंपर विचार करें—

१—अबीसीनिया अहिंसक हो जाय तो उसके पास जो थोड़े बहुत हथियार है उन्हें वह फेंक देगा। उसे उनकी जरूरत नहीं होनी चाहिये। यह प्रत्यक्ष है कि अहिंसक अबीसीनिया किसी राष्ट्रके शस्त्र-बलकी अपेक्षा न

करेगा। यह राष्ट्र आत्म-शुद्ध होकर अपने विरुद्ध किसीको शिकायत करनेका मौका न देगा, क्योंकि वह तो तब सभीकी कल्याण-कामना करेगा और अहिंसक अबीसिनिया जैसे अपने हथियार फेंककर इटलीके खिलाफ नहीं लड़ेगा, उसी तरह इच्छापूर्वक या जबरन उसे सहयोग नहीं देगा, उसके अधीन नहीं होगा। अतः इटली हब्शी प्रजापर अधिकार प्राप्त नहीं करेगा किन्तु केवल उनकी भूमिपर कब्जा करेगा। हम यह जानते हैं कि इटलीका हेतु केवल जमीनपर कब्जा करनेका नहीं है। इटलीका हेतु तो उस उपजाऊ देशके हब्शियोंको अपने वशमें करनेका है। उसका यह हेतु यदि सिद्ध न हो सका तो वह फिर किसके विरुद्ध लड़ेगा ?

२—समस्त अंग्रेज जनता हृदयसे अहिंसाको स्वीकार कर ले तो वह साम्राज्य विस्तारका लोभ छोड़ दे, अरबों रुपयेके बारुद गोलाका त्याग कर दे। इस कल्पनातीत त्यागसें जो नैतिक बल अंग्रेजोंमें देखनेमें आयेगा उसका असर इटलीके हृदयपर हुए बिना न रहेगा। अहिंसक इंगलैंड जिन पांच उपसिद्धांतोंको मैंने बतलाया है, उनका संसारको चकाचौंधमें डाल देनेवाला एक सजीव प्रदर्शन हो जायगा। यह परिवर्तन ऐसा महान चमत्कार होगा जो किसी भी युगमें न अबतक हुआ है, और न आगे कभी होगा। ऐसा परिवर्तन कल्पनातीत होते हुए भी अगर अहिंसा सच्ची शक्ति है तो वह होकर ही रहेगा। मैं तो इसी श्रद्धापर जी रहा हूँ।

३—तीसरे प्रश्नका उत्तर इस प्रकार दिया जा सकता है। यह तो मैं ऊपर कह ही चुका हूँ कि भारत राष्ट्रके रूपमें पूर्ण रीतिसे अहिंसक नहीं है। और उसके पास हिंसा करनेकी भी शक्ति नहीं। बहादुर आदमियोंको हथियारोंकी परवाह कमसे कम हुआ करती है। जरूरी हथियार किसी भी तरहसे प्राप्त कर लेते है। इसलिए हिन्दुस्तानमे हिंसा करनेकी शक्ति नहीं है इसका अर्थ यह हुआ कि हिन्दुस्तानने कभी एक राष्ट्रके रूपमें शक्तिको विकसित नहीं किया। इसलिए उसकी अहिंसा दुर्बलकी अहिंसा है, इसीसे वह उसे मोह नहीं सकती और उसका प्रभाव नहीं पड़ सकता। जहां तहां हम नित्य भारतकी दुर्बलताका दर्शन किया करते है और संसारके सामने भारत एक ऐसी प्रजाके रूपमें दिखायी देता है जिसका कि दिन-दिन शोषण होता जा रहा है। यहाँ भारतकी राजनीतिक पराधीनता ही बतानेका हेतु नहीं है, वल्कि अहिंसक और नैतिक दृष्टिसे हम आज उतरे हुए मालूम होते है। आपसमे बात करें तो भी हम अपनेको नीचे देखते हैं। ऐसा मालूम होता है कि किसी भी वलवानके आगे साहसके साथ खड़े होनेकी शक्ति हम खो बैठे है। हम लोगोंमे ऐसी शक्ति नहीं है, यह बात हमारे दिलमे घर कर गयी है। जहां-तहां हम अपनी निर्बलता ही देखा करते हैं। यदि ऐसा न हो तो हम लोगोंमें हिन्दू-मुसलमानके बीच झगड़ा ही क्यों हो ?

आपसमें तकरार ही क्यों हो ? राज-सत्ताके विरुद्ध लड़ाई किसलिये हो ? यदि हममें सबल राष्ट्रकी अहिंसा हो, तो न अंग्रेज हम लोगोंके प्रति अविश्वास करें, न अपने प्राणोंका हमारी तरफसे कोई भय रखें और न अपनेको यहाँ विदेशी शासकके रूपमें मानें। भले ही राजनीतिकी भाषामें इच्छा हो तो हम उनकी टीका करें। कितनी ही बातोंमें हमारी आलोचनामें सचाई होती है। किंतु यदि एक क्षणके लिए भी पतीस करोड़ मनुष्य अपनेको एक सबल मनुष्यके रूपमें समझ सकें और अंग्रेजोंको—या किसीको भी क्षति पहुँचानेकी कल्पना करते हुए भी लज्जित हों तो अंग्रेज व्यापारियों, सिपाहियों अथवा अफसरोंका भय हम छुड़ा देंगे और अंग्रेजोंमें हमारे प्रति आज जो अविश्वास है वह दूर हो जायगा। यदि हम सच्चे अहिंसक हो जायं तो अंग्रेज हमारे मित्र बन जायं। अर्थात् हम करोड़ोंकी संख्यामें होनेसे इस दुनियाँमें बड़ीसे बड़ी शक्तिके रूपमें पहिचाने जाय और इसीलिए उनके हितचिंतकके रूपमें हम जो सलाह उन्हें दें उसे वे अवश्य ही मानें।

मेरी दलीलें पूरी हो गयीं। पाठक देख सकेंगे कि ऊपरकी दलीलें देकर मैंने उक्त पांच उपसिद्धांतोंका ही जैसे तैसे समर्थन किया है। सच तो यह है कि जिसकी दलीलसे पूर्ति करनी पड़ती है वह न तो सिद्धांत है न उपसिद्धांत। सिद्धांतको तो स्वयंसिद्ध होना चाहिये। पर दुर्भाग्यसे हम मोह-जालमें अथवा जड़ता-रूपी शक्तिमें ऐसे फंसे हुए हैं कि अक्सर सूर्यवत् स्पष्ट वस्तुओंको भी हम नहीं देख सकते। इसीसे किसी प्राचीन ऋषिने कहा है कि "सत्यके ऊपर जो सुनहरा आवरण आ गया है उसे, हे प्रभो, दूर कर दे।"

यहाँ जब मैं विद्यार्थी था तबकी मुझे एक घटना स्मरण आ रही है। जबतक 'भूमिति' समझने लायक मेरी बुद्धि विकसित नहीं हुई थी, तबतक यह बात थी कि अध्यापक तो तख्तीपर आकृतियाँ बनाया करता और मेरा दिमाग इधर-उधर चक्कर लगाया करता था। कई बार यूकलिडके १२ सिद्धांत पढ़े, पर मेरी समझमें पत्थर भी न आया। जब यकायक मेरी बुद्धि खुल गयी तब उसी क्षण 'भूमिति' शास्त्र मुझे एक सरलसे सरल शास्त्र मालूम हुआ। इससे भी अधिक सरल अहिंसा शास्त्र है ऐसा मेरा विश्वास है। पर जबतक हमारे हृदयके पट नहीं खुल जाते, तबतक अहिंसा हमारे अंदर कैसे प्रवेश कर सकती है ? बुद्धि हृदयको भेदनेमें असमर्थ है। वह हमें थोड़ी ही दूर ले जा सकती है और वहा व्याकुल बनाकर छोड़ देती है। अनेक संशय हमें भरमाते हैं। अहिंसा श्रद्धाका विषय है। जहांतक संसार उसपर श्रद्धा जमानेके लिए तैयार नहीं, वहांतक तो वह चमत्कारकी ही बाट जोहता रहेगा। उसे बड़े पैमानेपर जो प्रत्यक्ष दिखायी दे सके ऐसी अहिंसाकी जीत देखनी है। इसलिए कुछ विद्वान बुद्धिका महान

प्रयोग करके हमें समझाते हैं कि बतौर सामाजिक शक्तिके अहिंसाको विकसित करना आकाश-पुष्प तोड़नेकी तैयारीके समान है। वे हमें समझाते हैं कि अहिंसा तो केवल एक व्यक्तिगत वस्तु है। सचमुच अगर ऐसा ही है तो क्या मनुष्य-जाति और पशु-जातिके बीच वास्तविक भेद कुछ है ही नहीं? एकके चार पैर हैं, दूसरेके दो, एकके सींग, दूसरेके नहीं!

हरिजन सेवक
१२ अक्तूबर, १९३५

❀

"राग द्वेषादिसे भरा मनुष्य सरल हो सकता है, वह वाचिक सत्य भले ही पा सके पर उसे शुद्ध सत्यकी प्राप्ति नही हो सकती। शुद्ध सत्यकी शोध करनेके मानी है राग-द्वेषादि द्वन्द्वसे सर्वथा मुक्ति प्राप्त कर लेना।"

"शस्त्रीकरणकी दौडमे शामिल होना हिन्दुस्तानके लिए आत्मघात करना है। भारत अगर अहिंसाको गँवा देता है, तो संसारकी अन्तिम आशा पर पानी फिर जाता है।"

—गाधीजी

अहिंसा परमो धर्मः

कैनन शैपर्ड और दूसरे सच्चे और उत्साही ईसाई इग्लैंडमें युद्धोंके खिलाफ आंदोलन कर रहे हैं। दिल्लीके स्टेट्समैनने चार लेख लिखकर इस आंदोलनकी बेहद निंदा की है। इस पत्रने अपने पक्ष-समर्थनमें भगवद्‌गीताको भी घसीटा है—

"असलमें क्रिश्चियानिटी की वास्तविक किंतु कठिन शिक्षा यही मालूम पड़ती है कि समाजको अपने शत्रुओंसे लड़ना चाहिये, पर साथ ही उनसे प्रेम भी करना चाहिये।

"मिस्टर गाधी भी इस बातपर खास तौरसे ध्यान दें कि गीताकी भी साफ-साफ यही शिक्षा है। कृष्णने अर्जुनसे कहा है कि विजय उसे ही मिलती है जो पूर्णतया और निर्वैर होकर लड़ता है। सचमुच, इस महाकाव्यके द्वितीय अध्यायने विवेकशील युद्ध-विरोधी तथा सच्चे योद्धाके बीच, सर्वोच्च भूमिकापर सोचनेपर भी, सारा विवाद खत्म कर दिया है। स्थानाभावके कारण, हम उसमेंसे अधिक उद्धरण तो नहीं दे सकते। पर वह सारा काव्य (गीता) एक बार नहीं बार-बार पढनेकी चीज़ है।"

इन लेखोंका लेखक शायद इस बातको नहीं जानता कि आतंकवादियोंने भी इन्हीं श्लोकोंका हवाला दिया है। सच्ची बात तो यह है कि निर्विकार चित्तसे पढनेपर मुझे तो भगवद्‌गीतामें जो अर्थ इस लेखकने लगाया है उससे ठीक विपरीत अर्थ मिला है। वह भूल जाता है कि पश्चिमके युद्ध-विरोधी जिस अर्थमें विवेकशील कहे जाते हैं, वैसा अर्जुन नहीं था। अर्जुन तो युद्धका हिमायती था। कौरवोंकी सेनासे वह कई बार लोहा ले चुका था, उसके हाथ-पैर तो तब ढीले पड़ गये, जब उसने दोनों ओरकी सेनाओंको लड़नेके लिए तैयार देखा और उनमे अपने प्यारेसे प्यारे स्वजनों तथा पूज्य गुरुजनोंको पाया। न तो वहां मानवताके प्रति प्रेम था, और न युद्धके प्रति घृणा ही थी, जिससे प्रेरित होकर अर्जुनने कृष्णसे वे प्रश्न पूछे थे और कृष्ण भी ऐसी परिस्थितिमें दूसरा कोई उत्तर नहीं दे सकते थे। महाभारत तो रत्नोंकी खान है, किंतु जिनमेंसे गीता एक सबसे अधिक देदीप्यमान रत्न है। लिखा है कि उस युद्धमें लाखों योद्धा एकत्र हुए थे और दोनों तरफसे अवर्णनीय अमानुषिकतायें बरती गयी थीं। इन लाखोंकी सेनामेसे केवल सातको जीवित रखकर तथा उन्हें वह निःसार विजय प्रदान करके इस महाकाव्यके अमर कविने तो युद्धकी निरर्थकता ही सिद्ध की है। किंतु युद्धको केवल एक मूर्खता-पूर्ण और धोखेकी चीज सिद्ध करनेके अलावा भी, महाभारत एक उससे ऊँचा सदेश हमें देता है। मनुष्यको अगर एक अमर प्राणी समझा जाय, तो महाभारत उसका एक आध्यात्मिक इतिहास है और इसके वर्णनमें एक ऐतिहासिक घटनाका उसने उप-

योगमात्र किया है, जो तत्कालीन छोटेसे जगतके लिए तो बड़ी महत्वपूर्ण थी, पर आजकलकी दुनियाके लिए कोई भी महत्व नहीं रखती। अनेक आधुनिक आविष्कारोंके कारण आज तो यह सारा संसार हथेलीपर रखे आँवलेके समान मालूम होने लगा है। उसके किसी एक कोनेमें घटी हुई घटनाका असर दूर-दूरतक सारे संसारमें फैल जाता है। यह बात उस समय नहीं थी। हमारे हृदयोंमें जो दिन रात सत् और असत्के बीच सनातन संघर्ष चल रहा है, महाभारतकार उसे इस कथानक द्वारा अमर-काव्यके रूपमें हमारे सामने प्रस्तुत करता है। वह बताता है कि यद्यपि अतमें तो सत्यकी ही विजय होती है, तो भी असत् किस तरह सशक्त होकर अत्यंत विवेकशील पुरुषको भी 'किंकर्तव्य-विमूढ' बना देता है। महाभारत सदाचारका एक मात्र मार्ग भी हमे बताता है।

लेकिन भगवद्गीताका वास्तविक संदेश जो कुछ भी हो, शांति-स्थापन आंदोलनके नेताओंके लिए गीताकी शिक्षा नहीं, बाइबिलकी शिक्षा महत्व रखती है, क्योंकि उसीको उन्होंने आध्यात्मिक मार्ग-दर्शक बना रखा है। फिर बाइबिलका भी तो कई तरहसे अर्थ लगाया जाता है। उन्हें बाइबिलका वह अर्थ स्वीकार नहीं है, जो साधरणतया ईसाई धर्माधिकारी लगाते हैं। उन्हें तो वह अर्थ मंजूर है, जो इसके श्रद्धायुक्त अंतःकरणसे पढ़नेपर अवगत होता है। असलमें, सबसे महत्व-पूर्ण चीज तो है युद्ध-विरोधियोंका अहिंसा अर्थात प्रेम-धम विपयक ज्ञान। अहिंसाका अर्थ बहुत व्यापक है। अंग्रेजीका 'नान-वायलेन्स' शब्द उसके लिए बिलकुल अपर्याप्त है। 'स्टेट्समैन' के ये लेख युद्ध-विरोधियोंके लिए खासी चुनौती ही हैं। मुझे दुःख है इस आन्दोलनके विषयमे पूरी जानकारी नहीं है। युद्ध-विरोधियोंके नजदीक भले ही मेरे विचारोंका विशेष महत्व न हो, पर जहांतक मुझे भीतरी बातोंका पता है, कुछ लोग तो जरूर उसका ख्याल करेंगे, क्योंकि वे भी अक्सर मुझसे पत्र-व्यवहार करते रहते हैं। और अब तो वे एक कदम और आगे बढ़ गए हैं। क्योंकि उन्होंने रिचर्ड ग्रेगकी "अहिंसा महिमा" नामक पुस्तकको लगभग अपनी पाठ्य-पुस्तक बना ली है। लेखक (श्री ग्रेग) के शब्दोंमे यह पुस्तक अहिंसाके दावेका, जैसा मैंने उसे समझा है, पाश्चात्य ससारकी भाषामें प्रतिपादन है। इसलिए बगैर किसी प्रकारकी दलील वगैरह दिए, अगर मैं यहाँ अहिंसाकी सफलताकी कुछ शर्तें तथा अप्रकट अर्थ लिख दूँ, तो शायद धृष्टता न होगी—

१—अहिंसा परमश्रेष्ठ मानव धर्म है, पशुबलसे वह अनंत गुना महान और उच्च है।

२—अन्ततोगत्वा, वह उन लोगोंको कोई लाभ नहीं पहुंचा सकती, जिनकी उस प्रेमरूपी परमेश्वरमें श्रद्धा नहीं है।

३—मनुष्यके स्वाभिमान और सम्मान-भावनाकी वह सबसे बड़ी

रक्षक है। हां, वह मनुष्यकी चल-अचल सम्पत्तिकी हमेशा रक्षा करनेका आश्वासन नहीं देती—हालाँकि मनुष्य उसका अच्छा अभ्यास कर ले तो शस्त्रधारियोंकी सेनाओंकी अपेक्षा वह इसकी अधिक अच्छी रक्षा कर सकती है। यह तो स्पष्ट है कि अन्यायसे अर्जित तथा दुराचारकी रक्षामें वह जरा भी सहायक नहीं हो सकती।

४—जो व्यक्ति तथा राष्ट्र अहिंसाका अवलंबन करना चाहें, उन्हें आत्म-सम्मानको छोड़कर, अपना सर्वस्व (राष्ट्रोंको तो एक-एक आदमी) गंवानेके लिए तैयार रहना चाहिये। इसलिए वह दूसरोंके मुल्कोंको हड़पने, अर्थात आधुनिक साम्राज्यवादसे, जो अपनी रक्षाके लिए पशुबलपर निर्भर रहता है, बिलकुल मेल नहीं खा सकता।

५—अहिंसा एक ऐसी शक्ति है, जिसका सहारा बालक, युवा, वृद्ध, स्त्री-पुरुष सब ले सकते हैं, बशर्ते कि उनकी उस करुणामयमें तथा मनुष्य-मात्रमें सजीव श्रद्धा हो। जब हम अहिंसाको अपना जीवन-सिद्धांत बना लें, तब वह हमारे सम्पूर्ण जीवनमें व्याप्त होना चाहिये। यों कभी-कभी उसे पकड़ने और छोड़नेसे लाभ नहीं हो सकता।

६—यह समझना जबर्दस्त भूल है कि अहिंसा केवल व्यक्तियोंके लिए ही लाभदायक है, जन-समूहके लिए नहीं। जितना वह व्यक्तिके लिए धर्म है उतना ही वह राष्ट्रोंके लिए भी धर्म है।

हरिजन सेवक
५ सितबर, १९३६

❀

"यह सच है कि अहिंसाके मामलेमें भी हमको बुद्धिका प्रयोग अन्ततक करना होगा। लेकिन मैं आपसे कह दूं कि अहिंसा केवल बुद्धिका विषय नही है, यह श्रद्धा और भक्तिका विषय है। यदि आपका विश्वास अपनी आत्मापर नही है, ईश्वर और प्रार्थनापर नही है, तो अहिंसा आपके काम आनेवाली चीज नही है।"

—गाधीजी

जीवन-धर्म

कैनन शेपर्डके युद्ध-विरोधी आंदोलनकी 'स्टेट्समैन' ने जो टीका की थी, उसके जवाबमें अपने पिछले लेखमें मैंने कुछ दलीलें पेश की थीं। स्टेट्समैनमें उनके प्रत्युत्तरमें अब एक दलीलोंसे भरा हुआ लेख प्रकाशित हुआ है। इस लेखमें मेरे पक्षका खण्डन करनेका बड़ी चतुराईसे यत्न किया गया है।

लेखक कहता है कि भगवद्गीता तो उसीके पक्षका समर्थन करती है, आतंकवादीका नहीं। सर्जन अपने मरीजपर कुछ बल प्रयोग करता है, पर यह उस मरीजके फायदेके लिए ही है। लेकिन उसके उद्देश्यको छोड़कर जो बल-प्रयोग होता है उसमें आप कोई विभाजक रेखा नहीं खींच सकते। इसी महाभारतमें, जिसका गीता एक छोटा-सा अध्याय मात्र है, एक जगह रातमें किये गये कुछ निर्दोषोंके बधका इतना घृणोत्पादक और विस्तृत वर्णन है कि अगर इस सभ्य युगके युद्धोंका हमें अनुभव न होता तो शायद कोई विश्वास भी न करता कि कहीं ऐसी भी निर्घृणता हो सकती है।

यह सर्वथा सत्य है, चाहे यह सत्य भले ही भयानक हो कि आतंकवादी बिलकुल ईमानदारी और सच्चे दिलसे अपने सिद्धांत और व्यवहारमें गीताको अपना मार्ग-दर्शक समझकर उसका उपयोग करते हैं। कुछ एकको तो वह कंठ भी है। और अगर कोई उनकी दलीलें सुने तो कहना पड़ेगा कि उनमें बल भी है। बात केवल इतनी-सी है कि मैं जो गीताका अर्थ लगाता हूँ उसका उनके पास इसके सिवा और कोई जवाब नहीं कि मेरा अर्थ गलत है और उन्हींका अर्थ सत्य है।

'स्टेट्समैन' का लेखक इसके बाद कैनन शेपर्डकी तुलना अर्जुनके साथ करता है। निःसंदेह, यह तो उपमा ही गलत है और जल्दबाजीमें दी गयी है। अर्जुन पाण्डवोंकी सेनाका अधिपति था। अपने सामने उस भयंकर दृश्यपर विचार करते ही वह तो किंकर्त्तव्यविमूढ़ हो गया। वह खूब अच्छी तरह जानता था कि एक सेनाधिपतिकी हैसियतसे उसका क्या धर्म है। पर साथ ही वह तो यह भी जानता था कि उसे तो अपने ही चचेरे भाइयोंसे युद्ध करना था। वास्तवमें, उसकी मूर्छाका कारण तो उसकी यह क्षणिक दुर्बलता ही थी। ऐसे आनबानके प्रसंगपर अगर वह लड़नेसे इंकार कर देता तो समरभूमिमें एक विचित्र गड़बड़ी और अव्यवस्था पैदा हो जाती। साथ ही, उसकी अपनी, उसके असंख्य मित्रोंकी और अनुयायियोंकी भी बदनामी होती सो अलग। उसे तो उस भयंकर नर-हत्यामें अपने साथियों सहित भाग लेना था, जिसके लिए उसने अपनेको और अपने साथियोंको भी तालीम दे रखी थी। ऐसी जगहपर यह कल्पना करना बिलकुल बेकार है कि

अगर कहीं सचमुच एकाएक उसके हृदयमें यह प्रकाश उदय हो जाता कि उसे मन, वचन और कर्मसे अहिंसाका पालन करना चाहिये तो क्या होता।

पर हम आशा करें कि इस अनमोल चीजने डिक शेपर्ड और उनके साथियोंके हृदयमें स्थान पा लिया है। जो हो, जहांतक मुझे पता है, उनकी बात अर्जुनसे बिलकुल भिन्न है। वे किसी ऐसी सेनाके नायक तो हैं नहीं, जो युद्धके लिए मैदानमे व्यूहबद्ध खड़ी हो। उनके लिए स्वजन-परिजनका कोई भेद-भाव नहीं है। अपनेको कोई जो चाहे कहे, उनके लिए तो सब मनुष्य चाहे वे किसी वर्ण या देशके हों–बराबर हैं। उन्होंने शुद्ध अंतःकरणसे ईश्वर स्मरण-पूर्वक संसारका—यही एक सबसे बड़ी जीवन पुस्तक है--खूब अच्छी तरह अध्ययन किया और अंतमें उन्हें इस नतीजेपर पहुंचना पड़ा कि अपने निजी और स्वदेशके स्वार्थके लिए भी वे किसी मानव-बंधुको चोट नहीं पहुंचा सकते। इस-लिए वे युद्धमें प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष किसी भी रूपसे भाग नहीं ले सकते। अब इसी बातका, प्रेम और शांति-धर्मका मनुष्य मात्रके प्रति सद्भावका प्रचार वे अपने परिवर्ती लोगोंमें कर रहे हैं। उनके हृदयने जिस धर्मका साक्षात्कार किया है, उसका यह स्वाभाविक और प्रथम परिणाम है। अर्जुनने यह कभी नहीं किया था।

लेकिन 'स्टेट्समैन' के लेखकका धनुष तो अनेक प्रत्यंचाओंका है न! उसकी सबसे जोरदार दलील तो यह है कि वह अहिंसा अथवा प्रेम-धर्मको मानव-धर्म स्वीकार ही नहीं करता। और अगर अहिंसा या प्रेम-धर्म सचमुच हमारा जीवन-धर्म नहीं है तब तो मेरी सारी दलीलें निस्सार हैं। फिर तो हम युद्धोंको कभी टाल ही नहीं सकते। वे बराबर हर बार अधिकाधिक भीषण रूपमें अपना दौरा करते ही रहेंगे और मैं यह सिद्ध नहीं कर सकता--और अपने दैनिक कार्यक्रममेंसे कुछ समय निकालकर किसी अखबारमें लेख लिखकर तो हरगिज नहीं—कि अहिंसा ही हमारे जीवनका आदि स्रोत और अंतिम उद्देश्य है। पर मैं कुछ ऐसी सूचनाएँ जरूर देनेकी हिम्मत करता हूँ, जो इस परम धर्मको समझनेमें सुगमता पैदा कर सकती हैं।

सबसे पहली बात तो यह है कि आजतक जितने भी महापुरुष हुए हैं उन सबने न्यूनाधिक जोरके साथ इसका उपदेश दिया है। अगर अहिंसा या प्रेम हमारा जीवन-धर्म न होता, तो इस मृत्यु-लोकमें हमारा जीवन कठिन हो जाता। जीवन तो मृत्युपर प्रत्यक्ष और सनातन विजयरूप है। अगर मनुष्य और पशुके बीच कोई मौलिक और सबसे महान अंतर है तो वह यही है कि मनुष्य दिनों-दिन इस धर्मका अधिकाधिक साक्षात्कार कर सकता है और अपने व्यक्तिगत जीवनमें उसपर अमल भी कर सकता है। संसारके प्राचीन और अर्वाचीन

समस्त संत पुरुष अपनी-अपनी शक्ति और पात्रताके अनुसार इस प्रेम जीवनके ज्वलन्त उदाहरण थे। निस्संदेह यह सच है कि हमारे अन्दर छिपा हुआ पशु कई बार सहज विजय प्राप्त कर लेता है। पर इससे यह सिद्ध नहीं होता है कि यह आचरणमें कठिन है। और यह क्यों न हो ? जो उच्चतामें सत्यके समकक्ष है वह कठिन नहीं होगा तो होगा क्या! उस दिन उसका आचरण हमारे लिए सहज, सरल और सार्वभौम हो जायगा, उस दिन स्वर्गलोक इस भूमिपर ही अवतीर्ण हो जायगा। यों तो मैं जानता हूँ कि स्वर्ग और पृथ्वी सब हमारे ही अंदर है। हम पृथ्वीसे तो परिचित हैं। पर अपने अन्दरके स्वर्गसे हम बिलकुल अपरिचित हैं। अगर हम मान लेते हैं कि कम से कम कुछ लोगोंके लिए तो अहिंसा व्यावहारिक वस्तु है, तब तो यह कहना बड़े गर्वकी बात होगी कि दूसरे लोग इसपर अमल करनेकी क्षमता ही नहीं रखते। हम जानते हैं कि हमारे पूर्वज, जो बहुत दूरके नहीं कहे जा सकते, मनुष्यका मांस खाते थे। उनमें और भी कई ऐसी बुराइयाँ थीं जिन्हें हम आज घृणाकी दृष्टिसे देखते हैं। निःसन्देह, उन दिनोंमें भी डिक शेपर्ड सरीखे लोग रहे ही होंगे और लोगोंने उनका मखौल भी उड़ाया होगा—बल्कि काठमें भी डाल दिया होगा, क्योंकि लोगोंमें वे ऐसी बेहूदा बातोंका प्रचार करते होंगे कि मनुष्यको मनुष्यका मांस नहीं खाना चाहिये। आधुनिक विज्ञानका युग तो ऐसी घटनाओंके उदाहरणोंसे भरा पड़ा है जो बात कल असंभव मालूम हो रही थी, वही आज सभव हो गयी। पर अध्यात्म-विज्ञान, थोड़ेमें प्रेम-धर्म, हमारा जीवन-धर्म ही तो है। मैं जानता हूँ कि यह कोई ऐसी चीज थोड़े ही है, जिसे दलीलोंसे सिद्ध किया जा सके। यह तो उन लोगोंके प्रत्यक्ष जीवनसे सिद्ध हो सकता है, जो परिणामोंकी ओरसे निरपेक्ष बन कर इस धर्मका अपने जीवनमें पालन करते हैं। बगैर कुर्बानीके संसारमे कोई सच्चा लाभ हासिल नहीं हो सकता। और चूंकि इस धर्मको प्रत्यक्ष कर दिखाना खुद ही एक सच्चेसे सच्चा लाभ है, इससे उसके लिए कुर्बानी की भी सबसे बड़ी दरकार होगी।

मेरी दलीलोंके उत्तरमें 'स्टेट्समैन' के लेखकने दूसरी दलीलें पेश की हैं उनका जवाब देनेकी कोई आवश्यकता नहीं। क्योंकि अगर इस नियमकी सचाईको वह मानते है तो उनकी सारी दलीलें निस्सार है। आर अगर नहीं मानते या उसकी सचाईमें उन्हें संदेह हो तो उनकी दलीले अपने आप सत्य हो जाती हैं।

पर चलते-चलते एक बात और साफ कर दूँ। व्यक्तिगत या राष्ट्रीय लाभमें जो सम्मान मिलता है उसे लेखक तुच्छ समझता है। वह कहता है—जब कोई राष्ट्र अपनी इच्छासे ही अपना नाश कर ले तो फिर उसका सम्मान कहां रह गया ? पर यहाँ किसीका अपने-आप या दूसरेके द्वारा नाशका तो प्रश्न ही नहीं है। मेरा तो आशय उस राष्ट्रसे है जो अपने सम्मानकी रक्षाके लिए निर्भयता-पूर्वक डटकर खड़ा हो जाता है और दूसरेके द्वारा अपना नाश होने देता है। बना-

उदाहरणके लिए, हिन्दुस्तानको ही लीजिये। मान लीजिये कि हिन्दुस्तानपर शत्रु चढ़ाई करने आते हैं और हिन्दुस्तानी उनके सामने अपना सिर नहीं झुकाते। यहांतक कि देशमें एक भी आदमी नहीं बचता और सब मारे जाते हैं। वह स्त्री जो किसी शोहदेके पापी प्रस्तावोंके विरोधमें अहिंसापूर्वक अपने प्राणोंकी बाजी लगा देती है, अपनी तथा स्त्री जातिकी निःसंदेह सेवा ही करती है। यही प्रह्लादने किया था। उसने अपनी श्रद्धा नहीं छोड़ी, बल्कि अपने आत्म-सम्मानकी रक्षाके लिए अपनी जान भी जोखिममें डाल दी। मसीहाने भी अपनी श्रद्धा और धर्मको तिलांजलि देनेके बजाय एक चोर, डाकूकी मौत मरना पसंद करके अपनी और मानव-जातिकी लाज रख ली।

हरिजन सेवक
२६ सितम्बर, १९३६

६

"अगर हिन्दुस्तान जगतको अहिंसाका संदेश न दे सका तो तबाही आज या कल आने वाली है और कलके बदले आज इसके आनेकी सम्भावना अधिक है। जगत युद्धके शापसे बचना चाहता है, पर कैसे बचे इसका उसे पता नहीं चलता। यह चाभी हिन्दुस्तानके हाथमें है।"

"मेरा विश्वास है कि अहिंसा हिंसासे असीम गुनी ऊँची चीज है। क्षमा दंडसे अधिक पुरुषोचित है 'क्षमा वीरस्य भूषणम्'।"

—गांधीजी

समस्त संत पुरुष अपनी-अपनी शक्ति और पात्रताके अनुसार इस प्रव जीवनके ज्वलन्त उदाहरण थे। निस्संदेह यह सच है कि हमारे अंदर छिपा हुआ पशु कई बार सहज विजय प्राप्त कर लेता है। पर इससे यह सिद्ध नहीं होता है कि यह आचरणमें कठिन है। और यह क्यों न हो ? जो उच्चतामें सत्यके समकक्ष है वह कठिन नहीं होगा तो होगा क्या! उस दिन उसका आचरण हमारे लिए सहज, सरल और सार्वभौम हो जायगा, उस दिन स्वर्गलोक इस भूमिपर ही अवतीर्ण हो जायगा। यों तो मैं जानता हूँ कि स्वर्ग और पृथ्वी सब हमारे ही अंदर है। हम पृथ्वीसे तो परिचित हैं। पर अपने अन्दरके स्वर्गसे हम बिलकुल अपरिचित हैं। अगर हम मान लेते हैं कि कम से कम कुछ लोगोंके लिए तो अहिंसा व्यावहारिक वस्तु है, तब तो यह कहना बड़े गर्वकी बात होगी कि दूसरे लोग इसपर अमल करनेकी क्षमता ही नहीं रखते। हम जानते हैं कि हमारे पूर्वज, जो बहुत दूरके नहीं कहे जा सकते, मनुष्यका मांस खाते थे। उनमें और भी कई ऐसी बुराइयाँ थीं जिन्हें हम आज घृणाकी दृष्टिसे देखते है। निःसन्देह, उन दिनोंमें भी डिक शेपर्ड सरीखे लोग रहे ही होंगे और लोगोंने उनका मखौल भी उड़ाया होगा—बल्कि काठमें भी डाल दिया होगा, क्योंकि लोगोंमें वे ऐसी बेहूदा बातोंका प्रचार करते होंगे कि मनुष्यको मनुष्यका मांस नहीं खाना चाहिये। आधुनिक विज्ञानका युग तो ऐसी घटनाओंके उदाहरणोंसे भरा पड़ा है जो बात कल असंभव मालूम हो रही थी, वही आज सभव हो गयी। पर अध्यात्म-विज्ञान, थोड़ेमें प्रेम-धर्म, हमारा जीवन-धर्म ही तो है। मैं जानता हूँ कि यह कोई ऐसी चीज थोड़े ही है, जिसे दलीलोंसे सिद्ध किया जा सके। यह तो उन लोगोंके प्रत्यक्ष जीवनसे सिद्ध हो सकता है, जो परिणामोंकी ओरसे निरपेक्ष बनकर इस धर्मका अपने जीवनमें पालन करते हैं। बगैर कुर्बानीके संसारमें कोई सच्चा लाभ हासिल नहीं हो सकता। और चूंकि इस धर्मको प्रत्यक्ष कर दिखाना खुद ही एक सच्चेसे सच्चा लाभ है, इससे उसके लिए कुर्बानी की भी सबसे बड़ी दरकार होगी।

मेरी दलीलोंके उत्तरमें 'स्टेट्समैन' के लेखकने दूसरी दलीलें पेश की हैं उनका जवाब देनेकी कोई आवश्यकता नहीं। क्योंकि अगर इस नियमकी सचाईको वह मानते हैं तो उनकी सारी दलीलें निस्सार है। आर अगर नहीं मानते या उसकी सचाईमें उन्हें संदेह हो तो उनकी दलीलें अपने आप सत्य हो जाती हैं।

पर चलते-चलते एक बात और साफ कर दूँ। व्यक्तिगत या राष्ट्रीय लाभसे जो सम्मान मिलता है उसे लेखक तुच्छ समझता है। वह कहता है—जब कोई राष्ट्र अपनी इच्छासे ही अपना नाश कर ले तो फिर उसका सम्मान कहां रह गया ? पर यहाँ किसीका अपने-आप या दूसरेके द्वारा नाशका तो प्रश्न ही नहीं है। मेरा तो आशय उस राष्ट्रसे है जो अपने सम्मानकी रक्षाके लिए निर्भयतापूर्वक डटकर खड़ा हो जाता है और दूसरेके द्वारा अपना नाश होने देता है। उदा-

उदाहरणके लिए, हिन्दुस्तानको ही लीजिये। मान लीजिये कि हिन्दुस्तानपर शत्रु चढाई करने आते है और हिन्दुस्तानी उनके सामने अपना सिर नहीं झुकाते। यहांतक कि देशमें एक भी आदमी नहीं बचता और सब मारे जाते हैं। वह स्त्री जो किसी शोहदेके पापी प्रस्तावोंके विरोधमें अहिंसापूर्वक अपने प्राणोंकी बाजी लगा देती है, अपनी तथा स्त्री जातिकी निःसंदेह सेवा ही करती है। यही प्रह्लादने किया था। उसने अपनी श्रद्धा नहीं छोड़ी, बल्कि अपने आत्म-सम्मानकी रक्षाके लिए अपनी जान भी जोखिममें डाल दी। मसीहाने भी अपनी श्रद्धा और धर्मको तिलांजलि देनेके बजाय एक चोर, डाकूकी मौत मरना पसंद करके अपनी और मानव-जातिकी लाज रख ली।

हरिजन सेवक
२६ सितम्बर, १९३६

६

"अगर हिन्दुस्तान जगतको अहिंसाका संदेश न दे सका तो तबाही आज या कल आने वाली है और कलके बदले आज इसके आनेकी सम्भावना अधिक है। जगत युद्धके शापसे बचना चाहता है, पर कैसे बचे इसका उसे पता नही चलता। यह चाभी हिन्दुस्तानके हाथमे है।"

"मेरा विश्वास है कि अहिंसा हिंसासे असीम गुनी ऊँची चीज है। क्षमा दंडसे अधिक पुरुषोचित है 'क्षमा वीरस्य भूषणम्'।"

—गाधीजी

अहिंसाकी गुत्थियाँ

एक कालेजके प्रोफेसर और उनके वर्गके पचास विद्यार्थियोंके दो प्रतिनिधि लिखते हैं—

"आपको अवश्य ही पता होगा कि इन्टरमीडिएटकी पाठ्यपुस्तक पियर्स और आर्यटूनके "मॉडेल्स ऑव कम्परिटिव प्रोज" में, जो इस साल हिन्दुस्तानके अधिकाश इन्टरमीडियट कॉलिजोंमें पढ़ायी जा रही है, आपकी 'आत्मकथा' मेंसे एक पॉच पृष्ठका अध्याय लिया गया है। इसका शीर्षक "अहिंसा" है। आपने इसके अंदर इस अपूर्व और आमूल परिवर्तनकारी सिद्धांत और उसके व्यवहारकी चर्चा की है।

"मेरे वर्गके पचास विद्यार्थी और उनका अध्यापक मैं, इस निबंधके अध्ययन और चर्चामे वर्गके कई घंटे व्यतीत कर चुके हैं। वास्तवमें, यह एक बड़ा लाभप्रद और विचारोत्तेजक विषय है। हिन्दुस्तानी विद्यार्थी खास-तौरपर इसमें बड़ी दिलचस्पी ले रहे हैं, क्योंकि उनके दिलमें अपने देशकी भलाई और भावी उन्नतिके लिए सच्ची लगन है। आम-तौरपर हम सब आपके द्वारा किये गये अहिंसाके प्रतिपादनसे हृदयसे सहमत हैं, और इस मुश्किल मगर सुंदर सिद्धातको अपने जीवनमें स्थान देनेकी प्रबल प्रेरणा प्राप्त हुई है।

"पर एक जगह तमाम विद्यार्थी और उनका अध्यापक मैं, भी आपके विचार ठीक तरहसे नहीं समझ पाये हैं। मेरा मतलब आपके उस कथनसे है, जहां आपने इसका जिक्र किया है कि युद्धके समय अहिंसाके अनुयायीको क्या करना चाहिये। आपके शब्द ये हैं—'जब दो राष्ट्र लड़ रहे हों, तब अहिंसाके भक्तका यह कर्त्तव्य है कि वह इस युद्धको रोके। जिसमें यह शक्ति नहीं है, जो युद्धका विरोध करनेकी क्षमता नहीं रखता, अथवा जो इसका पात्र नहीं बना है, वह अगर जरूरी समझे तो युद्धमें शरीक भी हो जाय और उसमें भाग लेते हुए अपने आपको, देशको और विश्वको प्राणोंकी बाजी लगाकर युद्धसे बचानेकी कोशिश करे। जरा आगे चलकर (यूरोपीय महायुद्धके समय आपके सामने उपस्थित तीन मार्गोंकी चर्चा करते हुए) आपने लिखा है—'या दूसरे, मै साम्राज्यकी ओरसे युद्धमें शरीक होकर युद्धकी हिंसाको रोकनेकी पात्रता और क्षमता प्राप्त कर सकता था। मेरे अंदर इस क्षमता और पात्रताकी कमी थी। इसलिए मैने सोचा कि मेरे लिए सिवा युद्धमें भाग लेकर सेवा करनेके और कोई चारा ही नहीं।'

"हम अत्यंत अनुगृहीत होंगे, अगर आप इस विषयपर जरा अपने पुराने और मौजूदा विचार भी साफ-साफ और विस्तारसे लिखनेकी कृपा करेंगे। क्योंकि मेरे वर्गके विद्यार्थियोंको लग रहा है कि आनेवाले विग्रहके समय उनके लिए कौन-सा पक्ष ग्रहण करना

ठीक होगा । क्या वे अहिंसा धर्मको स्वीकार करके ईमानदारीके साथ, फिर वह किसी भी कारण हो, युद्धमे भाग ले सकते हैं ?

"मुझे यकीन है, आप किसी तरह समय निकालकर इन पचास विद्यार्थियोंकी और मेरी आत्माको जो कि उन्हींके समान उत्सुक हैं शाति प्रदान करनेकी दया करेंगे ।"

मै नहीं कह सकता कि इस कॉलिज और इस पत्रपर सही करनेवालोंके नाम अप्रगट रख छोड़ना जरूरी था या नहीं । विद्वान् प्रोफेसरने उत्तरके लिए टिकट लगा हुआ एक लिफाफा भी भेज दिया है । इसके तो मानी हैं कि मै खुद उन्हींको जवाब भेजूं । पर मेरे पास समयकी बड़ी कमी है । और अभी तो और कमी है, क्योंकि इन दिनों मै दो बड़े प्यारे मरीजोंकी परिचर्यामें लगा हुआ हूं । पर 'हरिजन'के पाठकोंसे हर हफ्तेकी बातचीत करना भी तो मैं नहीं छोड़ना चाहता । इसलिए अपने पत्र-प्रेषकोंसे क्षमा मांगता हुआ मैं तो "एक पंथ दो काज" बना लेता हूँ ।

पत्रमें उठाया गया प्रश्न बहुत ही महत्त्वका है । इसने मेरे सामने कई बार कठिनाई खड़ी कर दी है । कठिनाई यह नहीं कि किसी खास प्रसंगपर मुझे क्या करना चाहिये । नहीं, इसका निर्णय करनेमे मुझे कोई कठिनाई नहीं होती । वह तो असलमें अहिंसाकी भाषामें उसका समर्थन करनेमें होती है । क्योंकि ऊपर-ऊपर देखनेसे अहिंसा और हिंसाके माननेवाले भी दोनों एक ही कार्यको अपने-अपने पक्षके समर्थनमें बतौर उदाहरणके पेश कर सकते हैं । ऐसे समय कार्यका सच्चा अर्थ तो उसके उद्देशसे ही लग सकता है ।

यह लिखते समय न तो मेरे सामने वह पाठ्य पुस्तक है और न वह मूल गुजराती ही जिससे कि अंगरेजीमें अनुवाद किया गया है । पर मैंने जो लिखा है, वह मुझे याद आ रहा है । और सबसे बड़ी बात तो यह है कि जहांतक मुझे पता है, अहिंसाके विषयमें आज भी मेरे वही विचार हैं, जो पहले थे ।

इस उदाहरणमें मैने जिस सर्वसामान्य सिद्धांतका प्रतिपादन किया है, वह तो गत महायुद्धके समय मुझे जो रास्ता अख्त्यार करना पड़ा था उससे उपलब्ध हुआ था । मैं तो अपनी जानको भी जोखिममें डालकर पूरे दिलसे युद्धमें शामिल हो गया था । जोखिमसे मेरा मतलब उन खतरोंसे नहीं है, जो युद्धमें कुदरती तौरपर होते हैं । असलमें, जिन दिनों मै ड्रिल्समें शरीक हो रहा था और छावनियोंमें रहता था, मुझे 'प्ल्यूरिसी' (वह बीमारी जिसमे फेफड़ेके आवरणोंमें पानी भर जाता है) हो रही थी । बदनमे बड़ी कमजोरी थी । युद्धसे दो-तीन महीने पहले मैंने एक चौदह दिनका उपवास किया था, जिसके कारण

मेरी शक्ति बेहद घट गयी थी। उसकी पूर्ति भी अभी नहीं हो पायी थी। उस समय मेरा विश्वास था कि अंग्रेजी साम्राज्य अंतमें जाकर मनुष्य जातिके लिए लाभदायक ही है। मै तो उन दिनों यह सपना देख रहा था कि मैं उसे किसी दिन कम से कम उसके अपने अस्तित्वको ही मित्र रूपमें ही सही कायम रखनेके लिए युद्ध मार्गसे हटाकर शांतिके मार्गका हिमायती बना लूँगा। पर मुझे अपनी मर्यादाका भी मान था। मै तो एक नाचीज जर्रेके बराबर था। उसकी सामान्य नीतिका प्रतिकार करनेकी जरा भी ताकत नहीं रखता था।

मैं युद्धमें शरीक होता या न भी होता, तो भी मेरा उसे विवशतापूर्ण सहयोग तो हासिल था ही। क्योंकि मैं ब्रिटिश नौ-सेना द्वारा रक्षित खाना खा रहा था। उसीकी छत्रछायामें थोड़ी-बहुत व्यक्तिगत स्वतंत्रताका उपभोग कर रहा था। इसलिए मुझे ऐसा लगा कि अगर मै किसी तरह युद्धमें सहायता भी कर दूँ, तो मुझ जैसे अहिंसाके भक्तके लिए इस तरहका प्रत्यक्ष रूपसे भाग लेकर उसका जल्दी अंत करनेमें सहायता करना ज्यादा उचित होगा। यह बिलकुल मुमकिन है कि यह सब दुर्बलताकी ही दलील हो। और दर हकीकत शायद यही ठीक हो कि अगर मेरा दिल यह कह रहा था कि युद्ध एक बुराई है तो मुझे हर हालतमें उससे दूर ही रहना चाहिये था, फिर इसके कारण मुझे भूखों मरना पड़ता या बागीकी मौत मरना पड़ता, तो भी कोई चिंताकी बात नहीं थी। पर यह जो कुछ हो, न उस समय मेरे ऐसे विचार थे और न आज ही हैं।

यह एक बिलकुल जुदी बात है कि आज जब कि मैं यह विश्वास ही नहीं करता कि यह साम्राज्य अनन्तोगत्वा एक कल्याणकारक शक्ति है, उस परिस्थितिमें मेरा क्या रुख होगा?

अपने जवाबको अधिक साफ करनेके लिए मैं अपने जीवनमेंसे ही एक उदाहरण और लेता हूँ। जब मैं निरा बालक ही था, तभीसे मेरा हृदय और बुद्धि छुआछूतकी बुराईके खिलाफ बगावत कर रही थी। पर चूंकि उस समय परिवारमें मेरी एक तुच्छ हस्ती थी, मैं भी हरिजनोंके प्रति चुपचाप उसी प्रकारका व्यवहार कर रहा था जैसा कि परिवारके अन्य व्यक्ति कर रहे थे, जो कि मैं आज नहीं कर सकता। इसका एक यह कारण तो था ही कि अपने व्यवहारकी पुष्टि मैं उस समय दलीलें देकर नहीं कर सकता था। मुझे उस समय यह नहीं मालूम हुआ कि अपने व्यक्तिगत विश्वासको लेकर मैं परिवारके साथमें रह ही नहीं सकता।

बात यह है कि जीवनमें इसी तरह समझौते करते रहना पड़ता है। और चूंकि अहिंसा एक शुद्ध-से-शुद्ध निःस्वार्थ प्रेम है, इसीलिए वह खुद ही प्रायः ऐसे समझौते करवाती रहती है। पर उसकी शर्त्तें साफ और कड़ी है। इन्सानके दिलमें कोई स्वार्थ, किसी प्रकारका भय या असत्य भी नहीं होना चाहिए। और हमारा

व्यवहार अहिंसा-धर्मकी सेवाके लिए हो। एक बात यह भी हो कि समझौता हमपर बाहरसे लादी हुई चीज न हो, बल्कि हमारे लिए वह एक सहज वस्तु हो।

शायद मेरे इस उत्तरसे उन अध्यापक महोदय और उनके विद्यार्थियोंकी जरा भी तृप्ति नहीं हुई होगी। पर इससे मुझे अचरज नहीं होगा। अपने ही कार्योंका मुझे बार-बार हवाला देना पड़ता है, इसके लिए मै क्षमा चाहता हूँ। पर इसका कारण तो स्पष्ट है। मैं किसी भी अर्थमें बहुश्रुत नहीं हूँ। अहिंसाके बारेमें जो कुछ भी जानता हूँ वह असलमें मुझे अपने खुदके अनुभवों और प्रयोगोंसे ही मिला है, जो मै खुले-आम सत्य-रूपी परमात्मासे डरते हुए नम्र वैज्ञानिक-वृत्तिसे किया करता हूँ।

हरिजन सेवक

१७ अक्टूबर, १९३६

❀

"शुद्ध अहिंसाके नामसे ही हमे भडक नही जाना चाहिए। इस अहिंसाको हम स्पष्टतया समझ ले, और उसकी सर्वोपरि उपयोगिताको स्वीकार कर लें, तो उसका आचरण जितना कठिन माना जाता है, उतना कठिन नही है।"

"परमेश्वर 'सत्य' है, यह कहनेके बजाय 'सत्य' ही परमेश्वर है यह कहना अधिक उपयुक्त है।"

—गाधीजी

अहिंसा किसे कहें ?

"आप अपने तमाम शिष्योंको आदेश देते हैं कि वे न केवल कर्ममें बल्कि वाणी और विचारमें भी अहिंसाका पालन करें। गत २६ नवंबरके 'हरिजन'में आपकी मि० एण्डरूजसे हुई बातचीतका हाल दिया है। मि० एण्डरूजने आपसे पूछा था कि मिशनरियोंके मौजूदा रुखका आपपर क्या असर पड़ रहा है? आपने कहा कि उनका बर्ताव भी इस क्षेत्रमें उनकी सख्या बढ़ानेवाले अपने अन्य भाइयोंका-सा खराब है। आदमीको सबसे अधिक दुःख तो इस बातपर होता है जब हरिजनोंकी कमजोरियोंसे अनुचित लाभ उठानेके लिए वे पागलोंका-सा प्रयास करते हैं। अगर वे यह कहें तो बात समझमें आ सकती है कि हिन्दूधर्म तो निर्दय है, आप तो हमारे धर्मको ग्रहण कर लीजिये। पर वे तो उनके सामने पार्थिव स्वर्गके प्रलोभन दिखाकर ऐसे-ऐसे वचन देते हैं जिन्हें वे कभी पूरा नहीं कर सकते।'

"अगर आपके कथनको ठीक-ठीक लिखा गया है तो मै पूछता हूँ कि क्या मिशनरियोंके वर्गके प्रति यह वाचिक हिंसा नहीं हुई?"

मेरे कोई शिष्य नहीं हैं। मै तो खुद ही शिष्य बनना चाहता हूँ और गुरुकी तलाशमें हूं। पर यह बात तो मेरे मित्र द्वारा उठाये गये सवालसे कोई संबंध नहीं रखती। अगर बोलनेवाला जानता है कि कोई बात सच्ची है—जैसा कि मै उपर्युक्त उद्धरणमें बताये अनुसार दीनबंधु एण्डरूजके साथ बातचीत करते हुए जानता था — तो महज अरुचिकर शब्द कह देना या लिखना हिंसात्मक नहीं कहा जा सकता। पर अगर यह भी पता लग जाय कि मैंने जो कुछ कहा था उसमें अत्युक्ति थी या उससे भी ज्यादा वह सरासर झूठ ही था, तो भी जिस अर्थमें मेरे पत्र-प्रेषक उसे हिंसा बताते हैं, वह हिंसा नहीं है। असलमें हिंसा तो तब होती है जब हम अपने तथोक्त प्रतिपक्षीको क्रिया, वाणी या विचारसे भी तकलीफ पहुंचाना चाहते हैं। यहाँ न तो कोई ऐसा उद्देश था न हो ही सकता था। मैं तो दो भले ईसाइयोंसे, जो कि खुद भी अपने ही ढगके मिशनरी ही थे, मैत्रीपूर्वक बातचीत कर रहा था।

सनातनी लोग हरिजनोंके साथ जैसा व्यवहार करते हैं, उसके विषयमें लिखते हुए और अभी-अभी अपने प्रिय साथियोंके कार्योंके विषयमें लिखते हुए मैंने इससे कहीं सख्त भाषाका प्रयोग किया था। मगर इस भाषाका प्रयोग करते हुए मेरे दिलमें किसीको दुःख पहुंचानेका जरा भी उद्देश नहीं था। और साधारणतया मेरे आलोचक भी यह मानते हैं कि मैं कभी किसीको दुःख पहुंचाना नहीं चाहता हूँ।

पर असलमें अहिंसाकी अग्नि-परीक्षा तो तब होती है, जब हिंसाके लिए भयंकरसे भयंकर उत्तेजना होते हुए भी मनुष्य मन, वाणी और कर्मसे अहिंसक ही बना रहे। भले और सौम्य मनुष्यके साथ बर्ताव करते हुए अगर कोई अहिंसक रहे तो इसमें कौन-सी बात है?

आप बड़े से बड़े प्रलोभनकी कल्पना कर लीजिये और आप पायेंगे कि उसका भी प्रतिकार करनेवाली सबसे जबरदस्त शक्ति है। ईसा मसीह दुष्टों और उनके खानपानको खूब अच्छी तरह जानता था। उनका वर्णन करते हुए उसने कभी मुरव्वत नहीं की। तो भी जब वह न्यायासनके सामने खड़ा हुआ तब उसने यही माँगा कि, 'हे परमपिता! इन्हे क्षमा कर दे, क्योंकि ये जानते ही नहीं कि वे क्या कर रहे हैं।'

मैंने उस समय जो शब्द कहे थे उनमेंसे एक एकके समर्थनमें मजबूत सबूत पेश किये थे। मै अपनेको मिशनरियोंका मित्र मानता हू। उनमेंसे अधिकांशके साथ मेरे बड़े अच्छे ताल्लुकात हैं। फिर भी मेरी मित्रता कभी इतनी अंधी नहीं रही है, कि मैने कभी उनके और जिन प्रणालियों और तरीकोंके वे समर्थक हैं उनके दोष और मर्यादाको भी न देखा होगा।

अक्सर लोग इस मिथ्या डरसे कि कहीं ऐसा कहना अनुचित तो न होगा, सामनेवालेके चित्तको दुःख तो नहीं पहुँचेगा ऐसी बातें कहते-कहते रुक जाते हैं जो कि वे जानते हैं कि सच हैं और इसका परिणाम यह होता है कि उन्हें कई तरहका झूठ-पाखंड करना पड़ता है। पर अगर हमे व्यक्तियों, समाज और राष्ट्रोंमे मानसिक अहिंसाका विकास करना है, तो हमें सत्य कहना ही होगा, फिर क्षण भरके लिए वह चाहे कितना ही कड़ुआ और अप्रिय लगे। पर अगर दिल गवाही न देता हो तो निरी कायिक अहिंसा किसी कामकी नहीं। वह कभी संक्रामक नहीं हो सकती। वह तो सफेदी की हुई कब्रकी तरह है। उसके साथ विचार याने दिल भी होना चाहिये, उसीमें तो शक्ति और जीवन है। हम अच्छी तरह नहीं जानते कि विचारमें वाणी और क्रियाकी अपेक्षा अनन्तगुनी शक्ति है। और जब मन, वचन और कर्मका सामंजस्य होता है, तब वचन और कर्म मनकी गतिके अवरोधक सिद्ध होते हैं, और कर्म वाणीके। कहना नहीं होगा कि यहां सजीव विचारसे मेरा मतलब उस विचारसे है जो वचन और कर्मके रूपमें प्रकट होनेके लिए प्रस्तुत रहता है। जिन विचारोंमें वचन और कर्म द्वारा प्रकट होनेकी क्षमता नहीं होती वे तो वायुकी तरह निःसार होते हैं, उनका परिणाम भी कुछ नहीं होता।

हरिजन सेवक
१९ दिसम्बर, १९३६

जीनेका हक

अपने पत्रके साथ अमेरिकाके एक अखबारकी कतरन भेजते हुए एक महाशय ग्रीनविले एस० पी० संयुक्तराज्य अमेरिकासे लिखते हैं—

"मै तो इस भद्दी कतरनके एक शब्दमें भी विश्वास नहीं करता। मैं तो समझता हूँ कि आपके तथा आपके कामके खिलाफ अंग्रेज जो प्रचार कर रहे हैं उसीका यह ए नमूना है। पहले मै यहा एक मासिक पत्र प्रकाशित करता था। उसमें मैं आपके सिद्धांतोंका और कार्यका प्रचार करता था। मैं तो कल्पना भी नहीं कर सकता कि आपने कोई ऐसी बातें कही हो या काम किया हो जैसा कि इस कतरनके सम्पादकीय लेखमें बताया गया है। अगर आप इन बेवकूफी भरी बातोंका प्रतिवाद भेजें तो बड़ी खुशीके साथ मैं आपके उस प्रतिवादको अमेरिकाके प्रत्येक अखबारमें भेजूँगा और जहातक मुझसे बन पड़ेगा उन्हें लज्जित करूँगा जो आपकी तथा आपके कामकी इस तरह निंदा करते हैं।"

इस कतरनमें मेरी पिछले वर्षकी बीमारीका हाल है और अंतमे लिखा है:—

"आजकल गांधीजी इसके जबरदस्त प्रवर्त्तक हैं। इस क्षेत्रमें प्राप्त की गयी तमाम आधुनिक वैज्ञानिक जानकारी उनके लिए कोई महत्त्व नहीं रखती और न उन्हें मनुष्योंकी जबरदस्त प्राणहानियोंकी परवाह है जो इन छोटे छोटे जन्तुओंके कारण हो रही हैं। जून १९३५ के 'टाइम्स आफ इण्डिया' में उन्होंने कहा, बताया गया है, कि मच्छरों, मक्खियों, जूओं, चूहों और पिस्सुओं वगैरहकी जान लेनेका हमे कोई हक नहीं। जीनेका उन्हें भी उतना ही हक है जितना कि हमें है।"

मुझे भय है कि वह महाशय जिस तरह मेरे पक्षका समर्थन करनेका सुख लाभ करना चाहते हैं वह उन्हें नहीं मिल सकेगा। क्योंकि उपर्युक्त भावोंवाली बात मैंने जरूर कही थी, लेकिन उसके साथ यह भी कहा था कि हमारे आधुनिक और खासकर मेरे मौजूदा अज्ञानके कारण चूहों, पिस्सुओं, मच्छरों आदिकी हत्याओंका साक्षी मुझे खुद रहना पड़ा है। पर मैं यह जरूर मानता हूँ कि परमात्माकी तमाम सृष्टिको उसी तरह जीनेका हक है जैसा कि हमें है। परमात्माने हमें बुद्धि दी है, भला और बुरा, सही और गलत, हिंसा और अहिंसा, सत्य और असत्यकी पहचान और पसंदगी करनेकी शक्ति देकर एक रुतवा बख्शा है। अगर ज्ञानी पुरुष लोगोंके यह कहनेके बजाय कि इन हानिकर समझे जानेवाले प्राणियोंकी हत्या करना हमारा कर्त्तव्य है, अपनी इन देनोंका उपयोग कोई ऐसा तरीका ढूढ़नेमें करे कि जिससे इन प्राणियोंको मारना भी न पड़े और वे मनुष्योंके

लिए हानिकर भी न रहें, तो निःसंदेह वह हमारे मनुष्यत्वको अधिक शोभा देगा और संसारको भी हम ऐसे मनुष्य प्राणियोंके रहने लायक बना सकेंगे।

दुनिया भले ही मुझे कायर और बेवकूफ कहे, पर जिस बातको मैं जीवनका आधारभूत सत्य मानता हूं, उसे छोड़कर ज्ञानी पुरुष कहलाना मै कभी पसंद नहीं करूँगा। निःसन्देह भौतिक विज्ञानमें हमने अद्भुत प्रगति की है, परतु वह तो हमें और भी नम्र बनाता है। वह हमें बताता है कि प्रकृतिके रहस्यों संबंधी हमारा ज्ञान बिलकुल न कुछ-सा है। आध्यात्मिक क्षेत्रमें हम जरा भी आगे नहीं बढ़े हैं। जड़ने चेतनको हमारे अंदर दबा दिया है। उसका तो अस्तित्व भी स्वीकार करना हम पसंद नहीं करते। फिर भी हिंसा और अहिंसा, मारने और बचाने, मनुष्य और अन्य प्राणियोंसे उसका संबंध आदि बातें आध्यात्मिक क्षेत्रसे संबंध रखती है। और इस समस्याका जब हम उचित हल ढूंढ निकालेंगे तब हमारे विचार, वाणी और कर्ममें एक स्पृहणीय परिवर्त्तन हो जायगा। मेरा तो दिल और दिमाग भी इस बातको माननेसे इनकार करता है कि परमात्माने इन हानिकर जीवोंको इसलिए बनाया है कि मनुष्य इनकी हत्या करे। परमात्मा दयालु है। उसके हर काममें अनंत बुद्धिने द्रव्य भरा है। वह ऐसी कोई चीज नहीं बनाता जिसका कोई प्रयोजन ही न हो। अपने अज्ञानको दूर करके हमें बुद्धिसे काम लेना चाहिये और इस श्रद्धासे सोचना चाहिये कि प्रत्येक प्राणीकी सृष्टि किसी खास प्रयोजनसे हुई है और धीरजके साथ हमें उस प्रयोजनको ढूंढनेकी कोशिश करनी चाहिये। मै तो यही मानता हूं कि जरा-जरासे बहानेपर आदमियोंको मार डालनेकी आदतके कारण मनुष्यकी बुद्धि मलिन हो गयी है और इसी कारण वह अन्य प्राणियोंसे भी इसी तरहका सलूक करने लग गया है। अगर वह यह मानता होता कि परमात्मा दयालु और प्रेममय है तो इस तरहकी हत्याएँ वह कभी न करता, बल्कि उनके खयालसे ही उसकी आत्मा कांप उठती। जो कुछ भी हो, मौतके डरसे भले ही शेर, सांप, बिच्छू, मच्छर आदिको मैं शायद मारना चाहूं, फिर भी परमात्माके चरणोंमें मेरी तो हमेशा यही प्रार्थना है कि वह मुझे ऐसा प्रकाश दे जिससे मेरे हृदयसे सारा भय दूर हो जाय और मैं किसीकी भी जान लेनेसे इनकार करके अधिक उच्च मार्गको ग्रहण करूँ। क्योंकि जब वह सर्व-शक्तिमान मुझपर दया करता है तो मुझे भी औरोंपर दया करना सीखना चाहिये।

हरिजन सेवक

९ जनवरी, १९३७

❀

अहिंसा किसे कहें ?

"प्रिय महात्माजी,

आप इधर कुछ हफ्तोंसे कांग्रेसके कामसे व्यस्त थे, इसलिए मैंने 'वचनकी अहिंसा' विषयक प्रश्नके उत्तरमें लिखे हुये आपके पत्रकी पहुंच मैंने नहीं लिखी और १९ दिसम्बरके 'हरिजन' में आपने प्रस्तुत प्रश्नकी विस्तारपूर्वक चर्चा करनेका जो सौजन्य दिखाया उसके लिए मैंने आपको धन्यवाद नहीं दिया। मैंने आपकी दलीलको ध्यानसे पढ़ा और उसपर काफी विचार भी किया है, लेकिन जो ईसाई पादरी गत सौ वर्षसे आपकी मातृभूमिके कल्याणार्थ इतनी बड़ी सु-सेवा कर रहे हैं उन पादरियोंके वर्गके संबंधमें आपने जिन शब्दोंका उपयोग किया है उनमें आप अहिंसक नहीं रहे, यह विचार मैं अपने दिलसे दूर नहीं कर सका।

आप कहते हैं—"हिंसामें आवश्यक वस्तु यह है कि विचार, वचन या आचारके पीछे हिंसक हेतु होना ही चाहिये, अर्थात् वहां विरोधीको क्षति पहुचानेका इरादा हो।" आपकी यह बात सही है यह मैं नहीं मानता। उदाहरणके लिए मान लीजिये कि कोई पिता अपने जिद्दी और कहना न माननेवाले लड़केके किसी अपराधके लिए उसके गालपर थप्पड़ मार देता है। पिताके इस कामके पीछे 'हिंसक हेतु' था या उसके दिलमें अपने लड़केको 'चोट पहुंचानेका इरादा था' यह कोई एक क्षणके लिए भी नहीं मान सकता। तो भी लड़केके गालपर चोट पहुची। इसी तरह, जब कोई आदमी अपने विरोधीके खिलाफ उसका दिल या उसकी भावनाको दुखानेवाले शब्द कहता है तब उसके उन शब्दोंके पीछे माना कि हेतु अहिंसक था, तो भी उसने हिंसा तो की ही; क्योंकि जैसे उपर्युक्त उदाहरणमें पिताने अपने लड़केके गालको चोट पहुचायी वैसे ही इस आदमीने अपने विरोधीकी भावनाको आघात पहुचाया है। आगे चलकर आप कहते हैं—"अहिंसाकी सच्ची कसौटी तो यह है कि हिंसा करनेके लिए कोई कितना ही उभाड़े तब भी मनुष्य इस तरह विचार करे, बोले या बरते कि जिससे उसके विरोधीके शरीर मन या आत्माको चोट न पहुंचे। आपने यह वाक्य ठीक कहा है कि—"अगर व्यक्तियोंमें या समाजोंमें अथवा राष्ट्रोंमें विचारकी अहिंसा विकसित करनी हो तो सत्य, क्षणभरके लिए वह चाहे जितना कठोर या कड़ुवा लगे, तो भी कह देना चाहिये"। पर जरा अधिक धैर्य, संयम और सद्भावपूर्वक विरोधके विरुद्ध उसके यही विचार कुछ मुलायम भाषामें व्यक्त किये जा सकते हों तब यह सही नहीं कि कठोर सत्य कठोर वाणीमें कहना चाहिये। इस चर्चामें आपकी वाणीकी कठोरताके मुकाबलेमें दीनबंधु एण्डरूजकी दलील करनेकी नर्मीमें भरी हुई मिठास कितनी स्पष्ट देख पड़ती थी! महात्माजी, आपका हमेशाका स्वभाव तो नमूनेदार शांति, धैर्य और समयसे बात करने का है इसलिए आप इस कठोरताको सहन

ही दूर कर सकते थे। इस कठोरतामें, मैं फिर कह सकता हूँ, आपने पादरीवर्गके प्रति 'वचनकी हिंसा' की है।

आपकी आयु और आरोग्यका शुभचिंतक,

पूना, १०-१-३६ अ सो वाडिया

पुनश्च—आप चाहें तो इस पत्रको 'हरिजन' में खुशीसे छाप सकते हैं।"

इस पत्रको मैं सहर्ष प्रकाशित कर रहा हूँ। किंतु श्री वाडियाने जो मत प्रगट किया है उससे मेरी राय बिलकुल ही जुदी है। लड़केको तमाचा अगर क्रोध या अधीरतासे न मारा गया हो तो वह हिंसा निश्चय ही नहीं है,जैसे कि उसे जब साँपने काटा हो और उसे जागृत रखनेकी जरूरत हो, या जब बालक तेज बुखारके जोरमें बिलकुल पागलकी तरह भाग-दौड़ कर रहा हो, और कसकर तमाचा मारनेसे ही होशमें आता हो, तो उस समय मारा हुआ तमाचा हिंसामें नहीं आता। इससे चोट तो जरूर पहुँची, पर तमाचा न मारा होता तो वह जरूर मर जाता। हरेक सर्जन डाक्टर ईजा तो पहुंचाता है, पर वह हर वक्त हिंसक नहीं होता बल्कि परोपकारी कहा जाता है, और यह ईजा-कभी कभी तो बहुत गहरी ईजा-करनेके लिए उसका एहसान माना जाता है और उसे काफी बड़ी फीस मिलती है। वह श्री वाडियाकी व्याख्याके अनुसार नहीं, किंतु मेरी व्याख्याके अनुसार काम करता है। मेरे विद्वान पत्र-लेखकके कथनानुसार यदि देखा जाय तो ईसा मसीहने अपने जमानेके कुछ लोगोंको 'साँपोंकी औलाद' कहकर निरी हिंसाका प्रयोग किया था। उनके शब्दों और कार्योंसे उनके जमानेके कुछ लोगोंको इतनी ज्यादा चोट पहुंची कि आखिरकार वे उनके प्राणोंके गाहक बन गये। और सत्य, जैसा कि लेखक कहता है, अगर कठोर हो सकता है तो उसे व्यक्त करनेका नम्रतापूर्ण मार्ग ऐसा कौन-सा है, जिससे कि विरोधीको कभी क्रोध आये ही नहीं? कोई आदमी निरा सफेद भूठ बोलता है या दिन-दहाड़े डकैती या हत्या करता है तो मैं अपने उस भाईको-भाई वह अवश्य ही है—झूठा या चोर या हत्यारा कहूँ? या फिर द्राविड़ी प्राणायाम जैसी भाषाको काममें लाकर यह कहूँ कि 'वह सत्य-वादिताके चारों ओरकी भूमिमें भ्रमण करता है', या 'जो चीज़ उसकी नहीं है उसे वह शायद बिना चोरीके इरादेसे उठाता है', अथवा 'उसका इरादा शायद जान लेनेका नहीं है, पर वह निर्दोष खून करता है'? और ऐसी भाषाका अगर मै प्रयोग करूं तो जिस आदमीके बारेमे मैने कहा हो उसे मेरी वाणीसे कभी चोट पहुँचे ही नहीं इसकी क्या जरा भी खातिरी है? कठोर सत्य विवेक और नम्रतापूर्वक कहा जा सकता है, पर पढ़नेमें तो वे शब्द कठोर लगेंगे ही। सत्यका पालन करना हो तो आपको भूठेको भूठा कहना ही चाहिये—यह शब्द शायद कठोर समझा जाय, पर उपयोग इस शब्दका करना ही पड़ेगा। जिस उदाहरणके विषयमें श्रीवाडियाने आपत्ति उठायी है उसके बारेमें मुझे जरा भी पश्चात्ताप नहीं हुआ।

मैं इन मित्रसे कहना चाहता हूँ कि पादरियोंने जो स्कूल अस्पताल आदि स्थापित किये हैं, उनके इन कामोंसे प्रभावित होकर मेरे इन मित्रने भी दूसरे बहुत से अच्छे आदमियोंकी ही तरह, अपनी निणयशक्तिको कलुषित होने दिया है। जब कि इन पादरियोंके परोपकारी कार्योंके लिए इन्हें पूरा-पूरा यश देते हुए भी मेरी स्थिरबुद्धि मुझसे कहती है कि उनके कामोंके पीछे लोगोंको धर्मान्तरित करनेका जो हेतु रहता है उसके कारण उन कामोंका तेज मंद पड़ जाता है। धर्माचरण और धर्मान्तरकी प्रवृत्तिके संबंधमें मेरे विचार शायद गलत हों, पर इससे पादरियोंकी प्रवृत्तिके विषयमें मैंने जो वचन कहे है वे किसी तरह हिंसक नहीं ठहरते।

इसलिए श्रीवाडिया जिस निर्णयपर पहुँचे हैं उसमें, या अहिंसाके विषयमें उन्होंने दीनबन्धु एण्डरूजकी तुलनामें मुझे जो नीचे रखा है उसमें मुझे सम्मति नहीं देनी है। मेरे स्वभावमें, 'नमूनेदार शांति, धैर्य और संयम' ऐसा यदि वे सचमुच ही मानते हैं तो मैं उन्हे विश्वास दिला सकता हू कि जिस प्रसंगका उल्लेख उन्होंने किया है उस प्रसंगमे मैंने अपना ऐसा एक भी गुण हाथसे नहीं जाने दिया था जिसे कि वे मेरा गुण मानते हैं। इसका अर्थ यह नहीं कि मैंने कभी संयमको खोया ही नहीं। मै संयम जरूर खो बैठता हूं, और वे प्रसंग मेरे लिए लज्जाजनक होते हैं। श्री वाडियाको ऐसे प्रसंग देखनेका मौका नहीं आया तो इसका कारण यह है कि सार्वजनिक जीवनमें, और खासकर जो मुझे अपना शत्रु मानते हैं उनके प्रति किये गये बर्तावमें संयम रखनेकी कठिन तालीम मैंने अपने मनको दी है। पर यही बात मै अपने खानगी जीवनके संबंधमें नहीं कह सकता। जिनका मेरे साथ अत्यंत निकटका संबध है, वे तो जानते हैं कि मैं उनके साथ अधीर हो सकता हूँ और कभी कभी तो छूटे हुए जंगली रीछकी तरह बर्त्ताव करता हूँ। मैं जानता हूँ कि उनके साथ भी मुझे अधीर नहीं होना चाहिये। वे अत्यंत उदारताके साथ मेरा क्रोध बर्दाश्त कर लेते हैं, क्योंकि उन्हें यह पक्का विश्वास है कि मेरे मनमें उनके संबंधमें कोई बुरा भाव नहीं है, और मैं उनका अच्छेसे अच्छा मित्र और मार्गदर्शक हूं। पर उनके प्रमाणपत्रका मेरे लिए कोई मूल्य नहीं। इससे मैं कभी भुलावेमें पड़ा ही नहीं। मैं जानता हूँ कि यदि उनके प्रति अनासक्तिपूर्वक मैं बर्त्ताव कर सकूँ, और उन्होंने खुद नित्यके आचरणके लिए जो नियम ग्रहण किया हो उसमें वे मेरी दृष्टिसे चूकते हुए मालूम होते हों, तब भी उन्हें दोष न लगाऊँ तो मैं अधिक अच्छा मनुष्य और उनका अधिक अच्छा मार्गदर्शक हो सकता हूँ। लेकिन गीतामें बतायी हुई अनासक्तिकी साधना मानों खाँड़ेकी धारपर चलना है, तो भी पूर्ण शाति और आत्मा तथा परमात्माकी प्राप्तिके लिए वह आवश्यक है।

हरिजन सेवक
१३ फरवरी, १९३७

मनुष्यकी अमानुषता

बहुतसे लोगोंको यह पता भी न होगा कि 'फूका' क्या चीज है। उससे भी कम लोगोंको इस बातका पता होगा कि कलकत्तेमे 'फूका-विरोधिनी' समिति नामकी एक संस्था है। उसके आश्रयदाता महाराजधिराज सर विजयचन्द महताब बहादुर और न्यायाधीश सर एल० डब्ल्यू० जे० कोस्टेलो हैं। अध्यक्ष हैं श्री रामकुमार बांगड़। इसका दफ्तर ६५ पथरियाघाट स्ट्रीटपर है। संस्थाके मन्त्रीने 'फूका' क्रियाका वर्णन इस प्रकार दिया है:—

"मैं आपकी सेवामें निवेदन करना चाहता हूँ कि प्रत्येक दुधारू पशुपर दिनमे दो बार फूकाका अत्याचार किया जाता है। जानवरके चारो पैर चार मजबूत खम्भोंसे बाँध दिये जाते है। फिर दो आदमी इस पशुको इतनी जोरसे पकड़े रहते हैं कि वह बेचारा जरा भी इधरसे उधर नहीं हो सकता। फिर २२ इंच लम्बा और ८ इंच घेरेवाला एक बाँस का नल लेकर उस पशुकी जननेन्द्रियमे जोरसे घुसाया जाता है। फिर एक आदमी जननेन्द्रियमे हवा भरता है जिससे वह पूरी तरह फैल जाय। उसके फूलनेसे दूधकी उन ग्रन्थियोंपर विशेष दवाव पड़ता है जिससे दूध निकालनेवालेको उसके थनोंसे एक-एक बूँद दूध निकालनेमे सहायता मिलती है। प्रत्यक्ष दूध निकालनेकी क्रिया भी इतनी अमानुष है जिसका वर्णन नहीं हो सकता। जानवरकी पीड़ाकी वहाँ किसे परवा है। जबतक थनोंसे खून नहीं निकलने लग जाता वह बन्द नहीं किया जाता, कभी कभी खूनकी बूंदें दूधमें भी गिर जाती हैं और उसमें मिल जाती हैं। गाय या भैंस क्या करे, वह जरी भी हिल नहीं सकती, इस अमानुषताको चुपचाप सहती रहती है। उसकी मूक पीड़ा आँसुओंकी धारा और पसीनेके प्रवाहके रूपमे उसके गालों और शरीरपर द्रवीभूत होकर वह निकलती है। यह अमानुष अत्याचार दिनमें दो बार किया जाता है। और हर बार वह गरीब मूर्च्छित हो जाती है।"

मंत्रीने जो वर्णन दिया है उससे अधिक दुःखदायक और घृणित क्रियाकी कल्पना करना भी कठिन है। संस्थाकी बैठककी कार्यवाही पढ़नेसे मालूम होता है कि जो भी गाय या भैंस इस क्रियाका शिकार होती है वह वन्ध्या हो जाती है। इसलिए जब 'फूका' करनेपर भी वे दूध नहीं दे सकतीं, तब कसाइयोंके सिपुर्द कर दी जाती है।

संस्था यह अमानुषता बरतनेवालोंपर मामला चलानेका जिम्मा लेती है, वह इन अपराधियोंको खोजनेके लिए सादी पोशाकमें घूमनेवाले खुफियाओंको तैनात करती है। जहाँतक इस संस्थाके कार्यसे संबध है वह अच्छी है। पर

मेरे ख्यालमें इससे भी आगे बढ़नेकी जरूरत है। कुछ अपराधियोंको सजा दे देने भरसे इस अमानुषताकी रोक-थाम नहीं हो सकती। अपराधियोंके बीच इसके खिलाफ प्रचार करने, उन्हें समझाने और इस क्रियाकी बुराइयोंको उनके ध्यानमें लानेकी जरूरत है। अलबत्ता, इस बुराईको रोकनेका सबसे उत्तम और कारगर उपाय तो यह है कि खुद कारपोरेशन ही शहरको दूध पहुँचानेका भार अपने ऊपर ले ले और तमाम ग्वालोंको तनख्वाहदार नौकर बनाकर रख ले। तब उन्हें आजकी तरह कोई प्रलोभन नहीं रहेगा। उनपर स्वास्थ्य-विभागकी निगरानी रहेगी। दूध निकालनेवालोंपर खास नियन्त्रण रहेगा। नागरिकोंको यह विश्वास रहेगा कि उन्हें अपने पैसेके बदलेमें शुद्ध दूध मिलेगा। और इसकी कोई वजह नहीं कि दूधका प्रबंध करनेवाला यह मुहकमा स्वावलम्बी क्यों न हो? अगर दूध कुछ महँगा पड़ेगा तो नागरिक एक पाई खुशी-खुशी अधिक दे देंगे। जिस तरह डाकके टिकटपर राज्यका एकाधिकार होता है इसी तरह दूधका प्रबंध भी असलमें म्युनिसिपल कमेटीके इजारेकी ही चीज होनी चाहिये।

हरिजन सेवक
२६ जून, १९३७

❀

मनुष्यके स्वाभिमान और सम्मान-भावनाकी अहिंसा सबसे बड़ी रक्षक है। हाँ, वह मनुष्यकी चल-अचल सम्पत्तिकी हमेशा रक्षा करनेका आश्वासन नहीं देती—हालाँ कि अगर मनुष्य उसका अच्छा अभ्यास कर ले तो शस्त्रधारियोंकी सेनाओंकी अपेक्षा वह इसकी अधिक अच्छी तरह रक्षा कर सकती है। यह तो स्पष्ट है कि अन्यायसे अर्जित सम्पत्ति तथा दुराचारकी रक्षामें वह जरा भी सहायक नहीं हो सकती।

—गांधीजी

सत्य और अहिंसाके विरुद्ध

एक मित्र लिखते है—

"आपके 'आलोचनाओंका जवाब' लेखमे (जो ३१ जुलाईके 'हरिजन सेवक' में प्रकाशित हुआ है) यह वाक्य कि 'जो यूरोपियन शराबके बिना रही नहीं सकते, अथवा रहना नहीं चाहते, सिर्फ उनके लिए विदेशी शराबे परिमित मात्रामे मॅगाई जा सकती हैं,' मुझे सत्य और अहिंसाकी भावनाके विरुद्ध मालूम पड़ता है, और साथ ही वह कोई अच्छी दलील भी नहीं है।

काग्रेसी सरकारोंके लिए तो यह आवश्यक है कि अपने प्रातोंमे जितना ध्यान वे हिन्दुस्तानियोंकी भलाईका रखे उतना ही यूरोपियनोंका भी रखें। मैं समझता हूॅ कि मद्य-निषेधकके रूपमे सब काग्रेसवादी इस बातपर सहमत हैं कि शराब यूरोपियनोंके लिए भी उतनी ही हानिकारक है जितनी कि हिन्दुस्तानियोंके लिए। ऐसी हालतमें शराबकी खाली सनकको महत्त्व नहीं दिया जा सकता। अगर इस बिनापर यूरोपियनोंको शराब पीने दी जाय कि 'वे शराबके बिना रही नहीं सकते, अथवा रहना नहीं चाहते', हालॉकि वह उनके लिए है बुरी ही, तो हिन्दुस्तानमे रहनेवाले जापानी, अमेरिकन और दूसरे अनेक विदेशी भी इसी बिनापर उसकी छूट चाहेगे, और इस बिनापर उन्हें शराबकी अपनी बुरी आदत जारी रखने दी जाय, तो भला अपने ही देशमे रहनेवाले हिन्दुस्तानीको इसी तरह अपना नाश करनेसे क्यों रोका जाय?

इसलिए, मेरा ख्याल है कि काग्रेसी मत्री अगर शराबपर प्रतिबध लगावें, तो उन्हें यूरोपियनोंपर भी उसे वैसा ही लागू करना चाहिये, नहीं तो दवाके बतौर अजीब-सी धारणाके नामपर उनके लिए शराबकी छूट रखी तो उनके साथ अन्याय होगी, क्योंकि उससे उनकी भलाई कुर्बान कर दी जायगी। निश्चय ही शराब पीनेकी छूट किसी व्यक्तिके लिए सुविधाका रूप नहीं बन जानी चाहिये—सारी जातिके लिए तो यह और भी हानिकारक है। अगर किसीको शराब पीनेकी इजाजत मिले तो वह बिल्कुल दवाके तौरपर या ऐसे किसी आधारपर ही हो जो कि सबपर एक-सा लागू हो। काग्रेसी शासनमें किसी जातिके साथ पक्षपात करनेवाला या विरुद्ध जानेवाला कोई कानून नहीं हो सकता।

इतिहास बतलाता है कि पारसी लोग पहले-पहल जब हिन्दुस्तानमें रहनेके लिए आये, तो उन्होंने न सिर्फ उस समयके हिन्दुस्तानी रस्म-रिवाजोंकी इज्जत करना ही मंजूर किया बल्कि कुछ रस्म-रिवाजोंको खुद भी ग्रहण कर लिया। यूरोपियन व्यापारियोंको मुगल दरबारके तौर-तरीकों व रस्म-रिवाजोका ख्याल रखना पड़ता था। हिन्दुस्तानमें रहनेवाले किसी भी विदेशीको ऐसा ही करना चाहिये। इस प्रकार, जब राष्ट्र शराबबन्दी की घोषणा

बन्दरोंके विषयमें

जिंदा बन्दरोंकी चीरफाड़के लिए हिन्दुस्तानसे अमेरिका जो बन्दर भेजे जाते हैं, उसे बंद करानेके लिए कोई पचास अमेरिकनोंके पत्र मेरे सामने पड़े हुए हैं। इनमेंसे कुछ तो भूतदयाके समर्थकोंके और कुछ जिन्दा जानवरोंको इस तरह चीरफाड़ करनेके विरोधियोंके हैं।

उन्होंने इस संबंधमें कुछ मनोरंजक साहित्य भी भेजा है, जिसमें इस चीरफाड़की भयंकर तसवीरें और तफसीलें दी हुई हैं। प्रख्यात डाक्टरोंकी रायें भी उन्होंने भेजी हैं जिनमें उन्होंने इस क्रियाकी उपयोगिताके खिलाफ अपना मत दिया है। इसी तरहके एक पत्रमें असीसीके संत फ्रांसिसका चित्र भी है, जो पशु-पक्षियोंको अपने भाई बहनकी तरह प्यार करते थे। संत फ्रांन्सिसकी नीचे लिखी एक प्रार्थनाको पाठक देखें—

"प्रभो, मुझे अपनी शांतिका साधन बना। द्वेषकी जगह मुझे प्रेमके बीज बोने दे, अत्याचारके बदलेमें क्षमा, शक और संदेहके बदलेमें विश्वास, निराशाके स्थानपर आशा, अंधकारकी जगह प्रकाश और विषादकी भूमिमें आनंद निर्माण करनेकी शक्ति मुझे प्रदान कर।"

"भगवान, दया करके मुझे यह शक्ति दे कि किसीको मेरी सांत्वना करनेकी जरूरत ही न पड़े; इसके बजाय कि लोग मुझे समझें, मैं ही उन्हें समझूँ; लोग मुझे प्यार करें इसके बजाय मैं ही उन्हें प्यार करना सीखूँ, क्योंकि देनेमें ही वह निहित है जो हमें प्राप्त होता है। क्षमा करनेसे ही हम क्षमाके पात्र बनते हैं और आत्मोसर्गमें ही चिरंतन जीवनका मार्ग है।"

इन पत्र-प्रेषकोंके प्रति मेरी पूरी सहानुभूति है। मेरा बस चले तो हत्या या चीरफाड़के लिए मैं एक भी बन्दरको बाहर न जाने दूँ। इन पत्र-प्रेषकोंसे मेरी यह सलाह है कि वे भारत सरकारसे ही इस विषयमें प्रार्थना करें। उनकी प्रार्थनाके पीछे पर्याप्त बल होगा तो उसपर निश्चय ही ध्यान भी दिया जायगा। दूसरा उपाय स्पष्ट ही यह है कि बंदरोंको बाहर भेजनेके खिलाफ देशमें जोरदार आंदोलन किया जाय। पर जहांतक मेरा ख्याल है, यहाँ इस प्रवृत्तिकी बहुत कम संभावना है। क्योंकि जनसाधारणको शायद इस बातका पता भी न हो कि बंदरोंको बाहर भेजा जाता है, और मेरी समझमें नहीं आता कि खानगी व्यक्तियोंको जिनके लिए कि यह व्यापार बहुत फायदेमंद है—मैं कैसे रोक सकता हूँ। मैं जो कुछ कर सकता हूँ वह तो यही है कि मैं अपनी यह इच्छा जाहिर कर दूँ कि इस

अमानुषिक व्यापारसे हिन्दुस्तान दूर ही रहे। अगर यह सिद्ध भी हो जाय
इस तरहकी चीरफाडसे हम मनुष्य-जातिकी पीड़ाको कम कर सकते हैं, तो
निम्न-श्रेणियोंके प्राणियोंपर ऐसा अत्याचार करना सरासर अन्याय है। औ
चीरफाड़में जिस अमानुषतासे काम लेना पड़ता है वह भी कोई ऐसी ची
तो है नहीं जिसे कोई महान उद्देश्य कहा जाय। इसके विपरीत, मनुष्य जाति
असलमें उद्देश्य तो यह होना चाहिये कि वह दया-धर्मको कभी न छोड़े, फिर भ
ही उसके कारण उसे कितना ही दुःख सहना पड़े या वह दुःख बढ भी जाय
मैं तो सोचता हूँ कि दूसरों या अन्य प्राणियोंके प्रति दया-धर्म रखनेसे हमा
दुःख और पीड़ा कम होता है क्योंकि उससे हमें उस पीड़ाका सहने
शक्ति मिलती है।

हरिजन सेवक
१८ सितम्बर, १९३७

❀

"सत्य एक विशाल वृक्ष है। उसकी ज्यो-ज्यो सेवा की जाती है त्यो-त्यो उसमे अनेक फल आते हुए दिखाई देते है। उनका अत ही नही होता। ज्यो-ज्यो हम गहरे पैठते है, त्यो-त्यो उनमेसे रत्न निकलते है सेवाके अवसर हाथ आते रहते है।"

"अहिसा परम श्रेष्ठ मानव-धर्म है, पशुबलसे वह अनंतगुना महान और उच्च है।

—गाधीजी

हमारी असफलता

इलाहाबादमें—जो कि महासभा (कांग्रेस) का सदर मुकाम है—सांप्रदायिक दंगा होने और उसके लिये पुलिस ही नहीं बल्कि फौजको भी बुलानेकी जरूरत पड़नेसे मालूम होता है कि महासभा अभी इस योग्य नहीं हुई कि ब्रिटिश सत्ताका स्थान ले ले। यह बात चाहे जितनी नागवार लगे, लेकिन अच्छा यही है कि हम इस नग्नसत्यको महसूस करें और उसका मुकाबला करें।

महासभा सारे भारतके प्रतिनिधित्वका दावा करती है न कि सिर्फ थोड़ेसे उन लोगोंका जो कि उसके सदस्य हैं। इसलिए जो लोग इसके विरोधी हैं और जो हो सके तो इसे कुचल भी डालेंगे, उनका भी इसे प्रतिनिधित्व करना चाहिये। जबतक हम इस दावेको अच्छाईके साथ सिद्ध न करें तबतक हम ऐसी स्थितिमें नहीं हो सकते कि ब्रिटिश सरकारको हटाकर स्वाधीन राष्ट्रके रूपमें अपना काम चला सकें।

ब्रिटिश शासनको चाहे हम हिंसासे हटाना चाहें या अहिंसासे, यह बात तो दोनों ही सूरतोंमें लागू होती है।

बहुत संभव है कि जब ये पंक्तियाँ छपकर प्रकाशित होंगी तबतक इलाहाबाद तथा अन्य स्थानोंमें शांति स्थापित हो चुकी रहेगी। मगर महासभाकी एक संस्थाके रूपमें सम्पूर्ण रूपसे ब्रिटिश सत्ताका एक स्थान लेनेकी तैयारी है या नहीं, इस बातकी जाँच-पड़ताल करनेमें हमें उससे कोई मदद नहीं मिलेगी।

कोई भी कांग्रेसवादी गम्भीरताके साथ इस बारेमें संदेह नहीं करेगा, कि इस समय महासभा ऐसी स्थितिमें नहीं है कि वह जो चाहे कर सके। अगर उसमें ऐसी सामर्थ्य हो तो वह उसके लिए किसीके कहनेकी प्रतीक्षा नहीं करेगी। लेकिन हर एक कांग्रेसवादीका यह विश्वास है कि महासभा तेजीके साथ ऐसी संस्था बन रही है। हरिपुराकी ज्वलंत सफलताको 'इस बातके अत्यंत ठोस सबूतके रूपमें पेश किया जायगा।

ये दंगे और दूसरी चंद बातें ऐसी हैं जिनपर हमें ठहरकर यह सोचना ही चाहिये कि क्या सचमुच महासभाका विकास हो रहा है और वह अधिकाधिक शक्ति प्राप्त करती जा रही है? मुझे यह मानना ही पड़ेगा कि यह दावा करनेका अपराधी म ही हूँ। क्या ऐसा करनेमें मैंने जरूरतसे ज्यादा जल्दीबाजी की?

मेरा यह विश्वास है कि महासभाकी व्यापक वृद्धि उसके द्वारा अहिंसाकी नीतिका स्वीकार और पालन करनेसे हुई है, फिर वह चाहे कितना ही अधूरा क्यों न हो। लेकिन अब कांग्रेसी-अहिंसाके रूपपर विचार करनेका वक्त आ गया है। सवाल यह है कि यह अहिंसा कमजोर और असहायोंकी अहिंसा है या बलवान और सशक्तोंकी ? अगर कमजोरोंकी हो तो यह हमें अपने ध्येयपर कभी नहीं पहुंचायगी, बल्कि देरतक इसका पालन किया गया तो हमें हमेशाके लिए स्वराज्यके अयोग्य बना देगी। क्योंकि कमजोर और असहाय तो अमलमें इसीलिए अहिंसक बनते हैं कि इसके सिवा वे कुछ कर ही नहीं सकते ; लेकिन वस्तुतः उनके दिलोंमें हिंसा समाई रहती है और उसके प्रदर्शनके लिए वे केवल अवसरकी प्रतीक्षामें रहते हैं। अतः कांग्रेसवादियोंके लिए यह आवश्यक है कि वे व्यक्तिगत और सामूहिक रूपसे इस बातकी जाँच करें कि उनकी अहिंसा किस किस्मकी है। अगर उसका मूल सच्ची ताकतमें न हो, तो महासभाके लिए सबसे अच्छी और ईमानदारीकी बात यह होगी कि वह ऐसी घोषणा करके अपने व्यवहारमें रद्दोबदल कर ले।

अबतक याने सत्रह सालतक अहिंसापर अमल कर लेनेके बाद महासभाको इतनी समर्थ तो हो ही जानी चाहिये कि वह कुछ हजार नहीं बल्कि लाखों ऐसे स्वयंसेवकोंकी अहिंसक सेना खड़ी कर सके जो उन सब अवसरोंपर काम आसके जिनके लिए कि पुलिस और फौजकी जरूरत पड़ती है। इस प्रकार हमारी स्थिति ऐसी होनी चाहिए कि शांति-स्थापनाके लिए मरनेवाले एक वीर गुप्ता ही नहीं बल्कि सैकड़ों सामने आ सकें और अहिंसक सेना हथियारबंद सैनिकोंकी तरह न केवल दंगेके वक्त बल्कि शांतिके वक्त भी काम करे। ये सैनिक बराबर ऐसी रचनात्मक हलचलोंमें लगे रहेंगे जिनसे कि दंगोंका होना ही नामुमकिन हो जाय। साथ ही जिस प्रकार सेनाको किसी भी जरूरतके लिए तैयार रहना चाहिये उसी प्रकार उनका यह फर्ज होगा कि वे विविध जातियोंको सम्मिलित करनेके लिए अवसर ढूंढ़ते रहें, शांतिका प्रचार कार्य करते रहें। ऐसी हलचलोंमें लगे रहें जिससे अपने मुहल्ले या डिवीजनके हरेक मर्द, औरत, बच्चेसे सम्पर्क बना रहे, और भीड़के क्रोधको शांत करनेके लिए पर्याप्त संख्यामें अपने प्राणोंकी आहुति देनेके लिए तैयार रहें। कुछ सौ या कुछ हजार ऐसी निर्दोष मृत्युएँ ऐसे दंगोंको हमेशाके लिए समाप्त कर देंगी। जान-बूझकर भीड़के क्रोधका शिकार होनेवाले कुछ सौ तरुण स्त्री-पुरुषोंकी आहुति ऐसे पागलपनका मुकाबला करनेके लिए, पुलीस और फौजके प्रदर्शनकी बनिस्बत, निश्चय ही किसी भी दिन एक सस्ता और बहादुराना उपाय ही होगा।

यह कहा जाता है कि जब हम स्वाधीनता प्राप्त कर लेंगे तब दंगे तथा

अन्य ऐसी बातें नहीं होंगी। लेकिन मुझे ऐसा लगता है कि लड़ाईके दर्मियान अगर हम अहिंसात्मक कार्यके तत्त्वको अच्छी तरह समझकर हरेक कल्पनीय परिस्थितिमें उसका इस्तेमाल न करें तो हमारी यह आशा थोथी ही होगी, जिस हद तक कि कांग्रेसी मंत्रियोंको पुलीस या फौजका सहारा लेना पड़ा है, उस हद तक मेरी रायमें, हमें अपनी असफलता मंजूर करनी ही चाहिए। क्योंकि दुर्भाग्यवश यह बिलकुल ठीक है कि मंत्री लोग इसके सिवा कुछ कर ही नहीं सकते। अतः मेरी ही तरह अगर हरेक कांग्रेसवादी और कांग्रेस कार्य-समिति भी यह सोचते हों कि हम असफल हुए हैं तो मैं चाहूँगा कि वे इस बातपर विचार करें कि हम असफल क्यों हुए।

हरिजन सेवक
२६ मार्च, १९३८

❀

"जो व्यक्ति और राष्ट्र अहिंसाका अवलम्बन करना चाहे, उन्हें आत्म-सम्मानके अतिरिक्त अपना सर्वस्व (राष्ट्रों को तो एक-एक आदमी) गवानेके लिए तैयार रहना चाहिये। इसलिए वह दूसरेके मुल्कोको हड़पने अर्थात् आधुनिक साम्राज्यवादसे, जो कि अपनी रक्षाके लिए पशुबलपर निर्भर रहता है बिल्कुल मेल नही खा सकता।"

—गाधीजी

अहिंसा या हिंसा ?

संयुक्तप्रान्तमें हालमें जो दंगे हुए हैं उनके संबंधमें मेरी आलोचनाओंकी तरफ बहुतोंका ध्यान गया है। मित्रोंने मेरे पास अखबारोंकी कतरने भेजी हैं। उनमें के लिखित या जबानी आलोचनाका सार यह हैं—

(१) मेरा लेख कुछ खप्तियोंका-सा है।

(२) मैंने पूरी सामग्रीके बगैर उसे लिखा है।

(३) असहयोग या निष्क्रिय-प्रतिरोध संबंधी अपने विचारोंसे मै हट गया हूँ।

(४) मैं लिबरलों (नरमदलवालों) की नीतिपर आ गया हूँ।

(५) कांग्रेसियोंने अपने आपसमें अहिंसाको कभी भी नहीं अपनाया था।

(६) मैं मानव-स्वभावसे असंभव बातोंकी आशा कर रहा था।

(७) अगर मेरी बात मानी जाय, तो स्वराज्य हर्गिज हासिल नहीं होगा, क्योंकि सारा हिन्दुस्तान कभी भी अहिंसक नहीं बन सकता।

आलोचनामेंसे मै और भी बहुत-कुछ ले सकता था, लेकिन मैंने केवल संगत अंश ही लिये हैं।

१. अगर मेरा लेख खप्तियोंका-सा है, तो उसके आसार तो अब भी मुझमें मौजूद हैं, क्योंकि आलोचनाओंको उपयुक्त ध्यानसे पढ़नेके बाद भी, मैंने जो बात कही है उसमें तब्दीली करने जैसी कोई बात मुझे दिखायी नहीं देती। आलोचकोंको यह याद रखना चाहिये कि मेरी तजवीज निश्चित और परिमित थी। अहिंसक उपायोंसे स्वराज्य तबतक हासिल नहीं हो सकता, जबतक कि हमारी अहिंसा बहादुरोंकी ऐसी अहिंसा न हो, जो सफलतापूर्वक हिंसाका मुकाबला कर सके। मैंने यह दावा कभी नहीं किया कि स्वराज्य और उपायोंसे हासिल नहीं हो सकता। लेकिन अगर उसे अन्य किसी उपायसे प्राप्त किया जा सके, तो हमारी उसके लिए तैयारी नहीं है, क्योंकि ब्रिटेनसे अपनी ताकतकी जोर आजमाई करनेके लिए हम तैयार नहीं हैं।

२ जहाँतक सामग्रीका सवाल है, यही पर्याप्त है कि दंगे हुए, फिर वे कितने ही छोटे क्यों न हों, कांग्रेसवादी अहिंसात्मक तरीकेसे उनका मुकाबला न कर सके और उन्हें शांत करनेके लिए पुलिस व फौजकी मदद लेनी पड़ी। इन

लड़नेवालोंके लिए कायरतासे बड़ी कोई बेइज्जती नहीं है। पीछे मुड़ जानेमें निश्चय ही शर्मकी कोई बात नहीं। अगर हम यह महसूस करें कि हिंसाकी लड़ाईके बगैर हम ब्रिटिश सत्ताको नहीं हटा सकते, तो हमें याने कांग्रेसको राष्ट्रसे साफ साफ यह कह देना और उसे उसके लिए तैयार करना चाहिये। इसके बाद जो सारी दुनियांमें हो रहा हैं वही हम भी करें, याने जब जरूरत हो, खामोश रहें और जब मौका हो तब वार करें। अगर यही हमारा ध्येय या हमारी नीति होनी हो, तो कहना चाहिये कि पिछले बेशकीमती सत्रह साल हमने यों ही गवां दिये। लेकिन समझकर भूल सुधार लेनेमे कभी भी कोई बुराई नहीं है। और राष्ट्रके जीवनमें सत्रह साल हैं ही क्या? कांग्रेसवादियोंने यह चेतावनी मिल जानेपर भी अगर अहिंसा और हिंसाके बीच चुनाव नहीं किया, तो उन्हें बड़ी मुश्किलें पेश आयेंगी, यह निश्चित है।

हरिजन सेवक
९ अप्रैल, १९३८

❀

"अहिंसा एक ऐसी शक्ति है, जिसका सहारा बालक, युवा, वृद्ध, स्त्री-पुरुष सब ले सकते है, बशर्ते कि उनकी उस करुणामयमे तथा मनुष्य-मात्रमें सजीव श्रद्धा हो। जब हम अहिंसाको अपना जीवन-सिद्धात बना लें तो वह हमारे सम्पूर्ण जीवनमे व्याप्त होनी चाहिये। यो कभी-कभी उसे पकडने और छोडनेसे लाभ नही हो सकता।"

—गाधीजी

अहिंसापर प्रवचन

[गांधी सेवा संघके डेलांग-सम्मेलनमें गांधीजीने २५ मार्च १९३८को जो प्रवचन दिया था, उसका, संक्षिप्त सार नीचे दिया जा रहा है—]

हमारी टेक

हमारे संघके अध्यक्ष किशोरलाल भाई मुझसे भी अधिक रुग्ण रहते हैं, फिर भी उन्होंने अच्छा लम्बा और विचारपूर्ण भाषण तैयार किया है। हमारे सेवकोंमें एक-दूसरेके विषयमें गलत फहमियाँ हैं और वैमनस्य भी है, हम न एक दूसरेको समझते है और न सहन करते हैं— इत्यादि विषयोंकी चर्चा उन्होंने खूब विस्तारसे की है और पूछा है कि हमारी श्रद्धाका प्रतिबिंब अगर हमारे नित्यके जीवनमें अधिकसे अधिक नहीं पड़ रहा है तो उस श्रद्धाका वस्तुतः क्या कुछ मूल्य है ? क्या हमें वास्तवमें यह प्रतीत होता है कि हम दिन दिन अपने ध्येयकी ओर बढ़ते जा रहे हैं ? हमलोग पारसाल जब हुबलीमें मिले थे तबसे आज क्या हम अधिक अहिंसक हैं ? पहलेकी अपेक्षा हमारी खीझ या क्रोधमें क्या कुछ कमी हुई है ? ऐसे प्रश्न हमें अपने मनसे बारबार पूछने चाहिये। क्योंकि सत्य और अहिंसाका मार्ग खांड़ेकी धारके जैसा है। खूराक ठीक तरहसे ली जाय, तो वह शरीरको पोषण देती है। इसी प्रकार अहिंसाका ठीक तरहसे पालन किया जाय तो वह अहिंसाको पोषण देती है। शरीरकी खुराक तो मर्यादित मात्रामें और अमुक-अमुक समयपर ही ली जा सकती है। किंतु अहिंसाका सेवन तो हमें दिन-रात ज़ारी रखना है। इसमें तृप्ति जैसी कोई वस्तु ही नहीं। मैं एक ध्येयकी प्राप्तिके लिए प्रयत्न कर रहा हूँ यह भान मुझे प्रतिक्षण रखना है और इस ध्येयकी दृष्टिसे मुझे अपने विचार, आचार आदिका परीक्षण करते रहना है।

अहिंसाकी पहली सीढ़ी ही यह है कि हम अपने नित्य जीवनमें, पारस्परिक व्यवहारमें सत्य, नम्रता, सहिष्णुता प्रेम, करुणा आदि गुणोंको विकसित करें। अंग्रेजीमें एक कहावत है कि प्रामाणिकता एक श्रेष्ठ व्यवहार-नीति है। किंतु अहिंसाकी दृष्टिसे यह केवल व्यवहार-नीति नहीं है। व्यवहार-नीति शायद बदल भी जाय, और बदलती ही है। पर अहिंसा तो अविचल सिद्धांत है। जब इर्द-गिर्द हिंसाका दावानल प्रज्ज्वलित हो रहा हो, तब भी इसका पालन करना चाहिये। अहिंसक मनुष्य यदि अहिंसाका पालन करता है तो इसमें कोई पुण्यकी बात नहीं। वस्तुतः वह अहिंसा ही है या क्या है, यह कहना कठिन हो जाता है।

हिंसाके मुकाबले में ही मनुष्य हिंसा और अहिंसाके बीचका भेद समझ सकता है। यह तो तभी सभव है जब हम सतत जागृत रहे, निरंतर अपने ऊपर चौकसी रखें और अविरल प्रयत्न करते रहें।

दंगे

संयुक्तप्रान्तके दंगोंसे मेरे दिलको सख्त चोट पहुंची है। मैंने मौलाना अबुल कलाम आजाद और बोस-बन्धुओंके साथ अहिंसाकी दृष्टिसे इसपर चर्चा की। मुझे ऐसा लगा कि हम अपने ध्येयके नजदीक नहीं जा रहे हैं, बल्कि उससे हट रहे हैं। हरिपुरामें मेरे मनमें यह आशा पैदा हुई कि हमारी ताकत बढ़ती जा रही है और हमारी खामियोंके बावजूद मैं अपने जीवन-कालमें स्वराज देख सकूँगा। मैंने यह सोचा था कि इस साल हम वह शक्ति हासिल कर लेंगे। मगर इलाहाबाद और दूसरी जगहोंमे जो दंगे हुए हैं, उनसे मेरे दिलको सख्त चोट लगी है। हमें पुलिस और फौजकी मदद लेनी पड़ी यह हमारे लिए लज्जाजनक बात हुई।

मान लीजिये कि वाइसराय कांग्रेसके अध्यक्षको मिलनेके लिए बुलाते हैं और उनसे कांग्रेसकी शर्तें पूछते हैं, तो क्या आप ऐसा मानते हैं कि राष्ट्रपति छाती ठोंककर यह कह सकेगें कि कांग्रेस राज्यका सारा प्रबध हाथमें लेनेकी ताकत रखती है और अंग्रेज हमारे देशसे चले जॉय ? क्या हम उनसे यह कह सकते हैं कि हम पुलिस और फौजके बगैर अपना काम चला सकेंगे, राजाओंके साथ, जमीदारोंके साथ, और मुसलमानोंके साथ हम अहद कर सकेंगे ? मुझे लगता है कि हम सत्यपूर्वक यह नहीं कह सकते कि हम इन लोगोंके साथ कोई अहद कर सकेंगे। और फिर भी अगर हमारे अंदर सच्ची अहिंसा हो तो हममें इन चीज़ोंके कहने और करनेकी ताकत होनी चाहिये।

निर्बलका शस्त्र नहीं

इसलिए मैं आपसे और खुद अपनेसे भी यह सवाल पूछता हूं कि हमारी अहिंसा सबलका शस्त्र होनेके बजाय—जैसा कि उसे होना चाहिये—निर्बलका शस्त्र तो नहीं है ? यह सच है कि यह कुछ हदतक निर्बलके हाथमे भी काम दे सकती है और इस तरह इस शस्त्रने हमारे हाथमें काम दिया भी है। पर जब यह हमारी निर्बलता ढँकनेका पर्दा बन जाती है तब यह हमें नामर्द बना देती है। कायरतासे तो बहादुरीके साथ शारीरिक बल काममें लाना हजार दरजे अच्छा है। कायरताकी अपेक्षा लड़ते-लड़ते मर जाना हजार गुना अच्छा है। हम सब मूलतः तो शायद पशु ही होंगे, और मैं यह माननेके लिए तैयार हूँ कि हम धीरे धीरे विकासके क्रमानुसार पशुसे मनुष्य हुए हैं। अतः हम पशुबल लेकर तो अवतीर्ण

हुए ही थे, पर हमारा मानव अवतार इसलिए हुआ कि हमारे अंतरमें जो ईश्वर व सत्य है उसका साक्षात्कार हम कर सकें। यह मनुष्यका विशेष अधिकार है, और यही इसके और पशु-सृष्टिके बीचमें अंतर है। पर ईश्वरका साक्षात्कार करनेका अर्थ यह है कि हम भूतमात्रमें उसे देखें, अर्थात् भूतमात्रके साथ हम ऐक्य साधन करें। यह तो तभी हो सकता है जब हम स्वेच्छापूर्वक शरीर बलका उपयोग त्याग दें और हमारे हृदयमें जो अहिंसा सुप्त रूपसे पड़ी हुई है उसे विकसित करें। इस वस्तुका उद्भव तो सच्चे बलसे ही होगा। क्या हमारे अंदर इस प्रकारकी बलवान अहिंसा है? यह तो एक अशक्य आदर्श है यह कहकर इसे त्याग देने और उसके स्थानपर हिंसा पद्धति स्वीकार करनेकी तो हमें छूट है ही। पर यह चुनाव किये बिना हमारा काम चलनेका नहीं।

और अगर यह बलवानका शस्त्र है तो इससे निश्चय ही कुछ परिणाम फलित होंगे। हम लोगोंमें दंगोंका मुकाबला करने तथा हिन्दू-मुसलमानोंमें जो वैमनस्य बढ़ता जाता है, उसे रोकनेकी शक्ति होनी चाहिये। आप पूछेंगे कि हमें अहिंसाके उपासकोंके तरीकेसे इन दंगोंको शांत करनेके लिए क्या करना चाहिये था? मैं कहूंगा कि दंगा शांत करनेका काम सबसे पहले कांग्रेस कमेटीका था। इस किस्मके संकटके अवसरपर सेवा करनेवाले हजारों स्वयंसेवकोंके लिए एक प्रतिज्ञा तैयार की थी, जिसमें यह शर्त रक्खी थी कि स्वयंसेवकको मन, वचन, कर्मसे अहिंसक होना चाहिये। हकीम साहब अजमल खाँ उस वक्त कांग्रेसके प्रेसीडेंट थे। उन्होंने खिलाफतके स्वयंसेवकोंसे भी यह प्रतिज्ञा लेनेके लिए कहा। कुछ मौलाना कहने लगे कि स्वयंसेवक वचन और कर्ममें अहिंसक रहें यह तो ठीक है पर उनसे यह उम्मीद रखना, कि उनके दिलमें भी अहिंसा ही रहे, यह तो उन्हें गुलाम बनाने जैसी बात है। उन्होंने कहा कि मैं लोगोंके दिलका मालिक बनना चाहता हूँ। मैंने कहा, 'नहीं, मालिक किसी एक व्यक्तिको नहीं, बल्कि अहिंसाको बनाता हूँ।' अंतमें उन्होंने वह प्रतिज्ञा स्वीकार कर ली। पर यह प्रतिज्ञा १७ साल पहिले ली गयी थी, फिर भी इस अहिंसासे जो अमोघ बल पैदा होना चाहिये वह हमारे अंदर पैदा नहीं हुआ। इसका कारण यह है कि हमने ऐसा अहिंसक स्वयंसेवक दल तैयार करनेका कष्ट नहीं उठाया, मेहनत नहीं की। अगर हमसे यह न हो सके, इस प्रतिज्ञाका पालन हम न कर सकें, तो इस सारी चीजपर फिरसे विचार करना अच्छा होगा। दुःखका विषय यह है कि यह प्रतिज्ञा तो अब भी कायम है, पर यह कागजपर ही रह गयी है। इस प्रतिज्ञामें जिस प्रकारकी सेवाकी कल्पना की गई है, वह अगर हमारे पास काफी होती तो हमारे देशमें आज इस किस्मके दंगे न होते। और अगर होते भी, तो इन अहिंसक सैनिकोंने उन्हें शांत करनेके प्रयत्नमें अपने प्राणोंकी आहुति चढ़ा दी होती। हमने तो एक ही आदमीके प्राणार्पणकी बात सुनी है। मैं उसके प्राणार्पणकी प्रशंसा

करता हूं। किंतु इस प्रकार अपने प्राणों* की आहुति देनेके लिए उनके स्वयसेवक सामने आये होते तो हर्षसे मेरी छाती फूल जाती। आपको क्या ऐसा मालूम होता है कि यह खाली स्वप्न है? आप यह मानते है कि ऐसी अहिंसक सेनाके द्वारा भी हम दंगोंको शांत नहीं कर सकते? आपको सचमुच ऐसा मालूम होता हो, शांत-चित्त और तटस्थ वृत्तिसे विचार करनेपर सचमुच आप इस निर्णयपर पहुँचते हों, तो आपको इस निर्णयपर भी आना चाहिये कि स्वराज अहिंसाके द्वारा प्राप्त होनेका नहीं।

हरिजन सेवक
९ अप्रैल, १९३८

---

* इलाहाबादके श्री पशुपतिनाथ गुप्तसे आशय है। श्री गुप्तके स्वर्गवासकी खबरका खंडन हुआ है। उन्हें काफी सख्त चोट आयी थी, पर उनकी हालत अब सुधर रही है।

❀

"यह समझना एक जबर्दस्त भूल है कि अहिसा केवल व्यक्तियोके लिए ही लाभदायक है, जन-समूहके लिए नही। जितना वह व्यक्तिके लिए धर्म है उतना ही वह राष्ट्रोके लिए भी धर्म है।"

"उदारता तो अहिसाका अवयव है। उससे रहित अहिसा अपङ्ग है, इसलिए वह चल ही नही सकती।"

—गाधीजी

सैनिक बल बनाम नैतिक बल

अक्सर हम यह भूल जाते हैं कि कांग्रेसका समर्थन करनेवाला केवल नैतिक बल है। शासन करनेवाली सत्ताके पास सैनिक बल रहता है, हालांकि वह अक्सर अपने सैनिक बलमें नैतिक बलको मिला देती है। कांग्रेसने जबसे सात प्रांतोंमें पदग्रहण किया है, तबसे इन दोनों बलोंका आवश्यक अंतर सामने आ गया है। इस पद-ग्रहणका अर्थ या तो और भी महान प्रतिष्ठाकी ओर कदम बढ़ाना है, या फिर प्रतिष्ठासे बिलकुल हाथ धो बैठना है। अपनी प्रतिष्ठाको यदि हमें बिलकुल नहीं गवां बैठना है, तो मन्त्रियों और धारासभाके सदस्योंको अपने व्यक्तिगत और सार्वजनिक आचरणके प्रति जागरूक रहना ही होगा। उनकी हरेक चीज संदेहसे परे हो। वे कोई ऐसा काम न करें, जिससे खुद उन्हें या उनके संबंधियों या मित्रोंको कोई जाती तौरसे फायदा पहुंचता हो। अगर वे अपने संबंधियों या मित्रोंकी किसी सरकारी पदपर नियुक्ति करें, तो उसकी वजह यही होनी चाहिये कि वह उस पदके उम्मीदवारोंमें सबसे अधिक योग्य है, और सरकार उन्हें जो वेतन देती है उससे कहीं ज्यादा पानेकी उसमें योग्यता है। कांग्रेसी मंत्रियों और धारासभाके सदस्योंको बिना किसी डर या दबावके अपना फर्ज अदा करना चाहिए। उन्हें हमेशा अपनी सीटों या पदोंसे हाथ धो बैठनेका खतरा उठानेके लिए तैयार रहना चाहिए। अगर इन पदों और धारासभाओंकी सदस्यतामें कांग्रेसकी प्रतिष्ठा और शक्ति बढानेकी ताकत नहीं है,तो उनका कुछ भी मूल्य नहीं। और चूंकि ये दोनों चीजें सार्वजनिक और व्यक्तिगत आचरणपर पूरी तरहसे निर्भर करती हैं, इसलिये किसी भी प्रकारके नैतिक पतनके मानी हैं, कांग्रेसको धक्का पहुंचाना। अहिंसाका यह आवश्यक फलितार्थ है। अगर कांग्रेसकी अहिंसा केवल इसी हदतक हो कि अंग्रेज अधिकारियों और उनके मातहतोंको शारीरिक चोट न पहुँचायी जाय, तो ऐसी अहिंसासे कभी आजादी हासिल नहीं हो सकती। आखिरी तपिशमें यह अहिंसा निश्चय ही बदतर हालतको पहुँच जायगी। सचमुच ऐसी अहिंसाको हम आखिरी तावपर पहुँचनेसे बहुत पहले ही, सरीहन हानिकर नहीं तो, निकम्मी तो पायेंगे ही।

जिन्होंने कांग्रेसकी अहिंसाको उन संकुचित अर्थोंमें लिया है, वह जब कहते हैं कि यह तो टूटी हुई रीढ़ है तो उनकी इस दलीलमें काफी बल है।

दूसरी तरफ अगर अहिंसा, उसमेंसे निकलनेवाले सब अर्थों सहित, कांग्रेसकी नीति है, तो हरेक कांग्रेसीको खुद अपना परीक्षण करना चाहिये। उसे कार्यसमितिकी हिदायतोंका इन्तजार नहीं करना चाहिये। आखिर कार्यसमिति

जनताके विचारोंको जहांतक समझती है, वहींतक तो काम कर सकती है। और अहिंसा कोई ऐसा गुण तो है नहीं जो गढ़ा जा सकता हो। यह तो एक अंदरसे बढ़नेवाली चीज है, जिसका आधार आत्यंतिक व्यक्तिगत प्रयत्न है। मुझे कुछ ऐसे पत्र मिले हैं, जिनके लेखकोंने अपना नाम दंगे या ऐसी ही मौकोंपर कुर्बान होनेवालोंमें दर्ज कर लेनेको लिखा है। इन पत्र लेखकोंको मैं यह सूचित करना चाहता हूं कि वे अपने आप ही अपने स्थानीय जत्थोंमेंसे अपने साथी चुन लें और मेरी हिदायतोंके मुताबिक तालीम लेना शुरू कर दें। वे अपने आपको सिर्फ संकटपूर्ण आवश्यकताओंके लिए ही तैयार करनेमें यह छूट न रखें, बल्कि अपने दैनिक जीवनके प्रत्येक क्षेत्र-व्यक्तिगत, घरेलू, सामाजिक, आर्थिक, राजनैतिक और धार्मिक सबके लिए तैयारी रखें। सिर्फ उसी हालतमें वे अपनेको अपने ही मुहल्ले या बस्तीमें जरूरत व संकटके वक्त काम कर सकनेके लिए काफीसे ज्यादा तैयार पायेंगे। अप्रत्यक्ष रूपसे वे भले ही दूरकी सोचें, वैसे उन्हें अपने कार्यक्षेत्रसे सैकड़ों मील दूर होनेवाली घटनाओंपर प्रभाव डालनेका ख्याल नहीं करना चाहिये। यह योग्यता उनमें अपने आप आ जायगी अगर वे शुरूमें सही तौर पर कार्यारम्भ करें।

हरिजन सेवक
२३ अप्रैल, १९३८

❀

"अहिंसा डरपोकका शस्त्र नही है। वह तो परम पुरुषार्थ है, वीरोका धर्म है। सत्याग्रही बनना है तो आपका अज्ञान, आलस्य सब दूर हो जाना चाहिये। सतत जागृति आप लोगोमे आनी चाहिये। तन्द्रा जैसी चीज ही नही रहनी चाहिये। तभी अहिंसा आनेके बाद आपकी वाणीसे, आपके आचारसे, व्यवहारसे अमृत झरने लगेगा।"

—गाधीजी

अहिंसाका अर्थ

आजकल गांधीजी शायद ही कहीं मानपत्र स्वीकार करते हैं, और किसी सरकारी या अर्द्धसरकारी कालेजका मानपत्र लेना तो कदाचित् ही उन्होंने स्वीकार किया है। लेकिन स्वास्थ्यकी इस गिरी हुई हालतमें भी पेशावरके इस्लामिया कालेज और एडवर्ड्स कालेजके मानपत्र सीमाप्रान्तकी यात्रामें उन्हें स्वीकार करने ही पड़े, इंकार करना कठिन हो गया। पहले मानपत्रमें एक दो बातें स्वेच्छापूर्वक कुछ ऐसी कही गयीं थीं कि जिनके कारण गाँधीजीको मानपत्रका जवाब देना आसान हो गया। इस मानपत्रमें कहा गया था कि—"आपने हमारे सबसे बड़े आदमी-खाँ अब्दुल-गफ्फ़ारको प्रेरणा दी है। आपकी प्रेरणा और रहनुमाईसे वे हमारे सूबेके लड़ते-झगड़ते रहनेवाले लोगोंमेंसे एक नियंत्रित दल संगठित करनेमें कामयाब हुए हैं।" और 'आप इस आजादीकी लड़ाईको ऊँचीसे ऊँची अखलाकी सतहपर ले गये हैं। आपने अहिंसाके उसूलके जरिये दुनियाके दलित और पीड़ित राष्ट्रोंकी लड़ाईके तौर-तरीकेमें एक क्रान्ति पैदा कर दी है, और ऐसे राष्ट्रोंके लिए अपनी सच्ची आत्माका साक्षात्कार करनेका आश्चर्य-जनक तरीकेसे दरवाजा खोल दिया है।" इस मानपत्रमें हिन्दू-मुस्लिम एकताके सवालका भी जिक्र किया गया था, साथ ही, यह इच्छा भी प्रकट की गयी थी कि गांधीजीको अपने शांति कायम करनेके काममें सफलता मिले।

इसका जवाब देते हुए गांधीजीने कहा—"यह अच्छा हुआ कि आपने हिन्दू-मुस्लिम एकताके सवालका जिक्र किया है। आपसे मैं कहूँगा कि इस महान कार्यको आगे बढ़ानेके लिए आप लोग क्या क्या कर सकते है। इसमें शक नहीं कि यह काम खास करके आपके नौजवानोंका है। हम लोग तो अब बुड्ढे हो चले और मौतके किनारेपर बैठे हैं। इसलिए वह बोझा अब आप ही लोगोंको उठाना है। यह महान उद्देश्य किस तरह पूरा हो सकता है यह आपने खुद ही अपने मानपत्रमें अहिंसाकी और खाँ साहबकी तारीफ़ करके बता दिया है। मुझे यह पता नहीं कि आपने यह तारीफ समझ-बूझकर की है या नहीं और आपने जो कहा है उसका ठीक-ठीक मतलब आप समझते हैं या नहीं। मुझे आशा है कि आपने जो कहा है उसका मतलब आप समझते हैं और इन शब्दोंको आपने तोल-तोल कर ही रखा होगा। अगर ऐसी बात है तो मैं आपको एक कदम आगे ले जाना चाहता हूँ। एक उर्दू अखबारने लिखा है कि मैं यहां सरहदके पठानोंको नामर्द बनानेके लिए आया हूँ। सच बात तो यह है कि खाँ साहबने मुझे यहां इसलिए बुलाया है कि पठान लोग मेरी ही जबानसे अहिंसाका पैगाम सुनें, और मैं खुद अपनी आखोंसे यह देख सकूँ कि पठानोंने अहिंसाको किस हदतक अप-नाया है। इसका मतलब यह है कि जो डर उस उर्दू अखबारने जाहिर किया है

आंदोलनके विषयमें मेरा भाषण सुननेके लिए यूरोपियन मित्रोंकी एक सभा की गयी थी। आपने जैसा कहा है ठीक इसी तरहकी बात उस सभाके अध्यक्षने कही थी। उन्होंने कहा था 'पैसिव रेजिस्टन्स' तो निर्बलका हथियार है। मुझे यह बात नागवार मालूम हुई, और मैंने फौरन उस वक्ताकी गलती ठीक की। यह अजीब सी बात है और सुनकर ताज्जुब होता है कि इतने बरसोंसे हिंदुस्तानमें सत्याग्रहकी लड़ाई चल रही है, और आप वही गलती कर रहे हैं। हम भले ही निर्बल और पीड़ित हों, पर सत्याग्रह निर्बलका शस्त्र नहीं है। यह तो बलवानसे बलवान और बहादुरसे बहादुरका हथियार है। हिंसा निर्बल और पीड़ितका शस्त्र हो सकता है। अहिंसासे अपरिचित होनेके कारण उसके लिए कोई दूसरा रास्ता ही नहीं। मगर 'पैसिव रेजिस्टन्स'को जो निर्बलका हथियार कहा गया है यह बात सच है। इसीलिए यह साफ साफ समझानेके लिए कि हिंदुस्तानियोंका आंदोलन 'पैसिव रेजिस्टन्स' से एक जुदी चीज है, दक्षिण अफ्रीकामें 'सत्याग्रह' शब्दका प्रयोग किया गया था।

"'पैसिव रेजिस्टन्स' निषेधात्मक चीज है, इसमें प्रेमके सक्रिय तत्त्वका जरा भी अंश नहीं होता। जबकि सत्याग्रह प्रेमके सक्रिय तत्वपर चलता है। यह तत्त्व कहता है कि 'जो तुम्हारे साथ बुरा करे उनपर तुम प्रेम करो। मित्रोंके प्रति प्रेम रखना स्वाभाविक है, पर मैं आपसे कहता हूँ कि अपने शत्रुओंके प्रति प्रेम रखो।' सत्याग्रह यदि निर्बलका शस्त्र हो, तो कहा जा सकता है कि मैं खाॅ साहबको धोखा दे रहा हूँ, क्योंकि किसी भी पठानने यह कभी कबूल नहीं किया कि 'मैं निर्बल हूँ।' खाॅ साहबने ही मुझसे कहा था कि "मैंने अपनी इच्छासे लाठी और बंदूकका त्याग किया है। मेरे दिलमें उस वक्त जितनी ताकत और बहादुरी मालूम हुई उतनी पहले कभी मालूम नहीं हुई थी। यह अगर शूरवीरोंका श्रेष्ठ शस्त्र न होता तो इसे पठान जैसी बहादुर कौमके आगे रखनेमें मुझे जरूर संकोच होता। इस शस्त्रके जरिये 'खाॅ साहब बहादुर अफ्रीदियों और दूसरे जिरगावालोंके साथ भाईचारा बढ़ाने और उनसे हिंसा छुड़वानेकी हिम्मत कर सकते है।

मुझे खुशी हुई कि आपकी भूल सुधारनेका मुझे यह मौका मिला। क्योंकि आप जिस क्षण मेरी यह बात समझ जायेंगे, उसी क्षण जिस ध्येयके लिए खाॅ साहब और मैं काम कर रहे हैं उस ध्येयकी स्वयंसेनामें काम करनेके लिए आप दाखिल हो जायेंगे। मैं स्वीकार करता हूं कि इस बातका आपके गले उतारना मुश्किल है। पिछले पचास सालसे मैं ज्ञानपूर्वक इसपर अमल करता चला आ रहा हूं, तो भी मुझे यह मुश्किल मालूम होता है। पर इसके लिए ऊँचेसे ऊँचे प्रकारकी पवित्रता जरूरी है। और अटूट धीरज—घासके तिनकेसे समुद्र उलीचने जैसा धीरज भी इसके लिए जरूरी है।

हरिजन सेवक

२१ मई, १९३८

शान्ति-सेनाकी शर्तें

कुछ समय पहिले मैंने एक ऐसे स्वंयसेवकोंकी सेना बनानेकी तजवीज रखी थी, जो दंगों खासकर साम्प्रदायिक दंगोंको, शान्त करनेमें अपने प्राणों तककी बाजी लगा दे। विचार यह था कि यह सेना पुलीसका ही नहीं, बल्कि फौज तकका स्थान ले ले। यह बात बड़ी महत्त्वाकांक्षापूर्ण मालूम पड़ती है। शायद यह असंभव भी साबित हो। फिर भी, अगर कांग्रेसको अपनी अहिंसात्मक लड़ाईमें कामयाबी हासिल करनी हो तो उसे ऐसी परिस्थितियोंका शांतिपूर्वक मुकाबला करनेकी अपनी शक्ति बढ़ानी ही चाहिए। साम्प्रदायिक दंगे राजनीतिक दिमागवालोंके द्वारा खड़े किये जाते हैं। जो लोग इनमें भाग लेते हैं उनमेंसे ज्यादातर उन्हींके प्रभावमें रहते हैं। इन भद्दे साम्प्रदायिक दगोंको शान्तिपूर्वक रोकनेके उपाय कांग्रेसियोंकी बुद्धिसे परेकी बात निश्चय ही नहीं होनी चाहिए। यह मैं बिना इस बातका कोई ख्याल किये कहता हूं कि कोई साम्प्रदायिक समझौता हो या न हो यह नहीं हो सकता कि कोई दल हिंसात्मक साधनोंसे जबरदस्ती समझौता कराये; ऐसा समझौता संभव भी हो, तो शायद उसकी उस कागज जितनी भी कीमत नहीं होगी, जिसपर कि वह लिखा जाय। क्योंकि ऐसे समझौतेके पीछे आपसकी समझदारीका कोई बल नहीं होगा। नतीजा यह होगा कि समझौता हो जानेके बाद भी यह आशा करना बहुत बड़ी भूल होगी कि कोई साम्प्रदायिक दंगा कभी होगा ही नहीं।

इसलिए हमें देखना चाहिए कि जिस शांति-सेनाकी हमने कल्पना की है उसके सदस्योंकी क्या योग्यताये होनी चाहिये।

(१) शांति-सेनाका सदस्य पुरुष हो या स्त्री, अहिंसामें उसका जीवित विश्वास होना चाहिए। यह तभी संभव है, जब कि ईश्वरमें उसका जीवित विश्वास हो। अहिंसक व्यक्ति तो ईश्वरकी कृपा और शक्तिके बगैर कुछ कर ही नहीं सकता। इसके बिना उसमें क्रोध, भय और बदलेकी भावना रखते हुए मरनेका साहस नहीं होगा। ऐसा साहस तो इस श्रद्धासे ही आता है कि सबके हृदयोंमें ईश्वरका निवास है, और ईश्वरकी उपस्थितिमें किसी भयकी जरूरत नहीं। ईश्वरकी सर्वव्यापकताके ज्ञानका यह भी अर्थ है कि जिन्हें विरोधी या गुण्डे कहा जा सकता हो उनके प्राणोंका भी हम ख्याल रखे। यह इरादतन दस्तन्दाजी उस समय मनुष्यके क्रोधको शांत करनेका एक तरीका है, जबकि उसके अंदरका पशु-भाव उसपर हावी हो।

अहिंसा और ब्रह्मचर्य

एक कांग्रेस-नेताने बातचीतके सिलसिलेमें उस दिन मुझसे कहा—"यह क्या बात है कि कांग्रेस अब नैतिकताकी दृष्टिसे वैसी नहीं रही जैसी कि वह १९२० से १९२५ तक थी? तबसे तो इसकी बहुत नैतिक अवनति हो गयी है। अब तो इसके नब्बे फीसदी सदस्य कांग्रेसके अनुशासनका पालन नहीं करते। क्या आप इस हालतको सुधारनेके लिए कुछ नहीं कर सकते?"

यह प्रश्न उपयुक्त और सामयिक है। मैं यह कहकर अपनी जिम्मेदारीसे हट नहीं सकता कि अब मैं कांग्रेसी नहीं हूं। मैं तो और अच्छी तरह इसकी सेवा करनेके लिए ही इससे बाहर हुआ हूं। कांग्रेसकी नीतिपर अब भी मैं अपना प्रभाव डाल रहा हूं, यह मै जानता हूं। और १९२० में कांग्रेसका जो विधान बना था, उसे बनानेवालेकी हैसियतसे उस गिरावटके लिए मुझे अपनेको जिम्मेदार मानना ही चाहिये जिससे कि बचा जा सकता है।

कांग्रेसने आरंभिक कठिनाइयोंके बीच सन् १९२० में काम शुरू किया था। सत्य और अहिंसापर बतौर ध्येयके बहुत कम लोग विश्वास करते थे। अधिकांश सदस्योंने इन्हें नीतिके तौरपर ही स्वीकार किया। वह अनिवार्य था। मैंने आशा की थी कि नयी नीतिसे कांग्रेसको काम करते हुए देखकर उनमेंसे अनेक इन्हें अपने ध्येयके रूपमें स्वीकार कर लेंगे। लेकिन ऐसा कुछ ही लोगोंने किया, बहुतोंने नहीं। शुरूआतमें तो सबसे बड़े नेताओंमें भारी परिवर्तन देखनेमें आया। स्वर्गीय पण्डित मोतीलाल नेहरू और देशबन्धु दासके, जो पत्र 'यंग इण्डिया'में उद्धृत किये गये थे, उन्हें पाठक भूले नहीं होंगे। संयम, सादगी और अपने आपको कुर्बान कर देनेके जीवनमें उन्हें एक नये आनंद और एक नयी आशाका अनुभव हुआ था। अलीबन्धु तो करीब करीब फकीर ही बन गये थे। जगह-जगह दौरा करते हुए, इन भाइयोंमें होनेवाली तबदीलीको मैं आनंदके साथ देखता था। और जो बात इन चार नेताओंके विषयमें सच है वही और भी ऐसे बहुतोंके बारेमें कही जा सकती है, जिनके कि नाम मैं गिना सकता हूँ। इन नेताओंके उत्साहका आम लोगोंपर भी असर पड़ा।

लेकिन यह प्रत्यक्ष परिवर्त्तन 'एक सालमें स्वराज'के आकर्षणकी वजहसे था। इसकी पूर्तिके लिए मैंने जो शर्तें लगायी थीं, उनपर किसीने ध्यान नहीं दिया। ख्वाजा अब्दुलमजीद साहबने तो यहांतक कह डाला कि सत्याग्रह सेनाके, जैसी कि कांग्रेस उस समय बन गयी थी और अभी भी है (यदि कांग्रेसवादी सत्याग्रहके अर्थको महसूस करें), सेनापतिकी हैसियतसे मुझे इस बातका निश्चय कर लेना

चाहिए था कि मैं जो शर्तें लगा रहा हूं वे ऐसी हैं जो पूरी हो जायँगी। शायद उनका कहना ठीक ही था। सिर्फ वह ज्ञानचक्षु मेरे पास नहीं था। सामूहिक रूपमें और राजनीतिक उद्देश्यसे अहिंसाका उपयोग खुद मेरे लिए भी एक प्रयोग ही था। इसलिए मैं गर्वपूर्वक कोई दावा नहीं कर सकता था। मेरी शर्तोंका यह उद्देश्य था कि जिससे लोगोंकी शक्तिका अंदाज लग सके। वे पूरी हो भी सकती थीं और नहीं भी हो सकती थीं। गलतियों, या गलत अंदाजोंकी तो सदा ही संभावना थी। जो भी हो, जब स्वराजकी लड़ाई लंबी हो गयी और खिलाफतके सवालमें जान न रही तो लोगोंका उत्साह मन्द पड़ने लगा, अहिंसामें नीतिके तौरपर भी विश्वास ढीला पड़ने लगा और असत्यका प्रवेश हो गया। जिन लोगोंका इन दोनों गुणोंमें या खद्दरकी शर्तमें कोई विश्वास नहीं था, वे इसमें घुस आये, और बहुतोंने तो खुलेआम भी कांग्रेस विधानकी अवहेलना करना शुरू कर दिया।

यह बुराई बराबर बढ़ती ही गयी। वर्किंग कमेटी कांग्रेसको इस बुराईसे मुक्त करनेका कुछ प्रयत्न कर रही है, लेकिन दृढ़तापूर्वक नहीं, और न कांग्रेसके सदस्योंकी संख्या कम हो जानेके खतरेको उठानेके लिए तैयार हो सकी है। मैं खुद तो संख्याके बजाय गुणमें ही विश्वास करता हूं।

लेकिन अहिंसाकी योजनामें जबर्दस्तीका कोई काम नहीं है। उसमें तो इसी बातमें निर्भर रहना पड़ता है कि लोगोंकी बुद्धि और हृदयतक—उसमें भी बुद्धिकी अपेक्षा हृदयपर ही ज्यादा—पहुंचनेकी क्षमता प्राप्त की जाय।

इसका यह अभिप्राय हुआ कि सत्याग्रह-सेनापतिके शब्दमें ताकत होनी चाहिये—वह ताकत नहीं जो असीमित अस्त्र-शस्त्रोंसे प्राप्त होती है, बल्कि वह जीवनकी शुद्धता, दृढ जागरूकता और सतत आचरणसे प्राप्त होती है। यह ब्रह्मचर्यका पालन किये बगैर असंभव है। इसका इतना संपूर्ण होना आवश्यक है जितना कि मनुष्यके लिए संभव है। ब्रह्मचर्यका अर्थ यहां खाली दैहिक आत्म-संयम या निग्रह ही नहीं है। इसका तो इससे कहीं अधिक अर्थ है। इसका मतलब है सभी इंद्रियोंपर पूर्ण नियमन। इस प्रकार अशुद्ध विचार भी ब्रह्मचर्यका भंग है और यही हाल क्रोधका है। सारी शक्ति उस वीर्य-शक्तिकी रक्षा और ऊर्ध्वगतिसे प्राप्त होती हैं जिससे कि जीवनका निर्माण होता है। अगर इस वीर्य-शक्तिका, नष्ट होने देनेके बजाय, संचय किया जाय, तो यह सर्वोत्तम सृजन-शक्तिके रूपमें परिणित हो जाती हैं।

बुरे या अस्तव्यस्त, अव्यवस्थित, अवांछनीय विचारोंसे भी इस शक्तिका बराबर और अज्ञातरूपसे भी क्षय होता रहता है। और चूंकि विचार ही सारी वाणी और क्रियाओंका मूल होता है, इसलिए वे भी इसका अनुसरण करती है। इसलिए पूर्णतः नियंत्रित विचार खुद ही सर्वोच्च प्रकारकी शक्ति है और स्वतः क्रिया-

शील बन सकता है। मूक रूपमें की जानेवाली हार्दिक प्रार्थनाका मुझे यही अथ मालूम होता है। अगर मनुष्य ईश्वरकी मूर्तिका उपासक है, तो उसे अपने मर्यादित क्षेत्रके अंदर किसी बातकी इच्छा भर करनेकी देर है, जैसा वह चाहता है, वैसा ही वह बन जाता है। जिस तरह चूनेवाले नलमें भाफ रखनेसे कोई शक्ति पैदा नहीं होती उसी प्रकार जो अपनी शक्तिका किसी भी रूपमें क्षय होने देता है उसमें इस शक्तिका होना असंभव है। प्रजोत्पत्तिके निश्चित उद्देश्यसे न किया जानेवाला काम-संबंध इस शक्ति-क्षयका एक बहुत बड़ा नमूना है, इसलिए उसकी खास तौरसे जो निंदा की गयी है, वह ठीक ही है। लेकिन जिसे अहिंसात्मक कार्यके लिए मनुष्य-जातिके विशाल समूहोंको संगठित करना है, उसे तो इन्द्रियोंके जिस पूर्ण निग्रहका मैंने ऊपर वर्णन किया है उसको प्रयत्नपूर्वक प्राप्त करना ही चाहिये।

ईश्वरकी कृपाके बगैर यह सम्पूर्ण इन्द्रिय-निग्रह संभव नही है। गीताके दूसरे अध्यायमें एक श्लोक है—

> विषया विनिवर्त्तन्ते निराहारस्य देहिनः,
> रसवर्जं रसोप्यस्य परं दृष्ट्वानिवर्तते।"

अर्थात्, जबतक उपवास किये जाते हैं, तबतक इन्द्रियां विषयोंकी ओर नहीं दौड़तीं; पर अकेले उपवाससे रस सूख नहीं जाते। उपवास छोड़ते ही वे और बढ भी सकते हैं। इसको वशमें करनेके लिए तो ईश्वरका प्रसाद आवश्यक है। यह नियमन यान्त्रिक या अस्थायी नहीं है। एक बार प्राप्त हो जानेके बाद यह कभी नष्ट नहीं होता। उस हालतमें वीर्य-शक्ति इस तरह सुरक्षित रहती है कि अगणित रास्तोंमेसे किसीमें होकर उसके निकलनेकी संभावना ही नहीं रहती।

कहा गया है कि ऐसा ब्रह्मचर्य यदि किसी तरह प्राप्त किया जा सकता हो तो वह कंदराओंमें रहनेवाले ही कर सकते होंगे। ब्रह्मचारीको तो कहते हैं, स्त्रियोंका स्पर्श तो क्या, उनका दर्शन भी कभी न करना चाहिये। निस्संदेह, किसी ब्रह्मचारीको कामवासनासे किसी स्त्रीको न तो छूना चाहिये, न देखना चाहिये, और न उसके विषयमें कुछ कहना या सोचना ही चाहिये। लेकिन ब्रह्मचर्य विषयक पुस्तकोंमें हमे यह जो वर्णन मिलता है उसमें इसके महत्वपूर्ण अन्यय 'कामवासना पूर्वक' का उल्लेख नहीं मिलता। इस छूटकी वजह यह मालूम पड़ती है कि ऐसे मामलोंमें मनुष्य निष्पक्ष रूपसे निर्णय नहीं कर सकता और इसलिए यह नहीं कहा जा सकता कि कब उसपर ऐसे सम्पर्कका असर पड़ा और कब नहीं। काम-विकार अकसर अनजाने ही उत्पन्न हो जाते हैं। इसलिए दुनियामें आजादीसे सबके साथ हिलने-मिलनेपर ब्रह्मचर्यका पालन यद्यपि कठिन है, लेकिन अगर संसारसे नाता तोड़ लेनेपर ही यह प्राप्त हो सकता हो तो उसका कोई विशेप मूल्य नहीं है।

जैसे भी हो, मैंने तो तीस वर्षसे भी अधिक समयसे प्रवृत्तियोंके बीच रहते हुए ब्रह्मचर्यका काफी सफलताके साथ पालन किया है। ब्रह्मचर्यका जीवन बितानेका निश्चय कर लेनेके बाद, अपनी पत्नीके साथ व्यवहारको छोड़कर, मेरे बाह्य आचरणमें कोई अंतर नहीं पड़ा। दक्षिण अफ्रीकामें भारतीयोंके बीच मुझे जो काम करना पड़ा, उसमें मै स्त्रियोंके साथ आजादीके साथ मिलता-जुलता था। ट्रांसवाल और नेटालमें शायद ही कोई ऐसी भारतीय स्त्री हो जिसे मैं न जानता होऊं। मेरे लिए तो वे इतनी सारी बहनें और बेटियाँ ही थीं। मेरा ब्रह्मचर्य पुस्तकीय नहीं है। मैंने तो अपने तथा उन लोगोंके लिए जो कि मेरे कहनेपर इस प्रयोगमे शामिल हुए है, अपने ही नियम बनाये हैं। और अगर मैंने इसके लिए निर्दिष्ट निषेधोंका अनुसरण नहीं किया है, तो धार्मिक साहित्यकर्तामें स्त्रियोंको जो सारी बुराई और प्रलोभनका द्वार बताया गया है उसे मै इतना भी नहीं मानता। मैं तो ऐसा मानता हू कि मुझमें जो भी अच्छाई हो वह सब मेरी माँकी बदौलत है, इसलिए स्त्रियोंको मैंने कभी इस तरह नहीं देखा कि कामवासनाकी तृप्तिके लिए ही ये बनायी गयी है, बल्कि हमेशा उस श्रद्धाके साथ देखा है जो कि मै अपनी माताके प्रति रखता हूं। पुरुष ही प्रलोभन देनेवाला और आक्रमण करनेवाला है। स्त्रीके स्पर्शसे वह अपवित्र नहीं होता, बल्कि अक्सर वह खुद ही उसका स्पर्श करने लायक पवित्र नहीं होता। लेकिन हालमें मेरे मनमें यह संदेह जरूर उठा है कि स्त्री या पुरुषके सम्पर्कमें आनेके लिए ब्रह्मचारी या ब्रह्मचारिणीको किस तरहकी मर्यादाओंका पालन करना चाहिये। मैंने जो मर्यादाएँ रखी हैं वे मुझे मर्यादा नहीं मालूम पड़ती। लेकिन वे क्या होनी चाहिये, यह मैं नहीं जानता। मैं तो प्रयोग कर रहा हूं। इस बातका मैने कभी दावा नहीं किया कि मैं अपनी परिभाषाके अनुसार पूरा ब्रह्मचारी बन गया हूं। अब भी मैं अपने विचारोंपर उतना नियंत्रण नहीं रख सका हूं जितने नियन्त्रणकी अपनी अहिंसाके शोधोंके लिए मुझे आवश्यकता है। लेकिन मेरी अहिंसा ऐसी हो जिसका दूसरोंपर असर पड़े और वह उनमें फैले, तो मुझे अपने विचारोंपर और अधिक नियंत्रण करना ही चाहिये। इस लेखके प्रारंभिक वाक्यमें नेतृत्वकी जिस प्रत्यक्ष असफलताका उल्लेख किया गया है, उसका कारण शायद कहीं न कहीं किसी कमीका रह जाना ही है।

अहिंसामें मेरा विश्वास हमेशाकी तरह दृढ़ है। मुझे इस बातका पूरा विश्वास है कि इससे न केवल हमारे देशकी ही सारी आवश्यकताओंकी पूर्ति होनी चाहिये, बल्कि अगर ठीक तरहसे इसका पालन किया जाय तो यह उस खून-खराबीको भी रोक सकती है जो हिन्दुस्तानके बाहर हो रही है और सारे पश्चिमी ससारमें जिसके व्याप्त हो जानेका अंदेशा है।

मेरी आकांक्षा तो मर्यादित है। परमेश्वरने मुझे इतनी शक्ति नहीं दी

है जो अहिंसाके पथपर सारी दुनियाकी रहनुमाई करूं। लेकिन मैंने यह कल्पना जरूर की है कि हिन्दुस्तानकी अनेक खराबियोंके निवारणार्थ अहिंसाका प्रयोग करनेके लिए उसने मुझे अपना औजार बनाया है। इस दिशामें अभीतक जो प्रगति हो चुकी है वह महान है; लेकिन अभी बहुत कुछ करना बाकी है। इतने-पर भी मुझे ऐसा लगता है कि इसके लिए आम तौरपर कांग्रेसवादियोंकी जो सहानुभूति आवश्यक है उसे उकसानेकी शक्ति मुझमें नहीं रही है। जो अपने औजारोंको ही बुरा बतलाता रहता है वह कोई अच्छा बढ़ई नहीं हैं। यह तो 'नाच न आवे, आंगन टेढ़ा' की मसल होगी। इसी तरह बिगड़े हुए कामोंके लिए अपने आदमियोंको दोष देनेवाला सेनापति भी अच्छा नहीं कहा जा सकता। पर मैं यह जानता हूं कि मै बुरा सेनापति नहीं हूं। अपनी मर्यादाओंको जाननेकी जितनी बुद्धि मुझमें मौजूद है, अगर कभी उसका मेरे अंदर दिवाला निकल जाय, तो ईश्वर मुझे इतनी शक्ति देगा कि मै उसकी स्पष्ट घोषणा कर दूंगा।

उसकी कृपासे मैं कोई आधी सदीसे जो काम कर रहा हूं अगर उसके लिए मेरी और जरूरत न रही, तो शायद वह मुझे उठा लेगा। लेकिन मेरा ख्याल है कि मेरे करनेको अभी काफी काम है। जो अंधकार मेरे ऊपर छा गया मालूम पड़ता है वह नष्ट हो जायगा, और स्पष्टतया अहिंसात्मक साधनोंसे भारत अपने लक्ष्यको पहुंच जायगा—फिर उसके लिए चाहे डॉडी-कूचसे भी ज्यादा उग्र लड़ाई लड़नी पड़े या उसके बगैर ही ऐसा हो जाय। मै ईश्वरसे उस प्रकाशकी याचना कर रहा हूं जो अंधकारका नाश कर देगा। अहिंसामें जिनकी जीवित श्रद्धा हो उन्हें मेरा साथ देना चाहिये।

हरिजन सेवक
२३ जुलाई, १९३८

❀

अगर अहिंसाके संबधमे जीत शब्दका प्रयोग किया जा सके तो कहा जा सकता है कि अहिंसाका अंतिम परिणाम निश्चित विजय है। पर असलमें देखें तो जहाँ हारका भाव ही नही है, वहाँ जीतका भी कोई भाव नही हो सकता।

—गाधीजी

कांग्रेस और हिंसा

महादेवने कांग्रेसवादियों द्वारा की जा रही हिंसात्मक कार्रवाइयोंकी शिकायतें मुझे बतलायी हैं। इनमेंसे एक शिकायत तो यह है कि शांत पिकेटिंगके नामपर धरना देनेवाले लोग ऐसे उपायोंका सहारा ले रहे हैं जो हिंसाकी हदतक पहुंच जाते हैं—जैसे जिन्दा आदमियोंको खड़ाकर दीवार-सी बना लेते हैं, जिसे अपनेको या दीवार बनानेवालोंको चोट पहुंचाये बगैर कोई पार नहीं कर सकता। शांत पिकेटिंग मेरी चलायी हुई है, लेकिन मुझे ऐसा एक भी उदाहरण याद नहीं जिसमें मैंने ऐसी पिकेटिंगको प्रोत्साहन दिया हो। एक मित्रने इस संबंधमें धरसनाका हवाला दिया है। वहां मैंने नमकके कारखानेपर कब्जा करनेकी बात जरूर सुझायी थी, लेकिन इस मामलेमें यह बात बिलकुल लागू नहीं होती। धरसनामें हमारा लक्ष्य नमकके कारखानेपर था, जिसे सरकारके कब्जेसे छीनकर अपने कब्जेमें रखना था। उसे पिकेटिंग मुश्किलसे ही कहा जा सकता है। लेकिन यह तो शुद्ध हिंसा है कि कर्मचारियों या मजदूरोंके आगे खड़े होकर उन्हें अपने कामपर जानेसे रोका जाय, इसलिए इसे तो छोड़ ही देना चाहिये। ऐसा करनेवाले कांग्रेसवादी अगर इससे बाज न आयें, तो मिलों या अन्य कारखानोंके मालिकोंका इसके लिए पुलिसकी मदद लेना बिलकुल वाजिब होगा और कांग्रेसी सरकार उसे देनेके लिए बाध्य होगी।

दूसरा उदाहरण मेरी नोटिसमें लाया गया कि कांग्रेसवादियोंके एक दलने प्रांतीय कांग्रेस कमेटी द्वारा स्वीकृत कांग्रेस कमेटीके दफ्तरपर कब्जा कर लिया है। यह तो निश्चित रूपसे अक्षम्य उद्दण्डता है।

तीसरा उदाहरण शोर मचाकर या गड़बड़ करके सभा भंग करनेका है।

चौथा पूंजीपतियोंके लिए बुरा-भला कहकर उन्हें लूट लेनेके लिए लोगोंको उभाड़नेका है।

ये सब हिंसा और अनुशासन-हीनताके स्पष्ट उदाहरण हैं। मुझसे कहा गया है कि ऐसी गड़बड़ी बढ ही रही है। मेरे सामने एक पत्र है जिसमें इस बातकी बुरी तरह शिकायतकी गयी है कि जहां पुराने शासनमें पूँजीपतियोंके साथ आमतौर पर न्याय होता था, वहाँ अब कांग्रेसी हुकूमतमें उनके साथ न केवल न्याय ही नहीं होता बल्कि उन्हें अपमानित और लाछित भी किया जाता है।

इसमें कोई शक नहीं कि ब्रिटिश पद्धति पूँजीवादका पक्ष लेती है, जब कि कांग्रेस लाखों भूखों मरनेवालोंके साथ पूर्ण न्यायका उद्देश्य रखनेके कारण

पूॅजीवादका पक्ष नहीं ले सकती। लेकिन जबतक कांग्रेसकी बुनियादी नीति अहिंसा है, तबतक वह छीना झपटीका आश्रय नहीं ले सकती। वह किसी कांग्रेसवादी या कांग्रेसवादियोंके दलको अपने हाथमें कानून लेनेकी इजाजत नहीं दे सकती, फिर किसी भी वर्गके लोगोंको अपमानित या लांछित तो वह होने ही कैसे दे सकती है ? न हिंसात्मक पिकेटिंग या हिंसाको उत्तेजना देनेवाले भाषणोंको ही कांग्रेस बर्दाश्त कर सकती है।

हिंसापर अगर समय रहते रुकावट न लगायी गयी, तो कांग्रेस अपने आंतरिक पतनसे ही चकनाचूर हो जायगी। अतः प्रांतीय तथा मातहत कमेटियोंके अध्यक्षोंका काम है कि वे फौरन इस बुराईकी जड़ उखाड़ दें। हां, कांग्रेसवादी आमतौरपर अहिंसासे ऊब गये हों, तो जितनी जल्दी कांग्रेसके विधानकी पहली धारा बदल दी जाय, उतना ही देश और संबंधित व्यक्तियोंके हकमें अच्छा होगा। इस महान संस्थाके बारेमें यह तो नहीं ही कहा जाना चाहिये कि उसने असत्य और अहिंसाको ढॉपनेके लिए सत्य और अहिंसाको अपना लबादा बना रखा है।

हरिजन सेवक
१३ अगस्त, १९३८

❀

"मै कायरता तो किसी हालतमे सहन नही कर सकता। मेरे गुजर जानेके बाद कोई यह न कहने पाये कि गाधीने लोगोको नामर्द बनना सिखाया। अगर आप सोचते हो कि मेरी अहिसा कायरताके बराबर है, या उससे कायरता ही पैदा होगी तो आपको उसे छोड देनेमें जरा भी हिचकना नही चाहिये। आप निपट कायरतासे मरे, इसकी अपेक्षा आपका बहादुरीसे प्रहार करते हुए और प्रहार सहते हुए मरना मैं कही बेहतर समझूँगा। मेरे सपनेकी अहिसा अगर संभव न हो तो अहिसाका स्वाग भरनेकी अपेक्षा यह बेहतर होगा कि आप उस सिद्धांतका ही त्याग करदे।

—गाधीजी

बरमाका दंगा

एक सज्जनने यह तार दिया है—

"बरमाके हालके दंगेपर आपका ध्यान जितना गया है उससे ज्यादा ही जाना चाहिए। सरकारी सूचना चाहे जो हो, दस तारीखतक, जब कि मैंने हवाई जहाजसे रंगून छोड़ा, वहा कोई शाति स्थापित नहीं हुई थी। भारतीय बुरी तरहसे घबराये हुये हैं। उन्होंने आपकी अहिंसाका मार्ग ग्रहण किया और भारी मुसीबत उठायी। कृपाकर फौरन कोई कारगर कार्रवाई कीजिये।"

रंगूनसे तार मिलनेपर मैंने जो कुछ किया उस वक्त वही एक कारगर कार्रवाई मैं कर सकता था। मेरे सामने ठीक ठीक तथ्य भी तब नहीं थे। बरमाके भयंकर उपद्रवके कारणका विवरण तो मेरे सामने अब आया है। मालूम यह होता है कि एक बरमीने कुछ दिनों पहले एक 'ट्रैक्ट' लिखा था, जिसमें इस्लामकी निंदा की गयी थी। एक बरमी बौद्धने, जिसने इस्लाम धर्म ग्रहण कर लिया है उसके खंडनमें एक 'ट्रैक्ट' लिखा, और उसमे उसने बौद्ध धर्मपर भी आक्रमण किया। किसी भी हिन्दुस्तानीका इस 'ट्रैक्ट' लिखनेमें हाथ नहीं था। इस 'ट्रैक्ट' पर किसीका उस वक्त ध्यान नहीं गया, पर बरमी अखबारोंने इसकी बुरी तरहसे आलोचना की और बरमी लोगोंको काफी भड़काया। इसीका परिणाम यह क्रूर कांड था। इस वर्बरतामें अनेकोंकी अनमोल जाने गयीं, जिनका कि कोई अपराध नहीं था, और कहा जाता है कि लाखोंकी सम्पत्ति नष्ट हो गयी। यह द्वेषाग्नि रंगून तक ही सिमित न रही, बल्कि सारे बरमामें जहां-जहां हिन्दुस्तानी बाशिंदे थे, इस आगकी लपटे पहुंचीं।

अगर, जसा कि तारमें संवाददाताने कहा है कि "भारतीयोंने आपकी अहिंसाका मार्ग ग्रहण किया" तो मैं यही कह सकता हूं कि उन्हें इससे कम ही मुसीबतोंको बर्दाश्त करना पड़ा, अगर हिंसाका मार्ग उन्होंने ग्रहण किया होता तो उन्हें इससे कहीं ज्यादा मुसीबतें झेलनी पड़तीं। अहिंसाकी शक्तिकी तो कोई सीमा ही नहीं। अगर यह मालूम हो कि औषधिने अमुक मात्रामें काम नहीं किया है, तो और अधिक देनी चाहिये। यह एक ऐसी औषधि है, जो कभी भी विफल नहीं जाती।

लेकिन इसे 'मेरी अहिंसा' क्यों कहा जाय? शायद इस तारमें मुझे ए

मीठी सी झिड़की दी गयी है—यही कि मेरी बतायी हुई दवाने काम नहीं किया। उपयुक्त प्रश्न यह है कि क्या उनका विश्वास था कि हिंसाके विरुद्ध अहिंसा ही एक अमोघ इलाज है, या इसलिए अहिंसाका मार्ग ग्रहण किया गया कि दूसरा कोई चारा ही नहीं था ? बहरहाल, मेरे लिए यह जरूरी नहीं कि इस प्रश्नके उत्तरकी प्रतीक्षा करूँ। अगर हम अखबारोंमें छपे हुए समाचारोंपर विश्वास करें, तब तो यह मालूम होता है कि भारतीयोंने पूर्ण अहिंसापर अमल नहीं किया। कुछ भी हो, मुझे यह माननेमें कोई कठिनाई नहीं होगी कि लोगोंके खासी अच्छी तादादने वहाँ अहिंसाका पालन किया—फिर ऐसा चाहे उन्होंने विश्वाससे प्रेरित होकर किया हो या जरूरतसे।

कुछ भी हो, विचारणीय प्रश्न अब यह है कि 'भविष्यके लिए क्या किया जाय ?' इसमें कोई संदेह नहीं कि इस दंगेकी किसी-न-किसी किस्मकी जाँच जरूर होगी। हो सकता है कि जिनकी जन और धनकी हानि हुई है उन्हें कुछ हरजाना दिया जाय। और अपराधियोंको कुछ सजा दी जाय, जो संभवतः इस प्रकारके दंगोंके मुख्य कर्त्ता-धर्त्ता नहीं होते, बल्कि उनके बहकानेमें आ जाते हैं। मुझे यह स्वीकार करना ही चाहिये कि इस प्रकारकी कार्रवाइयोंमें मेरी कोई दिलचस्पी नहीं।

बरमामें रहनेवाले हिन्दुस्तानियोंको यह समझ लेना चाहिये कि वे बर्मा-वासियोंकी दयापर निर्भर करते हैं। हिन्दुस्तानमें उनकी कोई ऐसी सरकार नहीं जो सचमुच उन्हें संरक्षण दे सके। हम जानते हैं कि दुनियाके दूसरे हिस्सोंमें क्या हो रहा है, उसपर हमें कोई आश्चर्य नहीं करना चाहिये। अगर किसी देशने वहाँ बस जानेवाले हिन्दुस्तानियोंका अपमान किया हो या वहां उनके साथ अन्याय हुआ हो तो इंग्लैंड उस देशसे कभी लड़ाई नहीं मोल लेगा। हां, इसमे कोई शक नहीं कि वह उनके लिए वकालत करेगा, और जोरदार विरोध भी जाहिर करेगा। पर इतनी ही सहायता वह कर सकेगा, इससे अधिक नहीं। और बरमाके दंगेके जैसे मामलेमें, भारत-सरकार नगण्य-सी ही राहत दे सकती है। ज्यादा-से-ज्यादा वह यह कर सकती है कि जब दंगे शुरू हों उन्हें दबानेका प्रयत्न करे। हालमें ही जिन कांग्रेसी प्रान्तोंमें दंगे हुए हैं वहां हमारी कांग्रेसी सरकारें भी दंगोंके बाद क्या कर सकी हैं ? मैं नहीं जानता कि फिर बरमामें क्या हो सकता है।

मेरा मतलब उस स्थायी शांतिको प्राप्त करनेसे है जिसका कि स्थायित्व इस अस्थायी जीवनमें संभव है। धार्मिक विरोध तो एक बार उठा नहीं कि फिर बीच-बीचमें तबतक नियमित रूपसे उठता ही रहेगा जबतक कि सम्बन्धित जातियाँ उसके लिये तीव्र उपायोंका अवलंबन न करें। ऐसा एक उपाय यह है कि विभिन्न पक्षों द्वारा पाले जानेवाले धर्मोंके प्रति पारस्परिक आदर-भाव

पैदा किया जाय। बरमाके बौद्ध अगर इस्लामका और मुसलमान बौद्ध धर्मका ज्यादा ख्याल न रखते हों, तो दोनोंमें ना-इत्तफाकीके बीज मौजूद ही हैं। उन्हें पनपकर ऐसी बर्बरताका रूप धारण करनेमें, जैसी कि हालमें हमें दिखलाई दी है, सिंचाईकी कोई ज्यादा जरूरत नहीं होगी। इसलिए, मेरा कहना है कि इन दोनों महान धर्मके अनुयायियोंमें एक-दूसरेको समझनेकी प्रवृत्ति होनी चाहिये।

मुझे भय है कि इन लड़ाई दंगोंकी जड़में वह भारतीय-विरोधी भावना है जिसका कारण शायद आर्थिक है। क्योंकि बर्मियोंके इस क्रोधका शिकार हिन्दुओंको भी काफी होना पड़ा है, हालांकि मालूम यही पड़ता है कि मुसलमानोंको ही सबसे अधिक कष्ट उठाना पड़ा है। इसलिए, वहाँ बसे हुए भारतीयोंको यह ध्यान रखना ही चाहिये कि बर्मियोंके साथ उनका व्यवहार साफ और असंदिग्ध हो। यह कहा जाता है कि व्यापारमे चाहे जैसे उपाय बरते जा सकते हैं और व्यापारी अगर ग्राहकके अनजानेपनसे फायदा उठाकर उससे अपने मालके मनमाने दाम माँगे तो उसमें भी कोई अनैतिकता नहीं है। लेकिन यह निश्चित है कि इस तरहके लेन-देनसे पारस्परिक भावनाये जरूर बिगड़ेगी। जहाँ कहीं भी हम गये हैं, यहाँतक कि हमारे देशपर ब्रिटिश शासकोंका कब्जा होनेके पहले भी, वहां जिन लोगोंके बीच हम रहे और जिनके साथ हमने व्यापार किया उनकी सद्भावनापर ही हमने अपना सारा दारोमदार रक्खा। जंजीबार, अदन,-जावा आदि देशोंके साथ हमारे जो सम्बन्ध है उनका इतिहास ऐसा ही है।

मगर अब समय बदल गया है। दुनिया भरके लोग अब अपने अधिकारोंको पहचानने लगे हैं। जब कि पहले दूसरे देशोंमें जाकर बसनेवाले विदेशी-प्रवासी बेरोक टोक मनमानी कारवाइयां किया करते थे, अब वे वैसा नहीं कर सकते। जो लोग गोला-बारूद और जहरीली गैसके सहारे अपनी बेईमानी नहीं चला सकते उनके लिये इस समय यह बात जितनी सही साबित हुई है उतनी पहले कभी नहीं हुई कि ईमानदारी ही सर्वोत्तम नीति है। हिन्दुस्तानको अगर पहले रास्तेसे बचकर अपने जीवनके हरेक कदमपर और जहां कहीं भी उसके निवासी जांय उस हरएक देशमें शांतिको, स्वतन्त्र राष्ट्रके रूपमें, अपना आदर्श-वाक्य बनाना हो तो अपने मानव-व्यवहारमें हमें पूरी ईमानदारीका अभ्यास करना होगा।

बरमी मित्रोंसे भी मै एक बात कहना चाहता हूँ। कुछ साल पहले जब मैं बरमा गया था, बर्मी पुरोहितोंने मुझे अपने सम्मेलनमें निमन्त्रित करके अपने विशाल पगोडाकी छाया तले मुझे मानपत्र देकर सम्मानित करनेकी कृपा की थी, और बुद्धानुयायियोंके रूपमें मुझे उन्होंने अपनेमेंका ही एक बतलाया था। इसलिए जब मैंने ऐसे उपद्रवकी खबर पढ़ी, जिनमें उन स्त्री-पुरुषों, बूढ़ों और बच्चों और अपाहिजों तकका कोई ख्याल नहीं किया गया, जिनका आपत्तिजनक

'ट्रैक्ट'से कोई वास्ता नहीं हो सकता था, मुझे बड़ा दुःख हुआ। भगवान बुद्धके प्रति मुझे अत्यंत श्रद्धा है, क्योंकि वे शांति-धर्मके एक सबसे बड़े प्रचारक थे। बुद्धका संदेश प्रेमका सदेश है। यह बात मेरी समझमें ही नहीं आती कि उस धर्मके अनुयायी एक ऐसे बहानेको लेकर, जो स्पष्टतया नगण्य है, किस तरह वर्बरताका खेल खेल सकते हैं। अखबारोंकी खबरें अगर सही हों तो यह और भी अफसोसकी बात है कि पुरोहित भी, जो कि बुद्धके संदेशके प्रतिनिधि हैं, उपद्रवियोंमें शामिल हुये और उपद्रवको शांत करनेके बजाय उन्होंने लूटमार, अग्निकांडों तथा हत्याओंमें भाग लिया। यह एक ऐसी दुर्घटना है जिसपर सभी समझदार लोगोंको रंज होगा। अतः क्या हम आशा करें कि उन्हींमेंके बुद्धिमान लोग थोड़ा आत्म-निरीक्षण करके ऐसा कोई उपाय सोचेंगे, जिससे कि भविष्यमें ऐसी दुखद घटनाओंकी पुनरावृत्ति न हो ?

हरिजन सेवक

२० अगस्त, १९३८

❀

"जहाँ दया नही वहाँ अहिंसा नही अत यो कह सकते है कि जिसमे जितना दया है उतना अहिंसा है। जो जीनेके लिए खाता है, सेवा करनेके लिए जीता है, पेट पालनेके लिए कमाता है वह काम करते हुए भी अक्रिय है, वह हिंसा करते हुए भी अहिसक है। क्रियाहीन अहिंसा आकाशके फूलके समान है। क्रिया हाथ-पैरसे ही होती हो, सो नही। मनसे ही होती हो, सो नही। मन हाथ-पैरकी अपेक्षा वहुत ज्यादा काम करता है। विचार मात्र क्रिया है। विचार-रहित अहिंसा हो ही नही सकती।"

—गाधीजी

मेरी असंगतियाँ ?

अपने विद्यार्थी जीवनमें (हालाँकि उसे ऐसा कहना ठीक तो नहीं है, क्योंकि यह जीवन तो ठीक तरहसे इम्तिहानोंके बाद ही शुरु हुआ और मेरे लिए अभी भी वह खतम नहीं हुआ है) मैंने ऋषि एमर्सनकी एक सूक्ति पढ़ी, जो मुझे हमेशा याद रहती है। वह यह कि "मूर्खतापूर्ण संगतियोंके फेरमें पड़े रहना बुद्धिहीनोंका काम है।" मैं मूर्ख नहीं हो सकता क्योंकि मूर्खतापूर्ण संगतको मैंने कभी नहीं अपनाया। पिकेटिंगके बारेमें हालमें मैने जो कुछ कहा उसपर मेरे आलोचकोंको बड़ा धक्का लगा है। उनका ख्याल है कि धरना दिये जानेवाले स्थानोंमें लोगोंको जानेसे रोकनेके लिए धरना देनेवाले आदमियोंकी दीवार बनानेको हिंसाका एक रूप बतलानेमें मैंने सविनय अवज्ञा-आंदोलनके समय कहीं और की हुई बातोंका खण्डन कर दिया है। अगर सचमुच ही ऐसी बात हो, तो जो बातें मैंने तुलनात्मक रूपमें बहुत पहले कीं या कहीं उनको रद्द समझ कर मेरे हालके लिखनेको ही ठीक मानना चाहिये। क्योंकि उम्र बढ़नेके साथ-साथ यद्यपि मेरे शरीरका ह्रास होता जा रहा है, लेकिन मुझे आशा है कि बुद्धिके ऊपर ह्रासका कोई ऐसा नियम लागू नहीं होता और मुझे विश्वास है कि यह न केवल नष्ट नहीं हो रही बल्कि और बढ़ रही है। ऐसा हो या न हो, लेकिन पिकेटिंग पर मैने जो राय दी उसके बारेमें मेरा दिमाग बिलकुल साफ है। कांग्रेसवादियोंको अगर वह न भाती हो, तो वे उसे अस्वीकार कर सकते हैं; लेकिन ऐसा करके वे शांत पिकेटिंगके नियमोंको भंग जरूर करेंगे। रही यह बात कि मेरे पहलेके कामोंसे मेरा मौजूदा वक्तव्य मेल नहीं खाता, सो यह बात भी नहीं है। जब पहले पहल मैंने दक्षिणी अफ्रीकामें सविनय-अवज्ञाकी शुरुआत की थी, तब मेरे साथियोंने मुझसे पिकेटिंगके बारेमें बहस की थी। जोहांसबर्गके रजिस्ट्रेशन आफिसपर हमें पिकेटिंग करनी थी, और सुझाया यह गया था कि वहां हम धरना देनेवालोंकी दीवार बना लें। लेकिन मैंने इस विचारको हिंसात्मक बताकर तुरंत अस्वीकार कर दिया था और धरना देनेवालोंको एक बड़े सार्वजनिक मैदान (स्क्वायर) में ऐसी जगहों पर तैनात किया गया था कि अगर चाहे तो हर कोई बगैर किसीको छुये रजिस्ट्रेशन आफिसको जा सके। पर धरना देनेवालोंकी नजरसे न बचे। इस प्रकार जानेवालोंके नाम प्रकाशित करके उनके प्रति सार्वजनिक धिक्कारकी शक्तिपर ही आधार रक्खा गया। यहां भी जब शराबकी दूकानोंपर धरना देनेका सवाल उठा तो मैंने इसी उपायका अनुसरण किया। पुरुषोंकी अपेक्षा स्त्रियोंको अहिंसाका अधिक अच्छा प्रतिनिधि मानकर, खास तौरसे उन्हीं पर यह काम सौंपा गया। इस प्रकार जिंदा आदमियोंकी दीवार बनानेका तो कोई सवाल ही न था। इसमें

कोई शक नहीं कि उन दिनों भी उसी तरह बहुत-सी अनधिकृत बातें हुई जैसीकी अब हो रही है। लेकिन मुझे ऐसा एक भी प्रसंग याद नहीं आता जब मैंने इस तरहकी पिकेटिंगका समर्थन किया हो, जिसकी कि इतनी तीव्र आलोचना होनेवाले लेखमें निंदाकी है। और धरना देनेवालोंकी दीवारको नंगी हिंसा बतलानेमे सचमुच क्या कोई कठिनाई है? किसी आदमीको कोई खास काम करनेसे जबर्दस्ती रोकने, और उसके तथा कामके बीच खुद आड़े आ जानेमें किये जानेवाले बल-प्रयोगमें क्या अंतर है? असहयोगके दिनोंमें, काशीमें जब विद्यार्थियोंने यूनिवर्सिटीके दरवाजोंपर जानेका रास्ता रोक दिया तब मुझे उनको एक जरूरी संदेश भेजना पड़ा था और अगर मेरी स्मृति धोखा नहीं देती, तो 'यंग इंडिया' में मैंने उनके कार्यकी जबर्दस्त निंदा की थी। अलबत्ता जो लोग हिंसा और अहिंसाके बारेमें मुझसे भिन्न विचार रखते हैं उनके साथ मै कोई दलील नहीं कर सकता।

दूसरी जिस असंगतताका मुझपर आरोप किया गया है, वह कारखानेदारोंको दी गयी मेरी यह सलाह है कि जिसे मैंने हिंसात्मक पिकेटिंग कहा है उससे अपना बचाव करनेके लिये वे पुलिससे मदद ले सकते हैं। मेरे आलोचकोंका कहना है कि दंगोंको दबानेके लिए मंत्रिमंडलोंने पुलिस और फौजकी जो मदद ली थी उसकी निंदा करनेके बाद मैं मजदूर रखनेवाले मालिकोंको पुलिसकी मदद लेने और मंत्रियोंको देनेके लिए मैं कैसे कह सकता हूँ?

संयुक्तप्रांतके मंत्रियोंके कार्यपर 'हरिजन' में मैंने जो कुछ लिखा था, वह इस प्रकार है—

"यह कहा जाता है कि जब हम स्वाधीनता प्राप्त कर लेंगे तब दगे और अन्य ऐसी बातें नहीं होंगी। लेकिन मुझे ऐसा लगता है कि स्वतंत्रताकी लड़ाईके दरमियान अगर हम अहिंसात्मक कार्यके तत्वको अच्छी तरह समझकर हरएक कल्पनीय परिस्थितिमें उसका उपयोग न करें तो हमारी यह आशा थोथी ही होगी। जिस हदतक कांग्रेसी मंत्रियोंको पुलिस या फौजका सहारा लेना पड़ा है, उस हदतक, मेरी रायमें, हमें अपनी असफलता मंजूर करनी ही चाहिये। क्योंकि दुर्भाग्यवश यह बिलकुल ठीक है कि मंत्री लोग इसके सिवा कुछ कर ही नहीं सकते थे। अतः अगर मेरी ही तरह हरएक कांग्रेसवादी और कांग्रेस कार्यसमितिका भी यह ख्याल हो कि हम असफल हुए हैं तो मैं चाहूँगा कि वे इस बातपर विचार करें कि हम असफल क्यों हुए।"

निश्चय ही इसके लिए मंत्रियोंके कार्यकी कोई निन्दा नहीं है। मैंने तो पुलिसकी आवश्यकता पड़नेपर उसी तरह अफसोस जाहिर किया है जैसे कि पिकेटिंगके मामलेमें भी ऐसी आवश्यकता पड़नेपर मैं करूँगा। लेकिन कांग्रेसी मंत्रियोंको देशकी मौजूदा हालतमें उसके शासनका भार सम्हालना है, तो जबतक हिंसात्मक अपराधोंके लिये कांग्रेस कोई शांतिपूर्ण तरीका न निकाल ले तबतक उन्हें पुलिसका और, मुझे भय है कि वे फौजका उपयोग करना

ही पड़ेगा। यह जरूर है कि अगर कोई ऐसा तरीका न ढूंढ़ निकालेंगे जिससे पुलिस और फौजकी जरूरत ही न रहे, या कमसे कम उनका उपयोग इतना कमकर दिया जाय कि देखनेवालेको वह कमी साफ मालूम पड़ने लगे, तो उनके लिये ठीक न होगा। ऐसा उपाय तो जरूर है। मैंने उसका एक मोटासा खाका बतलानेका साहस किया है। लेकिन यह हो सकता है कि कांग्रेस संगठन वस्तुतः इस महान कार्यके उपयुक्त न हो। क्योंकि अहिंसामें जीती-जागती श्रद्धा न हो, तो न फौज और न पुलिसको ही छोड़ा जा सकता है।

कांग्रेसवादियोंमें हुक्म-उदूली, अनुशासन-भंग बल्कि खुली हिंसा तक बढनेकी अनेक स्थानोंसे खबरें आ रही है। क्या मैं आशा करूँ कि कांग्रेस-वादियोंके बहुमतपर यह आरोप लागू नहीं होता ?

हरिजन सेवक
२७ अगस्त, १९३८

❀

"हिंसक और अहिसक प्रवृत्तियाँ एक साथ चल रही है। ईश्वर उनका द्रष्ट्रा है जिसका काम परीणाम देखना है, हम हेतु देखेंगे। अहिसाका किस तरह अमल मे करता हूँ वह नयी-सी चीज मालूम होती है। जैनो और बौद्धोने भी अहिसाके प्रयोग किये। लेकिन वह आहारमें मर्यादित हो गयी है। राजनीतिक और सामाजिक कामोमे भी हिसक और अहिसक दोनो शक्तियाँ प्रेरक हो जाती है। वाह्यत उनके स्वरूपमे फर्क नही दीख पडता पर हेतुमे होता है। हर चीजमे इस वात का ध्यान रखे तो हानि न होगी, और कठिनाइयाँ भी न रहेगी।"

—गाधीजी

चेकोस्लोवाकिया और अहिंसाका मार्ग

यह जानकर खुशी होनी ही चाहिये कि फिलहाल तो युद्धका खतरा टला है। इसके लिये जो कीमत चुकानी पड़ी क्या शायद वह बहुत ज्यादा है? क्या इसके लिये शायद अपनी इज्जतसे हाथ धोना नहीं पड़ा है? क्या यह संगठित हिंसाकी विजय है? क्या हर हिटलरने हिंसाको संगठित करनेका ऐसा नया तरीका ढूँढ़ निकाला है कि जिससे बिना रक्तपात किये ही अपना मतलब सिद्ध हो जाता है? मैं यह दावा नहीं करता कि यूरोपकी राजनीतिसे मुझे वाकाफियत है। लेकिन मुझे ऐसा मालूम पड़ता है कि यूरोपमें छोटे राष्ट्र अपना सिर ऊँचा रखकर कायम नहीं रह सकते। उन्हें तो उनके बड़े-बड़े पड़ोसी हजम कर ही लेंगे और उनके जागीरदार बनकर ही उन्हें रहना पड़ेगा।

यूरोपने चार दिनकी दुनियावी जिंदगीके लिये अपनी आत्माको बेच दिया है। म्यूनिखमें यूरोपको जो शांति प्राप्त हुई है वह तो हिंसाकी विजय है। साथ ही वह उसकी पराजय भी है। क्योंकि अगर इंग्लैंड और फ्रांसको अपनी विजयका निश्चय होता, तो वे चेकोस्लोवाकियाकी रक्षा करने या उसके लिए मर मिटनेके अपने कर्तव्यका पालन जरूर करते। मगर जर्मनी और इटलीकी संयुक्त हिंसाके सामने वे हिम्मत हार गये। लेकिन जर्मनी और इटलीको क्या लाभ हुआ? क्या इससे उन्होंने मानव-जातिकी नैतिक-सम्पत्तिमें कोई वृद्धि की है?

इन पंक्तियोंको लिखनेमें उन बड़ी बड़ी सत्ताओंसे मेरा कोई वास्ता नहीं है। मैं तो उनकी पाशवी शक्तिसे चौंधिया जाता हूँ। चेकोस्लोवाकियाकी इस घटनामें मेरे और हिन्दुस्तानके लिये एक सबक मौजूद है। अपने दो बलवान साथियोंके अलग हो जानेपर चेक लोग और कुछ कर ही नहीं सकते थे। इतनेपर भी मैं यह कहनेकी हिम्मत करता हूँ कि राष्ट्रीय सम्मान-रक्षाके लिए अहिंसाके शस्त्रका उपयोग करना उन्हें आता होता, तो जर्मनी और इटलीकी सारी शक्तिका मुकाबला वे कर सकते थे। उस हालतमें इंग्लैंड और फ्रांसको ऐसी शांतिके लिये आरजू-मिन्नत करनेकी बेइज्जतीसे बचा सकते थे, जो वस्तुतः शांति नहीं है और अपनी सम्मान-रक्षाके लिए वे अपनेको लूटनेवालोंका खून बहाये बगैर मरदोंकी तरह खुद मर जाते। मैं नहीं मानता कि ऐसी वीरता या कहिये कि निग्रह, मानव-स्वभावसे कोई परेकी चीज है। मानव-स्वभाव तो अपने असली रूपमें तभी आयेगा जब कि इस बातको पूरी तरह समझ लिया जायगा कि मानव-रूप

अख्त्यार करनेके लिये उसे अपनी पाशविकतापर रोक लगानी पड़ेगी। इस वक्त हमे मानव-रूप तो प्राप्त है, लेकिन अहिंसाके गुणोंके अभावमें अभी भी हमारे अन्दर पूर्वतम पूर्वज, 'डार्विन'के बन्दरके संस्कार विद्यमान हैं।

यह सब मैं यों ही नहीं लिख रहा हूँ। चेकोंको यह जानना चाहिये कि जब उनके भाग्यका फैसला हो रहा था तब वर्किंग कमेटीको बड़ा कष्ट हो रहा था। एक तरह यह कष्ट तो बिलकुल खुदगर्जीका था। लेकिन इसी कारण वह अधिक वास्तविक था। क्योंकि संख्याकी दृष्टिसे हमारा राष्ट्र तो बड़ा राष्ट्र है, लेकिन संगठित वैज्ञानिक हिंसामें वह चेकोस्लोवाकियासे भी छोटा है। हमारी आजादी न केवल खतरेमें है, बल्कि हम उसे फिरसे पानेके लिए लड़ रहे हैं। चेक लोग शस्त्रास्त्रोंसे पूरी तरह सुसज्जित हैं, जब कि हम बिलकुल निहत्थे हैं। इसलिए कमेटीने इस बातका विचार किया कि चेकोंके प्रति हमारा क्या कर्तव्य है, और अगर युद्ध हो तो कांग्रेसको क्या करना चाहिये। क्या हम चेकोस्लोवाकियाके प्रति मित्रता जाहिर करके अपनी आजादीके लिए इंग्लैंडसे सौदा करें या वक्त पड़नेपर अहिंसाके ध्येयपर कायम रहते हुए पीड़ित जनतासे यह कहें कि हम युद्धमें शामिल नहीं हो सकते, फिर वह प्रत्यक्ष रूपमें चाहे उस चेकोस्लोवाकियाकी रक्षाके लिए ही क्यों न हो जिसका एकमात्र कसूर यह है कि वह बहुत छोटा होनेके कारण अपनी रक्षा अपने आप नहीं कर सकता। सोच विचारके बाद वर्किंग कमेटी इस निर्णयपर करीब-करीब आयी कि वह इंग्लैंडसे सौदा करनेके इस अनुकूल अवसरको रक्षा और हिंदुस्तानकी आजादीकी दिशामें संसारके सामने यह घोषित करके वह अपनी देन जरूर देगी कि सम्मानपूर्ण शांतिका रास्ता निर्दोषोंकी हत्या नहीं, बल्कि इसका एक मात्र सच्चा उपाय प्राणोंतककी बाजी लगाकर संगठित अहिंसाको अमलमें लाना है।

अपने ध्येयके प्रति वफादार रहते हुए वर्किंग कमेटी यही तर्कसम्मत और स्वाभाविक रास्ता अख्त्यार कर सकती थी। क्योंकि हिंदुस्तान अगर अहिंसासे अपनी आजादी हासिल कर सकता है, जैसा कि कांग्रेसजनोंका विश्वास है, तो उसी उपायसे वह अपनी स्वतंत्रताकी रक्षा भी कर सकता है और इसलिए और इस उदाहरणपर चेकोस्लोवाकिया जैसे छोटे राष्ट्र भी ऐसा ही कर सकते है।

युद्ध छिड़ जाता तो वर्किंग कमेटी अमलमें क्या करती, यह मै नहीं जानता। लेकिन युद्ध तो अभी सिर्फ टला है। साँस लेनेके लिए यह वक्त मिला है, इसमें मैं चेकोंके सामने अहिंसाका रास्ता पेश करता हूँ। वे यह नहीं जानते कि उनकी किस्मतमें क्या-क्या बदा है। लेकिन अहिंसा-मार्गका प्रयोग करके वे कुछ खो नहीं सकते। प्रजातन्त्री स्पेनका भाग्य आज झूलेमें लटक रहा है। और यही हाल चीनका भी है। अंतमें अगर ये सब हार जांय तो इसलिए नहीं हारेंगे कि इनका

पक्ष न्यायोचित नहीं है, बल्कि इसलिए कि विनाश या जनसंहारके विज्ञानमें अपने विपक्षीकी बनिस्बत कम कुशल है या इसलिए कि उनका सैन्य-बल अपने विनाशियों की अपेक्षा कम है। प्रजीतंत्री स्पेनके पास अगर जनरल फ्रैंकोके साधन हों या चीनके पास जापानकी-सी युद्धकला हो, अथवा चेकोंके पास हर हिटलरकी जैसी कुशलता हो तो उन्हें क्या लाभ होगा ? मै तो कहता हूँ कि अपने विरोधियोंसे लड़ते हुए मरना अगर बहादुरी है, जैसी कि वह वस्तुतः है, तो विरोधियोंसे लड़नेसे इन्कार करके भी उनके आगे न झुकना और भी बहादुरी है। जब दोनों ही सूरतोंमें मृत्यु निश्चित है, तब दुश्मनके प्रति मनमें कोई द्वेष-भाव रखे बगैर छाती खोलकर मरना, क्या अधिक श्रेष्ठ नहीं है ?

हरिजन सेवक
८ अक्तूबर, १९३८

❀

"आज जगह-जगह हिसा और अहिसाकी पद्धतिके बीच एक द्वन्द्व युद्ध चल रहा है। हिंसा तो पानीके प्रवाहकी तरह है। पानीको निकलनेका रास्ता मिलते ही उसमेंसे उसका प्रवाह भयानक जोरसे वहने लगता है। अहिसा पागलपनसे काम कर ही नही सकती। वह तो अनुशासनका सार तत्व है। किंतु जव वह सक्रिय वन जाती है, तव फिर हिंसाकी कोई भी शक्ति उसे पराजित नही कर सकती। अहिसा सोलहो कलाओसे वही उदित होती है जहाँ उसके नेताओमे चन्दनकी जैसी पवित्रता और अटूट श्रद्धा होती है"

—गाधीजी

अगर मैं 'चेक' होता

हर हिटलरके साथ जो समझौता हुआ है उसे मैंने 'असम्मानपूर्ण शांति' कहा है, लेकिन ऐसा कहनेमें ब्रिटिश या फ्रेंच राजनीतिज्ञोंकी निन्दा करनेका मेरा कोई इरादा नहीं था। मुझे इस बारेमें कोई संदेह नहीं है कि श्री चेम्बरलेन इससे बेहतर किसी बातका ख्याल नहीं कर सकते थे। क्योंकि अपने राष्ट्रकी मर्यादाओंका उन्हें पता था। युद्ध अगर किसी तरह रोका जा सकता हो तो वह उसे रोकना चाहते थे। युद्धको छोड़कर चेकोंके पक्षमें उन्होंने अपना पूरा जोर लगाया। इसलिए आत्म-सम्मानको भी छोड़ना पड़ा तो इसमें उनका कोई दोष नहीं है। हर हिटलर या सिन्योर मुसोलिनीके साथ झगड़ा होनेपर इस बार ऐसा ही होगा।

इससे अन्यथा कुछ हो ही नहीं सकता। क्योंकि प्रजातंत्र खून-खराबीसे डरता है। और जिस तत्त्वज्ञानको इन दोनो अधिनायकोंने अपनाया है वह खूनखराबीसे बचनेको कायरता समझता है। वे तो संगठित हत्याकी प्रशंसामे सारी कला खर्च कर डालते हैं। उनके शब्द या काममें कोई धोखा नहीं है। युद्धके लिये वे सदा तैयार रहते है। जर्मनी या इटलीमें उनके आड़े आनेवाला कोई नहीं है। वहां तो उनका शब्द ही कानून है।

श्री चेम्बरलेन या श्री दलदियरकी स्थिति इससे भिन्न है। उन्हें अपनी पार्लमेण्टों और चैम्बरोंको संतुष्ट करना पड़ता है। अपनी पार्टियोंसे भी उन्हें सलाह करनी पड़ती है। अगर अपनी जुबानको उन्हें लोकतंत्री भावनायुक्त रखना है, तो वे हमेशा युद्धके लिए तैयार नहीं रख सकते।

युद्धका विज्ञान शुद्ध और स्पष्ट अधिनायकत्व (डिक्टेटरशिप) पर ले जाता है। एकमात्र अहिंसाका विज्ञान ही शुद्ध प्रजातंत्रकी ओर ले जानेवाला है। इगलैण्ड, फ्रांस और अमेरिकाको यह सोच लेना है कि वे इनमेंसे किसको चुनेंगे। यही इन दो अधिनायकों (डिक्टेटरों) की चुनौती है।

रूसका अभी इन बातोंसे कोई मतलब नहीं है। रूसमें तो एक ऐसा अधिनायक है जो शांतिके स्वप्न देखता है और यह समझता है कि खूनकी नदियां बहाकर वह उसे स्थापित करेगा। रूसी अधिनायकत्व दुनियाके लिए कैसा होगा, यह अभी कोई नहीं कह सकता।

चेकों और उनके द्वारा उन सब देशोंको, जो 'छोटे' या 'कमजोर' कहलाते हैं, मैं जो कुछ कहना चाहता हूँ उसकी भूमिका-स्वरूप यह सब कहना आवश्यक

था। चेकोंसे मैं कुछ इसलिये कहना चाहता हूँ, क्योंकि उनकी दुर्दशासे मुझे ऐसा लगा कि इस सिलसिलेमें जो विचार मेरे दिमागमें चक्कर काट रहे थे उनको अगर उनपर प्रगट न करूँ तो यह मेरी कायरता होगी। यह तो स्पष्ट है कि छोटे राष्ट्र या तो अधिनायकोंके अधीन हो जॉय या उनके संरक्षणमें आनेके लिये तैयार रहें, नहीं तो यूरोपकी शांति हमेशा खतरेमें रहेगी। यथासम्भव इंग्लैण्ड और फ्रांस पूरी सद्भावना रखते हुए भी उनकी रक्षा नहीं सकते। उनके हस्तक्षेपका मतलब तो ऐसा रक्तपात और विनाश ही हो सकता है जैसा पहले कभी दृष्टिगोचर नहीं हुआ। इसलिये, अगर मैं चेक होता, तो मैं इन दोनों राष्ट्रोंको अपने देशकी रक्षा करनेकी जिम्मेवारीसे मुक्त कर देता। इतनेपर भी मुझे जीवित तो रहना ही चाहिये। किसी राष्ट्र या व्यक्तिका आश्रित मैं नहीं बनूंगा। मुझे तो पूरी स्वतंत्रता चाहिये, नहीं तो मैं मर जाऊँगा। हथियारोंकी लड़ाईमें जीतनेकी इच्छा करना तो निरी, कोरी शेखी होगी। लेकिन जो मुझे अपनी स्वतंत्रतासे वंचित करे उसकी इच्छाका पालन करनेसे इंकार कर, उसकी ताकतकी अवज्ञा करके इस प्रयत्नमें मैं निरस्त्र मर जाऊँ तो वह कोरी शेखी नहीं होगी। ऐसा करनेमें मेरा शरीर तो नष्ट हो जायगा, लेकिन मेरी आत्मा-याने मान-मर्यादाकी रक्षा हो जायगी।

अभी-अभी इस अपकीर्तिकारक शांतिकी जो घटना घटी है, यही मेरा मौका है। इस नदामतके कलंकको धोकर मुझे अब सच्ची स्वतन्त्रता प्राप्त करनी होगी।

लेकिन एक हमदर्द कहता है "हिटलर दया-माया कुछ नहीं जानता। आपका आध्यात्मिक प्रयत्न उसे किसी बातसे नहीं रोकेगा।"

मेरा जवाब यह है कि "आपका कहना ठीक होगा। इतिहासमें किसी ऐसे राष्ट्रका उल्लेख नहीं है, जिसने अहिंसात्मक प्रतिरोधको अपनाया हो। इसलिए हिटलर पर मेरे कष्ट-सहनका कोई असर न पड़े तो कोई बात नहीं। क्योंकि उससे मेरा कोई खास नुक्सान नहीं होगा। मेरे लिए तो मान-मर्यादा ही सब कुछ है। और उसका हिटलरकी दया-भावनासे कोई ताल्लुक नहीं है। लेकिन अहिंसामें विश्वास रखनेके कारण, मै उसकी सम्भावनाओंको मर्यादित नहीं कर सकता। अभीतक उनका और उन जैसे दूसरोंका यही अनुभव है कि मनुष्य पशुबलके आगे झुक जाते हैं। निःशस्त्र पुरुषों, स्त्रियों और बच्चोंका अपने अंदर कोई कटुता रक्खे बगैर अहिंसात्मक प्रतिरोध करना उनके लिए एक अद्भुत अनुभव होगा। यह तो कौन कह सकता है कि ऊँची और श्रेष्ट शक्तिओंका आदर करना स्वभावके ही विपरीत है। उनके भी तो वही आत्मा है जो मेरे है।"

लेकिन दूसरा हमदर्द कहता है, "आप जो कुछ कहते हैं वह आपके लिए तो बिलकुल ठीक है।" पर जनतासे इस श्रेष्ठ बातका आदर करनेकी आशा करते हैं? वे तो

लड़नेके आदी हैं। व्यक्तिगत वीरतामें वे दुनियामें किसीसे कम नहीं हैं। उन्हें अब अपने हथियार छोड़कर अहिंसात्मक प्रतिरोधकी शिक्षा पानेके लिए कहनेका आपका प्रयत्न मुझे तो व्यर्थ ही मालूम पड़ता है।"

आपका कहना ठीक होगा। लेकिन मुझे अंतरात्माका जो आदेश मिला है उसका पालन करना ही चाहिये। अपने लोगों याने जनता तक मुझे अपना संदेश जरूर पहुँचाना चाहिये। यह अपमान मेरे अंदर इतना अधिक समा गया है कि इससे बाहर निकलनेके लिए कोई रास्ता चाहिये ही। कम से कम मुझे तो उसी तरह प्रयत्न करना चाहिये जैसा कि प्रकाश मुझे मिला है।"

यही वह तरीका है जिसपर कि मेरा ख्याल है, अगर मैं चेक होता तो मुझे चलना चाहिये था। सबसे पहले जब मैंने सत्याग्रह शुरू किया, तब मेरा कोई संगी-साथी नहीं था। सारे राष्ट्रके मुकाबलेमें हम सिर्फ तेरह हजार पुरुष, स्त्री और बच्चे थे, जिन्हें बिलकुल मटियामेट कर देनेकी उस राष्ट्रमें क्षमता थी। मैं यह नहीं जानता था कि मेरी बात कौन सुनेगा। यह सब बिलकुल अचानक-सा हुआ। कुल १३,००० लड़े भी नहीं। बहुतसे पिछड़ गये। लेकिन राष्ट्रकी लाज रह गई और दक्षिण अफ्रिकाके सत्याग्रहसे एक नये इतिहासका निर्माण हुआ।

खाँ अब्दुल गफ्फार खाँ शायद इसके और भी उपयुक्त उदाहरण हैं, जो अपनेको 'खुदाई खिदमतगार' कहते हैं और पठान जिन्हें 'फख्र-ए-अफगान' कहकर प्रसन्न होते हैं। जब कि मैं ये पंक्तियाँ लिख रहा हूँ, वह मेरे सामने बैठे हुए हैं। उनकी प्रेरणा पर उनके कई हजार आदमियोंने हथियार बाँधना छोड़ दिया है। अपने बारेमें तो उनका ख्याल है कि उन्होंने अहिंसाकी शिक्षाको हृदयंगम कर लिया है, पर अपने आदमियोंके बारेमें उन्हें निश्चय नहीं है। उनके आदमी यहाँ क्या कर रहे हैं यह सब मैं अपनी आँखोंसे देखनेके लिए ही सीमाप्रांत आया हूं, या यह कहना अधिक उपयुक्त होगा कि वे मुझे यहाँ लाये हैं। यह तो मैं पहलेसे ही फौरन कह सकता हूँ कि इन लोगोंको अहिंसाका ज्ञान बहुत कम है। इनका सबसे बड़ा खजाना तो अपने नेतामें अटूट विश्वास है। इस शांति-सैनिकोंको मैं ऐसा नहीं समझता कि इन्होंने इस दिशामें सम्पूर्णता प्राप्त करली हो। मैं तो इनका उल्लेख सिर्फ इसी रूपमें कर रहा हूँ कि एक सैनिक अपने साथियोंको शांति-मार्ग पर लानेका ईमानदारीके साथ प्रयत्न कर रहा है। यह मैं कह सकता हूँ कि उनका यह प्रयत्न ईमानदारीके साथ किया जा रहा है और अंतमें यह चाहे सफल हो या असफल, भविष्यमें सत्याग्रहियोंके लिए शिक्षा-प्रद होगा। मेरा उद्देश्य तो इतनेसे ही सफल हो जायगा कि मैं इन लोगोंके दिलों तक पहुंचकर इन्हें यह महसूस करा दूं कि अपनी अहिंसासे अगर ये अपनेको सशस्त्र स्थितिसे अधिक बहादुर समझते हों तभी ये उसपर कायम रहें, नहीं तो उसे छोड़ दें, क्योंकि ऐसा

न होनेपर तो वह कायरताका ही दूसरा नाम है, और जिन हथियारोंको उन्होंने स्वेच्छासे छोड़ रक्खा है उसे फिरसे ग्रहण कर ले।

डा० बेनेसको मैं यही अस्त्र पेश करता हूँ, जो कि दरअस्ल कमजोरोंका नहीं, बहादुरोंका हथियार है। क्योंकि मनमे किसीके प्रति कटुता न रख कर, पूरी तरह यह विश्वास रखते हुए कि आत्माके सिवा और किसीका अस्तित्व नहीं रहता, दुनियाकी ताकतके सामने, फिर वह कितनी ही बड़ी क्यों न हो, घुटने टेकनेसे दृढ़तापूर्वक इन्कार कर देनेसे बढ़कर कोई वीरता नहीं है।

हरिजन सेवक
१५ अक्तूबर, १९३८

❀

'जैसे हिंसाकी तालीममे मारना सीखना पडता है,उसी तरह अहिंसाकी तालीममे मरना सीखना पडता है। हिंसामें भयसे मुक्ति नही मिलती किंतु भयसे बचनेका इलाज ढूढनेका प्रयत्न रहता है। अहिंसामे भयको स्थान ही नही है। भयमुक्त होनेके लिए अहिंसाके उपासककी उच्च कोटिकी त्याग वृत्ति विकसित होनी चाहिये। जमीन जाय, धन जाय, शरीर भी जाय, इसकी परवा ही न कर जिसने सब प्रकारके भयको नही जीता वह अटूट पूर्ण अहिंसाका पालन नही कर सकता।"

—गाधीजी

'गांधीजी' ग्रंथमालाके खण्डोंकी सूची

पहला खण्ड—(प्रथम भाग) भारतीय नेताओंकी श्रद्धांजलियां (प्रकाशित)

(द्वितीय भाग) भारतीय तथा रियासती नेताओंकी श्रद्धांजलियां (प्रकाशित)

दूसरा खण्ड—संसारके समाचार-पत्र तथा पत्रकारोंकी श्रद्धांजलियां

तीसरा खण्ड—विदेशोंकी श्रद्धांजलियां

चौथा खण्ड—कवियोंकी श्रद्धांजलियां (प्रेसमें)

पांचवां खण्ड—जीवन-चरित (प्रेसमें)

छठा खण्ड —गांधीजी सम्बन्धी संस्मरण

सातवां खण्ड—भारतको गांधीजीकी देन

आठवां खण्ड—गांधीजीके महत्वपूर्ण भाषण

नवां खण्ड—गांधीजीके पत्र (महत्त्वपूर्ण मूल-पत्रोंके चित्रोंके साथ)

दसवां खण्ड—अहिंसा (प्रथम भाग) (गांधीजीकी लेखनीसे) (प्रकाशित)

अहिंसा (द्वितीय भाग) (,, ,,) (प्रकाशित)

ग्यारहवां खण्ड—हिन्दू-मुसलिम एकता (,, ,,)

बारहवां खण्ड—अछूतोद्धार (,, ,,)

तेरहवां खण्ड—शिक्षा (,, ,,)

चौदहवां खण्ड—महिलाएं (,, ,,)

पन्द्रहवां खण्ड—गांधीजीका राजनीतिक दृष्टिकोण

सोलहवां खण्ड—गांधीजीका आर्थिक दृष्टिकोण

सत्रहवां खण्ड—गांधीजीका धार्मिक दृष्टिकोण

अठारहवां खण्ड—गांधीजीके 'राम'

उन्नीसवां खण्ड—प्रार्थनोत्तर प्रवचन

बीसवां खण्ड—गांधीजीके प्रयोग

इक्कीसवां खण्ड—प्रवासी भारतीय

बाईसवां खण्ड—विद्रोही गांधी

तेईसवां खण्ड—गांधीजीका 'स्वराज्य'

चौबीसवां खण्ड—चित्रावली

पचीसवां खण्ड—विविध

अपनी प्रतियां तुरन्त सुरक्षित कराइये

अहिंसा प्रथम भाग खंड १०

गांधीजी

खण्ड दस

अहिंसा

(प्रथम भाग)
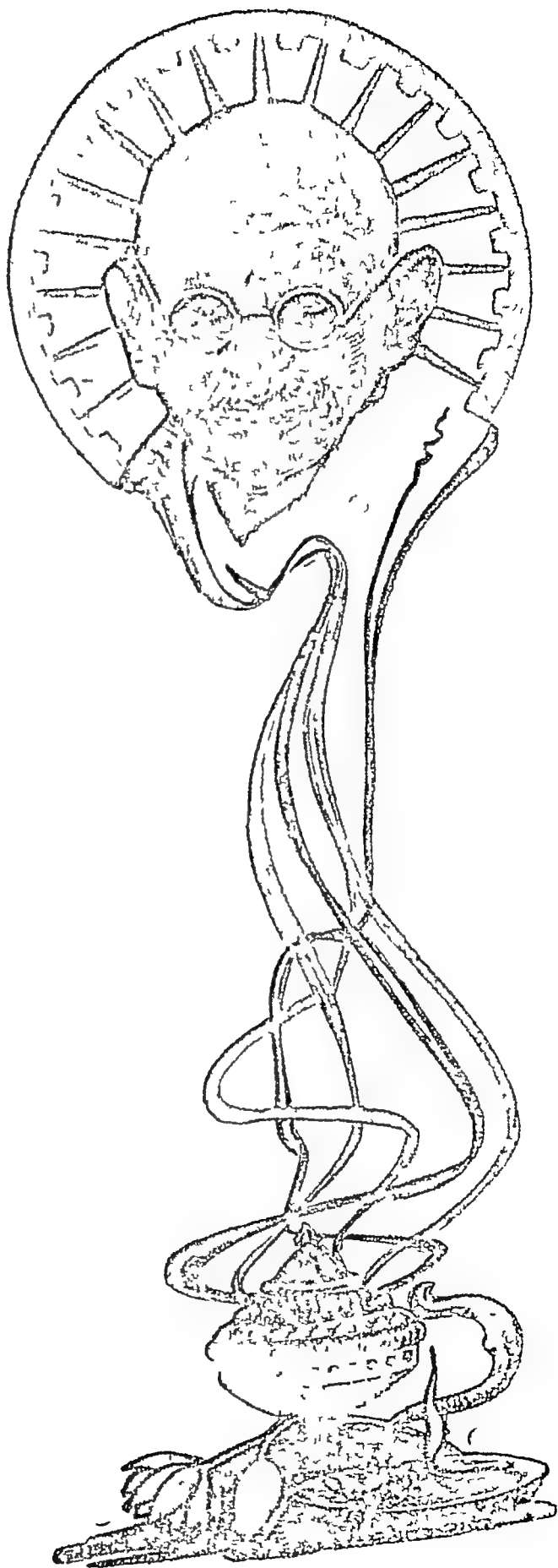
सम्पादक मण्डल

कमलापति त्रिपाठी (प्रधान सम्पादक)

कृष्णदेवप्रसाद गौड़

काशीनाथ उपाध्याय 'भ्रमर'

करुणापति त्रिपाठी

विश्वनाथ शर्मा (प्रबंध सम्पादक)

मूल्य डेढ़ रुपया

(प्रथम संस्करण : गांधी-जयन्ती, २ अक्तूबर, १९४८)

प्रकाशक

जयनाथ शर्मा

व्यवस्थापक

काशी विद्यापीठ प्रकाशन विभाग

बनारस छावनी

मुद्रक

पं० पृथ्वीनाथ भार्गव

अध्यक्ष

भार्गव भूषण प्रेस, गायघाट

काशी

सूची

❀

चित्र-सूची

प्रकाशकका वक्तव्य

हमें हर्ष है कि बापूकी अमर जयन्तीके शुभ अवसरपर 'गांधीजी' ग्रंथमालाका यह तीसरा प्रकाशन 'अहिंसा' प्रकाशित हो रहा है। ग्रंथमालाका यह दसवाँ खण्ड है। अहिंसा खण्डके प्रायः तीन भाग होंगे। यह प्रथम भाग है।

इस भागके प्रकाशनकी अनुमति देकर श्री जीवनजी डाह्याभाई देसाई (व्यवस्थापक-ट्रस्टी, 'नवजीवन', अहमदाबाद) ने जो कृपा की है, उसके लिए हम उनके आभारी हैं।

पाकिस्तान स्थित भारतीय हाई कमिश्नर माननीय श्री श्रीप्रकाश, मुखपृष्ठके चित्रके लिये, श्री कमलकुमार, दिल्ली तथा चेकोस्लावाक सोसाइटी, बाटानगर, कलकत्ता, अन्दरके पृष्ठोंके चित्रों के लिये, श्री रामनाथ अग्रवाल, लक्ष्मी फोटो एन-ग्रेविंग कम्पनी, इलाहाबाद ब्लाकोंके लिये तथा ईगल प्रिंटिंग वर्क्स, कलकत्ताके मुख पृष्ठके चित्रकी छपाईके लिए हम आभारी हैं।

काशी विद्यापीठके भूतपूर्व अध्यापक स्वर्गीय श्री कन्हैयालालजीकी संग्रह-वृत्तिने हमें अनमोल सहायता दी है। उनके संग्रहीत 'हिन्दी नवजीवन' तथा 'यंग-इंडिया'ने हमारा कार्यभार हल्का किया है। हम उनकी स्वर्गीय आत्माके प्रति कृतज्ञ हैं। बनारसके प्रसिद्ध कांग्रेस-कार्यकर्त्ता तथा गांधीभक्त श्रीरामसूरत मिश्रने भी अपने 'संग्रह'के उपयोगसे बड़ी सहायता दी है। हम उनके भी आभारी हैं।

इस भागका पूरा संकलन श्री लीलाधर शर्मा 'पर्वतीय'ने बड़े ही अध्यव-सायसे किया है। यह अंक उनके ही परिश्रमका फल है। श्री विद्यारण्य शर्माने भी सम्पादनमें सहायता दी है। हम दोनों सज्जनोंके आभारी है।

ग्रंथमालाका जो अपूर्व स्वागत हो रहा है, उससे हमको जो बल तथा साहस मिल रहा है, उसके सहारे हमें आशा है कि इस अनुष्ठानमें हम सफल सिद्ध होंगे।

❀

(कृपया पृष्ठ ११६ पर लेखके अन्तमें १६४८ के स्थान पर १६२६ पढ़िये।)

आमुख

भारतके लिए अहिंसा शब्द नया नहीं है। मैं तो यह भी कह सकता हूँ कि भारत ही नहीं समस्त संसारके लिए यह शब्द पूर्णतः परिचित है। जगतका कोई धर्म और समुदाय नहीं है जिसने अहिंसाकी महिमा न गायी हो, और प्राणि-मात्रपर दया करना न सिखाया हो। भारतमें तो अहिंसाके आदर्शने अति आरंभिक कालसे अत्यन्त ऊँचा स्थान प्राप्त किया है। उपनिषदोंमें, स्मृतियोंमें और समय-समयपर इस देशमें प्रचलित विभिन्न प्रकारके सम्प्रदायोंमें सर्वत्र अहिंसाको प्रथम स्थान दिया गया है। भक्ति, योग और ज्ञानके जो त्रिविध मार्ग भारतीय विचारकों-की विचार-पद्धतिसे संभूत हुए हैं, उनमें सर्वत्र साधकके लिए अहिंसाकी साधनाका प्रखर उपदेश मौजूद है। भारतका भागवत-धर्म, भगवान बुद्धके उपदेश, जैन-धर्म इत्यादिने तो अहिंसाकी कल्पना और आदर्शको परम तेजस्विता प्रदान की है। तबसे लेकर सन्तोंके युगतक इस देशकी धार्मिक और सांस्कृतिक विचार-शैली तथा विचार-धारामें अहिंसा सुदृढ़ रूपसे स्थित है। फलतः हमारे लिए विशेष रूपसे यह कहा जा सकता है कि अहिंसाकी कल्पना, उसका आदर्श और उसकी साधना कोई नयी बात नहीं है। इस देशके ऋषियों, विचारकों, महात्माओं और सन्तोंने अबाध रूपसे उसका उपदेश किया है।

फिर अहिंसाके संबंधमें यदि बापूने कुछ कहा तो उसमें विशेषता क्या है? वे भारतकी सहस्राब्दियोंकी सांस्कृतिक और ऐतिहासिक गतिके उज्ज्वल प्रतीक ही तो थे। भारतने अपने लम्बे जीवनकी अवधिमें, आरम्भसे अबतक विकास और संस्कृतिके क्षेत्रमें जो कुछ अर्जन किया था उन सबका प्रतिनिधित्व करनेके लिए ही बापूका अवतार हुआ। वे भारतकी सांस्कृतिक शृंखलाकी आलोक-मयी कड़ी थे। हम देखते हैं कि भारतकी संस्कृतिमें तथा युग-युगमें उसके द्वारा उपलब्ध उज्ज्वल अनुभूतियोंमें जो कुछ भी सत्य, जो भी सुन्दर और जो भी शिवमय था उन सबकी अभिव्यक्ति बापूके रूपमें हुई। फिर उनके द्वारा एक बार पुनः अहिंसा शब्दके उच्चारणमें और उनके द्वारा उस आदर्शके प्रतिष्ठापनमें कौनसी नयी विशेषता रही। यह प्रश्न बहुधा हमारे सम्मुख उपस्थित होता है और उसका उत्तर ढूँढनेमें ही बापू, उनकी कल्पना और उनके उपदेशकी विशेषता दृष्टिगोचर हो जाती है। गांधीजीकी अहिंसा केवल महात्माओंकी और विरागियोंकी अहिंसा नहीं है। उनकी अहिंसा विशुद्ध धर्मोपदेशमात्र नहीं है, जिसका उपदेश करके सन्त और महात्मा तृप्त हो जाया करते हैं। उनकी अहिंसा विशुद्ध अलभ्यादर्शके रूपमें जगतके सम्मुख उपस्थित नहीं हुई है। अपनी अहिंसाके द्वारा उन्होंने हमारे पर-

लोककी सिद्धि और स्वर्गकी प्राप्तिकी कल्पनामात्र नहीं की है। उनकी अहिंसा न निष्क्रिय है, न केवल अरूप उत्तम कल्पना। गांधीजीकी अहिंसाकी कल्पनामें केवल प्राणिमात्रके प्रति दया अथवा जीवहिंसा मात्र न करना ही समाविष्ट नहीं है। उनकी अहिंसा इन सबसे कहीं अधिक व्यापक, कहीं अधिक सजीव और कहीं अधिक सक्रिय है। बापूके अहिंसा संबंधी विचारोंका मन्थन कीजिये और आप इस परिणामपर पहुचेंगे कि उन्होंने अहिंसा शब्दका प्रयोग एक संकेतके रूपमें अथवा विचार-प्रतीकके रूपमें किया है।

गांधीजीकी सारी विचारधारा, उनकी सारी विचारशैली, उनकी सारी दृष्टि, उनका सारा दर्शन, उनका पथ, उनकी साधना और प्रयोग, सबका सब उनके अहिंसा शब्दमें व्यक्त होता है। बापू कोरे दार्शनिक, विशुद्ध कल्पनाशील विचारक अथवा केवल रूखे सिद्धान्तवादी नहीं थे। वे कठोर कर्मठ, नैष्ठिक साधक और जीवन तथा जगतकी गतिविधिका साक्षातकार कर लेनेवाले अत्यन्त व्यवहारिक व्यक्ति थे। वे यदि आत्मामें, परमात्मामें, परलोकमें, अदृश्य और अमूर्तमें, चेतना और भावनामें आस्था रखनेवाले दार्शनिक थे तो उसके साथ-साथ इस जगतके स्थूल रूप, उसकी स्थूल आवश्यकताओं, उसके दृश्य-स्वरूप और उसकी व्यावहारिकताका सूक्ष्म तथा विस्तृत ज्ञान रखनेवाले युग पुरुष भी थे। उनके लिए परलोककी साधना आवश्यक रही होगी, पर उससे भी बड़ी आवश्यकता उनकी दृष्टिमें इहलोकके कल्याणमें थी। वह जिस जगतमें उत्पन्न हुए थे, वह जगत उनके सामने था, उसको समस्यायें और गुत्थियां उनके सामने थीं, उसका गुण और विकार उनके सामने था, उसका वैषम्य और उसकी विफलता उनके सामने थी। उसकी कठिनाइयां और उसकी आवश्यकतायें भी उनके सामने थीं। उन्हें संसारकी समस्याओंको सुलझाने और उनका समाधान करनेके लिए पथ प्रस्तुत करना था। इस लक्ष्यको सामने रखकर उनका विचार-प्रवाह एक दिशाकी ओर बह चला और उसने एक पथ, प्रवाहकी एक दिशा, ग्रहण कर ली। अहिंसा शब्दके द्वारा उन्होंने अपनी वही दृष्टि, वही दर्शन और वही पथ जगतके सम्मुख रखा। गांधीजीने व्यक्ति और समूहके लिए, समाजके संघटन और सामाजिक तथा व्यक्तिगत जीवन-व्यापारके लिए जिस भित्तिका प्रतिपादन किया वह उनकी अहिंसामें समाविष्ट है। वह अहिंसा केवल सन्तों और साधकोंके लिए नहीं है, प्रत्युत उसके द्वारा उन्होंने व्यक्ति और समाजके लिए एक आधार निर्मित किया जिसपर समन्यूहन करना ही आधुनिक जगतकी समस्याओंके हलका उपाय था।

वापूकी दृष्टिमे मनुष्यकी प्रगति और विकासका एक निर्धारित पथ है। मानव जिस सीमातक पशुतासे, पशुभावोंसे, पशु-प्रवृत्तियोंसे ऊंचा उठता गया और जिस सीमातक अपने नैसर्गिक पाशवका निराकरण कर सका, उस सीमा-तक वह विकास-पथपर अग्रसर होता गया। मनुष्यमें लोभ है, हिंसा है, द्वेष है, अपनी प्रभुता स्थापित करनेकी भावना है, ममत्व है, अहम्त्व है, अहंकी तृप्ति और उसकी पूजाकी कामना है। ये सजात प्रवृत्तियां है जो उसके

जीवनके साथ अनिवार्य रूपसे लगी हुई हैं। ये अतिमौलिक वृत्तियाँ मानव और पाशवके समान धर्म है। इन वृत्तियोंके शासनसे शासित जो प्राणी असहाय-रूपमें उनके इशारेपर जीवन यापन करता चला गया वह विकासकी यात्रामें पशु बिन्दुतक पहुंच कर ही रुक गया। पर मनुष्य मनुष्य हुआ क्योंकि प्रकृतिने उसमें वह शक्ति और वह क्षमता प्रदान की जिससे वह अपनी इन मूल-वृत्तियोंसे ऊंचा उठ सके, उनकी सीमा बांध सके और उनका संतुलन कर सके। विकासके इतिहासकी यह गति मानव-विकासके पथकी ओर स्पष्टतः संकेत करती है। विकासका पथ अनन्त है, अतः उसका अन्तिम बिन्दु क्या है यह बताना कठिन है, पर इतना तो स्पष्ट है कि मानव-जीवनकी सुषमा, गरिमा और सौन्दर्य इसीमें है कि वह अहमृत्व और ममत्वसे ऊँचा उठता चले। मनुष्यके समाजका रक्षण और स्फुरण इसी एक बातपर अवलम्बित है कि मनुष्य अपने अहंकी सीमाका संकोच करे। अपने अहके विसर्जनपर ही हमारे परिवारका, हमारे समाजका और हमारे मानव-जगतका निर्माण होता है तथा हमारे व्यक्ति-गत जीवनके सबंध स्थिर होते है।

कहते हैं कि मनुष्य स्वभावतः व्यक्तिवादी और अहंवादी होता है। यदि यह सच हो तो भी इतना तो स्वीकार करना ही होगा कि मनुष्य अपने अहमृत्व और व्यक्तित्वके संकोचन तथा विसजनके द्वारा ही अपने समाजकी रचना करनेमें समर्थ होता है। जिस दिन व्यक्ति प्रकट होता है, उस दिनसे ही समाजका अंग हो जाता है और उस दिनसे ही समाजके लिये अपने व्यक्तित्वकी सीमा संकुचित करने लगता है। यही व्यक्तित्वका संकोच और अहमत्वका अधिकाधिक विसर्जन उसके व्यक्तिगत और सामाजिक जीवनके विकासका पथ रहा है। जिस दिन मनुष्य प्रगतिके इस पथसे विमुख होता है, उस दिनसे उसका विकास रुक जाता है, उसकी संस्कृति कुंठित हो जाती है, उसके जगतमे आग लग जाती है और उसकी मनुष्यता लुप्त हो जाती है। समूहके लिए, विराटके लिए, अहंकी सत्ताको, उसकी सीमाओंको ढहाना छोड़ कर जिस दिन अहकी पूजा ही लक्ष्य हो जाता है उसी दिन स्वार्थ प्रबल होता है, पीड़न आरम्भ होता है, संघर्षकी सृष्टि होती है, हिंसाका उद्रेक होता है, बल, शस्त्र और शक्तिके सहारे पशुताका साम्राज्य स्थापित होता है और मनुष्य पशु होकर मानवाधिकारोंका अपहरण करके मनुष्यताके राज्यको खो बैठता है। फिर वह स्थिति पतनकी ओर ले जाती है और मनुष्यता तथा उसकी संस्कृति खतरेमें पड़ जाती है। बापूने देखा कि आधुनिक विश्वकी समस्या यही है। मनुष्य सब कुछका अधिकारी होते हुए भी मनुष्यता खो बैठा है क्योंकि उसने पदे-पदे अहंका विसर्जन करते हुए व्यक्तित्वको विराटमें लय करने देनेके पथसे विरत होकर अहंकी ही पूजा आरंभ कर दी है। प्रकाशसे उसकी यह विमुखता उसे अंधकारमें ले गयी जहां पहुंचकर वह पथ-भ्रान्त हो गया। यही कारण है कि विश्व मनुष्यके पीड़नसे, मनुष्य द्वारा मनुष्यके दोहनसे, मनुष्यके शासन और

दलनसे विताड़ित है। यही कारण है कि धरित्रीका अभिषेक रक्तसे हो रहा है। मनुष्यता आर्तनाद कर रही है और संस्कृतिका लोप होता जा रहा है।

इस स्थितिसे संसारका परित्राण तभी हो सकता है जब मनुष्य अहंसे ऊँचा उठे। बापूकी अहिंसाकी कल्पनामें इसी कारण सीधी-सादी जीव-दया ही नहीं, प्रत्युत अहमृत्वके विसर्जनकी कल्पना निहित है। उनकी दृष्टिमें वह सब हिंसा है जिसका उन्मेष अहंके भावसे होता है। स्वार्थ, प्रभुताकी भावना, जातिगत विद्वेष, असन्तुलित और असंयमित भोग-तृप्ति, विशुद्ध भौतिकताकी पूजा, अपने व्यक्तिगत तथा वर्गगत स्वार्थोंका अंध साधन, शस्त्र और शक्तिके द्वारा अपनी कामनाओंकी संतृप्ति, स्वाधिकार बनाये रखनेके लिए बलका आश्रय तथा दूसरेके अधिकारोंका अपहरण आदि समस्त बातें हिंसा ही हैं। बापूकी दृष्टिमे हिंसा एक मनःस्थिति है जो विशेष प्रकारकी प्रवृत्तिमें व्यक्त होती है और जिसका व्यावहारिक तथा सजीव स्वरूप उपर्युक्त प्रकारके कार्योंमें मर्त्त होता है। इसी प्रकार उनकी अहिंसा इन सबसे विपरीत मनःस्थिति, प्रवृत्ति, पथ और कार्यकी द्योतिका है। उनकी अहिंसा वह मनःस्थिति है जिसमें मनुष्यका उज्ज्वलांश उद्दीप्त हो, वह अहंकार, स्वार्थ, भौतिक भोगोंकी लोलुपतासे ऊँचे उठकर, अपने व्यक्तित्वका विसर्जन विराटके कल्याणमें कर देनेमें अपना विकास, अपनी प्रगति और अपना निश्रेयस देखे। वास्तवमें बापूके मुखसे निकला हुए अहिंसा शब्द इन्हीं विचारोंका प्रतीक है। वह जीवन और-जगतके प्रति इसी दृष्टिका प्रतिनिधित्व करता है। इस अहिंसाको वे व्यक्तिगत और सामाजिक जीवनकी मूलभित्ति बनाना चाहते है और इस प्रकार उस महान् विद्रोहको चरितार्थ करना चाहते हैं जिसके द्वारा आज की सांस्कृतिक और सामाजिक संघटनकी अट्टालिका मूलसे ही परिवर्त्तित हो जाय।

अहिंसाकी कल्पना इस सजीव रूपमें करके उनके ऐसा कर्मठ, कोरा दार्शनिक चुप होकर नहीं बैठ सकता था। अहिंसाकी स्थापना अहिंसक पथ और अहिंसक प्रयोगके द्वारा ही हो सकती है। यदि आदर्श व्यवहार नहीं हो सकता और यदि व्यवहार आदर्शका अनुगमन नहीं कर सकता तो दोनों निर्जीव और 'थोथे हैं, तथा उनका मूल्य कौड़ी बराबर भी नहीं है। बापूकी यही तेजस्विनी धारणा थी—जिसे लेकर उन्होने अहिंसाकी अपनी कल्पनाओंको सक्रियता प्रदान कर दी। उन्होंने देखा कि जगतमें अबतक पशुताका पशुतासे, हिंसाका हिंसासे, शस्त्रका शस्त्रसे ही सामना किया गया है। फलतः निर्बल पशुतापर सबल पशुता ही विजयिनी हुई और बलहीन शस्त्रोंपर सबल शस्त्रोंकी सत्ता प्रतिष्ठित हुई।

लिए पवित्र साधन और पवित्र पथका निर्माण कर डाला। उनकी अहिंसा निर्जीव नहीं, सजीव रूपमें व्यक्त हुई। वह मूर्त हुई प्रबल हिंसाका सामने करनेके लिए प्रचण्ड शक्तिके रूपमें, ऐसी शक्ति जिसके सम्मुख जगतकी समस्त पशुता और शस्त्र-प्रहार कुण्ठितहोगया। ऐसी शक्ति, जो दम्भियोंके दंभको चूर्ण कर सके, और अत्यन्त प्रचण्ड संघर्ष, महान् विद्रोह तथा व्यापक गतिशीलताका प्रजनन कर सके। अबतक मानव जगतके इतिहासके किसी युगमें अहिंसाकी ऐसी कल्पना करनेवाला कोई दूसरा व्यक्ति उत्पन्न ही नहीं हुआ। उनकी यह कल्पना ही विश्वके विशाल सांस्कृतिक तथा विचार-क्षेत्रको उनकी न केवल पहली किन्तु अभिनव देन है। इस अहिंसाको व्यवहारमे लाकर, प्रत्येक प्राणीके लिए उसे उपलब्ध कर, व्यक्ति और समाजके जीवनपथमें उसे प्रस्तुत कर तथा उसकी शक्ति और सक्रियताको प्रदर्शित कर उन्होंने वह कर दिखाया जो अबतक किसी ने नहीं किया।

यह समझना भयावनी भ्रान्ति होगी कि शस्त्र न उठानेको ही बापूने अहिंसाकी संज्ञा प्रदान की है। आप उनके विचारोंकी गूढ़तामे प्रवेश कीजिये तो यह देखियेगा कि उनकी अहिंसा इतनी संकुचित नहीं है। संकुचित ही नहीं प्रत्युत उनकी अहिंसाका रूप ही दूसरा है। उनकी दृष्टिमें अहिंसक कार्य भी हिंसक हो सकता है और हिंसक कार्य भी अहिंसाकी सीमामे आ सकता है। मूल प्रश्न है, उस मनःस्थितिका जिसे ग्रहण करके आप कार्य विशेष करते है। यदि ऐसा न होता तो बापू यह कदापि न कहते कि शस्त्रधारी शत्रुके सम्मुख पलायन करना वह कायरता है जिससे बड़ी हिंसा दूसरी हो नहीं सकती। उन्होंने साफ-साफ कहा था कि नाजियोंके विरुद्ध शस्त्र उठाकर पोलों द्वारा जो युद्ध हुआ वह अहिंसक प्रतिरोधके समान था। उनके इन विचारोंकी समीक्षा कीजिये। जो व्यक्ति निर्भय होकर और जीवनकी बलि चढाकर बिना शस्त्र उठाये शस्त्रका मुकाबला करता है है वह अहंके मोहको छोड़कर सत्यके लिए अपनेको समर्पित कर देता है। उस व्यक्तिकी यह पद्धति विशुद्ध अहिंसक है। पर अपने प्राणके भयसे शस्त्रके सामने पलायन करनेवाला यद्यपि हिंसा नहीं करता पर वह बापूकी दृष्टिसे न केवल महान कायर है, प्रत्युत सबसे बड़ा हिंसक है, क्योंकि उसे अहके प्रति मोह है और सत्यकी उपेक्षा करके अपने अकिंचन प्राणोंको बचानेकी चाह है। उन्होंने बार-बार कहा है कि कायरताकी अपेक्षा शस्त्र उठाकर शत्रुका सामना करना कहीं अधिक श्रेयस्कर और अहिंसक है। यदि कोई व्यक्ति किसीकी सम्पत्ति हड़प कर जानेकी इच्छा लेकर उसके दरवाजेपर अनशन आरंभ कर दे तो क्या वह अहिंसक हो जायगा ? स्पष्ट है कि बापूकी दृष्टिमें, अहिंसक-साधन ग्रहण करके भी इस प्रकारका कार्य करनेवाला सबसे बड़ा हिंसक होगा। इसी प्रकार शस्त्र लेकर किसी रोगीके विषाक्त व्रणको चीरकर रक्त बहानेवाला और रोगीको पीड़ासे छटपटानेके लिए बाध्य करनेवाला डाक्टर हिसक नहीं हो सकता यद्यपि उसका कार्य हिंसात्मक ही है। यही दृष्टि थी और यही था मानदण्ड जो बापूको ग्राह्य था, जिसका प्रमाण अहमदाबादमें पागल कुत्तोके मारने और पीड़ासे कराहते हुए बछड़ेको सूईके द्वारा दवा देकर इस जीवनसे छुटकारा दिलानेमें व्यक्त होता है।

अहिंसाकी यह ओजस्विनी, यह तेज-पूरित और यह सबल कल्पना जिस ऋषिने जगतके सामने उपस्थितकी उसने वास्तवमें मानव-समाजके सांस्कृतिक पथको प्रशस्त कर दिया। उसका स्वर भिन्न था, उसकी दृष्टि भिन्न थी, उसका पथ भिन्न था, उसका प्रयोग भिन्न था। आधुनिक जगतकी समस्त विचार-पद्धतियोंसे भिन्न उसने संसारकी गुत्थियोंको एकदूसरे ही कोणसे देखा और उनके हलका उपाय अभिनव ढंगसे प्रस्तुत किया। आज जगतकी सबसे बड़ी आवश्यकता यही है कि मनुष्य अपनी खोयी हुई मनुष्यता प्राप्त करे। मानव-समाज अपेक्षा कर रहा है अपने उज्ज्वलांशके उद्‌बोधनका जिसकी सुषुप्ति और मूर्छासे धरित्री विनाशकी ओर उन्मुख हो गयी है। बापूने अहिंसा-शब्दके द्वारा वही प्रदान किया जिसकी अपेक्षा आजका युग कर रहा है।

वे मानव-समाजके दुर्भाग्यसे और हमारे पापोंके फलस्वरूप हमारे बीच नहीं रहे। पर उनका जीवन और उनके विचार उस दिशाकी ओर संकेत कर गये हैं, जिधर जानेमें ही जगतका कल्याण है। प्रस्तुस्त पुस्तकमें उनके इन्हीं विचारोंका सकलन किया गया है। उनकी अहिंसाके संबंधमें जितनी निर्मूल धारणायें और भ्रान्त विचार अज्ञ लोगोंमें ही नहीं प्रत्युत विचारकों और पण्डितोंमें भी पाये जाते हैं, उनका निराकरण आज आवश्यक है। बापूके जिन लेखों और विचारोंका यहां संकलन किया गया है उन्हें देखनेपर पाठकोंको स्वयं यह आभास मिल जायगा कि उन्होंने स्वतः तरह-तरहके सन्देह और भ्रान्त-विचारोंको दूर करनेका प्रयत्न किया है। यह भारतका सौभाग्य था कि बापूके द्वारा उसने न केवल अपनी खोयी हुई स्वतंत्रता ही प्राप्त की प्रत्युत अतीतके विलुप्त ऐश्वर्यको भी उपलब्ध किया। भारतका ऐश्वर्य उसकी भौतिक संपदामें निहित न था। धरित्रीमें उसका सम्मान उसके उस सांस्कृतिक अभिनयके कारण था जिसके द्वारा उसने समय-समयपर मानवताको प्रगति और देवत्वका संदेश दिया था। संसारको पुनः उसी भारतने बापूके द्वारा एक बार वैसा ही दिव्य सदेश दिया है। अब यह उत्तरदायित्व है इस देशके निवासियों पर कि वे उस सन्देशकी पवित्रता, गुरुता और सुन्दरतापर चलें तथा अपनी परम्पराके अनुसार कराहती हुई दुनियांको जीवन-मार्ग दिखावें।

—सम्पादक मण्डल
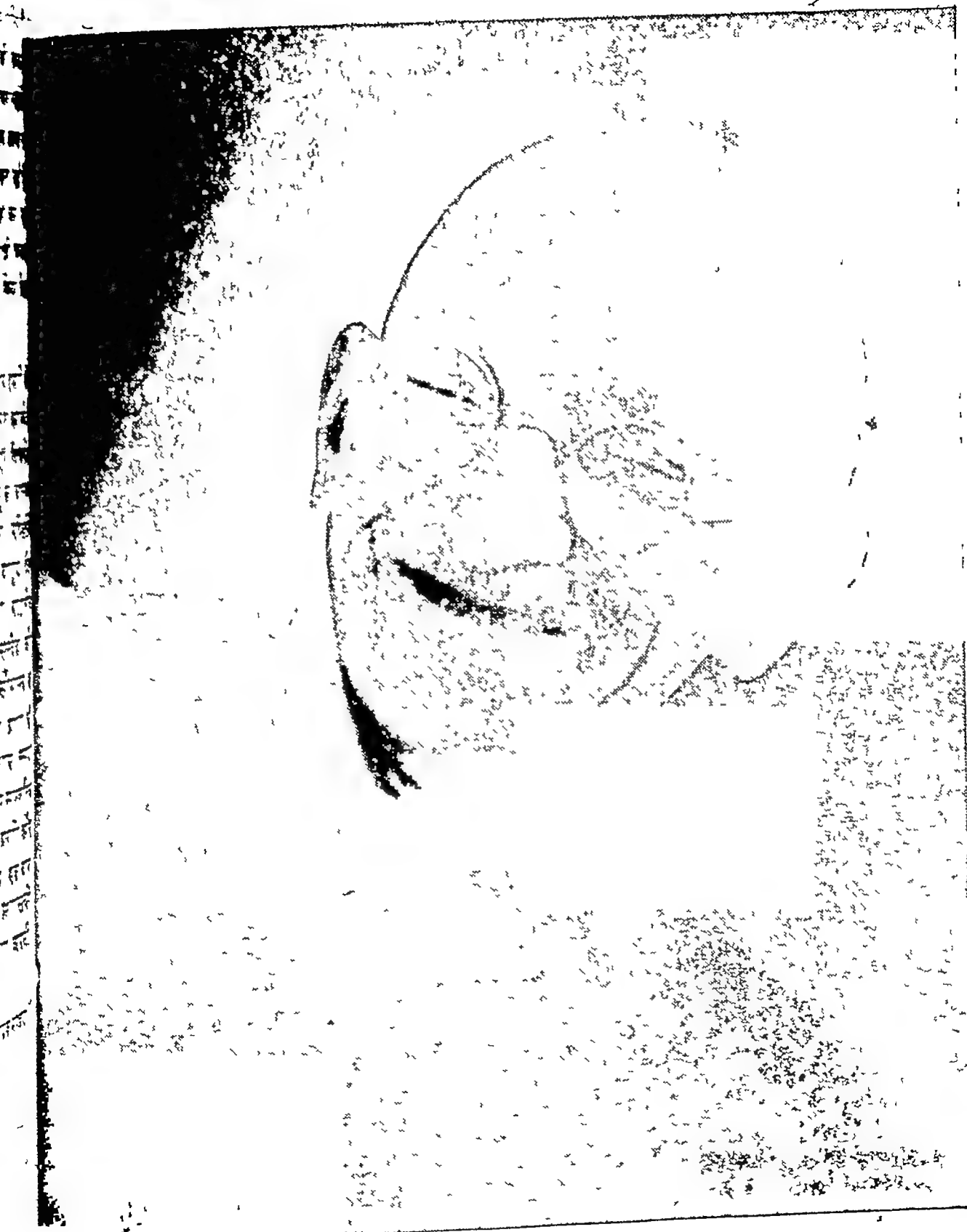
राष्ट्रपिता

कर्मवीर गांधी

लड़ाईमें भाग

विलायतमें पहुँचनेपर खबर मिली कि गोखले तो पेरिसमें रह गये हैं। पेरिसके साथ आवागमन संबंध बंद हो गया है और यह नहीं कहा जा सकता कि वह कब आयेंगे। गोखले अपने स्वास्थ्य-सुधारके लिए फ्रांस गये थे, किन्तु बीचमें युद्ध छिड़ जानेसे वहीं अटक रहे। उनसे मिले बिना मुझे देश जाना नहीं था, और वह कब आयेंगे, यह कोई कह नहीं सकता था।

अब सवाल यह खड़ा हुआ कि इस दरमियान करें क्या? इस लड़ाईके संबंधमें मेरा धर्म क्या? जेलके साथी और सत्याग्रही सोराबजी अडाजणिया विलायतमें बैरिस्टरीका अध्ययन कर रहे थे। सोराबजीको एक श्रेष्ठ सत्याग्रहीके तौरपर इंगलैंडमें बैरिस्टरीकी तालीमके लिए भेजा था जिससे वे दक्षिण अफ्रीकामें आकर मेरा स्थान ले लें। उनका खर्च डाक्टर प्राणजीवनदास मेहता देते थे। उनके और उनके मार्फत डाक्टर जीवराज मेहता इत्यादिके साथ, वह विलायतमें पढ़ रहे थे, इस विषयपर सलाह-मशविरा किया। विलायतमें उस समय जो हिन्दुस्तानी लोग रहते थे उनकी एक सभा की गयी और उसमें मैंने अपने विचार उपस्थित किये। मेरा यह मत हुआ कि विलायतमें रहनेवाले हिन्दुस्तानियोंको इस लड़ाईमें अपना हिस्सा देना चाहिये। अंग्रेज विद्यार्थी लड़ाईमें सेवा करनेका अपना निश्चय प्रकाशित कर चुके हैं। हम हिन्दुस्तानियोंको भी इससे कम सहयोग न देना चाहिये। मेरी इस बातके विरोधमें इस सभामें बहुतेरी दलीलें पेश की गयीं। कहा गया कि हमारी और अंग्रेजोंकी परिस्थितिमें हाथी-घोड़े जितना अंतर है—एक गुलाम दूसरा सरदार। ऐसी स्थितिमें गुलाम अपने प्रभुकी विपत्तिमें उसे स्वेच्छापूर्वक कैसे मदद कर सकता है? फिर जो गुलाम अपनी गुलामीमेंसे छूटना चाहता है उसका धर्म क्या यह नहीं कि प्रभुकी विपत्तिसे लाभ उठाकर अपना छुटकारा कर लेनेकी कोशिश करे? पर यह दलील मुझे उस समय कैसे पट सकती थी? यद्यपि मैं दोनोंकी स्थितिका महान अन्तर समझ सका था, फिर भी मुझे हमारी स्थिति बिल्कुल गुलामीकी स्थिति नहीं मालूम होती थी। उस समय मैं यह समझे हुए था कि अंग्रेजी शासन-पद्धतिकी अपेक्षा कितने ही अंग्रेज अधिकारियोंका दोष अधिक था और उस दोषको हम प्रेमसे दूर कर सकते हैं। मेरा यह खयाल था कि यदि अंग्रेजों द्वारा और उनकी सहायतासे हम अपनी स्थितिका सुधार चाहते हों तो हमें उनकी विपत्तिके समय सहायता पहुँचाकर अपनी स्थिति सुधारनी चाहिये। ब्रिटिश-शासन-पद्धतिको मैं दोषमय तो मानता था, परन्तु आजकी तरह वह उस समय असह्य नहीं मालूम होती थी। अतएव आज जिस प्रकार वर्तमान शासन-पद्धतिपरसे मेरा विश्वास उठ गया है और आज मैं अंग्रेजी राज्यकी सहायता नहीं कर सकता, उसी तरह

उस समय जिन लोगोंका विश्वास इस पद्धतिपरसे ही नहीं, बल्कि अंग्रेज अधिकारियोंपरसे भी उठ चुका था, वे मदद करनेके लिए तैयार कैसे हो सकते थे?

उन्होंने इस समयको प्रजाकी माँगें जोरके साथ पेश करने और शासनमें सुधार करानेकी आवाज उठानेके लिए बहुत अनुकूल पाया। किन्तु मैंने इसे अंग्रेजोंकी आपत्तिका समय समझकर माँगें पेश करना उचित न समझा और जबतक लड़ाई चल रही है तबतक हक माँगना मुलतवी रखनेके संयममें सभ्यता और दीर्घदृष्टि समझी। इसलिए मैं अपनी सलाहपर मजबूत बना रहा और कहा कि जिन्हें स्वयंसेवकोंमें नाम लिखाना हो वे लिखा दें। नाम अच्छी संख्यामें आये। उनमें लगभग सब प्रांतों और सब धर्मोंके लोगोंके नाम थे।

फिर लार्ड क्रूके नाम एक पत्र भेजा गया। उसमें हम लोगोंने अपनी यह इच्छा और तैयारी प्रकट की कि हिन्दुस्तानियोंके लिए घायल सिपाहियोंकी सेवा-सुश्रूषा करनेकी तालीमकी, यदि आवश्यकता दिखायी दे तो, हम उसके लिए तैयार हैं। कुछ सलाह-मशविरा करनेके बाद लार्ड क्रूने हम लोगोंका प्रस्ताव स्वीकार किया और इस बातके लिए हम लोगोंका अहसान माना कि हमने ऐसे ऐन मौकेपर साम्राज्यकी सहायता करनेकी तैयारी दिखायी।

जिन-जिन लोगोंने अपने नाम लिखवाये थे उन्होंने प्रसिद्ध डाक्टर कैंटनीकी देखरेखमें घायलोंकी सुश्रूषा करनेकी प्राथमिक तालीम लेना शुरू किया। छः सप्ताहका छोटा सा शिक्षा-क्रम रखा गया था और इतने समयमें घायलोंकी प्राथमिक सहायता करनेकी सब विधियाँ सिखा दी जाती थीं। हम कोई ८० स्वयंसेवक इस शिक्षा-क्रममें सम्मिलित हुए। छः सप्ताहके बाद परीक्षा ली गयी तो उसमें सिर्फ एक ही शख्स फेल हुआ। जो लोग पास हो गये उनके लिए सरकारकी ओरसे कवायद वगैरह सिखानेका प्रबंध हुआ। कवायद सिखलानेका भार कर्नल बैकरको सौंपा गया और वह इस टुकड़ीके मुखिया बन गये।

इस समय विलायतका दृश्य देखने लायक था। युद्धसे लोग घबराते नहीं थे, बल्कि सब उसमें यथाशक्ति मदद करनेके लिए जुट पड़े। जिनका शरीर हट्टा-कट्टा था वे नवयुवक सैनिक-शिक्षा ग्रहण करने लगे। परन्तु अशक्त बूढ़े और स्त्री आदि भी खाली हाथ न बैठे रहे। उनके लिए भी वे चाहें तो काम था ही। वे युद्धमें घायल सैनिकोंके लिए कपड़ा इत्यादि सीने-काटनेका काम करने लगे। वहाँ स्त्रियोंका 'लाइसियम' नामक एक क्लब है। उसके सभ्योंने सैनिक-विभागके लिए आवश्यक कपड़े यथाशक्ति बनानेका जिम्मा ले लिया। सरोजिनी देवी भी इसकी सभ्य थीं। उन्होंने इसमें खूब दिलचस्पी ली थी। उनके साथ मेरा वह प्रथम ही परिचय था। उन्होंने कपड़े ब्योंत व काटकर मेरे सामने उनका एक ढेर रख दिया और कहा कि जितना सिला सको, उतने सिलाकर मुझे दे देना। मैंने उनकी इच्छाका स्वागत करते हुए घायलोंकी सुश्रूषाकी उस तालीमके दिनोंमें, जितने कपड़े तैयार हो सके, उतने करके दे दिये।

धर्मकी समस्या

युद्धमें काम करनेके लिए हम कुछ लोगोंने सभा करके जो अपने नाम सरकारको भेजे, इसकी खबर दक्षिण अफ्रीका पहुँचते ही वहाँसे दो तार मेरे नाम आये। उसमेंसे एक पोलकका था। उन्होंने पूछा था—"आपका यह कार्य अहिंसा-सिद्धांतके खिलाफ तो नहीं है ?"

मैं ऐसे तारकी आशंका कर ही रहा था; क्योंकि 'हिंद-स्वराज्य' में मैंने इस विषयकी चर्चा की थी और दक्षिण-अफ्रीकामें तो मित्रोंके साथ उसकी चर्चा निरंतर हुआ ही करती थी। हम सब इस बातको मानते थे कि युद्ध अनीति-मय है। ऐसी हालतमें और जब मैं अपनेपर हमला करनेवालेपर भी मुक़दमा चलानेके लिए नहीं तैयार हुआ था तो फिर जहाँ दो राज्योंमें युद्ध चल रहा हो और जिसके भले या बुरे होनेका मुझे पता न हो, उसमें मैं सहायता कैसे कर सकता हूँ, यह प्रश्न था। हालाँ कि मित्र लोग यह जानते थे कि मैंने बोअर-संग्राममें योग दिया था तो भी उन्होंने यह मान लिया था कि उसके बाद मेरे विचारोंमें परिवर्त्तन हो गया होगा।

और बात दरअसल यह थी कि जिस विचार-सरणिके अनुसार मैं बोअर-युद्धमें सम्मिलित हुआ था, उसीका अनुसरण इस समय भी किया गया था। मैं ठीक़-ठीक देख रहा था कि युद्धमें शरीक होना अहिंसाके सिद्धांतके अनुकूल नहीं है, परंतु बात यह है कि कर्त्तव्यका भान मनुष्यको हमेशा दिनकी तरह स्पष्ट नहीं दिखायी देता। सत्यके पुजारीको बहुत बार इस तरह गोते खाने पड़ते हैं।

अहिंसा एक व्यापक वस्तु है। हम लोग ऐसे पामर प्राणी हैं, जो हिंसाकी होलीमें फँसे हुए हैं। 'जीवो जीवस्य जीवनम्' यह बात असत्य नहीं है। मनुष्य एक क्षण भी बाह्य हिंसा किये बिना नहीं जी सकता। खाते-पीते, बैठते-उठते, तमाम क्रियाओंमें इच्छासे या अनिच्छासे कुछ-न-कुछ हिंसा वह करता ही रहता है। यदि इस हिंसासे छूट जानेके वह महान प्रयास करता हो, उसकी भावनामें केवल अनुकंपा हो, वह सूक्ष्म वस्तुका भी नाश न चाहता हो, और उसे बचानेका यथाशक्ति प्रयास करता हो, तो समझना चाहिये कि वह अहिंसाका पुजारी है। उसकी प्रवृत्तिमें निरंतर संयमकी वृद्धि होती रहेगी, उसकी करुणा निरंतर बढ़ती रहेगी। परंतु इसमें कोई संदेह नहीं कि कोई भी देहधारी बाह्य-हिंसासे सर्वथा मुक्त नहीं हो सकता।

फिर अहिंसाके पेटमें ही अद्वैत भावनाका भी समावेश है। और यदि प्राणि-मात्रमें भेद-भाव हो तो एकके पापका असर दूसरेपर होता है और इस कारण भी मनुष्य हिंसासे सोलहो आना अछूता नहीं रह सकता। जो मनुष्य समाजमें रहता है वह, अनिच्छासे ही क्यों न हो, मनुष्य-समाजकी हिंसाका जिम्मेदार बनता है। ऐसी दशामें जब दो राष्ट्रोंमें युद्ध हो तो अहिंसाके अनुयायी व्यक्तिका यह धर्म है कि वह उस युद्धको रुकवावे। परंतु जो इस धर्मका पालन

न कर सके, जिसे विरोध करनेका सामर्थ्य न हो, जिसे विरोध करनेका अधिकार न प्राप्त हुआ हो, वह युद्ध-कार्यमें शामिल हो सकता है और ऐसा करते हुए भी उसमेंसे अपनेको, अपने देशको और संसारको निकालनेकी हार्दिक कोशिश करता है।

मैं चाहता था कि अँग्रेजी राज्यके द्वारा अपनी. अर्थात् अपने राष्ट्रकी स्थितिका सुधार करूँ। पर मैं तो इंग्लैंडमें बैठा हुआ इंगलैंडकी नौ-सेनासे सुरक्षित था। उस बातका लाभ इस तरह उठाकर मैं उसकी हिंसकतामें सीधे-सीधे भागी हो रहा था। इसलिए मुझे यदि इस राज्यके साथ किसी तरह संबंध रखना हो, इस साम्राज्यके झंडेके नीचे रहना हो, तो या तो मुझे युद्धका खुल्लम-खुल्ला विरोध करके जबतक उस राज्यकी युद्ध-नीति न बदल जाय तबतक सत्याग्रह-शास्त्रके अनुसार उसका बहिष्कार करना चाहिये, अथवा भंग करने योग्य कानूनोंका सविनय-भंग करके जेलका रास्ता लेना चाहिये, या उसके युद्ध-कार्यमें शरीक होकर उसका मुकाबला करनेका सामर्थ्य और अधिकार प्राप्त करना चाहिये। विरोधकी शक्ति मेरे अंदर थी नहीं, इसलिए मैंने सोचा कि युद्धमें शरीक होनेका एक ही रास्ता मेरे लिए खुला था।

जो मनुष्य बंदूक धारण करता है और जो उसकी सहायता करता है, दोनोंमें अहिंसाकी दृष्टिसे कोई भेद नहीं दिखायी पड़ता। जो आदमी डाकुओंकी टोलीमें उसकी आवश्यक सेवा करने, उसका भार उठाने, जब वह डाका डालता हो तब उसकी चौकीदारी करने, जब वह घायल हो तो उसकी सेवा करनेका काम करता है, वह उस डकैतीके लिए उतना ही जिम्मेदार है जितना कि खुद वह डाकू। इस दृष्टिसे जो मनुष्य युद्धमें घायलोंकी सेवा करता है, वह युद्धके दोषोंसे मुक्त नहीं रह सकता। पोलकका तार आनेके पहले ही मेरे मनमें ये सब विचार उठ चुके थे। उनका तार आते ही मैंने कुछ मित्रोंसे इसकी चर्चा की। मैंने अपना धर्म समझकर युद्धमें योग दिया और आज भी मैं विचार करता हूँ तो इस विचार-सरणिमें मुझे दोष नहीं दिखाई पड़ता। ब्रिटिश-साम्राज्यके संबंधमें उस समय जो विचार मेरे थे उनके अनुसार ही मैं युद्धमें शरीक हुआ और इसलिए मुझे उसका कुछ भी पश्चात्ताप नहीं है।

मैं जानता हूँ कि अपने इन विचारोंका औचित्य मैं अपने समस्त मित्रोंके सामने उस समय भी सिद्ध नहीं कर सका था। यह प्रश्न सूक्ष्म है। इसमें मत-भेदके लिए गुंजाइश है। इसीलिए अहिंसा-धर्मको माननेवाले और सूक्ष्म रीतिसे उसका पालन करनेवालोंके सामने जितनी हो सकती है, खोलकर मैंने अपनी राय पेश की है। सत्यका आग्रही व्यक्ति रूढ़िका अनुसरण करके ही हमेशा काय नहीं करता, न वह अपने विचारोंपर हठ-पूर्वक आरूढ़ रहता है। वह हमेशा उसमें दोष होनेकी संभावना मानता है और उस दोषका ज्ञान हो जानेपर हर तरहकी जोखिम उठाकर भी उसको मंजूर करता है और उसका प्रायश्चित्त भी करता है।

आत्मकथा

भाग ४

अहिंसा

जब कोई मनुष्य कहता है कि मैं अहिंसा-परायण हूँ तब उससे यह आशा की जाती है कि जब उसे कोई हानि पहुँचायेगा तो वह उसपर क्रोध न करेगा, वह उसका नुकसान न चाहेगा बल्कि उसकी भलाई ही चाहेगा। वह न तो उसे गाली-गलौज देगा और न उसके बदनको किसी तरहकी चोट ही पहुँचायेगा। वह तो अन्यायकर्ताके द्वारा किये गये हर तरहके नुकसान सहन ही करेगा। इस तरह अहिंसा मानों पूर्ण निर्दोषिता ही है और पूर्ण अहिंसाका अर्थ है प्राणिमात्रके प्रति दुर्भावका अभाव। वह तो मनुष्यके नीची श्रेणीके जीवों, यहाँतक कि विषैले सर्पों और हिंस्र पशुओंको गले लगाता है। उनकी सृष्टि इसलिए नहीं हुई है कि उनके द्वारा हमारी विनाशक प्रवृत्तियोंका पोषण हुआ करे। यदि हम सिर्फ उस जगत्कर्ताके हेतुको ही जान लें तो हमें इस बातका पता लग जाना चाहिये कि उसकी सृष्टिमें उन जीवोंका कौन-सा उचित स्थान है। अतएव अहिंसाका क्रियात्मक रूप क्या है? प्राणिमात्रके प्रति सद्भाव। यही शुद्ध प्रेम है। क्या हिन्दू शास्त्रों, क्या बाइबिल और क्या कुरान, सब जगह मुझे तो यही दिखाई देता है।

अहिंसा एक पूर्ण स्थिति है। सारी मनुष्य जाति इसी एक लक्ष्यकी ओर, संभवतः, परन्तु अनजानमें जा रही है। मनुष्य जब अपनी तइ साक्षात् निर्दोषिताकी मूर्त्ति बन जाता है तब वह दैवी पुरुष नहीं हो जाता। वह तो कुछ अंशोंमें मनुष्य और कुछ अंशोंमें पशु है। हम घूँसेके बदले घूँसा जमाते हैं और हमारे क्रोधका पारा भी उतना ही चढ़ जाता है और इसे हम कहते हैं कि हमने मनुष्य जातिके उद्देश्यकी पूर्ति की है, अपने कर्त्तव्यका पालन किया है। यह तो अज्ञान नहीं अहंकार है। हम देखते हैं कि प्रतिहिंसा तो मनुष्यकी स्वाभाविक प्रवृत्ति है। हम तो उसके कायल हैं। परन्तु इसके विपरीत धर्मशास्त्रोंमें तो हम देखते हैं कि प्रतिहिंसा कहीं भी आवश्यक कर्त्तव्य नहीं मानी गयी है, बल्कि सिर्फ वह जायज़ बतायी गयी है। आवश्यक कर्त्तव्य तो है संयम। प्रतिहिंसाके लिए तो बहुतसे नियमों और शर्तोंके पालन करनेकी जरूरत है। संयम तो हमारे जीवनका नियम ही है, क्योंकि बिना पूर्ण संयमके मनुष्य पूरी पूर्णावस्थाको पहुँच ही नहीं सकता। इस प्रकार कष्ट-सहन मनुष्य जातिका विशेष लक्षण है।

ध्येय तो हमेशा आगे ही आगे बढ़ता जाता है। ज्यों-ज्यों अधिक प्रगति होती जाती है त्यों-त्यों मनुष्य अपनेको अधिकाधिक अयोग्य मानता है। सन्तोष तो प्रयत्नमें है, अभीष्ट सिद्धिमें नहीं। पूर्ण प्रयत्न ही पूर्ण विजय है। अतएव यद्यपि मैं पहलेसे अधिक अच्छी तरह इस बातको जानता हूँ कि मैं अपने ध्येयसे कितना

दूर हूँ तथापि मेरे लिए पूर्ण प्रेमका नियम ही अपने जीवनका नियम है। जब-जब मुझे असफलता प्राप्त होगी तभी, मैं अधिक निश्चयके साथ प्रयत्न करूँगा।

लेकिन मैं इस अन्तिम सिद्धान्तकी बात तो महासभा और खिलाफत कमेटी द्वारा कर ही नहीं रहा हूँ। मैं अपनी त्रुटियोंको अच्छी तरह जानता हूँ। मैं जानता हूँ कि ऐसा उद्योग असफल हुए बिना नहीं रह सकता। सारे मनुष्य-समाजसे यह आशा करना कि वे सब एकबारगी इस सिद्धान्तके अनुसार चलने लगेंगे, इस बातको न जानना है कि मनुष्य-समाजका काम किस प्रकार चलता है। लेकिन हाँ, महासभाके मंचसे तो मैं उस सिद्धान्तका प्रचार अवश्य करता हूँ। महासभा तथा खिलाफत-समितिने तो उस सिद्धान्तके तात्पर्यका एक भाग-मात्र स्वीकार किया है। यदि कार्यकर्त्ता लोग योग दें तो थोड़े ही समयमें यह बात जानी जा सकती है कि विशाल जनसमूहका थोड़े परिमाणमें किस तरह प्रयोग किया जा सकता है। लेकिन थोड़े ही परिमाणमें तभी यथार्थ हो सकता है जब कि पूरे सिद्धान्तकी कसौटीपर चढ़ चुके।

एक बूँद पानीमें वे सब गुणधर्म होने चाहिये जो एक तालाब भर पानीमें हैं। अपने भाईके साथ मैं जिस अहिंसाका व्यवहार करूँगा वह सारे विश्वके प्रति मेरी अहिंसासे भिन्न नहीं हो सकती। जब मैं अपने भ्रातृ-प्रेमको सारे विश्वमें व्यापक करूँ तो उस अवस्थामें भी वह सत्य ही सिद्ध होना चाहिये।

जब किसी नियमका व्यवहार देश और कालकी मर्यादासे बाँध दिया जाय तब उसे व्यवहार-नियम या व्यवहार-धर्म कहते हैं। अतएव उच्चसे उच्च व्यवहार-नियमका पालन करना ही इस सिद्धान्तका पूर्ण रूपसे पालन करना है। लेकिन हम प्रामाणिकताका व्यवहार चाहे व्यवहार-धर्म समझ कर करें चाहे सिद्धान्त समझकर करें, जबतक वह हमारा व्यवहार-नियम है, एक ही बात है। ईमानदारीको व्यवहार-नियमके तौरपर माननेवाला दूकानदार भी वैसा और उतना गज कपड़ा देगा जितना कि ईमानदारी-धर्म समझनेवाला दूकानदार देगा। दोनोंमें फर्क केवल इतना ही है कि राजनीतिक दूकानदार अपनी दूकानदारीको उस समय छोड़ देगा जब उससे इसमें लाभ न दिखाई देगा और इससे श्रद्धा रखनेवाला दूकानदार अपना सर्वस्व गँवा देनेपर भी उससे मुँह न मोड़ेगा। पर असहयोगियोंकी राजनीतिक अहिंसा बहुलांशमें इस कसौटीपर सही नहीं निकलती। इसीसे इस शुद्धिकी उग्र बढ़ती जा रही है। अंग्रेजोंका यह स्वभाव है कि वे झुकते नहीं। इसपर उन्हें कोसनेकी आवश्यकता नहीं। हमारे प्रेमकी आगसे उनके 'कठोरसे कठोर बाहुदण्ड' पिघले बिना नहीं रह सकते। मैं इस बातको जानता हूँ। अतएव अपनी इस स्थितिसे हट नहीं सकता। यदि अंग्रेजोंकी अथवा दूसरोंकी तबीयतपर इसका यथेष्ट असर नहीं होता है तो इसका अर्थ यही है कि या तो वह आग ही हमारे अन्दर नहीं है या उस तेजीके साथ धधक नहीं रही है।

अच्छा, हमारी अहिंसा चाहे बलवान अहिंसा न हो, पर सच्चे लोगोंकी

अहिंसा जरूर होनी चाहिये। यदि हम अहिंसा-परायण होनेका दावा करते हैं तो जबतक ऐसा दावा करें तबतक अंग्रेज अथवा सहयोगी भाइयोंको हानि पहुँचानेका इरादातक हमें न करना चाहिये। परन्तु हमारे तो अधिकांश लोगोंने उसका नुकसान जरूर चाहा है और हम ऐसा करनेसे इसलिए रुक रहे हैं कि हम कमजोर हैं या इस गलत खयालसे कि केवल शारीरिक हानि न पहुँचानेसे ही हमारे अहिंसा-व्रतका पालन हो जाता है। हमारी अहिंसाकी प्रतिज्ञामें तो भविष्यमें प्रतिहिंसा करनेकी सम्भावना रही नहीं जाती। दुर्भाग्यवश हमारे कुछ लोगोंने तो बदला चुकानेकी तिथि सिर्फ आगे बढ़ा भर दी है।

हाँ, कहीं मेरे आशयका गलत अर्थ न लगा बैठियेगा। मैं यह नहीं कहता कि व्यवहार-नियमके तौरपर अहिंसाको माननेमें इस नीतिका त्याग कर चुकनेपर भी प्रतिहिंसाकी संभावना नहीं रह जाती। पर हाँ, यदि संग्राममें हमारी विजय हुई तो इसमें हमें आगे संभावना अवश्य ही नहीं है। इसलिए जबतक हम अहिंसाको व्यवहार-नियमके तौरपर मानते हैं तबतक हम असली तौरपर अपने अंग्रेज हाकिमों तथा सहयोगियोंके साथ मित्रताका व्यवहार करनेपर बाध्य हैं। जब मैंने यह सुना कि भारतके कुछ स्थानोंमें अंग्रेजों अथवा प्रख्यात सहयोगियोंका जानोमाल महफूज नहीं है, उनके लिए घूमना-फिरना भी मुश्किल हो रहा है तो मुझे बड़ी शर्म मालूम हुई। उस दिन मद्रासकी सभामें जो लज्जाजनक दृश्य दिखाई दिया वह अहिंसाके पूर्ण अभावका सूचक था। जिन लोगोंने यह समझकर कि उस सभाके सभापतिने मेरा अपमान किया, उनकी छीछालेदर की उन्होंने न केवल खुद अपनेको ही बल्कि जातिको भी नीचा दिखाया। उन्होंने अपने मित्र और सहायक श्री एण्डरूजके हृदयको चोट पहुँचायी। यदि उन सभापति महाशयका यह मत था कि मैं एक दुरात्मा हूँ तो उनका ऐसा कहना बहुत ठीक ही था। अज्ञान उत्तेजना नहीं है। असहयोगी तो गहरीसे गहरी उत्तेजनाको भी सहन करनेकी प्रतिज्ञासे बँधे हुए हैं। यदि मैं किसी दुरात्माकी तरह काम करूँगा तो उत्तेजना तो अवश्य होगी, पर यदि कोई असहयोगी यह मानता हो कि मैं उसे गलत रास्तेपर ले जा रहा हूँ तो वह इस प्रतिज्ञासे मुक्त हो सकता है और मेरे प्राणतक ले सकता है।

हाँ, यह भी हो सकता है कि जीवनको इतने मर्यादित रूपमें अहिंसामय बनाना भी अधिकांश रूपमें असंभव हो। यह भी हो सकता है कि हम लोगोंसे महज उनके स्वार्थके ख्यालसे भी यह आशा न करें कि जहाँ अपने प्रतिपक्षीको हानि नहीं पहुँचा रहे हैं वहाँ हानि पहुँचानेका इरादा तक न करें। तब हमें उचित है कि हम अपने इस युद्धके सम्बन्धमें अहिंसा शब्दका उच्चारण तक न करें, तभी हम प्रामाणिक बने रह सकते हैं। इसका उपाय यह नहीं है कि तुरंत ही हिंसाकाण्ड मचा बैठें। पर इस अवस्थामें लोगोंसे अहिंसा सम्बन्धी नियमोंके पालनकी बात कोई न कहेगा। तब मुझ जैसे मनुष्यको यह मालूम होगा कि चौरीचौराकी जिम्मेदारी मेरे सिरपर है। इस मर्यादित अहिंसाका सम्प्रदाय तो

उस एकान्त अवस्थामें भी फलता-फूलता ही रहेगा और भला यह होगा कि उसके सिरसे जवाबदेहीका वह भीषण भार उठ जाय जिसे वह आज वहन कर रहा है।

परन्तु यदि अहिंसा ही इस राष्ट्रका व्यवहार-धर्म निश्चित रहा तो हम उसका अक्षरशः तथा ठीक पालन करनेके लिए बाध्य हैं। तभी उसका तथा मनुष्य जातिका शुभ नाम कायम रह सकता है।

और यदि इस व्यवहार-नियमके अनुसार चलनेका इरादा हम करते हों, यदि हम उसके कायल हों तो हमें तुरंत ही अंग्रेज सहयोगी भाइयोंसे मेल-मिलाप कर लेना चाहिये। हमें इस बातमें कि वे लोग हमारे बीचमें अपने जान-मालको पूरा-पूरा सुरक्षित समझते हैं और उनके हमारे बीच तथा राजनीतिमें जमीन-आसमानका फर्क होते हुए भी वे हमें अपना मित्र समझते हैं, खुद उन्हींका प्रमाणपत्र हासिल करना चाहिये। हमें अपने मान्यवर अतिथिके तौरपर अपनी राजनीतिक सभाओंमें उनका स्वागत करना चाहिये। जिन सभाओंका संबंध किसी दल या मतसे न हो उनमें हम, वे साथ-साथ काम करें। हमें ऐसी सभाओंकी आयोजना तभी करनी चाहिये। हमारी अहिंसाका फल द्वेष और दुर्भाव न होना चाहिये। दूसरे मर्त्य मनुष्योंकी तरह हमारी पहचान भी अपने कार्योंसे ही होगी। स्वराज्य-प्राप्तिके लिए अहिंसात्मक कार्यक्रम बनानेका मतलब है अहिंसात्मक रीतिसे चलानेकी योग्यता। इसका अर्थ है आज्ञा-पालनके भावको हृदयपर अंकित करना। श्रीयुत चर्चिलका, जो कि केवल पशुबलके ही मंत्रको पहचानते हैं, यह कहना बहुत ठीक है कि आयर्लैंडका प्रश्न भारतके प्रश्नसे भिन्न प्रकारका है। उनके कहनेका आशय यह है कि आयर्लैंडवालोंने हिंसाकाण्डके बलपर लड़-लड़कर स्वराज्य प्राप्त किया है, अतएव यदि आवश्यकता पड़ी तो वे हिंसा-बलके द्वारा उसकी रक्षा भी कर सकेंगे। पर इसके खिलाफ यदि भारत वास्तवमें अहिंसा द्वारा स्वराज्य प्राप्त कर ले तो उसे प्रधानतः अहिंसात्मक उपायों द्वारा उसकी रक्षा भी करनी होगी। और उसे श्री चर्चिल तभी संभवनीय मानेंगे जब भारत इस सिद्धांतको अपने उदाहरण द्वारा प्रत्यक्ष करके दिखा दे और यह बात तबतक अशक्य है जबतक समाजमें अहिंसाका इतना प्रवेश नहीं हो गया है कि जिसमें लोग अपने सामुदायिक अर्थात् राजनीतिक जीवनमें अहिंसाको अपना लें; दूसरे शब्दोंमें फौजी हुकूमतके बजाय देशमें मुल्ककी हुकूमतकी प्रधानता हो जाय।

अतएव अहिंसात्मक साधनोंसे स्वराज्य प्राप्त करते हुए गोलमाल और अराजकताको स्थान मिल ही नहीं सकता। अहिंसाके बलपर स्वराज्य तो उत्तरोत्तर शांतिमय क्रांति होगी। यथा, एक संकुचित संस्थाके हाथसे सत्ताका जनताके प्रतिनिधियोंके हाथोंमें जाना उतना ही स्वाभाविक कार्य है जितना कि अच्छे परवरिश किये हुए पेड़से पूरे पके फलका गिर पड़ना। मैं फिर कहता हूँ कि ऐसी बातका पाना शायद बिलकुल असंभव हो। लेकिन मैं जानता हूँ कि

अहिंसाका तात्पर्य तो इससे कम नहीं है। और यदि वर्तमान कार्यकर्तागण इससे अधिक शांतिमय वायुमंडल तैयार हो जानेकी संभावनाको न मानते हों तो उन्हें चाहिये कि वे अहिंसात्मक कार्यक्रमको तिलांजलि दे दें और दूसरा इससे बिल्कुल भिन्न कार्यक्रम तैयार करें। यदि हम इस ख्यालको मनमें रखते हुए कि अंतको तो हम शस्त्रके बल अंग्रेजोंसे अधिकार छीन ही लेंगे, इस कार्यक्रमको उठायेंगे तो हम अपने अहिंसाके दावेके प्रति झूठे ठहरेंगे। यदि हमें अपने कार्यक्रमपर विश्वास है तो हम यह माननेके लिए भी बाध्य हैं कि अंग्रेज लोग जैसे शस्त्र-बलसे अधीन हो जाते हैं उसी प्रकार प्रेम-बलके अधीन न होनेवाले भी नहीं हैं। जो लोग इसके कायल नहीं हैं उनके लिए दो रास्ते हैं। एक तो कौंसिलें, जो उनकी दृष्टिमें विद्या और अनुभवके मंदिर हैं और उनका वह भावी कार्यक्रम, जिससे पद-पदपर उनका तेज बोध होता है और जो आगे कुछ पुश्तोंतक पूरा न हो सके अथवा तेजीके साथ होनेवाली खूनी क्रांति; ऐसी क्रांति जो पृथ्वी-पटल-पर शायद अबतक न देखी गयी हो। ऐसी क्रांतिमें शरीक होनेकी मेरी जरा भी इच्छा नहीं। मैं उसकी तैयारीमें साधन-रूप भी नहीं होना चाहता। अतएव मेरी रायमें सवाल यह है कि या तो हम असहयोगके साथ प्रमाणिक अहिंसाका—जो असहयोगका सहज फल है—अवलम्बन करें या प्रतियोगी-सहयोगको अर्थात् विरोधके साथ सहयोगको अपनावें।

यंग इंडिया
२८ जुलाई, १९२१

"ऐसे व्यक्तिको अहिंसामें अभ्यस्त नहीं किया जा सकता, जो मरनेसे डरता है अथवा प्रतिकारकी शक्ति या साहस ही नहीं रखता। बिना मारे मर जानेको मैं बेहतर समझता हूँ, परन्तु यदि साहस न हो तो मारते हुए मरना ही अच्छा है—जीनेके लिए मरनेमें कोई बड़ाई नहीं। खतरेसे भागना तो बुजदिली है।"

—गांधीजी

❀

तलवारका सिद्धान्त

यह युग पशुबलका युग है। इस युगमें सहसा किसीको इस बातका विश्वास नहीं होता कि कोई भी पशुबलकी प्रधानताको किसी भी उपायसे जीत सकता है। इसलिए मेरे पास बराबर गुमनाम पत्र आ रहे हैं जिनमें लिखा रहता है कि आप असहयोगकी प्रगतिमें बाधा न डालिये, चाहे इससे हिंसा ही क्यों न उत्पन्न हो जाय। इसी तरहके और भी पत्र आये हैं जिनके लेखकोंने इस बातको स्वीकार कर लिया है कि मैं गुप्त रूपसे हिंसाकी योजना कर रहा हूँ और मुझसे पूछते हैं कि वह शुभ घड़ी कब उपस्थित होगी जब हम लोगोंको खुली तौरसे हिंसामें प्रवृत्त होनेका अवसर मिलेगा। वे लोग मुझे विश्वास दिलाते हुए लिखते हैं कि प्रकट या गुप्त रूपसे हिंसाके सिवा अंग्रेज जाति और किसी उपायसे परास्त नहीं की जा सकती। एक तीसरे लोग भी हैं जो कहते हैं कि मैं अपनी कूटनीति किसीपर प्रकट नहीं होने देता, क्योंकि उन्हें इस बातमें जरा भी संदेह नहीं है कि मैं सर्व-साधारणके साथ हिंसापूर्ण व्यवहार रखता हूँ।

इस तरहसे स्पष्ट है कि तलवारके सिद्धांतने अधिकांश जनताके ऊपर प्रबल प्रभाव जमा रखा है। और दूसरी ओर असहयोगकी विजय एकमात्र हिंसाके अभावपर ही निर्भर करती है। इस संबंधमें मेरे मतपर ही अधिकांश जनताका मत निर्भर करता है इसलिए इस संबंध मैं अपना मत मैं स्पष्ट शब्दोंमें कह देना चाहता हूँ।

मेरा यह स्थिर मत है कि जहाँ कायरता और हिंसाका सवाल है वहाँ मैं हिंसाकी योजना करूँगा और इसीकी राय दूँगा। जिस समय मेरे ज्येष्ठ पुत्रने मुझसे पूछा कि जिस समय उत्तेजित जनताने आपको दक्षिण अफ्रीकामें बुरी तरहसे पीटा था उस समय यदि घटनास्थलपर मैं होता तो मेरा क्या कर्त्तव्य होता, मैं डरके मारे वहाँसे भाग गया होता या बल-प्रयागसे भीड़के साथ लड़ाई करता और आपकी रक्षा करता। मैंने उससे कहा कि उस समय तुम्हारा यही कर्त्तव्य था कि तुम बल प्रयोगसे मेरी रक्षा करो। इसी भावनासे प्रेरित होकर मैंने युद्धमें भाग लिया था। जूलू-विद्रोह तथा विगत यूरोपीय युद्धमें भी मेरे भाग लेनेका यही कारण था। और इसी सिद्धांतके अनुसार मैं शस्त्र-शिक्षाका परामर्श उन लोगोंको देता हूँ जो हिंसामें विश्वास करते हैं। इसलिए दूसरी युक्ति न होती तो मैं भारतके लिए भी यही सलाह देता कि इस तरह कायरोंकी भाँति पड़े-पड़े अपने अपमान और अप्रतिष्ठाके दृश्य देखनेसे अच्छा तो शस्त्र ग्रहण करके मर मिटना ही अच्छा है।

पर मेरा विश्वास है कि हिंसासे अहिंसाकी मर्यादा बलवती है, दंड देनेसे क्षमा-दान कहीं वीरत्वका लक्षण है। क्षमादान सच्ची वीरताका प्रमाण है। यदि दंड देनेकी

मुझमें क्षमता है और मैं दंड देना स्वीकार नहीं करता तो वही क्षमा सच्ची क्षमा है। यदि लाचारीके कारण क्षमता न होनेपर भी हमने क्षमादान किया तो उस क्षमादानका कोई महत्त्व नहीं। एक बिल्ली चूहेको पकड़कर काट-काट कर खा रही है और चूहा लाचार चुपचाप अपने प्राणोंको खो रहा है। यदि वह चूहा यह कहे कि हमने बिल्लीको क्षमादान दे दिया है तो उसका क्या महत्त्व होगा। इसलिए जो लोग जेनरल डायर तथा उसके क्रूर अत्याचारोंके कारण उसे दंड देनेकी योजना करना चाहते हैं और उसके लिए शोर-गुल मचाते ही हैं उनकी प्रशंसा करनी चाहिये। यदि वे कर सकते तो उसे टुकड़े-टुकड़े कर डालते। पर मैं भारतको एकदम लाचार नहीं समझता। मैं अपनेको एकदमसे गया-गुजरा जीव नहीं समझता। केवल मैं अपनी तथा भारतकी शक्तिका प्रयोग दूसरे तरहके और उपयोगी काममें लाना चाहता हूँ।

पर मैं चाहता हूँ कि मुझे कोई गलत न समझ ले। शक्तिकी उत्पत्ति शारीरिक बलसे ही नहीं होती। इसके लिए दृढ़ साहस होना चाहिये। जूलू जाति शारीरिक बलमें किसी भी अंग्रेजसे घटकर नहीं है। पर वह साधारण अंग्रेज बच्चेको भी देखकर डर जाती है क्योंकि वह उसके रिवाल्वरसे डरती है। इतनी भयानक मूर्ति धारण करनेपर भी वह मृत्युके भयसे सहम जाती है। भारतकी आबादी ३० करोड़ है। अंग्रेजोंकी संख्या एक लाख है। क्या इतने ही अंग्रेज समस्त भारतवासियोंमें आतंक उपस्थित कर सकते हैं? इसलिए यदि हमने क्षमादानका वास्तविक रूप उपस्थित कर दिया तो हमारा बल और भी व्यक्त हो जाता है। क्षमादानको व्यक्त करनेसे हम लोगोंमें साहसका प्रबल जोर आ जायेगा। उस साहसके सामने कोई भी डायर या जानसन भारतके उन्नत ललाटपर कोई बोझा नहीं डाल सकेगा। इसका मुझे विशेष ख्याल नहीं है कि इस समय भारतवासियोंके हृदयोंमें अपने विचारोंका समावेश नहीं कर सकता। हम लोग इस समय इतने गिर गये हैं, अपनेको इतना पददलित समझते हैं कि हममें क्रोध प्रकट करने या बदला लेनेकी भी शक्ति नहीं रह गयी। पर मैं यह बात दृढ़तासे कह सकता हूँ कि दंड देनेके समय इस अधिकारके परित्यागसे ही भारतवर्ष अधिक लाभ उठा सकता है। हमारे सामने इससे भी अधिक महत्त्वपूर्ण काम है। हमें संसारको इससे भी उत्तम संदेश देना है।

मैं स्वप्नदर्शी या आदर्शवादी नहीं हूँ। मैं पक्का व्यवहारी हूँ। अहिंसा-धर्म केवल ऋषि-मुनि और तपस्वियोंके लिए नहीं है। जन-साधारणके लिए भी वह उतना ही उपयोगी और स्वीकार करने योग्य है। जिस तरह पशुओंका धर्म हिंसा है उसी तरह हमारा धर्म अहिंसा है। पशुमें वही प्रधान रहती है और वह हिंसाके अतिरिक्त और कोई नियम या कानून नहीं जानता। पर मनुष्य धर्मका उससे उन्नत नियमको अंगीकार करना चाहिये अर्थात् आत्मबलको उसे स्वीकार करना चाहिये।

इसीलिए मैंने भारतके समक्ष आत्मत्यागके प्राचीन नियमको रखनेका साहस किया है; क्योंकि उसी तपस्या या आत्मत्यागका दूसरा नाम सत्याग्रह, असहयोग या निष्क्रिय प्रतिरोध है। जिन ऋषियोंने हिंसाके बीचमेंसे अहिंसाका मंत्र निकाला उनमें न्यूटनसे कहीं अधिक क्षमता थी। उनकी वीरता और साहसिक शक्ति वेलिंगटनसे कम नहीं थी। शस्त्र-शक्तिके प्रयोगको भलीभाँति समझकर उन्होंने उसकी निःसारता देख ली और इसलिए उन्होंने उस खिन्न और श्रांत संसारको सिखलाया कि मोक्ष या उद्धार अहिंसाके द्वारा जिस तरह हो सकता है, हिंसाके द्वारा उस तरह नहीं हो सकता।

अहिंसाका अभिप्राय है तपस्या या आत्मोत्पीड़न। इससे यह भाव नहीं निकलता कि हमने दुराचारीके दुराचारके सामने भय और दुर्बलताके कारण सिर झुका दिया है, बल्कि इससे यह ज्ञात होता है कि हमने अहिंसाके द्वारा ही उसके पशुबलका सामना करनेका निश्चय किया है। इसके अनुसार काम करनेसे एक व्यक्ति भी अत्याचारीके अत्याचारका सामना करके अपनी मर्यादाकी रक्षा कर सकता है, अपना धर्म बचा सकता है, अपनी आत्माकी रक्षा कर सकता है और उस साम्राज्यके उत्थान या पतनकी योजना कर सकता है।

इसलिए मैं भारतको अहिंसाका मंत्र दे रहा हूँ, क्योंकि मैं जानता हूँ कि वह दुर्बल है। उसे अपनी शक्तिका अनुमान करके अहिंसाके पथपर चलना चाहिये। उसे अपनी शक्तिका पता लगानेके लिए शस्त्र-शिक्षाकी कोई आवश्यकता नहीं है। हम बल-शक्तिकी आवश्यकता इसलिए समझते हैं कि हम अपनेको हाड़-माँसका एक पुतला समझते हैं। मैं चाहता हूँ कि भारतवासी इस बातको समझ लें कि उनमें एक आत्मा है जो अमर है, जिसका नाश नहीं हो सकता, जो शारीरिक दुर्बलताके ऊपर उठ सकती है और संसारकी सभी बल-शक्तिका सामना कर सकती है। भगवान रामचंद्रने अपने बानरोंके एक दलको लेकर अगाध समुद्रसे घिरी लंकापर चढ़ाई करके दश-सिरवाले रावणके साथ युद्ध ठाना। इसका क्या अभिप्राय है? क्या यही पशु-बलके ऊपर आत्मबलके विजयका ज्वलंत उदाहरण नहीं है? मैं ऊपर कह चुका हूँ कि मैं व्यावहारिक आदमी हूँ। इसलिए मैं उस समयकी प्रतीक्षा नहीं कर सकता, जब भारत इस आत्मबलकी उपयोगिताको समझ सकेगा। भारत जानता है कि मशीनगनों और सुरंगोंके सामने उसकी शक्ति बेकार है, वह उनसे डरकर कायर बन गया है। इसी दुर्बलताके कारण वह असहयोगको स्वीकार कर रहा है। यदि इसी विश्वाससे अधिक लोगोंने इसे अपनाया तो अभीष्टकी सिद्धि अवश्य होगी अर्थात् ब्रिटिश अन्याय-परायणताका नाश अवश्य हो जायगा।

सिनफिन तथा असहयोगसे कोई संबंध नहीं है, क्योंकि एकका ध्येय हिंसा है और दूसरेका अहिंसा। पर मैं हिंसाके पक्षपातियोंसे भी इस बातकी प्रार्थना करूँगा कि कमसे कम एक बार तो इसे आजमाकर देख लें कि इससे क्या फल होता है। इसकी यदि असफलता हुई तो इसका कारण यह नहीं होगा कि इसमें

किसी तरहकी आंतरिक दुर्बलता है बल्कि इसका कारण यह होगा कि इसमें लोगोंने विश्वास नहीं किया और इसे अपनाया नहीं। वही समय सच्चे भय और आतंकका है। उच्च आत्मासे, जो राष्ट्रीय अपमानको नहीं सह सकती, अपने क्रोधको प्रकट करेंगी और हिंसाका सहारा लेंगी। पर इसका परिणाम जहाँतक मैं समझता हूँ यह होगा कि वे अपना, अपनी जाति तथा अपने देशका उद्धार किये बिना नष्ट हो जायँगी। यदि आज भारत तलवारका सहारा लेता है तो संभव है कि क्षणिक विजय उसे प्राप्त हो जाय। पर, यह भारत मेरे अभिमानका कारण नहीं रह जायगा। मैं भारतमें तन-मनसे लगा हूँ क्योंकि मेरा अपना कुछ नहीं है, मेरा सर्वस्व उसी भारतका है। मेरी दृढ़ धारणा है कि वह विश्वको नया संदेश देगा। वह अंधोंकी तरह यूरोपका अनुकरण नहीं करेगा। जिस समय भारत तलवारके सिद्धांतको स्वीकार कर लेगा, उसी समय मेरी परीक्षाका समय भी उपस्थित हो जायगा। मुझे पूरी आशा है कि उस समय मैं किसी भी तरह अपनेको अयोग्य नहीं साबित करूँगा। मेरा धर्म किसी सीमाके अंतर्गत नहीं है। यदि मेरे आदर्शमें मेरा अटल विश्वास है तो वह भारतके प्रति जो हमारा प्रेम है उसे अवश्य लाँघ जायगा। मैं जानता हूँ कि हिंदू धर्मकी जड़ अहिंसा है और अहिंसाके द्वारा ही मैंने भारतकी सेवा करना निश्चय किया है।

इसलिए मेरी उन लोगोंसे प्रार्थना है, जो मुझपर विश्वास नहीं करते, कि आप कृपापूर्वक इस विश्वासपर कि मैं अंतमें हिंसाकी योजना अवश्य करूँगा, इस आंदोलनमें हिंसाका समावेश करके इसे कलुषित न कीजिये। मैं रहस्यकी नीतिको पाप समझता हूँ। मैं उन लोगोंसे प्रार्थना करूँगा कि वे अहिंसात्मक असहयोगको आरंभ कर दें। उन्हें आपसे आप ही विदित हो जायगा कि मेरे हृदयमें कोई अन्य भाव गुप्त या छिपे नहीं हैं।

यंग इंडिया
११ अगस्त, १९२०

"आवेश और क्रोधको वशमें कर लेनेसे शक्ति बढ़ती है और आवेशको आत्मबलके रूपमें परिवर्तित कर दिया जा सकता है।"

—गांधीजी

मेरा पथ

यूरोप और अमेरिकामें आजकल मेरे प्रति लोगोंका ध्यान खिंच रहा है। यह मेरे लिए सौभाग्य और दुर्भाग्य दोनों ही की बात है। सौभाग्यकी बात तो इसलिए है कि पश्चिममें भी मेरे संदेशका लोग समझते और मनन करते हैं। मेरा दुर्भाग्य यह है कि कोई तो अनजानमें उसकी महत्ता बहुत ही बढ़ा देते हैं और कोई तो जान-बूझकर उसका रूप बिगाड़ देते हैं। सत्य सर्वदा स्वावलंबी होता है और बल तो उसके स्वभावमें ही होता है। इसलिए जब मैं देखता हूँ कि लोग मेरे संदेशको गलत रूपमें पेश करते हैं तब भी मैं विचलित नहीं होता। एक यूरोपियन मित्रने कृपापूर्वक मुझे इस बातकी चेतावनी भेजी है कि या तो बुरी नीयतसे या भूलसे रूसमें मेरे मतके विषयमें बड़ी गलतफहमी फैली हुई है। मालूम नहीं उन्हें कहाँतक सच खबर मिली है। नीचे उनके पत्रका अनुवाद लीजिये।

"बोलशेविक सरकार गांधीजीके पीछे अजीब-अजीब प्रयत्न कर रही है। कहा जाता है कि बर्लिन-स्थित रूसी राज्य प्रतिनिधि क्रेसटिंसकीको पर-राष्ट्रसचिवकी ओरसे कहा जायगा कि वह अपनी सरकारकी ओरसे गांधीजीका स्वागत करें और इस स्थितिसे फायदा उठाकर गांधीजीके अनुयायियोंमें बोलशेविक मतका प्रचार करानेका उद्योग करें। इसके अलावे क्रेसटिंसकीको यह भी काम दिया जायगा कि गांधीजीको रूसमें आनेके लिए निमंत्रण दें। एशियाकी दलित-पीड़ित जातियोंमें बोलशेविक साहित्यके प्रचारके लिए धन खर्च करनेका भी उन्हें अधिकार दिया गया है। ओरियंटल-क्लब सेक्रेटेरियटके कामके लिए वे गांधीजीके नामपर एक थैली खोलनेवाले हैं जिससे कि उनके (गांधीजीके या मास्को-वालोंके ?) मतको माननेवाले विद्यार्थियोंको सहायता दी जायगी। अंतमें, इसमें तीन हिन्दू भरती किये जायँगे। १८ अक्तूबरको यह सब रूसी समाचार-पत्रोंमें प्रकाशित हो गया है।"

इस मजमूनसे इस खबरका कुछ रहस्य मिल जाता है जिसके द्वारा मेरे जर्मनी और रूस जानेके लिए आमंत्रित किये जानेकी संभावना बतायी गयी थी। यह कहनेकी तो जरूरत ही नहीं है कि न तो मुझे ऐसा कोई निमंत्रण ही मिला है और न मैं इन महान देशोंमें जानेकी कुछ अभिलाषा ही रखता हूँ। क्योंकि मैं जानता हूँ कि मेरे प्रतिपादित सत्यको अभी खुद भारतवर्षने भी पूरे तौरसे ग्रहण नहीं किया है—वह अभी यथेष्ट रूपमें प्रस्थापित भी नहीं हो पाया है। हिन्दुस्तानमें जो काम मैं कर रहा हूँ, वह अभी प्रयोगावस्थामें ही है। ऐसी हालतमें मेरे लिए विदेशोंमें जाकर किसी साहसिक कार्यके करनेका समय अभी नहीं आया है।

यदि हिन्दुस्तानमें ही यह प्रयोग प्रत्यक्ष रूपसे सफल हो जाय तो मैं पूर्ण रूपसे संतुष्ट हो जाऊँगा।

मेरा रास्ता साफ है। हिंसात्मक कामोंमें मेरा उपयोग करनेके सभी प्रयत्न अवश्य विफल होंगे। मेरे पास कोई गुप्त मार्ग नहीं है। मैं सत्यको छोड़कर किसी कूटनीतिको नहीं जानता। मेरा एक ही शस्त्र है—अहिंसा। संभव है कि मैं अनजाने, कुछ दूरके लिए गलत रास्ते भटका लिया जाऊँ किंतु यह हमेशाके लिए नहीं चल सकता। अतएव मैंने अपने लिए ऐसी कैद निश्चित कर ली है जिसके दायरेके भीतर ही मुझसे काम लिया जा सकता है। इसके पहले भी मुझसे अनुचित काम निकालनेके अनेक प्रयत्न किये गये हैं। जहाँतक मुझे मालूम है, वे हर बार निष्फल ही हुए हैं।

बोलशेविज्मको मैं अभी ठीक-ठीक नहीं समझ सका हूँ। मैं इसका अध्ययन भी नहीं कर सका हूँ। मैं यह भी नहीं कह सकता कि रूसके लिए अंतमें यह लाभकारक होगा वा नहीं। तो भी इतना तो मैं अवश्य जानता हूँ कि जहाँतक इसका आधार हिंसा और ईश्वर-विमुखतापर है, यह मुझे अपनेसे दूर ही हटाता है। मैं यह नहीं मानता कि हिंसात्मक लघुपथोंमें सफलता मिलती है। जो बोलशेविक मित्र इस समय मेरी हरकतपर ध्यान दे रहे हैं उन्हें यह समझ लेना चाहिये कि मैं ऊँचे उद्देश्योंकी चाहे जितनी प्रशंसा करूँ और उनके साथ सहानुभूति दिखलाऊँ किंतु श्रेष्ठसे भी श्रेष्ठ कार्यके लिए मैं हिंसात्मक पद्धतिका अटल विरोधी हूँ। अतएव हिंसावादियोंके और मेरे मिलापके लिए कोई गुंजाइश नहीं है। इतना होनेपर भी मेरा अहिंसा-धर्म मुझे न केवल नहीं रोकता है बल्कि अराजकों और अन्य सभी हिंसावादियोंसे संपर्क रखनेपर मजबूर करता है। किंतु यह संसर्ग केवल इसी आशयसे है कि उन्हें मैं उस राहसे बचाऊँ जो मुझे गलत दिखाई देती है। क्योंकि मुझे अपने अनुभवसे विश्वास हो गया है कि स्थायी कल्याण असत्य और हिंसाका फल कभी हो ही नहीं सकता। यदि मेरा यह विश्वास केवल एक भोलेकी भ्रांति ही हो तो भी शायद लोग मान लेंगे कि यह है एक मनोहारिणी भ्रांति।

हिंदी नवजीवन
१४ दिसंबर, १९२४

'मेरा जीवन खुली पुस्तक है; उसमें कोई भेद नहीं और मैं रहस्यको प्रोत्साहन भी नहीं देता। सत्य ही परमात्मा है और उसीके निर्देशसे हमारा पथ-प्रदर्शन होता रहे, यही मेरी कामना है।"

—गांधीजी

अहिंसाका मर्म

एक सज्जन नीचे लिखे सवाल करते हैं—

१. क्या यह बात सच है कि विदेशी चीनीमें हड्डियाँ तथा खून आदि अपवित्र चीजें डाली जाती हैं ?

२. अहिंसा-व्रतका पालन करनेवाला मनुष्य विदेशी शक्कर खा सकता है ?

३. जो शख्स अहिंसाकी दृष्टिसे खादी पहनते हैं वे स्वराज्यके मिलनेके बाद भी खादी पहनेंगे ?

४. खादी पहनना अहिंसाका सवाल है या राजनीतिक सवाल है ? हिंसाकी दृष्टिसे देखें तो मिलके कपड़ेमें अधिक हिंसा है या विलायती कपड़ेमें, हाँलाकि दोनोंके यन्त्र एकसे होते हैं ?

५. अहिंसा-व्रतका पालन करनेवाला चाय पी सकता है ? यदि न पीना चाहिये तो उसमें हिंसा किस तरह होती है ?

ऐसे सवालोंका जवाब देते हुए मुझे संकोच होता है, क्योंकि ऐसे सवाल अज्ञान-सूचक हैं। कितने ही पाठक ऐसे सवाल किया करते हैं, इसलिए उनका निर्णय कर डालना उचित मालूम होता है। पर इन सवालोंके जवाबके निमित्त मैं अहिंसा-तत्त्वको भी जिस तरह समझता हूँ, विशद करना चाहता हूँ।

विदेशी चीनीके अन्दर हड्डियाँ आदि नहीं रहतीं; पर हाँ, ऐसा सुना है कि उनका उपयोग चीनी साफ करनेमें किया जाता है। यह माननेका कोई कारण नहीं कि ऐसा प्रयोग देशी चीनीके लिए नहीं होता है।

इस कारण अहिंसाकी दृष्टिसे शायद दोनों प्रकारकी शक्कर त्याज्य हैं अथवा यदि लेना ही हो तो शक्करकी बनावटकी जाँच करना उचित है। इसलिए विदेशी शक्करका त्याग स्वदेशीके उत्तेजनके लिए ही करना उचित है। पर शक्कर मात्रके त्यागके लिए अहिंसाकी एक सूक्ष्म दृष्टि है। प्रत्येक प्रक्रियामें हिंसा है। अतएव प्रत्येक खाद्य-पदार्थपर जितनी क[illegible]। उतना ही [illegible]। गन्ना चूसना सबसे उत्तम है; गुड़ उससे [illegible]ीनी उससे [illegible] परन्तु सर्व-साधारणके लिए इस सूक्ष्मताक[illegible]नेका मैं [illegible] नहीं समझता।

खा[illegible] अहिंसा [illegible]
बाद भी [illegible]ने। स्वराज्य [illegible]
बलपर वह[illegible]केगा। जो [illegible]
मुनहसर रह[illegible] होता है [illegible]

खादी पहननेमें अहिंसा, राजकाज और अर्थशास्त्र, तीनोंका समावेश हो जाता है। पूर्वोक्त नियमके अनुसार खादीपर प्रक्रियाएँ कम होती हैं, इसलिए उसमें हिंसा कम है।

इसके अतिरिक्त विदेशी या स्वदेशी मिलके कपड़ेका मुकाबला करते हुए, दोनोंमें एक ही प्रकारके यन्त्रोंके रहते हुए भी स्वदेशी मिलके कपड़ोंमें कम हिंसा है। क्योंकि ऐसा करते हुए प्रेम-भाव हमारे हृदयमें अपने पड़ोसी-भाइयोंके प्रति रहता है। परंतु विदेशी कपड़ेका इस्तेमाल करनेमें प्रेमका अभाव होता है। यही नहीं, बल्कि बिल्कुल स्वच्छंदता, स्वार्थ, या अपनी ही सुविधाका सवाल रहता है और परमार्थका, प्रेमका अर्थात् अहिंसाका अभाव रहता है।

अहिंसा-व्रत पालनेवाला चाय पी भी सकता है और न भी पी सकता है। चायमें भी प्राण है। वह निरुपयोगी वस्तु है। इस कारण उसके लेनेसे होनेवाली हिंसा अनिवार्य नहीं है। अतएव उसका त्याग इष्ट है। जहाँ-जहाँ चायके बगीचे हैं, वहाँ-वहाँ गिरमिटिया लोगोंसे मजूरी करायी जाती है। गिरमिटिया लोगोंके दुःखोंसे हिन्दुस्तान वाकिफ है। जिस पदार्थकी बनावट मजदूरोंके लिए कष्टदायी होती है, वह भी अहिंसाकी दृष्टिसे त्याज्य है। व्यवहारमें हम इतनी बारीक बातोंका ख्याल नहीं करते। इस कारण जिस तरह दूसरी चीजोंको अहिंसाकी दृष्टिसे निर्दोष समझते हैं उसी तरह चायको भी मान सकते हैं। वैद्यककी दृष्टिसे चायमें गुणकी अपेक्षा दोष अधिक हैं, खासकर जब वह उबाली जाती है।

इन प्रश्नोंसे यह जाना जाता है कि अहिंसाकी बातें करनेवाले अहिंसाको कितना कम पहचानते हैं। अहिंसा एक मानसिक स्थिति है। जिसने इस स्थितिको नहीं समझा है, वह चाहे कितनी ही चीजोंको त्याग दे, तो भी उसे उनका फल शायद ही मिलता हो। रोगी रोगके लिए बहुतेरी चीजोंसे परहेज करता है। इससे उसके इस त्यागका फल रोग दूर करनेके अतिरिक्त नहीं मिलता। दुष्काल-पीड़ितको यदि भोजन न मिले तो इससे उसे उपवासका फल नहीं मिलता। जिसका मन संयमी नहीं है उसकी कृतिमें चाहे संयम भले ही दिखायी दे, पर वह संयम नहीं है। खाद्य-अखाद्यके विषयमें अहिंसाका समावेश नहीं होता। अहिंसा क्षत्रियका गुण है। कायर उसका पालन नहीं कर सकता। दया तो शूर-वीर ही दिखा सकते हैं। जिस कार्यमें जिस अंशतक दया है उस कार्यमें उसी अंशतक अहिंसा हो सकती है। इसलिए दयामें ज्ञानकी आवश्यकता है। अंध-प्रेमको अहिंसा नहीं कहते। अंध-प्रेमके अधीन होकर जो माता अपने बालकको अनेक तरह दुलराती है वह अहिंसा नहीं, अज्ञान-जात हिंसा है। मैं चाहता हूँ कि खाने-पीनेकी मर्यादाओंको महत्त्व न देकर लोग उसका पालन करते हुए भी अहिंसाके विराट रूपको, उसकी सूक्ष्मताको, उसके मर्मको समझें। रूढ़िके वशवर्ती होकर गो-माँस खानेवाला पश्चिमका कोई साधु पुरुष रूढ़िके अधीन होकर गो-माँसको

छोड़नेवाले पाखण्डी क्रूर मनुष्यसे कोटि गुना अधिक अहिंसक हैं। मुझसे प्रश्न पूछनेवाले खुद अपनेको कहें, करें, मैं विदेशी शक्कर, विदेशी कपड़े और चायको छोड़ता तो हूँ, पर मैं अपने पड़ोसीपर दया न करता होऊँ, गैरोंके लड़केको अपने लड़केके बराबर न मानता होऊँ, अपने व्यवसायमें मैं सचाईका पालन न करता होऊँ, अपने नौकर-चाकरोंको मैं अपना कुटुम्बी न मानकर उनके साथ प्रेम-भाव न रखता होऊँ तो मेरी खाने-पीनेकी मर्यादाका कुछ मूल्य नहीं। मेरी यह मर्यादा केवल आडम्बर है। नरसिंह मेहताका यह पवित्र वचन है 'ज्यों लगी आतमा तत्व चीन्यों नहीं त्यां लगी साधना सर्व झूठी'। आत्म-तत्त्वको पहचाननेके मानी हैं अहिंसामय होना। अहिंसामय होनेका अर्थ है विरोधीके प्रति प्रेम-भाव रखना, अपकारीका भी उपकार करना, अवगुणोंका बदला गुणके द्वारा देना और ऐसा करते हुए यह मानना कि यह तो मेरा कर्त्तव्य है, कोई बड़ी बात नहीं कर रहा हूँ।

हिंदी नवजीवन
१९ मार्च, १९२५

"मेरी आत्माका प्रकाश स्पष्ट और एक-सा है। सत्य और अहिंसाके प्रभावसे हम इस प्रकाशमें आनेसे नहीं बच सकते। संघर्ष, विग्रह और युद्ध तो पाप है। प्रेमसे ही शांतिकी स्थायी तौरपर स्थापना की जा सकती है। जहाँ प्रेम है, वहाँ जीवन है– विकास है और जहाँ घृणा है, वहाँ विनाश है। हिंसाके हथियारको फेंक देनेके बाद प्रेमका प्याला ही प्रस्तुत किया जा सकता है।"

—गांधीजी

❀

दुनियामें कैसे रहें ?

एण्ड्रयूज साहबका एक लेख 'यंग इण्डिया'में पढ़कर एक सज्जनने नीचे लिखा प्रश्न एण्ड्रयूज साहबसे पूछा। उन्होंने कुछ महीने पहिले मुझे उत्तरके लिए यह दिया था—

"मेरा जन्म और लालन-पालन देहातमें हुआ है। मेरे पिता 'अहिंसा परमो धर्मः'-का उच्चार अपने मित्रोंके साथ धार्मिक वाद-विवादके समय किया करते थे। जैसा कि आपने कहा है यह अद्वैत-तत्त्वसे फलित होनेवाला उसका सहायक तत्त्व है। सार-रूपसे उसे मैं स्वीकार करता हूँ। इसके साथ मैं यह भी कहना चाहता हूँ कि अद्वैतमूकी परम समाप्ति आध्यात्मिक जीवनकी एकतामें ही नहीं हो जाती है। जैसा कि आप भी मानते हुए दिखायी देते हैं, अखिल विश्वके भूतमात्रके प्रति, बिना किसी अपवादके आत्मभाव ही अद्वैतम् है।

"ज्यों ही मनुष्य अहिंसाको अपना मार्गदर्शक बनानेकी अवस्थामें पहुँच जाता है त्यों ही उसकी प्रगति निश्चित हो जाती है। उस अवस्थामें तमाम भेद-भाव विलीन हो जाते हैं। जब हम सबमें एकताका अनुभव करने लगते हैं तब हम किसी भी वस्तुका संहार किस तरह कर सकते हैं, जो कि हमारा ही एक अंग है ?

"यही संदेह उठने लगता है। क्या अहिंसाके भावको ठेठ व्यवहारमें उसके अन्त-तक—आखिरी मर्यादातक निबाहना होगा। यदि ऐसा करना पड़े तो क्या उस अवस्थामें वह एक सद्गुण रह जायगा ?

"मेरे पिता 'अहिंसा परमो धर्मः' का उच्चारण जब-तब किया करते थे। परंतु जब हमारे घरकी भैंस दूध देते समय एक जगह खड़ी नहीं रहती थी तब डंडे मारकर उसे सीधी कर देते थे। अपने बच्चोंको दूधके लिए क्या उनका ऐसा करना ठीक था ?

"हिंदू लोग रामके अवतारको धर्मका अवतार कहते हैं। रामने रावणको मारा था। क्या रामने यह बुरा किया ? रामने बालिका वध किया। जब बालिने उसका विरोध किया तब उन्होंने उत्तर दिया—

अनुज वधू भगिनी सुत नारी, सुनु सठ ये कन्या सम चारी।
इनहिं कुदृष्टि बिलोकइ जोई, ताहि बधे कछु पाप न होई॥

"देखिये, यहाँ उन्हीं धर्मके अवतारके मुँहमें "हन्तेको हनिए पाप दोष ना गनिए"का, सिद्धांत ठूस दिया गया है।

"और नीचे उतरकर हम भगवान कृष्णके समयमें आवें। भगवद्गीताको लीजिये, अर्जुन अपने सगे-संबंधियोंका वध करनेके लिए नहीं तैयार होता है। भगवान कृष्ण उसे युद्ध करके उनका नाश करनेका आग्रह करते हैं और अहिंसा सिद्धांत पीछे छिप जाता है।

करना है। अहिंसाके पूर्ण-पालनकी अवस्थामें अवश्य ही जीवनकी स्थिति असंभव हो जाती है। अतएव हम सब मर जायँ तो परवा नहीं, सत्यको कायम रहने देना चाहिये। प्राचीन ऋषि-मुनियोंने इस सिद्धांतको आखिरी मर्यादातक पहुँचाया है और यह कह दिया है कि भौतिक जीवन एक दोष है, एक जंजाल है। मोक्ष देहादिके परेकी ऐसी अदेह-सूक्ष्म अवस्था है, जहाँ न खाना है, न पीना है और इसीलिए जहाँ न दूध दुहनेकी आवश्यकता है और न घांस-पातको तोड़ने की। संभव है इस तत्त्वको समझना या ग्रहण करना कठिन हो, संभव है कि पूर्णत: उसके अनुकूल जीवन व्यतीत करना असंभव हो, और है भी। फिर भी मुझको इस बातमें कोई संदेह नहीं है कि सत्य यही है और इसलिए भलाई इस बातमें है कि हम अपने जीवनको अपनी पूरी शक्तिभर उसके अनुकूल बनावें। यथार्थ ज्ञानका हो जाना मानों आधी लड़ाईको जीत लेना है। इस भव्य सिद्धांतका हम जितना ही पालन अपने जीवनमें करते हैं उतना ही वह जीवन रहने और प्रेम करने लायक होता है। क्योंकि उस अवस्थामें बजाय खुद सदा शरीरके वशमें रहनेके हम अपने शरीरको अपने वशमें रखते हैं।

हिंदी नवजीवन
१९ मार्च, १९२५

"कमसे कम, मरनेसे हमें बिल्कुल नहीं डरना चाहिये। जन्म और मरन तो हमारे भाग्यमें लिखा हुआ है, फिर उसमें हर्ष-शोक क्यों करें? अगर हम हँसते-हँसते मरेंगे तो सचमुच एक नये जीवनमें प्रवेश करेंगे।"

—गांधीजी

स्वराज्यमें

"क्या आपके स्वराज्यमें सेनाके लिए कोई जगह है? आपके स्वराज्यमें क्या सरकार सेना रखेगी? यदि हाँ, तो क्या वह आवश्यकता पड़नेपर शारीरिक शक्ति भी काममें लायेगी या अपने दुश्मनोंके विरुद्ध सत्याग्रह करने लग जायगी?"

दुःखकी बात है कि आजके मेरे स्वराज्यमें सेनाके लिए भी स्थान है। मेरे क्रान्तिकारी साथियोंको यह मालूम होना चाहिये कि देशकी जनताको निःशस्त्र कर और नपुंसक बना देनेको मैंने अंग्रेजोंका सबसे बड़ा पाप कहा है। मुझमें इतनी शक्ति नहीं कि मैं सारे देशको अहिंसामय कर सकूँ, इसलिए मैं अहिंसाका प्रचार देशकी स्वतंत्रता पाने और उसके द्वारा अन्तर्राष्ट्रीय संबंध स्थापित करनेके लिए ही देता हूँ। किंतु मेरी कमजोरीसे यह न समझना चाहिये कि अहिंसाके सिद्धांतमें कोई कमजोरी है। अपनी बुद्धि द्वारा मैं अहिंसाके पूर्ण गौरवको देखता हूँ। मेरा हृदय उसका अनुभव करता है। किंतु मुझमें अभी वह क्षमता नहीं है जिससे पूर्ण रूपसे अहिंसाकी शिक्षा दे सकूँ। इस कामके लिए अभी हममें पूरी शक्ति नहीं आयी है। मुझमें अभी क्रोध है, मुझमें अभी द्वैतभाव है। मैं अपने मनोवेगोंपर शासन कर सकता हूँ। उन्हें मर्यादामें रख सकता हूँ किंतु पूर्ण रूपसे इस प्रकार प्रचार करनेमें कि उसका प्रभाव पड़े, मनोवेगोंसे बिल्कुल मुक्त होना चाहिये। मुझे ऐसा होना चाहिये कि मुझसे कोई पाप न हो। क्रांतिकारियोंको मेरे साथ और मेरे लिए प्रार्थना करनी चाहिये कि मैं शीघ्र वैसा बन सकूँ। किंतु इसी बीच उसे मेरे साथ वह कदम उठाना चाहिये जिसे मैं प्रकाशकी भांति देख रहा हूँ। अर्थात् अहिंसा द्वारा भारतकी स्वतंत्रता प्राप्त करना चाहिये और तब स्वराज्यमें आपके और मेरे पास शिक्षित, बुद्धिमान और संयमी पुलिसकी सेना होगी जो देशके भीतर शांति रखे और बाहरी हमला करनेवालोंसे रक्षा करेगी, यदि उस समयतक इन दोनोंके लिए कोई और अच्छा रास्ता नहीं दिखाई देता।

यंग इण्डिया
७ मई, १९२५

किनारेपर

एक पत्र-लेखक कुछ प्रश्न पूछकर अंतमें लिखते हैं :—

"मैं आशा करता हूँ कि आप इन विषयोंपर प्रकाश डालनेकी कृपा करेंगे और जबतक मैं त्राही-तबाही न पूछने लगूँ, मेरे साथ चर्चा जारी रखेंगे। मैं आपका अनुयायी हूँ, आपके नेतृत्वमें जेल जा चुका हूँ। जब मैं आपके बहुत नजदीक था और बहुत मौका भी था तब भी मैंने आपसे कोई बात-चीत नहीं की; क्योंकि मैं आपका समय बरबाद नहीं करना चाहता था। मैंने आपके चरण-स्पर्शतक नहीं किये। पर अब आपके युक्तिवाद और राजनीतिक विचारोंसे मेरा विश्वास हिल रहा है। मैं कोई क्रान्तिवादी नहीं हूँ, पर मैं उसके किनारेपर हूँ। यदि आप इन बातोंका जवाब संतोषजनक देंगे तो आप मुझे बचा लेंगे।"

अब मैं क्रमशः उनके सवालोंको लेता हूँ—

"अहिंसा क्या है? चित्तकी एक वृत्ति है या प्राणका नाश न करना है? यदि यह दूसरी बात हो तो क्या यह संभवनीय है कि हम इसके अंततक जाकर इसका पालन कर सकें। क्योंकि हम अपने भोजन इत्यादिमें रोज असंख्य प्राणियोंकी हिंसा करते हैं और उस अवस्थामें हम वनस्पतिको भी नहीं छू सकते।"

अहिंसा चित्तकी एक वृत्ति भी है और तज्जात कर्म भी है। इसमें कोई संदेह नहीं कि वनस्पतिमें भी प्राण है; परंतु वनस्पतिका उपयोग किये बिना भी हम नहीं रह सकते। यह जीवके नाशसे तो किसी तरह कम नहीं है। सिर्फ उसे क्षम्य मानना चाहिये।

"यदि हम जीव-हिंसासे बच नहीं सकते, तो इसके यह मानी नहीं कि हम बिना आगा-पीछा सोचे उसकी हिंसा करते ही रहें; पर उस हालतमें आवश्यकता साबित होनेपर, सिद्धांतकी दृष्टिसे उसपर आपत्ति नहीं की जा सकती। कार्य-साधकताकी दृष्टिसे भले ही आक्षेप हो।"

ऐसे अवसरपर भी जहाँ हिंसा की आवश्यकता सिद्ध होती हो, सिद्धांतकी दृष्टिसे हिंसाका समर्थन नहीं कर सकते। कार्य-साधकताकी ही दृष्टिसे उसका बचाव किया जा सकता है।

"यदि अहिंसाका अर्थ है प्राणका न नाश करना, तो फिर किसी शख्सको प्राणका नाश करनेके लिए किस तरह कह सकते हैं—ऐसे कामके लिए भी जो कितना ही पवित्र और धार्मिक हो? क्या वह खुद उसकी अपनी प्रतिहिंसा न होगी?"

हाँ, मैं किसी आदमीसे बराबर यह कह सकता हूँ कि किसी कामके लिए

अपनी जान दे दो, पर अपनेको हिंसाका दोषी न बनाओ। क्योंकि अहिंसाका अर्थ है—औरोंको तकलीफ न देना।

"अपने प्राणसे प्यार करना मनुष्य-स्वभाव है। जब एक आदमी अपने देश या समाजकी आवश्यकताके लिए अपनी जान देता है तो आवश्यकता पड़नेपर वह औरोंकी जान कुरबान क्यों नहीं कर सकता? हमें सिर्फ इतना ही साबित करना होगा कि उसकी जरूरत थी। सो यह भी कार्य-साधकताका ही सवाल है।"

जो अपनी जानसे मुहब्बत करेगा वह उसे खोयेगा। जो अपनी जानको गवाँ देगा वह उसे पायेगा। आवश्यकताकी बिनापर दूसरेकी जानको कुरबान करनेका समर्थन नहीं कर सकते, क्योंकि आवश्यकताको साबित करना असंभव है। हमें खुद उसमें काजी नहीं बनना चाहिये। बल्कि वही एक-मात्र काजी होंगे जिनकी जान हम लेना चाहते हैं। अहिंसाके पक्षमें एक अच्छा कारण यह है कि हमारा निर्णय गलत भी हो सकता है। मध्ययुगके उन ईसाई लोगोंका अटल विश्वास था कि हमारा कार्य धर्म्य है; पर अब हम जानते हैं कि वे बिल्कुल गलतीपर थे।

"कुरबानी और खून में क्या भेद है?"

कुरबानीके मानी हैं खुद कष्ट सहना, जिससे दूसरेको लाभ पहुँचे। खूनके मानी हैं दूसरेको तकलीफ देना—मार डालना जिससे खूनी या जिसकी तरफसे खून किया गया है उसे लाभ हो।

"क्या जो डाक्टर आपको नश्तर लगाता है वह आपको कुछ समयके लिए तकलीफ पहुँचानेके कारण निन्दा-योग्य है? पर क्या हम उसकी चित्तकी वृत्ति अर्थात् बीमारको लाभ पहुँचानेके हेतुपर ध्यान रखकर उसके हिंसात्मक कार्यपर ध्यान न दे, उसकी और भी अधिक प्रशंसा नहीं करते हैं?

यह हिंसा शब्दका अप-प्रयोग है। हिंसाका अर्थ है किसीको बिना उसकी रजामंदीके या बिना उसे किसी तरहका लाभ पहुँचाये चोट पहुँचाना। मेरी बाबत तो सर्जन मेरे ही हितके लिए, मेरी लिखित रजामंदीसे मुझे कुछ समयके लिए तकलीफ पहुँचाता है। पर एक क्रांतिकारी अपने शिकारको उसके भलेके लिए नहीं लूटता है, भलेके लिए नहीं वध करता है—उसे तो वह चोट पहुँचानेके ही काबिल समझता है—बल्कि समाजके कल्पित हितके लिए।

"क्या और बलोंकी तरह शारीरिक बल भी जीवनका प्रबल अंश नहीं है? जिस प्रकार अहिंसाका आश्रय भीरु लोग अपनी भीरुताको छिपानेके लिए ले सकते हैं उसी तरह हिंसाका भी दुरुपयोग पशु और जालिम कर सकते हैं। इससे यह साबित नहीं होता कि हिंसा खुद कोई बुरी चीज है।"

शारीरिक बल निस्संदेह जीवनका प्रबल अंश है। हाँ, जालिमोंने जरूर ही हिंसाका दुरुपयोग किया है। परंतु हिंसाका जो लक्षण मैंने किया है उसमें तो उसका सदुपयोग कल्पनातीत है। इससे पहलेवाले सवालके जवाबमें उसकी परिभाषा देखिये।

"पागलों तथा भयंकर अपराधियोंको तो, जो समाजको हानि पहुँचाते हैं, आप जेलमें भेजेंगे। तो क्या आप हमें सभ्य अपराधियोंको, जो सरकारी अफसरोंके रूपमें काम कर रहे हैं, मारनेके बजाय गिरफ्तार करने तथा हिमालयकी किसी गुहामें ले जाकर कैद करनेकी इजाजत देंगे?"

मैं नहीं कह सकता कि पागलों और मुजरिमोंको, फिर वे भयंकर हों या नहीं, जेलमें रखना अर्थात् सजा देना ठीक है। पागल तो अब भी इस तरह नहीं रखे जाते हैं। पर हम तेजीसे उस समयके नजदीक पहुँच रहे हैं जब मुजरिमोंको भी सजाके लिए नहीं बल्कि सुधारके लिए संयममें रखना पड़े। पर हाँ, मैं खुशीसे उस संघमें शामिल होऊँगा जो, जानमें या अनजानमें, भारतका खून चूसनेवाले वायसराय, हर एक सिविलियन अंग्रेज अथवा हिंदुस्तानीको जेल भेजनेके लिए कायम होगा; पर शर्त्त यह कि एक तो उसमें उनके आरामकी पूरी गुंजाइश रहे, दूसरे ऐसी तजवीज मेरे सामने पेश हो, जो हर तरह काममें आने लायक हो। और मैं तो उस अवस्थामें भी उसमें शरीक होनेके लिए तैयार हूँ जब बंदीवास मेरे हिंसाके लक्षणमें भी आ जाता हो।

"कौन-सी बात अधिक अमानुषिक और भयंकर है? बल्कि कौन अधिक हिंसात्मक है? ३३ करोड़ आदमियोंको तकलीफ होने दें, लड़ और मिट जाने दें या कुछ हजार लोगोंका वध होने दें? आप किस बातको ज्यादः अच्छा समझेंगे? अधःपात होते होते ३३ करोड़ जनताका धीरे-धीरे विलयको प्राप्त हो जाना या कुछ सौ लोगोंका संहार हो जाना? हाँ, यह जरूर साबित करना होगा कि कुछ सौ लोगोंके वधसे ३३ करोड़का अधःपात रुक जायगा। पर तब यह तफसीलका सवाल रहेगा, सिद्धांतका नहीं। यह कार्य-साधक है या नहीं, इसकी चर्चा फिर करेंगे। पर अगर यह साबित हो जाय कि कुछ लोगोंके संहारसे ३३ करोड़ लोगोंका अधःपात रोक सकते हैं, तो क्या आप हिंसापर सिद्धांतकी दृष्टिसे एतराज करेंगे?"

कोई सिद्धांत सिद्धांत नहीं है यदि वह सब तरह अच्छा न हो। मैं अहिंसाकी दुहाई इसलिए देता हूँ कि मैं जानता हूँ अकेले उसीके बलपर मनुष्य-जाति सर्वश्रेष्ठ श्रेयको पहुंचती है—अगले जन्ममें ही नहीं इस जन्ममें भी। मैं हिंसापर आक्षेप इसलिए करता हूं कि जब उससे हित होता हुआ दिखायी देता है तब तो वह अस्थायी होता है, पर उससे जो बुराई होती है वह स्थायी होती है। मैं नहीं मानता कि एक भी अंगरेजका खून करनेसे भारतवर्षका जरा भी लाभ होगा। यदि किसी एक शख्सने तमाम अंगरेजोंको कल ही मार डालना संभव बना लिया तो लाखों लोग, आजकी तरह ही, उससे दूर रहेंगे। मौजूदा हालतके लिए अंगरेजोंकी बनिस्बत हमारी जिम्मेदारी ज्यादः है। यदि हम सिर्फ अच्छा ही अच्छा करते रहें तो अंगरेज बुरा करनेके लिए अशक्त हो जायँगे। इसीलिए मैं आंतरिक सुधारपर इतना जोर दे रहा हूँ।

परंतु क्रांतिकारीके सामने तो मैंने अहिंसाको नीतिके सर्वोच्च आधारपर पेश नहीं किया है बल्कि कार्य-साधकताकी नीची बिनापर किया है। मैं कहता हूँ कि क्रांतिकारी तरीके भारतवर्षमें सफल नहीं हो सकते। यदि खुल्लमखुल्ला लड़ाई मुमकिन हो तो मैं शायद मान सकूँ कि हम हिंसा-पथको ग्रहण करें जैसा दूसरे देशोंने किया है, और कमसे कम उन्हीं गुणोंको प्राप्त करें जो रण-क्षेत्रमें जानेसे उदय होते हैं। पर युद्ध-कांडके द्वारा भारतके स्वराज्यकी प्राप्तिको तो, हम जहाँतक नजर पहुँचती है, किसी समयमें असंभव देखते हैं। युद्धके द्वारा चाहे हमें अंगरेजी शासनकी जगह दूसरा शासन मिल जाय, पर आत्म-शासन—जनताकी दृष्टिसे आत्म-शासन नहीं। स्वराज्यकी तीर्थ-यात्रा बड़ी कठिन, बड़ी कष्टप्रद चढ़ाई है। उसके मानी हैं देहातियोंकी सेवा करनेके ही उद्देश्यसे देहातमें प्रवेश करना—दूसरे शब्दोंमें इसका अर्थ है राष्ट्रीय शिक्षा—जनताकी शिक्षा। इसका अर्थ है, जनताके अन्दर राष्ट्रीय चैतन्य और जागर्त उत्पन्न करना। वह कोई जादूगरके आमकी तरह अचानक नहीं टपक पड़ेगा। वह तो वट-वृक्षकी तरह प्रायः बे-मालूम बढ़ेगा। खूनी क्रांति कभी चमत्कार नहीं दिखा सकती। इस मामलेमें जल्दी मचाना निःस्संदेह बरबादी करना है। चरखेकी क्रांति ही, जहाँतक कल्पना दौड़ती है, सबसे द्रुत क्रांति है।

"जब जीवनके परम स्वार्थका सवाल खड़ा होता है तब क्या तर्क और युक्तिको ताकपर नहीं रख दिया जाता है? क्या यह वस्तुस्थिति नहीं है कि कुछ स्वार्थी, जालिम और आग्रही लोग तर्क और युक्तिकी बात नहीं सुनते हैं और हुकूमत करते तथा सताते रहते हैं और एक जन-समाजके साथ अन्याय करते रहते हैं। आग्रही कौरवों तथा पाण्डवोंमें शांतिपूर्वक मेल करानेमें भगवान् श्रीकृष्ण भी सफल न हो सके, महाभारत चाहे उपन्यास न हो, बेचारा कृष्ण चाहे आध्यात्मिकतामें बढ़ा-चढ़ा न हो; पर खुद आप भी तो अपने उन न्यायाधीशको इस्तीफा देनेके लिए समझा न सके। हालां कि औरोंकी तरह वह भी आपको निरपराध मानता था। ऐसी बातोंमें आत्म-यज्ञके द्वारा समझानेसे कहाँतक सफलता मिल सकती है?"

यह बात दुःखपूर्ण, पर सच है, कि जहाँ स्वार्थका सम्बन्ध आता है, तर्क और युक्ति लोग ताकपर रख देते हैं। जालिम, हाँ बेशक, बड़ा आग्रही होता है। अंग्रेज जालिमको तो आग्रहका अवतार ही समझिये। पर वह सहस्रमुखी राक्षस है। वह नहीं चाहता कि मेरा वध हो। उसीके शस्त्रोंसे वह परास्त नहीं किया जा सकता; क्योंकि हमारे पास उसने कोई शस्त्र रहने ही नहीं दिया है। मेरे पास एक हथियार है, जो उसके कारखानेमें नहीं बनता और वह उसे हरण भी नहीं कर सकता। उसने अबतक जितने शस्त्रास्त्र पैदा किए हैं उनसे वह बढ़कर है। वह क्या है? अहिंसा और चरखा है उसका प्रतीक, इसीलिए मैंने उसे देशके सम्मुख पूरे विश्वासके साथ उपस्थित किया है। कृष्ण जो कुछ करना चाहते थे उसमें, महाभारतकार कहते हैं, वे असफल न हुए। वे सर्वशक्तिमान् थे।

उन्हें अपने उच्च पदसे उतारकर घसीटना फजूल है। पर यदि उनके विषयमें हम उन्हें निरा मर्त्य मनुष्य समझकर, विचार करें तो उनका पलड़ा ऊँचा उठ जायगा और उन्हें पीछेकी तरफ आसन मिलेगा। महाभारत, जैसा आमतौरपर कहते हैं, न तो उपन्यास है और न इतिहास है। वह मानव-आत्माका इतिहास है, जिसमें ईश्वर कृष्णके रूपमें मुख्यपात्र—नायक है। उस महाकाव्यमें ऐसी कितनी ही बातें हैं जिन्हें मेरी अल्प-बुद्धि अवगाहन नहीं कर पाती। उसमें कितनी बातें ऐसी हैं जो स्पष्टत: क्षेपक हैं। वह चुना हुआ खजाना नहीं है। वह तो एक खान है, जिसके खोदनेकी जरूरत है, जिसमें गहरे पैठनेकी जरूरत है, तब कंकड़-पत्थर निकालनेपर हीरे हाथ आते हैं। इसलिए मैं व्रतधारी क्रांतिवादियों, या उसके उम्मीदवारों अथवा उनके किनारे खड़े मित्रोंसे आग्रह करता हूँ कि वे अपना पैर पृथिवी मातापर ही जमा रखें और हिमालयके शिखरोंपर उड़ानें न मारे, जहाँ कवि अर्जुन तथा दूसरे वीरोंको ले गये हैं। हर हालतमें मैं तो उसपर चढ़नेकी कोशिश करनेसे भी इन्कार करूँगा। मेरे लिए भारतवर्षका मैदान ही काफी है।

अच्छा तो अब मैदानमें उतरकर, प्रश्नकर्त्ता इस बातको समझ लें कि मैं अदालत इसलिए नहीं गया था कि मैं न्यायाधीशको समझाऊं कि मैं निरपराध हूँ; बल्कि मैं गया था अपनेको पूरा अपराधी कुबूल करनेके लिए, ज्यादहसे ज्यादह सजा माँगनेके लिए। क्योंकि मैंने तो जान-बूझकर मनुष्य-कृत कानून तोड़ा था। न्यायाधीश मुझे निरपराध नहीं मान सकता था, नहीं माना भी। ज़ेल जानेमें कोई ज्यादह कुरबानी न थी। सच्ची कुरबानीका लोहा इससे कहीं मजबूत होता है। मेरे ये मित्र अहिंसाके फलितार्थको समझ लें। यह मतान्तरकी एक विधि है। मुझे इस बातका यकीन हो चुका है और यह कहनेके लिए क्षमा किया जाऊँ, कि मेरी दृढ अटल अहिंसाने हिंसाकी कितनी ही धमकियों और कृतियोंकी अपेक्षा ज्यादह अंगरेजोंको अपने विचारका कायल किया है। मैं कहता हूं कि जिस दिन ज्ञानयुक्त अहिंसा भारतमें आम चीज हो जायगी, स्वराज्य हमारे सामने होगा।

हिन्दी नवजीवन
२१ मई, १९२५

'मैं तो आत्माकी अमरतापर विश्वास करता हूं। जीवनके सागरमें हम सब बिंदुमात्र हैं और जीवनकी वास्तविकता ही सत्य है—आत्मा है—परमात्मा है।"

—गांधीजी

मेरा कर्त्तव्य

एक सज्जन लिखते हैं—

"आप मनुष्योंके प्रति तो अपना फर्ज अदाकर रहे हैं। लेकिन क्या आप यह नहीं देख सकते आज आप जिस प्रांतमें भ्रमण कर रहे हैं उसमें पशु और दूसरे जीव-जन्तुओंके प्रति भी आपका कुछ कर्त्तव्य है? बंगालमें जीवोंकी हिंसा बेहद होती है। इस विषयमें यदि आप गहरे उतरेंगे तो आपको यह भूमि अनार्य-सी प्रतीत होगी। जब आप गुजरातमें भ्रमण कर रहे थे उस समय मैंने यह पढ़ा था कि बैलोंको आर भोंककर चलते हुए देखकर आप गाड़ीसे नीचे उतर गये थे। तो क्या आप बंगालमें छुरी चलानेवालोंको कुछ भी उपदेश न देंगे? आपके उपदेशसे बहुत लाभ होगा। इस कार्यके लिए आपको अलग समय न देना होगा। बल्कि इससे एक पंथ और दो काज होंगे।"

एक तो लेखकने इस प्रकार लिखनेमें वैसी सामान्य भूल की है जैसी बहुतसे मनुष्य करते हैं। यह मानना कि उपदेश करनेसे इसका बहुत बड़ा परिणाम होगा, हमारा मोह है, और यह इसमें भी दिखायी दे रहा है। अनन्तकालसे यही अनुभव हो रहा है कि उपदेशका परिणाम बहुत ही अल्प होता है। सैकड़ों साधु आज उपदेश कर रहे हैं। सैकड़ों ब्राह्मण नित्य गीता भागवतादिका पाठ कर रहे हैं। लेकिन यह कहा जा सकता है कि उसका कुछ भी असर नहीं होता है। हाँ, किसी किसी उपदेशकका कुछ असर होता हुआ हम देखते अवश्य हैं लेकिन वह असर उसके उपदेशका नहीं होता बल्कि वह उसके कार्यका होता है। और जितना आचरण वह कर सकता है उससे अधिक वह उपदेश करे तो उसका कुछ-भी असर नहीं होता। यह सत्यकी खूबी है। उसे भाषाके आच्छादनसे कितना ही ढाँकिए वह नहीं ढक सकता। यदि हिमालयपर चढ़नेकी मेरी शक्ति नहीं है और फिर भी मैं हिमालयपर चढ़नेके लिए दूसरोंको उपदेश दूँ तो उसका कुछ भी असर न होगा लेकिन यदि चुपचाप उसपर चढ़कर उन्हें दिखाऊँ तो मेरे पीछे सैकड़ों लोग उसपर चढ़ जायेंगे। मनुष्यकी करनी ही सच्चा उपदेश है।

दूसरे, मनुष्यमें उपदेश करनेकी योग्यता भी चाहिये। मैं पशु-हिंसा नहीं करता हूँ। फिर भी मुझे यह स्वीकार कर लेना चाहिये कि पशु-हिंसा रोकनेकी योग्यता मुझमें नहीं है। मैं यह जानता हूँ कि पशुओंके प्रति हमारा क्या कर्त्तव्य है। लेकिन दूसरोंको उसे बतानेमें मैं असमर्थ हूँ। उसके लिए तो मुझमें बहुत अधिक पवित्रता, बहुत अधिक दयाभाव और बहुत ही अधिक संयम होना चाहिये। उसके बगैर मुझे बहुत सूक्ष्म-ज्ञान प्राप्त नहीं हो सकता। और उस ज्ञानके बिना मुझे आवश्यक भाषा भी प्राप्त नहीं हो सकती।

बिना ऐसा ज्ञान-प्राप्त किये आत्म-विश्वास नहीं होता। पशु-हिंसाका त्याग करनेकी मुझमें शक्ति है, यह आत्मविश्वास मुझे नहीं है। लेकिन मैं तो ईश्वरको माननेवाला हूँ। पशु-सेवाकी वृत्ति मुझमें बड़ी तीव्र है। मनुष्य तो अपना दुःख बता सकता है और उसे दूर करनेका प्रयत्न भी कर सकता है। पशुओंमें यह शक्ति नहीं। इसलिए उनके प्रति हमारा दुहरा फर्ज है। लेकिन यह सब जाननेपर भी उसके लिए शक्ति प्राप्त करनेकी इच्छा रखते हुए भी, मुझे उनकी सेवा करनेकी शक्ति न होनेके कारण बड़ी लज्जा मालूम होती है। उसके लिए मैं ईश्वरको दोष देता हूँ। उसने मुझे शक्ति क्यों नहीं दी ? इसके लिए मैं उसके साथ हमेशा झगड़ा करता हूँ और हमेशा उससे प्रार्थना भी करता हूँ। लेकिन ईश्वर तो स्वेच्छाचारी है। वह किसीका भी कहना नहीं सुनता है तो मेरी क्यों सुनने लगा ? ऐसा भले ही हो कि वह मेरी बात औरोंसे जल्दी सुन ले। लेकिन जब वह मुझे शक्ति देगा तब मैं, इन सज्जनको विश्वास दिलाता हूं कि, उनके कहनेकी राह नहीं देखूँगा। दरम्यान मेरी तपश्चर्या तो बराबर जारी ही रहेगी। जिस कार्यमें आज मैं मशगूल हो रहा हूं, उससे भी अधिक, पशुमात्रकी सेवा करनेकी शक्ति, मुझे क्यों न प्राप्त हो ? मेरा विश्वास है कि मैं कंजूस नहीं हूँ। मैं अपनी सब शक्तियोंको कृष्णार्पण कर चुका हूं। इसलिए यदि मुझे पशु-हिंसा रोकनेकी शक्ति प्राप्त होगी तो मैं उसे भी संग्रह करके न रखूंगा।

लेकिन इस दरम्यान जो अपरिहार्य है उसे तो सहन ही करना चाहिए। इस संसारमें तो अनेक स्थानोंपर निर्दोष मनुष्योंपर जुल्म हो रहे हैं, उन्हें रोकनेका हम कहाँ दावा करते हैं ? यह हमारी शक्तिके बाहर है यह मानकर, और जगत्का कल्याण चाहते हुए हम चुप रहते हैं। अशक्तिके कारण ही स्वदेशाभिमानको हम एक अलग गुण मानकर उसे बढ़ा रहें। लेकिन जो स्वदेशाभिमान धार्मिक है उससे जगतका अकल्याण नहीं होता। संसारका अकल्याण करते हुए अपने देशका भला करना मिथ्या स्वदेशाभिमान है। स्वदेशकी धार्मिक सेवामें जिस प्रकार संसार भरकी सेवाका समावेश हो जाता है उसी प्रकार मेरी मनुष्य-सेवामें वैसी पशु-सेवा और पशु-सेवामें कोई विरोध नहीं है।

आज हमारे देशमें एक प्रकारका धर्माडंबर फैला हुआ है। जो काम हम लोगोंसे नहीं हो सकते या जिस कामके करनेका कुछ अर्थ नहीं, ऐसे दयाके केवल दिखाऊ काम हम करते हैं और जो दयाके कार्य हम कर सकते हैं उन्हें नहीं करते। धीरा भगतकी भाषामें कहें तो हमलोग निहाईकी चोरी करते हैं और सुईका दान करनेका ढोंग करते हैं। गीताकी भाषामें कहें तो स्वधर्मका, जो हमारे लिए सुलभ है, थोड़ासा भी पालन करना छोड़कर हम परधर्मके पालनके बड़े बड़े विचार करते हैं और 'इतोभ्रष्टस्ततो भ्रष्टः' हो जाते हैं। ऐसी भूलोंसे हमें बच जाना चाहिए। यह कहनेके लिए ही मैंने पूर्वोक्त सूचनाका जवाब देना और पशु-हिंसा रोकनेके

दिया है। आज भी मेरी यही दृष्टि है। जिसके मनमें भय मौजूद रहा है वह यदि निःशस्त्र रहकर भयको दूर नहीं कर सकता तो वह अवश्य लाठी या उससे भी जल्दी शस्त्रका अवलंबन करे।

अहिंसा एक महाव्रत है। तलवारकी धारपर चलनेसे भी कठिन है। देहधारीके लिए उसका सोलह आना पालन असंभव है। उसके पालनके लिए घोर तपश्चर्याकी आवश्यकता है। तपश्चर्याका अर्थ यहाँ त्याग और ज्ञान करना चाहिए। जिसे जमीनकी मालिकीका मोह है उससे अहिंसाका पालन नहीं हो सकता। किसानके लिए अपनी जमीनकी रक्षा शेर भालूसे करना लाजिमी है, उसकी रक्षा करनी ही पड़ेगी। जो किसान शेर, भालू अथवा चोर इत्यादिको दंड देनेके लिए तैयार न हो उसे खेत छोड़ देनेके लिए हमेशा तैयार रहना पड़ेगा।

अहिंसा धर्मका पालन करनेके लिए मनुष्यको शास्त्र तथा रिवाजकी मर्यादाका पालन करना चाहिये। शास्त्र हिंसाकी आज्ञा नहीं देता; परंतु प्रसंग-विशेषपर हिंसा-विशेषको अनिवार्य समझकर उसकी छुट्टी देता है। जैसा कहते हैं मनुस्मृतिमें प्राणि-विशेषके वधकी इजाजत है। वधकी आज्ञा नहीं हैं। उसके बाद विचारमें उन्नति हुई और यह तय हुआ कि कलिकालमें अपवाद न रहे। इसलिए वर्तमान रिवाज हिंसा-विशेषको क्षंतव्य मानता है और मनुस्मृतिकी कितनी ही हिंसाका प्रतिबंध करता है। शास्त्रने इतनी छूट रक्खी है। उससे आगे बढ़नेकी दलील स्पष्टतः गलत है। धर्म संयममें है, स्वच्छन्दतामें नहीं। जो मनुष्य शास्त्रकी दी हुई छूटसे लाभ नहीं उठाता वह धन्यवादका पात्र है। संयमकी कोई मर्यादा नहीं। संयमका स्वागत दुनियाके तमाम शास्त्र करते हैं। स्वच्छन्दताके विषयमें शास्त्रोंमें भारी मतभेद है। समकोण सब जगह एक ही प्रकार होता है। दूसरे कोण अगणित हैं। अहिंसा और सत्य ये सब धर्मोंके समकोण हैं। जो आचार इस कसौटीपर न उतरे वह त्याज्य है। इसमें किसीको शंका करनेकी आवश्यकता नहीं। अधूरे आचारकी इजाजत चाहे हो। अहिंसा-धर्मका पालन करनेवाला निरंतर जागरूक रहकर अपने हृदय-बलको बढ़ावे और प्राप्त छूटोंके क्षेत्रको संकुचित करता जाय। भोग हरगिज धर्म नहीं। संसारका ज्ञानमय त्याग ही मोक्ष-प्राप्ति है। संसारका सर्वथा त्याग हिमालयके शिखरपर भी नहीं है। हृदयकी गुफा, सच्ची गुफा है। मनुष्यको चाहिये वह उसमें छिपकर सुरक्षित रहकर संसारमें रहते हुए भी उससे अलिप्त रहकर अनिवार्य कामोंमें प्रवृत होते हुए विचरण करे।

हिन्दी-नवजीवन
२० अगस्त, १९२५

अहिंसाका यह पुजारी सदैव सजग और सतर्क रहा, जहाँ हिंसा और अमानवीयताका ताण्डव हुआ यह युग-पुरुष नंगे पैर ही उस ओर शान्तिका सन्देश देने चल पड़ा

नोआखालीमें

सत्य और अहिंसाके देवदूत गांधीजी एक दीन हीन दुखियाकी कष्ट-गाथा सुनकर उसे अभय दान कर रहे हैं

ब्रिटिश सिंहका क्या ?

सुदूर केलिफोर्निया (अमेरिका) से एक पत्र मिला है—

"केनेडी अपनी पशुशालामें बैठा हुआ था और संयोगसे उसने अपने आँगनमें नजर डाली। उसकी चार बरसकी पौत्री खेल रही थी। उसने देखा कि एक पहाड़ी सिंह उसकी ओर चुपकेसे चला आ रहा है। केनेडी अपनी रायफल लेने झपटा और ज्यों ही सिंह लड़कीपर चोट करनेवाला था उसने खिड़कीसे निशाना ताककर गोली मार दी। गोली उसके कलेजेको पार कर गयी।"

अब उस बच्चेके पिताकी इस काररवाईपर अपनी राय दीजिये और नीचे लिखे सवालोंका जवाब दीजिये—

"उसका सिंहको मारना ठीक था ? क्या उस पिताको अहिंसात्मक रहकर सिंहको बच्चेको फाड़ डालने देना चाहिये था ? क्या पिताको सिंहसे प्रार्थना करते रहना चाहिये था ? और इस तरहसे अपने बच्चेकी जानको खतरेमें डालना चाहिये था ? क्या पिताके लिए यह शक्य था कि वह अपने बच्चेको बचानेके लिए दया प्रार्थना करता ? क्या आप ब्रिटिश सिंहकी आत्माकी इसी तरह प्रार्थना करते रहेंगे और उसे लाखों भारतवासियोंको फाड़ खाने देंगे ?"

पहले प्रश्नका उत्तर यह है कि पिताका सिंहको मार डालना ठीक था। दूसरे सवालोंको पूछकर लेखकने अपने अहिंसा तथा उसकी कार्य-रीति विषयक अज्ञानका परिचय दिया है। अहिंसा एक मानसिक या बौद्धिक अवस्था उतनी नहीं है जितनीकी हृदयका, आत्माका गुण है। यदि केनेडीको सिंहका भय न होता—निर्भयता अहिंसाकी पहली और अनिवार्य शर्त है—यदि उसका हृदय इस बातको कुबूल करता कि सिंहको भी ऐसी आत्मा है जैसी खुद मुझे है तो बंदूक लेकर दौड़ने और जबतक वह बंदूक लेकर वापस न आ जाय और वह अचूक निशाना न मार दे, तबतक सिंहके इन्तजार करनेके संशयास्पद संयोगपर दारोमदार न रखते हुए उसे सीधा सिंहकी ओर दौड़कर उसके गलेमें बाँह डालकर पूरे विश्वासके साथ उसकी अंतरात्माकी प्रेरणा करके अपने बच्चेको बचा लेना चाहिये था। यह बात बिल्कुल सच है कि अहिंसाकी इस स्थितिपर पहुंचना बहुत ही थोड़े लोगोंके लिए शक्य है। इसलिए मनुष्य-जाति आम तौरपर हमेशा सिंह और शेरको मारकर अपने बच्चे और पशुओंकी रक्षा करती रहेगी। पर इससे मूल-सिद्धान्तमें कोई बाधा नहीं पड़ती। साधु-सन्तोंका जंगलमें निःशस्त्र रहना और किसी भी जंगली पशुको दुःख न पहुंचाये बिना रहना, यह चमत्कार हिन्दुस्तानमें अज्ञात नहीं है। पश्चिममें भी इस बातके ऐतिहासिक प्रमाण मिलते हैं। लेखकने

वीर पुरुषोंके सम्बंधमें भी एक अकल्प्य कल्पना करनेकी भूल की है। यदि केनेडी यों ही खड़ा-खड़ा देखता रहता और उसके बच्चेको सिंह फाड़कर खा जाता तो यह किसी सूरत या शकलमें अहिंसा न होती। बल्कि निरी हृदयहीन कायरता होती, जो अहिंसाके विपरीत है। लेखकका आखिरी प्रश्न ही ऐसा है जो इस पत्रके उद्देश तक ले जाता है। उसमें लेखकने हमारे जमानेके इतिहासके प्रति घोर अज्ञान प्रकट किया है। उनको जानना चाहिये कि जिस आन्दोलनके लिए मैं जिम्मेवार हुआ हूँ वह इस तरहकी प्रार्थना नहीं है जैसा लेखकका खयाल है। इस आन्दोलनके द्वारा हम ब्रिटिश सिंहकी आत्मा तक नहीं, बल्कि भारतवर्षकी आत्मा तक पहुंचते हैं, इसलिए कि वह उसको प्राप्त कर ले। यह आन्तरिक शक्तिको विकसित करनेका आन्दोलन है। इसलिए अपने अंतिम रूपमें यह निःसन्देह ब्रिटिश सिंहकी आत्मा तक पहुंचेगा। परन्तु उस अवस्थामें वह एक समान स्थितिवालेकी एक समान स्थितिवालेको प्रार्थना होगी। एक भिखारीकी उस दाताको नहीं जो शायद कुछ दे दे। अथवा एक बौनेकी एक .राक्षससे अपनी रक्षा करनेकी व्यर्थ याचना नहीं। उस अवस्थामें एक आत्माके प्रति दूसरी आत्माकी ऐसी जोरदार प्रार्थना होगी कि उसे कोई रोक न सकेगा। हाँ इसमें कोई सन्देह नहीं कि जबतक हमारी आंतरिक शक्तिका विकास हम कर रहे हैं तबतक सिंहकी हमें फाड़ डालनेकी अनिवार्य क्रिया जारी ही रहेगी। पर वह उस अवस्थामें भी बंद नहीं हो सकती जब भारतवर्ष केनेडीकी तरह बदूक लेकर दौड़ पड़ेगा। परन्तु केनेडी तो लेने गया था उस बंदूकको जो उसके पास थी और जिसे वह चलाना जानता था, परन्तु हिन्दुस्तानी केनेडी, केलिफोर्नियन केनेडीके विपरीत विना ही आवश्यक शस्त्रास्त्र या उसको चलानेकी विद्याके ब्रिटिश सिंहको मारनेकी कोशिश करेगा! मेरे तरीकेमें ब्रिटिश-सिंहको नष्ट करनेकी ही नहीं, बल्कि उसके स्वभावको बदल देनेकी संभावना है। इसके अलावा केनेडीकी विधिके अनुसार भारतवर्षको अपने अन्दर उन्हीं गुणोंको उदय करना होगा जिन्हें हम आज ब्रिटिश सिंहके अन्दर शोचनीय मानते हैं! अन्तमें तीसरा रास्ता जिसे लेखक न केवल संभव ही मानते हैं बल्कि इस विधिका स्थान उसे देना चाहते हैं। भारतवर्षके संबंधमें मुतलक उत्पन्न नहीं होता। जैसा वह केलिफोनियाके संबधमें भी उत्पन्न नहीं होता। भारतके पास अपनी आजादीके सिर्फ दो रास्ते हैं। या तो अपनी आजादीके लिए और उस दर्जे तक, सिर्फ अहिंसात्मक साधनोंका अवलम्बन करें, या हिंसाके पश्चिमी साधनोंको तथा उससे जो जो बातें गृहीत होती हैं, उन सबको बढ़ानेका प्रयत्न करें।

हिन्दी नवजीवन

२४ सितम्बर १९४८

❀

खेतीमें हिंसा ?

'नवजीवन' के एक निरन्तर पाठक पूछते हैं—

"मैंने नवजीवन, (पुराने) में पढ़ा है कि खेती शुद्ध यज्ञ है, यह सच्चा परोपकार है।"

"चींटी जैसे छोटे जीवके पैर तले रुँध जानेसे मनमें दुःख होता है। खेती करनेवाला किसान तो ऐसे अनेक असंख्य जीवोंको अपनी आँखोंके सामने मरते हुए देखता हैं। इससे उसके मनमें 'यों तो बहुतेरे जीव मरा करते हैं', यह मानते हुए क्या निष्ठुरता नहीं आ जायगी?"

"जिसे चींटी जैसे कीड़ेको भी मरता देखकर दुःख होता है वह खेती कैसे कर सकता है? वह यदि भीख माँगकर पेट भरता हो तो क्या बुरा? अथवा कोई और धन्धा क्यों न करे? पर आप तो भीखको हीनसे हीन समझते हैं? मैं अनुभवसे इस बातको मानता हूँ।"

"मुझे खेती करनेकी बड़ी चाह है; पर पूर्वोक्त प्रकारकी जीव-हिंसा और बैलको आर लगानेसे डरता हूँ।"

यह बात सच है कि खेतीमें सूक्ष्म जीवोंकी अपार हिंसा है। पर दूसरा वाक्य भी इतना ही सच है। वह यह कि शरीर-निर्वाहमें श्वासोच्छ्वास करनेमें भी सूक्ष्म जन्तुओंकी हिंसा है। परन्तु जिस प्रकार आत्म-घात करनेसे शरीर-रूपी पिंजरका सर्वथा नाश नहीं होता उसी प्रकार खेतीके त्यागसे खेतीका भी नाश नहीं होता। मनुष्य मिट्टीका पुतला है। मिट्टीसे उसका शरीर पैदा हुआ है और मिट्टीके पर्यायोंपर उसका जीवन निर्भर है। खेतीमें रहनेवाले अन्नसे दूर रहनेके लिए जो भिक्षान्न खाता है वह दुहरा दोष-भागी होता है। खेती करनेका दोष तो वह करता ही है। क्योंकि भिक्षामें मिला अन्न किसी न किसी किसानकी मिहनतसे ही पैदा हुआ है। उस किसानकी खेतीमें भिक्षान्न भोजन करनेवालेका हिस्सा अवश्य आ जाता है। और दूसरा दोष है भिक्षान्न खानेवालेका अज्ञान और उससे उत्पन्न होनेवाला आलस्य।

यदि एक मनुष्यके लिए खेतीका त्याग उचित है तो अनेकके लिए भी है। अनेक लोग यदि भीख माँग खावें तो थोड़े किसान बिचारे भिखारियोंके लिए मजूरी करनेके बोझसे ही कुचल जावें और उसका पाप भिखारीके सिर नहीं तो और किसके सिर होगा?

खेती इत्यादि आवश्यक कर्म शरीर-व्यापारकी तरह अनिवार्य हिंसा

है। उसका हिंसापन चला नहीं जाता है और मनुष्य ज्ञान, भक्ति आदिके द्वारा अन्तमें इन अनिवार्य दोषोंसे मोक्ष प्राप्त करके इस हिंसासे भी मुक्त हो जाता है। इसलिए शरीर जिस प्रकार मनुष्यके लिए बंधनका द्वार है उसी प्रकार मोक्षका भी द्वार है। उसी तरह जो करोड़पति होनेके लिए खेती करता है उसके लिए खेती मुक्तिका द्वार हो सकती है।

कार्य-मात्र, प्रवृत्ति-मात्र, उद्योग-मात्र सदोष हैं। आवश्यक उद्यम-मात्रमें एक-सा दोष है। मोतीके रोजगारमें, रेशमके धन्धेमें, सुनारके पेशेमें खेतीसे बहुत अधिक दोष है। क्योंकि ये धन्धे आवश्यक नहीं हैं। उनमें हिंसा तो बहुतेरी हुई है। मोती हिंसा बिना मिल नहीं सकते। सीपका कीड़ा उबाला जाता है। सुनार जो आसमानी आग पैदा करता है उसमें जलनेवाले जन्तुओंसे यदि पूछें और वे जवाब दे सकें तो हमें उनके धन्धेकी हिंसाका कुछ खयाल हो सकता है।

चारो ओर हिंसासे घिरे और जलते हुए इस जगतमें विचरनेवाले जिस महापुरुषने अहिंसा-रूपी धर्म उत्पन्न किया उसको मेरा साष्टांग प्रणाम है।

चींटीको भी बचाकर चलना यह हमारा सहज धर्म है। जो मनुष्य ऊँचा सिर करके बिना विचारे, बिना देखे, अपने घमण्डमें मस्त चला जाता है और अपने पैरोंके नीचे कुचले जानेवाले असंख्य जीवोंका विचारतक नहीं करता वह तो जान-बूझकर अनावश्यक पाप कर्म करता है और अपने हाथों अपने लिए नरकका द्वार खोला करता है। उसकी तुलना किसानसे, जो उसके मुकाबले निर्दोष माने जाने चाहिये, हो ही नहीं सकती। खेती करनेवाले असंख्य किसान चलते हुए बारीक नजरसे चींटी आदि प्राणियोंको बचाते हैं। उनमें गर्व नहीं होता। वे नम्र हैं। वे जगतके पालनेवाले हैं। दुनियाका नव-दशांश भाग खेती करता है। उसीमें श्रेय है। खेती आवश्यक शुद्ध-यज्ञ है। श्रेष्ठ धर्म-वान उस धन्धेको कर सकता है। और दूसरे अनावश्यक धर्मोंको छोड़कर खेती करे तो पुण्य है।

बैलको आर लगानेकी बात बिना विचारे लिखी गयी है। सब किसान बैलको आर नहीं मारते। कितने ही किसान बैल, इत्यादि अपने पशुओंको अपने कुटुम्बकी तरह मानते हैं और प्रेम-भावसे उसका पालन-पोषण करते हैं।

हिन्दी नवजीवन

२४ सितम्बर, १९२५

❀

गीताका अर्थ

एक मित्र इस प्रकार प्रश्न करते हैं—

"गीताका संदेश क्या है ? हिंसा या अहिंसा ? मालूम होता है यह झगड़ा हमेशा ही चलता रहेगा। यह बात और है कि हम गीतामें किस संदेशको देखना चाहते हैं और उसमेंसे कौन-सा संदेश निकालना चाहते हैं और यह दूसरी ही बात है कि उसको सीधे ही पढ़नेपर क्या छाप पड़ती है। जिसके दिलमें यह बात जम गयी है कि अहिंसा-तत्त्व ही जीवन सन्देश है उसके लिए तो यह प्रश्न गौण है। वह तो यही कहेगा कि गीतामेंसे अहिंसा निकलती हो तो वह मुझे ग्राह्य है। इतने भव्य ग्रन्थमेंसे अहिंसा जैसा भव्य धार्मिक सिद्धान्त ही निकलना चाहिये। किन्तु यदि न निकलता हो तो गीताको भी रहने दीजिये। उसको आदरसे पूजेंगे लेकिन उसे प्रमाण-ग्रन्थ मानेंगे नहीं।

"प्रथम अध्यायको पढ़नेपर यही प्रतीत होता है कि अहिंसा वृत्तिसे प्रेरित अर्जुन अशस्त्र होकर कौरवोंके हाथों मरनेको तैयार है। हिंसासे होने वाले पाप और हानि उसकी दृष्टिमें स्पष्ट नजर आते हैं। विषादसे वह काँप उठता है—

'अहो बत महत्पापं कर्तुं व्यवसिता वयम्।'

इसपर श्रीकृष्ण उसे कहते हैं—"समझदार होकर भी यह क्या बोलते हो ? कोई किसीको न मारता है और न मरता ही है। आत्मा अमर है और शरीरका नाश तो होगा ही। इसलिए इस धर्मप्राप्त युद्धको लड़ लो। जय क्या और पराजय क्या ? केवल अपना कर्तव्य पूरा करो।

"११ वें अध्यायमें भी उसे विश्वरूप दिखाकर भगवान श्रीकृष्ण यही कहते हैं—

कालोऽस्मि लोकक्षयकृत्प्रवृद्धो—
लोकान्समाहर्तुमिह प्रवृत्तः।
मया हतास्त्वं जहि मा व्यथिष्ठाः।

ईश्वरकी दृष्टिमें हिंसा और अहिंसा दोनों समान ही हैं। लेकिन मनुष्यके लिए ईश्वरका संदेश क्या हो सकता है ?

'युध्यस्व जेतासि रणे सपत्नान्।'

यह क्या ? गीताका संदेश यदि अहिंसा हो तो १ और ११ अध्याय सुसंबद्ध नहीं मालूम होते। वे उसके पोषक तो हैं ही नहीं। ऐसी शंकाओंका समाधान कौन करे ?

"कामकी भीड़मेंसे कुछ समय निकाल कर आप इसका जवाब दें तो अच्छा हो"

ऐसे प्रश्न तो हुआ ही करेंगे और जिसने कुछ अध्ययन किया है उसे उनका यथाशक्ति जवाब भी देना होगा। किन्तु इनका समाधान करनेपर भी आखिर मुझे यह कहना ही पड़ेगा कि मनुष्य वही करेगा जो उसका हृदय उसे करनेको कहेगा। प्रथम हृदय है और फिर बुद्धि। प्रथम सिद्धान्त और फिर प्रमाण। प्रथम स्फुरण और फिर उसके अनुकूल तर्क। प्रथम कर्म और फिर बुद्धि। इसीलिए बुद्धि कर्मानुसारिणी कही गयी है। मनुष्य जो कुछ भी करता है या करना चाहता है उसका समर्थन करनेके लिए प्रमाण भी ढूँढ़ निकालता है।

इसलिए मैं यह समझता हूं कि मेरा गीताका अर्थ सबके अनुकूल न होगा। ऐसी स्थितिमें मैं यदि इतना ही कहूँ कि गीताके मेरे अर्थपर मैं किस तरह पहुंचा और धर्मशास्त्रोंके अर्थ निकालनेमें मैंने किन किन सिद्धान्तोंको मान्य रखा है तो यही बस होगा। "परिणाम चाहे कुछ आवे मुझे तो युद्ध करना चाहिये। जो शत्रु मरने योग्य हैं वे तो स्वयं ही मरे हुए हैं। मुझे तो उनके मारनेमें निमित्त मात्र बनना है।"

१८८९ की सालमें गीताजीसे मेरा प्रथम परिचय हुआ। उस समय मेरी उम्र २० सालकी थी। उस समय मैं अहिंसा धर्मको बहुत ही थोड़ा समझता था। शत्रुको भी प्रेमसे जीतना चाहिये यह मैं गुजराती कवि शामल भट्टके इस छप्पयसे "पाणी आपेने पाय भलुं भोजन तो दीजे" सीखा था। इसमें रहा हुआ सत्य मेरे हृदयमें अच्छी तरह बैठ गया था। किन्तु उस समय मुझे उसमेंसे जीवदयाका स्फुरण नहीं हुआ था। इसके पहले मैं देशमें ही मांसाहार कर चुका था। मैं मानता था कि सर्पादिका नाश करना धर्म है। मुझे तो याद आता है कि मैंने खटमल इत्यादि जीवोंको मारे हैं। मुझे तो यह भी याद आता है कि मैंने एक बिच्छूको भी मारा था। आज यह समझा हूं कि ऐसे जहरीले जीवोंको भी न मारना चाहिये। उस समय मैं यह मानता था कि हमें अंगरेजोंके साथ लड़नेके लिए तैयारी करनी होगी। 'अंगरेज राज्य करते हैं इसमें आश्चर्य ही क्या है' इस मतलबकी एक कविता गुनगुनाया करता था। मेरा मांसाहार इसी तैयारीका कारण था। विलायत जानेके पहले मेरे ऐसे विचार थे। मैं मांसाहारसे बच गया इसका कारण माताको दिये हुए वचनोंको जीवनांत पालन करनेकी मेरी वृत्ति थी। मेरे सत्यके प्रति प्रेमने बहुत सी आपत्तियोंमेंसे मेरी रक्षा की है।

अब दो अंगरेजोंसे प्रसंग पड़नेपर मुझे गीता पढ़नी पड़ी। 'पढ़नी पड़ी' इसलिए कहता हूँ क्योंकि उसे पढ़नेकी मुझे कोई खास इच्छा न थी लेकिन जब इन दो भाइयोंने मुझे अपने साथ गीता पढ़नेको कहा तब मैं शरमिन्दा हुआ। मुझे अपने धर्मशास्त्रोंका कुछ भी ज्ञान नहीं है इस खयालसे मुझे बड़ा दुःख हुआ। इस दुःखका कारण मालूम होता है अभिमान था। मेरा संस्कृतका अध्ययन ऐसा तो था ही नहीं कि गीताजीके सब श्लोकोंका अर्थ मैं बिना किसी मददके ठीक

ठीक समझ लूँ। ये दोनों भाई तो कुछ भी न समझते थे। उन्होंने सर एडविन आर्नल्डका गीताजीका उत्तमोत्तम काव्यानुवाद मेरे सामने रख दिया। मैंने तो फौरन ही उस पुस्तकको पढ़ डाला और उसपर मैं मुग्ध हो गया। तबसे लेकर आजतक दूसरे अध्यायके अन्तिम १९ श्लोक मेरे हृदयमें अंकित हैं। मेरे लिए तो सब धर्म उसीमें आ गया है। उसमें सम्पूर्ण ज्ञान है। उसमें कहे हुए सिद्धान्त अचल हैं। उसमें बुद्धिका भी सम्पूर्ण प्रयोग किया गया है। लेकिन यह बुद्धि संस्कारी बुद्धि है। उसमें अनुभव ज्ञान है।

इस परिचयके बाद मैंने बहुतसे अनुवाद पढ़े, बहुतसी टीकाएँ पढ़ीं, बहुतसे तर्क किये और सुने लेकिन उसे पढ़नेपर जो मुझपर छाप पड़ी थी वह दूर नहीं होती। ये श्लोक गीताजीके अर्थ समझनेकी कुंजी हैं। उससे विरोधी अर्थवाले वचन यदि मिलें तो उन्हें त्याग करनेकी भी मैं सलाह दूँगा। नम्र और विनयी मनुष्यको तो त्याग करनेकी भी जरूरत नहीं है। वह तो सिर्फ यों ही कह दे कि दूसरे श्लोकोंका आज इसके साथ मेल नहीं मिलता है तो यह मेरी बुद्धिका ही दोष है; समय बीतनेपर इनका और उन्नीस श्लोकोंमें कहे गये सिद्धान्तोंका भी मेल मिल रहेगा। अपने मनसे और दूसरोंसे यह कहकर वह शान्त हो रहेगा।

शास्त्रोंका अर्थ करनेमें संस्कार और अनुभवकी आवश्यकता है। 'शूद्रको वेदका अध्ययन करनेका अधिकार नहीं' यह वाक्य सर्वथा गलत नहीं है। शूद्र अर्थात् असंस्कारी, मूर्ख, अज्ञान, वे वेदादिका अध्ययन करके उनका अनर्थ करेंगे। बड़ी उम्रके भी सब लोग बीजगणितके कठिन प्रश्न अपने आप समझनेके अधिकारी नहीं हैं। उनको समझनेके पहले उन्हें कुछ प्राथमिक शिक्षा ग्रहण करनी पड़ती है। ब्रह्मचारीके मुखमें 'अहं ब्रह्मास्मि' क्या शोभा देगा? उसका वह क्या अर्थ (या अनर्थ) करेगा?

अर्थात् शास्त्रका अर्थ करनेवाला यमादिका पालन करनेवाला होना चाहिये। यमादिका शुष्कपालन जैसा कठिन है वैसा निरर्थक भी है। शास्त्रोंने गुरुका होना आवश्यक माना है लेकिन ज्ञानी लोग इसलिए भक्ति-प्रधान प्राकृत ग्रन्थोंका पठन-पाठन करनेकी शिक्षा देते हैं। किन्तु जिसमें भक्ति नहीं, श्रद्धा नहीं, वह शास्त्रका अर्थ करनेका अधिकारी नहीं होता। विद्वान लोग विद्वत्तापूर्ण अर्थ उसमें भले ही निकालें लेकिन वह शास्त्रार्थ नहीं। शास्त्रार्थ तो अनुभवी ही कर सकता है।

परन्तु प्राकृत मनुष्योंके लिए भी तो कुछ सिद्धान्त तो हैं ही। शास्त्रोंके वे अर्थ जो सत्यके विरोधी हैं, सही नहीं हो सकते। जिससे सत्यके सत्य होनेके बारेमें ही शंका है उसके लिए शास्त्र है ही नहीं अथवा यों कहिये उसके लिए सब शास्त्र अशास्त्र हैं। उसको कोई नहीं पहुँच सकता। जिसे शास्त्रमेंसे अहिंसा नहीं

प्राप्त हुई है उसके लिए भय है लेकिन उसका उद्धार न हो यह बात नहीं। सत्य विध्यात्मक है, अहिंसा निषेधात्मक है। सत्य वस्तुका साक्षी है। अहिंसा वस्तु होनेपर भी उसका निषेध करती है। सत्य है, असत्य नहीं है। हिंसा है, अहिंसा नहीं है। फिर भी अहिंसा ही होना चाहिये। यही परम धर्म है। सत्य स्वयं सिद्ध है। अहिंसा उसका सम्पूर्ण फल है, सत्यमें वह छिपी हुई है। वह सत्यकी तरह व्यक्त नहीं है। इसलिए उसको मान्य किये विना मनुष्य भले ही शास्त्रका शोध करे। उसका सत्य उसे आखिर अहिंसा ही सिखायेगा।

सत्यके लिए तपश्चर्या तो करनी ही पड़ती है। सत्यका साक्षात्कार करनेवाले तपस्वीने चारो ओर फैली हुई हिंसामेंसे अहिंसा देवीको संसारके सामने प्रकट करके कहा—हिंसा मिथ्या है, माया है, अहिंसा ही सत्य वस्तु है। ब्रह्मचर्य, अस्तेय, अपरिग्रह भी अहिंसाके लिए ही हैं। ये अहिंसाको सिद्ध करनेवाले हैं। अहिंसा सत्यका प्राण है। उसके बिना मनुष्य पशु है। सत्यार्थी अपने शोधके लिए प्रयत्न करते हुए यह सब बड़ी जल्दी समझ लेगा और फिर उसे शास्त्रका अर्थ करनेमें कोई मुसीबत पेश न आयेगी।

शास्त्रका अर्थ करनेमें दूसरा नियम यह है कि उसके शब्दोंको पकड़कर नहीं बैठना चाहिये लेकिन उसकी ध्वनि देखनी चाहिये, उसका रहस्य समझना चाहिये। तुलसीदासजीका रामायण उत्तम ग्रन्थ है, क्योंकि उसकी ध्वनि स्वच्छता है, दया है, भक्ति है। उसने 'शूद्र गँवार ढोल अरु नारी, ये सब ताड़नके अधिकारी' लिखा इसलिए यदि कोई पुरुष अपनी स्त्रीको मारे तो उसकी अधोगति होगी। रामचन्द्रजीने सीताजीपर कभी प्रहार नहीं किया। इतना ही नहीं उन्हें कभी दुःख भी नहीं पहुँचाया। तुलसीदासजीने केवल प्रचलित वाक्यको लिख दिया। उन्हें इस बातका खयाल भी न हुआ होगा कि इस बातका आधार लेकर अपनी अर्धांगिनियोंका ताड़न करनेवाले पशु भी कहीं निकल पड़ेंगे। यदि स्वयं तुलसीदासजीने भी रिवाजके वशवर्ती होकर अपनी पत्नीका ताड़न भी किया होता तो भी क्या ? यह ताड़न अवश्य ही दोष है। फिर भी रामायण पत्नीके ताड़नके लिए नहीं लिखा गया है। रामायण तो पूर्ण पुरुषका दर्शन करानेके लिए, सती शिरोमणि सीताजीका परिचय करानेके लिए और भरतकी आदर्श भक्तिका चित्र चित्रित करनेके लिए लिखा गया हैं। दोषयुक्त रिवाजोंका समर्थन जो उसमें पाया जाता है वह त्याज्य है। तुलसीदासजीने भूगोल सिखानेके लिए अपना अमूल्य ग्रन्थ नहीं बनाया है इसलिए उसके ग्रन्थमें यदि गलत भूगोल पाया जाय तो उसका त्याग करना अपना धर्म है।

अब गीताजी देखें। ब्रह्मज्ञान प्राप्ति और उसके साधन यही गीताजीका विषय है। दो सेनाओंके बीच युद्धका होना निमित्त है। यह भले ही कह सकते हों कि कवि स्वयं युद्धादिको निषिद्ध नहीं मानते थे और इसलिए उन्होंने युद्धके

प्रसंगका इस प्रकार उपयोग किया है। महाभारत पढ़नेके बाद तो मेरे ऊपर जुदी ही छाप पड़ी है। व्यासजीने इतने सुन्दर ग्रन्थकी रचना करके युद्धके मिथ्यात्वका ही वर्णन किया है। कौरव हारे तो क्या हुआ और पाण्डव जीते तो भी उससे क्या हुआ ? विजयी कितने बचे ? उनका क्या हुआ ? कुन्ती माताका क्या हुआ ? और आज यादव-कुल कहाँ है ?

जहाँ विषय युद्धका वर्णन और हिंसाका प्रतिपादन नहीं है वहाँ उसपर जोर देना केवल अनुचित माना जायगा। और यदि कुछ श्लोकोंका सम्बन्ध अहिंसाके साथ बैठाना मुश्किल मालूम होता है तो सारी गीताजीको हिंसाके चौखटेमें मढ़ना उससे कहीं ज्यादह मुश्किल है। कवि जब किसी ग्रंथकी रचना करता है तो वह उसके सब अर्थोंकी कल्पना नहीं कर लेता है । काव्यकी यही खूबी है कि वह कविसे भी बढ़ जाता है। जिस सत्यका वह अपनी तन्मयतामें उच्चारण करता है वही सत्य अक्सर उसके जीवनमें नहीं पाया जाता। इसलिए बहुतेरे कवियोंका जीवन उनके काव्योंके साथ सुसंगत नहीं मालूम होता है। गीताजीका सर्वांश तात्पर्य हिंसा नहीं है लेकिन अहिंसा है; यह दूसरा अध्याय जिससे विषयका आरम्भ होता और अठारहवाँ अध्याय जिसमें उसकी पूर्णाहुति होती है देखनेसे प्रतीत होगा। मध्यमें देखोगे तो भी यही प्रतीत होगा। बिना क्रोधके, रागके या द्वेषके हिंसाका होना संभव नहीं। और गीता तो क्रोधादिको पार करके गुणातीतकी स्थितिमें पहुँचानेका प्रयत्न करती है। गुणातीतमें क्रोधका सर्वथा अभाव होता है। अर्जुनने कानतक खींचकर जब जब धनुष चढ़ाया उस समयकी उसकी लाल लाल आँखें मैं आज भी देख सकता हूँ।

परन्तु अर्जुनने कब अहिंसाके लिए युद्ध छोड़नेका हठ किया था। उसने तो बहुत-से युद्ध किये थे। उसे तो यकायक मोह हो गया था। वह तो अपने सगे सम्बन्धियोंको नहीं मारना चाहता था। अर्जुनने दूसरोंको, जिन्हें वह पापी समझता हो, न मारनेकी बात तो की न थी। श्रीकृष्ण तो अन्तर्यामी हैं। वे अर्जुनका यह क्षणिक मोह समझ लेते हैं। और इसलिए उससे कहते हैं—'तुम हिंसा तो कर चुके हो। अब इस प्रकार यकायक समझदार बननेका दंभ करके तुम अहिंसा न सीख सकोगे। इसलिए जिस कामका तुमने आरंभ किया है उसे अब तुम्हें पूरा करना ही चाहिये।' घण्टेमें चालीस मीलके वेगसे जानेवाली रेलगाड़ीमें बैठा हुआ शख्स यकायक प्रवाससे विरक्त होकर यदि चलती हुई गाड़ीसे ही कूद पड़े तो यही कहा जायगा कि उसने आत्महत्या की है। उससे उसने प्रवास या रेलगाड़ीमें बैठनेके मिथ्यात्वको कुछ नहीं सीखा है। अर्जुनका भी यही हाल था। अहिंसक कृष्ण अर्जुनको दूसरी सलाह दे ही नहीं सकता था। लेकिन उससे यह अर्थ नहीं निकाल सकते कि गीताजीमें हिंसाका ही प्रतिपादन किया गया है। यह अर्थ निकालना उतना ही अनुचित है जितना

यह कहना कि शरीर-व्यापारके लिए कुछ हिंसा अनिवार्य है और इसलिए हिंसा ही धर्म है। सूक्ष्मदर्शी इस हिंसामय शरीरसे अशरीरी होनेका अर्थात् मोक्षका ही धर्म सिखाता है। लेकिन धृतराष्ट्र कौन था? दुर्योधन, युधिष्ठिर और अर्जुन कौन थे? कृष्ण कौन थे? क्या ये सब ऐतिहासिक पुरुष थे? और क्या गीताजीमें उनके स्थूल व्यवहारका ही वर्णन किया गया है? अकस्मात् अर्जुन सवाल करता है और कृष्ण सारी गीता पढ़ जाते हैं। और यही गीता अर्जुन, उसका मोह नष्ट हुआ है, यह कहकर भी फिर भूल जाता है और कृष्णसे दुबारा अनुगीता कहलवाता है।

मैं तो दुर्योधनादिको आसुरी और अर्जुनादिको दैवी वृत्ति मानता हूँ। धर्मक्षेत्र यह शरीर ही है। उसमें द्वन्द्व चलता ही रहता है और अनुभवी ऋषि कवि उसका सादृश वर्णन करते हैं। कृष्ण तो अन्तर्यामी हैं और हमेशा शुद्ध चित्तमें घड़ीकी तरह टिक-टिक करते रहते हैं। यदि चित्तको शुद्धिरूपी चाबी नहीं दी गयी हो तो यद्यपि अन्तर्यामी वहाँ रहते तो हैं, लेकिन उनका टिकटिकाना तो अवश्य बन्द हो जाता है।

कहनेका आशय यह नहीं कि इसमें स्थूल युद्धके लिए अवकाश ही नहीं है। जिसे अहिंसा सूझी ही नहीं है उसे यह धर्म नहीं सिखाया गया है कि कायर बनना चाहिये। जिसे भय लगता है, जो संग्रह करता है, जो विषयमें रत है, वह अवश्य ही हिंसामय युद्ध करेगा। लेकिन उसका वह धर्म नहीं है। धर्म तो एक ही है। अहिंसाके मानी हैं मोक्ष और मोक्ष सत्यनारायणका साक्षात्कार है। पर इसमें पीठ दिखानेको तो कहीं अवकाश नहीं है। इस विचित्र संसारमें हिंसा तो होती ही रहेगी। उससे बचनेका मार्ग गीता दिखाती है। लेकिन साथ-साथ गीता यह भी कहती है कि कायर होकर भागनेसे हिंसासे न बच सकोगे। जो भागनेका विचार करता है उसे तो मारना चाहिये या मरना ही चाहिये।

प्रश्नकर्त्ताने जिन श्लोकोंका उल्लेख किया है उनका रहस्य यदि अब भी उनकी समझमें न आये तो मैं समझानेको असमर्थ हूँ, सर्वशक्तिमान ईश्वर, कर्ता, भर्ता और संहर्ता है और वह ऐसा ही होना चाहिये। इस विषयमें कोई शंका तो न होगी? जो उत्पन्न करता है वह उसका नाश करनेका अधिकार भी अपने पास रखता है। वह किसीको भी नहीं मारता है क्योंकि वह उत्पन्न भी नहीं करता है। नियम यह है कि जिसने जन्म लिया है उसने मरने ही के लिए जन्म लिया है। यह उसकी दया है। यदि ईश्वर ही स्वच्छन्द और स्वेच्छाचारी बन जाय तो हम सब कहाँ जायेंगे?

हिन्दी नवजीवन
१५ अक्तूबर, १९२५

अमेरिकासे

एक महाशयने कुछ समय पहले अमेरिकासे पत्र लिखकर मुझसे कितने ही प्रश्न पूछे थे और मैंने 'यंग इण्डिया' में उसके उत्तर भी दिये थे। अब उन्होंने और भी कुछ प्रश्न पूछे हैं। पहला प्रश्न यह है —

"जिस वस्तुपर आपका प्रेम है उसे ही यदि वह न बचा सके तो निर्भय और बहादुर मनोवृत्तिका उपयोग ही क्या है? यह माना कि आपको मृत्युका जरा भी डर नहीं है परन्तु यदि आप आखिरतक अहिंसात्मक ही बने रहना चाहेंगे तो उसमें ऐसी क्या बात है कि जो लुटेरोंको आपकी प्रिय वस्तु लूट लेनेसे, उसे आपके हाथसे छीन लेनेसे रोक सकती है? जो लुटेरोंका शिकार बना है वह यदि हिंसात्मक प्रतिकार न करेगा तो उसे लूट लेना लुटेरेके लिए बड़ा ही आसान काम हो जायगा। लूट तो बराबर हो रही है और जबतक ऐसे शिकार जो आसानीसे लूट लिये जा सकते हैं, संसारमें मिलते रहेंगे तबतक वह बराबर बनी भी रहेगी। प्रतिकार करें या न करें, शक्तिशाली निर्बलको लूटेगा ही। निर्बल होना ही पाप है। इस निर्बलताको किसी भी उपायसे दूर करनेके लिए तैयार न होना भी एक अपराध ही है।"

लेखक यह भूल जाते हैं कि प्रतिकार हमेशा सफल नहीं होता है। डाकू यदि अधिक ताकतवर हुआ तो वह उन रक्षा करनेवालोंको हरा देगा और उसका प्रतिकार करनेसे उसके क्रोधकी आगमें घी पड़ जायगा और उस प्रज्ज्वलित आगका वह दुर्भागी शिकार ही बलि बन जायगा। इससे तो उसकी तरफसे प्रतिकार करनेसे उसकी हालत और भी अधिक बुरी होगी। यह सच है कि रक्षकको अपने तईं भरसक रक्षा करनेकी कोशिश करनेसे संतोष मिलेगा। परन्तु अहिंसात्मक रक्षकको भी वही सन्तोष प्राप्त हो सकेगा। क्योंकि उसकी रक्षा करनेके प्रयत्नमें वह अपनी जान दे देगा। इससे भी अधिक उसे इस बातका भी सन्तोष होगा कि अपनी दलीलोंसे उसने डाकूके हृदयको मुलायम बनानेका भी प्रयत्न किया। लेखकने इस बातको मान लिया है कि अहिंसात्मक रक्षक तो उस डाकेका केवल शान्त क्रिया-हीन और लाचार प्रेक्षक ही होता है और इसलिए उनको यह कठिनाई मालूम होती है। परन्तु सच बात तो यह है कि चाहे कैसी भी योजना क्यों न हो, प्रेम पशुबलकी अपेक्षा अधिक क्रियात्मक और शक्तिशाली होता है। जिसमें प्रेम नहीं होता और फिर भी जो शान्त क्रिया-हीन खड़ा रहता है, वह कायर है। वह न पशु है मनुष्य ही है। उसने तो अपनेको रक्षक बननेके लिए अयोग्य ही साबित किया है।

यह स्पष्ट है कि लेखकने मेरी तरह शान्त प्रतिकारकी महान शक्तिका

शत्रुओंपर जो असर होता है उनका अनुभव नहीं किया है। शान्त प्रतिकार एक इच्छाशक्तिका दूसरी इच्छाशक्तिके प्रति प्रतिकार है। यह प्रतिकार तभी संभव हो सकता है जब उसे पशुबलके आधारपर मुक्ति मिल जाय। पशुबलपर आधार रखनेमें तो यह बात पहलेसे ही ग्रहित कर ली जाती है कि जब यह शक्ति खतम हो जायगी तो उसे प्रतिस्पर्द्धीके वश होना पड़ेगा। क्या लेखक यह जानते हैं कि एक स्त्री भी निश्चयात्मक इच्छाशक्ति होनेपर अपने जुल्म करने वालेका चाहे वह कितना ही शक्तिशाली क्यों न हो सफलता पूर्वक प्रतिकार कर सकती है।

मैं यह स्वीकार करता हूं कि शक्तिशाली दुर्बलको लूट लेगा और निर्बल होना एक पाप ही है। परन्तु यह तो मनुष्यके आत्माके लिए कहा गया है, शरीरके लिए नहीं, यदि शरीरके लिए कहा गया होता तो हम निर्बल होनेके पापसे कभी भी मुक्त नहीं हो सकते हैं। परन्तु आत्माकी शक्ति, उसके खिलाफ सारी दुनियाँ हथियार लेकर क्यों न खड़ी हो जाय वह उसकी कुछ भी परवाह नहीं करती है। यह शक्तिशरीरमें दुर्बलसे दुर्बल मनुष्यको भी प्राप्त हो सकती है। दुर्बल इच्छा शक्तिका जुल्म शरीरमें राक्षस जैसा बल रखनेपर भी एक छोटेसे गोरे बच्चेके वश हो जाता है। दृढ़ शरीरके गुण्डेको शरीरसे दुर्बल अपनी माताके सामने लाचार बनते हुए किसने नहीं देखा है। प्रेम पुत्रमें रहे हुए पशुको जीत लेता है। माता और पुत्रमें जो प्रेम होता है वह प्रयोगमें सर्वव्यापी है और उसके दोनों तरफ होनेकी भी कोई आवश्यकता नहीं है वह स्वयं पुरस्काररूप है। बहुतसी माताओंने अपने गलत मार्गपर जानेवाले उद्धत बच्चोंको अपने प्रेमके कारण ही सुधार दिया है। प्रेमकी दुर्बलतासे हमें मुक्त होनेकी तैयारी करनी चाहिये। उसमें सफलता होनेकी आशा है। क्योंकि प्रेम करनेमें स्पर्धाका होना आरोग्यवर्धक है। संसार पशुबलका उपयोग करनेमें सबल बननेका युगोंसे प्रयत्न कर रहा है परन्तु उसमें उसे बुरी तरह से असफलता मिली है। पशुबल उत्पन्न करनेमें स्पर्द्धा करना अपने आप अपनी जातिकी आत्महत्या कर लेना है।

लेखक लिखते हैं—

"ब्रिटिश अधिकारी वर्गोंमें भी उतना ही आत्मबल है जितना आपमें है परन्तु उनके पास फौजी बल भी है और इसके अलावा मनुष्य स्वभावका उन्हें व्यावहारिक ज्ञान है, और उसका परिणाम स्पष्ट है।"

जहाँ फौजीबल होता है, वहाँ आत्मबल नहीं रहता है। भय उत्पन्न करनेकी वृत्ति, निर्बलोंको चूसनेकी वृत्ति, अनीतिमूलक लाभ, देहके सुखोंकी कभी शान्त न होनेवाली तृष्णा जहाँ होती है वहाँ आत्मबल कभी नहीं होता। इसलिए ब्रिटिश अधिकारीगण यदि आत्मबलसे सर्वथा हीन नहीं हैं तो उनका आत्मबल उनके पशु-बलसे दबा हुआ अवश्य है। इसके बाद लेखक एक सनातन समस्या उपस्थित करते हैं—

"संसारमें कुछ लोग बड़े लालची हैं और वे बड़ी बुराई कर रहे हैं। उनके हाथमें शक्ति अधिकार है। वे पागल हो सकते हैं फिर भी वे बड़ी हानि कर रहे हैं। इसलिए अब इससे काम न चलेगा कि हम हाथ बांधकर खड़े देखा करें और वे अपना शैतानका सा काम करते रहें। अहिंसाकी बलि देकर भी हमें उनके हाथसे अधिकार छीन लेना चाहिये ताकि वे कुछ अधिक हानि न पहुंचा सकें।"

इतिहास हमें यह शिक्षा देता है कि जिन्होंने निःसन्देह प्रामाणिक उद्देशोंके साथ ऐसे लोभी मनुष्योंके विरुद्ध पशुबलका उपयोग करके उन्हें हरा दिया है, वे भी अपना समय आनेपर उन हारे हुए लोगोंके उस रोगके भोग हो गये हैं। यदि गुलामोंके नायक बननेके बनिस्बत गुलाम बनाना ही अधिक अच्छा है और यदि कोई पोथीमेंके बेठन नहीं है तो गुलामोंके नायकोंको उनसे जितनी भी बुराई हो सके हम उन्हें करने देंगे और हम युद्धकी पाशविक खींचातानीसे जो हमारे स्वभावके प्रतिकूल हैं, अब ऊब गये हैं इसलिए ऐसे लोभी चूसनेवालोंके पशुबलका आत्मबलसे सामना करनेके जो साधन संभव हो सकते हैं उन्हें ही ढूँढ़नेका प्रयत्न करेंगे।

परन्तु लेखकको तो प्रयोगके आरंभमें ही यह कठिनाई मालूम होने लगी हैं —

"महात्माजी, आप इस बातको स्वीकार करते हैं कि भारतके लोगोंने आपके धर्मका अनुसरण नहीं किया है। मालूम होता है कि उसका कारण भी आपको मालूम नहीं है। बात यह है कि साधारण मनुष्य सब महात्मा नहीं होते। यह बात इतिहाससे सिद्ध है और उसमें सन्देह करनेका कोई भी अवकाश ही नहीं है। भारतमें और दूसरी जगहोंमें थोड़े महात्मा लोग हुए हैं परन्तु वे अपवादरूप हैं और अपवाद नियमका ही समर्थन करता है। आपको ऐसे अपवादोंके आधारपर अपने कार्योंका निर्माण नहीं करना चाहिए।"

यह बड़े विस्मयकी बात है कि हम अपने आपको कैसे भ्रममें डाल देते हैं। हम यह खयाल करते हैं कि हम इस नाशवन्त शरीरको अमर बना सकते हैं और आत्माकी गुप्त शक्तिको व्यक्त करना असंभव समझते हैं। यदि मुझमें इन शक्तियोंमेंसे एक भी शक्ति उत्पन्न हुई तो मैं यह दिखानेके प्रयत्नमें ही लगा हुआ हूँ कि मेरा शरीर उतना ही निर्बल और नाशवन्त है जितना कि हमारेमेंसे किसी दूसरे मनुष्यका है और मुझमें ऐसी कोई विशेष शक्ति कभी थी ही नहीं और न आज है। मैं तो दूसरे मनुष्य प्राणियोंकी तरह गलती करनेवाला एक सादा व्यक्ति होनेका ही दावा करता हूँ। फिर भी मैं इस बातको स्वीकार करता हूँ कि मेरेमें इतना मनुष्यत्व अवश्य है कि मैं अपनी गलतियोंको स्वीकार कर लेता हूँ और उस गलत मार्गको छोड़ देता हूँ। मैं इस बातको भी स्वीकार करता हूँ कि

मुझे ईश्वरपर और उसकी भलाईपर अटल श्रद्धा है और सत्य और प्रेमके लिए मेरेमें अक्षय उत्साह है। परन्तु क्या यह गुण प्रत्येक मनुष्यमें छिपे हुए नहीं हैं ? यदि हमें प्रगति करनी है तो हमें इतिहासको नहीं दुहराना चाहिए परन्तु नये इतिहासकी रचना करनी चाहिये। हमारे पूर्वज हमारे लिए जो बातें छोड़ गये हैं उनमें हमें कुछ वृद्धि करनी चाहिये। यदि हम दृश्य जगतमें नये-नये शोध कर रहे हैं तो क्या हमें आध्यात्मिक क्षेत्रमें अपनेको दिवालिया सावित करना चाहिये ? अपवादोंकी वृद्धि करके उसे ही नियम बना देना क्या असंभव है ? क्या मनुष्यको हमेशा प्रथम पशु ही होना चाहिए और फिर मनुष्य ?

हिन्दी नवजीवन
६ मई, १९२६

❀

"जिसका जीवन सत्यमय है वह तो शुद्ध स्फटिक मणिकी तरह हो जाता है। उसके पास असत्य जरा देरके लिए भी नहीं ठहर सकता। सत्याचरणी को कोई धोखा दे ही नहीं सकता; क्योंकि उसके सामने झूठ बोलना अशक्य हो जाना चाहिये। संसारमें कठिनसे कठिन व्रत सत्यका है।"

—गांधीजी

❀

अहिंसाकी गुत्थी

एक भाई लिखते हैं—

"माना कि मैं संसारी हूँ। बड़ा खयाल रखनेपर भी खटियामें खटमल हो गये हैं। उन्हें उठाकर रखनेमें भी कितने ही मर जाते हैं। घड़ेके पानीमें भी जीव पड़ गये हैं और उस पानीको फेंक देनेपर भी उन छोटे छोटे जीवोंकी हिंसा होती है। घरमें मकड़ीने जाले बनाये हैं। उन्हें साफ करनेमें भी हिंसा होती है। मान लो कि मैं एक व्यापारी हूँ। मालकी पेटीमें जीव पड़ गये हैं। यदि उन जीवोंको मैं दूर न करूँ तो मालका नुकसान होता है। मैं बाहर घूमनेके लिए जाता हूँ तो उस क्रियामें भी पैरोंके नीचे थोड़े बहुत जीव आ जाते हैं। बत्ती जलाता हूँ तो यहां भी यही मुश्किल होती है। सिंहादिके विषयमें पूछना ही क्या है ? ऐसे दूसरे अनेक दृष्टांत मैं दे सकता हूँ। क्या आप उनका खुलासा कर सकेंगे ? ऐसी स्थितिमें अहिंसा धर्मका पालन कैसे किया जाय ?"

इस प्रकारके प्रश्न बारबार उठते हैं। ऐसे प्रश्नोंको तुच्छ समझकर दूर कर देनेसे भी काम नहीं चल सकता है। पूर्व और पश्चिमके गूढ़ रहस्ययुक्त ग्रंथोंमें भी ऐसे प्रश्नोंकी तो चर्चा की गयी है। मेरी अल्पमतिके अनुसार तो इन सब प्रश्नोंका एक ही उत्तर है क्योंकि सभीका मूल एक हीमें समाया हुआ है। ऊपर कही गयी सभी क्रियाओंमें अवश्य हिंसा है क्योंकि क्रियामात्र हिंसामय है। और इसलिए सदोष है। भेद है तो सिर्फ कम व बेश परिमाणका ही है। देहका और आत्माका सम्बन्ध ही हिंसाके आधारपर रचा गया है। पापमात्र हिंसा है और पापका सर्वथा क्षय होना ही देह-मुक्ति प्राप्त करना है। इसलिए देहधारी मनुष्य अहिंसाके आदर्शको दृष्टिके समीप रखकर जितना दूर जा सके उतना दूर जाय। परन्तु अधिकसे अधिक दूर जानेपर भी कुछ हिंसाका होना तो अनिवार्य ही होगा, जैसे श्वासोच्छ्वास लेना अथवा खाना इत्यादिमें। अनाजके प्रत्येक कणमें जीव है। इसलिए यदि हम मांसाहारके बदले अन्नाहार करते हैं तो उससे हम हिंसासे मुक्त नहीं गिने जा सकते हैं परन्तु अन्नाहारमें होनेवाली हिंसाको अनिवार्य समझकर उसका आहार करते हैं और इसीलिए तो भोगके लिए आहार सर्वथा त्याज्य है। जीवित रहनेके लिए खाना चाहिये और आत्माकी पहचान करनेके लिए जीवित रहना चाहिये। इस पुरुषार्थकी साधनाके लिए जो हिंसा अनिवार्य हो उसे हमें लाचार होकर करना चाहिये। अब हम यह समझ सकेंगे कि सम्पूर्ण खयाल रहनेपर भी पानीमें पड़े हुए जीव, खटमल इत्यादिके सम्बन्धमें जो बात हमें अपरिहार्य मालूम होती हो तो उसे हमें करना होगा। मैं यह मानता हूँ कि ऐसा कोई दिव्य नियम

नहीं हो सकता है कि अमुक स्थितिमें प्रत्येक मनुष्य एक ही प्रकारकी चाल चले, दूसरी नहीं। अहिंसा हृदयका गुण है। हिंसा अहिंसाका निर्णय मनुष्यकी भावनाके आधारसे हो सकता है। इसलिए हरएक मनुष्य जो अहिंसा-धर्मको अपना कर्त्तव्य मानता हो उपर्युक्त सिद्धांतके अनुसार अपने कार्यकी व्यवस्था कर लें। मैं यह जानता हूँ कि ऐसा उत्तर देनेमें एक दोष है। इससे मनुष्य अपनी इच्छासे चाहे जितनी हिंसा करके अपने मनकी प्रवञ्चना करेगा, संसारको ठगेगा और अनिवार्यताका बहाना निकालकर हिंसाका बचाव करेगा। परन्तु ऐसे लोगोंके लिए लेख नहीं लिखा गया है। यह उनके लिए है जो अहिंसाका आदर करते हैं परन्तु जिनके सामने समय समयपर धर्म-संकट उपस्थित होता है ऐसे मनुष्य अनिवार्य हिंसा भी बड़े संकोचसे करेंगे और अपनी प्रवृत्तिमात्रके विस्तारको कम करेंगे, बढ़ावेंगे नहीं; यहां तक कि वे अपनी एक भी शक्तिका स्वार्थ-दृष्टिसे उपयोग नहीं करेंगे वे केवल समाज-सेवाके भावसे ही ईश्वरार्पण करके अपनी सब शक्तियोंका उपयोग करेंगे। संत अर्थात् अहिंसक, अर्थात् दयालु मनुष्यकी सब विभूतियां परोपकारके लिए ही होती हैं। जहाँ अहंकार है वहाँ हिंसा अवश्य है। प्रत्येक कार्य करते समय मनमें यह प्रश्न कर लेना चाहिए यहां "मैं (अहंकार) हूं या नहीं ?" जहाँ मैं (अहंकार) नहीं है, वहाँ हिंसा नहीं है।

हिन्दी नवजीवन
१० जून, १९२६

❀

"जो मनुष्य अपनी जिह्वाको कब्जेमें नहीं रख सकता उसमें सत्यका अधिष्ठान नहीं है।"

—गांधीजी

❀

स्वाभाविक किसे कहेंगे

आजकल स्वाभाविक शब्दका बड़ा दुरुपयोग हो रहा है। एक भाई लिखते हैं—

"जिस प्रकार मनुष्यके लिए खाना-पीना स्वाभाविक है उसी प्रकार क्रोध करना भी स्वाभाविक है।"

दूसरे भाई लिखते हैं—

"जिस प्रकार हम लोगोंका सोना-बैठना स्वाभाविक है उसी प्रकार विषय-भोग करना भी स्वाभाविक है। यदि यह बात ठीक न हो तो ईश्वरने हमें विषय वासना ही क्यों दी? दुष्ट मनुष्यके प्रति क्रोध करना और साधुजनकी स्तुति करना यदि हमारा धर्म नहीं है तो हमें स्तुति-निंदा करनेकी शक्ति क्यों दी गयी है? सर्व शक्तियोंका सम्पूर्ण विकास ही धर्म क्यों न हो? इस प्रकार विचार करनेसे क्या यह प्रमाणित नहीं होता है कि जितने अंशोंमें अहिंसा धर्म है उतने अंशोंमें हिंसा भी धर्म है? थोड़ेमें कहें तो यही प्रतीत होता है कि पुण्य पाप हमारे दुर्बल मनकी कल्पना मात्र है। आपका अहिंसा धर्म एकांगी होनेके कारण दुर्बलताका ही सूचक प्रतीत होता है, और इसलिए उसे धर्म नहीं परन्तु परम अधर्म क्यों नहीं गिन सकते हैं? 'अहिंसा परमो धर्मः' इसमें अवग्रह छूट गया मालूम होता है। अथवा किसी मनुष्य जातिके शत्रुने उसे उड़ा दिया मालूम होता है। क्योंकि यह प्रतीत होता है कि बहुत मरतबा तो अहिंसाका परम अधर्म होना ही बड़ी आसानीसे साबित किया जा सकता है।"

ऊपर की गयी सब दलीलें किसी एक ही मनुष्यकी नहीं हैं, परन्तु दो चार या उससे भी अधिक मनुष्योंकी दलीलोंकी एकत्र सार हैं। अवग्रहके छूट जानेकी अथवा उसे उड़ा देनेकी कल्पना एक वकील मित्रकी है और उन्होंने यह दलील बड़ी गम्भीरताके साथ पेश की थी। यदि मनुष्यको भी पशुओंकी श्रेणीमें रख दिया जाय तो अनेक बातें जिसे हम स्वाभाविक मानते हैं स्वाभाविक सिद्ध हो सकती हैं। परन्तु यदि उन दोनोंमें जातिभेद होनेको हम स्वीकार करें तो यह नहीं कहा जा सकता कि जो बातें पशुओंके लिए स्वाभाविक हैं वे सब मनुष्योंके लिए भी स्वाभाविक हैं। मनुष्य ऊर्ध्वगति प्राणी है। उसे सारासार विवेक-बुद्धि दी गयी है। वह बुद्धिपूर्वक परमात्माका भजन करता है और उसे जाननेका, पहचाननेका भी प्रयत्न करता है; उसकी पहचान कर लेना ही वह अपना पुरुषार्थ समझता है। परन्तु यदि यह कहा जा सके कि पशु भी ईश्वरका भजन करता है तो वह अनिच्छासे ही ऐसा करता है, स्वेच्छासे नहीं।

और मनुष्य तो अपनी इच्छासे शैतानकी भी पूजा करता है। इसलिए मनुष्यका स्वभाव तो ईश्वरके जाननेका ही होना चाहिये और है। जब मनुष्य शैतानकी पूजा करता है तब वह अपने स्वभावके प्रतिकूल कार्य करता है। यदि कोई यही मानता हो कि मनुष्य और पशुमें कोई जातिभेद नहीं है तो उसके लिए यह दलील अवश्य निरर्थक है। वह अवश्य यह कह सकता है कि पाप-पुण्य जैसी कोई चीज नहीं। ईश्वरकी जानकारी प्राप्त करनेके स्वभावसे युक्त मनुष्यके लिए तो खाना-पीना इत्यादि भी केवल अमुक दृष्टिसे ही स्वाभाविक हो सकता है; क्यों कि ऐसा स्वभाव रखनेवाला मनुष्य खानेके लिए अथवा भोगके लिए खायेगा-पीयेगा नहीं परन्तु ईश्वरकी पहिचान करनेके लिए ही खाना खायेगा। इसलिए खानेके प्रति वह हमेशा पसन्दगी, मर्यादा और त्यागका भाव ही दिखलायेगा।

इसी प्रकार विचार करनेसे हमें यह भी मालूम होगा कि विषयभोग मनुष्य-स्वभावके लिए प्रतिकूल वस्तु है। इस भोगका सर्वथा त्याग करना ही उसके स्वभावके अनुकूल है। और उस भोगका सर्वथा त्याग किये बिना ईश्वरकी पहिचान करना भी असम्भव है। मनुष्यके अन्दरकी सर्व शक्तियोंका संपूर्ण विकास करना उसका धर्म नहीं है, वह उसका स्वभाव नहीं है, परन्तु ईश्वरके निकट ले जानेवाली सर्व शक्तियोंका विकास करना और उसके प्रतिकूल तमाम शक्तियोंका सर्वांशमें त्याग कर देना यही उसका दोहरा धर्म है।

जिस प्राणीको ग्रहण करनेकी और त्याग करनेकी पसंदगी अथवा स्वतंत्रता है उसका काम पाप-पुण्यका भेद माने बिना चल ही नहीं सकता है। पाप-पुण्यका दूसरा अर्थ है त्याज्य और ग्राह्य वस्तु। दूसरेकी चीज उससे छीन लेना त्याज्य है, पाप है। हममें अच्छी और बुरी वासनाएँ रही हुई हैं। बुरी वासनाओंका त्याग करना हमारा धर्म है। यदि वैसा हम न करें तो हम मनुष्य जन्म प्राप्त करनेपर भी पशु बन जाते हैं और इसीलिए तो सभी धर्म पुकार पुकार कर यह कहते हैं कि मनुष्य जन्म दुर्लभ है। मनुष्य देह हमारी परीक्षा-कसौटी करनेके लिए दिया गया है और हिन्दू धर्म कहता है कि इस कसौटीमें परीक्षामें अनुत्तीर्ण होनेपर हमें फिर पशुयोनिमें जाना होगा।

इस संसारमें हिंसा सब जगह व्याप्त है। एक अंग्रेजी वाक्यका अर्थ है कि कुदरतके नाखून खूनसे रंगे होते हैं। यदि ऊपर ऊपरसे ही इस वाक्यपर हम विचार करेंगे तो उसका सत्य हमें जगह-जगहपर दिखायी देगा। परन्तु यदि मनुष्योंको दूसरे प्राणियोंसे उत्तम मानें और उनमें एक विशेष इन्द्रियका आरोपण करें तो हमें फौरन ही यह मालूम होगा कि इस लाल खूनसे रंगे नाखूनोंवाली कुदरतके बीच मनुष्य ऐसे नखोंसे हीन बड़ी शोभा पा रहा है। मनुष्यका यदि कोई अलौकिक कर्तव्य हो, उसको शोभा दे तो वह अहिंसा ही है। हिंसाके मध्य खड़ा रहकर अपने अन्तरकी गुफामें गहरे जाकर, अनुभव प्राप्त करके वह कहता है—

'इस हिंसामय संसारमें मनुष्यका धर्म अहिंसा है। और जितने अंशोंमें वह अहिंसक है उतने ही अंशोंमें वह अपनी जातिको शोभा दे सकता है।'

मनुष्य-स्वभाव हिंसा नहीं परन्तु अहिंसा है। क्योंकि वही अपने अनुभवसे निश्चयपूर्वक यह कह सकता है—"मैं देह नहीं हूँ परन्तु आत्मा हूं, और इस देहका आत्माके विकासके अर्थ, आत्म-दर्शनके अर्थ ही उपयोग करनेका मुझे अधिकार है।" और उसमेंसे वह देह-दमनकी, काम, क्रोध, मद, मोह, मत्सर, आदि शत्रुओंको जीत लेनेकी नीतिकी रचना करता है, उन्हें जीतनेके लिए बड़ा प्रयत्न करता है और उसमें वह सम्पूर्ण विजय प्राप्त करता है। और जब वह ऐसी विजय प्राप्त करता है तभी कहा जा सकता है कि उसने मनुष्य जातिके अनुकूल कार्य किया है। इसलिए राग-द्वेषादिको जीत लेना कोई अतिमानुषी कार्य नहीं है परन्तु मानुषी कार्य है। अहिंसाका पालन बड़े उच्च प्रकारकी वीरताका लक्षण है। अहिंसामें भीरुताके लिए कहीं भी स्थान नहीं हो सकता है।

हिन्दी नवजीवन,

१७ जून, १९२६

❀

"जो सत्य जानता है; मनसे, वचनसे और कायासे सत्यका आचरण करता है, वह परमेश्वरको पहचानता है। इससे वह त्रिकालदर्शी हो जाता है। उसे इसी देहमें मुक्ति प्राप्ति हो जाती है।"

—गांधीजी

❀

जीवदया ? (अहिंसा—१)

अहमदाबाद 'जीवदया-प्रचारिणी महासभा' की ओरसे मेरे पास एक पत्र आया है। उसका आवश्यक अंश मैं नीचे देता हूँ—

"....सेठजीने अपनी मिलमें ६० कुत्तोंको जो गोली मरवा दी थी शहरमें उसकी चर्चा हालमें खूब चल रही है। इससे कई दया-प्रेमी सज्जनोंके दिलोंको चोट पहुँची है।

"हिन्दू धर्म-शास्त्रमें किसी भी जीवको मारना निषिद्ध है। इसलिए मारनेसे पाप लगता है। अब पगला कुत्ता मनुष्यको काटेगा तब उससे मनुष्यकी हानि होगी ही और वह दूसरे कुत्तोंको काटेगा तो पगले कुत्तोंकी संख्या बढ़ेगी। इस भयसे अगर उन्हें मार दिया जाय तो हिन्दू धर्मशास्त्रका उपर्युक्त सिद्धान्त जानकर भी आप क्या इसे वाजिब मानेंगे? इसमें मारनेवाले या मरवानेवालेको पाप नहीं लगेगा क्या? आप क्या ऐसा कह सकते हैं?

"हमारी सभाके (तीन सज्जनोंके) डिपुटेशनने तारीख २८—६—२६ के रोज......सेठजीसे मुलाकात की थी। उस समय बातचीतमें उन्होंने अपने आप कबूल किया कि एक पगले कुत्तेने दूसरे अच्छे कुत्तोंको काट खाया। इससे आदमियोंकी सलामतीके लिए मैंने यह काम करना (कुत्तोंको मरवा डालना) उचित समझा।' इसके अलावा उन्होंने यह भी कहा कि 'जिस दिन यह कृत्य किया उस दिन रातको मुझे नींदतक नहीं आयी। दूसरे दिन सबेरे महात्माजीसे मैं मिला और सारी हकीकत कहकर उनका अभिप्राय पूछा। महात्माजीने बतलाया कि 'इसके सिवाय और दूसरा हो क्या सकता था?' क्या यह बात सच है? यदि आपने भी यही जवाब दिया हो तो इसका अर्थ क्या समझा जाय?

"हम आशा करते हैं कि आप इसका समुचित खुलासा कर देंगे कि जिसमें शहरमें होती हुई यह चर्चा बन्द हो जाय, और हिन्दू-धर्मके ऊपर यह आघात करनेमें एक नामी व्यक्तिका उदाहरण उपस्थित होनेसे जीव-दयाकी प्रगतिका अवरोध न हो। विशेष बात यह है कि हमारे सुननेमें आया है कि अहमदाबाद म्युनिसिपैलिटीमें कुत्तोंको खस्सी (बधिया) करनेका प्रस्ताव आनेवाला है। यह प्रस्ताव क्या उचित है? प्रकृतिके बनाये हुए किसी भी प्राणीको इस प्रकार बधिया करनेमें धार्मिक दृष्टिसे क्या कोई दोष नहीं है? हम आशा रखते हैं कि इस बाबतमें भी आप सच्चा मार्ग यानी अपने विचार बतायेंगे।"

मिल-मालिकका नाम अहमदाबाद तो जानता ही है किन्तु 'हिन्दी-नव-जीवन' अहमदाबादके बाहर भी पढ़ा जाता है; इसलिए किसी सिद्धान्तकी चर्चा करनेमें जहाँतक हो सके नाम-ठाम न देनेके अपने रिवाजके अनुसार मिल-मालिकका नाम छोड़ दिया है। जीव-दया सभाका उठाया हुआ यह प्रश्न कठिन है। जब यह घटना घटी तभी या उससे भी पहले, इसके तत्वकी 'नवजीवन'में

चर्चा करनेका मैंने इरादा किया था लेकिन पीछेसे वह विचार छोड़ दिया। उपस्थित पत्रके आनेपर तो इसकी चर्चा करनेकी जवाबदारी और फर्ज मेरे ऊपर आ ही पड़े हैं।

मिल-मालिकके साथ मेरा घनिष्ट, अगर कह सकें तो, मित्रताका संबंध है। उन्होंने कुत्तोंको मरवानेके बाद मेरे पास आकर अपना दुःख प्रकाशित किया था और मेरा अभिप्राय पूछा था। उन्होंने मुझसे कहा—'जब सरकार, म्युनिसिपैलिटी और महाजन, कोई भी मेरा छुटकारा न कर सके तब जाकर मुझे यह काम करना पड़ा।" जिस उत्तरका इस पत्रमें उल्लेख किया गया है, मैंने वैसा ही उत्तर दिया था।

उसके बाद भी विचार करनेपर मुझे अपना उत्तर उचित मालूम होता है।

पगले कुत्तेको मार डालनेके सिवाय, हम अपूर्ण मनुष्योंके पास कोई उपाय ही नहीं है। खून करनेपर उतारू मनुष्यको मारनेका धर्म-संकट कितनी बार अनिवार्य हो जाता है।

अगर हम शहरमें भटकनेवाले कुत्तोंको रखनेका हठ करें तो उनको हमें या तो खस्सी करना पड़ेगा या मार डालना होगा। खास कुत्तोंके लिए ही पिंजरापोल रखना भी तीसरा उपाय है। लेकिन वह उपाय, उपाय कहने योग्य नहीं है। यों ही भटकती हुई सभी गायों-भैंसोंके लिए भी जहाँ काफी पिंजरा पोल नहीं है, वहाँ कुत्तोंके लिए अलग पिंजरा पोल खोलनेका विचार तो मुझे भयंकर लगता है।

इस विषयमें, हिन्दू-धर्ममें दो मत सुननेमें नहीं आते कि किसी भी जीवको मारनेमें पाप लगता है। मेरा अभिप्राय तो ऐसा है कि सभी धर्मोंने इस सिद्धान्तको स्वीकार किया है। सिद्धान्तको ढूँढ़नेमें कोई मुश्किल नहीं होती है। उसका केवल अमल करनेमें ही सभी मुश्किलें आ पड़ती हैं। इसलिए सिद्धान्त तो इस विषयमें पूर्ण हैं। उनका अमल करनेवाले हम मनुष्य अपूर्ण हैं। अपूर्णके द्वारा पूर्णका अमल होना अशक्य होनेके कारण, प्रतिक्षण सिद्धान्तके उल्लंघनकी नयी मर्यादा ठीक करनी पड़ती है। इससे हिन्दू-शास्त्रमें कह दिया गया है कि यज्ञार्थ की हुई हिंसा हिंसा नहीं होती। यह अपूर्ण सत्य है। हिंसा तो सभी समय हिंसा ही रहेगी और हिंसा मात्र पाप है। किन्तु जो हिंसा अनिवार्य हो पड़ती है उसे व्यवहार-शास्त्र पाप नहीं मानता। इसलिए यज्ञार्थ की गयी हिंसाका व्यवहार-शास्त्र अनुमोदन करता है और उसे शुद्ध पुण्य-कर्म मानता है।

किन्तु अनिवार्य हिंसाकी व्याख्या नहीं की जा सकती, क्योंकि वह तो देश, काल और पात्रके अनुसार बराबर बदलती रहती है। एक कालमें जो क्षन्तव्य

मानी जाती है, दूसरे कालमें वही अक्षन्तव्य। जाड़े भरमें शरीरकी रक्षाके लिए लकड़ी या कोयला जलानेमें होती हुई हिंसा दुर्बल शरीरके लिए भले ही अनिवार्य हो किन्तु भर गर्मी बिना-जरूरत जलायी गयी आग स्पष्ट हिंसा है।

हमने जन्तुनाशक दवाओंका उपयोग करके विषैले जन्तुओंका नाश करनेका धर्म स्वीकार किया है। जन्तुनाशक दवाको जाने दीजिये। बन्द कोठरीमें जहरीली दवा होती है। उसमें जहरीले कीड़े होते हैं। उस कोठरीको खोलकर हवा और उजालेको दाखिल करके हम जहरीले कीड़ेका नाश करते हैं। शुद्ध हवा उत्तम प्रकारकी जन्तुनाशक दवा है।

ऐसे बहुत उदाहरण पेश किये जा सकते हैं। जो नियम ऊपरके उदाहरणोंमें लागू पड़ता है वही नियम पगले कुत्तेको मारने या खस्सी करनेमें भी लागू होता है। पगले कुत्तोंका नाश करना तो छोटीसे छोटी हिंसा है। जंगलमें रहने-वाले दयाके सागर मुनि पगले कुत्तोंका नाश नहीं करते। उनके पास दूसरी हा रामबाण दवा है। वे अपने कृपाकटाक्षसे कुत्तोंके पागलपनका नाश कर देंगे। किन्तु वे गृहस्थाश्रमी शहराती सज्जन क्या करें, जिनके ऊपर शहरकी रक्षा और बालकोंकी रक्षाका धर्म पड़ा हुआ है, और जिनमें मुनिके आदर्श गुण तो नहीं हैं किन्तु कुत्तोंको मारनेकी शक्ति है? अगर मारते हैं तो पाप करते हैं। नहीं मारते हैं तो महापाप करते हैं। वे कुत्तोंको मरवानेका अल्प पाप करके उसकी अपेक्षा महत् पापसे बचते हैं।

मैं अपनेको अहिंसामय मानता हूँ। अहिंसा और सत्य मेरे दो प्राण हैं। मैं यह मानता हूँ कि उनके बिना मैं जी नहीं सकता। किन्तु अहिंसाकी महान शक्ति और मनुष्यकी पामरताको क्षण-क्षणमें अधिकाधिक स्पष्टतासे देखता हूँ। दयानिधि वनवासी भी सम्पूर्ण हिंसामुक्त नहीं हो सकते। उनकी प्रत्येक श्वाँस, उनसे हिंसा कराती है। यह देह तो हिंसाका स्थान है। इसीलिए सर्वथा देह-मुक्तिमें ही मोक्ष और परमानन्द रहता है। इसीसे मोक्षके आनन्दको छोड़कर और सभी आनन्द अस्थिर हैं, सदोष हैं। ऐसा होनेसे हमें हिंसाके कितने ही कड़वे घूँट पीने पड़ते हैं।

परन्तु यही तो आश्चर्य है, यही तो खेदकी बात है कि इस अहिंसा-प्रधान भूमिमें कुत्तोंका सवाल भयंकर स्वरूप धारण कर सकता है। मेरा यह दृढ़ विश्वास है कि अज्ञानके बस होकर आज हम अहिंसाके नामपर हिंसा कर रहे हैं। पगले कुत्तों या उन कुत्तोंको, जिनके विषयमें भय है कि पगले कुत्तोंके संसर्गमें आयेंगे, मारनेमें पाप भले ही हो लेकिन उनकी हस्तीके लिए सच्चे जवाबदेह तो हम हैं और हमारे महाजन हैं। महाजन लोगोंको यों ही भटकते कुत्तोंको न रहने देना चाहिये। ऐसे छुट्टे कुत्तोंको खाना देना पाप है, पाप मानना चाहिये।

इन लावारिस कुत्तोंको मारनेका अगर हम कानून बनायेंगे तो हजारों कुत्तोंकी जान बचा सकेंगे।

जीवदया आत्माका एक महान गुण है। थोड़ी चींटियों या थोड़ी मछलियों या थोड़े कुत्तोंको बचानेमें उसकी समाप्ति नहीं है। उसमें पाप भी होता है। मेरे यहाँ चींटियोंका उपद्रव होता है। उन चींटियोंको सत्तू छींटनेवाले दानी पाप करेंगे। चींटीको तो ईश्वर कण देंगे। किन्तु संभव है कि वह सत्तू छींटनेवाला मेरा और मेरे कुटुम्बका नाश कर दे। कोई जैन-संघ कुत्तेको पिंजड़में बन्द करके मेरे खेतके पास छोड़ कर आप भले सुरक्षित बन सकता है किन्तु कुत्तेको बचानेका अर्थ होता है मेरी जानको खतरेमें डालकर कुत्तेको मारनेकी अपेक्षा बहुत बड़े पापको मोल लेना।

जीव-दयामें विचार, विवेक, उदारता,अभय, नम्रता और शुद्ध ज्ञानकी जरूरत है।

इस हिंसामय जगतमें अहिंसा-रूपी तीखी तलवारकी धारपर चलना सहज काम नहीं है। यह धनसे नहीं बनता। क्रोध तो अहिंसाका बैरी है। अभिमान है, उसे खा जानेवाला राक्षस। इस धर्मके पालनमें कितनी बार हिंसाको अहिंसाके नामसे पहिचानना पड़ता है। इस जगतमें जो वस्तु जैसी दिखलायी पड़ती है, उसका स्वरूप वैसा ही नहीं होता है और जिसका जैसा स्वरूप होता है, वह वस्तु वैसी ही दिखलायी नहीं पड़ती है। अथवा कोई करोड़ों वर्षोंकी तपश्चर्याके बाद अन्तमें देख सकता है—अनुभव कर सकता है। कह तो कोई न सका, कह सकता भी नहीं।

> या निशा सर्व भूतानां तस्यां जागर्ति संयमी।
> यस्यां जागर्ति भूतानि सा निशा पश्यतो मुनेः॥

हिन्दी नवजीवन,
१४ अक्तूबर, १९२६

❀

"मेरे सामने जब कोई असत्य बोलता है तब मुझे उसपर क्रोध होनेके बजाय स्वयं अपने ही ऊपर अधिक कोप होता है। क्योंकि मैं जानता हूँ कि अभी मेरे अन्दर-तहमें असत्यका वास है।"

—गांधीजी

अहिंसाके लिए कमर कसो

न्यूयार्क (अमेरिका) के समाचार पत्र 'नेशन' से एक मित्र एक कतरन भेजते हैं। उसमें यह लिखा है—

"कुछ दिन हुए (सन् १९२४ के अखीर या २५ के शुरूमें) चीन देशमें रहनेवाले २५ अमेरिकन पादरियोंने पेकिनके अमेरिकन मंत्रीके पास निम्नलिखित विनय पत्र भेजा था—

'निम्नलिखित अमेरिकन पादरी चीन देशमें भ्रातृत्व और शान्ति धर्मके प्रचारकके रूपमें रहते हैं। हमारा काम है स्त्रियों और पुरुषोंको ईसाके उस नये जीवनमें लाना जिससे बन्धुत्वका प्रचार होता है और युद्धके अवसर ही जाते रहते हैं। इसलिए हम अपनी हार्दिक अभिलाषा व्यक्त करते हैं कि किसी भी प्रकारका सैनिक दबाव, विशेष करके कोई भी विदेशी सैनिक शक्तिका उपयोग, हमारे या हमारी सम्पत्तिके रक्षार्थ न किया जाय। अगर हम कुछ शासन-विरुद्ध पुरुषोंके हाथ कैद हो जायँ या वे हमें मार ही डालें तो भी हमें छुड़ानेके लिए न तो सेनाएँ भेजी जायँ, न रुपया ही चुकाया जाय, और न दण्ड-स्वरूप धन ही माँगा जाय। ऐसी स्थिति हमने इसलिए पसन्द की है कि हमारा विश्वास है कि सत्य और शान्तिकी स्थापनाका उपाय यही है कि हम सभी दशाओंमें सभी व्यक्तियोंके साथ प्रेम-व्यवहार करें, चाहे वे हमें कष्ट ही क्यों न देते हों और हम उसका बदला न चुकायें।' अमेरिकन मंत्रीने उत्तर दिया कि 'चीन देशमें अमेरिकनोंकी रक्षाकी आवश्यकताके लिहाजसे यह विनय असंगत है, इसलिए जरूरी मौकों-पर न तो ऊचित काररवाई करनेमें किसीके प्रति कुछ छूट करना सम्भव है, न की ही जायगी।'

यह उन उदाहरणोंमेंसे है जब दो परस्पर विरोधाभासकी बातें भी एक साथ सही होती हैं। उन बहादुर पादरियोंके लिए दूसरी स्थिति संभव ही न थी, मगर इन दिनों बहुत कम लोग उसे स्वीकार करते हैं। यह भी तो शायद चीन देशकी ही बात है कि कोई तीस साल हुए, पादरियोंके एक दलने लार्ड सैलिसबरीके यहाँ हाजिर होकर उनसे प्रार्थना की थी कि अनिच्छुक चीनियोंके पास हमें अपना संदेश पहुँचानेके लिए आप हमें अंग्रेजी सरकारकी सेनाकी सहायता दीजिये। तब उस स्वर्गीय सज्जन लार्डको कहना पड़ा था कि अगर आप अंग्रेजी सेनाकी संरक्षा चाहते हैं तो आपको अन्तरराष्ट्रीय—संबंधके नियमोंको भी मानना होगा और अपने धर्म-प्रचारोत्साहको कुछ दबाना होगा। उन्होंने पादरियोंको यह याद दिलाया कि प्राचीन कालके पादरी लोग दुनियाँके किसी भी किनारेपर जाते थे मगर सिवाय

ईश्वरके और किसीसे रक्षाकी उम्मीद नहीं रखते थे और अपनेको बराबर खतरेमें डाले रहते थे। न्यूयार्कके 'नेशन' के दिये हुए उदाहरणमें, ये पादरी, इस समाचारके अनुसार, पुरानी पद्धतिपर लौट गये हैं। अमेरिकन सरकारकी जबतक यही सूरत है तबतक तो वह यही जबाब दे सकती है, जो उनका जवाब देना कहा जाता है। यह दूसरी ही बात है कि उस एकमात्र जवाबसे वर्तमान पद्धतिका दोष झलकता है। अमेरिकन सरकारकी प्रतिष्ठा उसकी नैतिक ताकतपर निर्भर नहीं है। यह उसकी पशु-शक्तिपर निर्भर है। किन्तु अमेरिकाके नाम मात्रके नाम और मानकी रक्षाके लिए उसकी सारी सैनिक-शक्तिका संग्रह ही क्यों किया जाय? इससे अमेरिकाकी इज्जतमें कौन-सा बट्टा लग जायगा, अगर २५ अमेरिकन बिना बुलाये अपना संदेश सुनाने चीन देशमें जायँ और वहाँ मार डाले जायँ? उसके उद्देश्यके लिए शायद सबसे बेहतर बात यही होती। आप बीचमें पड़कर अमेरिकन सरकारको कष्ट-सहनके नियमकी पूर्तिमें बाधा ही डाल सकती है। किन्तु अमेरिका अगर आत्म-संयम करे तो उसका अर्थ होगा कि दृष्टिकोण ही बिलकुल बदल गया है। आज नागरिकताकी रक्षाका अर्थ है, कौमी तिजारतकी रक्षा—जिसका दूसरा नाम है लूट-खसोट। उस लूट-खसोटमें यह बात पहले ही मान ली जाती है कि अनिच्छुक लोगोंके ऊपर अपनी तिजारत लादनेमें हम समर्थ हैं। इसलिए एक अर्थमें कौमें मानों लुटेरोंका गिरोह बन गयीं हैं जब उन्हें स्त्री-पुरुषोंकी वह शान्त जमायतें होना चाहिये था, जिनमें वे मनुष्य-जातिके साधारण हितके लिए एकत्र हुए हों। इस दूसरी हालतमें उनकी ताकत गोले बारूदके व्यवहार-नैपुण्यपर निर्भर नहीं करती, किन्तु ऊँची नीतिमत्तापर। उन २५ पादरियोंका काम पुनः संघटित समाज या पुनः संघटित राष्ट्रोंतककी धूमिल छाया है। मुझे यह नहीं मालूम कि उन्होंने जीवनके सभी अंगोंमें अपने सिद्धान्तका पालन किया था या नहीं। यह बतलानेकी जरूरत मुझे बिलकुल नहीं है कि उनकी इच्छाके विरुद्ध भी उनकी रक्षा करनेकी अमेरिकन सरकारके धमकी देते रहनेपर भी बदला लेनेके सभी प्रयत्नोंका वे जवाब दे सकते थे—बल्कि उन्हें विफलतक कर सकते थे। मगर इसका अर्थ होगा, अपनी हस्तीको बिल्कुल गायब कर देना। अगर किसीको ताकतकी जंजीर तोड़नी हो तो वह उन्हीं तरीकोंसे हो सकेगा जो आजके केवल पशु-शक्तिके पुजारियोंके तरीकोंसे बिल्कुल भिन्न हों। इसे भुलाया नहीं जा सकता कि आजके पशु-शक्तिके पूजनमें भी एक तत्व है और उसका समर्थक उसका एक इतिहास भी है। अगर उन्हें अहिंसामें अटल विश्वास हो तो उनके पक्षपातियोंके, जो बहुत छोटी संख्यामें हैं, उससे डरनेकी कोई जगह नहीं है, किन्तु इस बातमें किसी कारण विश्वासकी कमी मालूम होती है कि पशु-शक्तिके बिना भी समाज संगठन कायम रखा जा सकेगा। मगर अगर केवल एक आदमी सारे संसारका विरोध कर सकता है तो दो या दोसे अधिक आदमी मिलकर क्यों न करें? मैं जानता हूँ कि इसका क्या जवाब दिया गया

है। हम लोगोंमें जो क्रान्ति धीरे धीरे हो रही है, उसकी शक्तियोंका पता केवल समय ही बतलावेगा। जहाँ काम शुरू हो गया है वहाँ फलका अन्दाज लगाना व्यर्थका प्रयास होगा। जिनमें विश्वास होगा वे उस प्रारम्भिक स्थितिमें ही अपना काम शुरू कर देंगे—जब कुछ दिखलाने लायक फल नहीं जतलाये जा सकते।

हिन्दी नवजीवन

२१ अक्तूबर, १९२६

❀

"परमेश्वरकी व्याख्याएँ अगणित हैं, क्योंकि उसकी विभूतियाँ भी अगणित हैं। विभूतियाँ मुझे आश्चर्य-चकित तो करती हैं, मुझे क्षण भरके लिए मुग्ध भी करती है, पर मैं तो पुजारी हूँ सत्य-रूपी परमेश्वरका। मेरी दृष्टिमें वही एक मात्र सत्य है, दूसरा सब कुछ मिथ्या है। पर यह सत्य अभी तक मेरे हाथ नहीं लगा है; अभी तक तो मैं उसका शोधक मात्र हूँ। हाँ, उसकी शोधके लिए मैं अपनी प्रियसे प्रिय वस्तुको भी छोड़ देनेके लिए तैयार हूँ; और इस शोधरूपी यज्ञमें अपने शरीरका भी होम देनेकी तैयारी कर ली है।"

—गांधीजी

❀

अहिंसा—(२)

सेठ अम्बालालके द्वारा कराये गये ६० कुत्तोंके नाशको अनिवार्य समझने तथा उसे प्रकाशित करनेमें मैंने भूल भले ही की हो, लेकिन इस किस्सेसे अबतक तो मैं लाभ ही होता हुआ देख रहा हूँ। ऐसे प्राणियोंके प्रति हमारा क्या धर्म है सो हम अब शायद अधिक स्पष्ट रूपसे समझेंगे। अभीतक अयोग्य होते हुए भी, बिना समझे-बूझे दम्भसें और लोकलाज वश काम चलता आया है; अब कुछ अधिक स्पष्टता हो जायगी।

लेकिन उसके होनेके लिए पाठकों तथा मेरे बीच कुछ सफाई हो जानी जरूरी है। मेरे नाम इस विषयमें ढेरों पत्र आये हैं; इसमेंसे कोई मीठा, कोई तीखा और कोई कड़ुआ है। उन पत्रोंसे मुझे प्रतीत होता है कि मित्र भी सेठ अम्बालालके कार्यके विषयमें मेरा अभिप्राय नहीं समझ सके हैं। मेरे नसीबसे मेरे जीवनमें हमेशा ऐसा ही होता चला आया है। दक्षिण अफ्रीकामें, अविचार-पूर्वक देखनेसे विरोधी मालूम होते हुए, लेकिन हकीकतमें केवल सिद्धान्तानुसार किये गये कार्यके हेतु, जो पीछेसे सिद्धान्तानुसार सिद्ध हुआ, मेरे निर्दोष होते हुए भी, मुझे अपनी जिन्दगीकी जोखमतक उठानी पड़ी थी। बारडोलीकी 'हिमालय वाली भूल' का स्मरण तो अभी ताजा ही है। बम्बई सरकारने मेहर-बानी करके मुझे यरवदामें डालकर मेरा बहुत-सा स्याही कागज बचा लिया। बारडोलीके पास किये हुए प्रस्ताव मुझे आज भी भूल रूप नहीं मालूम हो रहे हैं; वरन् मैं इनको एक प्रौढ़ अहिंसाका तथा मूल्यवान सेवाका कार्य मानता हूँ।

उसी प्रकार इस (कुत्तेके) सम्बन्धमें भी जो मेरा अभिप्राय है उसके बारेमें मुझे मालूम हो रहा है। मुझे लगता है कि अहिंसामय होनेका दावा करते हुए भी इस अभिप्रायका समर्थन किया जा सकता है।

लेकिन शत्रु, मित्र, एवं सुहृद—सबको धैर्य रखनेकी जरूरत है। शत्रु-रूपसे लिखनेवालोंने मर्यादा त्याग दी है; उनके पत्रोंमें अविनय और रोष भरा हुआ है। उन्होंने मेरी स्थितिको समझनेका प्रयत्न नहीं किया। उन्हें मेरा अभिप्राय असह्य लगा है। या तो वे मुझे सुधारक तथा शिक्षक मानते हैं या वे मुझे शिक्षा देनेकी आशा रखते हैं। यदि वे मुझे शिक्षक मानते हों तो उनको विनय, शान्ति और श्रद्धासे पूछना चाहिये और जो मैं लिखूँ उसका उन्हें मनन करना चाहिये; जो वे मुझे शिक्षा देना चाहते हों तो मेरे ऊपर दया करके, प्रेम तथा धीरजके साथ मीठे शब्दोंमें मुझे समझावें। अपनी संरक्षामें रहनेवाले बालकोंको मैं क्रोधसे कुछ सिखा नहीं सकता, बल्कि उनके ऊपर प्रेम करता हूँ, उनका अज्ञान सहन

करता हूँ, उनके साथ खेलता हूँ और उन्हें सिखाता हूँ। इसी सहनशीलता, इसी प्रेम, और इसी विनोदकी आशा मैं अपने क्रोधी शिक्षकोंसे करता हूँ। मैंने कुत्तेके विषयमें प्रस्तुत किया हुआ अपना आशय शुभ भावनासे तथा अपना धर्म समझ कर दिया है। अगर उसमें कोई त्रुटि हो तो शिक्षक लोग मुझे धीरजके साथ और दलीलोंसे समझावें। अगर वे क्रोध दिखलायेंगे या अनेक प्रकारके अप्रस्तुत प्रश्न करेंगे तो उससे मैं कैसे समझनेवाला हूँ?

एक भाई मुझसे कुअवसरपर मिलने आये। मैं अतिशय उद्यमी रहता हूँ—यह बात वे जानते थे। मेरे साथ उन्होंने संवाद किया, मुझे अपना कटु भाषण सुनाया तथा अपना क्रोध मुझपर ला उतारा। मैंने उन्हें विनोदमें तथा विवेक-पूर्वक जवाब दिया। उन्होंने उस वार्तालापकी एक पत्रिका भी बनाकर छपवायी है; उसकी एक प्रति मेरे पास पड़ी हुई है। इसमें सत्यकी मर्यादा नहीं है—फिर विनय कहाँका? उन्होंने उस संवादके छपवानेके लिए मुझसे नहीं पूछा और न मुझे बतलाया ही। इस प्रकारसे वे मुझे किस प्रकार सिखा सकते हैं? जो सत्यको छोड़ता है, वह अहिंसाकी जड़ काटता है।

लेकिन शत्रु-भावसे बर्ताव करनेवाले भी मेरे ऊपर उपकार कर रहे हैं। वे मुझे अपना अंतःकरण खोजना सिखा रहे हैं। क्रोधकी प्रतिक्रियासे मैं बच गया हूँ या नहीं—इस बातको देखनेका मुझे मौका मिलता है। और अगर मैं उनके क्रोधका मूल खोजता हूँ, तो उसकी तहमें प्रेम ही पाता हूँ। उन्होंने मुझमें अपनी समझके अनुसार अहिंसा मान रखी है। अब उनको उलटा दिखायी देता है। इसीलिए वे क्रोध करते हैं। कारण यह है कि वे मुझे महात्मा मानते थे। लोगोंपर उनको रुचनेवाला मेरा प्रभाव पड़ता हुआ देखकर वे प्रसन्न रहते थे। अब मैं उनको अल्पात्मा लगता हूँ। मेरे प्रभावको वे कुप्रभाव जानकर दुःखी होते थे। उन्होंने क्रोधको जीतना नहीं सीखा। इसीलिए वे इस दुःखको क्रोधमें परिणत करते हैं।

इस क्रोधका मैं स्वागत करता हूँ। उसके पीछे जो भाव है, उसे मैं समझता हूँ। उनको समझानेका प्रयत्न करूँगा। उस प्रयत्नमें सहायता करनेके लिए मैं उनसे विनती करता हूँ कि वे क्रोधको शान्त करें। उनके क्रोधको मैं समझ गया हूँ। मैं सत्यका पुजारी तथा शोधक हूँ। जो मेरी भूल हुई होगी तो मैं देखूँगा और चूँकि भूलको कबूल करना मुझे प्रिय है इसलिए तुरंत कबूल करके उसे सुधार लूँगा। शास्त्रका वचन है कि सत्यवादी एवं सत्याचरणीकी भूलोंसे भी जगतको क्षति नहीं पहुँचती। सत्यकी महिमा ऐसी है।

मित्रों और सुहृदोंके लिए बस इतना ही कहूँगा।

मैंने आपके पत्र इकट्ठे कर लिये हैं। बहुतोंको तो मैं सामान्यतया

व्यक्तिगत रूपसे उत्तर दे रहा हूँ। लेकिन इस विषयमें इतने लोगोंके और इतने लम्बे लम्बे पत्र आये हैं कि उनका सविस्तार उत्तर देना अशक्य है। उनकी पहुंच तक दे सकनेका अवकाश मेरे पास नहीं है।

कितने एक लेखक तो अपने पत्रोंको 'नवजीवन' में प्रकाशित हुआ देखना चाहते हैं। इस बोझसे वे मुझे बरी कर दें। उनकी की हुई दलीलोंका उत्तर यथाशक्ति और यथामति देनेका प्रयत्न अवश्य करूँगा। आप लोग इतने ही से संतोष मान लें—मैं इतना ही आपसे माँग लेना चाहता हूँ।

पाठकगण इतनी लम्बी प्रस्तावनाको आवश्यक समझ कर क्षमा करें। अब हम विषयके ऊपर आ जायं—फिलहाल तो मैं अपने पास पड़े हुए पत्रोंपर विचार करके ही सन्तोष मानूँगा।

एक भाई लिखते हैं—

"आप कुत्तेको खाना देनेके लिए मना करते हैं, लेकिन मैं उनको बुलाने तो नहीं जाता—वे तो खुद-बखुद आ जाते हैं और खड़े रहते हैं। उनको कैसे मार भगावें? जब बहुतसे कुत्ते आ जायंगे, तब वैसा देखा जायगा। कुत्तेको खाना देनेमें दयाभावकी शिक्षा मिलती है और न देनेसे मनुष्य निष्ठुर बनता है। पापमें तो हम डूबे पड़े हैं, फिर इतना धर्म हमसे क्यों नहीं किया जाता?"

इस प्रकार दयात्मक दिखाई देनेवाले विचारोंके कारण ही हम लोग दया धर्मके नामपर हिंसाको अनजानमें उत्तेजन देते रहते हैं। लेकिन जिस प्रकार लौकिक राजाके कानूनमें अपराधी अज्ञानके कारण दण्डसे बचता नहीं है, वही हाल अलौकिक राजाके नियमोंका भी है।

हम जरा उक्त शंका करनेवालेके विचारकी निरीक्षा करें। घरपर भिखारीके आनेपर उसे रोटी देते हैं और समझते हैं कि हमने पुण्य किया। इस प्रकार बहुत अंशमें हम भिखारियोंके सम्प्रदायको बढ़ाते हैं, आलसको उत्तेजन देते हैं और इस कारण अधर्मकी वृद्धि करते हैं। इसका अर्थ यह नहीं है कि सच्चे भिखारियोंको मरने दिया जाय। जो अपंग या अपाहिज हैं, उनको पोषण करना समाजका धर्म है। लेकिन प्रत्येक मनुष्य यह काम अपने उत्तरदायित्वपर न करे, समाजके अधिकारी यानी महाजन लोग—स्वराज्य हो तो राजा—यह काम करता है। और दयालु सज्जन ऐसी संस्थाको दान देते हैं। यदि महाजन पवित्र तथा ज्ञानवान् होगा तो उद्योगके साथ प्रत्येक व्यापारी भिखारीके बारेमें पूछताछ करके अगर वह पात्र होगा तो उसे आश्रय देगा। ऐसा न होनेसे भिखारीके बहाने चोर और लम्पट पुरुष पैसा कमाते हैं और देशमें भुक्खड़पन घटनेके बदले बढ़ता है।

जिस प्रकार भिखारी मनुष्यको खाना देनेमें पाप है, उसी प्रकार भटकते

कुत्तेको भी टुकड़ा डालनेमें पाप है—उसमें कुत्तेके प्रति झूठी दया है। क्षुधा पीड़ित कुत्तेको रोटीका टुकड़ा देनेमें कुत्तेका अपमान है। बेघरका कुत्ता समाजकी सभ्यता या दयाका चिन्ह नहीं है; बल्कि समाजके अज्ञान तथा आलस्यका।

जानवर लोग अपने भाई-बन्ध हैं। इनमें मैं सिंह, बाघ इत्यादिको भी गिनता हूँ। हमलोगोंको सिंह, सर्प आदिके साथ रहना नहीं आता—यह हमारी शिक्षाकी त्रुटिके कारण है। जब मनुष्य उनको अधिक अच्छी तरह पहिचानेगा तब प्राण-घातक जीवों तकको पालना सीखेगा। आज तो विधर्मी अथवा विदेशी मनुष्यको भी अपनाना मनुष्यने नहीं सीखा है।

कुत्ता तो वफादार साथी है। कुत्ते और घोड़ेकी स्वामि-भक्तिके दृष्टांत जितने चाहिये, उतने मिल सकते हैं। इसलिए जिस तरह अपने साथीको हम इधर उधर भटकने फिरने नहीं देते बल्कि उसे आदरपूर्वक रखते हैं, वही बात कुत्तेके बारेमें भी होनी चाहिये। भटकते-फिरते कुत्तोंके सम्प्रदायको बढ़ा कर हम कुत्तेके प्रति अपना फर्ज अदा नहीं करते।

लेकिन अगर दर-दर मारे फिरते कुत्तोंकी हस्तीको हम पाप समझते हैं और इसलिए उनको खानेको नहीं देते, तो हम कुत्तोंकी सेवा करते हैं और उनको सुखी रखते हैं।

इसलिए वे आदमी जो कुत्तेके प्रति भी दया-धर्म पालना चाहते हैं वे क्या करें? उन्हें कुत्तों इत्यादिका भाग अपनी आमदनीमेंसे निकाल कर उस भागका उपयोग जानवरोंकी संस्थाओंको दे देना चाहिये। अगर ऐसी संस्था शक्य नहीं हो—और मेरा ख्याल तो यह है कि ऐसी संस्था शक्य होते हुए भी बहुत मुश्किल है—तो उन्हें एक या अधिक कुत्तोंके पालनेका प्रयत्न करना चाहिये। अगर यह भी न कर सकें तो उन्हें कुत्तोंका प्रश्न छोड़ देकर अपने जीवदयाभावका असल अन्य प्राणियोंके विषयमें करना चाहिये।

"लेकिन आपने तो उन्हें मारनेकी बात कही है?"—इस प्रकारके प्रश्न अन्य पत्र लेखक—कोई आवेशमें और कोई प्रीतिसे—पूछते हैं। मैंने कुत्तोंके मारनेका कोई स्वतंत्र धर्म नहीं बतलाया है; मैंने तो आपद्धर्म ही बतलाया है। मैंने शर्तवाला धर्म सुझाया है। अगर कुत्तोंकी रक्षा राजा न करें। महाजन भी न करें, जो वे खुद न पालें और कुत्तोंसे दुःख पावें और कुत्तोंकी भेंट चढ़नेके लिए तैयार न हो, तो कुत्तोंको मारकर उन्हें तथा अपनेको पीड़ा और भयसे मुक्त करें। यह औषधिकी पुड़िया कड़ुवी है, लेकिन मेरा अन्तरात्मा कहता है कि उसमें शुद्ध प्रेम और दया है।

कुत्तोंकी आजकी स्थिति हिन्दुस्तानके दुबले पशुओं तथा मनुष्योंकी

जैसी है। मेरा यह दृढ़ विश्वास है कि यह शोचनीय परिणाम हमारी अहिंसा धर्मकी अभिज्ञताके कारण—अहिंसाके अभावके कारण हुआ है। धर्मका फल पामरता, दरिद्रता, दुष्काल इत्यादि हर्गिज नहीं है। अगर यह देश पुण्य-भूमि हो तो जो आज हम दारिद्र्य-पीड़ित लोगोंको अपने चारो ओर पाते हैं, सो नहीं हो सकता। उसमेंसे कई उतावले और अधीर लोगोंने इस आशयका सार निकाला है कि अहिंसा-धर्म झूठा नहीं, बल्कि उसके पुजारी झूठे हैं।

अहिंसा क्षत्रियका धर्म है। महावीर क्षत्रिय थे। बुद्ध क्षत्रिय थे। वे सब, थोड़े या बहुत, अहिंसाके उपासक थे। हम उनके नामपर भी अहिंसाका प्रवर्तन चाहते हैं। लेकिन इस समय तो अहिंसाका ठेका भीरु वैश्य वर्गने ले रखा है इसलिए वह धर्म निस्तेज हो गया है। अहिंसाका दूसरा नाम है क्षमाकी परिसीमा। लेकिन क्षमा तो वीर पुरुषका भूषण है। अभयके बिना अहिंसा नहीं हो सकती; हम लोग तो जीवदयातक नहीं जानते!

गायको हम बचा नहीं सकते, कुत्तेपर लात मारते और लाठी बरसाते हैं, उनकी पसलियाँ तक दिखायी देती हैं—इनकी हमको शर्म नहीं है, लेकिन अगर कुत्ता मरे तो हमारे रोंगटे खड़े होते हैं। पाँच हजार कुत्ते भूखे तरसते-फिरते रहें, जूठन और मैला खायँ और मरनेके बदले जियें—वह सब अच्छा या उनमेंसे पचास मरें और शेष सुरक्षित रहें सो अच्छा? लकड़ी मार कर कुत्तोंको बाहर कर देना तो पाप है ही। लेकिन यह दुःख न देख सकनेवाला एक या अधिक कुत्तोंको मार डालनेमें पुण्य करता है—यह बात मुमकिन हो सकती है।

जीव लेना हमेशा हिंसा नहीं है। या यों कह लीजिये कि अनेक अवसरों-पर जीव न लेनेमें अधिक हिंसा है। इस वाक्यको आगे चल कर देखूँगा।

हिन्दी नवजीवन
२८ अक्तूबर, १९२६

❀

"परमेश्वर 'सत्य' है, यह कहनेके बजाय 'सत्य' ही परमेश्वर है यह कहना अधिक उपयुक्त है।"

—गांधीजी

अहिंसा—(३)

आइये विचारसे इसका पता लगावें कि जीव लेना धर्म हो सकता है या नहीं।

अगर किसी तरह इस देहको हम खड़ा भी रखें तो भी हमें जीव तो लेना ही पड़ेगा; जैसे भोजनके लिए अन्न, फल, वनस्पति आदि और जन्तुनाशक पदार्थों द्वारा मच्छरों आदिका जीव लेना होगा और हम यह भी जानते हैं कि ऐसा करनेमें अधर्म नहीं है।

यह तो अपने व्यक्तिगत स्वार्थके लिए हुआ। परमार्थके लिए हम हिंसक प्राणियोंका नाश करते हैं या दूसरोंके द्वारा करवाते हैं। सिंहादि जब गाँवोंमें ऊपर होते हैं तब उनका नाश करना समाज अपना धर्म समझता है।

ऐसा भी होता है कि मनुष्य-वध तकको धर्म समझा जाय। पागलपन या नशेमें एक आदमी नंगी तलवार लेकर जो कोई नजर आवे उसे काटता चला जाता है। उसे जिन्दा पकड़ लेनेकी शक्ति किसीमें नहीं है। उसे जो आदमी मार सकेगा वह परोपकारी गिना जायगा। अहिंसाकी दृष्टिसे उसे मारनेका धर्म सभी किसीको प्राप्त है। हाँ, एक प्रसंग इसमेंसे बाद कर सकते हैं। जो मुनि उसके नशेको उतार सकें, वे उसे न मारें। किन्तु हम तो यहाँतक सम्पूर्णताको पहुँचे हुए मुनियोंके धर्मका सवाल नहीं छोड़ते। हमें समाजके धर्म और समाजमें रहनेवाले राग-द्वेषादिमुक्त व्यक्तियोंके धर्मका विचार करना है।

ऊपरके दृष्टान्तके विषयमें मतभेद भले ही हो, अगर यह दृष्टान्त अपूर्ण जँचे तो दूसरे पूर्ण दृष्टान्तकी कल्पना हम कर ले सकते हैं। किन्तु किसी भी अवस्थामें जीवन लेनेका एकांगी धर्म सिद्ध नहीं हो सकता।

सच्ची बात तो यह है कि अहिंसाका धर्म केवल इतना ही नहीं है कि 'जीव न मारो'। क्रोध अथवा स्वार्थके वश होकर किसी व्यक्तिका अनिष्ट करनेके इरादेसे उसे दुख देने या उसके देहका नाश करनेका नाम हिंसा है। ऐसा न करना ही अहिंसा है।

वैद्य कड़वी दवा देता है। वह दुःख देता है किन्तु हिंसा नहीं करता कड़वी दवा देनी ही चाहिये और अगर न दे तभी वह अहिंसा धर्मके पालनमें चूकता है। शस्त्रवैद्य (जर्राह) अगर दुःख देनेके भयसे सड़ा हुआ हाथ नहीं काटता है तो वह हिंसा करता है। अपनी रक्षामें रहनेवाले बालकके ऊपर (जो हमसे रक्षाकी आशा रखता है) चढ़ आये हुए खूनीको (अगर दूसरी तरहसे उसका

विहारमें साम्प्रदायिक उन्मादके चिन्ह एक खण्डहरका निरीक्षण करते हुए
बापूने अहिंसा और मानवताका संदेश दिया

बिहार में महात्माजी

अपने सहयोगियोंके साथ गांधीजी

उपद्रव न रोका तो) जो मारता नहीं वह पुण्य नहीं करता, पाप करता है, वह अहिंसा धर्मका पालन नहीं करता किन्तु मोहवश होकर अहिंसाके नाममें हिंसा करता है। सामाजिक अहिंसा-धर्म ऐसा ही होता है।

अब हम अहिंसाके मूलकी खोज करें। उसके मूलमें निःस्वार्थता है। निःस्वार्थताका अर्थ है देहाभिमानका सर्वथा अभाव। देहाभिमान यानी देहाध्यासको लेकर मनुष्यको छोटे-मोटे अनेक देहोंका नाश करते हुए किसी ऋषि मुनिने देखा। मनुष्यके गूढ़ अज्ञानको देखकर ऋषिका दिल काँप उठा। उन्होंने देखा कि देहके आचरणसे मनुष्य अपने हीमें रहनेवाले अमर आत्माको भूल जाता है और आत्माके मंगल-साधनके बदले अपने क्षणिक देहका काम साधता है। इस प्रकार ऋषिने सर्वस्वके सम्पूर्ण त्यागकी आवश्यकता देखी। उन्होंने देखा कि मनुष्य अगर आत्मा यानी सत्यका दर्शन करना चाहता है तो उसके लिए एकमात्र समुचित मार्ग है देहका त्याग कर देना। इसका अर्थ हुआ दूसरे जीवोंको अभय-दान देना। यह अहिंसाका मार्ग है।

ऐसा विचार करनेसे दूसरे जीवोंका नाश करनेमें पाप नहीं मालूम होता, किन्तु पाप है अपनी देह पर मुग्ध होनेमें, क्षणिक देहके लिए दूसरे जीवोंका नाश करनेमें। इससे आहारादिके कारण मनुष्य जो जीवनाश करता है, उसमें देहाध्यास है और इसलिए हिंसा है। परन्तु उसे अनिवार्य समझकर मनुष्य निबाहता है। किन्तु दुःखसे पीड़ित प्राणीकी देहका नाश, उसकी शान्तिके लिए किया जाय तो हिंसा-दोषमें नहीं गिना जायगा। या अपने रक्षणमें रहनेवालेकी रक्षाके लिए किया गया अनिवार्य बध हिंसा दोषमें नहीं गिना जायगा।

इस विचार-श्रेणीका बहुत कुछ दुरुपयोग होना संभव है। उसका कारण विचार-दोष नहीं है किन्तु देहके प्रति मोहके कारण अपने आपको धोखा देनेके लिए जो कोई बहाना मिल सके उसका झट उपयोग कर लेनेकी हमारी आदत ही उसका कारण है। किन्तु इस दुरुपयोगके भयसे सत्य हकीकतको छिपानेसे अहिंसा-मार्गको स्पष्ट नहीं किया जा सकता।

इस चित्रसे अहिंसाका जो सार निकलता है, वह यह है—

(१) इस जगतमें कोई भी देहधारी, कुछ अंशमें हिंसा किए विना अपनी देहको टिकाये नहीं रह सकता।

(२) सभी कोई (क) अपनी देहकी रक्षाके लिए (ख) अपने रक्षणीयकी रक्षाके लिए (ग) कभी-कभी उन्हीं जीवोंको शान्ति देनेके लिए—अनेक जीवोंका बध करते हैं।

(३) अहिंसाकी व्याख्याके अनुसार (क) और (ख) में थोड़ी बहुत हिंसा

तो भरी हुई है ही। (ग) में हिंसादोष बिल्कुल नहीं है। इससे वैसा बध सर्वांशमें अहिंसक है। वैसे ही (क) और (ख) का भी हिंसक होना अनिवार्य है।

(४) इसलिए (क) और (ख) में समायी हुई हिंसा, ऊर्ध्वगामी अहिंसा-वादी मनुष्य कमसे कम प्रमाणमें, जब उससे छुटकारा न मिल सके तभी और खूब समझ बूझकर—दूसरे सब उपाय कर चुकनेके बाद ही करेगा।

मेरा बतलाया हुआ कुत्तोंका बध चौथे प्रकारकी हिंसा है। इससे वह जब अनिवार्य हो, उसके बिना चलता ही न हो तब पुख्ता विचारके बाद ही किया जा सकता है। किन्तु इस विषयमें मुझे शंका नहीं है कि जब वह अनिवार्य हो जाय तब उसे न करनेमें ही विशेष दोष है। इससे कुत्तों इत्यादिको मारना व्यापक धर्म तो नहीं हो सकता मगर खास स्थितिमें खास समय खास आदमीके लिए आवश्यक हो सकता है।

अब इतना विचार करनेके बाद जितने पत्र आये हैं उनके प्रश्नोंका सिल-सिलेवार उत्तर देनेका प्रयत्न करता हूं। कई एक भाई अपने पत्रोंका व्यक्तिगत उत्तर मांगते हैं और वह न मिलनेपर अपने विचार समाचार-पत्रोंमें छपा देनेकी धमकी देते हैं। व्यक्तिगत जवाब देना मेरी शक्तिके बाहर है। जिनको जवाब देना है, वह यहीं, इस पत्रमें ही दिया जा सकता है। जिन्हें दूसरे पत्रोंमें इसकी चर्चा करनी हो, उन्हें रोकनेका मुझे जरा भी अधिकार नहीं है, इच्छा भी नहीं है। पत्र-लेखकोंको मैं याद दिला देता हूं कि धर्म-चर्चामें धमकी या अधीरताको कोई स्थान नहीं है।

एक भाई लिखते हैं कि "५७ वर्षकी उम्रमें आपको कुत्तोंको मरवानेका धर्म कहाँसे सूझा ? अगर पहले ही सूझा था तो अबतक मुंहमें दही जमाए हुए क्यों थे ?"

मनुष्यको जब सत्य सूझता है तभी उसे बतलाता है, वृद्धावस्थामें सूझा तो भी क्या ? प्रसंग उपस्थित होनेपर तो उसे जाहिर करना ही पड़ता है।

मर्यादित रूपसे प्राणियोंके मारनेका धर्म तो बहुत सालसे स्वीकार किये हूं। प्रसंग पड़नेपर मैंने उसका अमल भी किया है। गाँवोंमें अनजान भटकता हुआ कुत्ता अगर भागे नहीं तो उसे मारनेका धर्म तो माना ही हुआ है। कारण यह है कि गाँवोंमें लोगोंने अपने कुत्ते पाल रखे हैं। वे कुत्तोंको भगाते हैं और वे अगर न भागें तो उन्हें मार डालते हैं। ऐसे रखवालीके कुत्ते तो गाँववाले जान बूझकर पालते हैं। ये गाँवके कुत्ते केवल दूसरे कुत्तोंको मारते ही नहीं हैं किन्तु चोरों इत्यादिपर भी हमला करते हैं। कुत्तोंका उपद्रव तो सिर्फ शहरोंमें ही चलता है। बेमालिक कुत्तोंको न रहने देना ही इसका एकमात्र उपाय है। इसमें कुत्तोंका कमसे कम नाश होता है और शहरवालोंकी रक्षा होती है।

एक-दूसरे पत्र-लेखक लिखते हैं कि "अहिंसा जैसी वस्तुकी चर्चा दलीलसे करके आप कौन-सा धर्म सिखाना चाहते हैं ?"

इस उलाहनेमें भी कुछ रहस्य है। मुझे तो किसीको कुछ सिखलाना न था। किन्तु अहिंसा धर्मका पालनेवाला होनेके कारण, प्रसंग आनेपर मुझे अपने विचार प्रकट करने ही पड़े। मैंने ऐसा अनुभव अनेक बार किया है कि धर्मकी चर्चामें न्यायशास्त्र और दलीलका स्थान है तो मगर बहुत छोटा सा।

हिन्दी नवजीवन
४ नवम्बर, १९२६

❀

"धर्मका उद्देश्य तो है बन्धुत्वको बढ़ाना, मनुष्य-मनुष्यमें जो कृत्रिम भेद है, उसको कम करना। लेकिन आज उसीके नामपर अछूतोंके साथ घृणित व्यवहार हो रहा है। मैं कह चुका हूँ कि असत्य स्वयं कमजोर है, परतंत्र है। बिना सत्यके आधारके वह खड़ा ही नहीं रह सकता। लेकिन मैं आपको यह बतलाना चाहता हूँ कि सत्यके नामपर अगर असत्य भी इतना विजयी हो सकता है, तो स्वयं सत्य कितना होगा ? इसकी नाप कौन लगा सकता है ?"

—गांधीजी

अहिंसा—(४)

एक भाई एक लम्बा पत्र लिखते हैं। उसमें उन्होंने अपनी कठिनाइयां प्रकट की हैं। और बादको उन्होंने, श्रावक होकर जैन धर्म क्या सिखलाता है— सो लिखा है। उस पत्रमें से एक प्रश्न नीचे दिया जाता है—

"आपने लिखा है कि भटकते फिरते कुत्तेको पाला जा सकता है। अगर न पाला जा सके तो कुत्तोंका पींजरा-पोल बनाना चाहिये। अगर इन दोमेंसे एक भी न हो सके, तो (उपर्युक्त दोनों उपायोंके संभव न होते हुए) भटकते हुए कुत्तोंमात्रको मार डालना चाहिये।" आपके उस लेखका यही आशय है न?

"उत्तरमें यदि आप 'हाँ' कहते हैं तो अनेक हानिकारक पशुओं, पक्षियों एवं जन्तुओंको—जहाँतक वे मानव-जीवनमें किसी प्रकारकी बाधा नहीं डालते, तहाँतक कोई मारता नहीं है। उन कुत्तोंको भी, जो हमारा कोई हर्ज नहीं करते, भविष्यमें उनके नुकसान पहुँचानेके ख्यालसे, मार डालनेके क्या मानी हैं? प्राणिमात्रका भला चाहनेवालेसे भला कहीं ऐसा हो सकता है?"

यह प्रश्न इसलिए उठता है कि मेरा आशय समझा नहीं गया है। पागल कुत्तोंतकको, महज मारनेकी खातिर, मार डालनेकी बात तो मैंने लिखी नहीं है, तो फिर भटकते कुत्तेकी बात ही क्या? भटकते हुए कुत्तोंको देखते ही उन्हें मार डालना चाहिये—सो मैंने नहीं लिखा है। मैंने तो उस प्रकारका नियम बना लेनेकी बात लिखी थी। अगर ऐसा नियम बना लिया जाय, तो दयालु लोग सहजमें ही जाग्रत हो जायंगे और बेघरके कुत्तोंकी रक्षाके लिए कोई न कोई उपाय ढूँढ़ निकालेंगे। उनमेंसे बहुतसे तो पाल लिये जायंगे और बहुतसे एक स्थान पर इकट्ठे कर लिये जायंगे। इस प्रकारका उपाय एक ही समयमें करना पड़ेगा। भटकते कुत्ते कहीं आसमानसे नहीं उतरते। वे समाजके आलस्य, शिथिलता तथा अज्ञानके चिन्ह हैं। अगर कोई इधर उधर फिरते कुत्तेको रोटी न दे तो वह भाग जायगा। मेरे द्वारा सुझाये हुए उपायमें भी यद्यपि उसमें समाजका स्वार्थ अवश्य मौजूद है, कुत्तोंके भलेका ख्याल भी है। कोई भी प्राणी निराश्रय न रहने पाये—इसी बातकी इच्छा रखना तथा उसे करना दया धर्म करनेवालेका धर्म है। उसे पालनेके लिए किसी मौकेपर कुत्तोंका बध भी आवश्यक हो पड़ता है।

दूसरा प्रश्न यह है—

"जबतक कुत्तोंके द्वारा उपद्रव हो, तबतक उसी मनुष्यके हाथों कुत्तोंका मारा जाना तो ठीक है, लेकिन 'वे जबतक पागल नहीं हो जाते तबतक इन्तजार करनेमें दया

नहीं हैं—इसका अर्थ तो यह हो सकता है कि चूंकि कुत्तेमात्रको भविष्यमें पागल तो होना ही है, इसलिए उनकी अच्छी हालतमें भी उन्हें भी मार डालकर सचेतपनका काम करें। इस विषयमें सत्याग्रह-आश्रमवासी मेरे एक मित्रसे मुझसे बात-चीत हुई थी उन्होंने आपसे इस संबंधमें पूछा था और सुना जाता है कि आपने उनसे यह कहा था कि कुत्तोंको देखते ही ढूँढ़-ढूँढ़कर मारनेकी बात तो मैं कहता ही नहीं, और यह भी नहीं कि जब कुत्ते जीवनको खतरेमें कर दें, तब इस प्रकार संकटमें आ पड़नेपर तथा कोई दूसरा उपाय न दिखायी देनेपर, आखिर उन्हें मार डालना अनिवार्य है—आपके लेखोंसे यह आशय नहीं झलकता। तोड़-मरोड़ कर भी ऐसा अर्थ नहीं निकलता। तो आप और अधिक स्पष्टीकरण कर दें न ?"

अपने पिछले लेखों तथा उपर्युक्त उत्तरको लिख चुकनेके बाद इस प्रश्नका अधिक स्पष्टीकरण शेष नहीं रह जाता। हाँ, इतना जरूर स्पष्ट कर देना चाहिये कि कुत्तेको हीनदशामें पहुंचने देनेकी राह न देखना चाहिये। भूखों मरते कुत्तेमात्र हानिकारक हैं। यह उपद्रव शहरोंमें ही प्रतीत होता है और उसे बन्द करना चाहिये। सर्पके द्वारा काटे जानेकी राह हमलोग नहीं देखते। कुत्ता जब काटे तभी वह पागल होता है—यह इसमें छिपा हुआ है। एक मित्रने मेरे पास कुत्तेके काटनेसे पीड़ित लोगोंके अंक भेजे हैं। वे यहाँ देने योग्य हैं। हिन्दसे अहमदाबादके सिविल अस्पतालमें, कुत्तों-काटेके इलाज करानेवाले रोगियोंकी बाबत हैं। उस अस्पतालमें न आनेवाले लेकिन उसी रोगसे पीड़ित लोग अन्य बहुतसे होंगे।

समय (माह और सन्)	अहमदाबाद शहरके रोगियोंकी संख्या	अन्य शहरोंके रोगियोंकी संख्या	कुल संख्या (मीजान)
१९२५ जनवरीसे दिसम्बर	१९४	९२३	१११७
१९२६ जनवरीसे सितम्बर	२९५	६९५	९९०

ये अंक प्रत्येक समाज-हितेच्छुके लिए चौंकानेवाले हैं—दयाधर्मीके लिए विशेष करके। मैं जानता हूँ कि जितनोंको कुत्ते काटते हैं उतने सब पागल नहीं हो जाते और बहुतसे लोग पागल सिद्ध होनेसे ही दहशत खाकर अस्पताल दौड़े जाते हैं। इस दहशतसे उनको छुड़ानेका केवल एक उपाय है—और वह यह कि भटकते हुए कुत्तोंका अस्तित्व न रहे। जब ४० वर्षके पहले विलायतमें भटकते कुत्तोंकी बाबत हलचल उठी थी, उस समय मैं वहीं था। वहां भटकते हुए कुत्ते कहांसे आये ? लेकिन पाले हुए कुत्तोंके लिए वहां कानून बना हुआ है कि जिस कुत्तेके गलेमें पट्टा मय मालिकके नाम व पतेके न होगा और जिस कुत्तेके मुंहमें

जालीदार मुसंती (थूथनकी पट्टी) न बँधी होगी वह मार डाला जायगा। यह कानून केवल दयाभावसे बनाया गया था। उसके परिणाम-स्वरूप दूसरे ही दिनसे लंदनमें कुत्ते मयपट्टे इत्यादिके दिखायी पड़ने लगे। थोड़े ही कुत्तोंको मारनेकी जरूरत पड़ी होगी। अगर किन्हींका ख्याल यह हो कि पच्छिमके लोग जीवदया जानते ही नहीं तो वे अज्ञानकूपमें पड़े हुए हैं। जीवदयाका आदर्श वहाँ नीचा है, लेकिन जो आदर्श है, उसका अमल वे लोग हमलोगोंकी बनिबस्त अधिक करते हैं। हमलोग तो आदर्श उच्चतासे ही संतोष पा जाते और उसके अमलके समय मंद या आलसी रहते हैं। हमलोग तामसिक वृत्तिमें पड़े हुए दिखायी देते हैं। देखिये हमलोगोंके लावारिस मनुष्यों, ढोरों तथा अन्य प्राणियोंको। यह धर्म नहीं बल्कि अधर्मकी निशानी है। तीसरा प्रश्न यह है—

"आप व्यक्तिगत और सामुदायिक धर्मकी व्याख्या अलग अलग करते हैं—सो तो मैं समझता हूँ। लेकिन व्यक्तिगत धर्मकी भांति सामुदायिक धर्मकी भी व्याख्या करनेमें क्या बुराई है? आदर्श तो सबके लिए सर्वश्रेष्ठ ही होना चाहिए न? न बन पड़े या बन सकना मुमकिन न हो—तो बात दूसरी है। और यह तो व्यक्तिगत धर्मके लिये भी इसी प्रकार लागू है। आपने ही कहा है कि क्रूर पशुको भी अपने प्राणको खतरेमें डालकर बचानेकी मेरी भावना है। लेकिन जब ऐसी स्थिति पैदा हो, उस समय मैं क्या करूँगा—सो नहीं कह सकता। यही दृष्टान्त सामुदायिक धर्मके अनुरूप किया जाय, तो दोनों धर्मोंकी व्याख्या पृथक पृथक करनेकी जरूरत ही फिर कहां रह जाती है?"

व्यक्तिगत और सामुदायिक धर्मकी व्याख्याको मैंने जुदा माना ही नहीं है। धर्मके सिद्धान्तकी व्याख्या एक ही होती है। लेकिन उसपर चलनेकी मर्यादा व्यक्तिके और उसी प्रकार समाजके लिए मैंने अलग ही मानी है। वास्तविक रीतिसे तो अमलकी मर्यादा प्रत्येक व्यक्तिके लिए भिन्न होती है। जब अहिंसा धर्म-संबंधी उसकी व्याख्या एक ही होती है, सामुदायिक अमलकी मर्यादा सबकी औसत मिलाकर होती है। यानी जहां समुदायका एक भाग दूधाहारी हो और दूसरा फलाहारी, वहां सामुदायिक मर्यादा दूध-फलाहारीकी मानी जानी चाहिये जिसमें दोनों अपनी मर्यादामें रह कर चलें। इतने प्रश्नोंके अनन्तर लेखक दो जैन सिद्धान्तोंका निरूपण इस प्रकार करते हैं—

"जैन सिद्धान्तकी रचना 'स्याद्वाद' है, यानी दूसरे शब्दोंमें, उसे अनेकान्त भी कहते हैं। इसके समर्थनमें एक जैन गीतार्थके वचन नीचे लिखे अनुसार हैं—

'वचनसापेक्ष व्यवहार साचो कह्यो,
वचन निरपेक्ष व्यवहार झूठो।'

ये वचन कुछ बता रहे हैं कि संयोगके अधीन कोई काम असुक स्थानपर हिंसा होती है और अन्य अवसरपर अहिंसा। मनुष्यको विवेकपूर्वक देख-भाल कर निर्णय करना

चाहिये। जैन शासनकी दो शाखाएं हैं—साधु और श्रावक। इनके धर्मकी व्याख्या नीचे लिखे अनुसार मानी गयी है—

"साधु—सर्वथा अहिंसक। अपने आपको बचानेके हेतु, खायँगे भी नहीं और खानेके वास्ते खाना पकायेंगे भी नहीं। और सड़कपर कदम भी न बढ़ायँगे। और अगर ऐसा करें भी तो परोपकार करनेके हेतुसे। लेकिन जितने दोषोंसे बन पड़े उतने दोषोंसे मुक्त रहकर। इन दोषोंकी संख्या ४२ मानी गयी है। साधुको जैन-दर्शनमें निग्रंथ कहा गया है—त्यागी और सर्वथा-त्यागी बतलाया है।"

मेरा ख्याल है कि आज इस व्याख्या और इस कल्पनाके मुताबिक एक भी साधु नहीं हैं। (अगर हो तो मैं अपनी अल्प-शक्तिके कारण उसे जानता नहीं हूँ।)

"श्रावक निरपराधी है। जिसकी उसे जरूरत न हो और जिसमें उसका स्वार्थ न हो ऐसे किसी भी जीवके प्राण वह नहीं लेता।"

"श्रावक संसारी है। शास्त्रकारोंका मत है कि इस हेतु वह अधिक दया-धर्मका पालन नहीं कर सकता। और उससे दयाकी मात्रा सोलह आनेमें—साधुकी सोलह श्रावककी आना भर—इस प्रकार निर्धारित की गयी है। अगर श्रावक इससे अधिक पाले तो उसे साधुवृत्तिमें उन्नति करता हुआ मानना चाहिये। लेकिन श्रावक-दशामें इससे अधिक पालना अशक्य ही है।"

इस निरूपणसे मैं अपरिचित न था। मैंने तो यह लिखा ही है कि यहां दिये हुए जैन सिद्धान्तोंका मैं विरोधी नहीं हूँ। अगर उपर्युक्त निरूपण जैनोंको मान्य हो तो मेरा मतलब उसीमेंसे निकाला जा सकता है। लेकिन यह सिद्धान्त जैनोंको चाहे मान्य हो अथवा न हो, मेरी अल्पमति कहती है कि मेरे बतलाये हुए आशयका प्रतिपादन स्वतंत्र रीतिसे हो सकता है और हुआ भी है।

हिन्दी नवजीवन
११ नवम्बर, १९२६

❀

"अहिंसा ही सत्येश्वरका दर्शन करनेका सीधा और छोटा सा मार्ग दिखाई देता है।" —गांधीजी

अहिंसा—(५)

एक मित्रने कई प्रश्न उठाये हैं और लम्बा लेख लिखकर उन्होंने अपनी अनेक शंकाएं बतायी हैं। उन्होंने शुद्ध भावसे शंकाएं उपस्थित की हैं। 'नवजीवन' के इस लेख-मालावाले अंक अपनी टिप्पणियोंके साथ उन्होंने भेजे हैं। मेरा ख्याल है कि उनके लेखमेंके अनेक प्रश्नोंका खुलासा तो अबतक हो ही गया होगा। तो भी आवश्यकतानुसार उनके प्रश्नोंका उत्तर यहीं देता हूँ।

मुझे मालूम होता है कि इस विषयमें मैं तटस्थतासे विचार कर रहा हूँ। हिंसाका पक्षपात मुझको हो ही नहीं सकता और न अपने मतका ही। मुझे पक्षपात सत्यका ही है और मैं अहिंसा मार्गसे सत्यका शोधन करता हूँ। मैंने अनुभव किया है कि दूसरे मार्गसे सत्यका पता नहीं लग सकता। सत्य है या नहीं, अहिंसा परम धर्म है या नहीं—मेरे निकट ये विवादग्रस्त विषय नहीं हैं। इस विषयमें अपने मनमें शंकाका होना भी मैं संभव नहीं मानता। किन्तु उसका पालन क्यों कर हो, यह प्रश्न मेरे पास हमेशा खड़ा रहता है। प्रतिक्षण नवीनताएं नजर आती हैं। उसके पालनमें भूलें होना भी मैं सम्भव मानता हूँ। उन भूलोंसे बचनेके लिए मैं बहुत जाग्रत रहता हूँ। तो भी झोंके खा जाना सम्भव है। इसलिए अगर विरुद्ध अभिप्राय मुझे मान्य न हो तो वे मुझे एक पक्षी न गिनें किन्तु नासमझ जानकर क्षमा करें और धैर्य रखें।

१. पागलपनका रोग निमित्तमात्र है।

२. उस रोगके निवारणका प्रयत्न सरकार करे या म्युनिसिपलिटी करे, किन्तु यह प्रश्न एक ही दृष्टिसे हल हो सकेगा। अगर महाजनमें सचमुच ही अहिंसा हो तो वह भी इसका इलाज खोजें। कुत्तोंको न मारनेका धर्म सरकार स्वीकार करेगी नहीं। म्युनिसिपलिटीमें भी कई सम्प्रदायके सदस्य होते हैं, इसलिए वह भी अहिंसक उपायकी खोज न करेगी।

३. अहिंसक उपाय खोज निकालनेका भार महाजनके ऊपर ही होगा। महाजनको निर्दोष या निरुपाय माननेमें भूल है।

४. इस चर्चाके सम्बन्धमें मैं रोगी कुत्तेमें और खूनी आदमीमें कोई फर्क नहीं देखता। खूनीपन भी एक रोग ही है। खूनी अपनेको पहले भूल जाता है, तब खून करता है। दोनों ही दयाके पात्र हैं। किन्तु यदि दोनों ही दूसरेको कष्ट दें और ऐसा करनेसे रोकनेमें उन्हें देह-मुक्ति भी करनी पड़े तो वैसा करके उन्हें रोकना धर्म हो जाता है यह धर्म अहिंसकके लिए भी ठीक है।

५. घर-घर कुत्ता पाला ही जाय, मेरे कहनेका ऐसा आशय ही नहीं है।

अगर कुत्ता रहे तो वह पालतू ही रहे। पालतू कुत्तेको रोग न होता हो, ऐसी कुछ बात नहीं है। किन्तु उसके लिए उसका पालक जवाबदेह होगा।

६. शहरके कुत्ते तो आज कुछ गरीब निर्दोष तो हैं नहीं। पालतू कुत्ते वैसा अमूमन होते हैं। उनको वैसा बनानेके लिए तो यह चर्चा चल रही है।

७. मैंने ऐसी बात नहीं बतलायी है कि जहाँ कहीं किसी भटकते हुए कुत्तेको देखा उसे मार डाला। किन्तु मैंने तो ऐसा कायदा बनाना सुझाया है। इस कानूनमें कुत्तेकी रक्षा तो समायी हुई है ही क्योंकि उससे दयालु मनुष्य या तो कुत्तोंको पालेंगे या दूसरा कोई उपाय ढूँढ़ निकालेंगे। और इस कानूनसे कुत्तोंका भटकना भी गायब हो जायगा। भिखारीको भिक्षा न देनेमें भिखारीको मारनेका नाम-निशान नहीं है, उसे स्वाश्रयी बनाना है, मनुष्य बनाना है। कुत्तोंको मारनेका धर्म तो मेरे पिछले लेखोंमें बतलायी हुई मर्यादामें ही पैदा हो सकता है। यह कहनेमें कि कुत्तोंके मारनेमें पाप है, मेरे कथनका बिलकुल खण्डन नहीं होता क्योंकि मैंने उसके विरुद्ध अभिप्राय दिया ही नहीं है।

८. इसकी चर्चा निरर्थक है कि अम्बालाल सेठने क्या किया और जो किया सो ठीक किया या नहीं, अथवा मैंने जो कहा है वह ठीक है या नहीं। हमारे पास उस किस्सेकी पूरी हकीकत भी नहीं है। उससे उत्पन्न हुई अहिंसाकी महा-पहेली ही चर्चा करने योग्य है और उसके हल होनेमें अम्बालाल भाईका सवाल उठाना मैं एक बाधा समझता हूँ।

९. सवाल तो इतना ही है कि अमुक संयोगोंमें अगर और कोई चारा न हो तब अहिंसाकी दृष्टिसे कुत्तोंको मारना धर्म हो सकता है या नहीं। मैं मानता हूँ कि हो सकता है और यह मैं अब भी मानता हूँ कि इसमें दो मत नहीं हो सकते। किन्तु संतोषका विषय यही है कि ऐसे प्रसंग हमेशा नहीं उपस्थित होते।

१०. किन्तु मैं एक मतभेद देख रहा हूँ। जिनकी शंकाओंके लिए, यह लेख मैं लिख रहा हूं, उनके और दूसरोंके लेखोंमें हर प्रसंगमें देहके आत्यन्तिक नाशके लिए संकोच भरा हुआ है। जैसे पगले कुत्तोंको बन्द कर और भूखों मारनेकी सूचना है; मेरा दयाधर्म, मेरे लिए यह वस्तु अशक्य बना डालता है। मैं कुत्ते या मनुष्यको तड़फड़ाता नहीं देख सकता। दुःखसे तड़फड़ाते मनुष्यको मैं मारता नहीं क्योंकि उसके लिए मेरे पास आशाजनक इलाज है। तड़पते हुए कुत्तेको मैं मारूँगा क्योंकि उसके लिए मेरे पास आशाजनक इलाज नहीं है। मेरा लड़का पागल हो जाय और उस रोगके लिए मेरे पास कोई आशाजनक इलाज न हो और दुःखसे वह तड़पता हो तो उसके देहका अन्त करना मैं धर्म समझता हूँ। दैवके ऊपर आधार रखनेके धर्मकी मर्यादा है। उपाय कर चुकनेके बाद हम दैवाधीन होते हैं। तड़फड़ाते बालकके लिए अनेक इलाजोंमें आखिरी इलाज, उसकी देहका अन्त करना भी है।

परन्तु इस चर्चाको मैं हालमें बढ़ाना नहीं चाहता। मेरी दृष्टिमें, मैं जो अपनी या अहिंसा-धर्मीकी पामरता मानता हूँ, वह इस चर्चामें बाधारूप है। इसलिए मतभेदको सहन कर लेनेकी विनती करता हूँ।

इतना तो एक विवेकी मित्रके प्रश्नोंके विषयमें हुआ। अब एक क्रोधी मित्रके प्रश्न लीजिये—

"हमें तो लगता है कि आप पाश्चात्य देशके पवनमें बहुत दिन रहे हुए हैं, उसके साहित्यका आपने अभ्यास भी किया है और उसके संस्कार आपके हृदयपर पड़े हैं, इसीसे, आप मनुष्यकी दयाकी चिन्ता कर, और प्राणियोंका जीव लेना अधिक इष्ट गिनते हैं। बहुत शान्तिसे विचार करके अपनी भूल कबूल कर जगतके सम्मुख माफी माँगिये। जगतमें महापुरुष गिने जानेवाले आदमीका यही कर्त्तव्य है। चाहिये तो ऐसा कि आप हजार चलनीसे चालकर, तब अपनी जो दृष्टि हो वह कहें, किन्तु आपने तो इस चर्चाको बहुत जोर देकर अपना नाम नीचा किया है।"

इसी प्रकारके पत्रोंमेंसे मैंने यह हलका वाक्य उतारा है। बिना विचारे मैंने उतावली नहीं की है। जो मनुष्य अपने मत निश्चित करनेमें अपने बड़प्पनका विचार करता है, वह सत्यका निर्णय नहीं करता, उसके सामने तो उसका बड़प्पन ही खड़ा रहता है, और सत्यके दर्शनमें वह विघ्न-रूप होता है।

पश्चिमकी सभी बातें त्याज्य हैं यह मैं नहीं मानता। पश्चिमके सुधारोंकी निन्दा मैंने कड़े शब्दोंमें की है। मेरा मन अब भी उनकी निन्दा करता है। किन्तु इसका अर्थ यह नहीं है कि पश्चिमका सभी कुछ त्याज्य है। पश्चिमके पाससे मैंने बहुत कुछ सीखा है और मैं उसका ऋणी हूँ। पश्चिमी देशोंके निवास और उसके साहित्यका अगर मेरे ऊपर कोई असर न पड़ा हो तो यह मैं अपना दुर्भाग्य समझूँगा। किन्तु यह मैं नहीं मानता कि कुत्तोंके विषयमें मेरा मत, पश्चिमकी शिक्षाके प्रभावसे बना है। अगर हम कई सम्प्रदायोंको बाद कर दें, तो पश्चिम यह सिखलाता है कि मनुष्यकी भलाईके लिए मनुष्येतर प्राणियोंको मारनेमें दोष नहीं है। इसलिए पश्चिममें जीते प्राणियोंको चीरने-फाड़ने (विविसेक्शन) को भी उत्तेजना दी जाती है। वहाँ स्वादके लिए भी अनेक प्राणियोंके मारनेमें पाप नहीं गिना जाता। मेरे मनमें पद-पदपर मर्यादा बँधी हुई है। शाकाहारको मैं हिंसा गिनता हूँ। यह शिक्षा तो पश्चिमकी नहीं गिनी जा सकती।

सिद्धान्तों या उनके अमलका विचार करते हुए, हमारे लिए नाकाम दलीलों या मिथ्यारोपणोंको स्थान देना संभव नहीं है। मेरे अभिप्रायकी तुलना स्वतंत्र रीतिसे होनी चाहिये। इससे क्या मतलब कि वह पश्चिमसे आया है या पूरबसे? विचारने योग्य बात तो यह है कि उसकी जड़ सत्यपर है या असत्यपर, उसके मूलमें हिंसा है या अहिंसा। मेरा दृढ़ विश्वास है कि सत्य और अहिंसा, उसकी जड़ हैं।

हिन्दी नवजीवन
१८ नवम्बर, १९२६

अहिंसा—(६)

एक भाईके पत्रका अवतरण संक्षेपमें देनेके लिए, उसे अपनी भाषामें देता हूँ और उनके प्रश्नका जवाब नीचे देता हूँ—

"जीवमात्र तड़प तड़पकर मरते हैं। नरकमें पड़ा हुआ भी जीनेकी इच्छा करता है। कुत्तेको भी मरना पसन्द नहीं पड़ता। इसलिए जो आदमी उसे मारता है, उसे दुर्गति देनेमें सहायक होता है।"

एक मनुष्य दूसरेको मारकर, उसे दुर्गति कैसे दे सकता है, यह बात मेरी समझके बाहर है। मनुष्य अपने ही बन्धन और मोक्षका कारण होता है, दूसरेका नहीं। अहिंसा-धर्मका पालन अपने ही मोक्षके लिए होता है।

"जो मनुष्य अपने सुखके लिए हिंसा करता है वह अपनी शक्तिका दुरुपयोग करता है।"

यह निर्विवाद है। कुत्तोंका बध मैंने जहां बतलाया है, वहाँ कुत्तोंका श्रेय प्रधान हेतु है। उसमें मनुष्यका सुख समाया हुआ है, किन्तु वह गौण है। जो केवल अपने सुखके लिए ही बध करता है वह तो केवल हिंसा ही करता है।

"अगर आप ऐसा मानें कि जीवका नाश तो होता ही नहीं, नाश तो देहका ही होता है तो फिर आज ही या दो दिनके बाद, उसका नाश हो जाय तो उसमें हानि ही क्या है?' यह ठीक है किन्तु इससे, दूसरेका जीव लेनेका कुछ इजारा मनुष्यको मिल नहीं जाता।"

इसके विषयमें मुझे कुछ शंका ही नहीं है। जैसे आहारादिके लिए अनिवार्य समझकर हिंसा करते हैं, वैसे ही, ऐसी हिंसा भी हम अनिवार्य समझ कर करते हैं। देहके नाशवन्त होनेसे मनुष्यको दूसरेका प्राण लेनेका इजारा नहीं मिल जाता किन्तु आवश्यक प्रसंग आनेपर उसका नाश करनेसे रुकना भी उस देहके प्रतिक्षण होते हुए नाशको भूल जानेके समान है। सड़े हुए हाथको काटनेमें देहका नाश होते हुए भी हम उसे काट फेंकते ही हैं।

"किन्तु अगर उस प्राणीके सुखका विचार करके उसे मारिये तो यह भी मोह है। सुख-दुःख जैसी कोई वस्तु जगतमें है ही नहीं। दूसरेका दुःखसे तड़पना आप देख नहीं सकते तो इससे आपका अज्ञान प्रकट होता है। दूसरेके सुख-दुःखका जिसपर असर नहीं होता वह भव्य आत्मा है और इसलिए किसीके प्रति वह हिंसा भी नहीं करता।"

इस प्रश्नकी जड़में जो दलील है, उसमें मैं अनजान मिथ्यात्वको समाया हुआ देखता हूँ। दूसरेके सुख दुःखका जहाँ असर नहीं है, वहाँ दया नहीं है, जहाँ दया नहीं वहाँ धर्म नहीं है, अहिंसा नहीं है। दूसरेका सुख ढूँढ़नेमें ही तो अहिंसाका शोध हुआ। मनुष्यने जब अपनेको दूसरेमें देखा और दूसरेको अपनेमें देखा, तभी उसने दूसरेके सुखसे सुखी और दुःखसे दुःखी होना सीखा। इससे उसने अपने ऐहिक सुखके त्यागमें आत्मिक सुखका अनुभव किया और इसीसे वह अपने लिए बेखबर जगतकी हिंसा करनेसे अटका।

"संसारीका दुःख मिटानेका प्रयत्न करना संसारी दृष्टि है। इसलिए उस दृष्टिमें ही हिंसा है। इसलिए पीछेसे उसमेंसे अहिंसाका प्रतिपादन क्यों कर हो सकता है?"

यह वाक्य इसके लिखनेवालेके लिए या किसीके लिए शोभाप्रद-सा नहीं जान पड़ता। हम सब संसारका दुःख मिटानेका सतत् प्रयत्न करते हैं। भूख, प्यास, जाड़ा, गर्मी मिटानेमें हम बहुत समय लगाते हैं। किन्तु जो केवल अपनी ही भूख मिटाकर रुक जाता है, आगे नहीं बढ़ता, वह स्वेच्छाचारी गिना जाता है। जो दूसरोंकी मिटाकर तब अपनी मिटानेके लिए थोड़ा प्रयत्न करता है, वह वीतरागी गिना जाता है।

एक दूसरे भाई लिखते हैं—

"मालूम होता है कि आप रायचन्द भाईका लिखा हुआ भूल गये। आपने उनसे पूछा कि मुझे अगर साँप काटने आये तो क्या करूँगा? उन्होंने कहा—तुम अपनी जान दे देना मगर साँपको मारना नहीं। अब कुत्तोंके विषयमें मालूम होता है कि आपने दूसरा ही न्याय निकाला है।"

मैंने दूसरा न्याय नहीं निकाला है। अपने लिए किसीको भी मारनेका समर्थन मैंने नहीं किया है। मेरा ऐसा प्रयत्न है कि मुझे अगर साँप काटने आवे या कोई दूसरा प्राणी मारने आवे, मैं उसे मारकर जीनेकी इच्छा न करूँ और देहको जाने देनेकी शक्ति ईश्वर मुझे देवें। हमारी चर्चामें समाज-दृष्टि है और दुःखसे तड़फड़ाते प्राणियोंके प्रति अपनी दृष्टि है। अगर मैंने रायचन्द भाईसे यह प्रश्न पूछा होता कि दुःखसे तड़फड़ाते साँपके लिए मैं क्या करूँ, जिसके लिए मेरे पास कोई इलाज नहीं है, या मेरी संरक्षकतामें रहनेवाले किसी व्यक्तिको काटने साँप आता और उसे रोकनेकी शक्ति मुझमें न होती तो रक्षितकी रक्षाके लिए मुझे साँपको मारना चाहिये या नहीं, तो रायचन्द भाई क्या जवाब देते, हममें-से कोई ठीक ठीक नहीं कह सकता। मेरे अभिप्रायके विषयमें मुझे कुछ शंका नहीं है।

एक तीसरे भाई लिखते हैं—

"आपके लेखपर मुझे बहुत श्रद्धा है किन्तु आपके वर्तमान लेखोंसे शंका पैदा होती है। श्रीमद् अमृतचन्द्राचार्यके मतसे आपका मत विरुद्ध नजर आ रहा है। आजतक आपके सब मत आचार्यके मतसे मिलते हुए जान पड़ते थे। वे कहते हैं—

रक्षा भवति :बहूनामेकस्यैवास्य जीवहरणेन
इति मत्वा कर्त्तव्यं न हिंसनं हिंस्र सत्वानाम् ।

'इस एक ही जीवके मारनेसे बहुतसे जीवोंकी रक्षा होती है।' ऐसा मानकर हिंसक जीवोंकी भी हिंसा न करनी चाहिये ।

बहुसत्त्वघातिनोऽमी जीवन्त उपार्जयन्ति गुरुपापम्
इत्यनुकम्पां कृत्वा न हिंसनीयाः शरीरिणो हिंस्राः ।

'बहुत जीवोंके घाती ये जीव जीते रहेंगे तो अधिक पाप उपार्जन करेंगे।' इस प्रकारकी दया करके हिंसक जीवोंको न मारना चाहिये ।

बहुदुःखासंज्ञपिताः प्रयान्ति त्वचिरेण दुःखविच्छित्तिम्
इति वासना कृपाणीमादाय न दुःखिनोऽपि हन्तव्याः ।

'अनेक दुःखोंसे पीड़ित जीवोंके दुःखोंका शीघ्र ही नाश हो जायगा।' इस प्रकारकी वासना-विचार-रूपी तलवारको लेकर दुःखी जीवको भी नहीं मारना चाहिये ।

"इसमें और आपके अबके विचारोंमें भेद दिखायी पड़ता है। इसका अधिक स्पष्टीकरण 'पुरुषार्थ सिद्धयुपाय' नामक पुस्तकमें है। उसे देख लेनेके बाद आप अपना अभिप्राय बतलावें।"

मुझे श्री रेवाशंकर भाईने दक्षिण अफ्रीकामें 'पुरुषार्थ सिद्धयुपाय' भेजा था। तभी मैं उसे पढ़ गया मेरे विचार अब किसीके आधारपर नहीं। जो जहाँसे अच्छा लगा वहाँसे वह विचार शुरूमें लिया था; लेकिन अब तो मेरे जीवनके वे अंश हो गये हैं और उन्हें बतलानेमें ही मुझे अपने आपको बतलाना पड़ता है। अहिंसा धर्मकी ऐसी सूक्ष्म चर्चासे कोई तात्कालिक लाभ होगा, ऐसा मैं नहीं मानता। लेकिन इस समय उसके विषयमें, मेरी दृष्टिमें, इतना अज्ञान फैला हुआ है कि मैं मानता हूँ कि अगर किसी भयके कारण या मोहके वश होकर अपने विचार मैं दबा रक्खूँ तो दोषमें पड़ूंगा। इसीसे लाचार होकर यह लेखमाला लिख रहा हूँ।

ऊपर जो श्लोक दिये गये हैं उनमें और मेरे विचारमें, मेरी मतिके अनुसार, कोई भेद नहीं है। किन्तु कदाचित् अगर यह सिद्ध हो जाय कि उनमें भेद है तो भी मुझे मेरा अभिप्राय ही अहिंसा धर्मके अधिक अनुकूल मालूम होता है।

ऊपरके श्लोकोंका आशय मैं ऐसा समझता हूँ कि उसमें वर्णित भावनाका विचार करके मनुष्यको वध न करना चाहिये। कारण स्पष्ट है। ऐसा वध

या समझानेके लिए किया हो तो वह शोभा पा सकता है। मेरे मोलानका हेतु निर्मल है इसलिए म सुरक्षित हूँ।

अहिंसा-धर्मियोंकी पामरता मुझे दुःखदायी हो पड़ी है। अहिंसा अयोग्यता नहीं है। अहिंसामें शक्तिका अभाव नहीं। अहिंसा प्रचंड शक्ति है। उसका पूरा तेज हम न देख सकते न माप सकते हैं। हममेंसे किसी किसीको ही उसकी झाँकी भर मिल जाती है।

अहिंसा है जागृत आत्माका गुण विशेष। वह दूसरे गुणोंके मूलमें रही हुई है। इसलिए विचार, विवेक, वैराग्य, तपश्चर्या, सत्यता, ज्ञानके बिना उसका पालन असम्भव है। उसमें कायरतासे नहीं चलता। जिन्हें अहिंसा समझनी है उन्हें हिंसामें समायी हुई अहिंसाको समझना ही होगा।

इस वाक्यका अनर्थ भले ही हुआ करे। ईश्वरके नामका अनर्थ कहाँ नहीं हुआ ? उसके नाममें हम क्या राक्षसको नहीं पूजते ? उसके नामपर थोड़ा पाप, थोड़ा खून हुआ है ? इससे क्या ईश्वरके नामको बट्टा लगेगा ? इससे क्या ईश्वरके नामको हम खूनके नीचे छिपा लेंगे ?

कर्ममात्र सदोष है क्योंकि उसमें हिंसा समायी हुई है तो भी कर्मके क्षयके लिए कर्म ही करते हैं। देहमात्र पाप है। तो भी देहको तीर्थक्षेत्र बनाकर देह-मुक्तिकी तैयारी करते हैं। वैसे ही हिंसाको भी समझना चाहिये।

पर यह हिंसा हो कैसी ? यह स्वाभाविक हो, कमसे कम हो, इसके पीछे केवल करुणा हो, इसके पीछे विवेक हो, मर्यादा हो, इसके विषयमें तटस्थता हो, यह सहज प्राप्त धर्म हो।

इस विचारसरणिसे चलनेपर दिन दिन हिंसा कम होती जायगी। इससे जिस हिंसाका उद्देश्य अहिंसाका क्षेत्र बढ़ाना हो, जो हिंसा अनिवार्य हो पड़े, जो ऐसी हो जिसके लिए परिणामका विचार किये बिना प्रयत्न किया जा सके, वह हिंसा क्षन्तव्य है; कर्तव्य भी हो सकती है। इसलिए यह कहना सरासर अनुचित नहीं है कि हिंसामें अहिंसा हो सकती है। इतना कहनेके बाद आश्रममें इस प्रश्नका किस प्रकार हल होता आ रहा है यह समझाकर इस लेखमालाको समाप्त करता हूँ।

आश्रममें कुत्तोंका प्रश्न उनके जन्मसे ही खड़ा रहा है। महाजनकी प्रवृत्तिसे उनका उपद्रव बढ़ गया है। यह उपद्रव बहुत कष्टसे सहन किया जाता है। पगले कुत्तोंका बध आश्रममें होता है। ऐसा अवसर दश वर्षमें दो या तीन वार आया होगा। दूसरा कोई कुत्ता नहीं मारा गया। उनको जहाँ तहाँ खाना देना बन्द किया है। इस नियमका अगर पूरा पालन हो तो मैं देखता हूँ कि कुत्ते और वैसे

ही हम सब भी सुखी होंगे। किन्तु उसका पालन पूरा पूरा हो नहीं सकता। हर एक आश्रमवासी उसे समझ नहीं सका है और समझनेके बाद भी सभी कोई नियमके पालनमें पूरे सचेत नहीं हैं। खैर, आश्रममें रहनेवाले मजूर भला इस नियमका पालन क्योंकर करें।

लाचार कई एक कुत्तोंको पालना पड़ता है। ऐसी दो कुत्तियों और उनके बच्चोंका पालन इस समय हो रहा है। बच्चोंके लिए जिसमें खूब गर्मी मिले ऐसी पेटी व टोकरी रखनी पड़ी है। इनको दूध दिया जाता है। माँके लिए खास भोजन बनता है।

दूसरी ओर महाजनसे भटकते हुए कुत्तोंको ले जानेकी विनती की है। उनको यह स्वीकार भी हुई है। किन्तु महाजनकी गाड़ी अभी आयी नहीं है।

वैसे ही कुत्तोंके प्रति भी धर्म समझाया है। मगर इस विषयमें सबको थोड़ा बहुत अपनी आंतरिक प्रेरणाके अनुसार करनेकी छूट है। मारनेका धर्म मेरे पाससे कोई ग्रहण न करें, मारनेकी इजाजत ले सकते हैं। इसे मैंने मर्यादा देकर समझाया है। सभी अपनी अपनी गरजके अनुसार समझ कर उसका पालन करते हैं और करेंगे। मेरा अभिप्राय स्पष्ट न समझा हो तो उसे समझानेके लिए आश्रमके आचारका उल्लेख किया है जो इस अभिप्रायके अनुसार है।

आप देहान्ततक दुःख भोग कर दूसरेको सुख करने देनेका नाम अहिंसा धर्म है। अमुक व्यक्ति ऐसी तकलीफ सहनेको कहाँतक तैयार है इसका अन्दाजा दूसरा कोई नहीं कर सकता। धर्म एक है और अनेक है क्योंकि आत्मा भी एकानेक है।

हिन्दी नवजीवन

२ दिसम्बर, १९२६

❁

"अहिंसा सत्यका प्राण है। उसके बिना मनुष्य पशु है।"

—गांधीजी

सर्वभूतहिताय

'यंग इण्डिया'के एक नियमित पाठक नीचेका पत्र लिखते हैं—

"एक साल पुरानी, एक अखबारकी कतरन भेजता हूँ। खास स्थितियोंमें प्राण लेनेके आपके विचारका, जिसका प्रतिपादन आपने 'अहिंसा' शीर्षक लेखमालामें विशेषकर तीसरे लेखमें किया है इससे समर्थन होता है।

—टाइम्स ऑफ इन्डियाका विशेष—

लिटलटन (कोलोरेडो, अमेरिका) १३ नवम्बर, १९२५

हैरोल्ड ब्लेजर नामके मुफस्सिलके एक डाक्टरने अपनी लड़कीको क्लोरोफार्म देकर मारा डाला था क्योंकि उसने समझा कि इसका अपना अन्तकाल भी नजदीक ही है और उसके मर जानेके वाद उस लड़कीकी देख-भाल करनेवाला कोई न रह जायगा। इसके लिए उसपर मुकदमा चला, पर बेदाग़ छोड़ दिया गया; क्योंकि १४ घंटेके परामर्शके वाद भी जब जूरी लोग एकमत न हो सके तव मुद्दईको ही मुकदमा खारिज करनेको कहना पड़ा। डाक्टर ब्लेजरके वकील मिस्टर हौरीने कहा कि 'उस लड़कीको डाक्टर ब्लेजरने ३२ साल तक पाला था। अन्तमें उसे दूसरोंके ऊपर बोझ न बनने देकर उन्होंने उचित हो नीतियुक्त काम किया। वह लड़की अशक्त, अधिकांगी, बिना हाथ पैरकी, बोलने या सोचनेकी शक्तिसे हीन थी और उसे भोजन भी पचा-पचाया ही देना पड़ता था। उसे आत्मा न थी।'

—'ब्रिटिश यूनाइटेड प्रेस कापीराइट'

"पारसाल इसी समय मैंने एक और खबर पढ़ी थी कि एक अभिनेत्रीने अपने प्रेमीको उसीकी अनुचित प्रार्थनापर गोली मार दी क्योंकि वह किसी ऐसी बीमारीसे बहुत दर्दसे परीशान था, जिसके छूटनेकी आशा न थी। उस अभिनेत्रीपर मनुष्य-हत्याका मुकदमा चला किन्तु वह इसलिए छोड़ दी गयी कि जूरियोंने सोचा कि ऐसी परस्थितिमें उसने कोई कसूर नहीं किया। ऐसे फैसलेको न्याय्य करार करनेके लिए फ्रांसमें कोई कानून तो नहीं मालूम होता है। किन्तु मैंने पढ़ा है कि डेनमार्कमें सचमुच ही ऐसा कानून बना है जिसके अनुसार कुछ अधिकार-प्राप्त लोग ऐसी हालतोंमें मनुष्योंको सुखकी मौत पार उतारनेमें कोई क़सूर नहीं करते। मैं उम्मेद करता हूँ कि यह मामला आपके लिए और 'यंग इण्डिया' के दूसरे पढ़नेवालोंके लिए मनोरंजक होगा।"

मैं इस चिट्ठीको छापता हूँ क्योंकि अपनी स्थिति समझानेमें मुझे इससे मदद मिलती है। इस पत्र-लेखकको मैं जानता हूँ कि 'यंग इण्डिया' के वड़े ही

सावधान पाठक हैं। अगर ये मेरी बातोंको इतना गलत समझते हैं जो इनके पत्रसे स्पष्ट है तो इसका पता कौन जाने कि जब-तब 'यंग इंडिया' पढ़नेवालोंमेंसे कितने ऐसी भूल करते होंगे? हमारे दिलोंकी स्वाभाविक कड़ाईके कारण, हम बल प्रयोगका एक भी मौका हाथसे जाने देना नहीं चाहते, और कई पाठकोंने मेरा ध्यान इस ओर खींचा था कि इस कारण गलतफहमी पैदा होनेका डर है। आदमी तो इतना ही कर सकता है—उसे बहुत अधिक सावधान रहना चाहिये, जब वह नाजुक सवालोंको ले रहा हो; किन्तु बयानोंके बड़ेसे बड़े दुरुपयोगके भयसे भी परम सत्योंकी खुली और सच्चीसे सच्ची चर्चा रोकी नहीं जा सकती। अपने आप तो मैं, विनीत चर्चा, स्पष्टीकरण और विचार-विनिमयसे ही सीख सकता हूँ। ऊपरका पत्र तो एक उदाहरण मात्र है। इस चर्चाने पत्र-लेखक और मेरे बीच उसी सिद्धान्तके स्पष्टीकरणमें सच्चा मतभेद ऊपर कर दिखलाया है।

मेरा मत है कि डाक्टर ब्लेजर भले ही छूटे मगर मेरी जाँचके अनुसार अपनी लड़कीकी जान लेनेमें उन्होंने भूल की। उनके निकट रहनेवालोंके दयाभावमें विश्वासकी कमी इससे प्रकट होती है। यह मान लेनेका कोई कारण न था कि दूसरे उस लड़कीकी देखभाल न करते। मेरी मानी हुई परिस्थितियोंमें कुत्तोंका मामला उससे बिलकुल ही अलग है, जिसमें डाक्टर ब्लेजरने अपनेको पाया। मैं यह भी माननेको तैयार नहीं हूँ कि जड़ मूर्खोंको आत्मा होती ही नहीं। मेरा विश्वास है कि नीची श्रेणीके प्राणियोंको भी आत्मा होती है।

इससे भी अधिक वजनदार दूसरी कठिनाई है, जिसे एक दूसरे पाठक पेश करते हैं। उसे संक्षेपमें यों समझाया जा सकता है—

"आपने जो स्थिति पसन्द की है, मैं उसे समझता हूँ। यही एकमात्र सही स्थिति है। मगर आपका तर्क क्या उपयोगितावादके अधिकांश लोगोंके अधिक लाभके सिद्धान्तका रूप ग्रहण नहीं कर लेता? अगर आपकी यही स्थिति हो तो फिर आपके इस अहिंसा सिद्धान्त और उपयोगितावादमें जो अधिकांशके अधिक सुखके लिए प्राण लेनेमें हिचकेगा नहीं और अहिंसाकी जो हामी नहीं भरता, अन्तर ही क्या रह जाता है?"

पहले तो बाह्य कर्म दोनोंके एक हो सकते हैं किन्तु तो भी जिस आन्तरिक प्रेरणासे वे किये गये हैं उसके अनुसार उनके और दूसरे गूढ़ार्थोंमें अन्तर होगा; जैसे पश्चिममें मनुष्य तक ही, और वह भी जहाँ तक सम्भव हो, अहिंसा समाप्त हो जाती है और वहाँ मनुष्य जातिके माने गये लाभके लिए पशुओंको जिन्दा चीरने-फाड़नेमें, या उपयोगितावादके उसी सिद्धान्तके नामपर युद्धके सामान इकट्ठे करनेमें कोई हिचक नहीं होती। दूसरी ओर अहिंसावादी, उपयोगितावादीके साथ साथ कभी एक प्राण ले लेवे किन्तु जीते प्राणियोंको चीरने-फाड़नेमें या युद्धकी अनन्त तैयारियोंमें सहायता देनेके बदले वह मर जाना ही अधिक पसन्द करेगा।

बात तो यह है कि अहिंसावादी उपयोगितावादका समर्थन नहीं कर सकता। वह तो 'सर्वभूतहिताय' यानी सबके लिए अधिकतम लाभके लिए ही प्रयत्न करेगा और इस आदर्शकी प्राप्तिमें मर जायगा। इस प्रकार वह इसलिए मरना चाहेगा जिसमें दूसरे जी सकें। दूसरोंके साथ-साथ वह अपनी सेवा भी आप मर कर करेगा। सबके अधिकतम सुखके अन्दर अधिकांशका अधिकतम सुख भी मिला हुआ है और इसलिए अहिंसावादी और उपयोगितावादी, अपने रास्तेपर कई बार मिलेंगे किन्तु अन्तमें ऐसा अवसर भी आयेगा जब उन्हें अलग अलग रास्ते पकड़ने होंगे और किसी किसी दशामें एक दूसरेका विरोध भी करना पड़ेगा। अयुक्तियुक्त न बननेके लिए, उपयोगितावादी अपनेको कभी बलि नहीं कर सकता। अहिंसावादी मिट जानेको हमेशा तैयार होगा। सर्वभूतहितवादी जब कभी कुत्तेको मारता है तो अपनी निर्बलताके कारण या तो बिरले ही खुद कुत्तेके लिए ही। इस बातसे यह निश्चय करना कि कुत्तेका लाभ किसमें है, बहुत ही खतरनाक है, और इसलिए ऐसा करनेवाला भयानक भूलें कर सकता है, कामको करनेकी प्रेरणासे कोई मतलब नहीं है। सर्वभूतहितवादीकी हिंसाका क्षेत्र बहुत ही संकुचित होगा। उपयोगितावादीके लिए कोई सीमा नहीं है। अहिंसा सिद्धान्तके अनुसार विचार करनेपर यूरोपीय महासमर सरासर अनुचित मालूम होता है। उपयोगितावादके अनुसार प्रत्येक पक्षने उपयोगिताके अपने विचारके अनुसार अपना पक्ष न्यायसिद्ध कर दिया है। उपयोगितावादके सहारे जालियानवाला बाग काण्डको भी उसके करनेवालोंने न्याय सिद्धकर दिखाया। ठीक इसी तर्कसे अराजक भी अपनी हत्याओंका समर्थन करते हैं। किन्तु सर्वभूतहितवादके सिद्धान्तकी कसौटीपर इनमेंसे किसी भी कामको समुचित नहीं सिद्ध किया जा सकता।

हिन्दी नवजीवन

९ दिसम्बर, १९२६

❀

"अहिंसा एक पूर्ण स्थिति है। सारी मनुष्य जाति इसी एक लक्ष्यकी ओर स्वभावतः, परंतु अनजानमें, जा रही है।"

—गांधीजी

सनातन प्रश्न

अलमोड़ासे एक सन्यासी लिखते हैं—

"गत १५ अप्रैलके यंग इन्डियामें किसी पत्र-प्रेषकको उत्तर देते हुए आपने लिखा है कि यदि सांप आपपर भी आक्रमण करे तो आप उसे मारनेकी इच्छा न करेंगे। मेरे ख्यालसे यह अनुचित होगा। क्योंकि एक तो इस तरह आप मानों स्वयं आत्मघात करेंगे, और दूसरे उस विषैले जन्तुको वैसे ही छोड़कर आप दूसरे लोगोंको हानि पहुँचानेमें कारण होंगे। दूसरा उदाहरण लीजिये। किसी गृहस्थके घरमें साँप निकलता है। वह उसे मारता नहीं, बल्कि अपने घरसे बाहर छोड़ देता है। फलतः वह साँप निश्चय ही दूसरे किसीके घरमें घुसकर उसमें रहनेवालोंको हानि पहुँचायेगा। और निश्चय ही इसकी जिम्मेदारी उसी शख्सके सिरपर होगी, जिसने दयाकी मिथ्या कल्पनाके कारण ऐसा भयंकर जन्तु जिन्दा छोड़ दिया। और भी कितने ही सरपट चलनेवाले जानवर, पशु और जन्तु हैं जो मनुष्योंको हानि पहुँचाते हैं, या बिमारियाँ फैलाते हैं। सचमुच यदि ऐसे प्राणियोंके नाशको हिंसा कहा जाय, तो वह उस हिंसासे कहीं कम होगी, जो इनके जिन्दा रहनेसे होती है। खैर, मान लिया जाय कि यदि आदमी अपनी जान बचानेके ख्यालसे ऐसे भयंकर जानवरोंको मारे तो वह हिंसा कही जाय। परन्तु यदि अनेक कीमती प्राणोंको बचानेके लिए यदि उसे मारा जाय तो वह कदापि हिंसा न कही जानी चाहिये। आखिर प्रत्येक कार्यकी भलाई-बुराईका निर्णय हेतुको देखकर होता है, और जब वही उच्च और शुद्ध हो, तब वह नाश या बध हिंसा नहीं कर्त्तव्यका रूप धारणकर लेता है। मैं यह चाहता हूँ कि आप इस प्रश्नका उत्तर 'यंग इन्डिया'में दें तो बड़ा अच्छा हो।

संन्यासीका प्रश्न सनातन है। इसमें शक नहीं कि वह बड़ा जोरदार भी है। अगर उसमें यह शक्ति न होती तो प्राचीन कालसे जो हत्या चली आ रही है वह जारी नहीं रहती। बहुत कम लोग दुष्टतापूर्वक निष्ठुरताका काम करते हैं। इतिहासमें वर्णित घोरसे-घोर और निघृण अपराध या तो धर्म या इसी प्रकारके अन्य उदात्त ध्येयकी ओटमें किये गये हैं। पर मेरे ख्यालमें तो उस हत्यासे हमारी दशा जरा भी नहीं सुधरी है—फिर भले ही वह हत्या धर्म जैसे सर्वोच्च आदर्शके नामपर हुई हो। बेशक, किसी न किसी प्राणोकी किसी न किसी रूपमें हिंसा तो अनिवार्य है। जीव जीवोंपर जीते हैं। इसलिए और महज इसीलिए बड़े-बड़े द्रष्टाओंने उस स्थितिको मोक्ष कहा है जिसमें जीवन शरीरसे मुक्त हो—उस शरीरसे, जिसका पालन, संवर्धन करनेके लिए हत्या या हिंसा अनिवार्य होती है। और मनुष्यके लिए इसी शरीरमें रहते हुए उस पदकी आशा करना असम्भव भी नहीं, यदि वह हिंसाकी मात्रा घटाकर कमसे कम कर दे, जैसा कि वह निरामिषाहारी होकर कर सकता है। वह जितना ही जान बूझकर

तथा बुद्धिपूर्वक अपने आपको ऐसी हिंसासे दूर रखेगा, जिसमें अपने निर्वाहके लिए दूसरे प्राणियोंकी हत्या होती है, उतना ही वह सत्य और परमात्माके अधिक नजदीक होगा। संभव है, मनुष्य जाति ऐसा जीवन शायद पसन्द न करेगी जिसमें कुछ भी आकर्षण न दिखायी दे। किन्तु इससे मेरे कथनके सत्यको बाधा नहीं पहुंचती। परन्तु वे लोग, जो पूर्णतः ऐसा निस्वार्थ जीवन व्यतीत कर रहे हैं, और प्राणिमात्रके प्रति करुणामय व्यवहार करते है, हमें परमात्माका महात्म्य समझनेमें सहायता करते हैं। वे मनुष्य जातिको ऊँचा उठाते हैं और उसके आदर्श पथको आलोकित करते हैं। उस जीवनको नष्ट करनेका हमें कोई अधिकार नहीं, जिसके बनानेकी शक्ति हमें न हो। मुझे यह दलील नास्तिक सी प्रतीत होती है, कि परमात्माने कुछ प्राणियोंको इसलिए बनाया है कि वे मनुष्यके द्वारा मारे जायँ जिन्हें मनुष्य सहज आनन्दके लिए या अपने शरीरके पोषणके लिए मारता रहे जो निश्चय ही किसी क्षण नष्ट होनेको है। हमें पता नहीं कि प्रकृतिके दरबारमें उन भयंकर समझे जानेवाले प्राणियोंका स्थान कहां है। पर हिंसा द्वारा हम प्रकृतिके कानूनोंको कभी न समझ पायँगे। ऐसे पुरुषोंके वर्णन हमारे पास मौजूद हैं जिनकी दया मनुष्यको व्याप्त कर उसे लांघ गयी थी और जो भयंकर हिंस्त्र पशुओंके बीच रहते थे। समस्त जीवन-सृष्टिमें कोई ऐसा आन्तरिक सम्बन्ध जरूर है, जिसके कारण शेर, सिंह, बाघ और सांपोंने उन मनुष्योंको कोई उपद्रव नहीं पहुंचाया जो निर्भय होकर, उन पशुओंके मित्र बनकर उसके पास गये थे।

यह दलील सदोष है कि यदि मैं किसी विषैले साँपको नहीं मारूँगा तो वह जरूर ही अनेक आदमियों और स्त्रियोंकी जानका ग्राहक होगा। वह मेरे कर्त्तव्यका अंग नहीं कि मैं तमाम विषैले जन्तुओंको ढूँढ़-ढूँढ़ कर मारता फिरूँ। और न मुझे यह मान लेनेकी जरूरत है कि मुझे मिलनेवाले विषैले साँपको यदि मैं नहीं मार डालूँगा तो वह किसी राहगीरको जरूर ही डस लेगा। उस साँप और मेरे पड़ोसीके बीच मुझे न्यायकर्ता नहीं बन जाना चाहिये। यदि मैं अपने पड़ोसियोंके साथ वैसा ही सलूक करूँ जैसे सलूककी आशा मैं उनसे करता हूं, यदि मैं उनको किसी ऐसे बड़े खतरेमें नहीं डालता जिसमें मैं हूँ, और यदि उन्हें नुकसान पहुंचा कर मैं अपना भला नहीं कर रहा हूँ, तो मैं समझूंगा कि मैंने अपने पड़ोसियोंके प्रति अपने कर्त्तव्यको पूरा कर लिया। इसलिए, जैसा अकसर किया जाता है, मैं उस साँपको अपने पड़ोसीके हाथमें नहीं छोड़ूंगा। अधिकसे अधिक मैं यह कर सकता हूँ कि सांपको जितना एक तरफ छोड़ा जा सके उतना छोड़कर अपने पड़ोसियोंको इस बातकी सूचना कर दूं। मैं जानता हूँ कि इससे मेरे पड़ोसियोंको न तो कोई आराम मिलेगा न रक्षा ही। पर हम तो मृत्युके मुखमें खड़े रहकर सत्यकी राह ढूँढ़ रहे हैं। शायद हमारे जीवनमें कदम-कदमपर जानका खतरा है। क्योंकि इस खतरेका ज्ञान होनेपर तथा हमारे जीवनकी अनित्यताका

ख्याल होते हुए भी समस्त जीवमात्रोंके स्रोत—उस भूत भावनके प्रति हमारी उदासीनता आश्चर्यजनक है। हमारे अहंकारसे वह कुछ ही कम है।

इस उत्तरसे मुझे संतोष नहीं है, जो मैं संन्यासीको दे रहा हूँ। उनके पत्रसे, जो हिन्दीमें लिखा हुआ है, मुझे ज्ञात होता है कि वे स्वयं सत्यकी खोजमें हैं। इसीलिए मुझे उनके प्रश्नका उत्तर इस तरह प्रकाश्य रूपसे देना पड़ा। स्वयं मेरी दशा तो बड़ी दयनीय है। प्राणिमात्रकी किसी भी रूपमें हिंसा देख कर मेरी बुद्धि तो बलवा कर देती है। पर मेरा हृदय अभी इतना मजबूत नहीं हो पाया जिससे उन प्राणियोंको अपना मित्र बना लूँ जिन्हें अनुभवने हिंस्र साबित किया है। इसीलिए प्रत्यक्ष अनुभवसे पैदा होनेवाले विश्वासकी निर्भ्रान्त भाषा मेरे पास नहीं है। यह हालत तबतक बराबर बनी रहेगी, जबतक मैं साँप, बाघ, आदि प्राणियोंसे डरने योग्य कायर बना रहूँगा।

मैं इस प्रश्नका उत्तर बड़ी झिझकके साथ दे रहा हूँ। पर मुझे मालूम हुआ कि 'जाति' खोनेके भयसे यदि मैं अपना विश्वास जाहिर न कर दूँगा तो वह अनुचित होगा। क्योंकि दक्षिण अफ्रीकामें मेरे मित्र एक बार मुझे ऐसा ही समझने लग गये थे। एक दिन हम खाना खा रहे थे, और इसी विषयपर बात-चीत छिड़ गयी। उन्होंने मेरे पुनर्जन्म, गोरक्षा, निरामिषाहार विषयके विचारोंकी परवा नहीं की, यद्यपि वे उन्हें बड़े विचित्र दिखाई दिये। पर उन्हें यह सुनकर बड़ा आश्चर्य हुआ—मुझपर अविश्वास हो गया, जो उनके चेहरोंपर स्पष्ट दिखायी देने लगा—कि यदि परमात्मा मुझे बल दें तो मैं साँपको भी नहीं मारना चाहूँगा, भले ही मुझे निश्चय हो जाय कि उसके न मारनेसे मेरी जानका पूरा पूरा खतरा है। शीघ्र ही अविश्वासको हँसीने दबा दिया और वे हँस कर बोले—"अरे, तब तो आप बड़े भारी खतरनाक आदमी हैं।"

हिन्दी नवजीवन

२३ जून, १९२७

❀

"सत्यके बाद असलमें अहिंसा ही संसारमें बड़ीसे बड़ी सक्रिय शक्ति है। विफल तो वह कभी होती नहीं। हिंसा सिर्फ ऊपरसे सफल मालूम पड़ती है।" —गांधीजी

अहिंसाका जुर्म

"क्या आप मानते हैं कि खलोंका दमन और संतोंका रक्षण हर एक आदर्श सरकार और महात्मा-जनोंका कर्त्तव्य है ? अगर आप इसे स्वीकार करते हैं तो फिर इस युग-युगके पुराने सिद्धान्तसे आपके राजनीतिक आदर्शवादसे कहां मेल बैठता है ? क्या कुरुक्षेत्रकी युद्ध-भूमिमें अर्जुनको कृष्णके उपदेशका सार यही नहीं है ?

"क्या अवतारोंकी भी यही नीति नहीं थी जिससे राजा बलिका राज्य छीना गया, बालि मारा गया और जरासंधका नाश हुआ ?

"आप साधारण आदमियोंसे और वह भी बहुतोंसे, यह आशा कैसे रखते हैं कि वे अपने अविवेकी शत्रुओंके वार, बिना किसी तरहका बदला लिए सहते जायँगे ? इस दृष्टिसे क्या हम आपकी भावनामय शिक्षाओं और उपदेशोंको अव्यावहारिक और मामूली आदमियोंके लिए अशक्य गिननेमें भूल करते हैं ? दक्षिणी अफ्रीकामें आपकी अस्थायी और थोड़ी थोड़ी करके मिली हुई सफलताको बहुत बढ़ा दिया गया है और साधारण बुद्धिके हिन्दुस्तानी आँख मूँदकर भेड़ोंके जैसे यह भूल करके कि दक्षिण अफ्रीकाका उदाहरण हिन्दुस्तान जैसे विशाल देशपर जिसमें बहुतसी भाषाएँ और धर्म हैं, लागू नहीं पड़ता, आपके पीछे चलकर मुश्किलोंमें पड़ गये हैं। बहुतसे देशभक्तोंका जीवन बर्बाद करनेके बाद क्या आपने अबतक यह नहीं समझा है कि एक वर्षमें स्वराज्यकी आपकी घोषणा गलत साबित हुई है ? क्या आप यह नहीं कबूल करते कि बारडोलीमें आपके पीछे हटनेसे गुंटूरवालोंके बीच बड़ी घबराहट फैल गयी जो आपके कार्यक्रमके अनुसार बड़ी वीरता और मर्दानगीसे कर देना बंद कर बैठे थे ?

"क्या हम पूछ सकते हैं कि खिलाफत-आन्दोलनमें आपके पड़ने और उसके फल-स्वरूप थोड़ेसे धर्मान्ध मुसलमानोंके हाथमें महासभा (कांग्रेस) के पड़ जानेका क्या फल हुआ है ? जिस हिन्दू-मुसलिम एकताके बारेमें आपने इतना लिखा है, हिन्दुओंसे इतनी अपील की है, मुसलमानोंके संकटकी घड़ी टलते ही क्या वह बालूके भीत-सी गिर नहीं गयी है ? क्या आप अपनी पवित्र शिक्षाओंसे इसकी कभी आशा रखते हैं कि धर्मान्ध और बहादुर मुसलमानों और जाति रोगसे रोगी और भीरु हिन्दुओंमें कभी मेल होगा ? क्या आपको कभी इसका भान हुआ है कि जबसे अहिंसाके सिद्धान्तकी बदौलत कांग्रेसमें आप मुखिया बने तभी से साम्प्रदायिक झगड़े बराबर बढ़ते ही गये हैं ?

"क्या आप इसे कबूल नहीं करेंगे कि आपकी राजनीति चाहे धर्मके नाममें जितनी ही क्यों न ढँकी हो, मगर उससे पण्डित मालवीय, देशबन्धु दास, लाला लाजपतराय, श्रीयुत विजयराघवाचार्य, श्री केलकर, डाक्टर मुंजे और दूसरे अखिल भारतीय नेता आजिज आ गये थे ?

"क्या आपने महात्मा तिलकका नेतृत्व, कमसे कम शुरूमें ही सही, स्वीकार नहीं किया है ? तब इसकी क्या वजह है कि आप आज राष्ट्रके हितके विरोधी, गहन सामाजिक और धार्मिक झगड़े उभाड़ रहे हैं ? क्या आपको यह नहीं भासता है कि पहलेसे ही दासवृत्ति वाले हिन्दुओंमें इससे और भी अधिक फूट फैलती है तब क्या आप हमारे उन शत्रुओंका ही काम, अप्रत्यक्ष रूपसे नहीं साध रहे हैं ? जिनकी एक मात्र दलील यह है कि हम अपनी सामाजिक निर्बलताओंके कारण राजनीकि स्वतंत्रताके आयोग्य हैं।

"क्या ऊँची जातिके हिन्दुओंके मंदिरोंमें, जिन्हें ऊंची जातिवालोंने केवल अपने ही लिए बनाया था, घुसनेको आप पंचमोंको उत्तेजित करके ठीक काम करते हैं ? आप क्या अपनेको त्रिनेत्र रुद्र समझते हैं कि युग-युगसे चले आनेवाले रीतिरस्मोंको एकबारगी तोड़ डालें ? हालमें हमें यह जानकर आश्चर्य हुआ है कि आपने विधवा-विवाहका समर्थन करना शुरू किया है और अपरिपक्व बुद्धिके नवयुवकोंको विधवाओंसे विवाह करनेकी सलाह वेधड़क दी है ? क्या आप यह नहीं मानते कि स्वामी विवेकानन्द और दूसरे लोगोंने विधवा-विवाहका समर्थन न करके चतुराई ही की क्योंकि आज कुमारी कन्याओंके भी विवाहोंमें होनेवाली कठिनाइयोंको वे जानते थे ? क्या हम पूछ सकते हैं कि इन सब अत्यन्त विवादग्रस्त सवालोंको स्वराजके साथ मिला देनेसे कहां तक मेल होगा जो शुद्ध राजनीतिक है और जिसपर आशा की जाती है कि हम सब एक मत होंगे ?

"विज्ञानकी उन्नतिके इस युगमें आपका चर्खा लोकप्रिय नहीं हो सकता। क्या आप अपने अनुभवोंके आधारपर यह नहीं सोचते कि अगर आप केवल मजदूरोंके संगठनके काममें लगे रहें तो अच्छा होगा।

"अहिंसा-धर्ममें सच्चा विश्वासी होनेके कारण क्या आपका यह कर्त्तव्य नहीं है कि आपका उन म्युनिसिपिलटियोंसे मानपत्र स्वीकार न करें जिनके यहां कसाई खाने चलते हैं ?"

बरहमपुरमें मुझे किसी भाईने एक लम्बा पत्र भेजा था। ऊपर उसीका सारांश दिया गया है। चूंकि मुझे यह माननेका कारण है कि इस पत्र-लेखकने वे बातें खुलासा कहनेका साहस किया है जो दूसरे लोग मनमें छिपाये हुए हैं, मुझे जान पड़ता है कि इस इलजामका जवाब देना जरूरी है।

इन सवालोंका व्योरेवार जवाव देना जरूरी नहीं है। हममेंसे बहुत लोग बड़ी भारी भूल करते हैं कि शास्त्रोंका वे अक्षरशः अर्थ लगाने लगते हैं। वे भूल जाते हैं कि शब्दोंके पीछे चलनेवाला मरता है और भावोंके, जी उठता है। महाभारत और पुराण न तो बिलकुल इतिहास ही हैं और न धर्मशास्त्र ही। मुझे लगता है कि मनुष्यके धार्मिक इतिहासको भिन्न-भिन्न रूपोंमें समझानेके लिए वे विचित्र रूपसे लिखे गये हैं। उनमें वर्णित सभी नायक हम लोगों जैसे अपूर्ण, नश्वर प्राणी हैं, अगर अन्तर है तो असंपूर्णताकी मात्रामें ही। उनके कहे गये कामोंका हम आँख मूंदकर अनुकरण नहीं कर सकते। महाभारतकी सारी शिक्षाका

सार इतनेमें दिया हुआ है, 'सत्यं जयते नानृतम्' यह सच है कि सत्य सभी वस्तुओंको अवश्य ही जीत लेता है।

मगर मैं शास्त्रोंमें लिखी हर एक बातका औचित्य सिद्ध करनेकी कोशिश नहीं कर रहा हूं। इन ग्रन्थोंको श्रद्धाके साथ पढ़नेपर मुझपर सब मिलाकर जो असर पड़ता है, मैं उसीको मानता हूँ। हर एक आदमीको, जो सच्चा होना चाहता है, यही करना पड़ेगा। इस तरह मेरा दावा है कि अहिंसा और सत्यमें मेरा विश्वास उन्हीं ग्रन्थोंके पढ़नेसे जमा है, पैदा हुआ है जिनमेंसे ये भाई मेरे सामने ये विरोधी बातें ला रखते हैं। नहीं, यही नहीं, बल्कि मेरा विश्वास आज मेरे जीवनका ही परमावश्यक अंग हो रहा है, और इसलिए इन किताबोंके या किन्हीं और किताबोंके बिना सहारेके स्थिर रह सकता है। निश्चय ही हर एक धार्मिक प्रवृत्तिवाले आदमीके जीवनमें वह समय आता है जब उसे अपने ही सहारे खड़ा रहना पड़ता है। इसलिए यह भले ही सिद्ध किया जाय कि अवतारोंने फलां काम किया था, फलां काम नहीं किया था, मगर इसका मुझपर कोई असर नहीं पड़ सकता। दिनों-दिन बढ़ता और सबल होता हुआ मेरा अनुभव मुझे कहता है कि जहां तक आदमीके लिए सम्भव हो, उस हद तक सत्य और अहिंसाका पालन किये बिना, न तो व्यक्तियोंको और न जातियोंको ही शान्ति मिल सकती है। बदला लेनेकी नीतिकी कभी सफलता नहीं मिली है। बदला लेनेसे, जिसमें अक्सर धोखेबाजी और जोर-जबर्दस्ती भी शामिल होती है, कभी-कभी अस्थायी और दिखाऊ सफलता मिलनेके इक्के-दुक्के उदाहरणोंसे हम घबरा न जायँ। संसार आज इसलिए खड़ा है कि यहांपर घृणासे प्रेमकी मात्रा अधिक है, असत्यसे सत्य अधिक है। इसकी जांच हर कोई, जो सोचनेकी तकलीफ उठावे, कर सकता है। धोखेबाजी और जोर-जब्र तो बीमारियां हैं, सत्य और अहिंसा स्वास्थ्य हैं। यह बात कि संसार अभी तक नष्ट नहीं हो गया है, इसका प्रत्यक्ष प्रमाण है कि संसारमें रोगसे अधिक स्वास्थ्य है। इसलिए जो इसे समझ लें, वे अत्यन्त विरोधी स्थितियोंमें भी स्वास्थ्यके नियमोंका पालन करें।

मेरे उपदेश और शिक्षाएँ, भावुकतामय या अव्यावहारिक नहीं हैं, क्योंकि मैं वही सिखलाता हूँ जो पुराना है, और जो कहता हूँ वह करनेकी कोशिश करता हूं और मेरा वह दावा है कि जो मैं करता हूँ वह हर एक आदमी कर सकता है क्योंकि मैं एक बहुत मामूली आदमी हूँ, मेरे सामने भी वही प्रलोभन हैं, मुझमें भी वही कमजोरियां हैं, जो हममेंसे निर्बलसे निर्बल मनुष्यमें हैं।

दक्षिण अफ्रिकामें, उस समयके लक्ष्यकी सफलताके अंदाजके हिसाबसे, पूरी सफलता मिली थी। जो बात छोटे समाजोंपर लागू है, वही बड़े समाजोंपर भी, केवल उसी तरहका काम मगर ज्यादे पैमानेपर करना पड़ेगा।

मुझे अपनी पद्धतिमें इतना अधिक विश्वास है कि मैं यह भविष्य कथन कर सकता हूँ कि आनेवाली पीढ़ियां १९२० और १९२१ सालको भारतवर्षके इतिहासमेंसे सबसे चमकदार पृष्ठ समझेंगी और उनमें भी 'बारडोलीका पीछे हटना' सबसे महान काम समझा जायगा। बारडोलीके निश्चय ने हिन्दुस्तानको इस लायक बनाया है कि वह दुनियाके सामने आँखें सीधी रखे, सिर ऊँचा रख सके। कांग्रेसका वर्तमान मंतव्य रहते हुए, राष्ट्रके लिए यही एक मात्र सच्चा, बहादुरीका और प्रतिष्ठित रास्ता था। स्वराजकी लड़ाई कुछ खेल नहीं थी। और अगर किसीको बिना चाहे तकलीफ उठानी पड़ी तो इसलिए पड़ी थी कि वे आगके साथ खेल रहे थे।

खिलाफत आन्दोलनमें पड़नेसे दोनों जातियाँ सबल हुई हैं और वह सामूहिक चेतना उत्पन्न हुई है जिसके और तरहसे होनेमें एक जमाना लग जाता। अगर सच्ची एकता कभी होगी तो मेरी ही शिक्षाओंके माननेसे होगी। आजके हिन्दू-मुसलिम झगड़े, हिन्दुओंके आपसके झगड़े और मुसलमानोंके अपने घरके झगड़े सामूहिक चेतनाके चिन्ह हैं। आज जो चीज हम देख रहें हैं वह तो आत्मशुद्धिकी क्रियामें मैलका ऊपर निकल आना है। लेखक महोदय चीनी साफ करनेके किसी कारखानेमें चीनीका साफ किया जाना देख आवें और तब वे मेरा मतलब समझ जायँगे। यह मैल सिर्फ फेंक दिये जानेके लिए ही ऊपर सतहपर आ गया है। मुझे इसका कोई पता नहीं है कि पंडित मदनमोहन मालवीय और लेखकके गिनाये दूसरे नेता मेरी राजनीतिसे ऊब गये हैं। कुछके बारेमें तो मैं जानता हूँ कि उनके साथ बात इसकी उलटी ही है। किन्तु वे अगर ऊब गये हों तो भी मुझे आशा है कि मेरा विश्वास मेरे उन मित्रोंका मतभेद भी सह सकेगा जिनकी सम्मतिका मेरे सामने कुछ मूल्य है।

लोकमान्यके बारेमें लेखक अपना अज्ञान तब प्रकट करते हैं जब वे उनकी वे नीतियाँ बतलाते हैं जो लोकमान्यकी कभी थीं ही नहीं। मैं जानता हूँ कि मेरे और उनके बीच मौलिक अन्तर थे, मगर लेखक जिनकी कल्पना करते हैं, वे अन्तर नहीं थे। हमें अपने नेताओंसे यह सीखना चाहिये कि उनके कामोंकी बेजाने, बेसमझे बूझे आँख मूँदकर नकल न करें। हमें उनसे उनकी बहादुरी, उनका महान स्वार्थत्याग, उनकी परिश्रमशीलता, उनका देश-प्रेम, और अपने आदर्शोंपर दृढ़ रहनेकी प्रवृत्ति सीखनी चाहिये। हम जब बिना किसी कारणके या यथेष्ट ज्ञानके उनके इक्के दुक्के कामोंकी नकल करने लगते हैं तब बड़ी भारी भूल करते हैं।

मेरा दावा है कि जो समाज-सुधारके काम मैं कर रहा हूं, और जिनमें परमात्माकी कृपासे मेरे कई प्रसिद्ध देशवासी भी मेरा भी साथ देते हैं, उनके बिना हिन्दू धर्मके नष्ट हो जानेका खतरा है।

लेखकके अविश्वासके होते हुए भी चर्खा बराबर प्रगति करता ही जा रहा है, मजदूरोंके हितके सागरमें चर्खेका काम मेरा हिस्सा है।

म्युनिसिपिलटियोंसे मानपत्र स्वीकार करते समय मेरा दावा होता है कि उनके कसाईखानोंमें होती हुई हत्याओंसे मैं छू नहीं जाता हूँ। इसके उलटे उन मानपत्रोंसे मुझे उन्हें अपने सिद्धान्तका उपदेश देनेका अवसर मिलता है। और मुझे यह लिखते हुए खुशी होती है कि वे इससे कभी बुरा नहीं मानते और कभी-कभी उसे स्वीकार भी कर लेते हैं।

हिन्दी नवजीवन

१५ दिसम्बर, १९२७

❀

"अहिंसा एक महाव्रत है। तलवारकी धारपर चलनेसे भी कठिन है। देहधारीके लिए उसका सोलह आना पालन असंभव है। उसके पालनके लिए घोर तपश्चर्याकी आवश्यकता है। तपश्चर्याका अर्थ यहां त्याग और ज्ञान करना चाहिये।"
—गांधीजी

अंधेर या कुराज्य ?

एक सम्मानित मित्र लिखते हैं—

"आप जब अपना कोई राजनीतिक मत प्रकाशित करते हैं, मैं उसमें बारबार टांग नहीं अड़ाता हूँ। मगर हालके अपने किसी सम्पादकीय लेखमें आपने अपना एक पुराना निराला मत दुहराया है, जिसके कारण मुझे बरबस आपसे पूछना ही पड़ता है कि आपने क्या इस बार भी अपने शब्दोंको उसी सावधानीसे तौला है, जिसकी आशा नीतिके प्रतिपादकोंसे की जाती है ? यह तो बिलकुल ही स्वाभाविक, समुचित श्रेयस्कर है कि हिन्दुस्तानियोंको किसी विदेशी जुएसे स्वतंत्र होनेकी इच्छा हो और वे इसके लिए प्रयत्न करें। किन्तु यह तो अक्लके बाहरकी बात है कि कोई होशहवासमें रहकर भी किसी तरहकी सुसंघटित सरकारके बदले अंधेरखाता चाहे; क्योंकि एकमें अगर किसी भांतिके ऊपरसे लादे या आप बनाये, संयम नियमका पता है भी तो दूसरा तो आत्म-संयमका बिलकुल उलटा ही है। अंधेरखाता भगवानके शब्दकोशमें भले ही हो। मनुष्यके मुंहमें तो उसके कोई मानी ही नहीं हो सकते और वह वैसा ही खतरनाक मुबालगा (अतिशयोक्ति) और मति-भ्रम है, जैसा 'इन्डिपेन्डन्स' शब्द है, जिसके विरुद्ध आपने वाजिब ही कमर कसी। इसके अलावा, मुझे यह भी जान पड़ता है और खुद आपने भी यह इतनी बार स्वीकार किया है कि बुद्धिमानी इसीमें है कि आदमी उन कामों और शब्दोंसे दूर रहे, जिनसे अनजान लोगोंको गलत रास्ते ले जानेका मतलब न होते हुए भी, उनके जानेका भय हो और वे बेशक इस शब्दके ऐसे अर्थ लगायेंगे, जिनकी कल्पना भी आपको न होगी। हर एक बहशी आदमी, अहिंसाकी आपकी शर्त्तोंको समझे बिना, इसीपर जोर देगा। जैसा आपका दावा है, अगर अहिंसा स्वभावसे ही, रचनात्मक, सार्थक और दिव्य वस्तु हो तो, उसका नतीजा, या खासियत, कभी अंधेर नहीं हो सकता। अगर आपने सोच समझकर यह शब्द लिखा है तो मैं यही कहूँगा कि आपने मनुष्य-जातिकी कोई सेवा नहीं की है। उन्हें जरूरत इस बातकी याद दिलानेकी है कि हमें विश्व-दृष्टि पैदा करनी चाहिये न कि जिसकी ओर उनका स्वाभाविक ही झुकाव होता है, उस असंयत, अनियमित अंधेरखाता की। अगर किसी और ऊच्च भावनाके आदेशमें यह केवल भाषाकी ढिलाईके कारण हुआ है तो, मुझे आशा है कि बिचाव करनेपर आप अपना असल मतलब स्पष्ट करेंगे।"

इस पत्रमें छिपी लगनको तो भूला ही नहीं जा सकता। और इस मित्रके विचारोंके लिए मेरा इतना आदर है कि अगर उनके अनुकूल मैं अपने विचार बना सकता तो जरूर खुशीसे बना डालता।

मगर मुझे कहना ही पड़ेगा कि मैंने यह शब्द सोच समझकर चुना था। अंधेरखाताका अर्थ है—अनियम, अव्यवस्था। नियम और व्यवस्थाका जन्म

अनियम और अव्यवस्थासे होता है किन्तु सीधे उस कु-नियम और कु-व्यवस्थासे कभी नहीं, जो नियम और व्यवस्थाके भेसमें प्रचलित हों। मैं मानता हूँ कि इस मित्रकी कठिनाई इस मान्यताके कारण हुई है कि भारत सरकार आज 'किसी न किसी भांतिके ऊपरसे लादे या आप बनाये नियम और व्यवस्थाका प्रतिरूप है।' सम्भवतः वर्तमान शासन-पद्धतिके बारेमें हमारे विचारोंमें फर्क हो। मेरा अपना ख्याल यह है कि यह बिलकुल ही बुरी है। इसलिए बुराईसे भलाई नहीं हो सकती। मैं कु-शासन या कु-राज्यको अ-शासन या अ-राजकतासे बुरा मानता हूँ।

फिर मेरे शब्दोंसे अनजान अथवा हिंसा-प्रिय लोगोंके मनमें भ्रान्ति नहीं हो सकती। क्योंकि मैं पत्र-लेखककी बात कबूल करता हूँ कि अंधेरखाता तो केवल हिंसाका ही फल हो सकता है। क्या मैंने अनेक बार इन पृष्ठोंमें लिखा नहीं है कि अगर मुझे इस सरकार और हिंसामेंसे एक चुनना ही पड़े तो मैं हिंसाको ही पसन्द करूँगा जो कि मैं हिंसाके आधारपर चलते हुए युद्धमें सहायता नहीं करूँगा, कर नहीं सकूँगा। मेरे लिए तो इसमें दूसरा रास्ता ही नहीं। आजकी शान्ति तो हिंसाका खतरनाक रूप है जो उससे भी बड़ी हिंसा या बड़ी हिंसा करनेकी तैयारीके नीचे दबायी हुई है। क्या यह अच्छा नहीं होगा कि जो मौतके या घरबार छिन जानेके कायर भयसे, मनमें हिंसासे कुढ़ते हुए भी, जब्र किये हुए हैं; हिंसा कर लें और गुलामीसे या तो स्वतंत्र हो जायँ या अपने जन्मसिद्ध अधिकारोंको लेनेके प्रयत्नमें मर जायँ।

मेरी अहिंसा कोई किताबी सिद्धान्त नहीं है जो अनुकूल अवसर देखकर बतलायी जाय। यह वैसा सिद्धान्त है, जिसे मैं सभी कार्यक्षेत्रोंमें लानेका प्रयत्न अपने जीवनके प्रत्येक क्षणमें कर रहा हूँ। अहिंसाको घुसानेकी मेरी कोशिश प्रायः मेरी अपनी ही कमजोरी या अज्ञानके कारण चौपट हो जाती है। उस समय मुझे अपने इसी ध्येयकी खातिर हिंसाको मनसे ही मंजूर करके उसे सहन करना पड़ता है। १६२१ में मैंने बेतियाके निकट गांववालोंसे कहा कि तुमने बुरे मतलबवाले अमलोंका विरोध न करके उनके आनेपर भाग जानेमें कायरता दिखलायी है। एक दूसरे अवसरपर किसी पुजारीके कारण मैं शर्मिन्दा हुआ था। जिसने कहा कि कुछ बदमाशोंके मंदिर लूटने और मूर्ति तोड़नेके लिए आनेपर मैं चुपचाप जान लेकर भाग निकला। मैंने उससे कहा कि अगर तुम अपनी जगहपर अहिंसा भावसे डटे रहकर अपनी मूर्तिकी रक्षामें मर नहीं सकते थे, तो तुम्हें दूसरोंको मारकर भी मूर्तिकी रक्षा करनी चाहिये थी। इसी भाँति मैं मानता हूँ कि वर्तमान कु-शासनसे हिंसाके जरिये भी हिन्दुस्तानकी स्वतंन्त्रता लेना अच्छा है, बनिस्बत इसके कि उसका धन और इज्जत दिन रात लूटी जाती रहें और वह असहाय होकर तमाशा देखे।

जरा देखिये तो कि किस बेशर्म तरीकेसे ब्रिटिश राजनितिज्ञ (?)

हिन्दुस्तानकी अपनी लूटपाट जारी रखनेके लिए एक दलको दूसरेसे लड़ा रहे हैं। उन्हें आज अचानक अछूतोंका पता लग गया है क्योंकि जान पड़ता है कि उन्हें डर है कि केवल हिन्दू-मुसलिम झगड़ोंसे ही 'ब्रिटिश ताजके सबसे चमकदार हीरे' का सुरक्षित रहना शायद मुश्किल हो। वे असहाय नरेशोंको लोगोंसे लड़ानेकी कोशिश कर रहे हैं। सर जान साइमनको भी यही चाल चलनी आवश्यक जान पड़ती है। कहा जाता है कि उनकी बुद्धि बड़ी तीक्ष्ण और रहस्य-भेदिनी है। किन्तु उनके सम्मानके लिए रचे हुए बहुत ही महीन पर्देको वह छेद नहीं सकती। उन्हें भारतीय वाताकाशमें कोई बात बिगड़ी हुई नहीं मिलती। इस भांतिके 'सुव्यवस्थित अंकुश' ने तो प्रजाको इतना नामर्द और अशक्य कर दिया है, जितना उसके पूर्व इतिहासकी घटनाने उन्हें नहीं किया था।

मेरी अपनी स्थिति और विश्वास, दोनों स्पष्ट और बेदुविधाके हैं। मैं न तो वर्तमान शासन चाहता हूँ और न अंधेरखाता ही। मैं अंधेरके रास्तेसे गुजरे बिना, सच्ची सुव्यवस्था स्थापित देखना चाहता हूँ। मैं इस अव्यवस्थाको अहिंसासे नष्ट करना चाहता हूँ। यानी बुराई करनेवालोंका मत ही बदलना चाहता हूँ। इसी कामके लिए मेरा जीवन समर्पित है। और ऊपर जो कुछ मैं लिख आया हूँ, वह अहिंसाके मेरे ज्ञानसे सीधे निकलता है। अहिंसासे बड़ी शक्ति मनुष्य जातिको मालूम नहीं है। इसकी शक्ति या प्रभावशीलतामें मेरा विश्वास अटल है और उसी भाँति मेरा यह विश्वास भी अचल है कि केवल अहिंसाके ही जरिये स्वतन्त्र होनेकी शक्ति हिन्दुस्तानमें है। मगर सत्य या सच्ची बातोंको छिपानेसे, चाहे वे इस घड़ी कितनी ही बुरी क्यों न मालूम हों, शक्ति नहीं मिल सकती। भगवान् न करें हिन्दुस्तानको अहिंसाका पाठ पूरा-पूरा पढ़नेके पहले खूनी लड़ाई लड़नी पड़े। मगर यह बीचकी सीढ़ी, जो प्रायः जरूरी जान पड़ती है, उसके भी भाग्यमें बदी हो तो उसे अपनी मुक्तिके मार्गमें उसमेंसे भी जरूर ही गुजरना पड़ेगा और वह आजकी वर्तमान व्यवस्थासे तो जरूर ही अच्छी गिनी जायगी। आजकी व्यवस्था तो महज़ एक उजला कफन है, जिसके नीचे केवल हिंसा ही हिंसा छिपी हुई है।

हिन्दी नवजीवन
१ मार्च, १९२८

❀

"शक्ति शारीरिक क्षमतासे नहीं उत्पन्न होती, वह अजेय संकल्प (या इच्छा) से उत्पन्न होती है।"

—गांधीजी

युद्ध और अहिंसा

यूरोपीय महासमरमें ब्रिटिश साम्राज्यको जो सहायता देनेका उल्लेख मैंने अपने 'सत्यके प्रयोगों'में किया है, उसके सम्बन्धमें एक भाई निम्नलिखित पत्र लिखते हैं—

"आपने अपनी 'आत्मकथा'के चौथे भागके ३८ वें अध्यायमें पहले पहल यूरोपीय महासमरमें अपने शामिल होनेका जिक्र किया है। इसकी योग्यताके विषयमें मुझे शंका है। मेरा ख्याल है कि मैं शायद आपका मतलब ही ठीक ठीक नहीं समझ सका हूँ। इसलिए प्रार्थना है कि आप कृपाकर मेरी शंकाओंका समाधान कर दें।

"पहला प्रश्न है :

"आपको दर असल लड़ाईमें शामिल होनेके लिए किस बातने प्रेरित किया? आप कहते हैं—

इसलिए अगर मुझे उस राज्यके साथ आखिर सरोकार रखना हो, उस राज्यकी छत्र-छायाके नीचे रहना हो तो या तो मुझे खुले तौर पर युद्धका विरोध करके जबतक उसकी युद्धनीति न बदले तबतक सत्याग्रहके शास्त्रके अनुसार उसका बहिष्कार करना चाहिये अथवा भंग करना योग्य हो तो मैं ऐसे कानूनोंका सविनय-भंग करके जेलका रास्ता ढूँढ़ना चाहिये अथवा मुझे युद्ध-प्रवृत्तिमें भाग लेकर उसका विरोध करनेकी शक्ति और अधिकार प्राप्त करना चाहिये। ऐसी शक्ति मुझमें नहीं थी। इसलिए मैंने माना कि मेरे पास युद्धमें भाग लेनेका ही रास्ता बचा है।' (भाग ४, अध्याय ३९)

"आप युद्धमें शरीक होकर युद्धकी हिंसाका विरोध करनेके लिए कौन-सी योग्यता, कौन-सी शक्ति प्राप्त करना चाहते थे?

"मैं देखता हूँ कि लड़नेवाले दूसरे देशोंके निवासियोंकी बनिस्पत आपकी स्थिति न्यारी थी। वे तो सेनामें भर्ती किये जा सकते थे किन्तु आप नहीं और इसलिए निष्क्रिय प्रतिरोधका रास्ता आपके लिए स्वभावतः ही नहीं खुला हुआ था। तब जब आपकी कोई स्थिति नहीं थी, सार्वजनिक रूपसे युद्धका विरोध करना तो न करनेसे भी बुरा होता। तब आखिर नितान्त आवश्यक लाचार शराकतसे जरा भी अधिक शराकत क्यों करें।

"गोकि ऊपरके उद्धारणसे जान पड़ता है कि आप युद्धका विरोध कर सकनेकी ताकत पैदा करनेके लिए लड़ाईमें शरीक हुए किन्तु दूसरी जगहोंमें आप खुलासा कहते हैं कि आपको उम्मेद थी कि लड़ाईमें शामिल होनेसे आपकी अपनी और आपके देशकी स्थिति अच्छी होगी—और यह पढ़कर जान पड़ता है कि यह उन्नति महज लड़ाईका विरोधभर करनेके लिए ही नहीं थी।

गांधीजीकी 'यह कास्य-मूर्ति सदैव अहिंसाकी प्रेरणा देती रहेगी

अहिंसा मूर्ति

"और इसीमेंसे दूसरा प्रश्न यह भी उठता है कि कुछ भी पानेके लिए लड़ाईमें योग देना ही उचित था?

"मेरी समझमें नहीं आता कि गीताकी शिक्षासे इस बातका मेल किस तरह बैठाऊँ। गीतामें तो कहा है कि फलका विचार त्याग कर कर्म करना चाहिये।

"सारे अध्यायमें आपने यही दलील इस्तेमाल की है कि ब्रिटिश साम्राज्यकी सहायता की जाय अथवा नहीं। और मैं समझता हूँ कि मूलतः सवाल व्यक्तिगत रूपमें उठा होगा। किन्तु यह इस किनारे तक ले ही जाता है कि युद्धके रूपमें युद्धमें हमें योगदान करना चाहिये या नहीं?"

बेशक लड़ाईमें योगदानके लिए मुझे प्रेरित करनेवाला उद्देश्य मिश्रित था। दो बातें मैं याद करता हूं। गोकि व्यक्तिगत रूपसे मैं लड़ाईके विरूद्ध था किन्तु मेरी ऐसी स्थिति नहीं थी कि मेरे विरोधका असर पड़ सके। अहिंसामय विरोध तभी हो सकता है जब विरोध करनेवालेने विरोधीकी पहले कुछ सच्ची निःस्वार्थ सेवा की हो, सच्चे हार्दिक प्रेमका प्रदर्शन किया हो। जैसे किसी जंगली आदमीको पशुका बलिदान करनेसे रोकनेके लिए मेरी तब-तक कोई स्थिति नहीं होगी, जब-तक किसी सेवा या मेरे प्रेमके कारण वह मुझे अपना मित्र न समझ ले। दुनियाके पापोंका न्याय करने मैं नहीं बैठता हूं। स्वयं असंपूर्ण होनेके कारण, और चूँकि खुद मुझीको औरोंकी सहनशीलता तथा उदारताकी दरकार है, मैं संसारकी कच्चाइयों या असंपूर्णताओंको तब-तक सहन करता रहता हूं जब-तक उनपर प्रकाश डालनेका अवसर मैं नहीं पाता या बना नहीं लेता हूँ। मुझे लगा कि अगर मैं यथेष्ट सेवा करके वह शक्ति, वह विश्वास पैदा कर लूँ कि साम्राज्यके युद्धों, और युद्धकी तैयारियोंको रोक सकूँ तो मेरे जैसे आदमीके लिए यह बड़ी अच्छी बात होगी जो खुद अपने ही जीवनमें अहिंसाका व्यवहार करना चाहता है तथा यह भी जाँचना चाहता है कि सामूहिक रूपमें इसका कहाँ तक उपयोग किया जा सकता है।

दूसरा उद्देश्य साम्राज्यके राजनीतिज्ञोंकी सहायतासे स्वराज्यकी योग्यता पैदा करनेका था। साम्राज्यके इस जीवन-मरणकी समस्यामें उसे सहायता दिये बिना यह योग्यता मुझमें आ नहीं सकती थी। यहां यह भी समझ लेना चाहिये कि मैं सन् १९१४ की अपनी मानसिक स्थितिकी बात लिख रहा हूँ जब कि मैं ब्रिटिश साम्राज्य और हिन्दुस्तानके उसके स्वेच्छापूर्वक सहायता देनेकी बातमें विश्वास करता था। अगर मैं तब भी आजके जैसा अहिंसक विद्रोही होता तो अवश्य ही सहायता न देता और अहिंसाके जरिये जिस-जिस तरह उनका उद्देश्य चौपट होता, करनेकी सभी कोशिशें करता।

युद्धके प्रति मेरा विरोध और उसमें अविश्वास तब भी आजके ही जैसे

१३

सबल थे। मगर हमें यह मानना पड़ता है कि हम बहुतसे काम करना नहीं चाहते मगर तो भी उन्हें करते ही हैं। मैं छोटेसे छोटे सजीव प्राणीको मारनेके उतना ही विरुद्ध हूँ, जितना लड़ाईके। किन्तु मैं निरंतर ऐसे जीवोंके प्राण इस आशामें लिये चला जाता हूँ कि किसी दिन मुझमें यह योग्यता आ जायगी कि मुझे यह हत्या न करनी पड़े। यह सब होते रहनेपर भी अहिंसाका हिमायती होनेका मेरा दावा सही होनेके लिए यह परमावश्यक है कि मैं इसके लिए सचमुचमें जी-जानसे और अविराम प्रयत्न करता रहूँ। मोक्ष अथवा सशरीरी अस्तित्वकी आवश्यकतासे मुक्तिकी कल्पनाका आधार है संपूर्णताको पहुँचे हुए पूर्ण अहिंसक स्त्री पुरुषोंकी आवश्यकता। सम्पत्ति-मात्रके कारण कुछ न कुछ हिंसा करनी ही पड़ती है। शरीर रूपी संपत्तिकी रक्षाके लिए भी चाहे जितनी थोड़ी, किन्तु हिंसा तो करनी ही पड़ती है। बात यह है कि कर्त्तव्योंके धर्म-संकटमेंसे सच्चा मार्ग ढूंढ़ लेना सहज नहीं है।

अन्तमें, गीताकी उस शिक्षाके दो अर्थ हैं। एक तो यह है कि हमारे कामोंके मूलमें कोई स्वार्थी उद्देश्य नहीं होना चाहिये। स्वराज्य लेनेका उद्देश्य स्वार्थपूर्ण नहीं है। दूसरे, कर्मफलका मोह छोड़नेका अर्थ यह नहीं है कि उनसे अनभिज्ञ रहा जाय या उनकी उपेक्षाकी जाय या उनका विरोध किया जाय। मोह रहित होनेका अर्थ यह कभी नहीं है जिसमें अपेक्षित फल न आवे, इसलिए कर्म करना ही छोड़ दिया जाय। इसके उलटे मोह-राहित्य ही इस अचल श्रद्धाका प्रमाण है कि सोचा हुआ फल अपने समयपर जरूर होगा ही।

हिन्दी नवजीवन

१५ मार्च, १९२८

❀

"मैं तो शुरूसे यह मानता आया हूं कि अहिंसा ही धर्म है, वही जिंदगीका एक रास्ता है।"

—गांधीजी

अहिंसा किसे कहें ?

कई हफ्तोंसे गुजरात विद्यापीठमें हर शनिवारको विद्यार्थियोंको एक घण्टा देकर मैं बहुत वर्षोंके चढ़े ऋणके ब्याजका कुछ हिस्सा भरता हूं। उसमें पहला कार्यक्रम था अध्यापकों या विद्यार्थियोंके कुछ प्रश्न पूछनेका। उन प्रश्नोंका पूरा उत्तर देनेका समय नहीं निकाल सका, तब-तक तो मुझसे कोई पुस्तक पढ़ानेको कहा गया और पिछले कई हफ्तोंसे 'हिन्द स्वराज' का पढ़ना जारी है। मुझसे पूछे गये कई प्रश्न महत्वपूर्ण हैं और इसलिए मैंने उन्हें लिख लिया है। उनका उत्तर 'नवजीवन' में देनेका इरादा है। ये प्रश्न ऐसे हैं कि विद्यार्थियोंके अलावा दूसरोंके लिए भी उपयोगी हैं। उनमेंसे एक प्रश्न यह रहा—

"अहिंसाकी चर्चा शुरू हुई नहीं कि कितने लोग बाघ, भेड़िया, साँप, बिच्छू, मच्छर, खटमल, जूं, कुत्ता आदिको मारने, न मारने अथवा आलू-बैंगन आदिको खाने न खानेको ही बात छेड़ते हैं।"

"नहीं तो फौज रखी जा सकती है कि नहीं, सरकारके विरुद्ध सशस्त्र बलवा किया जा सकता है या नहीं—आदि शास्त्रार्थमें उतरते हैं। यह तो कोई विचारता ही नहीं, सोचता ही नहीं कि शिक्षामें अहिंसाके कारण कैसी दृष्टि पैदा करनी चाहिये। इस सम्बन्धमें कुछ विस्तारपूर्वक कहिये।"

यह प्रश्न नया नहीं है। मैंने इसकी चर्चा 'नवजीवन' में इस रूपमें नहीं तो दूसरे ही रूपमें अनेक बार की है। किन्तु मैं देखता हूं कि अबतक यह सवाल हल नहीं हुआ है। इसे हल करना मेरी शक्तिके बाहरकी बात है। उसके हलमें यत्किंचित् हिस्सा दे सकूँ तो उतनेसे ही मैं अपनेको कृतार्थ मानूँगा।

प्रश्नका पहला भाग हमारी संकुचित दृष्टिका सूचक है। जान पड़ता है कि इस फेरमें पड़कर कि मनुष्येतर प्राणियोंको मारना चाहिये या नहीं, हम अपने सामने पड़े हुए रोजके धर्मको भूल जाते हुएसे लगते हैं। सर्पादिको मारनेके प्रसंग सबको नहीं पड़ते हैं। उन्हें न मारने योग्य दया या हिम्मत हमने नहीं पैदा का है। अपनेमें रहनेवाले क्रोधादि सर्पोंको हमने दयासे, प्रेमसे नहीं जीता है, तो भी हम सर्पादिकी हिंसाकी बात छेड़कर उभय-भ्रष्ट होते हैं। क्रोधादिको तो जीतते नहीं और सर्पादिको न मारनेकी शक्तिसे वंचित रह कर आत्मवंचना करते हैं। अहिंसा-धर्मका पालन करनेकी इच्छा रखनेवालोंको साँप आदिको

भूल जानेकी जरूरत है। उन्हें मारनेसे हालमें न छूट सकें तो इसका दुःख न मानते हुए, सार्वभौम प्रेम पैदा करनेकी पहली सीढ़ीके रूपमें मनुष्योंके क्रोध द्वेषादिको सहन कर उन्हें जीतनेका प्रयत्न करें।

आलू और बैंगन जिसे न खाने हों, वह न खाय। मगर यह बात कहते हुए भी हम लज्जित हों कि उसे न खानेमें महापुण्य है या उसमें अहिंसाका पालन है। अहिंसा खाद्याखाद्यके विषयसे परे है। संयमकी आवश्यकता सदा है। खाद्यपदार्थोंमें जितना त्याग करना हो उतना सभी कोई करें। वह त्याग भला है, आवश्यक है, मगर उसमें अहिंसा तो नाममात्रकी ही है। पर-पीड़ा देखकर दयासे पीड़ित होनेवाला, रागद्वेषादिसे दूर, नित्य कन्द-मूलादि खानेवाला आदमी अहिंसाका मूर्तिरूप और वंदनीय है। परपीड़ाके सम्बन्धमें उदासीन, स्वार्थका वशवर्ती, दूसरेको पीड़ा देनेवाला, रागद्वेषादिसे भरा हुआ कंद-मूलादिका हमेशेके लिए त्याग करनेवाला मनुष्य तुच्छ प्राणी है, अहिंसा-देवी उससे भागती ही फिरती है।

राष्ट्रमें फौजका स्थान हो सकता है या नहीं, सरकारके विरुद्ध शरीरबल लगाया जा सकता है या नहीं—ये अवश्य महाप्रश्न हैं और किसी दिन हमें इन्हें हल करना ही होगा। कहा जा सकता है कि महासभाने अपने कामके लिए उसके एक अंगको हल किया है। तो भी यह प्रश्न जनसाधारणके लिए आवश्यक नहीं है। इसलिए शिक्षाके प्रेमी और विद्यार्थीके लिए अहिंसाकी जो दृष्टि है, वह मेरी रायमें ऊपरके दोनों प्रश्नोंसे भिन्न है अथवा परे है। शिक्षामें जो दृष्टि पैदा करनी है वह परस्परके नित्य सम्बन्धकी है। जहां वातावरण अहिंसारूपी प्राणवायुके जरिये स्वच्छ और सुगंधित हो चुका है, वहांपर विद्यार्थी और विद्यार्थिनियाँ सगे भाई-बहनके समान विचरती होंगी, वहाँ विद्यार्थियों और अध्यापकोंके बीच पिता-पुत्रका सम्बन्ध होगा, एक दूसरेके प्रति आदर होगा। ऐसी स्वच्छ वायु ही अहिंसाका नित्य, सतत पदार्थ-पाठ है। ऐसे अहिंसामय वातावरणमें पले हुए विद्यार्थी सबके प्रति उदार होंगे, वे सहज ही समाजसेवाके लिए लायक होंगे। उनके लिए सामाजिक बुराइयों, दोषोंका अलग प्रश्न नहीं होगा। अहिंसारूपी अग्निमें वह भस्म हो गया होगा। अहिंसाके वातावरणमें पला हुआ विद्यार्थी क्या बाल-विवाह करेगा? अथवा कन्याके मा बापको दंड देगा? अथवा विवाह करनेके बाद अपनी पत्नीको दासी गिनेगा? अथवा उसे अपने विषयका भाजन मानेगा? और अपनेको अहिंसक मनवाता फिरेगा? अथवा ऐसे वातावरणमें शिक्षित युवक सहधर्मी या परधर्मीके साथ लड़ाई लड़ेगा?

अहिंसा प्रचंड शस्त्र है। उसमें परम पुरुषार्थ है। वह भीरुसे दूर दूर

भागती है। वह वीर पुरुषकी शोभा है। उसका सर्वस्व है। यह शुष्क, नीरस, जड़ पदार्थ नहीं है। यह चेतनमय है। यह आत्माका विशेष गुण है। इसीलिए इसका वर्णन परम-धर्मके रूपमें किया गया है। इसलिए शिक्षामें अहिंसाकी दृष्टि है, शिक्षणके प्रत्येक अंगमें, नित्य नया लगता हुआ, उछलता, उभरता, शुद्धतम प्रेम। इस प्रेमके सामने बैरभाव टिक ही नहीं सकता। अहिंसा-रूपी प्रेम सूर्य है, बैर-भाव घोर अन्धकार है। जो सूर्य टोकरेके नीचे छिपाया जा सके तो शिक्षामें रही हुई अहिंसा-दृष्टि भी छिपायी जा सकती है। ऐसी अहिंसा अगर विद्यापीठमें हमें प्रकट होगी तो फिर वहां अहिंसाकी परिभाषा किसीके लिए पूछनी आवश्यक ही नहीं होगी।

हिन्दी नवजीवन

१३ सितम्बर, १९२८

❀

"अहिंसा प्रचंड शस्त्र है। उसमें परम पुरुषार्थ है। वह भीरुसे दूर भागती है। वह वीर पुरुषकी शोभा है, उसका सर्वस्व है। यह शुष्क, नीरस, जड़ पदार्थ नहीं है। यह चेतन है। यह आत्माका विशेष गुण है।" —गांधीजी

युद्धके प्रति मेरे भाव

[गांधीजीके दक्षिण अफ्रीकामें बोअर-युद्धके समय तथा यूरोपियन महासमरमें सरकारको सहायता देनेके संबंधमें एक यूरोपियन मित्र रेवरेंड बी. डे. लिग्टने किसी फ्रांसीसी पत्रमें एक लेख लिखकर कुछ सवाल पूछे हैं। गाँधीजी उनका जवाब यों देते हैं—]

सिर्फ अहिंसाकी कसौटीपर कसनेसे मेरे आचरणका बचाव नहीं किया जा सकता। अहिंसाकी दृष्टिसे, शस्त्र धारणकर मारने-वालोंमें और निःशस्त्र रहकर घायलोंकी सेवा करनेवालोंमें मैं कोई फर्क नहीं देखता हूं। दोनों ही लड़ाईमें शामिल होते हैं और उसीका काम करते हैं। दोनों ही लड़ाईके दोषके दोषी हैं। मगर इतने वर्षोंतक आत्म-निरीक्षण करनेके बाद भी मुझे यही लगता है कि मैं जिस परिस्थितिमें था, मेरे लिए वही करना लाजिम था जो मैंने बोअर-युद्ध, यूरोपियन-महासमर, और जूलू-बलवेके समय भी सन् १९०६ में किया था।

जीवनका संचालन अनेक शक्तियों द्वारा होता है। अगर कोई ऐसा सर्व-सामान्य नियम होता कि उसका प्रयोग करते ही हर प्रसंगमें कर्त्तव्याकर्त्तव्यका निर्णय करनेके लिए क्षणमात्र भी सोचना नहीं पड़ता तो क्या ही सरलता होती! मगर मेरे जानते तो ऐसा एक भी अवसर नहीं है।

मैं स्वयं युद्धका पक्का विरोधी हूं इसलिए मैंने अवसर मिलनेपर भी कभी मारक अस्त्र-शस्त्रोंका प्रयोग करना नहीं सीखा है। शायद इसीलिए मैं प्रत्यक्ष नर-नाशसे बच सका हूं। मगर जब तक मैं पशुबलपर स्थापित सरकारके अधीन रहता था और उसकी बनायी सुविधाओंका स्वेच्छासे उपयोग करता था तबतक तो अगर वह कोई लड़ाई लड़े तो उसमें उसकी मदद करना मेरे लिए लाजिमी था। मगर जब उससे असहयोग कर लूँ, और जहांतक अपना वश चल सके, उसकी दी सुविधाओंका त्याग करने लगूँ तब उसकी मदद करना मेरे लिए लाजिमी नहीं रहता है।

एक उदाहरण लीजिये। मैं एक संस्थाका सभ्य हूँ। उस संस्थाके कुछ खेती है। यह आशंका है कि उस खेतीको बन्दर नुकसान पहुंचावेंगे। मैं मानता हूं कि सभी प्राणियोंमें आत्मा है, और इसलिए बन्दरोंको मारना हिंसा समझता हूँ। परन्तु फसलको बचानेके लिए बन्दरोंपर हमला करनेको कहने या करनेसे मैं नहीं झिझकता हूँ। मैं इस बुराईसे बचना चाहूँगा। उस संस्थाको छोड़कर या तोड़कर, मैं इस बुराईसे बच सकता हूँ। मगर यह मैं नहीं करता क्योंकि इसकी मुझे आशा नहीं है कि वहांसे हटनेपर मुझे कोई ऐसा समाज मिल सकेगा जहां खेती न होती

हो, इसलिए किसी किस्मके प्राणियोंका कभी नाश न होता। इसलिए यद्यपि यह करते हुए मुझे दर्द होता है मगर इस आशामें कि किसी दिन इस बुराईसे बचनेका रास्ता मुझे मिल जायगा, मैं दीनताके साथ, डरते हुए और काँपते हुए दिलसे बंदरों पर चोट पहुँचानेमें शामिल होता हूँ।

इसी तरह मैं तीनों युद्धोंमें भी शामिल हुआ था। जिस समाजका मैं एक सभ्य हूँ उससे अपना संबंध मैं तोड़ नहीं सकता था। तोड़ना पागलपन होता। इन तीनों अवसरोंपर ब्रिटिश सरकारके साथ असहयोग करनेका मेरा कोई विचार न था। अब उस सरकारके संबंधमें मेरी स्थिति बिलकुल ही बदल गयी है और इसलिए उसके युद्धोंमें मैं भरसक अपनी खुशीसे शामिल नहीं होऊँगा तथा अगर शस्त्र धारण करने या और किसी तरहसे उसमें शामिल होनेको बाध्य किया जाऊँ तो मैं भले ही कैद किया जाऊँ या फाँसी चढ़ा दिया जाऊँ, मगर शामिल तो नहीं ही हूँगा।

मगर इससे प्रश्न अभी हल नहीं होता है। अगर यहांपर राष्ट्रीय सरकार होवे तो मैं भले ही उसके भी किसी युद्धमें शामिल न होऊँ, तोभी मैं ऐसे अवसरकी कल्पना कर सकता हूँ जब सैनिक-शिक्षण पानेकी इच्छा रखनेवालेको वह शिक्षण देनेके पक्षमें मत देना मेरा कर्त्तव्य होवे। क्योंकि मैं जानता हूँ कि अहिंसामें जिस हदतक मेरा विश्वास है, उस हदतक इस राष्ट्रके सभी आदमी अहिंसामें विश्वास नहीं करते हैं। किसी समाज या आदमीको बलात्कार अहिंसक नहीं बनाया जा सकता है।

अहिंसाका रहस्य अत्यन्त गूढ़ है। कभी-कभी तो अहिंसाकी दृष्टिसे किसी आदमीके कामकी परीक्षा करना कठिन हो जाता है। उसी तरह कभी-कभी उसके काम हिंसा जैसे भी लग सकते हैं जब वे अहिंसाके व्यापकसे व्यापक अर्थसे अहिंसक ही हों और पीछे चलकर अहिंसक ही साबित भी होवें। इसलिए उपर्युक्त अवसरोंपर अपने व्यवहारके बारेमें मैं सिर्फ इतना ही दावा कर सकता हूँ कि उनके मूलमें अहिंसाकी ही दृष्टि थी। उनके मूलमें कोई बुरा राष्ट्रीय या दूसरा स्वार्थ नहीं था। मैं यह नहीं मानता कि किसी एक हितका बलिदान चढ़ाकर राष्ट्रीय या किसी दूसरे हितकी रक्षा करनी चाहिये।

मुझे अपनी यह दलील अब और आगे नहीं बढ़ानी चाहिए। आखिर अपने विचार पूरे-पूरे प्रकट करनेके लिए भाषा एक मामूली त्रुटिपूर्ण साधन भर है। मेरे लिए अहिंसा कुछ महज दार्शनिक सिद्धान्त भर ही नहीं है। यह तो मेरे जीवनका नियम है, इसके बिना मैं जी ही नहीं सकता। मैं जानता हूं कि मैं गिरता हूं। बहुत बार चेतनावस्थामें। उससे भी अधिक बार अचेतन अवस्थामें। यह प्रश्न बुद्धिका नहीं बल्कि हृदयका है। सन्मार्ग तो परमात्माकी सतत प्रार्थनासे,

अतिशय नम्रतासे, आत्म-विलोपनसे, आत्म-त्याग करनेको हमेशे तैयार बैठे रहनेसे मिलता है। इसकी साधनाके लिए ऊँचेसे ऊँचे प्रकारकी निर्भयता और साहसकी आवश्यकता है। मैं अपनी निर्बलताओंको जानता हूं और मुझे उनका दुःख है।

मगर मेरे मनमें कोई दुबिधा नहीं है। मुझे अपने कर्त्तव्यका स्पष्ट भान है। अहिंसा और सत्यको छोड़कर, हमारे उद्धारका कोई दूसरा रास्ता नहीं है। मैं जानता हूं कि युद्ध एक तरहकी बुराई है और शुद्ध बुराई है। मैं यह भी जानता हूँ कि एक दिन इसे बंद होना ही है। मेरा पक्का विश्वास है कि खून-खराबी या धोखेबाजीसे ली गयी स्वाधीनता, स्वाधीनता ही नहीं है। इसकी अपेक्षा कि मेरे किसी कामसे अहिंसाका सिद्धान्त ही गलत समझा जाय या किसी भी रूपमें मैं असत्य और हिंसाका हामी समझा जाऊँ, यही हजार गुणा अच्छा है कि मेरे विरुद्ध लगाये गये सभी इल्जाम लाबचाव, असमर्थनीय समझे जायँ। संसार हिंसापर नहीं टिका है, असत्यपर नहीं टिका है किन्तु उसका आधार अहिंसा है, सत्य है।

हिन्दी नवजीवन
२० सितम्बर, १६२८

❀

अगर अहिंसा या प्रेम हमारा जीवन धर्म न होता, तो इस मर्त्यलोकमें हमारा जीवन कठिन हो जाता। जीवन तो मृत्युपर प्रत्यक्ष और सनातन विजयरूप है।"

—गांधीजी

'पावककी ज्वाला'—१ (अहिंसक प्राण-हरण)

गो-सेवा-संघकी ओरसे सत्याग्रहाश्रम आदर्श दुग्धालय, चर्मालय चलानेके प्रयोग कर रहा है। उसके संबंधमें क्षण-क्षण धर्मसंकट आ खड़े होते हैं। अगर आश्रमका आदर्श केवल अहिंसाके ही मार्गसे सत्यकी शोध करनेका न होता तो ऐसे संकट उत्पन्न नहीं होते। कितने दिन हुए, आश्रमका एक अपंग बना हुआ बछड़ा, कष्टसे छटपटा रहा था। उसकी दवा की, पशु-डाक्टरकी सलाह ली। उन्होंने उसके जीनेकी आशा छोड़ दी। हम भी देख सके कि वह कष्टसे छटपटाता है। करवट बदलवानेमें भी उसे कष्ट होता था।

मुझे लगा कि ऐसी स्थितिमें इस बछड़ेका प्राण लेना ही धर्म है, अहिंसा है। मैंने साथियोंके साथ मस्लहतकी। उनमेंसे कितनोंने मेरी रायका समर्थन किया। फिर सारे आश्रमके लोगोंसे बातें की। उनमेंसे एक भाईने खूब दलीलसे सख्त विरोध किया, उसकी सेवा करनेका भार स्वयं अपने सिर लिया, और जब-तक उसका प्राण-हरण किया गया, तबतक उसकी सेवा करनेका भार उठाया और उन्होंने तथा कई बहिनोंने उसपरसे मक्खियाँ उड़ानेका काम किया।

इन भाईकी दलील यह थी कि जिसे प्राण देनेकी शक्ति न हो, उसे प्राण लेना भी नहीं चाहिये। मुझे यह दलील इस स्थानपर अ-स्थानसी लगी। जहाँ स्वार्थ-भावनासे कोई दूसरेका प्राणहरण करे वहाँ ऐसी दलीलको स्थान हो सकता है। अंतमें दीन भावसे किन्तु दृढ़तापूर्वक पासमें रहकर मैंने डाक्टरके द्वारा जहरकी पिचकारी डलवाकर बछड़ेका प्राणहरण किया। प्राण निकलनेमें दो मिनटसे कम समय लगा होगा।

मैं जानता था कि यह काम चालू लोकमतको पसन्द नहीं पड़ सकता। इसमें चालू लोकमत हिंसा ही देखेगा किन्तु धर्म लोकमतका विचार नहीं करता। मैंने तो यह सीखा है, और अनुभवके द्वारा अपने लिए सिद्ध किया है कि यही ठीक है कि जिसमें मैं धर्म देखता हूं, मुझे उसीका आचरण करना चाहिये, चाहे भले ही उसमें दूसरा कोई अधर्म देखे। वास्तविक रीतिसे मेरा माना हुआ धर्म अधर्म भी हो सकता है किन्तु कितनी बार अनजानपनेसे भूल किये विना भी धर्मका पता नहीं चलता है। अगर मैं लोकमतके वश होकर या किसी दूसरे भयके वश होकर जिसे धर्म मानूं, उसका आचरण न करूँ तो धर्माधर्मका निर्णय मैं किसी दिन नहीं कर सकूँगा और अंतमें धर्म-हीन हो जाऊँगा। ऐसे ही कारणोंसे प्रीतमने गाया है कि

'प्रेम-पंथ पावकनी ज्वाला भाळी पाछा भागे जोने'

अर्थात् 'प्रेम-पंथ आगकी लपट है। उसे देखकर ही लोग भागते हैं। अहिंसा-धर्मका पंथ प्रेम-पंथ है। इस पंथमें आदमीको बहुत बार अकेले ही विचार करना पड़ता है।

मैंने ये प्रश्न अपने मनमें विचारे और मित्रसे इनकी चर्चा की कि 'जैसी बात मैं बछड़ेके बारेमें करना चाहता हूं, वैसी अपने बारेमें चाहूँगा? मनुष्यके सम्बन्धमें ऐसा करनेको तैयार होऊंगा?' मुझे लगा कि दोनोंपर एक ही न्याय लागू होता है। मुझे यह स्पष्ट जान पड़ा कि यहाँ अगर 'यथा पिंडे तथा ब्रह्माण्डे' का नियम लागू न हो तो बछड़ा मारा जा सकता है। ऐसे दृष्टान्तोंकी कल्पनाकी जा सकती है जब मारनेमें ही अहिंसा हो और न मारनेमें हिंसा। मान लो कि मेरी लड़की कोई राय देने लायक न हो। उसपर कोई आक्रमण करने आ जाय। मेरे पास उसे जीतनेका कोई दूसरा मार्ग मिले ही नहीं तो मैं लड़कीका प्राण लूँ और आक्रमणकारीके तलवारके वश होऊँ तो उसमें मैं शुद्ध अहिंसा देखता हूं। बीमारीसे दुःखित प्रियजनोंको हम नहीं मारते हैं सो इसलिए कि उनकी सेवा करनेके साधन हमारे पास होते हैं और उन्हें समझ होती है। किन्तु सेवा शक्य न हो, जीनेकी आशा ही न हो, रोगी बेसुध हो और महादुःख भोगता हो तो उसके प्राणहरणमें मैं लेशमात्र भी दोष नहीं देखता।

जिस तरह रोगीके भलेके लिए उसके शरीरमें चीरफाड़ करनेमें डाक्टर हिंसा नहीं करता, बल्कि शुद्ध अहिंसाका ही पालन करता है, उसी तरह मारनेमें भी अहिंसाका पालन हो सकता है। यह दलील की गयी है कि चीरफाड़में तो रोगीके अच्छे होनेकी संभावना है, जब प्राण-हरणमें रोगी मरेगा ही। किन्तु विचार करनेपर जान पड़ेगा कि दोनोंमें साध्य वस्तु एक ही है। प्राण लेकर और चीरफाड़ करके, शरीरमें रहनेवाली आत्माको दुःखमुक्त करनेकी सामान्य धारणा है। शरीरमें चीरफाड़ करके सुख शरीरको नहीं किन्तु आत्माको पहुंचाना है। आत्मारहित शरीरमें दुःख भोगनेकी शक्ति ही नहीं है।

मृत्यु-दंडका जो डर आजकल समाजमें दिखलायी पड़ता है, वह अहिंसा-धर्मके प्रचारमें बहुत बड़ी बाधक वस्तु है। किसीको गाली देना, उसका बुरा चाहना, उसका ताड़न करना, उसे कष्ट पहुँचाना, सभी कुछ हिंसा है। जो मनुष्य अपने स्वार्थके लिए दूसरेको कष्ट पहुँचाता है, उसके नाक-कान काटता है, उसे भर पेट खानेको नहीं देता है और दूसरी तरहसे उसका अपमान करता है, वह मृत्युदंड देनेवालेकी अपेक्षा कहीं अधिक निर्दयता दिखलाता है। जिसने अमृतसरकी गलीमें लोगोंको चींटीके समान पेटके बल चलाया, उसने उन्हें अगर मार डाला होता तो कम घातकी गिना जाता। अगर कोई यह माने कि पेटके बल चलनेवाले आज भी जिन्दा हैं, इसलिए पेटके बल

रँगवाना मृत्युदंडसे हलकी सजा है तो मुझे यह कहनेमें जरा भी संकोच नहीं होता है कि वह आदमी अहिंसाको नहीं जानता है। ऐसे अनेक प्रसंग हैं, जब मनुष्यके लिए मृत्युका स्वागत ही करना अधिक उचित होता है। जो इस धर्मको नहीं समझते वे अहिंसाके मूल तत्वको नहीं जानते।

'हरिनो मारग छे शूरानो नहि कायरनुं काम जोने।'

अर्थात् 'धर्मका मार्ग शूरोंके लिए है, यहाँपर कायरोंका काम नहीं है।'

हमें ईश्वरके प्रति रोज यह प्रार्थना करनी चाहिये कि 'हे नाथ! असत्यका आचरण करके जीनेकी अपेक्षा, मुझे मौत ही देना।'

अहिंसा-धर्मका पालन करनेवाला अपने दुश्मनसे ऐसी प्रार्थना करेगा, 'हे दुश्मन! मेरा अपमान करने, मुझसे अमानुषी कर्म करानेके बदले तू मुझे मार ही डाल तो मैं तेरा गुण गाऊँ।'

ये दृष्टान्त दिखलानेका मतलब यह बतलाना है कि मृत्यु-दण्ड हमेशा हिंसा ही नहीं है। बछड़ेकी स्थितिमें पड़े हुए पशुका प्राण लेनेका मेल इन दृष्टान्तोंसे बैठेगा या नहीं यह भले ही जुदा विषय समझा जाय, इस विषयमें भले ही मत-भेद हो। यहाँ तो मुझे सिर्फ अहिंसाके विषयमें प्रचलित कितने ही भ्रम दिखलाने हैं।

केवल मरणमेंसे ही आदमीको या पशुको थोड़े समयके लिए बचा लेनेमें अहिंसा जरूर ही है—यह मान्यता वहम है और इससे आज देशमें घोर हिंसा होती हुई मैं देखता हूं। एक दुःखी, महापीड़ित पशुके प्राण लेनेसे जो आघात पहुंचा है, उसके साथ मैं जब असख्य प्रकारकी चलती हुई निर्दयताके सम्बन्धमें उदासीनताका मिलान करता हूँ तब यह प्रश्न सहज ही उत्पन्न होता है कि हम अहिंसा-धर्मी हैं या हम अहिंसाके नामपर जान-बूझकर या अनजाने अधर्मका आचरण करनेवाले हैं।

हमारे अविचार और हमारी भीरूताके कारण मैं तो पग-पगपर हिंसा होती हुई देख रहा हूं। हमारी पिंजरापोल और गोशालाएँ हिंसाका स्थान हो गई हैं। स्वार्थसे अंधे होकर हम रोज ही अपने पशुओंपर अत्याचार करते हैं, उन्हें कष्ट पहुंचाते हैं। उन्हे अगर जबान होती वे अवश्य कहेंगे, 'हमें इस तरह जो कष्ट देते हो, उसके बदले हमें मार ही डालो तो हम तुम्हारा यश गावें।' उनकी आँखोंमें ऐसी प्रार्थना तो मैंने अनेक बार देखी है।

इसपरसे यह कहा जा सका है कि स्वार्थके वश होकर या क्रोधमें किसी भी जीवको जो कष्ट दिया जाय या उसके अनिष्ट या प्राण-हरणकी इच्छा भी की

जाय तो वह हिंसा है। निःस्वार्थ बुद्धिसे, शान्त चित्तसे, किसी भी जीवकी भौतिक या आध्यात्मिक भलाईके लिए उसे जो दुःख दिया जाय या उसका प्राणहरण किया जाय वह शुद्ध अहिंसा हो सकती है। प्रत्येक दृष्टान्तका विचार करके ही यह कहा जा सकता है कि ऐसे दुःख या प्राण-हरण कब अहिंसक कहे जायँगे। अंतमें अहिंसाकी परीक्षाका आधार भावनापर रहता है।

हिन्दी नवजीवन
४ अक्टूबर, १९२८

❀

"अहिंसा कोई ऐसा गुण तो है नहीं जो गढ़ा जा सकता हो। यह तो एक अंदरसे बढ़नेवाली चीज है, जिसका आधार आत्यन्तिक व्यक्तिगत प्रयत्न है।"

—गांधीजी

पावककी ज्वाला—२ (हिंसक प्राण-हरण)

प्रस्तुत दृष्टान्तसे उलटा एक दूसरा संकट आश्रमपर है। पहलेका निवारण हो सका है। दूसरेका अभी नहीं मिला है। आश्रममें बंदरोंका उपद्रव दिनोंदिन बढ़ता ही जाता है। वे फल, झाड़ और शाक-भाजीका नाश कर रहे हैं। इस उपद्रवसे बचनेका उपाय मैं खोज रहा हूँ। जो इस सम्बन्धमें रास्ता बतला सकते हैं, वैसे लोगोंकी सलाह ले रहा हूँ। मुझे अबतक कोई निर्दोष उपाय नहीं मिला है। किन्तु अनेक आदमियोंके साथ चर्चा करता हूँ और इसलिए शहरमें अनेक तरहकी अफवाह चल रही है और मेरे पास कई तीखे पत्र आये हैं। एक पत्र लेखक मानते हैं कि आश्रममें तीरसे बंदरोंको घायल किया जाता है और कितने बंदर मर भी गये हैं। यह खबर झूठी है। बंदरोंको हाँक निकालनेका प्रयत्न अवश्य चलता है। तीर भी काममें लाये गये हैं। किन्तु न कोई बंदर घायल किया गया है, और न कोई मरा है।

घायल करनेका काम खुद मेरे लिए असह्य है। अनिवार्य हो पड़े तो उन्हें मार डालनेकी चर्चा मैं कर रहा हूं। किन्तु यह प्रश्न बछड़ेके प्रश्नके समान सहज नहीं है।

बंदरको मार भगानेमें मैं शुद्ध हिंसा ही देखता हूं। यह भी स्पष्ट है कि उन्हें अगर मारना पड़े तो उसमें अधिक हिंसा होगी। यह हिंसा तीनों कालमें हिंसा ही गिनी जायगी। उसमें बंदरके हितका विचार नहीं है, किन्तु आश्रमके ही हितका विचार है।

देहधारी जीवमात्र हिंसासे ही जीते हैं। उसके परम-धर्मका दर्शक शब्द नकार वाचक निकला। जगत् यानी देहमात्र हिंसामय है। और इससे अहिंसा-प्राप्तिके लिए देहके आत्यंतिक मोक्षकी तीव्र इच्छा पैदा हुई।

हिंसाके बिना कोई देहधारी प्राणी जी ही नहीं सकता, जीनेकी इच्छा छूटती ही नहीं है, अनशन करके छूटनेकी इच्छा मनको नहीं है, देह अनशन करे और मन अनशन न करे तो यह अनशन दंभमें खपेगा, और आत्माको अधिक बंधनमें डालेगा। ऐसी दयावनी स्थितिमें रहकर जीनेकी इच्छा रखता हुआ जीव भला क्या करे? कैसी और कितनी हिंसा अनिवार्य गिने? समाजने कितनी ही हिंसाओंको अनिवार्य गिन कर व्यक्तिको विचार करनेके भारसे मुक्त किया। तोभी प्रत्येक जिज्ञासुके लिए अपना क्षेत्र जानकर उसे नित्य छोटा करनेका प्रयत्न तो करना बाकी रहा ही है।

इस दृष्टिसे सर्वव्यापी खेतीके धंधेमें रही हुई हिंसाकी मर्यादाका निश्चय अहिंसा-धर्मका पालन करनेकी इच्छा रखनेवाले किसानको करना रहा है। मैं अपनेको किसान मानता हूं। मेरे सामने कोई सीधी लीक नहीं पिटी हुई है। प्रत्येक किसान बिना विचारे किसी न किसी तरहसे अपना गुजर चला ही लेता है। क्योंकि शिष्ट-वर्गने उसकी अवगणना की है। उनके जीवनमें भाग नहीं लिया है, दिलचस्पी नहीं ली है और इसलिए वे अपने जीवनमें उत्तरोत्तर उन्नति नहीं कर सके हैं।

इसलिए मेरे जैसे किसानको तो आपना मार्ग ढूंढ़कर, दूसरे किसान भाइयोंके, लिए हो सके तो, मार्गप्रदर्शक बनना रहा।

इस तरह खेतीपर लागू होनेवाले अनेक प्रश्न, जो नित्य पैदा होते हैं, उनमेंसे बंदरोंका अटपटा प्रश्न भी एक है।

क़िन्तु उसे मृत्युदण्ड देनेमें हिंसा तो है ही, इसलिए यह अन्तिम कारवाई करनेके पहले जितने लोगोंकी सलाह ली जा सके, उतनोंकी मैं लेना चाहता हूं। और 'नवजीवन' के पाठकोंमेंसे अगर कोई अनुभवी सज्जन आश्रमको रास्ता बतला सकेंगे तो वे उपकार करेंगे।

मैंने सुना है कि गुजरातके किसान ऐसे उपाय रखते हैं कि उन्हें देखते ही डरकर बंदर भाग जाते हैं और यों किसान मानते हैं कि हम अन्तिम हिंसासे बचें। यह सम्भव है किन्तु उसके बाद तो मरणदण्ड है ही। क्योंकि मैं जानता हूं कि बंदर ऐसे विचक्षण होते हैं कि जब वे समझ लेते हैं कि उन्हें कोई मारनेवाला नहीं है, तब वे गोलीकी बाढ़से भी नहीं डरते और उलटे किकियारी करते हैं। इसलिए कोई सलाहकार यों न माने कि इस उपद्रवसे खेतीको बचानेका एक भी रास्ता आश्रमने न जाना, न विचारा है। जितना जाना है, उन सबमें हिंसा तो है ही। जो बिना हिंसाके इस उपद्रवसे खेतीको न बचाया जा सके तो यह विचार करना रहा कि कमसे कम कितनी हिंसासे बचाया जा सकता है। इसमें मैं अनुभवीकी मदद चाहता हूं।

हिन्दी नवजीवन
४ अक्टूबर, १९२८

❋

अहिंसाकी समस्याएँ

बछड़े और बंदरोंके विषयमें लेख लिखकर मैंने टीकाकारोंका रोष खूब बटोर लिया है। कोई गालियाँ देकर अपनी अहिंसाकी परीक्षा करा रहा है, कोई सख्त टीका करके मेरी अहिंसाकी परीक्षा ले रहा है, कोई विवेकपूर्वक अपनी कठिनाइयाँ प्रकट कर रहा है। सभी पत्रलेखकोंको जबाब देने लायक समय मेरे पास नहीं है। ठेठ गालियोंवाले लेखोंसे मेरी सहन-शक्तिका माप निकालनेके सिवाय और कुछ लाभ होनेवाला नहीं है। दूसरे दो प्रकारके पत्रोंमेंसे कितनी एक दलीलें उतार कर उनपर विचार करना चाहता हूँ।

किन्तु उन दलीलोंमें उतरनेके पहले लिखनेवालोंसे विनती कर लूँ। अगर वे मर्यादाका पालन करेंगे तो मेरी जो भूल होगी, मुझे वह बतलावेंगे और अपनी जो भूलें होंगी उन्हें देखेंगे, खूब तटस्थ रहनेका प्रयत्न करते हुए रहनेपर भी।

१. अविवेकसे भरे हुए पत्रोंमेंसे मैं बहुत नहीं सीख सकता।

२. पेन्सिलसे लिखे हुए खराब अक्षरवाले लेखोंको पढ़ना अशक्य है।

३. लंबे निबंध मेरे पास भेजना व्यर्थ है।

संक्षिप्त, सुन्दर अक्षरमें स्याहीसें लिखे गये पत्रोंको पढ़नेके लिए मैं तैयार हूँ, उत्सुक हूँ। मैं एक नम्र शोधक हूँ। 'नवजीवन' चलाकर सिर्फ सिखलानेका ही काम नहीं करता हूँ, किन्तु सीखनेका भी प्रयास करता हूँ।

लेखकोंकी मुख्य दलीलें और शिक्षाएं ये हैं—

(१) अब आप अहिंसाके क्षेत्रमेंसे त्यागपत्र दे दीजिये।

(२) आप क्या अहिंसा-संबंधी अपने विचार पश्चिममेंसे नहीं लाये हैं?

(३) आपके विचार अगर सच्चे भी हों, तो भी जहां अनर्थ होनेका भय हो, वहां उन्हें आपको प्रकट नहीं करना चाहिये।

(४) आप कर्मवादको मानते हैं तो बछड़ेके प्राण लेकर कर्मके नियमका विरोध करना व्यर्थ है।

(५) आपको यह मान लेनेका क्या अधिकार था कि बछड़ा अब चंगा होगा ही नहीं, नहीं ही जियेगा? आप क्या नहीं जानते हैं कि जिनके बारेमें डाक्टर-वैद्योंने कहा है कि अब मिनटोंके मिहमान हैं, वे भी अनेकों बार जी गये हैं।

अहिंसाके, या किसी दूसरे क्षेत्रसे त्याग-पत्र देने या न देनेकी बात तो खुद मुझीको विचारनी रही है। आदमी अधिकारका त्यागपत्र दे सकता है, कर्त्तव्यसे जो त्यागपत्र देंगे वह कर्त्तव्य-भ्रष्ट हुए गिने जायंगे। सच्ची कहने और करने वालेके भाग्यमें बहुत बार लोकनिंदा तो होती ही है। मैंने सीखा है कि अपने आपको जो सच्चा जान पड़े, वह अगर प्रस्तुत हो तो उसे प्रकट करना सत्याग्रहीका धर्म है। जब तक मुझे ऐसा लगे कि अहिंसाके विषयमें मैंने जो कल्पना की है, वह सही है, तब तक मैं उसे जाहिर न करूँ तो कर्त्तव्यभ्रष्ट होऊँगा।

बछड़ेके बारेमें मेरे विचार अगर पश्चिमकी शिक्षाके आभारी हों तो मेरे लिए शर्मकी कोई बात नहीं है। पश्चिमसे ज्ञान लेना ही नहीं चाहिये या वहां जो कुछ होता है सो सब बुरा है, मेरी ऐसी मान्यता नहीं है। पश्चिमसे मैंने बहुत कुछ सीखा है। अहिंसाका बहुत कुछ स्वरूप वहाँसे मैंने सीखा हो तो इसमें आश्चर्य नहीं होना चाहिये। मेरे विचार बाहरके किस स्पर्शसे आये हैं सो मैं नहीं जानता। हाँ, यह जानता हूँ कि अब तो वे मेरे अन्तरात्मामें बस गये हैं।

बात कुछ ऐसी नहीं है कि अपनी रायको सच्ची माननेसे ही मैं उसे प्रकट करता हूँ। किन्तु बछड़ेके बारेमें मेरे विचारोंके मूलमें अहिंसा रही है, इसलिए वे कल्याणकारी हैं, यह मानकर मैंने उन्हें प्रकट किया है। बंदरोंके बारेमें मैं अपना धर्म नहीं जानता। इस कारण ज्ञान प्राप्त करनेके लिए मैंने चर्चा की है। इस बारेमें मुझे सहायक पत्र मिले हैं। बंदरोंके बारेमें मैं इतना कह दूं कि जब मेरा कुछ भी नहीं चलेगा, तभी प्राण-हरण तक मैं जाऊंगा। मैं जानता हूँ कि मेरा धर्म उसमेंसे बच जाना है। उसमेंसे बचनेके लिए ही यह चर्चा है। कर्मको मैं अवश्य मानता हूँ। किन्तु पुरुषार्थको भी मानता हूँ। कर्मका सर्वथा क्षय करके मोक्ष प्राप्त करना परम पुरुषार्थ है। बीमारकी सेवामें भी कर्मकी गति रोकनेके मूढ़ प्रयत्नकी गंध आवेगी मगर तो भी हम मानते हैं कि जो रोगीकी सेवा नहीं करता, उसे दवा नहीं देता वह घोर हिंसा करता है। दैव और पुरुषार्थके द्वंद्वयुद्धमें शामिल न होते हुए जो कुछ सेवा कार्य हो सके, वह करलेनेका धर्म मैं जानता हूँ, और पालनेका प्रयत्न करता हूँ।

मुझे ऐसा निश्चयात्मक ज्ञान तो नहीं था कि बछड़ा अब चंगा हो ही नहीं सकता। जिनसे डाक्टरोंने हाथ धो डाले थे, ऐसे रोगियोंको चंगा होते हुए मैंने देखा है। महा-अज्ञानमें पड़ा हुआ मनुष्य जहां तक भविष्यके बारेमें अनुमान कर सके, वहांतक करे और वर्ताव करे। असंख्य कर्मोंके संबंधमें हम ऐसा ही करते हैं। किन्तु कौन जाने, हिन्दू संसारको क्या बात हो गयी है कि वह मौतके नामसे ही भड़क उठता है। गोकि मौतका कमसे कम डर हिन्दूको ही होना चाहिये, क्योंकि हिन्दू धर्ममें बालकपनसे ही आत्माके अमरत्वका और शरीरकी क्षण भंगुरताकी शिक्षा

दी जाती है। बछड़ेको मारनेमें भूल हुई भी होगी, तो भी मैं जानता हूँ कि उसकी आत्माकी तो कुशल ही है। उसके कष्टमें डूबे हुए शरीरको दो घड़ी पहले नाश करनेमें शामिल होनेमें अगर भूल रही होगी तो उस भूलकी सजा भोगनेकी भी मुझे तैयारी रखनी चाहिये। किन्तु बछड़ेको जो दो घड़ी कम समय तक श्वास लेने को मिला, मुझे इसका पारावार दुःख नहीं लगता है। जो बात मैं बछड़ेके बारेमें कहता हूँ, वही प्रियजनके बारेमें भी कह सकता हूँ। कौन जानता है कि अपने लालन पालनसे, अपने मोहसे, अपने गलत इलाजसे हम अपने कितने सगोंके प्राण समयसे पहले जाने देनेमें मददगार हुए होंगे? प्राणहरणके बाद अश्रुपात करके हम दया-धर्मका पंथ छोड़ देते हैं और अहिंसाको लजाते हैं। मुझे जो पत्र मिले हैं, वे मेरी वह राय दृढ़ करते हैं। मरणका भय अहिंसाके पहचाननेमें महाविघ्नरूप है।

हिन्दी नवजीवन

११ अक्टूबर, १९२८

❀

"दूसरेके लिए प्राणार्पण करना भी प्रेम की पराकाष्ठा है और उसका शास्त्रीय नाम अहिंसा है। अर्थात् यों कह सकते हैं कि अहिंसा ही सेवा है। संसारमें हम देखते हैं कि जीवन और मृत्युका युद्ध होता रहता है परंतु दोनोंका परिणाम मृत्यु नहीं जीवन है।"

—गांधीजी

एक समस्या

बछड़ा प्रकरण झट पूरा होनेवाला नहीं है। अहिंसाके नामपर हिंसा करनेवाले भाई अभी डाकखानेको पैसे दे रहे हैं। कितने मानते हैं कि मेरा साठवां वर्ष पैठा और इसलिए मेरी बुद्धिका नाश हुआ है। सासून अस्पतालमें मेरा रोग असाध्य मानकर मेरे डाक्टरोंने या मित्रोंने जहरकी पिचकारी मुझे दी होती तो गरीब बछड़ा जहरकी पिचकारीसे बच जाता और बंदरके ऊपर जो मैं मृत्युदंडकी तलवार लटकाये हुए हूं, उसका भय हनुमानके वंशजोंको न रहता। इनके अलावा दूसरे भी ऐसे ही अहिंसक उद्‌गारोंवाले पत्र आया करते हैं। और जैसे-जैसे ये पत्र आते हैं, मुझे लगा करता है कि इस विषयकी चर्चा जो 'नवजीवन'में की सो ठीक ही की। लेखक समझते नहीं कि अहिंसा-धर्मको जानने और माननेका दावा करते हुए भी वे ऐसे पत्र लिखकर हिंसा कर रहे हैं। किन्तु ऐसे पत्रोंमें दो चार अपवाद-रूप दूसरेके भी पत्र आये हैं। उनमेंसे एक यहां चुनकर देता हूँ। इस पत्रके लेखक कहते हैं—

"बछड़ा प्रकरणसे कितने संशय दूर हुए। अहिंसाकी मर्यादाके ऊपर आपने खूब ही प्रकाश डाला है, किन्तु उसके साथ ही आपने एक नयी उलझन भी पैदा कर दी है।

"वह यह है—कोई मनुष्य या मनुष्योंका समुदाय लोगोंके बड़े भागको कष्ट पहुंचा रहा है। दूसरी तरहसे उसका निवारण न होता होगा तब उसका नाश करें तो यह अनिवार्य समझकर अहिंसामें खपेगा या नहीं? बछड़ा-प्रकरणमें आपने भावनाको प्राधान्य दिया है। तो इस स्थलमें भी पापी पीड़ा देनेवालेका बध करनेमें भावना ऊँची होनेसे यह बध क्या अहिंसक नहीं गिना जायगा? फस्लका नाश करनेवाले जीवोंके नाशको आपने हिंसा नहीं गिना है। उसी भाँति मानव-समाजका नाश करनेवाले आदमीके नाशको क्या आप अहिंसा न मानेंगे?"

विवेकी पाठक तो यह देख ही गये होंगे कि इस पत्रमें मेरे लेखका अनर्थ हुआ है। अहिंसाकी जो व्याख्या मैंने दी है, उसमें ऊपरके तरीकेपर मनुष्य-बधका समावेश हो ही नहीं सकता। किसान जो अनिवार्य जीव-नाश करता है, उसे मैंने कभी अहिंसामें गिनाया ही नहीं है। यह बध अनिवार्य होकर क्षम्य भले ही गिना जाय, किन्तु अहिंसा तो निश्चय ही नहीं है। किसानकी हिंसामें, या लेखकने जो दृष्टान्त दिया है, उसमें रही हुई हिंसामें समाजका स्वार्थ छिपा हुआ है। अहिंसामें स्वार्थको स्थान नहीं है। बछड़ेके प्राणहरणमें केवल बछड़ेके ही भलेका विचार था। न था उसमें खेतीकी रक्षाका या किसीकी रक्षाका सवाल; न था उसमें मेरी या किसी दूसरेकी सुविधाका प्रश्न। दुःखसे पीड़ित और जिसकी

दूसरी कोई सेवा अशक्य हो पड़ी थी, ऐसे बछड़ेके प्रति जो कर्तव्य था, उसीका सवाल था। प्रस्तुत लेखकके प्रश्नका मिलान बंदरोंके प्रश्नसे जरूर किया जा सकता है। तो भी दोनोंमें बहुत भेद है। बंदरका हृदय-परिवर्तन करनेका कोई सामाजिक उपाय हमारे पास नहीं है। इसलिए उसका प्राणहरण शायद क्षम्य गिना जाय, किन्तु पापीमें भी पापी, कष्ट देनेवाले मनुष्यका हृदय-परिवर्तन हमेशा शक्य है। ऐसे परिवर्तनके इलाजकी भी योजना समाजने की है। इसलिए अहिंसक प्रकरणमें स्वार्थी मनुष्य-बधको कभी स्थान नहीं मिल सकता। मुझे ऐसा नहीं सूझ सकता कि मनुष्य-बध अनिवार्य हो। यह याद रखनेकी जरूरत है कि बछड़ेकी स्थितिमें पड़े हुए मनुष्यके बारेमें मैंने जो कल्पना की है, उसका यहां कोई संबंध नहीं है।

अब रही भावनाकी बात। यह यथार्थ है कि मैंने भावनाको प्राधान्य दिया है। किन्तु अकेली भावनासे अहिंसा नहीं सिद्ध हो सकती। यह सच है कि अहिंसाकी परीक्षा अन्तमें भावनासे होती है। किन्तु यह भी उतना ही सच है कि कोरी भावनासे ही अहिंसा न मानी जायगी। भावनाका माप भी कार्यपरसे ही निकालना पड़ता है। और जहां स्वार्थके वश होकर हिंसा की गयी है, वहां भावना चाहे कितनी ही ऊंची क्यों न हो, तो भी स्वार्थमय हिंसा तो हिंसा ही रहेगी। इससे उलटे जो आदमी मनमें वैर-भाव रखता है किन्तु लाचारीसे उसे काममें नहीं ला सकता, उसे वैरीके प्रति अहिंसक नहीं कहा जा सकता। क्योंकि उसकी भावनामें वैर छिपा हुआ है। इसलिए अहिंसाका माप निकालनेमें भावना और कार्य दोनोंकी परीक्षा करनी होती है।

हिन्दी नवजीवन

१८ अक्टूबर, १९२८

❀

"जहाँ सिर्फ कायरता और हिंसाके बीच किसी एकके चुनावकी बात हो तहाँ मैं हिंसाके पक्षमें राय दूँगा।"

—गांधीजी

अहिंसा बनाम दया

नीचे लिखा पत्र बहुत समय पहलेसे मेरे पास पड़ा था। सोचा था कि फुरसत मिलनेपर इसका उत्तर दूँगा। आज जहाजपर थोड़ी फुरसत मिली है। पत्र संक्षेपमें इस तरह है—

"जब आप दया और अनुकम्पाके भावसे प्रेरित होते और काम करते हैं तब दयाके बदले कई जगह अहिंसा शब्दका प्रयोग करते हैं। इससे गलतफहमीका पैदा होना संभव है, वह पैदा होती है। मुझे यह भी कह देना चाहिये कि मानी हुई दया झूठी भी हो सकती है।

"आपके अहिंसा-सम्बन्धी विचार कई बार अर्थ-शास्त्रके आधारपर ही होते हैं। ऐसी हालतमें अर्थशास्त्र और अहिंसा दोनों परस्पर असंगत और विरोधी तत्त्व मालूम पड़ते हैं। क्योंकि अहिंसा आत्मामेंसे पैदा होनेवाला एक भाव है, जो सक्रिय नहीं होता। लेकिन दया और अनुकम्पा व्यवहारजन्य भाव है। वे सक्रिय हैं; अहिंसा सक्रिय नहीं है। दयाका अहिंसाके बदले और अहिंसाका दयाके बदले उपयोग होनेपर अहिंसाके सच्चे अर्थका उल्लंघन होता है। इस कारण दया और अहिंसाके बीचका भेद जान लेने योग्य हैं।

"क्या किसी क्रूर और जंगली कही जानेवाली मनुष्यभक्षी जातिमें मनुष्यजातिके प्रति प्रेम पैदा करके, दया उपजाकर, दूसरे प्राणी और मनुष्यके बीचका विवेक समझाकर उसका मनुष्य-भक्षण छुड़ाना और पशुके मांससे अपना निर्वाह करनेकी बात कहना, अथवा मांस खानेवाले लोगोंको फल, फूल, वृक्ष आदि वनस्पतिसे जीवन-निर्वाह करनेकी बात कहना उन्हें अहिंसाका मार्ग बतलाना कहा जायगा? विचार करनेपर यह एकांग विवेक प्रतीत होगा। एकांग होते हुए भी यह सदोष है। अहिंसाकी दृष्टिमें जीवभाग समान है। इस कारण ऊपरका मार्ग अहिंसाका मार्ग नहीं है।

"क्या अहिंसा-धर्मका अथवा धर्म-मात्रका सब तरहके व्यवहारमें, हर एक कामके साथ स्पष्ट तौरपर आचरण करनेका आग्रह करना भूल नहीं है?"

पत्र-लेखककी भावना सुन्दर है, लेकिन मेरे विचारमें उनका अहिंसाका अनुभव-अभ्यास कम है। अहिंसा और दयामें उतना ही भेद है जितना सोनेमें और सोनेके गहनोंमें, बीजमें और वृक्षमें। जहां दया नहीं वहां अहिंसा नहीं। अतः यों कह सकते हैं कि उसमें जितनी दया है उतनी ही अहिंसा है। अपनेपर आक्रमण करनेवालेको मैं न मारूँ उसमें अहिंसा हो भी सकती है और

नहीं भी। डरकर उसे अगर न मारूँ तो वह अहिंसा नहीं हो सकती। दया-भावसे ज्ञानपूर्वक न मारनेमें ही अहिंसा है।

जो बात शुद्ध अर्थशास्त्रके विरुद्ध हो वह अहिंसा नहीं हो सकती। जिसमें परम अर्थ है वह शुद्ध है। अहिंसाका व्यापार घाटेका व्यापार नहीं होता। अहिंसाके दोनों पलड़ोंका जमा-खर्च शून्य होता है। याने उसके दोनों पलड़े समान होते हैं। जो जीनेके लिए खाता है, सेवा करनेके लिए जीता है, मात्र पेट पालनेके लिए कमाता है वह काम करते हुए भी अक्रिय है; वह हिंसा करते हुए भी अहिंसक है। क्रियाहीन अहिंसा आकाशके फूलके समान है। क्रिया हाथ-पैरसे ही होती है, सो नहीं। मन हाथ-पैरकी अपेक्षा बहुत ज्यादा काम करता है। विचार मात्र क्रिया है। विचार-रहित अहिंसा हो ही नहीं सकती। शरीरधारी मनुष्यके लिए ही अहिंसा-धर्मकी कल्पना की गयी है।

सर्वभक्षी जब दयासे प्रेरित होकर भक्ष्य पदार्थोंकी मर्यादा निश्चित करता है तब उस हद तक वह अहिंसा धर्मका पालन करता है। इसके विपरीत जो रूढ़िके कारण मांसादि नहीं खाता, वह अच्छा तो करता है, लेकिन यह नहीं कहा जा सकता कि उसमें अहिंसाका भाव है ही। जहां अहिंसा है वहां ज्ञान-पूर्वक दया होनी ही चाहिये।

अगर अहिंसा-धर्म सच्चा धर्म हो तो हर तरह व्यवहारमें उसका आचरण करना भूल नहीं, बल्कि कर्त्तव्य है। व्यवहार और धर्मके बीच विरोध नहीं होना चाहिये। धर्मका विरोधी व्यवहार छोड़ देने योग्य है। सब समय, सब जगह, सम्पूर्ण अहिंसा संभव नहीं, यों कह कर अहिंसाको एक ओर रख देना हिंसा है, मोह है, और अज्ञान है। सच्चा पुरुषार्थ तो इसमें है कि हमारा आचरण सदा अहिंसाके अनुसार हो। इस तरह आचरण करनेवाला मनुष्य अन्तमें परम पद प्राप्त करेगा, क्योंकि वह सम्पूर्णतया अहिंसाका पालन करने योग्य बनेगा। और यों तो देहधारीके लिए सम्पूर्ण अहिंसा बीज-रूप ही रहेगी। देह-धारणके मूलमें हिंसा है, इसी कारण देहधारीके पालने योग्य धर्मका सूचक शब्द निषेध-वाचक अहिंसाके रूपमें प्रकट हुआ है।

हिन्दी नवजीवन

४ अप्रैल, १९२९

❀

"जहाँतक मानवीय दृष्टिसे सम्भव है तहाँतक पूर्ण आत्म-शुद्धि अहिंसाके अंदर निहित है।"

—गांधीजी

क्या रामने खून बहाया था ?

जिन्हें खादी जहर-सी लगती है, उन्हीं भाईका एक और सवाल यों है—

"मेरे विचारमें कमजोर और निहत्थे होनेके कारण ही अहिंसात्मक असहयोग हमारे लिये श्रेष्ठ है। लेकिन जिन रामचन्द्रजीका राज्य रामराज्य कहलाता है, उन्हें भी रावणके साथ लड़कर खून बहाना पड़ा था। कृपाकर कोई ऐसा पुराना उदाहरण दें, जिसमें कभी किसीने खून बहाये बिना जय प्राप्तकी हो। बिल्ली एक छोटा-सा प्राणी है, मगर जब कुत्ता उसके बच्चेको उठाने जाता है, जान जोखिममें डालकर भी वह उसका विरोध करती है। बिल्ली यह खूब जानती है कि उसकी कुछ चलेगी नहीं, फिर भी वह मरनेको तैयार हो जाती है, और जबतक कुत्ता उसे मार नहीं डालता, बच्चेको ले जाना कठिन है। इसमें कुदरतकी कुछ खूबी है! मेरे विचारमें अहिंसात्मक असहयोगके कारण ही सरकार दिन-दिन अपना फौलदी पंजा अधिकाधिक मजबूत बनाती जाती है, अगर हम उसे चमत्कार बतावें तो वह अवश्य नमस्कार करे—फिर भले ही वह एक हजारका खून क्यों न करे, हम भी ३००—४०० से कम तो क्या करेंगे। ३३ करोड़ भारतीयोंका अहिंसामें विश्वास रखना आसमानमें फूल खिलनेके समान है। अतएव प्रार्थना है कि देशकी नब्जको ठीक-ठीक परखिये। मेरे विचारमें आप निदान करनेमें भूले हैं।"

मेरा दृढ़ विश्वास है कि अहिंसात्मक असहयोग निर्बलका ही बल नहीं, बल्कि बलवानोंका भी खास बल है। वह सर्वव्यापी सिद्धान्त है। जानमें हो अनजानमें हम रात-दिन इसपर अमल करते हैं। वर्तमान इतिहासमें राजाओंकी लड़ाईको अधिक महत्व दिया जाता है। लोगोंका, प्रजाका इतिहास भविष्यमें लिखा जायगा। जब वह इतिहास लिखा जायगा, तब हम देखेंगे कि उसके पन्ने-पन्नेमें अहिंसात्मक असहयोग भरा पड़ा है। जब स्त्री दुष्ट पतिके वश नहीं होती, तब वह उससे अहिंसात्मक असहयोग करती है। 'क्वेकर' लोगोंका इतिहास अहिंसात्मक असहयोगका जगमगाता उदाहरण है। भारतमें वैष्णवोंका इतिहास भी इसी सिद्धान्तकी पुष्टि करता है—ये लोग जो काम कर सके हैं, सारी दुनिया उसे कर सकती है।

देखनेवाले साफ-साफ देख सकते हैं कि जगतकी गति शान्तिकी ओर है। मानव-जातिका शरीर तो मनुष्यका है, मगर अभी उसने पशु-स्वभावका त्याग नहीं किया है। उसे यह त्याग करना ही पड़ेगा। इसी कारण कुत्ते बिल्लीकी मिसाल बेठिकाने है और हमारे लिये अशोभनीय है। हम कुत्ते बिल्ली नहीं हैं; हम दो पैरपर सीधे खड़े होनेवाले, आत्माको पहचाननेकी इच्छा रखनेवाले और बुद्धि-शक्तिवाले प्राणी हैं।

और रामचन्द्र ? कौन सिद्ध कर सका है कि रामचन्द्रने लंकामें खूनकी नदी बहायी थी ? दस सिरवाला रावण कब जन्मा था ? बन्दरोंकी फौज किसने देखी थी ? रामायण धर्म-ग्रन्थ है, रूपक है। करोड़ों लोग जिस रामकी पूजा करते हैं, वह राम घट-घट व्यापी है। रावण भी हमारे ही शरीरमें रहनेवाले दस सिर वाले विकराल विकारोंका रूप है। उसके खिलाफ अन्तर्यामी राम सदा युद्ध करता है। वह तो दयाकी मूर्ति है। अगर किसी ऐतिहासिक रामने किसी ऐतिहासिक रावणसे युद्ध किया भी हो तो उससे हमें बहुत-कुछ सीखनेको नहीं मिलता। इन प्राचीन राम-रावणको खोजनेकी जरूरत ? आज तो वे दर-दर पड़े हैं। सनातन राम ब्रह्मस्वरूप है, सत्य और अहिंसाकी मूर्ति है।

भारतकी समस्या न तो क्रोधसे सुलझेगी, न रामायणादि ग्रन्थोंके अर्थका अनर्थ करनेसे और न पशुओंकी नकलसे। इस समस्याको हल करनेके लिए हमें अपने आपको पहचानना पड़ेगा। अहिंसात्मक असहयोग भारतको उसके मनुष्यत्त्वकी याद दिलानेवाली चीज है। भले ही करोड़ों लोग एक साथ इस बातमें श्रद्धा न रखें। हथियार उठानेके लिए भी कौन करोड़ों तैयार बैठे हैं ? करोड़ों तैयार हो भी नहीं सकते। अहिंसात्मक युद्धमें अगर थोड़े भी मर मिटनेवाले लड़ाके होंगे, तो वे करोड़ोंकी लाज रखेंगे और उनमें प्राण फूकेंगे। अगर यह मेरा स्वप्न है, तो भी मेरे लिए मधुर है। आकाशकुसुम है तो भी मेरी कल्पनाकी आँखोंमें उनकी शोभा है, और उसमेंसे सौरभ फैलता ही रहता है।

हिन्दी नवजीवन

१५ अगस्त, ~~१९२८~~ १९२९

❀

"अहिंसामें हार जैसी कोई चीज ही नहीं है। हिंसाके अंतमें तो निश्चित हार ही है।"

—गांधीजी